परिचय

श्री वियोगी हरि

लेखक

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

DIVAMGAT HINDI-SEVI (Vol. I)

The Encyclopaedia of Late Hindi Litterateurs and Devotees

First Edition : April, 1981

Price : Rs. 300.00

Published by :
SUBHASH JAIN
Director
SHAKUN PRAKASHAN
3625, Subhash Marg,
New Delhi-110002

Printed in India
at Bharti Printers,
K-16, Naveen Shahdara,
Delhi-110032

●

दिवंगत हिन्दी-सेवी : प्रथम खण्ड

संदर्भ-ग्रन्थ

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 1981

मूल्य : 300.00

प्रकाशक

सुभाष जैन

संचालक

शकुन प्रकाशन

3625, सुभाष मार्ग,

नई दिल्ली-110002

मुद्रक

भारती प्रिण्टर्स

के-16, नवीन शाहदरा,

दिल्ली-110032 (भारत)

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य के विकास में, हमने अपनी सेवाओं के बीस वर्षों का विनम्र प्रयास अब तक प्रस्तुत किया है। साहित्य की उन विधाओं और कृतियों के प्रकाशन के प्रति हमारे विशिष्ट प्रयास रहे हैं, जिनकी आवश्यकता साहित्य-जगत् में बराबर अनुभव की जाती रही है। 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' ग्रन्थ का प्रकाशन भी हमारे इसी प्रयास का एक पुष्प है। इस विशालकाय सन्दर्भ-ग्रन्थ को हिन्दी-पाठकों के कर-कमलों में सौंपते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव हो रही है। शोध तथा अनुसन्धान के क्षेत्र में इस ग्रन्थ का अपना एक सर्वथा विशिष्ट महत्त्व है। अभी तक हिन्दी में ऐसी सन्दर्भमूलक सामग्री से समन्वित जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' (डॉ० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन), 'शिवसिंह सरोज' (शिवसिंह सेंगर), 'कविता कौमुदी' (रामनरेश त्रिपाठी), 'मिश्रबन्धु विनोद' (मिश्रबन्धु) और 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) आदि महत्त्वपूर्ण हैं। जब ये ग्रन्थ लिखे गए थे तब उनकी अपनी एक विशिष्ट महत्ता थी। ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होता गया त्यों-त्यों शोध और अनुसंधान के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। अभी तक हिन्दी में ऐसा कोई सन्दर्भमूलक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था जिसमें विगत 200 वर्षों की काल-परिधि में हुए उन अनेक साहित्यकारों तथा हिन्दी-सेवियों की जानकारी सुलभ हो सकती, जिनका हिन्दी साहित्य के उत्कर्ष में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थ के लेखक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने इस दिशा में पहल करके यह दुरूह और उपयोगी कार्य किया है। सुमनजी ने देश के सभी क्षेत्रों की हजारों मील की श्रमसाध्य यात्रा करके इस सन्दर्भ-ग्रन्थ के लिए जो प्रचुर सामग्री संग्रहीत की है उसकी पुष्कलता को दृष्टि में रखकर हमने इसे दस खण्डों में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। इस ग्रन्थ के लिए अपेक्षित चित्रों की उपलब्धि में बहुत-सी कठिनाइयाँ हमारे सामने आई हैं। फिर भी सन्तोष है कि कुछ दुर्लभ चित्र हम जुटा पाए हैं। इस दृष्टि से हमने अपनी सुविधा से भी अधिक प्रामाणिकता को प्राथमिकता दी है। कागज और मुद्रण-सामग्री की महँगाई के इस युग में हमने इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड को यथासम्भव उपादेय और संग्राह्य बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। आशा है विद्वज्जन और हिन्दी-प्रेमी पाठक हमारे इस प्रयास का उदारतापूर्वक स्वागत करेंगे।

सुभाष जैन
संचालक, शकुन प्रकाशन

नई दिल्ली-110002

स्वागत

विपदा को कोई नहीं चाहता, और सम्पदा को सभी चाहते हैं। ये दोनों, विपदा और सम्पदा, बहुत सारी चीजों की तरह सापेक्ष हैं। एक का दुःख दूसरे के लिए सुख हो जाता है, यदि उनके बीच शत्रु-भाव होता है; और इसी प्रकार एक का सुख दूसरे के लिए दुःख बन जाता है। परन्तु विवेकवान् व्यक्ति की दृष्टि में विपदा और सम्पदा इन दोनों की व्याख्याएँ अलग ही हैं। भगवान् का, सत्पुरुषों का, सद्भावना का विस्मरण ही आपदा है, और उनका स्मरण सच्ची सम्पदा है—'विपद् विस्मरणं विष्णोः संपद् नारायणस्मृतिः।'

हम अक्सर उसे भूल जाते हैं जिसे भूलना नहीं चाहिए; और उसे याद रखते हैं जिसे भूल जाना चाहिए। यदि किसी का उपकार हम कर बैठते हैं तो बार-बार बखान करते हैं, उसे भूलते नही है। यदि कोई हमारा अपकार करता है तो उसे सदा याद रखते हैं। ये दोनों ही बातें जीवन को प्रकाश देने वाली नहीं हैं, और अंधेरे में हमें भटका देती हैं। प्रकाश का रास्ता तो यह है कि दूसरों के प्रति अपनी की हुई अच्छाई को भूल जायें और किसी दूसरे ने हमारा भला किया हो तो उसे हमेशा याद रखें। हम गहरे उतरकर देखें कि जो नहीं भूलना था उसे भूल बैठे, और भूल जाने की बातों को याद करते रहते हैं। 'कृतज्ञता' के स्थान पर जान या अनजान में 'कृतघ्नता' ने कब्जा कर लिया है। तब, हमें चेतना होगा। कृतघ्नता के पाप से मुक्त होना होगा। असत् का विस्मरण और सत् का स्मरण यदि समय रहते नहीं किया तो बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। काल संकेत दे रहा है, चेतावनी दे रहा है कि स्मरण करो उसका जो वस्तुतः स्मरणीय है।

हम भूल गए हैं या भूलते जा रहे हैं अनेक बातों के साथ-साथ ऐसे हिन्दी-सेवियों को, जो पिछली शताब्दी में और वर्तमान शताब्दी में दिवंगत हो गए—जिन्होंने हाथ में टिमटिमाते दीपक को लेकर हमें मार्ग दिखाया था, समाज का चित्र खींचकर समय-समय पर सामने रखा था। उनमें से बहुतों के नाम भी याद नहीं रख सके। दिमाग के स्टोर में, जानकारी के नाम पर, न जाने क्या-क्या जमा कर रखा है। पर अनमोल रत्नों को भूल की धूल से ढक रखा है। कैसी विडम्बना है यह !

अन्य देशों और हमारे अपने देश के अनेक भाषा-भागों में साहित्य-सेवियों पर जो काम हुआ है उसे हम छोड़ देते हैं। देखना है कि हिन्दी-साहित्य में इस ओर कितना कुछ हुआ है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा नाभाजी की 'भक्तमाल' के बाद 'शिवसिंह सरोज' पर, फिर 'हिन्दी नवरत्न' और 'मिश्रबन्धु-विनोद' पर सबसे पहले दृष्टि जाती है। 'मिश्रबन्धु-विनोद' और 'कविता-कौमुदी' साहित्य-सेवियों के अच्छे परिचायक और समीक्षात्मक ग्रन्थ हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' अनुपम है। बाद में और भी कई ग्रन्थ लिखे गए। वे भी मार्गदर्शक हैं। हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन तथा साहित्य-सेवियों का श्रेणी-विभाजन भी हुआ, जो विचारणीय रहा है। नींव रखने वाले इन लेखकों के हम सभी ऋणी हैं। इनके द्वारा हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली है।

हिन्दी-सेवियों का परिचायक साहित्य वास्तव में बड़ा श्रम-साध्य है। यदि गहराई से शोध और अन्वेषण न किया जाय, तो परिचय कभी-कभी भ्रामक बन जाता है। एक ही नाम के साहित्य-सेवियों के परिचय गलतफहमी पैदा कर देते हैं। सूरदास को ही लीजिए। संस्कृत के भक्त कवि बिल्वमंगल और ब्रजभाषा-सम्राट् सूरदास को एक ही व्यक्ति मान लिया गया था। 'हिन्दी-शब्द-सागर' में भी यह भूल थी। गोस्वामी तुलसीदास का नाम कुछ रचनाओं में जोड़ दिया गया। 'कहे कबीर सुनो भई साधो' यह जोड़कर सैकड़ों भजन कबीर के नाम से प्रचलित हो गए। आज मन्दिरों में और घरों में भी 'जय जगदीश हरे' यह आरती गाई जाती है। इसके रचयिता पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम लोग भूल गए हैं। कोई-कोई इसके तथा इसीके अनुकरण पर रची गई अन्य आरतियों के अन्त में 'कहत शिवानन्द स्वामी' या 'कहत हरीहर स्वामी' यह छाप जोड़ लेते हैं।

पुराने हिन्दी-सेवियों के जो परिचय उपर्युक्त ग्रन्थों में दिये गए, उनसे निःसन्देह कुछ-न-कुछ प्रेरणा मिली है, आगे बढ़ने का रास्ता खुला है। कुल मिलाकर यह काम स्तुत्य है।

खेद है कि इधर पिछले कुछ दिनों से यह कार्य जैसे रुक-सा गया है। इसका एक कारण यह जान पड़ता है कि राज-पुरुषों पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता जा रहा है। राजनीति के क्षेत्र के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम बहुधा सामने आ जाते हैं—ऐसे भी नाम; जिनका सम्बन्ध साहित्य-सृजन तो दूर की बात है, जिन्होंने साहित्य की तरफ़ कभी झाँका भी नहीं। और, वे साहित्य-सेवियों को उपदेश देने लगते हैं, उनको सही रास्ता भी दिखाने लग जाते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि समाज के सर्जक साहित्यकार अपनी रचनाओं के बल पर सदा अमर रहेंगे, भले ही उनके नाम राजनीति की धुन्ध में साफ-साफ न पढ़े जायें। पर इसमें सन्देह नहीं कि उनका स्थान स्थायी रहेगा। एक प्रसंग हमें याद आ रहा है। जब राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को 'भारत-रत्न' का अलंकरण दिया गया, तब हमने उनको बधाई का पत्र लिखा। पत्र का उत्तर उन्होंने यह दिया—

> "मुझे उतार-चढ़ाव की उपाधियाँ देने का सरकारी कम अच्छा नहीं लगता। इसमें गवर्नमेंट को अन्तर करना पड़ता है, परन्तु वह सूक्ष्म न्याय नहीं कर सकती। सुमित्रा-

सुमित्रानन्दन पन्त को नीची उपाधि दी गई, मुझे ऊँची उपाधि मिली। यह सच है कि मैं आयु में बड़ा हूँ और पुराना कार्यकर्ता भी हूँ। परन्तु यह मैं जानता हूँ कि मुझे जब लोग भूल जायेंगे, तब सुमित्रानन्दन पन्त की कविता पढ़ी जायगी। जनता स्वयं अपने आदर के पात्रों को समय-समय पर पहचान लेती है। यह क्रम बन्द हो जाय तो अच्छा।"

अपना स्थान साहित्य-सेवी स्वयं ही निर्माण करते हैं। डगमगाती हुई राजनीति उनको डिगा नहीं सकती। वे बुलाने नहीं जाते स्तुतिकारों को अपना गुण-कीर्तन कराने को। किन्तु साहित्य-सेवियों का जो गुण-गान करता है वह अक्षय पुण्य का भागी बन जाता है।

जिस कार्य को शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि साहित्यकारों ने हाथ में लिया था वह बीच में कुछ शिथिल-सा हो गया। उस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए देखकर स्वभावतः बड़ा सन्तोष और आनन्द होता है। हिन्दी-जगत् के जाने-माने सुलेखक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने जब दिवंगत हिन्दी-सेवियों के कीर्ति-गान का संकल्प किया, तो हम सबके मन प्रफुल्लित हो गए। संकल्प यह महान् ज्ञानयज्ञ का है। विशुद्ध भावना, ऊँचा साहस और अथक परिश्रम इस यज्ञ की पुनीत सामग्री है। अकेले ही सुमन जी ने इस सामग्री को जुटाया। दिवंगत हिन्दी-सेवियों का स्मृति-श्राद्ध करते हुए पुण्य-सलिला गंगा में मानो वे अवगाहन कर रहे हैं, और दूसरों को भी इस पावन पर्व पर पुण्य लूटने का आमन्त्रण दे रहे हैं।

उनका संकल्प है दस खण्डों में इस महान् ग्रन्थ का सृजन और प्रकाशन करने का। पहला खण्ड प्रस्तुत है। इसमें 889 दिवंगत हिन्दी-सेवियों का परिचय दिया गया है न्यूनाधिक रूप में, जैसा कि सुलभ हो सका। यह सन् 1800 से प्रारम्भ होता है। सुमन जी को इसके लिए काफी भ्रमण करना पड़ा, जो उनके लिए तीर्थ-यात्राएँ थीं। दिन और रात इस ज्ञानयज्ञ के लिए उन्होंने एक कर दिया 'चरैवेति चरैवेति' सूक्ति को सामने रखकर। अधिकांश हिन्दी-सेवियों के चित्र भी उनके परिचय के साथ दिये गए हैं।

इतना बड़ा कार्य सुमनजी ने अकेले ही उठाया। लगता है कि हमारे देश की मिट्टी ही कुछ ऐसी है कि जहाँ अकेले व्यक्तियों ने ही बड़े-बड़े काम हाथ में लेकर पूरे किये हैं। उनके साथी रहे हैं, उनका सत्संकल्प, उनकी विशुद्ध भावना, उनकी अखण्ड निष्ठा, और अथक परिश्रम।

हमारी दृढ़ आशा है कि 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' ग्रन्थ के सभी खण्ड यथोचित काल में सुसम्पादित एवं सुसज्जित रूप में प्रकाशित होंगे। हिन्दी-सेवियों के स्मृति-श्राद्ध में लेखक के साथ-साथ हम सभी साहित्य-प्रेमी पाठक अपना योगदान देकर पुण्यार्जन करेंगे।

'सेवा निकेत'
एफ 13/2 माडल टाउन, दिल्ली-9

निवेदन

इस ग्रन्थ के निर्माण की संकल्पना मेरे मन में उस समय हुई थी जब कि मुझे सन् 1974 में मेरे अनन्य मित्र और हिन्दी के अध्ययनशील साहित्यकार डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के निधन के उपरांत पंजाब सरकार के 'जागृति' नामक पत्र के अप्रैल सन् 1974 के अंक में उनका परिचय नितान्त विकृत रूप में पढ़ने को मिला था। लेखक ने स्पष्ट ही यह परिचय हिन्दी के पुराने साहित्यकार और समालोचक पं० पद्मसिंह शर्मा का लिख दिया था; उसमें केवल आगरा तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयों में अध्यापन करने की बात ही कमलेशजी के जीवन से सम्बन्धित थी। यहाँ तक कि लेखक ने उनकी जन्म-भूमि तथा जन्म-तिथि भी उन्हीं पुराने पद्मसिंह शर्मा की लिख दी थी। उस लेख में कमलेशजी की जन्म-तिथि सन् 1915 न देकर सन् 1876 दी गई थी। इस लेखक के अनुसार कमलेशजी की आयु उस समय 98 वर्ष होनी चाहिए थी, जबकि निधन के समय वे केवल 59 वर्ष के थे। विज्ञ लेखक ने यह भी सोचने का कष्ट नहीं किया था कि 98 वर्ष की आयु में वे कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय में कैसे पढ़ा सकते थे! केवल यही नहीं; उनकी रचनाओं की सूची देते हुए पुराने पद्मसिंह शर्मा की पुस्तकों के नामों का उल्लेख भी लेखक ने उसमें धड़ल्ले से किया था।

आप स्वयं सोच सकते हैं कि किसी लेखक की मृत्यु के केवल दो मास बाद ही जब इस प्रकार की अनर्गल और भ्रांतिपूर्ण सूचनाएँ हिन्दी के पत्रों में छप सकती हैं तो उन असंख्य लेखकों और साहित्यकारों के संदर्भ-सूत्रों का क्या हाल होगा जिन्होंने विगत दो शतियों में हिन्दी-साहित्य की उन्नति और विकास में उल्लेखनीय योगदान किया है। इस पर तुर्रा यह, कि कुरुक्षेत्र और चण्डीगढ़ की दूरी भी बहुत अधिक नहीं है। दूर क्यों जायँ, हम अपने सूर और तुलसी-जैसे महाकवियों को ही लें। यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि आज इतना समय बीत जाने के उपरांत भी हम अपने इन महाकवियों की जन्म-भूमि के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट निर्णय नहीं ले सके हैं। इन सब बातों को दृष्टि में रखकर मैंने अपने मन में 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' नाम से एक ऐसे संदर्भ-ग्रन्थ के निर्माण का साहसिक संकल्प किया, जिसमें फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के समय (सन् 1800) के बाद के सभी दिवंगत हिन्दी-सेवियों का पूर्ण प्रामाणिक संदर्भ हो। अपने

कार्य को गति देने के लिए सबसे पहले मैंने विभिन्न पुस्तकालयों में बैठकर पुरानी पत्र-पत्रिकाओं का अवगाहन किया और तदुपरान्त दो सौ वर्षों के इस काल-खण्ड के हिन्दी-लेखकों की सूची तैयार की। बाद में उसकी टंकित प्रतियाँ हिन्दी के कुछ वयोवृद्ध साहित्यकारों के पास भेजकर उसके सम्बन्ध में उनके रचनात्मक सुझाव भी मैंने माँगे। इस पर कुछ ने तो अपनी आयुजन्य विवशता बताकर सुझाव देने में असमर्थता प्रकट की, और कुछ ने शारीरिक अक्षमताओं के कारण मुझे स्वयं आकर मिलने तथा यात्रा करने के संकेत भी दिए।

हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के लेखक श्री सन्तराम बी० ए० ने अपने 9 अगस्त, सन् 1978 के पत्र में स्पष्ट रूप से यह लिखा था—"मेरे जीवन का यह 92वाँ वर्ष है। कमजोरी है। पत्र लिखने में भी असमर्थ हूँ। यह पत्र भी दूसरे व्यक्ति से लिखवा रहा हूँ।" इसी प्रकार पुराने हिन्दी-सेवी डॉ० गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र' ने आगर (मालवा) से अपने 7 अगस्त, 1978 के पत्र में यह लिखकर अपनी अक्षमता का प्रकटीकरण किया—"आपको यह जानकर दुःख होना स्वाभाविक है कि मेरी आँखें मुझे जवाब दे चुकी हैं। आपकी सूची को मैंने आद्यन्त पढ़वाकर सुन लिया है। आपने श्रम करके काफी सफलता प्राप्त कर ली है। मेरी उम्र 84 वर्ष की हो रही है। कब चिराग गुल हो जाए, पता नहीं।" हिन्दी के पुराने पत्रकार और कवि श्री पद्मकान्त मालवीय ने अपने 23 अगस्त, सन् 1978 के पत्र में यह लिखा—"अप्रैल मास से ही मैं शैया-सेवन कर रहा हूँ। मजबूरी है। कभी दर्शन दें तो आमने-सामने बैठकर बातें हो सकेंगी।" जब मैं इस प्रकार के पत्रों से सर्वथा निराश हो गया तो अन्तिम आशा-किरण के रूप में मैंने हिन्दी के अनन्य सेवक और 'सरस्वती' तथा 'दीदी' के भूतपूर्व सम्पादक ठा० श्रीनाथसिंह का द्वार खटखटाया। दैवी मार; वहाँ से भी लगभग ऐसा ही नकारात्मक उत्तर आया। उन्होंने अपने 4 सितम्बर, 1978 के पत्र में यह लिखा था—"आजकल मेरी दोनों आँखों में मोतिया बिंद की शिकायत है। जब तक कम-से-कम एक आँख न खुलवा लूँ, लिखने-पढ़ने का काम असंभव है।" इस बीच विधाता के वरदान की भाँति जबलपुर से श्री रामेश्वर गुरु का उत्साहवर्धक पत्र मुझे मिला। उन्होंने न केवल मुझे औपचारिक बधाई दी, प्रत्युत कुछ रचनात्मक सुझाव भी दिए और छूटे हुए हिन्दी-सेवियों की एक लम्बी सूची भेजकर उनके संदर्भ-स्रोतों का उल्लेख करते हुए इस कार्य की गुरुता का भी संकेत किया। हिन्दी के पुराने पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने जहाँ इसे एक 'अनुपम श्राद्ध-कर्म' घोषित किया वहाँ आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने इस योजना की 'दुर्वहता' और 'गुरुता' को जताकर स्पष्ट शब्दों में यहाँ तक लिख दिया—"सत्य बात तो यह है कि इस प्रकार के ठोस कार्यों में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्-जैसी संस्थाओं की, या यों कहिये कि उनके संचालकों की, कोई रुचि नहीं है। आपका संकल्प अत्यन्त सराहनीय है, किन्तु इसके लिए सब काम आपको ही करना पड़ेगा।"

वास्तव में जिस समय मैंने इस कार्य को करने का संकल्प किया था तब यह कल्पना तक नहीं की थी कि यह कार्य हिमालय को सिर पर उठाने-जैसा होगा। परन्तु ज्यों-ज्यों मैं कार्य में डूबता गया त्यों-त्यों मुझे इसकी 'दुर्वहता' और 'गुरुता' का आभास होता गया। परिणामतः

अपने इस कार्य को सरल और प्रामाणिक बनाने की दृष्टि से मैंने उस सूची को मुद्रित कराया और उसे हिन्दी के सभी जागरूक सुधी समीक्षकों, विद्वानों, प्रचारकों और अध्येताओं के पास भेजकर उनके रचनात्मक सुझाव आमंत्रित किये। इसके उपरांत मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब सारे देश के कोने-कोने से मेरी इस योजना के स्वागत के पत्र आने प्रारम्भ हुए जहाँ। पाठकों ने उन्मुक्त भाव से इस ग्रन्थ के लिए उपादेय सामग्री भेजी, वहाँ कहीं-कहीं से किन्हीं 'जीवित साहित्यकारों' के नाम भी इस सूची में होने की सूचनाएँ मुझे मिलीं। अपनी यह सूची भेजते हुए मैंने स्वयं ही स्पष्ट शब्दों में यह लिख दिया था कि "प्रबुद्ध पाठक अपने उपयोगी सुझावों से हमें अवगत करने के साथ-साथ यह भी सूचित करने का कष्ट करें कि कहीं हमारी अज्ञानता के कारण इसमें कोई उल्लेखनीय व्यक्तित्व समाविष्ट होने से छूट तो नहीं गया अथवा किन्हीं ऐसे महानुभावों के नाम तो इसमें नहीं आ गए, जो आज भी जीवित हैं।" कदाचित् मेरी इन पंक्तियों से प्रेरित होकर ही सुधी पाठकों ने यह सूचना देना अपना नैतिक कर्तव्य समझा था और वास्तव में 1500 के लगभग दिवंगत साहित्यकारों की इस सूची में 24 नाम ऐसे समाविष्ट हो गए थे जो उस समय तक जीवित थे। यह बात दूसरी है कि उनमें से अब 1-2 अवश्य ही दिवंगत हो गए हैं।

अपनी इस सूची को प्रामाणिक रूप देने एवं तत्संबंधी सामग्री सँजोने के पावन उद्देश्य से प्रेरित होकर ही मैंने यह उचित समझा कि एक बार सारे देश की यात्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। फलतः मैंने क्रमशः 29 दिसम्बर सन् 1978 से 13 मार्च सन् 1979 तथा 1 सितम्बर सन् 1979 से 17 अक्तूबर सन् 1979 तक अपने ही व्यय पर दो चरणों में आगरा, ग्वालियर, झाँसी, चन्देरी, ललितपुर, सागर, भोपाल, अमरावती, जबलपुर, रायपुर, बिलासपुर, नागपुर, वर्धा, बम्बई, पूना, हैदराबाद, बंगलौर, त्रिचूर, त्रिवेन्द्रम, कन्याकुमारी, मद्रास, कलकत्ता, पटना, वाराणसी, इलाहाबाद, कानपुर, उन्नाव, लखनऊ, कोटा, सीतामऊ, रतलाम, उज्जैन, आगर, इन्दौर, खण्डवा, अहमदाबाद, राजकोट, पोरबन्दर, द्वारका, उदयपुर, अजमेर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर और चूरू आदि विभिन्न स्थानों की यात्राएँ कीं। इन नगरों के अतिरिक्त मैं मेरठ, मथुरा, धौलपुर, अलवर, सहारनपुर, देहरादून, कनखल, बुलन्दशहर, मुरादाबाद, सम्भल, बरेली तथा पीलीभीत आदि नगरों में भी गया। इन यात्राओं में जहाँ मुझे अपने ग्रन्थ से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई वहाँ इस बीच बहुत-से उन साहित्यकारों से भेंट करने का सुअवसर भी प्राप्त हो गया जिनके नाम मेरी सूची में गलतीसे समाविष्ट हो गए थे। ऐसे कतिपय महानुभावों में सर्वश्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, सुन्दरलाल त्रिपाठी, रसूल अहमद 'अबोध' और विजय वर्मा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अपनी इन यात्राओं में जहाँ मुझे अनेक पुराने हिन्दी-सेवकों और प्रचारकों के सम्पर्क तथा सान्निध्य का सुख उपलब्ध हुआ वहाँ मैं बहुत-सी ऐसी विभूतियों से भी भेंट कर सका जो अनेक दशकों तक साहित्य की सेवा करने के उपरान्त आज श्रान्त पथिक की भाँति अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम चरण में हैं। ऐसी विभूतियों में सर्वश्री डॉ० गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र', पं० झाबरमल्ल शर्मा, लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, छविनाथ पाण्डेय, कालिकाप्रसाद दीक्षित

'कुसुमाकर' और प्रवासीलाल वर्मा मालवीय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'माया' तथा 'सहेली' के आदि सम्पादक श्री विजय वर्मा, 'उत्तर बिहार' के प्रधान सम्पादक श्री रामरीझन रसूलपुरी और 'हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय हैदराबाद' के श्री वंकटलाल ओझा भी लगभग मुझे ऐसी ही अवस्था में मिले। हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के रससिद्ध कवि श्री श्यामसुन्दर खत्री, प्रख्यात क्रान्तिकारी लेखक डॉ० भगवानदास माहौर, पुराने खेवे के कर्मठ पत्रकार श्री द्वारकाप्रसाद 'सेवक' तथा पण्डित पद्मकान्त मालवीय भी उन दिनों अस्वस्थ थे। मैं इन महानुभावों से इन यात्राओं में मिला था। खेद है कि माहौर जी 13 मार्च, सन् 1979 को, खत्री जी 83 वर्ष की अवस्था में 26 मई, सन् 1979 को, श्री सेवकजी 1 नवम्बर, 1980 को तथा मालवीयजी 16 जनवरी सन् 1981 को हमसे विदा हो गए। इस सन्दर्भ में श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर, बम्बई 'नवभारत टाइम्स' के श्यामरथीसिंह, श्री विश्वम्भर 'मानव', राय कृष्णदास, वाचस्पति पाठक, श्री हंसकुमार तिवारी ठा० उल्फतसिंह चौहान 'निर्भय' तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाम भी स्मरणीय हैं। श्री धुलेकर जी के 88वें जन्म-दिन पर मैं उनसे उनके निवास-स्थान झाँसी में मिला था और श्यामरथीसिंह मेरे स्वागत में आयोजित बम्बई की गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे। श्री वाचस्पति पाठक के निवास पर प्रयाग में मैं भोजन से कृतार्थ हुआ था, तो राय कृष्णदास से उनके काशी के 'सीता निवास' में मिला था। श्री विश्वम्भर 'मानव' तथा श्री हंसकुमार तिवारी से भी अपनी इस साहित्य-यात्रा में मुझे उपयोगी परामर्श करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। मेरी इस साहित्य-यात्रा के प्रथम चरण का जो शुभारम्भ आगरा से हुआ था, उसकी गोष्ठी का आयोजन ठा० उल्फतसिंह चौहान 'निर्भय' के निवास-स्थान पर ही हुआ था और उन्होंने मेरी इस यात्रा के प्रति भूरि-भूरि मंगल-कामना की थी। आचार्य द्विवेदीजी उन दिनों काशी विश्वविद्यालय के सर सुन्दरलाल अस्पताल में गम्भीर रूप से अस्वस्थ थे और मैं उनसे वहाँ मिला था।

इन यात्राओं की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि मैंने सामान्यत: सब स्थानों पर और विशेषत: अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी के लिए पर्याप्त उत्साह और लगन के दर्शन किए। गुजरात, सिन्ध, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु के हिन्दी-प्रेमी भाइयों तथा बहनों ने जहाँ मेरा भाव-भीना सम्मान और स्वागत हार्दिकता से किया, वहाँ हिन्दी-प्रचार के कार्य में अपने जीवन को होम देने वाले अनेक दिवंगत हिन्दी-सेवियों की जानकारी भी मुझे दी। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती और राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी की जन्म-स्थली गुजरात से मुझे जहाँ अनेक लेखकों और कवियों की प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई वहाँ सिन्ध के भी तीन दर्जन से अधिक हिन्दी-सेवकों का परिचय मुझे मिला। महाराष्ट्र का तो हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में उसके आदिकाल से ही प्रशंसनीय योगदान रहा है। आज भी मिशनरी भावना से कार्य करने वाले व्यक्ति वहाँ कम नहीं हैं। आन्ध्र में भारतेन्दु युग के आस-पास परिनिष्ठत हिन्दी में अभिनेय नाटकों की रचना करके सर्वथा नया कीर्तिमान स्थापित करने वाले पुरुषोत्तम कवि की जानकारी भी मुझे मिली। इसी प्रकार केरल के राजा

ख्याति तिकबाल की ऐसे महानुभाव थे जिन्होंने सूरदास की शैली पर ब्रजभाषा में भक्ति पदों की रचना करके हिन्दी साहित्य की अभूतपूर्व सेवा की है।

अभी तक मुझे लगभग 10 हजार हिन्दी-सेवियों की सामग्री प्राप्त हो चुकी है और प्रतिदिन कुछ-न-कुछ वृद्धि होती ही जा रही है। इस प्रकार अपनी इन यात्राओं में मिली सामग्री के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि हिन्दी आज किसी विशेष अंचल अथवा प्रदेश की भाषा न होकर 'सार्वदेशिक' तथा 'सार्वभौमिक' रूप धारण कर चुकी है और उसका साहित्य देश के सभी भू- भागों के अतिरिक्त विदेशों में भी प्रचुरता से बढ़ रहा है। इस प्राप्य सामग्री की पुष्कलता को दृष्टि में रखकर इस ग्रन्थ को 10 समरूपी खण्डों में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। प्रत्येक खण्ड लगभग 800 पृष्ठों का होगा और उसमें अकारादि क्रम से लगभग इतने ही हिन्दी-सेवियों के सचित्र परिचय प्रस्तुत किये जायँगे। इस ग्रन्थ के अन्तिम खण्ड में उन विदेशी विद्वानों का परिचय भी प्रस्तुत किया जायगा, जिनकी हिन्दी-साहित्य की शोध एवं समृद्धि की दिशा में विशेष भूमिका रही है। यद्यपि प्रत्येक जण्ड की 'अनुक्रमणी' उस खण्ड में ही रहेगी, तथापि सम्पूर्ण ग्रन्थ की 'अनुक्रमणी' ग्रन्थ के अन्तिम खण्ड के प्रकाशन के उपरान्त अलग से भी उपलब्ध कराई जायगी। वास्तव में इन दो सौ वर्षों के काल-खण्ड की इस सन्दर्भ-सामग्री के आधार पर हिन्दी-साहित्य का जो इतिहास लिखा जायगा वही हिन्दी के 'सार्वभौमिक' रूप की प्रतिष्ठा करने में पूर्णतः सक्षम होगा।

वैसे तो इस ग्रन्थ के लिए मुझे अखिल देश के हिन्दी-प्रेमियों ने सन्दर्भ-सामग्री भेजने में बड़ी उदारता से काम लिया है, परन्तु यहाँ मैं जिनका उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ उनमें सर्वश्री रामेश्वर गुरु तथा डॉ० विश्वभावन देवलिया (जबलपुर), डॉ० रघुबीर-सिंह (सीतामऊ), डॉ० श्यामसुन्दर व्यास (इन्दौर), डॉ० मोरेश्वर दिनकर पराडकर तथा ठा० जगदेवसिंह (बम्बई), डॉ० अम्बाशंकर नागर तथा प्रो० गिरिराजकिशोर (अहमदाबाद), डॉ० वेदप्रकाश शर्मा तथा डॉ० भीमसेन निर्मल (हैदराबाद), श्री भगवतीशरणदास तथा डॉ० सियाराम शर्मा (झाँसी), डॉ० श्यामसुन्दर बादल (राठ), श्री बालकृष्ण बलदुआ, मुक्ति-कुमार मिश्र तथा उपेन्द्र शुक्ल (कानपुर), श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव (आजमगढ़), डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा डॉ० यश गुलाटी (चण्डीगढ़), श्री उमाशंकर वर्मा (पटना), रमेश-चन्द्र झा (मोतीहारी), कमलेशकुमार (कलकत्ता), रामदत्त थानवी (जोधपुर), डॉ० प्रणवीर चौहान और उदयशंकर शास्त्री (आगरा), गिरीशचन्द्र चौधरी, विश्वनाथ मुखर्जी तथा मुरारी-लाल केडिया (वाराणसी), मदनमोहन व्यास (मुरादाबाद)' डॉ० गणेशदत्त सारस्वत (सीतापुर), श्री भक्तदर्शनऔर ठा० विश्वनारायणसिंह (देहरादून), डॉ० देवदत्त शर्मा (बीकानेर), श्री गोविन्द अग्रवाल (चूरू), श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी, श्री शिवकुमार गोयल, रघुनाथप्रसाद पाठक तथा मुरलीधर दिनोदिया (दिल्ली) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यदि इन सब महानु-भावों का सक्रिय सहयोग मुझे प्राप्त न हुआ होता तो मेरा यह कार्य बीच में ही रुक जाता। यहाँ कुछ ऐसे महानुभावों का नाम भी ध्यातव्य है कि जिनकी सतत प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से परिपूर्ण पत्रों ने मेरी इस कठिन साहित्य-यात्रा में सम्बल का कार्य किया है और मैं निरन्तर

कर्म-रत रहकर आगे-ही-आगे बढ़ते जाने का उत्साह अपने मानस में सँजोता रहा हूँ। ऐसे महानुभावों में आदरणीय बनारसीदास चतुर्वेदी के अतिरिक्त आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, आचार्य विनयमोहन शर्मा, श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', श्री बैजनाथप्रसाद दुबे और गोविन्दवल्लभ पन्त के नाम अग्रणी हैं। इन सब गुरुजनों, मित्रों तथा हितैषियों के कृपापूर्ण सहयोग तथा शुभकामनाओं का ही यह सुपरिणाम है कि इतने कम समय में मेरे इस परिश्रम का सुफल ग्रन्थ का यह प्रथम खण्ड प्रेमी पाठकों के समक्ष आ सका है। इस अवसर पर मैं इन सब महानुभावों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मैंने सारे देश की लगभग 50 हजार किलोमीटर की यात्रा करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दी के इन विस्मृत एवं दिवंगत साहित्यकारों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखना या करना है वह अपने ही बलबूते पर किया जा सकता है। सभी विश्वविद्यालय जहाँ इस ओर से उदासीन हैं वहाँ अधिकांश हिन्दी-संस्थाएँ सरकारी अनुदानों की राशि को 'जीमने' में लगी हुई हैं। किसी को भी उन साहित्यकारों की 'कीर्ति-रक्षा' की तनिक भी परवाह नहीं है, जिनके त्याग, तप और बलिदान से हिन्दी साहित्य गौरवान्वित हुआ है। हम दूसरों की तो क्या कहें, इन दिवंगत साहित्यकारों के पारिवारिकजन भी उनकी कीर्ति-रक्षा के प्रति सर्वथा मौन और उदासीन हैं। हिन्दी-सेवी संस्थाओं का भी बहुत-कुछ यही हाल है। वे दूसरों की सूचना एकत्र करने में तो सहायता क्या करतीं, स्वयं उनके पदाधिकारियों ने अपने पारिवारिकजनों के प्रति भी उपेक्षा ही प्रदर्शित की है। मैंने जिन कठिनाइयों और उपेक्षाओं में इस कार्य को सम्पन्न किया है, वे अवर्णनीय हैं। मैंने यद्यपि यथाशक्य ग्रन्थ की सामग्री को पूर्ण प्रामाणिकता देने में कोई कोर-कसर नहीं रखी है, फिर भी यदि इसमें कोई त्रुटि रह गई हो तो प्रेमी पाठक उससे अवगत कराने की कृपा करें; जिससे आगामी खण्डों में उन त्रुटियों से बचा जा सके। ग्रन्थ में समाविष्ट हिन्दी-सेवियों के चित्र प्राप्त करने में भी मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। जिनके चित्र कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सके, उसे पाठक हमारी विवशता समझकर क्षमा कर देंगे, ऐसी आशा है। कुछ महानुभावों के चित्र पुराने पत्रों की फाइलों से प्राप्त किये गए हैं इसलिए वे साफ-साफ नहीं आ सके हैं।

इस प्रसंग में सर्वप्रथम 'डालमिया एजुकेशन ट्रस्ट' के अवैतनिक सचिव श्री हितशरण शर्मा का नामोल्लेख करना मैं इसलिए आवश्यक समझता हूँ कि उन्होंने सेठ श्री जयदयाल डालमिया को प्रेरित करके दो हजार रुपये की राशि मुझे दिलाई; जिससे मैं सारे देश की यात्रा करने का अभियान प्रारम्भ कर सका। साथ ही मध्यप्रदेश सरकार के तत्कालीन मन्त्री तथा मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्री हरिभाऊ जोशी के नाम का स्मरण करना भी यहाँ अत्यावश्यक है, जिन्होंने मेरी यात्रा के दौरान 'अकादमी' से एक हजार रुपये का आर्थिक अनुदान देकर अपनी उदारता का परिचय दिया था। यहाँ हिन्दी के पुराने पत्रकार श्री झाबरमल्ल शर्मा के पौत्र श्री श्यामसुन्दर शर्मा का नामोल्लेख भी अत्यावश्यक है, जिन्होंने मेरी इस साहित्य-यात्रा में सबल 'पाथेय' का कार्य सम्पन्न किया है। वास्तव में यदि मुझे उस समय यह सहायता उपलब्ध न हुई होती तो कदाचित् मैं अपने इस यज्ञ को निर्विघ्न चलाते रहने

में सफल न हो पाता। निरन्तर दो वर्ष के अथक प्रयास से मैंने जो प्रभूत सामग्री एकत्र कर ली थी उसके आधार पर निश्चिन्ततापूर्वक बैठकर ग्रन्थ-लेखन का कार्य मैं कदापि न कर पाता यदि भारत-सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय की ओर से मुझे 'सीनियर फैलोशिप' प्राप्त न हुई होती। मन्त्रालय के विवेकी अधिकारियों के इस शुभ निर्णय के प्रति भी मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ कि उनकी सदाशयता के फलस्वरूप मैं इस अभियान को सफलता के प्रथम सोपान तक पहुँचाने का सुअवसर प्राप्त कर सका। इस अवसर पर माननीय पण्डित कमलापति त्रिपाठी (तत्कालीन रेल-मन्त्री) का नामोल्लेख न करना भारी कृतघ्नता होगी, जिन्होंने मेरे लिए रेल-यात्रा की सुविधा प्रदान करके इस कार्य में अपना सौजन्यपूर्ण सहयोग दिया है। अपनी इस साहित्य-शोध-यात्रा में यदि मुझे विक्रम विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन', साहित्य अकादेमी के मन्त्री डॉ० र० श० केलकर, नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधान मन्त्री श्री सुधाकर पाण्डेय और 'नवभारत टाइम्स' के भूतपूर्व सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन का प्रशस्त तथा उदारतापूर्ण सहयोग सुलभ न हुआ होता तो मेरा यह कार्य सर्वथा दुस्साध्य हो जाता। ग्रन्थ के लिए अधिकांश पुरानी सामग्री को 'हस्तामलक' कराने में दिल्ली के पुराने पत्रकार तथा प्रकाशक श्री शंकरलाल गुप्त 'बिन्दु' ने मुझे जो सहयोग प्रदान किया है उससे मेरी अनेक कठिनाइयाँ दूर हुई हैं। उक्त सभी महानुभावों के सौजन्य के प्रति भी मैं विनम्रभावेन कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

यहाँ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के निदेशक श्री श्रुतिदेव शास्त्री एवं उसके मुखपत्र 'परिषद् पत्रिका' के सम्पादक प्रो० श्रीरंजन सूरिदेव का उल्लेख करना भी परम आवश्यक है, जिन्होंने मेरी सारी योजना तथा 6 हजार से अधिक दिवंगत साहित्यकारों की सूची को अपनी पत्रिका में प्रकाशित करके इस साहित्यिक अनुष्ठान से हिन्दी-जगत् को अवगत कराने की उदारता प्रदर्शित की थी। यहाँ पर मैं देश के उन सभी पत्र-सम्पादकों के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने पत्रों में मेरी योजना को प्रकाशित करके इस अभियान को आगे बढ़ाते जाने की प्रभूत प्रेरणा दी। इस सन्दर्भ में सर्वश्री बलभद्रप्रसाद तिवारी (सम्पादक 'प्रजामित्र', भोपाल), कृष्णकुमार मिश्र 'मनीषी' (सम्पादक 'विचार', कानपुर) और अवध वैरागी (सम्पादक 'युवा रश्मि', लखनऊ) का नामोल्लेख आवश्यक है। विज्ञापन के इस युग में उनकी यह उदारता निश्चय ही अभिनन्दनीय है। इस ग्रन्थ के लेखन तथा टंकण के दिनों में सर्वश्री इन्द्र सेंगर, रमेशप्रसाद शर्मा तथा शिवेन्द्रनाथ मैत्रेय का जो सक्रिय सहयोग मुझे सुलभ हुआ, उसके लिए वे भी मेरे साधुवाद के पात्र हैं। इस महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक ग्रन्थ के प्रकाशन का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर लेकर 'शकुन प्रकाशन' के अध्यवसायी संचालक श्री सुभाष जैन ने अपनी जिस सहृदयता, उदारता, कर्मठता एवं तत्परता का परिचय दिया है उससे मेरा उत्साह और भी द्विगुणित हुआ है। वास्तव में यदि श्री जैन का साहसिक सहयोग मुझे समय पर उपलब्ध न हुआ होता तो कदाचित् मैं अपने इस स्वप्न को इतनी 'त्वरा' से साकार न कर पाता। इसके लिए वे मेरे तथा अखिल हिन्दी-जगत् के हार्दिक आभार के अधिकारी हैं। साथ ही मैं भारती प्रिंटर्स, शाहदरा के उत्साही संचालक श्री राममूर्ति अग्रवाल

का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने केवल डेढ़ मास की अल्पावधि में ही इस महान् ग्रन्थ का सुरुचिपूर्ण मुद्रण करके अपना अनन्य सहयोग प्रदान किया है। अन्त में मैं हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के यशस्वी तथा मनस्वी साहित्यकार श्री वियोगी हरि के प्रति भी पूर्णतः श्रद्धा-नत हूँ, जिन्होंने अपनी अनेक व्यस्तताओं में भी इस ग्रन्थ के लिए अपना अशेष आशीष प्रदान किया है। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि इसमें जो अच्छाइयाँ हैं वे मेरे उन सभी गुरुजनों और हितैषियों की हैं, और जो कमियाँ हैं वे सब मेरी 'अज्ञानता' के कारण हैं। आशा है हिन्दी-जगत् मेरे इस विनम्र प्रयास का उदारतापूर्वक स्वागत करेगा, जिससे मैं आगे के खण्डों की सामग्री भी उसी तन्मयता से प्रस्तुत करने में सक्षम हो सकूँ, जिस निष्ठा और लगन से प्रस्तुत खण्ड पाठकों के समक्ष आ सका है।

अजय निवास, दिलशाद कालोनी,
शाहदरा, दिल्ली-110032

क्षेमचन्द्र 'सुमन'
3 अप्रैल, 1981

अपने अनन्य मित्र तथा साथी

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

की स्मृति को सादर

जिन्होंने इस ग्रन्थ के निर्माण में प्रेरणा बनकर

मेरा मार्ग प्रशस्त किया है

अनुक्रम

डॉ० (कुमारी) अ० कमला

डॉ०(कुमारी) अ० कमला का जन्म 12 सितम्बर सन् 1922 को कन्याकुमारी से 60 मील दूर स्थित 'तिरुनलवेली' नामक स्थान में एक दक्षिण भारतीय तमिल-भाषी स्मार्त ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपके पिता पंडित पी०अनन्त-नारायण दक्षिण भारत से दिल्ली आ गए थे और यहीं पर उनका परिवार भी चला आया था। श्री अनन्तनारायण उन दिनों दिल्ली से प्रकाशित होने वाले एक अँग्रेजी पत्र के सम्पादक बनकर यहाँ आए थे। कमलाजी के नाम के साथ लगने वाला 'अ०' अक्षर आपके पिता के नाम (अनन्त) का ही द्योतक है।

कमलाजी की प्रारम्भिक शिक्षा दिल्ली में हुई थी। कुछ दिन बाद आपके पिता जब अँग्रेजी पत्र की सम्पादकी का कार्य छोड़कर देहरादून के 'कर्नल ब्राउन कैम्ब्रिज स्कूल' में शिक्षक होकर चले गए तब कमलाजी की शिक्षा भी वहीं पर हुई। आपने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त पंजाब विश्वविद्यालय से बी० टी० किया और जालन्धर के 'कन्या महाविद्यालय' में शिक्षिका के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय पश्चात् जब इस महाविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर की हिन्दी की पढ़ाई प्रारम्भ हुई तब आपने वहाँ हिन्दी-विभागाध्यक्ष का कार्य सँभाला। एक कुशल अध्यापिका के रूप में आपने वहाँ पर प्रचुर सम्मान प्राप्त किया था।

सन् 1965 में कमलाजी सोनीपत (हरियाणा) के 'हिन्दू कालेज' के कन्या-स्नातकोत्तर विभाग की अध्यक्षा बन गई और कुछ समय तक वहाँ कार्य करने के उपरान्त आप सहारनपुर के 'मुन्नालाल गर्ल्स कालेज' की प्राचार्या होकर वहाँ आ गई। सहारनपुर पहुँचकर आपने अपनी कर्मठता, कार्य-कुशलता और अध्यवसायिता के बल पर शीघ्र ही उस कालेज को 'स्नातकोत्तर कालेज' बना दिया और कई वर्ष तक उसकी प्राचार्या भी रहीं। इसी काल में आपने अपनी अध्ययनशीलता से श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक शोध-प्रबन्ध लिखकर मेरठ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त की थी।

जन्मना दक्षिण भारतीय होते हुए भी आपको हिन्दी से इतना अनुराग था कि आपका समस्त जीवन ही हिन्दीमय हो गया था। आप हिन्दी की सफल अध्यापिका एवं कुशल लेखिका भी थीं। जालन्धर के कन्या महाविद्यालय के प्रति आपके मन में प्रारम्भ से ही अनन्य अनुराग था; फलतः 1 जनवरी सन् 1978 को आप फिर वहाँ 'प्राचार्या' बनकर चली गई। जालन्धर पहुँचने पर आपका स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ने लगा और अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा-सुविधा सुलभ होने पर भी आपका अमूल्य जीवन न बचाया जा सका और 13 अगस्त सन् 1978 को आपकी इहलीला समाप्त हो गई।

श्री अक्षयकुमार

आपका जन्म सन् 1843में बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बाघी नामक स्थान में हुआ था। इस ग्राम के सम्बन्ध में श्री अक्षयकुमारजी ने अपनी 'रसिक विलास रामायण' नामक कृति में यह लिखा है :

'मैथिल देश सोहावनो मध्य बसे इक ग्राम।
बाघी नाम प्रसिद्ध है तहाँ जन्म को ठाम।।'

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा फारसी और उर्दू में ही हुई थी और बाद में हिन्दी का आपने अच्छा अभ्यास कर लिया था। आपके परिवार में फारसी और उर्दू की पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी और संस्कृत के ग्रन्थों का भी अपार भंडार था। आपने अधिकांशत: श्रीराम के बाल-चरित्र को आधार बनाकर रचनाएँ की थीं, जो 'रसिक विलास रामायण' नाम से सन् 1901 में 'बिहार बन्धु प्रेस' बाँकीपुर, पटना द्वारा प्रकाशित हुई थीं। आपने 'वर्ण बोध' नाम से एक हिन्दी व्याकरण की भी छन्दोबद्ध रचना की थी। खेद है कि इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका है। आपकी स्फुट रचनाएँ भी मिलती हैं, जो आपके पौत्र श्री सुधाकरप्रसाद के पास सुरक्षित हैं। आपका निधन 2 मार्च सन् 1901 ईस्वी को हुआ था।

श्री अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'

श्री मिश्रजी का जन्म सन् 1874 में बिहार के शाहाबाद जिले के डुमराँव नामक स्थान में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही आपके पिता के निरीक्षण में हुई थी और सर्वप्रथम आपने संस्कृत साहित्य के सभी प्रमुखतम ग्रन्थों का अध्ययन किया था। आपके गुरुओं में श्री चन्द्रमणि पाण्डेय और महाराज राधाप्रसाद सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।

डुमराँव राज्य हाईस्कूल के संस्कृत-शिक्षक श्री शिवबालक त्रिपाठी से आपने संस्कृत के सभी काव्यों का विधिवत् अध्ययन किया था और हिन्दी-काव्य-रचना की ओर आपको पं० राधावल्लभ 'विप्रवल्लभ' ने प्रवृत्त किया था। काशी और अयोध्या में संस्कृत वाङ्मय का सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त करके आप कुछ दिन के लिए मालव प्रदेश के जैन विद्वान् राजेन्द्र सूरि के साथ भी रहे थे। वहाँ पर आपने 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के निर्माण में सहयोग दिया था। वहाँ से लौटकर आप कलकत्ता के विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय में शिक्षक हो गए और कुछ दिन तक 'भारत मित्र' के सम्पादक श्री बालमुकुन्द गुप्त के सहकारी भी रहे। आपने कलकत्ता-निवास के दिनों में बंगला और राजस्थानी भाषाओं का ज्ञान भी विधिवत् प्राप्त कर लिया था।

विशुद्धानन्द विद्यालय से निवृत्ति पाने के बाद आप कुछ दिन तक मेरठ कालेज में भी शिक्षक रहे थे। यहाँ से फिर वे कलकत्ता के गवर्नमेंट हिन्दू स्कूल में अध्यापक होकर चले गए थे। आप लगभग चार वर्ष तक डुमराँव राज्य के राजकुमार के निजी शिक्षक होकर भी राँची में रहे थे। जनवरी सन् 1913 को आपकी नियुक्ति पटना के ट्रेनिंग स्कूल में हो गई और उसके दो वर्ष बाद आप पटना कालेज के प्रोफेसर हो गए। पटना कालेज के संस्कृत अध्यापक पद से आपने 6 दिसम्बर सन् 1934 को अवकाश ग्रहण किया था।

संस्कृत और प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् होने के साथ-साथ आप हिन्दी के उत्कृष्ट गद्य-लेखक और कवि भी थे। आपकी रचनाएँ उन दिनों हिन्दी के सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थी। आपने जहाँ हिन्दी के अनेक ग्रन्थ लिखे हैं वहाँ बहुत-से संस्कृत ग्रन्थों का भी अनुवाद प्रस्तुत किया था। आपकी हिन्दी की प्रमुख रचनाओं में 'दुर्गादित्त परमहंस', 'उपदेश रामायण', 'दशावतार कथा', 'लेख मणिमाला', 'आत्म चरित चम्पू', 'आनन्द कुसुमोद्यान', 'सदा बहार' और 'लार्ड हार्डिज का स्वागत' आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त आपने बंगला के बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा रचित 'देवी चौधुरानी', 'मृणालिनी' तथा 'रजनी' उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया था। आप द्विवेदी युग के साहित्यकारों में अपना प्रमुख स्थान रखते थे। आपका देहान्त लगभग 65 वर्ष की आयु में सन् 1939 में हुआ था।

श्री अखिलानन्द शर्मा कविरत्न

श्री कविरत्न का जन्म उत्तरप्रदेश के बदायूँ जनपद के चन्द्रनगर नामक ग्राम में सन् 1880 में हुआ था। आपके पिता श्री टीकाराम जी ने 11 वर्ष की आयु में कर्णवास (बुलन्दशहर) में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से यज्ञोपवीत धारण किया था तथा लगभग 3 मास तक उनसे अध्ययन भी किया था। उनकी माता श्रीमती सुबुद्धि देवी भी संस्कृत की विदुषी थीं। जब अखिलानन्दजी केवल 3 वर्ष के बालक ही थे तब उनके पिता ने उन्हें स्वामी दयानन्द सरस्वती के चरणों में लिटाकर आशीर्वाद माँगा था। स्वामीजी ने शिशु के मस्तक को छूकर जो आशीर्वाद दिया था वही उनकी भावी सफलता का आधार बना।

बचपन से ही अखिलानन्दजी को संस्कृत में बोलने का बहुत अभ्यास हो गया था और उन्होंने 'यजुर्वेद' के सस्वर पाठ में सिद्धि प्राप्त करने के साथ-साथ 'वाल्मीकि रामायण' और 'भगवद्गीता' आदि अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का अच्छा पारायण कर लिया था। कुछ समय बाद वे महर्षि स्वामी दयानन्द के गुरु प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द सरस्वती के शिष्य पं० युगलकिशोर के पास अध्ययनार्थ मथुरा चले गए। वहाँ रहकर उन्होंने 'अष्टाध्यायी' और 'महाभाष्य' के विधिवत् अध्ययन के साथ 'शब्दबोध व्याकरण', 'वाक्य मीमांसा' तथा 'पाणिनीय विवरण' नामक स्वामी विरजानन्द जी की पांडुलिपियों का भी गहन अध्ययन किया था। जब श्री युगलकिशोर जी का देहावसान हो गया तो वे अनूपशहर चले आए और वहाँ पर पं० विष्णुदत्त नामक एक पर्वतीय विद्वान् से काव्य, नाटक, छन्द तथा अलंकार-शास्त्र का उन्होंने लगभग 6 वर्ष तक विधिवत् अध्ययन किया था।

काव्य-शास्त्र के गहन अध्ययन के कारण उनकी काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित हुई और उन्होंने 15 वर्ष की आयु में ही काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी। अपने प्रारम्भिक दिनो में शर्माजी आर्यसमाज के उपदेशक भी रहे थे। उनके द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों में 'दयानन्द लहरी', 'लघु काव्य संग्रह', 'सत्य वर्णन काव्य', 'भामिनी भूषण काव्य' तथा 'बृहत् काव्य संग्रह' आदि के अतिरिक्त 'दयानन्द दिग्विजय' नामक काव्य अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। इस अन्तिम कृति में आपने महर्षि दयानन्द की जीवनी को 21 सर्गों और 2348 श्लोकों में निबद्ध किया है। उन्होंने अपने एक 'वैदिक सिद्धान्त वर्णन' महाकाव्य में वैदिक सिद्धान्तों का वर्णन बड़ी ही पटुता से किया है। 'मिश्रबन्धु-विनोद' में उनके 'आर्य शिक्षा' तथा 'आर्य विद्योदय' नामक काव्यों का भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त आपने व्याकरण, अलंकार, छन्द और निरुक्त शास्त्र पर भी अनेक ग्रन्थ लिखे थे।
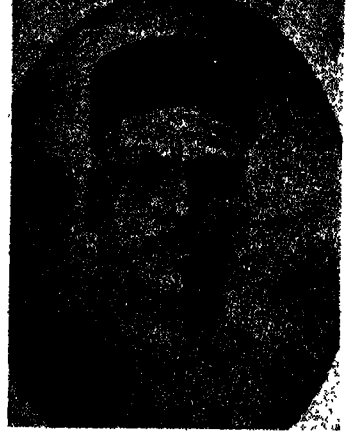
यह खेद का विषय है कि इतनी अपूर्व मेधा के धनी श्री कविरत्न जी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कतिपय वैयक्तिक तथा अन्य कारणों से सनातनधर्म के उपदेशक बनकर 'आर्यसमाज' की आलोचना करने लगे थे। जिस संस्था में रहकर उन्होंने उत्कर्ष के चरम शिखर को चूमा था, न जाने क्यों वे उस संस्था तथा उसके संस्थापक के कटु आलोचक हो गए। पं० अखिलानन्द के आर्यसमाज से विमुख होने का कारण वर्ण-व्यवस्था-विषयक उनकी स्वकल्पित मान्यताएँ ही थीं, जिनका दिग्दर्शन उन्होंने बाद में अपने 'वर्ण-व्यवस्था-मीमांसा' नामक ग्रन्थ में किया है।

आपका देहावसान 8 मई सन् 1958 को हुआ था।

श्री अरवेचन्द क्लान्त

क्लान्तजी का जन्म मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले के चरनी टोला (खाम्ही) नामक ग्राम में 27 अप्रैल सन् 1945 को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गिरधरलाल था। छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अपने समय के साहित्यकारो में श्री क्लान्त का स्थान प्रमुख था। छत्तीसगढ़ी भाषा और उसके साहित्य के उन्नयन तथा विकास के लिए वे अनवरत संलग्न रहते थे।

'प्रयास प्रकाशन' के प्रेरक-संयोजक डॉ० विनयकुमार पाठक की प्रेरणा से छत्तीसगढ़ी भाषा का आपका काव्य-संकलन
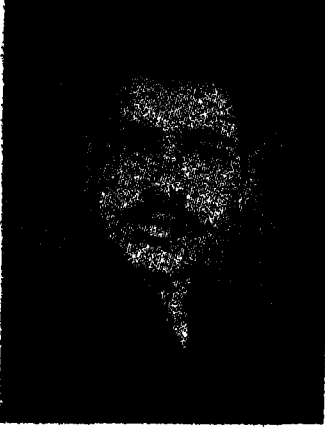
'नवा सुरूज : नया अंजोर' प्रकाशित हुआ था। अपनी दूसरी काव्य-कृति 'भोथली गीत' से भी आपको पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। आपकी 'सुग्घर गीत','प्रयास', 'नए गीत', 'थिरकते बोल', 'खौलता खून' तथा 'मैं भारत हूँ' आदि काव्य-कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। खेद है कि आपका देहावसान अल्प आयु मे ही सन् 1973 में हो गया। छत्तीसगढ़ क्षेत्र के साहित्य को उनसे बहुत आशाएँ थीं।

श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्मा

श्री शर्मा का जन्म 8 जून सन् 1908 को राजस्थान के जोधपुर नगर के एक पुष्करणा ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ पत्रकारिता से किया था। पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करते हुए उन्होंने देसी रियासतों के जन-आन्दोलनों में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था और इसके कारण उन्हें अनेक वर्ष तक कारावास में भी रहना पड़ा था।

जोधपुर राज्य प्रजा मण्डल के अध्यक्ष होने के अतिरिक्त बिजौलिया के किसान-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले व्यक्तियों में आप अग्रणी थे। सामाजिक जीवन में सुधार के पक्षपाती होने के कारण आपको 'राजस्थान जेल सुधार समिति' का सदस्य भी बनाया गया था और 'गरीबों के घर' के वे संचालक थे। आपकी समाज-सेवाओं के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए जोधपुर में आपका सन् 1971 में सार्वजनिक अभिनन्दन भी किया गया था, जिसमें आपको 30 हजार रुपए की थैली प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा भेंट की गई थी।

हिन्दी की पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। आप 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'फ्री प्रेस जर्नल', 'लीडर' तथा 'सर्च लाइट' आदि अनेक अँग्रेजी पत्रों के संवाददाता होने के अतिरिक्त एक स्वतंत्र तथा निर्भीक विचार-धारा रखने वाले ऐसे पत्रकार थे कि अपनी इस स्पष्टवादी नीति के कारण आपको तत्कालीन राजशाही का अनेक बार कोप-भाजन भी बनना पड़ा था।

आपने सर्वप्रथम सन् 1928 में ब्यावर से प्रकाशित होने वाले 'तरुण राजस्थान' नामक साप्ताहिक पत्र में सहायक सम्पादक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया था। सन् 1931 में आप 'सैनिक' (आगरा) के सहकारी सम्पादक भी रहे थे। बाद में सन् 1937 ईस्वी में आप अकोला (महाराष्ट्र) से प्रकाशित होने वाले हिन्दी साप्ताहिक 'नव राजस्थान' के सहकारी सम्पादक होकर वहाँ चले गए। सन् 1940 में आपने जोधपुर से 'प्रजा सेवक' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया और जीवन-पर्यन्त उसका सम्पादन करते रहे। इस पत्र का प्रकाशन एवं सम्पादन राजस्थान के जन-नेता श्री जयनारायण व्यास की प्रेरणा से होता था।
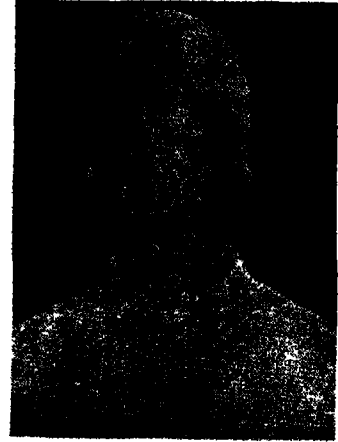
आपने पत्रकारिता करते हुए 'बीकानेर का काला कानून' (1932) तथा 'जोधपुर आन्दोलन की सच्ची हकीकत' (1947) नामक पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं। इन पुस्तकों में भी आपने अपनी निर्भीक देश-भक्ति और कर्त्तव्यपरायणता का परिचय दिया था।

66 वर्ष की आयु में आपका निधन 15 सितम्बर सन् 1974 को हुआ था।

श्री अच्युतानन्द दत्त

श्री दत्त का जन्म बिहार प्रान्त के सहरसा जिले के कोशी क्षेत्र के मधुआही नामक ग्राम में सन् 1903 में हुआ था। आप अनेक वर्ष तक लहेरिया सराय (दरभंगा) के 'पुस्तक भण्डार' से सम्बद्ध रहे और उसकी ओर से प्रकाशित होने वाले बालोपयोगी मासिक पत्र 'बालक' के सहयोगी सम्पादक भी थे। पुस्तक भण्डार के संचालक आचार्य श्री रामलोचनशरण बिहारी के अभिनन्दन में पुस्तक भण्डार की रजत जयन्ती के अवसर पर जो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था, श्री दत्त उसके सम्पादक-मण्डल के एक सम्मानित सदस्य थे। बाल-साहित्य के सृजन में उन्हें इतनी दक्षता प्राप्त थी कि उनकी ऐसी अनेक कृतियाँ हिन्दी-जगत् में खूब सम्मानित हुई थीं।

आप हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के भी पारंगत विद्वान् थे। आपने जहाँ 'रघुवंश' तथा 'महाभारत' का मैथिली भाषा में पद्यबद्ध अनुवाद किया था वहाँ हिन्दी में 'तुलसी सतसई', 'पार्वती मंगल', 'भूषण ग्रन्थावली', 'कविता-वली', 'गीतावली' तथा 'सूर सरोवर' आदि अनेक सम्पादित कृतियाँ भी प्रकाशित की थीं। बाल-साहित्य की दिशा में उनकी 'पौराणिक बालक', 'मौर्य चन्द्रगुप्त', 'वीरवर हम्मीर', 'संन्यासी रामतीर्थ', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'जमशेदजी टाटा', 'रामायण' और 'महाभारत' कृतियाँ उल्लेखनीय हैं।

गम्भीर सृजनात्मक साहित्य-निर्माण की दृष्टि से भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का उत्कृष्टतम सार अपने 'आर्यों का प्राचीन निवास-स्थान', 'शक्ति-पूजा की व्यापकता', 'प्राचीन मिथिला' तथा 'छन्द चन्द्रिका' आदि ग्रन्थों में दिया है। आपके द्वारा सम्पादित 'रामचरितमानस का सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आपका निधन सन् 1943 में हुआ था।

मुन्शी अजमेरी

मुन्शी अजमेरी का जन्म सन् 1881 में उत्तर प्रदेश के झाँसी जनपद के चिरगाँव नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता भीखाजी राजस्थान के जैसलमेर राज्य के निवासी थे। वे अच्छे कवि थे और इसी कारण राजा-महाराजाओं के दरबार में आते-जाते रहते थे। चिरगाँव के रईस रायबहादुर सेठ गोविन्दराम पालीवाल ने उन्हें चिरगाँव में स्थायी रूप से रहने के लिए बुला लिया था। जब वे चिरगाँव के लिए आ रहे थे तो मार्ग में अजमेर में उनका बड़ा पुत्र ईश्वरदत्त सहसा बीमार हो गया और वहीं पर उसका देहावसान हो गया। पुत्र के वियोग से दुखी होकर जब वे विलाप कर रहे थे तो एक श्वेत वस्त्रधारी फकीर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए यह आशीर्वाद दिया था—"भीखा, धैर्य धारण करो, तुम्हारे यहाँ एक ऐसा पुत्र होगा जो तुम्हारा नाम रोशन करेगा।" फलस्वरूप जब मुन्शीजी का जन्म हुआ तो अजमेर की उक्त घटना की स्मृति के रूप में उनका नाम 'अजमेरी' रखा गया। वैसे उनका वास्तविक नाम 'प्रेमबिहारी' था। अजमेरीजी राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के सहपाठी और सखा थे। क्योंकि वे गुप्तजी के पिताजी की रचनाओं को अपनी सुन्दर लेखनी से लिपिबद्ध किया करते थे इसलिए उनके नाम के साथ 'मुन्शी' शब्द भी जुड़ गया।
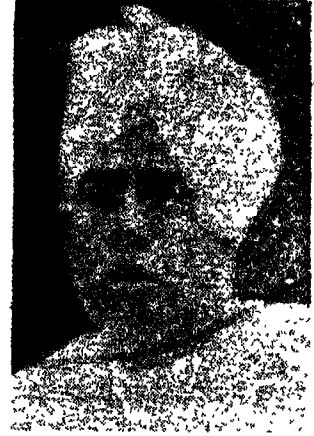
अजमेरीजी बचपन से ही बड़े प्रतिभा-सम्पन्न थे। वे शंकरजी के मन्दिर में जाकर संस्कृत पढ़ा करते थे और वहीं से उनका झुकाव कविता की ओर हुआ था। वे खड़ी बोली, ब्रजभाषा और राजस्थानी में समान रूप से लिखते थे और उनकी भाषा टकसाली, मुहावरेदार और प्रवाहपूर्ण होती थी। उन्होंने अपने सम्बन्ध में जो एक छन्द लिखा था उससे ही हमारे इस कथन की सार्थकता सिद्ध होती है। छन्द इस प्रकार है :

संस्कृत सुनाऊँ छन्द भाषा मैं बनाऊँ और,
पिंगल को डिंगल समेत अपनाऊँ मैं।
मुख से बजाऊँ त्यों सितार औ सरोद वाद्य,
देश परदेश के विशेष गीत गाऊँ मैं।।
कथा तथा कीर्तन-कहानी इतिहास कहूँ,
नाना रंग-राग से रईस को रिझाऊँ मैं।
मूल मारवाड़, जन्म-भूमि है बुंदेलखंड,
नाम अजमेरी चिरगाँव का कहाऊँ मैं।।

अजमेरीजी की काव्य-चातुरी और प्रतिभा से प्रभावित होकर ओरछा-नरेश श्री सवाई महेन्द्र महाराज ने उन्हें अपना राजकवि बनाया था। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि वे स्थायी रूप से ओरछा में ही रहें, किन्तु मुन्शीजी चिरगाँव और गुप्तजी का साथ नही छोड़ना चाहते थे। अंत में यह निश्चित हुआ कि दशहरे, वसन्त और होली के अवसर पर वे ओरछा-दरबार में रहा करेंगे। वहाँ रहकर भी वे केवल मनोरंजन के लिए ही काव्य-रचना नहीं करते थे, प्रत्युत शासकों को नई दिशा देने के लिए ही उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया था। राज-दरबार में रहकर वे झूठा सम्मान प्राप्त करने की अपेक्षा जनता के कष्टों के निवारण का संदेश ही अपनी रचनाओं में दिया करते थे।

ओरछा-दरबार की ओर से आपको 50 रुपए मासिक की वृत्ति जीवन-पर्यन्त मिलती रही थी। एक बार वहाँ के महाराज ने ओरछा में आयोजित 'वसन्त महोत्सव' के कवि-सम्मेलन में इनकी 'बुन्देलखण्ड' शीर्षक कविता से प्रभावित होकर सवा तोले का स्वर्ण पदक और एक हजार रुपए का नकद पुरस्कार भी प्रदान किया था। जन्मना मुस्लिम होते हुए भी वे संस्कारों से परम वैष्णव थे और वैसी ही भावनाएँ उनकी रचनाओं में प्रकट होती थीं। एक बार गांधीजी को अजमेरीजी ने अपना गीत सुनाकर इतना भाव-विभोर कर दिया कि उन्होंने अपनी उस प्रसन्नता को इस प्रकार अभिव्यक्त किया था—"भाई अजमेरी ने मुझको अपनी संगीत-प्रसादी का आगरे में बहुत अनुभव कराया है, उनकी मधुर वाणी से और हिन्दी-संस्कृत भाषा के ज्ञान से मुझको बड़ा आनन्द हुआ।" 2 अप्रैल, सन् 1931 में अजमेरीजी का परिवार अपने कुछ सम्बन्धियों सहित सनातन धर्म की पद्धति के अनुसार हिन्दू धर्म में प्रविष्ट हो गया था। इनके पूर्वज पाली (मारवाड़)पर किये गए बादशाही आक्रमण के समय (रक्षाबन्धन, संवत् 1301) से मुसलमान कहे जाने लगे थे। उससे पूर्व आपका परिवार पालीवाल ब्राह्मण के रूप में जाना जाता था।

अजमेरीजी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी; जिनमें—'मधुकर शाह', 'गोकुलदास', 'हेमला सत्ता' तथा 'चित्रागंदा' आदि उल्लेखनीय हैं। 'हेमला सत्ता', 'गोकुलदास' और 'मधुकर शाह' उनके लघुकाव्य हैं और 'चित्रागंदा'में उन्होंने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विख्यात कृति का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। आपने बालक-बालिकाओं के लिए सरल भाषा और सहज शैली में दोहा-चौपाई छन्दों में 'रामचरितमानम' का अनुवाद भी खड़ी बोली में 'राम कथा' नाम से किया था, जिसका कुछ अंश सन् 1934 में लखनऊ की 'सुधा' में प्रकाशित हुआ था। इनके अतिरिक्त उनकी असंख्य कृतियाँ अप्रकाशित ही पड़ी हैं। अनेक वर्ष तक आपने काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित 'सूर सागर' के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। सौभाग्य से उनके पुत्र श्री गुलाबराय और श्री जंगबहादुर भी काव्य-साहित्य के अनन्य प्रेमी हैं। मुन्शीजी का निधन 25 मई सन् 1937 को चिरगाँव में हुआ था।

श्री अजान चतुर्वेदी

श्री अजान चतुर्वेदी का जन्म सन् 1921 में उत्तरप्रदेश के आगरा जनपद की तहसील बाह के चन्द्रपुर नामक ग्राम में हुआ था। इनका जन्म-नाम 'धर्मनारायण' था। परन्तु साहित्य-क्षेत्र में वे 'अजान चतुर्वेदी' के नाम से ही जाने जाते हैं। दिल्ली के हिन्दू कालेज से सन् 1941 में बी० ए० करने के उपरान्त आपने लेखन के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग किया। वे जब कालेज में पढ़ते थे तब से ही उन्होंने कालेज-पत्रिका में अपनी रचनाएँ 'अजान चतुर्वेदी' के नाम से प्रकाशित कराई थीं।

अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ आपने 'कौमुदी' नामक पत्रिका के सम्पादन तथा प्रकाशन से किया था। आपने अपने सम्पादन-काल में जहाँ अनेक तरुण लेखकों को

'कौमुदी' के माध्यम से प्रोत्साहन प्रदान किया था वहाँ आप राजधानी की साहित्यिक गतिविधियों में भी बढ़-चढ़कर भाग लेते थे। आपका निवास-स्थान उन दिनों साहित्य-गोष्ठियों तथा तत्सम्बन्धी चर्चाओं का केन्द्र बना रहता था। आपने जहाँ हिन्दी की रत्न, भूषण और प्रभाकर परीक्षाओं की भाषण-मालाएँ आयोजित की थीं वहाँ दिल्ली में अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित 'अष्ट-छाप-सम्मेलन' का आयोजन भी किया था। इस सम्मेलन की अध्यक्षता युगान्तरकारी कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने की थी।

राजधानी में जब हिन्दी का अच्छा वातावरण तैयार होने लगा तो आपने 'नई किताबें' नाम से एक प्रकाशन-संस्था का भी सूत्रपात किया था। इस संस्था की ओर से जहाँ श्री रामकुमार चतुर्वेदी की 'प्रथम चरण' और श्री मधुप शर्मा की 'यह पथ अनन्त' नामक काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हुई थी वहाँ श्री गोपालप्रसाद व्यास तथा श्री चिरंजीत की 'उनका पाकिस्तान' एवं 'चिलमन' नामक प्रथम कृतियों को प्रकाशित करके उन्हें हिन्दी में प्रतिष्ठित किया था।

'अजान' जी स्वयं भी अच्छे कथाकार और नाटककार थे। उनकी अनेक रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं। आपकी रचनाएँ उन दिनों जहाँ हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित पत्रों में प्रकाशित होती थीं वहाँ आकाशवाणी से भी प्रसारित होती थीं। आपकी सम्पादन-पटुता और संयोजन-क्षमता का उज्ज्वल प्रमाण उनके द्वारा सम्पादित समसामयिक हिन्दी कथाकारों की कहानियों का संकलन 'कालेज की कहानियाँ' है।

आपने सन् 1948-49 में आगरा जाकर वहाँ से 'हमराही' तथा 'नव निर्माण' नामक पत्र भी प्रकाशित किए थे। जीविकोपार्जन के लिए अनेक व्यवसायों को अपनाकर भी आपने अपनी साहित्यिक चेतना को ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण बनाए रखा था। आगरा की साहित्यिक जागृति में भी आपका अनन्य सहयोग रहा था। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि आपका निधन संग्रहणी रोग के कारण 15 दिसम्बर सन् 1952 को अल्पायु में ही हो गया।

श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार

श्री विद्यालंकार का जन्म उत्तरप्रदेश के सहारनपुर जनपद के आलमपुर (पो० रायपुर) नामक ग्राम में सन् 1902 में हुआ था। आपने गुरुकुल कांगड़ी से 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त करके आयुर्वेद के क्षेत्र को ही अपनाया और उसमें आशातीत सफलता प्राप्त की। कराची, जालन्धर तथा वाराणसी के अतिरिक्त रंगून और देहरादून में भी आपने अनेक वर्ष तक चिकित्सा-कार्य किया था। आपकी योग्यता से प्रभावित होकर श्री गोपाल कुँवर ठक्करजी ने आपको बम्बई-स्थित अपनी 'सिन्ध आयुर्वेदिक फार्मेसी' में बुला लिया था। आयुर्वेद-जगत् के प्रख्यात नेता श्री विक्रमजी का भी आप पर पूर्ण विश्वास था।

आप अनेक वर्ष तक जालन्धर में 'दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज' के प्रधानाचार्य भी रहे थे। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संचालित उसकी फार्मेसी के भी अध्यक्ष रहे थे। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय तथा जामनगर (काठियावाड़) के आयुर्वेदिक कालेजों में भी आपने अध्यापन का कार्य किया था। अपने अध्यापक-जीवन में आपने आयुर्वेद के जिन अनेक ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत

किए उनमें 'चरक', 'सुश्रुत', 'अष्टांग हृदय', 'अष्टांग संग्रह' तथा 'प्रत्यक्ष शारीर' आदि प्रमुख हैं।

आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत करने के साथ-साथ आपने अपनी प्रतिभा का परिचय तत्सम्बन्धी स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने में भी दिया था। आपके द्वारा लिखित ऐसे ग्रन्थों में 'जीवन विज्ञान', 'आत्रेय वचनामृत', 'उपचार-पद्धति', 'संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद', 'स्वास्थ्य विज्ञान', 'क्लिनिकल मेडीसन', 'धात्री शिक्षा', 'शिशु पालन', 'भैषज्य कल्पना', 'आयुर्वेद का इतिहास', 'शल्य तन्त्र', 'योग चिकित्सा', 'भारतीय रस पद्धति', 'घर का वैद्य', 'स्वास्थ्य और सद्वृत्त', 'हमारे भोजन की समस्या', 'स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग', 'परिवार नियोजन', तथा 'प्राचीन भारत के प्रसाधन' आदि उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों में से कई आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में भी निर्धारित हैं।

आयुर्वेद-सम्बन्धी संस्कृत-वाङ्मय के परिशीलन के अतिरिक्त आपने संस्कृत के अनेक उत्कृष्टतम ग्रन्थों का भी हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करके अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। ऐसे ग्रन्थों में 'कुट्टिनीमतम्' तथा 'काम-सूत्र' विशेष महत्त्व रखते हैं। संस्कृत वाङ्मय के तलस्पर्शी विद्वान् होने के साथ-साथ आप बंगला, गुजराती, मराठी और अँग्रेजी के भी मर्मज्ञ अध्येता थे। आपके द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थों को विभिन्न प्रदेशों की सरकारों द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत भी किया गया था।

आपका निधन 12 जून सन् 1966 को वाराणसी में हुआ था।

श्री अद्भुत शास्त्री

श्री अद्भुत शास्त्री का जन्म सन् 1926 में राजस्थान के रतनगढ़ नामक नगर में हुआ था। इनका मूल नाम 'केशव-देव गौड़' था। सन् 1944 में इन्होंने 'राजस्थान कवि-सम्मेलन' का आयोजन किया था और सन् 1945 ईस्वी में 'मारवाड़ी कवि-सम्मेलन' के 'स्वागताध्यक्ष' रहे थे। सन् 1938 में बंगाल प्रान्तीय कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करने के साथ-साथ आप 'राष्ट्रभाषा विद्यापीठ' और 'नव संस्कृति संघ' रतनगढ़ के क्रमशः कुलपति तथा अध्यक्ष भी रहे थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'स्वर तार', 'जीवन-गीत', 'बापू के विचार' और 'यूसुफ मेहरअली स्मारक ग्रन्थ' उल्लेखनीय हैं। आपने 'आज के हिन्दी-सेवी' नाम से एक परिचय-ग्रन्थ भी सम्पादित किया था। आपने 'मारवाड़ी गौरव' और 'कुरजाँ' नामक मासिक पत्रों में सम्पादक के रूप में भी राजस्थानी जनता की प्रचुर सेवा की थी। आपका देहावसान सन् 1961 में हुआ था।

श्री अनन्तगोपाल झिंगरन

श्री झिंगरन का जन्म 12 अगस्त सन् 1908 को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद के अमरोहा नामक नगर में हुआ था। आप जब 9 वर्ष के ही थे कि आपके पिताजी का देहान्त हो गया। पढ़ने की लगन होने के कारण आपने मिडिल की परीक्षा में सारे प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त किया और इसके परिणामस्वरूप आपको वजीफ़ा मिलने लगा। इस तरह आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए आपने लखनऊ विश्व-विद्यालय से प्रथम श्रेणी में बी०एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके उपरान्त आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 'भू-विज्ञान' विषय में एम० एस-सी० की परीक्षा देकर वहीं पर अध्यापन-कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। अध्यापन के साथ-साथ आपने अपने अनुसंधान-कार्य को आगे बढ़ाया। जिसके परिणामस्वरूप आप गिरनार की पहाड़ियों में एक नए 'अयस्क गिरनाइट' की खोज करने में सफल हो गए। आपकी इस शोध ने श्री झिंगरन की ख्याति लन्दन तक पहुँचा दी, जहाँ जाकर आपने वहाँ के डरहम विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी।

वहाँ से लौटकर फिर आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। जब आप काशी में थे तब बिरलाजी ने हिन्दी में विज्ञान-साहित्य के सृजन एवं प्रकाशन के लिए 50 हजार रुपए का अनुदान दिया था। फलस्वरूप आपके वहाँ रहते हुए भौतिकी के लिए डॉ०

निहालकरण सेठी, रसायन-विज्ञान के लिए फूलदेवसहाय वर्मा तथा चिकित्सा-विज्ञान के लिए डॉ० मुकुन्दस्वरूप वर्मा आदि विद्वानों के निरीक्षण में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का कार्य शुरू हो गया। आपने इस कार्य में भरपूर सहयोग देने के साथ-साथ उसकी पांडुलिपि बनाने तथा मुद्रण-सम्बन्धी व्यवस्था की भी देख-भाल की। जब महामना मदनमोहन मालवीय ने काशी से 'सनातन धर्म' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया तब उसके सम्पादक आचार्य गणेशदत्तजी ने श्री झिंगरनजी से 'खनिजों के सम्बन्ध में एक पूरी लेखमाला' ही लिखवाकर उसमें प्रकाशित की थी। सुलतानगंज(भागलपुर) से प्रकाशित होने वाली 'गंगा' नामक पत्रिका के 'विज्ञान अंक' में 'हिमालय की जन्म-कथा' शीर्षक से जो लेख आपने लिखा था उसकी भू-विज्ञान के क्षेत्र मे बड़ी सराहना की गई थी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त जब भारत सरकार ने 'वैज्ञानिक शब्दावली आयोग' का गठन किया तब आपने ही उसमें 'भू-विज्ञान-सम्बन्धी शब्दावली' बनाने के कार्य का निर्देशन किया था। आपने कुछ दिनों तक 'इण्डियन मिनरल' नामक शोध पत्र के हिन्दी खण्ड के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। जब डॉ० आत्माराम ने 'विज्ञान कांग्रेस' के काशी-अधिवेशन की अध्यक्षता की थी तब आपने ही 'भू-विज्ञान परिषद्' की नीव डाली और उसकी ओर से 'भू-विज्ञान' नामक एक त्रैमासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया; जो आज भी प्रकाशित हो रहा है। इस कार्य मे उनके सुपुत्र भी सहायता करते थे।

आपका निधन सन् 1978 में हुआ था। मार्च 1979 में दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें मरणोपरान्त 'विज्ञान सरस्वती' के सम्मान से अभिषिक्त किया था।

श्री अनन्तगोपाल शेवड़े

श्री शेवड़ेजी का जन्म 8 सितम्बर, 1911 को मध्य-प्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले के सौसर नामक स्थान में हुआ था। मूलतः मराठी-भाषी होते हुए और अँग्रेजी के उत्कृष्टतम पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर भी उन्होंने हिन्दी-भाषा को ही अपने भावों की अभिव्यक्ति का सबल और सफल माध्यम माना। सन् 1930 और 1942 के राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के कारण उनके जीवन में राष्ट्रीयता कूट-कूटकर भरी हुई थी।

शेवड़ेजी को एक समर्पित तथा सिद्धान्तनिष्ठ हिन्दी-सेवक के रूप में जो सम्मान मिला उसीके कारण उन्होंने व्यवसाय के रूप में अँग्रेजी पत्रकारिता को अपनाने के बावजूद भी हिन्दी को विश्व-मंच पर प्रतिष्ठित करने का साहसिक संकल्प लिया था। सन् 1975 में नागपुर में आयोजित 'प्रथम विश्व हिन्दी-सम्मेलन' उनकी उसी संकल्पनिष्ठा का मूर्तिमन्त प्रतीक था। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि जिस प्रकार स्वतन्त्रता से पूर्व अहिन्दीभाषी नेताओं ने हिन्दी को 'राष्ट्र-भाषा' के पावन पद पर प्रतिष्ठित करने का संकल्प किया था, उसी प्रकार उसे अखिल भारतीय तथा विश्व-मंच पर प्रतिष्ठित करने का कार्य भी अहिन्दी-भाषियों के प्रयास से सम्भव हो सकेगा। अपनी इस भावना को मूर्त्त रूप देने के लिए ही उन्होंने 'विश्व हिन्दी-सम्मेलन' की परिकल्पना की थी।

शेवड़ेजी अँग्रेजी के सफल पत्रकार होने के साथ-साथ हिन्दी के उत्कृष्ट कथाकार के रूप में भी जाने जाते हैं। उनके 'ईसाई बाला', 'निशा गीत', 'मृग जल', पूर्णिमा', 'ज्वाला-मुखी', 'मंगला', 'परिक्रमा या अधूरा सपना', तथा 'भग्न मन्दिर' आदि उपन्यासों के अतिरिक्त 'संगम' नामक पुस्तक में उनकी तथा उनकी सहधर्मिणी श्रीमती यमुना शेवड़े की उत्कृष्टतम कहानियाँ संकलित हैं। 'तीसरी भूख' नामक पुस्तक में उनके कुछ निबन्ध संकलित हैं। उनकी लेखन-क्षमता का इससे अधिक ज्वलंत प्रमाण और क्या हो सकता है कि

उनके 'ज्वालामुखी' नामक उपन्यास का नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा भारत की 14 भाषाओं में अनुवाद हुआ है। उनके 'मंगला' नामक उपन्यास को ब्रेल लिपि में भी प्रकाशित किया गया है। उसकी अनेक कृतियाँ जहाँ विभिन्न प्रादेशिक सरकारों द्वारा पुरस्कृत हुई हैं वहाँ उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की ओर से 'महात्मा गांधी पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया है। अपने 'ज्वालामुखी' नामक उपन्यास का अँग्रेजी अनुवाद शेवड़ेजी ने स्वयं किया था, जो न्यूयार्क से प्रकाशित हुआ है।

सन् 1935 में अंग्रेजी पत्रकार के रूप में अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ करके सन् 1948 में वे 'नागपुर टाइम्स' से सम्बद्ध हो गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उसीमें बने रहे। वे 'नागपुर टाइम्स' के प्रबन्ध सम्पादक थे। मराठी में 'नागपुर पत्रिका' का प्रकाशन भी उन्होंने उसी संस्थान से किया था।

सन् 1975 में आयोजित नागपुर के 'विश्व हिन्दी-सम्मेलन' के बाद उन्हींके प्रयास से 'मारीशस का द्वितीय विश्व हिन्दी-सम्मेलन' सन् 1976 में हुआ। 'विश्व हिन्दी-सम्मेलन' के इन अधिवेशनों की परिणति उन्होंने 'विश्व हिन्दी प्रतिष्ठान' के रूप में की और उसके मुखपत्र के रूप में 'विश्व हिन्दी दर्शन' नामक एक पत्र प्रकाशित करने की योजना भी बनाई। 'मारीशस-सम्मेलन' के उपरान्त उन्होंने अपनी योजनाओं को क्रियान्वित करने की दिशा में जो पहला पग उठाया वह 'विश्व हिन्दी दर्शन' के प्रकाशन का था। यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि नई दिल्ली में आयोजित इसके प्रथम अंक के विमोचन-समारोह (13 जनवरी, 1979) में भी वे सम्मिलित न हो सके और 10 जनवरी को कलकत्ता में उनका असामयिक निधन हो गया। वे वहाँ 'अ० भा० पत्र सम्पादक सम्मेलन' की एक बैठक में भाग लेने के लिए गए हुए थे। वहाँ से ही उन्हें 'विश्व हिन्दी दर्शन' के उद्घाटन-समारोह में सम्मिलित होने के लिए नई दिल्ली आना था। 'विश्व हिन्दी दर्शन' का उद्घाटन भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने किया था।

'प्रथम विश्व हिन्दी-सम्मेलन' के अवसर पर उसके सचिव के रूप में उन्होंने जो भाषण दिया था उससे उनकी हिन्दी के प्रति शाश्वत आस्था का सम्यक् परिचय मिलता है। उन्होंने कहा था :

"हमारी श्रद्धा है कि जो भाषा प्रेम और शान्ति की भाषा होगी वही विश्व की भाषा होगी और यदि हिन्दी इस उत्तरदायित्व का अधिकाधिक निर्वाह करेगी तो वह विश्व में भी अधिकाधिक स्नेह, सद्भाव और मान्यता प्राप्त करेगी। और, अन्त में चलकर तो भाषा कोई भी हो, सबसे श्रेष्ठ भाषा तो हृदय की भाषा होती है। इसलिए विश्व की सभी भाषाओं को अक्षर-वाङ्मय के माध्यम से,इसी हृदय की भाषा का वाहन बनना होगा। अगर भारत में होने वाला यह प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन, महामानव की इस शाश्वत और चिरन्तन प्रेम-यात्रा का विश्व में प्रसार करने में कुछ अल्प-स्वल्प-सी सहायता भी कर सका, तो हम कृतकृत्य हो उठेंगे।"

श्री अनन्त मिश्र 'प्रबुद्ध'

श्री मिश्र का जन्म बिहार के भोजपुर जनपद के मिश्रवलिया नामक ग्राम में सन् 1922 में हुआ था। जब वे बालक ही थे कि उनके माता-पिता का देहांत हो गया। फलतः अपने गाँव में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करके वे आगे की पढ़ाई करने के लिए कानपुर चले आए और वहीं पर पत्रकारिता को अपना लिया। इसी बीच उनका संपर्क लोकनायक श्री जयप्रकाश-

नारायण से हो गया और उनकी प्रेरणा पर ही वे सन् 1940 में कलकत्ता चले गए। वहाँ अपने जीवन-संघर्ष में सफलता मिलती न देखकर वे फिर सन् 1944 के आस-पास पटना लौट आए और वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'राष्ट्रवाणी'

नामक दैनिक पत्र में कार्य करने लगे।

इस बीच अपनी धर्मपत्नी का देहान्त हो जाने के कारण उनकी मानसिक स्थिति असंतुलित हो गई। इसी समय अपनी मानसिक उद्विग्नता को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से उन्होंने अपनी सहधर्मिणी की याद में 'स्मृति' नामक पुस्तक की रचना की। सन् 1948 में उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया और वे फिर कलकत्ता चले गए। कलकत्ता में पहुँचकर उन्होंने 'लोकमान्य' के संपादकीय विभाग में कार्य करना प्रारंभ कर दिया। सन् 1952 में जब वहाँ से 'सन्मार्ग' नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ तब आप उसके 'स्थानीय संपादक' बनाए गए। कई वर्ष तक अपनी अनन्य कर्मठता तथा कुशलता से इस पद पर कार्य करने के उपरांत सन् 1966 में आप उससे पृथक् हो गए।

अपने मधुर एवं सरल स्वभाव के कारण आपने 'सन्मार्ग' के अपने सहयोगियों और संचालकों को इतना अभिभूत कर लिया था कि उसे छोड़ देने के उपरांत भी उन्होंने मिश्रजी को नहीं छोड़ा और वे घर से ही उसके लिए सम्पादकीय टिप्पणियाँ आदि लिखने का कार्य करते रहे। वे इस प्रकार अपने जीवन की गाड़ी को चला ही रहे थे कि उनकी दूसरी पत्नी का भी 3 मार्च, सन् 1974 को आकस्मिक देहावसान हो गया। इस मर्मान्तिक घटना का उनके जीवन पर बहुत ही घातक प्रभाव पड़ा और वे भी अधिक दिन तक अपने जीवन को न चला सके। फलतः मधुमेह और गुर्दे की बीमारी के कारण 16 नवम्बर, सन् 1976 को आपने भी इहलीला समाप्त कर दी।

आपका नाम कलकत्ता के हिन्दी पत्रकारों में अपनी विशिष्टता के लिए सदा-सर्वदा स्मरण किया जाता रहेगा। एक कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ आप उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'वे आ रहे हैं' (नाटक), 'स्मृति', 'हिटलर के अन्तिम दिन', 'मुसोलिनी के अन्तिम दिन', और 'अमरीका की यात्रा' आदि उल्लेखनीय हैं। आपने पर्ल बक की विख्यात कृति 'गुड अर्थ' का हिन्दी अनुवाद 'धरती माता' नाम से किया था। इसके अतिरिक्त आपने 'रासबिहारी बोस' नामक अँग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया था।

श्री अनन्तराम पाण्डेय

श्री पाण्डेयजी का जन्म मध्यप्रदेश के रायगढ़ नामक नगर में सन् 1871 में हुआ था। आप छत्तीसगढ़ के प्रथम निबन्धकार एवं नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। आप हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और पुरातत्त्व के समर्थ अन्वेषक विद्वान् पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय और छायावाद के प्रवर्तक कवि पं० मुकुटधर पाण्डेय के मामा थे। यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के बहुआयामी विकास और शोध होने पर भी अभी तक उनका नाम हिन्दी के स्वनामधन्य इतिहासकारों की दृष्टि से ओझल रहा।

श्री पाण्डेय की प्रारम्भिक शिक्षा उक्त पाण्डेयबंधुओं के ही ग्राम बालपुर में हुई थी, क्योंकि अनन्तरामजी के चचेरे भाई उन दिनों वहाँ ही रहते थे। जिस पाठशाला में उन्होंने अक्षरारम्भ करके हिन्दी की प्राथमिक परीक्षा उत्तीर्ण की थी उसकी स्थापना श्री लोचनप्रसाद पांडेय और श्री मुकुटधर पाण्डेय के पिता ने ही की थी। धीरे-धीरे उन्होंने हिन्दी की पाँचवीं और छठी श्रेणी की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके अपने ही अध्यवसाय से अँग्रेजी की अच्छी योग्यता प्राप्त करने के साथ-साथ संस्कृत, उड़िया, बँगला और उर्दू का भी अभ्यास कर लिया था। कुछ दिन रायगढ़ के स्कूल में शिक्षक रहने के उपरान्त रायगढ़ नरेश राजा सूर्यदेवसिंह की कृपा से आप उनके राज्य के कार्यालय में मुख्यलिपिक के पद पर नियुक्त हो गए थे।

अपनी नैसर्गिक प्रतिभा और अध्यवसाय से आप साहित्य-सेवा के क्षेत्र में भी तत्परतापूर्वक अग्रसर हो गए। आपके निबन्ध उन दिनों प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी प्रदीप', 'राजस्थान', 'भारत मित्र' तथा 'छत्तीसगढ़ मित्र' आदि प्रतिष्ठित पत्रों में ससम्मान छपते थे। इन निबन्धों में साहित्यिक समृद्धि के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक जीवन से सम्बन्धित अनेक ज्वलन्त समस्याओं का विवेचन देखने को मिलता है। आप अपने विचारों, निष्कर्षों और सिद्धान्तों में इतने दृढ़ थे कि एक बार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'विकासवाद' नामक पुस्तक की उन्होंने खुलकर आलोचना करते हुए लिखा था—"यदि सबल का यही अर्थ है तो यह 'विकास सिद्धान्त' नहीं 'विनाश सिद्धान्त' है और इससे परोपकार, दया, धैर्य, सहिष्णुता, स्वार्थ-त्याग आदि गुणों पर

कुल्हाड़ी चल रही है। क्या 'सरस्वती' के प्रवीण सम्पादक उस अर्थ को मानते हैं ?" पाण्डेयजी ने द्विवेदीजी के जिस वाक्य पर यह पंक्तियाँ लिखी थीं वह इस प्रकार था— "संसार में निर्बल का गुजारा नहीं इससे मनुष्य को सबल होने का प्रयत्न करना चाहिए।" यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस पुस्तक के सन्दर्भ में श्री पाण्डेयजी ने यह कटु आलोचना की थी वह वाक्य द्विवेदीजी द्वारा अनूदित हरबर्ट स्पेंसर की पुस्तक से उद्धृत किया गया है। इससे पाण्डेयजी की निर्भीकता का पता चलता है। पाण्डेयजी ने आगे यह भी लिखा था—"साहित्य एवं साक्षात्कार की संवृद्धि तथा अभिवृद्धि के लिए वे आलोचना को आवश्यक एवं हितकारी मानते थे। उनका कहना था कि जो उचित एवं तर्कसंगत आलोचना से बचना चाहते हैं वे कायर एवं असमर्थ लेखक है। जो समर्थ एवं ईमानदार हैं वे आलोचना का समादर करते हैं, क्योंकि समालोचना भी साहित्य की उन्नति के प्रधान साधनों में से एक है। वह कवि की प्रतिभा को पैनी करने में पक्की खराद का काम देती है।" कदाचित् अपने इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने आचार्य द्विवेदी तक की खरी आलोचना कर डाली थी। वे अपने जीवन में नई-से-नई मान्यताओं को उतारने के समर्थक थे। उनका यह अभिमत था कि पुरानी मान्यताएँ, जो नये युग के अनुरूप नहीं हैं, अवश्य ही हटेंगी और उनकी जगह नई स्थापनाएँ लेंगी। वास्तव में इस प्रकार के क्रान्तिकारी विचार उनकी दूरदर्शिता के ही साक्षी हैं।

पाण्डेयजी की प्रमुख रचनाओं में 'कपटी मुनि' नाटक, 'ईशोपनिषद् भाष्य', 'लोकोक्ति संग्रह', 'छत्तीसगढ़ी कहावतें', 'छत्तीसगढ़ी शब्द संग्रह', 'जाति विडम्बना', 'कुंडलियाँ कदम्ब', 'कोतवाल साहब', 'बरगद विजय', 'रायगढ़ का राज्य भूगोल', 'रायगढ़ का इतिहास', 'पक्षी चित्र' और 'चौबीस घंटे की यात्रा' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त उनके अनेक निबन्ध श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय और मुकुटधर पाण्डेय के अग्रज श्री पुरुषोत्तम पाण्डेय ने संकलित करके 'अनन्त लेखावली' नाम से प्रकाशित कराए थे और इनका प्रकाशन रायगढ़ नरेश स्वर्गीय राजा चक्रधरसिंह ने अपने नटवर प्रेस से किया था। आप श्री पुरुषोत्तम पाण्डेय और लोचनप्रसाद पाण्डेय के साहित्य-गुरु भी थे।

आपका निधन सन् 1907 में हैजे के प्रकोप से हुआ था। आपकी स्मृति में रायगढ़ के नागरिकों ने 'अनन्त पुस्तकालय' की स्थापना की थी, जो अब नगरपालिका पुस्तकालय में समाविष्ट होकर 'अनन्त विभाग' नाम से जाना जाता है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि पांडेयजी द्वारा 'विकासवाद या विनाशवाद' शीर्षक लेख में अपनी कटु आलोचना किये जाने पर भी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उनके निधन पर शोक प्रकट करते हुए 'सरस्वती' में उनका चित्र भी प्रकाशित किया था।

डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर

डॉ० अल्तेकर का जन्म 24 सितम्बर सन् 1898 को महाराष्ट्र प्रदेश की कोल्हापुर रियासत के महकवे नामक स्थान में हुआ था। आपकी मातृभाषा मराठी थी, किन्तु हिन्दी-लेखन आपने अपना आध्यात्मिक कर्त्तव्य माना हुआ था। अपने पूर्ववर्ती मराठीभाषी अनेक साहित्यकारों द्वारा प्रदर्शित मार्ग को अपना कर ही आप हिन्दी-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए थे। आपकी शिक्षा पहले बम्बई तथा बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई थी। काशी की इस शिक्षा का प्रभाव भी उन्हें हिन्दी की ओर अग्रसर करने में सहायक हुआ था।

आपको सर्वप्रथम काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति विभाग के अध्यक्ष डॉ० राखालदास बन्द्योपाध्याय ने काशी विश्वविद्यालय में संस्कृत-अध्यापक के रूप में नियुक्त कराया था। मूलतः आप संस्कृत के ही विद्वान् थे, किन्तु आगे चलकर आपने भारतीय संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में अद्‌भुत प्रगति की थी। 'मुद्रा शास्त्र' के विषय में तो आपको इतनी दक्षता प्राप्त थी कि आपके निधन के उपरान्त अब इस क्षेत्र में विशेषज्ञों का अकाल-सा पड़ गया है। अपने कार्य-काल में आपने जहाँ हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में पुरातत्त्व, मुद्रा-शास्त्र और संस्कृति के उन्नयन की दिशा में अभिनन्दनीय कार्य किया, वहाँ पटना जाकर आपने इस कार्य को आगे बढ़ाने में अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया था। सारांशतः आप इस विद्या के इतने निष्णात पंडित थे कि भारतीय संस्कृति, साहित्य और पुरातत्त्व

के विषय में आपकी स्थापनाएँ अपना विशेष महत्त्व रखती हैं।

आप अपने जीवन के अंतिम दिनों में पटना के 'काशी-प्रसाद जायसवाल शोध-संस्थान' के निदेशक थे। इससे पूर्व आप पटना विश्वविद्यालय में 'भारतीय इतिहास तथा संस्कृति विभाग' के अध्यक्ष पद पर अनेक वर्ष तक सफलता-पूर्वक कार्य करते रहे थे। आप सन् 1937 में अखिल भारतीय ओरियण्टल कान्फ्रेंस के अध्यक्ष मनोनीत हुए थे। आप भारत सरकार के भारतीय पुरातत्त्व विभाग के भी सम्मानित सदस्य एवं परामर्शदाता थे।

अपने निधन से पूर्व आपने 'भारतीय इतिहास कांग्रेस' के गोहाटी अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण लिखकर समाप्त करके मेज पर रखा ही था कि 61 वर्ष की आयु में 24 नवम्बर सन् 1959 को आपका आकस्मिक देहावसान हो गया।

भारतीय मुद्रा शास्त्र तथा भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में आपके अनेक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। आपके हिन्दी ग्रन्थों में 'प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति' (1949), 'गुप्तकालीन मुद्राएँ' (1954) तथा 'प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति' (1955) प्रमुख हैं।

श्री अनसूयाप्रसाद पाठक

श्री पाठकजी का जन्म सन् 1911 में बुन्देलखंड की पन्ना रियासत के वीरसिंहपुर थाने के उजेनी नामक ग्राम में हुआ था। आपने अपना सारा जीवन उत्कल प्रदेश में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने में ही बिता दिया था। संस्कृत की मध्यमा तथा हिन्दी की 'साहित्य रत्न' परीक्षा तक की पढ़ाई करके आप 17 नवम्बर, सन् 1931 को उड़ीसा पहुँचे थे। वहाँ पहुँचकर आपने उड़ीसा के प्रख्यात नेता श्री गोपबन्धु चौधरी के सुझाव पर सन् 1932 में युवक कांग्रेस के स्वयंसेवकों को हिन्दी पढ़ाने का कार्य प्रारम्भ किया था। आप कांग्रेस के पुरी अधिवेशन में भाग लेने के विचार से वहाँ गए थे, किन्तु फिर वे लौटे नहीं और अपनी ध्येयनिष्ठा तथा कर्मठता से उड़ीसा के जन-जीवन में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

जिन दिनों श्री पाठकजी हिन्दी पढ़ाने के इस कार्य में लगे थे उन दिनों देश में राष्ट्रीयता की लहर जोरों से फैली हुई थी। पाठकजी ने वहाँ के युवकों में 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' तथा 'राष्ट्र-गान की दिव्य ज्योति राष्ट्रीय पताका नमो-नमो' नामक गीतों के माध्यम से राष्ट्रीयता का बीज वपन तो किया ही, हिन्दी के प्रति भी उन्हें उन्मुख किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के माध्यम से 'हिन्दी-प्रचार' का कार्य करने की वह योजना अद्भुत थी। इसी कारण उन्हें जेल में जाना पड़ा था। वे कटक तथा पटना जेल में भी कई महीने रहे। वहाँ पर वे जेल में बिना कागज-पेन्सिल के अपनी दातुन द्वारा जमीन पर लिख-लिखकर ही लोगों को हिन्दी पढ़ाने लगे। छह मास बाद जब वे जेल से मुक्त हुए तो उन्होंने सर्वश्री राधामोहन महापात्र, राधानाथ रथ, हरेकृष्ण महताब तथा स्वामी विचित्रानन्द दास के सक्रिय सहयोग से 'हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना की। सर्वप्रथम इस सभा के सभापति स्वामी विचित्रानन्द दास और मंत्री श्री पाठक थे। इस सभा के माध्यम से पाठकजी ने जहाँ हिन्दी-प्रचार का कार्य किया वहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अनेक कार्यकर्ता भी तैयार किये।
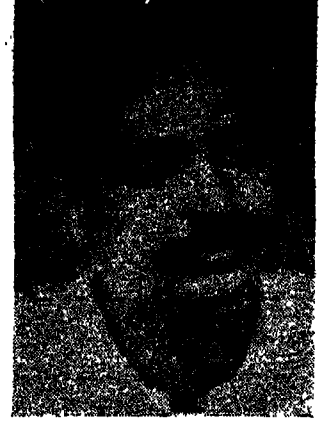
श्री पाठकजी ने उड़ीसा में हिन्दी-प्रचार के लिए जिस सभा की स्थापना की थी, आज उसका रूप बहुत विशाल हो गया है उसे 'उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा' नाम से सब लोग जानने लगे हैं। इस सभा का 'रजत जयन्ती' महोत्सव सन् 1956 में मनाया गया था। राष्ट्रभाषा प्रचार-कार्य के प्रसंग में आपका सम्पर्क विनीता नामक एक ईसाई बाला से हो गया था, जिससे उनका विधिवत् विवाह 12 जून, सन् 1952 में हुआ, जो अब 'विनीता पाठक' के रूप में जानी जाकर 'उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा' के संचालन का कार्य कर रही हैं। यह पाठकजी के अनवरत

अध्यवसाय तथा घनघोर कर्मठता का ही सुपरिणाम था कि उत्कल की यह सभा आज विशाल रूप धारण कर गई है।

आप कर्मठ हिन्दी-प्रचारक होने के साथ-साथ एक अच्छे लेखक भी थे। आपने अपने संस्मरण 'मेरा उत्कल प्रवास' नामक पुस्तक में लिखे हैं, जिसका प्रकाशन राष्ट्र-भाषा पुस्तक भंडार, कटक से सन् 1960 की गांधी जयन्ती के अवसर पर हुआ था। आपने कविता, नाटक और उपन्यास-लेखन की दिशा में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। आपके उपन्यासों में 'अरे मेरे भैया' तथा 'तमसा की गोद में' उल्लेख्य हैं। डॉ० हरेकृष्ण महताब के उड़िया उपन्यास 'प्रतिभा' का हिन्दी-अनुवाद भी आपने किया था। आपकी सम्पादन-पटुता का परिचय आपके द्वारा सम्पादित 'राष्ट्र-भाषा रजत जयन्ती ग्रन्थ' से भलीभाँति मिल जाता है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सभा की रजत जयन्ती के अवसर पर हुआ था।

आपका निधन सन् 1970 में हुआ था।

श्री अनिलकुमार अड़यालिकर

श्री अनिलकुमार अड़यालिकर का जन्म 2 दिसम्बर, 1924 को नागपुर (महाराष्ट्र) में हुआ था। वे विचारों से लोहिया-वादी थे, इस कारण सरकारी नौकरी में भी उन्हें समय-समय पर अनेक कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा था। चिन्तन के साथ उनका लेखन भी राजनीति-प्रेरित था और उनकी इस रचना-धर्मिता पर सरकारी नौकरी का आतंक कभी हावी नहीं हुआ था। वे तीखा लिखते और तीखा बोलते थे।

उनके लेख तथा कविताएँ देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थीं और उन पर विवाद भी चलते रहते थे। नाटक, संगीत तथा चित्रकला पर उनके समीक्षात्मक लेखों को बड़े चाव से पढ़ा जाता था। उन्होंने कविताएँ, कहानियाँ, रेडियो-नाटक और कला-समीक्षाएँ ही अधिकांशतः लिखी थीं। नाट्य-मंच और ललितकलाओं में गहन रुचि रखने के साथ-साथ वे तन्त्र साधना में भी विश्वास रखते थे।

अपनी मृत्यु से पूर्व वे नागपुर से विस्थापित होकर मध्य प्रदेश सरकार के 'समाज कल्याण विभाग' के मुख्या-लय में सर्वप्रथम इन्दौर आकर रहे थे। मराठी-भाषी होते हुए भी वे हिन्दी के सच्चे लेखक सिद्ध हुए। आपकी रचनाओं में 'ग्रहों का निर्णय', 'आओ बच्चो नाटक खेलें', 'इतिहास की परिक्रमा', 'प्रणय अंगार', और 'गारुड़ मन्त्र' उल्लेख-नीय हैं। 'गारुड़ मन्त्र' पर उन्हें मध्य प्रदेश शासन साहित्य-परिषद् का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था।

अपने निधन (13 सितम्बर, 1979) के समय वे भोपाल में नियुक्त थे और वहाँ से 'रंग सन्धान' नामक एक पत्रिका का अवैतनिक रूप से सम्पादन भी कर रहे थे। इसके अतिरिक्त शासन के समाज-सेवा विभाग के पत्र 'समाज सेवा' के सम्पादक-मंडल के भी वे एक सम्मानित सदस्य थे। उनका निधन आकस्मिक हृदयाघात के कारण हुआ था।

श्री अनुग्रहनारायण सिंह

श्री अनुग्रहनारायण सिंह का जन्म बिहार के गया जिले के पोइवाँ (औरंगाबाद) में 18 जून, सन् 1887 को हुआ था। दस वर्ष की आयु से शिक्षा प्रारंभ करके आपने कलकत्ता तथा पटना विश्वविद्यालयों से एम० ए० और बी० एल० की उपाधियाँ प्राप्त की थीं।

छात्रावस्था से ही आपका झुकाव सामाजिक कार्यों की ओर था। फलस्वरूप जब सन् 1911 में पटना में कांग्रेस का

महाअधिवेशन हुआ तब आपको ही स्वयंसेवक संगठन का सचालक नियुक्त किया गया था। सन् 1915-16 में भागलपुर के टी० एन० जुबली कालेज में इतिहास विषय के प्रवक्ता रहने के अतिरिक्त आपने सन् 1916 से सन् 1920 तक पटना हाई कोर्ट में वकालत भी की थी। तदुपरांत सन् 1921 के असहयोग आंदोलन के समय आप वकालत छोड़कर सार्वजनिक सेवा में लग गए। आप स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व सन् 1937 से सन् 1939 तक बिहार के प्रथम कांग्रेसी मंत्रिमंडल में वित्त-मंत्री रहे थे और उसके बाद भी वहाँ के शासन में अनेक प्रमुख पदों पर कार्य किया था।

विभिन्न जनोपयोगी, सार्वजनिक और राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेने के साथ-साथ साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। आप सन् 1924 में गया में हुए बिहार प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अष्टम अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष भी रहे थे। हिन्दी के पुराने महारथी लाला भगवानदीन के सम्पादन में गया से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'लक्ष्मी' में आपके लेख प्रकाशित होते रहते थे। आपकी 'मेरे संस्मरण' नामक पुस्तक आपके हिन्दी-लेखन का उत्कृष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। आपका निधन 6 जुलाई, सन् 1957 को हुआ था।

श्री अनूप शर्मा

श्री अनूपजी का जन्म 5 सितम्बर, सन् 1899 को उत्तरप्रदेश के सीतापुर जिले के नवीनगर नामक कस्बे में हुआ था। आपके पूर्वज कानपुर जिले के समीपवर्ती गंगा-तट पर निवास करने वाले शिवराजपुर के तिवारी थे। आपके पिता पंडित बदरीप्रसाद त्रिपाठी ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। आपकी प्रारंभिक शिक्षा फारसी में हुई थी और सीतापुर के जयदयाल हाईस्कूल से आपने सन् 1919 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। जब सन् 1899 में नवीनगर रियासत 'कोर्ट' हो गई तो आपके पिता रियासत के तत्कालीन राजकुमार श्री प्रतापबहादुर सिंह के 'संरक्षक' बने और सन् 1910 तक इस पद पर कार्य करते रहे। सन् 1914 में देश-भक्ति के कारण उन पर अभियोग चला। वे सजा से तो बच गए, पर उनकी 1400 बीघे जमीन बे-दखल हो गई। सन् 1921 के असहयोग आंदोलन में उन्हें जेल में भी रहना पड़ा और स्वतंत्रता के उपरांत 72 वर्ष की आयु में सन् 1949 में आपका देहावसान हो गया। अनूप शर्मा का बचपन का नाम 'पुत्ती' था, जो प्राइमरी स्कूल में 'पुत्तूलाल' हो गया था। छठी कक्षा में एक अध्यापक की कृपा से उनका नाम 'मदनमोहन त्रिपाठी' लिखा गया। जब वे दसवी कक्षा में आए तो सेठ जयदयाल स्कूल, सीतापुर के अध्यापक श्री बालमुकुन्द जी ने इनका नाम 'मदनमोहन त्रिपाठी' से 'अनूप शर्मा' कर दिया।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत अनूपजी लखनऊ के केनिंग कालेज में भरती हो गए और वहीं से सन् 1923 में बी० ए० कर लिया। इस बीच एक चमत्कारी घटना हुई। सन् 1921 में लखनऊ के 'बेनेट हॉल' में (जो अब मालवीय हॉल कहलाता है) सुकवि श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की अध्यक्षता में एक कवि-सम्मेलन हुआ और अनूपजी ने उसमें अपनी एक कविता सुनाई। उनकी कविता सुनकर सनेहीजी ने उसको बहुत सराहा। फिर क्या था, आप उनके कृपा-पात्र बन गए और कानपुर-मंडल के कवि-सम्मेलनों में आमंत्रित किए जाने लगे और धीरे-धीरे आपकी ख्याति सारे देश में हो गई। इसी बीच अनूपजी की भेंट गांधीजी से हो गई। 'साबरमती आश्रम' का एक स्वयंसेवक 'व्यंकट' हिन्दी सीखने के लिए लखनऊ आया और अनूपजी उसे हिन्दी पढ़ाने लगे। जब एक बार गांधीजी लखनऊ पधारे तो उनके सुपुत्र देवदास गांधी भी व्यंकट के साथ हिन्दी पढ़ने आने लगे। एक दिन देवदासजी अनूपजी को गांधी जी से मिलाने के लिए कालाकाँकर की कोठी पर ले गए।

गांधीजी के सामने अनूपजी ने जब अपनी वीररसपूर्ण रचनाओं का पाठ किया तो उन्होंने आशीर्वाद रूप में कहा—"हिन्दी में कोई रवीन्द्रनाथ नहीं है, मैं चाहता हूँ कि शीघ्र ही कोई तरुण हिन्दी का रवीन्द्रनाथ बने।" गांधीजी का यह आशीर्वाद पूर्णतः फलीभूत हुआ और अनूपजी ने अपनी वीररसपूर्ण रचनाओं के कारण इतनी ख्याति अर्जित कर ली कि वे 'आधुनिक रवीन्द्र' तो न बन सके, परन्तु 'आधुनिक भूषण' के गौरवमय अभिधान से 'अभिषिक्त' अवश्य हुए।

बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत अनूपजी ने कुछ दिन तक 'इलाहाबाद बैंक' में नौकरी की और तदुपरांत आपने 'माधुरी', 'महिला समाचार', 'मर्यादा' तथा 'वर्तमान' आदि कई पत्र-पत्रिकाओं में कार्य किया। जब स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने कानपुर से सन् 1924 में 'कवीन्द्र' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया तब अनूपजी ही उसके सम्पादक बनाए गए थे। इस बीच अनूपजी ने एक विद्यालय में शिक्षक के पद के लिए अपना प्रार्थना-पत्र दिया, किन्तु 'एल० टी०' न होने के कारण वहाँ उनकी नियुक्ति न हो सकी। परिणामस्वरूप आप काशी विश्वविद्यालय में जाकर वहाँ के टीचर्स ट्रेनिंग कालेज की 'एल० टी०' में प्रविष्ट हो गए। वहाँ पर रहते हुए आपका संपर्क लाला भगवानदीन से हुआ, जिससे उन्हें भावी जीवन में बड़ी प्रेरणा मिली थी। वहाँ पर आपकी रचनाएँ 'आज' दैनिक में ससम्मान प्रकाशित होने लगी थीं। एल० टी० करने के उपरांत कुछ दिन तक आपने श्री दुलारेलाल भार्गव की 'गंगा पुस्तक माला' में भी कार्य किया था। एल० टी० करने के कारण अब आपका 'शिक्षक' बनने का मार्ग प्रशस्त हो गया था। फलस्वरूप सर्वप्रथम शिक्षक के रूप में आपकी नियुक्ति सीतापुर के उसी स्कूल में हुई जिससे आपने 'मैट्रिक' की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। खड़ी बोली, ब्रजभाषा तथा अवधी आदि भाषाओं के सिद्ध कवि श्री उमादत्त सारस्वत 'दत्त' वहाँ उनके शिष्य रहे थे। जब आप सीतापुर में थे तब एक बार आपको लखनऊ के क्रिश्चियन कालेज में एक कवि-सम्मेलन में जाना पड़ा। इस कवि-सम्मेलन में आपको मालवा (मध्यप्रदेश) की सीतामऊ रियासत के हाईस्कूल में 'हैडमास्टर' का पद रिक्त होने की सूचना मिली और उन्होंने वहाँ अपना प्रार्थना-पत्र भेज दिया। आपके पढ़ाने के ढंग से वहाँ के महाराजा बहुत प्रभावित हुए और आपकी नियुक्ति वहाँ हो गई। सन् 1928 से सन् 1939 तक 11 वर्ष आप वहाँ के 'सर रामसिंह हाईस्कूल' के प्रधानाचार्य रहे। अपने इस कार्य-काल में आपने रियासत के 16 छोटे स्कूलों के 'इंस्पेक्टर' का भी कार्य किया। सीतामऊ में रहते हुए आपने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा भी ससम्मान उत्तीर्ण कर ली थी। सीतामऊ से लौटने के उपरांत आप कुछ दिन लखीमपुर के 'धर्मसभा हाईस्कूल' में प्रधानाचार्य रहे और उसके उपरांत सन् 1940 से 1952 तक धामपुर (बिजनौर) के 'के० एम० हाईस्कूल' के प्रधानाचार्य रहे। इस कार्य-काल में आपको विद्यालय की प्रबन्ध समिति से बहुत संघर्ष भी करना पड़ा, किन्तु अन्त में आपकी ही विजय हुई।

अनूपजी की प्रथम काव्य-कृति 'सिद्धार्थ' बम्बई की 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' संस्था ने प्रकाशित की थी। 18 भागों मे लिखित 'ब्रजभाषा' के इस महाकाव्य का हिन्दी-संसार में बड़ा स्वागत हुआ और शीघ्र ही अनूपजी की गणना हिन्दी के शीर्षस्थ कवियों में होने लगी। आपका 'फेरि मिलिबो' नामक काव्य सन् 1938 में जब प्रकाशित हुआ तो उसने भी साहित्य-प्रेमियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। 'सुमनांजलि' (1939) नामक कृति में आपकी स्फुट रचनाएँ हैं। 'सुनाल' नामक आपका काव्य कुणाल के चरित्र पर आधारित एक सफल काव्य-कृति है। जुलाई 1951 में प्रकाशित आपके 'वर्धमान' नामक महाकाव्य ने देश के अनेक सुधीजनों को बहुत प्रभावित किया। आपके 'फेरि मिलिबो' नामक काव्य पर 'देव पुरस्कार' भी प्रदान किया गया था। आपकी प्रतिभा की चरम परिणति आपके 'शर्वाणी' नामक अन्तिम महाकाव्य में देखी जा सकती है, जिसमें 'दुर्गा सप्तशती' को आधार बनाकर अनूपजी ने घनाक्षरी छन्दों में

'इन्द्राणी' का सर्वांगीण वर्णन किया है। आपका 'अग्नि पथ' (1952) नामक खंड काव्य भी अपनी विशिष्टता के लिए अभिनन्दनीय कहा जा सकता है। आपके अप्रकाशित महाकाव्य 'गांधी चरित्र' की पांडुलिपि को देखने से यह विदित होता है कि आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक साहित्य-सर्जना में ही लगे रहे।

अपने शिक्षकीय जीवन से विश्राम पाने के उपरांत अनूपजी कुछ समय तक (सन् 1954 से 1958) आकाशवाणी लखनऊ के 'पंचायतघर' में 'चौधरी' के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे थे। यह विडम्बना की ही बात है कि हिन्दी के इस सशक्त समर्थ कवि को अपने जीवन के संध्याकाल में 150 रुपए मासिक की यह निकृष्ट नौकरी करनी पड़ी। सन् 1960 तक आते-आते उनकी स्मरण-शक्ति पर भी कुछ प्रभाव होने लगा था और इसी के कारण उसी वर्ष लखनऊ में उनका निधन हो गया।

श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा

श्री अन्नपूर्णानन्द का जन्म 21 सितम्बर सन् 1895 को काशी के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित और कुलीन कायस्थ परिवार में हुआ था। आपकी प्रतिभा भी अपने बड़े भाई (डॉ० सम्पूर्णानन्द) की तरह ही थी और शिक्षा भी उन्होंने बी० एस-सी० तक ही प्राप्त की थी। यह एक संयोग की बात है कि विज्ञान के इस विद्यार्थी ने हिन्दी के प्रतिनिधि हास्य-लेखकों में अपना स्थान बना लिया था। यह उनकी योग्यता, प्रतिभा तथा विलक्षण मेधा का परिचायक है।

आपकी पढ़ाई गाजीपुर (उ० प्र०) की एक बहुत ही मामूली पाठशाला से प्रारम्भ हुई थी और लखनऊ के केनिंग कालिज से बी० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने प्रख्यात राष्ट्रीय नेता श्री मोतीलाल नेहरू के पत्र 'इंडिपेंडेंट' में कार्य करना प्रारम्भ किया था और इसके उपरान्त वे काफी दिन तक काशी के सुप्रसिद्ध समाज-सेवी और व्यवसायी श्री शिवप्रसाद गुप्त के निजी सचिव रहे और उसके बाद उन्होंने साहित्य-सेवा को जब अपने जीवन का चरम ध्येय बनाया, तो वे अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी के प्रतिनिधि हास्य-लेखकों में गिने जाने लगे। उनकी अभूतपूर्व प्रतिभा का उज्ज्वल अवदान उनकी 'महाकवि चच्चा', 'मगन रहु चोला', 'मेरी हजामत', 'मंगल मोद', 'मिसिर जी' तथा 'मन मयूर' आदि महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

भारतेन्दु और द्विवेदी-युग के उपरान्त हिन्दी साहित्य को जिन साहित्यकारों ने हास्य-रचनाओं से समृद्ध बनाया, उनमें स्व० अन्नपूर्णानन्द जी का स्थान अनन्य था। अपनी हास्य कहानियों में तो उन्होंने हमारे वर्तमान समाज का वास्तविक चित्र खींचा ही था, अपने लेखों में भी उन्होंने देश में प्रचलित अनेक कुरीतियों पर खुलकर व्यंग्य किया था। उनके व्यंग्य-बाणों के प्रहारों से विरोधी तिलमिलाकर रह जाते थे। समाज-सुधार की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित 'विधवा-विवाह-विरोध', 'फैशनपरस्ती' तथा 'जी-हुजूरी' आदि विभिन्न कुप्रथाओं पर कड़ी चोट करके उनके निवारण के उपाय अपनी रचनाओं में सुझाए थे।
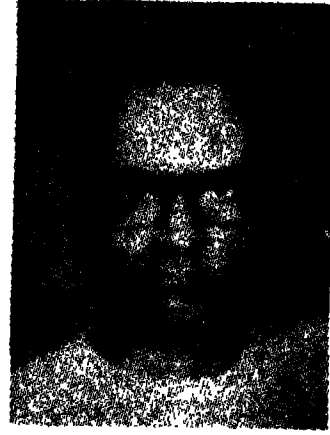
उनकी 'महाकवि चच्चा' तथा 'मगन रहु चोला' नामक कृतियों में अत्यन्त शिष्ट और निर्भीक व्यंग्य देखने को मिलते हैं। इनमें हिन्दी के साहित्यकारों, पत्रकारों, इतिहास-लेखकों तथा हिन्दी के उन्नायक राजा-महाराजाओं और प्रकाशकों की मनोवृत्ति का अच्छा विश्लेषण किया गया है। अन्नपूर्णानन्द जी ने जहाँ हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण अनेक कहानियाँ लिखी थीं वहाँ उन्होंने निबंध-लेखन की दिशा में भी कम चमत्कार नहीं दिखाया था। अपने 'बिलवासी मिश्र' और 'महाकवि चच्चा' आदि अनेक पात्रों के माध्यम से उन्होंने अनेक ऐसी कृतियाँ हिन्दी-साहित्य को प्रदान की थीं, जिनकी आज एक अद्वितीय विशेषता है।

श्री अन्नपूर्णानन्द जी ने केवल गद्य के ही क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय नहीं दिया था, प्रत्युत पद्य-रचना द्वारा

भी आपने व्यंग्य की बानगी 'हिन्दी-साहित्य' को दी थी। भारतवासियों का यह स्वभाव-सा हो गया है कि वे अपने विगत गौरव की लुप्त आभा तथा सुप्त शौर्य का गुणानुवाद करते-करते नहीं अघाते। वे प्रायः अपने पिछले दिनों के ही स्वप्न देखा करते हैं। अपनी 'महाकवि चच्चा' नामक कृति में उन्होंने इसका अच्छा वर्णन किया है। इस कृति में उसके प्रमुख पात्र महाकवि चच्चा कैसे-कैसे स्वप्न लेते थे, यह जानने और समझने की बात है। कवि चच्चा को लक्ष्य बनाकर उन्होंने भारतवासियों के प्रति अनेक चुटकियाँ अपनी इस पुस्तक में ली हैं।

समाज में पद-पदवियों के पीछे दौड़ने वाला जो वर्ग है उसके प्रति भी उन्होंने यत्र-तत्र अपनी प्रतिभा के ज्वलंत कण बिखेरे हैं। रायबहादुरी के चक्कर मे रहने वाले लोग क्या-क्या सोचते हैं, इसका यथातथ्य चित्रण श्री अन्नपूर्णानन्द जी ने अपने इस कवित्त में किया है :

हाकिम हजूर में सलामी असि-धार झेलि,
'डैम-फूल' गालिन को फूल से गने रहें।
छाती से छरकि जाएँ छरें धिक छी-छी के,
पंग के वचन-बाण बेहद ठने रहें।।
कवच बेहाई सौं मन-काँच-बदन ढाँकि-ढाँकि,
होड़ में सिफारस के सहन सने रहें।
पुरखा हमारे रहे रन में बहादुर, हम—
रायबहादुर भला क्यों न हम बने रहें।।

इस प्रकार श्री अन्नपूर्णानन्द जी ने क्या समाज, क्या साहित्य, क्या राजनीति, और क्या धर्म; तात्पर्य यह है कि सभी क्षेत्रों मे अपनी लेखनी को धन्य किया। जिस किसी पर भी उन्होंने कलम उठा दी, उसे बख्शा नहीं। उनकी कृतियों में हमें समाज में प्रचलित सभी कुरीतियों, कुप्रथाओं, ढोंगों और वाग्जालो की निष्पक्ष, निर्मम और निरपेक्ष आलोचना देखने को मिलती है। उनकी भाषा टकसाली, पात्र सजीव और व्यंग्य गुदगुदाने वाले होते हैं।

अपनी व्यंग्य-भरी आमोद-प्रमोदमयी सरल रचनाओं के द्वारा श्री अन्नपूर्णानन्द हिन्दी साहित्य में सदा-सर्वदा अमर रहेंगे। किन्तु फिर भी उनकी मधुर स्मृति को हरदम मन में सँजोए रखने के लिए 'बिलवासी' के नाम से लिखा गया उनका एक दोहा ही याद रखना पर्याप्त होगा। उन्होंने लिखा है :

जी ते गई न कामना, जी ते क्रोध, न काम।
जीते जनि जड़ जीव जग, बिलवासी बदनाम।।

इनका निधन जयपुर के सवाई मानसिंह अस्पताल में 4 दिसम्बर, 1962 को उन दिनों हुआ था जब वे अपने अग्रज तथा राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द के पास गए हुए थे।

श्री अपूछलालसिंह 'अपूछ'

श्री अपूछजी का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के फुलकहा नामक ग्राम में सन् 1885 मे हुआ था। जब आप छोटे ही थे तब ही आपके माता-पिता का देहान्त हो गया था। बड़ी कठिनाई से आपने हिन्दी और उर्दू की साधारण शिक्षा प्राप्त की और अपने ही अध्यवसाय से शिवहर नामक राज्य में पटवारी का काम करने लगे थे।

गोस्वामी तुलसीदास की 'रामचरित मानस' नामक कृति में उनकी बड़ी आस्था थी और वे नियमित रूप से नित्य प्रति उसका पारायण किया करते थे। रामायण के इस निरन्तर पाठ ने उनके मानस में कविता के जो संस्कार उत्पन्न किए थे, कालान्तर मे वे ही प्रस्फुटित हुए और फलस्वरूप वे अच्छी कविता करने लगे थे। शिवहर के राजा शिवराजनन्दन सिंह और बाबू गिरिजानन्दन सिंह के सहयोग से आपकी कविता से प्रभावित होकर दरभगा-नरेश ने अपने दरबार में नियमित रूप से रहने का निमन्त्रण भी आपको दिया था। अभी तक आपकी 'श्री मोहन दधि दान' तथा 'पावस प्रकाश' नामक दो प्रकाशित रचनाएँ ही उपलब्ध हुई है।

आपका निधन सन् 1926 में हुआ था।

श्री अब्दुल रशीद खाँ 'रशीद'

श्री 'रशीद' का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली नामक नगर में सन् 1900 में हुआ था। आपका झुकाव बचपन से ही

कृष्ण-भक्ति की ओर था। 'रामायण' के 'सुन्दर कांड' के निरन्तर पारायण ने ही उन्हें हिन्दी-कविता के प्रति उन्मुख किया। जन्मना मुसलमान होते हुए भी आपने कृष्ण-भक्ति पर इतनी सफल रचनाएँ की हैं कि उन्हें 'रायबरेली का रसखान' कहा जाता था। आपने अपने श्रीकृष्ण-प्रेम से अभिभूत होकर ही ब्रज प्रदेश के मथुरा, नन्दगाँव, वृन्दावन, बरसाना तथा गोवर्धन आदि स्थानों की अनेक बार यात्राएँ की थीं।

आपके पिता श्री अब्दुल हमीद खाँ की आर्थिक दशा ठीक नहीं थी, इसी कारण वे श्री रशीद की शिक्षा-दीक्षा की ओर ठीक तरह ध्यान नहीं दे सके थे। उर्दू तक मिडिल की परीक्षा देने के उपरान्त आपकी नेत्र-ज्योति मन्द पड गई थी। किन्तु एक वर्ष बाद ही जब उनमें फिर प्रकाश की रेखाएँ आ गई तब आप शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। ट्रेनिंग करने के उपरान्त आपने 'रामायण' के निरन्तर पाठ द्वारा अपनी हिन्दी-योग्यता को बढ़ाया और एक दिन ऐसा भी आया कि आपकी गणना उस क्षेत्र के उत्कृष्ट कवियों में होने लगी।

अध्यापन-कार्य में व्यस्त रहते हुए भी आप, निरन्तर साधु-महात्माओं के सत्संगो में बराबर भाग लिया करते थे। इन सत्संगों के चमत्कारी प्रभाव के कारण ही आपकी रचनाओं में श्रीकृष्ण-भक्ति का प्राचुर्य रहने लगा था। आप हिन्दी में 'राकेश' के नाम से जाने जाते थे। आपको उत्तर प्रदेश हिन्दी-संस्थान की ओर से सम्मानित भी किया गया था। आप जैसे हिन्दी-प्रेमियों को दृष्टि में रखकर ही भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने यह लिखा था :

"इन मुसलमान कविजनन पै,
कोटिन हिन्दू वारिये।"

आपका निधन 13 अगस्त, सन् 1980 को हुआ था। आप काफी दिनों से अस्वस्थ चले आ रहे थे।

श्री अभयदेव विद्यालंकार

श्री विद्यालंकार का जन्म 2 जुलाई सन् 1896 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद के बरथावल नामक स्थान में हुआ था। आप गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी (हरिद्वार) के प्रतिष्ठित स्नातक थे और आपका पहला नाम देवशर्मा था; बाद में देवशर्मा अपने को 'अभय' लिखने लगे; और अरविन्द आश्रम में जाने के बाद संन्यासी होकर आप'अभयदेव' हो गए।

गुरुकुल से स्नातक होने के उपरांत आप वहाँ पहले आश्रमाध्यक्ष, फिर वेदोपाध्याय और इसके उपरांत अनेक वर्ष तक आचार्य रहे। महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में विश्वास रखते हुए आपने अपनी जन्मभूमि बरथावल में सन् 1921 में असहयोग आंदोलन का संचालन किया था और सन् 1930 में जेल-यात्रा भी की थी।

आप वैदिक साहित्य के प्रकांड विद्वान् होने के साथ-साथ मौलिक विचारक, सुलेखक और साधक थे। प्रारम्भ से ही अरविन्द के योग-दर्शन में रुचि होने के कारण 13 अप्रैल सन् 1938 में विधिवत् संन्यासाश्रम में दीक्षित होकर आप अरविन्द की योग-प्रणाली के अन्यतम साधक हो गए और मृत्यु-पर्यन्त इसीके प्रचार तथा प्रसार में संलग्न रहे। आपने अरविन्द की विचार-धारा के प्रचार के लिए अपनी जन्म-भूमि में 'श्री अरविन्द निकेतन' की भी स्थापना की थी।
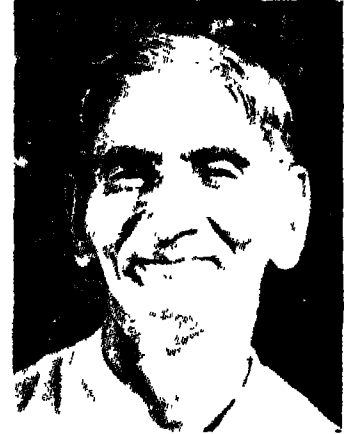
लेखक के रूप में भी आपके मौलिक चिन्तन का उत्कृष्ट अवदान साहित्य को मिला। आपकी प्रमुख कृतियों में 'तरंगित हृदय', 'वैदिक विनय' (तीन भाग), 'ब्राह्मण की गौ', 'वैदिक उपदेशमाला' तथा 'वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत' आदि विशेष उल्लेख्य हैं। आपने श्री अरविन्द के वेद-सम्बन्धी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी 'वेद रहस्य' नाम से किया था।

आपका निधन 9 जनवरी सन् 1970 को हुआ था।

डॉ० अमरनाथ झा

डॉ० झा का जन्म 25 फरवरी सन् 1897 को बिहार के दरभंगा जिले के सरिसबपाही नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता डॉ० सर गंगानाथ झा भारत के प्रमुख विद्वानों में थे और वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अनेक वर्ष तक कुलपति भी रहे थे। आपकी शिक्षा इसी कारण मुख्य रूप से प्रयाग में ही हुई थी। सन् 1903 से सन् 1906 तक प्रयाग के कर्नलगंज स्कूल में प्रारम्भिक पढ़ाई करने के उपरान्त आपने सन् 1913 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1913 से सन् 1919 तक वहाँ के म्योर सेंट्रल कालेज में शिक्षा ग्रहण करते हुए आपने 1915 में इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण करके विश्वविद्यालय में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। सन् 1917 में बी० ए० और सन् 1919 में एम० ए० की परीक्षाओं में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। परिणाम-स्वरूप आप 20 वर्ष की अल्पावस्था में ही म्योर कालेज में अँग्रेजी के प्रोफेसर हो गए।

अपने इस अध्यापन-काल में झा साहब ने प्रयाग के सामाजिक जीवन में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और सन् 1921 में ही वे प्रयाग म्यूनिसिपल कमेटी के वाइस चेयरमैन बन गए। उसी वर्ष वे वहाँ की पब्लिक लाइब्रेरी के मंत्री भी निर्वाचित हुए और एक दिन ऐसा आया जब वे सन् 1929 में प्रयाग विश्वविद्यालय में अँग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हो गए। आप सन् 1938 से सन् 1947 तक प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहने के अतिरिक्त सन् 1948 में यू० पी० के पब्लिक सर्विस कमीशन के अध्यक्ष भी रहे थे।

आपकी शिक्षा-सम्बधी बहुमूल्य सेवाओं को दृष्टि में रखकर पटना, प्रयाग और आगरा विश्वविद्यालयों ने आपको जहाँ 'डी० लिट्०' की सम्मानोपाधि प्रदान की थी वहाँ सन् 1954 में आपको भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' की उपाधि से भी विभूषित किया था। आप सन् 1941 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अबोहर-अधिवेशन के अध्यक्ष भी मनोनीत हुए थे। आपने अपने अध्यक्षीय भाषण में उर्दू के सम्बन्ध में यह स्पष्ट घोषणा की थी—"उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है वह हिन्दी की ही एक शैली है और उसे यदि देवनागरी लिपि में लिखा जाय तो हिन्दी-उर्दू का विरोध स्वयं समाप्त हो जायगा।"

आपने महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए हिन्दुस्तानी के आन्दोलन का डटकर विरोध किया था। उसके बाद आप 'भारतीय भाषा आयोग' के मान्य सदस्य और 'नागरी प्रचारिणी सभा' के सभापति भी मनोनीत हुए थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से कई भागों में प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' नामक ग्रन्थ के सम्मान्य सम्पादक भी बनाए गए। अँग्रेजी, लैटिन और फ्रेंच भाषाओं में पारंगत होने के साथ-साथ आप संस्कृत, बंगला, मैथिली तथा हिन्दी के भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। मैथिली तो उनकी मातृभाषा ही थी। 'बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्' के माध्यम से मैथिली भाषा के प्रमुख कवि विद्यापति की समग्र कृतियों के अनु-संधान और प्रकाशन के लिए जो 'विद्यापति स्मारक समिति' गठित हुई थी उसके अध्यक्ष आप ही थे। संगीत और चित्र-कला में भी आपकी विशेष रुचि रहती थी।

एक उत्कृष्ट कोटि के प्रशासक होने के साथ-साथ आप संस्कृत, हिन्दी और अँग्रेजी के अच्छे लेखक भी थे। आपकी हिन्दी रचनाओं में 'हिन्दी साहित्य संग्रह', 'हिन्दी साहित्य रत्न', 'पद्म पराग' और 'विचार-धारा' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपके द्वारा लिखी गई अनेक पुस्तकों की भूमिकाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। आपका निधन 2 सितम्बर सन् 1955 को हुआ था।

श्री अमरनाथ त्रिपाठी 'सुरेश'

श्री सुरेश का जन्म कानपुर नगर के पटकापुर नामक मोहल्ले में सन् 1918 में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० शिव-

साथ विद्यार्थी था। आप 'हिन्दी साहित्य मंडल' कानपुर के सदस्य होने के साथ-साथ अनेक वर्ष तक उसके प्रधान मंत्री भी रहे थे। 'राजकीय प्रतिरक्षा प्रतिष्ठान' में कार्य करते हुए भी साहित्य-रचना की ओर आपका बहुत झुकाव था। 'फक्कड़' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करने के अतिरिक्त काव्य के क्षेत्र में भी आपकी देन अद्भुत है। आपकी 'सन्धि-दूत' तथा 'वाणी-वन्दना' नामक रचनाएँ प्रख्यात हैं।

आपका निधन 9 मार्च सन् 1980 को हुआ था।

श्री अमरनाथ वैद्य

श्री अमरनाथ वैद्य का जन्म पंजाब प्रदेश के अमृतसर जनपद के नौशेरा ढाला नामक ग्राम में जनवरी सन् 1890 में हुआ था। आपने लाहौर के दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज से 'वैद्य शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण करके वहां पर ही संस्कृत का अध्ययन किया और सन् 1914 में देहरादून आ गए। देहरादून में आकर आपने यहाँ 'वनस्पति भवन' की स्थापना करके उसके द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणाली का प्रचार प्रारम्भ किया।

आप हिन्दी के इतने कट्टर भक्त तथा हिमायती थे कि उनके पास यदि कोई सगे-सम्बन्धी का भी निमन्त्रण-पत्र अंग्रेजी में आ जाता था तो आप वहाँ नहीं जाते थे। आपने देहरादून में आर्यसमाज तथा हिन्दी साहित्य समिति के माध्यम से हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का अभिनन्दनीय कार्य किया था। राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी आप बढ़-चढ़कर भाग लेते थे और एकाधिक बार आपको कारावास में भी रहना पड़ा था।

आपने 'वनस्पति निघंटु' नामक एक पुस्तक लिखी थी। आपने 'औदीच्य बन्धु' नामक पत्र के अतिरिक्त 'निर्भय' और 'सम्मेलन-सन्देश' आदि पत्रों का सम्पादन भी किया था। आपके लेख आदि हिन्दी की प्रायः सभी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करते थे। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन सन् 1924 में श्री माधवराव सप्रे की अध्यक्षता में देहरादून में हुआ था, वैद्यजी उसकी स्वागत-समिति के मन्त्री थे। आप उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन के प्रधानमन्त्री और हिन्दी साहित्य समिति के प्रधान भी रहे थे। आपने देहरादून की जनता की सेवा वहाँ की नगर-पालिका के कर्मठ सदस्य के रूप में भी की थी।

आपका निधन 29 मार्च सन् 1968 को 78 वर्ष की आयु में देहरादून में हुआ था।

डॉ० अमरबहादुरसिंह 'अमरेश'

श्री अमरेशजी का जन्म 1 मार्च सन् 1929 को उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के ऊँचाहार विकास क्षेत्र के पूरे रूपसिंह, कंदरावाँ नामक ग्राम में हुआ था। आप साहित्य, राजनीति तथा समाज-सेवा के क्षेत्र में समान रूप से एक अग्रणी नागरिक के रूप में प्रतिष्ठित रहे। वे अपने छात्र-जीवन में जहाँ सन् 1944-45 में 'जिला स्टूडेंट कांग्रेस' के सेक्रेटरी रहे वहाँ क्रमशः 1972 में 'ग्राम सभा' के सभापति और सन् 1977 में 'रायबरेली जिला परिषद्' के सम्मानित

सदस्य रहने के साथ-साथ जिला सहकारी बैंक के डायरेक्टर भी रहे। राजनीति में गांधी, बिनोवा तथा नेहरू के अनन्य अनुयायी होते हुए भी वे समाज-सेवा के क्षेत्र में 'किसान आन्दोलन' के भी अग्रणी कार्यकर्त्ता रहे थे।

साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने सर्वप्रथम एक कवि के रूप में सन् 1945 में प्रवेश किया था और नगर तथा जनपद की कई साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध होने के साथ-साथ आप 'द्विवेदी स्मारक समिति' के भी सदस्य रहे थे। वे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने जहाँ उनके उपेक्षित ग्राम की ग्राम सभा का उद्धार किया वहाँ 'आचार्य द्विवेदी गाँव में' नामक उनकी एक ऐतिहासिक साहित्यिक जीवनी भी लिखी थी, जिसका हिन्दी-जगत् में अभूतपूर्व स्वागत हुआ था। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को जन-साधारण तक पहुँचाने वाला उनका कई भागों में प्रकाशित 'देवता मेरे देश का' नामक उपन्यास जहाँ हिन्दी के अनेक मनीषियों द्वारा सराहा गया था वहाँ वह उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुआ था। सन् 1921 में अवध के मुंशीगंज ग्राम में हुए 'गोली-कांड' की पृष्ठभूमि पर आधारित उनके 'एक और जलियानवाला' नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि पर ही उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सन् 1978 में दो हजार रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया था। इसका धारावाहिक प्रकाशन राज्य सरकार के 'उत्तर प्रदेश' पत्र में ही हुआ था।
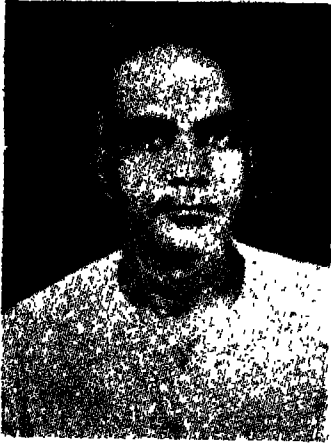
कविता, उपन्यास, कहानी, राजनीति तथा इतिहास-सम्बन्धी उनकी 50 से अधिक जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं उनमें से अधिकांश पर उत्तर प्रदेश सरकार के पुरस्कार भी प्राप्त हुए थे। कुशल कवि होने के साथ-साथ वे तलस्पर्शी समीक्षक भी थे। उनकी ऐसी प्रतिभा का परिचय महाकवि जायसी की 'मसलानामा' और 'कहरानामा' नामक कृतियों के सम्बन्ध में लिखे गए शोध-निबन्धों से मिलता है। बाल-साहित्य-रचना की दिशा में भी उनकी देन कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी। उनके अनेक बाल-उपन्यास तथा बाल-कविताओं के कई संकलन इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

उसके द्वारा सम्पादित जायसी के 'कहरानामा' तथा 'मसलानामा' नामक कृतियों का प्रकाशन जहाँ 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' द्वारा हुआ है वहाँ 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' ने भी महात्मा पहलवानदास-कृत 'उपखान विवेक' नामक कृति का प्रकाशन किया है। उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग की ओर से प्रकाशित होने वाले 'ग्राम्या' नामक साप्ताहिक पत्र में आपने 'आदर्श सरपंच श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी' नामक जो धारावाहिक लेखमाला लिखी थी उससे आपको पर्याप्त ख्याति मिली थी। अवध की लोक-संस्कृति के गम्भीर अध्येता होने के साथ-साथ आपने वहाँ के ऐतिहासिक पक्ष का भी गम्भीरता से अध्ययन किया था। उनकी 'राणा बेनी माधव' तथा 'राज कलश' नामक औपन्यासिक कृतियाँ इसकी साक्षी हैं।

यह दुर्भाग्य की ही बात है कि ऐसे समर्थ कलाकार का निधन केवल 50 वर्ष की आयु में 11 जून सन् 1979 को एक दुर्घटना के कारण हुआ था। वे एक बारात के सिलसिले में करहिया स्टेट गए हुए थे। वहाँ आँधी से बचने के लिए उन्होंने अपने अन्य साथियों के साथ एक प्राइमरी स्कूल में शरण ली, जहाँ बिजली का एक खम्भा अचानक अरराकर उनके ऊपर गिर पड़ा। फलस्वरूप जब उन्हें अस्पताल ले जाया जा रहा था तब मार्ग में ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। उनके निधन के उपरान्त स्वर्गीय श्री अमरेशजी की स्मृति में उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग के पत्र 'उत्तर प्रदेश' ने एक 'पुरस्कार' प्रति वर्ष देने का निर्णय किया है। यह पुरस्कार उन लेखकों को ही दिया जाया करेगा जो ग्रामीण पृष्ठभूमि पर अपनी रचनाएँ किया करेंगे। उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग के अधिकारियों का यह पावन कर्तव्य है कि हिन्दी के ऐसे कर्मठ साहित्यकार की स्मृति-रक्षा के लिए जो निश्चय किया गया था उसे वे शीघ्र ही कार्यान्वित करें।

श्री अमीचन्द्र विद्यालंकार

आपका जन्म सन् 1900 में कानपुर में हुआ था और आपकी शिक्षा गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में सम्पन्न हुई थी। गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त आपने प्रारम्भ में आर्य समाज के प्रचारक के रूप में कार्य किया था। सन् 1924 में आपने गोला गोकर्णनाथ (उत्तर प्रदेश) में पंडित शंकरलाल के साथ एक सफल शास्त्रार्थ भी किया था और इसी प्रसंग में आप सन् 1926 में फीजी द्वीप में चले गए थे। वहाँ पर आप लातुका के निकट नसोवा नामक स्थान में आर्यसमाज द्वारा स्थापित गुरुकुल में अध्यापन का कार्य करने लगे थे। उसके उपरान्त आपने फीजी की आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में एक कन्या पाठशाला की स्थापना की और सन् 1937 से से 1951 तक उसके मुख्याध्यापक एवं मुख्याधिष्ठाता रहे। आपने न्यूजीलैंड से एम० ए० करने के अतिरिक्त 'डिप्लोमा ऑफ एजुकेशन' भी किया था।
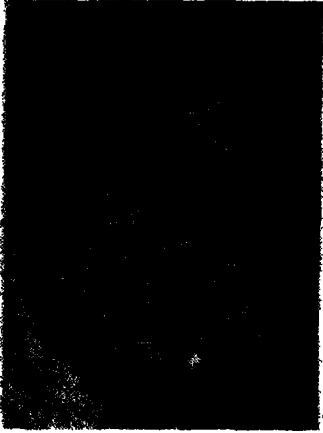
श्री अमीचन्द्रजी एक कुशल शिक्षा-शास्त्री और संगठक होने के साथ-साथ सुलेखक भी थे और उनके लेख आदि हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे। आपने फीजी द्वीप में हिन्दी के प्रचार के लिए 'हिन्दी रीडर' पाँच भाग, 'हिन्दी वातचीत' तथा 'हिन्दी व्याकरण' आदि कई पुस्तकें लिखी थीं। आप फीजी अध्यापक संघ के अध्यक्ष और वहाँ के सरकारी शिक्षा बोर्ड के सदस्य होने के साथ-साथ फीजी की धारा सभा के सदस्य भी रहे थे। महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के राज्याभिषेक के अवसर पर आपको फीजी सरकार द्वारा स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया था।

आपका निधन 14 मार्च सन् 1954 को एक हवाई जहाज दुर्घटना में हुआ था।

श्री अमीरदास

श्री अमीरदास का जन्म पंजाब की पटियाला नामक रियासत के समीपवर्ती किसी ग्राम में सन् 1775 के आस-पास हुआ था। आप उदासीन-सम्प्रदाय के ऐसे सन्त कवि थे, जिन्होंने अपनी प्रतिभा को केवल कविता तक ही सीमित न करके अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना में भी लगाया था। उनकी रचनाओं में 'फाग पचीसी', 'ग्रीष्म विलास', 'भागवत रत्नाकर', 'अमीर प्रकाश', 'वैद्य कल्पतरु', 'अश्व संहिता प्रकाश', 'सभा मण्डन', 'श्रीकृष्ण साहित्य-सिन्धु', 'बृज राज विलास', 'बृज चन्द्रोदय', तथा 'शेरसिंह प्रकाश' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'बृज चन्द्रोदय' उनकी छन्द-रचना की पुस्तक है तथा 'सभा मण्डन' और 'श्रीकृष्ण साहित्य सिन्धु' काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं। 'बृजराज विलास' में दोहों के रूप में श्रीकृष्ण और राधा के विलास का चित्रण किया गया है। यह एक सतसई-ग्रन्थ है। महाराजा रणजीतसिंह के परिवार से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस सम्बन्ध के कारण ही उन्होंने उनके सुपुत्र शेरसिंह की प्रशस्ति में 'शेरसिंह प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। आपकी शिक्षा-दीक्षा पटियाला निवासी बाबा रामदास के निरीक्षण में हुई थी और बाद में वे अमृतसर चले गए थे। आपका जन्म वैष्णव कुल में हुआ था। इसका प्रमाण यह दोहा है :

श्री वैष्णव-कुल में प्रगटि भयो उदासी सन्त।
जीतराम पितु-मात मम राजकुमारी अनन्त॥

आपका निधन सन् 1868 में हुआ था।

श्री अमृतनाथ—1

आपका जन्म बिहार के चम्पारन जिले के सुखीसेमरा नामक ग्राम में सन् 1801 में हुआ था। आपके परिवार वालों का सम्बन्ध बेतिया राज्य से था। एक बार आपके वंशजों ने उनका वंश-परिचय लिखकर बेतिया के तत्कालीन महाराजा को प्रसन्न किया था, इस कारण उन्हें पाँच बीघे जमीन पुरस्कार-स्वरूप दी गई थी। उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ आप संगीत में भी विशेष पारंगत थे। आपकी अनेक

रचनाएँ उस प्रदेश की ग्रामीण जनता में बहुत लोकप्रिय हैं। आपका निधन सन् 1886 में हुआ था।

श्री अमृतनाथ—2

श्री अमृतनाथ का जन्म राजस्थान की जयपुर रियासत के एक गाँव में सन् 1852 में चेतनराम नामक एक जाट के यहाँ हुआ था। बाल्यकाल से ही विरक्ति की भावना मन में जगने के कारण आपने विवाह नहीं किया था। सन् 1887 में माताजी का देहावसान हो जाने के कारण आप देशाटन को निकल गए और घूमते हुए 'रीणी' बीकानेर जा पहुँचे।

बीकानेर के इस स्थान पर नाथ सम्प्रदाय के गुरु श्री चम्पानाथ रहते थे। उनके सम्पर्क में आकर वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वहाँ उनका शिष्यत्व ही ग्रहण कर लिया और अन्त में फिर फतहपुर में जाकर बस गए। वहाँ के निवासियों ने आपके लिए एक आश्रम भी वहाँ बना दिया था।

आपका निधन सन् 1916 में हुआ था।

श्री अमृतलाल चक्रवर्ती

श्री चक्रवर्तीजी का जन्म बंगाल के नावदा नामक ग्राम में सन् 1863 में हुआ था। कुछ समय तक इलाहाबाद की रेलवे के लोको विभाग में नौकरी करने के उपरान्त आप वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'प्रयाग समाचार' नामक पत्र में कार्य करने लगे। चक्रवर्तीजी ने अपनी पारम्परिक परिपाटी के अनुसार बचपन में संस्कृत पढ़ी थी और किशोर वय में उनका सम्पर्क हिन्दी प्रदेश से हो जाने के कारण हिन्दी में भी उनकी गति अच्छी-खासी हो गई थी। वे जिन दिनों अपने मामा और मौसी के साथ गाजीपुर में रहे थे उन दिनों उन्होंने फारसी का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। इलाहाबाद के 'प्रयाग समाचार' के उपरान्त आपने कुछ दिनों तक कालाकाँकर राज्य की ओर से प्रकाशित होने वाले राजा रामपालसिंह के 'हिन्दोस्थान' नामक दैनिक पत्र के सम्पादन का दायित्व भी अपने ऊपर लिया था।

'हिन्दोस्थान' की नौकरी छोड़ने के बाद चक्रवर्तीजी कलकत्ता चले गए और वहाँ पर स्वतंत्र रूप से अध्ययन करके सन् 1890 में उन्होंने बी० ए० (आनर्स) की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। फिर जब कलकत्ता से 'हिन्दी बंगवासी' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तो उन्होंने उसमें कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ पर कार्य करते हुए ही उन्होंने सन् 1894 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० एल० की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। सन् 1900 तक 'हिन्दी बंगवासी' में कार्य करने के उपरान्त वे

बाबू बालमुकुन्द गुप्त के अनुरोध पर 'भारत मित्र' में चले गये। अनेक छोटी-मोटी कहानियाँ लिखने के अतिरिक्त उसमें 'शिवशम्भू का चिट्ठा' नामक स्तम्भ भी आपने ही प्रारम्भ किया था। उन्हीं दिनों उन्होंने 'सती सुखदेई' नामक एक मौलिक उपन्यास भी लिखा था जो 'भारत मित्र' कार्यालय से ही प्रकाशित हुआ है। 'हिन्दी बंगवासी' कार्यालय से उनकी 'शिवाजी की जीवनी' तथा 'सिक्ख युद्ध' नामक पुस्तकों के अतिरिक्त 'महाभारत', 'भगवद्गीता' तथा संस्कृत के कई ग्रन्थों के अनुवाद भी प्रकाशित हुए थे।

लगभग डेढ़-दो वर्ष तक 'भारत मित्र' में रहने के उपरान्त वे बम्बई के 'वेंकटेश्वर समाचार' में चले गए। उन्हीं के प्रयास से उसका दैनिक संस्करण भी प्रकाशित हुआ था। फिर उन्होंने पं० द्वारिकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी के सहयोग से प्रयाग आकर 'उपन्यास कुसुम' नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित किया, किन्तु एक ही अंक निकलकर वह बन्द हो गया; क्योंकि उसी समय वे अखिल भारतीय 'भारत धर्म महामंडल' के मैनेजर नियुक्त होकर मथुरा चले गए थे। वहाँ पर लगभग सवा दो वर्ष रहकर उन्होंने 'निगमागम

चन्द्रिका' नामक पत्र का सम्पादन किया था। जब मंडल का कार्यालय मथुरा से काशी चला गया तब वे फिर 'वेंकटेश्वर समाचार' में कार्य करने के लिए बम्बई चले गए। बंगाल में जब स्वदेशी का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तब सन् 1906 से 1909 तक उन्होंने अपनी जन्मभूमि बंगाल में आकर स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार किया। जब वे 'कलकत्ता समाचार' में कार्य करते थे तब 'भारत मित्र' के सम्पादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर से अनेक विषयों पर उनके मतभेद भी हुए थे, जिसका उन्होंने अपने पत्र में खुलकर विरोध किया था। उन पत्रों में कार्य करने के अतिरिक्त उन्होंने 'श्री सनातनधर्म' और 'फारवर्ड' आदि कई पत्रों में कार्य किया था, परन्तु सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण वे उनमें अधिक दिन नहीं 'टिक' सके।

श्री चक्रवर्तीजी की सम्पादन-शैली का निखार 'हिन्दी बंगवासी' के कारण हुआ था। उनके सम्पादन-काल में उसमें सभी प्रकार की सामग्री प्रकाशित होती थी। मूलत: बंगला-भाषा-भाषी होते हुए भी आपने हिन्दी-सेवा का जो व्रत लिया था, कदाचित् उसीके कारण आपको अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नवम्बर सन् 1925 में हुए सोलहवें वृन्दावन-अधिवेशन का सभापति भी बनाया गया था। सन् 1885 से लेकर सन् 1925 तक निरन्तर चालीस वर्ष आपने हिन्दी की सेवा की थी। कुछ दिन तक आप कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'उपन्यास तरंग' और 'श्रीकृष्ण सन्देश' के सम्पादकीय विभाग में भी रहे थे। आपके द्वारा लिखित 'चन्दा' नामक उपन्यास अनेक वर्ष तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में पाठयपुस्तक रूप में रहा था। आपका निधन सन् 1936 में कलकत्ता में हुआ था।

श्री अमृतलाल दुबे

श्री दुबेजी का जन्म जनवरी सन् 1908 में जबलपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे बाल साहित्य के अग्रणी लेखकों में थे। 'गज्जू' और 'गप्पू' नामक उनके दो पात्र ऐसे थे जिनको आधार बनाकर उन्होंने अनेक बालोपयोगी कहानियाँ लिखी थीं। जबलपुर के नगर निगम की ओर से प्रकाशित होने वाला बाल-मासिक पत्र 'चन्दा' उनके निरीक्षण में प्रकाशित होता था। सुकवि श्री भवानीप्रसाद तिवारी की स्मृति में संचालित होने वाले जबलपुर के 'शिशु मन्दिर' के भी वे प्रेरणा-स्रोत थे।

स्वाध्याय के बल पर उन्होंने ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त की और प्राइमरी स्कूल-शिक्षक से अपने कर्ममय जीवन को प्रारम्भ करके 'सुपरवाइजर' और फिर 'शिक्षा-अधीक्षक' तक वे हुए और इसी पद पर कार्य करते हुए अवकाश ग्रहण किया। बड़े-से-बड़े अधिकारी के सामने वे झुके नहीं।

ऐसे कर्मठ, लगनशील और गंभीर प्रकृति के व्यक्ति का निधन 21 मई, 1980 को जबलपुर में हुआ था।

सूफी अम्बाप्रसाद

सूफीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर के 'पीर-गैब' नामक मोहल्ले में गदर के एक वर्ष उपरान्त सन् 1858 में हुआ था। आप प्रख्यात क्रान्तिकारी होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक एवं पत्रकार भी थे। आपने हिन्दी में 'तन्त्र प्रभाकर' नामक मासिक पत्र का सम्पादन सन् 1908 में प्रारम्भ किया था और प्रख्यात हिन्दी-लेखक श्री बलदेव-प्रसाद मिश्र के सहयोग से 'तन्त्र प्रभाकर प्रेस' की स्थापना भी की थी।

दर्शन और योग आदि विषयों के निष्णात पंडित होने के साथ-साथ आप उर्दू, फारसी, हिन्दी तथा अँग्रेजी के अद्भुत विद्वान् थे। आपने उर्दू में भी 'पैसा' (1906), 'जामए अलूम' (1890), 'पेशवा' तथा 'आबे हयात' आदि पत्र प्रकाशित किए थे। इनमें से अन्तिम ईरान से प्रकाशित किया था, जो साप्ताहिक था। आपने 'हरामपुर' (1890) नामक एक उपन्यास भी लिखा था।

श्री सूफी का स्थान भारत के क्रान्तिकारी-आन्दोलन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आपको अपनी क्रान्तिकारी विचार-धारा के कारण अँग्रेजों ने सन् 1915 में फाँसी लगा दी

थी। आज भी भारत के इस सर्वप्रथम क्रान्तिकारी की स्मृति में ईरान में उनकी शहादत के दिन पर 'उर्स' होता है। यह खेद का ही विषय है कि स्वतन्त्र भारत के शासक एवं नागरिक अब अपने इस सपूत को सर्वथा भूल गए हैं।

श्री अम्बिकादत्त त्रिपाठी 'दत्त'

त्रिपाठीजी का जन्म 2 अक्तूबर सन् 1894 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के खेमीपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपने 9 वर्ष की आयु में सन् 1903 से ग्राम की प्राथमिक पाठशाला से विद्याध्ययन प्रारम्भ किया और सन् 1915 में नार्मल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1917 में प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में वे उर्दू नार्मल की परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। सन् 1912 में जिला मुलतानपुर के मीरपुर-प्रतापपुर नामक ग्राम के प्राइमरी स्कूल मे वे मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ही अध्यापक हो गए थे। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी कार्य-कुशलता से इतनी उन्नति की कि वे बाद में मुख्याध्यापक हो गए और अवकाश ग्रहण करने के समय (1952) तक उसी पद पर कार्य करते रहे। सन् 1949 से अपनी मृत्यु के दिन तक (23 जनवरी, 1971) वे इस कार्य के अतिरिक्त सुइथा कलाँ (जौनपुर) स्थित डाकघर का कार्य भी देखते रहे थे।
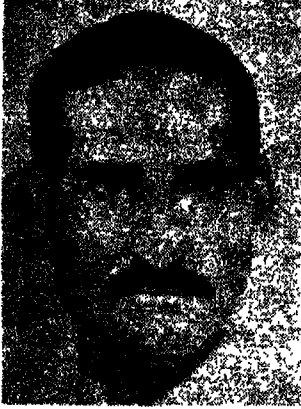
आप एक कुशल अध्यापक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि और लेखक भी थे। राष्ट्रीय विचार-धारा को उन्होंने अपने जीवन में इस प्रकार ढाला था कि उनकी प्रायः सभी रचनाएँ वैसी ही भावना से ओत-प्रोत हैं। आपने अपनी प्रायः सभी कृतियों का प्रकाशन 'सुइथा कलाँ' में 'साहित्य सागर कार्यालय' नामक एक प्रकाशन-संस्था की स्थापना करके उसके माध्यम से किया था। उनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची काल-क्रम से इस प्रकार है—बाल जीवन सुधार (1920), भंग में रंग (1921), भीष्म प्रतिज्ञा (1921), चुगुल चालीसा (1921), एक न एक लगा रहता है (1922), अहिंसा संग्राम (1922), चर्खा (1922), कृष्ण-कुमारी (1922), रानी वीरमती (1924), सत्संग महिमा (1931), सीय स्वयंवर नाटक (1931), स्वास्थ्य रक्षा नाटक (1932), बाल गीतावली (1932), वीर बत्तीसी (1932), आदर्श वीरांगना नाटक (1933) तथा विधुर विलाप बावनी (1934)।

इन कृतियों के अतिरिक्त आपने संस्कृत ग्रन्थ 'सुभाषितरत्नभाण्डागारम्' तथा 'श्रीमद्भगवद्गीता' के हिन्दी पद्यानुवाद भी किये थे। 'सुभाषितरत्न भाण्डागारम्' का अनुवाद-कार्य उन्होंने 17 अगस्त, 1924 में प्रारम्भ किया था, जो 8 मार्च, 1936 को समाप्त हुआ था और इसका नाम उन्होंने 'नीति निधि' रखा था।

श्री अम्बिकादत्त व्यास

श्री व्यासजी का जन्म सन् 1858 में जयपुर में हुआ था। इनके पितामह राजारामजी राजस्थान मे आकर काशी में बस गए थे। उनके दुर्गादत्त और देवदत्त नाम के दो पुत्र थे। दुर्गादत्तजी के सुपुत्र ही अम्बिकादत्त व्यास थे। दुर्गादत्तजी भी अच्छे कवि थे। 'भारतेन्दु-मंडल' के हिन्दी-लेखकों में व्यासजी का नाम अग्रगण्य है। कवित्त तथा सवैया शैली की रचना करने में आप बहुत सिद्धहस्त थे। 10-12 वर्ष की अवस्था में ही आप अच्छी काव्य-रचना करने लगे थे। बहुत से लोग तो आपकी रचनाओं को सुनकर यह सन्देह करने लगते थे कि यह उनके पिताजी की बनाई हुई हैं। अपनी कविताओं में ये 'निज कवि' उपनाम लिखा करते थे।

सर्वप्रथम आपने संस्कृत की 'अमर कोश' और 'शब्द रूपावली' आदि पुस्तकों से अपना अध्ययन प्रारम्भ किया था। क्योंकि इनके परिवार की प्रायः सभी महिलाएँ पढ़ी-

लिखी थीं इसलिए इनकी शिक्षा भी बहुत ही उत्तम रीति से हुई थी। 8-9 वर्ष की अवस्था तक आते-आते आपको शतरंज खेलने और सितार बजाने का चस्का भी लग गया था। क्योंकि आपके पिताजी भी शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे इसलिए आपने भी उनके साथ खेल-खेलकर उसमें दक्षता प्राप्त कर ली थी। 10 वर्ष की अवस्था में आपका जनेऊ हो गया और आप गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्यदेवजी से विधिवत् हिन्दी-काव्य की शिक्षा ग्रहण करने लगे।

13 वर्ष की आयु से आपने संस्कृत के व्याकरण, साहित्य तथा वेदान्त आदि गम्भीर विषयों के अध्ययन की ओर ध्यान दिया और श्रीमद्भागवत की कथा कहने की परिपाटी भी सीखी। इसके अनन्तर एक ही वर्ष में आपने संस्कृत साहित्य की मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और सन् 1880 में आप विधिवत् 'साहित्याचार्य' हो गए।

व्यासजी ने संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थों का गहनतम अध्ययन करने के साथ-साथ आयुर्वेद के कुछ ग्रन्थों का भी पारायण किया था। इन्हीं दिनों आपने बंगला, मराठी और गुजराती आदि भाषाओं का अभ्यास भी अपने निरन्तर स्वाध्याय बल पर कर लिया था। जब आप गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्यदेव से काव्य की शिक्षा ग्रहण करने में संलग्न थे तब उनके यहाँ कवियों का बराबर समागम रहा करता था। ऐसे कवियों में मणिदेव के पुत्र हनुमान कवि, द्विज कवि मन्नालाल तथा गोस्वामी दम्पतिकिशोर आदि के नाम विशेष परिगणनीय हैं। इस प्रकार के निरन्तर सत्संग के कारण बहुत छोटी अवस्था में ही व्यासजी ने हिन्दी-काव्य-रचना में आशातीत सफलता प्राप्त कर ली थी।

अभी आप साहित्य-क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय देने की ओर अग्रसर ही हुए थे कि आपका परिचय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से हो गया और आपकी रचनाएँ 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित होने लगीं। इसी शैशवावस्था में आपने अपने काव्य-रचना-कौशल के लिए काशी-नरेश से पुरस्कार भी प्राप्त किया था। जिस समय व्यासजी की आयु केवल 12 वर्ष की थी तब काशी में आन्ध्र प्रदेश के एक 'अष्टावधानी' कवि आए थे। उन्होंने जब अपने बुद्धि-कौशल से वहाँ की पंडित मंडली को आश्चर्यचकित कर दिया तब व्यासजी ने भी तुरन्त 'शतावधानी काव्य' रचकर सबको प्रभावित कर दिया, जिसके कारण आपको 'सुकवि' की उपाधि प्रदान की गई। व्यासजी कवित्त-सवैया की तत्कालीन शैली में काव्य-रचना करने वाले ब्रजभाषा के अन्यतम कवि थे। 'काशी कवि समाज' के सक्रिय सदस्य के रूप में आपने समस्या-पूर्ति करने की दिशा में अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली थी। इनके कवित्व का सबसे उत्कृष्टतम स्वरूप इनके 'बिहारी बिहार' नामक ग्रन्थ में देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ में 'बिहारी सतसई' के दोहों के आधार पर रचित इनकी 'कुण्डलियाँ' संकलित हैं। 'समस्या पूर्ति प्रथम भाग' मे इनकी समस्या-पूर्तियाँ प्रकाशित हुई हैं। भारतेन्दुजी के विशेष सम्पर्क के कारण आप नाटक-लेखन की ओर भी प्रवृत्त हुए थे। आपका 'गोसंकट' नामक नाटक अकबर द्वारा गो-हत्या-निषेध की आज्ञा को लेकर लिखा गया है। उन दिनों इस विषय पर बहुत से नाटक लिखे गए थे, परन्तु यही नाटक सफलतम सिद्ध हुआ था। आपकी 'चतुरंग-चातुरी', 'महाताश कौतुक पचासा' तथा 'ताश कौतुक पचीसी' आदि कई पुस्तकें उन दिनो बहुत लोकप्रिय हुई थीं।

व्यासजी जहाँ हिन्दी के उत्कृष्टतम कवि और लेखक थे वहाँ संस्कृत-साहित्य की अभिवृद्धि में भी उनका अनन्य योगदान था। व्याकरण, धर्म और अध्यात्म आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित उनकी रचनाएँ साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनकी ऐसी रचनाओं मे 'अवतार मीमांसा', 'धर्म की धूम' 'मूर्ति पूजा', 'विभक्ति विलास', 'भाषा ऋतु पाठ', 'गद्य काव्य मीमांसा', 'छन्द-प्रबन्ध', 'सांख्य तरंगिणी' और 'तर्क संग्रह' आदि उल्लेखनीय हैं। संस्कृत में लिखा हुआ आपका 'शिवराज विजय' नामक उपन्यास अपनी विशिष्ट शैली के लिए विख्यात है। आपकी मुक्तव्य काव्य रचनाएँ 'सुकवि सतसई', 'रसीली कजरी', 'आनन्द मंजरी' तथा 'पावस पचासा' आदि पुस्तकों में संकलित हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी व्यासजी की देन अद्भुत और अभिनन्दनीय

है। आपने 'वैष्णव पत्रिका' और 'पीयूष प्रवाह' आदि पत्रों का अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। आपने 'सारन सरोज' नामक एक मासिक पत्रिका का भी छपरा से सम्पादन-प्रकाशन किया था। यह पत्र कई वर्ष तक नियमित रूप से प्रकाशित हुआ था। इसकी प्राचीन दुर्लभ प्रतियाँ आज भी बिहार के पुस्तकालयों में देखने को मिल जाती हैं। शिक्षक के रूप में भी आपने जो लोकप्रियता प्राप्त की थी, उससे आपके शास्त्रीय ज्ञान का परिचय मिलता है। मधुबनी, मुजफ्फरपुर, भागलपुर तथा पटना आदि स्थानों मे आप आप कई वर्ष तक शिक्षक रहे थे। जिन दिनों आप पटना में थे उन्हीं दिनों आप अस्वस्थ हो गए और काशी में 19 नवम्बर सन् 1900 को आपका देहावसान हो गया। आपकी विद्वत्ता और काव्य-चातुरी से प्रभावित होकर काँकरौली नरेश ने आपको 'भारत-रत्न' तथा अयोध्या-नरेश ने स्वर्ण पदक सहित 'शतावधानी' की उपाधियाँ प्रदान की थीं।

श्री अम्बिकाप्रसाद गुप्त

श्री गुप्त का जन्म सन् 1888 में काशी में हुआ था। आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री जयशंकर प्रसाद के भानजे थे। प्रसाद जी से सम्पर्क के कारण आपकी रुचि भी साहित्य की ओर हो गई थी और आपने कई वर्ष तक काशी से 'इन्दु' नामक साहित्यिक मासिक का सम्पादन-प्रकाशन किया था।

आपकी साहित्यिक प्रतिभा का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण यह है कि आपने 21 वर्ष की आयु में ही 'शिव मोहिनी' नामक पुस्तक की रचना की थी। आप प्रायः प्रच्छन्न नामों से ही लिखा करते थे। ऐसे नामों में 'रुद्रगुप्त', 'कवि किंकर', 'हिन्दी-प्रेमी' और 'अर्जुन' आदि उल्लेखनीय है। आपने "सच्चा मित्र या जिन्दे की लाश" नामक एक उपन्यास भी लिखा था, जो आर० एल० बर्मन, कलकत्ता की ओर से सन् 1905 में प्रकाशित हुआ था।

आपने जहाँ 'इन्दु' के सम्पादन द्वारा साहित्य की सेवा की थी वहाँ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के भतीजे ला० ब्रजचन्द के सहयोग से 'भारतेन्दु' नामक पत्र भी प्रकाशित किया था। यही 'भारतेन्दु' बाद में 'इन्दु' हो गया था और 7 वर्ष तक अबाध रूप से प्रकाशित हुआ था।

जब कालाकाँकर से प्रकाशित होने वाला 'सम्राट् दैनिक' बन्द हो गया तो आपको उससे बहुत पीड़ा हुई। फलतः आपने दैनिक पत्र के प्रकाशन की आवश्यकता को लेकर 'हिन्दी में दैनिक पत्र' शीर्षक से एक लेख लिखा और उसे सारे देश में वितरित किया। उस लेख की महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि उसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपनी 'सम्मेलन लेख माला' नामक पुस्तक में भी प्रकाशित किया था। 'इन्दु' के अतिरिक्त आपने 'हिन्दी गल्पमाला' और 'कान्यकुब्ज वैश्य' नामक पत्रों का सम्पादन भी किया था तथा आप 'हिन्दी ग्रन्थ भण्डार' नामक संस्था के माध्यम से प्रकाशन-कार्य भी करते थे। आपका सम्बन्ध 'ज्ञान मंडल' और 'आज' से भी बहुत दिन तक रहा था।

आपका निधन सन् 1937 में हुआ था।

श्री अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी—1

श्री त्रिपाठीजी का जन्म कानपुर जिले के कुदौली नामक ग्राम में सन् 1857 में हुआ था। एक कुशल अध्यापक तथा हिन्दी-प्रेमी के रूप में आप विशेष रूप से विख्यात थे। 'ब्राह्मण' तथा 'सरस्वती' आदि पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार में आपने बढ़-चढ़कर भाग लिया था।

आप कुछ दिन तक कानपुर जिले के मिडिल स्कूलों में

प्रधानाध्यापक और 'डिप्टी इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स' भी रहे थे। आपने 'पत्र प्रबन्ध मंजरी' नामक पुस्तक के अतिरिक्त और भी कई पुस्तकें लिखी थीं। आपने 'स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र' भी गद्य-पद्य में लिखकर प्रकाशित करवाया था। आपके सुपुत्र श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी भी हिन्दी के सुलेखक और पत्रकार हैं।

आपका निधन सन् 1917 में हुआ था।

श्री अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी—2

श्री त्रिपाठीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के फतहपुर जिले के अकोढ़ी नामक ग्राम में सन् 1882 में हुआ था। आप मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर की ओर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'वीणा' के आदिसम्पादक थे और उसका पहला अंक सितम्बर सन् 1927 में प्रकाशित हुआ था। उस अंक पर 'वीणा' के उद्देश्यों की जो घोषणा प्रकाशित हुई थी वह इस प्रकार है :

उपयोगी सुन्दर सरस 'वीणा' की मृदु तान।
हृदयस्थल में कर रही साहित्यामृत दान॥

आपने अपने पत्रकार-जीवन का प्रारम्भ कलकत्ता से श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'स्वतन्त्र' नामक साप्ताहिक पत्र से किया था और बाद में आप कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक भविष्य' के सम्पादक होकर वहाँ चले आए थे। आपने कानपुर में 'हिन्दू प्रेस' की स्थापना करने के अतिरिक्त वहाँ पर 'साहित्य मंडल' नामक संस्था की संस्थापना में भी अनन्य योगदान दिया था। आप इसके उपसभापति भी रहे थे।

अपने अनुज श्री शिवसेवक तिवारी के कारण आप महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी की अध्यक्षता में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अष्टम अधिवेशन के अवसर पर सन् 1917 में इन्दौर पहुँचे थे और बाद में हिन्दी के प्रख्यात लेखक श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी के अनुरोध पर आप उनके साथ 'चित्रमय जगत्' में कार्य करने के लिए पूना चले गए थे। पूना जाकर आपने मराठी तथा गुजराती भाषाओं का ज्ञान भी अर्जित किया था। अँग्रेजी, पर्शियन, उर्दू तथा बंगला भाषाओं का सर्वांगीण ज्ञान आपने अपने कलकत्ता के पत्रकारिता के जीवन में प्राप्त कर लिया था।

'चित्रमय जगत्' के बाद 'मध्यभारत हिन्दी-साहित्य समिति इन्दौर' के पदाधिकारियों तथा अपने अनुज के अनुरोध को वे टाल न सके और 'वीणा' के सम्पादक होकर वहाँ आ गए। आपके सम्पादन में 'वीणा' के केवल 9-10 अंक ही प्रकाशित हो पाए थे कि 26 जुलाई सन् 1929 को आपका आकस्मिक देहावसान हो गया। आपने ज्येष्ठ-आषाढ़ संवत् 1986 के अंक का सम्पादकीय लेख मृत्यु से एक दिन पहले ही लिखा था। आपके बाद श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ने 'वीणा' का सम्पादन-भार ग्रहण किया था।

श्री अम्बिकाप्रसाद भट्ट 'अम्बिकेश'

श्री अम्बिकेशजी का जन्म रीवां (मध्य प्रदेश) में सन् 1904 में हुआ था। वे वीररस प्रधान रचना करने में अत्यन्त दक्ष थे। उनकी प्रतिभा का परिचय उनकी 'छत्रसाल की करवाल' नामक रचना से भली भाँति मिल जाता है। उनको यह प्रतिभा विरासत में ही मिली थी। उनके पिता श्री राधिकाप्रसाद भट्ट 'राधिकेश' भी रीवा राज्य के दरबारी कवि थे।

उनके काव्य में राष्ट्रीय गौरव और देश-प्रेम के स्वर स्थान-स्थान पर मुखरित होते दृष्टिगत होते हैं। हिन्दी के शीर्षस्थ समीक्षक और ब्रजभाषा-काव्य के अद्वितीय पारखी स्व० डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने उनकी प्रतिभा की समीक्षा करते हुए यह

ठीक ही लिखा है—"अम्बिकेशजी की प्रतिभा साधारण नहीं है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों पर उनका समान अधिकार है। उनकी प्रतिभा प्राय: सभी प्रकार की विचार-धाराओं में समान सफलता के साथ प्रस्फुटित होती दिखती है। यदि एक ओर दरबारी ठाट-बाट के साथ वह चलती है तो दूसरी ओर हमारे आधुनिक जीवन के चित्रों का चित्रण भी करती है। इसी प्रकार यदि एक ओर वह हमारे मानस में रस का संचार करती है तो दूसरी ओर कला-कौशल से मन में मनोविनोद की स्फूर्ति लाती है। आपका उक्ति-वैचित्र्य भी कहीं-कहीं सुन्दर और सराहनीय बन पड़ा है। वाक्य-विन्यास व्यंजना-वलित तथा कला-कौशल-कलित होता हुआ ही ललित है।"

छत्रसाल की तलवार का वर्णन उन्होंने जिस शैली में किया है वह उनकी काव्य-पटुता ज्वलन्त साक्ष्य है। वे लिखते हैं :

गढ़त लोहार के हिलत गढ़ कोट केते,
चढ़त सुचाप वीर-वृन्द, रजधानी में।
धौंकते जबै हैं धौंकनी के वायु धौंकक है,
होस उड़ि जात शाह सुख रोष दानी में।।
शान के चढ़ाए मिटि जात शान शेरन की,
खर मर जात परि सैन्य मुगुलानी में।
पानी के चढ़त छत्रसाल करवाल तेरे,
सत्रुन को पानी जात पुत्रन के पानी में।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अम्बिकाजी ने अपनी काव्य-चातुरी से सभी का मन मोह लिया था। रींवा-नरेश महाराजा मार्तण्डसिंह जू देव ने उन्हें 'कवि मार्तण्ड' की उपाधि मे विभूषित किया था।

आपका निधन 58 वर्ष की आयु में सन् 1962 में हुआ था।

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयीजी का जन्म 30 दिसम्बर सन् 1880 को कानपुर में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही उर्दू-फारसी में हुई थी। आपके अभिभावकों ने इसके लिए एक मौलवी साहब को रखा हुआ था। 14 अक्तूबर सन् 1889 को वाजपेयीजी के चचेरे भाई उमावर ने घर से थोड़ी ही दूर पर एक 'ब्राह्मण स्कूल' स्थापित किया था। कुछ दिन तक उसी स्कूल में अध्ययन करने के उपरान्त आप आगे की पढ़ाई के लिए बनारस चले गए और वहाँ के हरिश्चन्द्र स्कूल में दाखिल हो गए। यह स्कूल उन दिनों ठठेरी बाजार में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के निवास के पास था। उस स्कूल में वे अधिक दिन न टिक सके और कलकत्ता चले गए। कलकत्ता में भी उनका अध्ययन जारी न रह सका और अपने अग्रज तथा माता के देहावसान के कारण वे फिर वापिस कानपुर आकर वहाँ के ज़िला स्कूल में भर्ती हो गए और वहीं से सन् 1900 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की पढ़ाई जारी रखने का उनका मन इसलिए नहीं हुआ कि परिवार का सारा दायित्व उन्हीं पर आ पड़ा था और वे अपने असहाय और वृद्ध पिता की सहायता करने के विचार से कलकत्ता चले गए। कलकत्ता जाकर पहले तो उन्होंने वहाँ के सेक्रेटेरिएट में 'लिपिक' के स्थान के लिए परीक्षा दी, किन्तु असफल रहे। विवश होकर इलाहाबाद बैंक की नौकरी करनी पड़ी। यहाँ भी उनका मन नहीं लगा और तीन वर्ष के बाद आपने वहाँ से इस्तीफा दे दिया। इलाहाबाद बैंक में उन्होंने 1 अप्रैल सन् 1902 से 31 मार्च सन् 1905 तक कार्य किया था।
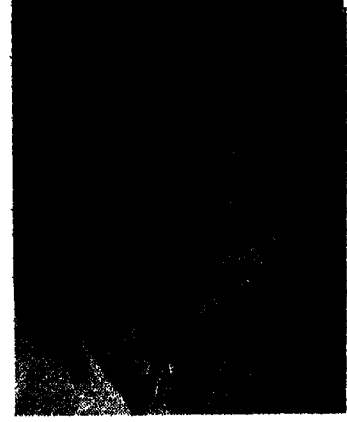
वाजपेयीजी अपने जीवन को एक पत्रकार के रूप में प्रारम्भ करना चाहते थे। सौभाग्यवश 'हिन्दी बंगवासी' नामक पत्र के मैनेजर श्री शिवबिहारीलाल के परामर्श से वे उसके सम्पादकीय विभाग में चले गए। यहाँ यह ध्यातव्य है कि श्री शिवबिहारीलाल वाजपेयीजी के भतीजे थे। यद्यपि 'हिन्दी बंगवासी' में वाजपेयीजी का वेतन बैंक से पाँच रुपया

कम था किन्तु अपनी रुचि का काम होने के कारण उन्होंने इसमें ही सन्तोष कर लिया। राजनैतिक आन्दोलन के कारण उनका मन वहाँ भी नहीं लगा और वे 'हिन्दी बंगवासी' से अलग हो गए। सन् 1907 से सन् 1910 तक उन्होंने कलकत्ता में हिन्दी पढ़ाने और यत्र-तत्र सम्पादन आदि करने का फुटकर कार्य किया। वे कुछ दिन तक बंगाल के नेशनल कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक भी रहे और स्वतंत्र रूप से उन्होंने अपना 'नृसिंह' नामक मासिक पत्र भी निकाला, जो अर्थाभाव के कारण एक साल बाद बन्द करना पड़ा।

सन् 1911 में उनको 'भारत मित्र' के संचालकों ने अपने यहाँ बुला लिया और वे उसके प्रधान सम्पादक के रूप में बड़े उत्साह से कार्य करने लगे। बहुत दिनों से उनके मन में हिन्दी का अच्छा दैनिक निकालने की बात थी। इसे स्वर्ण अवसर समझकर उन्होंने दिल्ली दरबार के अवसर पर इसका दैनिक संस्करण भी प्रकाशित कर दिया। निरन्तर परिश्रम करने के कारण इनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। अपनी सहायता के लिए उन्होंने सर्वश्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, यशोदानन्दन अखौरी और बद्रीनाथ वर्मा आदि साहित्यकारों को भी बुला लिया था। इस बीच अचानक महायुद्ध छिड़ गया और पराड़करजी क्रान्तिकारी होने के सन्देह में बन्दी बना लिए गए। उधर 'भारत मित्र' के मालिकों से भी व्यवस्था-सम्बन्धी किसी बात पर आपकी खटपट हो गई। फलस्वरूप सन् 1919 में आप 'भारत मित्र' छोड़कर जुलाई सन् 1919 मे चिकित्सा के लिए बनारस चले गए।

स्वस्थ होने पर कलकत्ता लौटकर उन्होंने सन् 1920 की श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर 'स्वतंत्र' नामक एक साप्ताहिक पत्र अपने मित्रों की सहायता से स्वयं ही निकाला, जो लगभग दस वर्ष तक बड़ी ही धूमधाम से प्रकाशित हुआ। सन् 1930 में जब सरकार ने उनके किसी लेख पर 'स्वतंत्र' से पाँच हजार रुपए की जमानत माँगी तो वाजपेयीजी ने जमानत न देकर पत्र को ही बन्द कर दिया। उनकी सम्पादन-सम्बन्धी नीति का परिचय इसी बात से मिल जाता है कि उन्होंने अपने पत्र के विषय में स्पष्टत: यह लिखा था—" 'स्वतंत्र' न बापू का अन्ध भक्त था और न उनका विरोधी। वह उनके जन-आन्दोलनों का बराबर समर्थन ही करता था और इस समर्थन के कारण उसको अकाल ही काल - कवलित होना पड़ा। यह उसकी स्वतंत्र नीति का ही फल था कि उसकी मृत्यु पर किसी ने आँसू की एक बूँद तक न गिराई।" वाजपेयीजी ने उक्त पत्रों के अतिरिक्त 'हित वार्ता' और 'सनातन धर्म' में भी कई वर्ष तक कार्य किया था।

'स्वतंत्र' को बन्द करने के उपरान्त वाजपेयीजी ने अपने अध्ययन को जारी रखा और विभिन्न देशों की शासन-पद्धतियों तथा उनके स्वाधीनता-आन्दोलनों का परिशीलन करने के साथ-साथ राजनीति तथा अर्थशास्त्र के अनेक ग्रन्थ भी पढ़े। हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्कर्ष के लिए एक अच्छा व्याकरण लिखने का विचार भी बहुत दिनों से उनके मन में था। फलस्वरूप अनेक विदेशी और देशी लेखकों के व्याकरणों का पर्यालोचन करके उन्होंने सन् 1919 में 'हिन्दी कौमुदी' नामक एक व्याकरण-ग्रन्थ लिखा। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'हिन्दी पर फारसी का प्रभाव', 'अभिनव हिन्दी व्याकरण', 'हिन्दुओं की राज-कल्पना', 'शिक्षा', 'हिन्दुस्तानी मुहावरे', 'भारतीय शासन-पद्धति' तथा 'चीन और भारत' नामक कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। ये सभी ग्रन्थ हिन्दी-जगत् में पर्याप्त लोकप्रिय हुए और वाजपेयीजी को इनके कारण अच्छी ख्याति मिली। उनकी 'समाचार पत्रों का इतिहास' तथा 'समाचार पत्र-कला' आदि पुस्तकें भी हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। वाजपेयीजी को अपनी इन साहित्य-सेवाओं के उपलक्ष में कलकत्ता के साहित्य-प्रेमियों ने सन् 1945 में ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रुपए की थैली भी भेंट की थी। आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के काशी-अधिवेशन के सन् 1939 में अध्यक्ष भी मनोनीत हुए थे। थैली स्वीकार करते हुए वाजपेयीजी ने यह घोषणा की थी—"इसका उपयोग निजी कामों में नहीं किया जायगा।" हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपकी साहित्य-सेवाओं के लिए 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से भी विभूषित किया था। सन् 1952 में आप उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य भी मनोनीत हुए थे।

पत्रकारिता में अनेक अभिनन्दनीय कार्य करने के अतिरिक्त आपने स्वाधीनता आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया था और सन् 1916 में 'तिलक होमरूल लीग' की शाखा भी उन्होंने कलकत्ता में स्थापित करके जन-आन्दोलन को आगे बढ़ाया था। सन् 1918 में उन्होंने लोकमान्य तिलक

को लन्दन में आन्दोलन चलाने के लिए दस हजार रुपए भेजे थे। सन् 1917-18 में श्री बिपिनचन्द्र पाल के सहयोग से उन्होंने बंगाल के अनेक स्थानों में स्वराज्य-आन्दोलन भी चलाया था और सन् 1917 में कलकत्ता कांग्रेस की स्वागत-समिति के उपाध्यक्ष भी चुने गए थे। वे 'तिलक स्वराज्य संघ' के उपाध्यक्ष भी अनेक वर्ष तक रहे थे। सन् 1921 में असहयोग-आन्दोलन के सिलसिले में उन्होंने कारावास भी भोगा था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे लखनऊ में आकर रहने लगे थे और वहीं पर 21 मार्च सन् 1968 को उनका निधन हुआ था।

श्री अयोध्याप्रसाद खत्री

श्री खत्रीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के सिकन्दरपुर नामक ग्राम में सन् 1857 में हुआ था। उनका शैशव सिकन्दरपुर में ही बीता। जब वे कुछ बड़े हुए तब उनके पिता श्री जगजीवनलाल खत्री ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रारम्भ हुए 'स्वातन्त्र्य-आन्दोलन' को दबाने के निमित्त किये जाने वाले नृशंस अत्याचारों से तंग आकर परिवार सहित मुजफ्फरपुर (बिहार) में जा बसे। वहाँ पर उन्होंने पुस्तकों की एक दुकान खोलकर अपनी आजीविका चलानी प्रारम्भ की। यद्यपि उनकी शिक्षा अधिक नहीं हुई थी परन्तु फिर भी हिन्दी, संस्कृत, अरबी और उर्दू का उन्हें अच्छा ज्ञान था।

खत्रीजी की शिक्षा-दीक्षा भी पुराने चलन के अनुसार उर्दू-फारसी में ही हुई थी। कुछ ही दिनों में खत्रीजी ने उर्दू-फारसी की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। थोड़े दिन बाद आप मुजफ्फरपुर के एक स्कूल में भरती किये गए। वे इतने कुशाग्र-बुद्धि थे कि अपने पिता द्वारा सुनाए गए सूर, मीरा और तुलसी के पद आसानी से याद कर लेते थे। 15-16 वर्ष की आयु में ही आप सामाजिक समस्याओं पर हिन्दी में निबन्ध लिखने लगे थे और एक हस्तलिखित पत्रिका भी निकालनी प्रारम्भ कर दी थी। वे वक्ता भी अच्छे थे और स्कूल-जीवन में सभी प्रकार के विषयों पर खूब खुलकर बोलने की क्षमता रखते थे। अपने स्वाध्याय के बल पर ही आपने हिन्दी के अतिरिक्त अँग्रेजी, फारसी और संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

खड़ी बोली के प्रचार के लिए श्री खत्रीजी ने इतना धन खर्च किया था कि उससे उनकी हिन्दी-निष्ठा तथा लगन का परिचय मिलता है। उन्होंने अपनी 'खड़ी बोली का पद्य' नामक पुस्तक का प्रकाशन स्वयं अपने ही रुपयों से किया था और उसे बिना मूल्य सारे देश में वितरित किया था। 'चम्पारन चन्द्रिका' नामक पत्रिका में उन्होंने यह सूचना प्रकाशित कराई थी कि जो व्यक्ति खड़ी बोली में राम-चरित को पद्यबद्ध करके भेजेगा उसे प्रति पद्य दस रुपए दिये जायँगे। इसी प्रकार 'रामचरित मानस' के खड़ी बोली में अनुवाद के लिए भी उन्होंने प्रति दोहा और प्रति चौपाई के लिए एक रुपए का पुरस्कार देने की घोषणा की थी। उन दिनों ईसाई मिशनरियों, स्वामी दयानन्द तथा पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भी अपने-अपने सिद्धान्तो के प्रचार के लिए खड़ी बोली का ही सहारा लिया था। स्वामी दयानन्द ने जहाँ 'सत्यार्थ प्रकाश' द्वारा अपने विचारों का प्रचार किया था वहाँ श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 'सत्यामृत प्रवाह' नामक एक सिद्धान्त-ग्रन्थ लिखा था। खत्रीजी ने अपने नगर मुजफ्फरपुर के 'ब्राह्मण टोली' नामक मोहल्ले में सभी ब्राह्मणों में इस बात की घोषणा कर दी थी कि जो भी पंडित अपने यजमानों में 'सत्यनारायण की कथा' खड़ी बोली में बोलेगा उसे वे दस रुपए देंगे। इस प्रकार कथा-वाचन के बाद जो भी पंडित अपने यजमान से इस आशय का प्रमाणपत्र लेकर आता था वह दस रुपए उनसे भी प्राप्त करके अपने घर को जाता था। इसी प्रकार अपने नगर की दुकानों तथा व्यापारिक संस्थानों के 'साइन बोर्डों' को भी वे अपने खर्च से हिन्दी में करा दिया करते थे। कचहरियों में हिन्दी के प्रचार का तो उन्होंने मानो व्रत ही ले रखा था। उनके निरन्तर प्रचार और अनुरोध के कारण ही सन् 1881 से बिहार की कचहरियों में हिन्दी का प्रवेश हुआ था। मुजफ्फरपुर की कचहरी में उन्होंने अनेक स्वयंसेवक लगाकर आवेदन पत्रों आदि के हिन्दी-प्रारूप तैयार कराए थे। खत्रीजी साहित्य के लिए भिखारी बन गए थे। उन्होंने 'खड़ी हिन्दी', 'अदालती हिन्दी' तथा 'तिरहुत' नामक तीन हिन्दी पत्र निकालने का संकल्प किया था, परन्तु वे अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण इसे कार्यान्वित न कर सके।

श्री खत्रीजी ने सर्वप्रथम सन् 1888 में 'खड़ी बोली आन्दोलन' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया था कि अब तक जो कविता हुई है वह ब्रजभाषा में थी और अब खड़ी बोली में ही रचना की जानी चाहिए। वास्तव में युगानुरूप साहित्य की भाषाएँ बदलती रही हैं। वे खड़ी बोली को ही वास्तविक हिन्दी कहते थे और अपनी पुस्तक में उन्होंने खड़ी बोली पद्य के (1) ठेठ हिन्दी, (2) पण्डित स्टाइल, (3) मुन्शी स्टाइल, (4) मौलवी स्टाइल, (5) यूरोपियन स्टाइल रूप निर्धारित किए थे। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने इन काव्य-पद्धतियों के उदाहरण भी प्रस्तुत किए थे।

वास्तव में जिन दिनों उन्होंने यह आन्दोलन प्रारम्भ किया था उससे पूर्व सन् 1886 में पं०श्रीधर पाठक (जन्म : सन् 1859) ने अपनी 'एकान्तवासी योगी' नामक काव्य-कृति में खड़ी बोली की काव्य-रचना का उत्कृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पाठकजी ने भी सन् 1887 के 'हिन्दोस्थान' में यह स्वीकार किया था कि खड़ी बोली में पद्य लिखना सम्भव नहीं है। लेकिन फिर भी पाठकजी ने उसमें हिन्दी की कवित्त-सवैया वाली पुरानी प्रणाली से हटकर उर्दू के लावनी छन्द का प्रयोग किया था जिससे वह बोल-चाल की भाषा के अधिक निकट आ गई थी। वैसे तो उनसे पूर्व भारतेन्दुबाबू हरिश्चन्द्र (सन् 1850) ने भी खड़ी बोली में काव्य-रचना के प्रयोग किए थे लेकिन वे उसमें सर्वथा विफल रहे थे। जैसाकि उन्होंने स्वयं 'भारत मित्र' सम्पादक के नाम 1 सितम्बर सन् 1881 को लिखे गए अपने पत्र में स्वीकार किया है।

जिन दिनों खत्रीजी यह आन्दोलन कर रहे थे, उनसे बहुत पहले मेरठ के संत कवि गंगादास (जन्म सन् 1823) ने खड़ी बोली में सशक्त काव्य-रचना करके उसका वर्चस्व सिद्ध कर दिया था। यही नहीं कि काव्य के क्षेत्र में ही खड़ी बोली का प्रचलन मेरठ की भूमि में हुआ, गद्य के क्षेत्र में भी पं० गौरीदत्त (जन्म सन् 1836) ने अपने 'देवरानी-जेठानी की कहानी' नामक उपन्यास (सन् 1870 में प्रकाशित) के द्वारा उसकी महत्ता प्रस्थापित कर दी थी।

वास्तव में श्री अयोध्याप्रसाद खत्री की महत्ता इसलिए तो है कि उन्होंने खड़ी बोली में काव्य-रचना करने के पक्ष में प्रबल तर्क प्रस्तुत करके उसके लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया, लेकिन निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वे खड़ी बोली में काव्य-रचना करने के एकमात्र समर्थक थे; क्योंकि सबसे पहले गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में साहित्य-सर्जना मेरठ के ही उक्त साहित्यकारों ने की थी।

श्री खत्रीजी ने खड़ी बोली के आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए एक हिन्दी व्याकरण भी लिखा था, जिसका प्रकाशन सन् 1877 में हुआ था। श्री खत्रीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि जिस प्रकार गद्य-लेखन में खड़ी बोली का उपयोग हो सकता है उसी प्रकार पद्य की भाषा भी खड़ी बोली हो सकती है। इसके बाद उन्होंने छन्द और अलंकारों को समझाने की दृष्टि से भी सन् 1887 में 'मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्द-भेद' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें उर्दू की गजल, कशीदा, रुबाई तथा मसनवी आदि छन्दों को हिन्दी के अनुरूप ही बनाने की बात सिद्ध की गई थी। इनके अतिरिक्त 'मौलवी साहब का साहित्य' नाम से भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी, जो सन् 1887 में प्रकाशित हुई थी। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक का सम्पादन भी उन्होंने किया था, जिसका नाम था 'खड़ी बोली का पद्य, पहला भाग'। इसका प्रकाशन सन् 1887 में नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर से किया गया था। इसकी भूमिका में खत्रीजी ने खड़ी बोली को 'ठेठ हिन्दी', 'पंडितजी की हिन्दी','मुन्शीजी की हिन्दी', 'मौलवी साहब की हिन्दी' तथा 'यूरोपियन हिन्दी' शीर्षक पाँच भागों में विभाजित करके इनमें से 'मुन्शीजी की हिन्दी' को आदर्श माना था। इस पर देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जोरदार आन्दोलन हुआ था। उनके द्वारा सन् 1887 में संकलित-सम्पादित 'खड़ी बोली का गद्य' तथा 'खड़ी बोली का पद्य, दूसरा भाग' नामक कृतियाँ भी प्रकाशित हुई थीं। अन्तिम पुस्तक की खंडित प्रति ही उपलब्ध है।

खत्रीजी की यह निश्चित मान्यता थी कि साहित्य में गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में खड़ी बोली को अपनाकर ही उसकी समृद्धि की जा सकती है और इसके लिए उन्होंने उन दिनों डटकर संघर्ष भी किया था। क्योंकि उनका पैतृक व्यवसाय पुस्तक-प्रकाशन का ही था इसलिए उन्होंने अपनी सारी पुस्तकें स्वयं ही प्रकाशित की थीं। जब दुकान की स्थिति डावाँडोल हो गई तो आपनें सन् 1886 में मुजफ्फरपुर की कचहरी में एक लिपिक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे अपनी कर्मठता तथा कार्य-कुशलता से 'पेशकार'

के पद तक पहुँच गए और जीवन-पर्यन्त उसी पद पर निष्ठा-पूर्वक कार्य करते रहे। उनके निधन पर मुजफ्फरपुर के तत्कालीन जिलाधीश श्री लेविज ने कहा था—"कोई भी गोपनीय कार्य विश्वास के साथ उनके हाथों में सौंपा जा सकता था।"

उनका निधन 5 जनवरी, 1905 को हुआ था।

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

श्री गोयलीयजी का जन्म 7 दिसम्बर सन् 1908 को बादशाहपुर (गुड़गाँव) हरियाणा प्रदेश में हुआ था। आप एक सुयोग्य लेखक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट समाज-सेवी भी थे। राजनीतिक क्षेत्र में भी आपकी देन कम महत्त्वपूर्ण नही कही जा सकती। सन् 1930 में दिल्ली में महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए 'नमक सत्याग्रह आन्दोलन' में आपने दिल्ली के प्रथम सत्याग्रही के रूप में भाग लिया था।

प्रख्यात प्रकाशन संस्था 'भारतीय ज्ञानपीठ' के आप संस्थापक-मंत्री थे। आपने ज्ञानपीठ की प्रकाशन-प्रवृत्तियों को बढ़ाने की दिशा में जहाँ महत्त्वपूर्ण कार्य किया था वहाँ आपने ज्ञानपीठ के मुखपत्र 'ज्ञानोदय' का भी प्रारम्भिक दिनों कई वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। आपने जैन-धर्म-सम्बन्धी 'वीर' तथा 'अनेकान्त' नामक पत्रों का सम्पादन भी किया था।

आप एक कुशल संगठक और जागरूक पत्रकार होने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और दर्शन के भी अच्छे ज्ञाता थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'जैन जागरण के अग्रदूत', 'दास पुष्पांजलि', 'राजपूताने के वीर', 'आर्यकालीन भारत' 'गहरे पानी पैठ', 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' तथा 'कुछ मोती कुछ सीप' आदि उल्लेखनीय हैं। उर्दू शायरी के सम्बन्ध में भी आपका साधिकार ज्ञान हिन्दी-साहित्य की अभूतपूर्व उपलब्धि रहा, जिसके परिणामस्वरूप आपने जहाँ 'उर्दू-साहित्य का इतिहास' नामक शोधपूर्ण ग्रंथ प्रस्तुत किया वहाँ 'शेरो शखुन', 'शेरो शायरी' तथा 'उर्दू शायरी के नये दौर' नामक पुस्तकें कई भागों में प्रकाशित की थीं।

अनेक वर्ष तक 'साहू जैन एण्ड संस' तथा 'भारतीय ज्ञानपीठ' की सेवा करने के उपरान्त आप सहारनपुर मे स्थायी रूप से रहने लगे थे और वहीं पर सन् 1975 में आपका देहावसान हो गया।

श्री अयोध्याप्रसाद रिसर्चस्कालर

आपका जन्म बिहार प्रदेश के गया जिले की नवादा नामक तहसील के 'आमुआ' नामक ग्राम में 16 मार्च सन् 1888 को हुआ था। आपके पिता श्रीवंशीधर राँची के डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में बैंच-क्लर्क थे और उन्हें अँग्रेजी का 'वेस्टर शब्द-कोश' पूरा कण्ठस्थ था। वे उर्दू, अरबी और फारसी के भी अच्छे विद्वान् थे। कुल-परम्परा के अनुसार पहले आपकी प्रारम्भिक शिक्षा एक मौलवी के निरीक्षण में उर्दू, फारसी तथा अरबी में हुई। बचपन के इस अध्ययन का ही यह प्रभाव था कि आप अरबी तथा फारसी में भी धारा-प्रवाह भाषण देने की अद्भुत क्षमता रखते थे। कुछ दिन तक आपने 'गनीमत' उपनाम से उर्दू में काव्य-रचना भी की थी।

बचपन के इन संस्कारो के कारण आपके मन में 'इस्लाम' तथा 'ईसाई' धर्म के प्रति विशेष आकर्षण पैदा हो गया था। बाद में एक दिन अपने मामा के अनुरोध पर आपने 'सत्यार्थ-प्रकाश' पढ़ना प्रारम्भ किया, जिसके कारण उनका झुकाव आर्यसमाज की प्रवृत्तियों में भाग लेने की ओर हो गया। उन्हीं दिनों आर्य पथिक पं० लेखराम द्वारा लिखित 'हुज्ज-तुल इस्लाम' नामक ग्रन्थ को पढ़कर उन्होंने इस्लाम धर्म की कमियों को जाना। सन् 1908 में प्रवेशिका की परीक्षा देने

के उपरान्त आप आगे की पढ़ाई के लिए जब हजारी बाग के 'सैण्ट कोलम्बस कालेज' में प्रविष्ट हुए तो आपका सम्पर्क वहाँ कुछ क्रान्तिकारियों से हो गया और वे क्रान्तिकारी-आन्दोलन में भाग लेने लगे। इस आन्दोलन से विमुख करने की दृष्टि से उन्हें उनके पिता ने वहाँ से हटाकर भागलपुर भेज दिया, जहाँ से उन्होंने सन् 1911 में इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की।

पिता के विरोध के बावजूद भी आपने क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों में भाग लेना बन्द नहीं किया और इस सम्बन्ध में उन्होंने देश के अनेक प्रमुख नगरों की यात्रा भी की। उन दिनों वे अपनी मंडली में 'मिसिर जी' नाम से जाने जाते थे। इसी बीच उनके पिताजी के एक मित्र श्री बालकृष्ण सहाय के प्रयास से वे फिर अपने अध्ययन में प्रवृत्त हुए और उन्होंने पटना में भारतीय वाङ्मय के उद्भट विद्वान् पाण्डेय रामावतार शर्मा के पास रहकर संस्कृत भाषा तथा हिन्दू धर्म के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का विधिवत् अध्ययन किया। पटना से सस्कृत वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त आप सन् 1911 में कलकत्ता गए, जहाँ पर उनका सम्पर्क डॉ० गोकुलचन्द्र नारंग और प्रो० राजेन्द्रप्रसाद-जैसे महानुभावों से हुआ। उन दिनों वे भी वहाँ छात्र थे। कलकत्ता में रहकर आपने इतिहास तथा दर्शन विषयों का अध्ययन करने के साथ-साथ विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। अपने इस छात्र-जीवन में आपने 'बिहार छात्र सघ' की स्थापना भी की। राजेन्द्र बाबू इसके प्रधान तथा आप इसके मन्त्री थे। धीरे-धीरे आपने वहाँ से बी० ए० करके एम० ए० तथा बी० एल० की तैयारी भी प्रारम्भ कर दी। किन्तु असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ हो जाने के कारण आपकी पढ़ाई रुक गई।

कलकत्ता में रहते हुए आपका आर्यसमाज की गतिविधियों से निकट का सम्पर्क हुआ और आप उसके अधिवेशनों में निरन्तर भाग लेने लगे। अपनी अपूर्व वाग्मिता तथा विस्तृत अध्ययन के कारण थोड़े ही दिनों में आपकी विशेष ख्याति हो गई और आप सर्वत्र भाषण देने के लिए आमन्त्रित किये जाने लगे। सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन के समय 'सत्यार्थ प्रकाश' के छठे समुल्लास में प्रतिपादित राजधर्म पर आप जब कलकत्ता के कालेज स्क्वायर में भाषण दे रहे थे तब आप पुलिस द्वारा पकड़ लिए गए और अभियोग चलाने के उपरान्त आपको डेढ़ वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। अलीपुर के 'केन्द्रीय कारागार' में रहने के उपरान्त जब आप वहाँ से मुक्त हुए तो एक विद्यालय में 'मुख्याध्यापक' के पद पर कार्य करने लगे।

पं० अयोध्याप्रसादजी की हार्दिक इच्छा एक बार विदेशों में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करने की भी थी, जिसकी पूर्ति का अवसर उन्हें उस समय प्राप्त हुआ जब वे सन् 1933 में शिकागो में आयोजित 'विश्व धर्म सम्मेलन' में वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए भेजे गए। वहाँ पर आपने अपनी वक्तृत्व-शक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन करके वैदिक धर्म की जो महत्ता प्रतिपादित की वह अभूतपूर्व थी। उनके भाषण का वहाँ बहुत प्रभाव पड़ा। इसके बाद आपको एक सनातनी विचारों के व्यक्ति ने ट्रिनिडाड में भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया; जहाँ उनकी अभूतपूर्व मेधा तथा प्रतिभा से रुष्ट होकर ईर्ष्यावश उन्हें विषाक्त भोजन दे दिया गया। इसका उनके स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव हुआ। विदेश से लौटकर आपने कलकत्ता को ही अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया और अपना जीवन स्वाध्याय एवं लेखन में लगा दिया। आपके पास इतना विशाल पुस्तकालय था कि उसका मूल्य दो लाख रुपए आँका गया था। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'इस्लाम कैसे फैला', 'ओम् माहात्म्य' और 'बुद्ध भगवान् वैदिक धर्म के विरोधी नहीं थे' उल्लेख्य हैं।

आपका निधन 77 वर्ष की आयु में 11 मार्च सन् 1965 को कलकत्ता में हुआ था।

श्री अयोध्याप्रसाद 'लालजी'

श्री 'लालजी' का जन्म उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद के असनी नामक स्थान में सन् 1861 में हुआ था। आपके पिता श्री मदनेश महापात्र 'राजकवि' के रूप में प्रतिष्ठित थे और वे काशिराज, उदयपुर, डूंगरपुर, रतलाम, जयपुर, प्रतापगढ़ तथा रायबरेली के राज-दरबारों में राजकवि रह चुके थे। आप भी अपने पिताजी की परम्परा के अनुरूप रीतिकालीन छन्द-निर्माण में अद्भुत कौशल रखते थे।

आपका निधन सन् 1952 में 91 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'औध'

श्री वाजपेयीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के सातन पूरवा नामक ग्राम में सन् 1803 में हुआ था। राज-दरबारों के आश्रित कवि के रूप में आपकी गणना होती थी। रीतिकालीन कवियों की लीक से हटकर भी आपने रचनाएँ की थीं। आप 'राम-भक्ति की मधुर उपासना' के आधुनिक विशिष्ट संतों (पंडित उमापति, बाबा रघुनाथदास तथा युगलानन्द शरण) के साथी-संगी थे।

आपकी 'अवध शिकार', 'चित्र काव्य', 'साहित्य सुधा सागर', 'छन्दानन्द', 'राम कवितावली', 'शंकर शतक', 'रास सर्वस्व', 'व्रज व्रज्या' तथा 'राग रत्नावली' आदि रचनाएँ उपलब्ध हैं, लेकिन सभी अप्रकाशित हैं।

आपका निधन सन् 1885 में अयोध्या में हुआ था।

श्री अयोध्याप्रसाद सिंह

श्री अयोध्याप्रसाद सिंह का जन्म बिहार में मुंगेर जिले के मलयपुर नामक स्थान मे सन् 1877 में हुआ था। आप गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से साधिकार रचनाएँ करते थे। अभी तक आपकी केवल 'प्रेम महिमा', 'ललित मनोरमा' तथा 'जय जगदम्बा' नामक तीन रचनाएँ ही प्रकाशित रूप में उपलब्ध हुई है। आपका निधन सन् 1926 में हुआ था।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

श्री 'हरिऔध' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान में एक शुक्ल यजुर्वेदीयस नाढ्य ब्राह्मण परिवार में सन् 1865 में हुआ था। उपाध्यायजी के पूर्वज बदायूँ के रहने वाले थे और वहाँ के एक कायस्थ-परिवार के साथ लगभग चार सौ वर्ष पूर्व निजामाबाद आ गए थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा आपके ताऊ श्री ब्रह्मासिंह उपाध्याय की देख-रेख में हुई थी और आपने हिन्दी तथा संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, बंगला और पंजाबी भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। प्रारम्भ में हिन्दी मिडिल तथा नार्मल की परीक्षाएँ देकर आपने 'कानूनगोई' का कोर्स भी किया था। हिन्दी मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने कुछ समय तक बनारस के क्वीन्स कालेज में अँग्रेजी की शिक्षा भी प्राप्त की थी, किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण यह क्रम आगे न चल सका।

अपने कर्ममय जीवन का आरम्भ आपने एक अध्यापक के रूप में किया था और बाद में वे 11 वर्ष तक कानूनगो के पद पर कार्य करने के उपरान्त 'हिन्दू विश्वविद्यालय काशी' के हिन्दी विभाग में वरिष्ठ अध्यापक हो गए थे। आप सन् 1923 को 'कानूनगो' के पद से निवृत्त हुए थे। जिन दिनों आपने साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था उन दिनों भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' तथा 'कवि वचन सुधा' पत्रिकाएँ हिन्दी में बहुत प्रचलित थी। उक्त दोनों पत्रिकाएँ निजामाबाद के बाबा सुमेरसिंह के पास आया करती थीं। उनके पास 'हरिऔध' जी प्रायः आया-जाया करते थे। फलस्वरूप 16 वर्ष की अल्पायु में ही आपने कविता लिखनी प्रारम्भ कर दी थी। हिन्दी का कदाचित् ऐसा कोई ही पत्र होगा जिसमें 'हरिऔध' जी की रचनाएँ प्रकाशित न हुई हों। वे स्वभाव के इतने उदार थे कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति को भी अपनी रचनाएँ भेज दिया करते थे।

वैसे तो 'हरिऔध' जी का नाम खड़ी बोली के उन्नायक

कवियों में अग्रणी स्थान रखता है, किन्तु गद्य-लेखन की दिशा में भी उनकी देन अनुपेक्षणीय है। उन्होंने जहाँ 'प्रद्युम्न विजय' (1893), तथा 'रुक्मिणी परिणय' (1894) नाटकों की रचना की भी वहाँ 'प्रेमकान्ता' (189४), 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', (1899) तथा 'अधखिला फूल'(1907) नामक तीन उपन्यास भी लिखे थे। उनकी उक्त सभी कृतियों का हिन्दी के उस विकास-क्रम में अत्यन्त उल्लेख्य स्थान है। उनका नाम अपनी अनेक विशेषताओं के कारण कविता के इतिहास में तो अमर ही हो गया है। उन्होंने जहाँ 'रसिक रहस्य' (1899), 'प्रेमाम्बु-वारिधि' (1900), 'प्रेम-प्रपंच' (1900), 'प्रेमाम्बु प्रस्रवण' (1901), 'प्रेमाम्बु-प्रवाह' (1901), 'प्रेम पुष्पहार' (1904), 'उद्बोधन' (1906), 'काव्योपवन' (1909), 'कर्मवीर' (1916), 'ऋतु मुकुर' (1917), 'पारिजात' (1919) 'चोखे चौपदे' (1924), 'पद्य-प्रसून' (1925), 'पद्य-प्रमोद' (1927), तथा 'चुभते चौपदे' (1928) आदि स्फुट प्रौढ़ काव्य रचनाओं से हिन्दी की अभिवृद्धि की वहाँ महाकाव्यों के क्षेत्र में भी उनका योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी ऐसी कृतियों में 'प्रिय प्रवास' (1914), और 'वैदेही वनवास' (1940) प्रमुख है। ब्रज-भाषा में काव्य-रचना करने की दृष्टि से भी उनका स्थान अंगुलिगण्य है। उनकी ऐसी रचनाओं का संकलन उनके 'रस कलश' (1944) नामक ग्रन्थ में किया गया है।

जहाँ उन्होंने अनेक प्रौढ़ रचनाओं द्वारा हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि की वहाँ बालोपयोगी साहित्य के निर्माण में भी वे पीछे नहीं रहे। आपकी ऐसी रचनाओं में 'उपदेश-कुसुम' (1917), 'बाल विभव' (1923), 'बाल विलास'(1925), 'बोलचाल' (1928), 'बाल गीतावली' (1939) और 'बच्चों के भाव-गीत' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त उनकी 'मर्म स्पर्श' (1955), 'व्याकुल व्रज', 'सवेरा और साया', 'स्वर्गीय संगीत', विनोद वाटिका' आदि रचनाएँ भी उनकी प्रतिभा की साक्षी हैं। उन्होंने जहाँ नाटक, उपन्यास तथा कविता के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा की वहाँ साहित्य-समीक्षक और इतिहास-लेखक के रूप में भी उनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय आपके 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' तथा 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' के अतिरिक्त 'विभूतिमती ब्रजभाषा', 'इतिवृत्त' तथा 'रस साहित्य और समीक्षाएँ' नामक ग्रन्थों में मिलता है। अपनी 'चुभते चौपदे' तथा 'चोखे चौपदे' नामक रचनाओं में लोक-भाषा खड़ी बोली की कहावतों और मुहावरों का प्रयोग आपने कविता के माध्यम से किया है।

इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त अनुवाद तथा सम्पादन के क्षेत्र में भी उन्होंने उल्लेखनीय साहित्य-सेवा की है। उनके द्वारा सम्पादित 'कबीर वचनावली' और 'वेनिस का बाँका' ऐसी ही कृतियाँ हैं। इनमें से पहली में उन्होंने कबीर के काव्य-सिद्धान्तों का विश्लेषण करके उनकी उत्कृष्टतम रचनाओं का संकलन प्रस्तुत किया है और दूसरी रचना 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' का अनुवाद है। आपकी साहित्य-सम्बन्धी इन सेवाओं को दृष्टि में रखकर महामना पं० मदनमोहन मालवीय ने आपको काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अवैतनिक वरिष्ठ अध्यापक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। आपने अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के चौदहवें दिल्ली-अधिवेशन (सन् 1924 में) की अध्यक्षता की थी और आपकी 'प्रिय प्रवास' नामक प्रख्यात काव्य-कृति पर सम्मेलन की ओर से 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया था। इसके अतिरिक्त सम्मेलन ने अपनी सर्वोच्च सम्मानित उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' भी इन्हें प्रदान की थी। यह उपाधि सर्वप्रथम जिन विद्वानों तथा नेताओं को प्रदान की गई थी उनमें महात्मा गांधी और मालवीयजी के अतिरिक्त आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, श्यामसुन्दरदास, महाराज सयाजीराव गायकवाड़ और महात्मा हंसराज के नाम उल्लेखनीय हैं। वास्तव में आप खड़ी बोली के प्रथम महाकवि थे।

आपका निधन 6 मार्च, सन् 1947 को 82 वर्ष की अवस्था में हुआ था।

श्री अर्जुन चौबे काश्यप

श्री काश्यपजी का जन्म 3 जुलाई सन् 1916 को गया (बिहार) में हुआ था। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से आपने

एम० ए० बी० टी० करके इलाहाबाद से एम० एड० की परीक्षा दी थी। आप 'प्रसाद परिषद्' काशी के प्रथम साहित्य मन्त्री और 'मगध कलाकार समाज' गया के संस्थापक सभापति थे। इनके अतिरिक्त आप 'अखिल भारतीय दर्शन परिषद्' के उपसभापति और गया जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमन्त्री भी रहे थे।

शिक्षा के क्षेत्र में पहले आप सन् 1958 से सन् 1961 तक सच्चिदानन्द सिन्हा डिग्री कालेज, गया के प्रधानाचार्य रहने के उपरान्त उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ नामक नगर में आ गए और सन् 1961 से वहाँ के डिग्री कालेज में प्रधानाचार्य हो गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उसी पद पर बने रहे।

सम्पादन के क्षेत्र में भी आपने अपनी उल्लेखनीय सेवाओं से हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि में अपना अनन्यतम सहयोग दिया है। आपने 'चिनगारी', 'साथी', 'मगध महान्' तथा 'लोकमंच' नामक पत्रों का सम्पादन किया था।

एक उत्कृष्ट पत्रकार और अध्यापक होने के साथ-साथ आप सफल लेखक भी थे। आपकी 'दो क्षण', 'जागते सपने', 'कविप्रिया', 'परमाणु-बम', 'नया युग' और 'प्रियदर्शी अशोक' आदि ऐसी कृतियाँ है जिनसे उनकी काव्य तथा नाटक-लेखन की प्रतिभा का परिचय मिलता है। इतिहास और मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी उनकी देन बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनकी ऐसी कृतियों में 'धर्म-शास्त्र का इतिहास', 'आदि भारत', 'विश्व का इतिहास एवं सभ्यता का परिचय', 'आदि मिस्र', 'सामान्य विज्ञान' तथा 'बाल मनोविज्ञान' आदि विशेष उल्लेख योग्य हैं।

आपकी 'सामान्य मनोविज्ञान', 'बाल मनोविज्ञान' तथा 'सम्बोधि की छाया में' नामक कृतियों पर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कार भी प्राप्त हुए थे तथा कुछ रचनाओं पर आपको 'स्वर्ण पदक' से भी सम्मानित किया गया था।

आपका निधन सन् 1978 में प्रतापगढ़ में हुआ था।

श्री अर्जुनप्रसाद मिश्र 'कण्टक'

श्री कण्टक का जन्म सन् 1898 में हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) के चार महल नामक मोहल्ले में हुआ था। आपके पूर्वज उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के मौरावाँ नामक नगर से आकर वहाँ बसे थे। आपने पहले हैदराबाद के दशनामी गोस्वामी मंडल के विद्यालय में हिन्दी-अध्यापक के रूप में कार्य किया था। आप निबन्ध और कविता-लेखन में भी अभूतपूर्व प्रतिभा रखते थे। आपने सन् 1931 में 'भाग्योदय' नामक एक हिन्दी मासिक भी सम्पादित किया था। आप व्यंग्य-लेखन में भी बहुत प्रवीण थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'नूरजहाँ', 'निद्रा भंग' (काव्य) और 'पाण्डेजी की पोल' (व्यंग्य निबन्ध) नामक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 27 मई सन् 1970 को हुआ था।

श्री अर्जुनलाल सेठी

श्री सेठीजी का जन्म 9 सितम्बर सन् 1880 को राजस्थान के जयपुर नगर मे हुआ था। आप राजस्थान के राष्ट्रीय जागरण के प्रमुख उन्नायकों में अपना अन्यतम स्थान रखते थे। आप उच्चकोटि के लेखक, कवि, शिक्षक और वक्ता होने के साथ-साथ अनेक धर्मों तथा भाषाओं के ज्ञाता एवं राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। 22 वर्ष की आयु में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० करने के उपरान्त आप चौमू (जयपुर) के स्व० ठाकुर देवीसिंह के शिक्षक हो गए और सन् 1904 में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा संचालित मथुरा के एक विद्या-

लय में पढ़ाने लगे। सन् 1905 में आप सहारनपुर चले गए और वहाँ पर आपके ही प्रयत्नों से 'जैन एजुकेशनल सोसाइटी' (जैन शिक्षा प्रचारक समिति) की स्थापना हुई। सन् 1907 में आपने जयपुर में 'वर्धमान जैन विद्यालय' की स्थापना में भी अनन्य सहयोग दिया। यह विद्यालय उस समय राष्ट्रीय गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बना हुआ था।

देश में सर्वत्र बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन की धूम थी। उन्हीं दिनों 'विश्वभारती शान्ति निकेतन' और 'हिन्दू विश्वविद्यालय काशी' की भी स्थापना हुई थी। श्री सेठीजी ने सन् 1905 से सन् 1912 तक अनेक क्रान्तिकारी आन्दोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। 'आरा मंदिर हत्याकांड' के तो आप प्रमुख अभियुक्त थे। 'दिल्ली षड्यन्त्र केस' के सूत्रधारों में भी आपका नाम लिया जाता है। सन् 1914 में सेठीजी को जयपुर में नजरबन्द कर दिया गया जिससे सारे देश में हलचल-सी मच गई थी। इसके बाद आपको मद्रास प्रेसिडेंसी की वैलूर जेल में भेज दिया गया। वहाँ पहुँचकर आपने राजनीतिक बन्दियों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार के विरुद्ध 70 दिन की भूख हड़ताल कर दी। फिर सन् 1920 में आपको जेल से मुक्त कर दिया गया।

इसके उपरान्त सन् 1921 में महात्मा गाधीजी द्वारा प्रदर्शित 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' में भी आपने खूब कार्य किया। प्रख्यात क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद और उनके अनेक साथी श्री सेठीजी से मन्त्रणा करने के लिए अजमेर आया करते थे। जब 5 जुलाई सन् 1934 को महात्मा गांधीजी अजमेर मे उनके घर आकर उनमे मिले तो वे फिर राजनीति में दुगुने उत्साह से प्रवृत्त हो गए। राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाने में आपने अपनी लेखनी तथा वाणी का सदुपयोग किया था।

आपका निधन 22 दिसम्बर सन् 1941 को अजमेर में हुआ था।

श्री अवतार मिश्र 'कान्त'

आपका जन्म बिहार के चम्पारन जिले के बड़ी अरिया नामक ग्राम में सन् 1879 में हुआ था। नार्मल ट्रेनिंग करके आपने अध्यापन-कार्य अपना लिया था और इसी सन्दर्भ में अपने स्वाध्याय के बल पर वे लेखन की ओर प्रवृत्त हुए थे। बंगला भाषा के पत्र 'प्रवासी' और 'भारतवर्ष' के नियमित पाठक होने के कारण आपको बंगला भाषा का भी अच्छा ज्ञान हो गया था।

आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं० अम्बिकादत्त व्यास के अनन्य शिष्य थे और उन्हींकी प्रेरणा पर साहित्य-रचना की ओर अग्रसर हुए थे। प्रारम्भ में आपने काव्य-रचना के द्वारा ही साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया था। उन्हें कविता करने में इतनी सिद्धि प्राप्त थी कि छात्रों को व्याकरण, भूगोल तथा इतिहास आदि की प्रधान घटनाएँ कविता द्वारा ही समझाया करते थे। अपने अध्यापन के सिलसिले में वे जहाँ-जहाँ भी रहे सभी स्थानों पर उन्होंने 'कवि समाज' की स्थापना की थी। आप मुख्यतः ब्रजभाषा में ही काव्य-रचना किया करते थे। आपने 'रसना शतक', 'शिव स्तवन' तथा 'अनेकार्थावली' नामक तीन पुस्तकों की रचना की थी, जो अभी तक अप्रकाशित हा पड़ी हैं। 'रसना शतक' में जीभ पर रचित सौ दोहों का अभूतपूर्व संकलन है। आपने छन्द में ही एक 'पर्यायवाची कोश' लिखा था जो अब भी बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् के संग्रह में सुरक्षित है।

आपका निधन सन् 1936 में हुआ था।

श्री अवधकिशोरप्रसाद कुश्ता

श्री कुश्ताजी का जन्म 27 जनवरी सन् 1893 को गया के धानी टोला नामक मुहल्ले में हुआ था। सन् 1909 में गया जिला स्कूल से एन्ट्रेंस की परीक्षा देकर आपने हजारीबाग के सेंट कोलम्बा कालेज से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर सन् 1914 में कलकत्ता के सिटी कालेज से बी० ए० एवं पटना के लॉ कालेज से एल-एल० बी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

आपने एक सफल वकील के रूप में ही अपना जीवन व्यतीत किया था और अन्त तक उसी रूप में जाने जाते रहे। आप मुख्यतः उर्दू के शायर थे लेकिन उनकी उर्दू हिन्दी के अधिक निकट थी। कुशल कवि होने के साथ-साथ आप एक

सफल नाटककार भी थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'छिपी कटारी' और 'अनोखी बरछी' के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 29 अक्तूबर सन् 1949 में हुआ।

श्री अवधनारायण लाल

श्री लालजी का जन्म बिहार के दरभंगा जिले के शुभंकरपुर नामक ग्राम में सन् 1885 में हुआ था। सन् 1905 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप वहाँ की कचहरी में सरिश्तेदार हो गए थे। साहित्य की ओर आपकी बाल्यकाल से ही रुचि थी। वैसे आपने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ अँग्रेजी-लेखन से किया था, किन्तु बाद में मातृभाषा के प्रेम से उनके हृदय में उल्लास जगा और आप हिन्दी में लिखने लगे। आपका 'विमाता' नामक उपन्यास और 'झलक' शीर्षक कहानी-संग्रह हिन्दी में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं।

आपका निधन सन् 1955 में हुआ था।

श्री अवधनारायण सिंह राठौर 'अवध'

श्री अवध का जन्म सन् 1893 में पटना जिले के मनेर नामक स्थान पर हुआ था। आप जब तीन वर्ष के ही थे कि आपके पिता का देहान्त असमय में हो गया। सन् 1900 में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप सन् 1915 में शिक्षक के पद पर नियुक्त हुए और 1917 में ट्रेनिंग की परीक्षा उत्तीर्ण की। अनेक स्कूलों में कार्य करने के उपरान्त आप सन् 1939 में सेवा-निवृत्त हो गए।

आपने अवकाश-ग्रहण करने के उपरान्त मनेर में ही एक माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की और उसके प्रधान अध्यापक होने के साथ-साथ मंत्री भी रहे। आपने बिहार शरीफ के आर्यमित्र प्रेस से सन् 1935 में 'नालन्दा' नामक एक मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया था। आपने अनेक पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें 'मनेर का इतिहास' भी उल्लेखनीय है। यह दुर्भाग्य की बात है कि उनकी कोई भी रचना प्रकाशित न हो सकी।

श्री अवधप्रसाद शर्मा

श्री शर्मा का जन्म सन् 1895 में बिहार के पटना जिले के राघवपुर नामक स्थान में हुआ था। आपकी आरम्भिक शिक्षा आपकी माता की देख-रेख में ही हुई थी। आप पहले गया और फिर काशी में अध्ययन के लिए भेजे गए थे। आपने काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य तथा आयुर्वेद-रत्न आदि की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। आपने संस्कृत और हिन्दी की मासिक पत्रिका 'साहित्य सुधा' का सम्पादन भी किया था। सन् 1913 में आप काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए थे और उन्हीं दिनों आपने कालिदास के 'कुमार सम्भव' नामक ग्रन्थ का हिन्दी पद्यानुवाद भी किया था, जो अभी तक अप्रकाशित है।

आपका निधन सन् 1962 में हुआ था।

श्री अवधबिहारी मालवीय 'अवधेश'

श्री अवधेश का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के गेगाँसों नामक स्थान में सन् 1895 में हुआ था। आपके

पिता श्री चन्द्रनाथ मालवीय का बचपन में ही देहावसान हो गया था, फलतः आपके जीवन-निर्माण में आपकी माता का अत्यधिक योगदान था। आप अध्यापन के क्षेत्र में रहते हुए राष्ट्रीय रचनाएँ ही अधिकांशतः किया करते थे। आप अनेक वर्ष तक 'हिन्दी साहित्य मंडल 'कानपुर' के अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका निधन सन् 1960 में हुआ था।

श्री अवधबिहारी शरण

श्री अवधबिहारीजी का जन्म सन् 1891 में बिहार के शाहाबाद जिले के दलीपुर नामक ग्राम में हुआ था। सन् 1907 में मैट्रिक, सन् 1911 में बी० ए० और सन् 1913 में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने सन् 1914 में बी० एल० की परीक्षा भी दी थी। संस्कृत साहित्य का अध्ययन आपने महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा की प्रेरणा से किया था और बिहार संस्कृत संजीवन समिति की मध्यमा परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। सन् 1914 में बी० एन० कालेज में प्रवक्ता रहकर आपने सन् 1915 से आरा में वकालत का कार्य प्रारम्भ किया था और सन् 1938 मे आप वहाँ के सरकारी वकील के पद पर नियुक्त हो गए थे। बाद में आप पटना हाईकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के एडवोकेट भी रहे।

आपको साहित्य-सेवा की ओर उन्मुख होने के लिए महामहोपाध्याय पं० सकलनारायण शर्मा ने प्रेरणा दी थी। आप अनेक वर्ष तक आरा की नागरी प्रचारिणी सभा के उपसभापति भी रहे थे। आपकी रचनाएँ पटना के खड्ग-विलास प्रेस से प्रकाशित होने वाली 'शिक्षा' तथा 'प्रेमा-भक्ति प्रचारक' नामक पत्रिका में प्रकाशित होती रही थीं। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'मेगास्थनीज का यात्रा विव-रण' तथा 'श्रीनामरामामृत' के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 3 अगस्त सन् 1960 को पटना में हुआ था।

श्री अशोकजी

आपका जन्म काशी में 9 जनवरी सन् 1916 को हुआ था। एम० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने सर्व-प्रथम वहाँ के 'हरिश्चन्द्र विद्यालय' में एक अध्यापक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया और बाद में 'पत्र-कारिता' को ही अपने जीवन का एक प्रमुख लक्ष्य बना लिया। लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'स्वतन्त्र भारत' के सम्पादक के रूप में अनेक वर्ष तक सफ-लतापूर्वक कार्य करने के उपरान्त आप

भारत सरकार के 'पत्र सूचना कार्यालय' में 'सूचना अधि-कारी' हो गए और वहाँ से 'उपनिदेशक' के पद से निवृत्त होने के उपरान्त आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक 'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान' लखनऊ में 'कार्यकारी अध्यक्ष' रहे और 'स्वतन्त्र भारत' दैनिक के सम्पादन में अपना सक्रिय योगदान देते रहे।

पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण आपने हास्य-व्यंग्य की पत्रिका 'तरंग' के सम्पादक के रूप में किया था। आपने सन् 1943 से 1945 तक जो ख्याति अर्जित कर ली थी, उससे आपकी ओर साहित्य-जगत् का ध्यान गया। अपनी चुटीली, व्यंग्यपूर्ण और दो टूक रचनाओं के कारण आपने 'हास्य-व्यंग्य-साहित्य' के क्षेत्र में उल्लेखनीय स्थान बना लिया था। आपकी 'जीभ हीतो है', 'चलो मेला चलें', 'चन्द्र-लोक में खानें खुदेंगी' तथा 'लिखित सुधाकर लिखिगा राहू' आदि गद्य रचनाएँ आपकी चुटीली शैली की ज्वलन्त साक्षी हैं। समय-समय पर आपने अनेक स्फुट लेख भी लिखे थे।

कविता के क्षेत्र में आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। 'जन सत्ता' दैनिक दिल्ली में प्रकाशित आपकी 'भैया मुझे मकान दिलाओ' और सन् 1971 में आकाश-वाणी दिल्ली से प्रसारित 'ढोल की पोल' कार्यक्रम में काव्य-

रचनाएँ विशेष उल्लेख्य हैं। काशी पत्रकार संघ और उत्तर प्रदेश श्रमजीवी पत्रकार संघ के निर्माण में भी आपने उल्लेखनीय कार्य किया था। 'स्वतन्त्र भारत' तथा 'तरंग' के अतिरिक्त आपने 'संसार', 'ग्राम संसार' और मासिक 'युगधारा' आदि में भी कार्य किया था। आपके हास्य-व्यंग्य के लेखों का संग्रह 'हजामत का मैच' नाम से प्रकाशित हुआ है।

आपका निधन 18 अगस्त सन् 1979 को लखनऊ में हृदयाघात के कारण हुआ था।

श्री आगा हश्र कश्मीरी

श्री आगा हश्र का जन्म 3 अप्रैल सन् 1879 को कश्मीरी शालों का व्यापार करने वाले मनीशाह आगा के यहाँ वाराणसी में हुआ था। इनका जन्म-नाम मुहम्मद शाह था। उनके पिता सन् 1868 में शालों का धन्धा करने की दृष्टि से वहाँ आ गए थे। बचपन में घर पर और पुनः 18 वर्ष की आयु तक बनारस के जयनारायण हाईस्कूल में आठवीं-नवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वे नाटकों में भाग लेने की ओर अग्रसर हुए। उन दिनों वहाँ पर बम्बई की अलफ्रेड कम्पनी के नाटक हो रहे थे। मुहम्मद शाह ने कई नाटक देखे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने उस छोटी-सी उम्र में सन् 1897 में ही 'अहसन लखनवी' के नाटक 'चन्द्रावली' के आधार पर 'आफताब मुहब्बत' नामक एक नाटक लिख डाला। उस नाटक को जब उन्होंने अलफ्रेड कम्पनी के पास भेजा तो उसे न तो किसी ने खेलना पसन्द किया, और न किसी ने छापने में दिलचस्पी दिखाई।

धुन के धनी आगा हश्र इससे हताश होने वाले न थे। वे शाल के अच्छे खासे चलते हुए धन्धे को छोड़कर सन् 1901 में बम्बई चले गए और वहाँ अलफ्रेड कम्पनी के मालिक श्री काउसजी से मिलकर उन्होंने उनकी कम्पनी में काम करने की इच्छा प्रकट की। जिस समय आगा साहब काउसजी से मिले थे उस समय वे प्रातःकालीन चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे। उन्होंने युवक आगा से कुछ शेर सुनाने को कहा। फलस्वरूप आगा साहब ने कुछ फड़कते हुए शेर उन्हें सुना दिए। फिर क्या था, उनकी नौकरी पक्की हो गई और वे भी अहसन लखनवी के साथ-साथ कम्पनी के लिए नाटक लिखने लगे।

उनका सबसे पहला नाटक 'मुरीदे शक' कम्पनी की ओर से प्रकाशित किया गया और बाद में 'मारे आस्तीन' और 'मीठी छुरी' का भी प्रदर्शन हुआ। आगा साहब ने कभी लेखनी हाथ में लेकर नाटक नहीं लिखे। वे धारा-प्रवाह बोलते जाते थे और बहुत से लोग उन्हें लिपिबद्ध करते जाते थे। आगा हश्र की प्रसिद्धि उनके 'असीरे हवस' नामक नाटक के कारण हुई थी, जो दिल्ली-दरबार के समय दिल्ली में खेला गया था। उस नाटक की कहानी शेरीडन द्वारा लिखे गए 'पिजारो' पर आधारित थी। सन् 1901 से लेकर 1905 तक के समय को हश्र के संघर्ष का काल जा कहा सकता है। इन्हीं 5 वर्षों में उन्होंने अपनी कर्मठता और लगन से सफलता की सीढ़ी का मार्ग पा लिया था। यह उनके लेखन का 'पहला दौर' था। सन् 1906 से सन् 1909 तक के काल को हम उनके संघर्ष का 'दूसरा दौर' कह सकते हैं। इस काल में उनके लिखे हुए 'सफेद खून' (किंग लियर), 'सैदे हवस' (रिचर्ड तृतीय) और 'शहीदे नाज' (मेजर फॉर मेजर) नाटक खेले गए और उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। सन् 1910 से सन् 1916 तक के समय को उनके 'नाटक-लेखन-संघर्ष' का 'तीसरा दौर' कहा जा सकता है। इस काल में उनके 'ख्वाबे हस्ती', 'खूबसूरत बला', 'सिल्वर किंग', 'यहूदी की लड़की', 'सूरदास', 'शामे जवानी' और 'खुद परस्त' आदि नाटकों की खूब धूम रही।

आगा साहब के नाटक-लेखन का 'चौथा दौर' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ और उन्होंने इस काल में बम्बई की अलफ्रेड कम्पनी की नौकरी छोड़कर सन् 1917 में कलकत्ता

में 'जे० एफ० मैडन थियेटर' नाम से अपनी एक नई कम्पनी ही प्रारम्भ कर दी। कलकत्ता जाकर आगा हश्र कलाकार के रूप में बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए। वे मंच-सज्जा से लेकर नाटकों में सभी तरह के काम स्वयं ही किया करते थे। स्वयं निर्देशन, स्वयं अभिनय, स्वयं लेखन करने में उन्हें जो सिद्धि प्राप्त थी, वह उनकी कलाप्रियता का उत्कृष्टतम उदाहरण है। यहाँ तक कि सब पात्रों का अभिनय करने में भी वे इतने दक्ष थे कि दर्शक 'वाह-वाह' कह उठते थे। सन् 1917 से लेकर 1924 तक दिल्ली, मेरठ और बनारस जैसे नगरों में नारायणप्रसाद 'बेताब' और राधेश्याम 'कथावाचक' के नाटक पारसी थिएट्रिकल कम्पनियों के द्वारा अभिनीत होने लगे थे। पारसी कम्पनियों का दृष्टिकोण सर्वथा व्यावसायिक था। भाषा चाहे हिन्दी हो अथवा उर्दू; वे तो अपने 'हॉल' भरे हुए देखना चाहती थीं। आगा साहब के बनारसी खून में हरकत हुई और उन्होंने भी 'भारत रमणी', 'मधुर मुरली', 'भागीरथ गंगा', 'श्रवणकुमार', 'धर्मी बालक' और 'प्रेमी बालक' जैसे हिन्दी-नाटक लिखे और उन्हें 'मैडन थियेटर' द्वारा प्रस्तुत किया गया। उनका बँगला नाटक 'मिशर कुमारी' भी उन दिनों बहुत लोकप्रिय हुआ था। यह नाटक 'यहूदी की लड़की' का ही बँगला रूपान्तर था।

आगा साहब के समय की परम्परा और परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे लिखने से अधिक 'कला' को, भाषा की अपेक्षा 'एक्शन' को बहुत महत्व देते थे। अपने भावों के प्रकटीकरण के लिए उन्होंने भाषा, संस्कृति और सस्ती भावुकता को कभी भी आड़े नहीं आने दिया। वे केवल नाटक-लेखक ही नहीं थे, प्रत्युत उसे मंच पर अभिनीत करके किस प्रकार सफलता प्राप्त की जा सकती है, इसका ध्यान भी वे बराबर रखते थे। उनकी नाटक-लेखन-क्षमता का महत्व इसीसे प्रतिपादित हो जाता है कि नारायणप्रसाद 'बेताब' ने उनके सम्बन्ध में एक बार यह कहा था—"उर्दू आगा साहब की मातृ-भाषा है। वे अगर उर्दू में लिखते हैं तो क्या कमाल करते हैं? अगर हिन्दी में लिखें तो हम भी दाद दें।" आगा साहब को जब बेताबजी के ये विचार बताए गए तो वे जोश में उबल पड़े और कहा—"उनसे कह देना कि अब हम हिन्दी में ही ड्रामे लिखेंगे।" इस घटना के बाद उन्होंने अपने अधिकांश नाटक हिन्दी में ही लिखे। बेताबजी ने इनके सम्बन्ध में यह ठीक ही लिखा था—"भारत में सैकड़ों नाटककार होंगे, मगर मेरी दृष्टि में वर्तमान स्टेज के काबिल नाटकनवीस केवल दो ही हुए हैं—आगा हश्र कश्मीरी और जनाब हकीम सैयद मेंहदी हसन 'अहसन' लखनवी।" वास्तव में आगा साहब को हिन्दी-लेखन की ओर उन्मुख करने का श्रेय बेताबजी को ही दिया जा सकता है। इन्होंने 100 से अधिक नाटक लिखे थे और 28 अप्रैल सन् 1935 में इनका निधन लाहौर में हुआ था। आगा साहब अपनी माँ से बहुत प्यार करते थे। उन्होंने उनके लिए 40 हजार रुपए बैंक में जमा कर दिए थे। इस धन का उपयोग उन्होंने अपनी बीमारी में भी नहीं किया था।

राज्यरत्न आत्माराम अमृतसरी

श्री अमृतसरीजी का जन्म पंजाब के अमृतसर नामक नगर में सन् 1867 में हुआ था। आपका परिवार लुधियाना के कर्मठ तहसीलदार श्री राधाकृष्ण माहेश्वरी की विद्वत्ता, दानशीलता और दक्षता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। उन्हें लोग 'दानी तहसीलदार' के नाम से जानते थे। वे रोजाना भिखारियों को चने तथा आटा देने के साथ-साथ साधु-सन्तों और ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरान्त स्वर्णदान भी किया करते थे। आपने पंजाब के सुप्रसिद्ध सुधारक दीवान
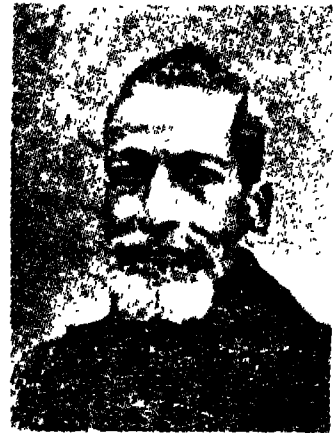
अलखधारी के सब ग्रन्थों को पढ़ा था, इसलिए मूर्ति-पूजा से बहुत दूर रहते थे। राज्यरत्नजी जब केवल 5 वर्ष के ही थे कि उनके पिताजी का असामयिक देहावसान हो गया। फलत: माता की छत्रछाया में ही उनके आगामी जीवन का निर्माण हुआ।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई थी, किन्तु आर्यसमाज की सदस्यता ग्रहण करने के बाद आपका झुकाव हिन्दी के अध्ययन की ओर हुआ। मैट्रिक की परीक्षा देने के उपरान्त जब आप आगे की पढ़ाई के लिए लाहौर के गवर्नमेण्ट कालेज में प्रविष्ट हुए तो अचानक आपकी माताजी बीमार पड़ गईं। आप तुरन्त अमृतसर चले गए और एक मास तक निरन्तर उपचार कराने के बाद भी वे माताजी को नहीं बचा सके। इस घटना के बाद आपका अध्ययन रुक गया और आपने तहसीलदारी की नौकरी कर ली। जिन दिनों आप अमृतसर में आर्यसमाज के सदस्य बने थे उन दिनों आर्यपथिक पं० लेखराम तथा गुरुदत्त विद्यार्थी ने उनके भाषणों को सुना था इसलिए उन्होंने उन्हें तहसीलदारी का कार्य छोड़कर आर्यसमाज के कार्य में ही लग जाने की सम्मति दी।

इस घटना के बाद उन्होंने तहसीलदारी से त्यागपत्र देकर लाहौर के दयानन्द मिडिल स्कूल में शिक्षक का कार्य प्रारम्भ कर दिया और जब तक गुरुदत्त विद्यार्थी जीवित रहे वे उनके सत्संग में रहकर अपना स्वाध्याय बढ़ाते रहे। जिन दिनों आप उनके पास जाया करते थे तब भी उन्होंने अमरीका जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करने का संकल्प अपने मन में कर लिया था। इस बीच एक घटना घटी—पंजाब के आर्यसमाज में मांस-भक्षण को लेकर दो दल हो गए। श्री अमृतसरीजी को 'वेजीटेरियन सोसाइटी' का मन्त्री पद सौंपा गया। क्योंकि दयानन्द मिडिल स्कूल मांस-भक्षण-समर्थक दल की संस्था थी अतः अमृतसरीजी ने वहाँ से त्यागपत्र दे दिया। उक्त स्कूल के व्यवस्थापक महात्मा हंसराजजी ने आपके त्यागपत्र को तीन-चार बार लौटाया परन्तु अमृतसरीजी अपनी बात पर दृढ़ रहे। इस घटना के बाद उन्होंने अमृतसर जाकर एक हाईस्कूल की नींव डाली, जो आज हिन्दू सभा कालेज के नाम से विख्यात है। आत्मारामजी ने अध्यापन का कार्य छोड़कर आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने का ही कार्य प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अमृतसर की पोंगापंथी माहेश्वरी बिरादरी ने लगभग बारह वर्ष तक उनका बहिष्कार किए रखा। आत्मारामजी अपनी धुन के पक्के थे। उन्होंने अनेक विघ्न-बाधाओं को रहते हुए भी अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ा और आर्यसमाज का प्रचार करने की दृष्टि से 'हितकारी' नामक पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। आपके लेखों से समाज में बहुत जागृति हुई। आपने उसके माध्यम से अनेक हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनने से रोका और जो ईसाई मिशनरी तथा मुसलमान गुप्त रूप से ऐसा करने से बच रहे थे उनका भंडा-फोड़ किया। इसके अतिरिक्त आपने देश के अनेक नगरों में आर्य सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए विधर्मियों से शास्त्रार्थ भी किए।

पूरे बीस वर्ष तक पंजाब तथा उत्तरी भारत में आर्यसमाज का प्रचार कार्य करने के उपरान्त आप प्रख्यात आर्य संन्यासी स्वामी नित्यानन्दजी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द की प्रेरणा पर 1 अगस्त सन् 1908 को बड़ौदा राज्य के विद्यालयों के इंसपेक्टर बनकर चले गए। वहाँ पहुँचकर आपने अपना सारा जीवन शिक्षा-प्रचार के अतिरिक्त आर्य सिद्धान्तों से सम्बन्धित ग्रन्थों के लेखन में ही लगा दिया। आपने 18 वर्ष तक अनवरत बड़ौदा राज्य के हरिजनों के उद्धार के लिए जो कार्य किया उससे महाराजा बड़ौदा इतने प्रभावित हुए कि आपको 'राज्य-रत्न' की सम्मानित उपाधि प्रदान करके अपना गौरव बढ़ाया। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि जब आप उत्तर भारत की प्रसिद्ध शिक्षा-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के वार्षिक उत्सवों पर जाया करते थे तब आपकी वक्तृत्व-कला से प्रभावित होकर जगद्गुरु भारती कृष्णतीर्थ ने आपको 'व्याख्यान वाचस्पति' की सम्मानोपाधि से भी विभूषित किया था। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि एक बार जब गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की स्थिति डाँवाडोल हो गई थी तब आपने ही कई वर्ष तक वहाँ रहकर उसकी डगमगाती नौका को सँभाला था।

जिन दिनों पंडित आत्मारामजी बड़ौदा में शिक्षण और समाज-सेवा के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे उन्हीं दिनों आपने 'सयाजी शासन शब्द कल्पतरु' नामक कानून के अँग्रेजी शब्दों से सम्बन्धित हिन्दी का एक कोश भी तैयार किया था। आपकी ही प्रेरणा से बड़ौदा-नरेश ने अपने यहाँ कचहरी की भाषा हिन्दी कर दी थी। आपने आर्य संस्कारों की पद्धति प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रख्यात वैदिक विद्वान् पं० भीमसेन शर्मा के साथ सहयोग करके 'संस्कार चन्द्रिका' नामक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ का निर्माण भी किया था। इसके अतिरिक्त आपकी 'मृष्टि विज्ञान', 'शरीर विज्ञान', 'ब्रह्मयज्ञ', 'आत्म-

स्थान विज्ञान', 'वैदिक विवाहादर्श', 'तुलनात्मक धर्म विचार', 'ब्रह्म प्राप्ति' तथा 'दिग् विज्ञान' आदि पचासों छोटी-बड़ी कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। आपने श्री रामविलास शारदा द्वारा लिखित महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' नामक जीवन चरित्र की एक विस्तृत भूमिका भी लिखी थी जो बाद में 'भारत की प्राचीन उन्नति' के नाम से प्रकाशित हुई थी।

गुजरात में जहाँ आपने समाज-सुधार का उल्लेखनीय कार्य किया वहाँ स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में भी उनकी देन कम उल्लेखनीय नहीं है। इस दृष्टि से उनके द्वारा बड़ौदा में संस्थापित 'आर्य कन्या महाविद्यालय' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह संस्था आज भी उस क्षेत्र की प्रशंसनीय सेवा कर रही है उनके निधन के बाद उनके सुयोग्य सुपुत्रों (श्री शान्तिप्रिय और श्री आनन्दप्रिय) ने उस संस्था को उन्नति के उत्कर्ष पर पहुँचाने में कोई कसर नहीं रखी। इसके अतिरिक्त आर्य युवकों को समाज-सुधार के पथ पर अग्रसर करने के क्षेत्र में भी आपने उल्लेखनीय कार्य किया और अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के अध्यक्ष के रूप में आपने उन्हें शारीरिक, आत्मिक और मानसिक उन्नति का प्रशस्त पथ प्रदर्शित किया। वे जहाँ उत्कृष्ट समाज-सुधारक शिक्षा-प्रचारक थे वहाँ अनेक राजाओं को वैदिक धर्म में दीक्षित करने की दृष्टि से भी उन्होंने अभिनन्दनीय कार्य किया था। कोल्हापुर नरेश श्रीमान शाहू क्षत्रपति जी महाराज को वैदिक धर्म में दीक्षित करने का कार्य उन्होंने ही किया था। कोल्हापुर और बड़ौदा राज्य में उनका इतना अधिक सम्मान था कि वे वहाँ राज्यगुरु भी कहलाने लगे थे।

आपका निधन 25 जुलाई सन् 1939 को हुआ।

श्री आदित्यनारायण अवस्थी

श्री अवस्थी का जन्म उत्तरप्रदेश के रायबरेली जनपद के कुन्सा नामक ग्राम में सन् 1893 में हुआ था। आपने जन-जागरण के लिए जब सन् 1934 में 'विजय' नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन कानपुर से प्रारम्भ किया तो अँग्रेज सरकार ने आपको बगावत फैलाने के अभियोग में जेल में डाल दिया। जेल से बाहर आने पर श्री अवस्थीजी कुछ मास तक कानपुर के दैनिक 'वर्तमान' के सम्पादकीय विभाग में भी रहे, किन्तु पुलिस की कोपदृष्टि के फलस्वरूप उन्हें कानपुर छोड़कर यायावरी करनी पड़ी। लगभग ग्यारह वर्ष तक क्रान्तिकारी जीवन बिताने के बाद उन्होंने उस समय कलकत्ता को अपना स्थायी निवास बनाया जब देश स्वतन्त्र हो चुका था। अनेक वर्ष तक कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'जागृति' नामक दैनिक पत्र में कार्य करने के उपरान्त उसके बन्द होने पर आप छः-सात वर्ष तक 'लोकमान्य', 'विश्वमित्र' एवं 'विश्वबन्धु' नामक पत्रों के सम्पादकीय विभागों में कार्य करते हुए पत्रकारों की स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ते रहे। जिन दिनों 'नवभारत टाइम्स' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था उन दिनों आपको उसका मुख्य उपप्रधान सम्पादक बनाया गया था पर सम्पादकीय नीति में मतभेद हो जाने के कारण शीघ्र ही वहाँ से त्यागपत्र देकर अलग हो गए थे। पत्रकारों की स्वाधीनता के संघर्ष में वे सदा अगुआ रहे और उसी के लिए उन्होंने आजीवन संघर्ष किया।

सन् 1956 में आपने सहकारी आधार पर कलकत्ता से हिन्दी दैनिक 'विकास' का प्रकाशन किया, जो कुछ महीनों तक सफलतापूर्वक चलता रहा। पूरे देश में अपने ढंग का यह पहला पत्र था। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसके प्रकाशन पर अपना आशीर्वाद भी दिया था। इस पत्र के बन्द होने पर 'माडर्न रिव्यू' तथा 'प्रवासी' के सम्पादक श्री केदारनाथ चटर्जी ने आपको अपने 'विशाल भारत' नामक पत्र का सम्पादन करने के लिए आमन्त्रित किया, जिसका कार्य वे उसके बन्द होने तक एकनिष्ठ भाव से करते रहे। तदुपरान्त आपने स्वतन्त्र पत्रकारिता प्रारम्भ

कर दी और लगभग 15 वर्ष तक 'आज' तथा 'आर्यावर्त' नामक पत्रों में व्यवसाय वाणिज्य, खेलकूद एवं राशिफलाफल स्तम्भों से सम्बन्धित सामग्री लिखकर भेजते रहे। कलकत्ता के पत्रकार मित्रों में आप 'चाचा' के नाम से जाने जाते थे।

आपका निधन 28 जून सन् 1962 को 69 वर्ष की आयु में हुआ था।

डॉ० आनन्द

डॉ० आनन्द का जन्म जालौन में सन् 1897 में हुआ था। आप मुख्यतः 'कवि सम्मेलनों' के ही कवि थे। वीररस के सिद्ध कवि होने के कारण मंच पर छा जाना उनकी कविता की एक विशेषता थी। जिस समय वे कविता-पाठ करते थे उस समय श्रोता भी उनके साथ वैसे ही भाव-विभोर हो जाते थे।

उनकी ख्याति उनके 'झाँसी की रानी' नामक प्रबन्ध काव्य के कारण बहुत हुई थी। स्वतन्त्रता के बाद उन्होंने कांग्रेसी मन्त्रियों से कारनामे देखकर 'दारुल-सफा' नामक एक ऐसी कविता लिखी थी जिसमें उन पर करारे व्यंग्य किए गए थे।

उनकी रचनाओं के द्वारा देश के नवयुवकों को राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़ने की जो अदम्य प्रेरणा मिली वह उनकी विशेषता की परिचायक है। वे श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के आशीर्वाद से बढ़े हुए कवियों में अग्रणी थे। छन्द पर उनका अद्भुत अधिकार था और उनकी भाषा विषयानुरूप हुआ करती थी।

उनका निधन 7 अक्तूबर सन् 1977 को 80 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री आनन्दबिहारीलाल चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म सन् 1906 में उत्तर प्रदेश के इटावा नामक नगर में हुआ था। इटावा में इण्टर तक की शिक्षा प्राप्त करके आप अपने बड़े भाई से साथ हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) चले गए और आपने वहाँ पर एक 'हिन्दी विद्यालय' प्रारम्भ किया। पहले इस विद्यालय का नाम द्वारकेश पाठशाला था, जो अब 'अग्रवाल कालेज' के नाम से जाना जाता है।

अध्यापन-कार्य करते हुए आप 'कर्त्तव्य' नामक एक पत्र का सम्पादन भी किया करते थे। आप हिन्दी के सुलेखक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि भी थे। आपके देहान्त के उपरान्त आपके 'वन' नामक खण्डकाव्य के कुछ अंश भी प्राप्त हुए हैं।

आपका देहावसान सन् 1960 में हैदराबाद में हुआ था।

श्री आनन्दवर्धन रत्नपारखी विद्यालंकार

श्री रत्नपारखी का जन्म आन्ध्र प्रदेश के बीदर क्षेत्र के हलिखेड़ नामक ग्राम में 29 दिसम्बर सन् 1919 को हुआ था। आपकी शिक्षा गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में हुई और वहाँ से सन् 1941 में 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त करके विधिवत् स्नातक हुए। इसके उपरान्त आपने अनेक स्थानों पर अध्यापन-कार्य करने के अतिरिक्त विभिन्न समाचार पत्रों में सहकारी सम्पादक के रूप में भी कार्य किया था। श्री घनश्याम सिंह गुप्त की अध्यक्षता में भारतीय संविधान का हिन्दी अनुवाद करने के लिए जो समिति गठित की गई थी कुछ दिन तक आपने उसमें भी कार्य किया था। इसके उपरान्त आप राज्य सभा में वरिष्ठ अनुवादक के रूप में नियुक्त हो गए और सन् 1978 में वहाँ से सेवा-निवृत्त हुए थे।

संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ-साथ आप मराठी, कन्नड़, तेलुगु, बंगला, अँग्रेजी और फ्रेंच के भी

निष्णात पंडित थे। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण आप राज्यसभा सचिवालय में 'युगपद भाषान्तरणकार' के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गए थे। एक उत्कृष्ट गद्य-लेखक के साथ-साथ आप संस्कृत और हिन्दी के कुशल कवि भी थे। आपने संस्कृत की जो रचनाएँ की थी उनमें 'संवाद माला' (1959) में उन्होंने कुछ एकांकी प्रस्तुत किए थे और 'कुसुम लक्ष्मी' नामक एक उपन्यास भी लिखा था। यह उपन्यास 'गंगानाथ झा पुरस्कार' से भी सम्मानित हो चुका है। आपको संस्कृत वाङ्मय की इसी विशेषता के कारण भगवान् पशुपतिनाथ का 'पंचामृताभिषेक' कराने के लिए नेपाल सरकार ने भी आमन्त्रित किया था।

मातृभाषा मराठी होते हुए भी गुरुकुल में अध्ययन करने के कारण हिन्दी पर भी आपका वैसा ही अधिकार था जैसाकि मातृभाषा पर होता है। आप हिन्दी के भी उत्कृष्ट कवि थे और आपकी 'विहग'(1954),'रश्मिहास'(1956), 'मान्धरव' (1956) काव्य कृतियाँ हिन्दी में पर्याप्त सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं। अपने निधन से पूर्व आप महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती पर एक महाकाव्य लिखने में संलग्न थे। हरियाणा सरकार ने आपको संस्कृत विद्वान् के रूप में सम्मानित किया था। आपका 'कुसुम लक्ष्मी' नामक संस्कृत उपन्यास देश के कई विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित था। संस्कृत के निरन्तर अध्ययन-मनन के कारण आप प्राय: पारस्परिक वार्तालाप में भी संस्कृत का ही प्रयोग किया करते थे। स्वभाव से सरल तथा व्यवहार से निश्छल आपका व्यक्तित्व वास्तव में गौरव का अधिकारी था।

आपका निधन 25 मई सन् 1979 को दिल का दौरा पड़ने के कारण गुड़गाँव में हुआ था, जहाँ पर उन्होंने निजी निवास बना लिया था।

महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती

आपका जन्म पश्चिमी पंजाब के गुजरात जिले के जलालपुर जट्टाँ नामक ग्राम में सन् 1883 में हुआ था। इनके पिता का नाम गणेशदास सूरी था और माता का नाम था जीवनदेवी। क्योंकि बाल्यावस्था से ही वे खुश रहा करते थे इसलिए इनका नाम 'खुशहालचन्द' रखा गया, जो बाद में कार्य-क्षेत्र में उतरने पर 'खुशहालचन्द खुरसन्द' हो गया। धीरे-धीरे जब इन पर हिन्दी का रंग पूरी तरह चढ़ गया तो इन्होंने अपने 'खुरसन्द' उपनाम को 'आनन्द' में बदल लिया। आप 'खुशहालचन्द आनन्द' हो गए। यह 'आनन्द' शब्द इनके नाम साथ ऐसा जुड़ा कि आप अपने जीवन के उत्तर पक्ष में 'आनन्द-स्वामी' के नाम से परिचित हो गए। स्वामीजी के पिता श्री गणेशदास की भेंट एक बार महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई थी। इस भेंट के परिणामस्वरूप ही आपका पालन-पोषण उन्होंने वैदिक विधि से किया था। वे उन्हें पीली धोती पहनाकर और रेहड़ी में बिठाकर घर से मील भर की दूरी वाले उस कस्बे में ले जाया करते थे जहाँ रखे 'हवन कुण्ड' में वे रोजाना हवन किया करते थे। परिवार के चलन के अनुसार उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू-फारसी में हुई थी। उन्हीं दिनों इनके गाँव के 'महन्तों के बाग' में स्वामी नित्यानन्द का आगमन हुआ। बालक 'खुशहाल' जो पढ़ते थे वह उनके दिमाग में टिकता ही न था, फलस्वरूप वे उदास रहने लगे थे। स्वामी नित्यानन्दजी ने उनसे जब इसका कारण पूछा तो उन्होंने उन्हें नित्य गायत्री मन्त्र के पारायण करने की सलाह दी।

नित्य-प्रति गायत्री मन्त्र का जप करने के कारण उनके मन पर चमत्कारी प्रभाव हुआ और उनकी स्मरण-शक्ति तेज हो गई। इस कारण छठी, सातवीं तथा आठवी कक्षाओं में आपने अच्छी सफलता प्राप्त की। गायत्री मन्त्र के प्रभाव के कारण ही आपने 'यंगमैन आर्यसमाज' की स्थापना भी अपने यहाँ कर ली। उन्हीं दिनों आर्यसमाज के यशस्वी नेता महात्मा हंसराजजी वहाँ की समाज के वार्षिक उत्सव पर पधारे। सभा में हुए महात्मा हंसराजजी के भाषण को युवक खुशहालचन्द ने अक्षरश: लिख लिया। महात्माजी ने जब उसे देखा तो उन पर मुग्ध हो गए और उन्होंने उनके पिता गणेशदासजी से उन्हें अपने पास लाहौर भेजने का अनुरोध

किया। दो महीने बाद जब महात्माजी का पत्र उनके पिताजी को मिला तो खुशहालचन्दजी को उन्होंने लाहौर भेज दिया। लाहौर की अनारकली आर्यसमाज में वे हंसराजजी से जाकर मिले। महात्माजी ने उन्हें वहाँ से प्रकाशित होने वाले उर्दू के साप्ताहिक 'आर्य गजट' के सम्पादक श्री रामप्रसाद के पास भेज दिया और वे उनके साथ कार्य करने लगे। उनका मासिक वेतन उस समय तीस रुपये मासिक था।

प्रारम्भ में उनको वहाँ 'अकाउण्टेण्ट' का कार्य सौंपा गया; लेकिन उन्होंने जब उस कार्य में अरुचि प्रदर्शित की तो महात्मा हंसराजजी ने इसका कारण पूछा। खुशहालचन्दजी ने अपनी दिक्कत बताते हुए कहा कि इस कार्य में तो मेरा सारा वेतन ही चला जाता है। क्योंकि मुझे हिसाब आता नहीं। हर महीने मुझे 20-25 रुपये का घाटा पूरा करना पड़ता है। फलस्वरूप 'हिसाब-किताब' रखने का कार्य उनसे ले लिया गया और वे 'आर्य गजट' के सहकारी सम्पादक बना दिए गए। वहाँ रहते हुए उनका झुकाव राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर हो गया। इस बीच उनके बड़े सुपुत्र रणवीरसिंह का सम्पर्क भी सरदार भगतसिंह से हो गया और वे दोनों आपस में मैत्री-बन्धन में इस प्रकार बँध गए कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में भी वे एक साथ भाग लेने लगे। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दिनों में देश में नव जागरण का सन्देश देने की दृष्टि से उनके मन में एक पत्र निकालने का संकल्प भी जगा। फलस्वरूप सन् 1923 के वैशाखी पर्व पर उन्होंने उर्दू में 'मिलाप' नाम से एक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके प्रकाशन की प्रेरणा भी महात्मा हंसराजजी ने ही दी थी। सम्पादक के रूप में नाम छपा 'खुशहालचन्द खुरसन्द'। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने न केवल पंजाब बल्कि सारे देश की उल्लेखनीय सेवा की थी। आजकल यह पत्र जालन्धर, दिल्ली तथा हैदराबाद के अतिरिक्त लन्दन से भी प्रकाशित हो रहा है।

'उर्दू मिलाप' का सम्पादन करते समय आपने आर्य-समाज के मंच से आर्य संस्कृति तथा वैदिक विचार-धारा के प्रचार का जो कार्य प्रारम्भ किया था उसमें उन्हें पग-पग पर 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' के महत्त्व का आभास होता रहा था। आर्यसमाज के मंच से वे बराबर हिन्दी के महत्त्व का प्रतिपादन किया करते थे, किन्तु सम्पादन करते थे उर्दू के पत्र का। इससे उनके मन में बड़ी वितृष्णा के भाव जगते थे। उनके मन में यह संकल्प जगा, "पंजाब में हिन्दी का तो एक भी पत्र नहीं है। राष्ट्र भाषा के रूप में जब हिन्दी समूचे देश की भाषा बन जायगी तो उस समय पंजाब के लोगों के लिए यह भाषा कितनी अजनबी होगी? उन वेदों का ठीक-ठीक प्रचार कैसे होगा जो संस्कृत के बाद केवल हिन्दी द्वारा ही सम्भव है।" उन्हें यह बात पंजाब के मस्तक पर कलंक के समान लगी और उन्होंने इस कलंक के परिमार्जन का संकल्प मन-ही-मन कर लिया। फलतः सन् 1930 में 'दैनिक हिन्दी मिलाप' का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया गया और इसके लिए उन्हें काफी त्याग भी करना पड़ा। अनेक वर्ष तक 'हिन्दी मिलाप' के प्रकाशन में होने वाले घाटे को उन्होंने 'उर्दू मिलाप' के द्वारा पूरा किया, किन्तु उसका प्रकाशन बन्द नहीं होने दिया। सन् 1930 से सन् 1955 तक 'हिन्दी मिलाप' लगभग दस लाख रुपये खा चुका था। जब लोगों ने उनसे कहा कि आप आखिर कब तक इस घाटे को सहन करते रहेंगे। खुशहालचन्दजी का उत्तर था—"जब तक उर्दू का अखबार लाभ में जा रहा है तब तक हिन्दी का अखबार घाटे में भी छपता रहे। तब भी मैं इसे जारी रखूँगा।" यही नहीं उन्होंने अपने नाम के पीछे लगने वाला 'खुरसन्द' शब्द भी बदलकर 'आनन्द' कर लिया।

आज के व्यावसायिक युग में यह घटना एक चमत्कार ही लगती है कि 'हिन्दी मिलाप' हैदराबाद तथा जालन्धर से अब भी निरन्तर प्रकाशित हो रहा है। आर्यसमाज के प्रचार की धुन उनमें इतनी थी कि वे उसके लिए बड़े-से-बड़ा त्याग करने को उद्यत रहते थे। उन्होंने अपने कर्ममय जीवन में अनेक आन्दोलनों में भाग लिया और सफलता भी प्राप्त की। जब वे पारिवारिक दायित्वों से सर्वथा मुक्त हो गए तो उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और 'आनन्द स्वामी सरस्वती' कहलाने लगे। वे एक उत्कृष्ट

पत्रकार, सफल प्रचारक और ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ता होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक भी थे। वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार तथा प्रसार करने की दिशा में भी आपने अपनी लेखनी का सफल प्रयोग किया था। आपकी 'प्रभु भक्ति', 'प्रभुदर्शन', 'तत्त्व ज्ञान', 'महा मन्त्र', 'आनन्द भागवत् कथा', 'सुखी गृहस्थ', 'मानव और मानवता', 'प्रभु मिलन की राह', 'घोर घने जंगल में', 'दो रास्ते', 'उपनिषदों का सन्देश', 'एक ही रास्ता', 'दुनिया में रहना किस तरह', 'मानव-जीवन-गाथा', 'आनन्द गायत्री कथा', 'भक्त और भगवान्', 'शंकर और दयानन्द', 'यह धन किसका है' तथा 'बोध कथाएँ' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 24 अक्तूबर सन् 1977 को नई दिल्ली में हुआ था।

श्री आलूरि वैरागी चौधरी

श्री वैरागी चौधरी का जन्म आन्ध्र प्रदेश के गुण्टूर जिले के तेनाली नामक स्थान मे सन् 1925 में हुआ था। आप तेलुगु-भाषी होते हुए भी हिन्दी के निष्णात लेखक और हिन्दी विद्यापीठ देवघर के स्नातक थे। आप तेलुगु और हिन्दी के अतिरिक्त अँग्रेजी तथा अन्य कई भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे। एक उत्कृष्ट कहानीकार और सरस निबन्धकार के रूप में आन्ध्र प्रदेश में आपका विशेष स्थान है। आपकी हिन्दी कविताओं का एक संग्रह 'बदली की रात' नाम से प्रकाशित हो चुका है, जिसका हिन्दी जगत् में पर्याप्त समादर हुआ है।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में आपने कुछ वर्ष तक मद्रास से प्रकाशित होने वाले प्रख्यात बाल-मासिक 'चन्दा मामा' के हिन्दी संस्करण के सम्पादन में भी अपना अनन्य योगदान दिया था। तेलुगु भाषा के उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ आपने 'आधुनिक तेलुगु कविता' नामक तेलुगु कविताओं का एक संकलन भी सम्पादित और अनूदित करके हिन्दी में प्रकाशित कराया था। इस संकलन में उनके अतिरिक्त तेलुगु भाषा के अन्य 31 कवियों की चुनी हुई रचनाएँ समाविष्ट हैं। इस संकलन में 'आधुनिक तेलुगु कविता' शीर्षक से जो विशद भूमिका लिखी है उससे उनकी काव्यालोचन-पद्धति का भी परिचय मिलता है।

आपका निधन सन् 1978 में हैदराबाद में हुआ था।

सैयद इंशाअल्ला खाँ

सैयद इंशाअल्ला खाँ का जन्म मुर्शिदाबाद (बंगाल) में सन् 1766 में हुआ था। इनके पिता मीर माशाअल्ला खाँ कश्मीर से आकर दिल्ली में बस गए थे और यहाँ 'शाही हकीम' के रूप में प्रतिष्ठित थे। जब यहाँ के मुगल-सम्राट् की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई तब वे मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ चले गए थे। जब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला मारे गए और वहाँ पर अशान्ति फैल गई तब इंशाअल्ला खाँ दिल्ली चले आए और शाह आलम दूसरे के दरबार में रहने लगे। उस समय तक वे पढ़-लिखकर अच्छे विद्वान् तथा कवि हो गए थे।

दिल्ली आकर इंशाअल्ला खाँ ने अपनी प्रतिभा से शाह आलम के दरबार के प्रायः सभी शायरों को पराभूत करके अपना महत्त्व प्रस्थापित कर लिया था; किन्तु यहाँ भी दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा। जब गुलाम कादिर ने बादशाह को अन्धा कर दिया और वह शाही खजाना लूटकर चला गया तब इंशा का भी दिल्ली में निर्वाह होना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप सन् 1798 में वे लखनऊ चले गए और वहाँ के नवाब सआदतअली खाँ के दरबार में आना-जाना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे वे वहाँ शाहजादा मिर्जा सुलेमान की सेवा में नियुक्त हो गए और नवाब सआदत-अली के वजीर तफज्जुलहुसेन खाँ के सम्पर्क तथा सहायता से उन्होंने दरबार में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। पहले तो इनकी नवाब से काफी घनिष्ठता रही, किन्तु बाद में अचानक उनके किसी अभद्र मजाक के कारण नवाब बिगड़ गए और उन्हें दरबार से अलग होना पड़ा। उनके अन्तिम दिन गहन अर्थ-संकट में गुजरे थे।

इंशाअल्ला खाँ जहाँ उर्दू और फारसी के उत्कृष्ट कवि

थे वहाँ खड़ी बोली हिन्दी के गद्य को सुपुष्ट करने की ओर भी उनका ध्यान गया था। उनकी 'उर्दू गजलों का दीवान', 'दीवाने रेख्ती', 'कसायद उर्दू-फारसी', 'फारसी मसनवी', 'दीवाने फारसी', 'मसनवी बेनुक्त', 'मसनवी शिकारनामा' और 'दरियाये लताफत' आदि उर्दू-रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। आपकी हिन्दी रचनाओं में 'रानी केतकी की कहानी या उदयभान चरित' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में उन्होंने उर्दू-फारसी की लीक को छोड़कर तथा ब्रजभाषा, अवधी और संस्कृत में तत्सम शब्दों को सर्वथा अलग रखकर एक सर्वथा नई शैली ही अपनाई थी, जिसमें उन्होंने 'हिन्दवी का छुट और किसी बोली का पुट न होने' की बात स्वीकार की है। इंशा की कहानी के इस गद्य में जहाँ भाषा, शैली और वर्ण्य वस्तु की नवीनता दृष्टिगत होती है वहाँ वह चटपटी, मनोरंजक और शिक्षा-प्रद भी है। ठेठ घरेलू शब्दों के प्रयोग के कारण यह इतनी ग्राह्य हो गई है कि साधारण जन भी इससे पूर्णतः लाभान्वित हो सकते हैं।

इस पुस्तक को देखकर हमें इस बात का सही परिचय मिलता है कि उस काल में मुसलमान लोग जिस भाषा का प्रयोग करते थे उसमें अरबी-फारसी के अतिरिक्त ब्रजभाषा और संस्कृत के शब्द भी प्रचुरता से प्रयुक्त होते थे। 'रानी केतकी की कहानी' की भाषा खड़ी बोली के प्राक्तन रूप का सही उदाहरण प्रस्तुत करती है। उन्होंने इसके माध्यम से 'मुअल्लापन' और 'भाखापन' को सर्वथा दूर रखकर भाषा को उसके सही तथा स्वाभाविक रूप में प्रस्थापित किया था। उनकी इस कृति ने जहाँ हिन्दी गद्य को एक सर्वथा नए रूप में प्रस्तुत किया है वहाँ उससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि 'भाखापन' के चक्कर से निकलकर हिन्दी अपने सही रूप में प्रतिष्ठित होने की अधिकारिणी है।

इनका निधन सन् 1817 में हुआ था।

श्री इकबाल वर्मा 'सेहर'

श्री वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद के हथगाम नामक ग्राम के एक श्रीवास्तव कायस्थ-परिवार में सन् 1884 में हुआ था। अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के पूर्वज भी मूलतः इसी ग्राम के निवासी थे। श्री सेहर के पिता व्यवसाय के मुख्तार थे, किन्तु साहित्य के प्रति भी उनका अद्भुत लगाव था। अपने छात्र-जीवन में श्री सेहर इतने मेधावी थे कि हाई स्कूल परीक्षा में उन्होंने उत्तर-प्रदेश में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके प्रथम स्थान ग्रहण किया था। कदा-

चित् यह बात बहुत कम लोग जानते होंगे कि प्रेमचन्दजी ने जब अपने उपन्यासों को हिन्दी में प्रकाशित करने का निश्चय किया तो प्रारम्भ में उनके कई उर्दू उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद श्री सेहरजी ने ही किया था। बाद में प्रेमचन्दजी स्वयं ही हिन्दी में लिखने लगे थे। हिन्दी और उर्दू के अच्छे जानकार होने के साथ-साथ सेहरजी फारसी के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके द्वारा फारसी से हिन्दी में अनूदित पुस्तकों में 'उमर खय्याम की रुबाइयाँ' तथा 'करीमा' के नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपके 'शराबी' तथा 'अफयूनी' नामक हिन्दी कविताओं के दो संकलन भी प्रकाशित हुए थे।

आपका निधन सन् 1942 में 58 वर्ष की आयु में अपने ही ग्राम में हुआ था।

उपाध्याय इन्दु शर्मा भारद्वाज

श्री शर्माजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के किरठल नामक ग्राम में सन् 1883 में हुआ था। आर्यसमाज की विचार-धारा से विशेष रूप से प्रभावित होने के कारण आप समाज-सुधार की दिशा में अग्रणी स्थान रखते थे। एक उत्कृष्ट गद्य लेखक होने के साथ-साथ आप उच्चकोटि के काव्य-मर्मज्ञ भी थे। आपकी गद्य रचनाओं में 'रणवीर

अभिमन्यु' (1912), तथा 'अंगराज कर्ण' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने 'कन्योपनयन संस्कार' नामक एक पुस्तक और लिखी थी जो इस समय उपलब्ध नहीं है। इस पुस्तक में उन्होंने कन्याओं को यज्ञोपवीत देने के विषय में आर्यसमाज के दृष्टिकोण का विवेचन किया था। आपके द्वारा संकलित 'खयाल सरोवर' (1912) नामक एक और पुस्तक उपलब्ध है।

आपका निधन सन् 1913 में हुआ था।

प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रो० इन्द्रजी का जन्म 9 नवम्बर सन् 1889 को पंजाब के जालन्धर नगर में हुआ था। आपके पिता का नाम महात्मा मुन्शीराम था, जो बाद में 'स्वामी श्रद्धानन्द' के रूप में विख्यात हुए थे। इन्द्रजी का बचपन का नाम 'इन्द्रचन्द्र' था। यह भी एक दैव-योग की बात है कि आपके जन्म से पाँच दिन बाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म हुआ था। दोनों के ही पिता साथ-साथ एक कालेज में पढ़ते थे और एक साथ ही अखाड़े में कुश्ती लड़ते थे। अपनी इस पारिवारिक याद को बनाए रखने के लिए ही इन्द्रजी ने दिल्ली में जब अपना निजी निवास बनाया तो वह भी जवाहरनगर में बनाया।

इन्द्रजी के पिता आर्यसमाज के प्रमुख नेताओं में थे। यही बात बालक इन्द्रजी के जीवन को बदलने वाली थी। उनके जन्म के वर्ष में ही महात्मा मुन्शीराम ने उर्दू में 'सद्धर्म प्रचारक' नामक पत्र निकाला था, जो आर्यसमाज का मुख-पत्र माना जाता था। सौभाग्य के साथ दुर्भाग्य भी लगा ही रहता है। अभी उनकी आयु केवल 2 वर्ष की ही थी कि माता का देहान्त हो गया। उनका लालन-पालन उनकी ताई श्रीमती जमुनादेवी की गोद में हुआ। उनके पिताजी के पास उन दिनों आर्य पथिक लेखराम जी आया करते थे। कल्याण मार्ग के उन दोनों पथिकों के वार्तालाप को बालक इन्द्र जब सुनता था तब उसके मानस में भी वैसे ही संस्कार पनपते जा रहे थे। जब वे केवल 3 वर्ष के थे तब उनके पिताजी पंजाब की 'आर्य प्रतिनिधि सभा' के प्रधान निर्वाचित हुए। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जालन्धर के 'दोआबा हाईस्कूल' में हुई। उनके बड़े भाई हरिश्चन्द्र भी उसी स्कूल में पढ़ते थे। दोनों भाई उन दिनों 'सत्य प्रकाश व असत्य विचारक' नामक एक हस्तलिखित अखबार निकालते थे। उस पत्र पर 'सद्धर्म प्रचारक' तथा 'सरस्वती' दोनों की छाप रहती थी। उस समय इन्द्रजी की आयु 7 वर्ष की होगी और हरिश्चन्द्र की 9 वर्ष की। उनकी पत्रकारिता का यह पहला अनुभव था।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रधान बनने पर महात्मा मुन्शीराम ने आर्यसमाज के लिए उपदेशक तैयार करने की दृष्टि से सन् 1891 में 'उपदेशक श्रेणी' नाम से लाहौर में एक पाठशाला खोली, जो बाद में सन् 1893 में वहाँ से जालन्धर आ गई और इसका नाम बदलकर 'वैदिक पाठ-शाला' कर दिया गया। इस पाठशाला के आचार्य पं० गंगा-दत्त जी (बाद में स्वामी शुद्धबोध तीर्थ) थे और पहले चार छात्र थे—पं० भगतराम (डीमा निवासी), पं० विश्वमित्र, पं० पद्मसिंह शर्मा और पं० नरदेव शास्त्री। इस पाठशाला के प्रबन्ध का सारा दायित्व महात्मा मुन्शीराम का था। यह पाठशाला बाद में सन् 1893 में गुजराँवाला भेज दी गई और इसका नाम 'गुरुकुल गुजराँवाला' रख दिया गया। कांगड़ी में स्थापित होने वाले गुरुकुल की यह भूमिका थी। बालक इन्द्रजी को अपने बड़े भाई हरिश्चन्द्र के साथ इसी गुरुकुल में अध्ययनार्थ भेज दिया गया।

इसी बीच महात्मा मुन्शीराम को बिजनौर जिले के कांगड़ी ग्राम के मुन्शी अमनसिंह ने अपना सारा गाँव गुरुकुल की स्थापना के लिए भेंट कर दिया। उनकी आशा पूरी हुई और फूँस के कुछ छप्पर वहाँ बनवाकर आप गुजराँवाला पहुँचकर सारे ब्रह्मचारियों को लिवा लाए। इस प्रकार अपनी शिक्षा इस गुरुकुल में पूर्ण करके इन्द्रजी सन् 1912

में स्नातक हुए। प्रारम्भ में आपने वहाँ पर ही संस्कृत साहित्य, तुलनात्मक आर्य सिद्धान्त एवं इतिहास विषयों का अध्यापन किया और सन् 1914 से सन् 1960 तक आपने सहायक मुख्याधिष्ठाता और कुलपति के रूप में इस संस्था की सेवा की। पत्रकारिता के क्षेत्र में तो आप सन् 1911 में उसी समय आ गए थे जब छात्र थे और मुन्शीरामजी ने 'सद्धर्म प्रचारक' नामक दैनिक पत्र प्रारम्भ किया था। उसके बाद आपने 'विजय' साप्ताहिक (1918), 'सत्यवादी' साप्ताहिक (1923), 'नवराष्ट्र' (1939), और 'जनसत्ता' (1952) आदि कई पत्रों का सम्पादन करने के अतिरिक्त 'अर्जुन' (जो बाद में 'वीर अर्जुन' हो गया था) नामक साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र का अनेक वर्ष तक निष्ठापूर्ण सम्पादन किया था।

'वीर अर्जुन' के सम्पादन के दिनों में आपको कई बार ब्रिटिश नौकरशाही से भी डटकर लोहा लेना पड़ा था। इस कार्य-काल में दिल्ली में रहते हुए आपने जहाँ कई वर्ष तक जिला व प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के प्रधान के रूप में जनता का सफल नेतृत्व किया था वहाँ आप 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के मन्त्री तथा प्रधान रहने के अतिरिक्त आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब और अखिल भारतीय पत्रकार संघ के भी अध्यक्ष रहे थे। आप लोक सेवा आयोग तथा भारत के शिक्षा मन्त्रालय की अनेक समितियों के भी सम्मानित सदस्य के रूप में कार्य करने के साथ-साथ दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी और राज्य सभा के भी सदस्य रहे थे।

एक उच्चकोटि के निर्भीक पत्रकार के रूप में आपने जहाँ देश के राष्ट्रीय जागरण में अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया वहाँ एक गम्भीर और चिन्तनशील विचारक एवं लेखक के रूप में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। आपने जहाँ अनेक ऐतिहासिक तथा राजनीतिक उपन्यासों की रचना की वहाँ भारतीय इतिहास, राजनीति, जीवनी, संस्कृति एवं धर्म की महत्ता पर प्रकाश डालने वाले अनेक ग्रन्थ भी लिखे। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण', 'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त', 'भारत के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास', 'आर्यसमाज का इतिहास, 'संस्कृत साहित्य का अनुशीलन', 'भारतीय संस्कृति व राजनीति', 'उपनिषदों की भूमिका', 'भारतीय संस्कृति का प्रवाह', 'ईशोपनिषद् भाष्य', 'राष्ट्रों की उन्नति', 'राष्ट्रीयता का मूल मन्त्र', 'स्वतन्त्र भारत की रूपरेखा', 'राजधर्म', 'गांधी हत्या कांड', 'स्वराज्य और चरित्र निर्माण', 'भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति', 'जीवन-संग्राम', 'मेरे पत्रकारिता सम्बन्धी अनुभव', 'मैं इनका ऋणी हूँ', 'लोकमान्य तिलक', 'मेरे पिता', 'नेपोलियन बोनापार्ट', 'प्रिन्स बिस्मार्क', 'जीवन-झाँकियाँ', 'गैरीबाल्डी', 'महर्षि दयानन्द', 'पं० जवाहरलाल नेहरू', 'हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति', 'सम्राट् रघु', 'अपराधी कौन', 'शाह आलम की आँखें', 'जमींदार', 'सरला की भाभी', 'सरला', 'आत्म बलिदान', 'गुलाम कादिर' और 'स्वर्ण देश का उद्धार' आदि उल्लेखनीय हैं।

पत्रकारिता के संस्कार आपके मानस में बचपन से ही थे। इसी कारण छात्र जीवन में भी आपने 'सद्धर्म प्रचारक' के लिए लेख आदि लिखने के साथ-साथ 'उषा' तथा 'सत्य प्रकाशक' नामक हस्तलिखित पत्रिकाएँ भी सम्पादित की थीं। अपने अध्ययन-काल में संस्कृत तथा हिन्दी की काव्य-रचना करने में भी आप बहुत निष्णात थे। उनकी छात्र-जीवन की यह कविता उनकी उदात्त प्रकृति की द्योतक है—

"हे मातृभूमि तेरे चरणों में सिर नवाऊँ,
मैं भक्ति-भेंट अपनी तेरी शरण में लाऊँ।
तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही मंत्र गाऊँ,
मन और देह तुझ पर बलिदान मैं चढ़ाऊँ।।"

बचपन की यह बलिदानी भावना उनके सार्वजनिक जीवन को निखारने में कितनी सक्रिय सिद्ध हुई इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि देश की स्वाधीनता के लिए पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक संघर्ष करने के साथ-साथ उन्होंने तीन बार (सन् 1927, 1930, 1932) जेल-यात्राएँ भी कीं। हिन्दी पत्रकारिता, साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में की गई बहुविध सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से सन् 1942 में 'साहित्य वाचस्पति' की सम्मानित उपाधि से भी अलंकृत किया गया था।

'वीर अर्जुन' के अतिरिक्त इन्द्रजी ने 'साप्ताहिक वीर अर्जुन' और 'मनोरंजन' (मासिक) नामक पत्र भी प्रकाशित किये थे। यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी-प्रेमी पाठकों ने इन्हें भी उदारतापूर्वक अपनाया था।

आपका निधन 23 अगस्त सन् 1960 को दिल्ली में हुआ था।

मुन्शी इन्द्रदेवनारायण

श्री नारायण का जन्म बिहार के चम्पारन जिले के केसरिया नामक ग्राम में सन् 1871 में हुआ था। जब वे आठवीं कक्षा में ही पढ़ रहे थे तब उनके पिता का देहावसान हो गया और विवश होकर पढ़ाई बीच में ही छोड़कर आप डी० एन० डब्ल्यू० रेलवे के हाजीपुर डिवीजन में क्लर्क हो गए और कुछ ही दिनों में आप उसके इंजीनियरिंग विभाग में एकाउन्टेण्ट पद पर पहुँच गए, और इस पद पर कार्य करते हुए आप क्रमशः बलरामपुर, गोंडा और मुजफ्फरपुर आदि कई नगरों में रहे। रेलवे की सेवा से निवृत्ति पाकर आप बेतिया राज्य के इंजीनियरिंग विभाग में कई वर्ष तक एकाउन्टेण्ट रहे और बाद में वहाँ से त्यागपत्र देकर बलरामपुर के राजा के यहाँ चले गए। वहाँ उनको एक गाँव राजासाहब ने दे दिया था, जो सन् 1918 में जब महाराजा का देहान्त हो गया तो सरकार ने उनसे वापिस ले लिया। इसके बाद वे दरभंगा राज्य में आकर वहाँ के लेखाधिकारी नियुक्त हो गए और अपने जीवन के अंतिम समय तक वहीं पर रहे थे।

आप तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् और टीकाकार थे। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'मानस मयंक', 'रामनाम कोश', 'मणि मंजूषा', 'हनुमान बाहुक' तथा 'कवितावली की टीका' आदि प्रमुख हैं। आपने रामचरित मानस की भी एक विस्तृत टीका तैयार की थी जिसका प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका है। आपका निधन सन् 1941 में हुआ था।

श्री इन्द्रबहादुर खरे

श्री खरे का जन्म 16 दिसम्बर सन् 1922 को मध्यप्रदेश के गाडरवारा नामक स्थान में हुआ था। आपने जबलपुर में शिक्षा प्राप्त की थी और वहाँ पर ही शिक्षक का कार्य करते थे। आपके अध्ययन-अध्यापन के केन्द्र, अनुभव, अर्जन और अविराम गतिशील बनने के चिह्न जबलपुर ने निकट से देखे थे।

आप कोमल कल्पना के कवि थे और आपकी अभिव्यक्ति अत्यन्त स्पष्ट और तीखी होती थी। अपनी छोटी-सी उम्र में आपने हिन्दी को अपने गीतों से समृद्ध करने का जो प्रयास किया था वह अभूतपूर्व था। आपने मानव-सुलभ आन्तरिक प्यार की मनुहारें, अभाव-जन्य मधुर पीड़ाएँ बड़ी ही सुन्दरता से चित्रित की थीं।

आपने अपनी काव्य-पद्धति के सम्बन्ध में यह सही ही कहा था—"कविता मेरे जीवन के अभावों की पूर्ति है। कविता में मुझे आनन्द के चिर स्रोत के दर्शन होते हैं।" आपकी रचनाओं में सायासता बिलकुल भी परिलक्षित नहीं होती। उनमें छायावाद के अन्तिम चरण की मधुरिमा और रहस्यमयता कूट-कूटकर भरी हुई है।

आपकी रचनाओं का एक संकलन 'जबलपुर साहित्य संघ' ने आपके निधन के उपरान्त 'विजन के फूल' नाम से प्रकाशित किया था, जिसकी भूमिका सुकवि श्री भवानीप्रसाद तिवारी ने लिखी थी। यह दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी का इतना प्रतिभाशाली कवि असमय में ही सन् 1952 में इस संसार से विदा हो गया।

मुन्शी इन्द्रमणि

श्री मुन्शीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नामक नगर में सन् 1865 में हुआ था। आप महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आकर हिन्दी की ओर उन्मुख हुए। वैसे आपके परिवार में परम्परागत रूप में उर्दू और फारसी का ही प्रचलन होता था। स्वामीजी के सम्पर्क में आकर उन्होंने सर्वप्रथम उनके अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के

चौदहवें तथा पन्द्रहवें समुल्लास के लेखन में अपना अनन्य सहयोग दिया। वास्तव में स्वामीजी बोलते जाते थे और मुन्शीजी उसे लिपिबद्ध किया करते थे। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'वेद समीक्षा', 'कुरान समीक्षा', 'बाइबिल समीक्षा' (सभी 1890 तथा 1907 के बीच प्रकाशित), 'इन्द्र वज्र' (1901) तथा 'वेद द्वार प्रकाश' के नाम उल्लेखनीय हैं। आपके इन सभी ग्रन्थों का प्रकाशन मुरादाबाद के 'तन्त्र प्रभाकर प्रेस' से हुआ था।

आपका निधन सन् 1921 में हुआ था।

श्री इन्द्रसेन वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म राजस्थान के कोटा नामक नगर में 23 मार्च सन् 1906 को एक सम्भ्रान्त आर्य कायस्थ-परिवार में हुआ था। अपने परिवार के संस्कार उनमें कूट-कूटकर भरे थे इसलिए उनका आर्यसमाज से निकट का सम्बन्ध हो गया और थोड़े ही दिनों में उनकी रुचि लेखन की ओर हो गई।

एम० ए० एल-एल० बी० तक उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप कोटा रियासत के जिलाधीश (प्रथम श्रेणी) हुए और इस पद पर रहकर आपने राज्य की जनता की सेवा अत्यन्त निष्ठापूर्वक की।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'विद्यार्थी हितोपदेश' और 'क्रामवेल का जीवन चरित' हैं। आपने 'हिन्दी लोकोक्ति सागर' नामक ग्रन्थ का निर्माण भी किया था, जो प्रकाशित नहीं हो सका।

आपका देहावसान 30 जुलाई सन् 1948 को एक मोटर दुर्घटना में हुआ था।

श्री ईलिलचन्द्र

श्री ईलिलचन्द्र का जन्म उत्तर प्रदेश के पौड़ी-गढ़वाल नामक नगर में 15 अक्तूबर सन् 1958 को हुआ था। ईलिलचन्द्र के पिता श्री निरंकुश स्वयं एक साहित्य-प्रेमी व्यक्ति हैं। उनके संस्कार ही शायद उनमें समाए हुए थे तब ही तो वे बाल्य-काल से अच्छी कहानियाँ लिखने लगे थे। उनकी पहली रचना 12 वर्ष की आयु में प्रस्फुटित हुई थी। हास्य-रस की कहानियाँ लिखने में वे दक्ष थे। उनकी रचनाएँ 'चम्पक', 'लोट-पोट', 'रंग चकल्लस', 'लल्लू-पंजू' और 'अमिता' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी।

हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में ससम्मान उत्तीर्ण करने के उपरान्त उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था और बी० ए० की परीक्षा में भी पूरे विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान प्राप्त किया था। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस कलाकार ने बहुत छोटी आयु में अपनी जीवन-लीला 22 फरवरी सन् 1978 को केवल 20 वर्ष की आयु में ही समाप्त कर दी।

आपकी कहानियों का संग्रह 'डायरी बोलती है' नाम से उनके देहावसान के बाद प्रकाशित हुआ है। इन रचनाओं की प्रशंसा हिन्दी के विख्यात लेखक सर्वश्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल और के० पी० सक्सेना ने मुक्त कण्ठ से की है।

श्री ईशदत्त पाण्डेय 'श्रीश'

श्री 'श्रीश' का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के

मूँगदास (कोपागंज) नामक ग्राम में सन् 1915 में हुआ था। आप मूलतः संस्कृत की साहित्याचार्य, दर्शनाचार्य, काव्यतीर्थ और विद्यावाचस्पति उपाधियों से विभूषित विद्वान् थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'साहित्यरत्न' परीक्षा भी आपने ससम्मान उत्तीर्ण की थी।

संस्कृत तथा हिन्दी-वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान् होने के कारण आपकी प्रतिभा ने हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में अपने वैदुष्य का परिचय दिया था। आपने जहाँ संस्कृत के अनेक काव्यों की रचना की थी वहाँ आपने हिन्दी-काव्य की श्री-वृद्धि में भी अपना अनन्य सहयोग दिया था। आपकी 'झाँसी की रानी', 'कण्ठहार', 'राम वन गमन', 'शंखनाद', 'आदर्श गो-सेवक दिलीप' तथा 'कालिदास' आदि हिन्दी-काव्य-कृतियाँ अपनी विशिष्टता के लिए विख्यात हैं। आपका 'सम्राट् विक्रमादित्य और उनके नवरत्न' नामक शोध-ग्रन्थ आपकी गद्य-लेखन-क्षमता का ज्वलन्त साक्षी है।

एक उत्कृष्ट कवि तथा सफल गद्य-लेखक होने के साथ-साथ आप उच्चकोटि के पत्रकार भी थे। संस्कृत की 'सुप्रभातम्', 'ज्योतिष्मती' तथा 'भारत श्री' आदि पत्रिकाओं के सम्पादन में सहयोग देने के अतिरिक्त आपने 'आदेश' (मेरठ), 'राजहंस' तथा 'अप्सरा' आदि हिन्दी पत्रों के सम्पादन में भी अभूतपूर्व कौशल प्रदर्शित किया था। आपने काशी से प्रकाशित होने वाले 'संसार' दैनिक के सम्पादकीय विभाग में भी कई वर्ष तक कार्य किया था। कुछ दिन आप गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के स्नातकोत्तर विभाग में शिक्षक भी रहे थे। सन् 1940-41 में आप महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के निजी सचिव भी रहे थे। आपको अपनी अनेक रचनाओं पर 'पदक' तथा 'पुरस्कार' भी प्राप्त हुए थे।

आपका निधन सन् 1945 में हुआ था।

डॉ० ईश्वरदत्त विद्यालंकार

डॉ० ईश्वरदत्त विद्यालंकार का जन्म उत्तर प्रदेश के नैनीताल जनपद के जसपुर नामक कस्बे में 28 अगस्त सन् 1896 को हुआ था। आपने उत्तर भारत की शिक्षा-संस्था 'गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी' से सन् 1919 में 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त करके प्रारम्भ में पूर्वी अफ्रीका में जाकर गुरुकुल के लिए प्रचार-कार्य किया और वहाँ से 50 हजार रुपए की राशि दान में भिजवाई। फिर वे दक्षिण अफ्रीका में प्रचार-कार्य के लिए चले गए। वहाँ से लौटकर आप सन् 1923-24 में गुजरात प्रदेश के सूपा नामक स्थान में नवस्थापित गुरुकुल में कार्य करने के लिए चले गए और उसकी उन्नति में अभूतपूर्व योगदान दिया। सन् 1928 में म्युनिच विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० करने के उपरान्त आपने सन् 1929 से 1951 तक बिहार की अनेक शिक्षा-संस्थाओं में अध्यापन का कार्य किया। सन् 1951 से 1956 तक आप खगड़िया के डिग्री कालेज के प्राचार्य रहे और वहाँ से निवृत्ति पाने के उपरान्त आप पटना विश्वविद्यालय में आ गए और वहाँ के अध्यापकों में आपने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

डॉ० ईश्वरदत्त भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् और भाषा-शास्त्र के पारंगत पंडित थे। पटना विश्वविद्यालय के कार्य-काल में आपने भाषा के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय प्रयोग किए थे। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के त्रैमासिक पत्र 'साहित्य' में 'बाधति बाधते' स्तम्भ के अन्तर्गत आपने 'छात्रा-छात्री' के प्रयोगविषयक विवाद में जमकर भाग लिया था। उन दिनों प्रख्यात मनीषी श्री नलिनविलोचन शर्मा इस पत्र का सम्पादन किया करते थे और उन्होंने ही इस विवाद को प्रारम्भ किया था। श्री हरिशंकर पाण्डेय 'छात्री' शब्द के प्रयोग के समर्थक थे और डॉ० ईश्वरदत्त 'छात्रा' के। वह विवाद भाषा विज्ञान के क्षेत्र में एक स्पृहणीय विशेषता रखता है। इसी प्रकार एक बार 'परिप्रेक्ष्य' तथा 'परिपेक्ष्य' शब्द के प्रयोग को देखकर भी आपने अद्भुत वाक्पटुता प्रदर्शित की थी।

आपने जहाँ संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न अंगों का चूड़ान्त अध्ययन किया था वहाँ भारत की प्राचीन विद्या 'धनुर्वेद' में भी उनकी अद्भुत गति थी। आपकी पाण्डित्य-

प्रतिभा से प्रभावित होकर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने उन्हें अपने 'वयोवृद्ध साहित्यिक सम्मान पुरस्कार' से सम्मानित करके अपना गौरव-वर्धन किया था। आपकी अनेक शोधपूर्ण कृतियाँ अभी भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। आपका पी-एच०डी० का शोध-प्रबन्ध 'रामानुज का गीता भाष्य' अपनी शोधपूर्ण प्रज्ञा के लिए विख्यात है। 'जिन ढूँढा तिन पाइयाँ' नामक आपकी कृति भी उल्लेखनीय है।

आपका निधन 1 दिसम्बर सन् 1978 को अपनी पुत्री के पास भागलपुर में हुआ था।

डॉ० ईश्वरदत्त 'शील'

डॉ० शील का जन्म 13 जून सन् 1925 को कानपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपकी शिक्षा गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार), ओरियण्टल कालेज, लाहौर और डी० ए० वी० कालेज, कानपुर मे हुई थी। आपने संस्कृत की 'प्राज्ञ', गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर की 'विद्यानिधि', पंजाब विश्वविद्यालय की 'हिन्दी प्रभाकर' आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के साथ-साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'साहित्य रत्न' और एम० ए०(हिन्दी-संस्कृत) की परीक्षाएँ भी ससम्मान उत्तीर्ण की थीं।
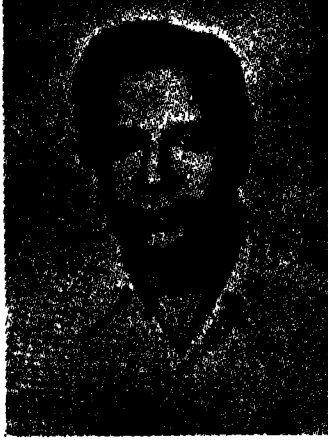
आपने 17 वर्ष की आयु से लाहौर के 'सेण्ट्रल कालेज फॉर विमेन' में सन् 1943 से अध्यापन प्रारम्भ किया और बाद में भारत-विभाजन के उपरान्त बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे और सन् 1969 से अन्तिम समय तक युवराजदत्त कालेज, लखीमपुर (उत्तर प्रदेश) के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के रूप में कार्य करते रहे थे। आपने 'प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ' विषय पर शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत करके 'पी-एच० डी०' की उपाधि भी प्राप्त की थी।

एक सफल अध्यापक होने के साथ-साथ आप उत्कृष्ट कवि और गम्भीर समीक्षक भी थे। आपने भाषा-विज्ञान, साहित्यालोचन तथा इतिहासविषयक अनेक पुस्तकें लिखी थीं; जिसमें 'भाषा विज्ञान', 'साहित्यालोचन', 'हिन्दी भाषा का विकास', 'संस्कृत साहित्य का सरल इतिहास' और 'वेद-सुधा' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या लगभग 36 है। इनके अतिरिक्त बहुत-सा अप्रकाशित साहित्य भी अभी प्रकाशन की राह देख रहा है। आपकी सहधर्मिणी श्रीमती कौशल्या 'शील' भी एक विदुषी हैं और वे आजकल गुरु नानक गर्ल्स डिग्री कालेज में 'हिन्दी विभागाध्यक्षा' हैं।

श्री शील की कविताओं का संकलन उनके देहान्त के बाद 'आलोक रश्मियाँ' नाम से प्रकाशित हुआ है। उनका निधन 23 अगस्त सन् 1978 को हुआ था।

श्री ईश्वरदास जालान

श्री ईश्वरदास जालान का जन्म 30 मार्च सन् 1895 को मुजफ्फरपुर में हुआ था। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० बी० एल० तथा एटर्नी लॉ की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। आपका रचना-काल सन् 1912 से प्रारम्भ होता है और आपकी अनेक स्फुट रचनाएँ 'सरस्वती', 'भारत मित्र' और 'मर्यादा' आदि पुरानी

पत्रिकाओं में देखने को मिलती हैं। हिन्दी में लिखी आपकी पुस्तक 'लिमिटेड कम्पनियाँ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1923 में पंडित झाबरमल्ल शर्मा ने जसरापुर (राजस्थान) से किया था।

एक अच्छे साहित्य-प्रेमी होने के साथ-साथ आप उत्कृष्ट समाज-सेवी भी थे। सन् 1947 से सन् 1952 तक आप पश्चिम बंगाल विधान सभा के अध्यक्ष रहने के अतिरिक्त अनेक वर्ष तक पश्चिम बंगाल सरकार के कानून मन्त्री पद को भी सुशोभित करते रहे थे।

आपका निधन सन् 1979 में हुआ था।

श्री ईश्वरलाल नागरजी नायक

श्री नायकजी का जन्म 12 अप्रैल सन् 1899 को गुजरात प्रान्त के बालसाड़ जनपद के बेगाम नामक स्थान में हुआ था। आप आदर्श शिक्षक, उत्कृष्ट समाज-सेवक और लगनशील हिन्दी-प्रचारक थे। सूरत जिले में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने वाले महानुभावों में आपका नाम विशेष अग्रणी स्थान रखता है। आप ही ऐसे युवक थे जिसने अपने गाँव में सर्वप्रथम बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बी० ए० के उपरान्त आप एच० टी० सी० करके शिक्षक का कार्य करने लगे थे। नवसारी में हाईस्कूल की स्थापना आपने ही की थी।

आप स्वतन्त्रता-संग्राम में जेल जाने के अतिरिक्त बुनियादी तालीम के प्रचार कार्य में भी अग्रसर रहे थे। आपने 'गांधी स्मारक निधि' के निमित्त तीन लाख रुपए भी एकत्रित किए थे। आपने अपने नगर में 'हिन्दी सेवक प्रचारक' कक्षाएँ भी संचालित की थीं।

आपका निधन 10 नवम्बर सन् 1953 को हुआ था।

श्री ईश्वरलाल शर्मा 'रत्नाकर'

श्री 'रत्नाकर' जी का जन्म राजस्थान के झालरापाटन नामक स्थान में सन् 1912 में हुआ था। आपके पिता श्री गिरिधर शर्मा नवरत्न हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार थे। अपने पिता के सतर्क निरीक्षण में उनके साहित्यकार ने आँखें खोलीं और उनकी प्रेरणा से ही वे इस क्षेत्र में सफलतापूर्वक अग्रसर हुए थे। वे गम्भीर विचारक, भावुक कवि एवं मननशील तत्त्व-

चिन्तक थे। गांधी एवं अरविन्द दर्शन के विशिष्ट अभ्यासी होने के साथ-साथ आप वेद तथा वेदान्त के भी पारंगत विद्वान् थे।

अपने पिता-जैसी देश-भक्ति एवं हिन्दी-भक्ति आपमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। आपकी रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थीं। 'वीणा', 'माधुरी', 'सुधा' तथा 'विशाल भारत' आदि पत्र-पत्रिकाओं में छपी हुई उनकी रचनाएँ उनकी कारयित्री प्रतिभा की ज्वलन्त साक्षी हैं।

आपकी अप्रकाशित रचनाओं में 'मनोवीणा', 'कुरुक्षेत्र' तथा 'रक्तिम मधु' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1956 में हुआ था।

श्री ईश्वरसिंह परिहार

श्री परिहारजी का जन्म 2 अप्रैल सन् 1920 को मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ अंचल के रायपुर नगर में हुआ था। नागपुर विश्वविद्यालय से उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप पत्रकारिता के क्षेत्र में अग्रसर हुए। पहले आपने 'नागपुर टाइम्स' नामक अँग्रेजी दैनिक में कार्य करना

प्रारम्भ किया था। इन्हीं दिनों आपका सम्बन्ध राष्ट्रीय आन्दोलन से हो गया और आपने उसमें सक्रिय भाग लेकर कारावास भी झेला।

स्वतन्त्रता के उपरान्त जब मध्य प्रदेश में पंडित रविशंकर शुक्ल के मुख्यमन्त्रित्व में सूचना एवं प्रकाशन संचालनालय का गठन हुआ तब आप 18 अप्रैल सन् 1948 को उससे सम्बद्ध हुए और 7 अप्रैल सन् 1950 को आप उसके संचालक पद पर प्रतिष्ठित हुए। अपने कार्यकाल में आपने अपने विभाग के कार्य-विस्तार में पूर्ण मनोयोग से कार्य किया। पत्रकारिता तथा जन-शिक्षण के विशिष्ट अध्ययन के लिए आपको राज्य-शासन की ओर से इंग्लैंड भी भेजा गया था। सूचना तथा प्रकाशन विभाग के साथ ही आप अनेक वर्ष तक 'पर्यटन विभाग' के संचालक के पद का कार्य-भार भी सँभालते रहे थे।

श्री परिहार अँग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं के सुलेखक थे और दोनों भाषाओं पर आपका असाधारण अधिकार था। आप छोटे-छोटे वाक्यों में गम्भीर-से-गम्भीर विषय का विश्लेषण करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। आपके लेख समय-समय पर मध्य प्रदेश के अनेक पत्रों में प्रकाशित होते रहते थे।

आपका देहावसान 26 अक्तूबर सन् 1970 को हुआ था।

श्री ईश्वरीदास

श्री ईश्वरीदासजी का जन्म सन् 1813 में राजस्थान की धौलपुर रियासत में हुआ था। वे धौलपुर के महाराजा श्रीभगवन्तसिंह के सुपुत्र के विवाह में पटियाला गए थे। पटियाला के तत्कालीन नरेश श्री नरेन्द्रसिंह उनकी काव्य-प्रतिभा से इतने प्रभावित हुए कि तत्काल उन्होंने उन्हें अपने दरबारी कवियों में सम्मिलित कर लिया और वे वहीं जम गए। वहाँ पर वे ईश्वर कवि के रूप में जाने जाते थे।

ईश्वर कवि वैसे स्वभावतः साहित्य-प्रेमी थे, परन्तु आजीविका के रूप में आपने 'हिकमत' के पेशे को अपनाया था। वे परिवार के सभी व्यक्तियों को अपने काम में लगाए रखते थे। कोई उनके लिए जड़ी-बूटियाँ कूटता था, तो कोई उनकी दवाओं की पुड़िया बनाता था। उनकी पांडुलिपियों के लेखन का कार्य भी उनके पारिवारिक जन ही करते थे। उनकी अधिकांश पांडुलिपियाँ उनके सुपुत्र श्री नारायण प्रसाद के द्वारा तैयार की गई थीं। उनका स्वभाव अक्खड़ तथा स्वाभिमानी था। स्वाभिमान की यह तीव्रानुभूति ही उन्हें अधिक दिन पटियाला में नहीं जमा सकी और वे फिर धौलपुर वापस चले गए। उनके धौलपुर वापस लौटने की घटना भी बड़ी मनोरंजक है। एक बार वे पटियाला-नरेश महाराजा नरेन्द्रसिंह से भेंट करने के लिए गए। महाराजा उस समय अँग्रेज रेजीडेंट से विचार-विमर्श में व्यस्त थे। ईश्वर कवि की भेंट के लिए पहुँचने की सूचना तो उन्हें मिल गई थी, किन्तु उन्होंने उन्हें भीतर नहीं बुलाया। काफी देर प्रतीक्षा करने पर उनका मन विक्षुब्ध हो उठा। फलस्वरूप उन्होंने घोड़े की जीन कसी और धौलपुर के लिए चल दिए।

अपने पटियाला-प्रवास में आपने 'नरेन्द्र भूषण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इन्द्रजीत-कृत 'भाषा भूषण' की 'चमत्कार चन्द्रिका' नामक टीका एवं 'वाणी भूषण' की प्रतिलिपि भी उन्होंने पटियाला में ही तैयार की थी। उन्होंने लगभग 35 ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें 'वाल्मीकि रामायण' का अनुवाद भी सम्मिलित है, जिसका कलेवर दो हजार से अधिक पृष्ठों का है। उन्होंने अपनी 'समर सागर' नामक रचना में 'श्रीमद्भागवत' के दशम-स्कन्ध में वर्णित युद्धों का वर्णन किया है। 'रस रत्नाकर' नामक कृति में उन्होंने नौ रसों के लक्षण उदाहरणों सहित निरूपित किए हैं। 'अनिरुद्ध विलास' नामक कृति में आपने अनिरुद्ध की प्रेम-कथा वर्णित की है। आपके 'नख-शिख', 'ध्वनि व्यंग्यार्थ चन्द्रिका', 'प्रेम पयोनिधि', 'मन प्रबोध' तथा 'चित्त चमत्कृत कौमुदी' आदि

महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी उल्लेख्य हैं।

आपका निधन सन् 1923 में धौलपुर में ही हुआ था। वहाँ पर उनकी स्मृति में जो समाधि बनी हुई है उस पर उनका नाम अंकित है। अपना परिचय ईश्वर कवि ने इस प्रकार दिया था :

ब्रह्म वंश दीक्षित अल्ल गोत्र सु भारद्वाज।
रहत धौलपुर नगर में, ईश्वर कवि सुखसाज॥

महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह (काशी-नरेश)

काशी-नरेश श्री ईश्वरीप्रसादनारायणसिंहजी का जन्म सन् 1821 में हुआ था। इनका राज्याभिषेक 14 अप्रैल सन् 1834 को हुआ था। आपने 55 वर्ष तक राज्य किया था। आप नियमित रूप से 60 रुपए रूमाल में बाँधकर भारतेन्दु जी को प्रति माह दिया करते थे और उन्हें 'बबुआ' कहा करते थे। आपके प्रोत्साहन से दुखभंजन, महिदेव, मणिदेव तथा सरदार आदि कवियों ने साहित्य-रचना करने में अच्छा कौशल प्राप्त कर लिया था।

महाराजा ने जब घनाक्षरी छन्दों का 'शृंगार सुधाकर' नामक एक विशाल संकलन तैयार किया तब इन सभी कवियों ने मिलकर सवैया छन्दों का उतना ही बड़ा संग्रह 'सुन्दरी सर्वस्व' नाम से प्रकाशित कराया। 'महाभारत' का अनुवाद भी आपने कराया था। काशी के अनेक कवियों के अतिरिक्त असनी के बहुत से कवि भी उनके आश्रय में रहते थे।

काशी में 'साढ़े तीन बैठकबाज' नाम से जो मण्डली प्रख्यात थी, उसमें राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त आप भी एक थे। आधे बैठकबाज के रूप में 'भंगड़ खवास' थे, जो राजा साहब के एक मुसाहिब थे। राजा साहब के खजाने की चाबी भी इन्हीं भंगड़ खवास के पास रहा करती थी।

राजा साहब का निधन 13 जून सन् 1889 को हुआ था।

श्री ईश्वरीप्रसाद शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म बिहार के आरा (शाहाबाद) नामक नगर के मिश्र टोला नामक मुहल्ले में सन् 1893 में हुआ था। आपके पिता पं० सारंगधर मिश्र तंत्र-शास्त्र-निष्णात विद्वान् थे। जब श्री शर्माजी केवल सात वर्ष के ही थे तब उनके पिताजी का असामयिक देहावसान हो गया और आप पर सारे परिवार के भरण-पोषण का दायित्व आ गया। जब आप तीसरी श्रेणी के विद्यार्थी थे तब से ही आपके हृदय में हिन्दी का प्रेम जगा था, जो वहाँ की 'नागरी प्रचारिणी सभा' में पुस्तकालय में निरन्तर आने-जाने के कारण परिपुष्ट हुआ था। अभी वे ठीक तरह से सँभले भी नहीं थे कि आपकी माता का भी स्वर्गवास हो गया। आपके माता-पिता की जगह आपके चाचा-चाची ने ही उन्हें पुत्रवत् माना और चचेरे भाई पं० गुरुदेव प्रसाद के प्रभाव से वे स्कूल-कालेजों के दुर्व्यसनों से बचकर सफलता के पथिक बने।

आपकी स्कूली शिक्षा आरा के 'कायस्थ जुबली कालेज' से प्रारम्भ हुई और उच्च शिक्षा के लिए जब आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में गए तो अचानक अस्वस्थ हो जाने के कारण आपने बीच में ही पढ़ाई छोड़ दी। फलस्वरूप आप आरा के उसी विद्यालय में शिक्षक होकर आ गए जिसमें उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी। आरा की नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में आने वाली पत्र-पत्रिकाओं के स्वाध्याय के बल पर उनमें लेखक बनने की भावना उत्पन्न हुई और सन् 1906 में उन्होंने अपना एक लेख काशी से प्रकाशित होने वाले 'भारत जीवन' को भेज दिया। जब उन्होंने अपना वह लेख छपा हुआ देखा तो उनके हर्ष की सीमा न रही और मन-ही-मन उन्होंने इसी क्षेत्र को अपनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया। जिस समय आपने यह लेख 'भारत जीवन' को प्रकाशनार्थ भेजा था उस समय आप मैट्रिक के छात्र थे।

आपने इसी सत् संकल्प के कारण आपने सन् 1912 में अपनी जन्मभूमि आरा से ही 'मनोरंजन' नामक एक सचित्र हिन्दी मासिक प्रारम्भ किया, जो थोड़े ही दिनों में बहुत लोकप्रिय हो गया। इसके उपरान्त आप पटना से प्रकाशित होने वाले 'पाटलिपुत्र' नामक पत्र के सहकारी सम्पादक होकर चले गए। लगभग डेढ़ वर्ष तक आपने गया से प्रका-

शित होने वाली 'लक्ष्मी' तथा 'श्री विद्या' नामक मासिक पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया था। इसके बाद आरा आकर उन्होंने वहाँ से ही पटना से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'शिक्षा' तथा आगरा से प्रकाशित होने वाले 'धर्माभ्युदय' नामक त्रैमासिक पत्र का सम्पादन भी किया था। लगभग दो-ढाई वर्ष तक यह कार्य करने के उपरान्त आप कलकत्ता की हरिदास एण्ड कम्पनी में चले गए और वहाँ से होने वाले प्रकाशनों का कार्य देखने लगे। कलकत्ता के बाबू रामलाल वर्मन ने जब प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ किया तो शर्माजी उनके अनन्य सहयोगी बन गए और वर्मन प्रेस से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'हिन्दू पंच' का सम्पादन आपने जीवन के अवसान तक किया।

एक उत्कृष्ट पत्रकार होने के साथ-साथ शर्माजी प्रतिभाशाली लेखक भी थे। उनकी कृतियाँ उनके अगाध ज्ञान और अध्ययनशीलता की साक्षी हैं। उनकी लिखी मौलिक पुस्तकों में 'श्रीरामचरित', 'सीता', 'शकुन्तला', 'सती पार्वती', 'मातृ वन्दना', 'सूर्योदय' (नाटक), 'रंगीली दुनिया' (नाटक), 'सिपाही विद्रोह', 'सन् सत्तावन का गदर', 'पंजाब का हत्याकाण्ड', 'अन्योक्ति तरंगिणी' तथा 'जल चिकित्सा' आदि उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा बँगला से अनूदित अनेक उपन्यास भी प्रकाशित हुए थे, जिनमें 'उद्भ्रान्त प्रेम', 'आनन्द मठ', 'किन्नरी' तथा 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' प्रमुख हैं। आपके द्वारा मराठी से अनूदित 'इन्दुमती' तथा 'रत्नदीप' नामक उपन्यास भी अपनी विशिष्टता के लिए विख्यात हैं। गुजराती से भी आपने अनेक जैन ग्रन्थों का अनुवाद किया था, जो एक जैन प्रकाशक के नाम से ही प्रकाशित हुए हैं। अँग्रेजी से अनूदित उपन्यासों में उनके 'प्रेम गंगा' और 'प्रेमिका' नामक उपन्यास उल्लेख्य हैं। इसके अतिरिक्त आपने 'बँगला-हिन्दी कोश' और 'हिन्दी-बँगला कोश' की भी रचना की थी जो हरिदास एण्ड कम्पनी कलकत्ता से प्रकाशित हुए हैं। आपने कुछ जासूसी उपन्यास भी लिखे थे जिनमें सन् 1908 में प्रकाशित 'कोकिला' उल्लेखनीय है। बाल-साहित्य के निर्माण की दिशा में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रचुर परिचय दिया था और उनकी ऐसी रचनाएँ 'रंगीली दुनिया', 'ईसप की कहानियाँ' तथा 'बाल गल्प माला' आदि नामों से प्रकाशित हुई थीं। चाहे अनुवाद हो या मौलिक लेखन, सभी क्षेत्रों में उन्होंने अपना रचना-कौशल प्रदर्शित किया था। आपने व्यंग-विनोदमयी अनेक पद्य रचनाएँ भी लिखी थीं, जिनका संकलन उनकी 'चना चबैना' नामक पुस्तक में हुआ है। 'सौरभ' नामक पुस्तक में उनके द्वारा लिखित नीति-शिक्षापूर्ण सरस पद्यों का संग्रह है, जो छपा तो था लेकिन अप्रकाशित ही रह गया।

जिन दिनों वे 'हिन्दू पंच' का सम्पादन करते थे, उन दिनों 'बलिदान अंक' के कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोप-भाजन भी बनना पड़ा था और इस सम्बन्ध में वे एकाधिक बार जेल भी गए थे। नाटक खेलने और देखने के वे बहुत शौकीन थे। आरा में उन्होंने 'मनोरंजन नाटक मण्डली' स्थापित करके उसके द्वारा कई नाटक अभिनीत कराए थे। जब इस मण्डली ने 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'मयूरध्वज' और 'नागरी निरादर' नामक नाटक खेले थे तब उनमें क्रमशः 'डोम', 'भगवान् श्रीकृष्ण' और 'मौलाना' के रूप में वे रंगमंच पर उतरे थे। कलकत्ता के स्टार थिएटर में जब 'कृष्णार्जुन' और 'सीता' नामक नाटक दिखाए गए और वे निरन्तर साल-भर तक बिना नागा उन्हें देखते रहे थे।

सन् 1927 की 22 जुलाई को, जब वे 'हिन्दू पंच' का सम्पादन करते थे, तब कलकत्ता में ही दो-तीन घंटे की बीमारी के कारण आपकी मृत्यु हुई थी।

ठाकुर ईश्वरीसिंह

ठाकुर ईश्वरीसिंह का जन्म अलवर राज्य के किशनपुर नामक ग्राम में सन् 1856 में हुआ था। आप 'माधव कवि' ठाकुर बिड़दसिंह के छोटे भाई थे। जब आप 9 वर्ष के थे तब कविराज गुलाबसिंह के पास पढ़ने लगे थे और उन्हींसे

उन्होंने हिन्दी का अच्छा ज्ञान भी प्राप्त किया। आपने अँग्रेजी की मैट्रिक परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी और फारसी का भी आपको अच्छा ज्ञान था। अचानक पेट में शूल की बीमारी हो जाने के कारण आपकी आगे की पढ़ाई बन्द हो गई थी। इसका प्रमाण उनके इस दोहे से मिलता है :

एण्ट्रेन्स लौं हौं पढ़्यो, अँग्रेजी चित लाय।
बहुरि शूल इक उर उपजि, पढ़िबो दयो छुड़ाय।।

आप शरीर से बड़े हृष्ट-पुष्ट थे और आपको व्यायाम करने का बड़ा शौक था। 'मल्ल विद्या' सीखने में भी आपकी बड़ी रुचि थी। आप महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त थे और आपकी रचनाओं में समाज-सुधार तथा देश-भक्ति की भावनाएँ कूट-कूटकर भरी हुई हैं। 'सत्यार्थ-प्रकाश' पढ़ने से आपकी विचार-धारा परिवर्तित हुई थी। 'सत्यार्थ प्रकाश' के इस चमत्कार का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :

संस्कार पिछले पलटि, भयो भाव कछु और।
पुराणोक्त वार्तान को, रह्यो न चित में ठौर।।
सिगरी वय में आज लौं, लख्यो न ऐसो ग्रन्थ।
लुप्त होत जातै सकल, पाखण्डिन को पन्थ।।

आपकी रचनाओं की भाषा सरल तथा सुबोध होती थी। साहित्य शास्त्र के सभी गुण उनमें विद्यमान रहते थे। आर्यसमाज से प्रभावित होने से पूर्व आप प्रायः कृष्ण-भक्ति की रचनाएँ किया करते थे। आपने 'अज्ञान नाशक स्वप्न', 'विनयाष्टक', 'ज्ञान मंगल', 'कलियुगाष्टक', 'अहिंसा पच्चीसी', 'प्रार्थना पच्चीसी' तथा 'बारहमासी' आदि ग्रन्थों की रचना की थी। आपका निधन सन् 1914 में हुआ था।

लोक-कवि ईसुरी

ईसुरी का जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी जनपद के मेंड़की नामक ग्राम में सन् 1824 में हुआ था। ईसुरी का पूरा नाम ईश्वरीप्रसाद था और इनके पूर्वज जुझौतिया ब्राह्मण थे। वे कोई विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे। वे मूलतः लोक-कवि थे। उनकी भाषा अत्यन्त स्वाभाविक होती थी। उनके गीतों की पंक्तियाँ मुँह से निकलते ही जन-समुदाय को आनन्द-विभोर कर देती हैं। ग्रामीण जीवन के प्रत्येक पहलू की सरल और सीधी-सादी भाषा में मार्मिक वर्णन करने में वे सर्वथा अद्वितीय थे। बुन्देलखंड की लोक-प्रचलित परम्पराओं का जितना सीधा और सच्चा वर्णन ईसुरी की फागों में देखने को मिलता है उतना अन्य किसी लोक-कवि की रचनाओं में नहीं दिखाई देता।

ईसुरी का बचपन अपने मामा के यहाँ लुहर गाँव (कोनिया, हरपालपुर) में बीता था। वे कुछ दिन वहाँ रहकर फिर अपनी ससुराल सीगोन चले गए थे। यह स्थान हमीरपुर जिले के बगौरा नामक ग्राम से लगभग एक मील की दूरी पर है। जब वे 30 वर्ष के ही थे कि उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। फिर वे अविवाहित ही रहे। सीगोन में कुछ दिन रहकर फिर वे धौर्रा के मुसाहिबजू नामक एक जमींदार के यहाँ रहने लगे। वहाँ से वे बगौरा के जमींदार रज्जब अली के यहाँ कारिन्दे होकर चले गए थे। उन्हें वहाँ 5 रुपए महीना और खाना-कपड़ा मिलता था और वे तहसील वसूली का काम किया करते थे। बगौरा से उन्हें इतना प्रेम हो गया था कि वे वहाँ से कहीं दूसरी जगह नहीं जाना चाहते थे। एक बार एक रुपया रोज और खाना-कपड़े की सुविधा देकर छतरपुर के तत्कालीन नरेश ने उन्हें अपने यहाँ बुलाना चाहा परन्तु वे वहाँ नहीं गए। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उनकी मृत्यु यदि गंगाजी के तट पर हो तो भी उनका अन्तिम संस्कार बगौरा में ही किया जाय। इस सम्बन्ध में उनका यह पद बहुत प्रसिद्ध है :

यारो इतना जस कर लीजो,
चिता अन्त ना दीजो।
गंगा जू लौं मरें ईसुरी,
दाग बगौरा दीजो।।

उनके इस पद की अन्तिम पंक्ति से लोगों को यह भ्रम हो गया कि ईसुरी बगौरा के रहने वाले थे। बगौरा में जब वे बहुत अधिक बीमार हुए तो उनकी लड़की उन्हें 'धवार' ले गई थी, जहाँ उनका देहान्त हुआ था। धवार में उनका एक चबूतरे के रूप में स्मारक भी बना है। ईसुरी के फागों में बुन्देलखंड के जन-जावन के सही दर्शन होते हैं। उनकी ये फागें 'चौकड़िया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। क्योंकि उनमें प्रायः चार कड़ियाँ होती हैं। कहीं-कहीं 5 कड़ियाँ भी

दिखाई देती हैं। ईसुरी ने ही सबसे पहले इन फागों को जन्म दिया था। ये सब 'नरेन्द्र' नामक छन्द में लिखी गई हैं, जिसे भारतीय संगीत की रीढ़ कहा जाता है। इस छन्द में 28 मात्राएँ होती हैं और 16 तथा 12 के बीच यति होती है; अन्त में गुरु होता है। इन फागों की यह विशेषता है कि इनकी प्रथम पंक्ति में 16 मात्राओं के पहले चरण के साथ अनुप्रास मिला दिया जाता है और शेष पंक्तियाँ साधारण 'नरेन्द्र' छन्द की भाँति ही होती हैं।

महाराजा ओरछा को ईसुरी से बड़ा प्रेम था। उनके संग्रहालय में ईसुरी की बहुत सी फागें संग्रहीत हैं। बुंदेलखण्ड की संस्कृति ईसुरी की वाणी से सही रूप में मुखरित हुई है। उनकी विशेषता इस दोहे में वर्णित है :

रामायण तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कलि काल में, कही ईसुरी फाग॥

ईसुरी की इन फागों में मौलिकता है। भले ही उसे गँवारू या देहाती भाषा कह लिया जाय, परन्तु भावों के प्रकटीकरण में वे फागें दूसरी भाषाओं की रचनाओं से होड़ ले सकती हैं।

ईसुरी का निधन सन् 1909 में हुआ था। उस समय उनकी आयु 85 वर्ष होगी।

ठाकुर उदयनारायणसिंह

श्री उदयनारायण सिंह का जन्म 6 जनवरी सन् 1854 को बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के मधुरापुर नामक ग्राम में हुआ था। आप हिन्दी तथा संस्कृत आदि भाषाओं के पारंगत विद्वान् थे। सन् 1896 से सन् 1907 तक आपने इटावा के ब्रह्म प्रेस में कार्य किया था और तदुपरान्त आपने अपने ग्राम में आकर 'शास्त्र प्रकाश भवन' नामक एक प्रकाशन संस्था स्थापित की, जिसके द्वारा आपने संस्कृत तथा हिन्दी के अपने अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया था। आपने मुख्यतः अपनी लेखनी को संस्कृत के ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने की ओर ही प्रवृत्त किया था। आपकी ऐसी लगभग 14 कृतियाँ प्रकाशित हैं।

आपका देहावसान सन् 1951 में हुआ था।

श्री उदयप्रसाद 'उदय'

श्री 'उदय' जी का जन्म 12 सितम्बर सन् 1898 को मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ अंचल के धमधा नामक ग्राम के प्रसिद्ध दाऊ-परिवार में हुआ था। आपकी शिक्षा केवल इण्टरमीडिएट तक ही थी, परन्तु अपनी प्रतिभा तथा योग्यता के बल पर आपने हिन्दी की अभूतपूर्व सेवा की थी। आपने जहाँ सन् 1959 में 'दुर्ग जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अधिवेशन की अध्यक्षता की थी वहाँ वे अनेक वर्षों तक इस सम्मेलन की कार्य-समिति के विभिन्न पदों पर कार्य करते रहे थे। अखिल भारत हैहयवंश सभा से भी आपका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था और उसकी सेवा भी उन्होंने अनेक पदों पर रहकर की थी।
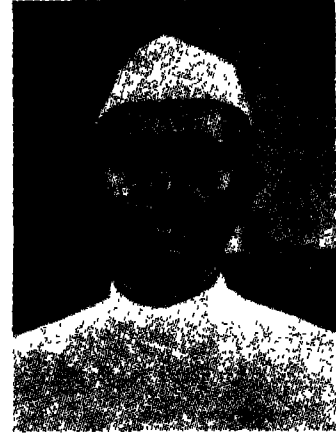
अपने छात्र-जीवन की समाप्ति से ही आप लेखन की दिशा में तत्परतापूर्वक संलग्न हो गए थे। जब सन् 1917 में आपने कवि के रूप में साहित्यिक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया तब दुर्ग जिले में आप अकेले ही साहित्यकार ऐसे थे जिनकी रचनाएँ द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तियों की कसौटी पर खरी उतरती थीं। सर्वश्री श्यामाचरण चितौरिया और जहाँवल सावजी आपके साहित्यिक गुरु थे। आप उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ सफल गद्य-लेखक भी थे। आपने जहाँ 'कृषि और सौर नक्षत्र-सम्बन्ध' तथा 'भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम का शताब्दी समारोह' नामक गद्य-पुस्तकों का प्रकाशन किया वहाँ 'वाल्मीकि रामायण' का समश्लोकी अनुवाद भी उल्लेखनीय है। आपने 'उत्तर रामचरित' नाटक का हिन्दी अनुवाद भी किया था। इनके अतिरिक्त आपकी 10-12 पुस्तकें अप्रकाशित ही रह गई।

आपने हैहय क्षत्रिय महासभा के मुख पत्र 'हैहयवंश' के

सम्पादन में सहयोग देने के अतिरिक्त कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'काव्य कलाधर' के 'परिचयांक' की सामग्री संकलित करने में भी बहुत परिश्रम किया था। आपकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष में जबलपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर 'छत्तीसगढ़ कवि कोविद कदम्ब' नामक ग्रन्थ के सम्पादक मंडल का सदस्य होने के रूप में 'छत्तीसगढ़ गौरव प्रचारक' रजत पदक प्रदान किया गया था। आप लोकल बोर्ड के अध्यक्ष रहने के साथ दुर्ग जिला परिषद् के भी सदस्य रहे थे।

आपका निधन 10 जुलाई सन् 1967 को हुआ था।

श्री उदयशंकर भट्ट

श्री भट्टजी का जन्म 3 अगस्त सन् 1898 को इटावा में अपनी ननिहाल में हुआ था। वैसे उनका मूल निवास-स्थान बुलन्दशहर जनपद का कर्णवास नामक स्थान था, जहाँ उनके पूर्वज गुजरात के सिंहपुर नामक स्थान से आकर बसे थे। उनके पिता श्री फतहशंकर मेहता संस्कृत और अँग्रेजी के विद्वान् होने के साथ-साथ व्रजभाषा के भी सुकवि थे। परिवार के इन्हीं संस्कारों के कारण सर्वप्रथम भट्ट जी ने अपनी कविता सर्वप्रथम ब्रजभाषा में ही प्रारम्भ की थी। आपने काशी, कलकत्ता और लाहौर से संस्कृत की कई परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। प्रारम्भ में आप लाला लाजपतराय के 'नेशनल कालेज' में अध्यापक नियुक्त हुए थे और बाद में लाहौर के 'सनातन धर्म स्कूल' और 'सनातन धर्म कालेज' में अध्यापक रहे थे। भारत-विभाजन के बाद आप अनेक वर्ष तक आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर हिन्दी-कार्यक्रमों के संचालक भी रहे थे।

आपने सन् 1921-22 के असहयोग आन्दोलन के दिनों में सक्रिय रूप से भाग लेने के अतिरिक्त साहित्य-निर्माण की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। आप उत्कृष्ट कवि और सफल नाटककार होने के साथ-साथ संवेदनशील उपन्यास-लेखक भी थे। एकांकी-लेखन के क्षेत्र में भी आपकी देन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी में भाव-नाट्य-लेखन के क्षेत्र में आपका विशेष योगदान रहा है। प्रारम्भ में आपने 'तक्षशिला' (1929) नामक एक खण्डकाव्य लिखा था, जिसके कारण आपको अच्छी ख्याति मिली थी। इसके उपरान्त आपने एकांकी नाटक, कविता तथा उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए।

आपकी काव्य-रचनाओं में 'राका' (1931), 'मानसी' (1935), 'विसर्जन' (1936), 'युगदीप' (1939), 'अमृत और विष' (1939), 'यथार्थ और कल्पना' (1950) तथा 'अन्तर्दर्शन'(1958)आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने 'विजय पथ' (1950) नामक एक खण्डकाव्य भी लिखा था। नाटक-लेखन के क्षेत्र में भी आपने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। आपकी ऐसी कृतियों में 'विक्रमादित्य' (1930), 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' (1932), 'अम्बा' (1933), 'सगर विजय' (1934), 'कमला' (1936), 'क्रान्तिकारी' (1954), 'नया समाज' (1955) तथा 'पार्वती' (1960) आदि विशेष हैं। एकांकी-लेखन की दिशा में भी आपकी देन अप्रतिम ही कही जायगी। जिन महानुभावों ने हिन्दी-एकांकी के प्रारम्भ और विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है उनमें भट्टजी का प्रमुख स्थान है। आपके 'स्त्री का हृदय', 'आदिम युग' (1947), 'धूम शिखा' (1948), 'पर्दे के पीछे' (1950), 'अन्धकार और प्रकाश', 'समस्या का अन्त' (1952) तथा 'आज का आदमी' (1960) आदि एकांकी-संकलन इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। भाव-नाट्य-लेखन के क्षेत्र में भी भट्टजी ने अपनी जिस प्रतिभा का परिचय दिया था वह भी साहित्य के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय है। आपकी ऐसी रचनाओं में 'मत्स्यगन्धा' (1934), 'विश्वामित्र' (1935), 'राधा' (1936) तथा 'अशोकवन वन्दिनी' (1959) उल्लेखनीय हैं। रेडियो-रूपक की नई विधा को प्रतिष्ठित करने में भी

भट्टजी का विशेष स्थान रहा है। आपके 'सन्त तुलसीदास', 'मानसकार', 'गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण' तथा 'अश्वत्थामा' आदि स्वोक्ति रूपक इसके ज्वलन्त साक्षी हैं। एक उत्कृष्ट कवि और नाटककार होने के साथ-साथ भट्टजी ने उपन्यास-लेखन में भी अपनी प्रतिभा का यथेष्ट परिचय दिया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'वह जो मैंने देखा' (1937-42), 'नये मोड़' (1956), 'सागर लहरें और मनुष्य' (1956), 'लोक-परलोक' (1958) तथा 'शेष-अशेष' (1960) उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'वह जो मैंने देखा' तथा 'नये मोड़' क्रमशः 'एक नीड़ दो पंछी' (1956) तथा 'डॉक्टर शेफाली' (1960) नाम से भी प्रकाशित हो चुके हैं।

भट्टजी ने अपनी प्रतिभा से साहित्य की सभी विधाओं की समृद्धि में अभूतपूर्व योगदान दिया था। उन्होंने अपने लेखन को सर्वदा सोद्देश्य ही रखा था। उनकी इन रचनाओं में वैदिक युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से लेकर अद्यतन समाज की नवीनतम प्रवृत्तियों का विश्लेषण हुआ है।

आपका निधन 28 फरवरी सन् 1966 को दिल्ली में हुआ था।

श्री उदित मिश्र

श्री उदित मिश्र का जन्म सन् 1893 में बनारस जिले के कुण्डी नामक ग्राम में हुआ था। आपने साहित्य-लेखन का कार्य सन् 1912 से प्रारम्भ कर दिया था जो मृत्यु-पर्यन्त निरन्तर गतिशील रहा। आप काशी के दैनिक 'आज' में प्रति सप्ताह 'गाँव की चिट्ठी' लिखा करते थे। ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याओं को उन्होंने निकट से देखा और परखा था, इसलिए आप इस दिशा में बहुत सफल रहे थे। 'आज' के अतिरिक्त आपकी रचनाएँ 'भारत' (प्रयाग) तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में भी निरन्तर छपती रहती थीं।

आपने अपना कर्ममय जीवन एक अध्यापक के रूप में शुरू किया था और आप अनेक वर्ष तक दिल्ली के मॉडर्न स्कूल में शिक्षक भी रहे थे। आपको अपने छात्र-जीवन से ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द्र-जैसे मनस्वी साहित्यकारों के सान्निध्य का सुख उपलब्ध हुआ था, इसलिए आपने अध्यापन के साथ साहित्य-सेवा करते रहने का संकल्प भी अपने मन में सँजोया हुआ था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में से एक पंडित रामनारायण मिश्र ने भी आपको इस क्षेत्र में कार्य करने की प्रचुर प्रेरणा दी थी।

यद्यपि मिश्रजी की अनेक प्रकार की रचनाएँ हैं लेकिन अभी तक आपकी केवल तीन ही पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें 'देहाती दुनिया' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपकी रचनाओं में अनेक साहित्यकारों एवं राजनीतिज्ञों के संस्मरण, युग-जीवन में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का समाधान, सदाचार तथा नीति-सम्बन्धी सामग्री के दर्शन होते हैं।

आपका निधन सन् 1974 में हुआ था।

श्री उमरावसिंह 'कारुणिक'

श्री कारुणिक का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर में सन् 1895 में हुआ था। आपने मेरठ कालेज से बी० ए० करने के उपरान्त अपने जीवन को साहित्य की सेवा में ही खपा दिया। आपने मेरठ से सन् 1918 में 'ललिता' नाम की एक मासिक पत्रिका का सम्पादन श्री मुरारिशरण मांगलिक के साथ किया था। इसी पत्रिका में श्री विश्वम्भरसहाय 'व्याकुल' के 'बुद्धदेव' नाटक का धारावाहिक प्रकाशन हुआ था। 'कारुणिक' जी ने इससे पूर्व 'दरिद्रनारायण' नामक एक हस्तलिखित पत्र भी सम्पादित किया था। बाद में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सुझाव पर इस पत्र का नाम 'श्रीमान्' हो गया था।

'ललिता' का स्थान उन दिनों देश की उच्चकोटि की पत्रिकाओं में था। इसमें देश के सभी गण्यमान्य साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुआ करती थीं। इसके उद्देश्य के रूप में उन दिनों उसके प्रारम्भिक पृष्ठ पर यह पंक्तियाँ छपी होती थीं :

"ललिता का है यह उद्देश्य।
हिन्दी का प्रेमी हो देश ॥"

श्री काश्यिक ने 'ललिता' के द्वारा जहाँ मेरठ जनपद के अनेक युवकों को साहित्य के क्षेत्र में बढ़ने का प्रोत्साहन दिया वहाँ उन्होंने इसके माध्यम से रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा टालस्टाय-जैसे कथाकारों की रचनाएँ भी हिन्दी के पाठकों को पढ़ने को दीं। अपनी उपादेय तथा ज्ञानवर्द्धक सामग्री के कारण 'ललिता' उन दिनों 'सरस्वती' से प्रतिद्वन्द्विता करने लगी थी।

एक अच्छे पत्रकार होने के साथ आप लेखक भी उच्च-कोटि के थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'कारनेगी और उनके विचार', 'अकबर और उनका काव्य', 'टालस्टाय की आत्म-कहानी', 'उपयोगितावाद', 'मेरा विश्वास', 'मुगलों के अन्तिम दिन' और 'अनारकली' आदि प्रमुख रूप से उल्लेख करने योग्य हैं। आपने 'आधुनिक सप्त आश्चर्य' नामक एक पुस्तक और भी लिखी थी, जो अभी तक अप्रकाशित ही है। आपकी उक्त सभी पुस्तकों का प्रकाशन चौ० शिवनाथसिंह शाण्डिल्य ने अपने 'ज्ञानप्रकाश मन्दिर माछरा (मेरठ)' से किया था।

आपका निधन अल्पावस्था में ही सन् 1925 में हो गया था।

श्री उमापतिदत्त शर्मा पाण्डेय

श्री पाण्डेय का जन्म 5 नवम्बर सन् 1872 को बिहार के शाहाबाद जिले के डुमराँव थाने के अन्तर्गत चिलहरी नामक ग्राम में हुआ था। आप जब 6 वर्ष के ही थे कि आपके पिता का देहान्त हो गया और आपकी शिक्षा-दीक्षा माताजी के निरीक्षण में ही हुई। आपने बनारस के क्वीन्स कालेज से सन् 1891 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में छात्रवृत्ति लेकर उत्तीर्ण की। सन् 1893 में उसी कालेज से आपने एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् 1895 में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा दी। आप संस्कृत एवं दर्शन विषय में एम० ए० कक्षा में अध्ययन कर ही रहे थे कि उसी वर्ष सोनबरसा (भागलपुर) के राजा ने उन्हें अपने यहाँ के हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक बना लिया।

वे इस स्थान पर कार्य कर ही रहे थे कि सन् 1898 में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी बंगवासी' के मालिकों ने आपको अपने पत्र में सहकारी सम्पादक के स्थान पर बुलाने का प्रयत्न किया; लेकिन आपने स्वीकार नहीं किया और सन् 1901 में आप भारत-भ्रमण पर निकल गए। इस यात्रा में आपने गुजरात की जूनागढ़ नामक रियासत में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। इस यात्रा से लौटने पर सन् 1902 में आप कलकत्ता के विशुद्धानन्द विद्यालय में संस्कृत के शिक्षक हो गए और सन् 1906 तक इस पद पर सफलता-पूर्वक कार्य करते रहे। कुछ दिन तक आप बंगाल सरकार के अनुवाद विभाग में सहायक अनुवादक भी रहे। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि आपकी नियुक्ति सन् 1906 में मेरठ के एक कालेज में संस्कृत एवं धर्म शिक्षक के रूप में हुई थी, जहाँ आप केवल एक वर्ष ही रहे थे।

आप नागरी प्रचारिणी सभा काशी, आरा नागरी प्रचारिणी सभा, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन तथा बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता आदि के सम्मानित सदस्य भी रहे थे। आपका वास्तविक साहित्यिक जीवन कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हितवार्ता' नामक पत्र से प्रारम्भ होता है। आपका 'आर्य भाषा' नामक विस्तृत निबन्ध इसी पत्र में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। बाद में वह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो गया। इस बीच आपकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित तथा समृद्ध होती गई और आपकी रचनाएँ 'हिन्दी प्रदीप', 'भारत मित्र', तथा 'हिन्दी बंगवासी' अनेक पत्रों में प्रकाशित होने लगीं। आपने मुख्यतः ज्योतिष, भाषा-विज्ञान, नीति तथा साहित्य-सम्बन्धी लेख ही अधिक लिखे थे। कुछ दिन के लिए आपका सम्बन्ध जस्टिस शारदाचरण मित्र की 'एक लिपि विस्तार परिषद्' नामक संस्था से भी हुआ और उसके कार्य को आगे बढ़ाने में आपने बहुत बड़ा योगदान दिया। जब 31 दिसम्बर सन् 1904 को कलकत्ता हाईकोर्ट के जज शारदाचरण मित्र ने देवनागरी अक्षरों की उपादेयता के सम्बन्ध में कलकत्ता विश्वविद्यालय में अपना एक लेख पढ़ा तब वे उससे बहुत प्रभावित हुए और उन्हींकी प्रेरणा पर आगे चलकर श्री मित्र ने 'एक लिपि विस्तार परिषद्' की संस्थापना 1 जुलाई सन् 1902 को विधिवत् कर दी और उसकी ओर से 'देवनागर' नामक एक पत्र का प्रकाशन भी

प्रारम्भ किया। इस पत्र में सभी भाषाओं की रचनाएँ देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुआ करती थीं। श्री शर्मा ने इस पत्र के माध्यम से देवनागरी लिपि के प्रचार और प्रसार के लिए एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाने का भी प्रस्ताव किया था।

आपके निजी संग्रहालय को देखने से यह पता चलता है कि आप जर्मन, फ्रेंच, सिंहली, स्यामी तथा अन्य पूर्वी भाषाओं के भी अच्छे पंडित थे। आपने अनेक विदेशी व्यक्तियों को हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ाने की दिशा में भी अभिनन्दनीय कार्य किया था। आपके इस कार्य की प्रशंसा पं० मदनमोहन मालवीय, महामहोपाध्याय पं० सुधारक द्विवेदी और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मुक्त कण्ठ से की थी।

आपका निधन सन् 1911 में हुआ था।

श्री उमाशंकर

आपका जन्म 15 सितम्बर सन् 1920 को बिहार के शाहाबाद जिले के शुक्लपुरा (पो० मणिपुरा) नामक ग्राम में हुआ था। आपका पूरा नाम 'अखौरी उमाशंकर सहाय' था और कभी-कभी प्रेम-नारायण श्रीवास्तव, एक बिहारी आत्मा, क्रान्तिकुमार और संजय आदि नामों से भी लिखा करते थे। बी० ए० (ऑनर्स) करने के उपरान्त आप बिहार राज्य के 'वाणिज्य कर विभाग' में एक वरिष्ठ राजपत्रित अधिकारी हो गए थे और देहान्त के समय 'ट्रेजरी आफिसर' थे।

श्री उमाशंकरजी बिहार के उन हिन्दी-सेवियों में थे जिन्होंने अपना समग्र जीवन साहित्यकारों, साहित्यिक संस्थाओं और साहित्यिक प्रवृत्तियों के उन्नयन तथा विकास में ही लगाया था। आपने जहाँ 'हिन्दुस्तानी-आन्दोलन', 'रोमन लिपि आन्दोलन' का डटकर विरोध किया था वहाँ आप 'हिन्दी अपनाओ' और 'अँग्रेजी हटाओ' आन्दोलनों के समर्थ संचालक रहे थे। 'साहित्यकार सखा', 'सुदर्शन' और 'साक्षी' आदि अनेक पत्रों के सम्पादन में सहयोग करने के अतिरिक्त आप बिहार के बहुत से पत्रों में स्थायी स्तम्भ-लेखक के रूप में भी अपना योगदान दे रहे थे। देश काऐ सा कोई ही मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र होगा जिसमें उनकी रचनाएँ प्रकाशित न हुई हों।

आपने उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार एवं जागरूक पत्रकार होने के साथ-साथ अपनी संगठन-क्षमता से बिहार के सासाराम, पटना, मुजफ्फरपुर, दानापुर और दुमका आदि अनेक नगरों की बहुत-सी संस्थाओं को चमकाया तथा जमाया था। 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' पटना के मन्त्री रहने के अतिरिक्त आपने 'बिहार साहित्य संघ' और 'महेशनारायण शोध-संस्थान' दुमका के अनन्य सूत्रधार का कार्य किया था। 'बिहार कला केन्द्र', 'प्रेमचन्द साहित्य परिषद्', 'उदयकला मन्दिर' तथा'अयोध्याप्रसाद खत्री स्मारक समिति' आदि अनेक संस्थाओं के संस्थापक के रूप में आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय कही जा सकती है।

आपका साहित्यिक जीवन सन् 1933 से तब प्रारम्भ हुआ था जब आपकी 'तुलसी और आपका मानस' शीर्षक पहली गद्य-रचना आरा से प्रकाशित होने वाले 'हितैषी' नामक पत्र में प्रकाशित हुई थी। आपकी प्रकाशित साहित्यिक कृतियों में 'अयोध्याप्रसाद खत्री : व्यक्तित्व एवं कृतित्व', 'महेशनारायण : व्यक्तित्व एवं कृतित्व', 'सन्ताल संस्कार की रूपरेखा' और 'सन्ताली भाषा साहित्य का इतिहास' विशेष महत्त्व रखती हैं। इनके अतिरिक्त आपकी लगभग चार दर्जन और छात्रोपयोगी तथा विविधविषयक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। आपने अपने थोड़े से जीवन में इतना अधिक लिखा था कि उसका मूल्यांकन सर्वथा असंभव है। आपकी लगभग 12 पांडुलिपियाँ अभी अप्रकाशित ही हैं।

यह हार्दिक सन्ताप की ही बात है कि जब आपका अभिनन्दन-ग्रन्थ छपने की तैयारी हो रही थी और आपकी साहित्यिक सेवाओं का मूल्यांकन करने का समय आया था तब आप

सहसा सन् 1975 के अगस्त मास के प्रथम सप्ताह में रक्त-चाप एवं मधुमेह के कारण हमसे विदा हो गए और वह अभिनन्दन-ग्रन्थ अधूरा ही रह गया।

श्री उमाशंकर द्विवेदी 'विरही'

श्री द्विवेदीजी का जन्म राजस्थान के मेवाड़ अंचल के पीपलातरी नामक ग्राम में सन् 1892 में हुआ था। आपके पिता नानजीराम पालीवाल अच्छे वैद्य, ज्योतिषी और काव्यानुरागी थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई थी और आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यरत्न परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ-साथ मौलवी फाजिल की उपाधि भी प्राप्त की थी।

आप मेवाड़ राज्य के बन्दोबस्त महकमे में हैड क्लर्क थे और वहाँ से निवृत्त होने के उपरान्त अपना समय प्रायः साहित्य-सेवा में ही व्यतीत करते रहे थे। उदयपुर में अपने निवास पर आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएँ दिलाने के लिए एक साहित्य विद्यालय भी खोला हुआ था। अपनी साहित्य के प्रति गहन रुचि के कारण आपने अपनी जाति के 'पालीवाल प्रभा' नामक पत्र का भी सम्पादन किया था।

मेवाड़ राज्य में वहाँ के शासकीय कर्मचारी होकर भी आप राष्ट्रीय विचार से सर्वथा ओत-प्रोत रहते थे। खादी पहनना आपके स्वभाव में था। आप इतने स्वाभिमानी थे कि एक बार उदयपुर में आयोजित किसी कवि-सम्मेलन में जब वहाँ के 'अँग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट' ने आपको पुरस्कार देने की इच्छा प्रकट की तो आपने उसके पास जाकर पुरस्कार ग्रहण करने से सर्वथा इन्कार करते हुए यह कह दिया कि "यदि पुरस्कार देना है तो यहाँ मेरे पास आकर ही दीजिए।"

आप खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में समान रूप से रचनाएँ किया करते थे। आपकी रचनाएँ उन दिनों 'सुकवि' तथा 'काव्य कलाधर' नामक पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं। आप कविता में 'विरही' उपनाम लिखा करते थे। वैसे कुछ दिन तक आपने 'रिन्द' और 'रामपाल' नामक उपनाम भी रखे थे।

आप सुकवि होने के साथ-साथ एक उत्कृष्ट गद्य-लेखक भी थे। वैसे तो आपकी कोई प्रकाशित पुस्तक नहीं है लेकिन अप्रकाशित रूप में आपकी 'प्रेम सतसई' (कविता), 'लावण्य भवन' (उपन्यास) तथा 'सधवा' और 'सच्चा नवयुवक' (निबन्ध) आदि रचनाएँ उल्लेख्य हैं।

आपका निधन 7 सितम्बर सन् 1955 को हुआ था।

श्री उमाशंकर शुक्ल

श्री शुक्ल का जन्म मध्य प्रदेश के रायपुर नामक नगर में सन् 1896 में हुआ था। आप मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध शिक्षा-विद् और साहित्यकार थे। शिक्षा तथा राजनीतिक चेतना जाग्रत करने के क्षेत्र में आपका अनन्य योगदान रहा था। आपकी लगभग 25 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपका निधन 84 वर्ष की आयु में 17 मार्च सन् 1980 को रायपुर में हुआ था।

डॉ० उमेश मिश्र

श्री मिश्र का जन्म बिहार के दरभंगा जिले के 'बिन्ही' नामक ग्राम में 18 जून सन् 1895 को हुआ था। आपकी माता का देहावसान हो जाने के कारण आप अपने पिता महा-महोपाध्याय पं० जयदेव मिश्र के साथ काशी चले गए थे और वहाँ पर ही उनके सान्निध्य में साहित्य, व्याकरण, दर्शन आदि शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके संस्कृत वाङ्मय का तलस्पर्शी ज्ञान अर्जित किया था। आपके गुरुओं में महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री, महामहो-पाध्याय पं० अम्बादत्त शास्त्री, महामहोपाध्याय पं० वामा-चरण भट्टाचार्य, महामहोपाध्याय पं० फणिभूषण तर्क वागीश, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज, महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा, प्रो० आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव और पं० राजनाथ मिश्र के अतिरिक्त महामहोपाध्याय डॉ० सर

गंगानाथ झा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् 1922 में संस्कृत एवं दर्शन विषय में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की थी और उसके बाद कलकत्ता की संस्कृत एसोसिएशन से काव्यतीर्थ की उपाधि प्राप्त करके आप प्रयाग विश्वविद्यालय में दर्शन एवं संस्कृत विभाग के प्रवक्ता नियुक्त हो गए और लगभग दस वर्ष के घनघोर परिश्रम के बाद आपने उसी विश्वविद्यालय से 'भौतिक पदार्थ विवेचन' विषय पर शोध ग्रन्थ प्रस्तुत करके डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की।

सन् 1923 से सन् 1959 तक आप प्रयाग विश्वविद्यालय में सेवा-रत रहे। बीच में सन् 1949 में बिहार सरकार के विशेष आमंत्रण पर आप 'मिथिला शोध संस्थान एवं विद्यापीठ' के प्रथम निदेशक एवं प्रोफेसर के रूप में वहां आ गए और सन् 1952 तक इस पद पर रहे। तदुपरान्त प्रयाग चले गए और वहाँ से आपने सन् 1961 में अवकाश प्राप्त किया। प्रयाग विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के उपरान्त आप तीन वर्ष तक दरभंगा के 'सर कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय' के उपकुलपति बनाए गए। सन् 1943 में प्रयाग विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'गंगानाथ झा अनुसंधान केन्द्र' की स्थापना भी आपके ही प्रयास से हुई थी और संस्था के त्रैमासिक अनुसंधान - पत्र का सम्पादन भी आप ही करते रहे थे।
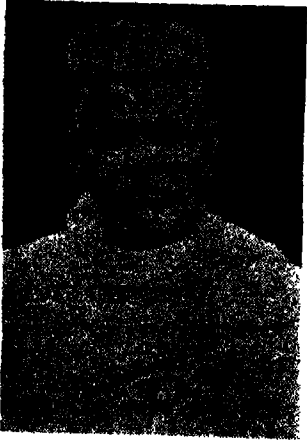
आप संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के अतिरिक्त अँग्रेजी में भी लिखते थे। आपकी हिन्दी रचनाओं में 'प्राचीन वैष्णव सम्प्रदाय', 'भारतीय दर्शन', 'विद्यापति ठाकुर', 'सांख्य योगदर्शन', 'मैथिली संस्कृति और सभ्यता' तथा 'तर्कशास्त्र की रूपरेखा' आदि प्रसिद्ध हैं। आपको सन् 1943 में भारत सरकार ने 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से भी विभूषित किया था। आपका निधन 9 सितम्बर सन् 1967 को हुआ था।

श्रीमती उर्मिला शास्त्री

आपका जन्म जुलाई सन् 1909 में श्रीनगर (कश्मीर) में हुआ था। आपके पिता लाला चिरंजीवलालजी पंजाब के प्रसिद्ध आर्यनेता थे। आपका विवाह संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् और गुरुकुल वृन्दावन के प्रतिष्ठित स्नातक डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री तर्क शिरोमणि के साथ हुआ था। क्योंकि श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री मेरठ कालेज में प्राध्यापक थे इसलिए मेरठ आकर उर्मिलाजी ने वहाँ के राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन में अपना प्रमुख स्थान बना लिया था। आपने सन् 1930-31 के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण दो बार जेल-यात्रा भी की थी। आपने अपनी जेल-यात्रा के संस्मरण अपनी 'कारागार' (सन् 1931) नामक पुस्तक में लिखे थे। इन संस्मरणों का धारावाहिक रूप से प्रकाशन लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'जन्मभूमि' नामक दैनिक पत्र में हुआ था। इस पत्र का सम्पादन भी श्रीमती उर्मिला शास्त्री ही किया करती थीं। जब ये संस्मरण 'जन्मभूमि' में छपे तो इनका हिन्दी जगत् में अभूतपूर्व स्वागत हुआ। इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'विश्वमित्र' ने इन्हें 'जन्मभूमि' से उद्धृत करके अपने पत्र में प्रकाशित किया था। इस पुस्तक की भूमिका श्रीमती कस्तूरबा गांधी ने लिखी थी। उक्त भूमिका माता कस्तूरबा ने गुजराती भाषा में ही लिखी थी, जो पुस्तक में उसके हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुई थी।

श्रीमती उर्मिला की शिक्षा-दीक्षा कन्या गुरुकुल, देहरादून में हुई थी और वहीं से उनमें राष्ट्रीयता के संस्कार अंकुरित हुए थे। खेद है कि बहुत थोड़ी अवस्था में ही 6 जुलाई सन् 1942 को आपका लाहौर में निधन हो गया।

श्री उल्फतसिंह चौहान 'निर्भय'

श्री 'निर्भय' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद की एतमादपुर तहसील के हसनपुर नामक ग्राम में 22 जून सन् 1899 को हुआ था। आपके पिता ठा० हेतसिंह चौहान अपने क्षेत्र के अत्यन्त प्रतिष्ठित जमींदार थे। श्री 'निर्भय' जी ने अपने पिताजी के कृषि-कार्य में सहयोग देने के साथ-साथ हिन्दी, उर्दू तथा अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। छात्र-जीवन में ही आपने जून सन् 1916 में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री देवनारायण भारती द्वारा क्रान्ति-दल में सम्मिलित होने की जो दीक्षा ली थी उसीके परिणाम-स्वरूप आपको सन् 1918 में 'मैनपुरी षड्यन्त्र केस' में अपराधी घोषित कर दिया गया। आप उन दिनों 'बलवन्त राजपूत हाईस्कूल,आगरा' में पढ़ते थे। अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर आप गिरफ्तारी के वारण्ट हो जाने के कारण फरार हो गए। फलस्वरूप आपको स्कूल से पृथक् कर दिया गया।

इसके बाद महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' में सक्रिय भाग लेकर आपने 'लगानबन्दी आन्दोलन' में दो बार गिरफ्तार होकर कारावास की यातनाएँ सहीं। आप उन दिनों तहसील कांग्रेस कमेटी के मन्त्री भी रहे थे। इस लगान-बन्दी आन्दोलन का प्रचार-कार्य आप ऊँट पर बैठकर किया करते थे। यह घटना भी उल्लेखनीय है कि जिन दिनों आप इस आन्दोलन के सिलसिले में फरार थे, तब जहाँ आपकी गिरफ्तारी के लिए 500 रुपए का इनाम घोषित किया गया था वहाँ उस ऊँट की गिरफ्तारी पर भी 60 रुपए का इनाम रखा गया था जिस पर बैठकर आप प्रचार किया करते थे।

आप एक उदग्र राष्ट्रकर्मी होने के साथ-साथ निर्भीक पत्रकार भी थे। अपने 'सैनिक' के सम्पादन के दिनों में आपने सरकारी प्रतिबन्धों की परवाह न करके व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय दिया गया विनोबा भावे का भाषण भी उसमें छापा था। इस पर आप गिरफ्तार कर लिए गए और 9 मई सन् 1941 को आगरा सेण्ट्रल जेल से नैनी जेल में भेज दिए गए, जहाँ पर कांग्रेस-अध्यक्ष मौलाना आजाद के अतिरिक्त प्रदेश के नेता श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्रीकृष्णदत्त पालीवाल आदि भी थे। सन् 1942 के क्रान्ति-आन्दोलन में भी निर्भयजी की भूमिका अत्यन्त सराहनीय रही थी। 15 नवम्बर सन् 1942 को आप गिरफ्तार करके जेल भेज दिए गए और लगभग 1 वर्ष तक नजरबन्द रहे।

आगरा जनपद के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में आपका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। आप जहाँ अनेक वर्ष तक जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे, वहाँ प्रदेश विधान सभा के सदस्य होने के साथ-साथ जिला परिषद् के भी अध्यक्ष रहे। एक कर्मठ, कुशल और निर्भीक राष्ट्रकर्मी होने के साथ-साथ आप ब्रजभाषा और हिन्दी के उत्कृष्ट कवि भी थे। आपकी ऐसी रचनाएँ 'किसानों की पुकार' (1924), 'किसानों का बिगुल' (1929), 'रणभेरी तथा अन्य राष्ट्रीय कविताएँ' (1930), 'चुनाव चालीसा' (1934),'चीन कमीन ने धोको दियो'(1962) तथा 'निर्भय नीति-संग्रह' (1975) नामक कृतियों में संकलित हैं। इनके अतिरिक्त आपकी और भी अनेक रचनाएँ अभी अप्रकाशित पड़ी हैं जिनमें 'सत्य हरिश्चन्द्र' (लोकगीत), 'नीति सतसई', 'अध्यात्म सतसई', 'शृंगार शतक' और 'ईशोपनिषद्' आदि प्रमुख हैं।

आपका देहावसान 17 सितम्बर सन् 1980 को हुआ था।

श्रीमती उषादेवी मित्रा

श्रीमती मित्रा का जन्म सन् 1897 में जबलपुर में हुआ था। आप हिन्दी की द्विवेदीयुगीन प्रख्यात कहानी-लेखिका थीं।

मूलत: बँगला भाषा-भाषी होते हुए भी आपने हिन्दी-लेखन को अपने जीवन का व्रत बनाया और अपनी रचनाओं से साहित्य की जो अभिवृद्धि की वह उल्लेखनीय है। आपकी रचनाओं में नारी-जीवन की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण अत्यन्त गहनता से हुआ है। आपके 'वचन का मोल', 'प्रिया', 'नष्ट नीड़', 'जीवन की मुस्कान', और 'सोहनी' नामक उपन्यासों के अतिरिक्त 'आँधी के छन्द', 'महावर', 'नीम चमेली', 'मेघ मल्लार', 'रागिनी', 'सान्ध्य पूर्वी' और 'रात की रानी' नामक कहानी-संग्रह उल्लेखनीय हैं।

आपकी 'सान्ध्य पूर्वी' नामक रचना पर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'सेकसरिया पुरस्कार' भी प्रदान किया गया था। मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन में आपकी साहित्य-सेवाओं के लिए आपका अभिनन्दन मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पन्न हुआ था। आप नागपुर रेडियो की परामर्शदात्री समिति की सदस्या होने के साथ-साथ नगर की अनेक सामाजिक संस्थाओं से भी सम्बद्ध रहती थीं।

आपका निधन 70 वर्ष की आयु में 19 सितम्बर सन् 1966 को हुआ था। यह विडम्बना की ही बात है कि मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपनी सुपुत्री डॉ० बुलबुल चौधरी से अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त करते हुए यह कहा था—"(1) मेरी सारी पुस्तकें मेरी चिता पर मेरे साथ जला दी जायँ। (2) मेरी शवयात्रा में शास्त्रीय संगीत निनादित हो।" जिस लेखिका ने 50 वर्ष वैधव्य में गुजारकर निरन्तर साहित्य-सृजन करके हिन्दी की सेवा की हो और जिसकी लेखन-कला की सराहना प्रेमचन्द-जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति ने की हो वह अपनी चिता के साथ अपनी रचनाओं को जलाने की इच्छा व्यक्त करे, इसकी पृष्ठभूमि में अवश्य ही घनीभूत अवसाद और उपेक्षा की दाहकता रही होगी।

श्री अभुदेव शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म 16 दिसम्बर सन् 1917 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नवुरा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री नयपाल शर्मा बड़ी ही धार्मिक प्रवृत्ति के सत्पुरुष थे और साधु-संन्यासियों की सेवा करना उनका प्रिय कर्त्तव्य था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा नोनौदा ग्राम के प्राथमिक विद्यालय में हुई। वहाँ पर आपके एक अध्यापक श्री बाबूलालजी कवि थे। उनकी प्रेरणा से आपको कविता करने की प्रेरणा मिली थी। बलिया जिले के रसड़ा नामक स्थान के विद्यालय से सातवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हो गए और फिर उसके बाद पंजाब में स्वामी वेदानन्दजी के पास जाकर संस्कृत तथा वैदिक धर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। जिन दिनों आप स्वामी वेदानन्दजी के पास 'गुरुदत्त भवन लाहौर' में पढ़ते थे उन दिनों आप गैरिक वसनों में रहते थे और आपका नाम 'स्वामी आत्मानन्द' था।

लाहौर के उपरान्त आप सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के पास औंध(सातारा) पहुँच गए। वहाँ पर भी आपने अपना स्वाध्याय जारी रखा। फिर आप निजाम राज्य के नेता श्री मनोहरलालजी की प्रेरणा से 'श्यामार्य गुरुकुल एडशी' के आचार्य बनकर हैदराबाद (दक्षिण) चले गए और फिर सारा जीवन

उन्होंने वहाँ ही छपा दिया। आपने हैदराबाद के 'केशव स्मारक आर्य उच्च विद्यालय' में हिन्दी-शिक्षक का भी कार्य किया था। अध्यापन-कार्य करने के साथ-साथ आप लेखन तथा सम्पादन की दिशा में भी अग्रसर हुए और वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'आर्यभानु' पत्र के सह सम्पादक भी रहे। कुछ दिन तक आपने 'शिव' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। आप एक सुकवि तथा सुलेखक भी थे। 'शिव' साप्ताहिक में धारावाहिक रूप में प्रकाशित आपकी 'ईशोपनिषद् की व्याख्या' बड़ी ही प्रभावकारक रही थी।

हैदराबाद में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने में भी आप अग्रणी रहे थे। आप 'हैदराबाद संस्कृत प्रचार समिति' और 'हिन्दी प्रचार सभा' के भी सक्रिय सदस्य थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'ऋग्वेद का भाष्य' के अतिरिक्त 'महर्षि दयानन्द गान' और 'आर्य भजन संग्रह' प्रमुख हैं।

आपका निधन 17 जनवरी सन् 1970 को हैदराबाद में हुआ था।

श्री ऋषिदत्त मेहता

श्री मेहताजी का जन्म सन् 1902 में बूँदी के वोहरा मेघवाहनजी के परिवार में हुआ था। आपका बाल्य-काल बड़े लाड़-प्यार तथा वैभवों के बीच व्यतीत हुआ था। यह एक संयोग की ही बात है कि जिस परिवार का सम्बन्ध बूंदी रियासत के राजघराने से था उस परिवार में जन्म लेकर भी आप विद्रोही हो गए और अपने अध्ययन को भी बीच में छोड़कर महात्मा गांधी के 'असहयोग आन्दोलन' में सक्रिय भाग लेने लगे।
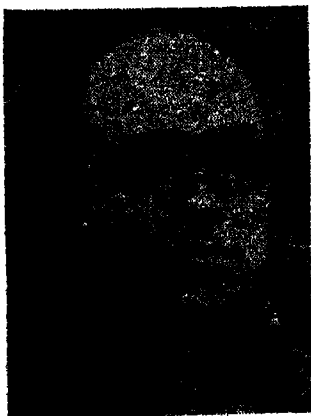
इसी बीच राजपूताना की राष्ट्रीय जागृति के जनक श्री विजयसिंह 'पथिक' के नेतृत्व में प्रारम्भ हुए 'बरड़' तथा 'खराड़' के ऐतिहासिक आन्दोलनों में आपके पूज्य पिता श्री नित्यानन्द नागर के सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आपके परिवार को राज्य से निर्वासित कर दिया गया और लगभग तीन लाख की चल और अचल सपत्ति भी जब्त कर ली गई। फलतः श्री मणिलाल कोठारी ने आपको व्यावर में बुला लिया और अपनी संस्था 'राजस्थान सेवा संघ' और 'तरुण राजस्थान' नामक पत्र की देख-रेख का पूर्ण दायित्व सौंप दिया। उन दिनों राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री जयनारायण व्यास उस पत्र का सम्पादन करते थे और उसकी व्यवस्था की देख-भाल आप किया करते थे। व्यासजी जब सन् 1929 में जेल चले गए तो उनके सम्पादन का भार आपको ही सँभालना पड़ा था। इसके उपरान्त आपका सारा ही जीवन संघर्षों में निकला और अनेक बार आपको जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। जेल से वापिस लौटने पर आपने फिर 'राजस्थान' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जिस दायित्व को आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक तत्परतापूर्वक निभाते रहे।

देश की स्वाधीनता के अन्तिम संघर्ष सन् 1942 के आन्दोलन में भी आप पीछे नहीं रहे और आप तथा आपके पिता दोनों ही नजरबन्द रहे। जेल से छूटने के बाद आपने बूंदी आकर 'बूंदी राज्य लोक परिषद्' को जन्म दिया और उसके माध्यम से भी अपना संघर्ष जारी रखा। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब बूंदी रियासत का विलयन 'राजस्थान' में हो गया तब वे चुप बैठे।

आपका देहावसान 6 जनवरी सन् 1973 को हुआ था।

श्री ऋषिराज नौटियाल

श्री नौटियाल का जन्म देहरादून जनपद के कौलागढ़ नामक ग्राम में 10 मई सन् 1920 को हुआ था। प्रारम्भ में आप गांधी आश्रम, मेरठ तथा सेवापुरी की भूदान योजना से सम्बद्ध रहे और बाद में आप 'अखिल भारतीय खादी एवं

ग्रामोद्योग आयोग' की प्रमाण-पत्र शाखा में उपनिदेशक रहे।

एक उत्कृष्ट कवि के रूप में देहरादून जनपद में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। सन् 1942 के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समय आपकी 'भारत छोड़ो' नामक कविता ने 'लोक चेतना' जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। सन् 1947 में आपकी कविताओं का संकलन 'मुण्डमालिनी' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। आपकी पहली कहानी 'आधा इन्सान' बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'सरगम' नामक पत्र की कहानी-प्रतियोगिता में सन् 1950 में पुरस्कृत हुई थी। आपकी अनेक रचनाएँ आकाशवाणी से भी प्रसारित होती थीं।

आपका निधन 16 मई सन् 1970 को लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में हुआ था।

प्रो० ए० चन्द्रहासन

प्रो० चन्द्रहासन का जन्म केरल प्रदेश के एर्णाकुलम् नगर से लगभग 5 मील दूर 'इलंकुन्नपुषा' नामक ग्राम में सन् 1905 में एक मध्यवर्गीय नायर-परिवार में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालय में हुई थी और आपने रसायन शास्त्र में बी० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आप एम० ए० की परीक्षा (अँग्रेजी साहित्य में) देने की तैयारी कर ही रहे थे कि 'असहयोग-आन्दोलन' छिड़ गया और आपकी पढ़ाई बीच में ही रह गई।

फिर आपने केरल के एक विद्यालय में 'विज्ञान के शिक्षक' के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया। सन् 1930 में खादी पहनने के अपराध के कारण आपको उस नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा। उसके बाद आप खादी-प्रचार और हरिजनोद्धार के कार्य में ही लग गए। देश के नेताओं के परामर्श पर आपने 'हिन्दी-प्रचार' के कार्य को अपने जीवन का प्रमुख कर्त्तव्य बनाया। हिन्दी के प्रचार को दृष्टि में रखकर सर्वप्रथम आपने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास द्वारा संचालित 'प्रशिक्षण विद्यालय' से 'हिन्दी प्रचारक' और 'विद्वान्' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की और फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिन्दी लेकर एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

जिन दिनों श्री चन्द्रहासन ने हिन्दी के प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया था उन दिनों युवक-युवतियों को इसके लिए तैयार करना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य समझा जाता था। श्री चन्द्रहासन ने सर्वप्रथम 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की केरल शाखा के मन्त्री का कार्य-भार सँभाला और 'एर्णाकुलम्' में एक 'हिन्दी प्रशिक्षण महाविद्यालय' की स्थापना करके आप उसके 'प्रधानाचार्य' हो गए। इसके उपरान्त आप एर्णाकुलम् के 'महाराजा कालेज' में हिन्दी के प्रवक्ता हो गए और बाद में उसी कालेज में 'प्रधानाचार्य' पद तक पहुँचे।

अपनी कर्मठता और ध्येयनिष्ठा के कारण श्री चन्द्रहासन ने थोड़े ही दिनों में अपने प्रदेश में बहुत लोकप्रियता प्राप्त की और त्रावणकोर राज्य सरकार ने आपको अपने राज्य में हिन्दी पढ़ाने की दृष्टि से 'हिन्दी विशेषाधिकारी' के रूप में नियुक्त कर लिया। इसके उपरान्त आप त्रावणकोर और केरल विश्वविद्यालयों के हिन्दी-अध्ययन बोर्डों के सदस्य और अध्यक्ष भी रहे। आपने मद्रास विश्वविद्यालय में भी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का मार्ग प्रशस्त किया।

स्वतन्त्रता के उपरान्त आप अनेक वर्ष तक भारत सरकार के 'केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल' के सदस्य तथा उसके शिक्षा-मंत्रालय की अनेक समितियों में उत्तरदायी पदों पर रहे। आपने जहाँ फरवरी सन् 1966
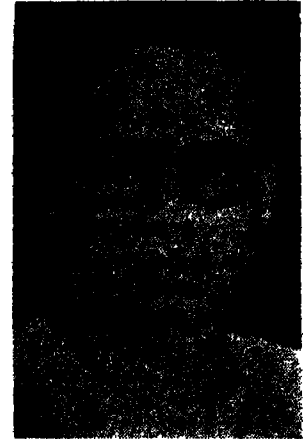
से 23 फरवरी सन् 1970 तक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में निदेशक के पद पर सफलतापूर्वक कार्य किया वहाँ विधि मन्त्रालय तथा सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय की 'हिन्दी सलाहकार समितियों' के भी आप सदस्य रहे। प्रो० चन्द्रहासन ने सन् 1924-25 से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक प्राय: 45 वर्ष खादी-प्रचार, हरिजनोद्धार और हिन्दी-प्रचार का जो कार्य किया वह उनकी ध्येयनिष्ठा का परिचायक है। आप अनेक वर्ष तक भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों की पाठ्यक्रम समितियों के सदस्य भी रहे थे।

आपका निधन 8 अगस्त सन् 1970 को हुआ था।

श्री ए० सी० कामाक्षिराव

श्री कामाक्षिराव का जन्म आन्ध्र प्रदेश के कड़पा नामक स्थान में 19 मई सन् 1918 को हुआ था। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास' द्वारा हिन्दी में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने मद्रास विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके कई वर्ष तक वहाँ के 'क्रिश्चियन कालेज' के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक तथा विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। आप अच्छे साहित्य-मर्मज्ञ और सुवक्ता थे। मातृभाषा तेलुगु होते हुए भी आपने हिन्दी-लेखन तथा भाषण में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली थी।
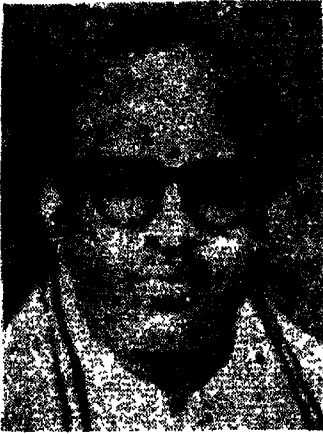
आपने जहाँ तेलुगु-हिन्दी और हिन्दी-तेलुगु शब्दकोषों की रचना की वहाँ हिन्दी की अनेक कृतियों को तेलुगु में अनूदित करके साहित्य-सेवा के क्षेत्र में नए मानदण्ड स्थापित किए हैं। आपके द्वारा तेलुगु में अनूदित रचनाओं में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी है। इसके अतिरिक्त 'कीचड़ का कमल' तथा 'राजा प्रताप' नामक कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं। आपने तेलुगु की विशिष्ट कृति 'रंगनाथ रामायणम्' का हिन्दी अनुवाद भी किया था, जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित हुआ है। आप जहाँ अनेक वर्ष तक 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास' के कोषाध्यक्ष रहे थे वहाँ 'साहित्यानुशीलन समिति' के भी प्रधान रहे थे। आप मद्रास विश्वविद्यालय की 'हिन्दी पाठ्य पुस्तक समिति' के सम्मानित सदस्य रहने के साथ-साथ भारत सरकार की हिन्दी कार्यक्रम से सम्बन्धित अनेक समितियों के सदस्य भी रहे थे।

आपका देहावसान सन् 1971 में हुआ था।

श्री एम० के० दामोदरन् उण्णि

श्री उण्णि का जन्म फरवरी सन् 1894 में कत्तप्पूर, एत्तुमानूर (केरल) में हुआ था। वे उत्तर भारत की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) के स्नातक थे। वे मलयालम भाषा के अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी, बँगला, गुजराती, तमिल और अँग्रेजी भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। संस्कृत में धारावाहिक रूप से भाषण देने की अद्भुत क्षमता के कारण उन्हें लोग 'बाणभट्ट' कहा करते थे।

जब श्री उण्णि ने सन् 1922 में हिन्दी-प्रचार का कार्य केरल में प्रारम्भ किया था तब इस क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति आगे नहीं आया था। वास्तव में वे ही केरल के 'प्रथम हिन्दी प्रचारक' थे। उन्होंने सर्वप्रथम केरल की 'तिरुवितांकूर' रियासत में हिन्दी-प्रचार के कार्य की नींव डाली थी। कुछ समय तक उन्होंने रियासत के राजघराने के बालकों को हिन्दी तथा संस्कृत भी पढ़ाई थी। उन्होंने जहाँ केरल में अनेक हिन्दी-प्रचार-केन्द्रों की स्थापना की वहाँ अनेक युवकों को हिन्दी-अध्ययन तथा अध्यापन के मिशन में लगाया। वास्तव में केरल में हिन्दी के प्रति आज जो गहन प्रेम दिखाई

देता है, उसका प्रमुख श्रेय श्री दामोदरन् को ही दिया जाना चाहिए। अपनी असाधारण वाक्पटुता, अगाध विद्वत्ता और निःस्वार्थ सेवा-वृत्ति के कारण वे इस क्षेत्र में बड़े ही लोकप्रिय थे। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'हिन्दी कहानियाँ' (दो भाग) और 'हिन्दी मलयालम स्वशिक्षक' विशेष उल्लेखनीय है।

आपका निधन जनवरी सन् 1952 में हुआ था।

सन्त कवि ऐन साईं

सन्त कवि ऐन साईं का जन्म ग्वालियर में सन् 1792 में हुआ था। आपका वास्तविक नाम ऐन उल्लाह हुसैन था और आप स्वामी ऐनानन्द के नाम से भी विख्यात थे। आप जाति के बंगस पठान थे और आपने 23 वर्ष की आयु में ही साईं हजरत फिदाहुसैन का शिष्यत्व ग्रहण करके पूर्ण वैराग्य धारण कर लिया था। आपके पिता ग्वालियर के रिसाले में नौकर थे, इसी कारण ऐन साईं भी बड़े होने पर अपने पिता के स्थान पर उसी रिसाले में नौकर हो गए थे।

हजरत फिदा हुसैन ने अपने शिष्य को 'जान अजान परगट गुपत सरबमयी भगवान्' का उपदेश देकर हिन्दी में कुण्डलियाँ लिखने की आज्ञा दी थी। आपने 'गुरु उपदेश सार' नाम से एक विस्तृत ग्रन्थ भी लिखा था, जिसमे 6416 कुण्डलियाँ समाविष्ट है। 'इनायत हजूर' नामक एक और ग्रन्थ में आपने फारसी और अरबी के शेरों का हिन्दी में अनुवाद किया है। आपने गिरिधर कविराय और दीनदयाल गिरि की शैली पर इतनी अधिक तथा सफल कुण्डलियाँ लिखी हैं कि उन्हें 'कुण्डलिया-सम्राट्' भी कहा जाता है। आपका 'भक्ति रहस्य' नामक ग्रन्थ ऐसा है जिसमें रागरागनियों का विशद परिचय दिया गया है। आप उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ सशक्त गद्य-लेखक भी थे। आपके गद्य का सुपुष्ट परिचय आपकी 'ऐन विहार'नामक पुस्तक में मिलता है। आप संस्कृत साहित्य के भी निष्णात पंडित थे। आपकी ऐसी प्रतिभा आपके द्वारा किये गए 'श्रीमद्भगवद्गीता'के हिन्दी पद्यानुवाद में भलीभाँति देखी जा सकती है।

श्री साईंजी ग्वालियर के अतिरिक्त दतिया, अलवर और जयपुर आदि स्थानों में ही प्रायः विश्राम किया करते थे। वे दतिया के राजा पारीछत तथा ग्वालियर-नरेश श्री जनकजीराव सिन्धिया के समकालीन थे और दोनों ही उनका बड़ा सम्मान करते थे। श्री साईं ने 'जन्म भूमि गढ़ ग्वालियर, दिल्ली मम गुरुधाम' लिखकर अपना थोड़ा-सा इतिहास अवश्य ही प्रकट कर दिया है। आप 'ओ३म्' नाम का तिलक स्वयं भी लगाते थे और अपने शिष्यों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करते थे। भगवे वस्त्रों का धारण करना उनका ऐसा स्वभाव बन गया था कि आज भी उनके परिवार के लोग वैसे ही वस्त्र धारण करते हैं। अपने काव्यों में आप मंगलाचरण में गणेश की ही वन्दना किया करते थे और गीता के अमर ज्ञान को सरल भाषा तथा सुबोध शैली में महलों से झोंपड़ियों तक पहुँचाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे।

'ऐन विहार' नामक ग्रन्थ में अपना परिचय देते हुए आपने जो पंक्तियाँ लिखी हैं उनसे उनके समय, परिस्थिति तथा काल का परिचय मिलता है। उन्होंने लिखा था—"मेरे पिता रियासत ग्वालियर के रिसाला में नौकर थे, जो जात के बंगस पठान थे व मुझे ग्वालियर में जन्म दिया और मुझे व मेरी माता को छोड़ अपने शरीर का त्याग किया। इससे मुझे नौकरी अवश्य ही करनी पड़ी। कुछ ही दिन नौकरी कर पाई थी कि हृदय-सागर में रण में लड़कर सद्गति प्राप्त करने की ईप्सित भावनाएँ उत्ताल तरंगों की भाँति..." उनका गद्य भी उत्कृष्ट कोटि का है। कविता की भाँति गद्य-लेखन में भी वे अत्यन्त प्रवीण थे। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'गुरु उपदेश सार', 'सिद्धान्त सार', 'भक्ति रहस्य', 'इनायत हुजूर', 'गुप्त रहस्य', 'अनुभव सार', 'ब्रह्म विलास', 'सुख विलास', 'भिक्षुक सार', 'भगवत् प्रसाद', 'श्याम हितकर', 'हित उपदेश', 'हरि प्रसाद', 'ऐन विहार', 'नरचरित्र', 'स्वयं प्रकाश', 'उपदेश हुलास', 'सिद्धान्त सारिका' तथा 'ऐनानन्द सागर' के नाम उल्लेख्य हैं। ये सभी कृतियाँ अप्रकाशित हैं।

साईंजी-जैसे सन्त कवियों के कारण हिन्दी-साहित्य का जो गौरव बढ़ा है, वह इतिहास में सदा-सर्वदा अमर रहेगा।

आपका निधन सन् 1843 में हुआ था।

श्री ओंकारशंकर विद्यार्थी

श्री ओंकारशंकर विद्यार्थी का जन्म सन् 1919 में कानपुर में हुआ था। आपके पिता अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी थे। आप विद्यार्थीजी के द्वितीय पुत्र थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अँग्रेजी साहित्य में एम० ए० करने के उपरान्त आपने कुछ वर्ष तक अपने पिताजी द्वारा सन् 1913 में संस्थापित साप्ताहिक 'प्रताप' के सम्पादन में भी सहयोग (सन् 1945-46) दिया था। इसके अतिरिक्त आपने सन् 1947-48 में स्वतंत्र रूप से 'आजाद हिन्द' नामक एक साप्ताहिक पत्र का भी सम्पादन एवं प्रकाशन किया था।

जब आप पत्रकारिता से विमुख हुए तो कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में अँग्रेजी साहित्य के प्रवक्ता हो गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वहाँ पर ही सेवा-रत रहे। कानपुर की अनेक साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था और उनके द्वारा समय-समय पर होने वाली विभिन्न प्रवृत्तियों में आप योगदान करते रहते थे।

आपका निधन 14 जनवरी सन् 1978 को हुआ था।

श्री ओम्दत्त शर्मा गौड़

श्री गौड़ का जन्म सन् 1903 में हुआ था। आपने अपने स्वर्गीय पिता श्री छोटेलाल शर्मा श्रोत्रिय के द्वारा छोड़े हुए कार्य को पूरा करने में ही अपने जीवन को लगाया था। दीर्घ-काल तक रेलवे में कार्य-रत रहकर आपने बाद में 'हिन्दू धर्म वर्ण-व्यवस्था मंडल' के माध्यम से समाज की उल्लेखनीय सेवा की थी।

एक कवि तथा पत्रकार के रूप में ख्याति प्राप्त करने के साथ-साथ आपने अनेक धार्मिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर भी कई ग्रन्थ लिखे थे। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'लूनिया जाति निर्णय', 'हिन्दू जातियों का इतिहास', 'ब्राह्मण निर्णय', 'क्षत्रिय वंश प्रदीप', तथा 'नौमुस्लिम जाति निर्णय अथवा क्षत्रिय वंश प्रदीप' (भाग 2) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 5 फरवरी सन् 1976 को हुआ था।
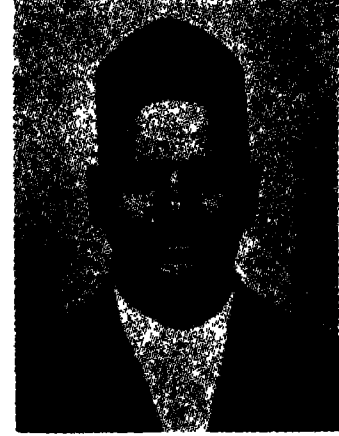
डॉ० ओमप्रकाश दीक्षित

डॉ० दीक्षित का जन्म 15 फरवरी सन् 1921 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के बोपाड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आपने एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत), प्रभाकर, साहित्य-रत्न एवं शास्त्री आदि की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं। आपने सन् 1962 में आगरा विश्वविद्यालय से 'जैन-कवि स्वयम्भू कृत पउम चरिउ एवं तुलसी-कृत राम-चरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध-कार्य करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी।

डॉ० दीक्षित ने सीताशरण इण्टर कालेज, खतौली (मुजफ्फरनगर) और अमरसिंह डिग्री कालेज, लखावटी (बुलन्दशहर) में अध्यापन कार्य करने के उपरान्त सन् 1955 में सहारनपुर के जे० बी० जैन कालेज में हिन्दी-विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य प्रारम्भ किया था और अपने जीवन के अन्तिम

क्षण तक इसी पद पर प्रतिष्ठित थे। कुछ दिन आपने कालेज के 'स्थापनापन्न प्राचार्य' का कार्य किया था। आपने अपने अध्यापन-काल में 10 व्यक्तियों को पी-एच० डी० के शोध-प्रबन्धों में निर्देशक का कार्य भी किया था।

शिक्षा के क्षेत्र में सफल होने के साथ-साथ दीक्षितजी साहित्य-सृजन की दिशा में भी अत्यन्त तत्परता के साथ अग्रसर हुए थे। आप जहाँ सफल गद्य-लेखक थे वहाँ कविता के क्षेत्र में भी अद्भुत प्रतिभा रखते थे। आपकी 'केसर क्यारी','हाथी हूल', 'पन्ना' एवं 'हाड़ा रानी' शीर्षक कविताएँ जन-मानस को उद्वेलित कर देती थीं। सहारनपुर के नागरिकों ने आपकी साहित्य-सेवाओं का अभिनन्दन 19 मई सन् 1962 को किया था।

शिक्षा तथा साहित्य-रचना में व्यस्त रहते हुए भी आपने कई वर्ष तक 'शाकम्भरी' नामक एक साहित्यिक पत्रिका का सफल सम्पादन भी किया था। इसके अतिरिक्त आपने 'सहारनपुर के साहित्यकार' नामक एक पुस्तक का सम्पादन भी सन् 1957 में किया था।

आपका निधन 8 अक्तूबर सन् 1977 को हुआ था।

श्री ओमप्रकाश 'विश्व'

श्री विश्व का जन्म 1 फरवरी सन् 1917 को मेरठ नगर में हुआ था। आपकी शिक्षा मेरठ कालेज में हुई थी। शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त आपने पत्रकारिता को ही अपना लिया था और सर्वप्रथम आपने भारत सरकार के सूचना विभाग के पत्र 'आजकल' के सम्पादक-मंडल में उप सम्पादक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया था और कुछ दिन 'राजकमल प्रकाशन' में भी रहे थे। सन् 1949 में आपने राजधानी के प्रमुख राष्ट्रीय दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में एक 'उप-सम्पादक' के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया था और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उसीमें रहे।

आप कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कहानी-लेखक भी थे। अपने लेखन का प्रारम्भ आपने 'कहानी-लेखक' के रूप में ही किया था। पत्रकारिता अपनाने के उपरान्त आपकी यह कला लुप्त-सी हो गई थी। 'हिन्दुस्तान' के स्तम्भ 'यत्र तत्र सर्वत्र' की लोकप्रियता में विश्व जी का भी प्रमुख हाथ था। आपने उसमें समय-समय पर स्वामी रजत केश, श्रीमती परम्परा देवी, नवयुग कुमार, कुमारी आधुनिका, मिस्टर फ्री लव तथा मिस फारवर्ड आदि पात्रों के माध्यम से देश की अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया था। सन् 1962 में कुछ समय तक आपने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में 'अन्तर्राष्ट्रीय घटना-चक्र' स्तम्भ भी लिखा था।

श्री विश्व का निधन 1 जनवरी सन् 1974 को उस समय हृदयाघात से हुआ था जबकि आप विभागीय कर्मचारियों की माँगों के सम्बन्ध में वकील से विचार-विमर्श कर रहे थे।

श्री कंचनलाल हीरालाल पारीख

श्री पारीख का जन्म गुजरात प्रदेश के बड़ौदा नामक नगर में 8 फरवरी सन् 1914 को हुआ था। आपने सन् 1951 से सन् 1962 तक बड़ौदा जिले के क्षेत्रीय हिन्दी-प्रचारक के

रूप में प्रमुखता से कार्य किया था। सन् 1942 के स्वातन्त्र्य-संघर्ष में उल्लेखनीय रूप से भाग लेने के साथ-साथ आपने अपने जीवन में स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का व्रत लिया हुआ था।

'श्रीमद्राजचन्द्र शताब्दी-ग्रन्थ' में लेख लिखने के अतिरिक्त आपने गुजरात की अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी हिन्दी-लेख लिखे थे।

आपका निधन 19 अप्रैल सन् 1976 को हुआ था।

आदि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया।

आपकी 'अष्टछाप पद साहित्य', 'उपनिषद्-साहित्य', 'वार्ता-साहित्य' तथा 'कांकरौली का इतिहास' आदि अनेक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। आपकी 'कविता कुसुमाकर' नामक पुस्तक में आपकी मुक्तक काव्य-रचनाएँ संकलित हैं। आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में बड़ी प्रौढ़ रचनाएँ किया करते थे।

आपका निधन 27 नवम्बर सन् 1978 को हुआ था।

पंडित कंठमणि शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म सन् 1898 में मध्य प्रदेश के दतिया नामक नगर में हुआ था। आपके पिता श्री बालकृष्णजी शास्त्री संस्कृत साहित्य के पारंगत विद्वान् थे। आपने भी सर्वप्रथम संस्कृत वाङ्मय के पारायण में ही अपने को लगाया। आपके पिता को क्योंकि नाथद्वारा के श्री गोवर्धनलाल जी ने अपनी 'गोवर्धन संस्कृत पाठशाला' में बुला लिया था, इसलिए आप भी वहीं आ गए और अपना अध्ययन जारी रखा।

सन् 1925 में 'वेदान्त शास्त्री' की उपाधि प्राप्त करके आप कोटा के गोस्वामी द्वारकेशलालजी के यहाँ आ गए। इससे पूर्व आप 'भारत धर्म महामण्डल काशी' में उपदेशक भी रहे थे। फिर आप दतिया जाकर महोपदेशक का कार्य करने लगे।

साहित्य-सेवा के क्षेत्र में भी आपने उल्लेखनीय कार्य किया है। प्रारम्भ में आपने दर्शन तथा धर्म-सम्बन्धी लेख आदि लिखे, परन्तु बाद में श्री वल्लभाचार्य के 'अणु भाष्य'

श्री कन्हैयालाल तन्त्र वैद्य

श्री कन्हैयालालजी का जन्म सन् 1875 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर में हुआ था। आप हिन्दी तथा संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् एवं सुलेखक थे। आपने 'तन्त्र शास्त्र' पर अनेक ग्रन्थ लिखे थे, जो आज अप्राप्य हैं। आपने 'श्रीमद्-भागवत्' का हिन्दी अनुवाद भी किया था, जो सन् 1901 के आस-पास भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। मुरादाबाद के सर्वश्री ज्वालाप्रसाद मिश्र और सूफी अम्बाप्रसाद आदि विद्वान् आपके समकालीन लेखक थे। आपने मुरादाबाद से 'तन्त्र प्रभाकर' नामक एक मासिक पत्र भी सम्पादित-प्रकाशित किया था। आप अपने युग के प्रसिद्ध लेखकों में गिने जाते थे।

आपका निधन सन् 1940 में हुआ था।

श्री कन्हैयालाल तिवारी 'कान्ह'

श्री 'कान्ह' जी का जन्म 1 सितम्बर सन् 1904 को उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के बकौली (छोटी) नामक ग्राम में हुआ था। आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अच्छी प्रौढ़ रचनाएँ किया करते थे। आपकी रचनाओं में ओज तथा प्रसाद गुण का प्राचुर्य रहता था। आपके काव्य-सौष्ठव एवं रचना-कौशल की प्रशंसा डॉ० रामकुमार वर्मा एवं

श्री नारायण चतुर्वेदी जैसे मनीषियों ने मुक्तकण्ठ से की है।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा यद्यपि उर्दू में हुई थी तो भी ब्रजभाषा के प्रति आपका अनन्य अनुराग था। आपने मिडिल से लेकर बी० ए० तक की शिक्षा में प्रथम श्रेणी ही प्राप्त की थी, किन्तु दुर्भाग्यवश अपने पिताजी के असामयिक देहावसान के कारण आपको अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर 15 रुपए मासिक की नौकरी करनी पड़ी। आप साहित्य-रचना के क्षेत्र में सुकवि गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' से अत्यधिक प्रभावित थे।
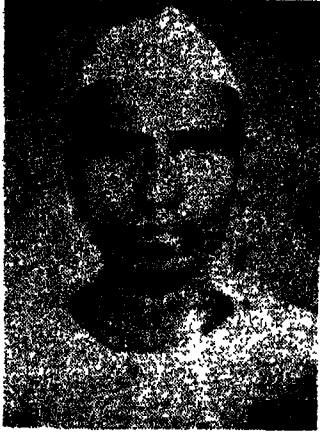
आपकी प्रमुख रचनाओं मे 'ब्रज-वन्दना', 'ब्रज विनोद', 'जवाहर ज्योति', 'उत्तर प्रदेश', 'बलिदान', 'ज्ञान सतसई' और 'बिहारी कान्ह' आदि प्रमुख हैं।

इनके अतिरिक्त भी आपका बहुत-सा साहित्य अप्रकाशित रह गया है। उनके सुपुत्र श्री चन्द्रभूषण त्रिपाठी उनके अप्रकाशित साहित्य के प्रकाशन के लिए प्रयत्नशील हैं।

. आपका निधन 16 जून सन् 1979 को हुआ था।

श्री कन्हैयालाल त्रिवेदी

श्री त्रिवेदीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के पीलीभीत नामक नगर के मोहल्ला केसरीसिंह में सन् 1877 में हुआ था। आप व्यवसाय से वैद्य थे, किन्तु साहित्य-रचना की ओर आपका स्वाभाविक झुकाव था। अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध होने के साथ-साथ आपने नगर के सार्वजनिक जीवन में अपना प्रमुख स्थान बना लिया था।

आपका निधन सन् 1962 में हुआ था।

श्री कन्हैयालाल मिश्र–1

श्री मिश्रजी का जन्म बिहार के गया जिले के कुरका नामक ग्राम में सन् 1864 में हुआ था। सन् 1885 में अपनी शिक्षा समाप्त करके वे पूर्णिया के जिला स्कूल में संस्कृत अध्यापक हो गए और फिर क्रमशः भागलपुर, गया, मोतीहारी तथा पटना आदि स्थानों में रहे। आपकी गणना बिहार के अनुभवी अध्यापकों और काव्यशास्त्र के मर्मज्ञों में होती थी। जब आप 19 वर्ष के ही थे तब प्रख्यात साहित्यकार पं० अम्बिकादत्त व्यास से आपका सम्पर्क हुआ; फलतः काव्य तथा साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा उन्हें उनसे ही मिली। 24 वर्ष की अवस्था से लेकर 62 वर्ष की अवस्था तक आप हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा एकनिष्ठ भाव से करते रहे।

आपकी काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होकर तत्कालीन काशी-नरेश राजा प्रभुनारायण सिंह ने आपको 'कविमातंग केसरी' की उपाधि प्रदान की थी। सन् 1908 में आपने गया से प्रकाशित होने वाली 'काव्यविलासिनी' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया था। यह पत्रिका वहाँ की 'काव्य-विलासिनी सभा' की ओर से प्रकाशित होती थी। मुंगेर के तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट ने भी आपको पुरस्कृत किया था।

वैसे तो आप मुख्य रूप से कवि थे लेकिन आपकी रचनाएँ गद्य में ही अधिक प्रकाशित हुई थीं। आपकी 'समस्या-पूर्ति' नामक काव्य-पुस्तक के अतिरिक्त 'भाषा पिंगल सार', 'हिन्दी व्याकरण', 'सरल शुभंकरी', 'लोअर अंकगणित' आदि कुछ पाठ्य-पुस्तकें भी थीं। इन में से 'भाषा पिंगल सार' नामक आपकी पुस्तक पंजाब टैक्स्ट बुक कमेटी द्वारा प्रदेश के स्कूलों तथा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत हुई थी।

इन पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी कुछ साहित्यिक कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं। जिनमें 'बिहार के गृहस्थों का जीवन चरित्र', 'मनुष्य का मातृत्व सम्बन्ध', 'विद्याशक्ति', 'राज्याभिषेक', 'भारतवर्ष का इतिहास', 'ललित माधुरी' तथा 'कमलिनी' आदि प्रमुख है। इनमें से अन्तिम दो उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं।

आपका निधन सन् 1933 में हुआ था।

श्री कन्हैयालाल मिश्र–2

श्री मिश्रजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नामक नगर में सन् 1872 में हुआ था।
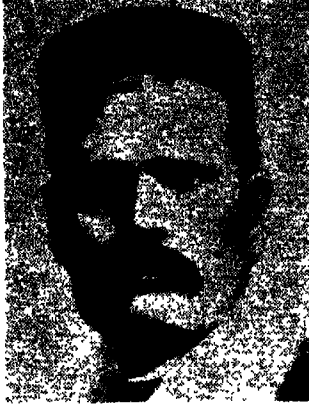
आपका सम्बन्ध मुरादाबाद के साहित्य-प्रेमी परिवार से था, इसी कारण साहित्य-रचना के क्षेत्र में आपकी स्वाभाविक गति थी। विद्या-वारिधि पं० ज्वाला-प्रसार मिश्र आपके बड़े भाई थे।

मूलत: सनातन धर्मावलम्बी होने के कारण धर्मशास्त्र और कर्मकाण्ड आदि विषयों की ओर आपका बहुत झुकाव था। आपकी अधिकांश रचनाएँ वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई तथा रामेश्वर प्रेस, दरभंगा (बिहार) से प्रकाशित हुई थीं।

आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'श्री हरिभक्ति विलास', 'मनुस्मृति', 'सुख सागर', 'दशकर्म पद्धति', 'सौभाय लक्ष्मी स्तोत्र', 'अष्टसिद्धि', 'मार्कण्डेय पुराण', 'भारत सार', 'नारी देह तत्त्व', 'हरिश्चन्द्र नाटक' तथा 'सनातन धर्म भजन-माला' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन तीर्थराज प्रयाग में 25 मई सन् 1927 को 55 वर्ष की अवस्था में हुआ था।

डॉ० कन्हैयालाल सहल

श्री सहलजी का जन्म 1 दिसम्बर सन् 1911 को राजस्थान के नवलगढ़ नामक स्थान में हुआ था। आपकी शिक्षा जयपुर के महाराजा कालेज से हुई थी और आपको लिखने की प्रेरणा श्री हीरालाल शास्त्री से मिली थी। आगरा विश्व-विद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त आप पिलानी के आर्ट्स कालेज में अध्यापन का कार्य करने लगे और उसके प्रधानाचार्य के पद तक पहुँचे थे।

आप जहाँ हिन्दी के नई पीढ़ी के समीक्षकों में एक सर्वथा विशिष्ट स्थान रखते थे वहाँ राजस्थानी भाषा और साहित्य के भी एक मर्मज्ञ विद्वान् थे। आप राजस्थानी भाषा के समर्थ विद्वान् स्व० सूर्यकरण पारीक की स्मृति में स्थापित साहित्य समिति के अनेक वर्ष तक अध्यक्ष रहने के साथ-साथ 'मरु भारती' नामक त्रैमासिक पत्रिका के भी सम्पादक रहे थे। आपकी समीक्षा-पद्धति की तुलना टी०एस०इलियट से की जा सकती है। उनका प्रभाव आपके लेखन पर बहुत अधिक था।

आपकी समीक्षात्मक कृतियों में 'आलोचना में पथ पर', 'समीक्षायण', 'समीक्षांजलि', 'वाद-समीक्षा', 'विवेचन', 'साकेत के नवम सर्ग का काव्य-वैभव', 'कामायनी-दर्शन', 'केशव सुधा', 'मूल्यांकन', 'विमर्श और व्युत्पत्ति', 'अनु-सन्धान और आलोचना' तथा 'चिन्तन के आयाम' उल्लेख-नीय हैं। 'दृष्टिकोण' नामक उनकी पुस्तक में ललित निबन्ध संकलित हैं। आपको 'राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन' नामक ग्रन्थ पर पी-एच० डी० की उपाधि भी प्रदान की गई थी। यह पुस्तक 'बंगाल हिन्दी मण्डल' कलकत्ता द्वारा पुरस्कृत हुई थी।

आपने जहाँ राज-स्थानी भाषा के महा-कवि श्री सूर्यमल्ल मिश्रण की विख्यात कृति 'वीर सतसई' का सम्पादन किया था वहाँ राजस्थानी भाषा से सम्बन्धित 'निहालदे सुलतान और 'चौबोली' जैसी कृतियों का सम्पादन भी किया था। 'चौबोली' के सम्पादन में उन्हें श्री पतराम गौड़ 'विशद' का सहयोग भी सुलभ हुआ था।

बालसा-हित्य-निर्माण के क्षेत्र में भी आपकी देन अभूत-

पूर्ण थी। राजस्थानी लोक-कथाओं और ऐतिहासिक उपाख्यानों से सम्बन्धित आपके अनेक ग्रन्थ भी आपकी शोधपरक प्रतिभा के ज्वलन्त साक्षी हैं। आप कवि भी उच्चकोटि के थे। आपकी 'प्रयोग', 'समय की सीढ़ियाँ', और 'क्षणों के धागे' नामक काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपका निधन 13 मार्च सन् 1977 को 'ब्रेन ट्यूमर' बम्बई में के कारण हुआ था।

लाला कन्नोमल एम० ए०

लालाजी का जन्म सन् 1873 में आगरा में हुआ था। 22 वर्ष की आयु में सन् 1895 में एम० ए० (अँग्रेजी) की उपाधि प्राप्त करके आप प्रारम्भ में 3 वर्ष तक गवर्नमेण्ट हाईस्कूल, आगरा में शिक्षक रहे और फिर कुछ दिन वहाँ की नगरपालिका में चुंगी विभाग के अधीक्षक के पद पर भी कार्य किया। इसके उपरान्त आप जोधपुर चले गए और वहाँ के कस्टम विभाग में अधीक्षक के रूप में कुछ दिन तक कार्य किया। जब वहाँ पर आपका मन नहीं लगा तो आप धौलपुर चले आए और वहाँ के शिक्षा विभाग में 'अधीक्षक' हो गए। आपकी कर्त्तव्यनिष्ठा तथा कार्य-पटुता से धौलपुर राज्य के तत्कालीन नरेश इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने आपको 'न्यायाधीश' के पद पर नियुक्त कर दिया। इस पद पर रहते हुए भी आप राज्य के पुलिस, शिक्षा, रेलवे तथा स्वायत्त शासन विभागों का कार्य भी देखा करते थे। आप अपने जीवन के अन्तिम समय तक इसी पद पर निष्ठापूर्वक कार्य करते रहे थे।

लालाजी एक कुशल शासक होने के साथ-साथ हिन्दी के गम्भीर और अध्ययनशील लेखक भी थे। दार्शनिक एवं धार्मिक विषयों में आपकी पर्याप्त रुचि रहती थी और अपनी प्रतिभा को आपने दार्शनिक तथा धार्मिक विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थ लिखने में ही लगाया था। जिन दिनों आप लिखा करते थे उन दिनों हिन्दी का कदाचित् कोई पत्र ऐसा होगा जिसमें आपकी रचनाएँ ससम्मान प्रकाशित न होती हों। अपने लेखन में व्यस्त रहने के साथ-साथ आप 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' तथा 'नागरी प्रचारिणी सभा' जैसी अनेक संस्थाओं के कार्यों में पर्याप्त रुचि लेते थे। सन् 1928 में युक्त प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आगरा में हुए सातवें अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष आप ही थे।

हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक होने के साथ-साथ आप अँग्रेजी के भी पारंगत विद्वान् थे और उस भाषा में भी आपने अनेक रचनाएँ की हैं। आपकी हिन्दी में प्रकाशित रचनाओं में 'हर्बर्ट स्पेंसर की अज्ञेय मीमांसा' (1916), 'हर्बर्ट स्पेंसर की ज्ञेय मीमांसा' (1916), 'गीता दर्शन' (1918), 'हिन्दी-प्रचार के उपयोगी साधन' (1920), 'महिला सुधार' (1923), 'संसार को भारत का सन्देश' (1923), 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' (1924) 'अनेकान्तवाद' (1927), 'योग दर्पण' (1929) तथा 'भारतवर्ष के धुरन्धर कवि' (1935) के अतिरिक्त 'प्रश्नोत्तर रत्न मणिमाला', 'उपनिषद् रहस्य', 'साहित्य-संगीत-निरूपण', 'सप्तभंगी नय', 'जैन तत्त्व मीमांसा', 'बौद्ध दर्शन', 'न्याय दर्पण', 'वैशेषिक दर्पण', 'सामाजिक सुधार' तथा 'धौलपुर नरेश और धौलपुर राज्य' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1933 में हुआ था।

राजमाता कपूरवती

राजमाता कपूरवतीजी का जन्म 23 मार्च सन् 1923 को कानपुर जिले के बैरी नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री मनीराम दीक्षित संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। माता का निधन शैशव में ही हो जाने के कारण आपको मातृ-सुख

से वंचित रहना पड़ा था। आप कानपुर की सुप्रसिद्ध समाज-सेविका श्रीमती गोमती वर्मा की प्रेरणा पर समाज-सेवा के क्षेत्र में अग्रसर हुई थीं।
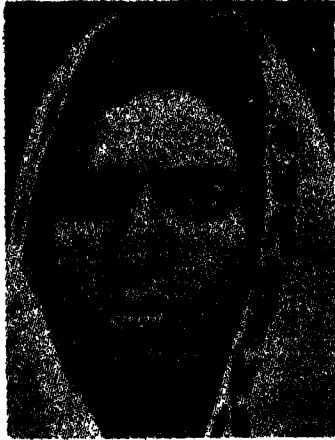
सन् 1935 में आपका विवाह प्रसिद्ध जनकवि श्री सुदर्शन 'चक्र' से हुआ और उनके सम्पर्क से आपका झुकाव साहित्य-रचना की ओर हुआ। आप अपने पति की सही अनुयायिनी थीं। मजदूर-आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आपको 'कारावास' भी भुगतना पड़ा था।

जिन दिनों ग्वाल टोली में 'लाल फौज' का निर्माण हुआ था उन दिनों आप तथा आपके पुत्र कान्तिकुमार मिश्र लाल वस्त्र पहनते थे और हँसिया तथा हथौड़े का बैज लगाए रखते थे। आप कम्यून में सब साथियों के साथ भोजन किया करती थीं। अपने इसी व्यवहार के कारण आप 'राजमाता' कहलाने लगी थीं।

राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आपकी कविताओं में उग्र क्रान्ति की भावनाएँ निहित होती थीं।

आपका निधन 10 अक्तूबर सन् 1971 को हुआ था।

श्री कमलाकान्त वर्मा

श्री कमलाकान्त वर्मा का जन्म 5 अक्तूबर सन् 1911 को उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के उजियार-भरवली नामक ग्राम में हुआ था। काशी विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा पटना विश्वविद्यालय से बी० एल० की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त आप व्यवसाय में लग गए, किन्तु उसमें सफलता मिलती न देखकर बिहार के सासाराम नामक नगर में वकालत प्रारम्भ की। जब वकालत भी रास न आई तो सन् 1938 में आप कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'विशाल भारत' नामक मासिक पत्र में सहकारी सम्पादक हो गए। कुछ समय तक आप इस पत्र के सम्पादक भी रहे थे।

जब सम्पादन से मन उचाट हो गया तो फिल्म-क्षेत्र में प्रवेश किया और सन् 1938 में 'बापू ने कहा था' नामक फिल्म का लेखन तथा निर्देशन किया। इससे पूर्व भी आपने 'कुरुक्षेत्र' और 'तपस्या' आदि कई फिल्मों के निर्माण एवं निर्देशन में अपना अनन्य सहयोग दिया था। लेखन के क्षेत्र में आपको विशेष ख्याति सन् 1937 में 'हंस' में प्रकाशित 'पगडण्डी' नामक रचना से मिली थी। जिस प्रकार श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'उसने कहा था' नामक अकेली कहानी के बल पर अखिल भारतीय ख्याति अर्जित की थी, उसी प्रकार वर्माजी ने भी अपनी 'पगडण्डी' नामक एक कहानी के द्वारा ही आधुनिक कथा-साहित्य के इतिहास में अपना एक गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है। एकांकी-लेखन के क्षेत्र में आपकी विशिष्ट देन थी।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'प्रवासी' (दो अंकों का नाटक) 'श्री' (एकांकी), 'सूर्योदय', 'उस पार', 'मेघदूत' और 'बारहवाँ संस्कार' (कहानी-संकलन) आदि उल्लेखनीय हैं। आपकी 'उसको पिस्तौल किसने दी' नामक उनकी ख्यातिप्राप्त कहानी अभी भी अप्रकाशित है। आपने संगीत तथा नाटक के क्षेत्र में अपनी अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियों के कारण एक विशिष्ट स्थान बना लिया था।

आपके अपने जीवन में गांधी, रवीन्द्र तथा अरविन्द के सिद्धान्तों का अद्भुत समन्वय हुआ था। इनकी छाया आपकी प्रायः सभी रचनाओं में दृष्टिगत होती है।

आपका निधन सन् 1978 में हुआ था।

श्रीमती कमलाकुमारी

श्रीमती कमलाकुमारी हिन्दी की प्रख्यात कवयित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की छोटी बहन थीं। इनका जन्म इलाहाबाद के निहालपुर नामक ग्राम में सन् 1904 में हुआ था। इनका विवाह जौनपुर निवासी श्री हुबदारसिंहजी से हुआ था। वे शुरू-शुरू में सिंगर सिलाई मशीन में एक अधिकारी थे और बाद में वाराणसी में स्थायी रूप से रहकर वहाँ पर होम्योपैथी के चिकित्सक हो गए थे। श्री सिंह ने अपने अध्यवसाय और योग्यता से काशी के चिकित्सकों में एक विशिष्ट स्थान बना लिया था।
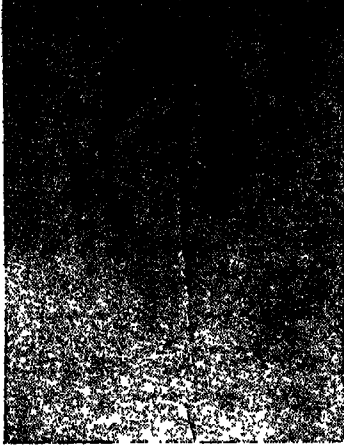
कमलाजी की काव्य-प्रतिभा हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्यकार और कवि श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' के सम्पर्क में आकर विकसित और पल्लवित हुई थी। इनके पति का सम्पर्क चिकित्सक के नाते प्रेमचन्द्रजी और प्रसाद जी-जैसे अनेक उत्कृष्ट साहित्यकारों से भी था। जिससे कमलाकुमारीजी को साहित्य-क्षेत्र में बढ़ने का उचित अवसर प्राप्त हुआ था।

कमलाजी की कविताएँ तथा कहानियाँ काशी के प्रख्यात हिन्दी दैनिक 'आज' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थीं। वे जहाँ साहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती थीं वहाँ समाज-सेवा के क्षेत्र में भी उनका उल्लेखनीय स्थान था। स्वतन्त्रता से पूर्व जब उत्तर प्रदेश में प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना था तब वे काशी में 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' भी रही थीं। प्रसादजी के प्रोत्साहन से उनकी कविताओं का एक संकलन तैयार हुआ था, जो उनकी मृत्यु के उपरान्त सन् 1938 में 'जीवन की साधना' नाम से प्रकाशित हुआ था।

उनका निधन सन् 1974 में हुआ था।

श्रीमती कमला चौधरी

श्रीमती कमला चौधरी का जन्म सन् 1908 में लखनऊ में हुआ था। आपके पति मेरठ के प्रख्यात चिकित्सक डॉ० जे० एन० चौधरी हैं। विवाह हो जाने के उपरान्त मेरठ के साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में आपका प्रमुख स्थान रहा था। अनेक बार असहयोग आन्दोलन में जेल-यात्राएँ करने के अतिरिक्त आप लोकसभा की भी सदस्या रही थीं। प्रदेश कांग्रेस कमेटी और शहर कांग्रेस कमेटी की सम्मानित सदस्या होने के साथ-साथ आप उत्तर प्रदेश समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्षा भी रही थीं।

आप समाज-सेवा के क्षेत्र में विभिन्न रूपों में कार्य करने के साथ-साथ साहित्य-निर्माण की दिशा में भी तत्पर रहती थीं। आप हिन्दी की उत्कृष्ट कथा-लेखिका और कवयित्री थीं। आपकी कहानियों के संकलन 'उन्माद', 'पिकनिक', 'यात्रा', 'प्रसादी कमण्डल' तथा 'बेल पत्र' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त आपने 'खैयाम का जाम' नाम से उमर खैयाम की रुबाइयों का हिन्दी में पद्यानुवाद भी किया था। आपकी 'आपन मरन जगत कै हाँसी' नामक पुस्तक में आपकी हास्य-व्यंग्य कविताएँ संकलित हैं। बाल साहित्य के निर्माण में भी आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। आपकी ऐसी रचनाएँ 'चित्रों में लोरियाँ' तथा 'मैं गांधी बन जाऊँ' नामक पुस्तकों में संकलित हैं। आपके द्वितीय कहानी संग्रह 'पिकनिक' की भूमिका उपन्यास सम्राट् श्री प्रेमचन्दजी ने लिखी थी और उसका प्रकाशन भी सन् 1939 में सरस्वती प्रेस बनारस से ही हुआ था।

आपका निधन सन् 1970 में हुआ था।

(राजा) कमलानन्द सिंह 'सरोज'

श्री सरोज का जन्म 29 मई सन् 1876 को बिहार के पूर्णिया जिले के बनैली राज्य की शाखा श्रीनगर के राजा श्री नन्द-सिंह के यहाँ हुआ था। आप जब पाँच वर्ष के ही थे, आपके पिता का देहावसान हो गया। छठे वर्ष में आपका अक्षरारम्भ हुआ था और नौ वर्ष तक राजभवन में ही रहकर आपने शिक्षा प्राप्त की थी। दो वर्ष तक पूर्णिया के जिला स्कूल में पढ़ने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए आप भागलपुर चले गए। वहाँ के जिला स्कूल के मुख्याध्यापक उस समय पं० अम्बिकादत्त व्यास थे। स्कूली पढ़ाई के साथ-साथ आपने उन दिनों संस्कृत, बंगला और अँग्रेजी भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

आप इतने साहित्य-प्रेमी थे कि एक बार जब आर्थिक कारणों से 'सरस्वती' को बन्द करने का निश्चय किया गया तो आपने 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखा था कि इण्डियन प्रेस के मालिकों से कह दीजिए कि उसके प्रकाशन में जो भी घाटा होगा उसे मैं दिया करूँगा। 'सरस्वती' के मालिकों ने जब उनकी सहायता लेने से इन्कार किया तो प्रकारान्तर से उन्होंने अपने राज्य के सभी विद्यालयों के लिए 'सरस्वती' को नियमित रूप से खरीदकर उसकी सहायता की। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जॉन स्टुअर्ट मिल की 'लिबर्टी' नामक अँग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद आपको ही समर्पित किया था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने द्विवेदीजी को 500 रु० का पुरस्कार दिया था। एक बार जब 'असनी' के कवि 'सेवक' का 'वाग्विलास' नामक ग्रन्थ अप्राप्य हो गया था तब आपने ही उसे श्री अम्बिकादत्त व्यास द्वारा सम्पादित कराकर प्रकाशित किया था। आप स्वयं भी बहुत अच्छे कवि थे और आपकी 'मिथिला चन्द्रास्त' नामक छोटी-सी कविता-पुस्तक सन् 1899 में छपी थी। यह आपकी सबसे पहली रचना है। इसे आपने तत्कालीन दरभंगा नरेश श्री लक्ष्मीश्वर-सिंह बहादुर के निधन के अवसर पर लिखा था। आपकी दूसरी काव्य-कृति 'व्यास शोक प्रकाश' सन् 1910 में प्रकाशित हुई थी और इसकी रचना आपने अपने साहित्य-गुरु पं० अम्बिकादत्त व्यास के निधन पर की थी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राजा साहब व्यास जी की पत्नी और एकमात्र पुत्र के निर्वाह के लिए दो सौ रुपए वार्षिक दिया करते थे।

आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में समान रूप से कविता करने में दक्ष थे और आपकी रचनाएँ 'सरस्वती' तथा 'मिथिला मिहिर' में ससम्मान प्रकाशित होती थी। आपने बंकिम बाबू के दो बंगला उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद भी किया था और माइकेल मधुसूदन दत्त के 'वीरांगना काव्य' के कुछ अंशों का पद्यबद्ध अनुवाद 'सरस्वती' के कुछ अंकों में भी छपवाया था। साहित्य के प्रति आपके अनन्य अनुराग और साहित्यकारों को दिए जाने वाले प्रोत्साहन को देखकर कवि-मंडली की ओर से आपको 'कवि भोज' तथा 'भारत धर्म महामंडल काशी' की ओर से 'कविकुलचन्द्र' की उपाधि से अलंकृत किया गया था। आपकी ब्रजभाषा की समस्या-पूर्तियाँ कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'रसिक मित्र' नामक पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं। आपकी सभी प्राप्य रचनाओं का संग्रह आचार्य शिवपूजनसहाय ने सम्पादित करके 'सरोज रचनावली' नाम से पुस्तक भंडार पटना द्वारा प्रकाशित करा दिया था।

आपका निधन सन् 1910 में हुआ था।

श्री कमलाप्रसाद वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म 19 जनवरी सन् 1883 को बिहार के शाहाबाद जिले के बगुरा नामक ग्राम में हुआ था। आपने सन् 1901 में पटना सिटी हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बाद में अस्वस्थ हो जाने के कारण आप अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख सके और हाजीपुर की कचहरी

में लिपिक का काम करने लगे। बाद में कलकत्ता से 'मुख्तारी' की परीक्षा पास करके आप पटना चले गए और जीवन-पर्यन्त वहीं पर मुख्तारी करते रहे। आपने पटना से प्रकाशित होने वाले 'बिहार बन्धु' नामक पत्र का सम्पादन भी दो वर्ष तक किया था। संस्कृत कार्यालय अयोध्या ने आपको साहित्यालंकार की सम्मानोपाधि से भी विभूषित किया था। आपकी रचनाएँ हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित पत्रों में प्रकाशित होती थीं। आपका प्रथम उपन्यास 'कुल कलंकिनी' सन् 1912 में प्रकाशित हुआ था और इसके बाद तो आपने विभिन्न विषयों की अनेक पुस्तकें लिखी थीं। आपकी प्रकाशित पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—'अभिमन्यु का आत्मदान', 'राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद', 'करबला', 'जीवन संग्राम', 'वैशाली', 'परलोक की बातें', 'भयानक भूल', 'निर्बल सेवा', 'रोम का इतिहास', 'भूलती भागती यादें' और 'हिमालय'। इनके अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं ने आपकी कुछ और रचनाओं 'आध्यात्मिक रहस्यों में सामाजिक जीवन', 'विवेकानन्द की जीवनी', 'राजनीति-विकास', 'पाटलिपुत्र का ऐतिहासिक महत्त्व' और 'अनोखा रंडीबाज' का भी उल्लेख किया है।

आपका निधन 24 मई सन् 1949 को हुआ था।

श्रीमती कमलाबाई किबे

श्रीमती किबे का जन्म कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में सन् 1886 में हुआ था। कोल्हापुर में आपका परिवार 'सरदेसाई' नाम से विख्यात था। आप हिन्दी की सुलेखिका तथा सामाजिक कार्यकर्त्री थीं। इन्दौर राज्य के 'वजीरुद्दौला' रावबहादुर सरदार माधव राव विनायक किबे से विवाह के उपरान्त आप जब इन्दौर आईं तो आपने वहाँ के समाज-सेवा के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। आप मध्य भारत में स्त्री-शिक्षा की बहुत बड़ी समर्थक थीं। आप सन् 1941 से 1947 तक इन्दौर की विधानसभा की सदस्या भी निर्वाचित हुई थीं। 'हिस्टोरिकल रिकार्ड्स कमीशन' की 8 वर्ष तक सक्रिय सदस्या रहने के साथ-साथ आप अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर और मराठी साहित्य परिषद्, पूना की भी अनेक वर्ष तक सक्रिय सदस्या रही थीं।

समाज-सेवा के क्षेत्र में आपका योगदान अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण रहा था आपने जहाँ महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन में अपना सहयोग दिया वहाँ हरिजनोद्धार के कार्य को भी आगे बढ़ाया। वास्तव मे आपको इन कार्यों में बढ़-चढ़कर रुचि लेने की प्रेरणा अपने पति से प्राप्त होती रहती थी। हिन्दी-प्रचार के कार्य को तो जैसे आपने अपने जीवन का चरम लक्ष्य ही बना लिया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कदाचित् कोई ही अधिवेशन होता होगा, जिसमें आपने भाग न लिया हो। आप जहाँ मराठी भाषा की उत्कृष्ट लेखिका थीं वहाँ हिन्दी-लेखन में भी आपको अद्भुत कौशल प्राप्त था। आपकी हिन्दी पुस्तक 'बाल कथा' (1923) अपनी विशिष्टता के लिए विख्यात है। आपने कई पुस्तकों का हिन्दी से मराठी में भी अनुवाद किया था।

लेखन और समाज-सेवा के अतिरिक्त आपको यात्राएँ करने का भी बहुत शौक था। आपने अपने पतिदेव के साथ यूरोप के अनेक देशों की यात्राएँ भी की थीं। यह आपकी हिन्दी-निष्ठा का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि आपने अपने पति सरदार किबे को भी हिन्दी-प्रचार के कार्यों में पूर्ण तत्परता से प्रवृत्त कर दिया था। सन् 1915 में 'मराठी साहित्य

सभा' के बम्बई-अधिवेशन में आपने जो भाषण दिया था उसकी सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा हुई थी।

आपका निधन 18 दिसम्बर सन् 1974 को हुआ था।

श्री कमलाशंकर मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म मध्य प्रदेश के होलकर राज्य के रामपुरा-भानपुरा सूबे में (वर्तमान) रामगढ़ जिले के माचलपुर नामक छोटे से ग्राम में सन् 1900 में हुआ था। आपके पिता पं० बालकृष्ण मिश्र गाँव के प्रमुख वैद्य तथा जमींदार थे। जब श्री मिश्र जी 8 मास के बालक ही थे कि उनके पिताजी का असामयिक देहावसान हो गया। धीरे-धीरे जब वे बड़े हुए तब उनकी दादी उन्हें विद्याध्ययन के लिए रामपुरा ले गई। वहाँ पर चतुर्थ कक्षा की वार्षिक परीक्षा में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया और सातवीं कक्षा तक की शिक्षा वहाँ प्राप्त करने के उपरान्त आप आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए इन्दौर के 'महाराजा शिवाजीराव हाईस्कूल' में जाकर प्रविष्ट हो गए। वहाँ से उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1925 में छात्रवृत्ति के सहारे आपने इन्दौर के 'होलकर कालेज' से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

बी० ए० करने के उपरान्त पहले आप इन्दौर के जैन हाईस्कूल में अध्यापक हो गए और बाद में जनवरी सन् 1926 में 'महाराजा शिवाजीराव हाईस्कूल' में शिक्षक के रूप में आपकी नियुक्ति हो गई। आगे चलकर जब यह स्कूल कालेज हो गया तब यहाँ पर ही आपको 'हिन्दी विभागाध्यक्ष' बना दिया गया। श्री श्रीनिवास चतुर्वेदी यहाँ पर संस्कृत के विभागाध्यक्ष थे। इसी बीच आपने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० और अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'साहित्यरत्न' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लीं और सन् 1953 के जुलाई मास तक इसी कालेज में रहे बाद में आपका स्थानान्तरण उज्जैन हो गया, जहाँ पर आप सेवा-निवृत्ति के समय (25 सितम्बर, 1955) तक रहे।

शिक्षक के रूप में कार्य करते हुए आपने जहाँ प्रदेश के अनेक छात्रों को दिशा-निर्देश देने का उल्लेखनीय कार्य किया वहाँ आप आगरा, अजमेर तथा ग्वालियर आदि स्थानों की पाठ्यक्रम समितियों के अनेक वर्ष तक सम्मानित सदस्य रहे। इन्हीं दिनों आपका सम्पर्क डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, अयोध्यानाथ शर्मा, रामचन्द्र शुक्ल और केशवप्रसाद शुक्ल प्रभृति महानुभावों से हुआ। आप उक्त स्थानों के अतिरिक्त नागपुर, विक्रम, इन्दौर, दिल्ली और सागर विश्वविद्यालयों के परीक्षक भी रहे थे।

श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर की प्रवृत्तियों को दिशा देने में भी आपका योगदान कम महत्त्व का नहीं है। आपने इन्दौर में सन् 1918 में सम्पन्न हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के अवसर पर एक साधारण स्वयंसेवक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया था और फिर अपनी कर्मठता तथा अध्यवसायिता से आप इसके प्रधानमन्त्री भी बने। इस बीच आपने डॉ० सरजूप्रसाद तिवारी, जौहरीलाल मित्तल शिवसेवक तिवारी, सर सेठ हुकमचन्द, सेठ हीरालाल, भँवरलाल सेठी, माँगीलाल शर्मा, रामभरोसे तिवारी, गुलाबचन्द सोनी, कल्याणमल बापना, ताराशंकर पाठक, सी० डब्ल्यू० डेविड, गोविन्दलाल जबेरी, रामनारायण वैद्य, चैनराम व्यास, श्रीमान् व श्रीमती किबे, ख्यालीराम द्विवेदी तथा शिखरचन्द जैन आदि अनेक महानुभावों के सम्पर्क में आकर समिति के कार्य को आगे बढ़ाया। सेवा-निवृत्ति के उपरान्त कई वर्ष तक आपने 'वीणा' का सम्पादन भी किया था।

आप एक कुशल और मननशील शिक्षक होने के साथ-साथ गम्भीर गद्य-लेखक भी थे। आपकी 69 वीं वर्षगाँठ पर जनवरी 1969 में 'वीणा' ने अपना 'अमृतोत्सव अंक' प्रकाशित करके आपका अभिनन्दन किया था।

आपका निधन सन् 1971 को हुआ था।

कुमारी कमलेश सक्सेना

कुमारी कमलेश सक्सेना का जन्म 1 जनवरी सन् 1928 को दिल्ली में हुआ था। आप राजधानी की प्रख्यात शिक्षा-संस्था 'कमलेश बालिका विद्यालय' की संस्थापिका थीं। आप सफल लेखिका होने के साथ-साथ भाव-प्रवण कवयित्री भी थीं। अनेक वर्ष तक अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति की सदस्या रहने के साथ-साथ आप दिल्ली की अनेक संस्थाओं से भी सक्रिय रूप से जुड़ी हुई थी।

आपने जहाँ दहेज की कुप्रथा को आधार बनाकर 'शाप और वरदान' नामक एक सामाजिक उपन्यास लिखा था, वहाँ आपकी 'ग्रहण लगा', 'जयघोष', 'ये ऊँचाइयाँ सिर्फ पत्थर हैं', 'राष्ट्र की वन्दना' तथा 'राष्ट्र की पुकार' नामक काव्य-कृतियाँ भी प्रकाशित हो चुकी है। इनमें से 'ग्रहण लगा' चीन आक्रमण के समय और 'जयघोष' पाकिस्तानी आक्रमण के समय प्रकाशित हुई थीं। इनमें से 'राष्ट्र की पुकार' नामक उनका राष्ट्रीय कविताओं का संकलन उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया था।

बाल-साहित्य के निर्माण की दिशा में भी आपने अपनी प्रतिभा का अभूतपूर्व परिचय दिया था। आपकी ऐसी प्रकाशित कृतियों में 'बोर्डिंग हाउस की कहानी' (उपन्यास) तथा 'मिट्टी के घोड़े' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'तपस्विनी' (उपन्यास), 'महकते फूल', 'ये टेढ़ी पगडंडियाँ' (कविताएँ), 'धुँधले चित्र' (संस्मरण), 'लाल बेगम बंगला' तथा 'लकड़ी के घोड़े' (कहानियाँ) आदि रचनाओं के साथ-साथ 'लोकतन्त्र', 'एक प्रश्न-चिह्न' नामक पांडुलिपियाँ भी अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आपका निधन 21 नवम्बर सन् 1980 को हृदय-गति बन्द हो जाने से हुआ था।

श्री कलाधर वाजपेयी

श्री वाजपेयी का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर में 12 अगस्त सन् 1934 को हुआ था। आपने सन् 1968 से सन् 1975 तक 'कानपुर मेल' नामक एक क्रान्तिकारी पत्र का सम्पादन तथा प्रकाशन किया था। वह पत्र उग्र क्रान्तिकारी विचार-धारा का समर्थक था, इसी कारण आपके घर की सन् 1971 में तलाशी भी हुई थी और आप गिरफ्तार हो गए थे।

आप नगर के प्रख्यात क्रान्तिकारी नेता स्व० श्री हलधर वाजपेयी के सुपुत्र थे।

आपका निधन 24 अक्तूबर सन् 1975 को हुआ था।

श्रीमती कविता वशिष्ठ

श्रीमती कविताजी का जन्म 7 दिसम्बर सन् 1922 को बर्मा मे हुआ था। आपके पिता पंडित भगतराम और पति कैप्टन श्री जयप्रकाश थे। श्री जयप्रकाशजी का निधन द्वितीय विश्व-युद्ध में हो गया था।

पति के निधन के उपरान्त श्रीमती कविताजी जब सहारनपुर मे रहने लगी तब आपका सम्पर्क हिन्दी के सुप्रसिद्ध शैलीकार और पत्रकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' से हो गया और आप लेखन की ओर उन्मुख हो गई। आप कई वर्ष तक 'नया जीवन' की सह-सम्पादिका भी रही थीं।

आपका निधन 18 जनवरी सन् 1971 को हुआ था।

श्री कस्तूरमल बाँठिया

श्री बाँठियाजी का जन्म सन् 1890 में राजस्थान के अजमेर नामक नगर में हुआ था। आप व्यवसाय तथा वाणिज्य-सम्बन्धी साहित्य-रचना के क्षेत्र में अग्रणी स्थान रखते थे। पाश्चात्य देशों की व्यापारिक उन्नति को देखकर ही आपके मानस में 'व्यापारिक' विषयों पर लिखने की भावना जगी थी।

आपके लेख हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होते थे। आपके द्वारा लिखित 'हिन्दी बही खाता' तथा 'कामालेखा और मुनीमी' नामक ग्रन्थों की हिन्दी-जगत् में सर्वत्र प्रशंसा हुई थी।

आपका निधन सन् 1965 में हुआ था।

पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम

आपका जन्म 11 जुलाई सन् 1882 को हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जनपद के डाडासीबा गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० लखनूराम था। आप स्वतंत्रता सेनानी, कवि और गायक थे। आपको पं० जवाहरलाल नेहरू ने सन् 1937 में गढ़ दीवाला (होशियारपुर) में हुए कांग्रेस-सम्मेलन में 'पहाड़ी गांधी' की उपाधि दी थी। उनके कण्ठ-स्वर पर मुग्ध होकर सरोजिनी नायडू ने उन्हें 'बुलबुल-ए-पहाड़' भी कहा था। वे लगभग 9 वर्ष क्रान्तिकारी स्वतंत्रता सेनानी के रूप में देश की विभिन्न जेलों में रहे थे। इन्होंने सरदार भगतसिंह तथा राजगुरु के आत्म-बलिदान के पश्चात् काले वस्त्र धारण करने का जो व्रत लिया था उसे आजीवन निभाया था; इसीलिए वे 'सियाहपोश' जनरैल के नाम से भी विख्यात हो गए थे। हिमाचल प्रदेश में स्वतंत्रता आन्दोलन को फैलाने में उनका बहुत बड़ा योगदान था।

बाबा कांशीराम उच्चकोटि के कवि तथा कहानीकार थे। इनकी लगभग 500 कविताएँ तथा 900 कहानियाँ बताई जाती हैं। इनकी रचनाओं का कोई संग्रह अभी तक देखने में नहीं आया। जो कुछ भी प्राप्त हुआ है, वह पत्र-पत्रिकाओं में अथवा अप्रकाशित रूप में है। इनकी 'कुनाले दी कहानी, कांश दी जवानी' नामक शीर्षक कहानी बहुत प्रसिद्ध हुई थी। इनकी कविता लोकगीतों तथा लोकधुनों से परिपूर्ण है। इन्होंने कांगड़ी में भी अनेक गीत लिखे हैं। उनके साहित्य में राष्ट्रीयता तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध आस्था तथा प्रेम दिखाई देता है।

उनका देहान्त 15 अक्तूबर सन् 1943 को हुआ था।

श्री कानजी भाई देवाभाई चौहाण

श्री कानजी भाई का जन्म सन् 1915 में गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र के राणाबाव नामक ग्राम में हुआ था। आप सन् 1937 में महात्मा गांधीजी की प्रेरणा पर हिन्दी-प्रचार के कार्य में लगे थे और यावज्जीवन उसीमें लगे रहे। आप सौराष्ट्र हिन्दी प्रचार समिति राजकोट के मन्त्री भी रहे थे।

स्वतन्त्रता से पूर्व जब सारा देश देशी राज्यों और ब्रिटिश नौकरशाही की गुलामी में जकड़ा हुआ था तब आपने हिन्दी-प्रचार के कार्य द्वारा राष्ट्रीयता का सन्देश अपने प्रदेश के घर-घर में पहुँचाने का संकल्प लिया था और सौराष्ट्र तथा कच्छ में सैंकड़ों हिन्दी-प्रचार-केन्द्र खोले थे।

वे अपने जीवन की अन्तिम साँस तक हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने की ही चिन्ता में लगे रहे और 20 अप्रैल सन् 1978 को कैंसर की बीमारी के कारण आपका निधन हो गया।

श्री कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच'

श्री 'चोंच' का जन्म काशी नगरी के नगवा नामक मोहल्ले में 15 मार्च सन् 1915 में हुआ था। आप संस्कृत के काव्यतीर्थ, साहित्य शास्त्री और साहित्याचार्य होने के अतिरिक्त हिन्दी तथा संस्कृत के एम० ए० भी थे। काशी विश्वविद्यालय से विधिवत् दीक्षित होने के उपरान्त आप काशी के 'हरिश्चन्द्र डिग्री कालेज' में हिन्दी विभागाध्यक्ष हो गए। हिन्दी और संस्कृत के चूड़ान्त विद्वान् होने के साथ-साथ आप अँग्रेजी और उर्दू के भी प्रकाण्ड पंडित थे।

आप सफल शिक्षक होने के अतिरिक्त हिन्दी के सुलेखक, कवि एवं कथाकार थे। मुख्यतः आपने अपनी प्रतिभा का परिचय हास्य-लेखन के क्षेत्र में ही दिया है। किन्तु गम्भीर रचनाओं में वे अपना सानी नहीं रखते थे। ऐसी रचनाएँ आपने 'राजहंस' नाम से लिखी हैं और हास्य-रचनाएँ वे 'चोंच बनारसी' के नाम से किया करते थे। खड़ी बोली और

ब्रजभाषा दोनों पर ही आपका समान अधिकार था। हिन्दी के हास्य-व्यंग्य-क्षेत्र में आपकी प्रतिभा जग-जाहिर थी।

जहाँ आपने 'अलबेला' नामक साप्ताहिक पत्र का सफल सम्पादन किया वहाँ आप 'सन्मार्ग' दैनिक के साप्ताहिक संस्करण के भी सम्पादक रहे। काशी की 'रसराज', 'दीन सुकवि मंडल' और 'विलक्षण गोष्ठी' आदि संस्थाओं में आपकी प्रतिभा भलीभाँति प्रस्फुटित हुई थी। जीवन की अनेकविध परिस्थितियों का चित्रण आपने अपनी रचनाओं में जिस सफलता के साथ किया है वह उनकी कला का ज्वलन्त अवदान प्रस्तुत करता है।

आपने जहाँ हास्य-व्यंग्य की चुहचुहाती फुलझड़ियाँ छोड़ने वाली अनेक रचनाएँ की हैं वहाँ गम्भीर साहित्य की रचना करने की दिशा में भी उनकी प्रतिभा अंगुलिगण्य है। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'चोंच चालीसा', 'महाकवि सांड', 'गुरु घंटाल', "पानी पाँडे', 'छेड़छाड़', 'खरी-खोटी', 'मक्खन', 'चूना घाटी', 'बेचारे मुंशीजी', 'मौसेरे भाई', 'ठाकुर ठेंगासिंह', 'टाल मटोल', 'घर का भूत' आदि के अतिरिक्त 'कादम्बिनी', 'शिव ताण्डव', 'शंकर शतक', 'भक्ति भारती', 'बढ़े चलो बहादुरों', तथा 'बंगाल की बेगमें' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें कविता के अतिरिक्त उनकी निबन्ध, नाटक, कहानी तथा उपन्यास-लेखन की क्षमता का परिचय मिलता है। इनमें से अन्तिम रचनाओं में उनकी गम्भीर लेखन-प्रतिभा उजागर हुई है।

सारांशतः आप एक सफल अध्यापक, संवेदनशील कवि, चुटीले व्यंग्यकार, गम्भीर निबन्ध-लेखक और कुशल कथाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। अपने निधन से पूर्व आप हरिश्चन्द्र कालेज के प्रधानाचार्य थे।

आपका निधन 22 नवम्बर सन् 1972 को हुआ था।

श्री कामताप्रसाद गुरु

श्री गुरुजी का जन्म 24 सितम्बर सन् 1875 को मध्यप्रदेश के सागर नगर के परकोटा वार्ड स्थित चतुर्भुज घाट वाले पैतृक मकान में हुआ था। आपके पूर्वज दो शती पूर्व उत्तर प्रदेश से आकर सागर में बस गए थे। श्री गुरुजी की पूरी शिक्षा सागर में ही हुई थी और उन्हें साहित्य क्षेत्र में बढ़ने की प्रेरणा अपने गुरुओं—श्री मुहम्मद खाँ और श्री विनायकराव से मिली थी। प्रारम्भ में उनकी रुचि उर्दू की ओर ही थी और उनकी रचनाएँ कन्नौज से प्रकाशित होने वाले 'पयामे आशिक' नामक मासिक पत्र में छपा करती थीं। बाद में पं० विनायकराव और अपने अनन्य मित्र श्री हनुमानसिंह के विशेष अनुरोध के कारण आप हिन्दी-लेखन की ओर झुके थे। आपको पं० विनायकराव की 'व्याख्या विधि' नामक पुस्तक ने व्याकरण की ओर विशेष रूप से उन्मुख किया था।

सन् 1893 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने उसी स्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया

जिसमें वे पढ़ा करते थे। अपने इस शिक्षक जीवन के प्रारम्भ में ही आपके मानस में व्याकरण के मूलभूत सिद्धान्तों और नियमों के निर्माण की भावना जगी। फलतः वे इस दिशा में निरन्तर प्रयत्न करते रहे। इस कार्य को सफलता की सीढ़ी तक पहुँचाने का श्रेय उनके माधवराव सप्रे, विनायकराव, लज्जाशंकर झा, नन्दलाल दवे, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, रघुवरप्रसाद द्विवेदी और श्यामसुन्दर दास आदि हितैषियों एवं मित्रों को है। वे शिक्षा के क्षेत्र में 34 वर्ष तक रहे और जब सन् 1928 में वे सेवा-निवृत्त हुए तब वे उड़ीसा की रियासतों में उप-विद्यालय निरीक्षक होकर गए, किन्तु कुछ समय बाद ही वहाँ से लौट आए।

उड़ीसा में थोड़े दिन का निवास ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा को प्रस्फुटित करने में बहुत सहायक हुआ और उन्होंने वहाँ उड़िया भाषा सीखकर उसके 'यशोदा' तथा 'पार्वती' नामक स्त्रियोपयोगी उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद किए। इनके अतिरिक्त उन्होंने उड़िया भाषा में भी कुछ निबन्ध लिखे थे, जो जस्टिस शारदाचरण मित्र के पत्र 'देव-नागर' में प्रकाशित हुए थे। जिन दिनों आप मध्यप्रदेश के नार्मल स्कूल में अध्यापक थे उन दिनों आपकी हिन्दी-अध्यापन एवं शिक्षा-पद्धति की दक्षता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी। इस काल के उनके शिष्यों में से कालान्तर में शालग्राम द्विवेदी, हरिदत्त दुबे, जहूरबख्श, स्वर्ण सहोदर, अमृतलाल दुबे, नर्मदाप्रसाद मिश्र और नर्मदाप्रसाद खरे आदि ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था।

अध्यापन के क्षेत्र में इतने दिन बिताकर आपने कुछ दिन तक नागपुर से प्रकाशित होने वाली 'हिन्दी ग्रन्थ माला' तथा वहाँ से ही छपने वाले 'हिन्दी केसरी' में सहयोग दिया और बाद में 'सरस्वती' तथा 'बाल सखा' के सम्पादन में सक्रिय सहयोग देने के विचार से आप प्रयाग चले गए। नागपुर जाने के लिए उन्हें श्री माधवराव सप्रे ने प्रेरित किया था और प्रयाग वे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के आमन्त्रण पर गए थे। वहाँ पर आपकी घनिष्ठता सर्वश्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, लल्लीप्रसाद पाण्डेय, देवीदत्त शुक्ल तथा देवीप्रसाद शुक्ल आदि साहित्यकारों से हो गई थी। सन् 1914 में पण्डित श्रीधर पाठक की अध्यक्षता में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर आपने उन्हींकी प्रेरणा से उसी खुले अधिवेशन में अपना 'व्याकरण विषयक' एक चिन्तनपूर्ण निबन्ध भी पढ़ा था। आपके इस निबन्ध-पाठ का वहाँ उपस्थित साहित्य-प्रेमियों पर इतना प्रभाव पड़ा कि जब सन् 1916 में जबलपुर में सम्मेलन का सातवाँ अधिवेशन पाण्डेय रामावतार शर्मा की अध्यक्षता में हुआ तब फिर मित्रों के अनुरोध पर आपने 'व्याकरण की महत्ता' पर उसमें एक निबन्ध और पढ़ा।

व्याकरण-सम्बन्धी आपके इन विवेचनात्मक निबन्धों का हिन्दी के तत्कालीन महारथियों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और माधवराव सप्रे के आग्रह पर नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें व्याकरण लिखने का कार्य ही सौंप दिया। सात वर्ष के निरन्तर परिश्रम के फल-स्वरूप आपने जो व्याकरण तैयार किया उसका स्वागत हिन्दी-जगत् में उन्मुक्त भाव से हुआ। उनकी इस कृति के कारण उन्हें 'हिन्दी का पाणिनि' कहा जाने लगा और मध्य-प्रदेश के शिक्षा विभाग ने सन् 1923 में स्वर्ण-पदक प्रदान करने के अतिरिक्त उनका सार्वजनिक सम्मान भी किया। यही नहीं, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी उन्हें अपनी सर्वोच्च सम्मानित उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' प्रदान करके अपने को गौरवान्वित किया था।

गुरुजी जहाँ उत्कृष्ट कोटि के वैयाकरण तथा भाषा-वैज्ञानिक थे वहाँ शिक्षक जीवन का सम्पूर्ण सार उन्होंने अपनी 'हिन्दुस्तानी शिष्टाचार' नामक पुस्तक में समाहित कर दिया है। नैतिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों की प्रेरणा-भूमि-प्रदर्शित करने में भी वे पीछे नहीं रहे थे। उनके अनेक ऐसे निबन्ध एवं कविताएँ हैं, जिनसे देश के नवयुवकों में अच्छे नागरिक होने की भव्य भावनाएँ उत्पन्न होती रही

हैं। एक उत्कृष्ट कवि के रूप में भी उनकी ख्याति थी। आपकी 'भीमासुर वध', 'विनय पचासा' तथा 'पद्य पुष्पावली' नामक काव्य-कृतियाँ इसकी ज्वलन्त साक्षी है। आपके 'सत्यप्रेम', 'पार्वती' और 'यशोदा' नामक उपन्यास और 'सुदर्शन' नामक नाटक आपकी गद्य-लेखन-क्षमता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बाल-साहित्य-रचना के क्षेत्र में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। आपकी बाल-कविताओं में 'छड़ी' तथा 'सोने की थाली' ऐसी हैं जिनका अध्ययन वर्षों तक पाठ्य-ग्रन्थों में हमारे पाठक करते रहे हैं।

आपकी साहित्य-सेवाओं को दृष्टि में रखकर सन् 1976 में समस्त देश में आपकी 'जन्म-शताब्दी' समारोह-पूर्वक मनाई गई थी। आपका निधन 15 नवम्बर सन् 1947 को हुआ था।

डॉ० कामताप्रसाद जैन

डॉ० कामताप्रसाद जैन का जन्म 3 मई सन् 1901 को कैम्पबेलपुर (पश्चिमी पाकिस्तान) में हुआ था। इनके पिता लाला प्रागदासजी का निजी बैंकिंग व्यवसाय था, जिसके कारण उन्हें प्रायः देशाटन करना होता था। उनकी इस फर्म का सम्बन्ध तत्कालीन सरकारी फौज से था। इसी कारण उनके पिता उनकी माताजी सहित वहाँ पर गए हुए थे। आपका बचपन भी इसी प्रकार हैदराबाद (सिन्ध) में व्यतीत हुआ था, जहाँ पर आपने 'नवलराय हीराचन्द एकेडेमी' नामक विद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की थी। यह आश्चर्य की ही बात है कि आपका जन्म और शिक्षण एक ऐसे स्थान पर हुआ था जहाँ पर जैन धर्म का नाम-निशान भी नहीं था और आपके उस विद्यालय में सिख धर्म की शिक्षा का बोल-बाला था। इन विपरीत परि-स्थितियों में भी आप अपने विद्यालय के सभी छात्रों के बीच 'सामायिक पाठ' और 'जैन स्तोत्रों' को बड़े निर्भीक भाव से सुनाया करते थे।

आपके पूर्वज उत्तर प्रदेश के एटा जनपद की अलीगंज तहसील के 'कोट' नामक ग्राम के निवासी थे। डॉ० कामता-प्रसाद का सारा ही जीवन जैन-ग्रन्थों के स्वाध्याय और लेखन में व्यतीत हुआ था। आपने 18 वर्ष की आयु से ही लेखन-कार्य प्रारम्भ कर दिया था और अनेक वर्ष तक आपने 'वीर' तथा 'जैन सिद्धान्त भास्कर' नामक पत्रों का सम्पादन कुशलतापूर्वक किया था। यह एक आश्चर्य की ही बात है कि हैदराबाद (सिन्ध) की 'नवलराय हीराचन्द एकेडेमी' में केवल कक्षा 9 तक ही शिक्षा ग्रहण करके आपने अपने स्वाध्याय और श्रम के बल पर साहित्य की इतनी उल्लेखनीय सेवा की है। आप हिन्दी, अँग्रेजी, संस्कृत और पालि आदि भाषाओं के अच्छे जानकार थे। आपने अपनी अथक परिश्रमशीलता से हिन्दी तथा अँग्रेजी में लगभग सौ ग्रन्थों की रचना की थी। आपकी सर्वप्रथम हिन्दी कृति बैरिस्टर चम्पतराय की एक अत्यन्त प्रसिद्ध अँग्रेजी पुस्तक का अनुवाद थी, जो सन् 1922 में 'असहमत संग्राम' नाम से प्रकाशित हुई थी। आपकी प्रमुख प्रकाशित पुस्तकों में 'महारानी चेलनी' (1925), 'सत्य मार्ग' (1926), 'जैन धर्म और सम्राट् अशोक' (1929), 'जैन वीरांगनाएँ' (1930), 'जैन वीरों का इतिहास' (1931), 'दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि' (1932), 'वीर पाठावली' (1935), 'पतितोद्धारक जैन धर्म' (1936), 'संक्षिप्त जैन इतिहास' (1943), 'हिन्दी जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' (1947), 'भगवान् महावीर' (1951), 'जैन तीर्थ और उनकी यात्रा' तथा 'अहिंसा और उसका विश्वव्यापी प्रभाव' (1955) आदि उल्लेखनीय है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि सन् 1953 के दिसम्बर में पूर्वी अफ्रीका के केनिया प्रान्त के अन्तर्गत मोम्बासा नगर में आर्यसमाज द्वारा जो एक सर्वधर्म सम्मेलन आयोजित किया गया था उसमें जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में गए हुए श्री सोमचन्द लाधा भाई शाह ने आपकी 'जैन धर्म परिचय',

नामक पुस्तक के आधार पर ही जैन धर्म का महत्त्व सिद्ध किया था। आप जहाँ एक अच्छे साहित्यकार और पत्रकार थे वहाँ समाज-सेवा के क्षेत्र में भी आपकी देन कम उल्लेखनीय नहीं है। आपने सन् 1931 से सन् 1949 तक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट तथा सन् 1943 से 1948 तक अलीगंज (एटा) में रहकर असिस्टेंट कलक्टर का कार्य भी अत्यन्त निष्ठा एवं सेवा-भावना से किया था। उन दिनों आपकी कार्य-कुशलता और ईमानदारी की प्रशंसा सभी सरकारी अधिकारी मुक्त कण्ठ से किया करते थे। आपने राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी समय-समय पर सक्रिय रूप से भाग लिया था।

आपका निधन 17 मई सन् 1964 को अलीगंज से 16 मील दूर फर्रुखाबाद जाते हुए मार्ग में ही उस समय हुआ था जब कि आपको एम्बुलैंस द्वारा अलीगंज से चिकित्सार्थ वहाँ ले जाया जा रहा था।

श्री कामताप्रसादसिंह 'काम'

श्री 'काम' का जन्म 26 सितम्बर सन् 1916 को बिहार प्रान्त के गया जिले के भवानीपुर (देव) नामक ग्राम में हुआ था। आपकी मैट्रिक तक की शिक्षा 'गेट उच्च विद्यालय, औरंगाबाद' में हुई थी। अपने छात्र-जीवन में 'काम' जी अपने प्रधानाध्यापक श्री माणिकचन्द्र भट्टाचार्य से बहुत प्रभावित हुए थे और मैट्रिक में आपने हिन्दी में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने के उपलक्ष्य में 'स्वर्ण पदक' भी प्राप्त किया था। बी० एन० कालेज, पटना से इण्टरमीडिएट की परीक्षा देने के उपरान्त आगे की पढ़ाई के लिए आप लाहौर चले गए और वहाँ के 'खालसा कालेज' में प्रविष्ट हो गए।

लाहौर के वातावरण ने उन्हें हिन्दी-लेखन की दिशा में बढ़ने की जो प्रेरणा दी उसीका सुपरिणाम यह हुआ कि वे राजनीति में तो अपनी सहृदयता तथा कर्मठता के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुए ही, लेखन के धनी होने के कारण साहित्य-क्षेत्र में भी अपनी विशिष्ट शैली के कारण उल्लेखनीय ख्याति अर्जित की। उनका व्यक्तित्व इतना सम्मोहक और आकर्षक था कि जो भी उनसे एक बार मिल लेता था वह सदा के लिए उनका हो जाता था।

वैसे तो आपने सन् 1930 से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु लाहौर जाकर सन् 1935 में आपकी लेखनी में निखार आना प्रारम्भ हुआ था। आपकी पहली रचना गया से प्रकाशित होने वाले 'गृहस्थ' नामक पत्र में प्रकाशित हुई थी। लाहौर के प्रवास-काल में आपके लेख तथा कहानियाँ वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'विश्वबन्धु' (साप्ताहिक), 'खरी बात' (साप्ताहिक), 'दैनिक हिन्दी मिलाप' (साप्ताहिक संस्करण) तथा 'शान्ति' (मासिक) में ससम्मान प्रकाशित होती थीं। वहाँ से वापिस लौटने पर आपने अपना लेखन बराबर जारी रखा और देश का कदाचित् कोई ही ऐसा पत्र बचा होगा जिसमें आपकी रचनाएँ प्रकाशित न हुई हों। सन् 1937 से लेकर आपकी मृत्यु के दिन तक के पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों को यदि देखा जाय तो आपकी असंख्य रचनाएँ उनमें पढ़ने को मिलेंगी। उस समय की 'रानी', 'मनोहर कहानियाँ', 'रसीली कहानियाँ', 'महिला', 'जागृति', 'अभ्युदय', 'अरुण', 'बालक', 'नई कहानियाँ', 'विश्वमित्र', 'शिक्षा', 'केसरी' और 'संसार' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में
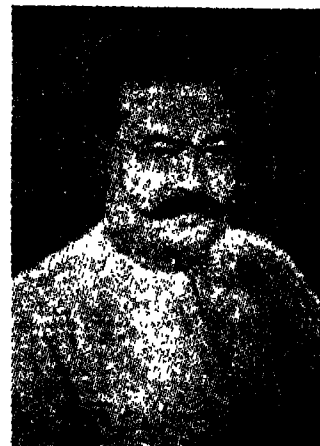
प्रकाशित आपकी शताधिक रचनाएँ इसकी ज्वलन्त साक्षी हैं। वैयक्तिक निबन्ध लिखने की कला में आप बेजोड़ थे।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'कामता ग्रन्थावली', 'हृदय और मस्तिष्क', 'पुरानी दुनिया', 'आसपास की दुनिया', 'घर, गाँव और देहात', 'नाविक के तीर', 'भूलते-भागते क्षण', 'आत्मा की कथाएँ', 'पठान का बच्चा', 'पिंजड़े का पंछी', 'मैं छोटा नागपुर में हूँ', 'घुमक्कड़ की डायरी', 'धरती धन', 'कृषक कथा', 'सुनहरी सीख', 'सयानी सलाह', 'ज्ञान की दुनिया' और 'जंगल' आदि उल्लेखनीय हैं।

बाद में सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में पड़ जाने के कारण आपका लेखन प्रायः बन्द-सा हो गया था, किन्तु फिर भी यदा-कदा अपनी सजीव तथा चुटीली शैली का आस्वाद आप हिन्दी-प्रेमियों को कराते रहते थे। सन् 1952 में आप 'बिहार विधान परिषद्' के सदस्य निर्वाचित हुए थे और अपनी मृत्यु के दिन (25 जनवरी सन् 1963) तक आप बराबर एम० एल० सी० रहे थे।

बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री

श्री खत्रीजी का जन्म कलकत्ता में 30 नवम्बर सन् 1851 को श्री बलदेवप्रसाद खत्री के यहाँ हुआ था। आपका स्थान हिन्दी-पत्रकारिता के अनन्य उन्नायकों में है। एंट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण करके और वैद्यक विद्या का सम्यक् ज्ञान अर्जित करके भी आपने पत्रकारिता को ही अपनाया था। आपने सन् 1972 में कलकत्ता से उस समय 'हिन्दी-दीप्ति-प्रकाश' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन किया था, जबकि हिन्दी पाठकों का सर्वथा अभाव था। आप पत्र के प्रचार एवं प्रसार के लिए जगह-जगह घूमकर उसके ग्राहक बनाते थे और कहीं-कहीं तो स्वयं ही अपनी पत्रिका लोगों को सुनाकर उन्हें उसकी ओर आकर्षित करना पड़ता था। गहन अर्थ-संकट और

घनघोर उपेक्षा सहने पर भी आप अपने इस पत्र को चलाते ही रहे, किन्तु ऐसी स्थिति में वह कैसे चलता? विवश होकर उसे बन्द कर देना पड़ा।

अपनी जीवन-यात्रा में खत्रीजी ने पग-पग पर जिन संघर्षों का सामना किया उन्हें जानकर ही रोमांच हो आता है। फिर, जो व्यक्ति उन संघर्षों में अपनी राह बनाता है उसकी अनुभूतियों का क्या कहना? 'सार सुधा-निधि' के सम्पादक पंडित सदानन्दजी के सम्पर्क से ही खत्रीजी में हिन्दी के प्रति अनन्य अनुराग जगा था। केवल 14 वर्ष की आयु में ही आपने 'जन्मभूमि और अन्न से मनुष्य की उत्पत्ति' शीर्षक एक निबन्ध लिखकर सबको आश्चर्य-चकित कर दिया था। जिन दिनों आपने 'हिन्दी-दीप्ति-प्रकाश' का सम्पादन और प्रकाशन किया था उन्हीं दिनों आपने 'प्रेम विलासिनी' नामक एक मासिक पत्रिका भी निकाली थी। इसके साथ-साथ आपने 'नन्दकोष' नामक हिन्दी के एक कोश का भी अकारादि क्रम से लिखकर सम्पादन किया था और 'सारस्वत व्याकरण' के पूर्वार्द्ध का अनुवाद करके 'सारस्वत दीपिका' नाम से प्रकाशित किया था।

अपने पिता के देहावसान के उपरान्त आपने अनेक व्यवसाय किए, किन्तु सभी में घाटा उठाकर बन्द करना पड़ा। अन्त में बिसातखाने की एक दुकान खोली, किन्तु उसे भी एक कृतघ्न मित्र की अनुकम्पा से छोड़-छाड़कर कलकत्ता से अलविदा ली। कलकत्ता से लखनऊ आकर कुछ दिन वहाँ के डाक विभाग में काम किया और फिर थोड़े दिन तक अपने मामा वकील छन्नूलाल की जमींदारी का काम देखते रहे। इसके उपरांत आप रीवाँ चले गए, जहाँ के राजा रघुराजसिंह जी इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार 11 वर्ष तक रीवाँ में रहकर सन् 1884 में आप काशी चले आए और भारतेन्दुजी के सम्पर्क में आकर हिन्दी-प्रचार का कार्य करने लगे। कुछ दिन तक शाल का व्यापार करने के सिल-सिले में आप आसाम की यात्रा पर भी आते-जाते रहे थे। आसाम के बाद फिर आप काशी में ही जम गए और फिर कहीं नहीं गए। काशी में रहते हुए आपने बाबू रामकृष्ण वर्मा के 'भारत जीवन' नामक पत्र के सम्पादन में भी सहयोग दिया था।

जब 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई तो श्री खत्रीजी उसके सभापति भी बनाए गए थे। सभा के अनुमोदन और सहयोग से जब सन् 1900 में इण्डियन प्रेस, प्रयाग की ओर से 'सरस्वती' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तब उसके सम्पादन के लिए 5 सदस्यों की जो समिति गठित की गई थी उसमें श्री खत्रीजी का नाम

सर्वोपरि था। उनके बाद क्रमशः पं० किशोरीलाल गोस्वामी, बा० जगन्नाथदास बी० ए०, बा० राधाकृष्णदास और बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए० के नाम छपते थे। एक वर्ष तक सम्पादन का कार्य इस समिति ने किया और फिर बाद में यह कार्य अकेले बा० श्यामसुन्दरदास को सौंप दिया गया। बा० श्यामसुन्दरदास जी ने तीसरे वर्ष की समाप्ति (दिसम्बर सन् 1902) तक इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। चौथे वर्ष (जनवरी सन् 1903) से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' का सम्पादन-कार्य सँभाला था। द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में भी 'सरस्वती' का सम्बन्ध 'सभा' से सन् 1905 के अन्त तक बना रहा, किन्तु उसके बाद किसी कारण टूट गया।

आप उच्चकोटि के संगठक तथा कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक भी थे। जहाँ आपने 'रेल का विकट खेल' नामक नाटक लिखा था वहाँ आपने 'इला', 'प्रमिला', 'जया' तथा 'मधु मालती' आदि बंगला की अनेक औपन्यासिक कृतियों को हिन्दी में अनूदित किया था।

आपका देहावसान 9 जुलाई सन् 1904 को काशी में हुआ था।

श्री कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय

श्री मुखोपाध्याय का जन्म बिहार के छपरा नामक नगर के 'काली बाड़ी' नामक मुहल्ले में सन् 1897 में हुआ था। छात्रावस्था से ही आपकी जो रुचि हिन्दी भाषा तथा साहित्य की ओर थी, वह माँझी (सारन) के स्वनामधन्य श्री राजबल्लभ सहाय के सहयोग से दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। वे हिन्दी के अनन्य अनुरागी तथा उसके प्राचीन काव्य के बहुत प्रेमी थे। जब कभी कोई बंगाली सज्जन उनसे बंगला भाषा की प्रशंसा करता था तब वे उससे तर्क करके हिन्दी की प्राचीन महत्ता को प्रमाणित करके ही दम लेते थे। हिन्दी के वर्तमान युग के प्रारम्भिक काल में, जबकि बिहार में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का सर्वथा अभाव था, तब आपके पिता तथा चाचा श्री भवानीचरण मुखोपाध्याय ने छपरा में 'नसीम सारन' नामक हिन्दी-मुद्रणालय की स्थापना की थी। इसी प्रेस से श्री अम्बिकादत्त व्यास ने 'सारन सरोज' नामक एक मासिक पत्र निकाला था।

आप बंगला-भाषी होते हुए भी अपने दैनिक कार्य-व्यवहार में हिन्दी का ही प्रयोग किया करते थे। यहाँ तक कि आपने अपनी सहधर्मिणी श्रीमती नलिनीबाला देवी को भी अच्छी हिन्दी सिखा दी थी। श्रीमती नलिनीबाला देवी ने तो हिन्दी में लेखन भी प्रारम्भ कर दिया था। उनके द्वारा लिखित 'सती शकुन्तला' नामक पुस्तक उल्लेखनीय है। अपने अध्ययन के अनन्तर श्री कार्तिक बाबू ने 'भारत मित्र' में सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया था। 'भारत मित्र' से मुक्त होने पर आप कलकत्ता के प्रख्यात प्रकाशक रामलाल वर्मन के यहाँ पुस्तक-लेखन का कार्य करने लगे थे। वहाँ पर रहते हुए आपने पांडुलिपियों के सम्पादन, संशोधन और अनुवाद-कार्य करने के अतिरिक्त 'हिन्दी दारोगा दफ्तर' नामक जासूसी पत्र का भी सम्पादन किया था। इसके अतिरिक्त 'हिन्दू पंच' के सम्पादन में भी आप यदा-कदा सहयोग देते रहते थे। इस साहित्य-साधना के साथ आपने 'विजय', 'बाँसुरी' और 'हलधर' नामक पत्रों का भी सम्पादन किया था। कुटीर-शिल्प तथा कृषि से सम्बन्धित रचना करने में भी आपकी पर्याप्त रुचि थी।

आपके द्वारा रचित पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—'मुस्तफा कमालपाशा', 'सती सुभद्रा', 'मणिपुर का इतिहास', 'सावित्री-सत्यवान', 'नल-दमयन्ती', 'सती पार्वती', 'सीता-देवी', 'शैव्या-हरिश्चन्द्र', 'देवी द्रौपदी', 'सती शकुन्तला', 'श्रीराम-कथा', 'हिन्दी-वर्ण-परिचय (दो भाग)', 'बाग-बगीचा', 'साग-सब्जी', 'कृषि और कृषक', 'किराने की खेती', 'भदई-फसलों की खेती', 'रबी-फसलों की खेती',

'तिलहन की खेती', 'चरित्रहीन', 'चन्द्रशेखर', 'कपालकुण्डला', 'युगलांगुलीय', 'राधारानी', 'शैतानी-शरारत', 'शैतान की नानी', 'खूनियों का जत्था', 'रणभूमि-रिपोर्टर', 'टर्की का कैदी', 'कैदी की करामात', 'जर्मन-जासूस', 'पिशाचिनी', 'चीना सुन्दरी', 'जासूसी गुलदस्ता', 'जासूस की डायरी', 'जासूस की झोली', 'रेगिस्तान की रानी', 'हवाई किला', 'कापालिक डाकू', 'चाण्डाल-चौकड़ी', 'विद्रोही राजा', 'कलकत्ता-रहस्य (दो भाग)' एवं 'कुटीर-शिल्पकला'।

आपका निधन सन् 1940 में हुआ था।

ब्रह्मवार नामक ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा केवल आठवीं कक्षा तक ही हुई थी। अपने निजी स्वाध्याय के बल पर ही आपने हिन्दी के साथ बंगला, उर्दू, संस्कृत और अँग्रेजी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपका रचना-काल सन् 1912 से माना जाता है और आपकी रचनाएँ 'मनोरंजन' (आरा), 'समन्वय' (कलकत्ता) तथा 'लक्ष्मी' (गया) में प्रकाशित हुआ करती थीं। आपका निधन 3 जनवरी सन् 1941 को हुआ था।

श्री कालिकाप्रसाद–1

श्री कालिकाप्रसाद का जन्म 1 दिसम्बर सन् 1882 को बिहार के गया जिले के ब्राह्मणी घाट नामक स्थान में हुआ था। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० और कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० टी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। पहले आप बिहार के स्कूलों के डिप्टी-इन्सपेक्टर रहे और बाद में कलकत्ता में अनुवादक के रूप में भी कुछ दिन तक काम किया। आप कुछ दिन तक पटना में 'रजिस्ट्रार ऑफ एग्जामिनेशन' भी रहे और तदुपरान्त 1932 में भागलपुर के ट्रेनिंग स्कूल में प्रधानाध्यापक हो गए।

आपकी गणना भारत के प्रमुखतम अनुभवी अध्यापकों में होती थी इसी कारण बी० ए० बी० टी० होते हुए भी आप अनेक विश्वविद्यालयों में एम०ए० के परीक्षक रहते थे। आप स्वभाव से अत्यन्त सरल और सहृदय थे। आप इतनी परिनिष्ठित और शुद्ध भाषा लिखते थे कि आचार्य शिवपूजन सहाय-जैसे व्यक्ति उसे पूर्ण प्रामाणिक मानते थे।

आपका निधन 21 दिसम्बर सन् 1937 को हुआ था।

श्री कालीकुमार मुखोपाध्याय

श्री कालीकुमार का जन्म भागलपुर जिले के 'डुमरामा' नामक स्थान में श्री विद्यानन्द मुखोपाध्याय के यहाँ सन् 1896 में हुआ था। आपने सन् 1926 में पटना विश्वविद्यालय तथा सन् 1927 और 1929 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से क्रमशः अँग्रेजी, हिन्दी और उर्दू में एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। जीविका के लिए आप यावज्जीवन शिक्षण का कार्य ही करते रहे और बिहार के भागलपुर, दुमका तथा छपरा के जिला-स्कूलों और दरभंगा के 'नार्थ बुक हाईस्कूल' में प्रधानाध्यापक के पद पर रहे थे।

आप अपनी मातृभाषा हिन्दी ही लिखाया करते थे। आपने हिन्दी-लेखन सन् 1931 से प्रारम्भ किया था और आपकी अनेक रचनाएँ 'सरस्वती' तथा 'माधुरी' आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थीं। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'समालोचना सप्तक', 'जिज्ञासु', 'हमारी राष्ट्रीय शिक्षा कैसी होनी चाहिए', 'समालोचना पंचायत', 'संसार सार संग्रह गल्प' तथा 'पगडंडी' आदि परिगणनीय हैं।

आपका निधन सन् 1960 में हुआ था।

श्री कालिकाप्रसाद–2

आपका जन्म सन् 1883 में बिहार के शाहाबाद जिले के

श्री कालीदत्त नागर 'काली कवि'

श्री 'कालीकवि' का जन्म सन् 1851 में हुआ था। आप

उरई (उत्तर प्रदेश) निवासी पंडित छविनाथ गुजराती ब्राह्मण के सुपुत्र थे। आप बुन्देलखण्ड क्षेत्र में एक उच्चकोटि के 'तान्त्रिक' के रूप में प्रसिद्ध थे। मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, आकर्षण एवं स्तम्भन के षट्-प्रयोगों के सफल साधक थे। ऐसे साधकों को हमारे समाज में 'ओझा' की संज्ञा दी गई है। यह कर्म निकृष्ट कर्म समझा जाता है। प्रायः ऐसे व्यक्तियों के वंश नहीं चल पाते। इनका भी एक विवाहित पुत्र जहर खाकर मर गया था। इनके वंश में केवल एक विधवा स्त्री ही बची थी, जो इनकी पुत्रवधू थी। उसका जीवन भी बड़े संकटों में बीता था।

एक महान् तान्त्रिक होने के साथ-साथ आप उच्चकोटि के कवि भी थे। उनकी 'ऋतु राजीव', 'हनुमत्पताका', 'गंगा गुण मंजरी' और 'छवि रत्न' नामक काव्य-पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन सभी कृतियों में उनकी प्रतिभा प्रखर रूप से मुखरित हुई है। कवित्त तथा सवैया लिखने में उन्हें अद्भुत कौशल प्राप्त था। ओज, माधुर्य और प्रसाद आपकी रचनाओं की प्रमुख विशेषता थी।

उनकी 'छवि रत्न' नामक रचना उनके पिता श्री छविनाथ की स्मृति में लिखी गई है। इस कृति में रीति-काल की परम्परा के रूप में 'नायिका' के अंग-प्रत्यंग का वर्णन कवि ने बड़ी उदग्रता से किया है। वास्तव में उनकी इस रचना में उनकी प्रतिभा का पूर्ण परिपाक देखने को मिलता है।

उनका निधन 76 वर्ष की आयु में सन् 1927 में हुआ था।

श्री कालीशंकर अवस्थी

श्री अवस्थीजी का जन्म 4 मार्च सन् 1883 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के बदरका नामक गाँव में हुआ था। इनके बारे में यह विख्यात है कि ये हँसते हुए पैदा हुए थे। प्रसंग आने पर वे स्वयं ही यह कहा करते थे कि "हम तो हँसते हुए इस संसार में आए हैं और हँसते हुए ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे।" और वास्तव में अपने महा प्रयाण से कुछ समय पूर्व आपने अपनी ज्येष्ठ पुत्रवधू को अपने निकट बुलाकर यह कहा था—"बधू, अब हमारा समय पूर्ण हो रहा है। अब हम जा रहे हैं। हमारे लिए तुम लोग शोक न करना!" मृत्यु के समय भी आप कुशासन पर बैठे हुए दान-पुण्यादि कर्म निष्ठापूर्वक करते रहे थे।

बाल्यावस्था से ही आपकी रुचि सत्साहित्य के पठन-पाठन में थी। आपने सर्वप्रथम राजस्थान के कोटा नगर से अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया था। आप वहाँ पर 'भूमि सर्वेक्षण विभाग' में नियुक्त हुए थे। थोड़े दिन बाद आपने उस पद से त्यागपत्र देकर 'फोटोग्राफी' प्रारम्भ कर दी। वे इस स्वतन्त्र व्यवसाय को करते हुए पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख आदि भी लिखते रहे। उस समय के सभी उच्चकोटि के साहित्यकारों से आपका अच्छा सम्पर्क हो गया था। अनुकूल अवसर समझकर सन् 1900 में बम्बई के 'वेंकटेश्वर प्रेस' में चले गए थे। प्रारम्भ में वे वहाँ लेखा विभाग में कार्य-रत हुए और फिर धीरे-धीरे मालिकों का उन पर इतना विश्वास जम गया कि सेठ रंगनाथ तथा श्रीनिवासजी उनके परामर्श को बहुत महत्त्व देने लगे थे।

आपका सम्पर्क भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के अनेक उल्लेखनीय सेनानियों से था। अमर शहीद श्री चन्द्रशेखर आजाद से आपका बहुत अधिक सम्पर्क रहा था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे काशी में रहने लगे थे। वहाँ पर भी वे 'वेंकटेश्वर प्रेस बुक डिपो' के कार्य की देख-भाल करते रहते थे। अपनी सहृदयता, सरलता तथा संगठन-क्षमता के कारण आपने काशी के साहित्यकारों में भी अपनी अच्छी पैठ कर ली थी।

आपका निधन 19 सिम्बर सन् 1967 को हुआ था।

महात्मा कालूराम

आपका जन्म सन् 1836 में राजस्थान के सीकर जिले के रामगढ़ सैंठाका नामक स्थान में हुआ था। आप अपने जीवन के प्रारम्भ से ही भक्त प्रकृति के सुधारक थे। समाज-सुधार के क्षेत्र में आपने बहुत बड़ा कार्य किया था।

एक बार जब वे कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार गए तब वहाँ उनकी भेंट महर्षि दयानन्द सरस्वती से हो गई और उनके पूर्ण भक्त हो गए। उन्होंने उनके सिद्धांतों के प्रचार के लिए अनेक प्रकार की कविताएँ लिखीं और प्रकाशित करके जनता में उनके द्वारा प्रचुर जागृति का प्रसार किया। आपकी इन रचनाओं के प्रकाशन में आपके शिष्य सेठ जयनारायण पोद्दार ने बहुत सहयोग दिया था।

आपका निधन सन् 1900 में हुआ था।

श्री कालूराम शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म भारत की राजधानी दिल्ली में पं० नाथूराम शर्मा वैद्य के यहाँ सन् 1888 में हुआ था। आप अपनी पढ़ाई समाप्त करके कानपुर जिले के अमरोधा नामक ग्राम में संस्कृत के अध्यापन के लिए चले गए थे। आप सनातन धर्म के प्रमुख पंडितों में माने जाते थे और आपने अनेक बार अनेक स्थानों पर आर्यसमाजियों से शास्त्रार्थ करके अपने पाण्डित्य की धाक बैठा दी थी। संस्कृत-साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में भी आपका सदा प्रमुख योगदान रहा करता था।

आपने सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना करने के साथ 'हिन्दू' नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया था। आपके ग्रन्थों की संख्या 100 से ऊपर है। लेकिन उनमें 'वैदिक सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ का इसलिए विशेष महत्त्व है कि इसकी रचना उन्होंने महर्षि स्वामी दयानन्द द्वारा अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' में प्रतिपादित सिद्धान्तों का खण्डन करके सनातन-धर्म के पक्ष का समर्थन वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर दिया है। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'मूर्ति-पूजन मीमांसा', 'अवतार मीमांसा', मूर्ति पूजा', 'श्राद्ध निर्णय', 'नियोग मर्दन', 'धर्म प्रकाश', 'निराकार की घुड़-दौड़' तथा 'आर्यसमाज की मौत' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन अमरोधा में ही सन् 1944 में हुआ था।

श्री काशीनाथ शंकर केलकर

श्री केलकरका जन्म महाराष्ट्र के एक ग्राम में 27 फरवरी सन् 1923 को हुआ था। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति इनके अनन्य अनुराग का इसीसे परिचय मिलता है कि आपने हिन्दी की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके सन् 1970 में 'अठारहवीं शती के हिन्दी पत्र' नामक विषय पर शोध-कार्य सम्पन्न करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी।

आपने 'रामचरित मानस' का अनुवाद मराठी भाषा में 'कथा श्रीरामचरितमानसाची' नाम से किया था। आप अपने निधन से पूर्व लगभग 20 वर्ष से पूना के 'ना० दा० ठाकरसी महिला महाविद्यालय' में अध्यापन कार्य करते थे ओर निधन के समय इस महाविद्यालय के 'प्राचार्य' थे।

आपका निधन सन् 1979 में हुआ था।

डा० काशीप्रसाद जायसवाल

श्री जायसवालजी का जन्म उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर नामक नगर में 27 नवम्बर सन् 1881 को हुआ था। मिर्जापुर

और काशी में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप इंग्लैंड चले गए और वहाँ से 'बार एट-ला' की उपाधि प्राप्त करके सन् 1910 में आपने स्वदेश लौटकर कलकत्ता में वकालत प्रारम्भ की। आपकी विद्वत्ता और कर्तव्यपरायणता से आकृष्ट होकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन उप-कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने आपको विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया; किन्तु अध्यापन में रुचि न रहने के कारण आपने थोड़े दिन बाद ही वहाँ से त्यागपत्र दे दिया था।

सन् 1914 में आपने कलकत्ता से पटना आकर वहाँ के हाईकोर्ट में बैरिस्ट्री शुरू की और आपने बिहार प्रान्त के तत्कालीन प्रशासक एडवर्ड गेट महोदय को प्रेरित करके पटना में एक म्यूजियम की स्थापना कराकर उसकी ओर से अनेक उल्लेखनीय कार्य कराये। आपने 'बिहार रिसर्च सोसाइटी' की पत्रिका का सम्पादन करने के साथ-साथ सन् 1933 में 'बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के ग्यारहवें अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी। यह अधिवेशन भागलपुर में हुआ था। सन् 1935 में राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी की अध्यक्षता में हुए 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के इन्दौर अधिवेशन के अवसर पर आयोजित 'इतिहास परिषद्' के अध्यक्ष भी आप रहे थे। उन्हीं दिनों बड़ौदा में 'इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस' का छठा अधिवेशन भी आपकी अध्यक्षता में हुआ था।

जिन दिनों आप इंग्लैंड में पढ़ते थे उन दिनों आपकी वहाँ पर डॉ० ग्रियर्सन तथा डॉ० हार्नली के अतिरिक्त मिस्र, टर्की, जर्मनी और फ्रांस के अनेक विद्वानों से बहुत घनिष्ठता हो गई थी। वहाँ रहते हुए आपने कई बार जर्मनी, फ्रांस और स्विट्जरलैण्ड आदि देशों की यात्राएँ की थीं। इंग्लैंड जाने से पूर्व आपके लेख हिन्दी के विभिन्न पत्रों में प्रकाशित हुआ करते थे और वहाँ से भी आपने अनेक लेख 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ भेजे थे। जब बाल्य-काल में एंट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप अपना अध्ययन आगे बढ़ाने के लिए काशी में आकर रहे थे तब आपका सम्पर्क यहाँ स्व० बाबू राधाकृष्णदास जैसे अनेक साहित्यकारों से हो गया था। कुछ समय तक आप 'नागरी प्रचारिणी सभा' के उपमन्त्री भी रहे थे। सभा की गतिविधियों से आपको बहुत प्रेम था और उसके कार्य-कलापों में आप बड़ी रुचि लेते थे। उनके सभा-प्रेम का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि सभा के हॉल में भारतेन्दुजी का जो चित्र लगा हुआ है वह उन्हींका दिया हुआ है। सभा की पत्रिका पर भारतेन्दुजी का जो 'फोटो' छपता है उसका सुझाव भी आपने दिया था। पहले आप हिन्दी में कविता भी किया करते थे, किन्तु बाद में ऐतिहासिक तथा पुरातात्त्विक शोध के कार्यों में पड़ जाने के कारण आपका हिन्दी-लेखन बन्द-सा हो गया था।

आप जहाँ इतिहास तथा पुरातत्त्व के गम्भीर विद्वान् थे वहाँ पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपकी देन अनुपम तथा अनन्य थी। सन् 1906 में आपने जहाँ अपने जातीय पत्र 'कलवार गजट' का सम्पादन किया था वहाँ पटना से सन् 1914 में प्रकाशित 'पाटलिपुत्र' के प्रथम सम्पादक भी आप रहे थे। इनके अतिरिक्त कानून, इतिहास, पुरातत्त्व, अर्थ-शास्त्र और भाषाशास्त्र से सम्बन्धित अनेक गवेषणापूर्ण लेख भी आपने तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में लिखे थे। 'नागरी प्रचारिणी सभा' से आपका जहाँ अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क रहा था वहाँ आपने सन् 1936 में डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के सहयोग से 'इतिहास परिषद्' नामक संस्था की स्थापना भी की थी। उसी वर्ष आपको पटना विश्वविद्यालय ने डॉक्टरेट की मानद उपाधि भी प्रदान की थी।

आपके राजनीति-सम्बन्धी प्रख्यात अँग्रेजी ग्रन्थ 'हिन्दू पोलिटी' का हिन्दी अनुवाद जहाँ सन् 1928 में 'नागरी प्रचारिणी सभा' से प्रकाशित हुआ था वहाँ आपके सम्पादन में सभा की ओर से सन् 1907 में 'विरह लीला' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन भी हुआ था। सभा की ओर से ही आपकी एक इतिहास-सम्बन्धी अँग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी 'अन्धकारयुगीन भारत' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

आपका निधन सन् 1937 में हुआ था।

सैयद कासिमअली साहित्यालंकार

सैयद कासिमअली का जन्म 22 अप्रैल सन् 1900 को मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर जनपद के साईंखेड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आप हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, अँग्रेजी, फारसी, अरबी और मराठी भाषाओं के भी मर्मज्ञ थे। आपने दैनिक 'स्वदेश' (इलाहाबाद), 'इत्तेहाद' साप्ताहिक(सागर), साप्ताहिक 'महाकौशल' (नागपुर), मासिक 'दीपक' (अबोहर पंजाब), 'संगीत' मासिक (हाथरस) तथा साप्ताहिक 'एटम' (जबलपुर) आदि पत्रों के सम्पादन में सहयोग देने के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की भी रचना की थी।

आपकी रचनाओं में 'देशभक्त नर्तकी', 'संयोगिता' 'ग्राम सुधार' तथा 'मुहब्बत इस्लाम' (नाटक), 'भ्रष्टाचार्य' एवं 'शराब की बोतल' (प्रहसन), 'उर्दू के सेवक', 'हजरत मुहम्मद', 'गद्य-गरिमा', 'सर सैयद अहमद खाँ', 'नूरजहाँ' तथा 'नवीन सन्तति शास्त्र' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 16 दिसम्बर सन् 1967 को हुआ था।

श्री किरणबिहारी 'दिनेश'

श्री दिनेश का ग्वालियर नगर के नौमहला नामक मोहल्ले में सन् 1902 में हुआ था। जब आप केवल पाँच वर्ष के ही थे कि पिता का वरद हस्त आपके सिर से उठ गया। लेकिन अपनी घनघोर परिश्रमशीलता से आपने मैट्रिक तक की शिक्षा विधिवत् प्राप्त की। इसके उपरान्त आपने अपनी स्वाध्याय-शीलता की प्रवृत्ति के कारण ही हिन्दी, अँग्रेजी तथा उर्दू साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

अपने जीवन की संघर्ष-प्रवणता की भावना के कारण आप समाज-सेवा के क्षेत्र में अग्रसर हुए और आर्यसमाज तथा कांग्रेस की अनेक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। जब श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ने 'जीवन' नामक साप्ताहिक पत्र निकालने के लिए 'जीवन साहित्य मण्डल' नामक एक ट्रस्ट बनाया था तब आप उसके ट्रस्टी भी रहे थे।

आप अच्छे व्यंग्य-लेखक तथा कुशल समीक्षक थे। आपकी 'शहर का अन्देशा' नामक पुस्तक इसकी ज्वलन्त साक्षी है। आपकी 'सन्त कवि ऐन और उनका काव्य' तथा 'ग्वालियर के कबीर-अनवर' नामक रचनाएँ अभी प्रकाशित हैं।

आपका निधन सन् 1945 में हुआ था।

श्री किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर'

श्री कपूरजी का जन्म सन् 1899 में कानपुर में हुआ था। आपके पिता लाला ताराचन्दजी बड़े धर्मनिष्ठ और गो-ब्राह्मण-सेवी महानुभाव थे। श्री 'किशोर' जी में ये सब गुण अपनी पारिवारिक परम्परा से ही आए थे। आप अत्यन्त साहित्यानुरागी सज्जन थे, इसी कारण आपका सारा समय साहित्य तथा साहित्यकारों के आदर-सम्मान में ही व्यतीत होता था। आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के एकनिष्ठ शिष्य थे। सनेहीजी के पारस-समान व्यक्तित्व ने ही अपने स्पर्श से आपके जीवन को कुन्दन बना दिया था।

वास्तव में कानपुर में आपका निवास कवि-मण्डल का एक केन्द्र ही बन गया था और निरन्तर काव्य-चर्चा में संलग्न रहने के कारण आपमें कवित्व की ऊर्जा जिस प्रबलता से प्रकट हुई थी वह भी एक आश्चर्यजनक घटना है। रात-दिन व्यापार में संलग्न रहते हुए भी इन संस्कारों के कारण आप श्री श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' की प्रेरणा पर कवि-कर्म की ओर अग्रसर हुए और सन् 1940 में आपने सनेहीजी से विधिवत् दीक्षा ग्रहण कर ली। धीरे-धीरे आपका कवि परिष्कृत होने लगा और भक्ति की गंगा में निरन्तर डूबे रहने के कारण आप श्रीकृष्ण-गुण-गान में ही अपने कवि-कर्म की सार्थकता समझने लगे।

आपकी प्रतिभा का परिचय 'नरसिंहावतार' नामक रचना से मिलता है। इसका प्रकाशन सन् 1941 में हुआ था। इसमें सीधी-सादी बोल-चाल की भाषा में लिखे गए 125 दोहे संकलित हैं। इसके उपरान्त आपने 'ब्रजचन्द विनोद' नामक एक ऐसा काव्य-ग्रन्थ दोहा छन्द में लिखा, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण की चरित्र-गाथा अंकित की गई है। 'कृष्णायन' को छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र को आद्यन्त प्रस्तुत करने वाली कदाचित् यह पहली ही रचना है। अब यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ है। श्री किशोर की प्रारम्भिक शिक्षा क्योंकि उर्दू-फारसी में हुई थी, अतः आपकी इस रचना में यत्र-तत्र उर्दू-फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त आपकी 'सुदामा चरित्र' और 'श्रीमद् भगवत गीता' नामक प्रकाशित कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं। अन्तिम रचना में आपने 'दोहा' छन्द में ही गीता का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

श्री 'किशोर' का निधन 12 अगस्त सन् 1973 को कानपुर में हुआ था।

श्री किशोर साहू

श्री किशोर साहू का जन्म 22 अक्तूबर सन् 1915 में मध्य प्रदेश के दुर्ग नामक स्थान में हुआ था और आप नागपुर विश्वविद्यालय के स्नातक थे। आप एक प्रसिद्ध फिल्म-निर्माता, निर्देशक और अभिनेता होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक भी थे। आप उन थोड़े से व्यक्तियों में से थे जिन्होंने भारतीय फिल्म उद्योग में विभिन्न रूपों में कार्य किया था। आपकी 'मयूर पंख' और 'काजल' आदि कई फिल्में अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं और कई फिल्मों ने पुरस्कार भी प्राप्त किए थे।

आप जहाँ हिन्दी के उत्कृष्ट कोटि के कथाकार थे वहाँ कविता के क्षेत्र में भी आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। आपकी हिन्दी में प्रकाशित कृतियों में उपन्यास 'वीर कुणाल' (1947), कहानी-संग्रह 'टेसू के फूल' (1942) और 'रेड लाइट' (1947) तथा संकलन 'अभिसार' (1950) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आप विमान द्वारा बम्बई से कैलिफोर्निया जा रहे थे कि मार्ग में आपका 22 अगस्त सन् 1980 को देहान्त हो गया। आपका शव रंगून से ही बम्बई वापस लाया गया था।

श्री किशोरीलाल गोस्वामी

श्री गोस्वामीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के वृन्दावन नामक नगर में श्री गोस्वामी वासुदेवलालजी के यहाँ जनवरी सन् 1866 को हुआ था। 8 वर्ष की अवस्था में विधिवत् यज्ञोपवीत-संस्कार होने के बाद आपका अक्षरारम्भ कराया गया और आपने घर पर ही संस्कृत में व्याकरण, वेदान्त, न्याय, सांख्य, योग और ज्योतिष का सर्वांगीण अध्ययन किया। आपकी ननसाल वाराणसी में थी और आपके नाना गोस्वामी कृष्णचैतन्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के साहित्य-

गुरु थे। जब आपके पिता किसी कार्यवश थोड़े दिन के लिए आरा (बिहार) में रहे थे तब आपने काशी में रहकर ही स्वाध्याय के बल पर अपने साहित्यिक ज्ञान को बढ़ाया था। काशी-निवास के दिनों में आपका भारतेन्दुजी से निकट सम्पर्क हो गया था, जिसके कारण आपका ध्यान भी साहित्य-सर्जना की ओर गया था। भारतेन्दु और राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के प्रोत्साहन से आपने हिन्दी में पहले-पहल 'प्रणयिनी परिणय' नामक एक उपन्यास लिखा था।

इसके उपरान्त आपने जहाँ वृन्दावन से प्रकाशित होने वाले 'वैष्णव सर्वस्व' नामक मासिक पत्र का सम्पादन सफलतापूर्वक किया वहाँ काशी से प्रकाशित होने वाले 'बाल प्रभाकर' के आप कई वर्ष तक सम्पादक रहे थे। जिन दिनों जब 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था तब उसके सम्पादक-मण्डल के भी आप एक सदस्य रहे थे। पत्रकार के रूप में लगभग 600 निबन्ध-लेख लिखने के साथ-साथ हिन्दी में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित आपने लगभग 150 पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें 65 उपन्यास हैं। आपने सन् 1913 में मथुरा में 'श्री सुदर्शन प्रेस' नामक अपना एक प्रेस भी खोला था। इसी प्रेस में आपकी पुस्तकें छपा करती थीं।

जिस समय हिन्दी में केवल ऐयारी तथा तिलिस्मी उपन्यासों की ही भरमार थी तब गोस्वामी ने अनेक सामाजिक उपन्यासों की रचना करके उनका साहित्यिक महत्त्व बढ़ाया था। आपने सन् 1898 में 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन भी किया था, जिसके माध्यम से पाठकों में उपन्यास-लेखन और पठन के प्रति पर्याप्त रुचि जाग्रत हुई थी। आपने बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री राखालदास बन्द्योपाध्याय के 'करुणा' तथा 'शशांक' नामक प्रख्यात उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करके अनुवाद के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था।

आपके मौलिक उपन्यासों में 'चपला', 'तारा', 'लीलावती', 'रजिया बेगम', 'मल्लिका देवी', 'राजकुमारी', 'कुसुमकुमारी', 'तरुण तपस्विनी', 'हृदय हारिणी', 'लवंग लता', 'याकूति तख्ती', 'कटे मूँड की दो-दो बातें', 'कनक कुसुम', 'सुख शर्वरी', 'प्रेममयी', 'गुल बहार', 'इन्दुमती', 'लावण्यमयी', 'जिन्दे की लाश', 'चन्द्रावली', 'चन्द्रिका', 'हीराबाई', 'लखनऊ की कब्र', 'पुनर्जन्म', 'त्रिवेणी', 'माधवी माधव', 'राजराजेश्वरी', 'जड़ाऊ कंकण में काला भुजंग', 'अरसी में हीरे की कनी', 'बिहार रहस्य','ठगिनी', 'भोजपुर की ठगी', 'जगदीशपुर की गुप्त कथा', 'राजगृह की सुरंग', 'प्रहसन-पथिक या पथ-प्रदर्शिनी', 'कुँवरसिंह', 'बनारस रहस्य', 'हमारी राम कहानी', 'अँगूठी का नगीना', 'इसे जिन्दा कहें कि मुर्दा', 'सदा सुहागिन','दिल्ली की गुप्त कथा', 'जनानखाने में दीपक', 'प्रेम परिणाम', 'पातालपुरी', 'दो सौ तीन', 'औरत से औरत का ब्याह', 'रोहतासगढ़ की रानी', 'अँधेरी कोठरी', 'काजी की चीठी', 'राज कन्या', 'राक्षसेन्द्र राक्षस या घड़ा भर विष', 'साँप की बाँबी', 'सेज पर साँप', 'इसे चौधराइन कहें कि डाइन', 'राजबाला', 'आप आप ही हैं', 'नरक नसेनी', 'अँधेरी रात', 'सोना और सुगन्ध', 'आदर्श प्रणय', 'शान्ति निकेतन', 'वार विलासिनी' तथा 'शान्ति कुटीर' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके इन उपन्यासों में समाज के बहुरंगी रूप के दर्शन अत्यन्त सहजता से प्रस्तुत किये गए हैं। आपको प्रायः अनैतिक तथा विकृत प्रेम के चित्रण में बहुत सफलता मिली है।

आपने उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में जहाँ आशातीत सफलता प्राप्त की थी वहाँ आप भारतेन्दु और द्विवेदी-युग के बीच सेतु-निर्माण का कार्य भी कर रहे थे। आपने आरा में जहाँ 'आर्य भाषा पुस्तकालय' की स्थापना की थी वहाँ आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1931 में सम्पन्न हुए झाँसी-अधिवेशन के अध्यक्ष भी रहे थे।

आप स्वभाव से अत्यन्त फक्कड़, मस्तमौला व्यक्ति थे। इसी कारण आपकी रचनाओं में भी आपके स्वभाव की वह सरसता पूर्ण रूप से समाविष्ट हुई है।

आपका निधन सन् 1932 में हुआ था।

राजा कीर्त्यानन्द सिंह

राजा साहब का जन्म बिहार प्रदेश के पूर्णिया जिले की बनैली नामक रियासत में 22 सितम्बर सन् 1883 में हुआ था। आप बनैली-नरेश के कनिष्ठ पुत्र थे। आपकी शिक्षा घर पर ही हुई थी और प्रत्येक विषय तथा भाषा को पढ़ाने के लिए अलग-अलग शिक्षक रखे गए थे। पूर्णिया के जिला स्कूल से प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण करके आप इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज में प्रविष्ट हुए और प्रयाग विश्वविद्यालय से ही आपने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। जिन दिनों आपने बी० ए० किया था उन दिनों आपसे पूर्व बिहार के प्राचीन प्रतिष्ठित राजवंशों में कोई भी 'स्नातक' नहीं हुआ था।

आपने हिन्दू विश्वविद्यालय काशी को एक लाख रुपए, भागलपुर के टी० एन० जे० कालेज को छः लाख रुपए दान में दिए थे। बिहार के प्रख्यात हिन्दी, भोजपुरी एवं अँग्रेजी के कवि तथा बटोहिया नामक प्रख्यात गीत के लेखक श्री रघुवीर-नारायण आपके निजी सचिव थे।

हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण आपने समय-समय पर अनेक संस्थाओं और साहित्य-सेवियों को आर्थिक सहयोग देकर प्रोत्साहन दिया था। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटना का भवन आप ही के नाम पर बना है, जिसके लिए आपके सुपुत्रों, कुमार श्यामानन्द सिंह और कुमार तारानन्द सिंह ने दस हजार रुपए प्रदान किए थे। आरा से प्रकाशित होने वाले 'मनोरंजन' नामक मासिक पत्र के प्रकाशनार्थ भी आपने दो हजार रुपए प्रदान किए थे और उसके सम्पादक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा को उनकी 'रामचरित' नामक पुस्तक पर रेशमी वस्त्रों के साथ एक हजार रुपए का पुरस्कार भी दिया था।

सन् 1913 में भागलपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था उसके स्वागता-ध्यक्ष आप ही बनाए गए थे। सम्मेलन के इस अधिवेशन की अध्यक्षता महात्मा मुंशीराम ने की थी। आप बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1924 में मुजफ्फर-पुर में हुए छठे अधिवेशन के अध्यक्ष भी बनाए गए थे। आपने आखेट-सम्बन्धी अनेक लेख लिखे थे, जिनके कुछ अंश पुस्तक भंडार लहेरिया सराय से प्रकाशित 'शिकारियों की सच्ची कहानियाँ' नामक पुस्तक में उद्धृत किए गए हैं। आपका देहावसान 19 जनवरी सन् 1938 को काशी में हुआ था।

श्री कुँवरबहादुर शर्मा

श्री शर्मा का जन्म 8 सितम्बर सन् 1913 को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले के 'ज्योंती' नामक ग्राम में हुआ था। मिडिल तक की शिक्षा कुरावली में प्राप्त करके पिता के देहान्त के बाद आप एटा जिले के 'सकीट' नामक ग्राम में चले गए और वहीं रहने लगे।

आपने एटा में 'सुदर्शन प्रेस' की स्थापना करके वहाँ से सन् 1930 में 'सुदर्शन' नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन प्रारम्भ किया, जो सन् 1945 तक निरन्तर प्रकाशित होता रहा। आपने सन् 1943 में 'रेडियो' नामक दैनिक पत्र भी निकाला था।

सन् 1946 में 'भारतीय प्रेस' की स्थापना करके उसकी ओर से 'युगवाणी' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। बाद में सन् 1949 में आपने इसी प्रेस से कहानी मासिक 'अप्सरा' का सम्पादन भी किया। आपने इसी प्रेस से 'भारती प्रकाशन मन्दिर' नामक
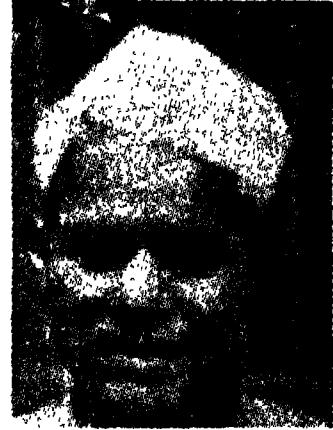
संस्था द्वारा हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री बलबीरसिंह चौहान 'रंग' के प्रारम्भिक काव्य-संकलन 'प्रवेश गीत', 'साँझ सकारे' और 'संगम' नाम से प्रकाशित किए।

आप एक सशक्त पत्रकार होने के साथ-साथ सफल कवि एवं कहानी-लेखक भी थे। आपकी कहानियों का एक संग्रह भारतीय प्रेस, एटा से ही 'प्रजातन्त्र' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपका कवि रूप अभी तक साहित्य-प्रेमियों से छिपा हुआ ही है।

'सुदर्शन' के सम्पादक के रूप में आपकी प्रतिष्ठा उन दिनों ख्याति के चरम शिखर पर थी। इस कार्य-काल में आपने जहाँ रंगजी-जैसे कवि को सक्रिय और सफल प्रोत्साहन प्रदान किया वहाँ उस समय के अनेक पत्रकारों, कवियों और साहित्यकारों के स्नेह-भाजन भी आप रहे थे।

आपका निधन लम्बी बीमारी के कारण 2 अक्तूबर सन् 1976 को हुआ था।

श्री कुञ्जबिहारी चौबे

श्री चौबे का जन्म राजनादगाँव (मध्य प्रदेश) में सन् 1940 में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० छविराम चौबे था। 16 वर्ष की अल्पायु से ही आपने काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। आपकी रचनाओं में आक्रोश, विद्रोह, निर्भीकता और स्वाभिमान के भावों का प्राचुर्य ही परिलक्षित होता है। आपने छत्तीसगढ़ प्रदेश के किसानों, मजदूरों और ग्रामीण अंचलों की समस्याओं को ही अपने काव्य का प्रमुख आधार बनाया था। हिन्दी के अतिरिक्त आप छत्तीसगढ़ी भाषा के भी अच्छे कवि थे।

स्वभाव से विद्रोही होने के कारण आपको जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जहाँ आपने समाज के शोषक वर्ग से संघर्ष मोल लिया वहाँ अनेक पत्र-सम्पादकों की उपेक्षा का शिकार भी आपको बनना पड़ा। रूढ़ियों और अन्यायके विरुद्ध निरन्तर लड़ते रहने के कारण छोटी उम्र में भी आपको कारावास की यातनाएँ भी भोगनी पड़ीं। वास्तव में यदि आपको 'छत्तीसगढ़ी भाषा' का प्रथम कवि कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

आपकी विद्रोही भावनाओं की साक्षी आपकी यह पंक्तियाँ हैं :

पथ दिखाऊँ जगत् को माना न इतना विज्ञ हूँ मैं,
किन्तु अपने मार्ग से खुद भी नहीं अनभिज्ञ हूँ मैं,
है सुनिश्चित साध्य मेरा समझता निज हित-अहित हूँ,
साधना सन्नद्ध हूँ, पर साधनों से मैं रहित हूँ।

आपकी मृत्यु के उपरान्त आपकी रचनाओं का संग्रह इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ था। यह दुर्भाग्य की बात है कि इतने प्रतिभाशाली कवि का देहावसान केवल 27 वर्ष की अवस्था में ही सन् 1967 में हो गया।

श्री कुञ्जबिहारीलाल मोदी

श्री मोदी का जन्म सन् 1901 में राजस्थान अलवर राज्य के कठूमर नामक ग्राम में हुआ था। घर पर ही हिन्दी, उर्दू तथा फारसी भाषाओं का अभ्यास करके आप सरकारी नौकरी में चले गए। आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन से प्रभावित होकर आपने राजकीय सेवा से त्यागपत्र दे दिया और स्वतन्त्रता-संग्राम में पूरी तरह सलंग्न हो गए। आपने इस सन्दर्भ में कई बार जेल-यात्राएँ भी की थी।

7 जनवरी सन् 1944 से आपने अलवर से 'अलवर पत्रिका' का सम्पादन-प्रकाशन प्रारम्भ किया और इसके माध्यम मे क्षेत्र की जनता की बड़ी सेवा की। इस पत्रिका के प्रथम अंक का उद्घाटन प्रख्यात पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने किया था। आपने सन् 1949 में अलवर में एक 'पत्रकार सम्मेलन' भी आयोजित किया था।
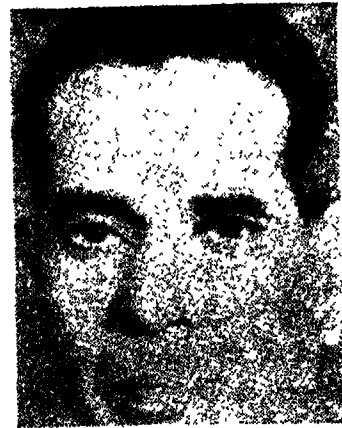
आपका निधन 4 दिसम्बर सन् 1953 को अलवर में हुआ था।

श्री कुञ्जबिहारी वाजपेयी

श्री वाजपेयी का जन्म 8 जुलाई सन् 1933 को कानपुर नगर निगम के भूतपूर्व उपमहापौर श्री देवीसहाय वाजपेयी के यहाँ हुआ था। अपने पिता के गुणों के अनुरूप आप भी निस्पृह, स्वाभिमानी और पर-दुःख-कातर सहृदय मानव थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा 7 वर्ष की आयु में कानपुर नगरपालिका की प्राथमिक पाठशाला में हुई थी और जूही के म्युनिसिपल हाई स्कूल से हाई स्कूल करने के उपरान्त सन् 1952 में आपने बी० एन० एस० डी० कालेज से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके पश्चात् आप आगे के अध्ययन के लिए डी० ए० वी० कालेज में प्रविष्ट हुए, किन्तु निरन्तर अस्वस्थ रहने के कारण आपका अध्ययन-क्रम आगे न चल सका। अपने पिता के स्वभाव के अनुसार आपने भी राष्ट्रीयता को ही अपने जीवन का मूल ध्येय बनाया और राष्ट्र-भक्ति की भावनाओं से ही अपने मानस-मन्दिर की अर्चना की। आपकी यह भावनाएँ इन पंक्तियों में पूर्णतः चरितार्थ हुई हैं :

कौन कहता है नहीं है शक्ति मुझमें
कौम के प्रति आज भी अनुरक्ति मुझमें
कौम ने मुझको उठाया, मैं उठा;
कौम के प्रति आज भी है भक्ति मुझमें।

कविता के प्रति आपकी अनुरक्ति जन्म-जात थी और आप बचपन से ही तुकबन्दी करने लगे थे। धीरे-धीरे वह समय भी आया जब आपकी गणना नगर के प्रमुख युवा कवियों में होने लगी। आपकी प्रथम रचना सन् 1955 में प्रकाशित हुई थी और आप कवि-सम्मेलनों में ससम्मान बुलाए जाने लगे थे। अपनी थोड़ी-सी आयु में ही आपने इतनी रचनाएँ कीं कि उनके 'तसवीर तुम्हारी हूँ', 'जिन्दगी, गाने लगी है', 'गान उठे बिन साजों के' तथा 'नेह नीर बरसे' नामक चार संकलन तैयार हो गए थे। इनमें से प्रथम काव्य-संकलन 'तस्वीर तुम्हारी है' का प्रकाशन आपकी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व हुआ था, जिसकी हिन्दी के अनेक विद्वानों तथा समीक्षकों में उन्मुक्त प्रशंसा की थी। आपको शायद अपने देहावसान का आभास हो गया था, अन्यथा आप यह कैसे लिखते :

जिसे उतारा गीतों में, वह मीत अमर है
गूँज रहा अन्तर में, वह संगीत अमर है
भूल रहा जग लेकिन, कल फिर याद करेगा—
मैं नश्वर हूँ, लेकिन मेरा गीत अमर है।

वास्तव में अपने गीत की अमरता तथा शरीर की नश्वरता की उद्घोषणा करते हुए आप 2 नवम्बर सन् 1961 को इस असार संसार से विदा हो गए।

डॉ० कुन्तलाकुमारी सावत

डॉ० कुन्तलाकुमारी सावत का जन्म उड़ीसा के कटक जनपद के खुर्दा नामक स्थान में सन् 1901 में हुआ था। आपके पिता जन्मना ब्राह्मण थे। जब उनके पिता का देहावसान हो गया और वे केवल दस वर्ष के ही थे तब एक ईसाई पादरी उन्हें बहला-फुसलाकर बर्मा ले गया और उन्हें ईसाई बना लिया। उन्हींके साथ कुन्तलाकुमारीजी भी बर्मा चली गई थीं। वहाँ से लौटकर कटक के रेवेन्सा कालेज से एल० एम० पी० की परीक्षा देकर आप विधिवत् डॉक्टर बनीं। आप अपने ही अध्यापक डॉ० कैलाश राव से विवाह करना चाहती थीं, किन्तु आपको उसमें सफलता नहीं मिली। परिणामस्वरूप आप सन् 1928 में दिल्ली आ गईं और यहाँ पर वैदिक धर्म

में दीक्षित होकर हिन्दू हो गई और 'ब्रह्मचारी' नामक एक युवक से विवाह कर लिया। फिर आपका सम्पर्क आनन्द

भिक्षु सरस्वती तथा जैनेन्द्रकुमार से हुआ। आनन्द भिक्षु सरस्वती पहले राजा महेन्द्र-प्रताप के प्रेम महा-विद्यालय, वृन्दावन में थे और बाद में कुछ दिन तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के सहायक मन्त्री तथा उसके पत्र 'सार्वदेशिक' के सम्पादक भी रहे थे।

डॉ० कुन्तलाकुमारी की डाक्टरी की दुकान उन दिनों परेड ग्राउंड पर कटरा अशरफी के पास थी। आप विचारों से बड़ी उदार, क्रान्तिकारी और देश-भक्त थीं; फलतः आपके इर्द-गिर्द उन दिनों अनेक कर्मठ क्रान्तिकारी युवकों का जमाव हो गया था। वे युवक देश के स्वतन्त्रता-आन्दोलन में कुछ अग्रणी कार्य करने की ललक अपने मानस में सँजोए हुए थे। कुन्तलाजी के मन में भी देश को बन्धन-मुक्त कराने की भावनाएँ हिलोरें मारती रहती थीं। आपने जहाँ अनेक क्रान्तिकारी युवकों को क्रान्ति के इस कंटकाकीर्ण पर निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की वहाँ हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथा-कार श्री जैनेन्द्रकुमार को भी उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में कुछ नई भावनाएँ उद्वेलित करने के लिए प्रेरित किया। जैनेन्द्र के 'कल्याणी' नामक उपन्यास की मूल प्रेरणा-नायिका यही कुन्तल हैं।

आप उड़िया भाषा की उत्कृष्ट लेखिका थी। आपकी प्रतिभा का प्रमाण आपके उड़िया भाषा के अनेक काव्यों तथा उपन्यासों को देखने से मिलता है। आपकी कई पुस्तकें उड़ीसा के विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं के पाठ्यक्रम मे भी निर्धारित रह चुकी हैं। दिल्ली में स्थायी रूप से बस जाने और वैदिक धर्म में दीक्षित हो जाने पर आर्यसमाज के प्रभाव से उनमें हिन्दी-प्रेम जगा और धीरे-धीरे उन्होंने अच्छी हिन्दी सीखकर उसमें लिखना भी प्रारम्भ कर दिया। आपकी हिन्दी-कविताओं का संकलन 'वरमाला' नाम से उन दिनों 'भारती तपोवन संघ, 8 डाक्टर्स लेन नई दिल्ली' की ओर से सन् 1936 में प्रकाशित हुआ था। आपकी हिन्दी-सेवाओं से प्रभावित होकर दिल्ली की 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' ने आपको 'भारत-नेत्री' की सम्मानित उपाधि से भी विभूषित किया था। आपने फरवरी सन् 1932 में बरेली में आर्यसमाज की ओर से आयोजित एक विशाल सभा की भी अध्यक्षता की थी। इसका विवरण अप्रैल 1932 की 'सरस्वती' में प्रका-शित हुआ है। आपने उन्हीं दिनों काशी तथा प्रयाग आदि अनेक विश्वविद्यालयों में 'दीक्षान्त भाषण' भी दिए थे। दिल्ली के हिन्दीमय वातावरण और श्री जैनेन्द्रकुमार तथा आनन्द भिक्षु सरस्वती के सम्पर्क-सहयोग के आपके मानस में हिन्दी-प्रेम हिलोरें लेने लगा था। डॉ० कुन्तला की रचनाएँ उन दिनों 'महावीर', 'जीवन', 'नारी' तथा 'भारती' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। इनमें से कुछ पत्रों के सम्पादन में भी आपने सहयोग दिया था।

आपका निधन सन् 1938 में दिल्ली में ही हुआ था।

श्री कुन्दनलाल शाह 'ललित किशोरी'

आपका जन्म सन् 1825 में लखनऊ में हुआ था। आप वृन्दावन-निवासी श्री गोविन्द स्वामी के शिष्य थे। आपकी बहुत-सी स्फुट रचनाओं का संकलन जमुना प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा द्वारा सन् 1931 में उन्हीके वंशजों द्वारा प्रकाशित किया गया था।

आपका शरीरान्त सन् 1873 में वृन्दावन में हुआ था।

श्री कुलेशचन्द्र तिवारी

श्री तिवारीजी का जन्म बिहार के भागलपुर जिले के गोइड़ा नामक ग्राम में सन् 1886 में हुआ था। मैट्रिक तक की

पढ़ाई करने के बाद आप संस्कृत साहित्य के अध्ययन की ओर उन्मुख हुए और विशारद की परीक्षा पास करने के उपरान्त भागलपुर के श्री भगवान पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष हो गए और सन् 1925 तक उसीमें बने रहे। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो चतुर्थ अधिवेशन सन् 1913 में भागलपुर में हुआ था उस समय आप उसकी स्वागत समिति के सक्रिय कार्यकर्ता थे। इस अधिवेशन की अध्यक्षता गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक महात्मा मुंशीराम ने की थी।

आपको हिन्दी के प्रति इतना अभिमान था कि आपने वहां पर 'भागलपुर हिन्दी सभा' नामक एक संस्था की स्थापना की थी और अनेक वर्ष तक आप उसके मन्त्री रहे थे। हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत, बंगला, फारसी और उर्दू आदि भाषाओं पर भी आपका समान अधिकार था। सन् 1938 में हुए मुंगेर जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित कवि-सम्मेलन में आपकी कविता को पुरस्कृत भी किया गया था।

आपका निधन अक्तूबर सन् 1947 में एक आकस्मिक घटना में हो गया था।

श्री कृपाराम मिश्र 'मनहर'

श्री 'मनहर' जी का जन्म सन् 1897 में कोटद्वार (गढ़वाल) में हुआ था। आप एक सफल पत्रकार एवं सहृदय कवि के रूप में जाने जाते थे। काफी दिन तक आपने कोटद्वार से 'गढ़ देश' नामक साप्ताहिक का सम्पादन भी किया था। उन दिनों हिन्दी के विख्यात लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने भी आपको इस कार्य में

अपना अनन्य सहयोग प्रदान किया था। आपने कोटद्वार से ही 'सन्देश' नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था।

वैसे आप आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार में जन्मे थे, लेकिन राजनीति तथा समाज-सेवा की पुनीत भावना ने उन्हें अत्यन्त उदार तथा अवढर दानी बना दिया था। अन्तिम दिनों में आपका जीवन गहन अर्थ-संकट में बीता था। आप गढ़वाल कांग्रेस के जन्म-दाताओं में अग्रणी थे।

आपका निधन सन् 1975 में हुआ था।

श्री कृष्णकान्त व्यास

श्री व्यासजी का जन्म मध्य प्रदेश की झाबुआ रियासत के रानापुर नामक स्थान में 10 अगस्त सन् 1910 को हुआ था। आप मूलतः राजनीति को समर्पित ऐसे पत्रकार थे जिन्होंने अपना जीवन जनता जनार्दन को ही सर्वात्मना समर्पित कर दिया था। एक जागरूक पत्रकार के रूप में आपने शासन से सदा ही लोहा लिया और एकाधिक बार जेल भी गए।

मध्य प्रदेश के सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र 'नई दुनिया' (इन्दौर) के संचालन-सम्पादन का प्रारम्भ आपने ही 1947 में किया था और इसमें आपको श्री कृष्णचन्द मुद्गल आदि प्रमुख पत्रकारों ने सहयोग दिया था। इसके अतिरिक्त आपने 'प्रजा मंडल पत्रिका' तथा 'कांग्रेस सन्देश' का भी सम्पादन किया था।

राजनीति के क्षेत्र में रहते हुए आप सन् 1952 से 1958 तक राज्य सभा के सम्मानित सदस्य भी रहे थे। मध्य प्रदेश सरकार की ओर से प्रतिवर्ष आयोजित किया
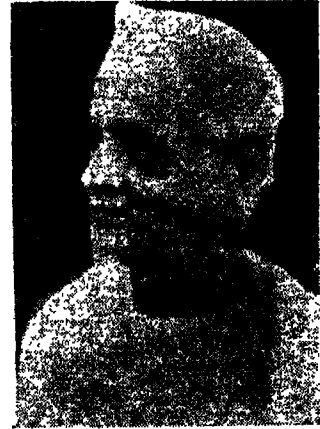
जाने वाला 'कालिदास-उत्सव' आपके ही प्रयत्नों का फल है। राजनीति में आपका प्रवेश कर्त्तव्य-भावना से प्रारम्भ हुआ था और पत्रकारिता एवं साहित्यिक अभिरुचि आपमें जन्म-जात संस्कारों के कारण थी।

सामान्यतः इन्दौर नगर और विशेषतः सारे प्रदेश की पत्रकारिता के आप एक ऐसे वटवृक्ष थे, जिसकी छाया में अनेक जन पनपते-बढ़ते रहे। 'नई दुनिया' के संस्थापक एवं सम्पादक के रूप में आपने उस क्षेत्र की जनता का जो मार्ग-प्रदर्शन किया था, वह अविस्मरणीय है।

आपका निधन 20 अक्तूबर सन् 1973 को इन्दौर में हुआ था।

बाबू कृष्णचन्द्र

आपका जन्म सन् 1879 में काशी के सम्पन्न वैश्य-परिवार में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी और हिन्दी, संस्कृत, अरबी तथा फारसी के अतिरिक्त अँग्रेजी का भी आपने अच्छा अभ्यास किया था। व्यवसाय से जमींदार होते हुए भी साहित्य के प्रति आपका बहुत झुकाव था।

आपके परिवार में यह साहित्य-प्रेम की भावना पारम्परिक रूप से आई थी। बचपन में आपके मानस पर अपने ताऊ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और बाबू राधाकृष्णदास-जैसे महानुभावों के संरक्षण में रहने के कारण हिन्दी-सेवा के जो संस्कार पड़े थे वही कालान्तर में उन्हें इस दिशा में ले गए।

आपने 'भारतेन्दु नाटक मंडली' की स्थापना के द्वारा नगर के वातावरण मे अभिनय-कला के प्रति जो प्रेम जाग्रत किया वह आपकी कर्त्तव्य-निष्ठा का द्योतक है। आप आजीवन इस 'नाटक मंडली' के संरक्षक रहे। एक बार तो आपने इस संस्था के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर 'नाटकों की आवश्यकता और उपयोगिता' के सम्बन्ध में कविता में ही भाषण दे दिया था।

संस्कृत के अनेक नाटकों को कण्ठाग्र करके उन्हें हिन्दी-मंच पर अभिनीत करने का अभिनन्दनीय कार्य भी आपने किया था। आपने 'वाल्मीकि रामायण' के 'सुन्दर काण्ड' का हिन्दीप-द्यानुवाद करने के अतिरिक्त भवभूति के 'उत्तर राम-चरित' नाटक का हिन्दी अनुवाद भी किया था। इन दोनों कृतियों का प्रकाशन क्रमशः सन् 1907 और सन् 1916 में हुआ था।

आपका देहावसान केवल 39 वर्ष की अल्प आयु में ही सन् 1918 में हुआ था।

श्री कृष्णचैतन्य गोस्वामी

श्री गोस्वामीजी का जन्म सन् 1889 में पटना सिटी के गाय घाट मोहल्ले में हुआ। आपके पिता श्री राधालालजी गोस्वामी ज्योतिष के प्रकाण्ड पंडित थे। आपकी शिक्षा पटना, काशी और वृन्दावन में क्रमशः अपने पिता, महन्त गोपालदत्त त्रिपाठी और मधुसूदनाचार्यजी के निरीक्षण में हुई थी। अपने इन्हीं आचार्यों के चरणों में बैठकर आपने ज्योतिष, व्याकरण, साहित्य और दर्शन शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया था। आपकी पहली रचना श्री राधाचरण गोस्वामी के सम्पादन में वृन्दावन से प्रकाशित होने वाली 'कृष्ण चैतन्य चन्द्रिका' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी और उसके बाद आपकी रचनाएँ 'मर्यादा', 'सरस्वती', 'चित्रमय जगत्', 'इन्दु', 'मनोरंजन', 'चैतन्य' तथा 'प्रेम' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई।

सन् 1920 में गुलजार बाग पटना के चैतन्य पुस्तकालय की ओर से प्रकाशित 'चैतन्य चन्द्रिका' नामक पत्रिका का सम्पादन आपने लगभग एक वर्ष तक सफलता-पूर्वक किया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस पुस्तकालय की संस्थापना आपके पिताजी ने ही की थी। आप सन् 1925 में वृन्दावन में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सोलहवें अधिवेशन के स्वागत-मन्त्री भी रहे थे। इस अधिवेशन की अध्यक्षता श्री अमृतलाल चक्रवर्ती ने की थी। आपकी 'उपासना विधि' और 'गौड़ प्रेमामृत' नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

आपका निधन सन् 1935 में हुआ था।

श्री कृष्णजी हरि पन्त देशपांडे

श्री देशपांडे का जन्म महाराष्ट्र प्रदेश के टेंबुर्णी (माडा) नामक स्थान में 7 सितम्बर सन् 1920 को हुआ था। आपने सन् 1961 से 'महाराष्ट्र एजुकेशनल सोसाइटी' के तत्वावधान में संचालित होने वाले एक हाईस्कूल में शिक्षक का
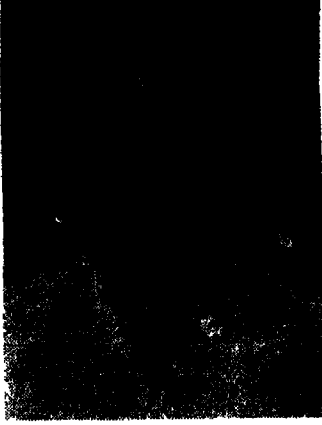
कार्य करने के अतिरिक्त लगातार 18 वर्ष तक 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की ओर से हिन्दी-प्रचारक का कार्य भी किया था।

आप सभा के एक अत्यन्त निष्ठावान कार्यकर्ता थे, इसी कारण आपके देहान्त के उपरान्त आपकी स्मृति में सन् 1979 से 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के द्वारा प्रति वर्ष एक 'देशपांडे शील्ड' प्रदान करने की योजना चालू की गई है।

आपका निधन 23 मई सन् 1979 को शोलापुर में हुआ था।

श्री कृष्णदत्त पांडेय

श्री पांडेयजी का जन्म बिहार के शाहाबाद जिले के भोजपुर नामक ग्राम में सन् 1805 में हुआ था। आप स्वभाव से एक प्रसिद्ध शिव-भक्त थे और आपने 'कृष्ण पद्यावली' तथा 'भारत का गदर' नामक दो पुस्तकों की रचना की थी। खेद है कि ये पुस्तकें एक अग्निकांड में जल कर भस्म हो गई।

आपका निधन सन् 1859 में हुआ था।

श्री कृष्णदास

आपका जन्म राजस्थान के जालौर जिले के रामपेण नामक ग्राम में सन् 1818 में हुआ था। आपने सन् 1855 से 1894 तक की अवधि में 'तत्वबोध', 'मुक्ता मणि', 'विवेक सागर', 'अद्वैत प्रकाश', 'श्री गुरु महिमा', 'प्रेम पुकार', 'अस तिलक', 'श्री बोध प्रस्ताव', 'नरहरि लीला', 'जानकी मंगल', 'लंका काण्ड' और 'नामदेव चरित' आदि रचनाओं का प्रणयन किया था।

सिरोही (राजस्थान) के श्री सोहनलाल पटना ने इनकी रचनाओं का एकत्र सम्पादन-प्रकाशन 'कृष्णदास ग्रन्थावली' नाम से किया है।

आपका देहावसान सन् 1900 में हुआ था।

राय कृष्णदास

राय कृष्णदास का जन्म 7 नवम्बर सन् 1892 में काशी की ऐतिहासिक नगरी में हुआ था। आप प्रेमचन्द्र और जयशंकर 'प्रसाद' के समकालीन साहित्यकारों में अन्यतम स्थान रखते थे। एक कुशल कवि, कहानीकार और गद्य-गीत-लेखक होने के साथ-

साथ आप चित्र-कला, मूर्ति-कला और पुरातत्त्व-सम्बन्धी विद्या में भी बहुत रुचि लेते थे। ललित कलाओं तथा पुरातत्त्व के प्रति अपने अनन्य प्रेम के कारण ही आपने 'भारत कला भवन' की स्थापना की थी, जिसे बाद में सन् 1950 में आपने 'हिन्दू विश्वविद्यालय काशी' को दे दिया। उनके द्वारा संस्थापित यह 'भारत कला भवन' सभी कला-शोधार्थियों के

लिए एक तीर्थ-समान हो गया है। आप ललित कला अकादमी, नई दिल्ली के भी सम्मानित सदस्य रहे थे।

आप मूलत: कवि थे और 'नेही' नाम से आप ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में कविताएँ किया करते थे। आपकी 'ब्रजभाषा' की रचनाओं का संकलन 'ब्रज रज' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपकी खड़ी बोली की रचनाओं के संकलन का नाम 'भावुक' था। आप जयशंकर 'प्रसाद' के अनन्य मित्रों में थे।

आपने अपनी तथा 'प्रसाद' जी की रचनाओं के प्रकाशन के लिए ही 'भारती भण्डार' नामक प्रकाशन-संस्था की स्थापना की थी, जिसकी ओर से आपने जहाँ प्रसाद जी की रचनाएँ प्रकाशित कीं वहाँ अपनी 'साधना' (1919), 'सुधांशु' (1922), 'संलाप' (1927), 'अनाख्या' (1927) तथा 'प्रवाल' (1928) नामक पुस्तकें सर्वप्रथम प्रकाशित कीं। बाद में आपने इसी संस्था की ओर से श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'अन्तस्तल' तथा शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'हिमानी' नामक काव्य-संकलन प्रकाशित किया। बाद में यह संस्थान आपने 'लीडर प्रेस प्रयाग' को दे दिया और श्री वाचस्पति पाठक उसके अन्त तक व्यवस्थापक रहे। पाठक जी भी प्रसाद और राय कृष्णदास के अनन्य स्नेह-भाजन रहे थे।

आपकी कहानियों में जहाँ भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वरूप प्रकट होता है वहाँ आपके गद्य-काव्यों में हमारे सामाजिक जीवन की अनेक अनुभूतियाँ आलोकित हुई हैं। भाषा-शैली और कथ्य की सर्वथा नवीनता के कारण आपके गद्य गीत हमारे साहित्य के गौरव हैं। बाद में आपकी 'छाया पथ' (1937) नामक गद्य-काव्य की कृति तथा 'भारत की चित्र-कला (1939) और 'भारत की मूर्ति-कला' (1939) भी इसी संस्थान से प्रकाशित हुई। आप जहाँ भारतेन्दुयुगीन अनेक संस्मरणों के सन्दोह अपने मानस में छिपाए हुए थे वहाँ प्रसाद और प्रेमचन्द-काल की अनेक खट्टी-मीठी अनुभूतियाँ सँजोए हुए थे। इधर आपके जो संस्मरण पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं वे साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। आपकी 'जवाहर भाई' नामक कृति में नेहरू जी के मार्मिक संस्मरण अंकित हैं।

राय साहब के पिता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे और आपके पूर्वज राजा पटनीमल दिल्ली के निवासी थे और अब भी सदर बाजार में उनकी कोठी है। मथुरा के सुप्रसिद्ध कृष्ण जन्म-स्थान के संरक्षण के अतिरिक्त राजा पटनीमल ने देश के प्राय: सभी तीर्थ-स्थानों में धर्मशालाएँ बनवाई थीं। इस प्रकार राय साहब को सुसंस्कृत रुचि और कला-प्रेम विरासत में ही मिला था। आपका रहन-सहन अत्यन्त सादा तथा सहज था। खद्दर के अतिरिक्त आपने कभी भी कोई वस्त्र धारण नहीं किया। वास्तव में आप भारतीय संस्कृति के ज्वलन्त प्रतीक थे।

भारतीय कला, साहित्य तथा संस्कृति के उन्नयन और उत्कर्ष के लिए की गई आपकी अनेक उल्लेखनीय सेवाओं के लिए आपको भारत सरकार ने जहाँ 'पद्म भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया था वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने भी 'साहित्य-वाचस्पति' की सम्मानोपाधि प्रदान की थी। इसी प्रकार मेरठ तथा काशी विश्वविद्यालयों ने आपको जहाँ डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित किया था, वहाँ 'ललित कला अकादमी' ने भी आपको अपना 'फैलो' बनाया था। आपके सुपुत्र डॉ० राय आनन्दकृष्ण भी सौभाग्यवश कला और साहित्य के अनन्य प्रेमी हैं।

आपका निधन 20 जुलाई सन् 1980 को हुआ था।

राव कृष्णदेवशरणसिंह 'गोप'

आपका जन्म भरतपुर के प्रसिद्ध राज्य-वंश में सन् 1865 में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा के लिए जब आप सन् 1883 में काशी गए थे तब आपका परिचय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से हुआ था। उन दिनों आप काशी के शिवपुर नामक स्थान के अपने बाग में रहते थे जो भरतपुर की कोठी के नाम से प्रसिद्ध है। राव साहब अत्यन्त भावुक प्रकृति के सहृदय व्यक्ति थे और ब्रजभाषा पर आपका जन्म-जात अधिकार था। भारतेन्दु जी की मित्रता और सत्संग से राव साहब का झुकाव कविता और कला की ओर हुआ था। कविता में पारंगत होने के साथ-साथ गायन और वादन में भी आप अत्यन्त प्रवीण हो गए थे।

काशी में जब पहले-पहल फोटोग्राफी की कला का प्रारम्भ हुआ तब जिन तीन व्यक्तियों ने उसे सीखा था उनमें

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा राव बलभद्रदास के अतिरिक्त आपका नाम भी प्रमुख है। राव साहब का विवाह उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले की कुचेसर नामक रियासत में हुआ था। आपकी अधिकांश रचनाएँ भारतेन्दु बाबू के द्वारा सम्पादित 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' तथा 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित हुई हैं। कुछ रचनाएँ 'आनन्द कादम्बिनी' में भी छपी थीं। 'आनन्द कादम्बिनी' में ही आपका 'स्वप्न' नामक एक अधूरा निबन्ध भी छपा है। 'आनन्द कादम्बिनी' के सम्पादक श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने जब आपके इस निबन्ध में मनमाना संशोधन किया तो इसका शेषांश आपने आगे प्रकाशनार्थ नहीं भेजा था। आपकी अधिकांश रचनाएँ अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आपका निधन सन् 1897 में केवल 32 वर्ष की आयु में असमय में ही हो गया।

बाबू कृष्णबलदेव वर्मा

बाबू कृष्णबलदेव वर्मा का जन्म बुन्देलखण्ड की वीरांगना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की क्रीड़ा-भूमि कालपी नगर में एक अत्यन्त सम्भ्रान्त खत्री-परिवार में सन् 1870 में हुआ था। आपके पूर्वज कई वर्ष पूर्व सरहिन्द से आकर कालपी में बस गए थे। जिस समय नाना साहब पेशवा और महारानी लक्ष्मीबाई ने कालपी को अपने अधिकार में लिया था उस समय उन लोगों ने वर्माजी के पूर्वजों द्वारा बनवाए गए देवालय में अवस्थान किया था। आपके पूर्वजों ने नाना साहब को ऋण-स्वरूप 75 हजार रुपए भी दिए थे। जिस समय कालपी नगर रानी के हाथ से निकल गया और उन्हें वहाँ से जाना पड़ा तब उनकी पादुका, स्नान करने की चौकी एवं नाना साहब के दरबारी चित्रकार द्वारा बनाए गए नानासाहब तथा महारानी के चित्र आदि वहीं रह गए थे, जिन्हें श्री वर्माजी के पूर्वजों ने बड़े यत्न से सुरक्षित रखा था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस सामग्री के चित्र 'विशाल भारत' में भी प्रकाशित हुए थे।

श्री वर्माजी की प्रारम्भिक शिक्षा कालपी में ही हुई थी। आपने वहाँ से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके लखनऊ के केनिंग कालेज में प्रवेश लिया था, जहाँ से आपने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। लखनऊ आकर आपकी प्रतिभा का बहुमुखी विकास हुआ। आपने साहित्य-सेवा के साथ-साथ सार्वजनिक कार्मों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। आपकी इस प्रतिभा से लखनऊ नगर के प्रख्यात वकील बाबू गंगाप्रसाद वर्मा बहुत प्रभावित हुए थे और उनसे आपकी घनिष्ठता हो गई थी। उन्हीं दिनों सन् 1899 में लखनऊ में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था, वह कई दृष्टि से बड़ा ही ऐतिहासिक महत्त्व रखता था। उन दिनों सर सैयद अहमद खाँ सरकारी अधिकारियों से मिलकर 'एण्टी कांग्रेस' नामक संस्था के द्वारा लखनऊ के उस अधिवेशन को विफल करने का प्रयत्न कर रहे थे। श्री वर्माजी उस अधिवेशन की स्वयं-सेवक सेना के कप्तान थे। आपने रात-दिन एक करके अपनी कांग्रेस के उस अधिवेशन की सफलता के लिए प्रयत्न ही नहीं किया, बल्कि 'एण्टी कांग्रेस' के अधिवेशन में पहुँचकर उनका तख्ता पलट दिया। उन्हीं दिनों आपने लखनऊ से 'विद्या विनोद समाचार' नामक एक हिन्दी पत्र का भी प्रकाशन-सम्पादन प्रारम्भ किया, जो लगभग 2 वर्ष तक बड़ी सफलता-पूर्वक प्रकाशित होता रहा था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लखनऊ से निकलने वाला हिन्दी का वह पहला पत्र था।

जिन दिनों आप लखनऊ में कार्य-रत थे उन दिनों आपकी घनिष्ठता 'रस रत्नाकर' नामक काव्य-ग्रन्थ के प्रणेता स्वर्गीय अयोध्या-नरेश, पंडित बिशननारायण दर और 'अवध पंच' के सम्पादक सैयद सज्जाद हुसैन से हो गई थी। स्वामी रामतीर्थ से भी आपका सम्पर्क उन्हीं दिनों हुआ था। स्वामीजी वर्माजी को प्यार से 'खुदाई फौजदार' कहा करते थे। आपने लखनऊ म्युजियम के तत्कालीन क्यूरेटर डॉक्टर फ्यूरर के सम्पर्क में आकर भारतीय पुरातत्त्व और ऐतिहासिक शोध

के क्षेत्र में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था और बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा करने का संकल्प भी अपने मन में कर लिया था। आप बंगाल के ख्यातनामी इतिहास-वेत्ता बाबू राखालदास बन्द्योपाध्याय के 'करुणा' तथा 'शशांक' नामक ऐतिहासिक उपन्यासों से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्हें अपनी जन्मभूमि की यात्रा कराना चाहते थे। खेद है कि उनकी असामयिक मृत्यु के कारण वर्माजी की यह साध पूर्ण न हो सकी।

श्री वर्माजी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यों में भी बहुत रुचि लिया करते थे। सभा द्वारा प्रकाशित 'लाल' कवि के 'छत्र प्रकाश' नामक ग्रन्थ का सम्पादन आपने ही किया था। आपने प्रख्यात इतिहासविद् साहित्यकार पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या की 'पृथ्वीराज रासो' नामक रचना के सम्पादन मे बहुत सहायता की थी। जिन दिनों कलकत्ता में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ग्यारहवाँ अधिवेशन डॉ० भगवानदास की अध्यक्षता में हुआ था तब उस अधिवेशन की स्वागत-समिति के मन्त्री आप ही थे। इस सम्मेलन में ही 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' की स्थापना की घोषणा की गई थी। साहित्य के प्रति आपका इतना लगाव था कि महाकवि चन्दबरदाई से लेकर भारतेन्दु के समय तक के प्रायः सभी कवियों की रचनाएँ आपको प्रायः कण्ठस्थ थीं और प्रायः आप वार्तालाप में उनके उदाहरण दिया करते थे। प्रयाग की 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' से भी आपका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था, और इसकी त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' के सम्पादक-मंडल के भी आप एक सम्मानित सदस्य रहे थे। आप अनेक वर्ष तक कालपी के म्युनिसिपल बोर्ड तथा जालौन के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के भी सदस्य रहने के अतिरिक्त आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे थे। कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन के कारण आपने इन सब पदों को त्याग दिया था। आपकी सहधर्मिणी श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की बुआ थीं। उनका निधन बहुत पहले उस समय ही हो गया था जब आप तीस वर्ष के ही थे। बाद में आपने दूसरा विवाह नहीं किया और सारा जीवन सरस्वती की सेवा में ही बिता दिया।

आप हिन्दी-संस्थाओं की स्थापना में भी बड़ी रुचि लिया करते थे। कालपी का 'हिन्दी विद्यार्थी सम्प्रदाय' आपकी ही देन है। इस संस्था ने उस क्षेत्र की प्रशंसनीय सेवा की है। 'विशाल भारत' के सहकारी सम्पादक श्री ब्रजमोहन वर्मा आपके भतीजे थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'भर्तृहरि नाटक', 'फाहियान भाषा' तथा 'ह्यूनसांग भाषा' आदि उल्लेखनीय हैं। आपके लेख आदि हिन्दी की 'मर्यादा' तथा 'सरस्वती' आदि पुरानी पत्रिकाओं में आज भी देखने को मिल जाते हैं।

आपका निधन 27 मार्च सन् 1931 को काशी में हुआ था।

श्री कृष्णबिहारी मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म 23 जुलाई सन् 1890 को उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के गन्धौली नामक स्थान में हुआ था। आपके पितामह 1857 की क्रान्ति में लखनऊ से अपनी जमींदारी के ग्राम गन्धौली चले आए थे और तब से आपका परिवार स्थायी रूप से वहीं रहने लगा था। आपको बाल्य-काल से ही अपने परिवार में 'साहित्यिक वातावरण' मिला था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में प्राप्त करके आपने मैट्रिक तक का अध्ययन सीतापुर के गवर्नमेंट हाईस्कूल में किया था। इसके बाद आपने इण्टर तथा बी० ए० की परीक्षाएँ लखनऊ के केनिंग कालेज और एल-एल०बी० इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से उत्तीर्ण कीं।

आपने सर्वप्रथम सीतापुर में वकालत प्रारम्भ की और बाद में उसमें आपकी रुचि नहीं रही और पूर्णतः साहित्य को ही समर्पित हो गए। क्योंकि छात्रावस्था से ही आपका मन साहित्य-सेवा की ओर उन्मुख था इसलिए आप इस क्षेत्र में ही रुचिपूर्वक आगे बढ़ते रहे। आपने जहाँ मुन्शी प्रेमचन्द
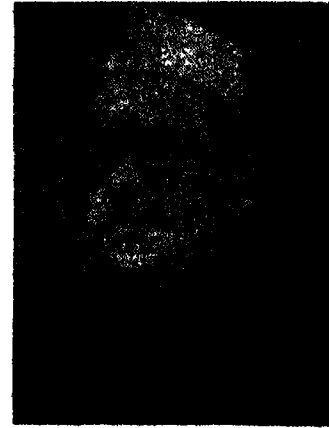
के साथ 'माधुरी' के सम्पादन का कार्य किया वहाँ अपने छोटे भाइयों—पं० बिपिनबिहारी तथा नवलबिहारीजी के सहयोग से 'हिन्दी समालोचक' नामक त्रैमासिक पत्र का सम्पादन किया। 'माधुरी' तथा 'हिन्दी समालोचक' दोनों ही पत्रों में आपकी सम्पादन-कला अत्यन्त प्रखरता से प्रकट हुई थी। आपने कुछ दिन तक 'आज' के सम्पादकीय विभाग में भी कार्य किया था। आपके द्वारा लिखित तथा सम्पादित ग्रन्थों में 'चीन का इतिहास', 'देव और बिहारी', 'गंगाभरण', 'नवरस तरंग', 'मतिराम ग्रन्थावली', 'नटनागर विनोद' और 'मोहन विनोद' आदि प्रमुख हैं।

आप जहाँ एक सफल समीक्षक और उत्कृष्ट कोटि के लेखक थे वहाँ शोध एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। आप देव कवि के अनन्य भक्त तथा जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और सत्यनारायण कविरत्न आदि ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों के प्रशंसक थे। आपका विश्वास 'जो न जाने ब्रजभाषा ताहि शाखामृग जानिए' था। ब्रजभाषा के प्रेम के कारण इस दिशा में आपने उल्लेखनीय कार्य किया था। आप देव के इतने भक्त थे कि समालोचक शिरोमणि पंडित पद्मसिंह शर्मा को बिहारी की वकालत करनी पड़ी। श्री मिश्र ने अपनी 'देव और बिहारी' नामक पुस्तक में देव के काव्य की उत्कृष्टता प्रदर्शित की। जिन दिनों यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी उन दिनों साहित्य में बहुत हलचल मची थी और बड़े-बड़े महारथियों में दो दल हो गए थे।

आप अच्छे समीक्षक होने के साथ-साथ सहृदय कवि भी थे। आपकी अनेक अप्रकाशित तथा प्रकाशित कविताएँ आपकी ऐसी प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। आपने अनेक अँग्रेजी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद भी किए थे। ऐसे ग्रन्थों में टालस्टाय की कृति का हिन्दी रूप 'गुलामी' तथा टेनीसन की रचना 'प्रेमोपहार' उल्लेख्य हैं। आप लगभग 15 वर्ष तक सीतापुर की 'हिन्दी साहित्य सभा' के अध्यक्ष भी रहे थे। नवम्बर सन् 1959 में आपको एक 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट करने की आयोजना हो ही रही थी कि अचानक 24 मई सन् 1959 को आपका निधन हो गया। मृत्यु से पूर्व आपने जो छन्द लिखा था यद्यपि वह अधूरा ही है, किन्तु फिर भी उससे आपकी काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। आप उसका अन्तिम चरण लिख भी नहीं पाए थे कि अचानक हृदय की गति रुक गई। वह छन्द इस प्रकार है :

अनुवाद स्वाद में अलोनोपन छाय गयो,
देव बानी बंगला को जानकार लूटिगो।
मंजुल रसीली, अरसीली कविता की गति,
उकुति जुगुति को चमत्कार लूटिगो॥
साहस, सहानुभूति, सम्बल सचाई सूधी,
पत्रकारिता के गुन-गान सब लूटिगो।

यह छन्द आपने अपने परम मित्र स्व० रूपनारायण पाण्डेय की स्मृति में लिखना प्रारम्भ किया था, जिसे वे 'रसवन्ती' के 'पाण्डेय स्मृति अंक' में प्रकाशनार्थ भेजने वाले थे। किन्तु विधि को यह मंजूर नहीं था; फलतः यह छन्द अधूरा ही रह गया।

लाल कृष्णवंशसिंह बाघेल

श्री बाघेल का जन्म सन् 1885 में मध्य प्रदेश के सीधी जिले के भरतपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपका परिवार परम्परा से साहित्य-प्रेमी था और वे संस्कार ही आपकी प्रतिभा विकसित करने में सहायक हुए थे।

आपने बहुत थोड़े समय में ही अपनी लेखन-क्षमता से 'हिमालय के कुछ स्थान', 'कश्मीर और सीमा प्रान्त', 'वेद-स्तुति विकासिका' और 'विश्व कवि कालिदास' आदि पुस्तकों की रचना कर डाली थी। इनमें से पहली तीनों पुस्तकों का प्रकाशन सन् 1954 में और चौथी का प्रकाशन सन् 1978 में आपकी मृत्यु के कई वर्ष उपरान्त हुआ था।

आपका देहान्त सन् 1969 में हुआ था।
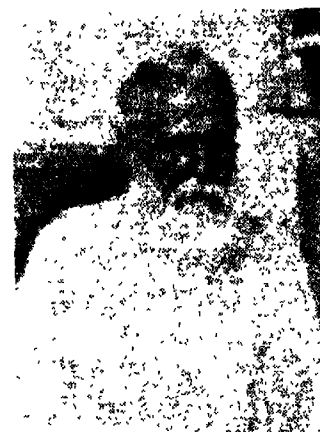
श्री कृष्णवल्लभ सहाय

श्री सहाय का जन्म पटना जिले के शेखपुरा नामक ग्राम में 31 दिसम्बर सन् 1898 को हुआ था। बाद में आप सन् 1908 में हजारीबाग चले गए थे और वहाँ के सेंट कोलम्बस कालेज से आपने बी० ए० आनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की।

आप एम० ए० की परीक्षा देने ही वाले थे कि अचानक सन् 1921 के गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। इस आन्दोलन की समाप्ति पर आपने कुछ दिन तक बिहार विद्यापीठ में अँग्रेजी अध्यापक का कार्य भी किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आपने अनेक बार जेल-यात्राएँ भी कीं और स्वतन्त्रता के उपरान्त जब बिहार में कांग्रेसी मंत्रिमंडल का गठन हुआ तब 1963 में आप बिहार के मुख्यमन्त्री भी रहे। हिन्दी साहित्य के प्रति आपमें 'रामचरितमानस' के पारायण से अनन्य अनुराग जगा और आपने अनेक सामाजिक तथा राजनैतिक लेख भी लिखे। आपने 'छोटा नागपुर संवाद पत्र' नामक पत्र का सम्पादन भी अनेक वर्ष तक किया था।

आपका निधन सन् 1974 में हुआ था।

श्री कृष्णशंकर शुक्ल 'कृष्ण'

श्री 'कृष्ण' का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के सुरजूपुर नामक ग्राम में सन् 1915 में हुआ था। आपके पिता श्री रामावतार शुक्ल 'चातुर' स्वयं एक ख्यातिलब्ध कवि थे। उनके संस्कारों की छाया श्री 'कृष्ण' जी में आनी स्वाभाविक थी।

आप एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि के रूप में उस जनपद में विख्यात रहे और समस्त बैसवारे को आपकी काव्य-क्षमता पर गर्व था। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'बेनीमाधव बावनी', 'प्रेम पच्चीसी', 'संचित सुमन' और 'हृदय वेदना' प्रमुख हैं। इनमें से पहली पुस्तक प्रकाशित भी हो चुकी है। इसमें 'कृष्ण' जी ने राणा बेनीमाधव की अक्षय कीर्ति को उजागर करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया है।

आपका निधन सन् 1937 में हुआ था।

श्री कृष्णस्वरूप विद्यालंकार

श्री कृष्णस्वरूप जी का जन्म सन् 1898 में उत्तर प्रदेश के बदायूँ जिले के इस्लामनगर नामक कस्बे में हुआ था। आपके पिता आर्यसमाजी विचार-धारा के थे, इसी कारण उन्होंने आपको अध्ययनार्थ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्रविष्ट कराया था, जहाँ से आपने सन् 1919 में 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त की थी।

गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त आपने समाज-सेवा के क्षेत्र में अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किया। आपने जहाँ राष्ट्रीय आन्दोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लिया वहाँ 'गांधी सेवा सदन' आसफपुर (बदायूँ) के भी दो वर्ष तक मन्त्री रहे। एकाधिक बार जेल-यात्राएँ करने के साथ-साथ आपने स्वतन्त्रता के उपरान्त

उत्तर प्रदेश के पंचायत राज्य विभाग में लगभग 3 वर्ष तक प्रशिक्षक के पद पर भी सफलतापूर्वक कार्य किया। कुछ वर्ष तक आप अपने कस्बे की 'टाउन एरिया कमेटी' के अध्यक्ष भी रहे थे।
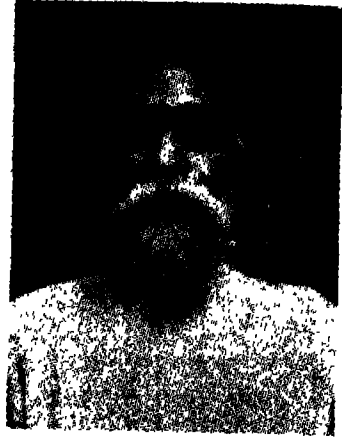
आपकी प्रतिभा का इसीसे परिचय मिल जाता है कि अपने छात्र-जीवन में आपने एक जंगली चीते को गरदन से पकड़कर दबोच लिया था। इस साहसिक कार्य के लिए आपको 'स्वर्ण पदक' प्रदान किया गया था। 'धनुर्विद्या' के प्रदर्शन में भी आप अत्यन्त निष्णात थे।

खेल-कूद तथा व्यायाम आदि के क्षेत्र में कुशल होने के साथ-साथ आप लेखन की दिशा में सर्वथा अद्वितीय प्रतिभा रखते थे। आपने जहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश की मासिक पत्रिका 'आर्यावर्त' के 'गीता अंक' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था वहाँ गीता के सम्बन्ध में आपने एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा है। आपकी कृतियों में 'बाल विवाह', 'अछूतोद्धार', 'आनन्द यहीं है', 'वैदिक सम्भोग मर्यादा' तथा 'गीताई सार-बोधिनी' आदि विशेष परिगणनीय हैं। आपकी 'गीता मर्म' और 'गीता विज्ञान विवेचन' नामक कृतियों पर उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से एक-एक हजार रुपए का पुरस्कार भी प्रदान किया गया था।

आपका देहान्त 16 फरवरी सन् 1980 को हुआ था।

श्री कृष्णाचार्य

श्री कृष्णाचार्य का जन्म 5 नवम्बर सन् 1917 को मथुरा में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मथुरा में ही हुई थी। साहित्य रत्न करने के उपरान्त आप नागरी प्रचारिणी सभा में 5 वर्ष तक पारिभाषिक कोश विभाग में सहकारी सम्पादक रहे और काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त सन् 1950 से 1954 तक आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में ग्रन्थालयाध्यक्ष के रूप में कार्य किया था।

इसके उपरान्त आप 'नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता' के हिन्दी विभाग में कार्य करने लगे और सेवा-निवृत्ति तक वहीं कार्य किया। कुछ दिन के लिए आपने जबलपुर विश्वविद्यालय के 'पुस्तकालय विज्ञान विभाग' में प्रवक्ता के रूप में भी कार्य किया था।

'पुस्तकालय विज्ञान' से सम्बन्धित रहने के कारण आपने हिन्दी साहित्य को ऐसे सन्दर्भ-ग्रन्थ प्रदान किए हैं जिनका हिन्दी के सन्दर्भ-साहित्य में अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। आपकी प्रतिभा तथा ज्ञान का सुपरिणाम इन ग्रन्थों में रूपायित हुआ है। आपके प्रमुख ग्रन्थों में 'हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध' (1964), 'हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ' (1966) तथा 'हिन्दी नाट्य-साहित्य—ग्रन्थ पुटी' (1966) आदि उल्लेख्य हैं। आपने 'तुलसी ग्रन्थ पुटी' की पाण्डुलिपि भी प्रकाशनार्थ तैयार कर ली थी।

निधन से पूर्व आपने 'नेशनल लायब्रेरी' से सेवा-निवृत्त होने के उपरान्त 'भारतीय भाषा परिषद्' कलकत्ता की संस्थापना में अनन्य सहयोग दिया था और उसकी ओर से प्रकाशित होने वाली द्वैमासिक पत्रिका 'सन्दर्भ भारती' का सम्पादन भी आप करते थे। यदि आप जीवित रहते तो इस संस्था के माध्यम से सन्दर्भ-साहित्य के निर्माण की दिशा में आप अग्रणी कार्य कर सकते थे।

आपका निधन 17 जुलाई सन् 1977 को हुआ था।

प्रो० कृष्णानन्द पन्त

श्री पन्तजी का जन्म कूर्मांचल प्रदेश के चिरगल, गंगोली हाट (अल्मोड़ा) नामक स्थान मे सन् 1899 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार में हुई थी। इसके उपरान्त आपने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी से साहित्याचार्य की उपाधि ससम्मान प्राप्त करके अपना अध्ययन निरन्तर जारी रखा और पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से संस्कृत शास्त्री की परीक्षाएँ देकर वहाँ से बी० ए०, एम० ए० तथा एम० ओ० एल० की

उपाधियाँ भी योग्यता पूर्वक प्राप्त की थीं।

आप अनेक वर्ष तक पश्चिमी उत्तर प्रदेश के प्रमुख शिक्षण-संस्थान 'मेरठ कालेज' में संस्कृत तथा हिन्दी विभागों के अध्यक्ष रहे थे।

वैसे तो आपने फुटकर रूप में बहुत-कुछ लिखा था, किन्तु आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'काव्य दीपिका' तथा 'आलोचना के सिद्धान्त' के नाम प्रमुख स्थान रखते हैं।

आपका निधन 22 जनवरी सन् 1961 को हुआ था।

श्री कृष्णानन्द लीलाधर जोशी

श्री जोशीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर में सन् 1895 में हुआ था। आप मुख्यतः बालोपयोगी साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों में अग्रणी स्थान रखते थे। आपकी 'नल दमयन्ती', 'साविित्री सत्यवान', 'द्रोपदी' तथा 'श्रवणकुमार' आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। इनका प्रकाशन सन् 1912 से सन् 1915 के काल में हुआ था।

आपका निधन सन् 1935 में हुआ था।

श्री के० टी० रामकृष्णाचार

श्री के० टी० रामकृष्णाचार का जन्म कर्नाटक में हुआ था। आप पुरानी पीढ़ी के हिन्दी प्रचारक थे। आजादी से पहले जब हिन्दी-प्रचार का कार्य एक घनघोर अपराध माना जाता था तब आप घर-घर जाकर लोगों को हिन्दी पढ़ाने का अभिनन्दनीय कार्य किया करते थे।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के पुराने कार्यकर्ताओं में आपका नाम विशिष्ट महत्त्व रखता है। आपने हिन्दी-प्रचार को ही अपने जीवन का ध्येय बनाया हुआ था। कर्नाटक के कोने-कोने में आज उनके पढ़ाए हुए सैंकड़ों छात्र-शिष्य हिन्दी-प्रचार के कार्य में लगे हुए हैं। आपने हिन्दी-प्रचार को आजीविका का साधन न मानकर सेवा के एक साधन के रूप में अपनाया था और सबको निःशुल्क ही हिन्दी पढ़ाने-सिखाने का व्रत लिया हुआ था।

आपका निधन 30 जनवरी सन् 1980 को अचानक हृदयाघात से हो गया था।

श्री के० बी० क्षत्रिय

श्री क्षत्रियजी का जन्म उत्तर प्रदेश के देहरादून नगर में 9 अक्तूबर सन् 1922 को हुआ था। यद्यपि आपकी मातृभाषा गोरखाली थी, फिर भी हिन्दी के पठन-पाठन में आपकी पहले से ही रुचि थी। आप हिन्दी के अच्छे लेखक थे। आपका 'खलंगा, खुकुरी और फिरंगी' नामक उपन्यास हिन्दी के पाठकों द्वारा बड़ा सराहा गया था। इसके अतिरिक्त आपकी प्रकाशित कृतियों में 'अनुशीलन' और 'आदर्श पत्र-लेखन' के नाम भी उल्लेखनीय हैं। आपने 'साहित्य-परिषद्' नामक मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया था।

आपका देहान्त 12 नवम्बर सन् 1973 को हुआ था।

डॉ० के० भास्करन नायर

डॉ० के० भास्करन नायर का जन्म केरल प्रदेश के वैक्कम (कोट्टायम) नामक स्थान में 26 जनवरी सन् 1913 को हुआ था। आपने 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के सहयोग से हिन्दी का अध्ययन करके मद्रास विश्वविद्यालय से

हिन्दी में एम० ए० किया और लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपके पी-एच० डी० के शोध प्रबन्ध का विषय 'हिन्दी और मलयालम के कृष्ण-भक्ति-काव्य' है, जो राजपाल एण्ड संस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है।

आपने निरन्तर 16 वर्ष तक हिन्दी-प्रचार तथा हिन्दी-शिक्षक का कार्य निष्ठापूर्वक करने के साथ-साथ 'केरल हिन्दी-प्रचार सभा' के कार्य को आगे बढ़ाया और उसके द्वारा केरल विश्वविद्यालय में बी० ए०, एम० ए०, पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० तक के हिन्दी-पाठ्यक्रम को प्रारम्भ कराया। आप अनेक वर्ष तक केरल विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष भी रहे थे। आपके शोध प्रबन्ध 'हिन्दी और मलयालम के कृष्ण-भक्ति-काव्य' नामक ग्रन्थ को बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा पुरस्कृत किया गया था। इस पुस्तक को उत्तर प्रदेश सरकार ने भी पुरस्कृत किया था।
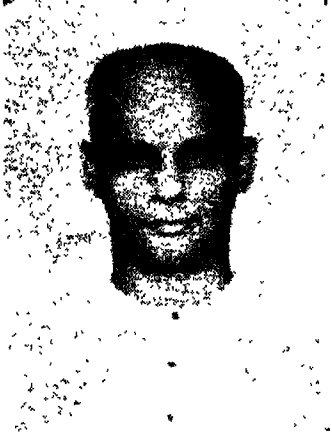
केरल में आज जो हिन्दी का प्रचार दिखाई दे रहा है उसका बहुत कुछ श्रेय श्री भास्करन नायर-जैसे लोगों को है। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'दस हीरे', 'आठ तारे', 'मलयालम साहित्य का इतिहास', 'प्रेम धारा', 'साहित्य मंजरी' और 'सुदामा चरित' आदि प्रमुख हैं। आपके 'मलयालम साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन उत्तर प्रदेश शासन की हिन्दी समिति की ओर से हुआ है। आपने 'केरल की सन्त परम्परा' नामक एक और महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रन्थ की रचना भी की थी, जो अभी तक अप्रकाशित ही है। आप अनेक वर्ष तक 'केरल योगासन संघ' के अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका देहावसान 22 जनवरी सन् 1972 को हुआ था।

श्री के० राघवन

श्री के० राघवन का जन्म केरल प्रदेश के दक्षिण तिरुवितांकूर के नेय्याट्टिनकरा नामक ग्राम में 20 मई सन् 1907 को हुआ था। आपने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास से 'राष्ट्रभाषा विशारद' परीक्षा देने के उपरान्त 'केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण मंडल, आगरा से 'पारंगत' की उपाधि प्राप्त की थी।

आप सन् 1934 तक केरल के एक स्कूल में अध्यापक थे। फिर महात्मा गान्धीजी का भाषण सुनकर नौकरी से त्यागपत्र देकर उनके ही निर्देश पर हिन्दी-प्रचार के कार्य में लग गए। उस समय आपने स्वतन्त्रता से पूर्व विवाह न करने और तब तक सरकारी नौकरी न करने की दृढ़ प्रतिज्ञाएँ की थीं। दोनों प्रतिज्ञाओं का पालन आपने अपने जीवन में पूर्ण तत्परता पूर्वक किया था।

सन् 1948 के उपरान्त आप पुलनूर के 'हिन्दी हाई स्कूल' के हिन्दी-शिक्षक हुए और फिर 60 वर्ष की आयु तक केरल के अनेक विद्यालयों में आपने अध्यापन का कार्य किया। इस बीच आपको जो अनेक प्रतिभाशाली शिष्य प्राप्त हुए उनमें से डॉ० ए० चन्द्रशेखरन नायर ने आपकी कीर्ति-गाथा को सारे भारत में पहुँचाया है।

आपने अपने हिन्दी-प्रचार के ध्येय की पूर्ति में अनेक बार बहुत-सी विघ्न-बाधाओं का सामना किया था। अनेक बार आपको गुण्डों ने इस कार्य के लिए शारीरिक यातनाएँ भी दी थीं, लेकिन फिर भी आप अपने लक्ष्य पर अविराम भाव से बढ़ते रहे। आप एक कुशल वक्ता एवं सफल लेखक थे।

आपका निधन 7 अप्रैल सन् 1974 को हुआ था।

श्री के० वासुदेवन पिल्लै

श्री पिल्लै का जन्म केरल प्रदेश के दक्षिण केरल अंचल के पल्लिच्चल नामक ग्राम में सन् 1909 में हुआ था। आप 'केरल हिन्दी-प्रचार सभा' के संस्थापक थे और आपने उसकी मासिक पत्रिका 'केरल भारती' का अनेक वर्ष तक सफलता पूर्वक सम्पादन किया था। 'राष्ट्र वाणी' पत्रिका के भी आप सम्पादक थे। उसमें 'दक्षिणी तूलिका' नाम से भी आप लिखा करते थे।

आप हिन्दी के कर्मठ प्रचारक होने के साथ एक अच्छे लेखक भी थे। 'हिन्दी मलयालम स्वबोधिनी' के अतिरिक्त आपने अनेक कहानियाँ, निबन्ध और आलोचनाएँ लिखी हैं। आपकी 'केरल सतसई' नामक कृति में हिन्दी के 200 दोहे संकलित हैं।

आपकी स्मृति में त्रिवेन्द्रम में एक विशाल पुस्तकालय भी संस्थापित है और प्रति वर्ष आपके नाम पर एक 'भाषण प्रतियोगिता' भी आयोजित की जाती है। आप कुशल हिन्दी-प्रचारक, सफल निदेशक और कर्मठ नेता थे। 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' आपका सजीव स्मारक है।

आपका निधन 25 जुलाई सन् 1962 को हुआ था।

श्रीमती के० सरसम्मा

श्रीमती सरसम्मा का जन्म केरल प्रदेश के कोल्लभ नामक स्थान में 28 जनवरी सन् 1927 को हुआ था। यूनिवर्सिटी कालेज, त्रिवेन्द्रम से बी० एस-सी० करने के उपरान्त आपने काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) किया और कोल्लभ के श्रीनारायण कालेज में ही हिन्दी-प्राध्यापिका हो गई। बाद में सन् 1954 में त्रिवेन्द्रम के महाराज कालेज' में हिन्दी की वरिष्ठ प्राध्यापिका नियुक्त हुई और इस पद पर आपने कई वर्ष तक कार्य किया।

आप 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' से बहुत दिन तक सम्बद्ध रहीं और सभा की शिक्षा समिति की अध्यक्षा के रूप में आपने केरल प्रदेश के हिन्दी-प्रचार के कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। आप सफल अध्यापिका होने के साथ-साथ एक सहृदय लेखिका भी थीं। आपके पति डॉ० रामचन्द्र त्रिवेन्द्रम के गवर्नमेण्ट कालेज के प्राचार्य हैं।

आपका निधन 11 जनवरी सन् 1979 को हुआ था।

श्री केदारनाथ त्रिवेदी 'नवीन'

श्री 'नवीन' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के कोटैया सरावाँ नामक ग्राम में सन् 1895 में हुआ था। आप सनेही-मण्डल के प्रौढ़ कवि और सीतापुर जनपद की विशिष्ट विभूति थे।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'कुलीन' और 'तीर्थ यात्रा दर्शन' उल्लेखनीय हैं। जिन दिनों कानपुर से 'सुकवि' का प्रकाशन श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के सम्पादकत्व में होता था उन दिनों अपनी अनेक महत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट रचनाओं के कारण आपको कई बार 'खन्ना पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। आप 'सुकवि-मण्डल' के एक विशिष्ट कवि माने जाते थे।

एक बार टीकमगढ़ के कवि-सम्मेलन में ओरछा के तत्कालीन नरेश से आपको 101 रुपए का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। आपको अयोध्या की 'पंडित परिषद्' ने 'साहित्य धुरीण' की सम्मानित उपाधि प्रदान की थी।
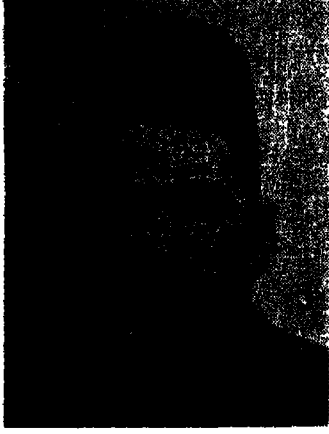
आपके ही प्रयत्न से सीतापुर जनपद के प्रत्येक ग्राम व नगर में 'रामायण' तथा 'गीता' के प्रचार का महत्त्वपूर्ण एवं अभिनन्दनीय कार्य हुआ है।

आपका निधन 2 सितम्बर सन् 1979 को हुआ था।

श्री केदारनाथ सारस्वत

श्री सारस्वत का जन्म 12 मार्च सन् 1903 को काशी के प्रख्यात तार्किक विद्वान् पं० पद्मनाभ शास्त्री के यहाँ हुआ था। आपके पितामह पं० नित्यानन्द मीमांसक भी दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपकी शिक्षा अपने पिता तथा पितामह के संस्कारों के अनुरूप महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा, डॉ० प्रमथनाथ भट्टाचार्य तर्कभूषण और पं० देवीप्रसाद शुक्ल 'कवि चक्रवर्ती' के निरीक्षण में हुई थी।

सन् 1921 में जब महात्मा गान्धी ने असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया तब आपने अध्ययन छोड़ दिया और 'संस्कृत छात्र समिति' का संगठन करके उसके माध्यम से राष्ट्रीय जागरण की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया था। तदनन्तर सन् 1923 से आपने 'हिन्दू विश्वविद्यालय' के तत्वावधान में संचालित 'रणवीर संस्कृत पाठशाला' में अध्यापन प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे अपनी योग्यता एवं प्रतिभा से काशी की विद्वन्मण्डली में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। आप 'संस्कृत साहित्य समाज' और 'काशी विद्वन्मण्डल' आदि संस्थाओं और संस्कृत के प्रख्यात पत्र 'सुप्रभातम्' के संस्थापक भी थे।

महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के अनुयायी होने के कारण उनके आदर्शों तथा सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए आपने हिन्दी में भी 'सनातन धर्मोदय' और 'जगद्गुरु' नामक पाक्षिक पत्रों का प्रकाशन किया था। 'सनातन धर्मोदय' कुछ समय तक दैनिक रूप में भी प्रकाशित हुआ था। 'सुप्रभातम्' के सम्पादक के रूप में आपने संस्कृत वाङ्मय की जो अभूतपूर्व सेवा की थी, वह अभिनन्दनीय है।

आपने स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन भी किया था। इस क्षेत्र में आपने 'आयुर्वेद सम्मेलन पत्रिका', 'वनौषधि', 'आयुर्वेद', 'रसायन सार' और 'नाड़ी तत्त्व दर्शन' आदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन के द्वारा भी अपना विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। इनके अतिरिक्त आपने 'गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस' की शोध पत्रिका 'सरस्वती सुषमा' का सम्पादन भी अनेक वर्ष तक किया था।

भारत-विभाजन के उपरान्त आपने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के सहयोग से दिल्ली में 'अखिल भारतीय संस्कृति सम्मेलन' की स्थापना करके उसकी ओर से 'भारतीय संस्कृति' नामक त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन तथा प्रकाशन भी किया था। इन्हीं दिनों आपके ही सदुद्योग से 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' की स्थापना हुई और अनेक वर्ष तक उसके महामन्त्री के रूप में आपने उल्लेखनीय कार्य किया। इस सम्मेलन के कई सफल अधिवेशन आपके ही सत्प्रयास से सम्पन्न हुए थे। आपने सम्मेलन के मासिक मुख-पत्र 'संस्कृत रत्नाकर' का सम्पादन भी अनेक वर्ष तक किया था।
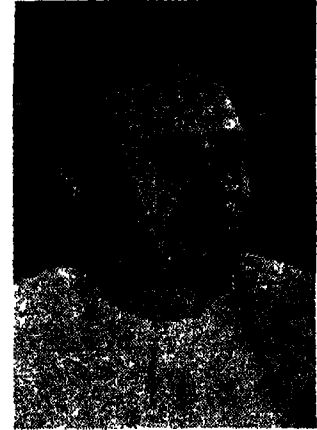
आपके द्वारा हिन्दी में अनूदित संस्कृत के प्रमुख ग्रन्थ 'काव्य मीमांसा' तथा 'कथासरित्सागर' का प्रकाशन बिहार

राष्ट्रभाषा परिषद् पटना की ओर से हुआ है। आपने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के 1956 के वार्षिकोत्सव के अवसर पर 'संस्कृत भाषा और साहित्य' विषय पर निबन्ध-पाठ भी किया था।

आपका निधन 5 दिसम्बर सन् 1959 को 56 वर्ष की आयु में दिल्ली में हुआ था।

श्री केवलराम शास्त्री

श्री केवलराम शास्त्री (दादा जी) का जन्म मध्य प्रदेश के खण्डवा नगर से 10 मील की दूरी पर पिपलौद नामक ग्राम में 11 जून सन् 1906 को हुआ था। आपका बचपन का नाम 'पुंजराज' था। आप 9 वर्ष के भी नहीं हो पाए थे कि आपको विद्याध्ययन के लिए हरिद्वार के 'ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम' में भेज दिया गया। वहाँ आपने 10 वर्ष तक विधिवत् शिक्षा प्राप्त करके शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की और वहीं पर आप 'पुंजराज' से 'केवलराम' हो गए। जब श्री केवलराम उन्नीस वर्ष के ही थे कि आपको ओंकारेश्वर तीर्थ की 'शिवना गादी' का महन्त बनाने की प्रार्थना कुछ गण्यमान्य लोगों ने आपके पिताजी से की। फलस्वरूप आपका 'अभिषेक' कर दिया गया और आप 'केवलराम' से 'सच्चिदानन्द महाराज' हो गए।

फिर न जाने क्यों, लगभग 5 वर्ष बाद आपने उस गादी के 'महन्त' पद से त्यागपत्र दे दिया और खण्डवा में आकर स्थायी रूप से बस गए। खण्डवा में पहले आपने एक 'औषधालय' खोला, किन्तु जब वह नहीं चल सका तो श्री माखनलाल चतुर्वेदी के 'कर्मवीर' के सम्पादन में सहयोग देने लगे। उन्हीं दिनों खण्डवा में 'न्यू हाईस्कूल' की स्थापना हुई और आप वहाँ संस्कृत-शिक्षक हो गए और अपने जीवन के अन्त तक शिक्षक ही रहे। आपने 'नार्मदेय' नामक एक पत्र भी प्रकाशित किया था। इसके सम्पादन के द्वारा आपने निमाड़ी प्रदेश की बड़ी सेवा की थी।

आपके निधनोपरान्त अ० भा० नार्मदीय ब्राह्मण महासभा मण्डलेश्वर के द्वारा 'शिवना मठ' के एक कमरे को 'पंडित केवलराम शास्त्री कक्ष' का नाम देकर आपकी स्मृति-रक्षा का प्रयत्न किया गया है। आपका निधन 25 सितम्बर सन् 1976 को हुआ था।

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

स्वामी केवलानन्द सरस्वती का जन्म जनवरी सन् 1895 में हुआ था। आपका जन्म-स्थान उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद का 'काई' नामक ग्राम था। आप आर्यसमाज से प्रभावित होकर उसके सुधारवादी आन्दोलन में प्रवृत्त हुए थे और बिजनौर के पास दारानगर गंज नामक स्थान में गंगा-तट पर 'निगम आश्रम' नामक एक संस्था की स्थापना की थी।

आप एक कुशल वक्ता तथा सफल कवि थे। आपकी रचनाएँ प्रायः भक्तिरस से परिपूर्ण ही हुआ करती थीं। आपकी रचनाओं के संकलन 'भक्ति मार्ग' (1928), 'केवलानन्द भजनमाला' (1930), 'भूलों को भूलें' (1939), 'ज्ञान दर्पण' (1941), 'आनन्द मंजूषा' और 'शिव संकल्प' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 20 नवम्बर सन् 1949 को आर्यसमाज बाजार सीताराम, दिल्ली में हुआ था।
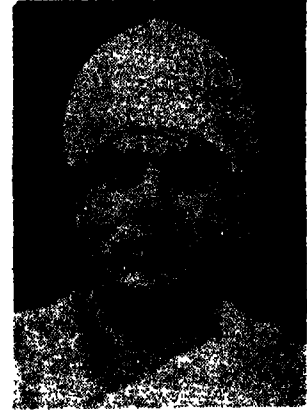
श्री केशवकुमार ठाकुर

श्री ठाकुर का जन्म कानपुर के एक चन्देल वंशी क्षत्रिय परिवार में सन् 1897 में हुआ था। साहित्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा आपको श्री गणेशशंकर विद्यार्थी से मिली थी। बाद में आप कर्मवीर पं० सुन्दरलाल के प्रभाव में आए और उनके साथ रहकर राष्ट्रीयता के भावों की प्रेरणा भी आपने उनसे ग्रहण की। जब आप 18 वर्ष के थे तब से ही साहित्य के प्रति आपका झुकाव हुआ था और 26 वर्ष की आयु में आपने पुस्तक-लेखन प्रारम्भ कर दिया था।

सर्वप्रथम आपने पत्र-पत्रिकाओं में लेख तथा कहानियाँ आदि लिखीं और फिर पुस्तक-लेखन की ओर अग्रसर हुए। आपकी 'विवाह और प्रेम' तथा 'नवीन दाम्पत्य जीवन में स्त्रियों के अधिकार' नामक दो पुस्तकें चाँद कार्यालय इलाहाबाद की ओर से प्रकाशित हुई थीं। इसके बाद आप इस दिशा में ही तन्मयतापूर्वक संलग्न रहे। आपको पुस्तकों के संग्रह करने का बहुत शौक था। आपको लेखन से जो भी धन प्राप्त होता था उसका अधिकांश आप पुस्तकों के खरीदने में ही खर्च किया करते थे।

आपने राजनीति, समाज विज्ञान,जीवनी तथा इतिहास-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था। प्रारम्भ में कुछ वर्ष तक उपन्यास भी आपने लिखे थे। कुछ उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं—'अमीरी के दिन','जीवन की प्यास', 'विश्वासघात', 'काँटों का पथ', 'अछूता बन्धन', 'दीवानी दुनिया', 'टूटा हुआ तार', और 'दिल का दाग' आदि। आपने 'सत्तावन' की क्रान्ति को आधार बनाकर भी एक उपन्यास लिखा था। जीवनियों में 'राणा प्रताप','पृथ्वीराज', 'लक्ष्मीबाई' और 'केशरी सिंह' आदि उल्लेख हैं। इनके अतिरिक्त 'स्वास्थ्य' तथा 'चरित्र-निर्माण'-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ भी आपने लिखे थे, जिनमें 'स्वास्थ्य और व्यायाम', 'बुढ़ापा : कारण और निवारण', 'सादगी श्रेष्ठता का निर्माण करती है', 'अच्छी आदतें','सरल ब्रह्मचर्य' और 'स्वावलम्बन' आदि के नाम स्मरणीय हैं।

जब आप इस प्रकार लेखन-क्षेत्र में जम गए तो फिर आपने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग इतिहास-लेखन में किया। पहले आपने 'आदर्श हिन्दी पुस्तकालय' के संचालक श्री गिरिधर शुक्ल के आग्रह पर एक बंगला के ऐतिहासिक उपन्यास 'जहाँआरा की आत्मकथा' का हिन्दी अनुवाद किया और बाद में 'भारत में अँग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष' तथा 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक ग्रन्थ लिखे। फिर आपने कर्नल टाड द्वारा लिखित 'राजस्थान का इतिहास' और 'बाबरनामा' के हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किए।

आप अपनी 'आत्मकथा' भी लिखना चाहते थे, किन्तु अस्वस्थ रहने के कारण आपकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। सन् 1973 से आप अनेक व्याधियों से ग्रसित रहने लगे थे और अन्त में कैंसर के कारण 9 जनवरी सन् 1974 को आपका देहावसान हो गया।

श्री केशवचन्द्र सेन

श्री केशवचन्द्र सेन का जन्म सन् 1838 में कलकत्ता में हुआ था। 11 वर्ष की अल्पायु में ही आपको अपने पिता का वियोग सहना पड़ा था। आप अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही ईसाई धर्म के प्रभाव में आ गए थे, किन्तु ब्रह्म समाज के नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क से आप 'ब्राह्म' हो गए थे। सन् 1862 में श्री ठाकुर ने इन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करके 'ब्रह्म-समाज' के प्रचार का सम्पूर्ण दायित्व सौंप दिया था और इन्हें 'ब्रह्मानन्द' की उपाधि से भी अभिषिक्त किया था। आपने ब्रह्म समाज के प्रचार के लिए भारत के अतिरिक्त इंगलैण्ड का भी भ्रमण किया था, जहाँ महापंडित

मैक्समूलर, जॉन स्टुअर्ट मिल, न्यूमन, ग्लैडस्टन तथा स्टेनली आदि अनेक महानुभावों ने आपका हार्दिक अभिनन्दन किया था। आपके ही अथक प्रयास से बंगाल में ईसाई धर्म का बढ़ता हुआ प्रभाव रुक गया था। आपका रामकृष्ण

परमहंस से भी बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था।

श्री केशवचन्द्र सेन पहले ऐसे राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' के महत्त्व को हार्दिकता से समझा था और भारत को एकता के सूत्र में ग्रथित करने की दृष्टि से उसको अपनाने का जोरदार समर्थन किया था। इसका ज्वलन्त प्रमाण इससे बड़ा क्या हो सकता है कि आपने आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से कलकत्ता में भेंट करके यह अनुरोध किया था कि आप 'हिन्दी भाषा' में ही प्रवचन दें, जिससे साधारणजन भी आपकी बात को समझ-कर उससे लाभान्वित हो सकें। आपने इससे भी आगे एक क्रान्तिकारी कदम यह और उठाया कि सभी ब्रह्मसमाजी प्रचारकों को हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दिया था। आपकी इस निष्ठापूर्ण पद्धति का यह प्रभाव हुआ कि अनेक ब्रह्म-समाजी प्रचारकों ने हिन्दी में भी भजन लिखे। ऐसे भजनों की संख्या 200 के लगभग बताई जाती है।

सबसे अधिक मनोरंजक घटना तो श्री केशवचन्द्र सेन के साथ उस समय घटी जब सन् 1872 में महर्षि दयानन्द के पाण्डित्य और वैदुष्य से प्रभावित होकर आपने स्वामीजी से कहा था, "शोक है कि वेदों का अद्वितीय विद्वान् अँग्रेजी नहीं जानता अन्यथा इंगलैण्ड जाते समय वह मेरा इच्छानुकूल साथी होता।" इस पर स्वामी जी ने हँसकर इसका उत्तर इस प्रकार दिया था, "शोक है कि ब्रह्म समाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है, जिसे वे समझते ही नहीं।" यही नहीं इन दोनों महापुरुषों के बीच जो स्नेह-सम्पर्क हुआ उससे राष्ट्रभाषा हिन्दी के उत्कर्ष के द्वार उद्घाटित हुए। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आपकी प्रेरणा पर ही 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना संस्कृत में न करके हिन्दी में की। यहाँ यह उल्लेखनीय तथ्य है कि अपनी कलकत्ता-यात्रा से पूर्व आप संस्कृत में ही अपने इस ग्रन्थ को लिखने का संकल्प कर चुके थे। यह श्रेय श्री केशव-चन्द्र सेन को ही दिया जाना चाहिए कि आपने महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से न केवल 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी में कराई, प्रत्युत हिन्दी को 'आर्य भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में भी अनन्य योगदान किया।

इस प्रकार श्री सेन ने जहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती को हिन्दी के प्रति उन्मुख किया वहाँ आपने अपने बंगला पत्र 'सुलभ समाचार' साप्ताहिक में हिन्दी की व्यापकता को लक्ष्य करके 'राष्ट्रभाषा' के रूप में उसका समर्थन भी किया था। भारत की एकता को बनाए रखने के सम्बन्ध में आपका यह दृढ़ मत था, "इस समय भारत में जितनी भाषाएँ प्रच-लित हैं उनमें हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इस हिन्दी भाषा को यदि भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनाया जाय तो यह कार्य अनायास ही शीघ्र हो सकता है। एक भाषा के बिना एकता नहीं हो सकती।"

श्री सेन का निधन सन् 1883 में बहुमूत्र रोग के कारण हुआ था।

डॉ० केशवदेव शास्त्री

श्री शास्त्री का जन्म अविभाजित पंजाब के मिंटगुमरी जनपद के कमालिया नामक नगर में सन् 1881 में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा अपनी जन्मभूमि में प्राप्त करके आपने लाहौर आकर डी० ए० वी० कालेज में प्रवेश लिया। कुछ समय बाद आप इधर-उधर भ्रमण करते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्था-पित 'वैदिक यंत्रालय' के अध्यक्ष बन गए। इसके अनन्तर आप गुरु-कुल कांगड़ी में आकर 'सद्धर्म प्रचारक प्रेस' के व्यवस्थापक बन गए। आर्य पथिक पं० लेख-राम के 'कुलियाते आर्य मुसाफिर' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन वहाँ पर आपके ही निरीक्षण में हिन्दी में हुआ था।
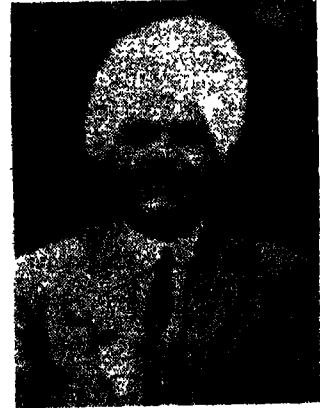
आर्यसमाज की इन संस्थाओं में कार्य करते हुए आपके मन में संस्कृत साहित्य के अध्ययन की भावना जग गई थी। फलतः आपने रालपिंडी जाकर पं० सीताराम शास्त्री से विधिवत् संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया और थोड़े ही

समय में परिश्रम करके पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण कर ली। फिर आप कलकत्ता चले गए और वहाँ पर महामहोपाध्याय पं० द्वारिकानाथ सेन कविराज के श्रीचरणों में बैठकर आयुर्वेद का विधिवत् अध्ययन करके 'भिषगाचार्य' की उपाधि प्राप्त की।

शिक्षा-प्राप्ति के अनन्तर सन् 1908 के अन्त में आप काशी चले आए और वहाँ पर चिकित्सा-कार्य में संलग्न रहने के साथ-साथ वैदिक धर्म के प्रचार-कार्य में सर्वात्मना जुट गए। आर्यसमाज के कार्यों को गति देने की दृष्टि से आपने युवकों को संगठित करने के लिए 'आर्यकुमार परिषद्' की स्थापना की और सन् 1909 में आपकी अध्यक्षता में ही इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। कालान्तर में लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हंसराज-जैसे नेताओं का सहयोग भी आपने अपने इस अभियान में लिया और उनकी अध्यक्षता में भारत के अनेक नगरों में परिषद् के अधिवेशन हुए। आपने भारत-भक्त एण्ड्रूज और एनी बेसेण्ट जैसे नेताओं और सुधारकों को भी आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन की ओर आकर्षित करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया था।

आपने अपनी सूझ-बूझ तथा संगठन-क्षमता के द्वारा जहाँ देश के अनेक नेताओं और सुधारकों को आर्यसमाज की ओर आकर्षित किया वहाँ 27 मार्च सन् 1910 को काशी में एक 'अन्तर्जातीय प्रीतिभोज' का आयोजन करके सभी धर्मावलम्बियों को एक मंच पर एकत्र करके एक सर्वथा नए क्रान्तिकारी अभियान का प्रारम्भ किया था। आपने सन् 1910 में प्रसिद्ध सनातनधर्मी विद्वान् पं० शिवकुमार शास्त्री महामहोपाध्याय की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन करके हरिजनों को हिन्दुओं का अभिन्न अंग समझने का प्रस्ताव भी स्वीकृत कराया था।

आप जहाँ उच्चकोटि के सुधारक और प्रचारक थे, वहाँ लेखन और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अग्रणी स्थान रखते थे। आपने जहाँ सन् 1909 में काशी से 'नवजीवन' नामक मासिक पत्र का सम्पादन और प्रकाशन किया था वहाँ आर्य कुमारों में वैदिक धर्म के प्रति निष्ठा जगाने की दृष्टि से 'आर्यकुमार' नामक मासिक भी अनेक वर्ष तक निकाला था। जब आप अमरीका चले गए तब आपकी अनुपस्थिति में 'नवजीवन' का प्रकाशन श्री द्वारकाप्रसाद सेवक ने अपनी 'सरस्वती सदन' नामक संस्था द्वारा इन्दौर से किया था। कुछ दिन तक 'नवजीवन' का प्रकाशन स्टार प्रेस, प्रयाग की ओर से भी हुआ था। अमरीका-प्रवास के दिनों में आपने वैदिक धर्म का प्रचार करने की दृष्टि से जहाँ अनेक अँग्रेजी पुस्तकों की रचना की वहाँ आपकी 'बाल विवाह कैसे चला', 'धर्म शिक्षा प्रवेशिका', 'अमर जीवन', 'धर्म शिक्षा', 'ऋतुचर्या' और 'वस्तिकर्म विधि' आदि हिन्दी-पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं।

आपने अपनी अमरीकन पत्नी श्रीमती वीरादेवी के सहयोग से जहाँ राजपुर (देहरादून) में 'शक्ति आश्रम' नामक संस्था की स्थापना की थी वहाँ आप सन् 1923 से 1928 तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री भी रहे थे। अपने इस मन्त्रित्व-काल में आपने सभा के मासिक पत्र 'सार्वदेशिक' का भी सम्पादन किया था।

आपका निधन सन् 1928 में हुआ था।

श्री केशवप्रकाश विद्यार्थी

श्री विद्यार्थी का जन्म 15 अगस्त सन् 1920 को मध्यप्रदेश के मन्दसौर जिले के नारायणगढ़ नामक ग्राम में हुआ था। साहित्य, शिक्षा तथा राजनीति तीनों ही क्षेत्रों में आपकी प्रतिभा का ज्वलन्त परिचय इस क्षेत्र के निवासियों को मिला था। आप जहाँ उत्कृष्ट कवि तथा पत्रकार थे वहाँ राष्ट्रीय जागरण में भी आपका उल्लेखनीय योगदान रहा था।

आपने 'कन्या' नामक बालोपयोगी मासिक पत्रिका प्रकाशित करके पत्रकारिता के क्षेत्र में जहाँ नए मानदण्ड स्थापित किये वहाँ कवि के रूप में भी आपने देश तथा समाज

की प्रशंसनीय सेवा की थी। आपके 'स्फुलिंग','नेता-निकुंज', 'ललकार', 'सरल गीता', 'पन्नादाई', 'ज्वाला' तथा 'बाल वाटिका' आदि काव्य-ग्रन्थ आपकी उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा के साक्षी हैं।

पत्रकार के रूप में आपकी इतनी ही देन अनुपम एवं अनन्य है कि आपने 'कन्या' का प्रकाशन निरन्तर 37 वर्ष तक अविराम गति से किया था। आप बाल-साहित्य-रचना में बेजोड़ थे। आपने 'कन्या' के माध्यम से समाज की नई पीढ़ी में नई चेतना प्रस्फुटित करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया था। आपने 'दैनिक निराला','दैनिक मालव'और 'वीर पुत्र' मासिक आदि पत्रों का सम्पादन भी किया था।

आपके निधन के उपरान्त 'कन्या' का जो विशेषांक आपकी स्मृति में श्री रूपलाल चौहान तथा श्री रामगोपाल शर्मा 'बाल' ने प्रकाशित किया था उससे आपके व्यक्तित्व की विशद झाँकी मिल जाती है।

आपका निधन 11 अप्रैल सन् 1976 को हुआ था।

श्री कैलाशचन्द्र देव 'बृहस्पति'

श्री बृहस्पति का जन्म 15 जनवरी सन् 1918 को उत्तर-प्रदेश की रामपुर रियासत में हुआ था। रामपुर रियासत का संगीत से बहुत गहन सम्बन्ध प्राचीन काल से ही रहा है। यह स्वाभाविक ही था कि आप संगीत-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता और भरत तथा शार्ङ्गधर पद्धति के विशेषज्ञ बने। प्रारम्भ में आप कानपुर के सनातनधर्म कालेज में हिन्दी के व्याख्याता थे। ब्रज-भाषा-काव्य के भी आप अनन्य प्रेमी थे। संस्कृत तथा हिन्दी के पारंगत विद्वान् होने के साथ-साथ आप उर्दू, अरबी और फारसी भाषाओं के भी ज्ञाता थे। सारांशतः काव्य, संगीत तथा नाटक की विधाओं में पारंगत होने के साथ-साथ आप भारत की अतीतकालीन सांस्कृतिक सम्पदा से भी पूर्ण तादात्म्य रखते थे।

आपकी संस्कृत साहित्य तथा संगीत-सम्बन्धी प्रतिभा से प्रभावित होकर भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय ने आपको अपने आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र पर संगीत, संस्कृत, पालि, ब्रजभाषा और नाटक के कार्यक्रमों का परामर्शदाता बनाकर बुला लिया था और अन्तिम समय तक आप इस विभाग से ही सम्बद्ध रहे थे।

आपकी रचना-प्रतिभा का परिचय आपके इन ग्रन्थों से मिलता है—'भरत का संगीत सिद्धान्त','ध्रुवपद और उसका विकास', 'संगीत चिन्तामणि', 'संगीत समय सार', मुसलमान और भारतीय संगीत', 'खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार' तथा 'राग चिन्तन'। इनके अतिरिक्त आपने भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के 28वें अध्याय की टीका भी लिखी है। आप संगीत-सम्बन्धी पत्र 'संगीत' के परामर्शदाता भी थे।

आपकी साहित्य तथा संगीत-सम्बन्धी सेवाओं को दृष्टि में रखकर आपको 'संगीत महोपाध्याय' और 'विद्या वारिधि' की उपाधियाँ भी प्रदान की गई थीं।

आपका निधन 30 जुलाई सन् 1979 को कुरुक्षेत्र में हुआ था। वहाँ पर आप 'विश्वविद्यालय व्याख्यानमाला' में भाषण देने के लिए गए हुए थे।

श्री कैलाश साह

श्री साह का जन्म 11 दिसम्बर सन् 1937 को भुवाली (नैनीताल) के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। आपने अपना कर्ममय जीवन एक पत्रकार के रूप में सन् 1960 के आस-पास प्रारम्भ किया था। पहले आपने 'नेशनल हैरल्ड' में कार्य किया और फिर 'समाचार भारती' में चले गए। कुछ दिन सोवियत सूचना केन्द्र 'तास' में कार्य करने के उपरांत आपने पूरी तरह स्वतन्त्र पत्रकारिता अपना ली थी

और मुख्य रूप से 'चिकित्सा-विज्ञान' सम्बन्धी-लेख लिखने लगे थे।

आपने अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली के शल्य-चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष तथा देश के सबसे बड़े शल्य-चिकित्सा डॉ० आत्मप्रकाश के साथ सहयोगी लेखक के रूप में 'शल्य चिकित्सा के वरदान' नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। इसके बाद इसी शृंखला में आप हृदय तथा दाँतों से सम्बन्धित पुस्तकें भी लिख रहे थे। आपकी वैज्ञानिक कहानियों का संकलन 'मृत्युंजय' नाम से प्रकाशित हुआ है। आपकी बालोपयोगी रचनाओं में 'सूर्य की शक्ति' एक ऐसी पुस्तक है जो अपनी सोद्देश्यता के कारण अत्यन्त महत्त्व रखती है। उसमें बालकों को सौर ऊर्जा से सम्बन्धित व्यापक एवं अधुनातन जानकारी देने का प्रयास किया गया है। आपका 'हरे दानवों के देश में' नामक बाल-उपन्यास भी उल्लेख्य है। इनके अतिरिक्त आपकी बहुत-सी पाण्डुलिपि अप्रकाशित ही रह गई है।

आपका निधन जून सन् 1978 में नई दिल्ली के सर गंगाराम अस्पताल में दिल का दौरा पड़ने के कारण हुआ था।

श्री कैलाश जायसवाल

श्री जायसवाल का जन्म 21 जनवरी सन् 1944 को आष्टा, जिला सीहोर (मध्य प्रदेश) के एक ऐसे परिवार में हुआ था जिसका काम पुश्तों से मादक द्रव्य बेचना रहा है। आप प्रारम्भ से ही जीर्ण-शीर्ण मानव-मूल्यों में फँसे तर्क-रहित साहित्य और रचना-धर्मिता के विरुद्ध थे। आपने रतलाम नगर को अपनी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र-बिन्दु बनाकर अनेक समीक्षात्मक गोष्ठियों का आयोजन करके नई विचार-धारा के प्रसार में अभूतपूर्व योगदान दिया था।

आपने 'कंक' नामक एक ऐसा साहित्यिक पत्र नवम्बर-दिसम्बर सन् 1971 में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था जिससे सातवें दशक की जन-विरोधी प्रतिबद्ध कविता सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपना सकी। आपकी एक मात्र प्रकाशित कृति 'ध्वंस-सन्दर्भ' और आपके निधन के उपरान्त प्रकाशित 'कंक' का तीसरा अंक 'कैलास स्मृति अंक' आपकी रचनात्मक प्रतिभा का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। सन् 1978 में कैलास की चुनी हुई रचनाओं पर जो अखिल भारतीय चर्चा-गोष्ठी रतलाम में हुई थी उसकी सारी सामग्री 'सौन्दर्य : स्मृति : समीक्षा' नामक पुस्तक में संकलित की गई है। इससे भी कैलाम के कवि-व्यक्तित्व को भली भाँति समझा जा सकता है।
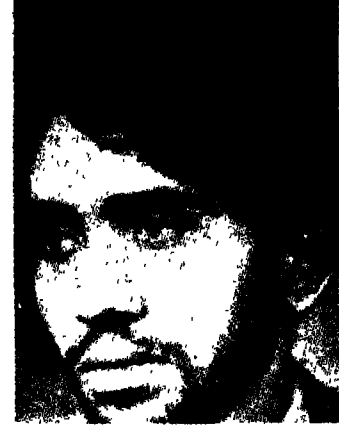
इस प्रबुद्ध कवि का देहान्त स्वल्प-सी आयु में 23 मार्च सन् 1972 को हुआ था।

श्री कौशलप्रसाद जैन

श्री कौशलजी का जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जनपद के रामपुर नामक कस्बे में सन् 1919 में हुआ था।

आप हिन्दी के सुलेखक और कुशल पत्रकार थे। सामयिक समस्याओं पर पुस्तकें तैयार करने की कला में आप बड़े निपुण थे। आपने कांग्रेस सरकार की तुष्टीकरण की नीति के

विरुद्ध सन् 1938-39 में सहारनपुर से 'जीवन' नामक पत्र प्रकाशित किया था।

अपने जीवन के अन्तिम कई वर्षों से वे मध्यप्रदेश के महू नामक नगर में रहकर वहाँ से 'रजतपट' नामक सिने-मासिक पत्र निकालने लगे थे। आपकी सहधर्मिणी श्रीमती विद्यावती कौशल भी हिन्दी की उत्कृष्ट कवयित्री हैं।

आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल', 'हमारे नए राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी', 'भारत में मन्त्री मिशन', 'छत्रपति शिवाजी और उनके निर्माता', 'हिन्दू राष्ट्र का सूर्य महाराणा प्रताप', '54वाँ मेरठ-कांग्रेस अधिवेशन', 'अगस्त आन्दोलन के क्रान्तिकारी', 'सरदार हरीसिंह नलवा' और 'हमारे राष्ट्रपति जवाहरलाल और उनके प्रमुख भाषण' आदि विशेष परिगणनीय हैं।

आपका निधन 30 मई सन् 1971 को हुआ था।

श्री कौशलेन्द्र राठौर

श्री राठौर का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जनपद के डालूपुर नामक ग्राम में सन् 1896 में हुआ था। आपका जन्म-नाम हाकिमसिंह था और गाँव में कोई पाठशाला न होने के कारण आपको कानपुर के एक लालाजी ने प्रारम्भ में उर्दू ही पढ़ाई थी। इस प्रकार घर पर ही कक्षा 2 तक की पढ़ाई समाप्त कर लेने के उपरान्त आप सन् 1910 में नबीगंज के स्कूल में प्रविष्ट हुए थे। बाद में छिबरामऊ (फर्रुखाबाद) के स्कूल में छठी कक्षा तक पढ़ने के उपरान्त आप आगरा के 'बलवन्त राजपूत हाई स्कूल' में जाकर सातवीं कक्षा मे प्रविष्ट हो गए। उन्हीं दिनों आपका विवाह हो गया; परन्तु आपकी पत्नी असमय में ही चल बसीं। फलतः आठवीं कक्षा से ही आपका अध्ययन-क्रम रुक गया।

अपनी छात्रावस्था से ही आपमें कवित्व के गुण दिखाई देने लगे थे। फलतः सन् 1917 से आप एक कवि के रूप में प्रकट हुए। सन् 1918 में आप जब अपनी ननिहाल मेरी (सीतापुर) में गए तो आपका वहाँ के पं० बलदेवजी से विशेष सम्पर्क हो गया। इस सम्पर्क ने आपकी कवित्व-प्रतिभा को और भी निखारा और आप 'हाकिमसिंह राठौर' से 'कौशलेन्द्र राठौर' हो गए। सन् 1918 में आपका दूसरा विवाह मैनपुरी जनपद के सैदपुर नामक ग्राम में हुआ था।

आपने अपनी रचनाएँ 'प्रताप' साप्ताहिक (कानपुर) में प्रकाशनार्थ भेजीं। उन दिनों 'प्रताप' के उपसम्पादक श्रीकृष्णदत्त पालीवाल थे। यह बात सन् 1920-21 की है। आपकी रचनाएँ उन दिनों 'प्रताप' के अतिरिक्त वृन्दावन से प्रकाशित होने वाले 'प्रेम' नामक मासिक पत्र में भी प्रकाशित होती थीं। उन्हीं दिनों आपका परिचय हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि कुँवर हरिश्चन्द्र-देव वर्मा 'चातक' से हो गया और दोनों ने मिलकर 'मोहन' नामक मासिक पत्र प्रकाशित करने की योजना बनाई। 'चातक' जी के सत्प्रयास के फलस्वरूप ही आप कवि-सम्मेलनों में भी जाने लगे थे और आपकी ख्याति जनपदीय स्तर से प्रादेशिक स्तर तक पहुँच गई थी। उन दिनों आपकी रचनाएँ 'सुधा' और 'माधुरी' में भी ससम्मान प्रकाशित होने लगी थी।

सन् 1925 में आप मैनपुरी में आकर रहने लगे थे और अपना कार्य-क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ाते जा रहे थे। आपकी रच-नाओं की प्रशंसा पं० कृष्णबिहारी मिश्र, गोपालशरणसिंह और दुलारेलाल भार्गव आदि अनेक साहित्यकारों ने की थी। आपने सन् 1929 में 'महाश्वेता' नामक खण्ड-काव्य भी लिखना प्रारम्भ किया था, जिसके केवल 28 छन्द ही अब प्राप्य हैं। आपकी रचनाओं का जो संकलन 'काकली' नाम से प्रकाशित हुआ था उसकी भूमिका पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने लिखी थी और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी उसकी अभिशंसा की थी। कौशलेन्द्रजी घनाक्षरी छन्द के कुशल कवि कहे जाते थे।

यह एक घटना-क्रम ही कहा जायगा कि जब आपका काव्य-व्यक्तित्व उभरकर हिन्दी-जगत् के समक्ष आ रहा था

तब 28 अप्रैल सन् 1930 को आपका असामयिक निधन अपने ही घर में अचानक आग लग जाने के कारण हो गया। देखते-ही-देखते सारे परिवार के लगभग 10 व्यक्तियों की क्रूर बलि अग्नि की लपटों ने ले ली और हिन्दी का एक प्रतिभाशाली कवि हमारे हाथों से छिन गया।

श्री क्षेमकरणदास त्रिवेदी

श्री त्रिवेदीजी का जन्म 3 नवम्बर सन् 1848 को उत्तर-प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के शाहपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पहले फारसी में हुई थी और सन् 1871 में आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा देकर आगरा कालेज में प्रवेश लिया, किन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण आप आगे न पढ़ सके और सन् 1872 में अध्यापन का कार्य करने लगे। इसी प्रसंग में आप जब सन् 1873 में मुरादाबाद गए तो वहाँ आपको महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों स्वामीजी के 5-6 व्याख्यान मुरादाबाद में हुए थे। श्री त्रिवेदीजी का यज्ञोपवीत संस्कार स्वयं स्वामीजी ने ही कराया और संस्कृत के अध्ययन की प्रेरणा भी उन्होंने ही दी थी। उसी समय स्वामीजी को श्री त्रिवेदीजी ने यह आश्वासन दिया था कि वे संस्कृत का सर्वांगीण अध्ययन करके वेदों का भाष्य करेंगे। वास्तव में आपने जो वचन स्वामीजी को दिया था उसे आपने पूरा कर दिखाया और 'अथर्व वेद संहिता' तथा 'गोपथ ब्राह्मण' का विस्तृत हिन्दी भाष्य करके एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया।
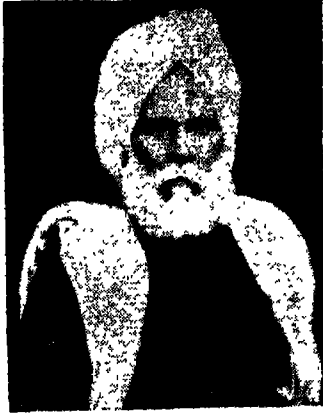
20 जुलाई सन् 1879 को जब स्वामीजी दुबारा मुरादाबाद आए तो उनकी प्रेरणा से वहाँ पर आर्यसमाज की स्थापना हुई और त्रिवेदीजी उसके विधिवत् सदस्य बने। सन् 1880 से 1884 तक आप आर्यसमाज मुरादाबाद के मन्त्री भी रहे थे।

स्वामीजी की प्रेरणा और आर्यसमाज के प्रभाव के कारण आपने संस्कृत का अध्ययन करके पंजाब विश्वविद्यालय से 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उन्हीं दिनों जब आप जोधपुर राज्य की सेवा में लगे तब आपने वहाँ रहते हुए व्याकरण, निरुक्त और वेदों का भी विधिवत् अध्ययन किया और प्रयाग के पं० रामजीलाल शर्मा के सम्पर्क में आकर 'सामवेद' का स्वाध्याय किया। इस प्रकार 'ऋग्वेद', 'सामवेद' और 'अथर्ववेद' का गहन अध्ययन करने के कारण आपको 'त्रिवेदी' की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1911 में आपने गुरुकुल कांगड़ी में जाकर सर्वशास्त्र-निष्णात पं० काशीनाथजी से 'अथर्ववेद' का विधिवत् अध्ययन किया था। एक सक्सेना कायस्थ-परिवार में जन्म लेने पर भी वेदों का पारंगत विद्वान् होने के कारण आर्यजगत् में आपको 'त्रिवेदी' के नाम से ही जाना जाता है।

जिन दिनों आपने 'अथर्ववेद' का भाष्य करना प्रारम्भ किया था तब आपको पंजाब और संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) की सरकारों की ओर से मासिक अनुदान मिला करता था। यह भाष्य मासिक रूप में छपा करता था और इसके ग्राहक आर्यसमाजियों के अतिरिक्त अनेक विधर्मी-विदेशी भी बने थे। इन भाष्यों के अतिरिक्त आपने यजुर्वेदान्तर्गत 'रुद्राध्याय' का संस्कृत और हिन्दी में भी अनुवाद किया था। त्रिवेदीजी द्वारा रचित 'अथर्ववेद' के भाष्य को बाद में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रकाशित किया था। अथर्ववेद का यह भाष्य सन् 1912 में प्रारम्भ हुआ था और सन् 1921 में समाप्त हुआ था। यह कार्य समाप्त करते हुए आपने लिखा था—"महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती को मेरा अनन्त धन्यवाद है कि जिनके पवित्र दर्शन और सदुपदेश से वेदों की ओर मेरा ध्यान गया।"

आपका निधन 90 वर्ष की आयु में 13 फरवरी सन् 1939 को हुआ था।

श्री क्षेमधारी सिंह

आपका जन्म बिहार के मधुबनी नामक स्थान में सन् 1894 में हुआ था। जब आप दस वर्ष के ही थे कि आपके पिता का देहान्त हो गया और आपकी शिक्षा-दीक्षा आपके चाचा बाबू तन्त्रधारी सिंह की देख-रेख में हुई। प्रारम्भ में संस्कृत का अध्ययन घर पर ही कराने के बाद आपको मधुबनी के वाट्सन विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया और वहाँ से सन् 1910 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त आप प्रयाग के म्योर सेंट्रल कालेज में प्रविष्ट हो गए और वहाँ से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। आप अभी बी० ए० में पढ़ ही रहे थे कि पारिवारिक कारणों से आपको प्रयाग छोड़कर मुजफ्फरपुर के जी० बी० बी० महाविद्यालय में प्रवेश लेना पड़ा। इसी बीच दुर्भाग्यवश आपके चाचाजी का देहान्त हो गया और आप मधुबनी के वाट्सन विद्यालय में ही शिक्षक का कार्य करने लगे। वहीं से आपने स्वतंत्र रूप से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। फलस्वरूप आपकी नियुक्ति सरकारी सेवा मे हो गई। बिहार सरकार ने आपकी सेवा-क्षमता और त्याग को दृष्टि मे रखकर ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी नियुक्त किया था।

आपका निजी पुस्तकालय आज भी प्रदेश के समृद्ध ग्रंथालयों में समझा जाता है। मिथिला की पंडित-परम्परा में आजकल जिन व्यक्तियों का नाम अग्रगण्य हैं वे सब प्राय: आपकी ही शिष्य-परम्परा में आते हैं। आपको काशी की विद्वत् परिषद् ने 'वेदान्त विनोद' की उपाधि से भी विभूषित किया था और सन् 1926 में अखिल भारतीय मैथिल महासभा की ओर से जो विद्वत् सम्मेलन हुआ था आप उसके अध्यक्ष भी रहे थे। सन् 1935 में आपने मैथिली साहित्य परिषद् के स्वागताध्यक्ष का पद-भार भी सँभाला था। आपने संस्कृत, हिन्दी, मैथिली तथा अँग्रेजी भाषाओं में अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें हिन्दी की रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'नीतिशास्त्र', 'भारतीय दर्शन चयनिका', 'अध्यात्म विज्ञान' और 'पाश्चात्य दर्शन'। आपके द्वारा लिखित 4 5 पुस्तकों की चर्चा 'निबन्ध चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ में है।

आपका निधन 29 मार्च सन् 1961 को हुआ था।

श्री ख्यालीराम अवस्थी 'द्विजख्याली'

श्री 'द्विजख्याली' का जन्म उत्तर प्रदेश के पीलीभीत जनपद के जादौपुर पट्टी नामक ग्राम में सन् 1875 में हुआ था। आप उस क्षेत्र के द्विवेदीकालीन कवियों में अग्रणी स्थान रखते थे। अध्यापन के क्षेत्र में रहते हुए आपने रामपुर-जैसे उर्दू के गढ़ में भी हिन्दी-प्रचार का प्रशंसनीय अभियान चलाया था। आपकी रचनाएँ 'सुकवि' तथा 'कान्यकुब्ज' नामक पत्रों में छपा करती थी।

पीलीभीत के ख्यातिलब्ध कवि श्री शम्भुशरण अवस्थी 'शम्भु' आपके ही प्रतिभाशाली सुपुत्र हैं।

आपका देहावसान 15 दिसम्बर सन् 1958 को हुआ था।

संत गंगादास

सन्त गंगादास का जन्म दिल्ली-मुरादाबाद मार्ग पर गाजियाबाद जनपद (पुराना मेरठ) के बाबूगढ़ छावनी स्थान से आगे रसूलपुर बहलोलपुर नामक ग्राम में सन् 1823 में हुआ था। आपका बचपन का नाम 'गंगाबख्श' था। शैशवावस्था में ही माता-पिता का देहावसान हो जाने के कारण आप घर से निकल गए थे और महात्मा विष्णुदास उदासीन से दीक्षा लेकर गंगाबख्श से 'गंगादास' बन गए थे।

गंगादासजी ने लगभग 20 वर्ष तक काशी में रहकर संस्कृत साहित्य, काव्य-शास्त्र और विविध दर्शनों का गहन अध्ययन किया था। इस महाकवि ने लगभग 50 काव्य-ग्रन्थों

और अनेक स्फुट निर्गुण पदों की रचना करके भारतेन्दु (जन्म : 1850) के काव्य-क्षेत्र में पदार्पण करने से पूर्व खड़ी बोली को जो स्वरूप प्रदान किया वही बाद में विकसित होकर हिन्दी-काव्य का शृंगार बना। यह अत्यन्त खेद और आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के स्वनामधन्य इतिहासकारों की दृष्टि से इस सन्त कवि का कृतित्व कैसे ओझल रहा ! सन्त गंगादास खड़ी बोली के पितामह, आधुनिक काव्य के प्रेरणा-स्रोत और कुरु प्रदेश के गौरव हैं। कबीर का फक्कड़पन, सूर की भक्ति, तुलसी का समन्वय, केशव की छन्द-योजना और बिहारी की कला एक ही स्थान पर देखनी हो तो सन्त गंगादास का काव्य उसका उदात्त उदाहरण है।

सन्त गंगादास मूलतः सन्त प्रकृति के भक्त कवि थे। आपने अपनी आध्यात्मिक भावनाओं का प्रकटीकरण जिस भाषा में किया है वह भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित होने से पूर्व ही लिखी गई थी। बानगी इस प्रकार है :

संजम का कर थाल लिया है
ज्ञान का दीपक बाल लिया है
तप-घंटा तत्काल लिया है
धूप करी निष्काम की—
मनै अनहद शंख बजाया।
पूजा करके आत्माराम की,
मनै परमेश्वर पति पाया।

खड़ी बोली का ऐसा उदात्त रूप तो हमें भारतेन्दु के काव्य में भी दृष्टिगत नहीं होता। यही नहीं कि आपने आध्यात्मिक रचनाएँ ही की थीं, प्रत्युत सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का सम्यक् दिग्दर्शन भी आपकी अधिकांश कृतियों में मिलता है। आकर्षक व्यक्तित्व और मधुर स्वभाव वाले इस कवि का निधन भारतेन्दु के देहावसान (सन् 1885) से 28 वर्ष बाद सन् 1913 में हुआ था। इस कवि के काव्य में जहाँ भक्तिकाल के कवियों-जैसी गम्भीर आध्यात्मिक चेतना दृष्टिगत होती है वहाँ नवजागरण के अंकुर भी प्रत्यक्ष मिलते हैं।

बाल ब्रह्मचारी और अभूतपूर्व मेधा के धनी सन्त गंगादास की काव्य-प्रतिभा का उज्ज्वल अवदान वे कृतियाँ हैं, जिनमें उनके कृतित्व का बहुमुखी विस्तार हुआ है। अभी तक आपकी लगभग 18 कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, 20 कृतियाँ पांडुलिपि के रूप में हैं और 7 कृतियाँ अप्राप्य हैं। यह एक संयोग की बात है कि इस सन्त कवि की ये कृतियाँ मेरठ जनपद (अब गाजियाबाद) के ग्रामीण अंचलों में श्रुति-परम्परा से आज भी जीवित हैं। आपकी सभी कृतियों का विवरण इस प्रकार है : **प्रकाशित**—'कृष्ण लीला-गिरिराज पूजा' (होली), 'हरिश्चन्द्र' (होली), 'पूरन मल' (होली), 'सिया स्वयंवर', 'भक्त श्रवणकुमार' (होली), 'सुदामा चरित', 'नाग लीला', 'लक्ष्मण मूर्छा', 'लंका चढ़ाई', 'पार्वती मंगल', 'भरत-मिलाप', 'भजन महाभारत उद्योग पर्व' (प्रथम भाग), 'तत्त्व-ज्ञान प्रकाश', 'ब्रह्मज्ञान चिन्तामणि', 'ब्रह्मज्ञान चेतावनी', 'गुरु-चेला संवाद', 'ज्ञानमाला' तथा 'गंगा विलास'। **हस्तलिखित पांडुलिपियाँ**—'भक्त पूरनमल' (पद), 'ध्रुव भक्त', 'नरसी भक्त', 'निर्गुण पद्यावली', 'कृष्ण जन्म', 'श्रवणकुमार', (पद), 'नल पुराण', 'भारत पदावली', 'बलि के पद', 'रुक्मणी मंगल', 'भक्त प्रह्लाद', 'चन्द्रावती नासिकेत', 'रामकथा' (अयोध्या कांड), 'सुलोचना सती', 'भ्रमर गीत मंजरी-बारह मासा', 'कुंडलियाँ', 'पद हरिश्चन्द्र', 'गंगादास लावनियाँ', 'बारह खड़ी', 'द्रोपदी चीर-हरण'। **अप्राप्त रचनाएँ**—'वेदान्त पदावली', 'आत्म दर्पण', 'वैराग्य संदीपनी', 'भजन महाभारत' (द्वितीय भाग), 'अनुभव शब्द रत्नावली', (तीनों भाग), 'अमर कथा', 'होली अभिमन्यु' (चक्रव्यूह)।

आश्चर्य है कि स्वतन्त्रता के लगभग 30 वर्ष बाद भी हिन्दी के इस अमर गायक के साहित्य की ओर हमारे महारथियों का ध्यान नहीं गया। हाँ, इतना अवश्य हुआ है कि लगभग 7-8 वर्ष पूर्व आगरा विश्वविद्यालय से मेरठ जनपद के पतला ग्राम-निवासी डॉ० जगन्नाथ शर्मा ने डॉ० ताराचन्द्र शर्मा के निर्देशन में इस चिर-विस्मृत कवि के काव्य पर शोध करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। डॉ०शर्मा के इस शोध-प्रबन्ध के एक परीक्षक डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपनी सम्मति में जो विचार प्रकट किए हैं उनसे जहाँ हिन्दी के 'तथाकथित' समीक्षकों और इतिहासकारों की उपेक्षापूर्ण भावना का निरसन हो गया है वहाँ कवि गंगादास का साहित्यिक महत्त्व निश्चय ही बढ़ा है। डॉ०वर्मा की यह पंक्तियाँ इसकी ज्वलन्त साक्षी हैं—"प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सबसे प्रथम उदासी सन्त कवि गंगादास को प्रकाश में लाने का प्रयत्न है। यह सन्त कवि यद्यपि ज्ञान, भक्ति और काव्य में विशिष्ट प्रतिभावान रहा है, किन्तु इनकी रचनाओं की उपलब्धि न होने से हिन्दी

साहित्य के इतिहास में इनका उल्लेख होने से रह गया है। शोधकर्ता ने वास्तव में क्षेत्रीय कार्य के सहारे इस कवि की अधिकांश रचनाएँ प्राप्त करके प्रशंसनीय कार्य किया है।"

इस शोध-ग्रन्थ के दूसरे परीक्षक डॉ०गोपीनाथ तिवारी ने तो अपनी सम्मति में सन्त कवि गंगादास को भारतेन्दु से पूर्ववर्ती खड़ी बोली का प्रथम कवि सिद्ध करते हुए यह स्पष्ट लिखा है—"जब भारतेन्दुजी तथा उनके साथी ब्रजभाषा को ही काव्य के उपयुक्त स्वीकार कर रहे थे यह तब सन्त कवि (गंगादास) केवल खड़ी बोली को लेकर ही ग्रन्थ-रचना कर रहा था।"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने सन् 1867 में 'कवि वचन सुधा' नामक पहला मासिक पत्र प्रकाशित किया था। इसमें आपकी जो भी कविताएँ मुद्रित हैं वे सब ब्रजभाषा में हैं। आपके द्वारा सम्पादित 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' सन् 1873 में प्रारम्भ हुए थे। उनमें भी आपकी कविताएँ ब्रजभाषा में ही हैं। सन् 1874 में महिलाओं के लिए आपने 'बाला बोधिनी' नामक जो पत्रिका प्रकाशित की थी, उसमें भी आपकी कविताएँ ब्रजभाषा की हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय तक आपने खड़ी बोली को कविता का माध्यम नहीं बनाया था। हाँ, आपने लल्लूलाल के 'प्रेम सागर' की भाषा को आदर्श मानकर ब्रज-मिश्रित खड़ी बोली में गद्य का लेखन सन् 1873 से ही प्रारम्भ कर दिया था।

खड़ी बोली में 'पद्य-लेखन' की ओर आप 1881 में ही उन्मुख हुए थे। अपनी खड़ी बोली की रचना 'भारत मित्र' को प्रकाशनार्थ भेजते हुए आपने 1 सितम्बर, सन् 1881 को उसके सम्पादक के नाम जो पत्र लिखा था उससे हमारे इस कथन की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। उसमें आपने लिखा था—"प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जाएगा। तीन भिन्न-भिन्न छन्दों में यह अनुभव करने ही के लिए कि किस छन्द में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है। मेरा चित्त इससे संतुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ। इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घ मात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है। मैंने कहीं-कहीं सौकर्य के हेतु दीर्घ मात्राओं को भी लघु करके पढ़ने की चाल रखी है। लोग विशेष इच्छा करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूँगा।"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा लिखी गई उस समय की खड़ी बोली की कविता का आस्वादन आप उनकी इन पंक्तियों से कर सकते हैं :

चूरन अमल वेद का भारी।
जिसको खाते कृष्ण मुरारी॥
मेरा पाचक है पचलोना।
जिसको खाता श्याम सलोना॥
चूरन बना मसालेदार।
जिसमें खट्टे की बहार॥
मेरा चूरन जो कोई खाय।
मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय॥
हिन्दू चूरन इसका नाम।
विलायत पूरन इसका काम॥
चूरन जब से हिन्द में आया।
इसका धन-बल सभी घटाया॥

भारतेन्दुजी के इस उदाहरण से यह स्वत: सिद्ध है कि जब वे खड़ी बोली में काव्य-रचना करने का मार्ग ढूँढ़ रहे थे तब सन्त गंगादास अपनी प्रौढ़ रचनाओं से साहित्य की अभिवृद्धि में सर्वात्मना संलग्न थे।

यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि डॉ० जगन्नाथ शर्मा ने हमारे प्रोत्साहन और प्रेरणा के बल पर पिछले 6-7 वर्ष से बाहदरा में 'सन्त गंगादास शोध-संस्थान' नामक संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा कवि की सभी रचनाओं के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया है। इस सन्दर्भ में यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्री शर्मा और उनके कुछ उत्साही साथियों के अनवरत अध्यवसाय एवं सतत प्रयत्न से जहाँ कवि की जन्मभूमि के समीप दिल्ली-लखनऊ-राजमार्ग पर 'हरिहरनाथ शास्त्री स्मारक इण्टर कालेज' वाले कुचेसर रोड के चौराहे पर आपकी कीर्ति-रक्षा के निमित्त एक धर्मशाला बनी है वहाँ सर्वश्री बृजपालसिंह, नित्यकिशोर शर्मा और प्रीतमसिंह शर्मा ने मेरठ विश्वविद्यालय से क्रमश: 'सन्त गंगादास के कथा-काव्य', 'सन्त गंगादास के साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' और 'सन्त गंगादास का रहस्यवाद' विषयों पर

शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली है। आगरा विश्वविद्यालय से भी कई छात्र 'सन्त गंगादास' के विषय में शोध-कार्य कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त श्री मायाराम 'पतंग', श्रीमती राजेश्वती गुप्ता और श्री सुरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव भी मेरठ विश्वविद्यालय से क्रमश: 'गंगादास की काव्य-भाषा', 'गंगादास और कबीर के अध्यात्म-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन' तथा 'गंगादास और कबीर के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' विषयों पर शोध-निबन्ध लिख रहे हैं।

आपका देहावसान सन् 1913 में हुआ था।

कुमार गंगानन्द सिंह

आपका जन्म बिहार के पूर्णिया जिले के श्रीनगर नामक स्थान में 24 सितम्बर सन् 1898 को हुआ था। आप राजा कमलानन्द सिंह के पुत्र थे, जो हिन्दी के सुलेखक और विद्वान् थे। आपका विद्यारम्भ-संस्कार आपके चाचा स्व० राजा कीर्त्यानन्द सिंह बनैली-नरेश के द्वारा सम्पन्न हुआ था। पूर्णिया के जिला स्कूल से सन् 1915 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप कलकत्ता चले गए और वहाँ से क्रमश: सन् 1919 तथा 1921 में बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। तदुपरान्त आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व-विभाग में कई वर्ष तक भरहुत के शिलालेखों पर गम्भीर ऐतिहासिक खोज की। आपका वह शोध-निबन्ध विश्वविद्यालय की ओर से ही प्रकाशित हुआ है।

आप इतिहास के गम्भीर विद्वान् होने के साथ-साथ संस्कृत वाङ्मय के भी प्रकाण्ड पंडित थे। देश तथा विदेश की जिन अनेक साहित्यिक संस्थाओं से आपका सम्पर्क रहा था उनमें बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दरभंगा जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पूर्णिया जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा बिहार संस्कृत परिषद् आदि प्रमुख हैं। एक शिक्षा-शास्त्री तथा राजनेता के रूप में बिहार के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उत्थान में आपका उल्लेखनीय योगदान रहा था। सन् 1923 से सन् 1930 तक आप केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य भी निर्वाचित हुए थे। स्वतन्त्रता के बाद सन् 1954 में आपने बिहार के मंत्रिमंडल में शिक्षा-मंत्री पद को भी सुशोभित किया था, जिस पर आप 18 फरवरी सन् 1961 तक कार्य करते रहे। आप कई वर्ष तक दरभंगा के श्री कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे थे। जिन दिनों आप बिहार के शिक्षा-मंत्री थे तब बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् की ओर से महाकवि विद्यापति के साहित्य के अनुसंधान, सम्पादन और प्रकाशन का कार्य आपकी ही देख-रेख में आरम्भ हुआ था।

संस्कृत और हिन्दी के निष्णात कवि होने के साथ-साथ आप अँग्रेजी साहित्य में भी पर्याप्त रुचि रखते थे। आपकी साहित्य-सेवा का आरम्भिक काल सन् 1912 से माना जाता है। आपकी रचनाएँ 'बालक', 'गल्पमाला', 'महावीर', 'हिन्दू पंच', 'गंगा' तथा 'अभ्युदय' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। आपने सन् 1926 में बिहार प्रान्तीय हिन्दी कवि सम्मेलन की अध्यक्षता भी की थी।

आपका निधन 17 जनवरी सन् 1970 को हुआ था।

डॉ० गंगानाथ झा

आपका जन्म बिहार के दरभंगा जिले के 'सरिसवपाहीटोल' (अमरावती) नामक स्थान में 25 दिसम्बर सन् 1872 को हुआ था। सन् 1886 तथा सन् 1888 में आपने क्रमश: मैट्रिक तथा एफ० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं और सन् 1890 में प्रयाग विश्वविद्यालय से दर्शन विषय में बी० ए० तथा सन् 1892 में एम० ए० (संस्कृत) की उपाधि प्राप्त करके दरभंगा के राज्य पुस्तकालय में 'पुस्तकालयाध्यक्ष' के पद पर नियुक्त हो गए। उस समय आपकी अवस्था केवल

21 वर्ष की थी। सन् 1909 में आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दू फिलॉसफी विषय पर शोध-प्रबन्ध लिखकर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर भारत सरकार ने आपको 'महामहोपाध्याय' की सम्मानित उपाधि से भी विभूषित किया था।

अपनी विद्वत्ता के कारण थोड़े ही दिनों में आपने संस्कृत वाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वानों में उल्लेखनीय स्थान बना लिया। फलतः सन् 1918 में आप गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस के आचार्य बनाए गए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व किसी भारतीय को इस कालेज का आचार्य नहीं बनाया गया था। सन् 1921 में आप आई०ई०एस० हुए और सन् 1923 में आपको प्रयाग विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनाया गया। इस पद पर आप सन् 1932 तक रहे। सन् 1925 में आपको प्रयाग विश्वविद्यालय ने 'डॉ० ऑफ ला' तथा सन् 1936 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की सम्मानित उपाधियाँ प्रदान कीं।

आप अँग्रेजी तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ-साथ हिन्दी के सुलेखक भी थे। 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अभिनन्दन में प्रयाग में जो साहित्यिक मेला हुआ था, उसके अध्यक्ष आप ही थे। अँग्रेजी, संस्कृत और मैथिली भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना करने के साथ-साथ आपने हिन्दी में भी उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे थे। इनके अतिरिक्त संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद भी आपने हिन्दी में किया था। आपके अनेक स्फुट लेख 'सरस्वती' के पुराने अंकों में अब भी देखे जा सकते हैं। आपकी प्रकाशित हिन्दी-रचनाओं में 'कवि रहस्य' तथा 'हिन्दू धर्मशास्त्र' प्रमुख हैं। आपके निधन के उपरान्त प्रयाग में 'गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट' की स्थापना की गई थी, जो आज भी उनके सिद्धान्तों के आधार पर शोध और अनुसंधान की दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है।

आपका निधन 9 नवम्बर सन् 1941 को हुआ था।

श्री गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

श्री अग्निहोत्रीजी का जन्म सन् 1870 में नागपुर (महाराष्ट्र) में हुआ था। आपके पूर्वज उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के 'चव्हात्तर' नामक ग्राम के निवासी थे। व्यवसाय के प्रसंग में आपके पितामह का सम्बन्ध मध्यप्रदेश से हो गया था और आपके पिता पं०लक्ष्मणप्रसाद अग्निहोत्री नागपुर में रेशमी कपड़ों का व्यापार किया करते थे। जब आपकी आयु 7 वर्ष की ही थी तब आपको प्राइमरी पाठशाला में अध्ययनार्थ भेजा गया। वहाँ पर कुछ हिन्दी सीखकर फिर आपने मराठी पढ़ी। बचपन में गणित में चतुर होने के कारण आपको दुकान पर ही बही-खाता लिखने के लिए बिठा दिया गया। कुछ समय बाद आपके पिता ने अपने एक मित्र की सम्मति से आपको अँग्रेजी पढ़ने के लिए मिशन स्कूल में भर्ती करा दिया। आपने वहाँ पर मैट्रिक की परीक्षा दी, किन्तु उसमें अनुत्तीर्ण हो गए। फिर अकस्मात् आपके पिता का व्यापार-कार्य मन्द पड़ गया और आपकी शिक्षा यहीं रुक गई।

उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' से हो गया, जो उन दिनों वहाँ पर 'सैटलमेण्ट कमिश्नर' थे। उनकी कृपा से आपको उस विभाग में 'नकल नवीसी' का कार्य मिल गया और धीरे-धीरे आपने अपने स्वाध्याय को भी आगे बढ़ाया। श्री भानुजी के सम्पर्क में आकर अग्निहोत्रीजी ने जहाँ अपनी साहित्यिक प्रतिभा से उनके पुस्तकालय की पुस्तकों को पढ़कर लेखन के कार्य को अपनाया वहाँ आपने 'भानुजी' को उनके 'छन्द प्रभाकर' नामक ग्रन्थ के लेखन के समय भी बहुत सहायता की। इसी प्रसंग में अग्निहोत्रीजी को लगभग 6 मास तक काशी जाकर भी रहना पड़ा, जहाँ 'भारत जीवन यन्त्रालय' में 'भानुजी' का उक्त ग्रन्थ छप रहा था। उन्हीं दिनों आपने मराठी

के प्रख्यात साहित्यकार 'विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के 'समालोचना' शीर्षक निबन्ध का मराठी से हिन्दी में अनुवाद

किया, जो 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के पहले वर्ष (सन् 1897) के प्रथम अंक में प्रकाशित हुआ था। मराठी से हिन्दी अनुवाद का कार्य आपने 'भारत जीवन' के तत्कालीन सम्पादक बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री के परामर्श से किया था। श्री खत्रीजी ने ही आपके इस निबन्ध को 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में छापा था, क्योंकि उन दिनों वे इस पत्रिका के सम्पादक-मंडल के एक प्रतिष्ठित सदस्य थे।
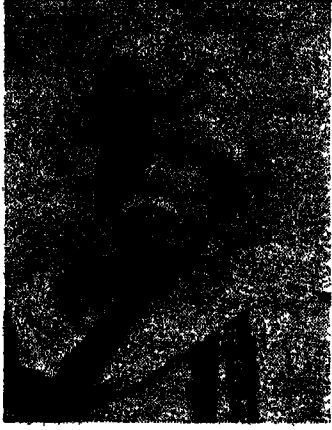
श्री खत्रीजी के प्रोत्साहन से आपने श्री चिपलूणकर के अन्य बहुत से निबन्धों का हिन्दी अनुवाद करने के अतिरिक्त 'प्रणयी माधव' नामक एक और मराठी-ग्रन्थ का अनुवाद भी किया। सन् 1894 के प्रारम्भ में आप 'नकल नवीस' से 'जूनियर चैकर' हो गए और धीरे-धीरे अपनी साहित्यिक क्षमता को भी बढ़ाते रहे। आपने सन् 1895 में जहाँ मराठी से 'राष्ट्रभाषा' नामक निबन्ध का अनुवाद किया वहाँ आगे चलकर 'संस्कृत कवि पंचक', 'मेघदूत', 'निबन्धमालादर्श', 'नर्मदा विहार', 'संसार सुख साधन', 'किसानों की कामधेनु' और 'डॉ० जानसन की जीवनी' आदि पुस्तकों की रचना भी की थी। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रयाग में सम्पन्न अधिवेशन के अवसर पर आपने 'मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था' शीर्षक निबन्ध भी वहाँ पढ़ा था। सम्मेलन का यह अधिवेशन पं० गोविन्दनारायण मिश्र की अध्यक्षता में सन् 1912 में हुआ था।

सन् 1908 में आप मध्यप्रदेश सरकार की ओर से वहाँ की छुई खदान नामक रियासत के प्रबन्धक बनाए गए थे। वहाँ जाकर आपने अपनी जिस प्रबन्ध-पटुता का परिचय दिया उससे प्रसन्न होकर शासन के अधिकारियों ने आपको फिर सन् 1912 में कोरिया रियासत का असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट और नायब दीवान बना दिया। अपने इस सेवा-काल में श्री अग्निहोत्रीजी ने अपने स्वाध्याय के बल पर हिन्दी साहित्य की जो सेवा की वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। आलोचना के क्षेत्र में आपकी 'निबन्धमालादर्श' नामक पुस्तक ने ही सर्व-प्रथम नए मानदण्ड स्थापित किए थे। आपकी समीक्षा-शैली में पाश्चात्य और पौर्वात्य दोनों पद्धतियों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

आपका निधन सन् 1931 में हुआ था।

श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय

श्री उपाध्यायजी का जन्म 6 सितम्बर सन् 1881 को उत्तर प्रदेश के एटा जिले की कासगंज तहसील के नदरई नामक ग्राम में हुआ था। जब आप केवल 10 वर्ष के ही थे कि आपके पिताजी का असामयिक देहावसान हो गया था। बड़े ही कष्टों में उर्दू तथा हिन्दी मिडिल की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके आपने अलीगढ़ के 'वैदिक आश्रम' में रहकर परिवार का भरण-पोषण करने के लिए नौकरी की और वहाँ से ही मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में कार्य-निरत रहते हुए इण्टर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाएँ भी प्राइवेट रूप में ही दीं। सन् 1912 में आपने अंग्रेजी तथा 1923 में दर्शन विषय लेकर एम० ए० की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कीं।

विद्यार्थी-जीवन से ही आपका झुकाव आर्यसमाज की ओर हो गया था और आपका अधिकांश समय वैदिक धर्म के प्रचार में ही व्यतीत होता था। आपने बिजनौर तथा बाराबंकी आदि कई स्थानों पर सरकारी नौकरी की, किन्तु अपने समाज-सेवा के कार्यों के कारण नौकरी छूटने का खतरा सदा बना रहता था। सरकारी नौकर होते हुए भी आपने 'देशी शुद्ध चीनी' के विषय में एक लेख लिखा, जिसमें चीनी की सफाई हड्डियों से होती है, यह भी लिख दिया था। फलतः आपने देशी चीनी के सेवन करने पर बल दिया। इससे आपके पीछे सी० आई० डी० लग गई। उस समय ऐसा लगता था कि नौकरी ही चली जायगी।

आर्यसमाज के सम्पर्क के कारण आपमें स्वाध्याय करने और समाज-सेवा के क्षेत्र में निरन्तर आगे-ही-आगे बढ़ते

जाने की अदम्य प्रेरणा ने आपको चुप नहीं बैठने दिया और जिन दिनों आप प्रतापगढ़ के सरकारी स्कूल में कार्य कर रहे थे उन दिनों सन् 1918 में प्रयाग के डी० ए० वी० स्कूल की प्रबन्ध-समिति ने आपको अपने विद्यालय का मुख्याध्यापक बनाने की इच्छा प्रकट की। आपने उपयुक्त समय समझकर सरकारी नौकरी पर लात मार दी और इस स्वर्ण अवसर से लाभ उठाया। प्रयाग पहुँचकर तो आपकी प्रतिभा को पंख लग गए और जहाँ आपने अपने विद्यालय के माध्यम से आर्यसमाज की उल्लेखनीय सेवा की वहाँ आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने की दृष्टि से सन् 1921 में वहाँ एक 'ट्रैक्ट विभाग' की नींव भी डाल दी। इस विभाग से उपाध्यायजी ने वैदिक सिद्धान्तों की महत्ता पर प्रकाश डालने वाले अनेक ट्रैक्ट लिखकर प्रकाशित किए।

धीरे-धीरे उपाध्यायजी की लेखन-कला में निखार आया और आपने अपनी प्रतिभा का परिचय अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रणयन करके दिया। धीरे-धीरे आपकी गणना हिन्दी के उच्चकोटि के लेखकों में होने लगी और एक दिन वह भी आया जब आपकी 'आस्तिकवाद' नामक हिन्दी की उत्कृष्टतम कृति पर सन् 1930 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से 1200 रुपये का सर्वोच्च 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' प्रदान किया गया। आप सम्मेलन की ओर से केवल पुरस्कृत ही नहीं हुए बल्कि आप सन् 1931 में हुए उसके वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर आयोजित 'दर्शन परिषद्' के भी अध्यक्ष मनोनीत किये गए। आपके इस सम्मान ने आपकी प्रतिभा को चार चाँद लगाए और आपने अपनी लेखनी को सर्वात्मना 'साहित्य-सेवा' के लिए ही समर्पित कर दिया। सन् 1946 में डी० ए० वी० स्कूल से अवकाश प्राप्त करके आप पूर्णतः लेखन में ही लग गए।

आपकी लेखन-प्रतिभा का इससे अधिक ज्वलन्त प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपने जो भी ग्रन्थ लिखे उनमें से अधिकांश ने हिन्दी-जगत् का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। जहाँ आपने हिन्दी में 'कम्युनिज्म' का पर्दाफाश करने वाला अद्वितीय ग्रन्थ लिखा वहाँ आपने अँग्रेजी में भी 'वैदिक कल्चर' नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की। आपने 'ऐतरेय ब्राह्मण' पर भी विस्तृत भाष्य लिखा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आपकी इन तीनों रचनाओं पर क्रमशः 600 तथा 5-5 सौ के पुरस्कार भी प्राप्त हुए थे। आपका 'जीवन-चक्र' नामक आत्म-कथात्मक ग्रन्थ भी सन् 1955 में उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से पुरस्कृत हुआ था। आपको 'दयानन्द दीक्षा शताब्दी' के अवसर पर सन् 1959 में एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के करकमलों द्वारा भेंट किया गया था। यह समारोह मथुरा में हुआ था। आपने कई वर्ष तक 'वेदोदय' नामक मासिक पत्र का भी इलाहाबाद से सम्पादन-प्रकाशन किया था। आपकी अन्य प्रमुखतम कृतियों में 'हिन्दी शेक्सपियर' (छह भाग), 'विधवा विवाह मीमांसा', 'अँग्रेज जाति का इतिहास', 'आर्यसमाज', 'अद्वैतवाद', 'शंकर-रामानुज-दयानन्द', 'राजा राममोहनराय-केशवचन्द्र सेन-दयानन्द', 'धम्मपद', 'भगवत-कथा', 'शांकर भाष्यालोचन', 'जीवात्मा', 'सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रह', 'ईशोपनिषद्', 'हम क्या खावें', 'आर्य स्मृति', 'मुक्ति से पुनरावृत्ति', 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'आर्यसमाज और उसकी नीति', 'धर्म-सुधा-सार', 'मीमांसा प्रदीप', 'वेद और मानव कल्याण', 'कर्म फल सिद्धान्त', 'वेद-प्रवचन', 'इस्लाम में दीपक', 'राष्ट्र-निर्माता दयानन्द', 'सन्ध्या—क्या, क्यों, कैसे', 'उपदेश शतक', 'सनातन धर्म', 'इस्लाम और आर्यसमाज', 'भारतीय पतन की कहानी', 'संस्कार प्रकाश', 'सत्यार्थ प्रकाश : एक अध्ययन', 'धर्म तर्क की कसौटी पर', 'शतपथ ब्राह्मण', 'गंगा ज्ञान-धारा', 'मूर्ति-पूजा', 'पूजा—क्या, क्यों, कैसे', 'मनुस्मृति', 'वैदिक सिद्धान्त विमर्श', 'दूध का दूध पानी का पानी', 'वैदिक मणिमाला', 'विवाह और विवाहित जीवन', 'वैदिक संस्कृति', 'वेदों की ज्योति', 'आर्यसमाज बुला रहा है' तथा 'मैं और मेरा भगवान्' के नाम उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त आपने लगभग 20 ग्रन्थ अँग्रेजी भाषा में भी लिखे थे।

आपने उर्दू में भी कई पुस्तकें लिखी थीं।

अपने लेखन के द्वारा आर्यसमाज की बहुविध सेवाएँ करने के साथ-साथ आप अनेक वर्ष तक उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भी प्रधान रहे थे और इस कार्य-काल में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अनेक बार विदेश यात्राएँ भी की थीं। जिन दिनों हैदराबाद का सत्याग्रह छिड़ा था, तब भी आपने आर्यसमाज की प्रशंसनीय सेवा की थी। आपके सुपुत्र डॉ० सत्यप्रकाश भी अब संन्यासी होकर वैदिक धर्म-प्रचार के कार्य में संलग्न हैं।

आपका निधन 29 अगस्त सन् 1968 को हुआ था।

श्री गंगाप्रसाद कमठान

श्री कमठान धौलपुर (राजस्थान) के निवासी थे और उनका जन्म वहीं पर सन् 1926 में हुआ था। आपके लेख आदि 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'साहित्य सन्देश' तथा 'ब्रज भारती' जैसी अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

इस होनहार युवक का असमय ही सन् 1957 में देहान्त हो गया।

श्री गंगाप्रसाद कौशल

श्री कौशल का जन्म उत्तर प्रदेश के लखनऊ नगर के अमीनाबाद नामक मोहल्ले में 17 सितम्बर सन् 1914 को हुआ था। आप हिन्दी के उत्कृष्ट कवि, लेखक तथा पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित रहे थे। आपकी प्रारम्भिक रचनाएँ कासगंज (एटा) से प्रकाशित होने वाले 'नवीन भारत' नामक साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं और बाद में वे धीरे-धीरे सार्वदेशिक स्तर की प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सफल हुए थे।

आपने जहाँ सन् 1935 से 1938 तक लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'प्रकाश', 'बाल विनोद' और 'स्वराज्य' आदि पत्रों के सम्पादन में सहयोग दिया वहाँ अनेक वर्ष तक पटना में रहकर कई पत्रों में भी कार्य किया था। बाल-साहित्य के निर्माण में आपको अपूर्व दक्षता प्राप्त थी। आपकी रचनाएँ जहाँ 'बाल सखा', 'चुन्नू-मुन्नू' तथा 'बाल विनोद' आदि बालोपयोगी पत्रों में छपती थीं वहाँ 'माधुरी' और 'सरस्वती' आदि स्तरीय पत्रिकाओं में भी वे लिखा करते थे।
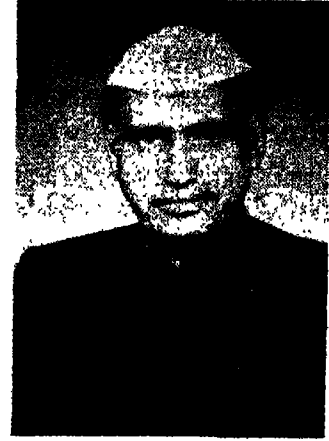
आपकी कविताओं का प्रकाशन सर्वप्रथम नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से 'सुषमा' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपकी अनेक बालोपयोगी पुस्तकों में से 'नयन नीर', 'वीर बालक, 'बच्चों के फूल', 'गोविन्द गुप्त', 'बधाई', 'बापू', 'एंडर्सन की कहानियाँ' तथा 'अन्तिम इच्छा' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश पुरस्कृत भी हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त 'राधा', 'नादिरा', 'नूरजहाँ', 'शबरी' तथा 'सुकेशिनी' आदि पुस्तकें भी आपकी उल्लेखनीय हैं। इसमें से 'सुकेशिनी' उपन्यास का अनुवाद मराठी में भी हो चुका है। 'बाल-साहित्य' के निर्माण में 'कौशल' जी को जो सिद्धहस्तता प्राप्त थी वैसी कदाचित् कम ही देखने को मिलती है। आपकी इस क्षेत्र की लोकप्रियता के कारण सभी चमत्कृत थे।

बिहार के श्रमिक नेता और गांधीवादी विचारक श्री अब्दुल बारी के द्वारा संचालित पत्र 'मजदूर आवाज' का आपने सन् 1947 से 1953 तक अत्यन्त सफलता पूर्वक सम्पादन किया था और बाद में जमशेदपुर से स्वयं 'आजाद मजदूर' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन अपने ही 'आजाद प्रेस' से किया था। आजकल इस पत्र का सम्पादन श्री कौशलजी की सहधर्मिणी श्रीमती सरला कौशल कर रही हैं।

आपका निधन 2 मई सन् 1975 को हुआ था।

श्री गंगाप्रसाद गुप्त

श्री गुप्तजी का जन्म काशी के एक अग्रवाल वैश्य परिवार में सन् 1885 में हुआ था। इनके पिता बाबू माताप्रसाद अत्यन्त सुशिक्षित और अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। अपने परिवार के इन संस्कारों के कारण ही आपकी रुचि भी स्वाध्याय की हो गई थी और उसीका सुपरिणाम यह हुआ था कि आपने अपने पिता के पुस्तकालय की प्रायः सभी उल्लेखनीय पुस्तकों का आद्यन्त पारायण कर लिया था। श्री गुप्त ने अपनी इस अध्ययन-प्रवृत्ति के बल पर ही अपने स्वाध्याय से हिन्दी के अतिरिक्त बँगला, मराठी और गुजराती आदि कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अँग्रेजी का अभ्यास भी आपने इतना अधिक कर लिया था कि उस भाषा में एक ट्रैक्ट भी उन दिनों आपने लिखा था।

अपने पिता के पास आने वाले हिन्दी के अनेक पत्रों और साहित्यिक पत्रिकाओं के अध्ययन के बल पर आपने अपनी हिन्दी-सम्बन्धी योग्यता को इतना बढ़ा लिया था कि सन् 1901 से धीरे-धीरे आप लेखन की ओर भी प्रवृत्त हो गए और सन् 1902 में आपकी पहली पुस्तक 'नूरजहाँ' प्रकाशित हुई। सन् 1903 में आपने काशी से प्रकाशित होने वाले 'मित्र' नामक मासिक पत्र का सम्पादन-कार्य सँभाला और लगभग एक वर्ष तक उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न भी किया। लगभग उन्हीं दिनों आपने 'पूना में हलचल' नामक एक ऐसा उपन्यास लिखा, जिसके कारण आपको अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। सन् 1904 में आपने 'भारत जीवन' नामक पत्र का सम्पादन-कार्य सँभाला, किन्तु अपने पिताजी के असामयिक निधन के कारण आपको यह कार्य बीच में ही छोड़ना पड़ा।
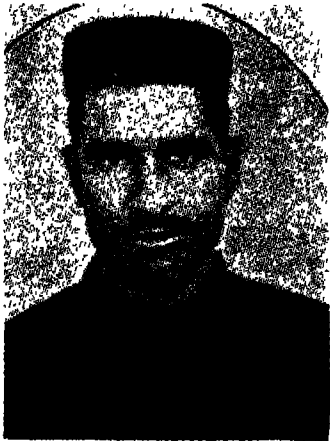
पिताजी के देहावसान के उपरान्त आप घर पर रहकर ही व्यापार की देख-रेख करने के साथ-साथ अपने लेखन-कार्य को भी धीरे-धीरे बढ़ाते रहे। फलतः आपकी मौलिक और अनूदित 'डॉक्टर आनन्दी बाई की जीवनी', 'हमीर', 'वीर पत्नी', 'लंका टापू की सैर', 'तिब्बत वृत्तान्त', 'पन्ना राज्य का इतिहास', 'कुँवरसिंह की जीवनी', 'रानी भवानी' तथा 'हवाई नाव' आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। आपने 'मासिक इतिहास माला' नामक पुस्तकमाला का सम्पादन भी किया था, जिसके अन्तर्गत 'डॉक्टर बर्नियर की भारत यात्रा', 'भारत का इतिहास' तथा 'सिखों का साहस' आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। आपने कर्नल टाड के 'राजस्थान' नामक ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी किया था, जो पाँच खण्डों में प्रकाशित हो चुका है।

आपके हिन्दी प्रेम का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण यह है कि जब आपको पंजाब से हिन्दी का एक भी पत्र प्रकाशित न हो सकने से पीड़ा हुई तो आपने वहाँ के उर्दू साप्ताहिक 'सनातन धर्म गजट' पत्र के मालिकों को उस पत्र में हिन्दी के दो पृष्ठ प्रकाशित करने के लिए 100 रुपए दिए थे। सन् 1905 में आपने फिर 'भारत जीवन' के सम्पादन का कार्य सँभाला और उसकी सफलता के लिए अहर्निश प्रयत्न किया। इन्हीं दिनों आपकी 'देशी कारीगरी की दशा', 'देशी राज', 'दादाभाई नौरोजी की जीवनी', 'स्वदेशी आन्दोलन' और 'स्वदेश की जय' आदि पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं। जब 'भारत जीवन' के संचालक बाबू रामकृष्ण वर्मा का देहावसान हो गया तो आप सन् 1907 के आरम्भ में उसका सम्पादन छोड़कर नागपुर से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी-केसरी' का सम्पादन करने के लिए वहाँ चले गए, किन्तु थोड़े ही दिन वहाँ रहकर फिर आप काशी लौट आए। इसके उपरान्त आप बम्बई के 'वेंकटेश्वर समाचार' का सम्पादन करने के लिए भी वहाँ बुलाए गए, और वहाँ केवल कुछ मास रहकर ही फिर काशी आकर व्यापार में लग गए।

काशी में भी मित्रों ने आपको चैन से न बैठने दिया और फिर आप सन् 1909 के आरम्भ में नागपुर से प्रकाशित होने वाले 'मारवाड़ी' नामक मासिक पत्र के सम्पादक होकर वहाँ चले गए। वहाँ पर अस्वस्थ हो जाने के कारण आप केवल 9 मास ही ठहरकर फिर काशी वापस आ गए। काशी आकर आपने 'हिन्दी साहित्य' नामक एक मासिक

पत्र निकाला, जिसमें आपकी 'लक्ष्मी देवी', 'रामाभिषेक नाटक' तथा 'दुःख और सुख' आदि पुस्तकें क्रमशः छपी थीं। थोड़े दिन बाद यह पत्र भी आपको बन्द कर देना पड़ा और आप 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी-शब्द-सागर' में संयुक्त सम्पादक हो गए। अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण आप सभा में भी अधिक दिन न टिक सके और वहाँ से त्यागपत्र देकर फिर स्वतन्त्र व्यापार करने लगे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक इसीमें तल्लीन रहे।

आपका निधन सन् 1914 में हुआ था।

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय का जन्म मध्यप्रदेश के सतना जनपद के कंचनपुर(पोस्ट कोठी)नामक ग्राम में 13 जुलाई सन् 1918 को हुआ था। गाँव के स्कूल से प्राइमरी और सतना से हाई-स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने प्रयाग विश्व-विद्यालय से हिन्दी में एम०ए० किया। अपने छात्र-जीवन से ही आपके मानस में लेखन के क्षेत्र में कार्य करने की भावना हिलोरें लेने लगी थी। फलस्वरूप आपने अपना उपनाम 'बसन्त' रख लिया और सर्वप्रथम कवि के रूप मे अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

कवि के रूप में श्री पाण्डेय जी की जब ख्याति हो गई तब आपने कहानी, उप-न्यास, निबन्ध तथा आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का उत्कृष्टतम परिचय दिया। फलस्वरूप थोड़े ही दिनों में जहाँ आपकी 'पर्णिका' (1938), 'वासन्तिका', 'नवीना' (1954)नामक काव्य-कृतियाँ प्रकाशित होकर हिन्दी पाठकों के समक्ष आईं वहाँ 'कला कुसुम', 'साहित्य सन्तरण','काव्य-कलना', 'छायावाद-रहस्यवाद', 'कामायनी : एक परिचय', 'बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति कामायनी', 'हिन्दी-कथा-साहित्य', 'महादेवी वर्मा' तथा 'छायावाद के आधार-स्तम्भ' नामक समीक्षा-कृतियों ने आपकी लेखन-प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को दिया। कहानी, उपन्यास, निबन्ध और संस्मरण-लेखन आदि हिन्दी की विभिन्न विधाओं को भी आपने अपनी लेखनी से समृद्ध किया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'हँसना-रोना' (कहानी), 'देखा-सुना' (उपन्यास), 'ये दृश्य : 'ये लोग' (संस्मरण) तथा 'निबन्धिनी' (निबन्ध) आदि उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में चरितमूलक आलोचना के जन्मदाता के रूप में आपका नाम उल्लेखनीय है। आपकी ऐसी कृति 'महाप्राण निराला', है जिसमें आपने निराला के जीवन और काव्य का निकटता से अध्ययन प्रस्तुत किया है। वास्तव में निराला के जीवन को इतनी सफलता के साथ आप इसलिए चित्रित कर सके कि आपका उनसे अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा था। आपके जीवन के अन्तिम कई वर्ष हिन्दी की प्रमुख छायावादी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के निकट सम्पर्क में व्यतीत हुए थे और आपने महादेवीजी के साथ उनके द्वारा संस्थापित 'साहित्यकार संसद्' की गतिविधियों में भी उल्लेखनीय सह-योग दिया था। इसके अतिरिक्त अध्यापन और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आप सक्रिय रूप से गतिशील रहे थे। अनेक वर्ष तक आपने 'लहर', 'संगम' तथा 'साहित्यकार संसद्' के मासिक पत्र 'साहित्यकार' के सम्पादकीय विभागों में भी कार्य किया था। महादेवी वर्मा के विवेचनात्मक निबन्धों के संकलन 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' में भी आपकी समीक्षा-पद्धति का ज्वलन्त परिचय मिलता है।

आपका निधन 30 जुलाई सन् 1968 को प्रयाग में हुआ था।

श्री गजराजसिंह 'सरोज'

श्री 'सरोज' का जन्म सन् 1910 में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़

जनपद की अतरौली तहसील के 'मुंशी का नगला' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता एक साधारण कृषक थे। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण श्री 'सरोज' उच्च शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रहे। आपने कासगंज के स्कूल से जूनियर हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करके एटा के संस्कृत विद्यालय से 'साहित्य रत्न' की, और फिर 'आयुर्वेदाचार्य' की उपाधि प्राप्त करके सिकन्दराराऊ नामक कस्बे में वैद्यक का कार्य करने लगे।

आपने महात्मा गान्धी के असयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर देश-सेवा करने का जो व्रत लिया था उसीके कारण आप सन् 1942 के आन्दोलन में कूद पड़े और आपको ब्रिटिश नौकरशाही द्वारा 1 वर्ष का कठोर कारावास और सौ रुपए का जुर्माना किया गया। दिसम्बर सन् 1943 में कारावास से मुक्त होकर आप पूर्णत: समाज-सेवा में लग गए और अपना अधिकांश समय निर्धनों को मुफ्त औषध बाँटने में व्यतीत करने लगे।

आप एक कुशल चिकित्सक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि भी थे। आपकी रचनाओं में गान्धी दर्शन की अमिट छाप होने के साथ-साथ देश-प्रेम कूट-कूटकर भरा होता था। आपकी ऐसी रचनाओं के संकलन 'अहिंसा' और 'उद्बोधन' नाम से प्रकाशित हुए थे। आप ब्रज प्रदेश के अत्यन्त लोकप्रिय कवि थे और प्राय: सभी सभा-सम्मेलनों में आमन्त्रित किए जाते थे।

आप अलीगढ़ जिला-परिषद् के सदस्य होने के साथ-साथ इस्लामिया इंटर कालेज, सिकन्दराराऊ के उपाध्यक्ष भी रहे थे। आपने जन-साधारण की सेवा करने की पुनीत भावना से प्रेरित होकर 'लोक सेवा आश्रम' नामक एक संस्था की स्थापना भी की थी।

आपका देहान्त जून 1973 में सिकन्दराराऊ तहसील के अमौसी नामक ग्राम में हुआ था।

श्री गणेश पाण्डेय

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के पूर्वी छोर पर स्थित बलिया जनपद के बकवा नामक ग्राम में नवम्बर सन् 1897 में हुआ था। आपके पिता श्री धनुषधारी पाण्डेय का जब सन् 1924 में निधन हो गया तो आप संघर्ष करके अपने परिवार के भरण-भोषण में लग गए। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा प्रयाग के दारागंज मोहल्ले के एक हाईस्कूल (जो अब राधारमण इण्टर कालेज कहलाता है) में हुई थी और वहीं से आपने सन् 1919 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

जिन दिनों आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी उन दिनों देश में सर्वत्र राष्ट्रीयता की लहर फैली हुई थी। आप भी उससे बचे न रह सके और आपने बलिया शहर से 10-12 मील पूर्व की ओर गंगा के किनारे सिंहाकंड परसिया नामक ग्राम में एक आश्रम की स्थापना करके अपने समाज-सुधार के कार्य को आगे बढ़ाया। उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी से हुआ और वे आपको अपने साथ प्रयाग ले गए। देश में जब गान्धीजी का असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो 6 मास तक आपको कारावास में भी रहना पड़ा। जेल से छूटने के बाद आप पटना के प्रख्यात हिन्दी लेखक श्री रामदहिन मिश्र के सम्पर्क में आए और उनके द्वारा सम्पादित 'तरुण भारत' नामक पत्र में कार्य करने लगे। अचानक पुलिस वालों की निगाह में चढ़ जाने के कारण आप फिर वहाँ से चुपचाप चले आए और प्रयाग के दारागंज मोहल्ले में पहुँचकर अपने उसी विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री केदारनाथ गुप्त के पास शरण ली जिनके निरीक्षण में आपने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

दारागंज हाईस्कूल में अध्यापन करने के साथ-साथ आपने अपने प्रधानाध्यापक श्री गुप्त के साथ मिलकर 'छात्र हितकारी पुस्तकमाला' नामक प्रकाशन-संस्था का सूत्रपात किया और उसके माध्यम से अनेक समाजोपयोगी प्रकाशन किए। इस संस्था के द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में स्वामी शिवानन्द द्वारा लिखित 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है', श्री केदारनाथ गुप्त द्वारा लिखित 'हम सौ वर्ष कैसे जीवें' तथा श्री मन्मथनाथ गुप्त द्वारा प्रणीत 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति-चेष्टा का इतिहास' आदि के अतिरिक्त स्वयं श्री पाण्डेयजी द्वारा लिखी गई 'देश

की आन पर' नामक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। जब धीरे-धीरे पाण्डेय जी का प्रकाशन-कार्य उन्नति करने लगा तो आपने अपना 'नागरी प्रेस' नामक प्रेस भी स्थापित किया।

श्री पाण्डेयजी प्रकाशन के साथ-साथ अपने लेखन की ओर भी विशेष ध्यान देते थे और आपने जहाँ 'आहुतियाँ', 'एकान्तवास', 'त्याग और शौर्य की कहानियाँ', 'जागृति का सन्देश' तथा 'बापू की पावन स्मृतियाँ आदि अनेक मौलिक पुस्तकें लिखीं, वहाँ बहुत-सी बंगला तथा अँग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद करके अपनी संस्था के द्वारा प्रकाशित किए। उत्कृष्ट बाल साहित्य के निर्माण की दिशा में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। पाण्डेयजी ने अनेक लेखकों को अग्रिम राशि देकर भी उनकी रचनाएँ प्रकाशित की थीं। ऐसे लेखकों में सर्वश्री गिरिजादत्त 'गिरीश', महापंडित राहुल सांकृत्यायन, मन्मथनाथ गुप्त तथा केशवकुमार ठाकुर आदि के नाम स्मरणीय हैं। आपने श्री गिरीश की 'गुप्तजी की काव्य-धारा' और राहुलजी की 'जादू का मुल्क', 'सोने की ढाल', 'विस्मृति के गर्भ में', 'बाईसवीं सदी' तथा 'साम्यवाद ही क्यों' और मन्मथनाथ गुप्त की 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति-चेष्टा का इतिहास' आदि जिन कृतियों का प्रकाशन किया था उनका हिन्दी-जगत् में काफी नाम हुआ था। यहाँ तक कि श्री मन्मथनाथ गुप्त की पुस्तक तो ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त भी कर ली गई थी। श्री पाण्डेयजी ने अपने प्रकाशन को बहुमुखी बनाने की दृष्टि से श्री केशवकुमार ठाकुर की धर्मपत्नी श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर द्वारा लिखित 'स्त्री और सौन्दर्य' नामक पुस्तक का प्रकाशन करके उन्हें प्रोत्साहित भी किया था।

अपने इस प्रकाशन-कार्य में आपने व्यावसायिकता को कभी भी आड़े नहीं आने दिया और अनेक लेखकों का सहयोग लेने में आप पीछे नहीं रहे। आपके प्रकाशन से उन दिनों सर्वश्री मोहनलाल महतो 'वियोगी', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री व्यथित हृदय, और जहूरबख्श हिन्दीकोविद आदि की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

आपका निधन 74 वर्ष की आयु में दिसम्बर सन् 1971 में हुआ था।

अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी

श्री विद्यार्थीजी का जन्म प्रयाग के अतरसुइया नामक मोहल्ले में 25 अक्तूबर सन् 1890 में हुआ। आपके पिता मुन्शी जयनारायण पुरानी ग्वालियर रियासत के मुंगावली कस्बे के मिडिल स्कूल में अध्यापन का कार्य करते थे। यद्यपि आपकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त साधारण थी, परन्तु आप बड़े धार्मिक और उच्च आदर्शों वाले व्यक्ति थे। विद्यार्थी जी की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई थी और बाद में सन् 1905 में अँग्रेजी में आपने मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। हिन्दी आपने मिडिल की परीक्षा में द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ी थी। आपके परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करते ही विद्यार्थीजी को अपने ताऊ श्री शिवव्रतनारायण के पास कानपुर नौकरी करने के लिए भेज दिया गया। आपके ताऊजी की हार्दिक इच्छा यह थी कि गणेशजी अभी आगे और पढ़ें। फलस्वरूप उन्होंने आपको एण्ट्रेंस की पुस्तकें खरीदवाकर आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए फिर आपके पिता के पास भेज दिया। सन् 1907 में विद्यार्थीजी ने मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की और आगे की पढ़ाई जारी रखने की दृष्टि से आप इलाहाबाद जाकर कायस्थ पाठशाला में भरती हो गए। अभी आप 7-8 मास ही पढ़ पाए थे कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण अपनी पढ़ाई बन्द करके आपको कानपुर लौटकर नौकरी करनी पड़ी।

कानपुर आकर विद्यार्थीजी ने पहले करेंसी आफिस और बाद में पृथ्वीनाथ हाईस्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। यहाँ पर ही आपका सम्पर्क प्रख्यात पत्रकार पंडित

सुन्दरलाल से हो गया, जो उन दिनों इलाहाबाद से 'कर्मयोगी' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया करते थे। उनके सम्पर्क से विद्यार्थीजी का झुकाव लेखन की ओर हो गया। आपके लेख 'कर्मयोगी' के अतिरिक्त 'सरस्वती' में भी प्रकाशित होने लगे। जिन दिनों दिल्ली-दरबार हो रहा था उन दिनों बड़ौदा-नरेश के किसी स्वाभिमानपूर्ण आचरण को लेकर भारतीय पत्रों में बड़ी आलोचनाएँ - प्रत्यालोचनाएँ प्रकाशित हो रही थीं। विद्यार्थीजी को यह सब सहन न हुआ। फलस्वरूप आपने एक लेख लिखकर बड़ौदा-नरेश के स्वाभिमानी आचरण का पूर्ण समर्थन किया। इस लेख को पढ़कर लोगों का ध्यान आपकी ओर गया। सौभाग्य से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी भी उन दिनों कानपुर में रह कर ही 'सरस्वती' का सम्पादन किया करते थे। उनको उन दिनों एक सहायक की आवश्यकता थी। महाशय काशीनाथ के अनुरोध पर उन्होंने सन् 1910 में विद्यार्थीजी को 25 रुपए मासिक पर अपना सहकारी नियुक्त कर लिया। विद्यार्थीजी रोजाना दो मील शहर से चलकर जूही जाया करते थे। विद्यार्थीजी की परिश्रमशीलता और लगन का परिचय आचार्य द्विवेदीजी के उन विचारों से भली भाँति मिल जाता है जो उन्होंने उनकी शहादत के उपरान्त प्रकट किए थे। आपने लिखा था—"जब तक मेरे पास रहे, गणेश ने बड़ी मुस्तैदी और बड़े परिश्रम से काम किया। आपकी शालीनता, सुजनता, परिश्रमशीलता और ज्ञानार्जन की सदिच्छा ने मुझे मुग्ध कर लिया था। उधर आप मुझे शिक्षक या गुरु मानते थे, इधर मैं स्वयं ही कितनी बातों में आपको अपना गुरु समझता था। धीरे-धीरे आप मेरे कुटुम्बी-से हो गए थे। आपको पढ़ने का बड़ा शौक था। जूही आते-आते राह में भी कभी-कभी आप अखबार या पुस्तक पढ़ते चले जाते थे।"

जब 'सरस्वती' में कार्य करते हुए विद्यार्थीजी की लेखन-प्रतिभा का परिचय धीरे-धीरे हिन्दी-जगत् को मिला तो आपकी ख्याति हो गई। परिणामस्वरूप आप इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले राजनीतिक साप्ताहिक पत्र 'अभ्युदय' के सम्पादक होकर वहाँ चले गए। 'सरस्वती' से आपको 'अभ्युदय' अपने अधिक अनुकूल लगा, क्योंकि 'सरस्वती' पत्रिका थी और मासिक थी। इसके विपरीत 'अभ्युदय' साहित्यिक राजनीतिक पत्र होते हुए भी साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होता था। राजनीतिक रुझान होने के कारण विद्यार्थीजी ने 'अभ्युदय' में जमकर कार्य किया। अत्यधिक परिश्रम करने के कारण कुछ समय बाद ही आप बीमार पड़ गए और स्वास्थ्य-लाभ के लिए कानपुर लौट आए। बीमारी से ठीक हो जाने पर आपकी इच्छा फिर इलाहाबाद वापिस लौटने की नहीं हुई और कानपुर से ही स्वतन्त्र रूप से अपना एक पत्र निकालने का निर्णय आपने मन-ही-मन कर लिया। 'सरस्वती' और 'अभ्युदय' में कुछ दिन कार्य करने के उपरान्त आपको इस कला का कुछ अनुभव हो ही गया था। फलस्वरूप अपने मित्र पं० शिवनारायण मिश्र के सहयोग से आपने 9 नवम्बर सन् 1913 में कानपुर से ही 'साप्ताहिक प्रताप' विधिवत् प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। 'प्रताप' के जन्म पर सबसे पहला आशीर्वाद 'द्विवेदी' जी द्वारा ही मिला था। 'द्विवेदी' जी ने अपने आशीर्वाद-स्वरूप जो दो पंक्तियाँ गणेशजी को लिखकर भेजी थीं, वे ही कालान्तर में 'प्रताप' की 'मुख-वाणी' बनीं। वे पंक्तियाँ इस प्रकार थीं :

जिसको न निज गौरव, तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं है, पशु निरा है, और मृतक समान है॥

पास में अधिक जमा-पूँजी भी न थी और न ऐसे साधन आपके पास थे कि इतना बड़ा साप्ताहिक पत्र निकाल सकते, किन्तु आपकी लगन तथा निष्ठा ने आपको सफलता की ओर अग्रसर कर दिया और धीरे-धीरे 'प्रताप' ने समस्त उत्तर भारत के प्रमुख पत्रों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। रायबरेली के किसानों के संघर्ष, कानपुर की मिल-मजदूरों के समर्थन, देशी राज्यों की जनता की मुक्ति के लिए लगातार आह्वान और चम्पारन-सत्याग्रह की क्रान्तिकारी घटनाओं के खुले समर्थन के कारण 'प्रताप' की लोकप्रियता दिनानुदिन बढ़ती ही गई। इसी सन्दर्भ में विद्यार्थीजी की महात्मा गान्धी

से प्रथम भेंट सन् 1916 में उस समय हुई जब आप लखनऊ-कांग्रेस के समय वहाँ पधारे थे। आपको गान्धीजी का आशीर्वाद भी सहज सुलभ हो गया था। सन् 1917-1918 के होमरूल-आन्दोलन के समय भी विद्यार्थीजी की प्रशंसनीय भूमिका रही थी।

'प्रताप' का कार्यक्षेत्र धीरे-धीरे इतना विस्तृत होता गया कि सन् 1920 में उसे दैनिक भी करना पड़ा। इसी बीच विद्यार्थी जी जेल चले गए। जेल से लौटने पर आपको 'प्रताप' को जमाने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ा था। यह एक स्वर्ण-सुयोग ही था कि विद्यार्थीजी को अपने इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अच्छे सहयोगी प्राप्त हो गए थे। सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्रीराम शर्मा, देवव्रत शास्त्री, सुरेश भट्टाचार्य और युगलकिशोर शास्त्री-जैसे ख्यातिलब्ध पत्रकार आपके सहयोगी थे। पं० माखनलाल चतुर्वेदी के सहयोग से विद्यार्थीजी ने जहाँ 'प्रभा'-जैसी राजनीति-प्रधान मासिक पत्रिका प्रकाशित की थी वहाँ नवीनजी ने साप्ताहिक 'प्रताप' को एक सर्वथा नया रूप ही दे दिया था। उन्हीं दिनों जब सन् 1925 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कानपुर में श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ तब आप उसके 'स्वागत-मन्त्री' बने। बाद में लगभग 3 वर्ष तक विद्यार्थीजी 'प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा' के सदस्य भी रहे और इसके अतिरिक्त जहाँ आपने सन् 1929 में फर्रुखाबाद में सम्पन्न हुए प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता की वहाँ आप प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए थे। सन् 1929 में विद्यार्थीजी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर-अधिवेशन के अध्यक्ष भी मनोनीत हुए थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में आपने राष्ट्र भाषा हिन्दी के सम्बन्ध में अपने जो विचार प्रकट किए थे उनसे आपकी ध्येय-निष्ठा का ज्वलन्त परिचय मिलता है। आपने कहा था—"हिन्दी राष्ट्र भाषा बने, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हिन्दू हिन्दू होने के नाते हिन्दी सीखें। मेरे लिए तो हिन्दी एक संस्कृति की प्रतीक है और केवल हिन्दी के द्वारा ही बिखरे हुए भारत में एकत्व की भावना भरी जा सकती है और सबको समान सूत्र में आबद्ध करने का हिन्दी एकमेव साधन है।"

विद्यार्थीजी ने पत्रकारिता को देश-सेवा का सर्वोत्तम साधन माना था और इसीलिए आपने 'प्रताप' के माध्यम से देश की जो सेवा की वह इतिहास के पृष्ठों में सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित की जायगी। इस कार्य में आपका एक पैर सदा कारावास में रहा और आपके सिर पर सदैव आर्डिनेंसों का डंडा घूमता रहा। लेकिन आपने अपनी लेखनी का पूर्ण सदुपयोग किया। इसके लिए आप अनेक बार जेल भी गए और अनेक कष्ट भी उठाए। लेकिन अपना स्वाभिमान कभी भी न बेचा। अनेक प्रलोभनों में भी आपने अपनी 'अस्मिता' को बचाए रखा और स्वाभिमान पूर्वक कार्य करते रहे। जेल में रहते हुए आपने ड्यूमा के जिस अँग्रेजी उपन्यास का अनुवाद किया था, वह अनेक प्रयास करने के बाद भी आपके पारिवारिकजनों की उदासीनता के कारण प्रकाशित न हो सका। पत्रकार-प्रवर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयास से केन्द्रीय साहित्य अकादेमी ने 8 हजार रुपए देकर इसकी पांडुलिपि को प्रकाशनार्थ देने का अनुरोध आपके पारिवारिकजनों से किया था, किन्तु वह सब अनसुना ही रह गया। काश, वह अनुपम कृति प्रकाशित हो पाती तो हिन्दी-जगत् विद्यार्थीजी की साहित्यिक प्रतिभा से भी परिचित हो जाता। अपनी अन्तिम जेल-यात्रा से जिन दिनों (9 मार्च सन् 1931) आप लौटे थे तब देश में साम्प्रदायिक उपद्रवों का दौर-दौरा था। उन्हीं दिनों कराची में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन होने की तैयारी हो रही थी। विद्यार्थीजी कराची जाने का कार्यक्रम बना ही रहे थे कि कानपुर में 'हिन्दू-मुस्लिम-दंगा' प्रारम्भ हो गया। ऐसी स्थिति में विद्यार्थीजी ने कराची न जाकर कानपुर में रहना ही उचित समझा।

जब आपने देखा कि ब्रिटिश सरकार इस भयावह स्थिति में भी मौन है और कानपुर में आग लग रही है तब तो आप साम्प्रदायिकता की इस आग को बुझाने के लिए पूरी तरह कूद पड़े। आप प्रतिदिन कुछ स्वयंसेवकों को साथ में लेकर हिन्दू मोहल्लों से मुसलमानों को निकालते और मुसलमानों के मौहल्लों से हिन्दुओं को बचाते। सुबह से शाम तक आपका यही क्रम रहता था। उधर कराची में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था और इधर साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला को शान्त करने के प्रयास में 25 मार्च सन् 1931 को आप अज्ञात मुस्लिम धर्मान्धों द्वारा शहीद हो गए। आपकी इस शहादत पर राष्ट्रपिता गान्धी ने यह ठीक ही कहा था—"गणेशंकर विद्यार्थी को ऐसी मृत्यु मिली है,

जिस पर हम सबको स्पर्धा है।" राष्ट्रनायक नेहरू के ये विचार भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं—"गणेशजी जैसे जिये, वैसे ही मरे। अगर हममें से कोई आरज़ू करे और अपने दिल की सबसे प्यारी इच्छा पूरी करना चाहे तो इससे अधिक क्या माँग सकता है कि उसमें इतनी हिम्मत हो कि मौत का सामना अपने भाइयों की और देश की सेवा में कर सके। और इतना खुशकिस्मत हो कि गणेशजी की तरह मरे। शान से वे जिए और शान से वे मरे, और मरकर भी उन्होंने जो सबक सिखाया वह हम बरसों जिन्दा रहकर भी क्या सिखा पाएँगे।"

श्री गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ

श्री अम्बष्ठजी का जन्म बिहार राज्य के मुंगेर जनपद के बन्नीग्राम में फरवरी सन् 1903 में हुआ था। अपने ग्राम की प्राथमिक पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करके जब आप मैट्रिक की परीक्षा देने की तैयारी कर रहे थे कि 'असहयोग आन्दोलन' में सम्मिलित हो गए। इसके उपरान्त आपने 'बिहार विद्यापीठ' से विधिवत् स्नातक होकर वहाँ की 'विद्यालंकार' उपाधि प्राप्त की। इसके उपरान्त आप प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'चाँद' मासिक के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध हो गए और सन् 1928 से 1932 तक पटना के साप्ताहिक पत्र के 'देश' के संयुक्त सम्पादक रहे।
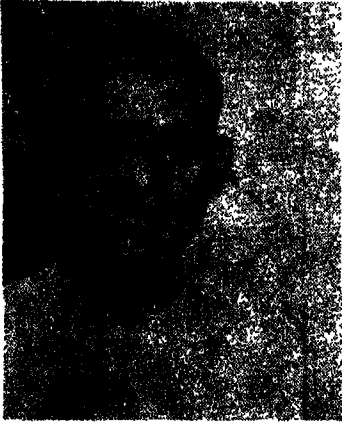
इस बीच आपने स्वतन्त्र रूप से 'बिहार साहित्य मन्दिर' नामक एक प्रकाशन-संस्था स्थापित की। किन्तु जब आपको प्रकाशन-कार्य में सफलता नहीं मिली तब सन् 1940 में आप डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा संस्थापित 'भारतीय इतिहास-परिषद्' में चले गए और सन् 1943 से 1947 तक उसके स्थानापन्न मन्त्री रहे।

स्वतन्त्रता के उपरान्त जब 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' की स्थापना हुई तब आपने जुलाई सन् 1955 से अप्रैल सन् 1959 तक आचार्य शिवपूजनसहाय के निरीक्षण में कई भागों में प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी साहित्य और बिहार' नामक ग्रन्थ के सम्पादन में सहयोग दिया। कुछ वर्ष तक आपके सम्पादन में परिषद् की ओर से 'भारतीय शब्द कोश' (ईयर बुक) का प्रकाशन भी हुआ था। बाद में आपने 'अंग-भाषा परिषद्' की स्थापना करके उसके माध्यम से अंगिका भाषा के सम्बन्ध में शोध-कार्य करने का सूत्रपात किया था।

आपकी प्रमुख रचनाओं में 'मुंगेर' (1930), 'अर्थ-शास्त्र शब्दावली' (1932), 'राजनीति शब्दावली' (1932), 'देश पूज्य राजेन्द्रप्रसाद' (1934), 'हिन्दुस्तानी भाषा कोश' (1935), 'बिहार-दर्पण' (1940), 'भारतीय अब्द-कोश और व्यवसाय-दर्शक' (1951), तथा 'बिहार अब्द-कोश और व्यवसाय-दर्शक' (1951) है। इनमें से लगभग एक हजार पृष्ठ वाले 'बिहार दर्पण' नामक ग्रन्थ से संकलित 'बिहार के दर्शनीय स्थान' नामक पुस्तक के संशोधित और परिवर्धित संस्करण पर आपको बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने एक हजार रुपए का पुरस्कार देकर सम्मानित किया था।

आपका देहावसान सन् 1966 में हुआ था।

ठाकुर गदाधरसिंह

ठाकुर साहब का जन्म कानपुर जिले के संचेड़ी नामक ग्राम के एक चन्देलवंशी क्षत्रिय परिवार में सन् 1869 के अक्तूबर मास में हुआ था। भारतीय सेना से आपके परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था और आपके पिता ठाकुर दरियाव-सिंह सन् 1864 से सन् 1878 तक बंगाल की 'पाँचवीं नेटिव इन्फेंट्री' में रहे थे और उन्होंने अनेक युद्धों में सक्रिय रूप से भाग लिया था।

ठाकुर साहब भी दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई करके फौज में भरती हो गए थे। जिस समय आपने सैनिक जीवन अपनाया था तब आपकी आयु केवल 17 वर्ष की ही थी। आपने सन् 1887 में ब्रह्मा की लड़ाई में भाग लेने के अतिरिक्त सन् 1894 में फौज में शिक्षक का कार्य भी किया था। सन् 1896 में आप राजपूत पलटन में 'सूबेदार मेजर' के पद पर प्रतिष्ठित हुए और जब सन् 1900 में आपकी फौज चीन में भेजी गई थी तब आप उसके साथ ही गए थे। सन् 1902 में इंगलैण्ड में सम्पन्न हुए सप्तम एडवर्ड के तिलक-समारोह में भारतीय फौज के जो प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे उनमें ठाकुर साहब भी एक थे।
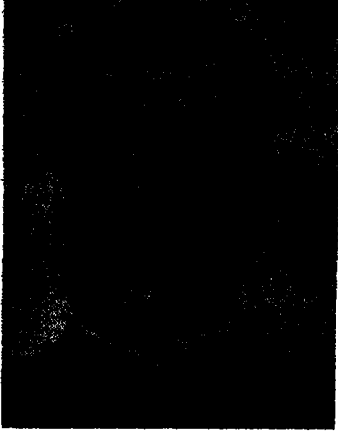
एक कुशल सैनिक होने के साथ-साथ आपकी गणना उत्कृष्ट हिन्दी-लेखकों में की जाती है। हिन्दी में यात्रा-साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों में आपका स्थान सर्वप्रथम गिना जाता है। आपकी 'चीन में तेरह मास'(1901), 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' (1903) नामक विख्यात यात्रा-पुस्तकों के अतिरिक्त 'जापान की राज्य-व्यवस्था', 'रूस-जापान-युद्ध', 'बुशीडो', 'विलायती रमण', 'विलायती दम्पति', 'बुद्धदेव दर्शन', 'युद्ध और शांति-परिचय' तथा 'चश्मा चढ़े चक्षु' आदि प्रमुख हैं।

आप महर्षि स्वामी दयानन्द के अनन्य अनुयायी थे। इसी प्रभाव के कारण आपने सैनिक होते हुए भी समाज की दुरवस्था देखकर अँग्रेजों की तीव्र आलोचना भी की थी। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में यात्रा-साहित्य के प्रथम लेखक के रूप में आप सदा-सर्वदा स्मरण किये जाते रहेंगे। आपने महिलाओं के उद्धार के लिए 'वनिता हितैषी' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था।

आपका निधन 25 अक्तूबर सन् 1920 को हुआ था।

श्री गयाप्रसाद माणिक

श्री माणिकजी का जन्म बिहार के गया नामक नगर के पुरानी गोदाम मोहल्ले में सन् 1881 में हुआ था। आप सन् 1899 में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद वहाँ की कचहरी में पेशकारी का कार्य करने लगे थे। विद्यार्थी जीवन से ही आपके मानस में साहित्य के प्रति अनन्य अनुराग था, फलतः आप अनेक साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेने लगे थे। आपने सन् 1909 में 'माणिक-मंडली' नामक संस्था को जन्म देकर उसकी ओर से श्री महावीरप्रसाद मालवीय 'वीर' के सम्पादन में 'प्रियंवदा' नामक एक पत्र का प्रकाशन भी किया था। आपने 'साहित्य चन्द्रिका' नामक पत्र के सम्पादक के रूप में भी विशिष्ट ख्याति अर्जित की थी और आपकी गणना देश के प्रमुख समस्यापूर्तिकारों में होती थी। आपकी काव्य-रचनाएँ 'साहित्य सरोवर', 'प्रियंवदा', 'काव्य-विलासिनी', 'समस्यापूर्ति', 'रसिक मित्र', 'रसिक रहस्य' तथा 'काव्य पताका' आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपा करती थीं। आपकी 'अलंकार वृक्ष' तथा 'स्फुट रचनाएँ' नामक दो पुस्तकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपका देहावसान केवल 38 वर्ष की अल्पायु में ही सन् 1919 में हुआ था।

श्री गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि'

श्री गयाप्रसाद शास्त्री का जन्म उत्तर प्रदेश के सीतापुर नामक नगर में सन् 1894 में हुआ था। आपकी शिक्षा सीतापुर और वाराणसी में हुई थी और शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त आपने लगभग 2 वर्ष डी० ए० वी० कालेज, देहरादून में और 9 वर्ष तक गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापन-कार्य किया था। इसके उपरान्त 2 वर्ष तक आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की ओर से संचालित 'हिन्दी विद्यापीठ' में प्रधानाचार्य भी रहे थे।

इसके उपरान्त सन् 1934 के लगभग आपने आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद नामक नगर में जाकर चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ करने के साथ-साथ वहाँ के हिन्दी-प्रचार के कार्य को

आधारशिला रखी थी। आप 'हिन्दी-प्रचार सभा' हैदराबाद के संस्थापकों में अन्यतम थे और उसकी ओर से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'अजन्ता' का सम्पादन प्रारम्भ में कुछ वर्ष तक आपने ही किया था। इसके अतिरिक्त सभा के विभिन्न उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर रहते हुए आपने दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।
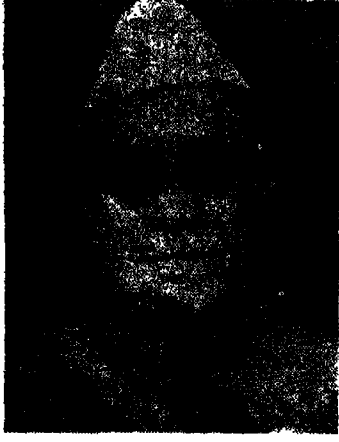
शास्त्रीजी ध्येयनिष्ठ हिन्दी-प्रचारक और सुयोग्य चिकित्सक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि और लेखक भी थे। शास्त्रीजी ने 'श्रीमद्भागवद्गीता' की टीका लिखने के अतिरिक्त 'गृह चिकित्सा' नामक एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी ग्रन्थ भी लिखा था। आपकी आयुर्वेद-सम्बन्धी सेवाओं के उपलक्ष्य में 'बुन्देलखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झाँसी' ने आपको अपनी सर्वोच्च उपाधि 'आयुर्वेद-बृहस्पति' से सम्मानित भी किया था। आप 'श्रीहरि' उपनाम से कविता भी लिखा करते थे।

आपका निधन सन् 1971 में हुआ था।

श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

श्री 'सनेहीजी' का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के हड़हा नामक ग्राम में सन् 1883 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी-उर्दू की मिडिल परीक्षा तक ही सीमित थी और केवल 16 वर्ष की आयु में ही आप सन् 1899 में मिडिल स्कूल में अध्यापक हो गए थे। अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ आपने पहले-पहल उर्दू में रचनाएँ करके किया था। आप 'त्रिशूल' उपनाम से उर्दू में कविता किया करते थे। साथ-साथ आपने हिन्दी में भी लिखना प्रारम्भ किया और आपकी रचनाएँ 'रसिक मित्र', 'रसिक रहस्य', 'काव्य-सुधानिधि' और 'साहित्य सरोवर' आदि हिन्दी के तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित होने लगी थीं। एक बार जब आपकी 'प्रताप' में 'कृषक-क्रन्दन' शीर्षक रचना प्रकाशित हुई तब उसका सर्वत्र स्वागत हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तक ने उसे जब देखा तो उसकी बहुत सराहना की और 'सनेही' जी से 'सरस्वती' में नियमित रूप से लिखने का अनुरोध किया। आपकी सबसे पहली हिन्दी-रचना सन् 1905 में 'रसिक मित्र' में प्रकाशित हुई थी। 'सरस्वती' में आपने दहेज-प्रथा के विरुद्ध एक बहुत क्रान्तिकारी कविता लिखी थी।

उन्हीं दिनों कानपुर से स्वामी नारायणानन्द 'अख्तर' के सम्पादन में 'कवीन्द्र' नामक जो पत्र प्रकाशित हुआ था उसमें आप नियमित रूप से लिखते रहते थे। एक बार जब आपके द्वारा रचित 'कंस वध' नामक रचना को 'रसिक मित्र' के सम्पादक ने उचित स्थान पर प्रकाशित नहीं किया तो हिन्दी के तत्कालीन वरिष्ठ कवि श्री नाथूरामशंकर शर्मा ने सम्पादक को लिखा कि आपने सनेहीजी की रचना को प्रथम स्थान न देकर उनके साथ अन्याय किया है। एक बार सन् 1916 में बांगरमऊ के ताल्लुकेदार चौ० महेन्द्रसिंह ने आपकी उत्तम समस्या-पूर्ति पर मुग्ध होकर आपको 'स्वर्ण-पदक' से सम्मानित किया था। आपकी ख्याति विशेष रूप से उस समय अधिक हुई थी जब देश में राष्ट्रीय आन्दोलन पूरे जोरों पर था और आपकी लेखनी आग उगल रही थी। आपकी ऐसी अधिकांश रचनाएँ उन दिनों 'प्रताप' में ही छपा करती थीं। आपकी ऐसी राष्ट्रीय कविताओं का संकलन 'राष्ट्रीय वीणा' नाम से 'प्रताप पुस्तकालय' द्वारा

प्रकाशित हुआ था। एक बार जब सन् 1918 में 'प्रताप' पर 'प्रेस एक्ट' का वार हुआ और विद्यार्थीजी ने उसे कुछ समय के लिए बन्द कर दिया तब श्री सनेहीजी ने अपनी कविता में जो उद्गार प्रकट किए थे वे आपके राष्ट्र-प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण हैं। आपने लिखा था :

अब तक जो बन पड़ी आपकी सेवा कर दी।
देश-दशा दिल खोल आपके आगे धर दी॥
आर्य गुणों की कीर्ति, भुवन भर में है भर दी।
दे जो बदला विषम काल की बे-दरदी॥
प्रिय 'प्रताप' आप अब करना कभी न प्रेम कम।
दो 'त्रिशूल' मुझको विदा, प्रियवर बन्देमातरम्॥

सन् 1928 में 'सनेही' जी ने कविता-सम्बन्धी एक मासिक पत्र 'सुकवि' नाम से प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और उसके माध्यम से देश में कवियों की एक ऐसी सशक्त पीढ़ी तैयार कर दी जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाने की प्रेरणा देने के साथ-साथ हिन्दी-कविता को पर्याप्त गति दी। आपके ऐसे शिष्यों में सर्वश्री अनूप शर्मा तथा जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' प्रमुख हैं। 'सुकवि' में प्रकाशित 'समस्या-पूर्तियों' का एक अपना सर्वथा अनूठा ही रंग था। उसमें प्रकाशित 'पाएगा स्वराज्य हिन्द खद्दर के बल से' और 'लन्दन हिलाए देत भारत को बनिया'-जैसी अनेक समस्या-पूर्तियों के माध्यम से उस समय देश की तरुणाई में राष्ट्रीयता की जो लहर दौड़ी थी, वह सर्वथा अनुपम तथा अभिनन्दनीय थी। 'सुकवि' द्वारा प्रोत्साहित होकर 'हिन्दी-काव्य' को अनेक प्रतिभाओं की उपलब्धि हुई।

हिन्दी-कवि-सम्मेलनों को लोकप्रियता के चरम शिखर तक पहुँचाने में 'सनेही' जी और उनकी शिष्य-परम्परा के कवियों ने बहुत बड़ा कार्य किया था। आपकी रचनाओं के संकलन 'प्रेम पचीसी', 'कृषक-क्रन्दन', 'राष्ट्रीय मन्त्र', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तरंग', 'कलामे त्रिशूल', 'संजीवनी' और 'करुणा कादम्बिनी' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। सनेहीजी ने हिन्दी-कविता को जहाँ उर्दू शब्दों की चाशनी में पगाया था वहाँ आपने उसे ब्रजभाषा की सँकरी गली से निकालकर खड़ी बोली के प्रशस्त राजमार्ग पर प्रतिष्ठित करने में भी अपना अनन्य सहयोग दिया था। आपके कृतित्व और व्यक्तित्व पर अब जहाँ अनेक विश्वविद्यालयों में 'शोध-प्रबन्ध' प्रस्तुत किए जा चुके हैं वहाँ कानपुर की नगर-महापालिका ने आपको एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भी समर्पित किया था।

आपका निधन 20 मई सन् 1972 को हुआ था।

श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री

श्री शास्त्री का जन्म सन् 1900 में काशी में हुआ था। आपके पूर्वज दो-तीन पीढ़ी पूर्व कश्मीर से आकर काशी में बस गए थे और वहीं पर पं० कृष्णदयालु शास्त्री के यहाँ आपका जन्म हुआ था। जब आप डेढ़-दो वर्ष के ही थे कि एक नौका-दुर्घटना में आपके माता-पिता डूब गए और आप मल्लाह को नाव में एक तख्ते पर बहते हुए सुरक्षित रूप में मिल गए थे। वाराणसी के तत्कालीन विद्वानों में अग्रगण्य महामहोपाध्याय पंडित शिवकुमार शास्त्री ने गंगाजी की कृपा से बचे इस शिशु का नाम 'गांगेय' रख दिया था। बड़े होकर शास्त्रीजी ने इसे अपने नाम का पूर्वार्द्ध बना लिया और सन् 1918 में पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा 'गांगेय नरोत्तम' नाम से ही दी तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय की 'काव्यतीर्थ' परीक्षा में भी आप इसी नाम से बैठे। इस प्रकार आप 'गांगेय नरोत्तम शास्त्री' कहे जाने लगे।

जिस समय आपने उक्त परीक्षाएँ दी थीं उस समय आपकी आयु केवल 20 वर्ष ही थी। आपकी प्रतिभा तथा योग्यता से प्रभावित होकर महामना पंडित मदनमोहन मालवीय ने आपको 'हिन्दू विश्वविद्यालय काशी' के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक नियुक्त कर लिया। इस पद पर रहते हुए भी आपने अपनी योग्यता में

अभिवृद्धि करते जाने का अहर्निश ध्यान रखा। आप संस्कृत
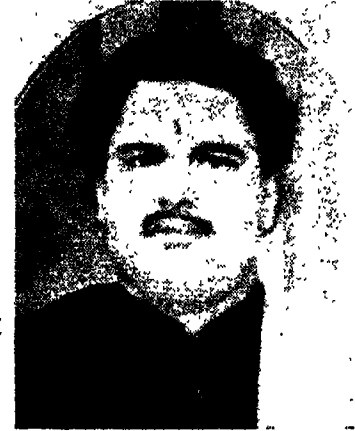
की 'व्याकरणाचार्य' की परीक्षा देने ही वाले थे कि अचानक 'असहयोग आन्दोलन' छिड़ गया और आप उसमें कूद पड़े। परीक्षा का बहिष्कार करने के साथ-साथ आपने विश्व-विद्यालय की नौकरी भी छोड़ दी।

इस बीच आपकी राष्ट्रीय विचार-धारा और स्वतन्त्र-आन्दोलन के प्रति अनन्य निष्ठा से अभिभूत होकर काशी विद्यापीठ के संचालक बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने आपको अपने यहाँ संस्कृत शिक्षक के रूप में कार्य करने को आमन्त्रित कर लिया। परिणामस्वरूप लगभग डेढ़ वर्ष तक विद्यापीठ में कार्य करने के उपरान्त आप कलकत्ता चले गए और वहाँ पर सन् 1923 में पंडित विनायक मिश्र की सुपुत्री रूपेश्वरी देवी से आपका विवाह हो गया; और आप फिर कलकत्ता में ऐसे रमे कि फिर वहीं के हो गए।

कलकत्ता में रहते हुए आपने वहाँ के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया और आपका निवास-स्थान 'गांगेय भवन' विविध साहित्यिक एवं सांस्कृतिक हलचलों का केन्द्र बन गया। एक समय ऐसा भी था; जबकि हिन्दी के प्राय: सभी चोटी के साहित्यकार 'गांगेय भवन' में ही ठहरा करते थे। आपका पारिवारिक जीवन बड़ा ही सुखद और समृद्धिपूर्ण रहा था और आपके कृष्णकान्त, विष्णुकान्त, रविकान्त और श्रीकान्त नामक चार पुत्र हुए थे, जिनमें से तीसरे रविकान्त की मृत्यु असमय में ही बचपन में हो गई। शेष तीनों कलकत्ता में रहते हुए वहाँ के सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में सेवा-कार्य करते रहते हैं। श्री विष्णुकान्त शास्त्री तो कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी के वरिष्ठ अध्यापक होने के साथ-साथ आजकल पश्चिम बंगाल की विधान सभा के सदस्य भी हैं। आप हिन्दी के सुलेखक और समीक्षक होने के अतिरिक्त राजनीति के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री ने काशी और कलकत्ता में रहते हुए जहाँ साहित्य, समाज और राजनीति के क्षेत्र में अनेक उपयोगी कार्य किए वहाँ आपने सन् 1948 में हुए नई दिल्ली के 'गोरक्षा आन्दोलन' में भी सक्रिय रूप से भाग लेकर कारा-वरण किया था। आप जहाँ नागरी प्रचारिणी सभा काशी, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा संस्कृत साहित्य परिषद् के सक्रिय सदस्य रहे थे वहाँ रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के भी कर्मठ सदस्य थे। बंगाल में हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का जो भी काम समय-समय पर होता रहा है उसमें शास्त्रीजी की प्रेरणा और प्रोत्साहन बराबर कार्य करते थे। यहाँ तक कि सन् 1930 में बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की अध्यक्षता में कलकत्ता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था, उसके कवि-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष भी आप ही थे। इसी प्रकार मद्रास में सन् 1937 में सेठ जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था उस अवसर पर आयोजित 'हिन्दी कवि-सम्मेलन' की अध्यक्षता आपने ही की थी।

आप जहाँ संस्कृत, हिन्दी और बंगला में धारा-प्रवाह भाषण देने में दक्ष थे वहाँ संस्कृत तथा हिन्दी के सुकवि और सुलेखक भी थे। आपने संस्कृत तथा हिन्दी की लगभग 35 पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें से केवल 'करुण तरंगिणी' (1940) तथा 'मालिनी मन्दिर' (1941) नामक दो काव्य-कृतियाँ ही प्रकाशित रूप में प्राप्य हैं। आपकी काव्य-प्रतिभा की प्रशंसा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', महामना मदनमोहन मालवीय, साहित्याचार्य पद्मसिंह शर्मा, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', श्री सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्री वियोगी हरि ने मुक्त कण्ठ से की थी।

आपका निधन 27 अक्तूबर सन् 1955 को हुआ था।

श्री गिरिजादत्त पाठक 'गिरिजा'

श्री गिरिजा का जन्म बिहार के शाहाबाद जिले के बक्सर नामक नगर के सहनीपट्टी मोहल्ले में सन् 1898 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने नगर के प्राइमरी स्कूल में ही हुई थी और बाद में आपने वहाँ की रामेश्वर संस्कृत पाठशाला में संस्कृत व्याकरण, साहित्य और आयुर्वेद आदि विषयों का विधिवत् अध्ययन किया था।

सन् 1919 से आप साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए थे। आपने अनेक वर्ष तक विजयगढ़ (अलीगढ़) से प्रकाशित होने वाले 'धन्वन्तरि' तथा 'प्राणाचार्य' नामक मासिक पत्रों के सम्पादन में भी अपना अनन्य सहयोग दिया था।

पंडित गिरिजादत्त ब्रह्मचारी

श्री गिरिजादत्त जी का जन्म सन् 1861 में मुजफ्फरनगर जनपद के सालहखेड़ी नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री छज्जूसिंहजी पटवारी ने आपको संस्कृत साहित्य के अध्ययन के लिए कनखल (हरिद्वार) भेजा था। आप पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन किया करते थे और अहर्निश दुर्गाजी की उपासना में निमग्न रहते थे।

आपने मुजफ्फरनगर के लाँक नामक ग्राम में आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुए शास्त्रार्थ में भाग लिया था। आप संस्कृत के निष्णात विद्वान् होने के साथ-साथ हिन्दी के सुलेखक भी थे। आपकी 'सनातन धर्म सर्वसार संग्रह' (1904) नामक पुस्तक उल्लेखनीय है।

आपने सन् 1907 में कनखल में ही समाधि लगाकर केवल 46 वर्ष की अवस्था में प्राण त्याग दिए थे।

श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म राजस्थान प्रदेश के जयपुर नामक नगर में 14 दिसम्बर सन् 1881 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जयपुर के 'महाराजा संस्कृत कालेज' में हुई थी और पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप सन् 1908 से 1917 तक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार के आचार्य बने थे। इसके उपरान्त सन् 1919 से 1924 तक सनातन धर्म कालेज लाहौर, सन् 1925 से 1944 तक महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर और सन् 1946 से सन् 1948 तक महाराजा संस्कृत कालेज, अलवर के प्रधानाचार्य रहते हुए आपने संस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में विविध सेवाओं के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। इन्हीं दिनों आप लाहौर के 'मूलचन्द खैरातीराम ट्रस्ट' के संस्कृत अनुसन्धान विभाग के भी अध्यक्ष रहे थे। यह बात कदाचित् बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार में आने से पूर्व विद्याध्ययन की समाप्ति पर आप कुछ दिन तक सहारन-पुर के 'दिगम्बर जैन महाविद्यालय' में भी प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य-रत रहे थे।

संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन तथा अध्यापन के क्षेत्र में श्री चतुर्वेदीजी की सेवाएँ जहाँ अभिनन्दनीय रही हैं वहाँ हिन्दी साहित्य की समृद्धि की दिशा में भी आपका अनन्य योगदान रहा था। आपने अपने गुरु विद्यावाचस्पति पंडित मधु सूदन ओझा द्वारा रचित 'महर्षि कुल वैभव' नामक ग्रन्थ का सम्पादन करने के अतिरिक्त काशी-नरेश की प्रेरणा से 'पुराण पारिजात' नामक एक ऐसे विशाल ग्रन्थ की रचना की थी जिसमें समस्त पुराणों का सार देने के साथ-साथ भारतीय विद्याओं तथा सृष्टि-

विषयक समस्त वैज्ञानिक तथ्यों पर विशद प्रकाश डाला गया है। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना की ओर से प्रकाशित आपके 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' नामक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ पर जहाँ साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली ने पाँच हजार रुपये का पुरस्कार देकर आपको सम्मानित किया था वहाँ संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की ओर से भी आपका 'वेद विज्ञान बिन्दु' नामक एक और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। आपके द्वारा लिखित 'गोस्वामीजी के दार्शनिक विचार' तथा 'कृष्ण अवतार पर वैज्ञानिक दृष्टि' नामक ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। आपका 'आत्म-कथा और संस्मरण' नामक ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है।
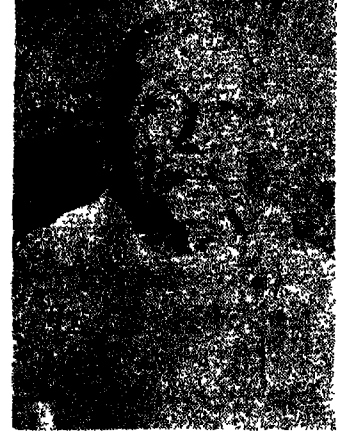
आप जहाँ संस्कृत तथा हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक थे वहाँ पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन की दिशा में भी आपका महत्त्व-पूर्ण योगदान रहा है। आपने अतीत काल में जहाँ ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार की ओर से प्रकाशित होने वाले हिन्दी मासिक पत्र 'ब्रह्मचारी' का सम्पादन सन् 1914 से 1919 तक सफलतापूर्वक किया था वहाँ 'चतुर्वेदी' तथा 'वैष्णव धर्म पताका' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया था। संस्कृत के प्रमुख पत्र 'संस्कृत रत्नाकर' के 'शिक्षांक' और 'वेदांक' नामक विशेषांकों का भी सम्पादन आपने

किया था, जिनका संस्कृत वाङ्‌मय में अपना एक विशिष्ट स्थान है। आपकी साहित्य तथा संस्कृति-सम्बन्धी सेवाओं को दृष्टि में रखकर आपको जहाँ 'महामहोपाध्याय' की सम्मानित उपाधि से सम्मानित किया गया था वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' के विरुद से भी अभिषिक्त किया था। भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र-प्रसाद ने आपको जहाँ 'पद्मभूषण' की उपाधि प्रदान की थी वहाँ उन्हें आजीवन 1500 रुपये प्रतिमास भेंट करने की भी व्यवस्था की थी।

आपने जहाँ 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' और 'राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन' की स्थापना में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया था वहाँ 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' के अमृतसर तथा दिल्ली में संयोजित अधिवेशनों की अध्यक्षता भी की थी। इसके अतिरिक्त 'राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन' के भील-वाड़ा अधिवेशन के सभापति भी आप रहे थे। आपने अपने कर्म-संकुल जीवन के विभिन्न संघर्षों का वर्णन अपनी आत्म-कथा में किया है।

आपका निधन 10 जून सन् 1966 को हुआ था।

श्री गिरिधर शर्मा नवरत्न

श्री नवरत्नजी का जन्म राजस्थान के झालरापाटन नामक नगर में सन् 1881 में हुआ था। आपकी शिक्षा झालरा-पाटन, जयपुर और काशी में हुई थी। आप हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, प्राकृत, गुजराती, बंगला और अँग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के पारंगत विद्वान् थे। साहित्य-निर्माण के क्षेत्र में आपने अपनी प्रतिभा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिचय दिया है। आपने जहाँ संस्कृत में उमर खैयाम की रूबाइयों का सरल और सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है वहाँ रवीन्द्र-नाथ ठाकुर की प्रख्यात कृति 'गीतांजलि' का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करके अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कारी परिचय दिया है। आपकी लेखन-प्रतिभा की उत्कृष्टता का सबसे उल्लेखनीय प्रमाण यह है कि जिस तत्परता और लगन से आपने संस्कृत में अनेक ग्रन्थ प्रस्तुत किए वहाँ गुजराती में भी आपके द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे। हिन्दी के तो वे महारथी थे ही।

आप जहाँ उत्कृष्ट कोटि के लेखक एवं कवि थे वहाँ कुशल संगठक एवं अद्वितीय हिन्दी-प्रचारक के रूप में भी आपकी सेवाएँ अपना उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। आपने 'मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर' की संस्थापना में सहयोग देने के साथ-साथ भरतपुर की 'हिन्दी साहित्य समिति' के निर्माण में भी अपनी प्रमुख भूमिका निबाही थी। कोटा की 'भारतेन्दु समिति' की स्थापना में आपने जहाँ अपना सतर्क निर्देशन दिया था वहाँ झालावाड़ राज्य में हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार में भी गहन रुचि ली थी। हिन्दी में अतु-कान्त काव्य-रचना करने का गौरव भी आपको ही दिया जा सकता है। आपके ग्रन्थ 'सती सावित्री' नामक काव्य में ऐसा ही प्रयोग किया गया है।

आपने जहाँ गुजराती तथा संस्कृत में अपनी अनेक प्रमुख कृतियों द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था वहाँ आपकी अनेक हिन्दी रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। आपकी हिन्दी रचनाओं में 'जया जयन्त', 'राई का पर्वत', 'प्रेम कुंज', 'युग पलटा', 'महा सुदर्शन', 'हिन्दी माघ', 'उषा', 'चित्रांगदा', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'बागवान', 'फल संचय', 'गुरु महिमा', 'आरोग्य दिग्दर्शन', 'सरस्वती यश', 'सुकन्या', 'सती सावित्री', 'ऋतु विनोद' तथा 'मातृ वन्दना' आदि के नाम विशेष परिगणनीय हैं। इनमें से अन्तिम पुस्तक में आपकी राष्ट्रीय कविताएँ संकलित की गई हैं। मातृ-वन्दना का जो स्वर बंगला में मुखरित हुआ था उसीका पुष्टतर स्वर इस कृति में दिखाई देता है। आपकी रचनाधर्मिता का इससे

उज्ज्वल परिचय और क्या हो सकता है कि जब हिन्दी के प्राय: सभी कवि मध्यकालीन वातावरण में साँस ले रहे थे तब आपने आगे आकर अपनी रचनाओं के द्वारा राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद करके हिन्दी-काव्य को एक सर्वथा नई दिशा दी थी। आपकी साहित्य-सेवाओं के सम्मान-स्वरूप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया था।

आप न केवल एक उत्कृष्ट कवि थे, बल्कि आयुर्वेद, दर्शन, समाज-शास्त्र और नैतिकशास्त्र आदि अनेक विषयों पर भी आपने अनेक लेख आदि लिखकर देश और समाज की बहुत बड़ी सेवा की थी। आपके द्वारा सम्पादित 'विद्या-भास्कर' नामक जो मासिक पत्र झालरापाटन (राजस्थान) से प्रकाशित हुआ था उससे आपकी सम्पादन-पटुता का ज्वलन्त रूप हमारे सामने उद्घाटित होता है। इसके अतिरिक्त आपने गुजराती और संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद भी हिन्दी में प्रस्तुत किया था। आपकी ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हिन्दी की 'सरस्वती', 'सुधा' तथा 'माधुरी' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में छिपी पड़ी हैं जिनका संकलित रूप में प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक है। 2 जून सन् 1960 को आपके स्नेहीजनों ने आपका 80वाँ जन्म-दिवस समारोह पूर्वक मनाया था।

आपका निधन 2 जुलाई सन् 1961 को हुआ था।

श्री गुरुदयालसिंह 'प्रेमपुष्प'

श्री 'प्रेमपुष्प' का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के रसड़ा नामक स्थान में 5 सितम्बर सन् 1905 को हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात कवि, श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के अनुज थे। आप जहाँ एक अच्छे कवि थे वहाँ नाटक के क्षेत्र में भी आपकी प्रतिभा अनन्य थी। आप बलिया के कुँवरसिंह डिग्री कालेज के हिन्दी-विभागाध्यक्ष थे।

आपका निधन 14 मई सन् 1962 को हुआ था।

बाबू गुलाबराय

बाबू गुलाबराय का जन्म सन् 1887 में उत्तर प्रदेश के इटावा नामक नगर में हुआ था। आपने दर्शन शास्त्र में एम० ए० करने के उपरान्त एल-एल० बी० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। सर्वप्रथम आपने आठवीं कक्षा तक फारसी और उर्दू का अध्ययन किया था और बाद में बी०ए० में संस्कृत के साथ-साथ उसके काव्य-शास्त्र का अध्ययन भी किया था। संस्कृत के इसी अध्ययन ने आपको समीक्षा के क्षेत्र में अग्रणी कार्य करने की प्रचुर प्रेरणा दी थी और दर्शन शास्त्र में एम० ए० करने के कारण आप गहन-से-गहन शास्त्रीय अनुशीलन की ओर अग्रसर हुए थे। हिन्दी में उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक चिन्तन-प्रधान ग्रन्थ लिखने के साथ-साथ आपने सहज, शिष्ट मनोरंजन-प्रधान निबन्ध लिखने में जो सफलता प्राप्त की थी वह भी आपकी प्रतिभा का ज्वलन्त प्रमाण है।

सर्वप्रथम शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त आप छतरपुर (बुन्देलखंड) के महाराजा के निजी सचिव होकर चले गए थे और वहाँ रहते हुए अपने स्वाध्याय को आपने निरन्तर आगे बढ़ाया था। सन् 1913 से सन् 1932 तक वहाँ कार्य करने के उपरान्त आपने आगरा आकर अपनी साहित्य-साधना की थी। आपने सर्वप्रथम अपनी 'शान्ति धर्म', 'फिर निराशा क्यों', 'मैत्री धर्म', 'कर्तव्य-शास्त्र', 'तर्क शास्त्र', 'मन की बातें' तथा 'पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास' आदि रचनाओं के माध्यम से जहाँ गम्भीर साहित्य-प्रणयन की दिशा में अपनी रचनाधर्मिता का उज्ज्वलतम रूप प्रस्तुत किया था वहाँ सहज हास्य, व्यंग्य और विनोदमयी शैली का परिचय भी अपनी 'ठलुआ क्लब' नामक कृति में दिया था। आपकी 'मेरी असफलताएँ' नामक
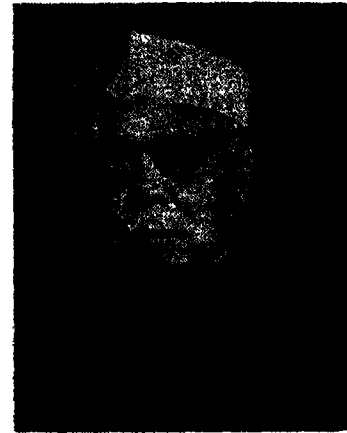
रचना में भी आपकी ऐसी ही कला उदात्त तथा परिष्कृत रूप में उभरकर सामने आई है।

हिन्दी-साहित्य के गहन अध्ययन तथा अनुशीलन के क्षेत्र में भी बाबू गुलाबराय का योगदान अपनी सर्वथा विशिष्ट महत्ता रखता है। इस दिशा में आपकी 'काव्य के रूप', 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'हिन्दी नाट्य विमर्श', 'अध्ययन और आस्वाद' एवं 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। विशिष्ट साहित्यिक समीक्षा के इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने जीवनोपयोगी ऐसे अनेक विषयों पर अपनी लेखनी चलाई थी जिन पर साधारणतः बड़े साहित्यकार लिखने में कतराते हैं। आपकी ऐसी रचनाओं में 'विज्ञान वार्ता', 'विज्ञान विनोद', 'अभिनव भारत के प्रकाश-स्तम्भ', 'बौद्ध धर्म', 'राष्ट्रीयता', 'जीवन पथ', 'विद्यार्थी जीवन' और 'प्रबन्ध प्रभाकर' आदि उल्लेखयोग्य हैं। आत्म-कथा-लेखन की भी आपने सर्वथा नई प्रणाली प्रवर्तित की थी। आपकी 'जीवन-रश्मियाँ' नामक कृति इसका परिष्कृत एवं उदात्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। आपकी 'मेरे निबन्ध' तथा 'कुछ उथले : कुछ गहरे' नामक रचनाएँ आपके साहित्यिक व्यक्तित्व को सर्वथा नये रूप में प्रस्तुत करती हैं।

'साहित्य सन्देश' के सम्पादन के अपने सुदीर्घ जीवन में आपने जहाँ समीक्षा-क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किए वहाँ हिन्दी को कुछ नए ऐसे समीक्षक भी प्रदान किए, जिनकी प्रतिभा आज हिन्दी-समीक्षा की धुरी बनी हुई है। ऐसे समीक्षकों में सर्वश्री डॉ० नगेन्द्र, डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० कन्हैयालाल सहल और शान्तिप्रिय द्विवेदी के नाम अग्रणी हैं। आपकी साहित्य और संस्कृति-सम्बन्धी योग्यताओं और सेवाओं की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर सैण्ट जान्स कालेज, आगरा ने अनेक वर्ष तक आपको अपनी संस्था में 'मानद हिन्दी प्रोफेसर' के रूप में प्रतिष्ठित किया था। यही नहीं आगरा विश्वविद्यालय ने तो आपको डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित करके अपने को ही गौरवान्वित कर लिया है।

आपने अपने रचनात्मक साहित्य में जहाँ प्राचीन और नवीन का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया था वहाँ वर्तमान विचारधारा के प्रभाव से भी आप दूर नहीं रहे थे। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि बाबूजी ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से क्या काव्य-शास्त्र, क्या व्यावहारिक आलोचना, क्या मनोविज्ञान और क्या दर्शन, क्या राजनीति और क्या विज्ञान, इन सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी का सुन्दर उपयोग किया था। यहाँ तक कि भारत पर जब चीन का आक्रमण हुआ तब आपने आगरा से श्री तोताराम 'पंकज' के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'साहित्यालोक' नामक पत्र में 'सीमा-संघर्ष और हमारा कर्तव्य' नामक लेख लिखकर अपनी जागरूक प्रतिभा का परिचय दिया था। यही आपका अन्तिम लेख था।

इसके उपरान्त ही 13 अप्रैल सन् 1963 को आपका निधन हो गया।

श्री गोकुलचन्द्र

श्री गोकुलचन्द्र का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित सम्पन्न परिवार में सन् 1851 में हुआ था। आपका वंश बहुत उदार तथा विद्यानुरागी था। सुप्रसिद्ध समाज-सेवी बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी इसी वंश के रत्न थे। आपने जहाँ हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय एक लाख रुपये का दान किया था वहाँ डॉ० भगवानदास की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्यारहवें कलकत्ता-अधिवेशन के

अवसर पर सन् 1920 में अपने स्वर्गीय भाई श्री मंगलाप्रसाद की स्मृति को चिरस्थायी बनाने की दृष्टि से 40 हजार रुपये की राशि दान देकर प्रति वर्ष 1200 रुपए का पुरस्कार देने की व्यवस्था की थी।

आपके सुपुत्र श्री कृष्णकुमार ने भी आपका अनुसरण
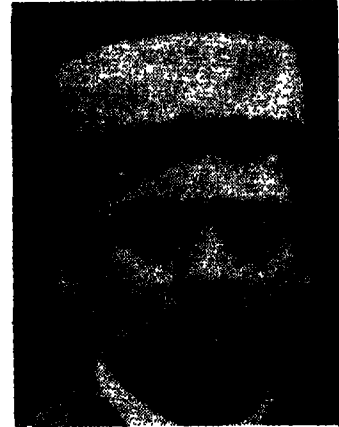
करके फिर सन् 1930 में कलकत्ता में ला० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की अध्यक्षता में सम्पन्न सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर 10 हजार रुपए की और राशि प्रदान की थी। श्री कृष्णकुमार कलकत्ता-कारपोरेशन के कौंसिलर होने के अतिरिक्त सम्मेलन के उस अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष भी थे। आपके परिवार की व्यापारिक फर्म 'शीतल-प्रसाद खड्गप्रसाद' कलकत्ता में भी थी और इसी प्रसंग में श्री कृष्णकुमार कलकत्ता में रहते थे।

'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' की व्यवस्था करते समय यह भी निश्चय किया गया था कि प्रति वर्ष साहित्य, समाज-शास्त्र, दर्शन और विज्ञान-सम्बन्धी उत्कृष्टतम ग्रन्थ पर क्रमशः यह पुरस्कार दिया जाया करेगा। इस निर्णय के अनुसार पहला साहित्य-सम्बन्धी पुरस्कार पंडित पद्मसिंह शर्मा को उनकी 'बिहारी सतसई—संजीवन भाष्य' नामक कृति पर प्रदान किया गया था।

आपका निधन सन् 1934 में हुआ था।

श्री गोकुलचन्द्र दीक्षित

श्री दीक्षितजी का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद के लखना (भर्थना) नामक स्थान में 30 दिसम्बर सन् 1887 को हुआ था। आपके पिता श्री चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित क्योंकि स्टेशन मास्टर थे, इसलिए श्री दीक्षितजी की शिक्षा-दीक्षा अपने पितामह श्री लालमणिजी की देख-रेख में हुई और किन्हीं कारणों से मैट्रिक से आगे आपका अध्ययन न बढ़ सका। फलस्वरूप आजीविका के निमित्त आप भरतपुर चले गए और वहाँ के 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' में 'ट्रेसर' हो गए। ट्रेसर के कार्य में आपकी रुचि बिलकुल भी नहीं थी। धीरे-धीरे आपने रियासत की ओर से प्रकाशित होने वाले 'भरतपुर गजट' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादन का कार्य अपने ऊपर ले लिया और उसमें रहते हुए अपनी लेखनी से उसे बहुत लोकप्रिय बनाया। बाद में यह पत्र 'भारत वीर' नाम से प्रकाशित होने लगा था और अनेक वर्ष तक प्रकाशित होता रहा था।

राज्य की सेवा में रहते हुए भी आपने अपना स्वाध्याय जारी रखा और राष्ट्रीय आन्दोलन में भी आप सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इस सन्दर्भ में आपके घर की कई बार तलाशियाँ भी ली गईं और पुलिस की ज्यादतियों के कारण आपके व्यक्तिगत पुस्तकालय की लगभग 10 हजार पुस्तकें भी नष्ट हो गईं। अन्त में आपको राज्य-सेवा से भी हाथ धोना पड़ा। आप विचारों के कट्टर आर्यसमाजी, देश-भक्त और सुधारक प्रवृत्ति से ऐसे साहित्यकार थे कि आपने अपनी लेखनी को बहुविध साहित्य के निर्माण में लगाया। संस्कृत तथा हिन्दी के उद्भट विद्वान् होने के साथ-साथ आप उर्दू तथा फारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे। ऐतिहासिक शोध तथा सांस्कृतिक उन्नयन की दिशा में आपने अनेक ऐसी कृतियाँ हिन्दी को प्रदान की हैं, जिनसे आपके अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है। प्राचीन वैदिक साहित्य और दुर्लभ पाण्डुलिपियों की खोज करने की दिशा में आपकी बहुत रुचि थी। आपने जहाँ अनेक मौलिक काव्यों की रचना की थी वहाँ संस्कृत के अनेक ग्रन्थों की टीकाएँ भी प्रस्तुत की थीं। आपके द्वारा लिखित ग्रन्थों में जहाँ इतिहास, जीवनी से सम्बन्धित अनेक मौलिक रचनाएँ हैं वहाँ महाकवि देव द्वारा प्रणीत 'शृंगार विलासिनी' नामक प्रख्यात ग्रन्थ की खोज करने का श्रेय भी दीक्षितजी को ही दिया जाता है। आप कुशल तार्किक और प्रखर वक्ता थे।

आपने अनेक वर्ष तक आगरा में रहकर जहाँ उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक मुखपत्र 'आर्यमित्र' के सम्पादन में सक्रिय सहयोग दिया था, वहाँ सभा के 'भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस' की व्यवस्था करने में भी अपना हाथ बटाया था। जब सभा के निर्णयानुसार पत्र और प्रेस स्थायी रूप से अपने भवन में लखनऊ चले गए तब आप वहाँ न जाकर भरतपुर में ही रहकर साहित्य-सेवा करने लगे थे।

आपके द्वारा रचित और अनूदित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—'ब्रजेन्द्र वंश भास्कर' (भरतपुर राज्य का इतिहास), 'बयाना का इतिहास', 'बयाना किले की भीम लाट' (शोध निबन्ध), 'शृंगार विलासिनी' (टीका), 'चार यात्री' (जीवनी), 'दर्शनानन्द ग्रन्थ-संग्रह', 'षड्दर्शन सम्पत्ति', 'वैशेषिक दर्शन' (टीका), 'मीमांसा दर्शन' (टीका), 'धर्मवीर पं० लेखराम' (जीवनी), 'भरत संजीवनी', 'भगवती शिक्षा समुच्चय' 'विदुर नीति' तथा 'बिहारी सतसई की टीका' (चित्र-काव्य) आदि।

आपका देहावसान अक्तूबर सन् 1944 में भरतपुर में हुआ था।

श्री गोकुलचन्द्र शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के एक छोटे से ग्राम 'हरी का नगला' मे सन् 1888 में हुआ था। आपके पूर्वज हाथरस के राजा श्री दयाराम की सेना में सैनिक थे और उन्होंने सन् 1857 के स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया था। इसका उल्लेख सासनी के स्तम्भ में भी किया गया है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा रुदायन, सासनी और हाथरस के विद्यालयों में हुई थी और हाथरस से ही आपने सन् 1901 में हिन्दी की मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आर्थिक स्थिति की हीनता के कारण कुछ दिन आपका अध्ययन-क्रम रुक गया और फिर सन् 1906 में नार्मल स्कूल आगरा में प्रवेश लिया तथा वहीं से बी० टी० सी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1913 में आपने धर्मसमाज हाईस्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया और यह कार्य करते हुए ही सन् 1914 में मैट्रिक की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। धीरे-धीरे आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० की परीक्षाएँ भी प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में उत्तीर्ण कर ली थीं।
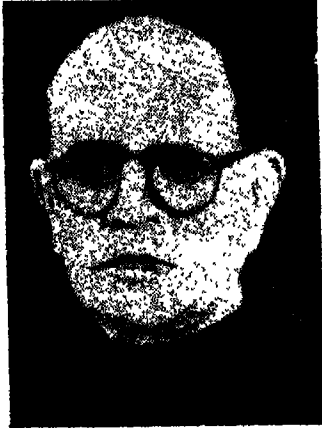
अध्यापन करते हुए आप में कवित्व की भावनाएँ उदग्र रूप से उठने लगीं। फलस्वरूप आपने 'प्रणवीर प्रताप' नामक एक खण्डकाव्य की ही रचना कर डाली। इसके उपरान्त आपकी फुटकर रचनाओं का संकलन 'पद्य प्रदीप' नाम से प्रकाशित हुआ और बाद में महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर आपने 'गांधी गौरव' नामक काव्य की रचना भी की। 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के अमर मंत्रदाता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की विचार-धारा का भी आपके मानस पर गहन प्रभाव पड़ा था। परिणामस्वरूप सन् 1921 में आपने उनके जीवन पर भी 'तपस्वी तिलक' नामक काव्य की रचना कर डाली। अध्यापन का कार्य करते हुए आपने हिन्दी-निबन्ध-लेखन में भी अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी, जिसके दर्शन आपकी छात्रोपयोगी पुस्तक 'निबन्धादर्श' में होते हैं।

यह एक संयोग की बात है कि शर्माजी की अधिकांश काव्य-कृतियाँ उत्तर प्रदेश के विद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रम के रूप में भी निर्धारित रहीं। आपके द्वारा अनूदित संस्कृत के ग्रन्थ 'वीर धर्म दर्पण' का जो हिन्दी अनुवाद 'जयद्रथ वध' नाम से प्रकाशित हुआ था उसका भी हिन्दी-जगत् ने हार्दिकता से स्वागत किया था। आपकी अन्य रचनाओं में 'मानसी' तथा 'अशोक वन' भी ऐसी काव्य-कृतियाँ हैं जिनके कारण साहित्य-क्षेत्र में आपकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लगे थे। इनके उपरान्त आपकी 'धरती के ध्रुव तारे', 'अभिनय रामायण', 'महाभारत' और 'मंगल मार्ग' आदि जो पुस्तकें प्रकाशित हुई थी उनका भी हिन्दी-जगत् में पर्याप्त स्वागत हुआ था और वे उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुई थीं।

आपने धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ में 36 वर्ष तक निरन्तर सेवा करने के उपरान्त जून सन् 1950 में अवकाश ग्रहण किया था। कालेज में हिन्दी तथा संस्कृत विभाग के अध्यक्ष के रूप में रहकर आपने अपने छात्रों में हिन्दी-साहित्य के प्रति जो भावनाएँ जागृत की थीं वे स्पृहणीय है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आपने महाभारत पर एक काव्य

की रचना प्रारम्भ की थी; पता नहीं वह पूरा भी हुआ था या नहीं।

आपका निधन 7 नवम्बर सन् 1958 को हुआ था।

श्री गोपबन्धु चौधरी

श्री गोपबन्धु चौधरी का जन्म उड़ीसा के पुरी नामक नगर में 8 मई सन् 1894 को हुआ था और आप उत्कल के राष्ट्रीय नेताओं में अग्रणी स्थान रखते थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सम्पर्क के कारण आपने राष्ट्रीय कार्य को आगे बढ़ाने के लिए हिन्दी को माध्यम बनाया था और इसी ध्येय की पूर्ति के लिए कलकत्ता के सर्वश्री सीताराम सेकसरिया, भगीरथ कनोडिया तथा बसन्तलाल मुरारका की प्रेरणा पर श्री अनसूयाप्रसाद पाठक हिन्दी-प्रचारार्थ 17 नवम्बर सन् 1931 को प्रातः पुरी में श्री चौधरी के निवास पर पहुँचे थे। इस प्रकार यह कहना अधिक समीचीन होगा कि उत्कल में हिन्दी-प्रचार की नींव श्री गोपबन्धु चौधरी के द्वारा ही रखी गई थी।
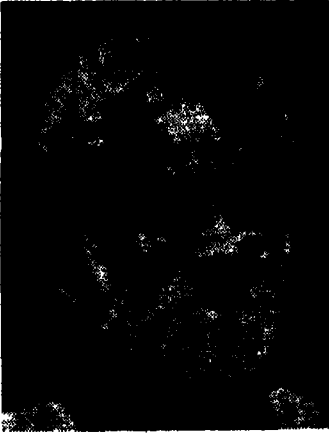
श्री पाठक से चौधरीजी ने पहले-पहल जो भाव अभिव्यक्त किए थे उनसे हमें आपकी हिन्दी-निष्ठा का परिचय मिलता है। आपने कहा था—"मेरी इच्छा है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लोग बोलें, लिखें और समझें। कम-से-कम बातचीत में हम अँग्रेजी की दासता से तो मुक्त रहें। यह कितनी लज्जा की बात है कि हम चले हैं स्वराज्य लेने, किन्तु पास कोई अपनी भाषा नहीं। हम लोग अँग्रेजी में बोलते हैं। विदेशी भाषा में सोचने वालों के लिए देश की स्वतन्त्रता का क्या लाभ? यह स्वराज्य नहीं, गुलामी है, गुलामी।" चौधरीजी के इन शब्दों में कितनी पीड़ा है, इसका अनुमान वे ही लोग लगा सकते हैं जिन्होंने अपने जीवन को भारत की स्वतंत्रता के लिए समर्पित कर दिया था।

गोप बाबू के इन शब्दों से जो प्रेरणा श्री पाठकजी को मिली थी उसीका ज्वलन्त रूप 'उत्कल प्रान्तीय राष्ट्र-भाषा प्रचार सभा' की विभिन्न प्रवृत्तियों में पल्लवित और विकसित हुआ था। स्वतन्त्रता-आन्दोलन को आगे बढ़ाने में इस सभा द्वारा प्रशिक्षित तथा दीक्षित अनेक हिन्दी-प्रचारकों ने जो कार्य किया था वह इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। गोप बाबू की निःस्वार्थ प्रवृत्ति ही इसकी प्रेरणा-स्रोत थी।

गोप बाबू का निधन 29 अप्रैल सन् 1958 को हुआ था।

बाबू गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास'

बाबू गोपालचन्द्र का जन्म काशी के प्रसिद्ध रईस श्री काले हर्षचन्द्र के यहाँ सन् 1833 में हुआ था। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के पिता थे और आपके पिता का देहावसान आपकी 11 वर्ष की आयु में ही हो गया था। आपके जन्म के सम्बन्ध में ऐसा सुना जाता है कि जब आपके पिता को एक दिन उनके आराध्य गिरिधरजी महाराज ने उदास देखा तो लोगों ने कहा कि महाराज इनके यहाँ अभी तक कोई सन्तान नहीं हुई, इनका वंश आगे कैसे चलेगा, यही चिन्ता इन्हें दिन-रात सताती रहती है। इस पर महाराजजी ने हर्षचन्द्रजी से कहा, "तुम जी छोटा न करो। इसी वर्ष तुम्हें पुत्र-लाभ होगा।" और हुआ भी ऐसा ही। गिरिधरजी महाराज की कृपा से जन्म पाने के कारण ही आपने अपना कविता में उपनाम 'गिरिधरदास' रखा था।

गिरिधरदासजी की प्रतिभा का परिचय इसी बात से मिल जाता है कि आपने सन् 1846 में केवल 13 वर्ष की आयु में ही 'बाल्मीकि रामायण' का भाषा-छन्दोबद्ध अनुवाद

कर दिया था। इस अनुवाद का कुछ अंश भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका में छपा मिलता है। आप हिन्दी तथा संस्कृत के सुकवि होने के साथ-साथ उर्दू में भी अच्छी गजलें लिखते थे। इसके सम्बन्ध में आपने एक बार लिखा था :

दास गिरिधर तुम फकत हिन्दी पढ़े थे खूब-सी,
किसलिए उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।

आपको पुस्तकों के संग्रह का बहुत शौक था और आपने अपने पुस्तकालय का नाम 'सरस्वती भवन' रखा हुआ था। आपने लगभग 40 ग्रन्थों की रचना की थी। किन्तु इनमें से बहुत-सी पुस्तकों का पता ही नहीं चलता। भारतेन्दुजी के दौहित्र बाबू ब्रजरत्नदास ने इनकी जिन 18 पुस्तकों के नाम दिए हैं वे इस प्रकार हैं—'जरासन्धवध महाकाव्य', 'भारती भूषण' (अलंकार), 'भाषा व्याकरण' (पिंगल-सम्बन्धी), 'रस रत्नाकर', 'ग्रीष्म वर्णन', 'मत्स्य कथामृत', 'बाराह कथामृत', 'नृसिंह कथामृत', 'वामन कथामृत', 'परशुराम कथामृत', 'रामकथामृत', 'बलराम कथामृत' (कृष्ण-चरित 4701 पदों में), 'बुद्ध कथामृत', 'कल्कि कथामृत', 'नहुष नाटक', 'गर्ग संहिता' (कृष्ण चरित दोहों-चौपाइयों में बड़ा ग्रन्थ) तथा 'एकादशी माहात्म्य'। इनके अतिरिक्त भारतेन्दु के अनुसार बा० राधाकृष्ण ने आपकी 21 रचनाओं का और उल्लेख किया है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अभिमत के अनुसार विशुद्ध नाटक रीति से पात्र-प्रवेशादि नियमों की रक्षा के द्वारा हिन्दी में प्रथम नाटक लिखने वाले उनके पितृदेव ही हैं। भारतेन्दु ने अपने 'नाटक' शीर्षक निबन्ध में नाटक की जो परिभाषा अंकित की है उसके अनुसार उनके पिता की रचना ही प्रथम नाट्य-कृति ठहरती है।

आपका निधन सन् 1860 में हुआ था।

श्री गोपालचन्द्रदेव 'व्रतीभ्राता'

श्री 'व्रतीभ्राता' का जन्म 29 नवम्बर सन् 1910 को लाहौर में हुआ था। आपकी शिक्षा लायलपुर, लाहौर और गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में हुई थी। आप हिन्दी के सुलेखक होने के साथ-साथ अविभाजित पंजाब के हिन्दी-प्रकाशकों में प्रमुख थे। प्रारम्भ में आपने सन् 1933 में 'विद्या भवन' नाम से अपना प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ किया था और बाद में इस संस्था ने 'व्रतीभ्राता' का रूप ले लिया। एक समय ऐसा भी आया जब श्री गोपालचन्द्र देव 'कपूर' से 'व्रतीभ्राता' बन गए। भारत-विभाजन के उपरान्त 'व्रतीभ्राता' फर्म लाहौर से जालन्धर आ गई थी और आप वहाँ पर ही स्थायी रूप से रहने लगे थे।
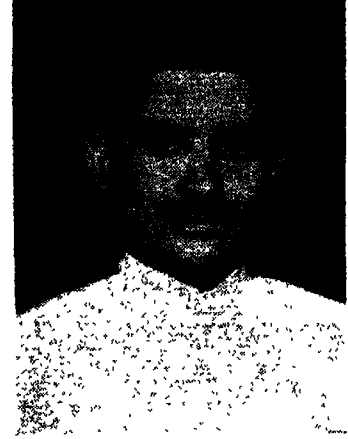
आप जहाँ अच्छे प्रकाशक थे वहाँ उत्कृष्ट लेखक के रूप में भी आपने प्रतिष्ठा अर्जित की थी। आपकी रचनाओं में 'व्याकरण रत्न' (1935) तथा 'निबन्ध कुसुमावली' (1936) के अतिरिक्त 'सरजा शिवाजी' (1937), 'महाराजा छत्रसाल' (1945) तथा 'भारत माँ के लाल' (1946) आदि उल्लेखनीय हैं।

'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के प्रमुख संचालक के रूप में 'भारत विभाजन' के दिनों में और उसके बाद भी आपने पंजाब की हिन्दू जनता की उल्लेखनीय सेवा की थी और दिन-रात सेवा-कार्य में लगे रहकर अपने स्वास्थ्य तक की बलि दे दी।

आपके निधन के उपरान्त आपके निवास-स्थान करारखाँ मुहल्ले का नाम 'गोपालनगर' रखकर वहाँ के नागरिकों ने आपकी लोक-सेवाओं का सम्मान किया है।

आपका निधन 3 अप्रैल सन् 1974 में हुआ था।

श्री गोपाल दामोदर तामस्कर

श्री तामस्कर जी का जन्म सन् 1889 में जोधपुर में हुआ था। आप इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र और शिक्षा-विज्ञान के प्रकाण्ड पंडित तथा हिन्दी के अध्ययनशील लेखक थे। अनेक वर्ष तक आपने जबलपुर में रहकर शिक्षा-जगत् की उल्लेखनीय सेवा की थी। मराठी-भाषी होते हुए भी आपके मानस में हिन्दी के प्रति अनन्य अनुराग था। आप जबलपुर के ट्रेनिंग कालेज में प्राध्यापक थे।

आपके हिन्दी-प्रेम का ज्वलन्त परिचय इसीसे मिल जाता है कि आपने हिन्दी में बहुविध साहित्य का निर्माण किया था। आपकी हिन्दी-रचनाओं में 'कौटिलीय अर्थशास्त्र-मीमांसा', 'अफलातून की सामाजिक व्यवस्था', 'मराठों का उत्थान और पतन', 'मौलिकता', 'शिवाजी की योग्यता', 'संक्षिप्त कर्मयोग', 'राज्य विज्ञान', 'इंगलैण्ड का संक्षिप्त इतिहास', 'नीति निबन्धावली', 'राधा माधव नाटक', 'वैर का बदला', 'यूरोप में राजनीतिक आदर्शों का विकास' तथा 'शिक्षा मीमांसा' आदि विशेष परिगणनीय हैं।

शाहजी और शिवाजी के इतिहास-काल को लेकर आपने जो अनुसंधान किया था वह भी चार भागों में प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त आपके 50 से अधिक विभिन्न विषयों के महत्त्वपूर्ण निबन्ध भी अभी तक अप्रकाशित ही पड़े हैं। मराठी भाषा-भाषी होते हुए भी आपने हिन्दी-लेखन का प्रशंसनीय व्रत लिया था। आप स्पष्ट वक्ता, निस्पृह, सरल और एकनिष्ठ हिन्दी-सेवी थे।

आपका निधन सन् 1950 में हुआ था।

श्री गोपालदास कार्ष्णि

श्री कार्ष्णि का जन्म सन् 1962 में अविभाजित पंजाब के हरिपुर हजारा से लगभग 8 मील उत्तर-पूर्व में एबटाबाद को जाने वाली सड़क से 1 मील हटकर पर्वत-श्रेणियों के मध्य बागड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आपका स्थान उदासीन सम्प्रदाय के हिन्दी-कवियों की परम्परा में अन्यतम है। आपकी 'गोपाल विलास' नामक कृति अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आपकी 'प्लेगाष्टक', 'कार्ष्णि करुणाभरण', 'ब्रजवासोल्लास', 'स्नेह पत्र रामायण', 'पूर्ण विलास' तथा 'गोपीचन्द विनोद' नामक रचनाएँ उपलब्ध हैं। ये सभी रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

आपकी अनुपलब्ध रचनाओं की संख्या 6 है, जिनके नाम 'श्याम सगाई', 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक', 'श्रीकृष्ण क्रीड़ा का सार', 'कार्ष्णि विनय', 'साधुसिंह उपन्यास' और 'कार्ष्णि कीर्तनम्' हैं। आपने संस्कृत में भी लगभग 7 रचनाएँ की थीं। डॉ० जगन्नाथ शर्मा ने अपने डी० लिट्० के शोध प्रबन्ध में आपका सर्वप्रथम उल्लेख किया है। आपके द्वारा स्थापित एक आश्रम वृन्दावन (मथुरा) में है, जहाँ आपकी शिष्य-परम्परा के अनेक भक्त रहते हैं।

आपका देहावसान मथुरा में सन् 1912 में हुआ था।

श्री गोपालराम गहमरी

श्री गहमरीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद के गहमर नामक ग्राम में सन् 1866 में हुआ था। गहमर में जन्म लेने के कारण ही आपने अपने नाम के साथ 'गहमरी' विशेषण लगा लिया था। यद्यपि आपकी उर्दू, हिन्दी और अँग्रेजी की साधारण शिक्षा ही हुई थी तथापि अपने अनवरत अध्यवसाय से आपने अच्छी योग्यता अर्जित कर ली थी। अपने छात्र-जीवन के प्रारम्भ से ही आप अपने शिक्षा-गुरु बाबू रामनारायणसिंह के सम्पर्क में आकर पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि लिखने की ओर उन्मुख हो गए थे। परिणामतः सन् 1884 में जब आप पटना के नार्मल स्कूल में भर्ती हुए तो वहाँ के पुस्तकालय में आने वाली पत्र-पत्रिकाओं के स्वा-

ध्याय से आपकी वह भावना और भी बलवती हो गई।

सन् 1887 में नार्मल स्कूल की अन्तिम परीक्षा पास करके आप सर्वात्मना लेखन में ही संलग्न हो गए और दो वर्ष तक कोई कार्य नहीं किया। सन् 1889 के नवम्बर मास में आप रोहतासगढ़ के गवर्नमेंट स्कूल में हैडमास्टर हो गए; किन्तु विधि को और ही मंजूर था। आपको बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस के संचालकों ने अपने यहाँ बुला लिया और आप सरकारी नौकरी छोड़कर वहाँ चले गए।

दुर्भाग्यवश आप वहाँ भी अधिक न जम सके और वहाँ से चले आए। इसके उपरान्त कालाकाँकर के राजा रामपालसिंह के आमन्त्रण पर आप उनके यहाँ से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'हिन्दोस्थान' के सम्पादन में सहायतार्थ वहाँ चले गए। कालाकाँकर में उन दिनों एक 'नवरत्न सभा' थी जिसमें पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० राधारमण चौबे, चौबे गुलाबचन्द्र और बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि महानुभाव सम्मिलित हुआ करते थे। ऐसे सुयोग्य लेखकों और कवियो के साथ रहकर आपका हिन्दी-प्रेम और सुपुष्ट हो गया और आपने भारत की अन्य भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद करके अपनी मातृभाषा हिन्दी के भण्डार को भरने का निश्चय किया। अपनी इस भावना की सम्पूर्ति के लिए आपने बंगला भी सीखी थी। कालाकाँकर में रहकर आपने 'बभ्रुवाहन', 'देश दशा' और 'विद्या विनोद' आदि नाटकों के अतिरिक्त 'सौभद्रा' नामक एक उपन्यास भी लिखा था।

कई कारणों से जब आपकी कालाकाँकर में नहीं बनी तो सन् 1891 में आप बम्बई जाकर 'व्यापार सिन्धु' नामक पत्र का सम्पादन करने लगे। इसके साथ-साथ आपने 'भाषा भूषण' नामक पत्र का सम्पादन भी वहाँ से किया था। 'भाषा भूषण' के बन्द हो जाने पर आप मध्यप्रदेश की मण्डला नामक रियासत के प्रसिद्ध ताल्लुकेदार चौ०जगन्नाथप्रसाद के पास चले गए और वहाँ पर रहकर आपने 'माधवी कंकण' और 'भानुमती' नामक पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद के अतिरिक्त 'वसन्त विकास' और 'नए बाबू' नामक पुस्तकों की भी रचना की थी। ये चारों पुस्तकें श्री जगन्नाथप्रसाद ने अपने ही व्यय पर प्रकाशित की थीं। मण्डला में रहते हुए ही आपने मेरठ से प्रकाशित होने वाले 'साहित्य सरोज' नामक पत्र का सम्पादन भी किया था और वहीं से आपने पहला जासूसी ढंग का मासिक पत्र 'गुप्त कथा' नाम से निकाला था। मण्डला के बाद आप जबलपुर और जबलपुर से पाटन चले गए थे। सन् 1897 आप फिर 'वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी सम्पादक होकर बम्बई चले गए और वहाँ पर आपने 'देवरानी जेठानी', 'बड़ा भाई', 'सास पतोहू', 'दो बहन' तथा 'गृह लक्ष्मी' आदि अनेक बंगला पुस्तकों का अनुवाद किया जो वेंकटेश्वर प्रेस से ही छपी थीं। सन् 1899 में आप वहाँ से कलकत्ता जाकर 'भारत मित्र' के स्थानापन्न सम्पादक हो गए; किन्तु वहाँ भी अधिक दिन न जम सके और सन् 1900 में अपनी जन्मभूमि गहमर लौट आए।

गहमर आकर आपने 'जासूस' नामक एक मासिक पत्र प्रारम्भ किया और इसके लिए प्रति मास एक जासूसी उपन्यास लिखने का संकल्प भी किया। आपके इस प्रकार के उपन्यासों में 'अद्भुत लाश' (1896), 'गुप्तचर' (1899), 'बेकसूर की फाँसी' (1900), 'सरकती लाश' (1900), 'खूनी कौन' (1900), 'बेगुनाह का खून' (1900) 'जमुना का खून' (1900), 'डबल जासूस' (1900), तथा 'मायाविनी' (1901) आदि उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों के माध्यम से आपने जहाँ लोकप्रियता अर्जित की वहाँ जनसाधारण को हिन्दी की ओर भी आकर्षित किया। इन उपन्यासों के अतिरिक्त आपने कुछ जासूसी कहानियाँ भी लिखी थीं। जिनके संकलन 'जासूस की डाली' (1927) और 'हंसराज की डायरी' (1941) प्रसिद्ध हैं। अपनी इन औपन्यासिक कृतियों के अतिरिक्त आपने 'होम्योपैथिक चिकित्सा का भैषज्य तत्त्व और चिकित्सा प्रणाली' नामक ग्रन्थ भी लिखा है। आपने जहाँ जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में अपनी विशिष्टता के कारण हिन्दी का कानन डायल होने का सौभाग्य प्राप्त किया था वहाँ आपका वक्रतापूर्ण गद्य भी अपनी विशिष्टता के लिए याद किया जाता है। आपकी गद्य शैली पर जहाँ बंकिमचन्द्र चटर्जी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है वहाँ समय-समय

पर पत्रिकाओं में प्रकाशित आपके निबन्ध आपकी गद्य शैली की भंगिमा के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

आपका निधन 20 जून सन् 1946 को हुआ था।

श्री गोपाललाल ठाकोर

श्री ठाकोर का जन्म सन् 1894 में राजस्थान के सवाई माधोपुर नामक नगर में हुआ था और बाद में आपका परिवार स्थायी रूप से बूंदी में रहने लगा था। आप 'वेंकटेश्वर समाचार' बम्बई के ख्यातनामा सम्पादक मेहता लज्जाराम शर्मा के आत्मीय तथा शिष्य थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा श्री रामजीवन नागर की देख-रेख में हुई थी।

आपकी 'विष्णुगुप्त चाणक्य' नामक पुस्तक मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर की ओर से उसकी 'होलकर हिन्दी-ग्रन्थमाला' के अंतर्गत प्रकाशित हुई थी और समिति ने उसे पुरस्कृत भी किया था।

आपका निधन जून 1936 में बूंदी में हुआ था।

श्री गोपालसिंह नेपाली

कविवर नेपाली का जन्म बिहार राज्य के चम्पारन जिले के बेतिया नामक स्थान में 11 अगस्त सन् 1911 को हुआ था। प्रवेशिका तक आपकी शिक्षा वहीं हुई थी और यही आपके अध्ययन की सीमा थी। आपका प्रारम्भिक नाम गोपालबहादुरसिंह था और प्रारम्भ से ही प्राकृतिक दृश्यों की अभूतपूर्व सुषमा के दर्शन करने की आपमें बहुत चाह थी और आप घंटों एकान्त में बैठे रहते थे। आपके इसी प्रकृति-प्रेम ने आपको कवि बना दिया और एक दिन सहसा आप 'भारत गगन के जगमग सितारे' नामक कविता के माध्यम से कवि-रूप में प्रकाशित भी हो गए। आपकी यह सबसे पहली काव्य-रचना 1930 में लहेरिया सराय दरभंगा से प्रकाशित होने वाले 'बालक' मासिक में छपी थी। वह कविता बेतिया के मिडिल स्कूल के नेपालीजी के एक शिक्षक ने अपने पत्र के साथ आचार्य रामलोचनशरण के पास प्रकाशनार्थ भेजी थी। धीरे-धीरे आप प्रौढ़ रचनाएँ करने लगे। अपने इसी काव्य-प्रेम के कारण आप सन् 1931 में कलकत्ता में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में भी सम्मिलित हुए। यहीं से आपके काव्य-विकास का प्रथम द्वार उद्घाटित हुआ था। वहीं पर आपने पहले-पहल सर्वश्री यामिनी सेन गुप्त, रामानन्द चटर्जी, बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', शिवपूजनसहाय, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र और कृष्णकान्त मालवीय आदि अनेक विभूतियों के दर्शन किए थे। आचार्य शिवपूजन-सहाय, बेनीपुरीजी और दिनकरजी के बहुत अनुरोध करने पर भी उस अधिवेशन में सम्पन्न हुए 'कवि-सम्मेलन' में नेपालीजी ने अपनी कविता नहीं पढ़ी और यही कहा—"पहले मुझे कविता सुनाने की कला तो सीखने दीजिए। भीड़ के सामने कविता कैसे पढ़ी जाती है, अभी मुझे यह ही जानना है?" कलकत्ता जाकर आपको बहुत प्रेरणा मिली और वहीं से आपने कवि-सम्मेलनों में भाग लेने का निश्चय कर लिया।

सन् 1932 में काशी में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अभिनन्दन-उत्सव के समय नागरी प्रचारिणी सभा में आयोजित विराट् 'कवि-सम्मेलन' में नेपालीजी हिन्दी-काव्य-गगन पर 'धूमकेतु' के समान प्रतिष्ठित हुए। उस अवसर पर काशी-नरेश, ओरछा-नरेश, दरभंगा-नरेश और हथुआ के महाराजा के अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र के सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, श्यामसुन्दरदास और शिवपूजनसहाय प्रभृति अनेक साहित्यकार उपस्थित थे और कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कर रहे थे। इस सम्मेलन में पधारे हुए 115 कवियों में से जो 15 कवि कविता-पाठ के लिए चुने गए थे उनमें नेपालीजी भी थे।

उस दिन नेपालीजी द्वारा जीवन में बिलकुल पहली बार किया गया कविता-पाठ सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। उसके बाद आप प्रयाग में सम्पन्न हुए 'द्विवेदी मेले' में आयोजित 'कवि-सम्मेलन' में सम्मिलित हुए और वहाँ भी अपने अनूठे काव्य-पाठ से सबको मन्त्र-मुग्ध कर दिया। आपके इस कविता-पाठ से प्रभावित होकर 'सुधा' के सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव आपको लखनऊ ले गए और वहाँ नेपालीजी ने निरालाजी के साथ 'सुधा' के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया। उन्हीं दिनों आपकी पहली काव्य-कृति 'पंछी' गंगा-पुस्तक माला की ओर से प्रकाशित हुई और उसकी भूमिका निरालाजी ने लिखी थी। सन् 1934 में आप दिल्ली चले आए और हिन्दी के पुराने पत्रकार तथा उपन्यासकार श्री ऋषभचरण जैन द्वारा सम्पादित सिने-साप्ताहिक 'चित्रपट' में संयुक्त सम्पादक हो गए। आपके दिल्ली-प्रवास के दिनों में ही आपकी 'उमंग' नामक दूसरी काव्य-रचना ऋषभचरण जैन की संस्था 'साहित्य-मंडल' से प्रकाशित हुई थी। थोड़े दिन दिल्ली में रहकर आप रतलाम (मध्य प्रदेश) चले गए और 2 वर्ष तक वहाँ 'रतलाम टाइम्स' (बाद में 'पुण्य-भूमि')का सम्पादन किया। जिन दिनों आप रतलाम में थे उन दिनों हिन्दी के प्रख्यात लेखक डॉ० प्रभाकर माचवे भी वहीं पर थे और उन्होंने वहाँ के दरबार हाईस्कूल से ही मैट्रिक किया था। माचवे के बड़े भाई श्री काशीनाथ बलवन्त माचवे उस स्कूल में गणित के अध्यापक थे। माचवेजी का 'मॉडर्न मौरेलिटी' शीर्षक सबसे पहला अँग्रेजी लेख नेपालीजी ने ही 'रतलाम टाइम्स' में छापा था। बाद में 'नेपालीजी की कविता में प्रकृति-चित्रण' शीर्षक उनका दूसरा लेख भी आपने इसी पत्र में प्रकाशित किया था। मालवा-निवास के इन दिनों में नेपालीजी के काव्य में वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों ने पर्याप्त प्रेरणा दी थी। आपकी 'मालवा में पावस' तथा 'मालवा डगर पर' आदि रचनाएँ इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। बाद में सन् 1937 से 1939 तक आपने पटना के साप्ताहिक 'योगी' के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया था और फिर आप 2-3 वर्ष बेतिया राज्य के प्रिंटिंग प्रेस में मैनेजर भी रहे थे।

सन् 1944 में नेपालीजी बम्बई की फिल्म-कम्पनी 'फिल्मिस्तान' में गीतकार के रूप में पहुँच गए और सबसे पहले आपने उसकी 'मजदूर' फिल्म के गाने लिखे, जो जनता में पर्याप्त लोकप्रिय हुए। सन् 1945 में आपको सर्वश्रेष्ठ गीतकार होने का 'पुरस्कार' भी मिला था; जो बंगाल फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन' की ओर से प्रदान किया गया था। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक आप बम्बई ही रहे और आपने जिन फिल्मों के गीत लिखे, उनमें, 'मजदूर' के अतिरिक्त 'बेगम', 'शिकारी', 'नागचम्पा', 'गजरे', 'लीला', 'तिलोत्तमा', 'पवन पुत्र', 'माया बाजार', 'नरसी भगत', 'नाग पंचमी', 'सफर', 'नजराना', 'शिव भक्ति', 'तुलसीदास', और 'जय भवानी' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। 'तुलसीदास' फिल्म का यह गीत हमारे लिए कवि का उद्‌बोधन-सा लगता है :

सच मानो तुलसी ना होता, तो हिन्दी कहीं पड़ी होती।
उसके माथे पर रामायण की, बिन्दी नहीं जड़ी होती।।

आपने स्वयं भी 'हिमालय-फिल्म्स' नाम से नेपाल के राणा के सहयोग से एक फिल्म-कम्पनी बनाई थी, जिसकी ओर से 'नजराना' और 'खुशबू' नामक फिल्में बनाई थीं। 'नजराना' की केवल आठ रीलें ही बनी थीं कि वे जल गईं और 'खुशबू' रिलीज हो गई थी। इन फिल्मों के 'चली आना हमारे अँगना', 'तुम न कभी आओगे पिया', 'दिल लेके तुम्हीं जीते, दिल देके हमीं हारे', 'दूर पपीहा बोला', 'ओ नाग कहीं जा बसियो रे, मेरे पिया को ना डसियो रे', 'इक रात को पकड़े गए दोनों, जंजीर में जकड़े गए दोनों', 'रोटी न किसी को किसी को मोतियों का ढेर, भगवान् तेरे राज में अंधेर है अंधेर' तथा 'प्यासी ही रह गई पिया मिलन को अँखियाँ राम जी' आदि अनेक गीत इतने लोकप्रिय हुए थे कि आज भी जब हम किसी को इन गीतों को गुनगुनाते हुए सुनते हैं तो बरबस नेपालीजी की याद दिल को कचोट जाती है। पत्रकारिता और गीत-लेखन के अतिरिक्त नेपाली ने

देहरादून मिलिटरी में 'सिग्नलिंग ब्वाय' का काम भी कुछ दिन किया था। परन्तु प्रकृति से अलमस्त स्वभाव वाले इस कवि को यह अनुशासनपूर्ण जीवन तनिक भी न भाया और आप उससे उन्मुक्त होकर फिर स्वच्छन्द विचरने लगे। नेपाली के कवित्व की यह विशेषता थी कि आपने जहाँ फिल्मों में हिन्दी गीतों को प्रतिष्ठित करके, उसे सर्वथा नई शैली और भाषा प्रदान की, वहाँ साहित्यिक गीत भी लिखने में आप बेजोड़ थे। जब पहले-पहल आपका 'कल्पना करो, नवीन कल्पना करो' गीत हिन्दी-पाठकों के समक्ष आया तो उसको बहुत पसंद किया गया। यहाँ तक कि श्री बच्चन ने आपके इस गीत के वजन पर ही 'इसलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो' गीत लिखा। संस्कृत की प्रणाली पर यह छन्द सबसे पहले हिन्दी मे नेपाली जी ने ही प्रयुक्त किया था। वैसे तो आपके अनेक साहित्यिक गीत ऐसे हैं जो आज भी पाठकों के मन-प्राण को अपनी मार्मिकता से अभिभूत किए हैं, परन्तु 'नौ लाख सितारों ने लूटा', 'दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन' तथा 'तन का दिया रूप की बाती, दीपक जलता रहा रात-भर' आदि अनेक गीत अनूठे बन पड़े हैं। आपकी 'रागिनी', 'नीलिमा','नवीन' और 'पंचमी' आदि पुस्तकों में आपकी गीत-प्रतिभा पूर्णत: विकसित हुई है।

अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में नेपालीजी अपने कवि-कर्म की सार्थकता को चरम शिखर पर पहुँचा दिया था। चीनी आक्रमण के दिनों में हमारे देश का कोई ऐसा नगर नहीं था, कोई ऐसी डगर नहीं थी, जहाँ आपकी 'इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो' तथा 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा' आदि अनेक कविताओं ने हमारे देश की तरुणाई को न झकझोरा हो। इस समय उस देश की जनता कवि के स्वर में स्वर मिलाकर यह उद्घोष कर उठी थी :

बढ़ते ही चलो खून की स्याही की कसम है
सीने पै गोली खाए सिपाही की कसम है
ईश्वर की कसम है जी, इलाही की कसम है
पंजे से लुटेरों के पहाड़ों को छुड़ा लो!

हिन्दी-गीत-काव्य का शृंगार और देश की तरुणाई का हृदय-हार यह कवि अन्त में जनता को यह उद्बोधन देता हुआ 16 अप्रैल 1963 को हमसे सदा-सर्वदा के लिए विदा हो गया :

तुम-सा लहरों में बह लेता, तो मैं भी सत्ता गह लेता,
ईमान बेचता चलता तो मैं भी महलों में रह लेता।
तू दलबन्दी पर मरे, यहाँ लिखने में है तल्लीन कलम!
मेरा धन है स्वाधीन कलम!

श्री गोपालीबाबू 'चोंच'

श्री गोपालीबाबू उर्फ 'चोंच' का जन्म उत्तरप्रदेश के शाहजहाँपुर नामक नगर में 10 अप्रैल, सन् 1904 को हुआ था। आप नगर के अच्छे साहित्यकार थे और हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ लिखने में सिद्धहस्त थे। आप उर्दू में भी लिखा करते थे।

आपका निधन 14 अप्रैल सन् 1974 को हुआ था।

श्री गोपीनाथ पुरोहित

श्री गोपीनाथ पुरोहित का जन्म राजस्थान के जयपुर नामक नगर में सन् 1863 को हुआ था। आपने अपनी अनवरत अध्ययनशीलता से ही सर्वथा असहाय अवस्था में महाराजा कालेज ,जयपुर से एफ०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी, क्योंकि आपके पिताजी का असमय में तब देहान्त हो गया था जबकि आप केवल तीन ही वर्ष के थे। सन् 1888 में आपने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत और अंग्रेजी भाषा में विशेष योग्यता के साथ बी० ए० करने के उपरान्त अंग्रेजी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी विश्वविद्यालय से आपने एल-एल० बी० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की और सन् 1890 के आरम्भ में आपने जयपुर लौटकर वहाँ के महाराजा कालेज में शिक्षक का कार्य प्रारम्भ किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उन दिनों जयपुर से एम० ए० करने वाले आप ही सबसे पहले व्यक्ति थे। आपकी योग्यता और कर्मकुशलता से प्रभावित होकर आपको भारत के गवर्नर जनरल की सेवा में जयपुर राज्य का प्रतिनिधि

बनाकर भेजा गया था। इस उच्च पद पर नियुक्त होने वाले श्री जयपुर के आप पहले व्यक्ति थे। उन्हें 'एजेण्ट गवर्नर जनरल' कहा जाता था। सन् 1905 में आपको राज्य की कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया गया और सन् 1907 में ब्रिटिश सरकार ने आपकी योग्यता और सद्गुणों से प्रभावित होकर आपको 'रायबहादुर' की पदवी से भी विभूषित किया।

आपका स्थान भारतेन्दु युग के अन्यतम साहित्यकारों में हैं। साहित्य के क्षेत्र में आपने शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद करके जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी वह आपकी प्रतिभा की परिचायक है। आपके द्वारा अनूदित शेक्सपीयर के नाटकों में 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस', 'एज यू लाइक इट' और 'रोमियो एण्ड जूलियट' क्रमशः 'वेनिस का व्यापारी' 'मन भावन', (1896) और 'प्रेमलीला' (1897) नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। आपने सिसरो के एक अंग्रेजी निबन्ध का 'मित्रता' तथा 'ग्रेज एलेजी' का 'शोकोक्ति' शीर्षक से अनुवाद किया था। इनके अतिरिक्त आपकी कुछ मौलिक रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं। जिनमें 'वीरेन्द्र' (1897) नामक श्रृंगार-रस-प्रधान उपन्यास और 'सती चरित चमत्कार' (1900) विशेष उल्लेख्य हैं। 'वीरेन्द्र' की रचना आपने अंग्रेजी के किसी ऐतिहासिक उपन्यास के आधार पर की थी। आपने 'भर्तृहरिशतक' का अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद भी किया था। आपकी रचनाओं की भाषा अच्छी खड़ी बोली का उदाहरण प्रस्तुत करती है। इनके अतिरिक्त आपने राजनीति, इतिहास और विज्ञान-सम्बन्धी अन्य कुछ पुस्तकें भी लिखी थीं। आपके यहाँ हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था।

जयपुर राज्य में शासक के उच्चतम पद पर रहते हुए भी आपका रहन-सहन अत्यन्त सरल और सादा था। अपनी सहृदयता और सरलता के कारण आप अपने समय के साहित्यकारों में बड़े लोकप्रिय थे।

आपका निधन सन् 1935 में हुआ था।

श्री गोपीनाथ बरदलै

श्री बरदलै का जन्म 6 जून सन् 1890 को असम प्रदेश के नौगाँव जनपद के 'रोहा' नामक स्थान में हुआ था। आप असम प्रदेश के जन-नेता होने के साथ-साथ हिन्दी-प्रेमी भी थे। आपने बाबा राघवदास और आचार्य काका कालेलकर, श्रीनिवास रुइया, श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, श्री भँवरमल सिंघी तथा श्री अमृतलाल नाणावटी के साथ मिलकर सन् 1938 में सारे असम प्रदेश का 15 दिन तक दौरा करके राष्ट्रभाषा हिन्दी का सन्देश वहाँ के जन-जन में पहुँचाया था। सन् 1938 में जिन दिनों आप प्रदेश के मुख्यमन्त्री थे तब आपने वहाँ के विद्यालयों में आठवीं कक्षा तक हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाया था।
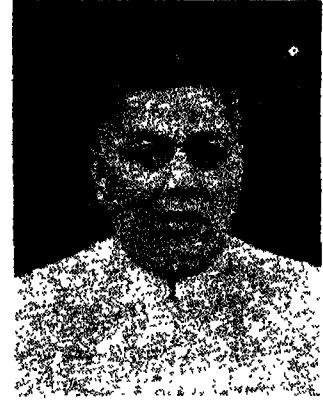
सन् 1945 के अन्त में जब देश में भाषा को लेकर हिन्दी-हिन्दुस्तानी का विवाद चला तब आपने गान्धीजी की प्रेरणा पर 'असम हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' की स्थापना ही नहीं की प्रत्युत आपने गान्धीजी की पुस्तक 'अनासक्ति योग' का हिन्दी से असमिया में अनुवाद भी किया। आप उन दिनों 'हिन्दुस्तानी प्रचार समिति' के अध्यक्ष थे। बाद में आप मृत्यु-पर्यन्त 'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' के भी सभापति रहे थे।

राष्ट्रभाषा तथा असम प्रदेश की उल्लेखनीय सेवा करने के उपलक्ष्य में आपकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने की दृष्टि से 'अकेला प्रकाशन मन्दिर, तिनसुकिया (असम)' की ओर से सन् 1952 में जो 'बरदलै स्मृति-ग्रन्थ' प्रकाशित किया गया था, उससे आपकी हिन्दी-निष्ठा का सम्यक् परिचय मिलता है। आपको इस ग्रन्थ में 'पूर्वांचल का सजग प्रहरी' कहा गया था।

आपका निधन 5 अगस्त सन् 1950 को हुआ था।

श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय

श्री उपाध्यायजी का जन्म मध्य प्रदेश के मालवा अंचल के आगर नामक नगर में श्री शालिग्राम उपाध्याय के यहाँ 16मार्च सन्1898 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मराठी में हुई थी और बाद में आपने हिन्दी पढ़ी थी। आगर के मिडिल स्कूल से 'हिन्दी मिडिल' की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने निरन्तर चार वर्ष तक संस्कृत तथा उर्दू आदि भाषाओं का अच्छा अभ्यास किया था। सन् 1916 के प्रारम्भ में कुछ दिन तक आगर के मिडिल स्कूल में अध्यापन-कार्य करने के उपरान्त आपने ग्वालियर राज्य की 'क्लैरिकल'परीक्षा उत्तीर्ण की और धार राज्य के एक स्कूल में लगभग 4 मास तक शिक्षक का कार्य भी किया। अपने पिता के असामयिक देहावसान के उपरान्त आपने उनके स्थान पर दिसम्बर सन् 1916 से जुलाई सन् 1918 तक आगर में अनिच्छापूर्वक 'पटवारी' का भी काम किया था। इस बीच आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'प्रथमा' परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली थी।
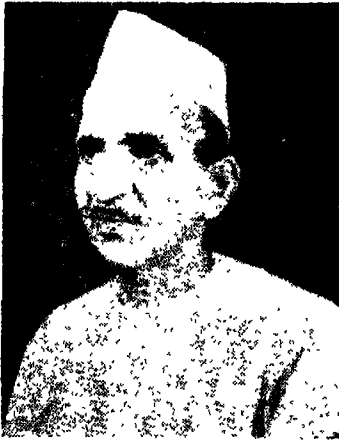
सन् 1912-13 से आगर के साहित्यिक जागरण का आप पर गहरा प्रभाव पड़ा और आप पत्र-पत्रिकाओं में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचनाएँ प्रकाशनार्थ भेजने लगे। आपका पहला लेख अपने जातीय पत्र 'औदीच्य हितेच्छु' में प्रकाशित हुआ था और दूसरा लेख पूना के चित्रशाला प्रेस से प्रकाशित होने वाले 'चित्रमय जगत्' में। इसके बाद तो आपकी लेखनी ने चहुँमुखी प्रगति की, और आपकी रचनाएँ 'स्वदेश बान्धव', 'बाल हितैषी', 'हितकारिणी', 'चन्द्रप्रभा', 'मर्यादा', 'माधुरी', 'वीणा' 'आदर्श', 'मनोरंजन', 'श्रीशारदा', 'संसार', 'गौड़ हितकारी' तथा 'श्री कमला' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होने लगी थीं। आपने जहाँ अनेक विषयों पर लेख और कविताएँ लिखीं वहाँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में भी अपना सक्रिय सहयोग दिया था। जिन पत्र-पत्रिकाओं में आपने सम्पादक तथा सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य किया था उनमें 'हिन्दी चित्रमय जगत्' (पूना), 'पंचराज' (नासिक), 'हिन्दी नवजीवन' (अहमदाबाद), 'भ्रमर' (बरेली), 'सुदर्शन' साप्ताहिक (देहरादून), 'विद्या' (राऊ), 'खादी जीवन (उज्जैन), 'नवजीवन' साप्ताहिक (उदयपुर) 'अखण्ड भारत' तथा 'नवराष्ट्र' दैनिक (बम्बई) आदि के नाम विशेष उल्लेख्य हैं।

आपने जहाँ पत्रकारिता और फुटकर लेखन प्रचुर परिमाण में किया था वहाँ अनेक मौलिक पुस्तकों का सृजन करने के साथ-साथ मराठी और गुजराती से बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद भी किया था। इस प्रसंग में 'भाग्य परीक्षा' 'लघु भारत', 'भारतीय कहानियाँ', 'विनोद और आख्यायिका', 'जब सूर्योदय होगा', 'वाल्मीकि विजय', 'बंग-विजेता', 'डिमास्थनीज', 'चार्ल्स ब्राउल', 'बीसवीं सदी', तथा 'मालवा के प्राचीन विद्वद्रत्न' आदि (मराठी से अनूदित) और 'जीवन का आदर्श' तथा 'सन्ध्या धर्म रहस्य' (गुजराती से अनूदित) आदि विशेष परिगणनीय हैं। आपने इनके अतिरिक्त लोकमान्य बालगंगाधर तिलक द्वारा प्रणीत 'गीता रहस्य' (हिन्दी) के तृतीय संस्करण की भाषा का संशोधन भी किया था। इसी बीच आपने बरेली के श्री राधेश्याम कथावाचक के अनुरोध पर 'न्यू एल्फ्रेड

थियेट्रिकल कम्पनी (बम्बई) में 6 मास तक हिन्दी मास्टर और सहकारी नाटककार के रूप में भी कार्य किया था।

आपको लेखन की प्रेरणा प्रख्यात पत्रकार श्री सिद्धनाथ माधव आगरकर से उस समय मिली थी जब वे आगर (मालवा) के मिडिल स्कूल में अध्यापन का कार्य करते थे। आप पहले 'युवराज' उपनाम से भी लेख आदि लिखा करते थे और कुछ रचनाओं पर आपने पिताजी का नाम भी साथ लगाकर अपना नाम 'गोपीवल्लभ शालिग्राम उपाध्याय' छपवाया था। आप प्रेस-सम्बन्धी व्यवस्था करने में भी अत्यन्त निपुण थे और अनेक प्रेसों का संचालन तथा व्यवस्थापन भी आपने किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आपकी प्रवृत्ति अध्यात्म-चिन्तन की ओर हो गई थी और प्रायः प्रवास में रहकर ही आपने अपना सारा जीवन व्यतीत किया था। आप स्वभाव से इतने मधुर और सरल थे कि कोई भी व्यक्ति आपको अपने जाल में फँसा सकता था यही कारण है कि आप अपनी सरलता, स्पष्टवादिता और सत्यप्रियता के कारण इधर-उधर भटककर अपना जीवन-यापन करते रहे। 'स्वल्प सन्तोष' ही आपका जीवन-मन्त्र था।

आपका निधन 8 मार्च सन् 1966 को हुआ था।

श्री गोपीवल्लभ कटिहा

श्री कटिहाजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बरेली नगर में सन् 1905 में हुआ था। आपका कार्य-क्षेत्र सहारनपुर ही रहा था। कविता के क्षेत्र में आपकी प्रतिभा प्रखरता से विकसित हुई थी। आपकी रचनाएँ प्रायः सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले 'विकास' साप्ताहिक में ही प्रकाशित हुआ करती थीं।

आपका निधन दिसम्बर सन् 1934 में हुआ था।

श्री गोलोकबिहारी धल

श्री धल का जन्म 15 दिसम्बर सन् 1921 को उड़ीसा के ढेंकानल राज्य के गंजेइ डीह् नामक गाँव में हुआ था। आपने ढेंकानल स्कूल, रेवन्सा कालेज कटक, पटना कालेज तथा लन्दन विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। ढेंकानल और कटक के रेवेन्सा कालेज के सर्वोत्तम छात्र होने के नाते आपने पुरस्कार भी प्राप्त किए थे।

आप उड़िया भाषा के उच्चकोटि के लेखक होने के साथ-साथ हिन्दी के भी लेखक थे। आपने उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द की अमर कृति 'गोदान' का उड़िसा भाषा में अनुवाद करने के अतिरिक्त हिन्दी में ध्वनि-विज्ञान पर सर्वप्रथम एक ग्रन्थ लिखा था। आपकी हिन्दी में और भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा आयोजित सन् 1956, 57 और 58 की प्रौढ़-साहित्य-लेखन की प्रतियोगिताओं में आपको तीन बार पुरस्कृत किया गया था।

'गोदान' के अतिरिक्त आपने प्रेमचन्द की 'गबन', 'प्रेमाश्रम' तथा 'प्रतीक्षा' आदि कृतियों का उड़िया अनुवाद करने के अतिरिक्त फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' तथा भगवतीचरण वर्मा के 'भूले-बिसरे चित्र' के भी उड़िया भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किए हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की दिशा में आपने अभिनन्दनीय कार्य किया था।

आपका देहावसान 24 जून सन् 1974 को हुआ था।

श्री गोवर्धन गोस्वामी

आपका जन्म सन् 1894 में पटना के गायघाट नामक मोहल्ले में हुआ था। बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि होने के कारण आपका हिन्दी के प्रति अनन्य अनुराग था। गायघाट के चैतन्य पुस्तकालय और चैतन्य सभा के मन्त्री के रूप में आपने हिन्दी के प्रचार और प्रसार का प्रशंसनीय कार्य किया था। स्वतन्त्र लेखन के साथ-साथ आपने अनेक उपयोगी ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी किया था, उनमें से अधिकांश अप्रकाशित ही रह गए।

आपका निधन सन् 1941 में हुआ था।

सेठ गोविन्ददास

सेठजी का जन्म मध्य प्रदेश के जबलपुर नामक नगर के एक अत्यन्त सम्पन्न परिवार में सन् 1896 में हुआ था। अपने पितामह सेठ गोकुलदास के विचारों और संस्कारों का विशेष प्रभाव सेठजी के व्यक्तित्व पर बहुत अधिक पड़ा है और उन्हींके निरीक्षण में आपकी शिक्षा की व्यवस्था हुई थी। आपने घर पर ही रहकर अँग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी का भली-भाँति अध्ययन किया था। बचपन से ही स्वाध्याय की प्रवृत्ति रहने के कारण आपने देशी तथा विदेशी सभी प्रमुख लेखकों की रचनाएँ ढूंढ़-ढूंढ़कर तन्मयता पूर्वक पढ़ी थीं।

लेखन की ओर आपका झुकाव देवकीनन्दन खत्री की जासूसी रचनाओं को पढ़कर हुआ था, जिसका ज्वलन्त उदाहरण आपका पहला उपन्यास 'चम्पावती' है। आपने नाटक के क्षेत्र में विशेष ख्याति अर्जित की और समाज की प्रायः सभी समस्याओं पर आपने अपनी लेखनी चलाई थी। उपन्यास के क्षेत्र में भी हमें आपकी प्रतिभा का परिचय भली-भाँति मिलता है। संस्मरण और आत्मकथा-लेखन के अतिरिक्त यात्रा और राजनीति-सम्बन्धी रचनाएँ भी आपने विपुल परिमाण में लिखी हैं। एक सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर स्वाधीनता-आन्दोलन में आकण्ठ डूब जाना आपके जीवन की प्रमुख विशेषता थी। सन् 1920 में भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन से आपका जो सम्पर्क हुआ वह जीवन के अन्तिम क्षण तक ज्यों-का-त्यों बना रहा। अनेक बार जेल-यात्राएँ करने के साथ-साथ आपने स्वाधीनता से पूर्व अनेक बार विभिन्न भारतीय प्रतिनिधि मण्डलों के नेता और सदस्य के रूप में विदेश यात्राएँ भी की थीं।

स्वाधीनता से पूर्व आप केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे और तब से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक आप पहले संविधान परिषद् और बाद में लोकसभा के सदस्य रहे। सन् 1962 में जब भारत की द्वितीय लोकसभा निर्वाचित हुई तब संसद् का वरिष्ठतम सदस्य होने के नाते अध्यक्ष का विधिवत् निर्वाचन होने से पूर्व लोकसभा की अध्यक्षता आपने ही की थी। यह आपके व्यक्तित्व की विशिष्टता ही थी कि आप महाकौशल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के ग्यारह वर्ष तक अध्यक्ष रहे और जब मध्य प्रदेश का निर्माण हुआ तो उसकी प्रदेश कांग्रेस कमेटी के भी बीस वर्ष तक अध्यक्ष रहे। अनेक सांस्कृतिक आन्दोलनों में भी आपका सक्रिय योगदान रहा था। गोरक्षा आन्दोलन के तो आप जनक तथा सूत्रधार ही थे। राजनीति, संस्कृति और साहित्य की त्रिवेणी का अद्भुत संगम आपका जीवन था। आपने जहाँ राजनीति के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता अर्जित की थी वहाँ साहित्य के क्षेत्र में भी आपकी प्रतिष्ठा कम नहीं थी। आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मेरठ-अधिवेशन के अध्यक्ष भी रहे थे। आपकी साहित्य-सेवाओं को दृष्टि में रखकर सम्मेलन ने अपनी सर्वोच्च सम्मानित उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' से भी आपको विभूषित किया था। स्वराज्य, स्वभाषा, गोरक्षा और राष्ट्रीय एकता आपके जीवन के ऐसे मूलाधार थे जिनके लिए आपने अपने को सदा सन्नद्ध रखा था। इनके सम्बन्ध

में आपने कभी झुकना अथवा समझौता करना पसन्द नहीं किया था। आपकी साहित्यिक सेवाओं के सम्मान में जबलपुर विश्वविद्यालय ने आपको डॉक्टरेट की मानद उपाधि भी प्रदान की थी।

एक उत्कृष्ट पत्रकार के रूप में भी आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। जबलपुर से आपके सम्पादन में प्रकाशित साहित्यिक मासिक पत्रिका 'श्रीशारदा' में आपकी सम्पादन-कला का प्रखर रूप देखने को मिलता है। अपने साहित्यिक जीवन के उषा-काल में आपने 'शारदा पुस्तक माला' और 'शारदा भवन पुस्तकालय' की स्थापना करके अपनी संगठन-क्षमता का भी अभूतपूर्व परिचय दिया था। सन् 1919 में शारदा पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर खेलने के लिए आपने 'विश्व प्रेम' नामक जो नाटक लिखा था उसमें आपके उत्कृष्ट नाटककार होने के चिह्न स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। फिल्म-निर्माण की दिशा में भी आपने सन् 1934 में 'आदर्श चित्र लिमिटेड' संस्था के माध्यम से 'धुआँधार' नामक चित्र प्रस्तुत करके अपनी अभूतपूर्व संगठन क्षमता का परिचय दिया था। आपने जहाँ उत्कृष्ट नाटककार के रूप में ख्याति अर्जित की है वहाँ एकांकी-लेखन की विधा के प्रारम्भिक उन्नायकों में आपका नाम अग्रणी स्थान रखता है।

आपकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय आपके साहित्य को देखने से भली-भाँति मिल जाता है। आपने जहाँ एक उत्कृष्ट नाटककार के रूप में साहित्य को अपनी प्रतिभा से आलोकित किया है वहाँ उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में भी आपका 'इन्दुमती' उपन्यास सर्वथा अनन्य और अनूठा है। तीन भागों में प्रकाशित आपकी आत्मकथा इस विधा का उदात्त रूप प्रस्तुत करती है। कवि के रूप में भी आपके कृतित्व का परिचय 'गोविन्ददास ग्रन्थावली' (तीन भाग, सन् 1958) को देखने से भली-भाँति मिल जाता है। यात्रा-विवरण का उत्कृष्ट उदाहरण आपके द्वारा रचित 'पृथ्वी परिक्रमा' (सन् 1961), तथा 'उत्तराखण्ड की यात्रा' नामक ग्रन्थ हैं। इस प्रसंग में आपकी 'सुदूर दक्षिण पूर्व' तथा 'हमारा प्रधान उपनिवेश' नामक पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं। इतिहास की दिशा में भी आपकी लेखनी का सफल अवदान हिन्दी को प्राप्त हुआ है। आपकी ऐसी रचनाओं में 'अँग्रेजों का आगमन और उसके बाद', 'प्राग्' (ऐतिहासिक काल के) भारत की एक झलक', 'प्राचीन काश्मीर की एक झलक' नामक पुस्तकें हैं। नाटक और एकांकी के क्षेत्र में तो आपकी देन सर्वथा अनन्य और अभिनन्दनीय है। आपकी ऐसी रचनाओं में तीन नाटक हर्ष, प्रकाश, कर्त्तव्य (1936) 'धोखेबाज' (1941), 'सप्तरश्मि' (1941), 'शशिगुप्त' (1942), 'विश्व प्रेम' (1942),'त्याग या ग्रहण'(1943), 'कर्ण' (1946), 'अष्ट दल' (1946),'दुःख क्यों'(1946), 'पाकिस्तान नाटक' (1946), 'प्रेम या पाप' (1946), 'बड़ा पापी कौन' (1948), 'दो नाटक' (1949), 'हर्ष' (1950), 'सुख किसमें' (1950),'राम से गांधी'(1952), 'चतुष्पथ' (1952), 'सेवा पथ' (1952), 'महत्त्व किसे' (1953), 'एकादशी' (1953), 'रहीम' (1955), 'सबै भूमि गोपाल की'(1956),'महाप्रभु वल्लभाचार्य'(1957), 'गरीबी या अमीरी' (1957), 'शबरी' (1959), 'कर्त्तव्य' 'कुलीनता', 'पंचभूत', 'नवरस', 'प्रकाश', 'बाल गांधी', 'भविष्यवाणी', 'भारतेन्दु', 'भिक्षु से गृहस्थ', 'भूदान यज्ञ', 'महात्मा गांधी', 'शाप और वर', 'शेरशाह', 'सन्तोष कहाँ', 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य', 'स्पर्द्धा तथा अन्य एकांकी' तथा 'हमारे मुक्तिदाता' आदि विशिष्ट है। जीवनी-लेखन के क्षेत्र में भी आपने अपनी प्रतिभा का उत्कृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत किया है। आपकी ऐसी रचनाओं में 'मोतीलाल नेहरू—एक जीवनी' (1961) तथा 'युगपुरुष नेहरू' (1964) प्रमुख हैं। गम्भीर मनोवैज्ञानिक चिन्तन की दृष्टि से आपकी 'आत्म-निरीक्षण' (1959) तथा 'मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ' नामक रचनाओं का विशेष महत्त्व है। समीक्षा के क्षेत्र में भी आपका 'नाट्य-कला-मीमांसा' नामक ग्रन्थ अन्यतम कहा जा सकता है। आपकी 'रामलीला—एक परिचय' तथा 'ब्रज और ब्रजभाषा' (रामनारायण अग्रवाल के साथ) नामक कृतियाँ लोक-भाषा और लोक-संस्कृति का उदात्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

आपका निधन 18 जून सन् 1974 को हुआ था।

पंडित गोविन्दनारायण मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म कलकत्ता में सन् 1859 में हुआ था।

आपके पिता पंडित गंगानारायण प्रसिद्ध बंगाली कृष्णदास पाल के सहपाठी थे। शिक्षा-समाप्ति पर वे कलकत्ता में दलाली का कार्य करने लगे थे। गंगानारायणजी की रुचि संस्कृत के अध्ययन की ओर विशेष थी, अतः उन्होंने अपने सुपुत्र श्री गोविन्दनारायण को संस्कृत की शिक्षा देने के लिए काशी से पंडित बुलवाए थे। उन्हीं पंडितों से श्री मिश्रजी ने प्रारम्भ में 'अमर कोश', 'मुहूर्त्त चिन्तामणि', 'वेद' और 'अष्टाध्यायी' आदि ग्रन्थ पढ़े थे। आप केवल 5 वर्ष के ही थे कि आपका विवाह कर दिया गया और उसी वर्ष आपको 'संस्कृत कालेज' में भरती करा दिया गया। उन दिनों संस्कृत के 'किरातार्जुनीय', 'रघुवंश' और 'शकुन्तला' आदि ग्रन्थों की पढ़ाई तीसरी कक्षा में ही हो जाती थी। आपने संस्कृत साहित्य के साथ-साथ प्राकृत व्याकरण का भी अच्छा अध्ययन किया था। अपनी छात्रावस्था में ही आप संस्कृत में भी कविता करने लगे थे। जब आप दूसरी कक्षा में ही थे कि आपकी आँखें खराब हो गईं और डाक्टरों की सम्मति से आपने पढ़ाई छोड़ दी। काफी चिकित्सा कराने के उपरान्त एक आँख तो ठीक हो गई, किन्तु दूसरी में अन्त तक विकार बना ही रहा। इसके उपरान्त घर पर अपने स्वाध्याय के बल पर ही आपने अपना अध्ययन आगे बढ़ाया।

जब सन् 1873 में कलकत्ता से आपके फुफेरे भाई श्री सदानन्द मिश्र ने 'सार सुधानिधि' नामक साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया तब आपने उसमें पूर्ण सहयोग किया; किन्तु बाद में इसकी साझेदारी छोड़कर आपने सम्पादन आदि में ही सहयोग करना प्रारम्भ किया था। कभी-कभी तो आप पूरे-के-पूरे अंक की ही सामग्री लिख डालते थे। 'सार सुधानिधि' से क्योंकि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र विशेष स्नेह करते थे, इसलिए मिश्रजी की भी उनसे घनिष्ठता हो गई और उनके सम्पर्क से तो आपके लेखन की प्रतिभा ने और भी गुल खिलाए। 'सार सुधानिधि' के अतिरिक्त आप 'उचित वक्ता' और 'धर्म दिवाकर' नामक पत्रों में भी प्रायः लेखादि लिखा करते थे। आपने सन् 1903 में 'सारस्वत सर्वस्व' नामक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया था।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अँग्रेजी और बंगला के अतिरिक्त आप पंजाबी और गुजराती भी जानते थे और मराठी पुस्तकों का भाव भी समझ लेते थे। जिन लोगों ने आपके द्वारा लिखित 'विभक्ति-विचार' और 'प्राकृत-विचार' शीर्षक लेख पढ़े हैं वे आपकी प्रतिभा तथा योग्यता से भली-भाँति परिचित हैं। आपके द्वारा विरचित ग्रन्थों में 'शिक्षा-सोपान', 'सारस्वत सर्वस्व', 'कवि और चित्रकार' (अपूर्ण), 'प्राकृत विचार', 'विभक्ति विचार' तथा 'आत्माराम की टें-टें' (अपूर्ण) आदि उल्लेखनीय हैं। आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी, जो सन् 1901 में प्रयाग में सम्पन्न हुआ था। आप ऐसा प्रौढ़ गद्य लिखते थे कि उसे पढ़कर बाणभट्ट की 'कादम्बरी'-जैसा आनन्द अनुभव होता था। जिन लोगों ने आपके द्वारा सम्मेलन के सभापति के पद से दिया गया भाषण तथा आपकी 'कवि और चित्रकार' शीर्षक रचनाएँ पढ़ी हैं। वे हमारे इस कथन से शत-प्रतिशत सहमत होंगे।

पत्र-पत्रिकाओं में जब कुछ लोग विभक्ति मिलाकर लिखते और कुछ उन्हें अलग करके लिखते थे तब आपने 'विभक्ति-विचार' नाम से जो आन्दोलन चलाया था वह भी अभूतपूर्व था। जब कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हित-वार्ता' पत्र में मिश्रजी की यह लेखमाला छपा करती थी तो समस्त हिन्दी-जगत् में कुहराम-सा मच जाता था। मिश्रजी विभक्ति को मिलाकर लिखने के पक्षपाती थे। जिन दिनों आपने यह लेखमाला लिखी थी उन दिनों पंडित अम्बिकादत्त व्यास, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, लाला भगवानदीन तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि ने भी यही आपत्ति उठाई। इस विवाद में पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री और अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी आदि ने भी भाग लिया था। जब श्री सखाराम गणेश देउस्कर ने भी 'विभक्ति-प्रलय' शीर्षक एक पत्र प्रकाशित करके विभक्ति-सम्बन्धी इस नई प्रवृत्ति का 'कारण या इतिहास'

जानने की उत्कण्ठा व्यक्त की तो उसकी ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। मिश्रजी की दृष्टि में खड़ी बोली में 'विभक्ति-प्रयोग' की परम्परा और उच्चारण की दृष्टि से एवं विभक्ति प्रत्यय के अपद होने के कारण शब्द के साथ ही विभक्ति का प्रयोग शुद्ध था।

इसी प्रकार जब बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने अपने 'भारत मित्र' पत्र में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' में प्रकाशित 'भाषा की अनस्थिरता' शीर्षक लेख के 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर 'आत्माराम' के नाम से एक लम्बी लेख-माला उनके विरोध में लिखी तो मिश्रजी भी कैसे चुप रहते? द्विवेदीजी पर मिश्रजी की बहुत श्रद्धा थी। फलस्वरूप आपने 'हिन्दी बंगवासी' में 'आत्माराम की टें-टें' शीर्षक लेखमाला में उनकी खूब खबर ली। इसका समर्थन करते हुए मिश्रजी ने लिखा था—"संस्कृत व्याकरण के नियमों से हिन्दी व्याकरण की बहुत-से विषयों में विशेषता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार जिन शब्दों के आदि में स्वर वर्ण रहते हैं, उनके आगे प्रयुक्त होने वाले निषेधवाचक 'न' का भी 'अन' हो जाता है। इससे हिन्दी में 'अनरीति', 'अनहोनी', 'अनमिल', 'अनपढ़' तथा 'अनसुनी' आदि अनेक शब्द सर्वथा विशुद्ध माने जाते हैं। ऐसी अवस्था में द्विवेदीजी ने यदि 'अनस्थिरता' शब्द लिख ही दिया तो क्या अनर्थ किया?" इन तर्क-वितर्कों के बाद अन्त में 'आत्माराम' शान्त हो गए और मिश्रजी के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित करते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने एक पत्र में लिखा था—"गोविन्दः शरणं मम"। इस घटना के उपरान्त भाषा और व्याकरण-सम्बन्धी विवादों में मिश्रजी के मत को महत्त्व दिया जाने लगा।

आपका निधन 23 अगस्त सन् 1923 को 64 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

श्री दुगवेकर का जन्म मध्य प्रदेश के सागर नामक नगर में 17 सितम्बर सन् 1883 को हुआ था। आपने महामहोपाध्याय पं० गंगाधर शास्त्री के निरीक्षण में काशी में अध्ययन किया था। आप लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की प्रेरणा पर पत्रकारिता के क्षेत्र में आए थे और पूना (महाराष्ट्र) में रहते हुए आपने 'अरुणोदय' और 'हिन्दू पंच' नामक साप्ताहिक पत्रों के सम्पादन में सहयोग दिया था।

बाद में आपने काशी को ही अपना कार्य-क्षेत्र बना लिया और यहाँ रहकर 'भारतेन्दु' (1908), 'आर्य महिला' साप्ताहिक, 'भारत धर्म' (1923), 'निगमागम चन्द्रिका', 'बाल बोध' (1915) और 'गृहस्थ' (1939) आदि पत्र-पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था।

आपके द्वारा लिखी गई पुस्तकों में 'धर्म कल्पद्रुम', 'कालधर्म', 'सुभद्रा हरण', 'हर हर महादेव', 'गोविन्द गीता' और 'मालविकाग्निमित्र' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से अन्तिम दो अनुवाद हैं। आपने 'भारतेन्दु नाटक मंडली' नामक संस्था की स्थापना करके उसके माध्यम से हिन्दी-रंगमंच की स्थापना में अनन्य सहयोग दिया था।

आपका निधन 26 जून सन् 1961 को जबलपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था।

पंडित गौरीदत्त

पंडित गौरीदत्त का जन्म पंजाब प्रदेश के लुधियाना नामक नगर में सन् 1836 में हुआ था। आपके पिता पंडित नाथू मिश्र प्रसिद्ध तान्त्रिक और सारस्वत ब्राह्मण थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा साधारण ही हुई थी। केवल पंडिताई का कार्य करने तक ही वह सीमित थी। जब आपकी आयु केवल
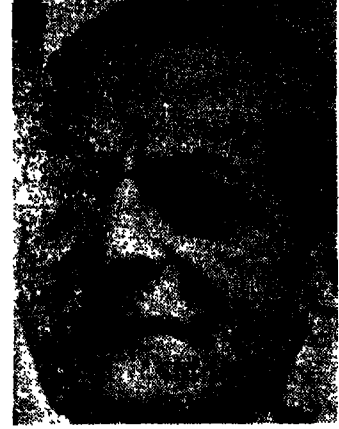
5 वर्ष की ही थी तब आपके घर एक संन्यासी आया और आपके पिताजी को उसने ऐसा ज्ञान दिया कि वे सब माया-मोह त्यागकर घर से निकल गए। आपकी माताजी अपने दोनों बच्चों को लेकर मेरठ चली आई थीं। मेरठ आकर गौरीदत्तजी ने अपने अध्ययन को आगे बढ़ाया। रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज से बीजगणित, रेखागणित, सर्वेइंग, ड्राइंग तथा शिल्प आदि की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने फारसी और अँग्रेजी का भी विधिवत् ज्ञान अर्जित किया। वैद्यक और हकीमी की दिशा में भी आपने अपनी योग्यता से उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर ली थी।

हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में पंडित गौरीदत्तजी ने जो उल्लेखनीय कार्य किया था उससे आपकी ध्येयनिष्ठा और कार्य-कुशलता का परिचय मिलता है। जब आप मेरठ के मिशन स्कूल में अध्यापक थे तब महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती मेरठ पधारे थे। मुंशी लेखराज के बगीचे में स्वामीजी ने अपने भाषणों में एकाधिक बार इस बात के लिए बहुत खेद व्यक्त किया था कि देशवासी हिन्दी और देवनागरी को त्यागकर उर्दू-फारसी और अँग्रेजी के दास होते जा रहे हैं। स्वामीजी के इन भाषणों का युवक गौरीदत्त पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और आपने उसी समय से देवनागरी के प्रचार और प्रसार का संकल्प कर लिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती क्योंकि अपने भाषणों में राष्ट्रीयता का प्रचार भी किया करते थे, अत: अंग्रेज सरकार आपको राजद्रोही मानती थी। जब मिशन स्कूल के अधिकारियों को यह पता चला कि गौरीदत्तजी स्वामीजी के भाषणों को तन्मयतापूर्वक सुनते हैं और उनके प्रति श्रद्धा भी प्रदर्शित करते हैं तो उन्होंने गौरीदत्तजी से इस पर अपनी नाराजगी प्रकट की। युवक गौरीदत्त पर स्कूल के अधिकारियों की इस घटना का यह प्रभाव पड़ा कि आपने अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए स्कूल से तुरन्त त्यागपत्र दे दिया और दूसरे ही दिन मेरठ के 'बैदवाड़ा' नामक मुहल्ले के एक चबूतरे पर 'देवनागरी पाठशाला' की स्थापना कर दी। आपकी ये ही पाठशाला कालान्तर में 'देवनागरी कालेज' का रूप धारण कर गई।

बच्चों को नागरी लिपि सिखाने के अलावा आप गली-गली में घूमकर उर्दू, फारसी और अँग्रेजी की जगह हिन्दी और देवनागरी लिपि के प्रयोग की प्रेरणा किया करते थे। कुछ दिन बाद आपने मेरठ में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना भी की और सन् 1894 में उसकी ओर से सरकार को एक ज्ञापन इस आशा का दिया कि अदालतों में नागरी-लिपि को स्थान मिलना चाहिए। आपने ज्ञापन में देवनागरी लिपि की उपादेयता और ग्राह्यता पर इस प्रकार प्रकाश डाला था—"देवनागरी इतनी सरल एवं वैज्ञानिक लिपि है कि उसके 9 अक्षर और 12 मात्राएँ केवल 3 दिन में आसानी से सीखे जा सकते हैं तथा 6 महीने में तो उसका पूरा अभ्यास किया जा सकता है। अन्य किसी भी लिपि में जैसा लिखा जा सकता है वैसा उच्चारण नहीं होता, जबकि देवनागरी लिपि में जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढ़ा जाता है। पढ़ने और लिखने में कुछ भी अन्तर नहीं रहता।" अपने इसी ज्ञापन में आपने अन्त में यह भी लिखा था—"उर्दू और फारसी के शब्दों को यदि नागरी लिपि में लिखना शुरू कर दिया जाए तो वे बहुत सरल हो जायेंगे।" पंडितजी इसके लिए दबाव डालते रहे। आपके इस अनवरत प्रयास के फलस्वरूप ही 18 अप्रैल सन् 1900 को सर एण्टोनी मैकडानल ने एक अध्यादेश जारी करके उत्तर प्रदेश के स्कूलों और पाठशालाओं में हिन्दी के पठन-पाठन को स्वीकृति प्रदान करके हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया था।

पंडितजी नागरी और हिन्दी के इतने दीवाने बन गए थे कि आपने अपने अँगरखे पर 'जय नागरी' शब्द भी अंकित करा लिया था और पारस्परिक अभिवादन के समय 'जय नागरी' ही कहा करते थे। उनकी समाधि पर इसीलिए लोगों ने 'देवनागरीप्रचारानन्द' शब्द अंकित किए थे। देवनागरी के प्रचार के लिए आपने जो एक गीत बनाया था उससे आपकी लगन और निष्ठा का परिचय मिलता है।

गीत का प्रारम्भ कुछ इस प्रकार था :

भजु गोविन्द हरे हरे
भाई भजु गोविन्द हरे हरे।
देवनागरी हित कुछ धन दो,
कुछ न देगा धरे-धरे।

आपके देवनागरी-प्रेम का सबसे अधिक सुपुष्ट प्रमाण इससे अधिक और क्या हो सकता है कि अपनी मृत्यु से पूर्व आपने 1 जून सन् 1903 को जो अपना वसीयतनामा लिखा था उसमें अपनी पूरी सम्पत्ति (मकान और सामान तक) नागरी के प्रचार के लिए अर्पित कर दी थी। आपकी यह हार्दिक आकांक्षा थी कि आपकी इस निधि से स्थान-स्थान पर 'देवनागरी पाठशालाएँ' खोली जायँ। एक अत्यन्त साधारण स्थिति वाले इस व्यक्ति ने इसके अलावा अपनी खून-पसीने की कमाई से अर्जित 32 हजार रुपये की राशि देवनागरी-प्रचार के कार्य में स्वाहा कर दी थी।

आपने देवनागरी के प्रचार के लिए जहाँ स्थान-स्थान पर अनेक पाठशालाएँ स्थापित कीं वहाँ अपनी लेखनी को भी इस दिशा में लगाया। आपकी 'नागरी-सौ अक्षर', 'अक्षर दीपिका', 'नागरी की गुप्त वार्ता', 'लिपि बोधिनी', 'देवनागरी के भजन' और 'गौरी नागरी कोष' आदि पुस्तकें इसकी ज्वलन्त साक्षी हैं। आपने 'देवनागरी की पुकार' नामक एक और पुस्तक की रचना करने के अतिरिक्त 'देवनागर', 'देवनागरी प्रचारक', 'देवनागरी गजट' तथा 'नागरी पत्रिका' नामक पत्र का सम्पादन तथा प्रकाशन भी किया था। इस कार्य के लिए आप प्रायः अपने क्षेत्र के मेलों-खेलों में भी जाया करते थे और और वहाँ पर नाटक प्रदर्शित करके और भाषण आदि देकर जनता को देवनागरी के महत्त्व से परिचित कराया करते थे। अपनी इसी धुन के कारण जनता आपको 'देवनागरीप्रचारानन्द' और 'हिन्दी का सुकरात' तक कहती थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आपने 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना (16 जुलाई सन् 1893) से पूर्व ही सन् 1892 में 'देवनागरी प्रचारक' नामक पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन करके हिन्दी-प्रचार के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। यहाँ तक कि आपके के इस कार्य में बिहार के श्री अयोध्या-प्रसाद खत्री ने भी अपना योगदान दिया था।

पंडित गौरीदत्तजी ने जहाँ देवनागरी लिपि के प्रचार तथा प्रसार के लिए इतने ग्रन्थ लिखे और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ सम्पादित कीं वहाँ आपने 'देवरानी जेठानी की कहानी' नामक एक उपन्यास भी लिखा। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-गद्य-लेखन सन् 1873 में प्रारम्भ किया था। पंडित गौरीदत्त के इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1870 में हुआ था। इससे पूर्व हिन्दी-गद्य में सैयद इन्शा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' (सन् 1800 के आस-पास) नामक पुस्तक ही थी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी का पहला उपन्यास 'देवरानी-जेठानी की कहानी' ही है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी के इतिहासकारों में अग्रणी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक ने इसकी उपेक्षा करके पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी की 'भाग्यवती' (प्रकाशन-वर्ष सन् 1877) तथा लाला श्रीनिवासदास की 'परीक्षा गुरु' (प्रकाशन-वर्ष सन् 1882) नामक पुस्तकों को अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में क्रमशः 'हिन्दी का पहला सामाजिक उपन्यास' और 'अँग्रेजी ढंग का पहला हिन्दी उपन्यास' माना है। इस सम्बन्ध मे यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि इस उपन्यास के प्रकाशन पर उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर ने 'सौ रुपए' का पुरस्कार भी प्रदान किया था। आपके द्वारा अनूदित 'गिरिजा' (1904) नामक एक और उपन्यास भी उल्लेखनीय है।

पंडित गौरीदत्तजी जहाँ अच्छे गद्य-लेखक थे वहाँ खड़ी बोली कविता के क्षेत्र मे भी आपकी प्रतिभा अद्‌भुत थी। इसका सुपुष्ट प्रमाण आपके 'देवरानी जेठानी की कहानी' नामक उपन्यास की भूमिका के अन्त में दिए गए उस पद से मिल जाता है जो आपने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर द्वारा पुरस्कार प्राप्त होने पर लिखा था :

दया उनकी मुझ पर अधिक वित्त से
जो मेरी कहानी पढ़े चित्त से
रही भूल मुझसे जो इसमें कहीं
बना अपनी पुस्तक में लेवें वहीं
दया से कृपा से क्षमा रीति से
छिपावें बुरों को भले प्रीति से

इससे यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि गद्य-लेखन और और पद्य-लेखन दोनों ही क्षेत्रों में पंडित गौरीदत्त का नाम सर्वथा अग्रणी और अनन्य है। यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी के कुछ विवेकी अध्येताओं का ध्यान गौरीदत्तजी की

इस प्रतिभा की ओर गया है और यह भ्रम अब धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है कि हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'भाग्यवती' और 'परीक्षा गुरु' न होकर 'देवरानी-जेठानी की कहानी' ही है। इस उपन्यास का प्रकाशन सर्वप्रथम सन् 1870 में मेरठ के 'जियाई छापेखाने' में लीथो-पद्धति से हुआ था और इसकी प्रति अब भी 'नेशनल लायब्रेरी कलकत्ता' में सुरक्षित है। इस उपन्यास का पुनर्प्रकाशन अब पटना विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और 'समीक्षा' नामक शोध-पत्रिका के सम्पादक डॉ० गोपाल राय ने करके वास्तव में एक अभिनन्दनीय कार्य किया है।

आपका निधन 8 फरवरी सन् 1906 को हुआ था।

श्री गौरीशंकर घनश्याम द्विवेदी

श्री द्विवेदीजी का जन्म 29 मार्च सन् 1914 को राजस्थान के जोधपुर जनपद के दुन्दाड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आपका प्राय: सारा जीवन सिन्ध प्रान्त में हिन्दी का प्रचार करने में ही व्यतीत हुआ था। अनेक वर्ष तक आप राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हैदराबाद (सिन्ध) की हिन्दी मासिक पत्रिका 'कौमी बोली' के सम्पादक भी रहे थे।
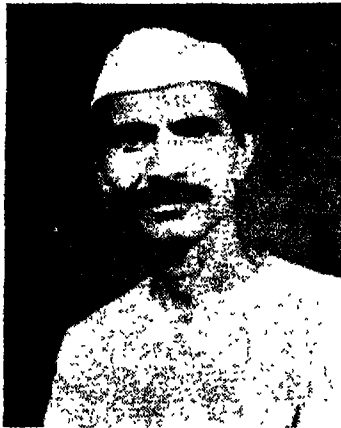
आप मूलत: शिक्षक थे और हैदराबाद (सिन्ध) की 'गिदूमल संस्कृत पाठशाला' में संस्कृत का शिक्षण-कार्य करने के साथ-साथ संगीत आदि में भी पर्याप्त रुचि रखते थे। आपने सुप्रसिद्ध संगीताचार्य स्व० वामनरावजी के पास अनेक वर्ष तक रहकर संगीत में निपुणता प्राप्त की थी।

हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त सिन्धी तथा मराठी भाषाओं का भी आपको पर्याप्त ज्ञान था और इन दोनों भाषाओं की अनेक उत्कृष्टतम रचनाओं का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया था। आपकी ऐसी अनूदित रचनाएँ 'सरस्वती' 'बाल सखा', 'देशदूत' और 'कौमी बोली' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

एक सफल हिन्दी-प्रचारक के रूप में भी आपका नाम सिन्ध और राजस्थान में गौरव के साथ याद किया जाता है। भारत-विभाजन के उपरान्त आप जोधपुर (राजस्थान) में ही आ गए थे और अनेक छात्रों को आपने राष्ट्रभाषा-प्रेम से अभिषिक्त किया था।

आपका निधन 25 अगस्त सन् 1975 को हुआ था।

श्री गौरीशंकर प्रसाद

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के रसड़ा नामक औद्योगिक नगर में सन् 1876 को हुआ था। आपकी आरम्भिक पढ़ाई आपके पिता श्री साँवलदास ने घर पर ही की थी। क्योंकि उन दिनों वहाँ कोई अँग्रेजी स्कूल नहीं था, इसीलिए आपने अपने नगर के स्कूल से हिन्दी मिडिल की परीक्षा पास करके अपने पिता की दुकान पर ही बैठना प्रारम्भ कर दिया था। 14 वर्ष की अवस्था में आपको अँग्रेजी पढ़ने के लिए बनारस भेजा गया और वहाँ से सन् 1900 में आपने बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी।

आर्थिक समस्याओं के कारण आपने पढ़ाई आगे बन्द कर दी और सीतापुर जनपद की मल्लारपुर रियासत के राजा के निजी मन्त्री बनकर वहाँ चले गए। सीतापुर में नौकरी करते हुए आपने परिवार के भरण-पोषण का काफी ध्यान रखा और निरन्तर आगे ही आगे बढ़ते जाने का संकल्प अपने मन में सँजोते रहे। आपके मन में सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने की हिलोरें बराबर उठती रहती थीं। फलत: सन् 1904 में आप इलाहाबाद चले गए और वहाँ के म्योर सेण्ट्रल कालेज में कानून की कक्षाओं में प्रविष्ट हो गए और सन् 1906 में आप एल-एल०बी० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।

आपको इस सफलता के लिए विश्वविद्यालय की ओर से स्वर्ण पदक भी प्रदान किया गया था। उस समय वहाँ आपके गुरु सर तेजबहादुर सप्रू भी थे जो किसी समय भारतीय राजनीति में अग्रणी रहे थे। आपके सहपाठी कृष्णाराम मेहता भी प्रख्यात अँग्रेजी दैनिक 'लीडर' के प्रबन्धक के रूप में विख्यात हो चुके हैं।

आपने बनारस में आकर वकालत प्रारम्भ की और वहाँ के सार्वजनिक जीवन में निरन्तर आगे बढ़ने का प्रयत्न करते रहे। उन दिनों बनारस में ऐसी कोई संस्था नहीं थी जिसमें आपका सक्रिय योगदान न रहा हो। वहाँ का अग्रवाल समाज, आर्यसमाज, डार्विन पिलग्रिम ट्रस्ट, सेवा समिति, नागरी प्रचारिणी सभा तथा आर्य विद्या सभा आदि ऐसी अनेक संस्थाएँ थीं जिनमें आप बराबर सक्रिय सहयोगी रहते थे। नागरी प्रचारिणी सभा के तो आप अनेक वर्षों तक प्रधानमन्त्री रहे थे। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की राजनीति में भी आपने उल्लेखनीय सहयोग दिया था और आप उसके आन्दोलनों में निरन्तर भाग लेते रहे।

नागरी प्रचारिणी सभा के कार्य-काल में आपने वहाँ की जनता में अपना समस्त कार्य हिन्दी में ही करने का जो आन्दोलन किया था उससे आपको अनेक बार अपमान तक सहना पड़ा था। कदाचित् सारे उत्तर प्रदेश में आप पहले वकील थे जो अपना सारा काम-काज हिन्दी में ही करते थे।

सन् 1912 में आपने डॉ० केशवदेव शास्त्री और रामनारायण मिश्र के साथ मिलकर 'आर्य विद्या सभा' की स्थापना करके उसकी ओर से दयानन्द स्कूल की नींव डाली, जो आज एक विशाल संस्था के रूप मे काशी की जनता की सेवा कर रहा है। सन् 1932 में आप अपने मित्र पं० रामनारायण मिश्र और श्री चन्द्रभाल (श्रीप्रकाशजी के भाई और डॉ० भगवानदास के सुपुत्र) के साथ यूरोप यात्रा पर गए थे, जहाँ से लौटकर आपने 'यूरोप में छः मास' नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी थी, जिसे इंडियन प्रेस प्रयाग ने प्रकाशित किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस यात्रा में आपने अपना रहन-सहन, पहनावा और भोजन आदि सब भारतीय रखा था। सन् 1936 में आपने उत्तर प्रदेश कौंसिल का चुनाव भी लड़ा था। उसी दौड़-धूप में आपके पाँव में एक फोड़ा हो गया; जो मधुमेह के कारण हुआ था। इसी फोड़े के आपरेशन के समय मई 1937 में आपका शरीरान्त हो गया।

महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

श्री ओझाजी का जन्म राजस्थान के सिरोही क्षेत्र के रोहेड़ा नामक ग्राम के एक सहस्र औदीच्य ब्राह्मण-वंश में 15 सितम्बर सन् 1863 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला से ही 6 वर्ष की आयु में हुई थी और 8 वर्ष की आयु में आपका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया था। कुल-परम्परा के अनुसार आपको 'शुक्ल यजुर्वेद' कण्ठाग्र कराया गया था और यह चमत्कार ही था कि इस संहिता के 40 अध्याय आपने केवल 40 दिन में ही कण्ठस्थ कर लिए थे। जब ओझाजी के पिता हीराचन्दजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र नन्दरामजी को आजीविका-अर्जित करने की दृष्टि से बम्बई भेजा तब उनके वहाँ भली-भाँति जम जाने के उपरान्त 14 वर्ष की अवस्था में गौरीशंकरजी को भी वहाँ भेज दिया गया। बम्बई पहुँचकर आप एक प्राइवेट
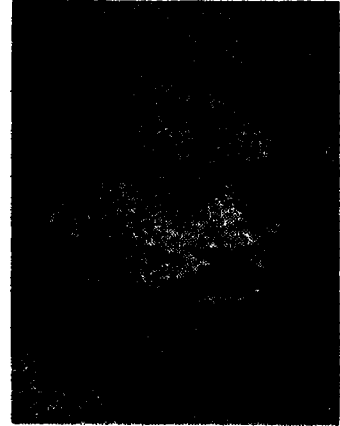
स्कूल में पढ़ने लगे। कुछ दिन बाद आप 'गोकुलदास तेजपाल सेमिनरी' नामक विद्यालय में प्रविष्ट हो गए और फिर 3 वर्ष के उपरान्त 'एलफिस्टन हाईस्कूल' में भरती होकर सन् 1884 में वहाँ से 'मैट्रिक' की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके साथ-साथ आपने पण्डित गट्टूलाल से संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया। सन् 1886 में आपने 'विलसन कालेज' में आगे का अध्ययन जारी रखने के लिए प्रवेश लिया, किन्तु अस्वस्थता के कारण आप परीक्षा देने से पूर्व ही अपनी जन्म-भूमि को लौट आए।

बम्बई के अध्ययन-काल में आपने संस्कृत और गणित में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। गाँव में स्वास्थ्य-लाभ करके आप फिर बम्बई लौट गए और वहाँ पर आपने प्राचीन लिपियों के पढ़ने और प्राचीन इतिहास के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। 2 वर्ष तक निरन्तर अपने अध्यवसाय और योग्यता से आपने इस दिशा में बहुत सफलता प्राप्त कर ली थी। यहाँ तक कि आपकी इसी योग्यता के बल पर आपको उदयपुर के महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदान ने सन् 1888 में अपने 'इतिहास-कार्यालय' का मन्त्री नियुक्त कर लिया और सन् 1990 में आप 'विक्टोरिया हाल संग्रहालय' के अध्यक्ष बन गए। बाद में जब अजमेर में 'नया सरकारी म्यूजियम' खुला तो आप उसके अध्यक्ष हो गए और सेवा-निवृत्ति तक वहीं पर रहे।

जिन दिनों आप बम्बई में रहते थे तब आप वहाँ की 'एशियाटिक सोसाइटी' के पुस्तकालय में घण्टों तक बैठकर अपने अध्ययन और शोध को निरन्तर आगे ही आगे बढ़ाते जाते थे। यहाँ तक कि पुस्तकालय में उपलब्ध सभी पुरातत्त्व-सम्बन्धी ग्रन्थों का आद्यन्त पारायण भी आपने कर लिया था। डॉ० भगवानलाल 'इन्दु' के सान्निध्य से भारत की प्राचीन लिपियों के सम्बन्ध में भी आपने बहुत-कुछ खोज-बीन की थी। जब आपने गुजरात के इतिहास में सहयोग देने के लिए आपको डॉ० 'इन्दु' ने अपने यहाँ आमन्त्रित किया तो आपने बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय की प्रायः सभी पुस्तकों और पाण्डुलिपियों का चूड़ान्त पारायण किया था। अपनी इसी ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति के कारण आपके मानस में 'राजस्थान के प्राचीन इतिहास' को जानने की उत्कण्ठा बलवती हो गई। फलस्वरूप आपने 'राजस्थान के इतिहास' का भी सर्वांगीण अध्ययन-अनुशीलन किया। सन् 1893 में आपने 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' नामक एक ऐसा विशाल शोध-ग्रन्थ लिखा जिसमें भारत की प्रायः सभी प्राचीन लिपियों का इतिहास प्रस्तुत किया गया था। इस पुस्तक की अनुशंसा जहाँ देश के अनेक विद्वानों और इतिहासवेत्ताओं ने की थी वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् 1923 में इसे 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से भी सम्मानित किया था। यह ओझाजी के गहन पाण्डित्य और अनुसन्धान-पटुता का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि आपके इस ग्रन्थ को केन्द्रीय साहित्य अकादेमी की ओर से भी सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित करने की अनुशंसा की गई है और मराठी में इसका अनुवाद प्रकाशित भी हो चुका है। यह अनुवाद सन् 1918 में प्रकाशित, संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण में किया जाता है।

सन् 1902 में आपने कर्नल टाड का जो जीवन-चरित्र लिखा था उसका भी हिन्दी-संसार में प्रचुर स्वागत हुआ था। जब भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन उदयपुर गए थे तब आपको ही उनका स्वागत-सत्कार करने तथा भ्रमण कराने का कार्य सौंपा गया था। जब सन् 1903 में आपको भी अन्य राजाओं और महाराजाओं के साथ दिल्ली आमन्त्रित किया गया तब आपकी योग्यता तथा ज्ञान से प्रभावित होकर सिरोही के तत्कालीन महाराजा श्री केशरीसिंहजी ने ओझाजी से 'सिरोही का प्रामाणिक इतिहास' लिखने का अनुरोध किया। फलस्वरूप आपने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक वह इतिहास प्रस्तुत कर दिया। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त आपने 'पृथ्वीराज विजय' नामक एक ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ का सम्पादन भी किया था; जो उस समय प्रकाशित न हो सका था। आपने प्राकृत अभिलेखों के आधार पर 'भारत के प्राचीन राजवंश' नामक एक विशाल ग्रन्थ की रचना भी की थी। इनके अतिरिक्त आपकी महत्त्वपूर्ण कृतियों में 'सोलंकियों का इतिहास', 'सिरोही राज्य का इतिहास', 'राजपूताने का इतिहास', 'बासबाड़ा राज्य का इतिहास', 'जोधपुर राज्य का इतिहास' (दो भाग), 'प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास', 'बीकानेर राज्य का इतिहास' (दो भाग), 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' तथा 'अशोक की धर्म-लिपियाँ' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके शोधपूर्ण निबन्धों का संकलन 'राजस्थान विश्व विद्यापीठ' द्वारा 'ओझा निबन्ध-संग्रह' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

ओझाजी भारतीय पुरातत्त्व और इतिहास के गम्भीर विद्वान् होने के साथ-साथ संस्कृति और ज्ञान की अनेक शाखाओं के भी निष्णात पण्डित थे। यह आपकी विद्वत्ता का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि आप जहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1926 में सम्पन्न हुए भरतपुर-अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए थे वहाँ सम्मेलन ने आपको अपनी सर्वोच्च सम्मानित उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' से भी अलंकृत किया था। भारत सरकार ने भी आपको क्रमशः सन् 1914 तथा सन् 1928 में 'राय बहादुर' और 'महामहोपाध्याय' की सम्मानित उपाधियाँ प्रदान की थीं। सन् 1928 में आप से 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' प्रयाग ने अपने तत्त्वावधान में जहाँ 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' पर तीन भाषण कराए थे, वहाँ सन् 1927 में आप 'गुजरात साहित्य सभा' के सभापति भी बनाए गए थे। सन् 1933 में आप बड़ौदा में आयोजित 'ओरियण्टल कान्फ्रेंस' के इतिहास विभाग के सभापति भी मनोनीत हुए थे। सन् 1933 में जहाँ आपकी साहित्य तथा संस्कृति-सम्बन्धी सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको 'भारतीय अनुशीलन' नामक एक विशाल अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया गया था वहाँ सन् 1937 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट्० की मानद उपाधि भी प्रदान की थी। सन् 1920 में आप 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' की शोध-पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के 13 वर्ष तक सम्मानित सम्पादक भी रहे थे। वास्तव में ओझाजी जहाँ राजस्थान की विलुप्त प्रायः संस्कृति के उद्धारक थे वहाँ ताम्र-पत्रों, पट्टों-परवानों के भी आप एक-मात्र विशेषज्ञ थे। आपका निजी संग्रहालय तथा पुस्तकालय भी अत्यन्त विशाल था। इस संग्रहालय में हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, राजस्थानी, अँग्रेजी, उर्दू, फारसी, पश्तो, मराठी, गुजराती, बंगाली और पंजाबी आदि भाषाओं की लगभग 10 हजार पुस्तकें थीं। आप अनेक वर्ष तक नागरी प्रचारिणी सभा के सम्मानित सदस्य भी रहे थे।

आपके जो अनेक शोधपूर्ण लेख हिन्दी की 'वीणा', 'माधुरी', 'सुधा', 'सरस्वती' तथा 'त्यागभूमि' आदि अनेक प्रमुख पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते थे उनसे भी आपकी विस्तृत इतिहास तथा संस्कृति-सम्बन्धी विद्वत्ता प्रकट होती है। यदि इन सबका संग्रह भी प्रकाशित कर दिया जाय तो इससे साहित्य का बड़ा उपकार होगा।

आपका देहावसान अपने जन्म-स्थान में सन् 1947 में हुआ था।

श्री ग्वाल बन्दीजन

श्री ग्वाल बन्दीजन का जन्म वृन्दावन के कालिया घाट मोहल्ले के सेवाराम बन्दीजन के यहाँ सन् 1791 में हुआ था। आपके पूर्वजों का सम्बन्ध मथुरा से भी था और वहाँ पर भी आपका मकान है। आप जगदम्बा के उपासक थे और शिवजी की उपासना भी किया करते थे। आपने सन् 1822 में मथुरा में एक शिव-मंदिर भी बनवाया था। ब्रजभाषा के सफल कवि श्री नवनीत चतुर्वेदी आपके समकालीन थे। आप अत्यन्त फक्कड़ स्वभाव के थे और शतरंज बहुत अधिक खेला करते थे।

कहा जाता है कि जब आप छोटे थे तब आपके गुरु दयालजी ने आपको प्रणाम न करने पर अपने यहाँ से घमंडी कहकर निकाल दिया। आपने बहुत अनुनय-विनय भी की, किन्तु गुरुजी का कोप कम नहीं हुआ। फलतः आप यमुना-तट पर ही गौएँ चराने लगे। उन्हीं दिनों आपकी भेंट एक तपस्वी से हुई और आप उसकी सेवा करने लगे। वे आपकी भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हींकी कृपा से आपमें कवित्व की प्रतिभा भी प्रस्फुटित हुई। आपकी यह प्रतिभा यहाँ तक बढ़ी कि आप एक ही समय में ग्रन्थ-रचना, कविता बनाना, शिष्यों को पढ़ाना, हर समय जगदम्बा-जगदम्बा का जप करते रहना, शतरंज खेलना, अदृश्य कथन करना, आगत महानुभावों से बातचीत करते रहना और समस्या-पूर्ति में निमग्न रहना आदि अनेक कार्य करते रहते थे।

फक्कड़ स्वभाव के होने के कारण आप प्रायः देशाटन करते रहते थे। नाभा-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह, महाराजा रणजीतसिंह, सुकेत, मण्डी तथा रामपुर आदि रियासतों के आश्रय में आप बहुत रहे थे। रामपुर में आप दो बार जाकर रहे थे। इस देशाटन-वृत्ति के कारण ही आपकी रचनाओं में ब्रजभाषा के साथ-साथ पंजाबी भाषा का पुट भी देखने को मिलता है। आपके खूबचन्द तथा खेमचन्द

नामक दो पुत्र भी थे, जो आपकी भाँति ही सफल कविता किया करते थे। यह भी कहा जाता है कि आपकी जमीन-जायदाद महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में भी थी, जो आपकी मृत्यु के बाद इनसे ले ली गई थी।

आपके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या 50 के लगभग बताई जाती है, जिनमें से 'रस रंग', 'अलंकार-भ्रम-भंजन,' और 'कवि दर्पण' महत्त्वपूर्ण हैं। शेष ग्रन्थों में 'यमुना लहरी' (1822), 'रसिकानन्द' (1824), 'हमीर हठ', 'राधा माधव मिलन', 'राधा अष्टक' (1826), 'श्रीकृष्णाजू को नख-शिख' (1827), 'नेह निबाहन', 'बंशी लीला', 'गोपी पचीसी', 'कुब्जाष्टक' (1828), 'प्रस्तार प्रकाश', 'भक्ति भावन या भक्त भावन' (1834), 'साहित्य भूषण', 'साहित्य दर्पण','दोहा शृंगार','शृंगार कवित्त','कवि दर्पण' (1834), 'दूषण दर्पण' (1835), 'कवित्त बसन्त', 'बंशी बीसा', 'ग्वाल पहेली', 'रामाष्टक', 'गणेशाष्टक', 'दृग शतक', 'कवित्त ग्रन्थमाला', 'कवि हृदय विनोद', 'इश्क लहर दरियाब', 'विजय विनोद' (1849) तथा 'षट्ऋतु वर्णन' (1836) आदि हैं। इनमें से कुछ अप्रकाशित भी हैं। आप देश की प्रायः 19 भाषाओं और बोलियों से परिचित थे, अतः आपके ग्रन्थों में प्रायः सभी भाषाओं के शब्दों का बहुलता से प्रयोग मिलता है।

आपका निधन सन् 1871 में हुआ था।

में सर्वश्री राधावल्लभ जोशी, विप्रलम्भ, रामचरित तिवारी, हुल्लास कवि, फूलचन्द्र मलिक, जगदीश्वरप्रसाद, रामलाल उपाध्याय और कान्हजी सहाय प्रमुख थे।

ऐसा सुना जाता है कि आप अपनी कविताएँ अधिकतर कोयले अथवा कंकड़ से दीवार अथवा जमीन पर लिखकर कागज पर उतारा करते थे। इस काम में कभी-कभी आप अपने भतीजे श्री प्रकाश मलिक की सहायता भी ले लिया करते थे। आपने अनेक स्फुट रचनाएँ करने के अतिरिक्त 'कृष्ण रामायण' नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जिसका प्रणयन आपने अपने प्रसिद्ध आश्रयदाता डुमराँव-नरेश महाराजा सरबजशसिंह के आदेश पर किया था। आप अनेक वर्ष तक डुमराँव के राज-दरबार से सम्बन्धित रहे थे।

डुमराँव-नरेश के निधन के बाद आपका सम्पर्क सूर्यपुरा रियासत के तत्कालीन अधिपति दीवान रामकुमारसिंह से हुआ था। रामकुमारसिंह के निधन के उपरान्त उनके सुपुत्र राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह भी आपका बड़ा सम्मान करते थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के प्रसिद्ध शैलीकार राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह भी इसी राज्य के अधिपति थे और राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह उनके पिता थे।

श्री दुबेजी का निधन सन् 1887 में 68 वर्ष की आयु में हुआ था और आपकी धर्मपत्नी श्रीमती राणाकुमारीजी को डुमराँव राज्य से आजीवन वृत्ति मिलती रही थी।

श्री घनारंग दुबे

श्री दुबेजी का जन्म बिहार के शाहाबाद जिले के अन्तर्गत धनगाँई नामक ग्राम के एक गौड़ ब्राह्मण-परिवार में सन् 1819 को हुआ था। आप बाहरी तड़क-भड़क और प्रदर्शन से बहुत दूर रहते थे। आप स्वभाव से इतने सरल थे कि पगड़ी एक बार बाँधने के बाद उसे उतारते ही न थे। जूते भी आप बहुत कम पहनते थे और किसी सवारी पर चलने का भी आपका स्वभाव न था। वास्तव में आप एक पहुँचे हुए कृष्ण-भक्त और संगीतज्ञ कवि थे। आपसे बहुत से व्यक्तियों ने उन दिनों संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी। ऐसे महानुभावों

सन्त घीसादास

सन्त घीसादास का जन्म सन् 1803 में खेकड़ा (मेरठ) में हुआ था। आपने अपने युग के सन्दर्भ में कबीर आदि सन्तो की मान्यताओं को एक नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया था। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में आपकी यह देन नितान्त मौलिक और नवीन है। घीसा ने एक पन्थ को भी जन्म दिया था। जीतादास, ढ़ीढ़ेदास, प्रेमदास, रामकला, नानू सन्त, हजारीदास तथा अचलदास आदि आपके शिष्य और पन्थानुयायी थे। इन सबने अनेकानेक वाणियों और पदों की रचना की है। ये रचनाएँ मूलतः हस्तलिखित ग्रन्थों के

रूप में ही मिलती हैं। अब उनमें से अधिकांश का दिल्ली से प्रकाशन हो गया है। इन सन्तों की जहाँ-जहाँ गद्दियाँ हैं, वहाँ विपुल साहित्य अध्ययन और अनुसंधान की प्रतीक्षा में पड़ा है।

घीसा-पन्थ की सभी रचनाएँ उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में लिखी गई थीं। आपकी भाषा खड़ी बोली से सम्बन्धित होने के कारण उसका मेरठ क्षेत्र की भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से अपना महत्त्व है। इन रचनाओं में केवल खड़ी बोली की दृष्टि ही नहीं अपितु देश के पुनर्जागरण और राष्ट्रीय क्रान्ति का मन्त्र भी सन्निहित है। इन सन्तों ने सन् 1857 में होने वाली प्रथम राष्ट्रीय क्रान्ति में भी मेरठ क्षेत्र से पर्याप्त योगदान किया था। आपकी रचनाओं में तत्कालीन सामन्ती विरोध की भावना सन्निहित है। इनमें 'हरि को भजे, सो हरि का होई' का स्वर प्रबल है। इस भाँति आप जाति-पाँति की भिन्नता की संकीर्णता में भी विश्वास नहीं करते।

इन सन्तों का मेरठ तथा आस-पास के क्षेत्रों में सामान्य जन-जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव है। इस ओर का दलित वर्ग तो आपको अपना परम पूज्य देव ही मानता है। घीसा सन्त का व्यक्तित्व ऐसा था जिनसे मेरठ तथा उसके आस-पास की जनता ने प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की थी। आपका काव्य-काल भारतेन्दु (1850—1885) से भी पूर्ववर्ती है, अतः हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के समक्ष यह एक प्रश्न-चिह्न खड़ा हो गया है कि गंगादास के अतिरिक्त घीसादास भी ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने भारतेन्दु से पूर्व खड़ी बोली हिन्दी में रचना करके उसके स्वरूप को परिष्कृत किया था।

आपका निधन सन् 1868 में हुआ था।

राजा चक्रधरसिंह

राजा साहब का जन्म सन् 1904 में मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ अंचल के बैरागढ़ नामक स्थान में हुआ था। आपके पूर्वज रायगढ़ राज्य के शासकों में अन्यतम थे। अपने पारम्परिक पारिवारिक गुणों के कारण आपने सर्वप्रथम साहित्य और संगीत की साधना में अपने को लगाया और नाटक, उपन्यास, लेख और कहानी-लेखन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। आपका 'बैरागढ़िया राजकुमार' नामक नाटक और 'माया चक्र' तथा 'अलकापुरी' उपन्यास उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा संकलित 'रत्न-मंजूषा' नामक कृति में जहाँ संस्कृत के सुभाषित समाविष्ट हैं वहाँ 'काव्य-कानन' नामक कृति में ब्रजभाषा की सुललित रचनाएँ संकलित हुई हैं।

आप हिन्दी के साथ-साथ उर्दू में भी अच्छी गजलें लिखा करते थे। आपकी ऐसी गजलों का संकलन 'जोशे फरहत' नाम से देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुआ है। आपकी 'रायरास' नामक रचना अनेक वर्ष तक नागपुर विश्वविद्यालय की एम० ए० कक्षाओं के पाठ्यक्रम में स्वीकृत थी। कविता के साथ-साथ गायन, वादन और नृत्य में भी आपकी अभूतपूर्व गति थी और आपके शासन-काल में रायगढ़ राज्य कत्थक शैली नृत्य के लिए भारत-प्रसिद्ध रहा था। आप अपने समय के श्रेष्ठतम तबला-वादकों में थे। आपने नृत्य, गायन और वादन-सम्बन्धी ग्रन्थ भी लिखे थे, जिनमें 'नर्तन सर्वस्व', 'राग रत्न मंजूषा' और 'ताल तोय निधि' नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

आपकी साहित्य-सम्बन्धी सेवाओं को दृष्टि में रखकर आपको मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1940 में रायपुर में हुए अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया था। आप अपने रायगढ़ राज्य में प्रति वर्ष गणेशोत्सव के अवसर पर देश के मूर्धन्य साहित्यकारों और संगीतज्ञों को बुलाकर सम्मानित किया करते थे।

आपका निधन 7 अक्तूबर सन् 1947 को बयालीस वर्ष की अल्पायु में ही हो गया था।

मुन्शी चतुरबिहारीलाल

मुन्शी चतुरबिहारी लाल का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के पुरविलपुर नामक स्थान में 5 जनवरी सन् 1869 को हुआ था। आपने ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत संचालित होने वाले वहाँ के विद्यालयों के निरीक्षक के रूप में अनेक वर्ष कार्य करने के साथ-साथ बहुत-सी पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण भी किया था।

आपके सुपुत्र प्रो० भगवन्तशरण जौहरी तथा महेशशरण जौहरी 'ललित' हिन्दी के प्रमुख पत्रकार और लेखक हैं और दोनों ही आजकल उज्जैन में स्थायी रूप से रह रहे हैं।

आपका देहान्त 5 जनवरी सन् 1924 को हुआ था।

लाला चतुरसेन गुप्त

लाला चतुरसेन गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के एक छोटे से कस्बे शामली (मुजफ्फरनगर) में सन् 1906 में हुआ था। यद्यपि आपका शिक्षा-काल केवल दो वर्षों तक ही सीमित रहा, और आपकी युवावस्था का प्रारम्भ भी पौराणिक-वातावरण से परिपूर्ण था, तथापि आर्यसमाज के सम्पर्क में आते ही, आपने आर्य साहित्य एवं भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन किया और निरन्तर स्वाध्याय करते रहे। जिसका परिणाम यह हुआ कि आपकी लेखनी से छोटी-बड़ी लगभग सौ पुस्तकें लिखी गईं। अनेक पुस्तकें ब्रिटिश-काल में जब्त भी हुईं। आपकी अनेक पुस्तकें जैसे—'हड़ताल', 'स्वर्ग में हड़ताल', 'धर्म के नाम पर', 'देशी राज्यों में व्यभिचार', 'नरक की रिपोर्ट', 'पूँजीपतियों की कहानी', 'रँगीले लाला', 'कश्मीर कैसे मुसलमान बना', 'पुरुषार्थ प्रकाश', 'स्वर्ग में महात्मा गांधी की प्रेस कांफ्रेंस', 'सुनो कामराजजी', 'राष्ट्रपतिजी के नाम 11 पत्र', 'साम्प्रदायिकता का नंगा नाच', 'नेहरूजी की आर्य विचार-धारा', 'भारत माँ की अश्रुधारा', 'ईसाइयों के खूनी कारनामे', 'विदेशी समाजवाद के मुँह पर चपत', 'गांधीजी की गाय', 'पागलखाने से', 'मैं बुद्धू बन गया', 'भाग्य की बातें', 'मैं हँसूं या रोऊँ', 'परलोक में 26 जनवरी' आदि बहुचर्चित रहीं। आपकी मृत्यु से दो माह पूर्व लिखी पुस्तक 'महान् आर्य हिन्दू जाति मृत्यु के मार्ग पर' इतनी क्रांतिकारी सिद्ध हुई कि दो मास में ही उसके दो संस्करण निकालने पड़े।

गुप्तजी के जीवन का मुख्य ध्येय आर्य-साहित्य का प्रचार और प्रसार ही कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। आपने अपने जीवन में दुर्लभ आर्य साहित्य को ढूंढ़-ढूंढ़कर प्रकाशित किया, और लागत मात्र में देते रहे। महाभारत के 16 खण्डों को छापकर आपने राजस्थान की एक-एक रियासत में स्वयं जा-जाकर प्रचारित किया। 'कौटिल्य अर्थशास्त्र', 'शुक्रनीति', 'नारद-नीति', 'कणिकनीति', 'दण्डनीति', 'विदुर-नीति', 'भोज प्रबन्ध', 'डॉ० बर्नियर की भारत यात्रा' के अनेकों सस्ते संस्करण निकाले। आर्य साहित्य के प्रायः अनेक लुप्त ग्रन्थों, जैसे 'दयानन्द दिग्विजयम्' और 'स्वधर्म रक्षा' को प्रकाशित कर आर्य-समाज की महती सेवा की। अनेकों संस्करणों द्वारा आपने सत्यार्थ प्रकाश की एक लाख से भी अधिक प्रतियाँ, और 'दैनिक-यज्ञ-प्रकाश' की तो दस लाख से भी अधिक प्रतियाँ प्रकाशित कर दी थीं। 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित' व 'व्यवहार-भानु' की भी एक-एक लाख प्रतियाँ विभिन्न माध्यमों से प्रकाशित कराईं।
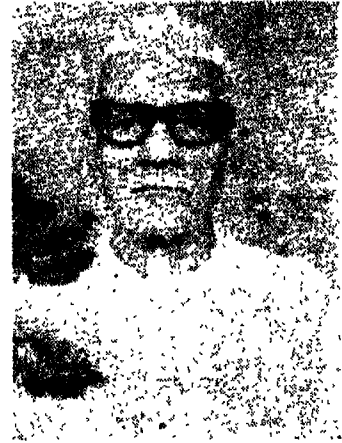
आपने अनेकों प्रकाशनों—जैसे महाभारत प्रकाशन, राष्ट्रनिधि-प्रकाशन, सत्यार्थ प्रकाश धर्मार्थ ट्रस्ट प्रकाशन, धर्म प्रकाशन, भारतीय राजनीति प्रकाशन, सार्वदेशिक प्रकाशन, सार्वदेशिक-साप्ताहिक, आर्य व्यवहार-प्रकाशन इत्यादि से किसी-न-किसी रूप में सम्बन्धित रहकर सैकड़ों पुस्तकों के सस्ते संस्करण निकलवाए। 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक के 'विद्यार्थी जीवन विशेषांक' को एक ही बार में एक लाख छपवाकर, आर्य-साहित्य के इतिहास में

एक स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ दिया।

स्वराज्य रक्षक-दल, भारतीय चाणक्य परिषद्, भारतीय त्यागवादी दल इत्यादि के माध्यम से आपने अनेक लेखकों, विद्वानों, राजनीतिज्ञों की ऐतिहासिक भूलों को उजागर करके उन्हें शुद्ध कराया।

अनेकों दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों के माध्यम से भी आपने आर्य साहित्य की जहाँ श्रीवृद्धि की, वहाँ आर्य (हिन्दू) जाति को समय-समय पर चेताया भी। 'केसरी' साप्ताहिक में उनके 'गुरुजी का चिट्ठा', 'आर्य ज्योति' में 'मैं समाजी कैसे बना' स्तम्भ बहुत समय तक चर्चा के विषय बने रहे। 'सार्वदेशिक' सप्ताहिक में तो आप प्राय कुछ-न-कुछ लिखते ही रहते थे।

आपका देहावसान 23 दिसम्बर सन् 1973 को नई दिल्ली के 'आयुर्विज्ञान संस्थान' में हुआ था।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

श्री शास्त्री जी का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर नामक जनपद की अनूपशहर तहसील के निकट चाँदोख नामक ग्राम में 26 अगस्त सन् 1891 को गोधूलि वेला में हुआ था। आपके पूर्वज इस ग्राम में स्थायी रूप से रहते थे। वास्तव में आपके पूर्वजों का अस्थायी निवास इसी ग्राम के दक्षिण-पश्चिम में स्थित 'बिबियाना' नामक स्थान है। शास्त्रीजी कहा करते थे कि आपने अपने जन्मस्थान 'चाँदोख' को अपने होश-हवास में कभी नहीं देखा, हाँ बिबियाना आपने अपने बाल्य-काल में अवश्य ही देखा था। वहाँ के टूटे-फूटे घर, अपने पैतृक शिवालय,बाग और तालाब को भी आपने देखा था। चाँदोख में आपके पिता यद्यपि बहुत कम रहे थे, किन्तु उनके जीवन पर चाँदोख-निवास का सांस्कृतिक प्रभाव बहुत पड़ा था।

यह बात बहुत कम लोग जानते होंगे कि शास्त्रीजी का जन्म का नाम 'चतुर्भुज' था। आपके जन्म के समय आपकी जन्म-कुण्डली आपके पिता के अनन्य मित्र प्राणाचार्य वैद्यराज होमनिधि शर्मा ने बनाई थी और उन्होंने ही आपका नाम 'चतुर्भुज' रखा था। शर्माजी उदार विचारों के संस्कृतज्ञ पण्डित और प्रसिद्ध चिकित्सक थे। उनका कहना था कि यह बालक कुल-दीपक होगा। उन्होंने यह भी लिखा था कि इस लड़के के ग्रह इस घर के योग्य नहीं हैं। यह किसे मालूम था कि यही बालक 'चतुर्भुज' कालान्तर में 'चतुरसेन' कहलाकर अपनी अभूतपूर्व कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा के बल पर साहित्य; संस्कृति, शिक्षा, समाज-सुधार, इतिहास विज्ञान, धर्म, दर्शन तथा स्वस्थ्य-सम्बन्धी लगभग 200 ग्रन्थ लिखकर अपने जन्म-नाम 'चतुर्भुज' को सार्थक करेगा।

चाँदोख से सिकन्दराबाद में आ बसने से पहले शास्त्रीजी के पिता कुछ दिन सिकन्दराबाद कस्बे के निकट 'रसूलपुर' नामक एक छोटे से गाँव में रहे थे। उस समय शास्त्री जी की आयु कठिनाई से 4 या 5 वर्ष की होगी। वहीं पर शास्त्रीजी ने गंगाराम नामक एक गौरवर्ण ब्राह्मण से अक्षराभ्यास प्रारम्भ किया था। जिन दिनों शास्त्रीजी रसूलपुर में अक्षराभ्यास कर रहे थे, उन्ही दिनों की एक घटना आप सुनाया करते थे। जिस गाँव में वे पढ़ रहे थे, उस गाँव के पास एक छोटी-सी नहर थी। एक बार की बात है कि आपके किसी सहपाठी ने आपको बातों-ही-बातों में उस नहर में धकेल दिया और वह वहाँ से भाग गया। न जाने कैसे किनारे की कोई घास आपके हाथ में आ गई और आप किसी तरह रोते हुए घर आए। आप जरा कल्पना कीजिए, 5 वर्ष का बालक चतुरसेन यदि जल-समाधि ले लेता तो यह 69वर्ष की आँधी और तूफानों की वर्षा कौन देखता ? 'वैशाली की नगर वधू', 'सोना और खून', 'वयं रक्षामः', 'सोमनाथ' तथा 'खग्रास' जैसे अनेक उपन्यास कौन माँ भारती के चरणों में भेंट करता? फिर बहती हुई नहर में से5 वर्ष के एक बालक का इस प्रकार बचकर निकल आना एक चमत्कार ही कहना चाहिए।

जिला बुलन्दशहर के अन्तर्गत सिकन्दराबाद एक अच्छा खासा कस्बा है। वहाँ तहसील और थाना भी है। शास्त्रीजी

के अक्षराभ्यास के बाद आपके पिताजी आपकी शिक्षा-दीक्षा के विचार से रसूलपुर से सिकन्दराबाद आ बसे थे। सिकन्दराबाद में कायस्थों तथा बनियों की प्रचुरता है। जिन दिनों शास्त्रीजी के पिता सिकन्दराबाद में आए थे, उन दिनों कायस्थ लोग वहाँ के प्रमुख नागरिक थे, और आजकल बनिये हैं। प्रख्यात वैज्ञानिक सर शान्तिस्वरूप भटनागर यहीं के निवासी थे और वे शास्त्रीजी के बाल-सहपाठी थे। उनका स्कूल वहाँ के कायस्थवाड़ा मोहल्ले में ही था। शास्त्रीजी के अधिकांश सहपाठी वहाँ के सम्पन्न कायस्थों के बालक ही थे। सिकन्दराबाद में आकर शास्त्री जी के पिता ठा० केवलरामजी का कार्यक्षेत्र और भी व्यापक हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि वे प्रसिद्ध आर्यसमाजी प्रचारक पण्डित मुरारीलाल शर्मा के सान्निध्य में आ गए थे। यहीं पर स्वामी दर्शनानन्द ने उनके तथा पण्डित मुरारीलाल शर्मा के सहयोग से कदाचित् सन् 1903 या 1904 में गुरुकुल की स्थापना कर दी। उन दिनों यही सबसे पहला गुरुकुल था। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना इसके बाद ही हुई थी। इस गुरुकुल के पहले उत्सव में कुल तीन रुपये चन्दे में आए और तीन ही विद्यार्थी दीक्षित हुए इनमें से एक आचार्य चतुरसेन, दूसरे देवेन्द्र शर्मा (पंडित मुरारीलाल शर्मा के सुपुत्र) और तीसरे एक और थे, जिनका जीवन प्रारम्भिक तारुण्य में ही समाप्त हो गया था।

गुरुकुल सिकन्दराबाद में आपने संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। जिस समय आचार्यजी गुरुकुल में प्रविष्ट हुए उन दिनों आप छठी श्रेणी में पढ़ा करते थे। सिकन्दराबाद में गुरुकुल खुल जाने के कारण वह आर्यसमाज का गढ़ हो गया था। आचार्यजी पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। प्रसिद्ध भजनीक वासुदेव शर्मा, तेजस्वी गायक तेजसिंह और प्रसिद्ध वाग्मी पंडित तुलसीराम आदि का उन्हें अच्छा सान्निध्य प्राप्त हुआ। पं० भीमसेन शर्मा और स्वा० दर्शनानन्द से शास्त्रार्थ का भी आचार्यजी के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। एक बार गुरुकुल की 'भूगोल' और 'सत्यार्थ-प्रकाश' की पढ़ाई से ऊबकर शास्त्रीजी अपने एक और साथ छात्र के साथ गुरुकुल से भागकर काशी पहुँच गए और वहाँ पर आपने डॉ० केशवदेव शास्त्री से संस्कृत पढ़ी। जब डॉ० केशवदेव शास्त्री अमरीका चले गए तो आप पं० जीवाराम जी तथा श्यामलालजी शास्त्री से भी संस्कृत, व्याकरण तथा साहित्य पढ़ते रहे।

सन् 1910 के आस-पास आप आयुर्वेद के अध्ययन के लिए जयपुर चले गए और वहाँ के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में भरती हो गए। वहाँ के आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष स्वामी लक्ष्मीराम जी प्रख्यात पीयूष-पाणि और विद्वान् थे। उनके सुयोग्य निरीक्षण में शास्त्रीजी ने वहाँ चार वर्ष तक आयुर्वेद विधिवत् अध्ययन किया और वहाँ से 'शास्त्री' तथा 'आचार्य' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। वहीं पर आपने अपने संस्कृत साहित्य के अध्ययन को भी पूर्ण किया। जयपुर में ही आपने पं० गणपति शर्मा से वेदान्त पढ़ा। वहीं पर पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा से आपका परिचय हुआ था।

अपना अध्ययन समाप्त करके शास्त्रीजी सन् 1909 में सिकन्दराबाद आ गए और वहाँ प्रैक्टिस शुरू कर दी। इन्हीं दिनों दिल्ली के सेठ रग्घुमल द्वारा कटरा मेदगरान में संचालित एक औषधालय में चिकित्सक के पद पर आपकी नियुक्ति 25 रुपये मासिक पर हो गई। तब शास्त्रीजी की आयु लगभग 21 वर्ष की थी। उसी समय सन् 1912 के आस-पास शास्त्रीजी का विवाह ग्राम मुहम्मदपुर देवमल (बिजनौर) में सम्पन्न हुआ। आपकी पत्नी का नाम 'तारादेवी' था। शास्त्री जी के श्वसुर आयुर्वेद महोपाध्याय वैद्य कल्याणसिंह जी पं० पद्मसिंह शर्मा तथा आचार्य नरदेव शास्त्री के अन्यतम मित्रों में थे। इस विवाह में उक्त दोनों महानुभाव भी सम्मिलित हुए थे। आपके श्वसुर उन दिनों अजमेर के 'हिन्दू धर्मार्थ औषधालय' में प्रधान चिकित्सक थे। थोड़े दिन बाद सन् 1916 में उन्होंने अपना ही औषधालय खोल दिया, जिसका नाम 'श्रीकल्याण औषधालय' था। उन्हें औषधालय को स्थापित किये हुए अभी कठिनाई से एक वर्ष भी न होने पाया था कि उन्हें लाहौर से महात्मा हंसराज और प्रिंसिपल साईदास का यह अनुरोधपूर्ण पत्र मिला कि वे डी० ए० वी० कालेज कमेटी के तत्वावधान में एक 'आयुर्वेदिक कालेज' खोल रहे हैं और उसके प्रधानाचार्य पद के लिए उनकी सेवाओं की आवश्यकता है। महात्मा हंसराज के अनुरोध को शास्त्रीजी के श्वसुर वैद्य कल्याणसिंहजी टाल न सके और वे लाहौर चले गए। उन्होंने आचार्यजी को अपना औषधालय सौंपकर निश्चिन्तता की साँस ली। थोड़े दिन

बाद शास्त्रीजी के श्वसुर वैद्य कल्याणसिंहजी ने शास्त्रीजी को भी लाहौर बुला लिया और आप वहां पर 'आयुर्वेद' के प्रोफेसर हो गए। कुछ दिन बाद आपके श्वसुर वापिस अपने औषधालय में अजमेर आ गए। शास्त्रीजी अपने स्वच्छन्द स्वभाव के कारण वहाँ अधिक न जम सके और आप भी अजमेर वापिस पहुँच गए।

इन्हीं दिनों अजमेर में भारी प्लेग फैला। शास्त्रीजी से वहाँ की जनता की परेशानी नहीं देखी गई और आपने 'प्लेग विभ्राट्' (अप्रकाशित) नामक सामाजिक उपन्यास की रचना की। सन् 1917 की बात है। अजमेर में रहते हुए अभी आपको कठिनाई से 2-3 वर्ष ही बीते होंगे कि सलेमाबाद किशनगढ़ निवासी बम्बई की 'हरिप्रसाद भगीरथ लाल' नामक पुस्तक-प्रकाशन-संस्था के व्यवस्थापक पं० राधावल्लभजी के अनुरोध पर सन् 1921 में आप बम्बई चले गए। बम्बई में आपने 'कालबा देवी रोड' पर 'अजमेर वाला वैद्यराज' नाम से अपना चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ किया, जो थोड़े ही दिनों में बहुत चमक गया।

साहित्य-रचना की ओर आचार्यजी का झुकाव पहले से ही था। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में आप कविताएँ लिखा करते थे। आपकी सबसे पहली रचना ला० लाजपतराय के निर्वासन पर 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' में प्रकाशित हुई थी। अपने साहित्यिक जीवन में आपको अपने श्वसुर आयुर्वेदमहोपाध्याय कल्याणसिंहजी और उनके अंतरंग मित्र पण्डित पद्मसिंह शर्मा से प्रचुर प्रेरणा मिली थी। शास्त्री जी की पहली पुस्तक बाल-विवाह के विरुद्ध एक ट्रैक्ट के रूप में निकली थी। आपकी सबसे पहली प्रकाशित रचना 'हृदय की परख' (उपन्यास) थी। दूसरी कृति 'अन्तस्तल' थी। हिन्दी में गद्य-काव्य की यह कदाचित् सबसे पहली कृति है। इसकी भूमिका सम्पादकाचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने लिखी थी। इन दोनों पुस्तकों का प्रकाशन श्री नाथूराम 'प्रेमी' ने अपनी 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' नामक प्रकाशन संस्था की ओर से किया था। यह कैसे संयोग की बात है कि आचार्यजी के लिए साहित्य-क्षेत्र का द्वार जिस विभूति ने पहले खोला, उसी विभूति ने स्वर्ग का द्वार भी खोला। श्री प्रेमीजी भी शास्त्रीजी के निधन से तीन दिन पूर्व 30 जनवरी सन् 1960 को 78 वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए थे।

बम्बई में लगभग 5 वर्ष बिताने के उपरान्त आचार्यजी को दिल्ली आना पड़ा। बम्बई छोड़ने का कारण आपकी पत्नी का स्वास्थ्य खराब हो जाना था। बम्बई छोड़ने के बाद भी आप उन्हें न बचा सके और सन् 1925 में उनका देहावसान हो गया। फिर आपने दिल्ली में फतेहपुरी पर अपनी वैद्यक की दुकान जमाई और जमकर कार्य किया। यही नहीं, आपका नाम चिकित्सा के क्षेत्र में इतना चमका कि वे राजाओं-महाराजाओं के चिकित्सक ही माने जाने लगे। उन्हीं दिनों शास्त्रीजी ने शाहदरा की यह जमीन खरीदी थी, जिस पर आज आपका 'ज्ञान-धाम' बना हुआ है।

शास्त्रीजी ने साहित्यिक और सामाजिक रूप में जहाँ उच्चकोटि की प्रतिष्ठा तथा ख्याति प्राप्त की वहाँ वैवाहिक जीवन की दृष्टि से आपका साहित्यकार अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में से गुजरा। पहली पत्नी तारादेवी के निधन के बाद अपका दूसरा विवाह मन्दसौर (मध्य प्रदेश) निवासी श्री नन्दरामजी जौहरी की सुपुत्री प्रियंवदा देवी के साथ हुआ। यह सन् 1926 की बात है। यह विवाह आचार्यजी के मित्र प्रो० नारायणप्रसाद के प्रयत्न से हुआ था, जो उन दिनों जोधपुर के गवर्मेंट कालेज में प्रोफेसर थे। दुर्भाग्य ने यहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा और शास्त्रीजी की दूसरी धर्म-पत्नी प्रियंवदा देवी का देहावसान भी सन् 1934 में थोड़ी-बीमारी के बाद हो गया। प्रियंवदाजी के देहान्त से लगभग एक वर्ष बाद बनारस के रईस बाबू रामकिशोरसिंह की सुपुत्री ज्ञानदेवी से आचार्यजी का विवाह सन् 1935 में हुआ। इन्हीं ज्ञानदेवी के नाम पर आचार्यजी के निवास का नाम 'ज्ञान-धाम' पड़ा है। इन्हीं दिनों शास्त्रीजी लेखन-कार्य में पूर्णतः संलग्न हो गए और चिकित्सा लगभग छोड़-सी ही दी। दैव-दुर्विपाक से आचार्यजी की तीसरी पत्नी श्रीमती ज्ञानदेवी भी आपको असमय में विपन्न करके दिसम्बर '44 में अचानक चल बसीं। आचार्यजी की वर्तमान चौथी पत्नी श्रीमतीकमलाजी ज्ञानदेवीजी की छोटी बहन हैं। यह विवाह जून सन् 1945 में हुआ था। आचार्यजी जहाँ संवेदनशील मानव थे वहाँ उन्हें पारिवारिक तथा वैवाहिक जीवन बड़े ही ज्वलनशील अनुभवों में बिताना पड़ा। सन्तान-सुख से भी आप लगभग वंचित से ही रहे। यह सौभाग्य की बात है कि आचार्यजी को अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में 65 वर्ष की अवस्था में एक पुत्री की प्राप्ति हुई थी; जिसे वे प्यार से

'मुन्ना' कहकर पुकारते थे।

यह कितने खेद की बात है कि अद्भुत प्रतिभा के धनी और पीयूषपाणि चिकित्सक आचार्यजी अपनी अनेक ग्रन्थ-सन्तानों और प्रचुर पाठकों का परिवार रखते हुए भी निःसंग ही गए। उनकी इन पंक्तियों से पाठकों को आचार्य जी की मनःपीड़ा का तनिक-सा आभास हो सकेगा। अपनी 'आत्मकथा' का प्रारम्भ करते हुए आपने लिखा है—"मैं एक आहत, किन्तु अपराजित योद्धा हूँ। अपने चिर-जीवन में मैंने सब-कुछ खोया है—पाया कुछ भी नहीं। मैंने एक भी मित्र जीवन में उत्पन्न नहीं किया। आज जीवन की सन्ध्या मे मैं अपने को सर्वथा एकाकी, असहाय और निःसंग अनुभव करता हूँ। मेरी दशा उस मुसाफिर के समान है जो दिन-भर निरन्तर मंजिल काटता रहा हो, और अब निर्जन राह में सूर्य अस्त हो गया हो, वह बे-सरो-सामान थककर राह के एक वृक्ष के सहारे रात काटने पड़ गया हो—और मंजिलों दूर अपने घर में बिछी सुखद दुग्ध-फेन-सम शैया की, सन्ध्या की भाँति स्निग्धा पत्नी की, और फूल के समान सुन्दर अपने पुत्र की केवल कल्पना-मात्र कर रहा हो।"

आपका देहावसान 2फरवरी सन् 1960 को हुआ था।

रावत चतुर्भुजदास चतुर्वेदी

श्री रावतजी का जन्म सन् 1903 में मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता पंडित राधामोहनजी वहाँ के राज-परिवार में शिक्षक होने के साथ-साथ एक सुकवि भी थे। उनकी 'श्रीकृष्ण विनोद' और 'संगीत लहरी' नामक पुस्तकों ने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। पिता के साहित्यिक संस्कार चतुर्भुजदास में भी अंकुरित हुए थे और आपने बी० ए० (आनर्स), साहित्याचार्य और साहित्यरत्न की उपाधियाँ प्राप्त करके साहित्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी।

आपका विवाह 12 वर्ष की अवस्था में सन् 1915 में भरतपुर के दानाध्यक्ष-परिवार में श्री अमरनाथ चतुर्वेदी की सुपुत्री से हुआ था। विद्याध्ययन के उपरान्त आपने थोड़े-थोड़े समय के लिए मैनपुरी, दिल्ली और अवागढ़ में नौकरी की और फिर भरतपुर-नरेश श्री ब्रजेन्द्रसिंह ने आपको अपने यहाँ संग्रहालय स्थापित करने के विचार से भरतपुर बुला लिया। पहले आप वहाँ तहसीलदार रहे और बाद में जब संग्रहालय स्थापित हो गया तो आप उसके प्रथम क्यूरेटर बनाए गए। आपने वहाँ खोज-खोजकर ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुओं को संग्रहीत किया; जिससे थोड़े ही दिनों में वह संग्रहालय दर्शनीय बन गया।

आपकी सेवाओं के कारण आपका नाम भरतपुर तथा उसके संग्रहालय से ऐसा जुड़ गया कि जब भी भरतपुर अंचल की कला तथा साहित्य का इतिहास लिखा जायगा तब चतुर्वेदी जी का नाम सर्वाग्रणी रहेगा।

आप जन्म से कविता करने की अद्भुत प्रतिभा रखते थे और ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों ही में आपने अपनी रचना-चातुरी का परिचय दिया है। आप कवि होने के अतिरिक्त उत्कृष्ट गद्य-लेखक भी थे। आपने गद्य में 'महाकवि सोमनाथ—एक अध्ययन', 'भरतपुर और अतीत के चिह्न' तथा 'भरतपुर का इतिहास' नामक पुस्तकें लिखी हैं। वैसे तो आपने छोटी-बड़ी लगभग 62 पुस्तकें लिखी हैं, लेकिन उनमें 'आत्मोल्लास', 'बन्धन', 'मंगलाचरण', 'हिय हिलोर', 'प्रभाकर प्रभा', 'दुर्गा चालीसा','काव्य-कुंज','योगी आर्थर', 'पातंजलि', 'सुमन सवैया', 'सरोज शतक', 'चतुर्भुज सतसई', 'शर्वाणी' तथा 'आक्रान्ता चीन' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आप अनेक वर्ष तक भरतपुर हिन्दी साहित्य समिति के भी प्रमुख पदाधिकारी रहे थे और नगर के सामाजिक जीवन में आपका प्रमुख स्थान था। आपकी साहित्य-सेवाओं को ध्यान में रखकर 16 अप्रैल सन् 1962 को आपको भरतपुर के जिला सहकारी संस्थान की ओर से राजस्थान के मन्त्री श्री नाथूराम मिर्धा के करकमलों द्वारा एक अभिनन्दन

पत्र भी भेंट किया गया था।

आपका निधन 31 जुलाई सन् 1976 को हुआ था।

श्री चतुर्भुज शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म उत्तर प्रदेश के उरई जिले के मुहाना नामक ग्राम में सन् 1901 में हुआ था। आप मूलत: राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करते थे, लेकिन हिन्दी-लेखन में भी आपकी पर्याप्त गति थी। तुलसी-साहित्य के मर्म की गम्भीरता को समझने वाले नेताओं में आपका नाम अग्रणी स्थान रखता है। आपने अपने राजनीतिक जीवन के संस्मरण भी 'विद्रोही की आत्मकथा' नामक पुस्तक में लिखे हैं, जो आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली की ओर से प्रकाशित हुई है। आप उत्तर प्रदेश के मंत्रि-मंडल के कई बार वरिष्ठ पदों पर रह चुके थे।

आपका निधन लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में 25 अक्तूबर सन् 1976 को हुआ था।

श्री चन्द्रकिशोर जैन

श्री जैन का जन्म 12 फरवरी सन् 1912 को मोतीहारी (बिहार) में हुआ था। उन दिनों आपके पिता श्री नन्दकिशोर जैन वहाँ पर डिप्टी कलक्टर थे और बंगाल तथा बिहार एक ही सम्मिलित प्रदेश था। वैसे श्री नन्दकिशोर जैन के पूर्वज उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के नहटौर नामक कस्बे के निवासी हैं। श्री नन्दकिशोर जैन को जिन एस० डी० एम० के अधीन काम करने का अवसर मिला वे थे बंगला के महान् नाटककार श्री डी० एल० राय। वे प्राय: उन्हें अपने नाटक सुनाया करते थे। जिसके फलस्वरूप न केवल उनका ध्यान नाटकों की ओर गया, बल्कि उन्होंने राय महोदय के कई नाटकों में सफल अभिनय भी किया था।

श्री चन्द्रकिशोर जैन में भी नाटक के प्रति एक विशेष निष्ठा अपने पिता श्री नन्दकिशोर जैन से ही विरासत में मिली थी। जब आपके पिता मोतीहारी में डिप्टी-कलक्टर थे तब अपने कार्यालय के क्लब के मन्त्री होने के नाते उनके बंगले के कम्पाउण्ड में प्राय: नाटक हुआ करते थे। उस समय चन्द्रकिशोरजी की आयु कठिनाई से दो-तीन वर्ष की ही होगी। जब आपके पिता वहाँ से मुजफ्फरपुर बदलकर आए तो उनका सम्पर्क उस नगर के प्रसिद्ध रईस श्री जगन्नाथप्रसाद साहू से हो गया। श्री साहू के घर पर भी प्राय: नाटकों की धूम रहा करती थी। बालक चन्द्रकिशोर के मन में भी अभिनय करने की उत्सुकता जगी और आपने सबसे पहले मुजफ्फरपुर हाईस्कूल में खेले गए नाटक 'भयंकर भूल' में अभिनय किया। उन दिनों आपकी आयु 15-16 वर्ष की थी और नवीं कक्षा में पढ़ते थे।

मैट्रिक की परीक्षा देने के उपरान्त जब आप पटना कालेज में उच्च स्तर की शिक्षा-प्राप्ति के लिए दाखिल हुए तो वहाँ भी आपका वही क्रम जारी रहा। आपने भागलपुर कालेज और पटना लॉ कालेज आदि में जिन नाटकों का अभिनय तथा निर्देशन किया उनकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। यहाँ तक कि आपकी सफलता से प्रभावित होकर आपके प्राचार्य ने आपको यह राय दी थी, "जैन! तुम किसी फिल्म-कम्पनी में चले जाओ। तुम बड़े घर के लड़के हो तुम्हारे लिए रुपयों का कोई महत्त्व नहीं है। मेरा विश्वास है तुम फिल्म में अभिनय की सफलता का एक नया रिकार्ड कायम कर सकोगे।" बी० ए० करने के उपरान्त आप मैमनसिंह जिले की किशोरगंज शुगर मिल में डायरेक्टर हो गए। लेकिन दो वर्ष कार्य करने के उपरान्त ही आप वहाँ से पटना लौट आए। पटना में आकर आपने नाटक खेलने का क्रम जारी रखा। एक बार बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की भवन-निर्माण-निधि के लिए भी आपने उसीके भवन में एक नाटक खेला था जिसको पर्याप्त सफलता मिली थी और उसकी

सर्वत्र सराहना की गई थी। उन दिनों सम्मेलन के महामन्त्री श्री छविनाथ पाण्डेय थे।

धीरे-धीरे श्री जैन की नाट्य-कला प्रौढ़ से प्रौढ़तर होती चली गई और रंगमंच तथा नाट्य-लेखन के क्षेत्र में आपने जो नए आयाम उद्घाटित किए उनसे बिहार में एक नई चेतना उद्भूत हो गई। जब आपने हिन्दी के शैलीकार राजा राधिकारमण-प्रसादसिंह के प्रसिद्ध उपन्यास 'राम रहीम' को नाटक के रूप में मंच पर प्रदर्शित किया तो पटना के सभी प्रमुख पत्रों में उसकी प्रशंसा की गई। एक बार तो यहाँ तक हुआ कि श्री जैन का 'सिराजुद्दौला' नामक ऐतिहासिक नाटक ब्रिटिश नौकरशाही द्वारा रिहर्सल के समय ही जब्त कर लिया गया। इस जब्ती ने आपके उत्साह को और भी द्विगुणित कर दिया। इस प्रकार श्री चन्द्रकिशोर जैन ने नाटक-लेखन की ओर एक नया कदम बढ़ाया और आपने अनेक एकांकी लिखे। आपका पहला एकांकी 'रहनुमा' था, जो नवम्बर सन् 1942 में लखनऊ रेडियो से ब्राडकास्ट हुआ था। यह वह समय था जबकि एकांकी का नाम साहित्य-जगत् में नया-नया ही आया था।

श्री जैन के पिता बंगाल-बिहार सरकार की सेवा से निवृत्त होकर अपनी वंश-भूमि में लौट आए थे और वहीं पर अपनी जमींदारी का कार्य देखने लगे थे। उस छोटे से कस्बे में आकर श्री चन्द्रकिशोर जैन ने वहाँ के चौधरी तेजवन्तसिंह त्यागी की प्रेरणा पर ही एकांकी-लेखन का यह नया प्रयोग किया था। आपके इस प्रकार के एकांकियों का संकलन 'एकांकिका' नाम से सन् 1944 में प्रकाशित हुआ था, जिसकी भूमिका प्रख्यात साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने लिखी थी। आप एक अच्छे संस्मरण-लेखक भी थे और सुप्रसिद्ध कथाकार श्री नरोत्तम नागर की प्रेरणा पर आपने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। आपकी अन्य प्रकाशित रचनाओं में 'विष कन्या', 'भाई-भाई', 'मंजिल' और 'घरौंदा' भी उल्लेखनीय हैं। श्री प्रभाकरजी के अनुरोध पर आपने कुछ दिनों तक लाहौर से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'शान्ति' का सम्पादन भी किया था। अभी आपसे साहित्य को बहुत-कुछ उपलब्धि होनी थी कि अचानक 24 मार्च सन् 1950 को आपका असामयिक निधन हो गया और हिन्दी की एक प्रतिभा हमसे छिन गई।

श्री चन्द्रकीर्तिसिंह बाघेल

श्री बाघेल का जन्म मध्य प्रदेश की रीवाँ रियासत के भरतपुर (सीधी) नामक ग्राम में सन् 1895 में हुआ था। आप हिन्दी के विख्यात लेखक श्री भानुसिंह बाघेल के अनुज थे। आप जहाँ अच्छे लेखक थे वहाँ पुस्तक-संग्रह का शौक भी आपको बहुत था। अनेक अलभ्य पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें आपके संग्रहालय में हैं। आपके लेख सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे। आपका वास्तविक नाम 'दयावानसिंह' था।

आपका निधन सन् 1966 में हुआ था।

श्री चन्द्रगुप्त वेदालंकार

श्री चन्द्रगुप्तजी का जन्म सन् 1915 में पश्चिमी पंजाब के एक क्षत्रिय परिवार में गोविन्दगढ़ नामक उस प्रसिद्ध पावन

स्थान पर हुआ था, जिसका सम्बन्ध गुरु गोविन्दसिंहजी के संघर्षमय जीवन के घटना-क्रम से है। इसी कारण वह स्थान 'गोविन्दगढ़' नाम से प्रसिद्ध है।

वेदालंकार जी के पिता श्री लक्ष्मणदास आर्यसमाजी विचारों के थे एवं रेलवे में स्टेशन-मास्टर के पद पर कार्य करते थे। यद्यपि बालक चन्द्रगुप्त आरम्भ से ही अँग्रेजी माध्यम के स्कूल का मेधावी छात्र था, किन्तु विचित्र बात यह है कि आपने हिन्दी-संस्कृत के माध्यम से विद्या ग्रहण करने का आग्रह किया। फलतः आपको आर्य गुरुकुल मुल्तान में प्रविष्ट कर दिया गया। इसी क्रम में उच्च शिक्षा के लिए आप गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार में गए और 1937 में स्नातक होकर 'वेदालंकार' की उपाधि प्राप्त की। अपनी शैक्षणिक प्रतिभा के साथ इस विद्यार्थी-काल में ही, लेखनी और वक्तृत्व-कला के कई चमत्कार आपने दिखाए, एवं अनेकों विजयोपहार भी प्राप्त किए। बाद में वहाँ ही प्राध्यापक के पद पर आपकी नियुक्ति हो गई।

इसी काल में अर्थात् 1939 में मात्र 25 वर्ष की अवस्था में ही एक महान् शोध ग्रन्थ 'बृहत्तर भारत' की रचना करके ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र में सबको आश्चर्य-चकित कर दिया। हिन्दी में तब इस प्रकार का वह पहला ग्रन्थ था। अन्य भी जो कई मार्मिक पुस्तकें आपकी लेखनी से लिखी जाकर जनता में प्रसिद्ध हुईं, उनमें आपके राजनैतिक गुरु प्रसिद्ध क्रान्तिकारी 'वीर सावरकरजी के रोमांचकारी जीवन की गाथा' एवं 'अन्तर्ज्वाला' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपके अनेकों निबन्ध उच्चकोटि की पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं। 'बृहत्तर भारत' ग्रन्थ के प्रकाशन के तुरन्त बाद ही वेदालंकारजी को पंजाब विश्वविद्यालय,लाहौर में 1939 के अन्त में प्राचीन ग्रन्थों एवं इतिहास की अनुसंधान समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। इस युवावस्था यानी 26वर्ष में यह नियुक्ति एक अद्वितीय सम्मान की बात थी। इसके बाद 1940 में आपने वीर सावरकर, भाई परमानन्द तथा डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया और इस बीच दो बार जेल-यात्रा भी कर आए। दो-तीन वर्ष में ही अपने आकर्षक व्यक्तित्व, ओजस्वी भाषण-शैली एवं गम्भीर विचार-शक्ति के कारण आप हिन्दू-आन्दोलन की एक प्रसिद्ध विभूति माने जाने लगे थे।
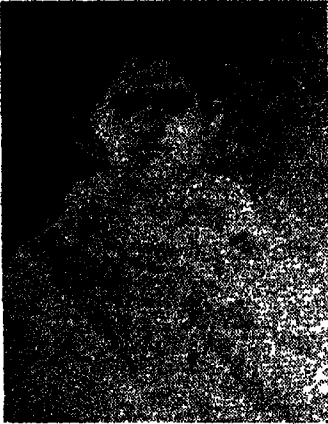
1941 में वेदालंकारजी का विवाह बिहार शरीफ (जिला पटना) के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री महेश बाबू की सुपुत्री शारदा देवी से सम्पन्न हुआ था, जिनसे दो सन्तानें— एक पुत्री पूर्णिमा एवं पुत्र प्रदीप हैं। शारदा जी बिहार के शिक्षा-क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं और फरवरी 1980 में आपने भागलपुर के सुन्दरवती महिला महाविद्यालय की प्राचार्या के पद से अवकाश ग्रहण किया है।

आपका निधन सन् 1945 में केवल 31 वर्ष की आयु में ही हो गया था।

श्री चन्द्रदेव शर्मा

श्री शर्मा का जन्म राजस्थान के नागौर जिले के कुचेरा नामक ग्राम में 21 दिसम्बर सन् 1921 को हुआ था। आपके पिता श्री पं० लालाराम जी पोस्ट मास्टर थे, इस कारण श्री चन्द्रदेवजी की शिक्षा विभिन्न स्थानों पर हुई थी। लाडनूँ के स्कूल से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने बीकानेर के 'सादूल हाईस्कूल' से हाईस्कूल तथा इसके उपरान्त इण्टर और एम० ए० तक शिक्षा डूँगर कालेज से ही प्राप्त की। इनके अतिरिक्त साहित्याचार्य और साहित्यरत्न की परीक्षाएँ भी आपने ससम्मान उत्तीर्ण की थीं।

एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त कुछ दिन तक तो आप सप्लाई विभाग में 'राशनिंग अधिकारी' रहे और फिर श्रीगंगानगर के एक इंटर कालेज में अध्यापक हो गए। इसी सन्दर्भ में आपने लोहिया कालेज चूरू, महाराजकुमार कालेज, जोधपुर और डूंगर कालेज, बीकानेर में

भी शिक्षक के रूप में सफलता पूर्वक कार्य किया था।

कालेज में आने के उपरान्त आपकी ख्याति एक कवि के रूप में इतनी हो गई कि अबोहर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन में आपका काव्य-पाठ सुनकर अध्यक्ष निरालाजी ने भी आपकी प्रशंसा की थी। आपकी रचनाओं में समाज की अनेक विकृतियों के प्रति जो सशक्त व्यंग्य होता था उससे ही आपकी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को मिला था। आपने 'सव्य-साची,' 'अग्निमुख', 'क्रान्ति दूत', 'लबार लाहौरी', 'लोकर लाहौरी' और 'आल-पिन' आदि अनेक कल्पित नामों से भी लिखा था। आपकी ऐसी रचनाओं का संकलन 'पंडितजी गजब हो रहा है' नाम से प्रकाशित हुआ था।
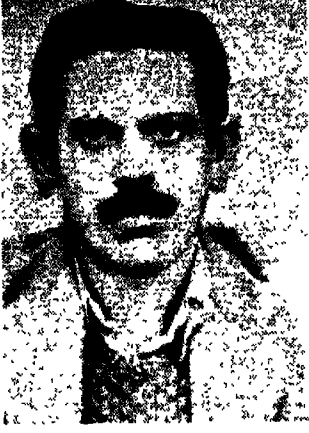
आपका निधन 16 जनवरी सन् 1959 को उस समय रेवाड़ी स्टेशन पर हृदय गति रुक जाने से हुआ था, जबकि आप अलवर कवि-सम्मेलन में सम्मिलित होकर बीकानेर को वापिस लौट रहे थे।

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

श्री गुलेरीजी का जन्म 25 जुलाई सन् 1883 को जयपुर (राजस्थान) में हुआ था। आपके पूर्वज हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा क्षेत्र के 'गुलेर' नामक स्थान के निवासी थे और उनकी विद्वत्ता तथा योग्यता से प्रसन्न होकर जयपुर-नरेश महाराज सवाई रामसिंह जी ने उन्हें अपने यहाँ रख लिया था। वहीं पर श्री गुलेरीजी के पिता पं० शिवरामजी का भी जन्म हुआ था। शिवरामजी ने काशी जाकर श्री गौड़ स्वामी तथा अन्य कई विद्वानों से व्याकरण आदि शास्त्रों की बहुत अच्छी शिक्षा अर्जित की थी और जयपुर राज्य के प्रधान पंडित के रूप में सैकड़ों विद्यार्थियों को पढ़ाकर अच्छा यश प्राप्त किया था। वे वहाँ के संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य थे और दर्शन तथा व्याकरण के बड़े अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। गुलेरीजी की शिक्षा-दीक्षा अपने इन्हीं विद्वान् पिता की देख-रेख में जयपुर में हुई थी। प्रारम्भ में आपको संस्कृत का अभ्यास कराया गया था। परिणामस्वरूप 9-10 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते आपको संस्कृत में भाषण देने का अच्छा अभ्यास हो गया था। सन् 1893 में आपको जयपुर के महाराजा कालेज में प्रविष्ट कराया गया और वहाँ से ही आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा सन् 1899 में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। आपकी इस सफलता से प्रभावित होकर जयपुर राज्य की ओर से एक 'नार्थबुक स्वर्ण पदक' भी आपको प्रदान किया गया था। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि उक्त पदक के अतिरिक्त राज्य के शिक्षा विभाग ने आपको 300 रुपए की पुस्तकें भी उस समय भेंट की थीं।

अपने छात्र-जीवन से ही आपमें लेखन की अभूतपूर्व प्रतिभा थी, जो आगे जाकर धीरे-धीरे विकसित होती गई। यह आपकी अद्वितीय मेधा और अभूतपूर्व प्रतिभा का ही प्रमाण है कि आपने केवल 18 वर्ष की अल्पायु मे ही कैप्टन गैरट के सहयोग से 'जयपुर आब्जर्वेटरी एण्ड इट्स बिल्डर' नामक एक शोधपूर्ण विशाल ग्रन्थ अँग्रेजी में लिखा था। अपनी इसी योग्यता के बल पर आपकी नियुक्ति सन् 1902 में जयपुर के ज्योतिष यन्त्रालय 'मान मन्दिर' के जीर्णोद्धार के प्रसंग में हो गई थी। इस सेवा-कार्य में रहते हुए ही आपने सन् 1904 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में ससम्मान उत्तीर्ण की। इसके उपरान्त आप 'मेयो कालेज अजमेर' में संस्कृत-विभागाध्यक्ष होकर वहाँ चले गए। सन् 1917 में आप जयपुर राज्य के सभी ठिकानेदारों के बालकों के 'अभिभावक' बनाए गए। जिन दिनों आप अजमेर में पढ़ाते थे, तब कश्मीर के महाराजा हरिसिंह, प्रतापगढ़ के नरेश रामसिंह, ठाकुर अमरसिंह, ठाकुर कुशलपालसिंह और ठाकुर दलपतसिंह आदि आपके प्रिय शिष्यों में थे। सन् 1920 में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष होकर वहाँ चले गए।

जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं कि श्री गुलेरीजी में लेखन की अभूतपूर्व प्रतिभा थी। आपने अनेक वर्ष तक जयपुर से निकलने वाले 'समालोचक' नामक पत्र का सम्पादन करने के साथ-साथ हिन्दी में कहानी तथा निबन्ध आदि लिखने में अपूर्व दक्षता प्राप्त की थी। आपने 'सुखमय जीवन', 'बुद्ध का काँटा' और 'उसने कहा था' शीर्षक केवल 3 कहानियाँ लिखकर ही हिन्दी के कहानी-साहित्य के इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया।

आपकी 'उसने कहा था' नामक कहानी अत्यन्त लोकप्रिय है। जिन दिनों आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में थे तब आपका सम्बन्ध 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' से अत्यन्त घनिष्ठतम हो गया था और आप कई वर्ष तक उसके अध्यक्ष भी रहे थे। अपने कार्य-काल में गुलेरीजी ने नागरी प्रचारिणी सभा के माध्यम से अनेक उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन भी कराया था। उन्हीं दिनों आपकी 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक एक लेखमाला भी 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हुई थी, जिसकी प्रशंसा डॉ० ग्रियर्सन-जैसे भाषाविदों ने भी की थी। आपके 'प्राच्य विद्या' तथा 'पुरातत्त्व'-सम्बन्धी अनेक लेख 'इण्डियन एंटीक्वेरी' नामक शोध पत्रिका में भी छपे थे। प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा और लिपि-शास्त्र के साथ-साथ आपने संस्कृत, वैदिक संस्कृत, पालि तथा प्राकृत आदि भाषाओं का भी अच्छा अध्ययन किया था। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के आप अभूतपूर्व विद्वान् थे।

जिन दिनों आप 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी के अध्यक्ष थे तब आपके ही प्रयास से इनके शिष्यों का ध्यान सभा की ओर से आकर्षित हो गया था। आपकी ही प्रेरणा पर खेतड़ी के तत्कालीन राजा श्री जयसिंह ने अपनी ज्येष्ठ भगिनी महारानी सूर्यकुमारी की स्मृति को चिर-स्थायी बनाने की दृष्टि से 20 हजार रुपए का दान देकर उस निधि से सभा की ओर से 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' के प्रकाशन का प्रारम्भ किया था। सूर्यकुमारीजी शाहपुराधीश महाराज उम्मेदसिंह की धर्मपत्नी थीं और आपका असमय में स्वर्गवास हो गया था। आपने जहाँ एक उत्कृष्ट कहानीकार के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया था वहाँ निबन्ध-लेखन के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय भी दिया था। आपने जहाँ गम्भीर शोधपरक अनेक निबन्ध लिखे वहाँ सहज, सरल शैली के व्यंग्य-लेखन में भी आपने अपूर्व दक्षता प्राप्त की थी। आपके ऐसे निबन्धों में 'कछुआ धर्म' और 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' बहुत प्रसिद्ध हैं। गम्भीर शोधपरक निबन्ध-लेखन की परम्परा में भी आपकी देन अनन्य रही है। 'सरस्वती' में प्रकाशित आपके 'जयसिंह काव्य' तथा 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' शीर्षक शोध-लेख इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

यह हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि ऐसी अभूतपूर्व मेधा तथा प्रतिभा के धनी गुलेरीजी ने अधिक जीवन नहीं पाया और आप स्वल्प-सी आयु में ही 11 सितम्बर सन् 1922 को इस असार संसार से विदा हो गए।

श्री चन्द्रप्रकाश सक्सेना

श्री सक्सेनाजी का जन्म राजस्थान के उदयपुर नामक नगर में 15 जुलाई सन् 1904 को हुआ था। आपने आगरा विश्वविद्यालय से इतिहास विषय लेकर एम०ए० की परीक्षा देने के अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की सर्वोच्च 'साहित्यरत्न' परीक्षा भी सम्मान उत्तीर्ण की थी। अपने कर्ममय जीवन का प्रारम्भ आपने पत्रकारिता से किया था और उसमें ही अपने जीवन को सर्वथा खपा दिया था।

आपने अनेक वर्ष तक जहाँ 'भारत सेवक समाज' के मासिक पत्र 'भारत सेवक' का अत्यन्त सफलतापूर्वक सम्पादन किया था वहाँ 'भारत सेवक समाज' के उद्देश्यों के प्रचार के लिए अनेक पुस्तकें भी लिखी थीं। 'भारत साधु समाज' के प्रकाशन विभाग के भी आप प्रमुख संचालक रहे थे। आपने 'प्रान्तीय द्रष्टा', 'संजीवनी सुधा' तथा 'भगवान् धर्मराज' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया था।

श्री गुलजारीलाल नन्दा के सम्पर्क में रहकर आपने उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने में अभूतपूर्व योगदान दिया था। आपके विभिन्न लेख अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

आपका निधन 9 फरवरी सन् 1974 को हुआ था।

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय

श्री पाण्डेयजी का जन्म 25 अप्रैल सन् 1904 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के सठियाँव नामक ग्राम में हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् 1931 में हिन्दी में एम०ए० करने के उपरान्त आपने सन् 1931 से सन्1934 तक सूफी साहित्य का विशेष अध्ययन किया था। जब आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र थे तब हिन्दी-विभागाध्यक्ष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विशेष सम्पर्क के कारण आपमें शोध तथा अनुसन्धान की प्रवृत्ति और भी बलवती हो गई थी। उन्हीं दिनों मौलवी महेशप्रसाद भी काशी विश्वविद्यालय में ही पढ़ाते थे। उनके सम्पर्क में आकर पाण्डेयजी ने फारसी, उर्दू और अरबी का अच्छा अध्ययन किया था।

आपके इस ज्ञान का परिचय आपकी प्रायः सभी कृतियों को देखने से मिल जाता है।

आप जहाँ अनेक वर्ष तक नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति रहे वहाँ आपने सभा की ओर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'हिन्दी' का भी सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने के लिए संघर्ष करने वाले अप्रतिम सेनानियों में आपका भी प्रमुख स्थान है। आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के हैदराबाद अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी। विश्वविद्यालयीन परिवेश से बाहर रहकर हिंन्दी के जिन विद्वानों ने गम्भीर और शोधपूर्ण कार्यों में अपना अनन्य योगदान दिया है उनमें श्री पाण्डेयजी का नाम प्रमुख है। हिन्दी और उर्दू के प्रश्न पर आपके विचार अत्यन्त मननीय हैं।

आपने जहाँ गम्भीर समीक्षापरक अनेक ग्रन्थों की रचना की थी वहाँ भाषा की समस्या पर भी आपकी कई कृतियाँ विशिष्ट महत्त्व रखती हैं। आपकी हिन्दी-रचनाओं में 'उर्दू का रहस्य', 'उर्दू की जबान', 'उर्दू की हकीकत क्या है', 'एकता', 'कचहरी की भाषा और लिपि', 'कालिदास', 'कुर्आन में हिन्दी', 'केशवदास', 'तसव्वुफ अथवा सूफी मत', 'तुलसी की जीवन-भूमि','तुलसीदास','नागरी का अभिशाप', 'नागरी ही क्यों', 'प्रच्छालन या प्रवंचना', 'बिहार में हिन्दुस्तानी','भाषा का प्रश्न', 'मुगल बादशाहों की हिन्दी', 'मुल्क की जबान फाजिल मुसलमान', 'मुसलमान', 'मौलाना अबुल-कलाम की हिन्दुस्तानी', 'राष्ट्रभाषा पर विचार', 'विचार विमर्श', 'शासन में नागरी', 'शूद्रक', 'साहित्य सन्दीपिनी', 'हिन्दी-कवि-चर्चा', 'हिन्दी की हिमायत क्यों?', 'हिन्दी के हितैषी क्या करें', 'हिन्दी-गद्य का निर्माण', 'हिन्दुस्तानी से सावधान' और 'अनुराग बाँसुरी' आदि उल्लेखनीय हैं। आपकी 'स्वप्न-सिद्धान्त' नामक पुस्तक का प्रकाशन आपके निधन के उपरान्त सन् 1977 में हुआ है।

एक बात यहाँ पर विशेष रूप से इसलिए उल्लेखनीय है कि पाण्डेयजी के उत्कृष्ट हिन्दी-प्रेम ने आपको डी०लिट्० होने से वंचित ही रखा। घटना इस प्रकार है: एम० ए० करने के उपरान्त जब आपने अपना शोध-प्रबन्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की डी-लिट्० उपाधि के लिए हिन्दी में प्रस्तुत करना चाहा तो कतिपय वैधानिक कारणों से आप

वैसा न कर सके। हिन्दी के प्रति अपने असीम अनुराग के कारण आपने उक्त प्रबन्ध प्रस्तुत ही नहीं किया।

आपका निधन 24 जनवरी सन् 1958 को हुआ था।

श्री चन्द्रभाल जौहरी

श्री जौहरीजी का जन्म सन् 1904 में उत्तर प्रदेश के एटा नगर के एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा आगरा और जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली में हुई थी और बाद में आपने गुजरात विद्यापीठ से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। श्री चन्द्रभालजी अपने बड़े भाई चन्द्रधर जौहरी के प्रभाव के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा से जुड़ गए थे और सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। आप 'काकोरी केस' के समय अँग्रेजी शासन द्वारा गिरफ्तार किए गए थे, किन्तु पर्याप्त प्रमाणों के अभावों के कारण कुछ माह बाद ही छोड़ दिए गए थे।

श्री चन्द्रभालजी उच्चकोटि के विद्वान्, विचारक, वक्ता तथा लेखक थे। सन् 1930 के आन्दोलन में जब आप तीन-चार वर्ष के लिए जेल में रहे थे तब आपने वहाँ पर ही प्रख्यात रूसी लेखक गोर्की के उपन्यास 'दि मदर' तथा 'अलैक्जेंडर कुप्रिन' के 'यामा दि पिट' नामक उपन्यासों का

बड़े परिश्रम से अनुवाद किया था। उक्त दोनों अनुवाद श्री प्रेमचन्द के सरस्वती प्रेस,बनारस से क्रमश: 'माँ' तथा 'गाड़ी वालों का कटरा' नाम से प्रकाशित भी हो चुके हैं। जेल से लौटने के बाद आप सन् 1933 में बनारस की थियोसोफीकल सोसाइटी में रहते थे और वहाँ पर ही आपने 'हिन्दुस्तान हाउसिंग कम्पनी' नाम से एक ऐसी संस्था स्थापित की थी, जिसने बनारस में उन दिनों कम व्यय में अतिशय सुरुचिपूर्ण मकान बनवाए थे। चन्द्रभालजी स्वयं भी ऐसे ही मकान में रहते थे। श्री चन्द्रभालजी के अनुरोध पर श्री प्रेमचन्दजी ने भी इस कम्पनी में 1500 रुपए के शेयर खरीदे थे। श्री चन्द्रभालजी द्वारा अनूदित उक्त दोनों उपन्यासों का हिन्दी-जगत् में बहुत स्वागत हुआ था। आपने बच्चों के लिए भी कुछ पुस्तकें लिखी थीं, जो बम्बई से प्रकाशित हुई थीं। कुछ समय के लिए आप गुजरात विद्यापीठ में भी अध्यापक रहे थे और बाद में आप लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'नवजीवन' के सहायक सम्पादक रहे थे। आप एक उत्कृष्ट लेखक होने के साथ-साथ कुशल वक्ता भी थे। आप जात-पात में बिलकुल विश्वास नहीं रखते थे। जिस प्रकार आपके बड़े भाई श्री चन्द्रधर जौहरी ने पंजाब के एक खत्री परिवार में जन्मी 'विद्याधरी' नामक कन्या से विवाह किया था उसी प्रकार आपने भी मद्रास के एक ब्राह्मण-परिवार में जन्मी 'विशालाक्षी' नामक ब्राह्मण-कन्या से विवाह करके जात-पात को तोड़ा था। वे तीन विषयों में एम० ए० थीं और अनेक वर्ष तक महारानी सिन्धिया कालेज, ग्वालियर में प्राचार्या के पद पर भी रही थीं।

यह श्री चन्द्रभालजी का सौभाग्य था कि आप नेहरू-परिवार के विशेष विश्वास-भाजन थे। राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के सिलसिले में जब आप सन् 1941 में गिरफ्तार किए गए तब ही सन् 1943 में आप ऐसे बीमार हुए कि वह बीमारी आपके लिए सर्वथा असाध्य हो गई। फलतः 5 फरवरी सन् 1943 की रात को आपको जेल से रिहा कर दिया गया। उस समय प्रयत्न करने पर भी डॉक्टर आपको न बचा सके और 10 फरवरी सन् 1943 को आपने उस समय प्रातः 7 बजे इस संसार से विदा ली जिस समय राष्ट्र-पिता बापू का 21 दिन का ऐतिहासिक व्रत प्रारम्भ हुआ था।

श्री चन्द्रभूषण मिश्र

श्री चन्द्रभूषण मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश के देवरिया जन-

पद के सलेमपुर नामक ग्राम में हुआ था। आप हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार और रीतिकाव्य के आधिकारिक विद्वान् आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के द्वितीय पुत्र थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा श्री मिश्रजी की देख-रेख में काशी में हुई थी।

आपने सागर विश्वविद्यालय से 'पुरातत्व एवं भारतीय संस्कृति' विषय में प्रथम श्रेणी में एम० ए० किया था और सभी पत्रों में उच्चतम अंक लेकर परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त की थी। आप जहाँ साहित्य के अनुशीलन में गम्भीरता से पैठ रखते थे वहाँ अत्याधुनिक कविता में नई शाखा का प्रवर्त्तन करने की पहल भी आपने की थी। इस सम्बन्ध में आपके लिपिबद्ध विचार अत्यन्त प्रेरक तथा मननीय हैं।

गम्भीर गवेषक और उत्कृष्ट लेखक होने के साथ-साथ आप उच्चकोटि के चित्रकार भी थे। आधुनिकतम चित्रकला का उज्ज्वल अवदान आपके वे सहस्राधिक चित्र हैं, जो आज भी आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित हैं।

आप 'मध्य प्रदेश की प्राचीन मूर्त्ति-कला' विषय पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि के लिए अनुसन्धान कर रहे थे कि अकस्मात् बहुत ही थोड़ी आयु में सन् 1964 में आपका निधन हो गया। हिन्दी को आपसे बहुत अपेक्षाएँ तथा आशाएँ थीं।

श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार

श्री चन्द्रमणिजी का जन्म पंजाब के जालन्धर नामक नगर में 16 सितम्बर सन् 1891 को हुआ था। आपके पिता श्री शालिग्राम आर्यसमाज के प्रख्यात नेता महात्मा मुंशीराम द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी का नाम और काम भली-भाँति जान-सुन चुके थे; फलस्वरूप उन्होंने श्री चन्द्रमणिजी को गुरुकुल में प्रविष्ट कर दिया। आपने विधिवत् 14 वर्ष तक गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करके वहाँ की 'विद्यालंकार' उपाधि प्राप्त की थी। आपके पालि भाषा के ज्ञान से प्रभावित होकर कोलम्बो विश्वविद्यालय ने आपको 'पालि-रत्न' की उपाधि से विभूषित किया था।

गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त प्रारम्भ में कुछ दिन आप गुरुकुल में ही 'वेदोपाध्याय' रहे और बाद में उत्तर प्रदेश के आगरा क्षेत्र के अवागढ़ राज्य में भी कुछ समय तक कार्य किया। इसके उपरान्त आपने अपना स्थायी निवास देहरादून को बना लिया और वहाँ पर 'भास्कर प्रेस' की स्थापना करके एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। इस काल में आपने नगर की सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी उल्लेखनीय सेवाएँ कीं। आर्यसमाज द्वारा हैदराबाद में आर्यों पर किए जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध वहाँ जो सत्याग्रह किया गया था उसमें सक्रिय रूप से भाग लेने के अतिरिक्त आपने नमक सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा अगस्त आन्दोलन में भी बढ़-चढ़कर योगदान किया था। इस प्रसग में आपने अनेक बार जेल-यात्राएँ भी की थीं। कांग्रेस द्वारा समय-समय पर किए जाने वाले हरिजनोद्धार और जमींदारी-उन्मूलन के कार्यक्रमों के संचालन में भी आप पूर्णतः सक्रिय रहे थे। कुछ दिन तक आपने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में मुख्याधिष्ठाता के रूप में भी कार्य किया था।

आप जहाँ वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे वहाँ आपने अपनी प्रतिभा का लेखन के क्षेत्र में भी प्रयोग किया था। आपने अपनी 'निरुक्त भाष्य' नामक कृति में जहाँ वैदिक ज्ञान का विशद परिचय दिया था वहाँ आपकी 'पातं-

जलि प्रदीप', 'धम्म पद', 'आर्ष मनुस्मृति' तथा 'श्रीमद् वाल्मीकि रामायण' शीर्षक रचनाओं से आपकी गहन अध्ययनशीलता का परिचय मिलता है। आपकी 'सत्य-अहिंसा के प्रयोग' और 'कल्याण पथ' नामक पुस्तकों में नए समाज की रचना के संकेत मिलते हैं। आपकी 'स्वामी दयानन्द और वैदिक स्वराज्य' नामक रचना सर्वथा अद्वितीय और अभिनन्दनीय है।

आपका निधन 30 जून सन् 1965 को हुआ था।

श्री चन्द्रमौलि सुकुल

श्री सुकुल का जन्म उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद की मोहनलालगंज तहसील के अतरौली नामक ग्राम में 14 फरवरी सन् 1883 को हुआ था। आपके पिता पं० काशीदीन सुकुल संस्कृत के विद्वान्, पौराणिक, वैद्य और कवि थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा ननिहाल के सुदौली (रायबरेली जनपद) नामक ग्राम में हुई थी। सन् 1905 में आपने केनिंग कालेज, लखनऊ से बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और सर्वोच्च अंक मिलने के उपलक्ष्य में 'स्वर्ण पदक' भी प्राप्त किया।
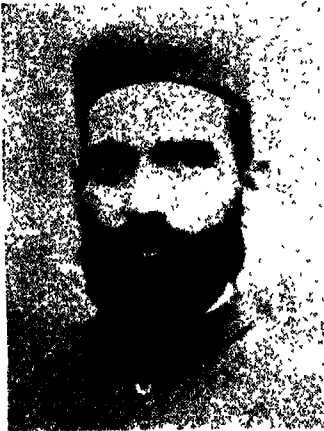
इसके उपरान्त आप प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० और एल० टी० करने के पश्चात् सन् 1909 में 'फौजी अखबार' के सहायक सम्पादक हो गए और सन् 1910 में कुछ दिन तक रियासत 'गोपाल खेड़ा' के मैनेजर भी रहे। सन् 1911 से 1918 तक आपने गवर्नमेण्ट कालेज, प्रयाग में अध्यापन का कार्य किया और फिर महामना मदनमोहन मालवीय के अनुरोध पर आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संचालित 'टीचर्स ट्रेनिंग कालेज' में चले गए और अवकाश ग्रहण करने तक उसमें उप-प्रधानाचार्य और प्रधानाचार्य के रूप कार्य किया। निरन्तर 27 वर्ष तक सेवा करने के उपरान्त आपने सन् 1945 में अवकाश ग्रहण किया था। विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ० राधाकृष्णन् की हार्दिक इच्छा इनका कार्य-काल बढ़ाने की थी, जिसे सुकुलजी ने स्वीकार नहीं किया।

आप अपने जीवन के प्रारम्भ से ही घनघोर परिश्रमी और तपस्वी प्रकृति के थे, अतः आपने अपने कार्य को जिस निष्ठा तथा तत्परता से निबाहा उसके कारण शिक्षा-जगत् के अतिरिक्त आपकी लोकप्रियता अन्य सामाजिक क्षेत्रों में भी हो गई थी। आप जहाँ अनेक वर्ष तक काशी विश्वविद्यालय की सीनेट के सक्रिय सदस्य रहे, वहाँ सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल, हरिश्चन्द्र हाईस्कूल और सनातन धर्म हाईस्कूल काशी की प्रबन्ध समितियों के भी सम्मानित सदस्य रहे थे। काशी कान्यकुब्ज सभा के अनेक वर्ष तक अध्यक्ष रहने के साथ-साथ आप 'भिनगाराज दण्डी सेवाश्रम', 'आदर्श पुस्तकालय काशी' तथा 'नवजीवन इण्टर कालेज मोहनलालगंज' के भी अनेक वर्ष तक सभापति रहे थे। आपको 'हॉम्योपैथी चिकित्सा' में पर्याप्त रुचि थी और काशी की 'होम्योपैथिक एसोसिएशन' के भी आप सदस्य रहे थे।

एक कुशल प्रबन्धक और विचक्षण शिक्षक होने के साथ-आथ आप उच्चकोटि के लेखक भी थे। आपने गणित तथा हिन्दी विषयक अनेक पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के अतिरिक्त 'नाट्यकथामृत', 'मनोविज्ञान', 'अकबर', 'शरीर और शरीर-रक्षा' एव 'मानस पीयूष' आदि अनेक पुस्तकों की रचना की थी। इसके अतिरिक्त आपके अनेक लेख हिन्दी की तत्कालीन प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। आपका हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, अरबी, फारसी और अँग्रेजी आदि अनेक भाषाओं पर असाधारण अधिकार था। संस्कृत में आप 'सत्य' उपनाम से कविता भी किया करते थे। आप यावज्जीवन स्वाध्याय, साहित्य-साधना और समाज-सेवा में ही संलग्न रहे थे और अपनी बहुमुखी योग्यता के बल पर साहित्य-जगत् में अपना सर्वथा विशिष्ट स्थान बना लिया था।

आपका निधन 4 अगस्त सन् 1967 को हुआ था।

श्री चन्द्रराज भण्डारी

श्री भण्डारीजी का जन्म सन् 1902 में राजस्थान में पाली जिले के जैतारण नामक ग्राम में हुआ था और बाद में मध्य-प्रदेश के भानपुरा नामक नगर में रहने लगे थे। अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री सुखसम्पत्तिराय भण्डारी की भाँति आपने भी अपना सारा जीवन साहित्य-साधना में लगा दिया था। सन् 1920 से सन् 1966 तक का आपका सारा कार्य-काल सरस्वती की आराधना में ही व्यतीत हुआ था।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल में आप कुछ दिन तक कई पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहे थे और इस बीच आपने अनेक पुस्तकों की भी रचना की थी। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'आदर्श देशभक्त' (1919), 'गांधी दर्शन' (1920), 'सिद्धार्थ कुमार' (नाटक, 1923), 'सम्राट् अशोक' (1923), 'भक्ति योग' (1924) 'नैतिक जीवन' ('1925), 'भगवान् महावीर' (1925), 'भारत के हिन्दू सम्राट्' (1925), 'हरफन मौला' (1927) 'समाज विज्ञान' (1927), 'भारतीय व्यापारियों का परिचय' (1930), 'ओसवाल जाति का इतिहास' (1934), 'अग्रवाल जाति का इतिहास'—दो खण्ड (1936), 'स्कूल में फूल बाग' (1945) तथा 'भारत का औद्योगिक विकास' (1956) अन्यतम हैं।

इनके अतिरिक्त आपने 'वनौषधि चन्द्रोदय' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा था, जो सन् 1938 से 1944 तक 10 खण्डों में (पृष्ठ 2200) प्रकाशित हुआ था। इस प्रसंग में आपके द्वारा लिखित 'विश्व इतिहास कोष' का नाम भी उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ के सन् 1962 से सन् 1966 तक के काल में केवल पाँच खण्ड (पृष्ठ 1600) ही प्रकाशित हो पाए थे कि आपका 5 अक्तूबर सन् 1966 को असामयिक देहावसान हो गया और यह कार्य अधूरा ही रह गया।

श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसेन जैन

श्रीमती चन्द्रवती का जन्म दिल्ली में 10 मई सन् 1909 को हुआ था। आपके पिता सर मोतीसागर पंजाब हाईकोर्ट के जस्टिस रहने के अतिरिक्त दिल्ली विश्वविद्यालय के उप-कुलपति भी रहे थे और आपके पति श्री ऋषभसेन जैन देहरादून के 'भगवानदास बैंक' के डायरेक्टर थे।

हिन्दी के ख्याति-प्राप्त साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के सम्पर्क में आने के उपरान्त आप लेखन की ओर उन्मुख हुईं और धीरे-धीरे एक उत्कृष्ट कथा-लेखिका के रूप में आपने उल्लेखनीय स्थान बना लिया। अनेक वर्ष तक आप प्रयाग से प्रकाशित होने वाली महिलोपयोगी पत्रिका 'दीदी' तथा लाहौर से प्रकाशित होने वाली 'शान्ति' के सम्पादक-मण्डल की प्रतिष्ठित सदस्या भी रही थीं।

आपकी कहानियों में पारिवारिक जीवन की अनेक खट्टी-मीठी अनुभूतियों का जो चित्रण देखने को मिलता है वह आपकी कला का उदात्त उदाहरण है। आपकी कहानियों के संकलन 'नींव की ईंट' पर सन् 1943 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'सेकसरिया पुरस्कार' प्रदान किया गया था और इसे आपने श्री माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हुए सम्मेलन के हरिद्वार-अधिवेशन में ग्रहण किया था।

आपका निधन सन् 1969 में हुआ था।

श्री चन्द्रशेखर धर मिश्र

आपका जन्म बिहार के चम्पारन जिले के रत्नमाला (बगहा) नामक ग्राम में सन् 1859 में हुआ था। आपके पिता श्री कमलाधर मिश्र संस्कृत साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान्, कवि और गायक थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आपके पिताजी के ही निरीक्षण में हुई थी और आपने 12 वर्ष की अवस्था में ही 'लघु कौमुदी' तथा 'अमरकोश' आदि ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन कर लिया था। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण आप संस्कृत में अनुष्टुप छन्दों की रचना सरलता से कर लिया करते थे। एक बार आपने अयोध्या के राजा के दरबार में संस्कृत और हिन्दी के 109 अनुष्टुप छन्दों की रचना करके अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया था।

संस्कृत साहित्य के अपने अध्ययन को जारी रखने के लिए आप जब काशी गए तो वहाँ पर आपने आयुर्वेद के
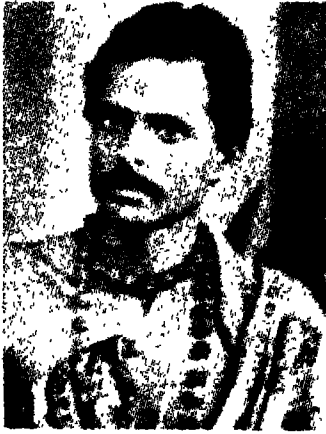
ग्रन्थों का भी विधिवत् अध्ययन किया। यही नहीं कि आपने केवल आयुर्वेद के ग्रन्थों का पारायण ही किया हो बल्कि आपके द्वारा आविष्कृत 'उदुम्बरसार' नामक औषधि अनेक रोगों में रामबाण सिद्ध हुई थी। आपको काशी के विद्वत्-समाज द्वारा 'आयुर्वेदाचार्य', 'चिकित्सक चूड़ामणि', 'विद्यालंकार', 'कवीन्द्र', 'पीयूष पाणि' तथा 'भिषग्रत्न' आदि अनेक सम्मानोपाधियाँ प्राप्त हुई थीं। आपकी खड़ी बोली की कविता पर मुग्ध होकर श्री अयोध्याप्रसाद खत्री ने सौ मोहरें भेंट की थीं। आपके साहित्यिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आपको सन् 1923 में बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पाँचवें अधिवेशन का अध्यक्ष भी बनाया गया था। यह अधिवेशन पटना में हुआ था।

आपने 'विद्याधर्म दीपिका' तथा 'चम्पारन चन्द्रिका' नामक पत्रों का कई वर्ष तक सफलतापूर्ण सम्पादन किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप काशी से 'आविष्कार' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन भी करते थे। वैसे तो आपने गद्य और पद्य में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं परन्तु उनमें से 'गूलर गुण विकास' और 'आरोग्य प्रकाश' नामक पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। आपका निजी पुस्तकालय सन् 1961 में आग लग जाने के कारण नष्ट हो गया था।

आपका देहावसान सन् 1949 को काशी में हुआ था।

श्री चन्द्रशेखर पाठक

श्री पाठकजी का जन्म पटना जिले के बिहार शरीफ नामक स्थान में सन् 1886 में हुआ था। जब आप 8 वर्ष के ही थे कि आपके पिता का देहान्त हो गया और 'बिहार बन्धु' के यशस्वी सम्पादक पंडित केशवराम भट्ट के निर्देशन में आपकी शिक्षा हुई। आपने बिहार शरीफ के हाईस्कूल से ही मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। श्री केशवराम भट्ट ने ही आपको हिन्दी लिखने की ओर प्रवृत्त किया था और उनके द्वारा स्थापित बालसभा से आपको हिन्दी भाषण की विशेष प्रेरणा मिली थी। सन् 1902 में जब भट्टजी का असामयिक देहावसान हो गया तो आप असहाय से हो गए थे। आपके लेख 'बिहार बन्धु' में प्रकाशित हुआ करते थे।

इसी बीच आप अचानक अस्वस्थ हो गए और स्वास्थ्य-लाभ के लिए काशी चले गए। काशी में आपने 'रमा' नामक एक उपन्यास दो भागों में लिखा, जिसे चुनार के जान्हवी प्रेस ने छापा था। उन दिनों आपकी आयु कुल 20 वर्ष की ही थी। वहीं पर आपका सम्पर्क 'चन्द्रकान्ता सन्तति' नामक उपन्यास के सुप्रसिद्ध लेखक बाबू देवकीनन्दन खत्री के साथ हुआ और उनके साथ रहकर ही आप हिन्दी की सेवा में लग गए। वहाँ रहते हुए आपने 'मदालसा' और 'अर्थ में अनर्थ' नामक पुस्तकों की रचना की थी।

कुछ दिन तक आपने काशी से नागपुर जाकर वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'मारवाड़ी' नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी किया था। वहाँ से आप 'बड़ा बाजार गजट' नामक पत्र के सम्पादक होकर कलकत्ता चले गए और

फिर थोड़े दिनों में ही उस कार्य को छोड़कर पुस्तक-रचना में ही अधिकांश समय देने लगे। आपके द्वारा लिखित मौलिक उपन्यासों में 'वारांगना रहस्य', 'विलासिनी विलास', 'शशिबाला', 'भीमसिंह', 'शोणितचक्र', 'हेमलता', 'आदर्श लीला', 'कृष्ण वसना सुन्दरी', 'लीला', 'प्रतिमा विसर्जन', 'मायापुरी' और 'विचित्र समाज सेवक' आदि प्रमुख हैं। इनमें से 'मायापुरी' अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यास 'वैनिटी फेयर' पर आधारित है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त आपने 'कर्मवीर गांधी', 'महाराणा प्रताप', 'नेपोलियन बोनापार्ट', 'लार्ड किचनर', 'सिकन्दरशाह', 'पृथ्वीराज' तथा 'लाला लाजपतराय' आदि की जीवनियाँ भी लिखी थीं। आपकी 'सन् सत्तावन का गदर' और 'पंजाब का भीषण हत्याकाण्ड' नामक पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1941 में हुआ था।

श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय

श्री पाण्डेयजी का जन्म उत्तरप्रदेश के बनारस नगर के 'बड़ी पियरी' नामक मोहल्ले में 25 जून सन् 1903 में हुआ था। आपकी शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई थी। आप संस्कृत तथा हिन्दी में एम० ए० और शास्त्री की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके सन् 1929 में कानपुर के सनातन धर्म कालेज में संस्कृत विभागाध्यक्ष हो गए और मृत्यु-पर्यन्त इसी पद पर बने रहे।

आप एक कुशल वक्ता होने के साथ-साथ अच्छे लेखक भी थे। आपके द्वारा लिखित 'संस्कृत साहित्य के इतिहास की रूपरेखा' नामक ग्रन्थ आपकी प्रतिभा का उत्कृष्टतम अवदान है। आपकी अन्य हिन्दी रचनाओं में 'आधुनिक हिन्दी कविता' तथा 'रसखान और उनका काव्य' भी उल्लेखनीय हैं। आपका कानपुर के 'नवजीवन पुस्तकालय' और 'श्री हिन्दी साहित्य मंडल' से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था।

आपका निधन 47 वर्ष की आयु में सन् 1949 में हुआ था।

श्री चन्द्रशेखर मिश्र

श्री मिश्र का जन्म काशी में सन् 1928 में हुआ था। आप हिन्दी के ख्याति-प्राप्त विद्वान् एवं मनस्वी प्राध्यापक आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। अपने यशस्वी पिता के अनुरूप आप भी उदात्त मेधा और प्रतिभा के धनी थे।

काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त आपने वहाँ से ही 'जसवन्तसिंह का कर्तृत्व और आचार्यत्व' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि के लिए अनुसंधान प्रारम्भ किया था और 'भगवानदीन साहित्य विद्यालय' काशी में अवैतनिक रूप से अध्यापन का कार्य भी करते थे। हिन्दी साहित्य के सर्वांगीण अध्ययन के साथ-साथ आपका संस्कृत वाङ्मय का ज्ञान गम्भीर था और उसमें भी आपने 'शास्त्री' तथा 'साहित्याचार्य' की उपाधियाँ प्राप्त की थीं।
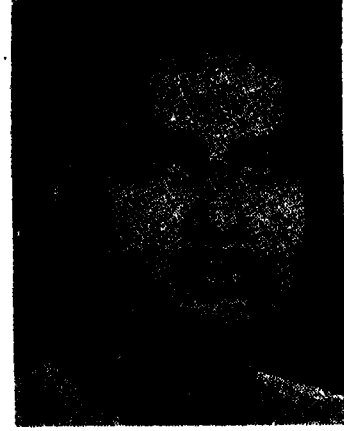
आप कुशल अध्यापक, तत्त्वदर्शी शोधक और गम्भीर प्रकृति के अध्येता होने के साथ-साथ सफल समीक्षक भी थे। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय आपके द्वारा लिखित और सम्पादित 'भाषा भूषण' (भाष्येन्दु शेखर, 1957), 'घनानन्द कवित्त—प्रथम शतक' (भाष्येन्दु शेखर, 1960), 'साहित्य के रूप' (1963) तथा 'घनानन्द कवित्त—द्वितीय शतक' (भाष्येन्दु शेखर, 1966) आदि कृतियों से भली-भाँति मिल जाता है। आपके द्वारा सम्पादित 'ठाकुर ग्रन्थावली' का प्रकाशन आपके देहावसान के उपरान्त सन् 1973 में हुआ था।

आपकी स्मृति में 'विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन' की एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले परीक्षार्थी को 'स्वर्ण पदक' प्रदान किया जाता है।

आपका निधन सन् 1970 में हुआ था।

श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी

श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी का जन्म सन् 1798 में मुअज्जमाबाद जिला फतहपुर (असनी के पास) में हुआ था। आपके पिता का नाम मनीराम वाजपेयी था। मनीराम भी अच्छे कवि थे। मनीराम गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि हंसराम के वंशज थे। चन्द्रशेखर वाजपेयी के पुत्र का नाम गौरीशंकर वाजपेयी था। चन्द्रशेखर वाजपेयी के काव्य-गुरु का नाम करनेस था। ये करनेस अकबर के समकालीन कवि से भिन्न कोई परवर्ती करनेस महापात्र हुए हैं। चन्द्रशेखर वाजपेयी ने 10 वर्ष की अवस्था में ही इनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था।

विद्याध्ययन के बाद 22 वर्ष की आयु (सन् 1820) में आप देशाटन के लिए दरभंगा तथा 29 वर्ष की आयु (सन् 1827) में जोधपुर के महाराजा मानसिंह के दरबार में गए थे। महाराजा मानसिंह ने आपको एक सौ रुपए मासिक वेतन दिया था। महाराजा मानसिंह के देहावसान के बाद उनके पुत्र महाराज तख्तसिंह ने आपका वेतन आधा कर दिया, जिससे आप रुष्ट हो गए और लाहौर की ओर महाराजा रणजीतसिंह के पास चले गए। वहीं से आप पटियाला गए। श्री जगदीशसिंह गहलौत का मत है कि चन्द्रशेखर वाजपेयी अलवर के महाराजा शिवदानसिंह के दरबार में भी आश्रित रहे थे, किन्तु महाराज शिवदानसिंह के राज्य-काल (सन् 1857-1874) की अवधि में आपका पटियाला दरबार में होना सिद्ध होता है।

श्री वाजपेयीजी पटियाला पहुँचकर सरदार जयसिंह सापनी तथा सरदार खुशहालसिंह के माध्यम से महाराजा कर्मसिंह के दरबार में राजकवि नियुक्त हुए थे। आपको पटियाला दरबार में इतनी प्रतिष्ठा मिली थी कि आप फिर लाहौर जाना भूल गए और जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह द्वारा वापस बुलाने पर भी जोधपुर नहीं गए। श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी पटियाला में महाराजा कर्मसिंह, महाराजा नरेन्द्रसिंह तथा महाराजा महेन्द्रसिंह के दरबार में राजकवि (सन् 1843-1875) तक रहे। श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी संस्कृत के पंडित, काव्य रसिक, ज्योतिष-वेत्ता, बहुज्ञ तथा स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे।

दरभंगा तथा जोधपुर में रचित इनके साहित्य का कोई पता नहीं चलता। जो कृतित्व उपलब्ध है, वह पटियाला दरबार की ही देन हैं। काल-क्रम की दृष्टि से आपके ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—'शांति पर्व' (1843-1845)', 'देवी भागवत' दो भाग (1844), 'हम्मीर हठ' (1845), 'रसिक विनोद' (1846), 'विवेक विलास' (1848), 'हरिभक्ति विलास' (1848-1857), 'नखशिख' (1857), 'श्री गुरुभक्ति पंचाशिका' (1857-58), 'माधवी वसंत' (1866)। आपके अप्राप्य ग्रन्थ हैं—'ज्योतिष के ताजक' तथा 'वृंदावन शतक'। आपके कुछ फुटकर छन्द भारती भंडार (सेंट्रल पब्लिक लायब्रेरी, पटियाला) के हस्तलिखित विभाग में भी संकलित हैं। आपकी उपलब्ध अधिकांश रचनाएँ गुरुमुखी लिपि में हैं।

आपका देहावसान सन् 1875 में हुआ था।

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

आचार्यजी का जन्म 11 अगस्त सन् 1900 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के लालढांग नामक गाँव के एक वैश्य-परिवार में हुआ था और आपका जन्म-नाम 'शिखरचन्द्र' था। आपकी शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ में आठवीं कक्षा से अधिक न हो सकी थी और आप देहरादून जाकर फौज में भरती हो गए थे। वहाँ विद्रोह में भाग लेने पर पकड़े गए और 'कोर्ट मार्शल' के दिनों में चुपके से भागकर आप बनारस चले गए। बनारस में आपने अपना नाम बदलकर 'चन्द्रसिंह' रख लिया। वहाँ पर आप डॉ० भगवानदास से मिले। डॉ० भगवानदास उन दिनों 'काशी विद्यापीठ' के कुलपति थे। उन्होंने सबसे पहले तो आपका नाम बदलकर 'चन्द्रसिंह' से 'चन्द्रशेखर' किया और कहा, "तुम्हारा ऊँचा मस्तक यह बताता है कि तुम्हें 'उच्चकोटि का ब्राह्मण' बनना है। तुम संस्कृत के अध्ययन में लग जाओ।" और आपको काशी विद्यापीठ में प्रविष्ट कर लिया। आप वहाँ रहकर संस्कृत के विधिवत् अध्ययन में लग गए और काशी की गलियों में पंडितों के घर जाकर उनसे विद्या ग्रहण करने लगे। यह बात सन् 1921 की है।

आपने काशी में रहकर जहाँ संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया वहाँ जैन और बौद्ध-दर्शन के अध्ययन में भी आपने बहुत रुचि ली। जिस वर्ष सन् 1924 में आपने काशी विद्यापीठ से 'शास्त्री' की उपाधि प्राप्त की उसी वर्ष आपकी 'न्याय बिन्दु' नामक सबसे पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। यह पुस्तक उसी वर्ष हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी की एम० ए० कक्षा में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत हुई और महामना मदनमोहन मालवीय के प्रोत्साहन तथा प्रश्रय से आप वहाँ अध्यापक भी हो गए। आप विश्वविद्यालय में बौद्ध, न्याय, वेदान्त तथा जैन दर्शन पढ़ाया करते थे। आपके जीवन पर सांख्य और जैन दर्शन का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। आपके एक उपन्यास 'श्रेणिक बिम्बसार' (1953) में जैन दर्शन के ही उच्च आदर्शों का समावेश है।
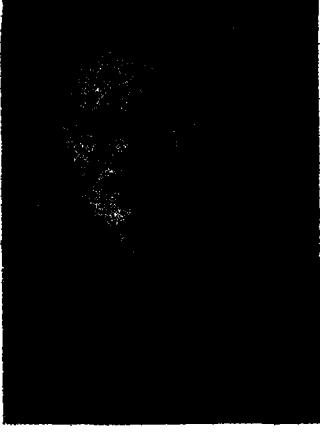
शास्त्रीजी ने 'शेक्सपियर' और 'कालिदास' की रचनाओं से भी बहुत प्रेरणा ग्रहण की थी। आपने अपने जीवन में अनेक पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें 52 से प्रकाशित हो चुकी हैं और 12 अभी अप्रकाशित हैं। आपने हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के अतिरिक्त अँग्रेजी भाषा में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। आपकी प्रकाशित रचनाओं में जहाँ इतिहास, जीवनियाँ, उपन्यास तथा कहानियाँ आदि हैं वहाँ छात्रोपयोगी साहित्य के निर्माण में भी आप पीछे नहीं रहे थे। आपने जहाँ 'भारतीय आतंकवाद का इतिहास', 'हिटलर महान्', 'मुसोलिनी', 'स्टालिन' और 'प्यारा पटेल' आदि ग्रन्थ लिखे वहाँ 'वामन अवतार', 'भगवान राम', 'योगिराज कृष्ण', 'क्षुल्लिका गुणवती', 'भीष्म प्रतिज्ञा' तथा 'भैरव पद्मावती कल्प' आदि अनेक रचनाएँ भी की थीं।

आपको 'भारतीय आतंकवाद का इतिहास' नामक ग्रन्थ के कारण बहुत ख्याति मिली थी। उसके अतिरिक्त आपकी 'भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास' और 'शिशु नाग वंश का इतिहास' नामक पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं। कहानी-सम्बन्धी पुस्तकों में 'पंच प्रसून', 'जंगल में जीवन-झाँकी' और 'आल्हा-ऊदल' आदि के अतिरिक्त 'मौरवी-पुत्र', 'टेसू', 'हरिजन बाला', 'अन्नदाता की बेटी' और कुँवर निहाल दे' आदि प्रमुख हैं। साहित्य के विभिन्न अंगों की समृद्धि के लिए आपने अनेक प्रकार के साहित्य की सृष्टि की थी, परन्तु आपको इतिहास-लेखन में ही विशेष दक्षता प्राप्त थी। हिन्दी-काव्य में जिस प्रकार नौ रसों की प्रधानता होती है उसी प्रकार आपने अपनी लेखनी को 'विज्ञान रस', 'अन्वेषण रस' और 'इतिहास रस' से आप्लावित कर रखा था। आपने 'पंचवर्षीय योजना का आर्थिक दृष्टिकोण' नामक एक पुस्तक और लिखी थी। इनके अतिरिक्त 'आत्म-निर्माण' और 'चरित्र-निर्माण' नामक आपकी पुस्तकों में विश्व-बन्धुत्व तथा नैतिकता पर बल दिया गया है।

आप बनारस से आकर दिल्ली में रहने लगे थे और यहाँ के एक कालेज में भी कुछ दिन तक अध्यापन का कार्य किया था। कुछ दिन तक आपने पत्रकारिता को भी अपनाया था और आगरा से 'स्वतन्त्रता' नामक दैनिक भी निकाला था। उन्हीं दिनों आपको जेल-यात्रा भी करनी पड़ी थी। आप कुछ दिन तक 'नवभारत टाइम्स' दैनिक के प्रधान सम्पादक भी रहे थे। सन् 1927-28 में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दू संसार', 'फिल्म चित्र' (1937) तथा 'वैश्य समाचार' (1947-49) के सम्पादन में भी आपने योगदान दिया था। कुछ दिन तक आप सन् 1949 से 1964 तक 'राजस्थान न्यूज सर्विस' से भी सम्बद्ध रहे थे।

आपका निधन 26 फरवरी सन् 1965 को हुआ था।

श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल

श्रीमती लखनपाल का जन्म 29 दिसम्बर सन् 1904 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर नामक नगर में हुआ था। आप गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक और कालान्तर में उसके कुलपति श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार की सहधर्मिणी थीं। आप गुरुकुल वृन्दावन के भूतपूर्व मुख्या-

धिष्ठाता लखीमपुर-निवासी श्री शिवनारायण शुक्ल के ज्येष्ठ भ्राता श्री जयनारायण शुक्ल की सुपुत्री थीं। विवाहोपरान्त आप 'चन्द्रावती शुक्ला बी० ए०' से 'चन्द्रावती लखनपाल' हो गई थीं और इसी नाम से हिन्दी-साहित्य में विख्यात थीं।

अपने पति प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के सम्पर्क से आपकी प्रतिभा तथा योग्यता में जो निखार आया वही कालान्तर में आपकी ख्याति का कारण बना। शिक्षा, समाज तथा साहित्य के क्षेत्र में आपने जो बहुविध सेवाएँ की थीं उन्हीं के कारण भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने सन् 1952 में आपको राज्यसभा की सदस्या मनोनीत किया था। एम० ए० बी० टी० करने के उपरान्त प्रारम्भ में आप अनेक वर्ष तक देहरादून की 'महादेवी कन्या पाठशाला' की प्रधानाचार्या रहीं और फिर 'कन्या गुरुकुल देहरादून' की आचार्या के रूप में आपने शिक्षा-जगत् में महत्त्वपूर्ण ख्याति अर्जित की थी। शिक्षा-क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के अतिरिक्त आपने राष्ट्रीय जागरण में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था। असहयोग आन्दोलन और कांग्रेस की सभी प्रमुख गतिविधियों में आप उन्मुक्त मन तथा उत्साहपूर्वक भाग लिया करती थीं। इस प्रसंग में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस आन्दोलन के डिक्टेटर के रूप में भी आप जेल गई थीं।

आपने जहाँ शिक्षा तथा राष्ट्रीय क्षेत्र को अपनी सेवाओं से उपकृत किया था वहाँ साहित्य-रचना की दिशा में भी आपकी देन सर्वथा अभिनन्दनीय है। आपकी लेखन-क्षमता का सबसे ज्वलन्त प्रमाण यह है कि आपकी पहली पुस्तक 'स्त्रियों की स्थिति' पर जहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने आपको 'सेकसरिया पुरस्कार' प्रदान किया था वहाँ सन् 1934 में आपकी 'शिक्षा मनोविज्ञान' नामक कृति उसके सर्वोच्च 'मंगलाप्रसाद' पुरस्कार' से भी सम्मानित हुई थी। आपकी अन्य रचनाओं में 'शिक्षाशास्त्र' तथा 'समाज शास्त्र के मूल तत्त्व' के नाम भी उल्लेखनीय हैं। 'स्त्रियों की स्थिति' की रचना आपने मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' नामक पुस्तक के उत्तर में की थी।

मई सन् 1964 में आपने देहरादून में 25 हजार रुपए की निधि से 'चन्द्रावती विमेन वैलफेयर ट्रस्ट' की स्थापना करके उसके द्वारा नारी-कल्याण का जो कार्य प्रारम्भ किया था उससे उस क्षेत्र की जनता की बड़ी सेवा हुई है। आपका निधन 29 मार्च सन् 1969 को हुआ था। आपकी स्मृति को स्थायी तथा सुरक्षित बनाने की दृष्टि से आपके पति प्रो० सत्यव्रत ने 'चन्द्रावती लखनपाल ट्रस्ट सोसाइटी' नाम से देहरादून में एक संस्था की स्थापना की है। इस संस्था के माध्यम से शिक्षा तथा समाज-सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य होता रहेगा।

बाबू चिन्तामणि घोष

बाबू चिन्तामणि घोष का जन्म पश्चिम बंगाल के हावड़ा जनपद के अन्तर्गत 'बाली' नामक गाँव में 10 अगस्त सन् 1854 को हुआ था। आप हिन्दी की प्रख्यात पत्रिका 'सरस्वती' के संचालक और 'इण्डियन प्रेस प्रयाग' के स्वत्वाधिकारी थे। यह आपके ही हिन्दी-प्रेम का प्रताप है कि 'सरस्वती' के माध्यम से जहाँ आपने हिन्दी को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी-जैसा नियामक प्रदान किया वहाँ उसके द्वारा हिन्दी के स्वरूप-निर्माण की दिशा में अग्रणी कार्य हुआ। यह एक विचित्र संयोग है कि 'नागरी प्रचारिणी सभा' को 'सरस्वती' पत्रिका के संचालन के लिए एक बंग-भाषा-भाषी महानुभाव ही मिले।

श्री घोष ने इण्डियन प्रेस की स्थापना केवल 500 रुपए की स्वल्प-सी पूँजी से सन् 1884 में की थी और प्रेस के लिए पहली मशीन आपने 'पायोनियर प्रेस' से खरीदी थी। किसे मालूम था कि इस छोटी-सी पूँजी से खरीदा गया यह प्रेस ही हिन्दी-साहित्य के निर्माण और उत्कर्ष की आधार-शिला बनेगा। घोष बाबू ने जहाँ अपने इस प्रेस की ओर से

हिन्दी की अनेक पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन किया वहाँ गम्भीर ज्ञानवर्धक साहित्य के प्रकाशन में भी आप पीछे नहीं रहे। 'सरस्वती' के माध्यम से जहाँ द्विवेदीजी तथा उनके परवर्ती अनेक सम्पादकों ने हिन्दी का निर्माण किया वहाँ आपके प्रेस की ओर से प्रकाशित होने वाली पाठ्य-पुस्तकों ने शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने में भी अपना अनन्य सहयोग दिया था।

यह बाबू चिन्तामणि घोष के अनन्य हिन्दी-प्रेम का ही सुपरिणाम था कि 'इण्डियन प्रेस' की ओर से 'सरस्वती' के अतिरिक्त बालोपयोगी मासिक पत्र 'बालसखा' का भी प्रकाशन किया गया। 'बालसखा' के द्वारा भी हिन्दी-लेखन को बहुत प्रोत्साहन मिला। एक ओर जहाँ 'सरस्वती' के द्वारा गम्भीर साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन मिल रहा था वहाँ दूसरी ओर 'बालसखा' के द्वारा हिन्दी-लेखकों की नई पीढ़ी तैयार की जा रही थी। श्री घोष के कर्म-कौशल और कर्मठ व्यक्तित्व ने जहाँ द्विवेदीजी-जैसे दुर्धर्ष व्यक्तित्व को हिन्दी को भेंट किया वहाँ 'सरस्वती' के सम्पादन में आपने सर्वश्री देवीप्रसाद शुक्ल, देवीदत्त शुक्ल, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी-जैसे विद्वानों का सहयोग भी प्राप्त किया। कालान्तर में आपके उत्तराधिकारियों ने सर्वश्री ठा० श्रीनाथसिंह, उमेशचन्द्र देव, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' और श्रीनारायण चतुर्वेदी-जैसे विद्वान् व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करके उसका निरन्तर प्रकाशन जारी रखा।

श्री घोष ने जहाँ 'सरस्वती' और 'बालसखा' के माध्यम से हिन्दी-पत्रकारिता के विकास के लिए नए आयाम उद्घाटित किए वहाँ आपके उत्तराधिकारियों ने भी अपनी विविध प्रवृत्तियों से हिन्दी की अभिवृद्धि में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। इण्डियन प्रेस से सचित्र समाचार-साप्ताहिक 'देशदूत' का प्रकाशन जहाँ श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' के सम्पादन में हुआ वहाँ श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' के सम्पादन में 'मंजरी' नामक कहानी-पत्रिका भी प्रकाशित हुई। इसका सम्पादन कुछ दिन तक श्री नरोत्तम नागर ने भी किया था। कृषि और ग्रामीणोपयोगी 'हल' नामक मासिक पत्र भी इण्डियन प्रेस से प्रकाशित हुआ था।

यह हर्ष का विषय है कि श्री घोष द्वारा संचालित हिन्दी की प्रख्यात मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का 'हीरक जयन्ती उत्सव' सन् 1963 में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अध्यक्षता में प्रयाग में मनाया गया और इस उपलक्ष्य में प्रकाशित 'सरस्वती' के 'हीरक जयन्ती ग्रन्थ' की प्रथम प्रति भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद को राष्ट्रपति भवन में अर्पित की गई। इस सन्दर्भ में जो उत्सव प्रयाग में आयोजित किया गया था उसमें जहाँ 'सरस्वती' के लगभग 35 पुराने लेखकों का ताम्रपत्र द्वारा अभिनन्दन किया गया था वहाँ इण्डियन प्रेस के भवन के सामने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की मूर्ति की प्रस्थापना भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के करकमलों द्वारा की गई थी। इस महनीय कल्पना के अनन्य सूत्रधार 'सरस्वती' के तत्कालीन सम्पादक पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी थे।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि श्री चिन्तामणि घोष के उदार व्यक्तित्व की देन 'सरस्वती' का निरन्तर प्रकाशन था और 'सरस्वती' का प्रकाशन ही हिन्दी का वह कीर्ति-शिखर है जिसके मेरुदण्ड के रूप में श्री घोष का नाम हिन्दी के इतिहास के साथ जुड़ गया है। जब तक हिन्दी है तब तक 'सरस्वती' का नाम रहेगा, और जब तक 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य द्विवेदीजी की कीर्ति-गाथा हमारे समक्ष रहेगी तब तक श्री चिन्तामणि घोष भी अमर रहेंगे। कदाचित् यह तथ्य भी हमारे पाठकों की दृष्टि से ओझल होगा कि जब सर्वप्रथम कलकत्ता-विश्वविद्यालय में हिन्दी एम०ए० की कक्षाएँ प्रारम्भ हुई तब उक्त विश्वविद्यालय के कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी के अनुरोध पर श्री चिन्तामणि घोष ने उनके लिए पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराई थीं।

ऐसे अभूतपूर्व व्यक्तित्व के धनी श्री घोष का निधन 74 वर्ष की आयु में 11 अगस्त सन् 1928 को हुआ था। अपने जीवन के अन्तिम चार वर्षों में आपकी नेत्र-ज्योति जाती रही थी।

श्री चिम्मनलाल गोस्वामी शास्त्री

श्री गोस्वामीजी का जन्म सन् 1900 में बीकानेर (राजस्थान) में हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत और दर्शन विषय में एम० ए० करने के उपरान्त आप अध्यापन के क्षेत्र में कार्यरत हो गए और फिर सन् 1928 में गीता प्रेस, गोरखपुर से सम्बद्ध हो गए।

गोरखपुर जाकर आपने जहाँ उसके प्रकाशनों को संभाला वहाँ प्रेस की ओर से प्रकाशित होने वाले 'कल्याण' (हिन्दी) तथा 'कल्याण कल्पतरु' (अंग्रेजी) के सम्पादन में पूर्णतया सहयोग दिया। आपने जहाँ 'कल्याण' के 'रामांक', 'विष्णु अंक', और 'गणेश अंक' नामक विशेषांकों का सफलतापूर्वक सम्पादन किया वहाँ 'रामचरितमानस', 'श्रीमद् भागवत पुराण' और 'वाल्मीकि रामायण' आदि ग्रन्थों के अँग्रेजी में अनुवाद भी किए।

आपका निधन 5 मई सन् 1974 को हुआ था।

मुन्शी चिम्मनलाल वैश्य

मुन्शी चिम्मनलाल वैश्य का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जनपद के कासगंज नामक नगर में सन् 1854 में हुआ था। आर्यसमाज के लेखकों और प्रकाशकों में आप अग्रणी स्थान रखते थे और आपने जहाँ अपने प्रकाशन-संस्थान से आर्य-साहित्य का प्रचुर मात्रा में प्रकाशन किया था वहाँ स्वयं भी अच्छे लेखक थे।

आपने लगभग 60 उपयोगी पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें 'नारायणी शिक्षा' (1926), 'पुराण तत्त्व प्रकाश' तथा 'महाभारत के नायकों के जीवन चरित' आदि उल्लेखनीय हैं। 'नारायणी शिक्षा' के माध्यम से आपने भारतीय महिलाओं को गृहस्थ-धर्म और जीवन-निर्माण की जो शिक्षा दी थी, उसके कारण उन दिनों आपको बहुत प्रसिद्धि मिली थी।

आपका निधन सन् 1933 में हुआ था।

श्री छगनलाल विजयवर्गीय

श्री विजयवर्गीय का जन्म सन् 1916 में हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश) में हुआ था। आपके पूर्वज राजस्थान से जाकर वहाँ बसे थे। श्री विजयवर्गीय का स्थान जहाँ मारवाड़ी सम्मेलन' और 'राजस्थानी प्रगति समाज', 'माहेश्वरी महासभा', 'भारतीय जनसंघ', 'आन्ध्र प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन' तथा 'आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण' आदि संस्थाओं की गतिविधियों में अन्यतम था वहाँ आप जनता पार्टी की हैदराबाद नगर शाखा के भी अध्यक्ष थे। 'अखिल भारतवर्षीय विजयवर्गीय (वैश्य) महा-

सभा' के भी आप एक प्रकार से सूत्रधार थे।

विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हुए आप राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में भी पर्याप्त रुचि लेते थे। 'हिन्दी विद्यालयीन प्रबन्ध मण्डल आन्ध्र प्रदेश' के आप 'कोषाध्यक्ष' थे। इस पद पर रहकर आपने इस संस्था के विकास के लिए उल्लेखनीय कार्य किया था।

आप एक अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि भी थे। मारीशस द्वीप में हुए 'आर्य महासम्मेलन' के अवसर पर हमारी अध्यक्षता में हुए 'कवि सम्मेलन' में पठित आपकी कविता की वहाँ बहुत प्रशंसा हुई थी।

आपका निधन 17 दिसम्बर सन् 1978 को हुआ था।

श्री छुट्टनलाल स्वामी

श्री स्वामीजी का जन्म सन् 1872 में उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के 'किला परीक्षितगढ़' नामक स्थान में हुआ था। आप संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् तथा सामवेद-भाष्यकार पंडित तुलसीराम स्वामी के कनिष्ठ भ्राता थे।

अपने बड़े भाई के अनुरूप आप भी आर्य-समाज के प्रभाव में आकर लेखन और प्रकाशन के क्षेत्र में कार्य करने लगे थे। आपने जहाँ अपने अग्रज तुलसीराम स्वामी द्वारा संचालित 'वेद प्रकाश' नामक पत्र का (उनके निधन से पूर्व तथा बाद में भी) सन् 1915 से सन् 1921 तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया था वहाँ सन् 1924 से सन् 1932 तक 'ब्रह्मर्षि' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी किया था। लगभग 3 वर्ष तक आप 'ब्राह्मण समाचार' नामक पत्र का सम्पादन-संचालन भी करते रहे थे।

आप जहाँ सफल सम्पादक थे वहाँ अध्ययनशील लेखक भी थे। आपकी गति कविता के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय थी। आर्यसमाज और सनातन धर्म के सभी पंडितों में आपका बड़ा आदर था। आपने सन् 1920 में खेल-खेल में पढ़ाई करने की दृष्टि से बालकों के लिए 'नागरी ताश' भी बनाए थे। इन ताशों की सहायता से बालक सरलता से नागरी अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। आपने 'संस्कृत हिन्दी' का एक कोश तैयार करने के साथ-साथ गीता और महाभारत की पाण्डित्यपूर्ण टीकाएँ भी लिखी थी। आपने आदि पर्व से लेकर शान्ति पर्व तक 'महाभारत' के केवल 10,000 श्लोकों को ही अधिकृत मानकर प्रकाशित किया था।

आपके द्वारा विरचित ग्रन्थों में 'भागवत समीक्षा', 'भागवत विचार', 'भागवन परीक्षा' (1917), 'विवाह: नया विचार', 'पंच कन्या विचार', 'बाल विवाह नाटक', 'एक कन्या के 21 विवाह', 'अक्षर प्रदीप' (1920), 'नागरी रीडर' (चार भाग), 'बाल रघुवंश' (1923), 'लघु सत्यार्थ प्रकाश'(1930) के अतिरिक्त गृह्य सूत्रों और उपनिषदों के भाष्य 'पारस्कर ग्रह्य सूत्र', 'छान्दोग्योपनिषद्' (1916) तथा 'ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय उपनिषदों पर भाष्य' (1936) भी उल्लेखनीय है। आपके द्वारा 'यजुर्वेद का भाष्य' भी अभी अप्रकाशित है। खेद है कि आप केवल 20 अध्यायों का ही भाष्य कर पाए थे।

आपका निधन मार्च सन् 1951 में बिजनौर में हुआ था।

श्री छोटेलाल त्रिपाठी 'लाल'

श्री त्रिपाठीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर नामक नगर में 1 जुलाई सन् 1913 को हुआ था। आप हिन्दी

तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में समान रूप से लिखा करते थे। आपकी हिन्दी रचनाओं में 'ध्रुव चरित्र' और 'सत्य-नारायण कथा' का प्रकाशन हो चुका है। इनके अतिरिक्त आपकी 'आराध्यदेवी', 'प्रभावती', 'पद्य कौमुदी', 'प्रेम का चमत्कार', 'राधा-सुधा' तथा 'विश्वबन्धु' आदि कई पुस्तकें अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आपका निधन 16 मार्च सन् 1979 को हुआ था।

श्री जगतनारायण लाल

श्री जगतनारायण लाल का जन्म बिहार के शाहाबाद जिले के आँकगाँव नामक ग्राम में 31 जुलाई सन् 1896 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाजीपुर मे हुई थी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एल-एल० बी० करने के उपरान्त आपने सन् 1917 में पटना न्यायालय में वकालत शुरू कर दी थी।

आप अनेक वर्ष तक बिहार प्रदेश के सार्वजनिक जीवन में बहुत से महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे थे। सन् 1937 से सन् 1939 तक बिहार में जो कांग्रेसी सर-कार बनी थी उसमें आप पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी के पद पर भी प्रतिष्ठित रहे थे। स्वतन्त्रता के बाद भी आप बिहार विधान सभा के उपाध्यक्ष और मन्त्री के रूप में कई वर्ष तक कार्य-संलग्न रहे थे।

राजनैतिक कार्यों के अतिरिक्त साहित्य-सेवा के क्षेत्र में भी आपने बहुत उल्लेखनीय कार्य किया था। सन् 1928 में आपने 'महावीर' नामक एक अर्ध साप्ताहिक पत्र प्रका-शित किया था और कई वर्ष तक आपने पटना से दैनिक 'नवीन भारत' पत्र का प्रकाशन भी किया था। इस पत्र का सम्पादन आप ही किया करते थे।

सन् 1958 में आपकी कविताओं का एक संकलन भी 'ज्योत्स्ना' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपने 'हिन्दू धर्म' नामक एक अन्य पुस्तक की भी रचना की थी।

आपका निधन 3 दिसम्बर सन् 1966 को हुआ था।

श्री जगदीशप्रसाद माथुर 'दीपक'

श्री 'दीपक'जी का जन्म 13 मई सन् 1916 को राजस्थान के जयपुर नगर में हुआ था। आपका जीवन प्रारम्भ से ही संघर्षों और अभावों में जूझता रहा था। जब आप 5 वर्ष के ही थे तो आपके सिर से पिता की छत्र-छाया उठ गई और आप संघर्ष-पथ के पथिक बन गए।

एक स्वाभिमानी और निर्भीक पत्रकार के रूप में आपने अपने जिस जीवन को प्रारम्भ किया था अन्त तक उसी परिधि में घिरे रहे। किसी के सामने न झुकने और अपनी ही बात मनवाने के कारण जीवन के अन्तिम दिनों में आपका मस्तिष्क विकृत हो गया था और कभी-कभी स्मृति-भंग भी देखने को मिलता था।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपने जहाँ लाहौर से प्रकाशित होने वाली मासिक 'शान्ति' दिल्ली से प्रका-शित होने वाले दैनिक 'विश्वमित्र', ब्यावर से प्रकाशित होने वाले 'राजस्थान', जोधपुर से प्रकाशित दैनिक 'रियासती' और अजमेर से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'नया राजस्थान' तथा दैनिक 'नव ज्योति' आदि में कार्य किया वहाँ अनेक वर्ष तक अजमेर से स्वतंत्र रूप में आप 'मीरां' पत्र भी निकालते रहे थे। इसके 'शहीद अंक' और 'भारत अंक' अपनी उल्लेखनीय विशेषताओं के लिए आज भी याद किए जाते हैं। आपने प्रसिद्ध गांधीवादी लेखक श्री हरिभाऊ उपाध्याय के साथ 'त्यागभूमि' में भी कार्य किया था और अजमेर से प्रकाशित होने वाले 'विजय' साप्ताहिक से भी आपका सम्बन्ध रहा था। आपने सन् 1927 में 'राजस्थानी महिला' नामक जो महिलोपयोगी मासिक पत्रिका प्रकाशित की थी वह ही बाद में 'मीरां' के रूप में बदल गई थी।

श्री 'दीपक' जी प्रखर पत्रकार होने के साथ-साथ उग्र

राजनैतिक विचार-धारा रखने वाले ऐसे मानव थे जो कभी किसी से समझौता नहीं करते थे। अजमेर की नगरपालिका में उपाध्यक्ष के रूप में आपने अपने उस स्वरूप को बार-बार बनाए रखा और जिला कांग्रेस अजमेर के सचिव के रूप में भी आपने अपनी छवि को धूमिल नहीं होने दिया। आपने सन् 1942 में हुई लोको वर्कशाप की हड़ताल में जहाँ उल्लेखनीय सहयोग दिया था वहाँ सन् 1953 में बेरोजगारी आन्दोलन के सिलसिले में आपको जेल भी जाना पड़ा था।

एक निर्भीक, निष्पक्ष और कर्मठ पत्रकार होने के साथ-साथ आप उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपकी ऐसी कृतियों में 'क्रान्ति और कुमारियाँ', 'राजस्थान के रमणी-रत्न', 'एशिया की महिला क्रान्ति', 'राजपूतनियाँ', 'रवीन्द्र का जीवन चरित्र' और 'चरखा चलाना चाहिए' आदि उल्लेखनीय हैं। आप राजस्थानी भाषा के भी कट्टर समर्थक थे। इसका ज्वलन्त प्रमाण आपकी राजस्थानी भाषा में लिखी गई, 'भगवतो री वार्ता व भगवान रो गायो गीत' नामक पुस्तक है। यह विडम्बना की ही बात है कि सन् 1969 में जयपुर में आपका सम्मान उस समय किया गया जबकि आप पूर्णतः विक्षित हो चुके थे।

आपका निधन 20 दिसम्बर सन् 1977 को हुआ था।

अध्यापक जगनसिंह सेंगर

श्री सेंगर का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के राजनगर नामक ग्राम में सन् 1903 में हुआ था। यह ग्राम सिकन्दराराऊ तहसील के दक्षिणी किनारे पर है। सेंगरजी की शिक्षा-दीक्षा हाथरस में 'हिन्दी मिडिल' तक हुई और बाद में आप अलीगढ़ की नगरपालिका के विद्यालय में अध्यापक हो गए। अध्यापन का कार्य करते हुए आपने संस्कृत और हिन्दी की अच्छी योग्यता अर्जित कर ली थी। अध्यापन-कार्य में गम्भीरतापूर्वक संलग्न रहने के साथ-साथ आपने सन् 1933 से निरन्तर 16 वर्ष तक 'शिक्षक बन्धु' नामक शिक्षा-सम्बन्धी मासिक पत्र का सफलता पूर्वक सम्पादन भी किया था।

आप एक कुशल शिक्षक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक और सहृदय कवि भी थे। आपकी 'किसान सतसई', 'शिक्षक सतसई', 'दयानन्द दर्शन', 'मनियाडर मुक्तावली' और 'मुरली' आदि काव्य-कृतियों के अतिरिक्त 'आदर्श निबन्धावली' 'पिंगल पराग', 'गूढ़ार्थ चन्द्रिका', 'आदर्श अभिनय मंजरी' और 'झाँकी' आदि उल्लेखनीय हैं। सेंगर जी के काव्य-व्यक्तित्व की यह विशेषता थी कि आप अपनी कविताओं का विषय सदा उपेक्षित विषयों को ही बनाया करते थे।

आपकी कृतियों में से 'किसान सतसई' को जहाँ उत्तर प्रदेश सरकार और 'ब्रज साहित्य मंडल' की ओर से पुरस्कृत किया गया था वहाँ दूसरी रचनाओं का भी हिन्दी-जगत् में पर्याप्त समादर हुआ है। उनकी 'शिक्षक सतसई' का प्रकाशन जहाँ भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् के जन्म-दिवस के अवसर पर किया गया था वहाँ 'दयानन्द दर्शन' का प्रचार आर्यसमाज की 'स्थापना शताब्दी' के अवसर पर बहुत हुआ था।

आपका निधन 1 जून सन् 1975 को हुआ था।

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

श्री 'रत्नाकर' जी का जन्म सन् 1866 के भाद्रपद मास की *'ऋषि पंचमी'* को काशी के *'शिवाला घाट'* नामक मोहल्ले में हुआ था। यह सौभाग्य की बात है कि हिन्दी की एक दूसरी उल्लेखनीय विभूति भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का

जन्म भी इसी 'ऋषि पंचमी' को हुआ था। 'रत्नाकर' जी के पूर्वज अकबर के शासन-काल में अपने मूल निवास-स्थान हरियाणा के पानीपत जनपद के 'सफीदों मण्डी' नामक स्थान को छोड़कर दिल्ली आ बसे थे और बाद में मुगलों के पतन के पश्चात् कुछ दिन लखनऊ रहकर फिर काशी जा बसे थे। 'रत्नाकर' जी के पिता श्री पुरुषोत्तमदास भारतेन्दु के समकालीन और उन्हींकी जाति के अग्रवाल वैश्य थे। रत्नाकरजी की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू-फारसी मे हुई थी और बाद में आपने हिन्दी तथा अँग्रेजी का अध्ययन किया था। क्वीन्स कालेज बनारस से सन् 1891 में बी० ए० की परीक्षा देने के उपरान्त आपने एल-एल० बी० और एम० ए० की पढ़ाई प्रारम्भ ही की थी कि अचानक माताजी का देहान्त हो जाने के कारण आपकी पढ़ाई आगे न हो सकी।

इसके अनन्तर आप सन् 1900 में अवागढ़ रियासत में खजाने के निरीक्षक हो गए और सन् 1902 में अयोध्या राज्य के तत्कालीन नरेश श्री प्रतापनारायण सिंह के निजी सचिव और 1906 में उनकी मृत्यु के उपरान्त महारानी के परामर्श दाता हो गए। प्राचीन वाङ्मय, धर्म और संस्कृति में आपकी गहन रुचि थी। आपकी साहित्य-साधना का प्रारम्भ समस्या-पूर्तियों से हुआ था। अपने छात्र-जीवन में आप 'जकी' उपनाम से उर्दू एवं फारसी में रचना करने लगे थे, किन्तु आगे चलकर धीरे-धीरे आपका झुकाव ब्रजभाषा की काव्य-रचना करने की ओर हुआ और थोड़े ही दिनों में आपने उसमे इतनी दक्षता प्राप्त कर ली कि आपकी रचनाएँ स्थानीय परिवेश की सीमा को लाँघकर देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होने लगी।

आपकी काव्य-प्रतिभा का इससे ही सहज अनुमान हो जाता है कि आपने थोड़े ही दिनों में ब्रजभाषा की ऐसी-ऐसी रचनाएँ लिख डालीं कि उनसे आपका नाम हिन्दी के प्रमुख उन्नायकों में गिना जाने लगा। आपकी प्रमुख कृतियों में 'हिंडोला', 'समालोचनादर्श', 'साहित्य रत्नाकर', 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर', 'शृंगार लहरी' 'हरिश्चन्द्र', 'गंगा विष्णु लहरी', 'रत्नाष्टक', 'गंगा-वतरण', 'कल काशी' तथा उद्धव शतक' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन मौलिक कृतियों के अतिरिक्त आपने चन्द्रशेखर कवि की 'हमीर हठ', कृपाराम की' 'हित तरंगिनी' और दूलह कवि की 'कविकुल कण्ठाभरण' नामक कृतियों का सम्पादन भी किया था। आपके द्वारा लिखी गई 'बिहारी सतसई' की जो टीका 'बिहारी रत्नाकर' नाम से प्रकाशित हुई है वह भी साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आपने अनेक वर्ष तक 'साहित्य सुधानिधि' नामक पत्र का सम्पादन भी किया था। आपके द्वारा सम्पादित 'सूर सागर' का प्रकाशन आपके निधन के उपरान्त आचार्य नन्ददुलार वाजपेयी आदि अनेक विद्वानों के निरीक्षण में प्रकाशित हुआ था।

यह आपकी साहित्यिक योग्यता और प्रतिभा का ही परिचायक है कि आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बीसवें अधिवेशन के अध्यक्ष मनोनीत हुए थे। यह अधिवेशन सन् 1930 में कलकत्ता में हुआ था। इसके अतिरिक्त आपने 26 दिसम्बर सन् 1925 को कानपुर में आयोजित 'प्रथम हिन्दी कवि सम्मेलन' की अध्यक्षता भी की थी। 6 नवम्बर सन् 1926 को आपने चतुर्थ प्राच्य सम्मेलन में भी अँग्रेजी में भाषण दिया था। रत्नाकर जी का स्थान ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों मे सर्वथा अनुपम एवं अनन्य है। आपकी रचनाओं में ओज और अनुप्रास की प्रचुर मात्रा रहती थी। आपकी प्रायः सभी मौलिक रचनाओं का संकलन 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से 'रत्नाकर' नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपकी प्रायः सभी रचनाओं में भक्ति, शृंगार, वीर तथा नीति आदि अनेक प्रवृत्तियों के दर्शन होने के साथ-साथ प्राचीन प्रबन्ध तथा मुक्तक शैलियों का उन्मुक्त निखार भी प्रखरता से प्रकट हुआ है।

आपके पौत्र श्री रामकृष्ण एम० ए० ने आपके निधन के उपरान्त कविवर बिहारी से सम्बन्धित आपके उस ग्रन्थ का प्रकाशन 'कविवर बिहारी' नाम से सन् 1953 में किया

था, जिसे आप लिखने में व्यस्त थे और पूरा नहीं कर सके थे। इस ग्रन्थ को देखकर रत्नाकरजी की बिहारी-सम्बन्धी मान्यताओं का विस्तृत परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ को श्री रामकृष्ण ने 7 प्रकरणों में विभक्त किया है। पहले प्रकरण में बिहारी की लोकप्रियता, तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति, लोक-रुचि आदि विषयों एवं दोहा छन्द का विस्तृत विवेचन है। दूसरे प्रकरण में भाषा का संक्षिप्त इतिहास एवं उसके विकास की अवस्थाओं का वर्णन करके ब्रजभाषा का उद्भव दिखलाया गया है। तीसरे प्रकरण में ब्रजभाषा का व्याकरण है। चौथे प्रकरण में 'काव्य' की सामान्य विवेचना करके बिहारी के काव्यत्व-गुण पर प्रकाश डाला गया है। पाँचवें प्रकरण में 'बिहारी सतसई' के क्रम का वर्णन है। छठा प्रकरण 'बिहारी सतसई' पर आज तक हुई समस्त टीकाओं का विस्तृत इतिहास है और सातवें प्रकरण में बिहारी की सम्पूर्ण जीवनी है। वास्तव में इस ग्रन्थ को पढ़कर पूरी सतसई-परम्परा और बिहारी-सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रामाणिक जानकारी पाठकों को हो जाती है।

आपके पास ग्रन्थों का भी अपूर्व संग्रह था। आपके निधन के उपरान्त आपका समस्त संग्रहालय नागरी प्रचारिणी सभा के पास चला गया है। कचहरियों में हिन्दी के प्रवेश के लिए भी आपने बहुत प्रयास किया था। सन् 1898 में आप इस सम्बन्ध में महाराजा सर प्रतापसिंह, महामना मदनमोहन मालवीय और डॉ० श्यामसुन्दरदास के प्रतिनिधि-मण्डल के साथ उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर से मिले थे।

आपका निधन 22 जून सन् 1932 को उन दिनों हरिद्वार में हुआ था जबकि आप 'बिहारी' सम्बन्धी अपने उक्त ग्रन्थ की रचना में व्यस्त थे।

श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म बिहार के मुंगेर जिले के मलयपुर नामक ग्राम के निवासी श्री कालीप्रसाद चतुर्वेदी के यहाँ बंगाल के नदिया जिले के छिटका नामक स्थान में 10 अक्तूबर सन् 1875 में हुआ था। आपके पूर्वज आगरा के माईथान नामक मुहल्ले में रहते थे। जन्म के बाद ही आप अपनी बहन के साथ मलयपुर भेज दिए गए थे। देहात में रहने के कारण आपके पढ़ने-लिखने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी थी और प्रारम्भ में एक मौलवी से उर्दू पढ़ने के बाद आपने कुछ दिन तक संस्कृत का भी अभ्यास किया था। वहाँ की हिन्दी पाठशाला मे कुछ दिन तक पढ़ने के बाद आप उस गाँव के जमींदार के यहाँ एक बंगाली मास्टर से अँग्रेजी भी पढ़ते रहे थे।

इसी बीच आपका सम्पर्क अपने एक दूर के सम्बन्धी श्री हरेरामजी से हो गया जो फारसी के साथ-साथ हिन्दी के कवित्त और सवैया आदि भी खूब बनाते थे। ये बड़े हास्यप्रिय और सज्जन व्यक्ति थे। उनके सम्पर्क से चतुर्वेदीजी का झुकाव हास्यप्रिय कविताएँ लिखने की ओर हुआ। इसी बीच आपने सन् 1892 में जमुई नामक स्थान के माइनर स्कूल से मिडिल की परीक्षा भी पास की थी और बाद में मुंगेर के जिला स्कूल में प्रविष्ट हो गए। सन् 1897 में आपने कलकत्ता से द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की और तदुपरान्त उसी कालेज से एफ० ए० भी किया। अपने अध्ययन को यहीं विराम देकर अचानक विवाह हो जाने के कारण सन् 1902 में आपने अपने मामा के साथ कलकत्ता में चपड़े का कारोबार शुरू किया था।

यह एक विचित्र बात है कि व्यापारी होते हुए भी अपनी साहित्यिक रुचि के कारण आप हास्य और व्यंग्य की रचनाएँ करते रहे और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से उसमें आपको पर्याप्त सफलता भी मिली। उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क श्री बालमुकुन्द गुप्त से हुआ और उनकी प्रेरणा पर आपने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'कालिदास की निरंकुशता' नामक लेखमाला के उत्तर में 'भारत मित्र' में जो आलोचनात्मक लेख लिखे थे

उनसे आपको पर्याप्त ख्याति मिली थी। बाद में यह लेख 'निरंकुशता निदर्शन' नाम से प्रकाशित भी हो गए थे। आपकी हास्य-व्यंग्यमयी शैली ने उन दिनों सारे हिन्दी-जगत् का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के छठे अधिवेशन के अवसर पर आपने इलाहाबाद में 'अनुप्रास का अन्वेषण' शीर्षक से अपना जो व्यंग्यविनोदपूर्ण निबन्ध पढ़ा था उससे आपको और भी ख्याति मिली थी। इसी प्रकार सन् 1919 में बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सोनपुर में हुए प्रथम अधिवेशन के अवसर पर आपने जो अध्यक्षीय भाषण दिया था वह भी अपने ढंग का निराला ही था। उससे आपकी भाषा-चातुरी अनुप्रासप्रियता और व्यंग्यविनोदमयी शैली का परिचय मिलता है। धीरे-धीरे चतुर्वेदीजी की ख्याति प्रदेश की सीमाओं को लाँघकर अखिल भारतीय मंच तक पहुँची और उसी के परिणामस्वरूप आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लाहौर में हुए द्वादश अधिवेशन के अध्यक्ष भी बनाए गए। आपका अध्यक्षीय भाषण हिन्दी-गद्य-शैली के सुधार और परिष्कार की दिशा में उल्लेखनीय दिशा देने वाला था।

आप 'हितवार्ता' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादन में भी योगदान करते रहे थे। अपनी हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली के कारण ही आपको 'हास्यरसावतार' कहा जाता था। आपकी व्यंग्य-विनोदमयी शैली का प्रमाण इसीसे मिलता है कि जब एक बार 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने बाबू श्यामसुन्दरदास का परिचय छापकर उनके चित्र के नीचे यह दोहा दिया था :

मातृभाषा के प्रचारक विमल बी० ए० पास।
सौम्य शील-निधान बाबू श्यामसुन्दर दास।।

तब चतुर्वेदीजी ने द्विवेदीजी की आलोचना की, और उस परिचय के उत्तर में अपना परिचय इस प्रकार दिया था :

पितृभाषा के बिगाड़क समल एफ० ए० फिस्स।
जगन्नाथ प्रसाद वेदी बीस कम चौबिस्स।।

साहित्यिकों में उन दिनों 'समल एफ० ए० फिस्स' तथा 'बीस कम चौबिस्स' की तुकबन्दी को लेकर बड़ा मनोविनोद रहा था। इसी प्रकार 'मातृभाषा के प्रचारक' की जोड़ पर 'पितृभाषा के बिगाड़क' शब्दों ने भी लोगों का बहुत मनोरंजन किया था।

आपके द्वारा लिखित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिसमें 'वसन्त मालती', 'संसार-चक्र', 'तूफान', 'विचित्र विचरण', 'भारत की वर्तमान दशा', 'स्वदेशी आन्दोलन', 'गद्यमाला', 'निरंकुशता-निदर्शन', 'कृष्ण चरित्र', 'राष्ट्रीय गीत', 'अनुप्रास का अन्वेषण', 'सिंहावलोकन', 'हिन्दी-लिंग-विचार', 'विचित्र वीर डान', 'मधुर मिलन', 'प्रेम-निर्वाह', 'विवाह-कुसुम', 'अक्षान्त', 'बिहार का साहित्य', 'निबन्ध-निचय' और 'तुलसीदास' (नाटक) प्रमुख हैं।

आपका निधन 2 सितम्बर सन् 1939 को हुआ था।

श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

श्री 'भानु' जी का जन्म मध्यप्रदेश के नागपुर (अब महाराष्ट्र) नामक नगर में 8 अगस्त सन् 1859 को हुआ था। आपके पिता श्री बख्शीराम भी अच्छे कवि थे और इन्हीं संस्कारों के कारण आपने घर पर ही स्वाध्याय के बल पर हिन्दी के अतिरिक्त अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, उड़िया और मराठी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बचपन से ही साहित्यिक अभिरुचि और अध्ययनशीलता के कारण आपका रुझान साहित्य-रचना की ओर हो गया था। आप अपने अनवरत अध्यवसाय और कर्म-कुशलता के कारण ही 15 रुपए मासिक की साधारण नौकरी से 'असिस्टेंट सैटलमेंट कमिश्नर' के पद तक पहुँच गए थे। आपने अपने शासकीय दायित्वों का निर्वाह करते हुए साहित्य-रचना के क्षेत्र में जो मानदण्ड स्थापित किए, उसका ज्वलन्त प्रमाण आपके 'छन्द प्रभाकर' (1894) और 'काव्य प्रभाकर' (1905) नामक ग्रन्थ हैं।

यह आपकी प्रशासन-पटुता और कार्य-कुशलता का ही प्रमाण है कि आपको शासन की ओर से जहाँ 'सर्टिफिकेट ऑफ ऑनर' और 'कारोनेशन माडल' प्रदान किए गए थे वहाँ आपको 'रायबहादुर' (1925) की सम्मानित उपाधि भी प्रदान की गई थी। आपकी सूझ-बूझ का परिचय इसी बात से मिल जाता है कि आपने उस समय 'छन्द प्रभाकर'-जैसे ग्रन्थ की रचना की जब इस विषय के ग्रन्थों का सर्वथा अभाव था। हिन्दी के इतिहास में 'भानु' जी के इस ग्रन्थ का

अनन्य योगदान है। आप जब शासन में उच्च पद पर प्रतिष्ठित थे तब आपकी लोकप्रियता इस सीमा तक पहुँच गई थी कि जनता आपके गुणों का बखान लोकगीतों में करने लगी थी। प्रमाण स्वरूप यह पद प्रस्तुत है :

चलो री सहिल्यां म्हारा जगन्नाथ जी आया री।
जगन्नाथजी आया वो तो कोई पदारथ लाया री॥
आंगू तो हम सौ-सौ देता, अब नौ दसक गुनाया री।
बाकी रुपया सभी छुड़ाया, हरखीना घर आया री॥

आपके बहुमुखी ज्ञान तथा प्रतिभा का परिचय कालान्तर में साहित्यिक जगत् को तब और भी अधिक मिला, जब आपकी 'छन्द सारावली' (1905), 'तुम्हीं तो हो' (1914), 'जयहरि चालीसी' (1914), 'शीतला माता भजनावली' (1915), 'अलंकार प्रश्नोत्तरी' (1918), 'हिन्दी काव्यालंकार' (1918), 'काल विज्ञान' (1919), 'नव पंचायत रामायण' (1924), 'काव्य-कुसुमांजलि', 'नायिका-भेद शंकावली' (1925), 'काल प्रबोध', 'अंक विलास' (1925), 'काव्य प्रबन्ध' (1927), 'तुलसी तत्त्व प्रकाश' (1931), 'रामायण वर्णावली' (1936) तथा 'तुलसी भाव प्रकाश' (1937) आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई। आप हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू के भी अच्छे शायर थे। आपकी 'गुलजारे फैज' और 'गुलजारे सुखन' इसकी ज्वलन्त साक्षी हैं। एक समय ऐसा भी था जब आपके द्वारा संस्थापित 'भानु कवि समाज' के द्वारा सारे मध्यप्रदेश में साहित्यिक जागरण का अद्भुत कार्य हुआ था। आपके 'छन्द प्रभाकर' तथा 'काव्य प्रभाकर' नामक ग्रन्थों के कारण आपकी शिष्य-परम्परा मध्यप्रदेश की सीमा को लाँघकर सारे देश में फैल गई थी।

आपकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको जहाँ 'साहित्य वाचस्पति' (1938) की सम्मानित उपाधि प्रदान करके अपने को गौरवान्वित किया था वहाँ शासन ने आपको राय साहब (1921) तथा 'महामहोपाध्याय' (1940) की उपाधि प्रदान की थी। आप अपने कर्ममय जीवन में जहाँ मध्यप्रदेश की अनेक समाज-सेवी संस्थाओं से सम्बद्ध रहे थे वहाँ आप 'महाकौशल हिस्टारिकल सोसाइटी' के चेयरमैन और 'महाकौशल लिटरेरी एकेडेमी' के आजीवन सदस्य भी रहे थे। जहाँ शासन और सम्मेलन ने आपकी प्रतिभा का समुचित समादर किया था वहाँ अनेक राजाओं-महाराजाओं ने भी आपकी उचित अभ्यर्चना की थी। ऐसे महानुभावों में मैहर नरेश राजा श्री यदुवीरसिंह जू देव का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने सन् 1909 में स्वयं खण्डवा पधारकर आपका सम्मान किया था। दरभंगा नरेश श्री रामेश्वर सिंहजी ने भी आपकी साहित्यिक प्रतिभा का अपने मान पत्र में समुचित गुण-गान किया था। सन् 1925 में कानपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको जो अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था उसमें आपको 'गणिताचार्य' के रूप में भी अभिहित किया गया था। इसी प्रकार सन् 1914 में आपको 'साहित्याचार्य' की सम्मानोपाधि भी दी गई थी। आपको मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेंट किया गया था।

आपका 'भानु' नाम किस प्रकार पड़ा यह भी उल्लेखनीय है। जब एक बार आप काशी गए थे तब वहाँ के कवि समाज ने आपकी प्रतिभा और कवित्व-शक्ति से प्रभावित होकर यह कहा था—"आप तो हिन्दी-कविता के भानु हैं।" इसके उपरान्त आपके नाम के साथ 'भानु' उपनाम भी जुड़ गया।

आपका निधन 25 अक्तूबर सन् 1941 को हुआ था।

श्रीमती जगरानी देवी

आपका जन्म बिहार प्रान्त की सोनभद्रा नदी के तट पर स्थित सरवरा नामक ग्राम में सन् 1897 में हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात लेखक स्वामी भवानीदयाल संन्यासी की सहधर्मिणी थीं। विवाह से पूर्व आप सर्वथा निरक्षर थीं, किन्तु आर्यसमाज की पुरानी प्रचारिका पंडिता कौशल्या देवी

के निरन्तर आग्रह तथा प्रयास से आपने बाद में हिन्दी का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था और हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ भी भली-भाँति पढ़ने लगी थीं।

विवाह के बाद जब आप अपने पति स्वामी भवानीदयाल संन्यासी के साथ दक्षिण अफ्रीका गई तो आपने वहाँ उनके सभी कार्यों में बड़ी तत्परतापूर्वक भाग लिया। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में सक्रिय रूप से भाग लेने के साथ-साथ आपने नेटाल में हिन्दी पढ़ाने के लिए कई 'रात्रि-पाठशालाएँ' भी सम्थापित की थीं। आपकी ही प्रेरणा पर श्री भवानीदयाल संन्यासी ने नेटाल में 'हिन्दी आश्रम' की स्थापना करके उसके द्वारा वहाँ के भारतीय बालक-बालिकाओं को निःशुल्क हिन्दी पढ़ाने का कार्य प्रारम्भ किया था। इस कार्य की पूरी देख-रेख आप ही किया करती थी।
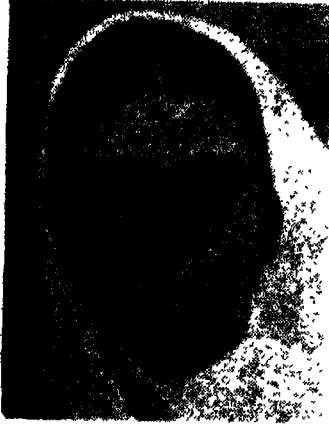
जब आप अपने पति के साथ भारत आई थी तब आपके मन में दक्षिण अफ्रीका में एक हिन्दी-प्रेस की संस्थापना करके उसके माध्यम से एक हिन्दी पत्र प्रकाशित करने का भी विचार था। स्वामीजी ने अपनी पत्नी के इस संकल्प की सम्पूर्ति के लिए जैकब्स में एक हिन्दी प्रेस की संस्थापना करके वहाँ से एक पत्र निकालने का विचार किया ही था कि सन् 1921 के अप्रैल मास में जगरानीजी का असमय मे देहान्त हो गया।

स्वामीजी ने प्रेस का नाम आपकी स्मृति में 'जगरानी प्रेस' रखकर उसकी ओर से 'हिन्दी' नामक पत्र कई वर्ष तक सफलतापूर्वक प्रकाशित किया था। इस पत्र के विशेषांकों की किसी समय हिन्दी में बड़ी धूम थी। स्वामी भवानीदयाल को इस कार्य में आचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे और श्री धूलचन्द अग्रवाल आदि प्रमुख पत्रकारों ने पर्याप्त सहयोग दिया था।

श्री जनार्दन शर्मा

श्री जनार्दन शर्मा का जन्म गाजियाबाद जनपद की हापुड़ तहसील के भटियाना नामक ग्राम में 5 जुलाई सन् 1942 को हुआ था। पहले आपका ग्राम मेरठ जिले में था, अब मेरठ जिले के दो भागों में विभाजित हो जाने के कारण आपका ग्राम गाजियाबाद जनपद में आ गया है।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राइमरी स्कूल में पूर्ण करके आप उच्च शिक्षा के लिए अपने मामा के पास खुर्जा चले गए और इण्टर की परीक्षा देने के उपरान्त 'शासकीय नाप-तौल विभाग' में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इसी सिलसिले में आप मध्य प्रदेश चले गए और वहाँ रहकर नौकरी करते हुए ही आपने सीहोर नगर के कालेज से क्रमश: बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

शासकीय सेवा में रहते हुए भी आपने कभी प्रतिबन्धों को नहीं माना और निष्ठापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वाह करते रहे। अपने मधुर एवं स्वाभिमानी स्वभाव के कारण आप अपने साथियों तथा नगर में अत्यन्त लोकप्रिय थे और सभी लोग आपको प्यार से 'दादा' कहा करते थे। अपनी इसी शासकीय सेवा के काल में साहित्य की ओर आपकी रुचि हुई और धीरे-धीरे आप सीहोर के ही नहीं प्रत्युत सारे प्रदेश के प्रमुख युवक कवियों में गिने जाने लगे। आप नई भावधारा की काव्य-रचना करने में सिद्ध-हस्त होने के साथ-साथ उत्कृष्ट गजलें लिखने में भी प्रवीण थे।

खेद की बात है कि 19 जनवरी सन् 1978 को सीहोर के अपने ही घर में जलकर आपका देहावसान हो गया। आप सीहोर में लगभग 12 वर्ष रहे थे और वहाँ के साहित्यिक उत्कर्ष की दिशा में अपना उल्लेखनीय सहयोग दे रहे थे।

श्री जयनारायण उपाध्याय

श्री उपाध्यायजी का जन्म आगर (मालवा) के कीर्तनकार श्री बलदेवजी के यहाँ सन् 1896 में हुआ था। आपने स्थानीय मिडिल स्कूल से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके दो वर्ष तक अँग्रेजी और उर्दू का भी अभ्यास किया था। एक दिन विद्यालय के अध्यापक के भर्त्सनापूर्ण शब्दों से पीड़ित होकर आप आगर से चले गए और पूर्णतः वैरागी हो गए। बाद में उज्जैन तथा धार आदि अनेक स्थानों पर विचरण करते हुए आप आगर आ गए और फिर अध्यात्म-चिन्तन में ही अपने जीवन को खपा दिया।

इसी प्रसंग में निरन्तर साहित्यिक सेवाओं और साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेते रहने के कारण आप कविता भी लिखने लगे थे। आपकी रचनाएँ 'औदुम्बर' तथा 'चित्रमय जगत्' में प्रकाशित हुआ करती थीं। आप रतलाम के प्रख्यात साधु श्री नित्यानन्द (बापजी) के शिष्य थे और उनके पास रहकर ही आपने 'नित्य पाठ दीपिका', 'सुन्दर सन्देश' तथा 'नित्यानन्द विलास' आदि कई काव्य-कृतियों का प्रणयन किया था। आपने आवाखेड़ नामक स्थान में एक पादुका-मन्दिर और पुस्तकालय भी स्थापित किया था। आपकी कविताओं में प्रायः छन्द तथा काव्य-शास्त्र के नियमों की अवहेलना ही दिखाई देती थी। उदाहरणार्थ इस दोहे को देखें :

हम हैं तेरे भक्त प्रभो, तू है हमारा नाथ।
हम डूबत भवसागर में, खींच लो मेरा हाथ।।

आपका देहावसान सन् 1945 में धौंसवास (मालवा) में हुआ था और वहीं पर आपके अनुयायियों ने आपकी समाधि भी बनवा दी है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

श्री 'प्रसाद' का जन्म सन् 1889 में काशी के गोवर्धन सराय मोहल्ले के 'सुँघनी साहू' नामक प्रतिष्ठित वैश्य-परिवार में हुआ था। आपके परिवार में वंश-परम्परा से सुर्ती, तम्बाकू तथा सुँघनी आदि का कार्य होता था, इसलिए इस परिवार को 'सुँघनी साहू' कहा जाता था। आधुनिक हिन्दी-काव्य में 'छायावाद' की अवतरणा करने वाले कवियों में 'प्रसाद' जी का नाम सर्वोपरि है। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई थी। क्योंकि आपके पिता का निधन आपकी शैशवावस्था में ही हो गया था, अतः आपके ऊपर व्यवसाय की देख-भाल का भार प्रारम्भ से ही आ पड़ा था। परिणामस्वरूप आपने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा अँग्रेजी का जो भी ज्ञान अर्जित किया वह सब निजी स्वाध्याय की ही उपलब्धि समझना चाहिए। कविता की ओर आपका झुकाव प्रारम्भ से ही था। प्रारम्भ में आप ब्रजभाषा में प्राचीन शैली की रचनाएँ किया करते थे, किन्तु फिर धीरे-धीरे आपने ब्रजभाषा को तिलांजलि देकर खड़ी बोली में ही कविता करनी प्रारम्भ कर दी थी।

आपके भानजे श्री अम्बिकाप्रसाद गुप्त ने जब 'इन्दु' नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया तब आपकी प्रारम्भिक रचनाएँ इसी पत्र में छपा करती थीं। जिन दिनों 'प्रसाद' जी ने कविताएँ लिखना शुरू किया था उन दिनों हिन्दी-काव्य में नई-से-नई उद्भावनाएँ होती जा रही थीं और अनेक कवि नए-से-नए छन्दों का भी प्रयोग अपनी रचनाओं में कर रहे थे। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने जहाँ संस्कृत वृत्तों में भिन्नतुकान्त रचनाएँ लिखने का सूत्रपात किया था वहाँ 'प्रसाद' जी ने भी मार्मिक और हिन्दी छन्दों में अनेक भिन्नतुकान्त रचनाएँ की थीं। आपकी ऐसी रचनाओं में 'महाराणा का महत्त्व' तथा 'प्रेम पथिक' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आपकी
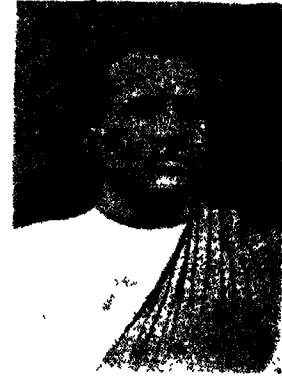
'पेशीला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' तथा 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' आदि भी ऐसी रचनाएँ हैं।

कविता के अतिरिक्त आपने नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध-लेखन में अद्वितीय सफलता प्राप्त की थी। हिन्दी में गीति-नाटक-लेखन की दिशा में भी आपकी देन अनुपम एवं उल्लेखनीय है। आपके नाटकों तथा कहानियों में से अधिकांश की पृष्ठभूमि जहाँ पूर्णतः बौद्धकालीन भारत की संस्कृति है वहाँ आपकी कविताओं मे आधुनिक युग की वेदना, अवसाद तथा अभाव पूर्णतः रूपायित हुए हैं। आपने अपने स्वाध्याय के बल पर भारतीय उपनिषदों, पुराणों, वेदों तथा दर्शनों का जो गहन अनुशीलन किया था उसकी पूर्णतः अवतारणा आपकी रचनाओं में हुई है। आपकी रचनाओं का जो सबसे पहला संकलन 'चित्राधार' नाम से सन् 1918 में प्रकाशित हुआ था उसमें आपकी कविताओं, कहानियों, नाटकों और निबन्धों सभी का संग्रह था और उसमें आपकी ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों भाषाओं में लिखी गई रचनाएँ भी समाविष्ट थीं। इसके लगभग 10 वर्ष उपरांत जब इस पुस्तक का दूसरा संस्करण किया गया तब उसमें केवल ब्रजभाषा की ही रचनाएँ रखी गई थीं। 'चित्राधार' में कुछ फुटकर रचनाओं के साथ आपकी 'अयोध्या का उद्धार', 'वन मिलन' और 'प्रेम राज्य' नामक प्रबन्ध-कविताएँ भी समाविष्ट की गई थीं। आपकी खड़ी बोली की कविताओं का प्रथम संग्रह 'कानन कुसुम' नाम से प्रकाशित हुआ था। इसमें भी आपके कुछ पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथा-काव्य समाविष्ट थे। आपकी अन्य फुटकर रचनाएँ 'झरना' तथा 'लहर' नामक संकलनों में प्रकाशित हुई हैं।

इसी बीच 'प्रसाद' जी की 'गीति-काव्य' को सर्वथा नए रूप में प्रतिष्ठित करने वाली रचना 'आँसू' का प्रकाशन हुआ। 'आँसू' के प्रकाशन ने जहाँ साहित्य-जगत् को एक सर्वथा नई और विशिष्ट भूमिका प्रदान की वहाँ आधुनिक काव्य को भी प्रेमानुभूति एवं विषाद के अंकन का नया रूप मिला। उसका :

> *जो घनीभूत पीड़ा थी*
> *मस्तक में स्मृति-सी छाई।*
> *दुर्दिन में आँसू बनकर*
> *वह आज बरसने आई॥*

यह छन्द हिन्दी के छायावादी काव्य का ऐसा उन्नायक बना कि फिर उसके अनुकरण पर हिन्दी में प्रेम तथा वियोग के काव्यों का प्रचुरता से अवतरण हुआ। इसके उपरान्त 'कामायनी' के प्रकाशन (1935) ने तो छायावादी काव्य को उत्कर्ष के उत्तुंग शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया। पूर्णतः वैदिक पृष्ठभूमि पर आधारित मानवीय संवेदनाओं को गहनतम स्तर तक उद्घोषित करने वाले इस महाकाव्य ने 'प्रसाद' जी की प्रतिष्ठा को और भी चार चाँद लगा दिए। 'कामायनी' की महत्ता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि जहाँ हिन्दी के कुछ महारथियों ने इसको कौतूहल की दृष्टि से देखा वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने इस रचना पर अपना सर्वोच्च 'मंगला-प्रसाद पारितोषिक' (1937) प्रदान करके 'प्रसाद' जी का अभिनन्दन किया।

कविता के क्षेत्र में जहाँ प्रसादजी ने नए 'कीर्तिमान' स्थापित किए वहाँ नाटक-लेखन की दिशा में भी आपने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया। आपकी ऐसी रचना 'सज्जन' का प्रकाशन सर्वप्रथम 'इन्दु' में हुआ था। इसके प्रकाशन के उपरान्त आपने 'कल्याणी परिणय', 'प्रायश्चित्त' तथा 'राज्य श्री' नामक ऐसी रचनाएँ लिखीं, जो क्रमशः 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थीं। आपके 'विशाख', 'कामना', 'जन्मेजय का नागयज्ञ', 'स्कन्दगुप्त', 'एक घूँट', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। भारत के अतीत गौरव को प्रतिष्ठित करने में प्रसादजी के इन नाटकों ने बहुत बड़ा कार्य किया है। आपने कविता तथा नाटकों के अतिरिक्त उपन्यास तथा कहानी-लेखन के क्षेत्र में भी अपनी विशिष्ट प्रतिभा प्रदर्शित की थी। आपकी 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' नामक रचनाओं में जहाँ औपन्यासिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं वहाँ आपकी 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाश दीप', 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' आदि कृतियों मे आपका उत्कृष्ट कथा-लेखक का रूप उभरकर हिन्दी-जगत् के समक्ष आया है। आपकी 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' नामक कृति में आपकी निबन्ध-कला का उदात्त रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है। आपके इन निबन्धों में प्रसाद-जी की कला, साहित्य और संस्कृति-सम्बन्धी अवधारणाएँ पूर्णतः मुखरित हुई हैं।

इस प्रकार हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'प्रसाद' की बहुमुखी प्रतिभा रखने वाले ऐसे कलाकार थे जिनकी भाव-धारा पूर्णतः भारतीय होते हुए भी आधुनिकता के आलोक से आलोकित थी। आपने जहाँ अतीतकालीन भारतीय संस्कृति के उद्धार के लिए अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग किया वहाँ आप आधुनिक जगत् की वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी पूर्णतः अवगत रहे। राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागरण के महत्त्वपूर्ण पक्षों का विवरण और उनका समुचित समाधान प्रसादजी ने अपनी रचनाओं में दिया है। साहित्यिक वाद-विवादों तथा उठा-पटक से आप सर्वथा दूर रहा करते थे। कवि-सम्मेलनों अथवा साहित्य-समारोहों में भी आप बहुत कम आते-जाते थे। मित्रों के जोर-दबाव से यदि आपको कहीं जाना भी पड़ जाता था तो वहाँ पर सभापति बनने तथा कविता पढ़ने-जैसे कार्य से आप सर्वथा बचते थे। अपने व्यापार-व्यवसाय में रात-दिन डूबे रहने पर भी आपने हिन्दी को जो ग्रन्थ-रत्न प्रदान किए वे आपकी प्रतिभा के परिचायक हैं।

आपका निधन सन् 1937 में अल्पायु में ही क्षयरोग के कारण हुआ था।

'शृंगार लतिका' और आचार्य भिखारीदास के 'काव्य निर्णय' के अतिरिक्त 'सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' के सम्पादन में भी आपकी प्रतिभा का निदर्शन मिलता है।

आपने ब्रजभाषा-काव्य की अनेक पुस्तकों की रचना करने के अतिरिक्त 'ब्रजभाषा का प्रामाणिक कोश' भी बनाया था। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'आँख और कविगण', 'भक्त और भगवान्' और 'नन्ददास ग्रन्थावली' भी प्रमुख रूप से उल्लेख्य हैं।

आपका देहावसान 11 जुलाई सन् 1974 को हुआ था।

श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म 18 नवम्बर सन् 1890 को मथुरा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आप ब्रजभाषा-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों में शीर्ष स्थान रखते थे। आपने 'सूर सागर' के सम्पादन में जिस योग्यता तथा क्षमता का परिचय दिया था, उसके कारण आपकी ख्याति सर्वत्र फैल गई थी। भारत के सभी प्रमुख नगरों के पुस्तकालयों में घूम-घूमकर आपने 'सूर सागर' की जिन हस्तलिखित पोथियों का निरीक्षण किया था उन्हीं का निष्कर्ष आपने अपनी इस कृति में दिया था।

आपने ब्रजभाषा-काव्य-सम्बन्धी उन सब पोथियों की भी एक विवरणात्मक सूची तैयार की थी जो देश के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। अयोध्या-नरेश के

राष्ट्र-नायक जवाहरलाल नेहरू

श्री नेहरूजी का जन्म 14 नवम्बर सन् 1889 को प्रयाग के मीरगंज मोहल्ले में एक कश्मीरी सारस्वत ब्राह्मण-कुल में हुआ था। आपके पिता श्री मोतीलाल नेहरू देश के प्रख्यात वकील थे और उन्होंने आपको भी एक अच्छा वकील बनाने की दृष्टि से 15 वर्ष की आयु तक घर पर ही पढ़ाकर आगे के अध्ययन के लिए विलायत भेज दिया था। वहाँ के हैरी तथा ट्रिनिटी कालेज (कैम्ब्रिज) से बी० एस-सी०, एम० ए० और बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करके सन् 1912 में जब आप स्वदेश लौटे थे तब आते ही प्रथम बार अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। अपने पिता की वकालत के कार्य में सहयोग करने के साथ-साथ आप देश की तत्कालीन राजनीति का जायजा भी लेते जा रहे थे। सन् 1916 में आपका विवाह दिल्ली-

निवासिनी श्रीमती कमला के साथ हो गया और सन् 1917 में आपको एक पुत्री की प्राप्ति हुई, जो कालान्तर में 'इन्दिरा प्रियदर्शिनी' कहलाई और आज भारत की प्रधानमन्त्री हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नेहरूजी ने अपने पिता के सम्पर्क में आकर राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों को जहाँ निकट से देखा-परखा था वहाँ आप उनमें सक्रिय रूप से भाग भी लेने लगे थे। अपनी इसी भावना के वशीभूत होकर आपने देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ी जाने वाली उस लड़ाई में बढ़-चढ़कर भाग लिया और अनेक बार जेल भी गए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि जब भारतीय राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने लाहौर में रावी के तट पर हुए अपने वार्षिक अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का संकल्प लिया था तब श्री नेहरूजी ही उस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। 26 जनवरी सन् 1930 की स्मृति को अमर बनाने के लिए 26 जनवरी सन् 1951 को स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत को 'गणतन्त्र' घोषित किया गया था और इसी दिन स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र-प्रसाद ने राष्ट्रपति का पद सँभाला था। यह भी एक स्वर्ण संयोग ही कहा जायगा कि जिस विभूति की अध्यक्षता में सन् 1930 मे 'पूर्ण स्वाधीनता' का संकल्प लिया गया था उसीको बाद में स्वतन्त्र भारत का प्रथम 'प्रधानमन्त्री' बनाया गया।
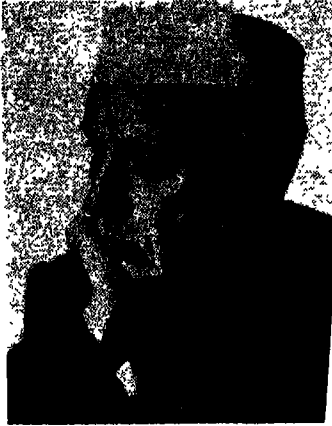
'प्रधानमन्त्री' के रूप में श्री नेहरू ने जहाँ भारत की सभी भाषाओं की समृद्धि के लिए अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त कीं वहाँ हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' के महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए भी अनेक प्रयास किए। आप यह जानते थे कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधने की क्षमता रखती है। हिन्दी-उर्दू के विवाद के प्रसंग में आपने सन् 1936 में 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के भवन का उद्घाटन करते हुए जो विचार व्यक्त किए थे, वे आज की परिस्थिति में भी देश के उन्नायकों को दिशा देने वाले हैं। आपने कहा था—"इन दोनों भाषाओं में कोई अन्तर नहीं है। सिवाय इसके कि हिन्दी नागरी लिपि में लिखी जाती है और उर्दू फारसी लिपि में। यह बड़े दुःख की बात है कि हिन्दी-उर्दू को धार्मिक झगड़े का रूप दे डाला गया है।"

इस सन्दर्भ में आपने दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने वाले तिरुवितांकुर के 'हिन्दी प्रचार मंडल' के कार्यकर्ताओं के समक्ष जो विचार प्रकट किए थे वे आपके हिन्दी-प्रेम को और भी स्पष्टता से उजागर करते हैं। आपने 26 मई सन् 1931 को वहाँ के हिन्दी-प्रचारकों को इस प्रकार उद्बोधित किया था—"आपको मालूम है कि इस राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रभाषा की सख्त जरूरत है। हिन्दी भारत की अधिकांश जनता की भाषा है। इसलिए कांग्रेस ने उसे 'राष्ट्रभाषा' मान लिया है। आशा है आप सब-के-सब निकट भविष्य में हिन्दी की काफी योग्यता हासिल कर लेंगे। हिन्दी के प्रचार में आप सब मदद पहुँचावें, यही आपसे अनुरोध है।" यह प्रसन्नता की बात है कि देश की जिस भावात्मक एकता को दृष्टि में रखकर महात्मा गान्धी ने हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का यह कार्य प्रारम्भ किया था, उसमें नेहरूजी ने सदैव बढ़-चढ़कर सहयोग दिया था।

आपके हिन्दी-प्रेम का सबसे ज्वलन्त प्रमाण यही है कि सन् 1935 में जब लाहौर में हिन्दू-मुस्लिम-दंगा हो गया तब आपने अपने हृदय की वेदना को अपने 'दो मस्जिदें' नामक उस लेख में व्यक्त किया था जो आपने मूल रूप में हिन्दी में ही लिखा था और जो देश के सभी प्रमुख पत्रों में प्रकाशित हुआ था। कदाचित् यह नेहरूजी का पहला ही हिन्दी-लेख है। इसका पुनर्प्रकाशन 14 नवम्बर सन् 1949 को आपकी षष्टि-पूर्ति पर भेंट किए गए 'अभिनन्दन ग्रन्थ' में कर दिया गया है और अब यह सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली की ओर से प्रकाशित 'जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय' नामक ग्रन्थ के छठे खण्ड के पृष्ठ 451 पर मुद्रित है। उस लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"आजकल समाचार पत्रों में लाहौर की शहीद गंज मस्जिद की प्रतिदिन कुछ-न-कुछ चर्चा होती है। शहर में काफी खलबली मची हुई है, दोनों तरफ मजहबी जोश दीखता है। एक-दूसरे की बद-

नौबतें की शिकायतें होती हैं और बीच में एक पंच की तरह अँग्रेजी हुकूमत अपनी ताकत दिखलाती है। मुझे न तो वाकयात ही ठीक-ठीक मालूम हैं कि किसने यह सिलसिला पहले छेड़ा था, या किसकी गलती थी, और न इसकी जाँच करने की मेरी कोई इच्छा ही है। इस तरह के धार्मिक जोश में मुझे बहुत दिलचस्पी भी नहीं है। लेकिन दिलचस्पी हो या न हो; पर वह जब दुर्भाग्य से पैदा हो जाए, तो उसका सामना करना ही पड़ता है। मैं सोचता था कि हम लोग इस देश में कितने पिछड़े हुए हैं कि अदना-अदना-सी बातों पर जान देने को उतारू हो जाते हैं। पर अपनी गुलामी और फाकेमस्ती सहने को तैयार रहते हैं।"

हिन्दी साहित्य की समृद्धि के विषय में नेहरूजी को कितनी चिन्ता रहती थी, उसका कुछ परिचय उनके 12 नवम्बर सन् 1933 को हुई काशी की सभा के उन विचारों मे मिल जाता है जो आपने वहाँ के साहित्यकारों के समक्ष प्रकट किए थे। आपने कहा था—"आज यदि स्वराज्य हो और मेरे हाथ में अधिकार हो तो मैं सबसे पहले इसका बन्दोबस्त करूँ कि दुनिया की सभी भाषाओं के साहित्य से उत्तमोत्तम तीन-चार सौ पुस्तकें छाँटकर उनकी लिस्ट तैयार कराऊँ और राष्ट्रभाषा हिन्दी में उनका अनुवाद कराऊँ।" अपने इसी स्वप्न को साकार करने के लिए नेहरूजी ने भारत का प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त सन् 1954 में 'साहित्य अकादेमी' की स्थापना कराई थी। यह प्रसन्नता की बात है कि अकादेमी के माध्यम से अब उनका यह स्वप्न यत्किंचित् मूर्त्त रूप लेता जा रहा है।

हिन्दी की महत्ता के सम्बन्ध में आपने एकाधिक बार जो विचार प्रकट किए थे, उनसे यह सिद्ध होता है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा के महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होने की पूर्ण क्षमता रखती है। एक बार आपने कहा था—"हिन्दी का ज्ञान राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन देता है और हिन्दी अन्य भाषाओं की अपेक्षा सबसे अधिक राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। विभिन्न स्थान विशेष की बोलियाँ अपने-अपने स्थान विशेष में प्रमुख रहेंगी, किन्तु भारत को एक सूत्र में बाँधने के लिए हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा होना चाहिए।" यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की दिशा में आपने अपने प्रधानमन्त्रित्व-काल में बहुत-कुछ कार्य किया था।

हिन्दी के इस प्रेमी का निधन 27 मई सन् 1964 को नई दिल्ली के तीन-मूर्ति-भवन में हुआ था।

श्री जितेन्द्रनाथ बाग्रे

श्री बाग्रे का जन्म 5 जुलाई सन् 1916 को हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता राजाबहादुर विश्वेश्वरनाथ हैदराबाद के प्रमुख वकील, निजाम के शासन में वहाँ के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और बाद में मुख्य न्यायाधीश रहे थे। आर्यसमाज के क्षेत्र में आपकी सेवाएँ उल्लेखनीय थीं।

निजाम के शासन-काल में श्री जितेन्द्रनाथ बाग्रे सन् 1940 से सन् 1946 तक 'हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा' के प्रधान-मन्त्री रहे थे। आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर अगला अधिवेशन हैदराबाद में करने का निमन्त्रण दिया था, परन्तु निजाम शासन के प्रतिबन्ध के कारण तब वह वहाँ न हो सका था।

आपने महात्मा गान्धी द्वारा वर्धा में आयोजित 'हिन्दी कार्यकर्ता सम्मेलन' में सभा की ओर से भाग लिया था। इस सम्मेलन में ही महात्मा गान्धी ने 'हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा' की स्थापना की थी। राजर्षि टण्डन ने इस अवसर पर हिन्दी के पक्ष का डटकर समर्थन किया था।

बाग्रे जी ने सन् 1946 से 1950 तक इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत की थी और सन् 1950 में हैदराबाद आकर सेशन जज के पद पर नियुक्त हो गए थे। अपने निधन के समय (19 जुलाई सन् 1971) तक आप इसी पद पर रहे थे।

मुनि जिनविजय सूरि

मुनि जिनविजय का जन्म राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र के रूपाहेली नामक ग्राम में एक परमार राजपूत परिवार में 27 जनवरी सन् 1888 को हुआ था। शैशव-काल में ही पिता का देहान्त हो जाने के कारण आपकी देख-रेख माता के द्वारा ही हुई थी। जब आपके पिता रुग्ण थे उन्हीं दिनों आपका परिचय यति देवीहंसजी से हुआ और उन्हींके निरीक्षण में आपका प्रारम्भिक शिक्षण भी हुआ। देवी हंसजी जब चित्तौड़गढ़ के निकटवर्ती बानेण नामक स्थान को चले गए तब मुनिजी भी उनके साथ वहाँ पहुँच गए। दुर्भाग्यवश सन् 1900 में यतिजी और मुनिजी के बड़े भाई का भी स्वर्गवास हो गया। फलतः सन् 1902 में मुनिजी कुछ और यतियों के साथ मेवाड़ और मालवा के भ्रमण पर निकल गए और उसी वर्ष धार रियासत के दिगठाड़ नामक ग्राम में स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के एक साधु से आपका परिचय हुआ और आप उस सम्प्रदाय में विधिवत् दीक्षित होकर 'रणमल्ल' से 'मुनि जिनविजय' हो गए।

इसके उपरान्त मुनिजी धार, उज्जैन, खानदेश तथा अहमदाबाद आदि विविध नगरों का भ्रमण करते हुए सन् 1908 में उज्जैन पहुँचे और वहाँ 'चातुर्मास' किया। इस 'चातुर्मास' में ही मुनिजी ने स्थानकवासी सम्प्रदाय का वेश त्याग दिया और विद्याध्ययन की दृष्टि से खाचरोद, रतलाम, पालनपुर, अहमदाबाद और पाली मारवाड़ आदि विभिन्न स्थानों में गए। पाली में ही आपका सम्पर्क जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मूर्तिपूजक साधुओं से हुआ और उनके विद्या-व्यसन से प्रभावित होकर आपने मूर्तिपूजक संवेगी सम्प्रदाय का साधु वेश अपना लिया।

इसके उपरान्त आपने देश के अनेक नगरों की यात्रा करके जैन धर्म के सिद्धान्तों से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ-भण्डारों और शिलालेख-संग्रहों का निरीक्षण किया। सन् 1918 के 'चातुर्मास' के समय जब आप पूना में रहे थे तो आपने 'भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' के कार्यों में सहयोग देने की इच्छा भी प्रकट की थी। आपने पूना में रहकर एक ऐसी ही संस्था की स्थापना करने का विचार भी किया और भारत जैन विद्यालय की स्थापना कर दी। उन्हीं दिनों आपने 'जैन साहित्य संशोधक समिति' की स्थापना करके उसकी ओर से एक त्रैमासिक पत्र और एक ग्रन्थमाला प्रकाशित करने की योजना भी बनाई। जिन दिनों आप पूना में थे तब लोकमान्य तिलक की विचार-धारा से प्रभावित होकर आपने स्वाधीनता-संग्राम में भी योगदान देने का संकल्प किया और उग्र राजनैतिक विचार-धारा के प्रभाव में आकर आपने पूना की पहाड़ियों में पिस्तौल चलाने का अभ्यास भी प्रारम्भ कर दिया। इस अभ्यास में आपकी टाँग में भी गोली लग गई थी, जिसके कारण आपको महीनों खाट पर पड़े रहना पड़ा।

सन् 1920 में जब अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की गई तब मुनि जिनविजयजी गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर के आचार्य बने तथा 'जैन साहित्य संशोधक' नामक प्रकाशन संस्था की भी स्थापना करने में आप सफल हुए। अहमदाबाद में आकर आचार्य काका कालेलकर, धर्मानन्द कोशाम्बी और पंडित सुखलाल संघवी-जैसे अनेक विद्वानों के सम्पर्क से मुनिजी का दृष्टिकोण और भी व्यापक हो गया। रूसी क्रान्ति और उसके बाद रूस में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनों ने भी आपके विचारों को प्रभावित किया और आपके मन में प्राचीन भारतीय साहित्य के खोजपूर्ण अध्ययन की भावनाएँ हिलोरें लेने लगीं। फलस्वरूप आपने जर्मनी जाकर अपनी तत्सम्बन्धी जिज्ञासाओं की सम्पूर्ति करने का निश्चय किया। इस सम्बन्ध में मई सन् 1928 में गांधीजी की अनुमति प्राप्त करके आप जर्मनी चले गए। जर्मनी में जाकर आपने बान, हामबुर्ग तथा लाईपत्सिग आदि ऐसे अनेक केन्द्रों का निरीक्षण किया जिनमें भारत से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री थी। आपने वहाँ पर 'हिन्दुस्तान हाउस' की स्थापना करके भारतीय संस्कृति एवं राजनैतिक प्रवृत्तियों को संगठित करने के प्रयास भी किए। वहाँ पर आपका जहाँ बर्लिन विश्वविद्यालय के प्रोफे-

सर स्यूरडस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ वहाँ आगे चलकर आपके द्वारा स्थापित 'हिन्दुस्तान हाउस' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का निवास-स्थान भी बना। लगभग डेढ़ वर्ष बाद जब मुनिजी अपने इस हाउस की गतिविधि बढ़ाने की योजना के सम्बन्ध में गांधीजी से विचार-विमर्श करने के लिए भारत आ रहे थे तब नमक-सत्याग्रह छिड़ चुका था। फलस्वरूप गांधीजी के आदेश पर आपने कुछ स्वयंसेवकों को लेकर धरासण नामक नमक-केन्द्र पर सत्याग्रह किया और गिरफ्तार करके नासिक जेल भेज दिए गए।

जेल में आपका सम्पर्क सर्वश्री कन्हैयालाल मुन्शी, जमनालाल बजाज और के० एफ० नरीमान-जैसे नेताओं से हुआ और मुन्शीजी के साथ बैठकर तो आपने अनेक सांस्कृतिक योजनाओं पर भी विचार किया। सन् 1932 में आप गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आमन्त्रण पर शान्तिनिकेतन गए; लेकिन वहाँ भी आप अधिक दिन न रह सके। सन् 1939 में जब श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने अपनी 'भारतीय विद्या भवन' नामक संस्था के द्वारा 'सिन्धी जैन ग्रन्थमाला' का कार्य प्रारम्भ किया तब उनके आमन्त्रण पर आप बम्बई चले आए और लगभग 15 वर्ष तक इस ग्रन्थमाला के संचालक के रूप में आपने उल्लेखनीय कार्य किया। फिर सहसा आपके मन में लोक-सेवा की भावना जगी और आपने मई सन् 1950 में सब पोथी-पत्रों को छोड़कर राजस्थान के चित्तौड़ नामक स्थान के समीप चन्देरिया नामक ग्राम मे आकर 'सर्वोदय साधना आश्रम' की स्थापना कर दी। इस संस्थान के माध्यम से ग्राम-सुधार की भावनाओं को बल देना था, लेकिन साधनों के अभाव में आप अपने इस स्वप्न को साकार न कर सके।

राजस्थान के तत्कालीन नेताओं ने जब मुनिजी को अपने प्रदेश में यह साधना करते देखा तो उन्होंने आपको 'राजस्थान पुरातत्व मन्दिर' की स्थापना के लिए आमन्त्रित किया। मुनिजी के निर्देशन में यह कार्य प्रारम्भ हो गया और 'राजस्थान पुरातत्त्व ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। यह संस्थान अब 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' नाम से जोधपुर में कार्य कर रहा है। आपकी साहित्य तथा संस्कृति-सम्बन्धी सेवाओं से प्रभावित होकर जहाँ जर्मनी की विख्यात संस्था 'जर्मन ओरियण्टल सोसायटी' ने आपको अपना सम्मानित सदस्य बनाकर सर्वोच्च सम्मान दिया था वहाँ भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने भी आपको 'पद्मश्री' की उपाधि से अलंकृत किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप फिर चन्देरिया के उसी आश्रम में जाकर एकान्तवासी योगी की भाँति साधना करने में तल्लीन हो गए थे, जिसकी स्थापना आपने की थी।

आपका निधन 3 जून सन् 1976 को हुआ था।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव

श्रीवास्तवजी का जन्म 23 अप्रैल सन् 1891 को बिहार के सारन जिले के छपरा नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू रघुनन्दनप्रसाद था और वे रेलवे में कार्य करते थे। वैसे वे पटना के रहने वाले थे और वहाँ से पारिवारिक कलह के कारण अपनी ससुराल छपरा में आकर रहने लगे थे। जब अपनी नौकरी के सिलसिले में आपके पिता गोरखपुर चले गए तब आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने नाना के निरीक्षण में छपरा में ही हुई थी। पहले-पहल आपको उर्दू पढ़ाने के लिए एक मौलवी साहब रखे गए, लेकिन उनके मार-पीट करने के स्वभाव के कारण आपने उनसे पढ़ने से इन्कार कर दिया। फलस्वरूप आपके नाना ने आपको सारन जिले के हथुवा नामक स्थान में पढ़ने के लिए भेज दिया। रेलवे की निरन्तर स्थान बदलते रहने वाली नौकरी के कारण आपके पिता जब उत्तर प्रदेश के गोंडा नामक नगर में आए तो वहीं पर उन्होंने अपना स्थायी निवास बनवा लिया। फलतः श्रीवास्तवजी वहाँ आ गए और सन् 1909 में वहाँ से मैट्रिक की परीक्षा पास करके आप आगे की पढ़ाई के लिए लखनऊ के केनिंग कालेज में प्रविष्ट हो गए। सन् 1910 में आपने वहाँ से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। कालेज के होस्टल में रहते हुए आपकी प्रवृत्ति लेखन की ओर हुई और आपने हास्य-रस की कहानियाँ लिखनी प्रारम्भ कर दीं। अब आपके सामने यह समस्या थी कि अपनी कहानियों में लेखक के रूप में क्या नाम रखा जाय, क्योंकि गंगाप्रसाद श्रीवास्तव नाम का आपका एक सहयोगी भी था। फलतः आप गंगाप्रसाद श्रीवास्तव से जी० पी० श्रीवास्तव हो

गए और इसी नाम से लिखने लगे।

उन्हीं दिनों सन् 1912 में आरा से पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने 'मनोरंजन' नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और श्रीवास्तवजी उसके नियमित लेखक हो गए। क्योंकि यह पत्र मनोरंजन-प्रधान सामग्री ही दिया करता था इसलिए श्रीवास्तवजी ने हास्य तथा व्यंग्य-लेखन को ही अपना प्रमुख ध्येय बनाया। आपकी सबसे पहली कहानी 'मौलवी साहब' इसी पत्र में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में उन्हीं मौलवी साहब की लम्बी दाढ़ी का मनोरंजक चित्रण किया गया था, जो आपके उर्दू के पहले शिक्षक थे। आपकी यह कहानी आपके 'लम्बी दाढ़ी' नामक पहले संकलन में देखी जा सकती है। कहानी-लेखन के साथ-साथ हास्य-रस के लेख भी आपने काशी से अम्बिकाप्रसाद गुप्त के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'इन्दु' नामक पत्र में लिखे थे।

सन् 1913 में लखनऊ के केनिंग कालेज से बी० ए० करने के उपरान्त वकालत की पढ़ाई जारी रखने की दृष्टि से आप इलाहाबाद चले गए और सन् 1915 में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करके गोंडा आ गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वहाँ पर ही वकालत का कार्य करते रहे। वकालत करते हुए अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनेक अनुभवों को आपने सफलतापूर्वक अपनी रचनाओं में उतारा और एक समय ऐसा आया जब आपकी गणना उच्चकोटि के हास्य-रस के लेखकों में होने लगी। आपने उपन्यास, कहानी और नाटकों के अतिरिक्त काव्य-लेखन में भी कुशलता अर्जित की थी। आपकी दो दर्जन से अधिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'लम्बी दाढ़ी', 'उलटफेर', 'मार-मारकर हकीम', 'मीठी हँसी', 'मिस्टर लतखोरीलाल', 'स्वामी चौखटानन्द', 'मास्टर भड़ामसिंह शर्मा', 'नोक-झोंक', 'दुमदार आदमी', 'मर्दानी औरत', 'विलायती उल्लू', 'बौछार', 'गड़बड़झाला', 'गंगा-जमनी', 'कुर्सी मैन', 'आँखों में धूल', 'हवाई डाक्टर', 'बदौलत सीट', 'जवानी बनाम बुढ़ापा', 'नाक में दम', 'रंग बेढब', 'धोखा-धड़ी', 'चड्ढा गुलखैरू', 'काठ का उल्लू' और 'प्राणनाथ' आदि प्रमुख हैं।

अपनी इन सभी रचनाओं में आपने समाज के विभिन्न अंगों पर जो चोट की है उससे आपकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता का परिचय मिलता है। आप अपने जीवन में बहुत ही हाजिरजवाब, हँसमुख और निर्भीक थे। जैसा कहते थे वैसा ही करने का आपका स्वभाव था। आप जहाँ उच्चकोटि के व्यंग्य-लेखक, सफल नाटककार और उपन्यासकार थे वहाँ अनेक चुलबुली और गुदगुदाने वाली कविताएँ भी आपने लिखी थीं। आपकी ऐसी कविताएँ सन् 1919 में प्रकाशित आपकी 'नोक-झोंक' नामक पुस्तक में देखी जा सकती हैं।

आधुनिक हिन्दी के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपनी 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' नामक कृति में हास्य-रस की जिस परम्परा की नींव डाली थी उस परम्परा को आगे बढ़ाने में श्रीवास्तवजी का नाम अन्यतम है। नाटक, प्रहसन, उपन्यास, कहानी और कविता आदि साहित्य के विभिन्न अंगों की पूर्ति के लिए आपने अपनी लेखनी का सदुपयोग किया था। आप स्वभाव से बड़े सफल, सहृदय, दूरदर्शी और मिलनसार थे। अपनी रचनाओं में भी आपने ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय दिया था।

उच्चकोटि के लेखक होने के साथ-साथ आप अच्छे वक्ता भी थे। हास्य-रस के सम्बन्ध में आपने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अभिनन्दन में आयोजित प्रयाग के 'द्विवेदी मेले' में सम्पन्न हुए 'काव्य परिहास सम्मेलन' के अवसर पर जो भाषण दिया था वह अभूतपूर्व था। एक कुशल अभिनेता के रूप में भी आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था और गोंडा के नवयुवक वकीलों के सहयोग से वहाँ पर एक अच्छी नाटक-मंडली तैयार करके उसके द्वारा अनेक हास्य नाटकों का अभिनय भी आपने समय-समय पर किया था।

आपकी अनेक पुस्तकों के भारत की दूसरी भाषाओं में अनुवाद भी हुए थे। गुजराती भाषा के प्रमुख पत्र 'बीसवीं सदी' ने तो आपकी कृतियों से अपने पाठकों को परिचित

कराने के लिए आपकी सचित्र जीवनी भी अपने पत्र में प्रकाशित की थी। हास्य-रस के लेखक के रूप में आपको इतनी प्रतिष्ठा मिली थी कि बहुत से हिन्दी-पत्रों में आपको हिन्दी का मौलियर, डिकेन्स तथा मार्क ट्वेन आदि कहकर आपका सम्मान किया गया था। आपके 'उलट-फेर' नामक नाटक की भूमिका गोंडा के बहुभाषाविज्ञ तत्कालीन सेशन जज मि० आर० पी० ड्यूहर्स्ट ने लिखी थी और इस भूमिका के आलोक में अँग्रेजी के प्रख्यात पत्र 'पायनीयर' ने आपकी नाटक-कला की चर्चा उन दिनों बड़े विस्तार से की थी।

हास्य-नाटक-लेखन के क्षेत्र में आप इतने सिद्धहस्त हो चुके थे कि आपकी अनेक कृतियों पर फिल्म बनाने के लिए कलकत्ता की एक फिल्म-कम्पनी ने आपसे पत्र-व्यवहार भी किया था। 'चार्ली चेपलिन' की भाँति आपके नाटक भी लोगों का मनोरंजन करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। यदि आपके नाटकों की फिल्म अब भी बनाई जाय तो शिष्ट मनोरंजन की दिशा में बड़ा कार्य हो सकता है।

सन् 1937 में ब्रिटिश सरकार ने आपको 'कारोनेशन पदक' प्रदान करके आपका सम्मान किया था और गोंडा जिले का 'नोटरी पब्लिक' बनने का सौभाग्य भी आपको प्राप्त हुआ था। श्रीवास्तवजी ने जिन दिनों साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया था उन दिनों हिन्दी में व्यंग्य-हास्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय देने वाले लेखक बहुत ही कम थे। हिन्दी में एक शिष्ट हास्य-लेखक के रूप में आपने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी वह आपकी प्रतिभा की द्योतक है।

जमशेदपुर के श्री सूरजप्रसाद मिश्र पत्रकार (1980 में दिवंगत) ने श्री श्रीवास्तवजी के सम्बन्ध में एक 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' प्रकाशित करने की योजना बनाई थी और उन्होंने श्रीवास्तवजी के भानजे श्री निर्मलकुमार सिन्हा से इस सम्बन्ध में काफी पत्र-व्यवहार भी किया था। खेद है कि श्री मिश्र अपनी योजना को क्रियान्वित न कर सके और श्रीवास्तवजी इस असार संसार से विदा हो गए।

यह एक विडम्बना की बात है कि इतने प्रचुर परिमाण में लिखने के बाद भी आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण (30 अगस्त, 1976) तक आर्थिक कठिनाइयों से ही जूझते रहे। यह दूसरी बात है कि आपकी अस्वस्थता के दिनों में उत्तर प्रदेश शासन के तत्कालीन साहित्य-प्रेमी अधिकारियों ने आपकी चिकित्सा के लिए 1500 रु० की राशि प्रदान करके अपनी सहृदयता का परिचय दिया था।

श्री जीवनचन्द्र जोशी

श्री जोशीजी का जन्म 23 अगस्त सन् 1901 को उत्तर प्रदेश के शफीपुर (उन्नाव) नामक स्थान में हुआ था। यह गाँव हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा की भी जन्मभूमि है। आपको अपने पिता स्व०श्री लीलाधर जोशी से साहित्य के क्षेत्र में बढ़ने की प्रेरणा मिली थी। आपने 'कुमायूँनी' भाषा में 'गीता', 'मेघदूत' और 'हर्ष चरित' के छन्दोबद्ध अनुवाद किये थे। जब श्री जीवनचन्द्र जोशी अल्मोड़ा के हाईस्कूल में पढ़ते थे तब आपको हिन्दी के तीन महान् साहित्यकारों—सर्वश्री सुमित्रानन्दन पन्त, गोविन्दवल्लभ पन्त तथा इलाचन्द्र जोशी—के साथ रहने का अवसर मिला था। आप उनके सहपाठी थे। अपने अध्ययन के दिनों में आपने 'उसीर' नामक एक हस्तलिखित पत्र भी 'कुमायूँनी' भाषा में निकाला था।

अपनी मातृ-भाषा कुमायूँनी के प्रति आपका अनन्य अनुराग था और भारी आर्थिक हानि उठाकर भी आपने 'अचल' नामक एक साहित्यिक सांस्कृतिक मासिक पत्रिका अल्मोड़ा से प्रकाशित की थी। आपका अपने समय के सभी प्रमुख हिन्दी लेखकों से अच्छा परिचय था। लखनऊ से श्री दुलारेलाल भार्गव के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सुधा' में आप काफी लिखा करते थे।

आपका निधन 29 अप्रैल सन् 1980 को हुआ था।

श्री जैनेन्द्रकिशोर

आपका जन्म बिहार के शाहाबाद जिले के आरा नामक नगर में सन् 1871 में हुआ था। लगभग 9 वर्ष की आयु में आप आरा के जिला स्कूल में भरती हुए थे, लेकिन सन् 1891 में आपने पढ़ना छोड़ दिया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री किशोरीलाल गोस्वामी के सत्संग से आपकी रुचि साहित्य की ओर हुई और आप 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' के सदस्य हो गए। सभा में आने-जाने से आपकी साहित्यिक चेतना को प्रचुर प्रस्फुरण मिला और आपने उपन्यास तथा नाटक-लेखन की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

जिस प्रकार आरम्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं नाटक लिखकर उनके अभिनय में रुचि लिया करते थे उसी प्रकार श्री जैनेन्द्रकिशोर ने भी 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' के माध्यम से कई नाटक लिखकर उनके अभिनय के लिए 'नाटक मण्डली' की स्थापना की थी। आपने उस समय उपन्यास-लेखन की ओर कदम बढ़ाया था जबकि ऐसे लेखकों की संख्या उँगलियों पर ही गिनी जा सकती थी। एक अच्छे उपन्यास-लेखक होने के साथ-साथ आप कुशल कवि भी थे।

आपकी औपन्यासिक तथा नाट्य कृतियों में 'कमलिनी', 'मनोरमा', 'प्रमिला', 'सुलोचना', 'सोभा सती', 'चुड़ैल' (दो भाग), 'सत्यवती', 'सुकुमाल,, 'मनोवती', 'गुलेनार', 'सावन सोहाग', 'होली की पिचकारी', 'चैती गुलाब', 'हास्य मंजरी' और 'शृंगार लता' आदि विशेष उल्लेख्य हैं। आपकी कविताओं के भी कई संकलन प्रकाशित हुए थे।

आपका निधन 4 मई सन् 1909 को हुआ था।

श्री ज्योतिस्वरूप शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1875 को अलीगढ़ में हुआ था। आप सप्तभाषाविद् थे। आपने 'सारस्वत', 'पालीवाल ब्रह्मोदय' और 'महेश्वर' नामक पत्रों का अलीगढ़ से सम्पादन किया था। कुछ दिन तक आपने 'निगमागम चन्द्रिका' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादन में भी सहयोग दिया था।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'मनोकामना सिद्धि', 'अनौषधि चिकित्सा', 'दीर्घ जीवनोपाय' और 'मृत्यु परीक्षा' प्रमुख हैं।

आपका निधन सन् 1961 में हुआ था।

श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म सन् 1862 में मुरादाबाद के दीनदारपुरा मोहल्ले में हुआ था। आप संस्कृत तथा हिन्दी-वाङ्मय के उद्भट विद्वान् तथा सुलेखक थे। हिन्दी-साहित्य में आपकी ख्याति विशेष रूप से उस समय हुई थी जब आपके द्वारा की गई 'बिहारी सतसई की टीका' पर प्रसिद्ध समालोचक पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने 'सतसई संहार' नामक अपनी क्रान्तिकारी लेखमाला लिखी थी। वैसे आप संस्कृत-वाङ्मय के धुरन्धर विद्वान् थे, परन्तु हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में भी आपने अपने अनेक मौलिक तथा भाष्य-ग्रन्थों द्वारा अभिनन्दनीय योगदान दिया था।

आपने जहाँ 'रामचरितमानस' का खड़ी बोली में प्रथम अनुवाद सन् 1904 में प्रस्तुत किया था वहाँ समस्त पुराणों और 'वाल्मीकि रामायण' के हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित कराए थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की आलोचना आपने जहाँ अपने 'दयानन्द तिमिर भास्कर' नामक ग्रन्थ में की थी वहाँ आपने अपने 'यजुर्वेद भाष्य' में स्वामी दयानन्द के भाष्य का भी खण्डन करते हुए अपने भाष्य की प्रामाणिकता प्रतिपादित की थी। आपने अपने 'जाति भास्कर' नामक ग्रन्थ में भारतवर्ष के सभी वर्णों और जातियों का प्रामाणिक
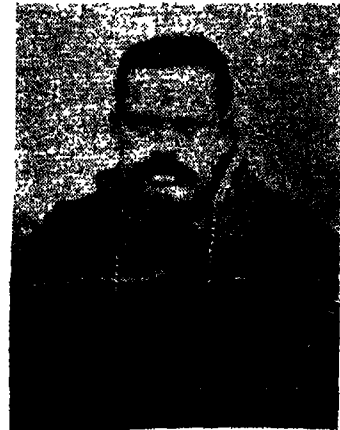
इतिहास प्रस्तुत करने के साथ-साथ 'हनुमन्नाटक', 'सीता-वनवास', 'वेणी संहार' तथा 'शाकुन्तल' आदि अनेक नाटक भी प्रकाशित किए थे।

आपके लेखन का क्षेत्र इतना विशद तथा व्यापक था कि भारतीय वाङ्मय की कोई विधा ऐसी नहीं बची, जिसमें आपने अपनी प्रतिभा का चमत्कारी परिचय न दिया हो। वेद, पुराण, शास्त्र, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद, कर्मकाण्ड, स्तोत्र तथा तन्त्र-साधना आदि ऐसे अनेक विषय हैं जिन पर आपने खुलकर लेखनी चलाई थी। आपके ऐसे ग्रन्थों की संख्या शताधिक है और ये सभी ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, बंगवासी प्रेस कलकत्ता, तन्त्र प्रभाकर प्रेस मुरादाबाद तथा लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद से प्रकाशित हुए थे। अपने अगाध ज्ञान तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण ही आपको 'विद्यावारिधि' कहा जाता था। आपके दो और बन्धु श्री कन्हैयालाल मिश्र और श्री बलदेवप्रसाद मिश्र भी हिन्दी तथा संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् एवं सुलेखक थे और इसी कारण 'मिश्रबन्धुओं' की तरह हिन्दी-जगत् में आप तीनों भाइयों को 'विद्यावारिधि बन्धु' नाम से अभिहित किया जाता था।

आपका निधन सन् 1916 में हुआ था।

श्री ज्ञान शर्मा

श्री ज्ञान शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर नगर के एक सम्पन्न ब्राह्मण-परिवार में 2 अक्तूबर सन् 1918 को हुआ था। आपका पूरा नाम ज्ञानेश्वर शर्मा था और आपके पिता पं० रामचन्द्रसहाय सहारनपुर की कचहरी में डिप्टी-साहब के पेशकार थे। जब आप 4 वर्ष के ही थे कि आपकी माताजी का देहान्त हो गया और 6 वर्ष की आयु से 10 वर्ष की आयु तक घर पर ही प्राइवेट शिक्षा ग्रहण करके सन् 1926 में आप वहाँ के काशीराम हाईस्कूल की चौथी कक्षा में प्रविष्ट हो गए। चौथी कक्षा में उत्तीर्ण होकर आप पाँचवीं में प्रविष्ट हुए, किन्तु उसमें उत्तीर्ण न हो सके। आपकी रुचि उन दिनों उपन्यास पढ़ने तथा सिनेमा एवं ड्रामा आदि देखने में अधिक थी। मार्च सन् 1936 में आपके पिताजी का भी निधन हो गया। अगस्त सन् 1942 के आन्दोलन में दफा 144 तोड़ने के अभियोग में आपको एक वर्ष की सजा हो गई और बरेली जेल में भेज दिए गए।

सन् 1943 में जेल से छूटकर आने के उपरान्त आपने अपने को पूर्णतः 'हिन्दी नाटक' लिखने और खेलने में ही लगा दिया। आपको इस कार्य में सहारनपुर के प्रख्यात राष्ट्र-भक्त नाटककार श्री ललिताप्रसाद 'अख्तर' से बड़ा प्रोत्साहन मिला और उनकी प्रेरणा पर 'एलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी', बम्बई में नौकरी कर ली, किन्तु वहाँ भी आप अधिक दिन न जम सके। फिर कुछ दिन तक दिल्ली में 'फिल्म एजेण्ट' का कार्य किया और इसके उपरान्त आपने मुजफ्फरनगर में अपने

मित्र कृष्णचन्द्र शर्मा के सहयोग से 'सती वेश्या' नाटक खेला। सन् 1949 में आपका विवाह हो गया और 'स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर' में नौकर हो गए। इसके उपरान्त जब से आप बैंक की आगरा शाखा में गए तब से आपने वहाँ की 'इप्टा' संस्था के माध्यम से अनेक नाटक खेले।

श्री शर्मा की आवाज सिने-अभिनेता श्री बलराज साहनी से बहुत मिलती-जुलती थी। आप इतने अच्छे अभिनेता थे कि सिने-कलाकार श्री पृथ्वीराज कपूर और आई० एस० जौहर ने आपको कई बार पुरस्कृत किया था। 'जन नाट्य संघ' आगरा ने सन् 1950 में जब बहुत जोर पकड़ा तब आपकी कला उसके माध्यम से जन-साधारण के सामने आई थी। आपने उसके द्वारा अभिनीत होने वाले अनेक नाटकों में विविध भूमिकाओं में भाग लिया था। आपने 'कृष्णा ड्रामेटिक क्लब आगरा' के द्वारा भी 'सती वेश्या', 'खूबसूरत बला' और 'लैला मजनूँ' इत्यादि अनेक नाटकों में अपने अभिनय से नए मानदण्ड स्थापित किए थे।

आपने प्रेमचन्द के 'गोदान' और 'कफन' में भी अपनी कला का अद्भुत परिचय दिया था।

आपका निधन 16 जुलाई सन् 1965 को आगरा में हुआ था।

श्री झलकनलाल वर्मा 'छैल'

श्री 'छैल' जी का जन्म 9 दिसम्बर सन् 1902 को सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। आपके पिता वैद्य थे और कुछ साहित्यिक रुचि भी रखते थे। छैल जी ने अपने पिताजी से वैद्यक के गुण तो उत्तराधिकार में ग्रहण नहीं किए, साहित्य के संस्कार उनसे अवश्य आपके मानस में आ गए थे। आपकी शिक्षा भी ठीक तरह से नहीं हो सकी थी और 14-15 वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते आपने तुकबन्दी करनी प्रारम्भ कर दी थी। सबसे पहले आपका सम्पर्क जबलपुर की साहित्यिक संस्था 'कवि समाज' से हुआ जिसके कारण आपके कवि को आगे बढ़ने की निरन्तर प्रेरणा प्राप्त होने लगी। इसी समाज की गोष्ठियों में छैलजी को प्रख्यात भाषाविद् और वैयाकरण पं० कामताप्रसाद गुरु का स्नेह-सान्निध्य भी सुलभ हुआ, जिसके कारण आपको साहित्य के क्षेत्र में समय-समय पर उचित दिशा-निर्देश प्राप्त होता रहा। इस संस्था की गोष्ठियों मे उन दिनों सर्वश्री रामानुजलाल श्रीवास्तव, सुभद्राकुमारी चौहान, नर्मदाप्रसाद खरे, केशवप्रसाद पाठक और गंगाविष्णु पांडेय आदि अनेक कवि और साहित्यकार भाग लिया करते थे।

छैलजी ने खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में बड़ी ही सशक्त रचनाएँ की हैं। समस्या-पूर्तियों के क्षेत्र में भी उन दिनों आपकी खूब धूम थी। आपने लोक-धुनों पर आधारित फाग भी खूब लिखे थे। राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं की दिशा में भी आपका कवि अत्यन्त जागरूक था। आपके 'सुलगते संकेत' नामक काव्य-संकलन की रचनाएँ इसका ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। व्यंग्य-लेखन में भी आपने अपनी प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया था। आपका 'कैंकड़ा' नामक संग्रह आपकी हास्य-लेखन-क्षमता का उदात्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आपकी साहित्य-सेवाओं को दृष्टि में रखकर जबलपुर के 'नामदेव समाज विकास संगठन' ने 27 जून सन् 1976 को आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया था और इस अवसर पर आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय देने के पावन उद्देश्य से प्रेरित होकर एक 'स्मारिका' भी प्रकाशित की गई थी। छैलजी वास्तव में मध्यप्रदेश के पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों में प्रमुख थे।

आपका निधन 4 नवम्बर सन् 1977 को हुआ था।

डॉ० टीकमसिंह तोमर

डॉ० तोमर का जन्म 9 मार्च सन् 1913 को बदायूँ (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके माता-पिता आपके बचपन में ही दिवंगत हो गए थे, अतः आपकी शिक्षा-दीक्षा अपने ज्येष्ठ भाइयों के निरीक्षण में ही हुई थी। ग्राम के प्राइमरी स्कूल मे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आपने सन् 1932 में मैट्रिक की परीक्षा आगरा के बलवन्त राजपूत कालेज से उत्तीर्ण की और फिर सन् 1936 में सैण्ट जान्स कालेज, आगरा से क्रमशः बी० ए० तथा सन् 1938 में एम० ए० करने के उपरान्त आप शोध-कार्य करने के विचार से प्रयाग विश्वविद्यालय में चले गए। सन् 1952 में आपने वहाँ से 'हिन्दी के वीर-काव्य' पर शोध करके 'डी०फिल०' की उपाधि प्राप्त की और बाद में 'राजस्थान के राजाओं द्वारा हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सेवा' विषय पर डी० लिट्० की उपाधि भी ग्रहण की।

शिक्षा और शोध-कार्य की समाप्ति के उपरान्त आप आगरा के बलवन्त राजपूत कालेज के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हो गए और वहाँ रहते हुए अपने निरीक्षण में हिन्दी के अनेक छात्रों को शोध-कार्य में निर्देशन तथा सहायता भी आपने की। प्रयाग विश्वविद्यालय में आप जिन दिनों शोध-कार्य में संलग्न थे तब आपने 'भारतीय हिन्दी परिषद्' के शोध-सम्बन्धी त्रैमासिक पत्र 'अनुशीलन' का सम्पादन भी सफलतापूर्वक किया था और अनेक पत्र-पत्रिकाओं में अपने गम्भीर तथा गवेषणापरक निबन्ध भी प्रकाशित किए थे।
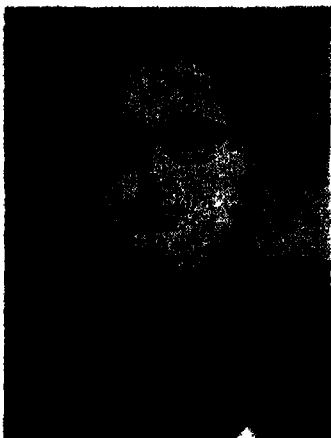
आपका डी० फिल० उपाधि का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी वीर काव्य' नाम से सन् 1954 में हिन्दुस्तानी एकाडेमी इलाहाबाद की ओर से प्रकाशित हुआ था और इस ग्रन्थ पर आपको उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कृत भी किया था। आपने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के ग्यारहवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर 'बघेली भाषा और साहित्य' विषय पर जो शोध-निबन्ध पढ़ा था उसकी सभी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से सराहना की थी। यह एक संयोग की ही बात है कि आपने यावज्जीवन चिरकुमार रहकर ही साहित्य-साधना की थी।

आपका निधन 2 नवम्बर सन् 1976 को हुआ था।

श्री टेकचन्द गुप्त

श्री टेकचन्दजी का जन्म हरियाणा प्रान्त के करनाल जनपद (वर्तमान कुरुक्षेत्र जनपद) के कौल नामक स्थान में 15 अगस्त सन् 1925 को हुआ था। सन् 1956 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'साहित्य रत्न' परीक्षा उत्तीर्ण करके आप अध्यापन का कार्य करने लगे और देहरादून में 'सरस्वती शिशु मन्दिर' की स्थापना भी की।

आपने सन् 1955 में 'साधना' नामक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया और सन् 1962 में 'देहरा समाचार' साप्ताहिक का प्रकाशन भी किया। आप देहरादून की 'हिन्दी साहित्य समिति' और 'भारतीय लेखक संघ' के अधिकारी भी रहे थे।

आप सफल शिक्षक होने के साथ-साथ कुशल लेखक भी थे। आपकी 'सोए खंडहर जागे', 'गूंजती घाटियाँ', 'नए सन्दर्भ : नए हस्ताक्षर', 'दीप से दीप जले', 'सम्पुट', 'हमारे सपने', (कहानी संकलन), 'पुराना कण्ठ नई पुकार' (एकांकी), 'विस्तार', 'असीम', 'महिमा' (काव्य), 'कहाँ जाना है ?' (उपन्यास) तथा 'बेटी की बगावत' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। अपनी अन्तिम पुस्तक के कारण आपको दो बार जेल-यात्राएँ भी करनी पड़ी थीं।

आपका निधन 11 मार्च सन् 1980 को हुआ था।

श्री टोपणलाल सेवाराम जैतली

श्री जैतली का जन्म अविभाजित भारत के सिन्ध प्रदेश के हैदराबाद नामक स्थान में सन् 1884 में हुआ था। आप सिन्धी भाषा के ज्ञाता होने के साथ-साथ संस्कृत वाङ्मय के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। आपका नाम आयुर्वेद के प्रबल प्रचारकों और प्रसिद्ध वैद्यों में गिना जाता है। आपने जहाँ अनेक वर्ष

तक हैदराबाद के 'भाई टीकमदास नानकराम आयुर्वेद विद्यालय' में मुख्याध्यापक के पद पर सफलता पूर्वक कार्य किया, वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की आयुर्वेद - सम्बन्धी परीक्षाओं के सचालक भी रहे। आपने इन परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम को ही प्रमुखता दी थी। सन् 1925 में आपने 'वैद्य' नामक एक आयुर्वेद-सम्बन्धी पत्र का सम्पादन भी किया था।

आपका निधन 13 मार्च सन् 1941 को हुआ था।

पंडित ठाकुरदत्त शर्मा 'अमृतधारा'

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1881 में अविभाजित पंजाब के किसी ग्राम में हुआ था। एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपका झुकाव आयुर्वेद की ओर हुआ और लाहौर आकर अपनी धर्मपत्नी के कड़े 27 रुपए में बेचकर आपने सन् 1901 में 'अमृतधारा' का आविष्कार करके अपना कार्य प्रारम्भ किया। सन् 1904 में आपने 'देशोपकारक' नामक मासिक पत्र प्रारम्भ किया, जो 27 वर्ष तक निरन्तर प्रकाशित होता रहा। पत्र का सम्पादन करने के अतिरिक्त आपने आयुर्वेद-सम्बन्धी लगभग 60 पुस्तकें भी लिखी थीं।

सन् 1914 में आपने अपनी परिश्रमशीलता और लगन से 'अमृतधारा भवन' बनवाया। बाद में इस सड़क का नाम भी 'अमृतधारा रोड' पड़ गया जिस पर आपका यह भवन था। फिर धीरे-धीरे वहाँ 'अमृतधारा' नाम से पोस्ट आफिस भी हो गया और इसी भवन में आपने 'अमृतधारा प्रेस' भी सन् 1916 में खोल लिया। सन् 1924 से सन् 1927 तक आपने विदेश की यात्रा भी की थी, जिसका विवरण आपके द्वारा लिखित 'सैरे यूरोप' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है।

आपने अपनी निष्ठा और योग्यता के बल पर 'अमृतधारा' के माध्यम से न केवल अपार धन अर्जित किया अपितु समाज-सुधार के अनेक कार्यों में भी आप बढ़-चढ़कर भाग लेते रहे। आर्यसमाज के क्षेत्र में आपने अनेक उल्लेखनीय कार्य किए थे। आप जहाँ अनेक वर्ष तक 'आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब' के प्रधान रहे थे वहाँ भारत-विभाजन के उपरान्त देहरादून में स्थायी रूप से बस जाने पर वहाँ के 'कन्या गुरुकुल' के संचालन में भी आपने उल्लेखनीय सहयोग दिया था। आप विभाजन से पूर्व सन् 1942 में जहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अबोहर-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष रहे थे वहाँ उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के सन् 1951 में देहरादून में आयोजित वार्षिक अधिवेशन में भी आपने बहुत सहायता की थी।
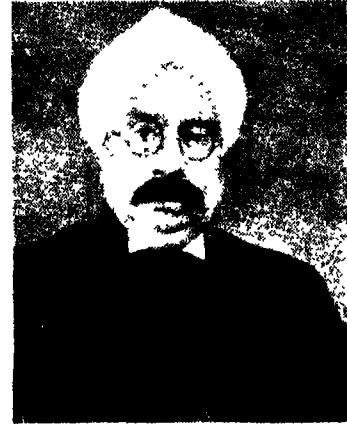
'अमृतधारा'-जैसी लोकोपयोगी औषधि का आविष्कार करके आपने चिकित्सा के क्षेत्र में जो क्रान्ति की थी वह आपकी लगन तथा साधना का ही सुपरिणाम है। आप प्राचीन आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति को उपयोगी मानने के साथ-साथ उसके उत्कर्ष के लिए भी अहर्निश प्रयत्नशील रहते थे। इस दिशा में आपने अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण भाग को सर्वात्मना लगा दिया था। अपनी विदेश यात्रा में भी आपने जगह-जगह पर भारतीय चिकित्सा-पद्धति की महत्ता ही प्रतिपादित की थी। आप लेखनी, वाणी और लक्ष्मी तीनों की साधना में सदा संलग्न रहते थे।

आपका निधन देहरादून में 14 मार्च सन् 1962 को हुआ था।

श्री ठाकुरदत्त शर्मा 'पथिक'

श्री 'पथिक' का जन्म 12 अप्रैल सन् 1930 को देहरादून में हुआ था। श्री 'पथिक' की शिक्षा पहले तो देहरादून में ही हुई थी, किन्तु बाद में आप सहारनपुर आ गए थे और हाईस्कूल की परीक्षा आपने यहाँ के ही 'बाजोरिया इण्टर कालेज' से दी थी।

मैट्रिक की परीक्षा देकर आपने सहारनपुर के कलक्ट्रेट कार्यालय में कार्य प्रारम्भ ही किया था कि आप 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के आन्दोलन के सिलसिले में जेल चले गए। जेल से आने के उपरान्त सन् 1950 में आपका विवाह हो गया और इसके उपरान्त आपके पिताजी का देहान्त हो गया।

सन् 1952 से आप लेखन के क्षेत्र में आए और प्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के प्रोत्साहन से आपने अनेक उत्कृष्ट गद्य-गीत तथा स्कैच लिखे। कहानी और कविता के क्षेत्र में भी आपने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया था। आपकी रचनाएँ 'नया जीवन' के अतिरिक्त 'मानव धर्म' और 'पांचजन्य' नामक पत्रों में भी प्रकाशित होती रहती थीं।

आपका देहान्त 8 अप्रैल सन् 1969 को हृदय गति बन्द हो जाने के कारण हुआ था।

बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री

बाबू ठाकुरप्रसादजी का जन्म सन् 1865 में काशी के एक समृद्ध खत्री-परिवार में हुआ था। यद्यपि आपके पिता शासन के कोष-विभाग में मुख्य लिपिक थे, परन्तु आपके परिवार में पारम्परिक रूप से व्यवसाय का कार्य होता था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी, फारसी और अँग्रेजी में हुई थी। आपने सन् 1885 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त एफ० ए० की परीक्षा देने की पूरी तैयारी कर ली थी कि अचानक आपके पिताजी का असामयिक देहावसान हो गया। इससे आपके अध्ययन में व्याघात आ गया। आपने आगे की पढ़ाई को सर्वथा तिलांजलि देकर काशी की कचहरी में इन्कमटैक्स-क्लर्क का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इसके अनन्तर आप खजाने में रहने के बाद पुलिस विभाग में चले गए और असिस्टेंट कोर्ट-इंसपेक्टर हो गए। इसी प्रसंग में आप मेरठ में थानेदार के पद पर भी रहे थे। पुलिस जैसे महकमे में रहकर आपको अनेक खट्टे-मीठे अनुभव हुए और आपने यह नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का विचार बना लिया। नौकरी से निवृत्त होने के उपरान्त आपका अधिकांश समय स्वाध्याय आदि में ही व्यतीत होता था। इन्हीं दिनों आपने अपने स्वाध्याय के बल पर बंगला और गुजराती आदि भाषाएँ भी सीख लीं और हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में लेखादि लिखने लगे। फिर अपने स्वाध्याय को आगे बढ़ाने की दृष्टि से ही आप काशी की 'कारमाइकेल लाइब्रेरी' में 'लाइब्रेरियन' हो गए। इस स्थान पर पहुँचकर तो आपकी प्रवृत्ति साहित्य की ओर निरन्तर बढ़ती गई।

लेखन की ओर अत्यधिक झुकाव होने के बाद आपने 'विनोद वाटिका' नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। इसी बीच सरकारी सहायता से आपने सन् 1908 में 'व्यापारी और कारीगरी' नामक एक और पत्र भी निकाला। यह पत्र पहले पाक्षिक और फिर क्रमशः मासिक और त्रैमासिक हो गया था। सरकार के अनुरोध पर आपने इस पत्र का उर्दू-संस्करण भी 'सनअत हिरफत व मुमालिक मुतहद्दः' नाम

से प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था। इसी प्रकार आपने 'जमींदार' नाम से एक और पत्र भी प्रकाशित किया था। आपने अपने लेखन को पूर्णतः व्यावहारिक और लोकोपयोगी बनाया था और इसकी सम्पूर्ति के लिए 'व्यापारी और कारीगर' नामक एक प्रेस भी खोला था। आपके लेखन की उत्कृष्टता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आपके 'भूगर्भ विद्या', 'ज्योतिष' और 'उत्तरी ध्रुव की यात्रा' शीर्षक निबन्धों पर नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने चाँदी के तीन पदक प्रदान किए थे। सभा की ओर से प्रकाशित होने वाले कोश में 'पदार्थ विज्ञान' तथा 'रसायन शास्त्र' वाले शब्द आपने ही तैयार किए थे। इण्डियन प्रेस, प्रयाग की ओर से प्रकाशित 'रामचरितमानस' के बाल-काण्ड तथा अयोध्या-काण्ड का मिलान करने के लिए आपको क्रमशः अयोध्या और राजापुर भेजा गया था।

सन् 1905 में जब काशी में कांग्रेस की ओर से प्रदर्शनी हुई थी तब आपने उसमें कपड़ा बुनने का काम भी सीखा था। आप देश के लाभ के लिए सर्वसाधारण में व्यावसायिक शिक्षा के प्रचार को बहुत अधिक महत्त्व देते थे। इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि आपने 'जगत् व्यापारिक पदार्थ कोष' नामक जो उत्तम तथा उपयोगी ग्रन्थ लिखा था उसके लिए सरकार ने आपको 1000 रुपए की सहायता प्रदान की थी। आपकी अन्य लोकोपयोगी रचनाओं में 'लखनऊ की नवाबी', 'सुनारी', 'सुघर दर्जिन' तथा 'देशी करघा' अत्यन्त उल्लेखनीय है। आपने 'हिन्दुस्तान के ढोर डाँगर तथा उनकी जातियाँ और गुण' नामक एक और पुस्तक भी लिखी थी, किन्तु वह प्रकाशित नहीं हो सकी। आपकी भाषा अत्यन्त सरल, सादी और आडम्बरविहीन होती थी। हिन्दी पत्रकारिता में वाणिज्य और व्यवसाय-जैसे विषयों को प्रारम्भ करने में आप सर्वथा अग्रणी थे।

आपका निधन सन् 1917 में काशी में हुआ था।

श्री तपसीराम

श्री तपसीरामजी का जन्म बिहार के सारन जिले के मुबारकपुर नामक ग्राम में सन् 1815 में हुआ था। यह ग्राम छपरा नगर से उत्तर-पूर्व की दिशा में 7 मील के फासले पर गोआ नामक परगने में है। प्राचीन काल में यहाँ मुबारकशाह नाम के एक प्रसिद्ध पीर हो गए हैं। कदाचित् उन्हींके नाम पर इस ग्राम का नाम मुबारकपुर पड़ा है। इस ग्राम में माही नदी के तट पर आमों के एक बगीचे में मुबारकशाह की समाधि बनी हुई है। मुबारकशाह की इस समाधि पर उस क्षेत्र के सभी मुसलमान तथा हिन्दू अपने मनोरथों की सिद्धि के लिए 'शीरनी' चढ़ाते हैं। प्रख्यात सन्त कवि रूपकला भगवान्‌जी का जन्म भी इसी ग्राम में हुआ था।

श्री तपसीराम के पिता मुंशी केवलकृष्ण इलाहाबाद के आलमगंज नामक स्थान की नील की कोठी में मीर मुन्शी थे। केवलकृष्णजी के छोटे भाई बख्शीरामजी के यहाँ ही रूपकला भगवान् का जन्म हुआ था। तपसीरामजी एक धर्मात्मा प्रकृति के रामोपासक सन्त थे और साधु-सन्तों की सेवा में ही आप प्रायः लगे रहते थे। आपकी कविताएँ भक्ति-रस से परिपूर्ण होती थीं। आपने 'श्री भागवत् सूची', 'श्री अयोध्या माहात्म्य', 'कथामाला', 'प्रेम तरंग' और 'श्री सीतारामचरण चिह्न' नामक केवल पाँच पुस्तकों की रचना की थी।

आपका निधन 70 वर्ष की आयु में छपरा के समीप गंगा-सरयू-संगम पर सन् 1885 में हुआ था।

श्री ताराशंकर पाठक

श्री पाठकजी का जन्म 3 अक्तूबर सन् 1911 को मध्यप्रदेश के इन्दौर नगर में हुआ था। सन् 1934 में आपने वहाँ के होल्कर कालेज से बी० ए० तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'साहित्य रत्न' परीक्षा उत्तीर्ण करके सन् 1936 में हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी से एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद क्रमशः 1938 में एल-एल० बी० और 1944 में बी० टी० की परीक्षाएँ भी आपने उत्तीर्ण कीं। सन् 1954 में आप इन्दौर के क्रिश्चियन कालेज के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए और सन् 1960 में विभागाध्यक्ष हो गए। श्री पाठकजी इन्दौर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहने के साथ-साथ 'हिन्दी

अध्ययन मण्डल' के भी अधिष्ठाता रहे थे। कुछ समय तक आप परशरामपुरिया अग्रवाल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्य भी रहे थे।

अध्यापन के क्षेत्र में अभिनन्दनीय सेवा करने के साथ-साथ आप जन-सेवा के कार्यों में भी बराबर रुचि लेते रहते थे। आप इन्दौर नगरपालिका निगम की स्टैंडिंग कमेटी के अनेक वर्ष तक अध्यक्ष रहने के साथ महापौर भी रहे थे। आप जीवन में इतने सरल और निस्पृह थे कि सत्ता के इन पदों पर रहते हुए भी कभी आपने कार का प्रयोग नहीं किया और पारसी मोहल्ले के अपने मकान से रोजाना साइकिल पर ही निगम कार्यालय में आया करते थे।
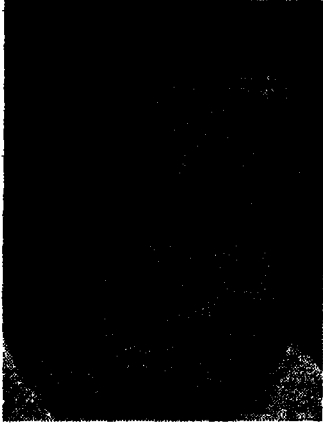
स्वतन्त्रता-संग्राम में भी आपने बढ़-चढ़कर भाग लिया था। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का अभिनन्दन भी आपके उसी कार्य-काल में हुआ था, जब आप इन्दौर नगरपालिका निगम के महापौर थे।

एक कुशल अध्यापक, कर्मठ जन-सेवक और एकनिष्ठ राष्ट्रीय नेता होने के साथ-साथ आप उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपकी प्रतिभा का ज्वलन्त प्रमाण आपकी 'हिन्दी के सामाजिक उपन्यास' नामक समीक्षा-कृति से मिलता है। आपके द्वारा सम्पादित 'तुलसी संकलन' भी अनेक वर्ष तक उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में रहा था। आप अनेक वर्ष तक 'मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति' इन्दौर के उपसभापति भी रहे थे।

फरवरी सन् 1971 में जब आप कालेज में अतिरिक्त कक्षाएँ ले रहे थे तब ही आपको पक्षाघात हुआ और आप रोग-शैय्या पर पड़ गए। धीरे-धीरे आप कुछ स्वस्थ भी हो चले थे कि फिर आपकी तबीयत अचानक बिगड़ गई और अचानक 3 दिसम्बर सन् 1974 को आपका शरीरान्त हो गया।

पंडित तुलसीराम स्वामी

श्री स्वामीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के परीक्षितगढ़ नामक कस्बे में सन् 1867 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही आपके पिता पण्डित हजारीलाल स्वामी के निरीक्षण में हुई थी और नौ वर्ष की आयु में ही आपका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया था। आप जब ग्यारह वर्ष के ही थे कि अचानक शीतला रोग से आक्रान्त हो जाने के कारण आपकी एक आँख की ज्योति जाती रही थी। ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेने के कारण आपके पिता ने आपको संस्कृत के अध्ययन के लिए प्रेरित किया और आपने गंगा-तटवर्ती गढ़मुक्तेश्वर नामक स्थान में जाकर पण्डित लज्जाराम शर्मा से संस्कृत साहित्य का विधिवत् अध्ययन किया। सन् 1883 में आपने महर्षि स्वामी दयानन्द द्वारा विरचित 'सत्यार्थप्रकाश', 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' तथा 'वेदांग प्रकाश' आदि ग्रन्थों को पढ़ा, जिसके कारण आपकी प्रवृत्ति आर्यसमाज की ओर हो गई। सन् 1884 में आपने देहरादून जाकर वहाँ के प्रख्यात पण्डित युगलकिशोर से 'अष्टाध्यायी' इत्यादि व्याकरण ग्रन्थ पढ़े। वहीं पर आपका सम्पर्क महर्षि स्वामी दयानन्द के अनन्य भक्त पण्डित दिनेशराम से हुआ था और उनसे भी आप कुछ दिन तक पढ़े थे। बाद में मेरठ आकर जब आप वहाँ के प्रख्यात आर्यसमाजी कार्यकर्ता श्री घासीराम एडवोकेट के सान्निध्य में आए तो आप आर्यसमाज के विधिवत् सदस्य बन गए।

आर्यसमाज के क्षेत्र में आकर जब आपका अनेक शास्त्रार्थ-महारथियों, वक्ताओं तथा लेखकों से परिचय हुआ तो आप उसमें सर्वात्मना लग गए। जिन दिनों पं० भीमसेन शर्मा 'आर्य सिद्धान्त' नामक पत्र का सम्पादन करते थे, तब आपने भी

उसमें सहकारी सम्पादक का कार्य किया था। 'आर्य सिद्धान्त' उन दिन अकेला ऐसा पत्र था जिसमें महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन किया जाता था। यहाँ यह बात भी विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि 'आर्य सिद्धान्त' के सम्पादक पण्डित भीमसेन शर्मा जब आर्यसमाज का परित्याग कर सनातन धर्म में दीक्षित हो गए तब उन्हें पण्डित तुलसीराम स्वामी ने ही आगरा के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ में पराजित किया था। आपने मेरठ में भी सनातन धर्म के प्रख्यात पण्डित श्री अम्बिकादत्त व्यास से शास्त्रार्थ करके अपनी प्रखर तर्कना-शक्ति का परिचय दिया था।

इस बीच सन् 1898 में आप मेरठ आ गए और वहाँ पर 'स्वामी प्रेस' की स्थापना करके उसकी ओर से 'वेद प्रकाश' नामक मासिक पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन करने लगे। इस पत्र के द्वारा आपने जो लोकप्रियता अर्जित की उसने आपको वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड पण्डितों में प्रतिष्ठित कर दिया। आपने जहाँ आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया था वहाँ कुछ दिन तक आप आर्यसमाज की प्रख्यात संस्था गुरुकुल वृन्दावन में भी अध्यापक रहे थे। आपकी विद्वत्ता का परिचय आपके द्वारा लिखित 'सामवेद भाष्य' से भली-भाँति मिल जाता है। यह भाष्य प्रारम्भ में 'वेद प्रकाश' नामक पत्र में ही धारावाहिक रूप में छपा करता था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'वेद प्रकाश' का प्रथम अंक 24 मई सन् 1898 को प्रकाशित हुआ था। 'सामवेद भाष्य' के अतिरिक्त आपने 'ऋग्वेद' का भाष्य भी करना प्रारम्भ किया था। यह भाष्य केवल सप्तम मण्डल के इकसठवें सूक्त के द्वितीय मंत्र तक ही हो सका था। आगे आप उसे पूर्ण नहीं कर सके थे। बाद में आपके अनुज पण्डित छुट्टन-लाल स्वामी ने इस कार्य को पूरा किया था।

आप जहाँ उच्चकोटि के शास्त्रार्थ महारथी और वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे, वहाँ आपने अपनी लेखनी से उक्त दोनों ग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत करने के साथ-साथ 'मनुस्मृति भाष्य', 'श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य', 'भास्कर प्रकाश', 'दिवाकर प्रकाश', 'षड्दर्शन भाष्य','श्रीमद्भगवद्-गीता भाष्य', 'विदुरनीति का भाषानुवाद','नारदीय शिक्षा', 'श्लोकबद्ध वैदिकनिघण्टु' तथा भर्तृहरि-कृत, 'नीतिशतक का भाषानुवाद' भी लिखे थे। इनमें से 'भास्कर प्रकाश' सनातन धर्म के प्रख्यात विद्वान् श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'दयानन्दतिमिर भास्कर' नामक ग्रन्थ के उत्तर में लिखा गया था और 'दिवाकर प्रकाश' की रचना आपने श्री मिश्रजी के ही कनिष्ठ भ्राता श्री बलदेवप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'धर्म दिवाकर' नामक ग्रन्थ के उत्तर में की थी। आपने 'मूर्ति पूजा प्रकाश' तथा 'पिण्ड पितृ यज्ञ' नामक अपने ग्रन्थों में पिण्ड पितृ यज्ञ की व्याख्या करके उसे मृतक श्राद्ध से अलग सिद्ध किया था। आपकी 'भीम प्रश्नोत्तरी' नामक पुस्तक में पण्डित भीमसेन शर्मा के आक्षेपों का बड़ी ही तर्कपूर्ण शैली में निराकरण किया गया था। उक्त सभी रचनाओं के अतिरिक्त आपकी 'पण्डित तुलसीराम स्वामी के चार व्याख्यान', 'रामलीला', 'वैदिक देव-पूजा', 'ईश्वर और उसकी प्राप्ति', 'मुक्ति और पुनर्जन्म', 'नमस्ते', 'शास्त्रार्थ हैदराबाद', 'सन्ध्योपासन' तथा 'संस्कृत भाषा' (चार भाग) आदि कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 17 जुलाई सन् 1915 को विशूचिका रोग के कारण हुआ था।

डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा

डॉ० वर्मा का जन्म 25 जुलाई सन् 1888 को मुजफ्फरनगर (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। आपके पितामह श्री बलदेव-सहाय मूलतः दिल्ली के निवासी थे और मुजफ्फरनगर की कचहरी में क्लर्क थे, अतः दिल्ली छोड़कर स्थायी रूप से वहाँ पर ही रहने लगे थे। वर्माजी के पिता श्री महावीरप्रसाद एल०एम०पी० भी वहाँ डाक्टरी की प्रैक्टिस किया करते थे। श्री वर्माजी के पिता ने अपने मन में उन्हें भी डाक्टरी की शिक्षा दिलाने का संकल्प कर लिया था और अन्त में वह पूरा भी हुआ। सन् 1905 में मुजफ्फरनगर से त्रिलोकीनाथजी ने प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त 1907 में मेरठ कालेज से इंटर द्वितीय श्रेणी में किया और फिर आगे की पढ़ाईजारी रखने के लिए आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के म्योर सेण्ट्रल कालेज में प्रविष्ट हो गए और सन् 1909 में वहाँ से बी० एस-सी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यहाँ यह स्मरणीय है कि आप

इस परीक्षा में समस्त विश्वविद्यालय में प्रथम आए थे। सन् 1910 में आपको इस उपलक्ष्य में 'रानी विक्टोरिया जुबली मैडल' प्रदान किया गया और 34 रुपए का 'स्वर्णमयी-उमाचरण पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ। उक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त कालेज की ओर से आपको विदेश जाकर अपना अध्ययन आगे जारी रखने की सुविधा भी प्रदान की गई; किन्तु अपनी दादी की अस्वस्थता के कारण आप इस सुविधा से लाभ न उठा सके।

अपनी अध्ययनशीलता और कुशाग्र बुद्धि के कारण आप इलाहाबाद में इतने लोकप्रिय हो गए थे कि महामना मदनमोहन मालवीय के प्रयास से आप लाहौर के 'एडवर्ड मैडिकल कालेज' में प्रविष्ट हो गए और वहाँ से सन् 1913 में 'एम० बी० बी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की। वहाँ पर आपको उत्तर प्रदेश की तत्कालीन सरकार की ओर से 'स्कालरशिप' मिला करती थी। इस परीक्षा में भी आपको आशातीत सफलता मिली थी। आपने उत्तर प्रदेश के छात्रों में प्रथम और सारे विश्वविद्यालय के छात्रों मे द्वितीय स्थान प्राप्त किया था। आपने 'शल्य-शास्त्र' तथा 'आँख, कान और नाक' की परीक्षाओं में अत्यधिक अंक प्राप्त किए थे। फलतः आपको आगे की पढ़ाई पूरी करने के लिए विदेश भेजा गया और आपने 'लीवरपोल' तथा 'डबलिन' विश्वविद्यालयों से सन् 1926 में क्रमशः डी० टी० एम० और एल० एम० की परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण कीं। इसके उपरान्त आप सन् 1927 में भारत लौट आए और सीतापुर तथा लखनऊ के अस्पतालों में आपकी नियुक्ति हो गई। फिर आप जौनपुर तथा बिजनौर के सरकारी अस्पताल में सन् 1937 तक रहे। बिजनौर में ही आपका देहावसान हुआ था।

एक कुशल चिकित्सक होने के साथ-साथ आप अच्छे लेखक भी थे। आपने सन् 1916 में हिन्दी में 'हमारे शरीर की रचना' नामक एक ऐसे ग्रन्थ का निर्माण किया, जिसने आपको सबसे बड़ा सम्मान दिलाया। इस पुस्तक पर सन् 1926 में आपको अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 1200 रुपए का 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया था। यह पुस्तक वर्माजी ने उन दिनों लिखी थी जब एम० बी० बी० एस० परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप लखनऊ विश्वविद्यालय के शरीर-शास्त्र विभाग में 130 रुपए मासिक पर 'डिमॉंस्ट्रेटर' थे। सन् 1923 में आपको 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से इसी पुस्तक पर 200 रुपए का नकद पुरस्कार और पदक भी प्रदान किया गया था। इसके उपरान्त आपने 'स्वास्थ्य और रोग' नामक 1000 पृष्ठ का एक विशाल ग्रन्थ भी लिखा, जो आपने सन् 1933 में अपने ही व्यय से छपवाया था। इस ग्रन्थ में 407 चित्र थे। उस समय इस ग्रन्थ के प्रकाशन पर 7000 रुपए लागत आई थी और उसकी 1500 प्रतियाँ मुद्रित कराई गई थीं। आपने इस ग्रन्थ की लगभग 400 प्रतियाँ देश के विभिन्न शिक्षणालयों और पुस्तकालयों को नि:शुल्क प्रदान की थीं। आप वैसे उर्दू-फारसी के छात्र थे परन्तु अपने गुरुओं महामहोपाध्याय पंडित गंगानाथ झा और पंडित घनानन्द पन्त की प्रेरणा पर हिन्दी-लेखन की ओर उन्मुख हुए थे। आप प्रतिदिन हिन्दी में डायरी भी लिखा करते थे।

आपका निधन 22 फरवरी सन् 1937 को बिजनौर में हुआ था।

डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित

श्री दीक्षितजी का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के मौरावाँ नामक नगर में 7 अक्तूबर सन् 1920 को हुआ था। अपनी जन्मभूमि के स्कूल में ही प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आप लखनऊ चले गए और वहाँ के विश्वविद्यालय से क्रमशः बी० ए० (आनर्स), एम० ए०, एल-एल० बी० और पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त करके वहाँ पर ही हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हो गए।

आपने सन्त साहित्य पर डी०लिट्० की उपाधि भी प्राप्त की थी।

लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त होने से पूर्व आप कुछ दिन तक मुरादाबाद के डिग्री कालेज में भी हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे थे और कुछ समय तक रूस के 'मास्को विश्व-विद्यालय' में भी हिन्दी के प्रोफेसर के रूप में आपने कार्य किया था। आप सन्त साहित्य के मर्मज्ञ अध्येता के रूप में जाने जाते थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'सन्त-दर्शन', 'सुन्दर दर्शन', 'प्रेमचन्द', 'एकांकी कला', 'भाषा भारती', 'हास्य के सिद्धान्त तथा हिन्दी साहित्य', 'अवधी और उसका साहित्य', 'मलूकदास', 'रामानन्द', 'सन्त रज्जब साहब', 'पश्चिमी साहित्य','लोकगीतों की भूमिका', 'कबीर', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'हिन्दी सन्त साहित्य', 'चरण-दास' तथा 'बैसवारी और उसका साहित्य' आदि प्रमुख हैं।

आपने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के सन् 1957 में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए सातवें अधिवेशन में 'बैसवारी भाषा और उसका साहित्य' विषय पर निबन्ध-पाठ भी किया था।

आपका निधन सन् 1976 में हुआ था।

श्री थानसिंह शर्मा 'सुभाषी'

श्री 'सुभाषी' जी का जन्म आगरा जनपद के 'मुक्खा के गढ़' नामक ग्राम में 15 जून सन् 1915 को हुआ था। 'सुभाषी' जी के बड़े भाई श्री बुलीचन्द्र नूरी दरवाजा, आगरा में बूरा की दूकान करते थे, अतः सुभाषीजी अपने बाल्य-काल से ही उनके पास आगरा आ गए थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा वहाँ पर ही उनकी देख-रेख में हुई और आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'साहित्य रत्न' परीक्षा नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा के 'साहित्य विद्यालय' से दी और उसमें योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण हुए। जिन दिनों आप 'साहित्य रत्न' में पढ़ते थे तब अपने नाम के साथ 'सुभाषी' उपनाम की बजाय 'विद्यार्थी' लिखा करते थे।

ब्रजभाषा में काव्य-रचना करने में सुभाषीजी को अद्भुत दक्षता प्राप्त थी। वैसे आप खड़ी बोली में भी रचनाएँ करते थे, परन्तु ब्रजभाषा की रचना करने में आप अत्यन्त प्रवीण थे। कवि के रूप में आपकी ख्याति केवल आगरा तक न रहकर दूर-दूर तक हो गई थी और आकाशवाणी के दिल्ली-मथुरा केन्द्रों पर आपकी रचनाएँ ससम्मान प्रसारित होती थीं। हास्य का उद्रेक करके मानव-मन में गुदगुदी पैदा करने में आप अत्यन्त दक्ष थे।

आजीविका के लिए पहले तो आप अपनी पुश्तैनी दुकान पर ही बैठा करते थे, किन्तु बाद में आपने पत्रकारिता को अपना लिया था। आपने सन् 1955 से सन् 1968 तक ग्वालियर से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक नवप्रभात' के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। फिर कुछ दिन तक आप 'अमर उजाला' में भी रहे थे, लेकिन अस्वस्थ हो जाने के कारण आप वहाँ अधिक दिन नहीं टिके। बाद में पत्रकारिता से विमुख होकर आप लेखन में ही प्रवृत्त हो गए और आपने 'मेघनाद वध' नामक काव्य लिखने के अतिरिक्त 'गान्धी दशक', 'विनोबा दशक', 'अजीजन दशक' और 'ऋतु वर्णन' आदि अनेक कृतियों की रचना की थी। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि आपकी ये कृतियाँ अभी तक अप्रकाशित हैं।

आपका निधन 8 अगस्त सन् 1975 को हुआ था।

श्री दत्तो वामन पोतदार

श्री पोतदार का जन्म 5 अगस्त सन् 1890 को महाराष्ट्र प्रदेश के कोलाबा जनपद के बिरवाड़ी नामक ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा बम्बई विश्वविद्यालय में हुई थी। मराठीभाषी होते हुए भी आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में अपने जीवन को लगा दिया था। आपके कुशल निर्देशन में 'महाराष्ट्र राष्ट्र-भाषा सभा पूना' द्वारा उस प्रदेश में हिन्दी-प्रचार का जो कार्य हुआ है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आप इस संस्था के संस्थापकों में अन्यतम थे।

श्री पोतदार ने देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में राष्ट्र-भाषा के महत्त्व को समझकर ही उसके प्रचार और प्रसार का संकल्प लिया था जिसकी सम्पूर्ति के लिए आप जीवन-भर संघर्ष-रत रहे। आप हिन्दी और हिन्दुस्तानी को एक मानकर रात-दिन सार्वदेशिक हिन्दी और प्रादेशिक हिन्दी के स्वरूप को स्पष्ट करके सार्वदेशिक हिन्दी की महत्ता की प्रतिष्ठापना में संलग्न रहते थे।

महाराष्ट्र के सांस्कृतिक - साहित्यिक तथा शैक्षणिक आदि विविध क्षेत्रों में आपका योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

स्वभाषा, स्वदेश और स्वसंस्कृति के आप वास्तव में ऐसे पुरस्कर्त्ता थे कि जिनके निर्देशन की हमारे समाज को पग-पग पर आवश्यकता है। आपने जहाँ मराठी भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे वहाँ हिन्दी के महत्त्व को आप बराबर अपने प्रदेश की जनता में समझाते रहे। आपने जहाँ नागरी प्रचारिणी सभा को अपना अनन्य सहयोग दिया वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यों को गति देने में भी आप बराबर रुचि लेते रहे। आपकी साहित्य, शिक्षा और संस्कृति-सम्बन्धी सेवाओं को दृष्टि में रखकर ही महाराष्ट्र शासन ने आपको पूना विश्वविद्यालय का कुलपति बनाया था।

आपको अपनी उक्त सभी विशेषताओं के कारण महाराष्ट्र शासन ने जहाँ 'महामहोपाध्याय' तथा 'विद्यावाचस्पति' की सम्मानोपाधियों से विभूषित किया था वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी आपकी हिन्दी-सेवाओं के लिए आपको 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान करके अपने को गौरवान्वित किया था।

आपका निधन 6 अक्तूबर सन् 1979 को पूना में हुआ था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् 1824 में गुजरात के मौरवी नगर के एक वेदपाठी परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री करसनजी कट्टर शैव थे। शिवरात्रि के व्रत के प्रसंग में किये गए जागरण की छोटी-सी घटना ने बालक मूलशंकर (स्वामीजी पूर्व नाम) की आस्था को झकझोरकर आपमें नई विचार-धारा प्रवाहित कर दी थी। समाज को अज्ञान के अन्धकार से निकालकर उसे सही मार्ग का प्रदर्शन करने की दृष्टि से अपने गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती की प्रेरणा पर आपने जहाँ 7 अप्रैल सन् 1875 को बम्बई में 'आर्यसमाज' की स्थापना की वहाँ 'हिन्दी' को 'आर्य भाषा' की गरिमामयी संज्ञा से अभिहित किया। गुजराती-भाषी होते हुए भी आपने हिन्दी के माध्यम से ही अपनी विचार-धारा का प्रचार करने का जो संकल्प लिया था उसकी मूल प्रेरणा आपको बंगाल के प्रख्यात सुधारक श्री केशवचन्द्र सेन से मिली थी। उससे पूर्व स्वामीजी अपना लेखन प्रायः संस्कृत में ही किया करते थे और अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को भी आपने संस्कृत में ही लिखना प्रारम्भ किया था। आपने 12 जून सन् 1874 को 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना प्रारम्भ की थी और उसका प्रकाशन सन् 1875 में हुआ था।

स्वामीजी द्वारा संस्थापित आर्यसमाज ने जहाँ समस्त देश में भारतीयता तथा राष्ट्रीयता का प्रबल प्रचार किया वहाँ हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में उसकी देन स्वर्णाक्षरों में

उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य के विगत इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालकर देखें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि हिन्दी की वर्तमान प्रगति में स्वामीजी तथा आपके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज का बहुत बड़ा योगदान है। जिन दिनों स्वामीजी ने आर्यसमाज की स्थापना की थी उन दिनों देश में प्रायः सर्वत्र उर्दू का ही बोल-बाला था। क्योंकि आपने यह अनुभव किया था कि हिन्दी ही सारे देश में समान रूप से बोली और समझी जाती है, इसलिए आपने हिन्दी को ही सर्वथा अपनाकर अपने ग्रन्थ भी उसी भाषा में लिखने प्रारम्भ कर दिए थे। आपने पुरानी सधुक्कड़ी हिन्दी को न अपनाकर उसे सर्वथा नई विचार-भूमि प्रदान की थी। आप भाषा को साहित्यिक दृष्टि से अलंकृत नहीं करते थे, बल्कि एक समाज-सुधारक का दृष्टिकोण ही आपकी भाषा में परिलक्षित होता है।

एक बार जब पंजाब में आप से किसी सज्जन ने आपके समस्त ग्रन्थो का उर्दू में अनुवाद करने की अनुज्ञा माँगी तब स्वामीजी ने उन्हें बड़े प्रेम से जो उत्तर दिया था वह आज भी हिन्दी की स्थिति को अत्यन्त दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करता है। आपने कहा था—"भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा को समझने और बोलने लगेंगे। जिन्हें सचमुच मेरे भावों तथा विचारों को जानने की इच्छा है वे इस आर्यभाषा का सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।" वास्तव में स्वामीजी की यह भावना अक्षरशः चरितार्थ हुई और देश के कोने-कोने में आपके क्रान्तिकारी विचारों को जानने तथा समझने के लिए ही 'हिन्दी' का प्रचार तेजी से हुआ। अपने विख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भाषा के सम्बन्ध में उसके द्वितीय संस्करण की भूमिका में आपने लिखा था—"जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' बनाया था, उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान नहीं था; इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को भाषा-व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।" हिन्दी के व्यवहार, प्रचार तथा प्रसार के प्रति आप कितने जागरूक रहते थे इसका ज्वलन्त प्रमाण आपका वह पत्र है, जो आपने 7 अक्तूबर सन् 1878 को दिल्ली से श्यामजी कृष्ण वर्मा को लिखा था—"अब की बार वेद-भाष्य के लिफाफे पर देवनागरी नहीं लिखी गई, इसलिए तुम बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि से कहो कि अभी इसी पत्र के देखते ही देवनागरी जानने वाला एक मुन्शी रख लें जिससे कि काम ठीक-ठीक से हो; नहीं तो वेद-भाष्य के लिफाफों पर रजिस्टर के अनुसार ग्राहकों का पता किसी देवनागरी जानने वाले से लिखवा लिया करें।"

स्वामीजी के उक्त शब्द एक शताब्दी पूर्व के हैं। यह सही है कि देश की जनता ने सच्चे हृदय से स्वामीजी की इस भावना का आदर किया, किन्तु राजनीति से आक्रान्त वातावरण में अब भी जहाँ-तहाँ हिन्दी-विरोध के स्वर उभरते दिखाई दे जाते हैं। स्वामीजी के हिन्दी-प्रेम का परिचय आपके उस पत्र से भी मिलता है जो आपने एक बार मादाम ब्लावन्स्की को लिखा था। उस पत्र में आपने स्पष्ट रूप से यह संकेत दिया था—"जिस पत्र का हमसे उत्तर चाहें उसको नागरी कराकर हमारे पास भेजा करें।" इसी प्रकार एक बार 13 जुलाई सन् 1879 को आपने अपने एक विदेशी मित्र श्री अल्कोट को अपनी भावनाएँ इस प्रकार लिखी थीं—"मुझे सुनकर खुशी हुई कि आपने नागरी पढ़ना आरम्भ कर दिया है।" यहाँ यह स्मरणीय है कि आप अपने सम्पर्क में आने वाले प्रायः सभी व्यक्तियों को हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा देते रहते थे। यह स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के अनेक कर्मठ कार्यकर्ताओं का ही प्रताप था कि सारे देश में हिन्दी का प्रचार तथा प्रसार तेजी के साथ हो गया। स्वामीजी के समकालीन तथा उत्तरकालीन प्रायः सभी नेताओं, सुधारकों और साहित्यकारों ने आपकी विचार-धारा से प्रभावित होकर हिन्दी-प्रचार को

अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बनाया। स्वामीजी की विचार-धारा से जहाँ महात्मा गान्धी ने प्रबल प्रेरणा ग्रहण की वहाँ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी आपके सुधारवादी आन्दोलन में खुलकर साथ दिया। भारतेन्दु बाबू तो स्वामीजी से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने स्वामीजी का नाम अपनी 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' पत्रिका के सम्पादक-मण्डल में भी समाविष्ट किया हुआ था।

वास्तव में यदि हिन्दी-साहित्य के सारे ही आधुनिक काल के क्रिया-कलाप पर दृष्टि डालें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक काल की सारी राष्ट्रीयता तथा सामाजिक क्रान्ति के मेरुदण्ड आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा आपके द्वारा चलाए गए अनेक आन्दोलन हैं। आधुनिक काल के जितने भी प्रमुख साहित्यकार हुए हैं वे सब आर्यसमाज से प्रभावित विचार-धारा के ही पोषक थे। स्वामीजी ने जहाँ हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया वहाँ लेखनी को भी पूर्ण रूप से उसी ओर लगाया। 'सत्यार्थप्रकाश' के अतिरिक्त आपने जो भी ग्रन्थ लिखे, उनकी भाषा हिन्दी ही है। आपकी प्रमुख रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'अनुभ्रमोच्छेदन', 'अष्टाध्यायी भाष्य', 'आत्मचरित', 'आर्याभिविनय', 'आर्योद्देश्य रत्नमाला', 'कुरान-हिन्दी', 'गोकरुणा-निधि', 'गौतम अहल्या की कथा', 'जालन्धर की बहस', 'पंचमहायज्ञ-विधि' (सन्ध्या भाष्य), 'भाष्यार्थ', 'पोप लीला', 'प्रतिमा-पूजन विचार', 'प्रश्नोत्तर हलधर', 'प्रश्नोत्तर उदयपुर', 'भ्रमोच्छेदन', 'मेला चाँदपुर', 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका', 'ऋग्वेद-भाष्य', 'यजुर्वेद-भाष्य', 'वेदविरुद्ध मत खण्डन', 'वेदान्तिध्वान्त निवारण', 'व्यवहारभानु', 'शिक्षापत्री ध्वान्त-निवारण', 'संस्कारविधि', 'संस्कृत वाक्य प्रबोध', 'सत्यासत्य विवेक', 'वर्णोच्चारण', 'सन्धि-विषय', 'नामिक', 'आख्यातिक', 'पारिभाषिक', 'सौवर', 'अनादि कोष', 'निघण्टु', 'पाणिनि के ग्रन्थ अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, शिक्षा और प्रतिमादक', 'आलंकारिक कथा' आदि।

अपनी विचार-धारा के प्रचार एवं प्रसार के लिए स्वामीजी ने देश के प्रायः सभी अंचलों की यात्रा की थी। इस प्रसंग में आप राजस्थान के रजवाड़ों में भी एकाधिक बार गए थे। अपनी स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता के कारण आपने अपने कुछ विरोधी भी बना लिए थे। अपने सार्वजनिक जीवन की 20 वर्ष की स्वल्प-सी अवधि में स्वामीजी ने जो क्रान्तिकारी कार्य कर दिखाया वैसा आपसे पूर्व के किसी सुधारक ने नहीं किया था। सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक जागरण का कोई ऐसा पहलू नहीं बचा था, जिसके उत्कर्ष के लिए आपने कार्य न किया हो। यहाँ तक कि आपके द्वारा संस्थापित 'परोपकारिणी सभा' भी आपके ग्रन्थों का प्रकाशन करने के साथ-साथ अपनी अन्य प्रवृत्तियों के माध्यम से हिन्दी-प्रचार का जो कार्य कर रही है, वह भी उल्लेखनीय है।

यह इस देश का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि स्वामीजी के जीवन का अवसान 29 सितम्बर सन् 1883 को दूध में काँच घोलकर पिलाने की मर्मान्तिक घटना से हुआ था। आप जोधपुर गए हुए थे कि वहीं पर आपके पाचक जगन्नाथ ने किसी दुरभिसन्धि के कारण यह दुष्कर्म किया था। इस दुर्घटना का इतना घातक प्रभाव हुआ कि बहुत उपचार करने पर भी स्वामीजी के जीवन को न बचाया जा सका और अन्त में आपने 30 अक्तूबर सन् 1883 को दीपावली के दिन अजमेर में 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो' कहते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

श्री दयाल भाई इन्दरजी

श्री दयाल भाई इन्दरजी का जन्म सन् 1882 को गुजरात प्रदेश के कच्छ नामक नगर में हुआ था और बाद में व्यवसाय के प्रसंग में आप जबलपुर (म० प्र०) में आकर स्थायी रूप से रहने लगे थे। मध्यप्रदेश में आ जाने के बाद आप में हिन्दी-प्रेम की जो भावनाएँ हिलोरें लेने लगी थीं उनका सुपरिणाम

यह हुआ कि आप जबलपुर नगर की अनेक साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय योगदान देने लगे थे।

आप जहाँ मध्यप्रदेश-सम्मेलन-पुस्तकालय के संरक्षक और प्रोत्साहक थे वहाँ हिन्दी की अनेक लघु पुस्तकों का आपने गुजराती में अनुवाद किया था। इसी प्रकार गुजराती की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं को आप हिन्दी में अनूदित करने की प्रेरणा भी देते रहते थे। आपके सुपुत्र श्री दुलीचन्द भाई दयाल भाई भी अपने पिता के चरण-चिह्नों पर चलकर जबलपुर नगर की हिन्दी-सम्बन्धी गतिविधियों में बढ़-चढ़कर भाग लेते रहते है।

आपका देहावसान 5 दिसम्बर सन् 1932 को हुआ था।

श्री दर्शनलाल गोयल

श्री गोयल का जन्म 13 जुलाई सन् 1919 को देहरादून में हुआ था। आप हिन्दी प्रभाकर, साहित्यरत्न और एम०ए० की परीक्षा देकर भारतीय सेना में प्रविष्ट हुए थे और वहाँ पर युद्ध-बन्दी बना लिए गए थे। वहाँ से मुक्त होने पर आप 'दृष्टि-बन्धितार्थ राष्ट्रीय संस्थान देहरादून' मे मुख्य लिपिक और लेखपाल बने थे।

आपने अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति पर एक खण्ड-काव्य भी लिखा था। नाटक-लेखन में भी आपकी गहन रुचि थी। आप कुछ दिन तक देहरादून से प्रकाशित होने वाले 'युगवाणी' नामक पत्र में सहकारी सम्पादक भी रहे थे।

देहावसान से पूर्व आप होमगार्ड्स और बटालियन में क्वार्टर मास्टर भी रहे थे।

आपका निधन 24 सितम्बर सन् 1976 को हुआ था।

डॉ० दामोदरप्रसाद

डॉ० दामोदरप्रसाद का जन्म केरल प्रदेश में 15 फरवरी सन् 1917 को हुआ था। आपने प्रारम्भ से ही हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करके एम०ए० पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। आप केरल के पुराने हिन्दी प्रचारक पं० नारायण देव 'देव केरलीय' के शिष्य थे।

आप हिन्दी के सुलेखक भी थे। आपकी 'प्रसाद की कथाएँ' (1962) तथा 'स्वतन्त्रता के सिपाही' नामक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। आप मलयालम भाषा के भी सुलेखक थे।

आपका निधन 9 अक्तूबर सन् 1978 को हुआ था।

श्री दीनदयाल गिरि

श्री दीनदयाल गिरि का जन्म सन् 1802 की वसन्त पंचमी के दिन वाराणसी मे हुआ था। आपका निवास काशी के पश्चिमी द्वार पर विनायक देव के पास था, इसका प्रमाण आपके द्वारा लिखित यह दोहा है:

सुखद देहली पै जहाँ, बसत विनायक देव।
पश्चिम द्वार उदार है, कासी को सुर सेव॥

आप दसनामी सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्त कवि थे। आप स्वभाव से अत्यन्त सरल, विनोदप्रिय, उदार और सहृदय थे और बात-बात में लोकोक्तियों का प्रयोग किया करते थे। तत्कालीन काशी-नरेश गुप्त रूप से आपकी सहायता किया करते थे। क्योंकि आपके यहाँ प्रायः कवियों और साहित्य-प्रेमियों का जमाव रहता था और आपकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, आपके स्वाभिमान को ठेस न पहुँचे, इसलिए काशी-नरेश ने यह पद्धति अपनाई थी। अमेठी के तत्कालीन नरेश भी आपको अपने दरबार में ले जाना चाहते थे, किन्तु आप काशी छोड़कर नहीं गए।

आपकी माता का देहान्त सन् 1866 में हुआ था और उनके 6 मास बाद ही आपके पिता भी इस असार संसार को छोड़कर चल बसे थे। सन् 1877 में आपको कविता करने का शौक लगा और 'दृष्टान्त तरंगिणी' नामक ग्रन्थ की इसी वर्ष रचना की। इसी वर्ष आपने संन्यास ग्रहण किया और आपको 'गिरि' की उपाधि भी मिली। सन् 1890 में आपके गुरु का देहावसान हुआ। आपकी रचनाओं में 'दृष्टान्त तरंगिणी' के अतिरिक्त 'अनुराग बाग' (1888), 'वैराग्य दिनेश' (1906) और 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' (1912) उल्लेखनीय है। आपके 'अन्योक्ति माला' नामक एक और ग्रन्थ का भी परिचय मिला है। कुछ लोग 'बाग बहार' नामक ग्रन्थ को भी आपके द्वारा रचित बताते हैं परन्तु डॉ० श्यामसुन्दरदास के अनुसार यह ग्रन्थ कोई अलग नहीं है। उनकी दृष्टि में 'अनुराग बाग' का ही यह दूसरा नाम है। सन् 1919 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा से 'दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली' नाम से एक ग्रन्थ डॉ० श्यामसुन्दरदास के सम्पादन में भी प्रकाशित हुआ है।

श्री गिरि के इन ग्रन्थों में 'अनुराग बाग' में कृष्ण-लीला का वर्णन है तथा 'वैराग्य दिनेश' का विषय वैराग्य है और इसमें रीति-काल का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है। शेष ग्रन्थों का विषय नीति-प्रधान है। आपके सभी ग्रन्थों की भाषा संस्कृत-मिश्रित प्रौढ़ता लिये हुए है और आपने अपने इन ग्रन्थों में कुण्डलिया, दोहे, कवित्त और सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया है। आपका नीति-काव्य प्रायः संस्कृत-साहित्य से प्रभावित है, किन्तु साथ ही मौलिकता भी लिये हुए है।

आपका निधन सन् 1915 में हुआ था।

श्री दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

श्री सारस्वतजी का जन्म अविभाजित भारत के पंजाब प्रदेश के मुलतान जनपद के शुजाबाद नामक स्थान में 21 जून सन् 1903 को हुआ था। आपने सन् 1919 में पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री-परीक्षा उत्तीर्ण करके पहले ज्योतिष और बाद में लाहौर के 'ओरियण्टल कालेज' में प्रविष्ट होकर अँग्रेजी का अध्ययन किया। सन् 1921 से सन् 1924 तक आप अलीपुर-मुजफ्फरगढ़ के एक संस्कृत विद्यालय में अध्यापक रहे और बाद में सन् 1924 से सन् 1947 तक मुलतान के 'सनातन धर्म संस्कृत कालेज' के प्रधानाचार्य रहे।
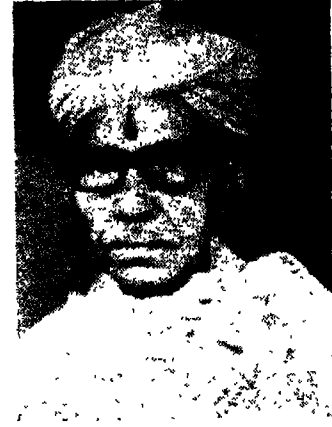
भारत-विभाजन के उपरान्त आप दिल्ली आ गए और सन् 1948 से यहाँ के 'रामदल संस्कृत महाविद्यालय, दरीबाकलाँ' में प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करने लगे। अपने अध्यापन-काल में आपने जहाँ अनेक छात्रों को संस्कृत का पारंगत विद्वान् बनाया वहाँ सनातन धर्म की अभिवृद्धि के लिए भी अनेक उपयोगी योजनाएँ प्रस्तुत कीं।

आप सन् 1924 से ही संस्कृत तथा हिन्दी में लेख आदि लिखने लगे थे। आपकी संस्कृत रचनाएँ जहाँ उस समय के 'सुप्रभातम्', 'सूर्योदय', 'उद्योतः', 'अमर भारती', 'कालिन्दी', 'मधुरवाणी', 'भारती' और 'संस्कृत रत्नाकर' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं वहाँ 'कल्याण', 'ब्राह्मण सर्वस्व', 'लोकालोक', 'सिद्धान्त', 'सनातन ज्योति', 'हिन्दू', 'भक्त भारत' और 'सनातन धर्म पताका' आदि पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी रचनाएँ भी प्रकाशित होती रहती थीं।

आपने अपनी 'सनातन धर्मालोक' नामक ग्रन्थमाला द्वारा जहाँ हिन्दी के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किए वहाँ संस्कृत

विद्यापीठ की ओर से आपके संस्कृत-निबन्धों का भी प्रकाशन हुआ। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् ने आपको जहाँ एक 'उत्कृष्ट संस्कृत शिक्षक' के रूप में सम्मानित किया वहाँ दिल्ली-प्रशासन की 'साहित्य कला परिषद्' द्वारा भी आप पुरस्कृत किए गए थे। सनातन धर्म और संस्कृत साहित्य के प्रति की गई आपकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए आपको विभिन्न संस्थाओं की ओर से 'विद्यावाचस्पति', 'विद्यावागीश', 'विद्यानिधि' और 'विद्या भूषण' आदि सम्मानोपाधियाँ भी प्रदान की गई थीं। आपने 'सनातन ज्योति' तथा 'सिद्धान्त' नामक दो पत्रों का सम्पादन भी किया था।

आपका निधन 12 सितम्बर सन् 1980 को श्वास के अवरोध के कारण हुआ था।

श्री दीपनारायण गुप्त

श्री गुप्तजी का जन्म सन् 1974 में चक्रधरपुर (बिहार) में हुआ था। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के निकट सम्पर्क में रहने के कारण आपने स्वतन्त्रता-संग्राम में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था। आप हिन्दी के अतिरिक्त बँगला, उड़िया, गुजराती, मराठी और अँग्रेजी भाषाओं के भी ज्ञाता थे।

सिंहभूमि जनपद में हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आपने अनेक हिन्दी विद्यालयों और पुस्तकालयों की स्थापना में अपना अनन्य सहयोग प्रदान किया था। आप हिन्दी के अच्छे लेखक होने के साथ-साथ उच्चकोटि के वक्ता भी थे। आप बलिया-निवासी श्री रामबीजसिंह 'वल्लभ' के शिष्य थे। उन्हींकी प्रेरणा पर आपने राजनीति में रहते हुए भी हिन्दी-सेवा को अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बनाया था।

निधन के समय आप चक्रधरपुर की नगरपालिका के अध्यक्ष थे। खेद की बात है कि पान में विष दिए जाने के कारण आपका असामयिक निधन सन् 1959 में 45 वर्ष की आयु में हुआ था।

डॉ० दुर्गादत्त मेनन

डॉ० मेनन का जन्म पंजाब प्रदेश के अमृतसर जनपद के मनोवाल नामक ग्राम में सन् 1906 में हुआ था। आप गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) के स्नातक थे। वहाँ से संस्कृत की उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर आपने ओरियण्टल कालेज, लाहौर से शास्त्री तथा एम० ए० एम० ओ० एल० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं और जालन्धर के डी० ए० वी० कालेज में प्राध्यापक नियुक्त हो गए। आपने जीवन-भर इस संस्था में संस्कृत एवं हिन्दी का अध्यापन किया था।

आप पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1957 से 1967 तक अध्यक्ष भी रहे थे। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' (1966) तथा 'पश्चिमीय शासन तन्त्र' (1965) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपका 'युग मानव' नामक जीवनी-संकलन सन् 1964 में प्रकाशित हुआ था। आपकी पी-एच०डी० की शोध-कृति अँग्रेजी में 'जयशंकरप्रसाद : हिज माइण्ड एण्ड आर्ट' सन् 1965 में

प्रकाशित हुई थी। इसका हिन्दी अनुवाद आप कर ही रहे थे कि असमय में सन् 1969 में देहावसान हो गया।

आपकी पहली दो कृतियाँ पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्यसम्मेलन, जालन्धर की ओर से प्रकाशित हुई थीं। आपके सुपुत्र श्री जगदीश मैनन पंजाब में ही शिक्षक का कार्य करते हैं।

श्री दुर्गाप्रसाद मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म साँबानगर (जम्मू-कश्मीर) में 31 अक्तूबर सन् 1860 में हुआ था। आपके पिता पं० घसीटाराम मिश्र व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता में जाकर स्थायी रूप से रहने लगे थे और वहीं पर आपका सारा जीवन व्यतीत हुआ था। आपने हिन्दी, डोगरी और बँगला भाषा का ज्ञान घर पर ही प्राप्त करके संस्कृत का अध्ययन काशी में किया था। अँग्रेजी आपने कलकत्ता के नार्मल स्कूल में सीखी थी। पहले-पहल आप दलाली का कार्य करते थे, परन्तु बाद में पूर्णतः पत्रकारिता को ही अपना लिया था। काशी की 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका के संवाददाता के रूप में आपने यह कार्य प्रारम्भ किया था और फिर 17 मई सन् 1878 से पूर्णतः पत्रकार बन गए। आपने अपने भाई श्री छोटूलाल मिश्र के साथ मिलकर 'भारत मित्र' नामक एक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इस पत्र में सम्पादक के रूप में श्री छोटूलाल मिश्र का नाम छपता था और दुर्गाप्रसाद मिश्र इसके प्रबन्धक थे। धीरे-धीरे अपने दसवें अंक से यह पत्र 'साप्ताहिक' हो गया और साल-भर में ही इसने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। इसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि इसमें अखिल भारतीय समाचार छपा करते थे। इसके 22 जून सन् 1879 के अंक में श्री राधाचरण गोस्वामी का इस आशय का एक पत्र भी छपा था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती से वेद विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अमरीका के कई पादरी बम्बई आए हुए हैं। 'भारत मित्र' प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ समय तक आप पटना से प्रकाशित होने वाले 'बिहार बन्धु' के भी सहायक सम्पादक रहे थे।

जब आर्थिक कठिनाइयों के कारण 'भारत मित्र' के प्रकाशन का भार आप लोगों ने 'भारत मित्र सभा' को सौंप दिया तब आपने पंडित सदानन्द मिश्र के सहयोग से 'सार सुधानिधि' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके उपरान्त आपने 'उचित वक्ता' और 'मारवाड़ी बन्धु' पत्रों में भी सम्पादक के रूप में कार्य किया था। कुछ दिन आपने तत्कालीन कश्मीर-नरेश महाराज रणवीरसिंह के अनुरोध पर जम्मू जाकर वहाँ से 'जम्बू प्रकाश' नामक पत्र भी प्रारम्भ किया था। परन्तु जब आपकी अस्वस्थता के कारण वह पत्र चल न सका तब आप फिर कलकत्ता लौट गए और 'उचित वक्ता' के संचालन-सम्पादन में ही अपना सहयोग देने लगे। महाराजा रणवीरसिंह के देहावसान के उपरान्त उनके उत्तराधिकारी नरेश ने आपको फिर कश्मीर बुलाकर अपने राज्य के शिक्षा विभाग में उच्च अधिकारी बनाया था। किन्तु आपको जब यह कार्य भी रास न आया तो आप फिर कलकत्ता चले गए। उन्हीं दिनों बिहार राज्य के शिक्षाधिकारी श्री भूदेव मुखोपाध्याय के अनुरोध पर आपने बिहार के स्कूलों के लिए हिन्दी की कुछ पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी थीं। आप 'अमृत बाजार पत्रिका' के तत्कालीन सम्पादक-प्रवर्त्तक श्री शिशिरकुमार घोष को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे।

एक उच्चकोटि के पत्रकार होने के अतिरिक्त आप सफल लेखक भी थे। आपके द्वारा लिखित पुस्तकों में 'सरस्वती', 'चारु पाठ' (तीन भाग), 'कश्मीर कीर्ति', 'लक्ष्मीबाई का जीवन', 'विद्या मुकुल', 'लक्ष्मी', 'शिक्षा-दर्शन', 'हिन्दी-बोध' (तीन भाग), 'आदर्श चरित्र', 'संक्षिप्त महाभारत', 'नीति-कुसुम', 'शिवाजी का जीवन-चरित', 'प्रभास

मिलन', 'भारत धर्म' और 'सर्प दंशन-चिकित्सा' आदि विशेष उल्लेख्य-योग्य हैं। आप उच्चकोटि के लेखक होने के साथ-साथ अच्छे वक्ता भी थे। आप अपने भाषणों में ठेठ हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया करते थे। स्वभाव से हँसमुख होने के कारण आप कभी-कभी अपने समसामयिक लेखकों पर भी व्यंग्य करने में नहीं चूकते थे। अँग्रेजी शब्दों के हिन्दी रूप बनाने में आपको अद्भुत कौशल प्राप्त था। 'प्रास्पैक्ट्स' शब्द का रूप आपने 'प्रतिष्ठा पत्र' रखा था। विदेशी रीति-नीति के आप सर्वथा विरुद्ध रहा करते थे। देश की तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति की आपके दरबार में खुलकर चर्चा हुआ करती थी और कलकत्ता के प्रायः सभी प्रमुख साहित्यकार वहाँ आकर जमा होते थे। वास्तव में अतीतकाल में कलकत्ता में हिन्दी-पत्रकारिता का जो विकास हुआ था, उसकी नींव में श्री मिश्रजी का बहुत बड़ा योगदान था। आपके द्वारा सम्पादित पत्रों में लिखने वाले महारथियों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1910 में हुआ था।

श्री दुर्गाशंकरप्रसादसिंह 'नाथ'

श्री 'नाथ' जी का जन्म सन् 1896 को बिहार के शाहाबाद जनपद के 'दलीपपुर' नामक ग्राम में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी और सन् 1911 में आप 'पटना कालिजिएट स्कूल' में प्रविष्ट हुए थे। सन् 1921 में आपने हाई स्कूल की परीक्षा दी ही थी कि असहयोग आन्दोलन छिड़ गया और आपकी आगे की पढ़ाई रुक गई। आपने अपने स्वाध्याय के बल पर ही शैक्षिक योग्यता बढ़ाई थी।

सन् 1942 के आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आप अगस्त 1943 से सन् 1945 तक फरार रहे थे। 9 अगस्त, 1942 को आप गिरफ्तार कर लिए गए और फिर जेल से वापस लौटने के बाद सारा समय फरारी में ही व्यतीत हुआ था। आपकी गिरफ्तारी के लिए ब्रिटिश नौकरशाही ने 5 हजार रुपए का इनाम भी घोषित किया था। सन् 1945 में जब आपकी गिरफ्तारी का वारण्ट हटा लिया गया तब ही आप घर वापस लौटे थे। इसके उपरान्त आपने पटना में रहकर 'नव साहित्य मन्दिर' नामक प्रकाशन-संस्थान खोलकर प्रकाशन - कार्य प्रारम्भ किया। कुछ दिन तक आप 'आर्यावर्त' में सहायक सम्पादक भी रहे थे। सन् 1947 में आपकी नियुक्ति 'जिला सम्पर्क अधिकारी' के रूप में हो गई थी और इस पद पर आप 9 वर्ष तक रहे थे।

आपकी साहित्य-सेवा सन् 1922 में प्रारम्भ हुई थी। आपने 'शाहाबाद जिला साहित्य सम्मेलन' तथा 'शाहाबाद जिला भोजपुरी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना भी की थी। काल-क्रम की दृष्टि से आपकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—'ज्वालामुखी' (1929), 'गद्य-संग्रह' (1933), 'हृदय की ओर' (1937), 'भूख की ज्वाला' (1941), 'भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस' (1944), 'नारी जीवन' (1945), 'फरार की डायरी' (1946), 'वह शिल्पी था' (1946), 'कुँवरसिंह : एक अध्ययन' (1955), 'सामूहिक खेती' (1956), 'भोजपुरी के कवि और काव्य' (1958) तथा 'एटम के युग में' (1960)। इनके अतिरिक्त भोजपुरी भाषा में भी आपने कई विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की थी। आपकी ऐसी रचनाओं में 'गुनावन', 'न्याय के न्याय', 'बाबू कुँवरसिंह' तथा 'साहित्य रामायन' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त आपने 'भोज, भोजपुर, द भोजपुरी प्रदेश' तथा 'भोजपुरी : एक समीक्षा' ऐतिहासिक समीक्षा के ग्रन्थ भी लिखे थे। आपके द्वारा लिखित 'कैकेयी का त्याग' तथा 'अनीत भारत' नामक नाटक भी उल्लेखनीय हैं। आपकी 'जीवन के भूलते-भागते चित्र' नामक पुस्तक के अतिरिक्त

'फरार की डायरी' नामक पुस्तक में आपकी संस्मरण-लेखन-कला अपनी उदात्तता के साथ मुखरित हुई है। आपकी *प्रतिभा इतनी बहुमुखी थी कि इतनी रचनाओं के प्रकाशन* के उपरान्त भी अभी लगभग 18 पुस्तकें अप्रकाशित ही हैं।

आपका दुखद निधन सन् 1971 में किन्हीं अज्ञात व्यक्तियों के द्वारा किये गए घातक आक्रमण के कारण हुआ था।

श्री दुलारेलाल भार्गव

श्री भार्गवजी का जन्म सन् 1895 में लखनऊ के सुप्रसिद्ध और सुप्रतिष्ठित महानुभाव मुन्शी नवलकिशोर भार्गव के परिवार में हुआ था। आपके पूर्वज सासनी (अलीगढ़) के निवासी थे और काफी पहले वहाँ जाकर बस गए थे। आपके पिता श्री प्यारेलाल भार्गव पर उर्दू-फारसी का प्रभाव ही अधिक था। क्योंकि आपके पड़बाबा मुन्शी नवलकिशोर भार्गव ने 'नवलकिशोर प्रेस' की स्थापना करके वहाँ से उर्दू तथा अँग्रेजी में 'अवध अखबार' और 'अवध रिव्यू' नामक दो पत्रों का प्रकाशन किया हुआ था, अतः आप पर भी वह प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। कांग्रेस के संस्थापक ए० ओ० ह्यूम और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि देश-भक्त तथा सुधारक भार्गवजी के सहज मित्र हो गए थे। मुन्शी नवलकिशोर ने अपने प्रेस के द्वारा हिन्दी तथा उर्दू की 5,000 से अधिक पुस्तकें ही प्रकाशित नहीं कीं, प्रत्युत वहाँ से 'माधुरी' का प्रकाशन करके हिन्दी-साहित्य को दुलारेलाल भार्गव-जैसा साहसी तथा उत्साही व्यक्तित्व प्रदान किया।

वैसे तो अपने छात्र-जीवन से ही भार्गवजी में लेखन-सम्पादन की अभूतपूर्व प्रतिभा थी, और आप अपने जीवन के सोलहवें *वर्ष तक आते-आते 'भार्गव पत्रिका' का सम्पादन भी करने* लगे थे; परन्तु 'माधुरी' के प्रकाशन ने आपकी प्रतिभा को द्विगुणित करने में प्रचुर प्रेरणा प्रदान की। 'भार्गव पत्रिका' पहले उर्दू में प्रकाशित होती थी, पर आपने सम्पादन-भार ग्रहण करते ही उसे हिन्दी में कर दिया था।

अभी आप नवीं कक्षा में ही पढ़ते थे कि आपका विवाह अजमेर के प्रसिद्ध रईस श्री फूलचन्दजी जज की सुपुत्री गंगादेवी के साथ हो गया। वे कुछ समय ही अपने पति श्री दुलारेलाल भार्गव के साथ रह पाई थीं कि 1916 की 19 सितम्बर को अचानक उनका देहावसान हो गया। इतने थोड़े से समय में ही गंगादेवी ने उर्दू-संस्कारों से आक्रान्त उस परिवार में हिन्दी के प्रति जो निष्ठा जाग्रत की थी, उसीका सुफल श्री दुलारेलाल भार्गव के रूप में हिन्दी-साहित्य को मिला। अपनी स्वर्गीया प्राणेश्वरी की इच्छा-पूर्ति के लिए ही आपने आजीवन हिन्दी की सेवा करने का जो महान् व्रत लिया था, उसे अक्षरशः सही चरितार्थ करके दिखा दिया। अपने इस संकल्प की पूर्ति के लिए आपने सन् 1922 में अपने प्रिय बाल-सखा और चाचा श्री विष्णुनारायण भार्गव के सहयोग से नवलकिशोर प्रेस की ओर से 'माधुरी' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अपने 'माधुरी' के सम्पादन-काल में आपने जहाँ हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों, कवियों और साहित्यकारों का सहयोग लिया वहाँ अनेक कवि और साहित्यकार भी उत्पन्न किए। सर्वप्रथम 'तुलसी-संवत्' का प्रचलन और 'ब्रजभाषा-काव्य' की पुनर्प्रतिष्ठा 'माधुरी' के द्वारा ही आपने की। यही नहीं, अपितु अनेक कवियों को ब्रजभाषा की रचना करने की ओर आपने प्रवृत्त किया। 'माधुरी' के भूतपूर्व सम्पादक श्री मातादीन शुक्ल 'सुकवि नरेश' (हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के स्वनामधन्य पिता) का नाम ऐसे व्यक्तियों में वरेण्य है।

जिस व्यक्ति ने 'माधुरी' और 'सुधा' पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादन का नया मानदण्ड स्थापित किया, जिसने 'गंगा पुस्तक-माला' *की स्थापना करके हिन्दी-प्रकाशन की दिशा में एक अभूतपूर्व* क्रान्ति की; और जिसने हिन्दी-मुद्रण के क्षेत्र में अपने 'गंगा फाइन आर्ट प्रेस' से ऐसी-ऐसी मुद्रित पुस्तकें निकालीं, जिन्हें

देखकर आज भी आश्चर्य तथा कौतूहल होता है। इस बात की कौन कल्पना कर सकता है कि जब हिन्दी के लेखक स्वयं पैसा लगाकर अपनी रचनाओं का मुद्रण और प्रकाशन कराने के लिए लालायित घूमा करते थे तब श्री दुलारेलाल भार्गव ने उनमें यह 'चेतना' जाग्रत की कि लेखन से भी मनुष्य अपनी 'आजीविका' चला सकता है।

क्या आपको यह विश्वास होगा कि सन् 1928 में भी कोई प्रकाशक किसी लेखक को 1800 रुपए की राशि उसकी रचना पर दे सकता था। आज यदि हम इस राशि का मूल्य आँकें तो वह एक लाख से भी अधिक का बैठेगा। इसमें चौंकने की बात नहीं। श्री भार्गवजी ने यह साहसिक पहल करके उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द का 'रंगभूमि' नामक विशालकाय (लगभग एक हजार पृष्ठ) उपन्यास दो भागों में प्रकाशित किया और प्रत्येक भाग का मूल्य केवल साढ़े तीन रुपये रखा। प्रेमचन्दजी का हिन्दी में मूलत: लिखा हुआ कदाचित् यह पहला ही उपन्यास था। उसकी प्रथमावृत्ति की भूमिका में भार्गवजी ने इस प्रकार लिखा था—"आज हम हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध एवं सिद्धहस्त साहित्य-सेवी सुहृद्वर प्रेमचन्दजी की रुचिर रचना 'रंगभूमि' को लेकर सहृदय साहित्य-सेवियों के सम्मुख समुपस्थित हो रहे हैं!... प्रेमचन्दजी ने अन्य भाषा-भाषियों के सम्मुख हमारा मस्तक ऊँचा किया है। आपका रहन-सहन बहुत सादा है।... प्रसिद्धि से आप कोसों दूर भागते हैं। आपके 'चित्र' और 'चरित्र' को 'माधुरी' में प्रकाशित करने की हमने बहुत चेष्टा की, लेकिन आप टालते रहे। 'रंगभूमि' में हम आपका चित्र जबरदस्ती खिंचवाकर दे रहे हैं।"

हिन्दी-जगत् को श्री भार्गवजी का आभार मानना चाहिए कि आपने उसे प्रेमचन्द-जैसा उपन्यासकार दिया। प्रेमचन्द ही क्या, यदि भार्गवजी 'गंगा पुस्तक-माला' द्वारा प्रकाशन का यह साहसिक अभियान न छेड़ते तो आज हिन्दी को सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, गोविन्दवल्लभ पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', रूपनारायण पाण्डेय, बेचन शर्मा 'उग्र', बदरीनाथ भट्ट, प्रतापनारायण श्रीवास्तव और चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'-जैसे उपन्यासकार, नाटककार, कवि और कथाकार कैसे प्राप्त होते? यहाँ तक कि पुराने साहित्यकारों में बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, कृष्णबिहारी मिश्र और ज्वालादत्त शर्मा प्रभृति की अनेक रचनाएँ प्रकाशित करने के साथ-साथ आपने समस्त प्राचीन काव्य-साहित्य को सुमुद्रित करके हिन्दी में उपलब्ध कराया। उस समय की आपके द्वारा प्रकाशित 'मिश्रबन्धु-विनोद', 'हिन्दी-नवरत्न' और 'सुकवि-संकीर्तन' आदि पुस्तकें पाठकों की साहित्यिक जानकारी बढ़ाने में सन्दर्भ का कार्य करती हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'आरोग्य शास्त्र' नामक विशालकाय ग्रन्थ को प्रकाशित करना भार्गवजी-जैसे उत्साही व्यक्ति के ही बूते की बात थी। वह ग्रन्थ मुद्रण, साज-सज्जा और सामग्री की दृष्टि से आज भी अपना सानी नहीं रखता।

भार्गवजी-जैसे उदार, मिशनरी तथा सतर्क प्रकाशक यदि हिन्दी में दो-चार भी और होते तो आज हमारी भाषा और साहित्य की दशा कुछ और ही होती। महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'-जैसे अभूतपूर्व प्रतिभा के धनी साहित्यकार को हिन्दी में प्रतिष्ठित करना भार्गवजी का ही काम है। जब कलकत्ता से महादेवप्रसाद सेठ के 'मतवाला' का प्रकाशन भी प्रारम्भ नहीं हुआ था तब 'निराला' जी की 'तुम और मैं' तथा 'जूही की कली' आदि प्रारम्भिक रचनाएँ 'माधुरी' के प्रथम पृष्ठ पर भार्गवजी ने ही छापी थीं। 'निराला' जी का पहला कहानी-संग्रह 'लिली' और सबसे पहला उपन्यास 'अप्सरा' भी आपने ही अपनी 'गंगा पुस्तक-माला' की ओर से प्रकाशित किया था। आपने ही सर्वप्रथम कविता-लेखन के साथ-साथ 'निराला' जी से उपन्यास तथा कहानियाँ लिखने का आग्रह किया था। आपने सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा के 'कुण्डली चक्र' और विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के 'माँ' उपन्यास को पहले 'सुधा' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित करके फिर बाद में 'गंगा पुस्तक-माला' की ओर से छापा था। श्री भगवतीचरण वर्मा के 'पतन' तथा 'एक दिन' नामक पहले दो उपन्यासों को छापने की पहल भी आपने ही की थी। 'माधुरी' के सम्पादन के दिनों में आपके साथ जहाँ आचार्य शिवपूजनसहाय, प्रेमचन्द, रूपनारायण पाण्डेय और भगवतीप्रसाद वाजपेयी प्रभृति साहित्यकारों ने कार्य किया था वहाँ 'सुधा' के सम्पादन के दिनों में श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, इलाचन्द्र जोशी और गोपालसिंह नेपाली-जैसे कवि और साहित्यकार भी आपके सहयोगी रहे थे।

वसन्त पंचमी का भार्गवजी के जीवन में विशेष उल्लेखनीय स्थान रहा है। आपका जन्म इसी अवसर पर हुआ था। इसी दिन आपका पहला विवाह हुआ था और इसी दिन दूसरा विवाह 1940 में श्रीमती सावित्री से हुआ। इसी दिन 'माधुरी' का प्रकाशन हुआ और इसी पुण्य दिन को आपने अपनी पहली पत्नी श्रीमती गंगादेवी की पावन-स्मृति को चिरस्थायी रूप देने के लिए 'गंगा पुस्तक माला' प्रारम्भ करके अपनी पहली काव्य-कृति 'हृदय-तरंग' उसकी ओर से प्रकाशित की। इसी दिन आपने 1927 में 'सुधा' पत्रिका को जन्म दिया और इसी दिन आपको ओरछा के हिन्दी-प्रेमी अधिपति श्री वीरसिंहजू देव की ओर से प्रारम्भ किया गया दो हजार रुपए का पुरस्कार सबसे पहले अपनी अभूतपूर्व तथा अनूठी काव्य-कृति 'दुलारे दोहावली' पर मिला था। इस पुरस्कार की प्राप्ति पर भार्गवजी ने अपने जो उद्‌गार प्रकट किए थे उनसे हमारे इस कथन की सम्पुष्टि हो जाती है। आपने कहा था—"श्रीमान् का दिया हुआ यह धन मैं श्रीमान् के ही नाम से वसन्त पंचमी के शुभ दिन को अमर करने के लिए—नवीन और प्राचीन काव्य-पुस्तकों के प्रकाशन में लगाना चाहता हूँ। पुस्तक रूप में इतनी ही सम्पत्ति मैं अपनी ओर से इसमें सम्मिलित करके एक पुस्तक-माला 'देव-सुकवि-सुधा' नाम से चार हजार रुपए के मूलधन से प्रकाशित करूँगा। 'देव-पुरस्कार' की रकम से जो माला चलाई जाए, उसमें 'देव' शब्द संयुक्त होना तो ठीक है ही, 'सुधा' शब्द भी स्पष्ट कारणों से समीचीन है। आशा है, सहृदय साहित्य-संसार को भी यह नाम बहुत सार्थक-समुचित समझ पड़ेगा।"

'देव' शब्द श्रीवीरसिंहजू देव के नाम से लिया गया था और 'सुधा' ओरछा-नरेश की साढ़े सात वर्षीया कन्या का नाम था, जिसका जन्म भी 'सुधा' पत्रिका के साथ वसन्त पंचमी के दिन हुआ था। इस पुरस्कार के लिए धन्यवाद अर्पित करते हुए भार्गवजी ने जो दोहा उस समय सुनाया था उससे आपकी विनम्रता ही प्रकट होती है। दोहा इस प्रकार है :

मम कृति दोस-भरी खरी, निरी निरस जिय जोइ।

है उदारता रावरी, करी पुरसकृत सोइ॥

'दुलारे दोहावली' पर पुरस्कार मिलने पर हिन्दी-जगत् में उन दिनों जो चहल-पहल मची थी, वह भी लोगों की मनोवृत्ति की द्योतक है। किसी ने आप पर यह आरोप लगाया था कि यह कृति आपकी है ही नहीं, और किसी ने उसकी मौलिकता को प्रश्नचिह्नांकित किया था। भार्गवजी में ब्रज-भाषा-काव्य के प्रति जो अनुराग था और आपमें काव्य रचने की जो सहज प्रतिभा थी उसका कारण आपका वह पारिवारिक परिवेश था, जो आपको अपनी माता श्रीमती रामप्यारी देवी की कृपा से प्राप्त हुआ था। वे जहाँ 'रामचरितमानस' का नियमित पाठ किया करती थीं वहाँ सूरदास के ब्रजभाषा-काव्य के प्रति भी उनके मन में अनन्त श्रद्धा थी। क्योंकि ब्रज-प्रदेश की पावन धूलि से ही उनका शरीर निर्मित हुआ था। इस सम्बन्ध में महाकवि निराला की यह पंक्तियाँ ही भार्गवजी की काव्य-प्रतिभा को परखने का सुपुष्ट प्रमाण हैं—"···विद्वान् समालोचकों का मत है कि बिहारीलाल हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। उनके बाद आज तक किसी ने भी वैसा चमत्कार नहीं पैदा किया। परन्तु अब यह कलंक दूर होने को है...ब्रजभाषा में अब पहले की-सी कविता नहीं लिखी जाती, 'दुलारे दोहावली' ने इस कथन को बिलकुल भ्रम साबित कर दिया है।... कविवर दुलारेलालजी के दोहे महाकवि बिहारीलाल के दोहों की टक्कर के होते हैं, और बाज-बाज खूबसूरती में बढ़ भी गए हैं।"

आपने जहाँ भारतेन्दु के बाद धीरे-धीरे सूखती जाने वाली ब्रजभाषा-काव्य की माधवी लता को अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा से सींच-सींचकर पल्लवित एवं पुष्पित किया 'सुधा', 'माधुरी' और 'गंगा पुस्तक-माला' के द्वारा खड़ी बोली के साहित्य की अभिवृद्धि में भी अभूतपूर्व योगदान दिया। हिन्दी-प्रकाशनों को सुरुचिपूर्वक बढ़िया मोटे एंटिक पेपर पर कपड़े की जिल्द में छापकर हिन्दी-प्रकाशकों के सामने नया आदर्श प्रस्तुत करने वाले कदाचित् आप पहले ही व्यक्ति थे। हिन्दी के अन्य व्यवसायी प्रकाशकों की भाँति जैसी भी पांडुलिपि लेखक से आपको मिल गई वैसी ही छाप देने वाले भार्गवजी नहीं थे। आपकी भाषा का एक ऐसा सर्वथा नया मानदंड था कि अच्छे-से-अच्छे धाकड़ लेखक को भी आपके द्वारा प्रवर्तित 'वर्तनी' को मानने के लिए विवश होना पड़ता था। भाषा-सम्बन्धी आपकी जागरूकता का लोहा अन्ततः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को भी मानना पड़ा और उसी 'वर्तनी' के अनुसार आपकी 'अद्‌भुत

आलाप' तथा 'सुकवि-संकीर्तन' आदि पुस्तकें 'गंगा पुस्तक-माला' की ओर से प्रकाशित हुईं। हिन्दी-प्रकाशन के क्षेत्र में प्रत्येक पुस्तक का 'राज संस्करण' और 'साधारण संस्करण' अलग-अलग तैयार करने वाले कदाचित् आप पहले ही व्यक्ति थे। आपका प्रत्येक प्रकाशन देश के कोने-कोने में फैलकर सभी पाठकों और पुस्तकालयों तक सस्ते-से-सस्ते मूल्य में पहुँचे, इसके लिए आपने 'पुस्तक-प्रसार' की योजना भी चलाई थी। बच्चों के लिए सुरुचिपूर्ण साहित्य तैयार करने की दिशा में जहाँ आप प्रयत्नशील रहे वहाँ आपने 'बाल विनोद' नामक एक बालोपयोगी पत्र का भी प्रकाशन करके अनेक लेखक तैयार किए। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप अपने प्रकाशनों की ओर से पूर्णतः उपराम होकर लखनऊ में 'कवि कोविद-क्लब' नामक संस्था के द्वारा युवकों में काव्य-चेतना प्रस्फुटित करने का जो कार्य कर रहे थे, वह भी अभूतपूर्व था।

यह भी एक आकस्मिक घटना कही जायगी कि सितम्बर मास में ही आपकी पहली पत्नी का देहावसान हुआ था और आपने भी 6 सितम्बर सन् 1975 को अपनी 'इहलीला' समाप्त की।

श्री दूधनाथ मिश्र 'करुण'

श्री 'करुण' का जन्म सन् 1944 में उत्तर प्रदेश के सुलतान-पुर नगर में हुआ था। आप इस प्रदेश के यशस्वी कवि और कुशल पत्रकार थे। वैसे आप व्यवसाय से अध्यापक थे, किन्तु आर्थिक विषमताओं के कारण और भी बहुत से कार्यों में फँसे रहते थे।

आप सुलतानपुर के 'सुन्दरलाल पार्क' में रामनरेश त्रिपाठीजी का स्मारक बनाने के लिए भी प्रयत्नशील थे, किन्तु आपकी यह इच्छा अधूरी ही रह गई। आपका नगर की अनेक संस्थाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था और कुछ की स्थापना भी आपने ही की थी।

आपका निधन एक असामयिक मार्ग-दुर्घटना में 20 मई सन् 1975 को हुआ था।

श्री देवकीनन्दन खत्री

श्री खत्रीजी का जन्म सन् 1861 में मुजफ्फरपुर (बिहार) में हुआ था। आपके पूर्वज पंजाब के निवासी थे और जब वहाँ अराजकता फैल गई तब लाहौर छोड़कर काशी में जा बसे थे। आपकी माताजी मुजफ्फरपुर के बाबू जीवनलाल महता की सुपुत्री थीं। इस कारण आपके पिताजी प्रायः वहीं रहा करते थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पहले हिन्दी और संस्कृत में हुई थी और बाद में आपने फारसी तथा अँग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया था। गया जिले के टिकारी राज्य से आपके पिता का व्यावसायिक सम्बन्ध था अतः उन्होंने अपना कारोबार गया में ही प्रारम्भ किया था। जब टिकारी राज्य अव्यवस्था के कारण सरकारी प्रबन्ध में चला गया तो आपके पिताजी का सम्बन्ध भी राज्य से लगभग टूट-सा ही गया; परिणामस्वरूप वे काशी चले गए।

क्योंकि टिकारी राज्य में 'काशी-नरेश' श्री ईश्वरी-प्रसाद नारायणसिंह की बहन का विवाह हुआ था, इसलिए बनारस में भी आपके पिताजी की अच्छी पैठ हो गई। आपने मुसाहिब के रूप में तो दरबार में रहना उचित न समझा, किन्तु जंगलों का ठेका आदि लेने में आपने कोई संकोच नहीं किया।

अपने इसी ठेकेदारी के समय में जंगलों मे घूमते हुए न जाने कैसे आपके मन में 'चन्द्र-कान्ता' उपन्यास लिखने की धुन सवार हो गई। परिणाम-स्वरूप आपने थोड़े ही परिश्रम से वह उपन्यास लिख डाला, जो हरिप्रकाश प्रेस में प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक सन् 1888 में प्रकाशित होते ही जन-साधारण में इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके 11 भाग खत्रीजी ने अल्प आयास में ही लिख डाले। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'चन्द्रकाता' को पढ़ने के लिए ही बहुत-से व्यक्तियों ने उन दिनों हिन्दी सीखी थी। अपने इस
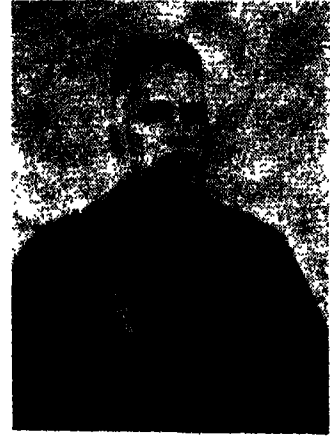
प्रयास की सफलता ने खत्रीजी को और भी उत्साहित किया और आपने सन् 1898 के सितम्बर मास में अपना 'लहरी प्रेस' खोलकर उसीसे उन्हें छापना प्रारम्भ कर दिया।

'चन्द्रकान्ता' के बाद आपने 'चन्द्रकान्ता संतति' नाम से दूसरा उपन्यास लिखा और उसके भी कई भाग प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त आपका एक और उपन्यास 'नरेन्द्र मोहिनी' मुजफ्फरपुर से सन् 1893 में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त सन् 1896 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी आपका 'वीरेन्द्र वीर' नामक उपन्यास प्रकाशित किया था। 'लहरी प्रेस' की स्थापना के अनन्तर आपके 'कुसुम कुमारी' (1899), 'काजर की कोठरी' (1902), 'भूतनाथ' (1906) और 'गुप्त गोदना' (1906) नामक उपन्यास भी प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त आपके 'नौलखा हार' और 'अनूठी बेगम' नामक दो उपन्यास क्रमशः कचौड़ी गली, बनारस तथा फ्रेण्ड्स एण्ड कम्पनी, मथुरा से भी प्रकाशित हुए थे। आपने अपने प्रेस से श्री माधवप्रसाद मिश्र के सम्पादकत्व मे 'सुदर्शन' नामक एक साहित्यिक पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया था, जो 2 वर्ष चलकर बन्द हो गया था।

'चन्द्रकान्ता' लिखने की प्रेरणा श्री खत्रीजी को 'तिलस्म-इ-होश-रुबा' नामक उर्दू रचना को पढ़कर मिली थी और उसमें आपने 'वोस्तान-इ-ख्याल' तथा 'दास्मानु-इ-अमीर हम्जा'-जैसी रचनाओं का अनुकरण किया था। यहाँ यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि उर्दू के ये उपन्यास जहाँ वासना परक थे वहाँ खत्रीजी ने अपनी सभी कृतियों को उससे दूर रखा है। हिन्दी में 'तिलस्मी' तथा 'ऐयारी' के उपन्यासों की धारा का प्रचलन करके आपने जो लोकप्रियता अर्जित की थी वह जन-साधारण को हिन्दी के प्रति उन्मुख करने में बहुत सफल हुई। वास्तव में जिस समय खत्रीजी ने उपन्यास की यह धारा प्रचलित की थी, तब आपसे पूर्व हिन्दी में मौलिक उपन्यास बहुत कम लिखे गए थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मेरठ के पंडित गौरीदत्त का एक सामाजिक उपन्यास आपसे पूर्व 'देवरानी जेठानी की कहानी' सन् 1870 में लीथो प्रेस से छपकर प्रकाशित हुआ था। इस प्रकार हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि खत्रीजी से पूर्व पंडित गौरीदत्त ने ही हिन्दी में मौलिक उपन्यास लिखने की पहल की थी।

आपका निधन 1 अगस्त सन् 1913 को हुआ था।

श्री देवकीनन्दन भट्ट 'अनंग'

आप बिहार के मुंगेर जिले के बड़गूजर नामक ग्राम के निवासी थे। आपका जन्म वहीं पर सन् 1886 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी और आपने हिन्दी और संस्कृत का अच्छा अध्ययन अपने स्वाध्याय के बल पर ही कर लिया था। कुछ दिन बाद आपने लेखन प्रारम्भ किया और अच्छे लेखक के रूप में माने जाने लगे थे। आपके द्वारा लिखित 'धर्म प्रचार' नामक एक नाटक प्रकाशित हुआ है और अनेक काव्य-रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सुरक्षित हैं।

आपका निधन सन् 1951 में 65 वर्ष की अवस्था में हुआ था।

पण्डित देवदत्त कुन्दाराम शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म 8 अक्तूबर सन् 1900 को हैदराबाद (सिन्ध) में हुआ था। आप अनेक वर्ष तक 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हैदराबाद(सिन्ध)' के मन्त्री रहे थे और भारत-विभाजन के उपरान्त आप 'सिन्ध राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के अनेक वर्ष तक मन्त्री रहे और जब समिति का कार्यालय स्थायी रूप से जयपुर चला गया तब आपने उसके अजमेर केन्द्र के व्यवस्थापक पद पर अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक कार्य किया था।

आप जहाँ हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में एक अग्रणी कार्य-कर्त्ता के रूप में जाने जाते हैं वहाँ आपने देश के स्वाधीनता-संग्राम में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था और इस प्रसंग में

जेल की यातनाएँ भी सही थीं। आप निरन्तर पाँच वर्ष तक हैदराबाद जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी रहे थे। आपने हैदराबाद में संस्कृत तथा हिन्दी का प्रचार करने की दृष्टि से 'ब्रह्मचर्य आश्रम' नामक एक संस्था की स्थापना भी की थी। आपके निरीक्षण में जहाँ सिन्ध में अनेक हिन्दी-प्रचारक तैयार हुए वहाँ आपने हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का भी अभिनन्दनीय कार्य किया था।

भारत-विभाजन के उपरान्त आपने तत्कालीन अजमेर राज्य के मुख्यमंत्री और हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार श्री हरिभाऊ उपाध्याय के सहयोग से 'राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' की भी स्थापना अजमेर में की थी जिसके प्रथम प्रधानाचार्य शर्माजी के ज्येष्ठ पुत्र पद्मराज डी० शर्मा (एम० ए० बी० एड्०, साहित्यरत्न) थे, जो आजकल राजस्थान में पुलिस अधीक्षक हैं। अजमेर में रहते हुए आपने सिन्धी बिरादरी में हिन्दी-प्रचार का कार्य आगे बढ़ाने के लिए बहुत-से ऐसे कार्य किये थे जिनके कारण वहाँ के नागरिक आज भी आपको स्मरण करते हैं।

पण्डितजी एक साधना-प्रवण हिन्दी-प्रचारक होने के साथ-साथ अच्छे लेखक भी थे। आपने जहाँ सिन्धी तथा हिन्दी भाषाओं में लगभग चौदह पुस्तकें लिखी थीं वहाँ आपके द्वारा निर्मित लगभग एक हजार पृष्ठ का 'त्रिभाषीय शब्द कोश' प्रमुख है। इस कोश में आपने हिन्दी शब्दों के अँग्रेजी तथा सिन्धी में अर्थ दिए हैं। आपने जहाँ कई सिन्धी पुस्तकों का देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरण प्रस्तुत किया है वहाँ अनेक हिन्दी तथा संस्कृत ग्रन्थों का सिन्धी में भी अनुवाद किया है। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' की ओर से प्रकाशित होने वाली 'कवि श्री माला' के लिए आपने सिन्धी के प्रसिद्ध कवि 'बेवस' के काव्य का सम्पादन भी किया था। इसके अतिरिक्त आपकी 'सिन्धी साहित्य का इतिहास' नामक रचना भी महत्त्वपूर्ण है।

आप 'सिन्धी देवनागरी भाषा साहित्य कला सम्मेलन' में भाग लेने के लिए अजमेर से दिल्ली आए थे कि यहाँ 3 नवम्बर सन् 1970 को आपका असामयिक निधन हो गया। मृत्यु से एक दिन पूर्व ही आपके द्वारा कालिदास की प्रख्यात कृति 'मेघदूत' के सिन्धी काव्यानुवाद का विमोचन भी हुआ था।

श्री देवप्रकाश

श्री देवप्रकाश का जन्म जबलपुर (मध्य प्रदेश) में सन् 1941 में हुआ था। एक कवि, लेखक और चित्रकार के रूप में आपने अपने छोटे से जीवन में जो सफलता प्राप्त की थी वह अभूतपूर्व थी। आपको यह आशा थी कि अभी कुछ अग्निवर्षी कविताएँ और लिखी जायेंगी, कुछ चित्रों पर रंगों के नए शेड्स और उभर आयेंगे, किन्तु वह सब-कुछ नहीं हुआ। छिन्दवाड़ा के टी० बी० सेनीटोरियम में अपने जीवन से संघर्ष करते हुए अन्त में सन् 1970 के अल्पकालिक जीवन में आप इस संसार से महा प्रयाण कर गए।

जबलपुर, वाराणसी, आजमगढ, लखनऊ और दिल्ली में आप अपनी कविता तथा कला के नए-नए प्रयोग करते रहे। आप एक अजेय काल-यात्री क्रान्तिचेता, साहित्यकार और सूर्यधर्मी चित्रकार थे। आपने अपने चित्रों की प्रदर्शनी का उद्घाटन प्रसिद्ध लेखक श्री हरिशंकर परसाई से कराया था। अपनी इसी प्रक्रिया मे आपकी आँखें जाती रही थी। इस सम्बन्ध में आप कहा करते थे—"मुझे मेरी आँखें दे दो। तुमने उन्हें दिशाओं में टाँग दिया है। पर मशीनी पैगम्बर की छाती मेरी आँख ही छेद सकती है।" उनकी कलम और कूची में दुनिया का दर्द पीने की ललक थी। सूर्य-मुद्राएँ चित्रित करने में आपको अभूतपूर्व दक्षता प्राप्त थी। शिवप्रसादसिंह के अनुसार "वह वीराचारी था। उसने अन्त तक चलना नहीं छोड़ा। यमराज की प्रताड़ना के भीतर भी अपनी नन्हीं जिजीविषा को जिलाए रहा।"

आपकी मृत्यु के उपरान्त प्रकाशित आपके 'जुहीगन्ध' नामक उपन्यास से आपकी लेखन-क्षमता का पता चलता है। इसका प्रकाशन पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली से हुआ है।

लाला देवराज

लाला देवराजजी का जन्म 3 मार्च सन् 1860 को जालन्धर शहर के कोट किशनचन्द नामक मोहल्ले में हुआ था। सोंधी वंश के रायजादा किशनचन्द ने इसको बसाया था। इसी-लिए इसे 'कोट किशनचन्द' कहा जाता था। आपकी बहन शिवदेवी 'महात्मा मुन्शीराम' (स्वामी श्रद्धानन्द) की धर्मपत्नी थीं। महात्मा मुन्शीराम के सम्पर्क के कारण आपके मन में भी शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति करने की भाव-नाएँ हिलोरें मारने लगी थीं। सन् 1883 में ही आपने स्वदेशी वस्त्र पहनने का जो व्रत लिया था, उसे आजीवन निबाहते रहे। महात्मा मुन्शीराम ने जब लड़कों की शिक्षा के लिए कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना की तो लाला देवराज के मन में कन्याओं के लिए भी एक ऐसी ही संस्था स्थापित करने की चेतना जाग रही थी। फलस्वरूप आपने सन् 1890 में 'कन्या महाविद्यालय' की स्थापना कर दी और फिर आठों पहर उसीकी चिन्ता में रहने लगे। अपनी सुपुत्री गार्गी को भी आपने इस कार्य में लगा दिया। जिन दिनों आपने कन्याओं को शिक्षित करने की दृष्टि से इस संस्था का सूत्रपात किया था तब ऐसा करना तो दूर, सोचना भी एक क्रान्तिकारी कार्य था। लड़कियों को शिक्षित करने की बात समाज के ठेकेदारों के गले में ही नहीं उतरती थी।

धीरे-धीरे आपकी लगन तथा जी-तोड़ मेहनत से इस संस्था का रूप निखरता गया और आपको सहयोगी मिलते गए। विद्यालय की कन्याओं में जहाँ आपने वक्तृत्व-शक्ति उत्पन्न करने के लिए अनेक उपाय किए, वहाँ उनमें लेखन-प्रतिभा प्रस्फुटित करने की दिशा में भी आप पीछे नहीं रहे। इस सम्बन्ध में आपके द्वारा प्रारम्भ की गई 'पांचाल पंडिता', 'भारती' और 'जलविद-सखा' नामक पत्रिकाओं ने बड़ा ही क्रान्तिकारी कार्य किया था। आपने 'वर्ण परिचय', 'अक्षर दीपिका', 'पाठशाला की कन्या', 'सुबोध कन्या', 'शब्दावली', 'बाल विनय', 'पत्र-कौमुदी', 'कथा विधि', 'बालोद्यान संगीत' नामक कई पुस्तकें लिखी थीं। पंजाब की तत्कालीन सरकार ने आपको इन कृतियों के लेखन पर समय-समय पर पुर-स्कृत भी किया था। बालिकाओं को हिन्दी की अच्छी शिक्षा देने की दृष्टि से आपने जहाँ अनेक पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण किया वहाँ उनमें अच्छे संस्कार जगाने की दृष्टि से 'सन्त वाणी' नामक पुस्तक की भी रचना की थी। शिक्षा तथा हिन्दी भाषा के क्षेत्र में की गई आपकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए सन् 1933 में आपको पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति भी बनाया गया था। अपने अध्यक्षीय भाषण में आपने हिन्दी और उर्दू के विवाद को समाप्त करने की दिशा में जो उपयोगी विचार प्रकट किए थे वे आज भी उतने ही मूल्यवान हैं जितने उस समय थे। आपने कहा था—"उर्दू और हिन्दी में, कुछ शब्दों के हेर-फेर को छोड़-कर, कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनो का व्याकरण एक ही है। यदि दोनों की लिपि एक ही होती, उनके अलग-अलग नाम होने पर भी दोनों में नाम-मात्र का ही भेद होता।"
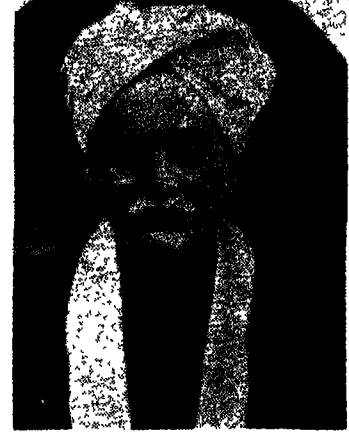
आप जहाँ उच्चकोटि के शिक्षा-शास्त्री और समाज-सुधारक थे वहाँ एक उत्कृष्ट पत्रकार के रूप में भी आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। आपके पत्रकार-जीवन का प्रारम्भ 'सद्धर्म प्रचारक' से हुआ था, जो आपके बहनोई महात्मा मुन्शीरामजी ने जालन्धर से ही निकाला था। बाद में आपने स्वयं ही 'सहायक' नामक एक पत्र निकालकर उसके माध्यम से स्त्री-शिक्षा तथा हिन्दी-प्रचार का महान् कार्य किया था। पहले यह पत्र हिन्दी और अँग्रेजी में निकलता था, किन्तु सन् 1903 से उसे केवल हिन्दी में प्रकाशित किया जाने लगा। कदाचित् पंजाब से प्रकाशित हिन्दी पत्रों में 'सहायक' का नाम ही पहला है। 'कन्या महाविद्यालय जालन्धर' आपका सजीव स्मारक है। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जब सन् 1930 में श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर में कांग्रेस हुई थी तब यहाँ की कन्याओं ने कुमारी लज्जावती की अध्यक्षता में स्वयंसेविका के रूप में कार्य करके अपनी अपूर्व वीरता का परिचय दिया था।

आपका निधन सन् 1935 में हुआ था।

श्री देवीदयाल सेन

श्री सेन का जन्म मेरठ नगर के पूर्वा शेखलाल नामक मोहल्ले में 15 दिसम्बर सन् 1928 को हुआ था। आपके पिता चौ० मंगलसेन अनुसूचित जाति के प्रमुख व्यक्तियों में थे।
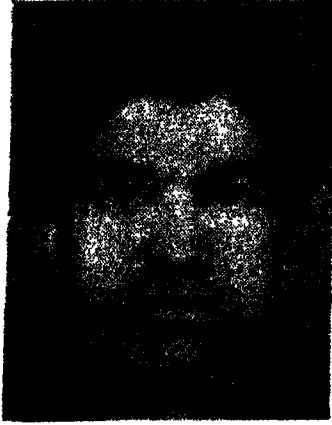
आपने मेरठ कालेज से बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त पत्रकारिता को अपनाकर अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया था। आपने 'धड़कन' तथा 'अधिकार' नामक पत्रों का सम्पादन करने के अतिरिक्त 'मानव की परख' नामक एक उपन्यास भी लिखा था, जो आत्माराम एण्ड संस दिल्ली से प्रकाशित हुआ था।

आपने नगर के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में भी अपना प्रमुख स्थान बना लिया था। आप जहाँ अनेक वर्ष तक मेरठ जनपद की 'रिपब्लिकन पार्टी' के अध्यक्ष रहे थे वहाँ सन् 1967-68 में उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए भी हापुड़ सुरक्षित क्षेत्र से निर्वाचित हुए थे। आप मेरठ नगरपालिका के सदस्य होने के नाते उसकी 'प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा समिति' के अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका निधन 1 सितम्बर सन् 1977 को हुआ था।

मुन्शी देवीप्रसाद

मुन्शीजी का जन्म सन् 1847 में राजस्थान के जयपुर नामक नगर में हुआ था। कायस्थ-परिवार में जन्म लेने के कारण आपकी प्रारम्भिक शिक्षा भी पहले उर्दू-फारसी ही में हुई थी। आपने उर्दू और फारसी अपने पिता से और हिन्दी अपनी माता से सीखी थी। आपने घर पर रहकर ही अपना अध्ययन जारी रखा और 16 वर्ष की आयु तक आते-आते हिन्दी में अच्छी निपुणता प्राप्त कर ली थी। इसके उपरान्त आप सन् 1863 में टोंक राज्य की सेवा में चले गए और वहाँ पर सन् 1877 तक कार्य-रत रहे। यहाँ पर रहते हुए आपने 'ख्वाब राजस्थान' नामक एक उर्दू पुस्तक भी लिखी थी, जिसका अनुवाद आपने स्वयं 'स्वप्न राजस्थान' नाम से बाद में प्रकाशित कराया था। कुछ दिन आप अजमेर में भी रहे थे। उक्त दोनों ही स्थानों पर आपको अपना सारा कार्य उर्दू और फारसी में ही करना पड़ता था। बाद में जब आप सन् 1879 में जोधपुर राज्य की सेवा में गए तब वहाँ आपको राज्य की ओर से प्राचीन शिलालेखों की खोज का कार्य सौंपा गया। वैसे आप वहाँ 'मुन्सिफ' थे। जब आपने जोधपुर राज्य में कार्य प्रारम्भ किया था तब वहाँ पर कचहरियों का सारा काम उर्दू में तथा माल-खजाना और फौज आदि का काम हिन्दी में हुआ करता था। प्रारम्भ में आपको महाराजाधिराज कर्नल प्रतापसिंह के कार्यालय में हिन्दी कागजों का उर्दू अनुवाद करने का कार्य सौंपा गया था। यद्यपि महाराज प्रतापसिंह हिन्दी के पक्षपाती थे और अपने कार्यालय का सारा कार्य हिन्दी में करना चाहते थे, परन्तु महाराज जसवन्तसिंह के इर्द-गिर्द मुसलमानों का जमाव अधिक था इसलिए काम उर्दू में ही हो रहा था।

मुन्शी देवीप्रसाद को महाराज प्रतापसिंह का सहारा मिलने के कारण वहाँ की कचहरियों में हिन्दी का प्रचलन होने लगा। आपके इस कार्य में बाद में कवि राजा मुरारिदान से भी बहुत सहयोग मिला। क्योंकि आप उन दिनों 'अपील आला के निरीक्षक' थे। वे भी हिन्दी-प्रेमी थे। इसके उपरान्त जब मुन्शी हर-

दयालसिंह राज्य के प्रधानमन्त्री के सचिव नियुक्त हुए तब आपकी नियुक्ति उनकी सहायता के लिए की गई। मुन्शी हरदयालसिंह ने मुन्शी देवीप्रसाद की सहायता से हिन्दी को प्रचलित करने के लिए बहुत-सी उपयोगी योजनाएँ बनाईं। यहाँ तक कि उन्होंने मुन्शी देवीप्रसाद को प्रशंसनीय कार्य करने के उपलक्ष्य में 200 रुपये का पारितोषिक और एक प्रशंसा-पत्र भी प्रदान किया। जब आप वहाँ मुन्सिफ थे तब 500 रुपए तक के दीवानी मुकद्दमे सुनने का अधिकार आपको था।
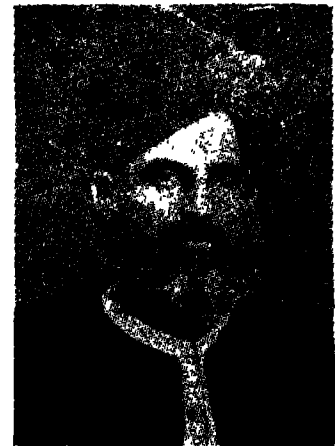
अपने स्वाध्याय और लगन के कारण आपने अपना इतिहास-सम्बन्धी ज्ञान बहुत बढ़ा लिया था और आगे चलकर आपने इतिहास-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे थे। आपके इस प्रकार के ग्रन्थों में अधिकांशतः जीवन-चरित हैं। आपने जहाँ बाबर, हुमायूँ, शेरशाह, अकबर, शाहजहाँ और औरंगजेब आदि मुस्लिम बादशाहों के प्रामाणिक जीवन-वृत्त लिखे वहाँ राणा साँगा, उदयसिंह, प्रतापसिंह, मानसिंह, भगवानदास, रतनसिंह, विक्रमादित्य (चित्तौड़-वाले), बनवीर, पृथ्वीराज (जयपुर), पूरनमल, राजसिंह (जयपुर), आसकरण, कल्याणमल, मालदेव, बीकाजी तथा जैतसी राजपूत राजाओं की जीवनियाँ भी प्रस्तुत कीं। आपने मीराबाई, रहीम, सूरदास और बीरबल आदि की जीवनियाँ भी लिखी थी। इनके अतिरिक्त आपके 'स्वप्न राजस्थान' (1893), 'मारवाड़ के प्राचीन लेख' (1896), 'हिन्दोस्तान में मुसलमान बादशाह' (1909), 'यवनराज वंशावली' (1909), 'मुगल वंश' (1911), 'पड़िहार वंश प्रकाश' (1911), 'सिन्ध का इतिहास' (1921) और 'मारवाड़ का भूगोल' नामक ग्रन्थ भी अपनी विशिष्टता के लिए विख्यात हैं। आपकी प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों में 'रूठी रानी' (1906), 'राजपूताने में हिन्दी-पुस्तकों की खोज' (1911) तथा 'कवि रत्न माला' (1911) आदि उल्लेख्य हैं। आपकी ऐतिहासिक खोजों के लिए आपको नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से पुरस्कृत भी किया गया था। आपके कृतित्व का उज्ज्वल कीर्तिमान जहाँ उक्त सभी ग्रन्थ प्रस्तुत करते हैं वहाँ आपको 'अकबरनामा', 'जहाँगीरनामा', 'शाहजहाँनामा', 'औरंगजेबनामा', 'बाबरनामा', हुमायूँनामा' और 'खानखानानामा' आदि खोजपूर्ण ग्रन्थों के कारण प्रचुर प्रसिद्धि मिली है।

आपके लेखन की इससे बड़ी महत्ता और क्या हो सकती है कि सन् 1895 में आपकी 'मारवाड़ का इतिहास' नामक प्रख्यात कृति के प्रकाशित होने पर पश्चिमोत्तर प्रदेश (अब उत्तर प्रदेश) की सरकार ने आपको 300 रुपए का पारितोषिक प्रदान किया था। आपने काशी नागरी प्रचारिणी सभा को हिन्दी में इतिहास-सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए प्रचुर धनराशि दान में दी थी, जिसके ब्याज से सभा की ओर से 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' के अन्तर्गत इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

आपका देहावसान 15 जुलाई सन् 1923 को जोधपुर में हुआ था।

श्री देवीप्रसाद 'देवीद्विज'

श्री 'देवीद्विज' का जन्म गोकुल (मथुरा) में सन् 1895 में हुआ था। आप गायन, वादन एवं नाट्य-कला में अत्यन्त प्रवीण थे। आप प्राचीन परिपाटी के संवाहक ब्रजभाषा के ऐसे सुकवि थे कि आपने 9 हजार के लगभग कवित्त, सवैये कुण्डलियाँ तथा अष्टक लिखे थे। आप ब्रजभाषा के अतिरिक्त उर्दू तथा फारसी में भी कविता किया करते थे।

आपको अपनी पढ़न्त शैली के कारण 'पढ़न्त सम्राट्', 'ब्रजभाषा रत्न' और 'विचित्र कवि' आदि अनेक सम्मानोपाधियों से विभूषित किया गया था। आपकी 'गोपालाष्टक', 'मोड़ाष्टक' तथा 'गोसाईं गोकुलनाथ चरित' आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपका निधन 5 अगस्त सन् 1980 को हुआ था।

पंडित देवीसहाय

पंडितजी का जन्म राजस्थान के जयपुर राज्य के पाटन नामक स्थान में सन् 1856 में हुआ था। आप संस्कृत तथा

हिन्दी के पारंगत विद्वान् थे और व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयाल शर्मा को 'भारत धर्म महा मंडल' नामक संस्था की स्थापना करने की प्रेरणा आपने ही दी थी।

आप हिन्दी के सुलेखक और ओजस्वी पत्रकार थे और आपने कलकत्ता से 'धर्म दिवाकर' नामक एक मासिक पत्र सन् 1882 में निकाला था। यह पत्र लगभग 5 वर्ष तक प्रकाशित हुआ था। 'धर्म दिवाकर' में 'मार्कण्डेय पुराण' और 'श्रीमद् भगवद्गीता' की टीकाएँ प्रकाशित हुआ करती थीं।

आप कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में सार्वजनिक सुधारों का प्रचार किया करते थे। कलकत्ता के 'विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' के पुस्तकालय का नाम आपके स्मारक के रूप में 'देवीसहाय पुस्तकालय' कर दिया गया है। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समसामयिक लेखकों में अग्रणी स्थान रखते थे।

आपका निधन सन् 1903 में हुआ था।

श्री देवेन्द्र गुप्त

श्री गुप्त का जन्म सन् 1942 में मुरादाबाद के एक वैश्य परिवार में हुआ था। आप मूलतः कवि, चित्रकार, कहानीकार और मूर्तिकार थे। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताएँ और कहानियाँ प्रायः प्रकाशित हुआ करती थीं।

आप अभी बी० ए० में पढ़ ही रहे थे और दूसरा वर्ष पूरा भी नहीं हुआ था कि 20 दिसम्बर सन् 1964 को आपका कानपुर में देहावसान हो गया।

आपके बड़े भाई श्री धर्मेन्द्र गुप्त भी हिन्दी के अच्छे साहित्यकार हैं।

श्री देवेन्द्रनाथ पाण्डेय शास्त्री

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के सन्थरी नामक ग्राम में 8 अगस्त सन् 1912 को हुआ था। आप संस्कृत साहित्य के गम्भीर विद्वान् होने के साथ-साथ हिन्दी के 'आशु कवि' भी थे। आपका साहित्यिक जीवन सन् 1932 से प्रारम्भ हुआ था। आपकी वाणी में इतना माधुर्य होता था कि आप कवि सम्मेलनों में घण्टों तक जनता को भाव-विभोर करने की अद्भुत क्षमता रखते थे।

आपके पिता श्री रामलाल पाण्डेय भी अच्छे साहित्यकार थे और आपके द्वारा किया गया 'आइने अकबरी' का हिन्दी अनुवाद आपकी साहित्यिक गरिमा का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। अपने पिता की भाँति ही शास्त्री जी भी विचित्र प्रतिभा-सम्पन्न योग्य व्यक्ति थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'चौराहे का दिया', 'मन्दार माला','सोम-सुषमा', 'महावीर भगवान्', 'शान्ति कथा' तथा 'जश्मा चरित्र' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपकी कई रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आपका सम्बन्ध कानपुर की 'अनुरंजिका', 'माध्यम' तथा 'हिन्दी साहित्य मंडल' आदि कई संस्थाओं से था और आप इनके कार्यों में अत्यन्त तन्मयता से भाग लिया करते थे। आँखों की ज्योति मन्द पड़ जाने तथा शरीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी आप सभी साहित्यिक कार्यक्रमों में तत्परतापूर्वक संलग्न रहते थे।

आपका निधन 22 जून सन् 1980 को हुआ था।

श्री द्वारकादास पारीख

श्री द्वारकादास पारीख का जन्म सन् 1909 में पाटण

(गुजरात) के खड़ायता वैश्य-परिवार में हुआ था। आप ब्रजभाषा एवं वैष्णव संस्कृति के अद्भुत ज्ञाता थे। आपकी मातृभाषा यद्यपि गुजराती थी, परन्तु आपने 'ब्रजभाषा' में साहित्य-रचना करने के साथ-साथ हिन्दी में ही अपनी साहित्य-सृष्टि की थी।

आपने जहाँ 'वल्लभीय सुधा' नामक त्रैमासिक शोध पत्र का सम्पादन किया था वहाँ अनेक ग्रन्थों का लेखन एवं सम्पादन भी किया था। अपनी मौलिक एवं सम्पादित रचनाओं में से जो प्रकाशित हो चुकी हैं उनकी सूची इस प्रकार है—'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता', 'खटऋतु वार्ता', 'वार्ता-साहित्य-मीमांसा', 'श्री महाप्रभुजी की प्राकट्य-वार्ता', 'भाव भावना', 'अन्याश्रम और असमर्पित त्याग' तथा 'पुष्टि मार्ग' (सभी मौलिक) के अतिरिक्त 'परमानन्द सागर' एवं 'ब्रज चौरासी कोस की यात्रा' (सम्पादित)।

आपका निधन सन् 1960 में हुआ था।

श्री द्वारकाप्रसाद सेवक

सेवकजी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के फिरोजाबाद नामक नगर में 14 फरवरी सन् 1888 को हुआ था। आपकी शिक्षा प्रतापगढ़, मैनपुरी, शाहजहाँपुर, बुलन्दशहर और बाराबंकी आदि विभिन्न नगरों में हुई थी। आपके सहपाठियों में सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्लाह थे। आपके पिता जब शाहजहाँपुर आर्यसमाज के सक्रिय सदस्य थे तब आप 16-17 साल की अवस्था में वहाँ के आर्य डिबेटिंग क्लब के मन्त्री निर्वाचित हुए थे। समाज-सेवा के क्षेत्र में उस समय आपने उल्लेखनीय कार्य किया था जब फिरोजाबाद में प्लेग फैला था और उसमें आपकी एक बहन की मृत्यु हो गई थी।

लेखन के क्षेत्र में आपने 19 वर्ष की अवस्था में 'आर्य मित्र' के सम्पादक श्री सर्वानन्द (लक्ष्मीधर वाजपेयी का छद्मनाम) तथा 'नवजीवन' मासिक के सम्पादक डॉ० केशवदेव शास्त्री से प्रेरणा ग्रहण की थी। यह एक विचित्र संयोग की ही बात है कि आपने केवल दो वर्ष के अन्दर लगभग सवा सौ लेख उन दिनों पत्र-पत्रिकाओं में लिखे थे। आप तब प्राय: 'द०प्र०स०' नाम से ही लिखा करते थे। पत्र सम्पादन की दिशा में आपने डॉ० केशवदेव शास्त्री के पत्र 'नवजीवन' के माध्यम से मार्च सन् 1915 में प्रवेश किया था और उसके उपरान्त आपने साप्ताहिक 'भारतीय आदर्श' (इन्दौर), 'साप्ताहिक आर्य मार्तण्ड' तथा 'वैदिक सन्देश साप्ताहिक' (अजमेर) आदि पत्रों का भी कुछ अवधि तक सम्पादन एवं संचालन किया था।

पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन-कार्य में रुचि लेने के साथ-साथ आपने पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसाय को अपनाकर उसमें अपनी सूझ-बूझ तथा प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया था। आपके द्वारा संचालित 'सरस्वती सदन '(इन्दौर)', 'भारतवर्ष प्रकाशन' तथा 'नालन्दा प्रकाशन' (बम्बई) आदि संस्थाओं के नाम हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में सदा-सर्वदा याद किए जायँगे। 'सरस्वती सदन' (इन्दौर) की ओर से आपने जहाँ प्रख्यात पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित उनकी 'प्रवासी भारतवासी' नामक पुस्तक को 'एक भारतीय हृदय' का कल्पित नाम देकर प्रकाशित किया था वहाँ स्वामी भवानीदयाल संन्यासी की 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किए थे; जिनका वैचारिक क्रान्ति की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान कहा जा सकता है। आर्यसमाज में अपनी 'आर्यसमाज किस ओर' नामक क्रान्तिकारी पुस्तक के द्वारा आपने जिन प्रेरक भावनाओं का प्रकटीकरण किया था उनसे उन दिनों बड़ी चहल-पहल मची थी। इसी प्रकार आपके द्वारा प्रकाशित 'हमारा समाज', 'भारत की भाषा' तथा 'पतन के कगार पर' पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं।

राजनीति के क्षेत्र में यद्यपि आप कभी सक्रिय नहीं रहे थे किन्तु बयालीस के आन्दोलन के समय उस क्रान्ति के अनन्य सूत्रधार श्री जयप्रकाश नारायण, श्री अच्युत पटवर्धन तथा श्रीमती अरुणा आसफअली को बम्बई में भूमिगत जीवन बिताने में आपने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। उन दिनों इस आन्दोलन से सम्बन्धित बैठकें प्रायः आपके ही निवास-स्थान पर हुआ करती थीं। वैसे राजनीति के सम्बन्ध में आप प्रायः यह कहा करते थे—"राजनीति मन में सेवा-भाव नहीं, स्वामी-भाव जगाती है।"

सामाजिक क्रान्ति के क्षेत्र में भी आपकी सेवाएँ अद्भुत आदर्शपूर्ण रहीं। आपने जहाँ अनेक विधवा-विवाह और विजातीय विवाह सम्पन्न कराए थे वहाँ विधर्मी विवाहों के सन्दर्भ में भी आपने अद्भुत साहस का परिचय दिया था। एक बार ब्राह्मण-परिवार की एक कन्या ने जब परिस्थिति-वश ईसाई धर्म अंगीकार कर लिया तब उसे शुद्ध करके एक आदर्श गृहणी के रूप में हिन्दू-परिवार में लाने का साहस सन् 1923 में आपने ही किया था। जिन दिनों देश में शुद्धि-आन्दोलन का जोर था तब आपने उर्दू के एक प्रमुख पत्र 'तनवीर' की सम्पादिका असगरी बेगम को शुद्ध करके शान्तिदेवी बना लिया था। इसी प्रकार एक सारस्वत ब्राह्मण महिला जब परिस्थितिवश मुसलमान हो गई और उसने सिनेमा के क्षेत्र में एक अच्छी गायिका के रूप में प्रचुर यश प्राप्त किया तब उसकी पुत्री का एक हिन्दू युवक से विवाह करा देना आपके ही अद्भुत साहस का कार्य था। वे युवक और युवती आज के फिल्म अभिनेता सुनीलदत्त और अभिनेत्री और वर्तमान राज्यसभा सदस्या श्रीमती नर्गिस है। ऐसे एक नहीं अनेक क्रान्तिकारी कार्य सेवकजी ने किए थे। जिन दिनों इन्दौर में प्लेग का भयानक प्रकोप हुआ था तब 'आर्य सेवा समिति' की स्थापना करके आपने वहाँ की जनता की अविस्मरणीय सेवा की थी। अनेक असहाय स्त्रियों और निर्धन बच्चों का उद्धार करने में भी सेवकजी ने बहुत ही अभिनन्दनीय कार्य किया था। बीकानेर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति सेठ रामगोपाल मोहता के सहयोग से आपने 'मातृमन्दिर' नामक जिस संस्था की स्थापना की थी उसके माध्यम से आपने अपने जीवन के जो सर्वोत्तम तीस वर्ष (सन् 1911 से 1940 तक) इन्दौर में व्यतीत किए थे उसके साक्षी वे अनेक लोग हैं जो आपके प्रोत्साहन और साहस से अपने जीवन में आगे बढ़े थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि समाज-सेवा के इस प्रसंग में आपने लगभग तीन सौ लड़कियों के विवाह के समय कन्या-दान करने का दायित्व-निर्वाह भी किया था।

आप साहित्य तथा संस्कृति-सम्बन्धी अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध रहने के साथ-साथ अनेक समाज-सेवी संस्थाओं के प्रेरणा-स्रोत भी रहे। इन संस्थाओं में 'भारती भवन फिरोजाबाद', 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा', 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग', 'महाविद्यालय ज्वालापुर' और 'विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान' होशियारपुर आदि प्रमुख हैं। अन्तिम दिनों में आप बम्बई में रह रहे थे।

आपका निधन 87 वर्ष की आयु में 1 नवम्बर सन् 1980 को हुआ था।

श्री धनीराम

कवि श्री धनीराम का जन्म आगर (मालवा) में सन् 1743 में हुआ था। आप अपने समय के उत्कृष्टतम कवि थे। लावनी, ख्याल और टप्पे आदि लिखने में आपको पर्याप्त दक्षता प्राप्त थी।। आपने जहाँ समाज-सुधार की रचनाएँ लिखी थीं, वहाँ अँग्रेजों के विरुद्ध समय-समय पर होने वाली देश की विभिन्न क्रान्तियों का भी वर्णन किया था। आपकी भाषा पर उर्दू का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। खेद है कि आपकी रचनाएँ प्रकाशित नहीं हो सकीं।

आपका निधन 90 वर्ष की आयु में सन् 1830 में हुआ था।

डॉ० धनीराम 'प्रेम'

डॉ० 'प्रेम' का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के दरियापुर नामक ग्राम में 21 नवम्बर सन् 1904 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अतरौली के डी० ए० वी०

स्कूल में हुई थी और इसके बाद धर्मसमाज कालेज तथा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से आपने उच्चशिक्षा प्राप्त की। फिर आप सन् 1929 में नेशनल मेडिकल कालेज, बम्बई से डॉक्टरी की उपाधि प्राप्त करके सन् 1931 में विदेश चले गए और लन्दन तथा एडिनबरा विश्वविद्यालय से एम० आर० सी० एस०, एल० आर० सी० पी०, डी०टी० एम० एण्ड एच० डॉक्टरी की उच्चतम उपाधियाँ प्राप्त की। अलीगढ़ में अध्ययन करते समय ही आप भारत के विस्फोटक राजनीतिक वातावरण से बहुत प्रभावित हुए थे। परिणाम स्वरूप सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन में आपको 1 वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड भी मिला था। उन दिनों आप अलीगढ़ कांग्रेस कमेटी के मन्त्री भी रहे थे।

जब आप छात्रावस्था में थे तब से ही आपकी रुचि साहित्य-सृजन की ओर हो गई थी। सामाजिक जीवन में आगे बढ़ने की अदम्य प्रेरणा के कारण आपने अलीगढ़ में सबसे पहले 'आर्य कुमार सभा' की स्थापना की थी। आप अच्छे चिकित्सक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के कहानीकार एवं कुशल पत्रकार भी थे। आपने अपने समय के अत्यन्त प्रसिद्ध पत्र 'चाँद' तथा 'भविष्य' का सम्पादन भी किया था। आपकी कथा-कृतियों में 'वल्लरी', 'प्रेम समाधि', 'वेश्या का हृदय', 'चाँदनी', 'मेरा देश', 'प्राणेश्वरी' और 'डोरा की समाधि' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'रंग और ब्रिटिश राजनीति', 'रूस का जागरण' और 'वीरांगना पन्ना' आदि पुस्तकें भी आपकी प्रतिभा की परिचायक हैं। आपकी साहित्य-सम्बन्धी प्रतिभा से प्रभावित होकर बर्मिघम विश्वविद्यालय ने आपको 'डॉक्टर ऑफ साइन्स' की मानद उपाधि भी प्रदान की थी। सन् 1977 में आपको भारत सरकार की ओर से भी 'पद्मश्री' की मानद उपाधि से विभूषित किया गया था। आप

बर्मिघम की काउण्टी कौंसिल के अनेक वर्ष तक सदस्य भी रहे थे।

डॉ० प्रेम का विवाह एटा निवासी स्व० श्री तोताराम की सुपुत्री श्रीमती रतनदेवी से हुआ था। जब सन् 1973 में आपका देहान्त हुआ तो डॉ०प्रेम ने उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने की दृष्टि से डी० ए० वी० बालिका इण्टर कालेज, अलीगढ़ को 1 लाख 60 हजार रुपया दान में दिया और अपने गाँव दरियापुर में भी एक अस्पताल खोलने का निश्चय किया था। कालेज में आपकी धर्मपत्नी की स्मृति में भवन बन गया है।

भारत में जब आपातकालीन स्थिति घोषित कर दी गई थी तब आप पर उसकी यह प्रतिक्रिया हुई थी कि आपने लन्दन में तत्कालीन गृह-राज्यमन्त्री श्री ओम मेहता के सम्मान में आयोजित एक समारोह में निर्भीकतापूर्वक यह कह दिया था कि "लन्दन में ब्रिटेन की साम्राज्ञी से मिलना सरल है, परन्तु भारतीय होते हुए भी भारत की प्रधानमंत्री से मिलना सर्वथा कठिन है।" आपकी निर्भीकता और स्पष्ट-वादिता का इससे अधिक सुपुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है। यही नहीं, आप आपात्काल में जब भारत आए तो श्री ओम मेहता के माध्यम से श्रीमती इन्दिरा गान्धी से मिले और देश तथा विदेश की विभिन्न समस्याओं पर लगभग एक घंटे तक बातचीत की थी।

आप जब सन् 1979 में भारत आए हुए थे तो एक सड़क दुर्घटना में आहत हो जाने के फलस्वरूप आपका 9 नवम्बर सन् 1979 को नई दिल्ली में निधन हो गया।

श्री धर्मदेव शास्त्री दर्शन केसरी

श्री शास्त्रीजी का जन्म अलीपुर, मुजफ्फरगढ़ (पाकिस्तान) में सन् 1910 में हुआ था। शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त आप आर्यसमाज से सम्बन्धित अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे थे और उनकी बहुविध सेवाएँ की थीं। आप जहाँ वैदिक सिद्धांतों के प्रतिपादक गम्भीर लेखक थे वहाँ उच्चकोटि के वक्ता भी थे। राष्ट्रीय संग्राम में सक्रिय योगदान देने के

कारण आपने जहाँ ब्रिटिश नौकरशाही के अत्याचारों की यातनाएँ सही थीं वहाँ गान्धी तथा विनोबा के सत्संग ने आपको रचनात्मक प्रवृत्ति का उच्चकोटि का कार्यकर्ता बना दिया था।

आपने सामाजिक जीवन के उत्कर्ष-काल में जहाँ 'कर्म-योग' तथा 'हिमालय'-जैसे पत्रों के सम्पादन में अपना अभि-नन्दनीय सहयोग दिया था वहाँ स्वतन्त्रता के उपरान्त आपने 'आदिम जाति सेवक संघ' से सक्रिय रूप से सम्बद्ध होकर वन्य जातियों के सुधार तथा उद्धार की दिशा में अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किया था। विशेष रूप से पर्वतीय अंचलों में रहने वाली आदिम जातियों के कल्याण का कार्य आपने ही अपने ऊपर लिया हुआ था।

'अशोक आश्रम, कालसी (देहरादून)' के संचालक तथा नियामक के रूप में भी आपकी सेवाएँ सदा-सर्वदा स्मरण की जाती रहेंगी। वहाँ रहकर आपने जौनसार बावर क्षेत्र की पिछड़ी हुई जनता की सेवा करने का जो यज्ञ रचाया था, वह उनके जीवन की उदात्त सेवा-भावना का ज्योतिमन्त प्रतीक था। आपकी निष्ठा, साधना, कर्म-कुशलता और ध्येय के प्रति समर्पित भावना की अभिशंसा देश के सभी गण्यमान्य नेताओं ने की थी। इस क्षेत्र के उन्नायकों में ठक्कर बापा के उपरान्त आपका ही नाम आदर के साथ लिया जाता था।

आप हिन्दी के उद्भट पंडित तथा लेखक होने के साथ-साथ संस्कृत के भी पारंगत विद्वान् थे। पंजाब विश्व-विद्यालय से 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने दर्शनों का इतना गहन अध्ययन किया था कि आपको 'दर्शन केसरी' कहा जाने लगा था। एक गम्भीर विद्वान् होने के नाते आपने अपनी प्रतिभा को कुछ अच्छे साहित्य के निर्माण में भी लगाया था। आपकी पुस्तकों में जहाँ 'गीता नवनीत' और 'देवभूमि हिमालय' के नाम लिये जा सकते हैं वहाँ 'हिन्दुस्तान-तिब्बत की सीमा पर' तथा 'जौनसार बावर' भी उल्लेखनीय हैं। आपने लगभग 30 पृष्ठ की एक पुस्तक वन्य जाति 'गद्दियों' पर भी लिखी थी। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप सभी को 'गद्दियों' के विषय में शोध तथा अनुसन्धान करने की प्रेरणा देते रहते थे।

आपका निधन 22 जुलाई सन् 1966 को हुआ था।

श्री नन्दकिशोर 'किशोर'

श्री किशोर का जन्म जनवरी सन् 1881 में उत्तरप्रदेश के मेरठ जनपद (अब गाजियाबाद) के सदरपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपने हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में सफल रचनाएँ की थीं। उर्दू और फारसी के निष्णात विद्वान् होते हुए भी आपने हिन्दी भाषा को ही मुख्यतः अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। आपकी रचनाएँ उन दिनों मुख्यतः मेरठ से प्रकाशित होने वाली 'ललिता' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती थी।

'हिन्दू कुमार सभा' मेरठ के तत्त्वावधान में आयोजित होने वाले कवि-सम्मेलनों के आप प्रायः स्थायी निर्णायक रहा करते थे। यह एक संयोग की ही बात है कि 'नानकचन्द हाईस्कूल' में पर्शियन भाषा के अध्यापक के रूप में कार्य करते हुए आप हिन्दी को इतना महत्त्व दिया करते थे। हिन्दी के प्रख्यात नाटककार श्री विश्वम्भरसहाय 'व्याकुल' आपके समकालीन थे और उनसे आपने इस क्षेत्र में प्रगति करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की थी। आपकी प्रारम्भिक रच-नाएँ सन् 1911 में 'बाल हितैषी' नामक पत्रिका में प्रकाशित होती थी।
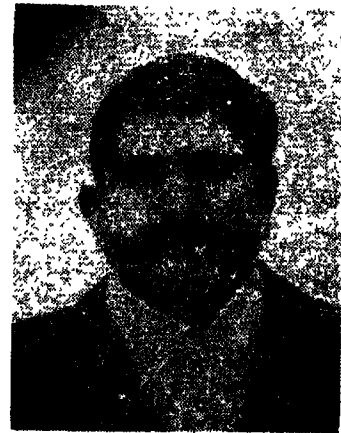
जिन दिनों देश में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन जोरों पर था और लाखों लोग अपने कर्त्तव्य से प्रेरित होकर उसमें भाग ले रहे थे तब 'किशोर' जी कैसे पीछे रहते! आपने भी अपनी राष्ट्रीय रचनाओं से देश के असंख्य युवकों को उद्बोधन देने की दिशा में पर्याप्त उत्साह दिखाया। आपके ऐसे अनेक गीत हैं जो उन दिनों प्रभातफेरियों में गाए जाते थे। आपके :

अधीन होकर बुरा है जीना,
है मरना अच्छा स्वतन्त्र होकर।
सुधा को तजकर गरल का प्याला,
है पीना अच्छा स्वतन्त्र होकर॥

नामक गीत ने किसी समय देश की तरुणाई में आजादी की लड़ाई में भाग लेने की चेतना जगाई थी। आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में गाया जाने वाला 'आनन्द रूप भगवन् किस भाँति तुमको पाऊँ' भजन भी आपकी ही प्रतिभा की देन है। आपकी ही प्रेरणा पर आपके कनिष्ठ भ्राता श्री लक्ष्मीचन्द्र शर्मा 'शिशु' कविता के क्षेत्र में उतरे थे, जो अब भी निरन्तर सृजनशील हैं। 'किशोर' जी की रचनाओं में 'द्रोणाचार्य', 'अभिमन्यु' तथा 'रावण-मन्दोदरी-संवाद' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन अक्तूबर सन् 1961 में हुआ था।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

आचार्य वाजपेयीजी का जन्म सन् 1906 में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के मगरायर नामक ग्राम में हुआ था। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी से एम० ए० करने के उपरान्त आपने पहले-पहल पत्रकारिता को ही अपनाया था और सन् 1930 से सन् 1933 तक इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक भारत' के आप सम्पादक रहे थे। इसके उपरान्त आपने कई वर्ष तक 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के तत्त्वावधान में तैयार होने वाले 'सूर सागर' के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। सन् 1936 में जब यह कार्य पूरा हो गया तब आप 'गीता प्रेस गोरखपुर' चले गए और वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'रामचरितमानस' के सम्पादन में अपना प्रशंस्य सहयोग दिया। इसके बाद आप फिर प्रयाग आ गए और स्वतन्त्र-लेखन का कार्य करने लगे। इसी बीच सन् 1941 में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में चले गए और सन् 1947 में सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष होकर वहाँ चले गए और सेवा-निवृत्ति तक वहीं रहे। सागर विद्यालय से निवृत्ति पाने के उपरान्त आप कई वर्ष तक 'विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन' के कुलपति भी रहे थे।

वाजपेयीजी का स्थान हिन्दी के समीक्षकों में अन्यतम है। छायावाद के व्याख्याता के रूप में आपकी देन सर्वथा विशिष्ट कही जाती है। आपकी पहली समीक्षा-पुस्तक 'हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी' के प्रकाशन ने समीक्षा के क्षेत्र में जहाँ सर्वथा नए आयाम उद्घाटित किए थे वहाँ उसमें समाविष्ट तथा चर्चित साहित्यकारों की मानसिक प्रवृत्तियों का भी अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया गया था। इस पुस्तक में सन् 1930 से सन् 1940 तक के काल-खण्ड में लिखे गए वाजपेयीजी के अनेक समीक्षात्मक निबन्ध आकलित हैं। वाजपेयीजी की दूसरी पुस्तक 'जयशंकर प्रसाद' का प्रकाशन सन् 1938 में हुआ था। इसमें आपने प्रसादजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का ऐसा विवेचन किया है कि पाठक उससे प्रसादजी की कला तथा व्यक्तित्व का सम्यक् अध्ययन कर सकते हैं। आपकी 'प्रेमचन्द' तथा 'महाकवि सूरदास' नामक रचनाओं में इन दोनों कलाकारों की कला का विशद तथा गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आपकी समीक्षात्मक प्रतिभा का व्यापक परिचय आपकी 'आधुनिक साहित्य' तथा 'नया साहित्य : नए प्रश्न' नामक पुस्तकों से भली-भाँति मिल जाता है। इनमें आपके द्वारा समय-समय पर लिखे गए फुटकर समीक्षात्मक लेखों का

संकलन प्रस्तुत किया गया है। मुख्य रूप से वाजपेयीजी की समीक्षात्मक ऊर्जा अनेक ग्रन्थों की भूमिकाओं में अत्यन्त उत्कटता से प्रकट हुई है। जिन पुस्तकों की भूमिकाओं में वाजपेयीजी की आलोचना-शैली की उदात्तता के दर्शन होते हैं उनमें श्री जयशंकरप्रसाद की 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'गीतिका', श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'खाली बोतल', श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की 'अपराजिता', श्री जानकीवल्लभ शास्त्री की 'छायावाद और रहस्यवाद' तथा हमारी 'साहित्य विवेचन' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने 'द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ' तथा 'रत्नाकर संग्रह' की भी विस्तृत प्रस्तावनाएँ लिखी थीं। आपने डॉ० श्यामसुन्दरदास द्वारा लिखित 'हिन्दी भाषा और साहित्य' तथा 'साहित्यालोचन' के नवीन संस्करणों का संशोधन तथा परिवर्द्धन भी किया था।

इस रचनात्मक कृतित्व के अतिरिक्त सम्पादन तथा अनुवाद के क्षेत्र में भी आपकी देन अनन्य है। आपने जहाँ डॉ० भगवानदास की 'धर्मों की एकता' नामक कृति का सफल हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था वहाँ आपके द्वारा सम्पादित कृतियों में 'हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ', 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', 'सूर-सुषमा', 'सूर-सन्दर्भ' और 'साहित्य-सुषमा' आदि प्रमुख हैं। आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में समय-समय पर जो लेख आदि लिखे थे उनका सकलन आपकी 'राष्ट्रभाषा की समस्याएँ' नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। भूमिका-लेखन और सम्पादन के अतिरिक्त आपकी समीक्षा-शैली का परिचय तब भी मिला था जब आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के पूना-अधिवेशन के अवसर पर आयोजित 'साहित्य परिषद्' के अध्यक्ष बनाए गए थे। इस अवसर पर अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए आपने 'प्रगतिशील साहित्य' के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए थे, वे उन दिनों काफी चर्चा के विषय रहे थे। आप 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की 'हीरक जयन्ती' के अवसर पर आयोजित 'साहित्य परिषद्' के भी अध्यक्ष रहे थे। विश्वविद्यालयीन हिन्दी प्राध्यापकों की 'हिन्दी परिषद्' के अध्यक्ष के रूप में आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

आपकी समीक्षात्मक मेधा का ज्वलन्त परिचय उन शोध-प्रबन्धों को देखने से मिलता है जो आपने अपने सागर विश्वविद्यालय की अध्यक्षता के काल में निर्देशित किए थे। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आपके निर्देशन में जो शोध-प्रबन्ध तैयार किए गए थे, वे स्तरीय और संग्रहणीय हैं। वाजपेयीजी समीक्षा को किसी वाद-विशेष के बाड़े में बाँधने के पक्षपाती नहीं थे। आपने आचार्य शुक्ल द्वारा प्रवर्तित समीक्षा-शैली से कुछ हटकर ऐसा समन्वय का मार्ग साहित्य के अध्येताओं के समक्ष प्रस्तुत किया था जिससे आलोचना को एक नई दिशा मिली है।

आपका निधन 21 अगस्त सन् 1967 को हृदयाघात के कारण हुआ था।

आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ उन व्यक्तियों में से थे जो अहिन्दी-भाषी होते हुए भी आजीवन संस्कृत वाङ्मय और हिन्दी की सेवा में ही लगे रहे और जिन्होंने अपना कार्यक्षेत्र अपनी जन्मभूमि को न बनाकर उत्तर भारत को ही बनाया। आपका जन्म 21 अक्तूबर सन् 1880 को हैदराबाद रियासत के शहम स्थान में एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपकी मातृभाषा मराठी थी और आपका जन्म का नाम नरसिंहराव था। यही 'नरसिंहराव' बाद में 'नरदेव' बन गया और एक समय ऐसा भी आया जबकि सामान्यतः समस्त हिन्दी-प्रेमियों और विशेषतः उत्तर भारत में वह 'नरदेव शास्त्री' तथा 'रावजी' इन दो नामों से विख्यात हो गए। आपके अत्यन्त निकटवर्ती लोग आपको 'रावजी' इसलिए कहते थे कि आपकी वंश-परम्परा से चला आने वाला 'राव' शब्द आपके जीवन में असामान्य रूप से घुल-मिल गया था।

जब आप छोटे ही थे तो संस्कृत साहित्य का सांगोपांग अध्ययन करने के लिए लाहौर चले गए। लाहौर में रहकर आपने पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की और बाद में कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित सत्यव्रत सामश्रमी के निरीक्षण में वेदों का पारायण किया।

वहीं से 'ऋग्वेद' के विशेष अध्ययन के साथ आपने 'वेदतीर्थ' परीक्षा अत्यन्त योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण की। तभी से आप 'नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ' हो गए।

वेदतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप लाहौर चले गए और आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता स्वामी श्रद्धानन्द (जो उस समय महात्मा मुन्शीराम के नाम से विख्यात थे) के साथ मिलकर शिक्षा के क्षेत्र में नए प्रयोग करने का निश्चय किया। वहीं पर आपकी सुप्रसिद्ध समालोचक पंडित पद्मसिंह शर्मा से भेंट हुई। उस समय पंजाब में आर्यसमाज द्वारा प्रचलित सुधारों का बड़ा जोर था। कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने पर आपने लाहौर को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया और धीरे-धीरे कुशल कार्यकर्त्ताओं की एक ऐसी मंडली तैयार हो गई कि उस मंडली ने बाद में देश के सामाजिक, शैक्षणिक और साहित्यिक जागरण के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बना लिया।

महात्मा मुन्शीराम आर्यसमाज के उन नेताओं में से थे जो देश को एक नया मोड़ देना चाह रहे थे। अपनी इस धारणा को क्रियान्वित करने के पावन उद्देश्य से आपने हरिद्वार के समीपवर्ती शिवालक पर्वत की पवित्र उपत्यका में 'गुरुकुल कांगड़ी' की स्थापना की। इस संस्था का सूत्रपात आपने इस दृष्टि से किया था कि वहाँ पर भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों का समन्वय करने वाली ऐसी शिक्षा-पद्धति का प्रचलन करेंगे, जिसका माध्यम अँग्रेजी न होकर हिन्दी हो। आपकी यह भी धारणा थी कि इस संस्था में वेदों, उपनिषदों और दर्शनों का विधिवत् अध्ययन करने के साथ-साथ हमारे युवक देश की प्रगति से भी सर्वथा परिचित रहेंगे। अपने इस स्वप्न को साकार करने के लिए महात्मा मुन्शीराम ने जिन महारथियों का सहयोग लिया था, उनमें से एक नरदेव शास्त्री भी थे। आप उन दिनों स्व० आचार्य गंगादत्तजी (जो बाद में स्वामी शुद्धबोध तीर्थ के नाम से विख्यात हुए) के साथ पंजाब के गुजरानवाला स्थान में एक विद्यालय में पढ़ाते थे। उन दिनों कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्रत्येक विषय के धुरन्धर विद्वानों का अपूर्व जमघट था। पं० पद्मसिंह शर्मा भी बाद में वहाँ पहुँच गए थे।

उन्हीं दिनों ज्वालापुर में आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी तार्किक शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने एक ऐसे गुरुकुल की स्थापना की, जिसमें प्रत्येक वर्ग, जाति और समाज के बालकों को संस्कृत साहित्य और उसके वेद, उपनिषद्, दर्शन तथा धर्मशास्त्र आदि उपांगों की वैदिक दृष्टिकोण से निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। कांगड़ी गुरुकुल में 'विश्वविद्यालयीय पद्धति' पर शिक्षा दी जाती थी। ज्वालापुर महाविद्यालय की नींव सन् 1908 में इसलिए डाली गई थी कि इस संस्था में प्राचीन ऋषि-परम्परा के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था हो। जब इस संस्था की स्थापना हुई तो श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ और गंगादत्तजी भी कांगड़ी से चले आए। प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पं० भीमसेन शर्मा, गणपति शर्मा और पद्मसिंह शर्मा भी उन दिनों गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में आपके साथियों में थे। इन पाँच महापुरुषों ने मिलकर ज्वालापुर महाविद्यालय के द्वारा उत्तर भारत की जो सेवा की वह सर्वविदित है। नरदेव शास्त्रीजी जब से इस संस्था में आए तब से अन्त तक आप इस संस्था के मन्त्री, मुख्याधिष्ठाता, आचार्य और कुलपति आदि विभिन्न पदों पर अवैतनिक रूप से कार्य करते रहे। देहावसान से पूर्व भी आप इस संस्था के 'कुलपति' के पद पर प्रतिष्ठित थे। अपने जीवन के प्रति आप अनासक्त रहते थे। आपकी इस अनासक्ति का यह उज्ज्वल प्रमाण है कि आप यावज्जीवन ब्रह्मचारी रहे। पैसे का कभी आपने लोभ नहीं किया। संग्रह की कामना आपमें तनिक भी न थी। एक जोड़ी कपड़ा और कुछ पुस्तकों के अतिरिक्त आपकी कोई सम्पत्ति न थी।

आप केवल कठमुल्ला प्रकृति के आर्यसमाजी अध्यापक ही नहीं थे, प्रत्युत अपनी कर्मठता से आपने समस्त उत्तराखण्ड के सामाजिक जन-जीवन में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। वर्षों तक गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में आचार्य के पद पर कार्य करते हुए जहाँ आपने अनेक

विषयों के पारंगत विद्वान् स्नातक देश को दिए वहाँ राजनीति के क्षेत्र में भी आप किसी से कम नहीं रहे। देहरादून और गढ़वाल के तो जैसे आप 'बिना ताज के बादशाह' थे। यह आपकी निःस्वार्थ सेवाओं और कर्मठ जीवन का ही प्रमाण है कि वहाँ के गाँव-गाँव में नरदेव शास्त्री का नाम आज भी एक देवता के रूप में याद किया जाता है। देश की स्वतन्त्रता के लिए चलाए गए सभी आन्दोलनों में आपने इस प्रदेश की जनता का सही नेतृत्त्व किया और अपना वह स्थान बनाया कि बड़े-से-बड़े नेता भी आपके नाम और काम की इज्जत करते थे। यह आपकी कर्मठता और लोकप्रियता का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि आपने इस प्रदेश में जहाँ अनेक राजनीतिक सम्मेलनों का नेतृत्व किया वहाँ कई ऐसे समारोहों के स्वागताध्यक्ष भी रहे जिनमें देश के चोटी के नेताओं ने आपके निमन्त्रण पर भाग लिया। देहरादून और ऋषिकेश आपके राष्ट्रीय जीवन की कर्मभूमि रहे हैं। आज जितने भी राजनीतिक नेता इस क्षेत्र में उत्कर्ष पर हैं, उन सभी को शास्त्रीजी का आशीर्वाद प्राप्त था। निरन्तर 20-25 वर्ष तक आप इसी क्षेत्र से अ० भा० कांग्रेस कमेटी के सदस्य के रूप में जनता का नेतृत्व करते रहे थे। काफी समय तक आप उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य भी रहे। बाद में दलबन्दी के प्रति घोर अनास्था के कारण आप राजनीतिक क्षेत्र से हट गए थे।

'भारतोदय' के सम्पादक के रूप में आपने साहित्य-सेवा और पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया था। पंडित पद्मसिंह शर्मा ने जब 'भारतोदय' के सम्पादन से विश्राम ग्रहण किया था तो आपने उनकी कमी का आभास हिन्दी-जगत् को नहीं होने दिया और जब तक वह प्रकाशित हुआ तब तक आप उसके सम्पादक रहे। 'भारतोदय' के अतिरिक्त मुरादाबाद से प्रकाशित होने वाले 'शंकर' नामक मासिक पत्र का सम्पादन भी आपने कई वर्ष तक अत्यन्त उत्साह के साथ किया था। आगरा से प्रकाशित होने वाले 'दिवाकर' नामक साप्ताहिक पत्र का 'वेदांक' जिन व्यक्तियों ने देखा होगा वे आपकी विद्वत्ता और सम्पादन-पटुता से भली-भाँति अवगत हो गए होंगे। आप एक अच्छे पत्रकार होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक और विचारक भी थे।

आपने 'आत्मकथा या आपबीती-जगबीती' नाम से. अपनी एक विस्तृत आत्मकथा भी लिखी थी, जो न केवल आपकी जीवनी को ही हमारे सामने प्रस्तुत करती है, बल्कि उसको पढ़कर हम पिछले 5-6 दशकों की साहित्यिक, राजनीतिक और शैक्षणिक प्रवृत्तियों का लेखा-जोखा भी प्राप्त कर सकते हैं। देहरादून में अ० भा० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन स्व० माधवराव सप्रे की अध्यक्षता में सन् 1924 में हुआ था, उसके स्वागताध्यक्ष भी आप ही थे। यह आपकी लोकप्रियता का ही प्रमाण है कि भरतपुर में हुए अ०भा० 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' में आयोजित 'पत्रकार सम्मेलन' का संयोजक पद आपको प्रदान किया गया था। नागपुर में डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन सन् 1936 में हुआ था, उसमें हुई 'दर्शन परिषद्' के अध्यक्ष भी आप ही थे। देश का कोई भी और किसी भी विचार-धारा का पत्र ऐसा नहीं बचा था, जिसमें आपके लेख सम्मानपूर्वक न छपते हों। विभिन्न विषयों पर आपने इतना अधिक लिखा था, यदि उस सबको ही विषय-क्रम से सम्पादित करके प्रकाशित कर दिया जाय तो वह साहित्य में आपकी देन का उज्ज्वल और ज्वलंत प्रतीक होगा। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'पत्रपुष्प' (दो भाग), 'आर्यसमाज का इतिहास' (दो भाग), 'गीता विमर्श', 'ऋग्वेदालोचन', 'सचित्र शुद्धबोध', 'यज्ञ में पशु-वध वेद-विरुद्ध', 'देहरादून-गढ़वाल के राजनीतिक आन्दोलन का इतिहास' और 'स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का संक्षिप्त जीवन-चरित्र' आदि उल्लेखनीय है।

यह आप-जैसे वरिष्ठ और तपस्वी प्रकृति के व्यक्ति का ही पुण्य प्रताप था कि देश का ऐसा कोई भी नेता, महापुरुष, शिक्षा-शास्त्री, साहित्यकार और पत्रकार नहीं बचा जो गुरुकुल ज्वालापुर में न आया हो। आपका व्यक्तित्व इतना अद्भुत और आकर्षक था कि चाहे किसी भी विचार-धारा का व्यक्ति आपसे मिलने आता, वह आपसे प्रभावित हुए बिना न लौटता था। वास्तव में साहित्य में आप इतने रम गए थे कि आपको उसके बिना चैन नहीं मिलता था। राजनीति, साहित्य और धर्म की 'त्रिवेणी' यदि किसी व्यक्ति के जीवन में अवतरित हुई तो वे आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ही थे। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन और राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का ऐसा कोई ही अधिवेशन बचा होगा जिसमें आप न सम्मिलित हुए हों। वास्तव में आप 'साहित्य-तीर्थ' थे।

आपका निधन 24 सितम्बर सन् 1962 को हुआ था।

श्री नरेन्द्रनारायण सिनहा

श्री सिनहा का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के नन्दवारा नामक ग्राम में सन् 1883 में हुआ था। सन् 1900 में एन्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण करके आगे की शिक्षा आपने अपने स्वाध्याय के बल पर ही बढ़ाई थी। आप हिन्दी, अँग्रेजी, संस्कृत और बँगला पर समान रूप से अधिकार रखते थे। आर्थिक अवस्था की हीनता के कारण आप आगे नहीं पढ़ सके थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आपने बैरगनिया (मुजफ्फरपुर) के गुरुकुल को भवन-निर्माणार्थ तीन हजार रुपए दिए थे। गुरुकुल के उस भवन का नाम 'नरेन्द्र भवन' है। सन् 1904 में आप दरभंगा राज्य की ओर से कारिन्दे के रूप मे कलकत्ता चले गए लेकिन उस कार्य मे आपका मन नहीं लगा। फलस्वरूप सर्वप्रथम आप जस्टिस शारदाचरण मित्र की 'एक लिपि विस्तार परिषद्' के मुखपत्र 'देवनागर' के सम्पादक हो गए और सन् 1907 में आपने 'भारत मित्र' तथा सन् 1908 में 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादकीय विभाग में कार्य प्रारम्भ किया। कुछ दिन तक कलकत्ता से ही प्रकाशित होने वाले 'प्रभाकर' और 'हिन्दी कल्पद्रुम' के भी आप सम्पादक रहे थे। सन् 1911 मे आप कलकत्ता से प्रयाग जाकर वहाँ के इण्डियन प्रेस से प्रकाशित होने वाली 'सरस्वती' नामक प्रख्यात पत्रिका के सहकारी सम्पादक हो गए। एक वर्ष बाद आपने वहाँ के ही साप्ताहिक 'अभ्युदय' और मासिक 'मर्यादा' के सम्पादन का भार भी अपने ऊपर ले लिया। उन्हीं दिनों आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मन्त्री भी रहे थे। सम्मेलन से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' का जन्म भी आपके ही समय में हुआ था और आपने एक वर्ष तक उसका सफलतापूर्वक सम्पादन भी किया था। सन् 1915 में आप पटना के खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'हरिश्चन्द्र कला' का सम्पादन करने के लिए पटना आए और उसके बाद उसी प्रेस से प्रकाशित होने वाली 'शिक्षा' नामक पत्रिका के सम्पादक भी रहे। यहाँ यह स्मरणीय है कि आपने इस पत्रिका का सम्पादन सन् 1934 तक बड़ी निष्ठा से किया था। बिहार राज्य के कृषि विभाग की ओर से प्रकाशित होने वाले 'किसान' नामक त्रैमासिक पत्र के सम्पादन में भी आपका अनन्य सहयोग रहा था और जब वह नियमित रूप से प्रकाशित होने लगा तो उस पर सम्पादक के रूप में आपका ही नाम छपता था। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'महाराजकुमार रामदीन सिंह', 'इन्द्रगुप्त', 'आत्मोपदेश' और 'हनुमान शतक' के नाम उल्लेखनीय हैं। आपको बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद् की ओर से बिहार के वयोवृद्ध साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया गया था।
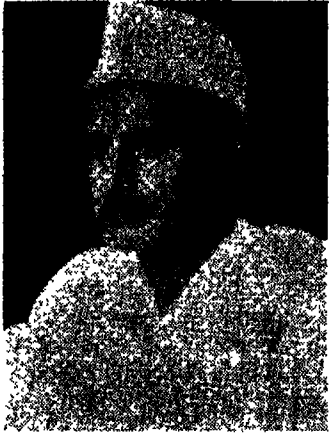
आपका निधन 6 मार्च सन् 1966 को गुरुकुल महाविद्यालय, बैरगनिया (मुजफ्फरपुर) में हुआ था।

श्री नर्मदाप्रसाद खरे

श्री खरेजी का जन्म 6 अक्तूबर सन् 1913 को जबलपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। आपकी शिक्षा मिडिल तथा हिन्दी नार्मल की परीक्षा से आगे नहीं हो सकी थी। आपकी नियुक्ति सर्वप्रथम जबलपुर के फूटा ताल नामक मोहल्ले के एक प्राइमरी स्कूल में शिक्षक के रूप में हुई थी और आपने लगभग 12 वर्ष तक यह कार्य किया था। शिक्षक के रूप में आपकी कर्मठता तथा अध्यवसायिता का परिचय जबलपुर के नागरिकों को मिला तो श्री बालगोविन्द गुप्त ने आपको अपने साप्ताहिक पत्र 'शुभचिन्तक' का सम्पादन करने के लिए अपने यहाँ बुला लिया। खरेजी ने लगभग 12 वर्ष तक पत्र का सम्पादन अत्यन्त निष्ठा और तत्परता से किया। आपकी पत्रकारिता के प्रति अनन्य लगन का परिचय इसी बात से मिलता है कि उन दिनों भी आप अपने लेखकों और संवाददाताओं को पारिश्रमिक दिलवाया करते थे।

खरेजी का साहित्यिक जीवन विधिवत् सन् 1930 से

उस समय प्रारम्भ हुआ था जब आपकी 'तुम' शीर्षक कविता सर्वप्रथम 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी और उन्हीं दिनों आपका एक यात्रा-विवरण लखनऊ से प्रकाशित होने वाली 'माधुरी' में छपा था। आपने सन् 1930 से सन् 1933 तक श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव की 'प्रेमा' नामक साहित्यिक पत्रिका के सम्पादन में भी सहयोग दिया था, जो उन दिनों जबलपुर से प्रकाशित होती थी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 'शुभचिन्तक' से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने के उपरान्त आपने 'लोक-चेतना प्रकाशन' नाम से पुस्तकों की एक दुकान भी खोल ली थी, जो बाद में खरेजी के लिए वरदान सिद्ध हुई। धीरे-धीरे उसका कार्य बढ़ने लगा और आज 'लोक चेतना प्रकाशन' मध्य प्रदेश की प्रमुख प्रकाशन संस्थानों में गिना जाता है।

लेखन के क्षेत्र में आपने पत्रकारिता के अतिरिक्त कविता, कहानी तथा संस्मरण आदि विभिन्न विधाओं में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। आपकी सहधर्मिणी श्रीमती शकुन्तला खरे भी हिन्दी की उत्कृष्ट कवयित्री रही हैं। एक सहृदय साहित्यिक, जागरूक प्रकाशक और कुशल प्रबन्धक के रूप मे मध्य प्रदेश के साहित्यिक जगत् में आपका कोई सानी नही था। आपकी यह प्रबन्ध-पटुता का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि आपने 'मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' को एक सशक्त संस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसकी ओर मे 'विवरणिका' का प्रकाशन भी नियमित रूप से करने की व्यवस्था की।

हिन्दी के एक सशक्त गीतकार तथा कुशल साहित्यकार के रूप में आपका स्थान मध्य प्रदेश में सर्वथा विशिष्ट था। आपके 'स्वर पाथेय', 'ज्योति गंगा', 'मारण त्योहार के गायक', 'महक उठे शूल', 'नाम उजागर करो देश का', 'बाँसुरी' तथा 'राष्ट्रपिता को रोते देखा' आदि कविता-संग्रहों के अतिरिक्त 'रोटियों की वर्षा', 'कथा कलश', 'नीराजना', 'बर्फ से दबी आग' तथा 'चार चिनार और दो गुलाब' आदि कहानी-संकलन प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त बालोपयोगी साहित्य की सर्जना करने की दिशा में भी आपकी देन अनुपम है। जीवनी और संस्मरण-लेखक के रूप में भी आपने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। आपकी ऐसी कृतियों में 'साहित्य जगत् के विनोबा बख्शीजी' तथा 'कुछ काँटे : कुछ फूल' ख्यातव्य हैं। आपने 'शुभचिन्तक' और 'प्रेमा' के सम्पादन में सक्रिय सहयोग देने के अतिरिक्त 'प्रहरी', 'युगारम्भ', 'नया उपन्यास', 'कविता, कविता, कविता', 'पतित बन्धु' और 'गिलहरी' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया था। आपके 'चार चिनार दो गुलाब' नामक कहानी-संकलन पर 'मध्यप्रदेश प्रशासन साहित्य परिषद्' ने 1500 रुपये का 'सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार' प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त 'मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने 6 मई सन् 1972 को आपका अभिनन्दन भी किया था। आप अनेक वर्ष तक सम्मेलन के प्रधानमन्त्री और कार्यकारी अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका निधन 12 दिसम्बर सन् 1975 को हुआ था।

मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

मुन्शी नवजादिकलालजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के चिलकहर नामक स्थान में सन् 1888 में हुआ था। आपके पिता श्री रामलाल श्रीवास्तव आपकी शैशवावस्था में ही घर छोड़कर चले गए थे और साधु बन गए थे। फलस्वरूप आपका पालन-पोषण आपके मामा के यहाँ हुआ था। जब आपकी माताजी का भी असमय में निधन हो गया तो आप अत्यन्त दरिद्रता की स्थिति में कलकत्ता चले गए और वहाँ पर 'पोस्टमैन' की नौकरी कर ली। धीरे-धीरे आपका परिचय वहाँ के कुछ पत्रों और प्रेसों के संचालकों से हो गया और आपने थोड़े ही दिनों में अपने अध्यवसाय से

हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, बंगला और संस्कृत आदि भाषाओं का गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपके तीन विवाह हुए थे और तीनों पत्नियाँ बहनें ही थीं। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी पत्नी से आपको 3 पुत्रों तथा 4 पुत्रियों का लाभ हुआ था। आपकी एक पुत्री तारा का विवाह आचार्य शिवपूजन-सहाय ने अपने भतीजे से तय किया जबकि मुन्शी नवजादिकलाल की पत्नी ने उनसे सहायता की याचना की थी। दूसरी पुत्री चन्दा का विवाह आचार्यजी के सुपुत्र श्री आनन्दमूर्ति से हुआ था, जिसका बाद में स्वर्गवास हो गया।

मुन्शीजी स्वभाव से अत्यन्त सरल, ईमानदार और दयालु थे। भ्रमण करने के अतिरिक्त फिल्मों का अवलोकन करने में भी आपकी गहरी रुचि थी। आपने अपना साहित्यिक व्यक्तित्व अपनी कर्मठता और परिश्रमशीलता से ही बनाया था। साधारण पोस्टमैन की नौकरी से साहित्य के क्षेत्र में एक प्रखर पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित कर लेना आपकी परिश्रमशीलता का ही परिचायक है। आप जहाँ उच्चकोटि के लेखक थे वहाँ हिसाब-किताब रखने की कला में भी निष्णात थे। 'मतवाला' के संचालक श्री महादेवप्रसाद सेठ तो अपने व्यापार-व्यवसाय के सिलसिले में कलकत्ता कभी-कभी ही आते थे। आप प्रायः मिर्जापुर ही रहते थे। 'मतवाला' की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव को ही दिया जा सकता है। मुन्शीजी उसके सम्पादन में सहयोग देने के साथ-साथ व्यवस्था भी सारी देखते थे। उन दिनों 'मतवाला' की 10 हजार प्रतियाँ छपती थीं। उसकी कागज, स्याही, ब्लाक तथा बिक्री आदि की सारी देख-भाल आप ही किया करते थे। अपनी हिसाब रखने की इस प्रवृत्ति के कारण ही आपको 'मुन्शी' कहा जाता था। 'मतवाला' में 'मतवाला की बहक' नामक जो स्तम्भ निकलता था उसे आप ही लिखा करते थे।

'मतवाला' में आने से पूर्व आपने कलकत्ता के 'तेल-साबुन-इत्र' के कारखाने 'भूतनाथ कार्यालय' में नौकरी कर ली थी। इस कार्यालय की छपाई का काम महादेवप्रसाद सेठ के बालकृष्ण प्रेस में ही होता था। इस नाते आप श्री सेठजी के विश्वासभाजन बन गए थे। मुन्शीजी के आश्वासन पर ही सेठजी ने 'मतवाला' निकाला था। 'मतवाला' में उन दिनों मुन्शीजी के अतिरिक्त श्री ईश्वरीप्रसाद शर्मा, श्री शिवपूजन सहाय, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और पाण्डेय बेचनशर्मा 'उग्र' भी कार्य करते थे। 'भूतनाथ कार्यालय' की ओर से मुन्शीजी ने 'सरोज' नामक एक साहित्यिक पत्र का सम्पादन तथा प्रकाशन भी किया था, जिसके कुछ अंक ही प्रकाशित हुए थे। 'मतवाला मण्डल' की लोकप्रियता की पृष्ठभूमि में मुन्शीजी का बहुत बड़ा हाथ था और उन्हीं-के कारण 'मतवाला' की धाक उन दिनों के साहित्यिक पत्रों में पूरी तरह जम गई थी। जब 'मतवाला' जम गया तो सेठ महादेवप्रसाद ने उसे मिर्जापुर से निकालने का निश्चय कर लिया, इससे मुन्शीजी को बड़ी ठेस पहुँची। फलस्वरूप 'भूतनाथ कार्यालय' के निमन्त्रण पर आप फिर वहाँ चले गए और 'मस्त मतवाला' नामक साप्ताहिक निकालने लगे। किन्तु अर्थाभाव के अड़ंगों ने मुन्शीजी के मार्ग में यहाँ भी बाधा डाली और वह भी बन्द हो गया।

इसके उपरान्त आप कलकत्ता के उस वातावरण से सर्वथा निराश होकर प्रयाग चले आए और यहाँ पर 'चाँद' का सम्पादन करने लगे। 'चाँद' का सम्पादन-भार ग्रहण करते हुए आपने आचार्य शिवपूजन सहाय को जो पत्र लिखा था उससे आपकी पीड़ा और मनोभावना का परिचय मिलता है। उस पत्र की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"साहित्यिक व्यसन की पूर्ति के लिए ही मैंने 'भूतनाथ कार्यालय' का परित्याग किया था। मुझमें त्याग की कोई ऊँची भावना न थी। किन्तु मेरी दृष्टि में जो तुच्छ त्याग था, वह जगदाधार की दृष्टि में महान् प्रतीत हुआ, जिसका फल भी उसने दे दिया। मैं शान्तिपूर्ण स्थान पर पहुँच गया। यदि नियति की नीयत ठीक रही तो आशा है यहाँ भी उतने ही आराम से जिन्दगी कट जाएगी जितने सुख से चौधरीजी के यहाँ 'भूतनाथ कार्यालय' में कटी थी।" किन्तु दैव दुर्विपाक ने यहाँ भी पिण्ड न छोड़ा और आपको 'चाँद' से भी त्यागपत्र देना पड़ा। मुन्शी जी का 'उत्कट स्वाभिमान' यहाँ भी आड़े आया। 'चाँद' के

बाद आप फिर कलकत्ता चले गए और श्री ईश्वरीप्रसाद शर्मा की स्मृति में 'हिन्दू पंच' का सम्पादन प्रारम्भ किया। ईश्वरीप्रसाद शर्मा आपके पुराने 'मतवाला मण्डल' के साथी थे और 'हिन्दू पंच' का सम्पादन वे ही किया करते थे। 'हिन्दू पंच' के पुनरुद्धार से मुन्शीजी सर्वथा संतुष्ट थे, किन्तु वह भी अधिक दिन तक न चल सका। मुन्शीजी की आर्थिक विपन्नता को देखकर कलकत्ता से ही प्रकाशित होने वाली 'जागृति' (साप्ताहिक) के उदारमना संचालक श्री मिहिरचन्द्र धीमान् ने आपको अपने यहां बुला लिया और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक आप उसीका सम्पादन करते रहे।

मुन्शीजी एक सफल पत्रकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के लेखक भी थे। आपके द्वारा लिखित और अनूदित अनेक पुस्तकें इसकी साक्षी हैं। आपने जहां लाला लाजपतराय की ओजपूर्ण जीवनी लिखी थी वहां 'शान्ति निकेतन', 'बेगमों के आँसू' और 'पराधीनों की विजय यात्रा' नामक उपन्यास भी लिखे थे। आपकी 'गृहिणी-कर्त्तव्य' नामक महिलोपयोगी पुस्तक ने जहां पाठकों को लाभान्वित किया था वहां जीवनी-लेखन में भी आपने अपनी सफलता के मानदण्ड स्थापित किए थे। आपकी ऐसी जीवनियों में 'श्रीकृष्ण', 'सती रुक्मिणी', 'सती बेहुला' तथा 'नल दमयन्ती' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन जुलाई सन् 1939 में हुआ था।

डॉ० नवलबिहारी मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के गन्धौली नामक स्थान में 25 दिसम्बर सन् 1901 को हुआ था। आपके पिता श्री रसिकबिहारी मिश्र भी साहित्य-मर्मज्ञ थे और पितामह श्री नन्दकिशोर मिश्र 'लेखराज' तो हिन्दी के अच्छे कवि थे। आपके तीन भाई थे। सबसे बड़े श्री कृष्णबिहारी मिश्र हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और समालोचक थे। दूसरे थे श्री विपिनबिहारी मिश्र। आप अपने भाइयों में तीसरे और सबसे छोटे थे। गोलागंज (लखनऊ) के मिश्रबन्धुओं (गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेवबिहारी मिश्र) की प्रतिभा श्री रसिकबिहारी मिश्र के पुत्रों (कृष्णबिहारी मिश्र और नवलबिहारी मिश्र) को विरासत में मिली थीं।

श्री नवलबिहारी मिश्र ने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० बी० बी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण करके सन् 1930 से सीतापुर को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया और एक चिकित्सक के रूप में अच्छी ख्याति प्राप्त करने के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी आपने अपना अनन्य योगदान दिया। सन् 1940 में आपने अपने अग्रज श्री कृष्णबिहारी मिश्र के साथ मिलकर सीतापुर में 'हिन्दी सभा' की स्थापना की। कालान्तर में इस सभा ने इतनी उन्नति की कि उसके वार्षिकोत्सवों में समय-समय पर डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, महादेवी वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० दीनदयाल गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर और श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों ने पधारकर सीतापुर की जनता को उपकृत किया था।

श्री मिश्र एक कुशल चिकित्सक, पुरातत्त्वज्ञ, कहानीकार, निबन्धकार, अनुवादक और समालोचक थे। वैज्ञानिक कहानी-लेखन के क्षेत्र में तो आपकी देन अनन्य ही थी। आपने 'विज्ञान जगत्', 'विज्ञान लोक' और 'नीहारिका' नामक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में अपना अभूतपूर्व सहयोग दिया था। इन पत्रों के सम्पादन के दिनों में आपने अनेक विदेशी वैज्ञानिक उपन्यासों के प्रकाशन के साथ-साथ स्वस्थ और दुर्लभ बाल-साहित्य का सृजन भी किया था।

साहित्य-सृजन और चिकित्सा-कार्य में दिन-रात लगे रहने के साथ-साथ आपकी सामाजिक क्षेत्र में भी अनेक सेवाएँ थीं। आपके द्वारा संस्थापित सीतापुर की 'हिन्दू कन्या पाठशाला', मिसरिख का 'महर्षि दधीचि इण्टर कालेज',

'नरेन्द्रदेव अकादमी टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, सीतापुर' और 'समाज सेवा संघ' आदि अनेक संस्थाएँ इसका ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं। इसके अतिरिक्त आप 'जिला गजेटियर संशोधन कमेटी' और आकाशवाणी लखनऊ की कार्यक्रम परामर्श समिति के भी अनेक वर्ष तक सदस्य रहे थे।

आपकी प्रमुख प्रकाशित रचनाओं में 'अधूरा आविष्कार' (1960), 'सत्य और मिथ्या' (1963) आदि वैज्ञानिक कहानी-संकलनों के अतिरिक्त 'उड़ती मोटरों का रहस्य', 'नई सृष्टि', 'आकाश का राक्षस', 'पाताल लोक की यात्रा', 'साहसी बालक' तथा 'गप्पें' आदि उपन्यास प्रमुख हैं।

आपका निधन 4 जून सन् 1978 को हुआ था।

श्री नवीनचन्द्र राय

श्री राय का जन्म 20 फरवरी सन् 1838 को उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर में हुआ था। आप जब केवल डेढ़ वर्ष के ही थे कि आपके पिता पं० राममोहन राय का निधन हो गया और विधिवत् शिक्षा ग्रहण करने के सुअवसरों से वंचित हो जाने के कारण आपको 13 वर्ष की अल्पायु में ही सरधना में 16 रुपए मासिक की नौकरी करने को विवश होना पड़ा। बाद में अपने अध्यवसाय से ही आपने अपनी हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी की योग्यता बढ़ाई और फिर धीरे-धीरे इंजीनियरिंग की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। आप विचारों से ब्रह्मसमाजी और स्त्री-शिक्षा के कट्टर हिमायती थे।

आप अपनी आजीविका के प्रसंग में जब पंजाब गए तथा आपने वहाँ हिन्दी के प्रचार की दिशा में बहुत बड़ा कार्य किया। उत्तर प्रदेश में जो कार्य शिक्षा विभाग में रहते हुए राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने किया वही कार्य पंजाब विश्वविद्यालय का असिस्टेंट रजिस्ट्रार रहते हुए श्री राय ने पंजाब में किया था। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में आपकी सेवाएँ स्मरणीय और उल्लेखनीय इसलिए हैं कि आपने ही सर्वप्रथम पंजाब में 'फीमेल नार्मल स्कूल' की स्थापना की और पंजाब विश्वविद्यालय के अन्तर्गत हिन्दी की रत्न, भूषण और प्रभाकर परीक्षाओं का संचालन महिलाओं के लिए किया, जो बाद में बहुत लोकप्रिय हुई और महिलाओं के अतिरिक्त समग्र देश के पुरुषों ने भी इनका पूर्ण लाभ लिया। आप जहाँ अनेक वर्ष तक ओरियण्टल कालेज, लाहौर के प्रिंसिपल रहे थे वहाँ यूनिवर्सिटी के फैलो भी निर्वाचित हुए थे।

आपने हिन्दी में जहाँ 'नवीन चन्द्रोदय', 'सरल व्याकरण', 'निर्माण विद्या' (तीन भाग), 'जल गति और जल स्थिति', 'वायुक तत्त्व', 'स्थिति तत्त्व और गति तत्त्व', 'सद्धर्म सूत्र', 'शब्दोच्चारण', 'आचारादर्श', 'धर्म दीपिका', 'ब्रह्म धर्म के प्रश्नोत्तर' तथा 'लक्ष्मी सरस्वती संवाद' आदि अनेक पुस्तकें लिखी थीं वहाँ 'ज्ञान प्रदायिनी' और 'सुगृहिणी' नामक पत्रिकाओं का संचालन भी किया था। इनमें से पहली पत्रिका का सम्पादन आप स्वयं करते थे और दूसरी की सम्पादिका आपकी सुपुत्री हेमन्तकुमारी चौधरी थीं। बंगला - भाषा-भाषी होते हुए भी आपने हिन्दी-प्रचार के कार्य में जो रुचि ली वह सर्वथा अभिनन्दनीय कही जा सकती है।

आप जहाँ शुद्ध हिन्दी के समर्थक थे वहाँ आपने पंजाब में विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार के रूप में शिक्षा के प्रसार एवं प्रचार में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। आपने पंजाब में जहाँ हिन्दी-पत्रकारिता के प्रेरणा-स्रोत का कार्य सर्वथा श्रद्धा भाव से प्रेरित होकर किया था वहाँ उस प्रदेश की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक जागृति के भी आप प्रथम सूत्रधार थे। अपनी 'सुगृहिणी' पत्रिका के माध्यम से पंजाब में 'नारी-जागरण' का जो कार्य आपने किया था वह अविस्मरणीय है। 'ज्ञान प्रदायिनी' को पहले आपने उर्दू में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था, किन्तु बाद में उसे पूर्णत: विशुद्ध हिन्दी-पत्रिका बनाकर स्वयं ही उसका सम्पादन करने

लगे थे। आप सन् 1880 में सेवा-निवृत्त हुए थे और बाद में मध्य प्रदेश के खण्डवा नामक नगर के पास अपने ही बसाए हुए 'ब्रह्म गाँव' में जाकर रहने लगे थे।

आपका देहावसान इसी स्थान पर सन् 1890 में हुआ था।

श्रीमती नवीन रश्मि

श्रीमती नवीन रश्मि का जन्म 4 जून सन् 1950 को उत्तर-प्रदेश के हरदोई नामक नगर में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हरदोई में ही हुई थी और फिर आपने लखनऊ विश्व-विद्यालय से बी० ए० करने के उपरान्त कानपुर विश्व-विद्यालय से समाजशास्त्र विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। तन्त्र और वाद्य में भी आपने प्रयाग संगीत समिति की 'संगीत प्रभाकर' उपाधि प्राप्त की थी।

अपने छात्र जीवन से ही आप कविताएँ लिखने लगी थी और थोड़े ही दिनों में आपने अपनी भावपूर्ण रचनाओं के द्वारा साहित्य-क्षेत्र में अच्छी ख्याति अर्जित कर ली थी। आपकी रचनाएँ आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित होने के साथ-साथ हिन्दी की प्रायः सभी उल्लेखनीय पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान स्थान पाती थीं। अपनी मधुर स्वर-लहरी के कारण आप कवि-सम्मेलनों में भी बड़े चाव से सुनी जाती थीं। आपकी प्रौढ़ रचनाओं का संकलन 'अन्तर्ध्वनि' नाम से प्रकाशित हुआ था। बालोप-योगी साहित्य के निर्माण की दिशा में भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था। आपकी ऐसी रचनाओं में 'बाल गीतावली' तथा 'त्यौहारों के गीत' उल्लेखनीय हैं। आपके निधन के उपरान्त आपके द्वारा सम्पादित 'बाल गीत' नामक एक कविता-संकलन हिन्दी पाकेट बुक, दिल्ली से भी प्रकाशित हुआ है।

आपका विवाह 6 जुलाई सन् 1979 को बम्बई के फिल्म अभिनेता श्री हृदय कुमार अस्थाना उर्फ हृदयलानी के साथ हुआ था। अभी आप अपने पति के साथ कठिनाई से दो मास भी नहीं बिता पाई थीं कि अचानक 18 सितम्बर सन् 1979 को रात्रि के ग्यारह बजे आग से जलने के कारण आपकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। नवीन रश्मि की इस रहस्यमय मृत्यु को हिन्दी की प्रख्यात पत्रिका 'मनोहर कहानियाँ' ने अपने फरवरी 1980 के अंक में 'दहेज की बलि पर हुई एक अनबूझ पहेली' की संज्ञा दी थी।

श्री नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर'

श्री 'शंकर' जी का जन्म सन् 1859 में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के हरदुआगंज नामक ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा हिन्दी, उर्दू तथा फारसी मे हुई थी, किन्तु बाद में आपने अपने ही अध्यवसाय से संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पहले-पहल आप उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई विभाग में 'नक्शा-नवीस' का कार्य करते थे और बाद में 'पैमाइश' का कार्य करने लगे थे। आप अपने काम में इतने दक्ष थे कि सभी अफसर आपसे पूर्णतः सन्तुष्ट रहा करते थे। यहाँ तक कि बहुत से अधिकारी तो आपसे हिन्दी पढ़ा करते थे। इस कार्य के सिलसिले में आप जब लगभग 7 वर्ष तक कानपुर रहे थे तब ही आपका सम्पर्क 'सरस्वती' के ख्यातनामा सम्पादक आचार्य श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी से हो गया था। इस सम्पर्क ने आपकी काव्य-चेतना को प्रस्फुटित तथा विकसित करने में प्रशंसनीय सहयोग किया था। 'सरस्वती' के आदिकाल में खड़ी बोली हिन्दी के जिन कवियों की रचनाएँ हिन्दी-पाठकों को अत्यधिक रुचिकर लगती थीं उनमें से जिन पाँच चुने हुए कवियों की रचनाओं का संकलन 'कविता कलाप' नाम से प्रकाशित हुआ था उनमें

श्री 'शंकर' जी भी एक थे। इस संकलन का सम्पादन आचार्य द्विवेदी ने किया था।

'शंकर' जी स्वभाव से अत्यन्त स्वाभिमानी तथा स्पष्ट वक्ता थे, इसी कारण जब सरकारी नौकरी से आपके स्वाभिमान पर आँच आने लगी तो आपने वहाँ से त्यागपत्र दे दिया और घर पर रहकर ही वैद्यक का कार्य करने लगे। आपने अपने स्वाध्याय के बल पर आयुर्वेद का अच्छा अध्ययन कर लिया था, जो इस समय काम आया। धीरे-धीरे आप थोड़े ही दिनों में 'पीयूषपाणि चिकित्सक' के रूप में विख्यात हो गए। आपने जब हिन्दी-कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया था तब हिन्दी में उर्दू शैली की रचनाएँ हुआ करती थीं। आपने भी उर्दू के मुशायरों में भाग लेकर अपनी प्रतिभा का प्रचुर परिचय दिया था। 13 वर्ष की छोटी-सी आयु से ही आप कविता करने लगे थे। जिन दिनों आपने इस क्षेत्र में प्रवेश किया था तब आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन का प्रभाव देश में बढ़ता जा रहा था। युवक 'शंकर' जी भी उससे अछूते नही रहे और आपने अपनी लेखनी को पूर्णतः आर्य-सिद्धान्तों के प्रचार तथा प्रसार करने में लगाया। उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रकार एवं साहित्यकार श्री प्रतापनारायण मिश्र से हुआ और उनके 'ब्राह्मण' पत्र मे भी आपकी रचनाएँ ससम्मान प्रकाशित होने लगीं।
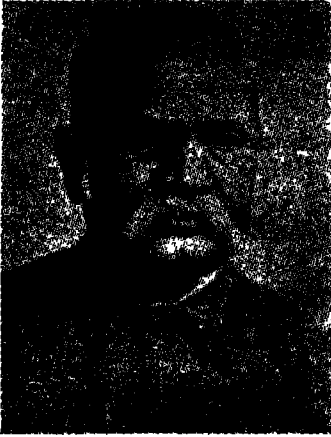
समस्या-पूर्ति के क्षेत्र में उन दिनों हिन्दी के जिन कवियों का सर्वत्र बोल-बाला था 'शंकर' जी उनमें अन्यतम थे। समस्या-पूर्ति के ऐसे कवि-सम्मेलनों में आपको अपनी प्रतिभा के कारण अनेक बार स्वर्ण-पदक, रजत-पदक, घड़ियाँ, पगड़ियाँ, पुस्तकें तथा प्रशंसा-पत्र प्राप्त हुए थे। 'सरस्वती' में प्रकाशित 'शंकर' जी की खड़ी बोली की रचनाएँ पढ़कर एक बार द्विवेदीजी को सर जार्ज ग्रियर्सन ने जो पत्र लिखा था उससे आपकी काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। श्री ग्रियर्सन ने लिखा था—"अब मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि खड़ी बोली में भी सुन्दर और सरस कविताएँ हो सकती हैं।" 'शंकर' जी ने 'कलित कलेवर' नामक नख-शिख-वर्णन से सम्बन्धित एक ग्रन्थ रीतिकालीन परम्परा का भी लिखा था, किन्तु उसे उन्होंने अपने ही हाथों से नष्ट कर दिया था। उन्होंने जहाँ अपनी अनेक समाज-सुधार-सम्बन्धी रचनाओं के द्वारा देश का मार्ग-प्रदर्शन किया था वहाँ राष्ट्रीय दृष्टि से आपका कवि उचित प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने में भी पीछे नहीं रहा था। भारत की दरिद्रता पर आपने जो रचना की थी उसकी ये पंक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं :

कैसे पेट अकिंचन सोय रहे।
बिन भोजन बालक रोय रहे॥
चिथड़े तक भी न रहे तन पै।
धिक् धूल पड़े इस जीवन पै॥

एक बार जब रावराजा श्यामबिहारी मिश्र ओरछा राज्य में दीवान थे तब उनके तथा ओरछा-नरेश के विशेष अनुरोध पर 'शंकर' जी को टीकमगढ़ जाना पड़ा था। शंकरजी के साथ आपके एक मित्र भी थे। शंकरजी की वेश-भूषा साधारण थी और आपके मित्र भी लगभग वैसी ही धज में थे। जिस कमरे में आपको ठहराया गया उसमें केवल एक ही पलँग था। विवश होकर दोनों को एक ही पलँग पर सोकर रात काटनी पड़ी। उन दिनों टीकमगढ़ में बिजली भी नहीं थी। 'शंकर' जी को रियासती कर्मचारियों ने सीधा-सादा देहाती ब्राह्मण समझकर बूरे के स्थान पर निम्न श्रेणी की खादर की खाँड तथा मोटे चावल भोजन में दिए और दूध भी ऐसा-वैसा ही था। उस विशाल भवन में एक देशी दीया ही टिमटिमा रहा था, जो सर्वथा अपर्याप्त था।

प्रातःकाल व्यस्तता के कारण जब रावराजा स्वयं कविजी का हाल-चाल पूछने न जा सके तो उन्होंने एक पत्र लिखकर पूछा कि आपको रात्रि में कोई असुविधा तो नहीं हुई। इस पर 'शंकर' जी ने उसी पत्र की पीठ पर यह छन्द लिखकर पत्रवाहक के द्वारा भेज दिया :

छोटे कर्मचारियों की चूक बड़ी भूल नहीं,
चारों ओर रावरे प्रबन्ध की बड़ाई है।
महल बड़े में मन्द दीपक प्रकाश करै,
सारी रात 'श्यामता' तिमिर ने दिखाई है॥

दूध जल-मिश्रित में बूरे का मिठास कहाँ,
तन्दुल नवीन, खाँड खादर की खाई है।
देव कवि शंकर बिहारी किस भाँति बने,
दो हम दुपाए, पर एक चारपाई है।।

इस छन्द को पढ़कर रावराजा पर क्या बीती होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। मिश्रजी इस कविता को पढ़कर शंकरजी के पास तुरन्त दौड़े हुए गए, और आपसे क्षमा-याचना करके आपका और अच्छा प्रबन्ध किया। इससे शंकरजी की विनोदप्रियता का सम्यक् परिचय मिलता है।

आपकी रचनाओं का प्रकाशन 'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', 'वायस विजय' तथा 'गर्भरण्डा रहस्य' नामक कृतियों में हुआ है। आपके सुपुत्र तथा हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार डॉ० हरिशंकर शर्मा ने आपके निधन के उपरान्त आपकी इधर-उधर बिखरी हुई अनेक रचनाओं का प्रकाशन 'शंकर सर्वस्व' नाम से सन् 1951 में प्रकाशित किया था। 'शंकर' जी की काव्य-प्रतिभा का इससे अधिक ज्वलन्त प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से जहाँ राष्ट्रीय और सामाजिक जागरण का उल्लेखनीय कार्य किया वहाँ आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन को एक नई सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। आपकी ऐसी साहित्य-सेवा से प्रभावित होकर उत्तर भारत की सुप्रसिद्ध आर्य शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर की 'विद्यासभा' ने आपको जहाँ 'कविता कामिनी कान्त' की सम्मानोपाधि से अभिषिक्त किया था वहाँ एक स्वर्ण-पदक भी प्रदान किया था। इस सम्मान का आयोजन समालोचक शिरोमणि पं० पद्मसिंह शर्मा की प्रेरणा पर किया गया था।

आपका निधन सन् 1932 में हुआ था।

श्री नाथूलाल अग्निहोत्री 'नम्र'

श्री 'नम्रजी' का जन्म उत्तर प्रदेश के पीलीभीत जनपद के अन्तर्गत अखैला नामक ग्राम में 1 सितम्बर सन् 1909 को हुआ था। आप बरेली के तिलक इण्टर कालेज में अध्यापक के रूप में अनेक वर्ष तक कार्य-रत रहे थे और श्वास रोग के कारण समय से पूर्व ही अवकाश ग्रहण कर लिया था।

आपने वृन्दावन (मथुरा) से प्रकाशित होने वाले 'प्रेम सन्देश' नामक पत्र का सम्पादन भी कई वर्ष तक किया था। आप एक सफल अध्यापक होने के साथ-साथ प्रतिभाशाली कवि भी थे। आपकी काव्य-कृतियों में 'वनस्थली' (महाकाव्य), 'उद्यान', 'गीतिहार' तथा 'नम्रलता' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 4 जनवरी सन् 1970 को हुआ था।
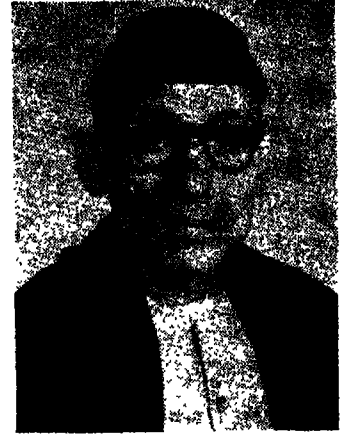
श्री नारायण पुरुषोत्तम उपाध्याय

श्री नारायण पुरुषोत्तम उपाध्याय का जन्म खण्डवा के एक ब्राह्मण-परिवार में 29 जनवरी सन् 1929 को हुआ था। आपके भाई श्री रामनारायण उपाध्याय भी हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्यकार हैं।

आप उत्कृष्ट कवि और सफल गद्य-लेखक थे और मध्य-प्रदेश के नई पीढ़ी के साहित्यकारों में अपना उल्लेखनीय स्थान बना चुके थे। आपकी 'लोग, लोग और लोग' (सन् 1977) तथा 'निष्ठा

दीप' नामक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनका हिन्दी-जगत् में अच्छा स्वागत हुआ था। आप खण्डवा के 'नील-कण्ठेश्वर महाविद्यालय' में हिन्दी प्रवक्ता थे।

आपके साहित्यकार ने अपने पारिवारिक परिवेश से प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की थी।

आपका निधन 25 नवम्बर सन् 1979 को हुआ था।

श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा

श्री अरोड़ाजी का जन्म 27 नवम्बर सन् 1881 को कानपुर में हुआ था। अरोड़ाजी की शिक्षा का प्रारम्भ 'महाजनी' के द्वारा हुआ था और उसीके माध्यम से आपने 11 वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत हो जाने के बाद 'गायत्री मन्त्र' लिखकर याद किया था। उस समय तक आपको न देवनागरी आती थी, और न आप अँग्रेजी से परिचित थे। 15 वर्ष की आयु में आपने स्कूल में नाम लिखाया और 7 वर्ष तक नियमित अध्ययन करके विधिवत् 'इण्ट्रेन्स' की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1906 में आपने 'क्राइस्ट चर्च कालेज' से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि बी० ए० का फार्म भरते समय जब आपके पिताजी ने फीस के पैसे नहीं दिए थे तब आपकी माताजी ने अपने पैर का चाँदी का कड़ा उतारकर दे दिया था, जिसे बेचकर श्री अरोड़ाजी ने फीस जमा की थी। आप सन् 1905 में बनारस में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। राष्ट्रीय विचार-धारा में रुचि लेने के साथ-साथ आपका झुकाव उन दिनों स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ की सांस्कृतिक चेतना की ओर भी हो गया था। पढ़ाई समाप्त करने के उपरान्त आपने 'क्राइस्ट चर्च स्कूल' में 60 रुपये मासिक पर अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। कुछ दिन तक आप कानपुर के 'गुरुनारायण खत्री स्कूल' तथा कन्नौज के एक स्कूल में भी अध्यापक रहे थे। जब सन् 1912 में कानपुर में 'मारवाड़ी विद्यालय' की स्थापना की गई थी तब आप ही उसके 'प्रधान अध्यापक' बनाए गए थे।

आपने जहाँ सफल अध्यापक के रूप में अपनी अद्भुत छाप कानपुर के सामाजिक जीवन पर छोड़ी वहाँ राजनीति में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। आप राजनीति में लोकमान्य तिलक की उग्र विचार-धारा के समर्थक थे और कानपुर के 'तिलक हॉल' के निर्माण में आपका अभिनन्दनीय योगदान रहा था। प्रख्यात क्रान्तिकारी लाला हरदयाल से भी आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था और अनेक क्रान्तिकारियों को

आपने समय-समय पर अनेक प्रकार की सहायता भी दी थी। साहित्य के क्षेत्र में आपने जहाँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की थी वहाँ श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के आप अनन्य सहयोगी रहे थे। आपने 'संसार' मासिक तथा 'विक्रम' दैनिक का सम्पादन-संचालन भी कानपुर से किया था। आपके साहित्य तथा राजनीति से सम्बन्धित लेख आदि उन दिनों 'मर्यादा', 'कर्मयोगी', 'सरस्वती' तथा 'अभ्युदय' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करते थे। जिन दिनों श्री अरोड़ाजी अध्यापन का कार्य करते थे तब श्री गणेशशंकर विद्यार्थी कानपुर के 'करेंसी आफिस' के कार्यकर्ता थे। कुछ दिन तो अरोड़ाजी ने गणेशशंकरजी को वह नौकरी छुड़वाकर अपने ही स्कूल में रखा, किन्तु फिर कुछ दिन बाद उन्हें 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने के लिए प्रयाग भेज दिया था। जब अरोड़ाजी अध्यापकी छोड़कर पूर्णतः राजनीति तथा साहित्य के हो गए तब आपने 9 नवम्बर सन् 1919 को 'प्रताप' साप्ताहिक प्रारम्भ करा दिया। श्री अरोड़ाजी के अतिरिक्त 'प्रताप' के संस्थापन तथा संचालन में अन्य जिन महानुभावों का सक्रिय सहयोग था उनमें श्री शिवनारायण मिश्र तथा श्री यशोदानन्दन शुक्ल के नाम भी उल्लेखनीय हैं। 'प्रताप' नामकरण के पीछे श्री अरोड़ाजी ने जहाँ आधुनिक हिन्दी गद्य के निर्माता श्री प्रतापनारायण मिश्र की 'स्मृति-रक्षा' का भाव रखा था वहाँ गणेशजी ने यह नाम 'नरशार्दूल

महाराणा प्रताप' के शौर्य से प्रभावित होकर रखा था।

श्री अरोड़ाजी जहाँ उत्कृष्ट राष्ट्र-सेवक, कुशल लेखक एवं सम्पादक थे वहाँ पुस्तक-प्रकाशन की दिशा में भी आपने सर्वथा नए कीर्तिमान स्थापित किए थे। व्यवसाय को ताक में रखकर देश को नई चेतना का संवाहक साहित्य प्रदान करना ही आपका एकमात्र लक्ष्य था। सन् 1913 में आपने अपने इस प्रकाशन का प्रारम्भ जहाँ 'लाला हरदयाल के स्वाधीन विचार'-जैसी क्रान्तिकारी पुस्तक से किया वहाँ स्वामी रामतीर्थ आदि अनेक सन्तों और सुधारकों की कृतियाँ भी इसके माध्यम से प्रकाशित कीं। आपने अपने इस प्रकाशन का नाम अपने पुत्र 'भीष्म' के नाम पर 'भीष्म एण्ड ब्रदर्स' रखा था। राष्ट्र-भक्ति और सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से आपने इस संस्था के माध्यम से जहाँ अनेक उपयोगी प्रकाशन किए वहाँ बालोपयोगी साहित्य के प्रकाशन की दिशा में भी अत्यन्त प्रशंसनीय क्रान्ति की। आपके इस प्रकाशन से अधिकांशतः आपकी ही रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं। आपके द्वारा लिखी गई पुस्तकों की संख्या 100 के लगभग है। आपने जहाँ श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के सहयोग से 'कानपुर का इतिहास'-जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा वहाँ 'कानपुर के विद्रोही' तथा 'कानपुर के प्रसिद्ध पुरुष' आदि पुस्तकें भी आपकी प्रतिभा का प्रमाण हैं। अपनी पुस्तकों के अतिरिक्त आपने अपने इस प्रकाशन से जिन दूसरे लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित की थीं उनमें सर्वश्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, राधामोहन गोकुलजी, कृष्ण विनायक फड़के, प्रतापनारायण श्रीवास्तव और गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

आपका निधन सन् 1961 में हुआ था।

डॉ० निहालकरण सेठी

डॉ० सेठीजी का जन्म राजस्थान के अजमेर नामक नगर में सन् 1893 में हुआ था। अपने ही नगर से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से क्रमशः सन् 1913 और सन् 1915 में बी०एस-सी० तथा एम० एस-सी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं और बाद में कलकत्ता चले गए। कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रख्यात वैज्ञानिक सर सी०वी० रमण के निरीक्षण में भौतिक विज्ञान पर अनुसंधान करके आपने डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। सन् 1915-16 में आप मेरठ कालेज में भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त हुए और बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में चले गए। सन् 1930 तक वहाँ रहकर बाद में आप आगरा कालेज के भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष होकर वहाँ आ गए और सन् 1950 से सन् 1954 तक वहाँ प्राचार्य भी रहे।

विज्ञान के क्षेत्र में अपनी अभूतपूर्व उपलब्धियों के कारण आप उत्तर प्रदेश सरकार तथा भारत सरकार की अनेक पारिभाषिक-शब्द-निर्माण-समितियों के सदस्य भी रहे। आपके प्रकाशित हिन्दी ग्रन्थों में 'प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान', 'भौतिक पारिभाषिक शब्दावली', 'चुम्बकत्व और विद्युत्' तथा 'प्रकाश विज्ञान' आदि प्रमुख हैं। 'प्रकाश विज्ञान' नामक आपके ग्रन्थ पर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना की ओर से एक हजार रुपए का सम्मान पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। अपने वैज्ञानिक हिन्दी-लेखन के लिए हिन्दी साहित्य में आपका एक विशिष्ट स्थान है।

आपका निधन सन् 1969 को हुआ था।

श्री निहालचन्द्र वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म सन् 1886 में वाराणसी के एक खत्री-परिवार में हुआ था। आपके पूर्वज पंजाब से वहाँ गए थे।

आपने जहाँ 'बेरी एण्ड कम्पनी' नाम से कलकत्ता में प्रकाशन का कार्य किया था वहाँ आप हिन्दी के सुलेखक भी थे। आपके सुपुत्र श्री कृष्णचन्द्र बेरी भी हिन्दी के प्रमुख प्रकाशक हैं और उन्होंने पहले 'हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय' के नाम से वाराणसी से प्रकाशन-कार्य किया था और अब वे 'हिन्दी प्रचारक संस्थान' नाम से अपना यह कार्य करते हैं। श्री कृष्णचन्द्र बेरी कई वर्ष तक अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के अध्यक्ष तथा मन्त्री भी रह चुके हैं।

श्री वर्माजी ने अपने प्रकाशनों के द्वारा हिन्दी की जो सेवा की थी, वह सर्वथा अनुपम कही जा सकती है। कलकत्ता से हिन्दी-प्रकाशन करते हुए आपने जो पुस्तकें लिखी थी उनके नाम इस प्रकार हैं—'अलादीन का चिराग' (1918), 'सिन्दबाद जहाजी' (1918), 'मोती महल' (1920), 'प्रेम का फल' (1925), 'जादू का महल' (1926), 'सोने का महल' (1933), 'आनन्द भवन' (1936), 'जादू का डंडा' (1940), 'बनते-बिगड़ते सन्दर्भ' (1952) तथा 'गुलाब कुमारी' (1959)।

आपका निधन सन् 1970 में हुआ था।

श्री पद्मकान्त मालवीय

श्री मालवीयजी का जन्म उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जनपद की करछना तहसील के रेरा नामक ग्राम में 6 अगस्त सन् 1908 को हुआ था। आप महामना मदनमोहन मालवीय के पौत्र थे और आपके पिता का नाम श्री कृष्णकान्त मालवीय था। शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त आपने भी अपने बाबा तथा पिता के ही पद-चिह्नों पर चलकर पत्रकारिता तथा राजनीति दोनों ही क्षेत्रों को समान रूप से अपनाया था। पत्रकारिता में आपने जहाँ अपने पिता श्री कृष्णकान्त मालवीय द्वारा सम्पादित होने वाले 'अभ्युदय' साप्ताहिक के माध्यम से प्रवेश किया था वहाँ राजनीति में भी आपकी वैसी ही गति थी। बल्कि जब सुभाषचन्द्र बोस द्वारा फारवर्ड ब्लाक की स्थापना हुई तब आप मुख्यतः उनकी विचार-धारा के ही प्रचारक रहे और आजाद हिन्द फौज की स्थापना तथा उसके उपरान्त नेताजी द्वारा किए गए स्वातन्त्र्य-संघर्ष के आप अनन्य उद्घोषक रहे। यहाँ तक कि 'अभ्युदय' के अनेक संग्रहणीय तथा उल्लेखनीय विशेषांक आपने उन दिनों प्रकाशित किए, जबकि आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर लाल किले में मुकदमा चल रहा था। हिन्दी-पत्रकारिता के विकास में 'अभ्युदय' ने जिस राष्ट्रीय विचार-धारा के अग्रदूत का काम किया था, पद्मकान्तजी ने अपने पिता श्री कृष्णकान्त मालवीय के निधन के बाद भी उसे ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण रखा। यद्यपि अपने प्रारम्भिक काल में जब 'अभ्युदय' का सम्पादन श्री कृष्णकान्त मालवीय करते थे तब उसकी नीति गान्धीजी के सिद्धान्तों के अनुगमन की थी, किन्तु पद्मकान्तजी के सम्पादन में वह सर्वथा वामपन्थी बन गया। अपने सम्पादन-काल में आपने जहाँ गान्धीजी के सिद्धान्तों के प्रति खुलकर असहमति व्यक्त की, वहाँ जिस बात को आप राष्ट्र तथा जनता के हित में समझते थे, उसका उन्मुक्त मन तथा उदार हृदय से समर्थन भी किया। पत्रकार के रूप में पद्मकान्तजी ने जिस प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया था, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है।

एक कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ आप सहृदय

कवि के रूप में भी साहित्य-क्षेत्र में अत्यन्त विशिष्ट स्थान पाने के अधिकारी हैं। छायावाद के उत्कर्ष-काल में आपने अपने गीतों, गजलों तथा रुबाइयों के द्वारा जिस काव्य-धारा का प्रचलन किया था उसकी ज्वलन्त साक्षी, आपकी 'त्रिवेणी' (1929), 'प्याला', (1932), 'प्रेम - पत्र' (1933), 'आत्म - वेदना' (1934) आत्म 'विस्मृति' (1934), 'हार' (1936) तथा 'कूजन' (1941) आदि कृतियाँ हैं। आपने अपनी 'आत्म-विस्मृति या रुबाइयाते पद्य' नामक कृति में जहाँ रुबाई छन्द के माध्यम से प्रेम तथा विरह का उत्कृष्ट चित्रण किया था वहाँ 'प्रेम पत्र' नामक रचना के द्वारा हिन्दी-काव्य में एक सर्वथा नई पत्र-शैली का प्रचलन किया था। आपकी इन रचनाओं का तत्कालीन हिन्दी-काव्य पर इतना चमत्कारी प्रभाव हुआ था कि कुछ आलोचकों ने उनको हिन्दी में 'हालावाद' के प्रवर्त्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया है। आपके द्वारा अनूदित 'उमर खैयाम' की रचनाओं को पढ़कर उस समय हिन्दी-कविता में भाषा का भी एक नया स्वरूप-निर्धारण हुआ था। हमारे इस कथन की पुष्टि आपके उन विचारों से हो जाती है जो आपने अपनी 'आत्म-विस्मृति या रुबाइ-याते पद्य' नामक पुस्तक की भूमिका में प्रकट किए था। आपने लिखा था—"आज मुझे खेद है कि खड़ी बोली वाले स्वयं उसी मार्ग पर जा रहे हैं जिस पर चलने से कुछ दिनों पहले वे दूसरों को मना करते थे। आजकल के कतिपय छायावादी कवियों की कविता बिना शब्दकोश की सहायता के कितने भाई समझ सकते है?" मालवीयजी जहाँ प्रखर पत्रकार और हृदयवादी कवि के रूप में हिन्दी-साहित्य मे प्रतिष्ठित रहेंगे वहाँ हिन्दी-उर्दू के सम्मिलन की दिशा में भी आपकी देन कम उल्लेखनीय नहीं है। आपने 'अकबर मेमोरियल कमेटी' के मन्त्री के रूप में उर्दू के लोकप्रिय शायर अकबर' की सभी रचनाओं को 'अकबर सर्वस्व या कुल्लियाते अकबर' नाम से चार भागों में प्रकाशित करके वास्तव में अभिनन्दनीय कार्य किया था। इस प्रसंग में महा-कवि अकबर की 'गान्धी नामा' नामक रचना का प्रकाशन भी उल्लेखनीय है।

एक कुशल पत्रकार तथा सहृदय कवि के रूप में आपने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी, यह सौभाग्य की बात है कि अन्त तक आप अपनी उसी भावना से साहित्य की आराधना करते रहे। आपकी गजलों तथा रुबाइयों ने किसी समय साहित्य में एक सर्वथा नई विचार-धारा का प्रचलन किया था। भाषा, शैली और भाव सभी दृष्टि से आप हिन्दी-काव्य में 'हालावाद अथवा प्यालावाद' के प्रवर्त्तक कवियों में गिने जाते थे। आपकी ऐसी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देने की दृष्टि से सन् 1962 में शारदा पुस्तक भण्डार, 1, पोनप्पा रोड, प्रयाग की ओर से 'पद्मकान्त मालवीय और उनका काव्य' नामक जो पुस्तिका प्रकाशित हुई थी, वह आपकी प्रतिभा का समवेत दर्पण है। उसमें मालवीयजी के कवि-व्यक्तित्व का सही प्रतिनिधित्व किया गया है। इसमें प्रका-शक ने मालवीयजी की सातों प्रकाशित काव्य-कृतियों के अतिरिक्त अप्रकाशित रचनाओं में से भी चुनी हुई प्रतिनिधि रचनाएँ समाविष्ट की हैं। मालवीयजी के कवि के उत्कर्ष का वह ऐसा समय था जब आपका नाम 'पन्त' जी के साथ सम्मानपूर्वक लिया जाता था। एक विशुद्ध हृदयवादी कवि होने के साथ आप उच्चकोटि के राष्ट्र-भक्त थे। अपनी पत्र-कारिता के माध्यम आपने जहाँ समग्र देश का पथ-प्रदर्शन किया था वहाँ स्वातन्त्र्य-संग्राम में आपने अनेक बार जेल-यात्राएँ भी की थीं। सरकारी दमन के कारण जब सारे देश में मुर्दनी छाई हुई थी तब मालवीयजी ने यह उद्घोष किया था :

चले चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो, चले चलो,
प्रचण्ड सूर्य-ताप से, न तुम जलो, न तुम गलो।
हृदय से तुम निकाल दो, अगर हो पस्त हिम्मती,
नहीं है खेल मात्र ये, ये जिन्दगी है, जिन्दगी।
न रक्त है, न स्वेद है, न हर्ष है, न खेद है,
ये जिन्दगी अभेद है, वही तो एक भेद है।
समझ के सब चले चलो, कदम-कदम बढ़े चलो,
चले चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो, चले चलो।

यह विडम्बना ही कही जायगी कि इस गीत के छन्द को भी लोगों ने उर्दू से चुराया हुआ कहकर तब अपनी अज्ञानता का परिचय दिया था। वास्तव में यह रचना संस्कृत के अमर काव्य 'शिवताण्डवस्तोत्र' के छन्द के अनु-सार लिखी गई थी। आपके व्यक्तित्व तथा कृतित्व की किंचित् मात्र झलक हमारे पाठक श्री ओंकार शरद् द्वारा सम्पादित 'पद्मकान्त मालवीय : व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक पुस्तक में देख सकेंगे।

एक और घटना का उल्लेख करना भी यहाँ परम आवश्यक है। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब प्रयाग विश्वविद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन की अध्यक्षता में एक कवि सम्मेलन हो रहा था तब उसमें मालवीयजी भी कवि के रूप में आमंत्रित थे। अपने स्वभाव के अनुसार इस स्वतन्त्रता को, जो देश की इतनी बरबादी और रक्त-पात के उपरान्त मिली थी, आपने व्यर्थ समझा और जब उस कवि-सम्मेलन में अपनी 'क्या आजादी दिवस मनाऊँ' शीर्षक कविता पढ़नी प्रारम्भ की तो 4-6 पंक्तियाँ पढ़ने के उपरान्त ही मंच पर भगदड़ मच गई और सरकार के पिट्ठू लोगों ने शोर-गुल मचाना प्रारम्भ कर दिया। इस घटना के उपरान्त जहाँ आकाशवाणी के अधिकारियों ने आपका बहिष्कार किया, वहाँ तथाकथित नेताओं ने भी आपके प्रति उपेक्षा भाव ही प्रदर्शित किया। इस उपेक्षा तथा घुटन-भरे वातावरण में अनेक वर्ष तक अस्वस्थ रहने के उपरान्त आप 16 जनवरी सन् 1981 को इस असार संसार से विदा हो गए।

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

श्री कमलेशजी का जन्म मथुरा की तहसील माट के समीप 'बरी का नगला' (सुरीर का मजरा) नामक ग्राम में 22 जनवरी सन् 1915 को हुआ था। अभी आप पूरी तरह एक वर्ष के भी न हो पाए थे कि आपके पिता श्री किशनलाल शर्मा का देहावसान हो गया और आपकी माता श्रीमती धर्मवती ने चक्की पीसकर और इधर-उधर मजदूरी करके आपका पालन-पोषण किया। मजदूरी में खेत काटने, सिला बीनने और परिवारों में जाकर उनका खाना बनाने तक के काम सम्मिलित थे। जब आप 2 वर्ष के थे तब आपको आपकी माताजी सौंतरुख (ननसाल) ले गई और वहाँ के 'प्राइमरी स्कूल' से सन् 1928 में आपने प्राइमरी की परीक्षा उत्तीर्ण की। 13 वर्ष की आयु में आप मिढ़ाकुर चले गए और वहाँ के मिडिल स्कूल से ही आपने सन् 1932 में वर्नाक्युलर हिन्दी मिडिल की परीक्षा दी और अगले वर्ष उर्दू मिडिल भी पास कर लिया। बाद में आपकी माताजी अपनी बहन के पास आगरा चली गईं। आपके मौसाजी रेलवे में नौकरी करते थे और वहाँ गोकुलपुरा मोहल्ले में रहते थे।

अखबार बेचने वाले एक साधारण 'हॉकर' से अपनी संघर्ष-यात्रा का प्रारम्भ करके आगरा-चुंगी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के लोअर प्राइमरी स्कूल से लेकर मिडिल स्कूल में मास्टरी तक; 'राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल', सूरत के प्रमुख हिन्दी-अध्यापक से लेकर 'बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ' के आचार्य तक;'आगरा नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा संचालित 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' के प्रधानाचार्य से लेकर आगरा कालेज में प्रवक्ता बनने तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में रीडर एवं प्रोफेसर के प्रतिष्ठित पद तक पहुँचने तक आपने अपनी प्रतिभा तथा योग्यता के जो ज्वलन्त पद-चिह्न छोड़े हैं, उनसे आपके अटूट अध्यवसाय तथा असीम साहस का परिचय मिलता है।

आज की सामाजिक व्यवस्था के वरदान—भूख और बेकारी, निराशा और अपमान—आपकी दुर्धर्ष जिन्दगी के सामने बिछ जाने वाले संघर्ष के वे पाँवड़े हैं, जिन पर कदम रखते हुए आप हमारे सामने अपने 'आत्म-शिल्पी' रूप को प्रस्तुत कर गए हैं। आप अपने ही सहारे बने, पले और बढ़े थे और यों कहें तो अधिक उपयुक्त होगा कि सर्वथा विपरीत वातावरण तथा विकट परिस्थितियों की झंझा को झकझोरकर संघर्षों की ज्वालमयी छाया में आपने अपने जीवन का स्वयं ही निर्माण किया था।

आगरा आकर कमलेशजी ने सन् 1932 में वहाँ की प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्था 'साहित्य रत्न भण्डार' में 8 रुपए मासिक की नौकरी की। काम अखबार बेचने का था। नौकरी दिलाने में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार और होलकर कालेज, इन्दौर के भूतपूर्व प्राध्यापक श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' का विशेष सहयोग था। यहीं पर आपकी भेंट श्री भानुकुमार जैन से हो गई, जिन्हें आजीवन आप बड़े भाई के समान आदर देते रहे और इन्हींकी प्रेरणा पर कमलेशजी ने अपने अध्ययन को आगे बढ़ाने का पावन संकल्प लिया था।

मिढ़ाकुर के इस अध्ययन में उस स्कूल के दो अध्यापकों—श्री चिरंजीलाल 'प्रेम' (डिप्टी इंस्पैक्टर ऑफ स्कूल्स से

सेवा-निवृत्त) तथा श्री चिरंजीलाल विशारद (जो बाद में संन्यासी हो गए थे) का कृपापूर्ण सहयोग आपको मिला था। अखबार बेचने से समय निकालकर आपने अपना अध्ययन जारी रखा। फलतः उत्तर प्रदेश सरकार की 'विशेष योग्यता' परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप 'बी०टी०सी०' में प्रविष्ट हो गए और हिन्दी तथा उर्दू दोनों ही भाषाओं में यह परीक्षा अत्यन्त सफलतापूर्वक उत्तीर्ण की। बी०टी०सी० करने के बाद आपको 17 रुपए मासिक पर आगरा की चुंगी के प्राइमरी स्कूल में अध्यापन का कार्य मिल गया और आप चुंगी के अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अनेक प्राइमरी तथा मिडिल स्कूलों में भी अध्यापक रहे। इस अध्यापन-कार्य के बीच आपने अपने अध्ययन का क्रम बन्द नहीं किया और स्वर्गीय महेन्द्रजी के मन्त्रित्व में 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा संचालित होने वाले 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' में विधिवत् प्रविष्ट होकर वहाँ से हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की मध्यमा (विशारद) तथा उत्तमा (साहित्य-रत्न) परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण की। उन दिनों नागरी प्रचारिणी सभा के इस विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' ही थे। 'साहित्य-रत्न' में आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे और इस सफलता का श्रेय कमलेशजी 'चन्द्र' को ही दिया करते थे।

'साहित्यरत्न' परीक्षा में प्राप्त इस अभूतपूर्व सफलता से प्रभावित होकर 'राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल, सूरत' के संस्थापक-संचालक पंडित परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ ने आपको अपने यहाँ हिन्दी-अध्यापन के लिए आमन्त्रित कर लिया। लगभग एक वर्ष तक वहाँ कार्य करने के उपरान्त 'बम्बई हिन्दी विद्यापीठ' के उत्साही संचालक तथा अपने अग्रज-तुल्य अनन्य हितैषी श्री भानुकुमार जैन के निमन्त्रण पर आप बम्बई आकर उक्त 'विद्यापीठ' के प्रधानाचार्य हो गए। अपने गुजरात-प्रवास के दिनों में आपने गुजराती भाषा और साहित्य का इतना गहन अध्ययन कर लिया था कि आपको आगे जाकर गुजराती के एक 'प्रामाणिक अनुवादक' के रूप में अभूतपूर्व प्रतिष्ठा मिली। दो वर्ष तक वहाँ कार्य करने के दिनों में आपने 'हिन्दी विद्यापीठ' की मासिक पत्रिका 'जीवन-साहित्य' का सफल सम्पादन करने के साथ-साथ वहाँ हिन्दी-कक्षाओं के लिए कुछ पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण करने के अतिरिक्त 'हिन्दी-गुजराती शिक्षा' पुस्तक की रचना भी की थी। फिर अचानक आपके मन में अँग्रेजी की परीक्षाएँ देकर तथाकथित शिक्षित समुदाय का अंग बनने की दृष्टि से अपने अध्ययन को और भी आगे बढ़ाने की भावना जगी। आप 1942 में आगरा आ गए। यहाँ आकर आपने पंजाब यूनिवर्सिटी से क्रमश: मैट्रिक, हिन्दी प्रभाकर, एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ प्राइवेट रूप में उत्तीर्ण की। इस बीच अपनी आजीविका चलाने के लिए आपने पत्रकारिता और लेखन के अतिरिक्त अनुवाद का भी कार्य किया और साथ-साथ 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा संचालित उसी 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' के प्रधानाचार्य हो गए, जिसमें कभी आपने अध्ययन किया था। अनवरत संघर्ष के इन दिनों में भी आप चुप नहीं बैठे और आगरा कालेज में प्रवेश लेकर वहाँ से एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में विधिवत् उत्तीर्ण की। आपकी इस अभूतपूर्व सफलता से प्रसन्न होकर आगरा कालेज के अधिकारियों ने आपको अपने यहाँ हिन्दी-प्रवक्ता का कार्य सौंपकर अपनी उदारता तथा सहृदयता का परिचय दिया था। इस कार्य-काल में अपनी तत्परता, कर्मठता तथा कार्य-कुशलता के कारण आप इतने लोकप्रिय हो गए थे कि आप कालेज के छात्रावास के वार्डन ही नहीं बने, अपितु 'नागरी प्रचारिणी सभा' के प्रधानमंत्री भी चुन लिये गए। इन्हीं दिनों 21 अप्रैल सन् 1951 को आपका विवाह हो गया। आपकी पत्नी सुशीलाजी के पिता उन दिनों बिलासपुर (हिमाचल) स्टेट के 'आर्थिक परामर्शदाता' थे। सुशीलाजी भी संस्कृत-हिन्दी की विदुषी महिला हैं।

कविता करने का शौक आपको तब लगा था जब आप मिढ़ाकुर के स्कूल में उर्दू मिडिल में ही पढ़ते थे। तब आपको 'रामचरितमानस' को अपनी भाषा में दोहा-चौपाई के रूप में लिखने और आर्यसमाज के उत्सवों में गाए जाने वाले

भजनों की तर्ज पर भजन लिखने का अजीब खब्त था। आप कापियों के पन्ने काट-छाँटकर सुन्दर अक्षरों में भजन लिखते थे और मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुआ करते थे। इस ललक ने आपको चुप नहीं बैठने दिया और जब आप आगरा आए तो एक दिन प्रातःकाल अखबार बेचने जाते समय चिड़ियों की चहचहाहट सुनकर आपके कण्ठ से कविता अचानक इस प्रकार फूट पड़ी :

देख विहंगों की स्वतन्त्रता, मनमाना स्वच्छन्द विहार।
लज्जा से गड़ जाता हूँ मैं, होता उर पर वज्र प्रहार॥

फिर धीरे-धीरे आपने बच्चों की काव्य-कहानियाँ भी लिखीं, जो उन दिनों 'सैनिक' साप्ताहिक में प्रकाशित हुई। इस प्रकार आपके कवि-जीवन का प्रारम्भ हुआ। बचपन से ही निरन्तर अभावों और संघर्षों से जूझने के कारण आपकी कविता में भी उसकी परिणति सर्वतोभावेन हुई।

जब आप सूरत तथा बम्बई में थे उन दिनों आपने कोमल, हृदय-स्पर्शी तथा सरल वेदना से पूर्ण अनेक गीत भी लिखे थे। ऐसे गीत अधिकांशतः उन दिनों 'करुणकुमार' के नाम से बाबूराव विष्णु पराडकर और शान्तिप्रिय द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'कमला' नाम की मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुए थे, जो काशी से प्रकाशित होती थी।

देश में स्वतन्त्रता आने पर भी आपको अपने से अधिक जगत् की पीड़ा का ही अधिक खयाल था। समाज में व्याप्त शोषण-उत्पीड़न के प्रति आपके मन में प्रबल विद्रोह था। देश की एकता में बाधक 'हिन्दू-मुस्लिम-समस्या' के प्रति आपका दृष्टिकोण सर्वथा अभिनन्दनीय तथा अछूता था। अपनी 'भाई-भाई नहीं लड़ेंगे' शीर्षक रचना में आपने धार्मिक कठमुल्लों पर इस प्रकार करारी चोट की थी :

व्यापारी है एक, कि जिसने हम दोनों को लूटा
एक गुलामी, जिसके कारण भाग्य हमारा फूटा
एक जहालत है, जिससे हम दोनों को है लड़ना
एक गरीबी, जिसे मिटाकर सबको आगे बढ़ना
मजहब का है भूत एक, बस जिसको मार भगाना
साहस की है ज्योति एक, बस जिसको आज जगाना
आजादी है एक, कि जिस पर लगी हमारी आँखें
साध एक है मुक्त देश में खुलें हमारी पाँखें।
हमें लड़ाने वालो सुन लो, ध्येय हमारा एक
'भाई-भाई नहीं लड़ेंगे', यही हमारी टेक।

सारांशतः जन-जागरण के प्रतिनिधि के रूप में आप अपने कवि-कर्म में सदा जागरूक रहे। स्वतन्त्रता के उपरान्त देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार, आपाधापी तथा सत्ता-लिप्सा पर भी आपने खुलकर चोट की थी। अपनी कविता की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में आपने एक बार यह ठीक ही लिखा था—"मेरी प्रेरणा का स्रोत (चाहे वह प्रेम हो, या प्रगति) मेरा स्वयं का जीवन है। न मैं प्रेम के लिए कल्पना को लेता हूँ, न प्रगति के लिए अन्य देशों की कविताओं के अनुकरण को। मेरी गरीबी मेरी कविताओं की सचोटता और सप्राणता का आधार है। बलिदान की उदात्त भावना, पर-दुःख-कातरता, विश्व-बन्धुत्व तथा अन्ध-विश्वासहीनता के जो भाव मुझमें हैं, वे ही मेरी कविताओं में अवतरित हुए हैं। धनिकों और शोषकों से घृणा मुझमें बचपन से ही है।"

और आपकी यह भावना आपकी इन पंक्तियों में पूर्णतः रूपायित भी हुई :

किन्तु अभी परिवर्तन होगा, याद रहे यह बात हमारी।
रे समाज के ठेकेदारो, अब न चलेगी घात तुम्हारी॥
शक्ति जगेगी कंकालों में, शस्त्र तुम्हारे कुण्ठित होंगे।
अरे पीड़ितों की आहों से, सिंहासन भू-लुण्ठित होंगे॥

यह रचना उन दिनों की है, जबकि आप पूर्णतः सर्वहारा का जीवन जीकर अपने भविष्य के निर्माण में संलग्न थे। अपनी सतत साधना तथा संघर्ष की प्रवृत्ति के कारण बहुत शीघ्र ही आपने हिन्दी-साहित्य में उल्लेखनीय स्थान बना लिया था। एक संवेदनशील कवि के रूप में आपका नाम विशेष महत्त्व रखता है। आपकी 'मैं सुखी हूँ', 'तू युवक है', 'दूब के आँसू', 'धरती पर उतरो' तथा 'दिग्विजय' नामक काव्य-कृतियों में आपकी कविता-यात्रा के विभिन्न आयाम निहित हैं। आपके निधन के बाद 'एक युग बीत गया' नाम से जो आपका नया काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ है उसे वास्तव में आपकी काव्य-प्रतिभा का पूर्ण परिपाक कहा जा सकता है। हिन्दी-साहित्य में 'इण्टरव्यू' विधा का सर्वप्रथम सूत्रपात करके तो आपने एक बार अखिल हिन्दी-जगत् का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। आपकी ऐसी रचनाएँ 'मैं इनसे मिला' नामक दो भागों में प्रकाशित हुई हैं। समीक्षा के क्षेत्र में भी आपकी देन अविस्मरणीय है। प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा और राजा राधिकारमणप्रसादसिंह-जैसे लोकप्रिय लेखकों की उपन्यास-कला से सम्बन्धित आपकी

तीन पुस्तकें पर्याप्त लोकप्रिय हुई हैं। निराला के काव्य तथा जीवन से सम्बन्धित आपकी दो कृतियाँ हिन्दी के अध्येताओं के लिए संग्राह्य हैं। 'गुजराती और उसका साहित्य' नामक पुस्तक से आपके गुजराती ज्ञान का विशद परिचय मिलता है। आपके द्वारा गुजराती से अनूदित कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की रचनाएँ हिन्दी साहित्य में पर्याप्त समादृत हुई हैं। आपका पी-एच० डी० का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी-गद्य-काव्य' भी आपकी परिष्कृत प्रतिभा का उज्ज्वल अवदान है। गुजराती के अनुवादक के रूप में भी आपको बहुत प्रतिष्ठा मिली थी। गुजराती भाषा के सफल साहित्यकार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की आत्मकथा का भी आपने हिन्दी में अनुवाद किया था।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आप 1962 में रीडर बनकर गए थे और निधन से कुछ महीने पूर्व ही 'प्रोफेसर' के प्रतिष्ठित पद पर आसीन हुए थे। इस स्थान तक पहुँचने में आपको कितना संघर्ष करना पड़ा था उसका प्रत्यक्ष साक्षी उनका कर्ममय जीवन है।

आपका निधन 5 फरवरी सन् 1974 को कुरुक्षेत्र में ही हुआ था।

श्री पद्मसिंह शर्मा साहित्याचार्य

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1877 में उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के नायक नगला नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता चौ० उमरावसिंह गाँव के मुखिया थे और उनके यहाँ काश्तकारी तथा जमींदारी का कार्य होता था। आपके विद्याध्ययन के लिए घर पर ही व्यवस्था की गई थी और एक मौलवी तथा एक पंडित आपको पढ़ाने के लिए रखे गए थे। थोड़े ही समय में आपने उनसे उर्दू, हिन्दी तथा संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर ली और उसके उपरान्त आप इटावा चले गए और वहाँ पर स्वामी दयानन्दजी के अनन्य शिष्य पं० भीमसेन शर्मा से अष्टाध्यायी का विधिवत् अध्ययन किया। वहाँ से लौटने के अनन्तर आपने अपने ग्राम की समीपवर्ती ताजपुर स्टेट के श्री जीवाराम शर्मा साहित्याचार्य से 'लघु कौमुदी' तथा 'काव्य-शास्त्र' का विधिवत् अध्ययन किया और आगे की पढ़ाई के लिए लाहौर चले गए। वहाँ के 'ओरियण्टल कालेज' में आप अध्ययन ही कर रहे थे कि आपका सम्पर्क नरदेव शास्त्री से हो गया और उनके साथ 'विद्यार्थी आश्रम' में रहने लगे। लाहौर में दो वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् आप जालन्धर चले गए और वहाँ पर पण्डित गंगादत्त शास्त्री (बाद में स्वामी शुद्धबोध तीर्थ) से व्याकरण का विशेष अध्ययन किया। फिर काशी जाकर वहाँ के प्रख्यात विद्वान् पं० काशीनाथ शास्त्री से आपने दर्शन आदि शास्त्रों का गहन अध्ययन किया।

सन् 1904 में आप महात्मा मुन्शीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द) के विशेष अनुरोध पर उनके द्वारा संस्थापित 'गुरुकुल कांगड़ी' में शिक्षक होकर चले गए। उन्हीं दिनों महात्माजी ने पंडित रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य के सम्पादकत्व में 'सत्यवादी' नामक साप्ताहिक पत्र हरिद्वार से प्रकाशित किया था। आप इस पत्र के सम्पादन में भी सहयोग देने लगे। इस प्रकार लेखन तथा सम्पादन के क्षेत्र में कार्य करने का सूत्रपात यहाँ से ही हुआ। सन् 1908 में परोपकारिणी सभा के मासिक मुखपत्र 'परोपकारी' के सम्पादक होकर आप अजमेर चले गए। वहाँ पर आपने 'परोपकारी' का सम्पादन करने के साथ-साथ 'अनाथरक्षक' नामक एक और पत्र का सम्पादन भी किया। सन् 1909 से लेकर सन् 1917 तक आप उत्तर भारत के प्रमुख शिक्षण-संस्थान गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में रहे और वहाँ पर आपने अनेक रूपों में संस्था की उल्लेखनीय सेवाएँ कीं। आप जहाँ एक शिक्षक के रूप में उस संस्था से सम्बद्ध रहे वहाँ अनेक वर्ष तक उसके मासिक पत्र 'भारतोदय' का भी सफलतापूर्वक सम्पादन किया। उस पत्र की लोकप्रियता धीरे-धीरे इतनी बढ़ी थी कि वह मासिक से साप्ताहिक भी हो गया था। कुछ समय तक आप महाविद्यालय की प्रबन्धकर्त्री सभा के मन्त्री भी रहे थे। इस बीच अचानक आपके पिताजी का असामयिक देहावसान हो गया और आपको जमींदारी के काम को देखने के लिए महाविद्यालय को छोड़कर अपने गाँव जाना पड़ा। महाविद्यालय से चले जाने पर भी आपने उसके हित-चिन्तन को सदैव अपने समक्ष रखा। एक बार जब इन्दौर में यशवन्तराव होलकर का राज्याभिषेक-उत्सव किया गया और आपको भी समम्मान वहाँ आमन्त्रित

किया गया तब वहाँ भी आपने महाविद्यालय को नहीं भुलाया तथा उनसे संस्था को प्रचुर आर्थिक सहायता दिलाई।

सन् 1918 में काशी के प्रख्यात रईस और अनन्य हिन्दी-प्रेमी बाबू शिवप्रसाद गुप्त के विशेष अनुरोध पर आप काशी चले गए और वहाँ पर रहकर कई वर्ष तक आपने उनकी प्रकाशन-संस्था 'ज्ञान-मण्डल' की ओर से प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों के सम्पादन का कार्य किया। श्री रामदास गौड़ और श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे से भी आपका सम्पर्क उन्हीं दिनों हुआ था। उन दिनों वे दोनों भी ज्ञानमण्डल में ही कार्य करते थे। शर्माजी की प्रख्यात कृति 'बिहार सतसई' का भूमिका भाग भी उन्हीं दिनों 'ज्ञान-मण्डल यन्त्रालय' में छपा था। सन् 1920 में आपको उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुरादाबाद में सम्पन्न हुए छठे अधिवेशन का सभापति बनाया गया था। इसी वर्ष आपकी स्नेहमयी माताजी का भी देहावसान हुआ था। सन् 1922 में आपको 'बिहारी सतसई' के संजीवन भाष्य पर 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' प्रदान किया गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शर्माजी ही ऐसे महानुभाव हैं जिन्हें सर्वप्रथम यह पुरस्कार प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था। इस बीच महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कई बार शर्मा जी से 'हिन्दू विश्वविद्यालय' के 'हिन्दी विभागाध्यक्ष' का कार्य-भार सँभालने का भी अनुरोध किया, किन्तु आप वहाँ नही गए। अन्ततः आपके पुराने प्रेमी महात्मा मुन्शीरामजी आपको दुबारा गुरुकुल कांगड़ी में ले जाने में सफल हो गए और आप वहाँ चले गए। आप लगभग डेढ़ वर्ष तक वहाँ हिन्दी के प्रोफेसर रहे थे। इस बीच आप सन् 1928 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुजफ्फरपुर-अधिवेशन के सभापति भी बनाए गए थे।
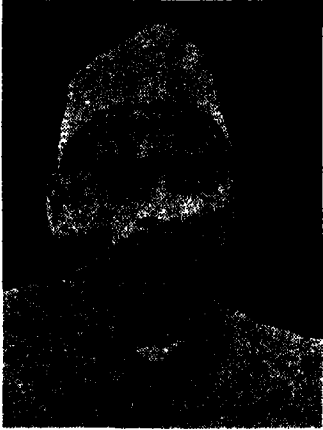
गुरुकुल कांगड़ी से पृथक् होकर आपने अपनी लेखनी को और भी प्रखर किया और साहित्यिक क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय कार्य करने के साथ-साथ आपने 'प्रबन्ध मंजरी' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। इस पुस्तक में संस्कृत वाङ्मय के महान् विद्वान् और बाणभट्ट की शैली पर गद्य लिखने वाले पं० हृषिकेश भट्टाचार्य द्वारा लिखे गए और उनके द्वारा सम्पादित 'विद्योदय' नामक पत्र में प्रकाशित संस्कृत के निबन्धों का संकलन शर्माजी ने किया था। लगभग इसी समय आपके समीक्षात्मक तथा संस्मरणात्मक लेखों का संकलन 'पद्म पराग' (प्रथम भाग) का प्रकाशन भी आपके अनन्य प्रेमी श्री पारसनाथसिंह ने पटना से किया था। सन् 1932 में 'हिन्दुस्तान एकेडेमी प्रयाग' के संचालक-मण्डल के अनुरोध पर आपने 'हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी' विषय पर जो भाषण दिया था वह बहुत विद्वत्तापूर्ण था। साहित्य-क्षेत्र में आपके इस भाषण की उन दिनों बड़ी चर्चा हुई थी। तुलनात्मक समीक्षा के क्षेत्र में शर्माजी का जो अनन्य योगदान था उसकी यत्किंचित् झलक पाठक आपके इस भाषण तथा आपके प्रख्यात ग्रन्थ 'बिहारी सतसई का संजीवन-भाष्य' में प्राप्त कर सकते हैं। आपका यह भाषण भी 'हिन्दुस्तान एकेडेमी' से इसी नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपने ही हिन्दी में सर्वप्रथम 'तुलनात्मक आलोचना-पद्धति' का सूत्रपात किया था, किन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी के अधिकांश इतिहासकारों तथा समीक्षकों ने आपकी इस शैली की उपेक्षा की थी। संस्कृत, फारसी, उर्दू और हिन्दी के शब्दो की चाशनी जैसी शर्मा जी के गद्य में देखने को मिलती है वैसी कदाचित् अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुजफ्फरपुर-अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में शर्माजी ने तत्कालीन हिन्दी कविता की दुरवस्था के प्रति चिन्ता प्रकट करते हुए जो भावनाएँ व्यक्त की थीं, वे आज भी हमारे कवियों के वास्तविक रूप को उजागर करने में उतनी ही सक्षम हैं, जितनी उन दिनों थीं। हिन्दी-कविता आज कहाँ जा रही है, उसे आप शर्माजी की इन पंक्तियों से भली-भाँति समझ सकते हैं—"हिन्दी कवियों की महिमा विचित्र है... उसके लिए किन्हीं नियमों की पाबन्दी जरूरी है, कविता चाहे सामाजिक हो, या राजनीतिक, कविता होनी चाहिए, कोरी तुकबन्दी का नाम कविता नहीं है। पद्य-रचना को कविता का पर्याय समझ लिया गया है, जो उठता है वही

टूटी-फूटी तुकबन्दी करके कवि होने का दम भरने लगता है। न छन्द-शास्त्र का ज्ञान है, न भाषा पर अधिकार है, न व्याकरण-बोध है, न रस और रीति से कुछ परिचय है; फिर भी जिस विषय पर कहिए सद्यःकविता सुनाने के लिए फौरन से पहले तैयार हैं।" ठीक यही स्थिति आज भी है। 'नई कविता' और 'अकविता' के आन्दोलन ने हिन्दी-कवियों को ऐसा गुमराह कर दिया है कि कविता से भटककर वे न जाने कहाँ पहुँच गए हैं। आपने 'सुधा', 'स्वतन्त्र' तथा 'विशाल भारत' के कई विशेषांकों का सम्पादन भी किया था। जिन दिनों आप 'भारतोदय' का सम्पादन करते थे तब भारत गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का पहला हिन्दी-लेख आपने ही अपने पत्र मे छापकर उन्हें प्रोत्साहित किया था। इस घटना का परिचय शर्माजी के नाम डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा सन् 1910 में लिखे गए एक पत्र से मिलता है। वह पत्र इस प्रकार है—

7/1, बेचू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता
तारीख 14, शु० पौष 1967

परम पूज्यनीय श्रद्धेयवर, प्रणतयः सादरम् सस्नेहम् !

कृपा पत्र पाकर अत्यन्त अनुगृहीत हुआ। आपने जो मुझे लोकोत्तर विरुदावलियों से विभूषित किया है वह केवल आपकी कृपा और दाक्षिण्य का अविकल प्रमाण है। मैं तो स्वयं अपने को अत्यन्त अल्पज्ञ जानकर आपकी सहायता का सदैव अभिलाषी हूँ। बात असल यह है कि मुझे इतने शब्दों से भूषित कर आप सहायता देने के परिश्रम से अलग नही हो सकते। 'सरस्वती' मे जो लेख देने की आज्ञा की गई, सो अनुल्लंघनीय न होने पर भी लेखक के असामर्थ्योपहत होने से विलम्बसाध्य होगी। 'सतसई संहार' लिखकर आपने 'सरस्वती' के पाठकों का जो आशीर्वाद ग्रहण किया है सो उसकी पुष्टि मेरे-से अल्पज्ञ के लेख से कैसे हो सकती है। प्रथम तो ऐसा विषय नहीं सूझता जिस पर हिन्दी रसिकों का अनुराग हो, द्वितीयतः हिन्दी-लेख में भी सामर्थ्य नहीं। आप कुछ विषय निर्देश करें तो कुछ यत्न हो। 'समाज-संशोधन' वाला लेख आपको इतना पसन्द होगा; यह मुझे कभी धारणा न थी। यदि उधर 'भारतोदय' कृतार्थ हुआ तो इधर मैं भी कृतार्थ हुआ। आशा है अपने समुचित उपदेशों से आप मुझे सदा कृतार्थ करते रहेंगे।

आपका परम सेवक, राजेन्द्र

हिन्दी के नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करने की दिशा में शर्माजी ने 'भारतोदय' के द्वारा वही कार्य किया था जो आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के माध्यम से कर रहे थे। संस्मरण-लेखन की कला में भी आप सर्वथा अद्वितीय थे। आपकी पत्र-लेखन-कला का ज्वलन्त प्रमाण वे अनेक पत्र है जो शर्माजी ने समय-समय पर देश के अनेक साहित्यकारों के नाम लिखे थे। उनमें साहित्य की विविध समस्याओं का ऐसा लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है जो समय आने पर साहित्य के अध्येताओं के लिए मार्ग-दर्शन का कार्य कर सकता है। आपके ऐसे कुछ पत्रों का संकलन श्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा श्री हरिशंकर शर्मा द्वारा सम्पादित 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। आपका अपने समय के जिन अनेक महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय साहित्यकारों से सम्पर्क रहा था उनमें से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', श्री रामदास गौड़, श्री नाथूराम शंकर शर्मा तथा श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि तो कई-कई महीने आपके पास जाकर ठहरा करते थे। आपकी शिष्य-मण्डली में सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा और श्रीराम शर्मा-जैसे अनेक तेजस्वी साहित्यकार तथा पत्रकार रहे हैं। आपका व्यक्तित्व हिन्दी की तत्कालीन पुरानी तथा नई पीढ़ी के बीच ऐसा सुदृढ़ सेतु था, जिसके कारण उन दिनों साहित्य में ऐसे साहित्यकार पनपे एवं बढ़े थे जिनके कारण हिन्दी की गौरव-वृद्धि हुई है। आपको जहाँ हिन्दी के अनेक गण्यमान्य साहित्यकारों का स्नेह प्राप्त था वहाँ आप उर्दू के भी अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों के सम्मान-भाजन थे। महाकवि अकबर, मुन्शी दयानारायण निगम तथा मुन्शी सूर्यनारायण 'सहर' के नाम इस प्रसंग में उल्लेख्य है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि सन् 1977 में शर्माजी की जन्म-शताब्दी समस्त देश में उत्साहपूर्वक मनाई गई। इस उपलक्ष्य में जहाँ 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की थी वहाँ श्री रमेशचन्द्र दुबे के उल्लेखनीय प्रयास से 'आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य' नामक एक विशाल 'स्मृति-ग्रन्थ' भी प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन 7 अप्रैल सन् 1932 को प्लेग के कारण हुआ था। आप 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग' में 'हिन्दी, उर्दू,

हिन्दुस्तानी' विषय पर ऐतिहासिक भाषण देकर अपने गाँव लौटे ही थे कि अकस्मात् यह वज्रपात हो गया। आपके निधन पर 'विशाल भारत', 'सैनिक' तथा 'त्यागी' आदि कई पत्रों ने अपने विशेषांक प्रकाशित किये थे।

श्रीमती पद्मा पटरथ

श्रीमती पद्मा पटरथ का जन्म 7 मार्च सन् 1925 को जबलपुर में हुआ था। आप मध्यप्रदेश की महिला साहित्यकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती थीं। आपकी रचनाएँ 'धर्मयुग', 'पराग', 'नन्दन', 'बाल भारती', 'मनोरमा', 'माध्यम', 'हमारा घर', 'मध्यप्रदेश सन्देश', 'नवभारत', 'शताब्दी', 'देशबन्धु' तथा 'प्रहरी' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं।

एक उत्कृष्ट कथा-लेखिका होने के साथ-साथ आप समाज-सेवा के क्षेत्र में भी अग्रणी स्थान रखती थीं। जबलपुर की कांग्रेस कमेटी, भारत सेवक समाज और ब्रह्माकुमारी समाज आदि अनेक संस्थाओं की गतिविधियों में आपका सक्रिय सहयोग रहता था।

पारिवारिक जीवन को आधार बनाकर आपने अनेक कहानियाँ लिखी थीं। इनकी रचनाओं में समाज के मध्यम वर्ग की समस्याओं का अच्छा चित्रण हुआ है। आकाशवाणी के नागपुर, जबलपुर, इन्दौर और भोपाल आदि केन्द्रों से आपकी रचनाएँ प्रसारित होती रहती थीं। आपकी कहानियों का संकलन 'मील के पत्थर' (1952) नाम से प्रकाशित हो चुका है।

आपका निधन 17 जनवरी सन् 1978 को हुआ था।

श्री पन्नालाल त्रिपाठी

श्री त्रिपाठीजी का जन्म 12 सितम्बर सन् 1922 को हुआ था। आप दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा मद्रास के पुराने प्रचारक एवं कार्य-कर्ता थे। सभा में आपने हिन्दी-प्रचारक तथा प्रधानाध्यापक होने के साथ-साथ उसके साहित्य एवं परीक्षा विभाग में भी विभिन्न रूपों में कार्य किया था।

आप हिन्दी के सुलेखक कवि और पत्रकार थे। आपने 'चन्द मद्रासी' उपनाम से भी काफी कुछ लिखा था। आपने सन् 1965 से लेकर सन् 1970 तक 'निर्मला' और 'जोरदार' (पाक्षिक) आदि पत्रों में कार्य किया था। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा की सेवा में आप लगभग 20 वर्ष तक रहे थे।

आपका निधन 17 मार्च सन् 1980 को हुआ था।

श्री पन्नालाल धूसर

श्री धूसरजी का जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी नगर में सन् 1897 में हुआ था। आपकी शिक्षा केवल कक्षा चार तक ही हुई थी, लेकिन अपने अद्वितीय अध्यवसाय के बल पर आपने जहाँ हिन्दी का ज्ञान घर पर ही बढ़ाया था वहाँ अँग्रेजी तथा उर्दू का अच्छा परिचय भी प्राप्त कर लिया था। प्रारम्भ में आपने अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए बहुत से धन्धे किए, किन्तु किसी में भी सफलता मिलती न देखकर सन् 1946 में 'भारती प्रेस' की स्थापना की। धीरे-धीरे जब उसमें आपको सफलता मिलती गई तब आपने सन् 1956 में साप्ताहिक 'भारती' का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

'भारती' के प्रकाशन के बाद आपने अपने क्षेत्र की जो सेवा की वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। आपने प्रादेशिक समस्याओं के समाधान की दिशा में 'भारती' के माध्यम से बहुत बड़ा कार्य किया था। बुन्देलखण्ड की संस्कृति तथा साहित्य के प्रति आपके मन में जो लगन थी उसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि आपने उसके 'झाँसी दर्शन अंक', 'दतिया पर्यटन अंक', 'ओरछा अंक' तथा 'वरुआ सागर अंक' प्रकाशित किए थे। यही नहीं 'भारती' के 'लोक संस्कृति अंक', 'राष्ट्रीय भाषा अंक', 'बुन्देली साहित्य शोध अंक' तथा 'संस्मरण अंक' भी आपकी सम्पादन-पटुता के उज्ज्वल दर्पण हैं।

उधर आप जहाँ अपने प्रदेश की संस्कृति एवं कला आदि की समृद्धि में पूर्णतः रुचि ले रहे थे वहाँ इधर अपने क्षेत्र के साहित्यकारों के अभिनन्दन-वन्दन की दिशा में भी आपने 'भारती' के द्वारा उल्लेखनीय सेवा की थी। इसके साक्षी 'भारती' के वे अंक हैं जो आपने प्रख्यात साहित्यकार श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' तथा श्री कृष्णानन्द गुप्त के अभिनन्दन मे प्रकाशित किए थे। उसके 'खेल-कूद अंक' और 'बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण अंक' भी आपकी सूझ-बूझ तथा लगन के सूचक हैं। आपकी सम्पादन-पटुता का सबसे उज्ज्वलतम पक्ष यही है कि आपने अपने प्रदेश की सेवा करने की दिशा में अत्यन्त सतर्कता से काम लिया था। बुन्देलखण्ड-जैसे पिछड़े हुए प्रदेश में रहकर अपनी सीमित योग्यता तथा साधनों में आपने 'भारती' के दीप को अक्षुण्ण भाव से जलाए रखा, यही क्या कम है?

आपका निधन 23 मार्च सन् 1976 को हुआ था। आपके निधन के उपरान्त 'भारती' का जो 'पत्रकार कला विशेषांक' आपकी स्मृति में प्रकाशित हुआ था वह आपके जीवन्त व्यक्तित्व को उजागर करने में पूर्णतः सफल हुआ है।

श्री पन्नालाल शर्मा 'नायाब'

श्री नायाब का जन्म 7 जनवरी सन् 1885 को मध्य प्रदेश के सलकनपुर नामक स्थान में हुआ था, जहाँ आपकी ननसाल थी। वैसे आपका मूल निवास-स्थान धार जिले का बदनावर नामक नगर है। आप जहाँ हिन्दी के अच्छे कवि थे वहाँ आयुर्वेदिक औषधियों में काम आने वाली वनस्पतियों के भी अद्भुत ज्ञाता थे। आपने साहित्यिक क्षेत्र में उस समय प्रवेश किया जबकि भारतेन्दु-काल अपनी अन्तिम साँसें ले रहा था और द्विवेदीयुगीन काव्य ब्रजभाषा के घटाटोप से निकलकर खड़ी बोली को अपना रहा था। आपने ब्रज-भाषा और खड़ी बोली में काव्य-रचना करने के साथ-साथ मालवी भाषा के काव्य को भी नए आयाम दिए हैं।

एक उत्कृष्ट चिकित्सक और वनस्पतिवेत्ता के रूप में जनवरी सन् 1922 में इन्दौर में आयोजित 'निखिल भारत-वर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन' में आपको जहाँ पुरस्कृत और अभिनन्दित किया गया था वहाँ महाराजा धार के दरबार में भी एक अच्छे चिकित्सक के रूप में आपकी पहुँच थी। इन्दौर के 'अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय' ने नायाबजी के निरीक्षण में जो वनस्पति-उद्यान लगाया था वह आपकी कर्मठता का साक्षी है। आप जहाँ उत्कृष्ट कवि, नाटककार और वनस्पतिवेत्ता थे वहाँ मालवी साहित्य के उन्नायक के रूप में भी आपकी गणना की जाती है।

आपकी साहित्य-सम्बन्धी सेवाओं के उपलक्ष्य में 20 जून सन् 1969 को मालवा जनपद के सागौर नामक स्थान में मध्यप्रदेश के तत्कालीन राज्य मन्त्री श्री बालकवि बैरागी की अध्यक्षता में आपका जो भावभीना अभिनन्दन हुआ था वह सर्वथा अभूतपूर्व था। इस समारोह की एक विशेषता यह भी थी कि मालव-भूमि के रत्न और हिन्दी के सुलेखक श्री

हरिभाऊ उपाध्याय ने भी इसमें भाग लिया था। अपने अभिनन्दन का उत्तर नायाबजी ने जिस सहज विनोदमयी शैली में दिया था उससे आपके व्यक्तित्व की सहजता और सरलता का आभास मिलता है। आपने कहा था :

वर्तमान कवि सब मेरी सन्तान हैं।
कोई तो सिपाही, कोई कप्तान है॥
इनके गौरव पर मुझे अभिमान है।
देता हूँ आशीर्वाद मेरा किया सम्मान है॥
और सब मूँगा (मँहगा) पर सस्ता आशीर्वाद है।
गोल (गुड़) खाए गूँगा तो मन में स्वाद है॥

आपकी हिन्दी तथा मालवी की प्रकाशित कृतियों में 'मास्टर साहब की अनोखी छटा' (मालवी नाटक 1912), 'भारत में फू और थू' (हिन्दी नाटक 1913), 'गणित शिक्षक' (1915) तथा 'नौकरी का चस्का' (1924) उल्लेखनीय हैं।

ऐसे सहज, सरल और निश्छल व्यक्तित्व के धनी कलाकार का निधन 16 मार्च सन् 1976 को हुआ था।

आचार्य परमानन्द शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म 16 अप्रैल सन् 1900 को उत्तर प्रदेश के गाजीपुर के रेवतीपुर नामक ग्राम में हुआ था। सन् 1914 में मिडिल करने के उपरान्त आप अपने भाई के साथ कलकत्ता चले गए और आप फिर वहीं के हो गए। कलकत्ता में रहकर आपने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया। सन् 1920 से सन् 1965 तक आपने जहाँ अनेक छात्र-छात्राओं को अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए तैयार किया वहाँ 'साधना' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रारम्भ की थी, जो कई वर्ष तक बड़ी सफलतापूर्वक प्रकाशित हुई थी। इसके प्रकाशन के 7-8 वर्ष बाद आपने 'सिद्धांजना' नामक एक और पत्रिका भी सम्पादित की थी।

शर्माजी उच्चकोटि के अध्यापक और पत्रकार होने के साथ-साथ गम्भीर साहित्यिक अनुभूतियों का चित्रण करने में भी सर्वथा अद्वितीय थे। आपकी ऐसी प्रतिभा के दर्शन आपके द्वारा विरचित उन अनेक ग्रंथों में होते हैं जिनसे हिन्दी-साहित्य गौरवान्वित हुआ है। आपकी ऐसी रचनाओं में 'प्रसाद साहित्य', 'साहित्य और अनुभूति', 'नवीन प्रवाह' और 'काव्याधार' प्रमुख हैं। इनमें हमें जहाँ आपके समीक्षक रूप के दर्शन होते हैं वह आपकी 'स्वामी सहजानन्द सरस्वती' तथा 'प्रदक्षिणा' नामक पुस्तकें भी आपकी विशिष्ट प्रतिभा की द्योतक हैं। यह विडम्बना की ही बात कही जायगी कि आपकी 'निराला के संस्मरण', 'प्रबन्ध पाटल', 'महादेवी साहित्य', 'कथा साहित्य' और 'बाल मुकुल' आदि रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही हैं।
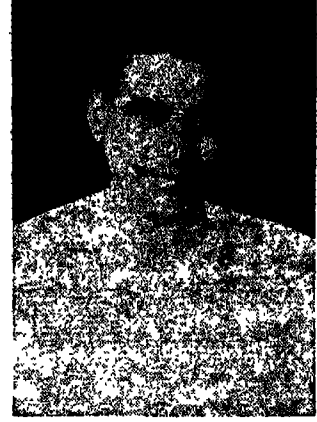
श्री शर्माजी ने लगातार 55 वर्ष तक कलकत्ता में रहकर हिन्दी की जो साधना की वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। आप 'बंग प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के मन्त्री भी रहे थे। इस संस्था के माध्यम से आपने हिन्दी-सेवा के क्षेत्र में जो पद-चिह्न छोड़े हैं वे साहित्य के प्रेमियों के लिए तो अनुकरणीय हैं ही, वहाँ के उनके अनेक भक्तों के लिए भी अभूतपूर्व प्रेरणादायक हैं। शर्माजी का जहाँ उन दिनों कलकत्ता में रहने वाले सर्वश्री सकलनारायण शर्मा, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा लक्ष्मणनारायण गर्दे आदि अनेक साहित्यकारों से निकट का सम्पर्क था वहाँ 'मतवाला-मण्डल' के महादेवप्रसाद सेठ, मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', बाबू शिवपूजनसहाय और श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के बीच भी आपकी अच्छी पैठ थी। वास्तव में इन साहित्यकारों के सम्पर्क-सान्निध्य ने ही आपकी साहित्य-चेतना को चार चाँद लगाए थे। वास्तव में आप नई और पुरानी पीढ़ी के बीच एक सुदृढ़ सेतु का काम करने वाले थे।

हिन्दी के इस अनन्य साधक का निधन 11 सितम्बर सन् 1978 को कलकत्ता में हुआ था।

श्री पीटर शान्ति नवरंगी

श्री नवरंगी का जन्म 30 दिसम्बर सन् 1899 को बिहार के राँची जिले के पाटपुर नामक ग्राम के निवासी श्री विलियम प्रेमोदय नवरंगी के यहाँ हुआ था। आप कैथोलिक मिशन के अनुयायी थे और आपकी आरम्भिक परीक्षा अपने ही ग्राम में हुई थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'साहित्य-रत्न' तथा हिन्दी विद्यापीठ देवघर की 'साहित्य भूषण' परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके आप राँची के सेंट जॉन्स हाई स्कूल में हिन्दी के शिक्षक हो गए थे। हिन्दी के अतिरिक्त आपने नागपुरी बोली के विकास के लिए भी बहुत बड़ा कार्य किया था। वास्तव में आप नागपुरी को अपनी मातृभाषा मानते थे। हिन्दी में आपने 'छोटा नागपुर का संक्षिप्त इतिहास', 'सत्यमेव जयते', 'मदन विछोह' (दोनों नाटक), 'पाँच एकांकी' तथा 'हिन्दी भाषा प्रदीप' नामक पुस्तकें लिखी थीं। 4 नवम्बर सन् 1968 को आपका देहान्त हो गया था।

श्रीमती पुरुषार्थवती

श्रीमती पुरुषार्थवती का जन्म वजीराबाद (पंजाब) में 10 अक्तूबर सन् 1911 को हुआ था। आपके पिता श्री चिरंजीलाल पंजाब के प्रख्यात आर्यसमाजी नेता थे। आप हिन्दी की प्रख्यात लेखिका श्रीमती सत्यवती मलिक की छोटी बहन और हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की पहली धर्मपत्नी थीं।

आपको साहित्य-सम्बन्धी वातावरण अपने पारिवारिक परिवेश से ही सुलभ हुआ था। बाल्यकाल से ही आप कविता करने लगी थीं। थोड़ी-सी आयु में ही आपने इतनी अनुभूति-प्रधान रचनाएँ की थीं कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता था। आपकी रचनाओं का संकलन 'अन्तर्वेदना' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

आपका निधन 11 फरवरी सन् 1931 को हुआ था।

श्री पुरुषोत्तम केवले

श्री केवले का जन्म पश्चिमी पाकिस्तान के डेरा इस्माइलखाँ नामक नगर में 6 अगस्त सन् 1920 को श्री हीरालाल केवलिया के घर हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वहाँ की स्थानीय पाठशालाओं में ही हुई थी और कार्य-रत रहते हुए ही आपने हिन्दी प्रभाकर, कृषि विशारद, एम० ए० (इतिहास) और एल-एल० बी० की परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण की थीं।

आपने उस अहिन्दी-भाषी प्रदेश में हिन्दी की कक्षाएँ चलाकर हिन्दी-प्रचार का अद्भुत कार्य किया था। भारत-पाकिस्तान-विभाजन के उपरान्त आपने कुछ दिन तक 'मानव भारती' राजपुर (देहरादून) में कार्य किया और फिर बीकानेर (राजस्थान) में आकर 'गंगा बाल विद्यालय' में अध्यापक हो गए थे।

सन् 1964 में आप आकाशवाणी के संवाददाता बने और फिर सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री शम्भूदयाल सक्सेना के साथ 'सेनानी' में उनके सहायक रहे। एक प्रतिभाशाली पत्रकार के रूप में आपने राजस्थान की जनता की उल्लेखनीय सेवा की थी। जब श्री केवले के प्रयास से राजस्थान के 'दस्यु दल' के एक गिरोह ने आत्म-

समर्पण किया तो राजस्थान के आई० जी० पुलिस श्री हनुमान वर्मा ने 3 नवम्बर सन् 1968 को आपको 'राइफल' देकर सम्मानित किया था।

आप जहाँ उच्चकोटि के पत्रकार थे वहाँ आपने कहानियाँ, निबन्ध तथा संस्मरण-लेखन में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। 'राजस्थान में अकाल' विषय पर शोध-कार्य करके आपने पत्रकारिता के क्षेत्र में नए आयाम उद्घाटित किए थे। 30 वर्ष तक पूरी संलग्नता के साथ पत्रकारिता करते हुए आपका निधन 9 जून सन् 1977 को बीकानेर में हुआ था।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

श्री टण्डनजी का जन्म 1 अगस्त सन् 1882 को प्रयाग में हुआ था। आपके पिता श्री शालग्राम टण्डन राधास्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। टण्डनजी का विद्यारम्भ एक मौलवी साहब के द्वारा हुआ था, जो मोहल्ले के सभी बच्चों को हिन्दी पढ़ाया करते थे। सी० ए० वी० स्कूल से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आप गवर्नमेंट हाई स्कूल में प्रविष्ट हो गए थे। सन् 1897 में आपने वहाँ से एण्ट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। एण्ट्रेंस करने के उपरान्त आपने कायस्थ पाठशाला इण्टर कालेज से इण्टर की परीक्षा दी और फिर आगे की पढ़ाई के लिए 'म्योर सेण्ट्रल कालेज' में प्रविष्ट हो गए। सन् 1904 में बी० ए० करने के उपरान्त आपने वकालत की परीक्षा दी और फिर विधिवत् वकालत प्रारम्भ कर दी। 2 वर्ष तक छोटी अदालत में प्रैक्टिस करने के उपरान्त आपने सन् 1908 में हाईकोर्ट में वकालत करनी शुरू कर दी। इसी बीच वकालत करते हुए ही आपने सन् 1907 में इतिहास विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली थी।

इन्हीं दिनों आपका सम्पर्क महामना मदनमोहन मालवीय और श्री बालकृष्ण भट्ट से हो गया और आप वकालत करते हुए भी हिन्दी-प्रचार के कार्यों में बराबर रुचि लेने लगे। यहाँ तक कि वकालत करते हुए ही आपने 'अभ्युदय' के सम्पादन में भी सहयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। इस बीच सन् 1897 में आपका उस समय विवाह हो गया था जबकि आप मैट्रिक में ही पढ़ रहे थे। जिन दिनों आपकी वकालत हाईकोर्ट में जोरों से चल रही थी तब आप महामना मालवीयजी के अनुरोध पर नाभा स्टेट के कानून मन्त्री होकर पंजाब चले गए। आपने वहाँ के 'विधि मन्त्री' के रूप में कार्य करने के साथ-साथ 'विदेश मन्त्री' का कार्य भी किया था। इस अवधि में अचानक 4 वर्ष उपरान्त कुछ ऐसी समस्या उत्पन्न हो गई कि आपको नाभा छोड़कर प्रयाग लौटना पड़ा। प्रयाग आकर आप फिर अपने वकालत के काम में तल्लीन हो गए।

जिन दिनों आप प्रयाग लौटे थे तब देश में राजनीतिक चेतना जोर पकड़ती जा रही थी। टण्डनजी भी उससे अछूते कैसे रहते? सन् 1906 में टण्डनजी ने इलाहाबाद के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया। आपके साथ इलाहाबाद के अन्य प्रतिनिधियों में महामना मालवीय, मोतीलाल नेहरू, तेजबहादुर सप्रू और पं० अयोध्यानाथ भी थे। यह पहला अवसर था जब प्रयाग की राजनीति में महामना मालवीय और मोतीलाल नेहरू के साथ टण्डनजी का नाम जुड़ा था। टण्डनजी ने 'राजनीति' में कार्य करते हुए 'साहित्य' को भी उसी तन्मयता से साधा था। अपनी इसी हिन्दी-निष्ठा के कारण आप सन् 1933 में कानपुर में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अध्यक्ष भी बनाए गए थे। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सम्मेलन के इस अधिवेशन के 'स्वागताध्यक्ष' आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी थे, जो कानपुर में रहकर ही 'सरस्वती' का सम्पादन किया करते थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से टण्डनजी को इतना अनुराग था कि वे सम्मेलन और हिन्दी के अतिरिक्त कुछ सोचते ही नहीं थे। यहाँ तक कि अनेक बार 'राजनीति'

में रहते हुए आपने 'हिन्दी' के लिए अनेक प्रहार भी सहे थे। आपका कांग्रेस में भी वही 'वर्चस्व' था, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन में। आप अच्छे वक्ता और प्रचारक होने के साथ हिन्दी के मर्मज्ञ लेखक भी थे। आपके साहित्यिक ज्ञान का परिचय श्री रामनरेश त्रिपाठी की प्रख्यात कृति 'हिन्दी कविता कौमुदी' की भूमिका पढ़ने से मिल जाता है। इस भूमिका में आपने साहित्य के इतिहास पर विशद रूप से प्रकाश डाला था आपके फुटकर लेखों और भाषणों का संकलन आपकी 'शासन पथ-निदर्शन' नामक पुस्तक में किया गया है। आपने एक 'बन्दर सभा महाकाव्य' नामक काव्य की रचना आल्हा छन्द में दिल्ली-दरबार को लक्ष्य करके अवधी भाषा में की थी। इसका प्रकाशन श्री बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित 'हिन्दी प्रदीप' के 24 जुलाई सन् 1905 के अंक में हुआ था।

एक समय ऐसा भी था जब आप उत्तर प्रदेश के 'गान्धी' कहलाते थे। सन् 1923 में जब उत्तर प्रदेश कांग्रेस का अधिवेशन गोरखपुर मे हुआ था तब आप ही उसके अध्यक्ष बनाए गए थे। कांग्रेस में अनेक वर्ष तक उच्च पदों पर रहते हुए भी आपने 'हिन्दी' के प्रश्न को भुलाया नहीं था। उत्तर प्रदेश 'विधान सभा' के अध्यक्ष के रूप में भी आपने हिन्दी की उल्लेखनीय सेवा की थी। यहाँ तक कि जब आप कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे तब भी आपने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में सभी काम हिन्दी में करने के आदेश दिए थे। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब 'विधान परिषद्' बनी और उसमें भारतीय संविधान में भाषा का प्रश्न उठा तब भी आपने उसके लिए जो संघर्ष किया वह सर्व विदित है।

जब-जब भी टण्डनजी के सामने हिन्दी और राजनीति के प्रश्न आये तब-तब ही आपने अत्यन्त निर्भीकता से हिन्दी के पक्ष में जोरदार तर्क प्रस्तुत किए। यहाँ तक कि एक बार तो आपने स्पष्ट रूप से यह भी घोषित कर दिया था—"लोग कहते हैं कि मैं साहित्य और राजनीति से समन्वित दोहरा व्यक्तित्व रखता हूँ। पर सच्ची बात यह है कि मैं पहले साहित्य में आया और प्रेम से आया। हिन्दी साहित्य से प्रति मेरे उसी प्रेम ने उसके हितों की रक्षा और उसके विकास-पथ को स्पष्ट करने के लिए मुझे राजनीति में सम्मिलित होने को बाध्य किया।" टण्डनजी की हिन्दी साहित्य के प्रति की गई सेवाओं को दृष्टि में रखकर 'दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने प्रयाग में राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के करकमलों द्वारा 23 अक्तूबर सन् 1960 को जो अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित किया था, वह आपके जीवन और कार्यों का सही लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के निर्माण में टण्डनजी ने जो परिश्रम किया था उसकी उपमा आप स्वयं ही थे। सन् 1910 से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक आप बराबर सम्मेलन की हित-चिन्तना में ही लगे रहे और अन्त में सम्मेलन की व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए शासन द्वारा 'सम्मेलन विधेयक' बनवाकर ही दम लिया। यह आपकी साधना का सुपरिणाम है कि 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' आज 'राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था' घोषित हो गया है। आपकी राष्ट्र और हिन्दी के प्रति की गई सेवाओं को दृष्टि में रखकर ही भारत सरकार ने आपको सन् 1961 में 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित किया था। इस सम्बन्ध में 15 अप्रैल सन् 1948 में 'देवरहवा बाबा' द्वारा प्रयाग के विशाल जन-समूह के समक्ष प्रदत्त 'राजर्षि' की उपाधि का भी उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। आपके निधन के उपरान्त श्री लक्ष्मीनारायण और श्री ओंकार शरद् ने सन् 1967 में 'भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन: व्यक्तित्व और संस्मरण' नामक जो स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित किया था उससे टण्डनजी के जीवन और व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

आपका निधन 1 जुलाई सन् 1962 को प्रयाग में हुआ था।

श्री पुरुषोत्तमलाल दवे 'ऋषि'

श्री 'ऋषि' का जन्म सन् 1912 में काशी में हुआ था। आपके पिता श्री भँवरलाल दवे वहाँ के प्रसिद्ध 'गोपाल-मन्दिर' में सेवा किया करते थे। आपकी शिक्षा कठिनाई से 3-4 कक्षा तक ही हो सकी थी। आप उस समय 10-12 वर्ष के ही रहे होंगे जब आपका सम्पर्क कुछ क्रान्तिकारियों

से हो गया और बनारस के 'डफरिन ब्रिज' को पलीता लगाकर उड़ाने में आपने उन क्रान्तिकारियों का पूरी तरह साथ दिया था। गिरफ्तारी से बचने के लिए आप भूमिगत हो गए और इसी बीच 'काकोरी ट्रेन डकैती केस' में पूरी तरह सफल हुए। फिर सन् 1930 में आप डालटेनगंज में गिरफ्तार कर लिए गए और एक वर्ष की जेल-यात्रा की।
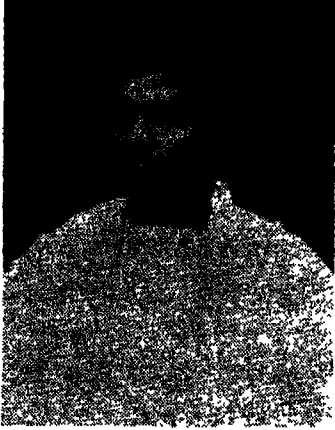
इस बीच एक और अभियोग में आपको काले पानी तथा आपके एक और साथी स्वामी सत्यानन्द को फाँसी की सजा हो गई। आप लगभग एक वर्ष जेल में रहकर हाईकोर्ट द्वारा दोष-मुक्त कर दिए गए। इसके बाद आपने गुप्त रूप से 'रणभेरी' नामक एक दैनिक समाचार पत्र भी काशी से निकाला और सम्पादक के रूप में अपना नाम 'ऋषिकुमार' दिया। इसी कारण आपको 'ऋषि' नाम से भी पुकारा जाने लगा। धीरे-धीरे आपकी रुचि साहित्य की ओर होती गई और श्री हरिऔधजी तथा प्रसादजी के सम्पर्क में आकर आप साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त हो गए।

आपने सन् 1939 के आस-पास 'खुदा की राह पर' नामक एक पाक्षिक पत्र भी सम्पादित-प्रकाशित किया था। सन् 1942 तक इस पत्र ने हास्य तथा व्यंग्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया था। 'रामायण' के प्रख्यात विशेषज्ञ श्री विजयानन्द त्रिपाठी के सम्पर्क में आकर आपने 'रामचरितमानस' का गहन अध्ययन किया और उसकी एक विस्तृत टीका अपने ही प्रेस से प्रकाशित की थी। आपने समाज के दूषित व्यक्तियों को लक्ष्य करके 'आधुनिक तोता-मैना' नामक एक पुस्तक भी लिखी थी, जिसकी भूमिका काशी विद्यापीठ के भूतपूर्व कुलपति श्री राजाराम शास्त्री ने लिखी है। आपने गुजराती के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के उपन्यास 'पूर्णिमा' का हिन्दी अनुवाद भी किया था।

आपने 'काशी का सचित्र इतिहास' लिखने की योजना भी बनाई थी, किन्तु यह कार्य पूरा न हो सका। आपका 'नारद महाकाव्य' आपकी साहित्यिक प्रतिभा का ज्वलन्त साक्षी है। यह खेद की ही बात है कि इसके केवल 11 सर्ग ही आप लिख सके थे कि आगे अनेक मुकदमों में फँस जाने के कारण उसे पूरा न कर सके। आपने बनारसी बोली में 'ऋतु संहार' काव्य की रचना भी की थी।

आपका निधन 10 जुलाई सन् 1962 को कैंसर के कारण हुआ था।

श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म सन् 1898 में राजस्थान के जयपुर राज्य के अन्तर्गत टोडा रायसिंह नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री मथुरालालजी श्रीमद्भागवत और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पितृदेव के ही चरणों में हुई थी और तदुपरान्त आपने भारत के प्रसिद्ध तीर्थ नाथद्वारा में जाकर विद्वद्वर श्री बालशास्त्री के सान्निध्य में रहकर सन् 1928 में साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

उन्हीं दिनों आप नाथद्वारा के गोस्वामी श्री गोवर्धनलालजी महाराज के सम्पर्क में आए। गोस्वामीजी आपकी विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि अपने संस्कृत विद्यालय में आपको अध्यापक के पद पर नियुक्त कर लिया। जब वे भारत की तीर्थ-यात्रा के लिए गए थे, श्री चतुर्वेदीजी को भी अपने साथ ले गए थे। तीर्थ-यात्रा से लौटकर अनेक वर्ष तक आपने नाथ-

द्वारा में अध्यापन का कार्य किया था। सन् 1925 में आप नाथद्वारा छोड़कर अपने गाँव चले गए थे।

आपके नाथद्वारा छोड़ने की सूचना जब बम्बई-निवासी गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी महाराज को मिली तो उन्होंने आपको सम्मानपूर्वक अपने पास बुला लिया और अपने दो भतीजों के अध्यापनार्थ आपकी नियुक्ति कर दी। चतुर्वेदीजी ने उक्त दोनों गोस्वामी-कुमारों को लगभग आठ वर्ष तक संस्कृत वाङ्मय की विधिवत् शिक्षा प्रदान की थी। इसी बीच आपने संस्कृत-साहित्य के अमर ग्रन्थ 'रस गंगाधर' को हिन्दी में अनूदित कर दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इसमे पूर्व इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद प्राप्य ही नही था। इसके अनुवाद का कार्य मूल ग्रन्थ में विरामादि चिह्नों के यथावत् न होने के कारण सर्वथा जटिल था। इस कार्य के लिए देश के साहित्यिक मनीषियों ने आपकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। उन्हीं दिनों आपने पण्डित-प्रवर पं० मधुसूदन झा के ग्रन्थो का भी सम्पादन योग्यता-पूर्वक किया था। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर गोस्वामी व्रजभूषणलालजी ने आपको 'शुद्धाद्वैतालंकार' की उपाधि से सम्मानित किया था।

आपकी विद्वत्ता की धाक उन दिनों देश की प्रायः सभी पण्डित-मण्डली में थी। सन् 1934 में आप अजमेर की प्रख्यात शिक्षा-संस्था 'मेयो कालेज' में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे और लगभग 15 वर्ष तक वहाँ पर अध्यापन-कार्य करने के उपरान्त सन् 1949 में त्यागपत्र देकर चले आए। इसके उपरान्त आप काशी-नरेश के अनुरोधपूर्ण आमन्त्रण पर रामनगर (बनारस) चले गए और उन्होंने आपको अपने यहाँ 'राजपण्डित' के सम्मानित पद पर नियुक्त कर लिया। वहाँ रहते हुए आप 'पुराण प्रकाशन विभाग' के मन्त्री भी रहे थे। आपकी लेखन-प्रतिभा का इसीसे परिचय मिलता है कि संस्कृत और हिन्दी में समान रूप से आपने अनेक ग्रन्थ लिखे। आपकी ऐसी रचनाओं में 'रस गंगाधर' के अतिरिक्त 'संस्कृत भाषा का सरल व्याकरण' (1935), 'ध्वन्यालोक सार' (1954), 'वृत्ति दीपिका' (1956), 'भारतीय व्रतोत्सव' (1957) तथा 'अम्बिका-परिणय-चम्पू' आदि उल्लेखनीय हैं। आपने 'भारतीय धर्म' नामक एक पत्र का भी सम्पादन किया था।

आपका निधन सन् 1961 में हुआ था।

अध्यापक पूर्णसिंह

आपका जन्म उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के एबटाबाद (अब पाकिस्तान) नामक जनपद के एक ग्राम में सन् 1881 में हुआ था। आपका परिवार सिख-धर्म में दीक्षित था और आपके पिता एक अत्यन्त साधारण सरकारी नौकरी किया करते थे और भूमि-सम्बन्धी नाप-जोख के प्रसंग में आपको प्रायः पहाड़ी स्थानों की यात्रा करनी पड़ती थी। आपके गाँव में अधिकांश पठान लोग ही रहा करते थे। उनके बीच ही आपका बाल्यकाल व्यतीत हुआ करता था। रावलपिंडी के एक स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप आगे की शिक्षा के लिए लाहौर चले आए थे। अभी आपने बी०ए० भी नहीं किया था कि आपको विदेश जाने के लिए छात्र-वृत्ति मिल गई और सन् 1900 मे आप जापान चले गए और 3 वर्ष तक टोकियो की 'इम्पीरियल यूनिवर्सिटी' में व्यावहारिक 'रसायन शास्त्र' का अध्ययन किया।

इन्हीं दिनों आपका सम्पर्क वहाँ पर भारत के प्रख्यात सन्त तथा विचारक स्वामी रामतीर्थ से हो गया, जो उन दिनों वहाँ गए हुए थे और उनके वेदान्त-सम्बन्धी भाषणों की जापान में बड़ी धूम मची हुई थी। आप भी उनके प्रभाव से अछूते न रहे और आपकी विचार-धारा भी 'वेदान्त' की ओर हो गई। इसके परिणामस्वरूप आप भी संन्यासी वेश में रहने लगे और उनके अन्तरंग शिष्य हो गए। भारत में आकर जब आपने कार्य प्रारम्भ किया तो सबसे पहले आप देहरादून के 'इम्पीरियल फारेस्ट इंस्टीट्यूट' में कैमिस्ट के पद पर नियुक्त हुए। इस विभाग में यह पद कितना महत्त्वपूर्ण था, इसका प्रमाण इसी से मिल जाता है कि उन दिनों आपका वेतन 700 रुपए मासिक था। स्वामी रामतीर्थ के सत्संग का प्रभाव आपके

जीवन पर इतना पड़ा था कि आप अपने वेतन की अधिकांश राशि साधु-सन्तों की सेवा तथा आतिथ्य में ही व्यय कर दिया करते थे।

जब आपके पारिवारिजनों ने पूर्णसिंहजी की यह स्थिति देखी तो उन्होंने आपका विवाह कर दिया। विवाह के उपरान्त भी आपके कार्य-व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। फलस्वरूप आपने उस नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और ग्वालियर जाकर कृषि-कार्य करने लगे। किन्तु वहाँ पर भी जब आपका मन नहीं लगा तब आप पंजाब के 'जड़ाँवाला' नामक स्थान में चले गए और वहाँ पर भी आपने कृषि-कार्य प्रारम्भ किया। वैसे आपकी मातृभाषा पंजाबी थी और आप पंजाबी के ही लेखक थे, किन्तु हिन्दी में भी आपके द्वारा लिखे गए 5 लेख मिलते हैं। उन लेखों के शीर्षक हैं— 'कन्या-दान या नयनों की गंगा', 'पवित्रता', 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम' तथा 'सच्ची वीरता'। इन सभी लेखों की शैली प्रायः भाव-प्रधान है और इनमें आध्यात्मिकता भी कूट-कूटकर भरी हुई है।

जिन दिनों आप देहरादून में कार्य-रत थे तब एक ऐसी घटना हुई कि उसने आपके जीवन को ही पलट दिया। इस घटना का वर्णन आपके अनन्य मित्र और हिन्दी के प्रख्यात समीक्षक पंडित पद्मसिंह शर्मा ने इस प्रकार किया है— "उन दिनों प्रो० पूर्णसिंह पर स्वामी रामतीर्थ के वेदान्त की मस्ती का बड़ा गहरा रंग चढ़ा हुआ था। उस रंग में आप सराबोर थे। आपके आचार-विचार और व्यवहार में वही रंग झलकता था। आप उस समय स्वामी रामतीर्थ के सच्चे प्रतिनिधि प्रतीत होते थे। खेद है, आगे चलकर घटना-चक्र में पड़कर वह रंग एक दूसरे ही रंग में बदल गया। देहली षड्यंत्र के उस मुकदमे में, जिसमें मास्टर अमीरचन्द को फाँसी की सजा हुई, सबूत या सफाई में प्रो० पूर्णसिंह की तलबी हुई। मास्टर अमीरचन्द स्वामी रामतीर्थ के अनुयायी भक्त थे। उन्होंने स्वामीजी की कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं। इस हिसाब से मास्टर साहब प्रो० पूर्णसिंह के गुरुभाई थे। देहली जाकर वे कभी-कभी आपके पास ठहरते भी थे। उस मुकदमे में प्रोफेसर साहब की तलबी का यही कारण था। उस समय देश की दशा कुछ और थी और वह मुकदमा भी बड़ा भयानक था। बहुत-से निरपराध लोग भी उसकी चपेट में आ गए थे। प्रो० पूर्णसिंह के फँसने की शायद सम्भावना थी, या नौकरी छूटने का डर था, यह देखकर प्रो० पूर्णसिंह के आत्मीय और मिलने वाले, जिनमें सिख-सम्प्रदाय के सज्जनों की संख्या अधिक थी, घबरा गए। उन्होंने प्रो० पूर्णसिंह पर जोर दिया कि आप मास्टर अमीरचन्द और स्वामी रामतीर्थ से अपना किसी प्रकार का भी सम्बन्ध स्वीकार न करें। मजबूर होकर प्रो० पूर्णसिंह को यही कहना पड़ा। आपने अदालत में ऐसा ही बयान दिया कि स्वामी रामतीर्थ या उनके शिष्यों से मेरा किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार प्रो० पूर्णसिंह उस मुकदमे की जाँच से तो बच गए, पर उनके विचारों की हत्या हो गई। स्वामी रामतीर्थ के वेदान्त-सिद्धान्त से आपका सम्बन्ध सदा के लिए छूट गया। प्रो० पूर्णसिंह को वैसा बयान देने के लिए मजबूर करने वालों में एक सिख-साधु भी थे। उनकी संगति और शिक्षा ने प्रो० पूर्णसिंह की काया ही पलट दी। आपने सब प्रकार से उस सिख-साधु को आत्म-समर्पण कर दिया और बिलकुल उसकी मस्ती के रंग में रँग गए।"

इस घटना के फलस्वरूप ही आपने 'फारेस्ट इन्स्टीट्यूट' की वह अच्छी-खासी नौकरी छोड़ी थी। इस घटना से जहाँ आपके लौकिक जीवन में परिवर्तन आया वहाँ साहित्य-रचना की दिशा में भी भारी उलट-फेर हो गया। यदि आप पूर्ववत् स्वामी रामतीर्थ के वेदान्त से प्रभावित रहते तो और भी अधिक गम्भीर रचनाएँ आप साहित्य-क्षेत्र को प्रदान करते। यूरोप की मशीनी सभ्यता की जो प्रतिक्रिया टालस्टाय, रस्किन और गान्धी में दृष्टिगत होती है, लगभग कुछ वैसी ही धारणा प्रो० पूर्णसिंह की भी होती जा रही थी।

आपका निधन जलोदर रोग के कारण सन् 1931 में हुआ था।

श्री प्रकाशवीर शास्त्री

श्री प्रकाशवीर शास्त्री का जन्म 30 दिसम्बर सन् 1923 को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले के 'रहरा' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता चौधरी दिलीपसिंह त्यागी विचारों

से आर्यसमाजी थे, अतः उन्होंने अपने पुत्र को विद्याध्ययन के लिए उत्तर भारत की सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) में भेजा था। आपका जन्म-नाम 'प्रकाशचन्द्र' था, क्योंकि उनसे पूर्व गुरुकुल में 'प्रकाशचन्द्र' नाम का एक और छात्र अध्ययन कर रहा था, इसलिए गुरुकुल के आचार्य महोदय ने आपका नाम बदलकर 'प्रकाशवीर' रख दिया।

छात्रावस्था से ही श्री प्रकाशवीरजी अत्यन्त भावुक प्रकृति के युवक थे, अतः आप लेखन तथा भाषण के क्षेत्र में रुचि लेते रहते थे। आपने गुरुकुल में पढ़ते हुए ही सन् 1938 में जहाँ हैदराबाद (दक्षिण) में हुए 'आर्य सत्याग्रह' में सक्रिय रूप में भाग लिया था वहाँ सन् 1957 में आर्यसमाज द्वारा पंजाब में चलाए गए 'हिन्दी सत्याग्रह' में भी अपना अनन्य योगदान दिया था। इस सत्याग्रह में मिली सफलता के कारण ही जब मौलाना आजाद के निधन के कारण लोकसभा में गुड़गाँवा की सीट खाली हुई तो वहाँ से आपने स्वतन्त्र प्रत्याशी के रूप में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करके सारे देश का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इस निर्वाचन में आपके प्रतिद्वन्द्वी कांग्रेस की ओर से, भारतीय जनसंघ दिल्ली प्रदेश के भूतपूर्व प्रधान, पंडित मौलिचन्द्र शर्मा थे।

इस निर्वाचन से पूर्व आप देश में 'आर्योपदेशक' के रूप में ही जाने जाते थे, लेकिन जब आप लोकसभा के सदस्य के रूप में संसद्-भवन में पहुँचे तो वहाँ आपने अपनी प्रखर वक्तृत्व-कला से न केवल राजनीति को प्रभावित किया, बल्कि देश के अनेक क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। आप जहाँ कुशल वक्ता, कर्मठ समाज-सेवी और उदार मानव थे वहाँ राजनीति में भी अपनी वर्चस्विता स्थापित करने में पूर्णतः सफल हुए थे। भारतीय संस्कृति और राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन तथा विकास के लिए आपने अनेक महत्त्वपूर्ण योजनाएँ शासन के समक्ष प्रस्तुत की थीं।

आप जब से लोक-सभा में आए थे, प्रायः निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में ही चुनाव में खड़े होते थे, लेकिन जब चौधरी चरणसिंह ने 'भारतीय क्रान्ति दल' का निर्माण किया तब आप उसके महामन्त्री बनाए गए और उस बार के लोकसभा के निर्वाचन में आप हापुड़ से उसके प्रत्याशी के रूप में खड़े हुए। इसका परिणाम आशा के प्रतिकूल ही हुआ और आप श्री बी० पी० मौर्य के मुकाबले में पराजित हो गए। इतने दिन के संसदीय जीवन में आपकी यह पहली पराजय थी। थोड़े ही दिन बाद आपने 'भारतीय क्रान्ति दल' से त्यागपत्र दे दिया और जनसंघ के सहयोग से उत्तर प्रदेश से राज्य सभा के लिए चुन लिए गए। 'आपात्काल' से पूर्व ही आपने 'कांग्रेस' की सदस्यता स्वीकार कर ली थी।

श्री शास्त्री जहाँ उत्कृष्ट कोटि के वक्ता थे वहाँ देश की समस्याओं के प्रति आपका दृष्टिकोण आपके लेखन में भी प्रतिच्छायित हुआ था। गो-रक्षा और हिन्दी-आन्दोलन आपके प्रमुख मिशन थे। आपकी हिन्दी में जो कृतियाँ आई उनमें भी आपका यही स्वर मुखरित हुआ है। आपकी 'सन्ध्योपासना की व्याख्या', 'गो-हत्या या राष्ट्र-हत्या', 'मेरे स्वप्नों का भारत' तथा 'धधकता काश्मीर' आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 23 नवम्बर सन् 1977 को रिवाड़ी के पास ट्रेन-दुर्घटना में उस समय हुआ था जब आप जयपुर से दिल्ली को लौट रहे थे।

श्री प्रतापनारायण दीक्षित

श्री दीक्षितजी का जन्म 6 नवम्बर सन् 1916 को हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) में हुआ था। आपके पूर्वज मूल रूप से लखनऊ के निवासी थे। आपने पहले-पहल निजाम के शासन के दिनों में 'आर्य सत्याग्रह' में भाग लेकर जेल-यात्रा की, और बाद में 'अँग्रेजी हटाओ आन्दोलन' के सिलसिले में श्री प्रकाशवीर शास्त्री की प्रेरणा पर साढ़े चार मास की जेल भुगती।

भारत-विभाजन के उपरान्त जब हैदराबाद से 'दैनिक हिन्दी मिलाप' निकालने की योजना बनाई गई तब आपने

उसके प्रकाशन में सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। स्थान-स्थान पर हिन्दी-पाठशालाएँ स्थापित करके हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने के साथ-साथ आप अनेक ऐसी योजनाओं में सहयोगी रहे थे।
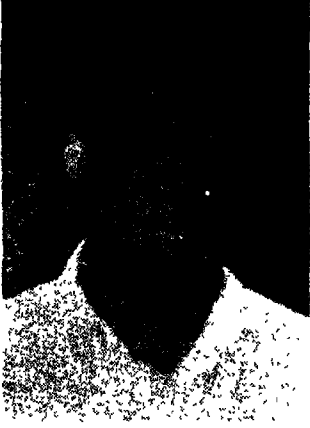
यद्यपि आपकी शिक्षा-दीक्षा पहले-पहल उर्दू माध्यम से हुई थी, लेकिन आर्यसमाज के प्रभाव में आकर आप-में हिन्दी-प्रेम की जो भावना जगी थी उसीके कारण आपने हैदराबाद में हिन्दी की जड़ जमाने के लिए बहुत बड़ा कार्य किया था।

आपका निधन 7 जनवरी सन् 1973 को हुआ था।

श्रीमती प्रफुल्लबाला देवी

श्रीमती प्रफुल्लबाला देवी का जन्म सन् 1900 में उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद के एक ग्राम में हुआ था। आप हिन्दी के समर्थ कवि स्व० श्री रामेश्वर 'करुण' की सहधर्मिणी थीं। आपका जीवन त्याग, सेवा, समर्पण और साधना का साकार रूप था। भारत-विभाजन से पूर्व जब 'करुण' जी लाहौर के कृष्णनगर नामक मोहल्ले की 'करुण काव्य कुटीर' में रहते थे तब जिन अनेक साहित्यकारों को श्रीमती प्रफुल्लबालाजी का स्नेह-सुख मिला था उनमें श्री अनन्तमराल शास्त्री प्रमुख हैं। आपने श्री मरालजी को मातृ-सुख से पूर्ण लाभान्वित किया था। आप जीवन के अन्तिम क्षण तक श्री मरालजी के पास रही थीं। मरालजी उन्हें 'लाली' कहा करते थे।

यद्यपि आप बहुत कम शिक्षित थीं परन्तु 'करुण' जी के निरन्तर संसर्ग तथा सहवास ने आपको भी कवयित्री बना दिया था। उन दिनों पंजाब में कदाचित् कोई ही कवि-सम्मेलन ऐसा होता होगा जिसमें 'करुण' जी के साथ आपने भाग न लिया हो। आप वास्तव में लाहौर की 'करुण-काव्य-कुटीर' की अधिष्ठात्री थीं और आपकी स्नेह-छाया में वहाँ अनेक कवि और साहित्यकार पले, पढ़े और बढ़े थे। आप श्री 'करुण' जी के निधन (1947) के उपरान्त श्री मरालजी के पास ही भोपाल (म० प्र०) में रह रही थीं।

आपका निधन 15 जुलाई सन् 1979 को भोपाल में हुआ था।

श्री प्रबोधकुमार मजूमदार

श्री मजूमदार का जन्म 6 नवम्बर सन् 1930 को पूर्वी पाकिस्तान के 'यशोहर' नामक ग्राम में हुआ था। आपकी मातृभाषा बंगला थी, किन्तु आपने अपने जीवन को हिन्दी की सेवा में ही लगा दिया था। आप बंगला से हिन्दी अनुवाद करने में बहुत दक्ष थे। आप रेलवे में नौकरी करने के साथ-साथ साहित्य-सेवा भी करते रहते थे। बंगला के अनेक ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद करने के अतिरिक्त आपने हिन्दी में कई मौलिक ग्रन्थों की रचना भी की थी। आपके द्वारा अनूदित एवं मौलिक रचनाएँ हिन्दी की प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। आपकी हिन्दी पुस्तकों में 'भारतीय सेना का इतिहास' (1964) और 'नागरिक सुरक्षा' (1965) प्रमुख हैं।
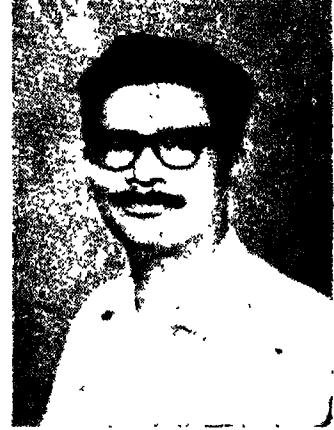
आप स्थायी रूप से आजकल लखनऊ में रह रहे थे, जहाँ आपका निधन सन् 1980 में हुआ था।

श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी

श्री विद्यार्थी का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के जोगिया नामक ग्राम में सन् 1924 में हुआ था। आपके जीवन का अधिकांश समय स्वतन्त्रता से पूर्व राष्ट्रपिता गान्धीजी के सान्निध्य में वर्धा में व्यतीत हुआ था और उन्हीके सम्पर्क से आपमें राष्ट्रीयता तथा हिन्दी-प्रेम की पुनीत भावनाएँ जगी थी।

सन् 1940 से लेकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक देश का हिन्दी का ऐसा कोई अभागा पत्र बचा होगा जिसमें विद्यार्थी जी की रचनाएँ न छपी हों। यहाँ तक उन दिनों गान्धीजी के विषय में आधिकारिक रूप से लिखने वाले लेखकों में विद्यार्थीजी का नाम अग्रणी स्थान रखता था। विद्यार्थीजी द्वारा लिखित 'सेवाग्राम', 'आधुनिक भारत के निर्माता', 'बापू के महादेव' और 'देवदूत' आदि पुस्तकें इसका ज्वलन्त साक्ष्य प्रस्तुत करती है। कृषि और यात्रा में भी आपकी बहुत रुचि रहती थी। वर्धा के हिन्दी-लेखकों में श्री विद्यार्थी का नाम इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि 'हरिजन' होने के कारण गान्धी जी उन्हें बहुत प्यार करते थे।

स्वतन्त्रता के उपरान्त जब देश के सभी प्रान्तों में सरकारों का निर्माण हुआ तो आप अपनी जन्मभूमि चले आए और शोहरतगढ़ (बस्ती) से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़कर सन् 1952, 1957 और 1967 में उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य चुने गए थे और बस्ती जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी रहे थे। आपका विवाह 14 जुलाई सन् 1956 को कुमारी कमला साहनी से हुआ था। यह खेद की बात है कि राजनीति में पड़ जाने पर आपने अपना लेखन-कार्य सर्वथा बन्द कर दिया था।

आपका निधन 7 सितम्बर सन् 1977 को हुआ था।

श्री प्रसादीलाल शर्मा चूड़ामणि

श्री प्रसादीलाल शर्मा 'चूड़ामणि' का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के भवीगढ़ नामक ग्राम में सन् 1898 में एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपकी शिक्षा धर्मसमाज हाईस्कूल, अलीगढ़ में हुई थी और वहीं से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने आगे अध्यापन करते हुए आगरा विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की थी।

आप कुशल कवि, सफल शिक्षक और ध्येयनिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता थे। अपने अध्यापन के दिनों में आपने अनेक सुयोग्य छात्रों को साहित्य तथा समाज की शिक्षा के लिए तैयार किया था। हिन्दी के प्रख्यात समीक्षक डॉ० नगेन्द्र आपके ही शिष्य हैं। डॉ० रणवीर रांग्रा द्वारा सम्पादित और डॉ० नगेन्द्र को उनकी अर्धशती-पूर्ति पर समर्पित 'डॉ० नगेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक पुस्तक में 'होनहार बालक' शीर्षक सबसे पहला लेख श्री चूड़ामणिजी द्वारा लिखा हुआ ही है। इस लेख में आपने डॉ० नगेन्द्र के व्यक्तित्व के बाल-जीवन के पक्ष पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—"उनके पिताजी से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था, अत: उनके अध्यापन और चरित्र-निर्माण का कार्य मुझे सौंपा गया। प्रतिभाशाली बालक की भाँति नगेन्द्रजी में अध्ययन में विशेष रुचि प्रदर्शित की और 3-4 वर्ष में ही कक्षा 4 पास कर ली। उन दिनों मैं उनको केवल सन्ध्या, प्रार्थना और यज्ञ-मन्त्रों का अध्ययन कराता था।"

आपकी रचनाएँ प्राय: तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थी। वैदिक धर्म के प्रचार की दिशा में आपने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया था।

आपका निधन 17 दिसम्बर सन् 1978 को हुआ था।

डॉ० प्रह्लादकुमार

डॉ० प्रह्लादकुमार का जन्म पश्चिमी पाकिस्तान के मुजफ्फरगढ़ जिले की अलीपुर तहसील के सीतपुर नामक ग्राम में 11 सितम्बर सन् 1944 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई और बाद में आपने उत्तर प्रदेश बोर्ड से मैट्रिक और पंजाब विश्वविद्यालय से इण्टर की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सन् 1962 से 1965 तक आपने दिल्ली के हंसराज कालेज से बी० ए० आनर्स (संस्कृत) और सन् 1967 मे एम० ए० (संस्कृत) की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आप छात्र-जीवन से ही हिन्दी और संस्कृत के उच्चकोटि के वक्ता थे। सन् 1973 में आपने 'ऋग्वेद में अलंकार' विषय पर शोध करके दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की और फिर वहाँ के पी० जी० डी० ए० वी० कालेज मे प्राध्यापक हो गए।
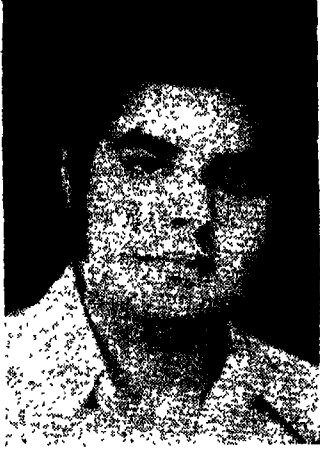
आप राष्ट्रभाषा हिन्दी और संस्कृत के एकनिष्ठ भक्त थे और अपने दैनिक जीवन में हिन्दी का ही प्रयोग करने के कट्टर पक्षपाती थे। आपने बाणभट्ट की 'कादम्बरी' के एक अंश 'शुकनासोपदेश' की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या भी लिखी थी। इसके अतिरिक्त 'वैदिक उदात्त भावनाएँ' नामक आपका एक और ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा देश के अनेक मनीषियों ने की है।

आपने सन् 1969-70 में अपने अग्रज श्री प्रशान्तकुमार वेदालंकार के साथ मिलकर 'युगीन' नामक एक हिन्दी पत्र का सम्पादन भी किया था। खेद है कि इसके केवल 5-6 अंक ही प्रकाशित हो सके थे।

आपका निधन 15 जून सन् 1977 को मधुमेह के भीषण आक्रमण के कारण हुआ था।

श्री प्राणवल्लभ गुप्त

श्री गुप्त का जन्म मध्यप्रदेश के रतलाम जनपद के सैलाजा नामक स्थान में सन् 1932 की बसन्त पंचमी को हुआ था। आप एक सहृदय और संवेदनशील कवि के रूप में साहित्य में प्रतिष्ठित हुए और थोड़े ही समय में अपनी प्रतिभा की चमक दिखाकर इस असार संसार से विदा हो गए। आपकी रचनाओं में मालव जनपद के वातावरण का सहज निखार और समकालीन विचारधारा की ताजगी दोनों ही देखने को मिलती हैं। आपने जहाँ कवि-सम्मेलनों में आशातीत लोकप्रियता अर्जित की थी वहाँ कस्बाई भावबोध और महानगरों की कृत्रिम मानसिकता का यथातथ्य चित्रण किया था।
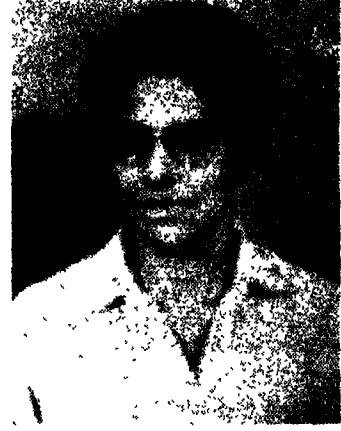
आपकी रचनाओं के संकलन 'समिधा' (1966) और 'सूरज के हस्ताक्षर' (1975) हैं। इनमें से अन्तिम संकलन का प्रकाशन आपके निधन के उपरान्त 'प्राण गुप्त संकलन समिति रतलाम' की ओर से हुआ था।

आपका निधन 24 दिसम्बर सन् 1973 को हुआ था।

श्री प्रियतमदत्त चतुर्वेदी 'चच्चन'

श्री चच्चन चतुर्वेदी का जन्म 29 अगस्त सन् 1915 को बिहार के छपरा जनपद के सिवान नामक स्थान में हुआ था। आपका बचपन का लालन-पालन अपनी जन्म-भूमि में ही हुआ था, किन्तु सन् 1932 के उपरान्त आप मथुरा चले आए थे। आपका जीवन अत्यन्त कठोर संघर्षों में गुजरा था। अपने ही बल पर आपने ब्रजभाषा, उर्दू, गुजराती,

भोजपुरी और खड़ी बोली आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था।

आपने अपने संघर्षमय जीवन का प्रारम्भ एक शिक्षक के रूप में किया था और बाद में पूरी तरह साहित्य को ही समर्पित हो गए थे।

आपने जहाँ शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन क्रान्तिकारी प्रणाली का आविष्कार किया था वहाँ आप कुशल कवि भी थे। कम-से-कम परिश्रम और स्वल्प-से समय में एम० ए० (हिन्दी) तथा उसके समकक्ष परीक्षाओं में छात्रों को सफलता प्राप्त कराने के अतिरिक्त आप वेदान्त, यन्त्र, तन्त्र, रमल, अंक विद्या, ज्योतिष, वैद्यक और योग शास्त्र पर भी असाधारण अधिकार रखते थे।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'मधुशाला', 'किसान', 'कल्पना' और 'अजन्ता' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सभी रसों में सभी विधाओं की आपकी असंख्य रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी है। गद्य और पद्य दोनों पर आपका असाधारण अधिकार था। कवि सम्मेलनों में काव्य-पाठ करने का आपका ढंग सर्वथा निराला था।

आपका निधन सन् 1970 में हुआ था।

उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द

श्री प्रेमचन्दजी का जन्म सन् 1880 में काशी से लगभग 6 मील दूर स्थित लमही (पांडेपुर) नामक ग्राम मे मुन्शी अजायबराय के यहाँ हुआ था। आपका वास्तविक नाम 'धनपतराय' था और उर्दू में आप 'नवाबराय' नाम से लिखा करते थे। आपके पिता डाकखाने में एक साधारण कर्मचारी थे और घर पर उनका मुख्य व्यवसाय खेती था। जब थोड़ी-सी जमीन में परिवार का भरण-पोषण होना कठिन हो गया तो मुन्शी अजायबराय को विवश होकर पोस्ट-आफिस की वह नौकरी करनी पड़ी थी। प्रेमचन्दजी की प्रारम्भिक शिक्षा काशी में हुई थी। आप नित्य-प्रति पैदल चलकर प्रातः वहाँ जाया करते थे और शाम को वापिस घर लौट आते थे। आपने क्वीन्स कालेज, बनारस से इण्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण करके आगे की पढ़ाई जारी रखने की दृष्टि से वहाँ के सेण्ट्रल हिन्दू कालेज में नाम लिखाया, किन्तु गणित में कमजोर होने के कारण एफ० ए० न कर सके। इस बीच सन् 1896 में अपने पिता का असामयिक देहावसान हो जाने के कारण आपने एक प्राइमरी स्कूल में 18 रुपए मासिक पर शिक्षक का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। आपका विवाह आपकी ननिहाल की प्रेरणा पर सन् 1895 में ही हो गया था, किन्तु वैवाहिक जीवन सन्तोषजनक नही रहा। सन् 1902 में आपने इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेज में प्रविष्ट होकर सन् 1905 में उसमें सफलता प्राप्त की और एक ट्रेनिंग स्कूल के हेडमास्टर बने। कुछ दिन बाद सब डिप्टी इंस्पेक्टर हो गए, किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण फिर अध्यापन-कार्य अपना लिया। इस बीच नौकरी करते हुए पहले आपने एफ० ए० किया और फिर सन् 1912 में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। फिर गान्धीजी का असहयोग-आन्दोलन छिड़ जाने के कारण नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

प्रेमचन्दजी अपने छात्र-जीवन से ही बड़े स्वाध्यायशील थे। स्कूल की पढ़ाई जारी रखते हुए 13 वर्ष की अवस्था में ही आपने अपने पिताजी के साथ तम्बाकू के पिण्डों वाले कमरे में बैठकर 'तिलिस्म-इ-होशरुबा' नामक प्रख्यात तिलिस्मी उर्दू उपन्यास को बड़े चाव से पढ़ डाला था। श्री रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा और मौलाना 'शरर'-जैसे उर्दू-लेखकों की प्रख्यात कथा-कृतियों को आपने ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ा था। आपने सन् 1900 से पहले उर्दू में ही लिखना प्रारम्भ किया था और आपका पहला उपन्यास 'हम खुरमा हम सवाब' 'धनपतराय' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपकी सबसे पहली कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' कानपुर से मुन्शी दयानारायण निगम के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाले 'जमाना' में सन् 1907 मे प्रकाशित

हुई थी। आपकी कुछ कहानियाँ उन दिनों इण्डियन प्रेस प्रयाग से निकलने वाले 'अदीब' नामक पत्र में प्रकाशित हुई थीं। आपकी उर्दू कहानियों का पहला संकलन 'सोजे वतन' नाम से सन् 1908 में उस समय प्रकाशित हुआ था जब आप महोबा में 'डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स' थे। 'सोजे वतन' पर लेखक के रूप में 'नवाबराय' नाम छपा था, किन्तु ब्रिटिश नौकरशाही के गुप्तचर विभाग ने सहज ही में यह मालूम कर लिया कि यह 'नवाबराय' और कोई नहीं 'धनपतराय' ही हैं। फलस्वरूप कलक्टर ने आपको बुलाकर प्रत्येक कहानी का अभिप्राय पूछा और आपको 'राजद्रोही' ठहरा दिया गया। साथ ही यह आदेश भी दे दिया गया कि आप भविष्य में बिना आज्ञा के कुछ भी न लिखें। फलस्वरूप आप 'नवाबराय' से 'प्रेमचन्द' हो गए और आपकी पहली हिन्दी कहानी सन् 1915 में इसी नाम से 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई।

प्रेमचन्द के हिन्दी में आने की कहानी के पीछे हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी का विशेष हाथ है। श्री द्विवेदीजी डुमरियागंज में तहसीलदार थे। उनके आग्रह से ही आपने अपनी उर्दू कहानियों का हिन्दी-रूपान्तर 'सरस्वती' में छपवाया था। हिन्दी के पाठकों ने आपकी कहानियों को वड़े चाव से अपनाया और प्रेमचन्द धीरे-धीरे हिन्दी में ही आ गए। इन्हीं दिनों जब आपका स्थानान्तरण बस्ती से गोरखपुर हो गया तो वहाँ पर आपका परिचय श्री महावीरप्रसाद पोद्दार से हुआ और उनकी प्रेरणा पर प्रेमचन्दजी ने अपना 'सेवा सदन' उपन्यास हिन्दी में लिखा, जो सन् 1916 में प्रकाशित हुआ था। यह भी आपके उर्दू उपन्यास 'हुस्न' का हिन्दी-रूपान्तर ही था। हिन्दी में आपकी कहानियों के संकलन सन् 1917 में 'सप्त सरोज', सन् 1918 में 'नवनिधि' तथा सन् 1920 में 'प्रेम पूर्णिमा' प्रकाशित हुए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सन् 1906 में श्रीमती शिवरानी देवी से आपका दूसरा विवाह हुआ। उस समय शिवरानीजी की आयु केवल 13 वर्ष की थी और वे बाल-विधवा थीं। श्रीमती शिवरानी से विवाहोपरान्त ही प्रेमचन्दजी की साहित्यिक प्रतिभा साहित्य-संसार के समक्ष अत्यन्त प्रखरता से उजागर हुई थी। कहा जाता है कि प्रेमचन्दजी की पहली पत्नी अत्यन्त कर्कशा थीं और उनसे प्रेमचन्दजी की पटरी नहीं बैठती थी। गान्धीजी के असहयोग-आन्दोलन से प्रभावित होकर आपने सन् 1921 में 'नमक का दारोगा' नामक अपनी प्रख्यात कहानी लिखी थी। सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने के अनन्तर आप सन् 1922 में 'काशी विद्यापीठ' में भी शिक्षक रहे थे। इसी वर्ष 'प्रेमाश्रम' का भी प्रकाशन हुआ था। सन् 1925 में आप लखनऊ से प्रकाशित होने वाली 'माधुरी' के सम्पादक होकर वहाँ चले गए और वहाँ पर आपने 2-3 वर्ष कार्य किया। उन्ही दिनों आपके प्रख्यात उपन्यास 'रंगभूमि' का प्रकाशन श्री

दुलारेलाल भार्गव ने अपनी 'गंगा पुस्तक माला' की ओर से किया और प्रेमचन्दजी को इसके लिए 1800 रुपए की राशि अग्रिम रायल्टी के रूप में दी। हिन्दी में कदाचित् उन दिनों यह सबसे अधिक राशि थी, जो प्रेमचन्दजी को प्राप्त हुई थी। जब आप लखनऊ में ही थे तब सरकार की ओर से आपको 'रायसाहबी' का खिताब भेंट करने का प्रस्ताव भी आया था, जो आपने अस्वीकार कर दिया था।

आपने बनारस में 'सरस्वती प्रेस' की स्थापना करके उसकी ओर से मासिक पत्र 'हंस' प्रारम्भ किया था, जो कई वर्ष तक चलता रहा। प्रेमचन्दजी ने अपने सम्पादन-काल में इसे गुजराती के प्रख्यात साहित्यकार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के सहयोग से 'भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधि पत्र' बनाने का उद्योग भी किया था और इसका प्रकाशन बम्बई से होने लगा था, किन्तु यह प्रयोग सफल न हो सका। प्रेमचन्दजी के निधन के बाद भी 'हंस' को उनके सुपुत्रों (श्रीपतराय और अमृतराय) ने अनेक वर्ष तक काशी से निकाला था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्दजी के नाम के साथ 'मुन्शी' शब्द तब से ही लगना प्रारम्भ हुआ था जब आपने मुन्शीजी के साथ मिलकर 'हंस' चलाया था। उन दिनों उस पर सम्पादक के स्थान पर

'मुन्शी---प्रेमचन्द' शब्द छपा करते थे। इनमें से पहला 'मुन्शी' शब्द कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के नाम का द्योतक था। हिन्दी के सम्पादकों और प्रकाशकों की धाँधली के कारण यह 'मुन्शी' शब्द 'प्रेमचन्द' के साथ ऐसा चिपक गया कि वह आपके नाम का ही एक अंग हो गया।

प्रेमचन्दजी ने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण जीवन तथा नागरिक जीवन के जो चित्र उपस्थित किए हैं वे इतने स्वाभाविक हैं कि उनसे आपको बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। आपने जहाँ उत्कृष्ट कथाकार के रूप में हिन्दी में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया था वहाँ आप उच्चकोटि के पत्रकार भी थे। 'हंस' के सम्पादन के अतिरिक्त आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय आपके द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'जागरण' की फाइलों को देखने से मिलता है। एक जागरूक पत्रकार के रूप में आपने हिन्दी-कथा-साहित्य की समृद्धि करने वाले जहाँ अनेक कथाकार हिन्दी को प्रदान किए वहाँ भाषा और साहित्य के विकास में भी अनन्य योगदान दिया था। आपकी 'सेवा सदन', 'मग्न सरोज', 'नव निधि', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' के अतिरिक्त अन्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है---'कफन', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान', 'मंगल-सूत्र' (उपन्यास); 'प्रेम चतुर्थी', 'प्रेमतीर्थ', 'प्रेम पचमी', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम पीयूष', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम प्रसून', 'सप्त सुमन', 'वरदान', 'समर यात्रा', (कहानी सकलन), 'दुर्गादास', 'महात्मा शेखसादी' (जीवनी); 'साहित्य का उद्देश्य', 'कुछ विचार' तथा 'कलम, तलवार और त्याग' (निबन्ध); 'टालस्टाय की कहानियाँ', 'अहंकार', 'आजाद कथा' (दो भाग), 'सुखदास', 'चाँदी की डिबिया', 'न्याय', 'हड़ताल' तथा 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' (अनुवाद) आदि। इनके अतिरिक्त आपकी कहानियों के सकलन अनेक नामों से प्रकाशित हो चुके हैं। बाल-साहित्य-निर्माण की दिशा में भी आपकी प्रतिभा अद्वितीय थी। आपकी ऐसी रचनाएँ 'कुत्ते की कहानी' नामक पुस्तक में संकलित हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'राम चर्चा' 'ग्राम्य जीवन की कहानियाँ' और 'जंगल की कहानियाँ' नामक पुस्तकें भी उल्लेख-योग्य हैं। 'हंस' तथा 'जागरण' आदि पत्रों में लिखी गई अनेक टिप्पणियाँ भी 'विविध प्रसंग' नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त स्वयं प्रेमचन्दजी द्वारा सम्पादित 'प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' नामक एक और पुस्तक भी उल्लेखनीय है। इसका प्रकाशन सन् 1932 में लाहौर से हुआ था।

प्रेमचन्दजी के जीवन की अन्तिम साध यह थी कि उनके द्वारा संचालित 'हंस' अवश्य ही चले। अनेक आर्थिक कठिनाइयों में भी आपने उसे चलाए रखने के लिए बहुत प्रयास किए। जब अर्थ-कष्ट समझा तो आपको उसे दूर करने के लिए सिनेमा की दुनिया में भी जाना पड़ा; लेकिन उसमें आपको सफलता नहीं मिली। आप वहाँ से लौट आए। प्रेमचन्दजी के छोटे भाई महताबराय भी हिन्दी के लेखक थे। प्रेमचन्दजी के जीवन से प्रभावित होकर ही आप इस क्षेत्र में आए थे। महताबराय का जन्म विमाता से हुआ था। प्रेमचन्दजी के पिता ने दो विवाह किए थे। प्रेमचन्दजी को अपने जीवन में कितने संघर्ष करने पड़े थे इसका सजीव वर्णन श्रीमती शिवरानी देवी द्वारा लिखित 'प्रेमचन्द : घर में' नामक पुस्तक में पढ़ने को मिलता है। यह एक संयोग की ही बात है कि सन् 1936 में आपने जहाँ 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अधिवेशन की लखनऊ में अध्यक्षता की थी, वहाँ उसी वर्ष आपने हिन्दी साहित्य को 'गोदान' प्रदान किया था। अपना 'मंगलसूत्र' नामक अन्तिम उपन्यास भी आपने इसी वर्ष में प्रारम्भ किया था, जो अधूरा ही रह गया। यह सौभाग्य की बात है कि सन् 1980 में सारे देश में अपने उस कथा-सम्राट् की जन्म-शती बड़ी धूमधाम से मनाई गई। इस उपलक्ष्य में जहाँ देश के अनेक विश्वविद्यालयों में 'प्रेमचन्द पीठ' स्थापित करने की घोषणा की गई वहाँ विदेशों में भी अनेक स्थानों पर आपकी जन्म-शती समारोहपूर्वक मनाई गई।

आपका निधन जलोदर रोग के कारण 8 अक्तूबर सन् 1936 को काशी में हुआ था।

आचार्य प्रेमशरण 'प्रणत'

श्री 'प्रणत' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के पैंनखेड़ा नामक ग्राम में 15 अगस्त सन् 1891 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राइमरी स्कूल में हुई थी

और आगरा के एक हाईस्कूल से आपने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। तदुपरान्त आप आगरा के 'आर्य मुसाफिर विद्यालय' में प्रविष्ट हो गए थे और वहाँ पर आपने आर्य-सिद्धान्तों का विधिवत् अध्ययन करने के साथ-साथ अरबी और फारसी का भी गहन अध्ययन किया था। 'आर्य मुसाफिर विद्यालय' के इस अध्ययन-काल में आपने आर्य-समाज के सुधारवादी आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने का जो संकल्प लिया था उसीकी सम्पूर्ति के लिए आप यावज्जीवन प्रयत्नशील रहे।

आपने अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए आगरा में 'प्रेम प्रेम' की स्थापना करके 'प्रेम पुस्तकालय' नाम से अपना प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ किया। आप अच्छे वक्ता होने के साथ-साथ गम्भीर लेखक भी थे। आपने अपनी लेखनी का प्रयोग आर्य सिद्धान्तों के प्रचार तथा प्रसार में ही किया। और आपके द्वारा किया गया 'कुरान शरीफ' का प्रथम हिन्दी अनुवाद साहित्य-प्रेमी पाठकों द्वारा बड़े उत्साहपूर्वक अपनाया गया था। यह ग्रन्थ उर्दू में लिखे गए आर्यपथिक पंडित लेखराम के 'कुल्लियात आर्य मुसाफिर' का हिन्दी अनुवाद था। इसी प्रकार आपने 'विदुर नीति', 'चाणक्य नीति' और 'शुक्र नीति' के अनुवाद भी किए थे। आपकी अन्य पुस्तकों में 'इस्लाम की छानबीन', 'देवदून दर्पण' और 'मोहम्मद साहब का विचित्र जीवन' भी उल्लेखनीय हैं। इनमें से अन्तिम कृति 'कालीचरण आर्य मुसाफिर' के नाम से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक के कारण कालीचरणजी पर मुकदमा चला था और उनको कारावास भी भोगना पड़ा था।

श्री प्रणतजी जहाँ अच्छे लेखक थे वहाँ पत्रकारिता के गुण भी आपमें प्रचुर परिमाण में थे। आप उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' के सहकारी सम्पादक भी रहे थे। आपने आगरा से 'दैनिक रेडियो' नामक एक समाचार पत्र भी प्रकाशित किया था, जो काफी समय तक चलकर बन्द हो गया था। आपमें राष्ट्रीयता के संस्कार बचपन से कूट-कूटकर भरे हुए थे। यदि ऐसा न होता तो आप अच्छी-खासी सरकारी नौकरी को छोड़कर 'आर्य मुसाफिर विद्यालय' में क्यों प्रविष्ट होते? सन् 1921 तथा सन् 1942 के आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आपने जेल-यात्राएँ भी की थीं। इस उपलक्ष्य में आपको भारत की प्रधानमंत्री की ओर से 'ताम्रपत्र' भी प्रदान किया गया था।

पिछले 25 वर्ष से आप दिल्ली में रहकर ही समाज-सेवा का कार्य कर रहे थे और यहीं पर 25 अगस्त सन् 1980 को आपका देहावसान हो गया।

श्री फतहचन्द शर्मा 'आराधक'

श्री 'आराधक' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के रतनगढ़ नामक ग्राम में 2 फरवरी सन् 1923 को हुआ था। शैशव-काल में ही माता-पिता की छत्रछाया न मिलने के कारण आपका सारा ही जीवन 'स्वार्जित विक्रम' की अनुपम देन रहा था। अभावों और संघर्षों से जूझते हुए आप सन् 1944 में दिल्ली आ गए थे। दिल्ली में आपका सम्पर्क महामना मदनमोहन मालवीयजी के अनन्य अनुयायी राज-पंडित श्री देवीरत्न शुक्ल से हो गया। श्री शुक्लजी उन दिनों 'गोपाल' नामक एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करते थे। श्री आराधकजी इस पत्र के सम्पादन में सहयोग देने लगे। इस प्रकार आपका पत्रकारिता का जीवन प्रारम्भ हुआ।

उन्हीं दिनों प्रख्यात पत्रकार श्री महावीर अधिकारी भी इधर-उधर विचरते हुए दिल्ली आ गए और वे यहाँ से प्रकाशित होने वाले 'नवयुग' साप्ताहिक के सम्पादकीय विभाग में लग गए। अधिकारीजी और आराधकजी के सम्पर्क ने 'खूब गुजरेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो' इस लोकोक्ति को चरितार्थ कर दिया और अधिकारीजी भी आराधकजी के साथ पहाड़ी धीरज नामक स्थान पर 'गोपाल' कार्यालय में रहने लगे। श्री आराधकजी 'गोपाल' के सम्पादन के साथ-साथ 'नवयुग' में प्रूफ रीडर का कार्य भी करने लगे। इन्हीं

दिनों कर्मठ पत्रकार श्री हरिदत्त शर्मा भी दिल्ली आ धमके और पहाड़ी धीरज का 'गोपाल-कार्यालय' इस 'त्रिमूर्ति' का

स्थायी निवास बन गया। बिजनौर जनपद की इस त्रिमूर्ति ने पत्रकारिता के क्षेत्र में जो अपना सर्वथा विशिष्ट स्थान बनाया वह इन सबकी ध्येयनिष्ठा और कर्त्तव्य-परायणता का उज्ज्वल प्रमाण है। श्री हरिदत्त शर्मा भी पत्रकारिता को अपनाकर 'तेज प्रेस' से श्री सत्यकाम विद्यालंकार के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'विजय' साप्ताहिक के सम्पादकीय विभाग में लग गए।

'गोपाल' के संचालक श्री देवीरत्न शुक्ल के निधन के उपरान्त जब आर्थिक संकट के कारण वह बन्द हो गया तो श्री 'आराधक' ने कुछ दिन तक स्वतन्त्र रूप से 'पराग' नामक मासिक पत्र भी निकाला, किन्तु धनाभाव के कारण वह भी कुछ दिन चलकर बन्द हो गया। इस बीच सेठ रामकृष्ण डालमिया ने 'नवयुग' को खरीद लिया और उन्होंने जब 'नवभारत' दैनिक का प्रकाशन उसी प्रेस से किया जिसमें 'नवयुग' छपता था तो 'आराधक' जी 'नवभारत' से सम्बद्ध हो गए। बाद में जब वह 'नवभारत टाइम्स' नाम से 'टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस' से प्रकाशित होने लगा तो स्थानीय संवाददाता के रूप में 'आराधक' जी ने उसमें कार्य प्रारम्भ किया। नगर-संवाददाता के रूप में 'आराधक' ने जहाँ राजधानी की जनता की बहुविध सेवा की वहाँ 'नवभारत टाइम्स' को लोकप्रियता दिलवाने में भी आपका बड़ा हाथ था।

आराधकजी जहाँ उत्कृष्ट पत्रकार के रूप में हिन्दी-जगत् में जाने जाते थे वहाँ सच्चे समाज-सेवक के रूप में भी आपकी प्रमुख भूमिका रही थी। 'संस्कृत साहित्य सम्मेलन', 'दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन', 'सामाजिक कार्यकर्त्ता परिषद्', 'बिजनौर मित्र मंडल' और 'मालवीय साहित्य श्रद्धांजलि समारोह समिति' आदि अनेक संस्थाओं के माध्यम से आपने जो कार्य किये थे वे सब आपकी लोकप्रियता के 'कीर्तिशिखर' बन गए। आपकी यह लोकप्रियता इस सीमा तक पहुँच गई थी कि अनेक विचारधाराओं, मतों और धर्मों के मानने वाले नागरिक आपको अपना अनन्य हितैषी समझते थे। यह आपकी लोकप्रियता का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि जी० टी० रोड से आपके निवास दिलशाद कालोनी, शाहदरा को जाने वाली सड़क का नाम नगर निगम ने 'फतहचन्द शर्मा आराधक मार्ग' रखकर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है।

आप जहाँ जागरूक पत्रकार के रूप में में विख्यात थे वहाँ आपने कुछ छात्रोपयोगी पुस्तकों की रचना भी की थी। आपकी ऐसी रचनाओं में 'जन नायक', 'जयहिन्द निबन्ध-माला' के अतिरिक्त 'मालवीय श्रद्धांजलि स्मारिका' भी उल्लेखनीय है। आपने मालवीयजी की स्मृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए 'जय महामना' नामक मासिक पत्र भी प्रारम्भ किया था, जो अब भी प्रकाशित हो रहा है।

आपका निधन 5 नवम्बर सन् 1978 को हुआ था।

श्री फुन्दनलाल शाह 'ललित माधुरी'

श्री 'ललित माधुरी' का जन्म सन् 1827 में हुआ था। आपके नाम से रचे हुए पदों के कई संग्रह वृन्दावन से प्रकाशित हुए थे और अमूल्य ही वितरित किये जाते थे। आपके पिता का नाम शाह गोविन्दलाल था और आप 'ललित किशोरी' के भाई थे।

आपका देहान्त सन् 1885 में हुआ था।

श्री बद्दूलाल दुबे

आपका जन्म सन् 1885 में मध्य प्रदेश के सागर नामक नगर में हुआ था। एक प्राथमिक स्कूल में प्रधानाध्यापक के

रूप में कार्य करते हुए आपने अनेक छात्रों को हिन्दी साहित्य की ओर प्रेरित किया था। श्री जहूरबख्श हिन्दी-कोविद-जैसे अनेक महानुभावों ने आपसे प्रेरणा पाकर साहित्य-निर्माण की ओर पग बढ़ाया था। आपने अनेक पुस्तकें लिखी थीं, जो आज भी आपके सुपुत्र श्री रमेशदत्त दुबे के पास सुरक्षित हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में भी आपने अग्रणी कार्य किया था।

आपका निधन सन् 1975 में हुआ था।

पण्डित बदरीदत्त जोशी

पण्डित बदरीदत्त जोशी का जन्म सन् 1866 में काशीपुर जिला नैनीताल में हुआ था। आपने फारसी की शिक्षा घर पर ही पाई थी। संस्कृत की शिक्षा बचपन में अपने पिता पं० पुरुषोत्तमजी जोशी से पाई, जो व्याकरण, साहित्य और ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे। तदनन्तर सन् 1891 में मुरादाबाद में 15 वर्ष की आयु में संस्कृत पाठशाला में, (जिसके अध्यापक पं० भवानीदत्त जोशी वैयाकरण थे) व्याकरण और साहित्य की जो शिक्षा अपूर्ण थी उसका अध्ययन किया। स्व० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र और स्व० पं० पद्मसिंहजी शर्मा साहित्याचार्य आदि आपके सहाध्यायी थे। इसी समय आप मुरादाबाद आर्यसमाज में बहुत जाया करते थे। वहाँ स्व० साहू श्यामसुन्दरजी रईस की प्रेरणा से आप आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गए। उन दिनों पं० रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य आर्यसमाज मुरादाबाद के उपदेशक थे। आप आर्यसमाज को छोड़कर कलकत्ता में 'भारत मित्र' के सम्पादक होकर चले गए। उनका पद रिक्त हुआ। उनके रिक्त पद पर उक्त साहू साहब ने आपको रखा। पं० रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य उन दिनों मुरादाबाद समाज से एक पाक्षिक पत्र भी निकालते थे, जिसका नाम 'आर्य विनय' था। आपने उसके कुछ ही अंक निकाले। पश्चात् वही पत्र 'आर्य मित्र' के रूप में परिवर्तित हो गया; जो कि आजकल उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक मुखपत्र है। इसका नामकरण संस्कार पं० बदरीदत्तजी ने ही किया था। पुनः जोशीजी मुरादाबाद में स्व० पं० भगवानदीन मिश्र, भूतपूर्व प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० और मुन्शी नारायणप्रसादजी (बाद में म० नारायण स्वामी), मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा के सहयोग में कार्य करते रहे। म० नारायण स्वामी के हृदय में आर्य-संस्कारों का बीज जोशीजी का ही बोया हुआ था, और उनका उपनयन-संस्कार भी आप ही के द्वारा हुआ था। उन्हींके तत्त्वावधान में आपने सन् 1890 से सन् 1899 तक 9 वर्ष तक प्रतिनिधि सभा में उपदेशकी का कार्य किया। जिसमें अनेक स्थानों पर समाज स्थापित किए और अनेक शास्त्रार्थ भी किए। मुरादाबाद में पं० गोकुलचन्द (हफ्त जबान) सनातनी के साथ मूर्ति-पूजा-विषयक शास्त्रार्थ किया। जिन दिनों आप मुरादाबाद में थे उन्हीं दिनों पं० कृपारामजी (जो पीछे स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए) पंजाब से आए, और उन्होंने वेद-प्रचार का कार्य आरम्भ किया। इसके बाद सन् 1899 में जोशीजी प्रतिनिधि सभा से त्याग-पत्र देकर मेरठ कालेज सोसाइटी में चले गए और वहाँ एंग्लो वैदिक स्कूल में (जो देहरादून में डी० ए० वी० कालेज है) लगभग 5 वर्ष तक धर्माध्यापक का कार्य करते रहे। स्व० मुन्शी ज्योतिस्वरूपजी उसके संस्थापकों में से थे, और आप पर बड़ी कृपा रखते थे। सन् 1901 में मेरठ से अजमेर चले गए। वहाँ 3 साल तक 'प्रूफ रीडर' का कार्य सफलतापूर्वक किया। वहाँ स्व० रामविलासजी शारदा की अध्यक्षता में राजस्थान प्रान्त में इधर-उधर प्रचार-कार्य करते रहे। श्री शारदाजी ने 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' नाम से जो स्वामी दयानन्द की जीवनी प्रकाशित कराई थी उसमें भी जोशीजी ने शारदाजी को अच्छी सहायता दी थी। अजमेर से श्री जोशीजी फिर मेरठ चले आए, और वहाँ आपने संस्कृत व्याकरण को सरल और सुबोध बनाने के लिए 'संस्कृत-प्रबोध' नामक पुस्तक के 4 भाग प्रकाशित किए; जो कि बिहार यूनीवर्सिटी में पाठ्य-पुस्तक नियत हो गई, और वहीं पर ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य नामक 6 उपनिषदों का सरल अनुवाद प्रकाशित कराया।

सन् 1904 में जो टिहरी शास्त्रार्थ हुआ था और टिहरी-नरेश हिज हाईनेस श्रीमान् कीर्तिशाह बहादुर ने मुन्शी ज्योतिस्वरूपजी को भी जिसमें सब पण्डित-मण्डली सहित बुलाया था उसमें स्व० महामहोपाध्याय श्री पं० आर्य

मुनि, स्व० पं० तुलसीरामजी स्वामी सामवेद भाष्यकार, और हमारे चरित्र-नायक श्री जोशीजी भी आ गए थे। उधर से लाहौर सनातन धर्म सभा के पण्डित श्री कालूराम शास्त्री और रायबहादुर पं० दुर्गादत्तजी पन्त (संस्थापक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार) आदि थे। महाराजा टिहरी की अध्यक्षता में यह शास्त्रार्थ 3 दिन तक बड़े आनन्द और मनोविनोद के साथ होता रहा। अन्त में महाराजा ने बड़े सम्मान के साथ दोनों पक्ष के पण्डितों को पुरस्कारादि देकर विदा किया। तत्पश्चात् जोशीजी कानपुर चले गए और कानपुर में 9 साल तक कालेज सोसाइटी की ओर से प्रचार व उपदेशकी का कार्य करते रहे। वहाँ से कई बार प्रचारार्थ निजाम हैदराबाद, पूना, बम्बई, बिहार और अवध में जाना हुआ। कई जगह शास्त्रार्थों में जाना पड़ा। हमीरपुर का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ, जो पं० कालूरामजी शास्त्री के साथ हुआ था और जिसमें पं० कालूराम के पाण्डित्य की पोल खुल गई थी, आप ही की अध्यक्षता में हुआ था। कानपुर में रहते हुए आपने यू० पी० और अवध के जिलों में कई समाज भी स्थापित किए और कई पुस्तकें भी छपवाईं। स्वामी विवेकानन्दजी के उपदेशों (जो उन्होंने अमेरिका आदि देशों में दिए थे।) का अनुवाद 'कर्मयोग' प्रकाशनार्थ इण्डियन प्रेस को दे दिया। दूसरा 'मनुष्य धर्म' इटली की स्वतन्त्रता के पुजारी मैजिनी की 'ड्युटीज ऑफ मैन' का अनुवाद है, जो पं० कृष्णकान्त मालवीय के अभ्युदय प्रेस से प्रकाशित हुआ है। उन्हीं दिनों कानपुर में कालेज सोसाइटी की ओर से उर्दू में एक मासिक पत्र 'आर्य समाचार' के नाम से निकलता था, उसका 8 वर्ष तक आप ही सम्पादन करते रहे थे। उसमें उस समय बाबू आनन्दस्वरूपजी प्रधान, आर्यसमाज कानपुर की अध्यक्षता में बड़े उपयोगी सामाजिक और सामयिक लेख निकलते थे, जो सामाजिक जगत् में बड़ी रुचि से पढ़े जाते थे। तत्पश्चात् सन् 1913 में आप मुरादाबाद चले आए। वहाँ 2 वर्ष तक रहकर सामाजिक प्रचार के अतिरिक्त आपने दो पुस्तकें प्रकाशित कीं, एक का नाम 'चरित्र शिक्षा' था और दूसरी का नाम 'विचार कुसुमांजलि'। जिनमें से 'चरित्र शिक्षा' तो जनता के अलावा सरकारी शिक्षा विभाग ने भी बहुत पसन्द की और कई प्रान्तों में वह पाठ्य-पुस्तक भी नियत की गई। सन् 1916 में आप पी० सी० द्वादश श्रेणी प्रेस; अलीगढ़ में चले गए और वहाँ डेढ़ वर्ष तक रहे। वहाँ महाभारत के संशोधन का काम किया। छुट्टियों में आप इधर-उधर प्रचार के लिए भी जाते थे। सन् 1917 में आप इलाहाबाद चले गए। पहले तो कुछ दिन हिन्दी प्रेस में कार्य किया, फिर कन्या पाठशाला मुट्ठीगंज में अध्यापक हो गए। उसी समय में ठा० बैजनाथसिंह की नाथ आयल कम्पनी, ब्रह्मा ने समाचार-पत्रों में एक नोटिस छपवाया कि जो लेखक 'विधवा विवाह' पर सर्वोत्तम पुस्तक लिखेगा उसको हम 1000 रु० इनाम देंगे। तदनुसार उक्त विषय पर आपने पुस्तक रचकर उनकी सेवा में भेजी। ठा० महोदय ने आपकी पुस्तक को बहुत पसन्द किया, और आपको 1000रु० पारितोषिक-स्वरूप दिया और उसकी 3000 प्रतियाँ अपने व्यय से छपवाईं। प्रयाग में चौक समाज व कर्नलगंज समाज में बराबर प्रचार करते रहे। पुन: सन् 1920 में आप फिर मुरादाबाद चले आए। वहाँ के 'शर्मा मैशीन प्रेस' से जो 'शंकर' पत्र निकलता था उसका सम्पादन करने लगे। उसमें सामाजिक लेखों के अतिरिक्त राजनैतिक लेख भी होते थे। सन् 1925 में आप बलदेवार्य संस्कृत पाठशाला, मुरादाबाद में अध्यापक हो गए। 2 वर्ष एक अध्यापन करके सन् 1927 में आप प्रेम विद्यालय, ताड़ीखेत (जो रानीखेत के पास औद्योगिक शिक्षा के लिए कुमायूँ के कांग्रेसमैनों की ओर से खोला गया था) में अध्यापक होकर चले गए। सन् 1929 में पण्डितजी की लिखी, 'विधवा-विवाह मीमांसा' की दो हजार प्रतियाँ श्री ठा० बैजनाथसिंह जी की ओर से बिना मूल्य वितरित की गईं। तीन वर्ष तक आप महाविद्यालय, ज्वालापुर में रहकर उसकी यथाशक्ति सेवा करते रहे। महाविद्यालय से आप फिर ताड़ीखेत चले गए। सन् 1934 तक डेढ़ वर्ष वहीं रहे। सन् 1935 के प्रारम्भ में आप फिर महाविद्यालय चले आए, और कुछ दिन रहकर

पुन: मुरादाबाद चले गए और अपने जीवन के अन्त (सन् 1949) तक मुरादाबाद में ही पुस्तक-लेखन का कार्य करते रहे।

श्री बदरीदत्त पाण्डे

श्री पाण्डेजी का जन्म 15 फरवरी सन् 1882 को उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान कनखल (हरिद्वार) में हुआ था। आपके पिता श्री विनायक पाण्डे वहाँ पर वैद्यक का कार्य करते थे। जब आप 7-8 वर्ष के ही थे कि आपके पिता तथा माता का सन् 1889 में असमय ही निधन हो गया। श्री पाण्डेजी के ताऊ श्री हरिदत्त पाण्डे तथा उनकी धर्मपत्नी ने आपको माता-पिता का अभाव अनुभव नहीं होने दिया और वे सारे परिवार को कनखल से अलमोड़ा ले गए। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अलमोड़ा के जिस विद्यालय में हुई थी उसका नाम 'हिन्दू हाई स्कूल' था, जो आज उस क्षेत्र का प्रमुख महाविद्यालय बन गया है। उन दिनों इस स्कूल के हेडमास्टर श्री जुगलकिशोर थे, जिनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली

था। सन् 1896 में उस विद्यालय में जब स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा महामना मदनमोहन मालवीय पधारे थे तब उनके भाषणों को सुनकर श्री पाण्डेजी बहुत ही प्रभावित हुए थे। एक बार जब पाण्डेजी तथा आपके बड़े भाई श्री भुवनेश्वर ने स्कूल के 'गेम्स फण्ड' के रुपए का दुरुपयोग होने के सम्बन्ध में 'अलमोड़ा अखबार' में एक लेख छपवाया तो इन दोनों भाइयों की खबर ली गई थी। सन् 1900 में वहाँ से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप आगे की पढ़ाई के लिए बरेली चले गए थे। सन् 1902 में आप बरेली छोड़कर अपने ताऊ श्री हरिदत्त पाण्डे के एक मित्र श्री मानिकलाल जोशी के पास आगे के अध्ययन के लिए मध्य-प्रदेश की सरगुजा स्टेट में चले गए थे; जहाँ पर श्री जोशीजी डिप्टी कलक्टर थे और बाद में दीवान हो गए थे।

वहाँ जाकर आपका अध्ययन-क्रम तो आगे न चल सका, परन्तु आप श्री जोशीजी कृपा से सरगुजा महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त कर दिए गए। वहाँ पर राज्य में होने वाले भ्रष्टाचार तथा महाराजा की शराब पीने की आदत से तंग आकर आपका मन वहाँ से उचट गया और सन् 1902 में जब आपके भाई का निधन हो गया तो आप वहाँ लौट आए। आते ही सन् 1903 में आपकी नियुक्ति नैनीताल के 'डायमण्ड जुबली स्कूल' में 'फोर्थ मास्टर' के रूप में हो गई। इन्हीं दिनों आपको सन् 1905 में देहरादून के 'मिलिटरी वर्क्स' में अच्छी नौकरी मिल गई और आप वहाँ से चले गए। किन्तु वहाँ श्री स्वदेशी वस्त्र धारण करने के कारण आपकी कप्तान से झड़प हो गई और इस्तीफा देकर 'लीडर प्रेस प्रयाग' में सहायक मैनेजर हो गए। वहाँ पर भी दुर्भाग्य ने पीछा न छोड़ा और कठिन परिश्रम करने के बाद भी लगभग 2 वर्ष कार्य करने के उपरान्त आप वहाँ से त्याग पत्र देकर देहरादून के 'कास्मोपोलिटन' अखबार में कार्य करने लगे। सन् 1910 से 1913 तक आप वहीं रहे, और फिर अलमोड़ा से प्रकाशित होने वाले 'अलमोड़ा अखबार' के सम्पादक हो गए। जिस समय आपने इस पत्र का सम्पादन-भार ग्रहण किया था तब उसकी केवल 60 प्रतियाँ ही छपती थीं, किन्तु थोड़े ही दिन बाद यह संख्या बढ़कर 1500 हो गई। सन् 1918 में अलमोड़ा के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर श्री लोमस के आदेशानुसार जब यह पत्र बन्द हुआ था तब इसकी ग्राहक संख्या 2000 तक पहुँच गई थी।

इस पत्र के बन्द होने की घटना भी बड़ी मनोरंजक है। लोमस दिन-रात नशे में डूबा रहता था। जब एक बार उसके चपरासी को शराब और सोडा लाने में देर हो गई तब उसने क्रोध में आकर गोली चला दी, जिससे चपरासी घायल हो गया। इस पर जब आन्दोलन हुआ तो लोमस ने सफाई में कहा कि मैं तो मुर्गी का शिकार खेल रहा था, उसीमें चपरासी को छर्रे लगे हैं। जब उसने यह सफाई दी तो उसे यह ध्यान ही नहीं रहा था कि अप्रैल मास में मुर्गी का

शिकार खेलना मना है। जब यह दुर्घटना घटी थी तब सौभाग्य से अप्रैल का ही महीना था। 'अलमोड़ा अखबार' ने इस मामले को जब गम्भीरता से उठाया तब कानून के रक्षक स्वयं ही कानून की गिरफ्त में आ गए। फलस्वरूप पत्र के प्रकाशक तथा मुद्रक श्री सदानन्द सनवाल पर दबाव डालकर पत्र को बन्द करा दिया गया। इस घटना का विवरण देते हुए गढ़वाल के पत्रों में लोमस के सम्बन्ध में यह चुभती हुई पंक्तियाँ छपी थीं :

एक फायर में तीन शिकार।
कुली, मुर्गी और अलमोड़ा अखबार।

अँग्रेजों के प्रति बढ़ती हुई विद्रोही भावना ने जब और भी जोर पकड़ा तब जनता से तत्काल चन्दा करके लगभग चार हजार रुपए एकत्र हुए और 'देशभक्त प्रेस' की स्थापना करके पाण्डेजी ने उससे 'शक्ति' नामक पत्र सन् 1918 में प्रारम्भ कर दिया। इस पत्र के माध्यम से आपने सामान्यत: समस्त देश और विशेषत: कूर्मांचल की जनता की जो उल्लेखनीय सेवा की, उसीने आगे चलकर आपको 'कूर्मांचल केसरी' के गरिमामय विशेषण से मंडित कर दिया। जब देश में 'रायबहादुरी' और 'रायसाहबी' मुफ्त में ही बँट रही थी तब सन् 1921 में 'शक्ति' में यह निर्भीक घोषणा हुई थी—"गेहूँ व धान की फसलें पानी बिना सूखती हैं, पर रायबहादुरी की फसलें हर साल तरक्की पर है।" इस प्रकार के भड़काने वाले लेखों के कारण आपको अनेक बार ब्रिटिश नौकरशाही के कोप का भाजन बनना पड़ा था। आपने जहाँ तेजस्वी पत्रकार के रूप में अपने क्षेत्र की सेवा की थी वहाँ कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चलाने में भी आप पीछे नहीं रहे थे। स्वतन्त्रता-सेनानी के रूप में आपकी सेवाएँ कम महत्त्व नहीं रखतीं। स्वतन्त्रता से पूर्व आप अनेक वर्ष तक 'केन्द्रीय विधान सभा' तथा स्वतन्त्रता के उपरान्त 'लोकसभा' के सदस्य भी रहे थे।

आपका निधन 13 जनवरी सन् 1965 को हुआ था।

श्री बदरीनाथ भट्ट

श्री भट्टजी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा नगर के 'गोकुलपुरा' नामक मोहल्ले में सन् 1891 में हुआ था। आपके पिता पं० रामेश्वर भट्ट हिन्दी के ख्याति-प्राप्त विद्वान् तथा 'रामचरितमानस' के टीकाकार थे। आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री केदारनाथ भट्ट भी हिन्दी के हास्य-व्यंग्य-लेखकों में अग्रणी थे। आपको साहित्यिक क्षेत्र में बढ़ने की प्रेरणा परिवार की पारम्परिकता से ही प्राप्त हुई थी। आप एक उत्कृष्ट कवि, नाटककार तथा समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित होने के साथ-साथ सफल अध्यापक भी थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक थे।

बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने घर पर ही 'रामभूषण प्रेस' नाम से एक छापाखाना खोलकर उससे ही अपनी पुस्तकें प्रकाशित की थीं। आपके द्वारा लिखित पुस्तकों में 'हिन्दी' के अतिरिक्त 'चन्द्रगुप्त नाटक', 'कुरुवन दहन', 'चुंगी की उम्मीदवारी', 'वेणी संहार की आलोचना', 'दुर्गावती', 'बेन चरित', 'लबड़धोंधों', 'तुलसीदास', 'विवाह विज्ञापन' और 'मिस अमरीका' अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से अधिकांश व्यंग्य-प्रधान शैली में लिखी गई हैं। आपकी व्यंग्य-शैली पर विख्यात फ्रांसीसी नाटककार मौलियर का अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है।

भारतेन्दु-काल से द्विवेदी-युग तक आते-आते हिन्दी-कविता में जिस स्वच्छन्दतावाद की अवतारणा होती जा रही थी उसके श्री भट्टजी अनन्य समर्थक थे। आपने फरवरी सन् 1913 की 'सरस्वती' में अपनी इस धारणा की पुष्टि करते हुए यह स्पष्ट लिखा था—"भाषा के इतिहास में एक समय ऐसा भी आता है जब असली कवित्व-शक्ति न रहने पर भी लोग बनावटी
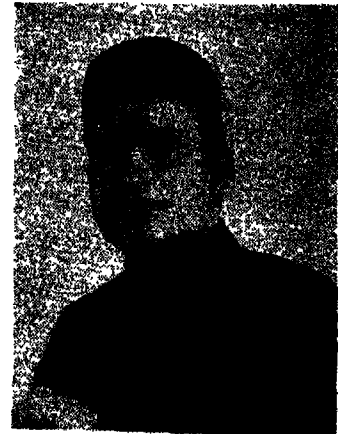
भाषा में कुछ भी भला-बुरा लिखकर शब्दों की खींचातानी दिखाते हुए अपनी लियाकत का इजहार करते हैं और चाहे

शैली अश्लील या अनर्गल बात को छन्द के खोल में दिया हुआ देख लोग उसीको कविता समझने लगते हैं।" भट्टजी ने भी अपनी कविताओं में नई भाषा और नई शैली का प्रयोग किया था। रीतिकालीन घनाक्षरी, कवित्त तथा सवैया की शैली को छोड़कर भट्टजी ने नई शैली में कविताएँ लिखी थीं। आपने कजरी, लावनी और लोकगीतों की शैली पर भी अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग किया था। आपने अपनी 'हिन्दी' नामक पुस्तक में हिन्दी के जिस स्वरूप की प्रस्थापना की थी, वह भी सर्वथा अनूठी है।

आप जहाँ उत्कृष्ट व्यंग्यकार तथा सफल लेखक थे वहाँ पत्रकारिता के क्षेत्र में आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। जिन दिनों प्रेस को बन्द करके आप इलाहाबाद आकर वहाँ के 'इण्डियन प्रेस' से प्रकाशित होने वाले 'बाल सखा' का सम्पादन करने लगे थे तब आपकी वह प्रतिभा और भी प्रखरता से हिन्दी-जगत् के समक्ष आई थी। 'बाल सखा' के सम्पादक पद से त्यागपत्र देकर जब आप आगरा आ गए थे तब भी आपने वहाँ के ला० अशर्फीलाल वकील के सहयोग से 'सुधारक' नामक जो पत्र सम्पादित किया था वह भी अपने समय में बहुत लोकप्रिय हुआ था। हास्य-व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में आपकी धाक 'प्रताप' में प्रकाशित 'गोलमाल-कारिणी सभा' शीर्षक लेख के कारण विशेष रूप से हुई थी। 'सैनिक' में प्रकाशित 'हलचलकारिणी सभा' ने भी उन दिनों बड़ी लोकप्रियता अर्जित की थी।

आप विचारों से सुधारवादी होने के कारण अपने जीवन तथा व्यवहार दोनों में एकरूपता रखने के समर्थक थे। इसी कारण आपने 30 वर्ष की आयु में एक विजातीय शिक्षिता कन्या से विवाह करके अपनी सुधारवादी प्रवृत्ति का परिचय दिया था, जिसके कारण आपको अपने सजातीय बन्धुओं का विरोध भी सहना पड़ा था।

आपका निधन सन् 1934 में हुआ था।

आचार्य बदरीनाथ वर्मा

आचार्य वर्मा का जन्म 10 नवम्बर सन् 1889 को बिहार के गया जनपद के 'अवगोल' नामक ग्राम में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में एक मौलवी के द्वारा हुई थी। बाद में आप राँची आकर वहाँ के जिला-स्कूल में प्रविष्ट हो गए और वहाँ से सन् 1898 में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपके पिताजी भी उन दिनों राँची में पुलिस विभाग में कार्य करते थे। सन् 1906 में राँची जिला-स्कूल से ही इण्ट्रेन्स की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने हजारीबाग के सैण्ट कोलम्बस स्कूल से सन् 1908 में एफ० ए० की परीक्षा दी और फिर आगे की पढ़ाई के लिए कलकत्ता के 'प्रेसीडेंसी कालेज' में प्रवेश ले लिया। सन् 1910 में वहाँ से बी०ए० करने के उपरान्त आपने सन् 1912 में पटना कालेज से एम० ए० की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् कानून की पढ़ाई के लिए आपने लॉ कालेज में प्रवेश लिया, किन्तु आप आगे पढ़ाई जारी नहीं रख सके।

आपने अपने कर्ममय जीवन का प्रारम्भ सन् 1913 में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'भारत मित्र' के सहकारी सम्पादक के रूप में किया। सन् 1914 में आप पटना के बी० एन० कालेज के प्रोफेसर हो गए और सन् 1920 तक इसी पद पर बने रहे। सन् 1915 से सन् 1920 तक आप पटना विश्वविद्यालय की 'फैकल्टी आफ आर्ट्स' के माननीय सदस्य भी रहे थे। सन् 1920 में जब महात्मा गान्धी के आह्वान पर समस्त देश में 'असहयोग आन्दोलन' का सूत्र-पात हुआ और 'बिहार विद्यापीठ' की स्थापना हुई तब आप उसके 'आचार्य' तथा 'पीठ स्थविर' (रजिस्ट्रार) हो गए। सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के

साथ-साथ आप सन् 1922 में हुई गया-कांग्रेस के अवसर पर उसके 'स्वयंसेवक दल' के प्रधान नायक बनाए गए थे। आप समय-समय पर 'बिहार सेवा समिति' के क्रमशः मन्त्री,

उपाध्यक्ष तथा अध्यक्ष रहने के साथ-साथ अनेक वर्ष तक 'बिहार कांग्रेस कमेटी' के कोषाध्यक्ष भी रहे थे। आपने सन् 1927 से सन् 1932 तक वहाँ पटना से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'देश' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था वहाँ अनेक वर्ष तक पटना के प्रख्यात अंग्रेजी दैनिक 'सर्च लाइट' के संयुक्त सम्पादक भी रहे थे। सन् 1927 में गया में आयोजित बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के अध्यक्ष रहने के अतिरिक्त आप अनेक वर्ष तक उसके उपाध्यक्ष भी रहे थे। सन् 1940 में आचार्य शिवपूजनसहाय की अध्यक्षता में हुए सम्मेलन के पटना-अधिवेशन के 'स्वागताध्यक्ष' आप ही थे। सम्मेलन के त्रैमासिक पत्र 'साहित्य' की संस्थापना में अपना सक्रिय सहयोग देने के साथ-साथ आप उसके सम्पादक भी रहे थे।

एक प्रख्यात शिक्षा-शास्त्री और पत्रकार के रूप में इतनी सेवाएँ करने के उपरान्त बिहार के राजनैतिक क्षेत्र में भी आपका उल्लेखनीय स्थान रहा है। अनेक बार कारावास की यातनाएँ भुगतने के साथ-साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की प्रगति के लिए भी आपने बढ़-चढ़कर कार्य किया था। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब समस्त देश में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों का निर्माण हुआ तब आपने बिहार के शिक्षा-मन्त्री के रूप में साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र में कई उपयोगी एवं अभिनन्दनीय कार्य किए थे। आपके ऐसे कार्यों में से एक 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' का नाम अग्रगण्य है। इसकी परिकल्पना आपके ही उद्योग का सुपरिणाम थी और परिषद् के प्रथम सभापति आप ही बने थे। परिषद् के माध्यम से आपने आचार्य शिवपूजनसहाय-जैसे व्यक्तित्व को, हिन्दी-सेवा के लिए पुनर्नियोजित किया और उन्हें परिषद् का प्रथम 'निदेशक' बनाया। आज परिषद्, साहित्य तथा संस्कृति के उन्नयन की दिशा में जो उल्लेखनीय कार्य कर रही है वह आपके ही सुदृढ़ तथा कर्मठ व्यक्तित्व का सुपरिणाम है। एक उत्कृष्ट शिक्षा-शास्त्री, कर्मठ देश-भक्त और जागरूक पत्रकार होने के साथ-साथ आप अध्यवसायी लेखक भी थे। आपकी लेखनी का प्रसाद हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे हुए विविध स्फुट लेखों के अतिरिक्त आपकी 'समाज' तथा 'हिन्दी और उर्दू' नामक प्रकाशित पुस्तकों में भी देखा जा सकता है।

आपका निधन सन् 1972 में हुआ था।

श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (उपाध्याय)

श्री 'प्रेमघन' जी का जन्म सन् 1855 में उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जनपद के 'दत्तापुर' नामक स्थान में हुआ था। आपके पितामह पण्डित शीतलप्रसाद उपाध्याय नगर के प्रतिष्ठित रईस, महाजन एवं व्यापारी थे और आपके पिता श्री गुरुचरणलाल उपाध्याय ने भी अपने पैतृक गुणों तथा संस्कारों के कारण अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की थी। आपकी शिक्षा का प्रारम्भ 5 वर्ष की आयु में आपकी माताजी के निरीक्षण में हुआ था। उन्होंने आपको हिन्दी पढ़ाई थी, किन्तु बाद में फारसी और उर्दू आपने विधिवत् विद्यालय में पढ़ी थी। आपकी शिक्षा गोंडा नगर में हुई थी और हिन्दी-

साहित्य का विधिवत् अध्ययन आपने अपने ही उद्यम से किया था। कवि, लेखक, पत्रकार और उत्कृष्ट निबन्ध-लेखक के रूप में आपकी गणना बीसवीं शताब्दी के अच्छे साहित्यकारों में की जाती है।

आपने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ पहले-पहल कवि के रूप में किया था। ब्रजभाषा में कवित्त तथा सवैया शैली की रचनाएँ करने में आपको अभूतपूर्व कौशल प्राप्त था। आप अनुप्रासमयी रचना करने और मिर्जापुरी धुन की कजली, होली, लावनी आदि लिखने में इतने दक्ष थे कि आपको 'लोक-गीत-परिपाटी' की रचना-क्षेत्र का 'जनक' ही समझा जाता है। 'भारतेन्दु-मण्डल' के जो साहित्यकार उन दिनों साहित्य में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे थे उनमें 'प्रेमघन' का स्थान अत्यन्त प्रमुख है। एक बार श्री भारतेन्दु जी जब काशी-नरेश के साथ कजली के मेले में शामिल होने के लिए मिर्जापुर गए थे तब 'प्रेमघन' जी के यहाँ ही ठहरे थे। आपकी अनुप्रासमयी शैली की उन दिनों बड़ी

भूम थी। आपके ऐसे काव्य की उदात्तता इस पद में देखी जा सकती है :

बगियान बसन्त बसेरो कियो,
बसिये तेहि त्यागि तपाइये ना।
दिन काम कुतूहल के जो बने,
तिन बीच बियोग बुलाइए ना।।
'घन प्रेम' बढ़ायकै प्रेम अहो,
बिथा-बारि वृथा बरसाइए ना।
चित चैत की चाँदनी चाह भरी,
चरचा चलिबे की चलाइए ना।।

मिर्जापुर में साहित्यिक जागृति उत्पन्न करने की दृष्टि से पहले आपने 'सद्धर्म सभा' नाम की एक संस्था की स्थापना भी की थी और कुछ दिन बाद 'रसिक समाज' का गठन किया था। आपकी रचनाएँ वैसे प्रायः भारतेन्दुजी की 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती थीं, परन्तु आपने भी 'आनन्द कादम्बिनी' नामक जो पत्रिका मिर्जापुर से प्रकाशित करनी प्रारम्भ की थी उसमें भी आपकी रचनाएँ प्रमुख रूप से रहती थीं। जब श्री 'प्रेमघन' जी ने अपनी रचनाओं से ही पत्रिका के कलेवर की सम्पूर्ति करनी प्रारम्भ कर दी तब भारतेन्दुजी ने आपको लिखा था—"जनाब, यह किताब नहीं है जो आप अकेले ही इसमें हरकाम फरमाया करते हैं, बल्कि यह अखबार है कि जिसमें अनेक जन लिखित लेख होना आवश्यक है और यह भी जरूरत नहीं है कि सब एक तरह के लिक्खाड़ हों।" इसका प्रभाव यह हुआ कि 'प्रेमघन' जी ने दूसरे लोगों को भी इस पत्रिका में लिखने के लिए आमन्त्रित किया था। यह पत्रिका 8-9 वर्ष तक सफलतापूर्वक प्रकाशित हुई थी। इसके बाद आपने 'नागरी नीरद' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी सन् 1892 में निकाला था। इन दोनों पत्रों में 'प्रेमघन' जी की अनेक गद्य-पद्य-रचनाएँ प्रकाशित हुआ करती थीं। आपकी सभी पद्य रचनाओं का एकत्र संकलन 'प्रेमघन सर्वस्व' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपकी गद्य-रचनाओं में 'वीरांगना रहस्य अथवा वेश्या विनोद', 'भारत सौभाग्य', 'वृद्ध विलाप' तथा 'प्रयाग रामागमन' नामक नाटक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनमें से 'भारत सौभाग्य' को एकांकी नाटक समझा जाता है।

उत्कृष्ट समीक्षा-लेखक के रूप में 'प्रेमघन' जी की प्रतिभा अत्यन्त उल्लेखनीय है। अपने बाबू श्रीनिवासदास तथा डा० गदाधरसिंह की 'संयोगिता स्वयंवर' और 'बंग विजेता' नामक कृतियों की जो समीक्षा 'आनन्द कादम्बिनी' में की थी, उससे आपकी गहन समीक्षा-पद्धति का परिचय मिलता है। आपके उक्त नाटकों के अतिरिक्त 'हार्दिक हर्षादर्श', 'भारत बधाई', 'आर्याभिनन्दन', 'मंगलाचरण', 'शुभ सम्मेलन', 'आनन्द अरुणोदय', युगल मंगल स्तोत्र', 'वर्षा-बिन्दु-गान', 'कजली कादम्बिनी', 'संगीत सुधा सरोवर', 'पीयूष वर्षा', 'आनन्द बधाई', 'पितर प्रलाप', 'कलिकाल-तर्पण', 'मन की मौज', 'युवराजाशिष', 'स्वभाव बिन्दु सौन्दर्य', 'शोकाश्रु बिन्दु', 'विधवा विपत्ति वर्षा', 'भारत भाग्योदय', 'कान्ता कामिनी', 'बुद्धि विलाप' तथा 'आत्मोल्लास' आदि काव्य-कृतियाँ उल्लेखनीय हैं।

आपकी साहित्य-सम्बन्धी विविध सेवाओं को दृष्टि में रखकर आपको अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सन् 1912 में कलकत्ता में हुए तीसरे अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया था।

आपका निधन सन् 1922 में हुआ था।

लाला बद्रीदास 'लाल बलबीर'

श्री 'लाल बलबीर' का जन्म वृन्दावन में सन् 1929 में हुआ था। आप निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी ब्रजभाषा के रस-सिद्ध कवियों में अन्यतम थे। आपके पास हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था। आप प्रायः कवि-गोष्ठियों में अपनी ब्रजभाषा की रचनाएँ सुनाया करते थे।

आपका तम्बाकू बेचने का व्यवसाय था। तम्बाकू कूटते हुए भी आप प्रायः कविताएँ किया करते थे। आपकी दुकान पर प्रायः कविता-पाठ का क्रम चलता ही रहता था। आपने अपने 'हजारा' नामक ग्रन्थ में अपने तथा अपने परिवार के सम्बन्ध में एक दोहा इस प्रकार लिखा है :

विदित वैश्य हैं चार जुग विधि निज रचे शरीर।
रामलाल को सुअन हौं नाम लाल बलबीर।।

इससे यह प्रकट होता है कि आपके पिता का नाम रामलाल था। निम्बार्क सम्प्रदाय की विभिन्न उपासना-पद्धतियों पर व्यापक रूप से प्रकाश डालने वाली अनेक रचनाएँ

आपके 'ब्रज विनोद' (1893) नामक ग्रन्थ में संकलित हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्याम काशी प्रेस, मथुरा द्वारा आपके जीवन-काल में ही हुआ था।

वास्तव में ब्रजभाषा-काव्य के सौष्ठव का ज्वलन्त प्रमाण आपकी रचनाओं में देखने को मिलता है। आपकी ख्याति ब्रज क्षेत्र के अतिरिक्त झाँसी, दतिया, सन्थर तथा पन्ना आदि स्थानों में भी थी। ब्रजभाषा-काव्य में पढ़न्त परिपाटी के कवियों में आपका नाम अग्रणी कहा जा सकता है। उसी परिपाटी के आधार पर आज ब्रज-क्षेत्र में पढ़न्त-दंगल होते रहते हैं।

आपका निधन सन् 1920 में श्रावणी के दिन हुआ था।

श्री बनारसीदास 'विरही'

श्री 'विरही' का जन्म सन् 1889 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद के 'बछराऊँ' नामक स्थान में हुआ था। आपके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ मेरठ से हुआ था। आप श्री विश्वम्भरसहाय 'व्याकुल' की 'व्याकुल भारत नाटक कम्पनी' से सम्बद्ध थे और पहले-पहल आपने इस कम्पनी के लिए जो नाटक लिखे उनमें 'लवकुश' प्रमुख है। 'लवकुश' का मंचीकरण सर्वप्रथम मेरठ के मोरीपाड़ा मोहल्ले में हुआ था। उन दिनों 'व्याकुल भारत नाटक कम्पनी' में आपके सहकर्मी प्रख्यात नाटककार और साहित्यकार श्री गोविन्दवल्लभ पन्त भी थे। 'विरही' जी को मेरठ की जनता 'कीर्तन' जी के नाम से भी जानती है। आपने पंडित राधेश्याम कथावाचक के यहाँ भी नाटक-लेखन का कार्य किया था, इसका परिचय कथावाचकजी के 'मशरिकी हूर' (1935) नामक नाटक की प्रस्तावना में मिलता है। इस प्रस्तावना में कथावाचकजी ने नाटक-लेखन में सहयोग देने के लिए आपका आभार व्यक्त किया है।
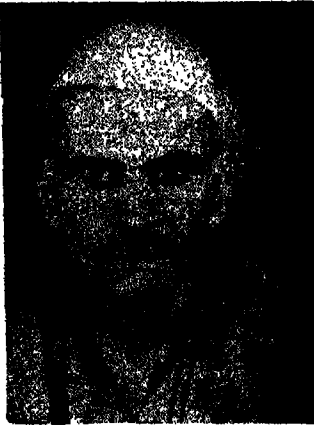
'विरही' जी एक उत्कृष्ट नाटककार होने के साथ-साथ सहृदय कवि भी थे। पहले आप 'काशिक' नाम से उर्दू में शायरी किया करते थे, परन्तु बाद में 'व्याकुल' जी के सम्पर्क में आकर आप हिन्दी-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए थे। आपकी रचनाओं की प्रशंसा 'चकबस्त', 'सीमाब' और 'जोश' आदि उर्दू के तत्कालीन प्रमुख शायरों ने भी की थी। 'उर्दू शायरी का इतिहास' में आपका उल्लेख 'कौशिक' नाम से किया गया है। कदाचित् इस ग्रन्थ के लेखक डॉ० अमीर उल्लाह साहब गलती से 'काशिक' के बजाय 'कौशिक' लिख गए होंगे। 'लवकुश' नाटक के अतिरिक्त आपकी 'ज्ञान कुसुमाकर' खण्डकाव्य (1928), 'सती मोह' खण्डकाव्य (1941), 'परीक्षा नाटक' (1944) तथा 'दुर्गा-स्तुति' काव्य (1954) उल्लेखनीय हैं। आपके 'मातृ-भक्ति', 'प्रेम योगी' और 'राम विजय' नाटक अभी तक अनुपलब्ध हैं।

अपने सरल और निस्पृह स्वभाव के कारण 'विरही' जी अन्ततः मेरठ तक ही सीमित रहे और 18 मई सन् 1961 को आप इस असार संसार से चुपचाप विदा हो गए।

श्री बलदेव पाण्डेय 'बलभद्र'

आपका जन्म बिहार के गया जिले के ओकरी (घोसी) नामक ग्राम में सन् 1871 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत के माध्यम से हुई थी। आयुर्वेद और ज्योतिष आपके प्रिय विषय थे। सन् 1892 के आस-पास आपकी काव्य-रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थीं। आप कवित्त, सवैया, चौपाई आदि प्राचीन पारम्परिक छन्दों में ही प्रायः लिखा करते थे। आप जिस समय मधुर कण्ठ से अपनी रचनाओं का पाठ किया करते थे तो श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाते थे। समस्या-पूर्ति करने में आपको जो कौशल प्राप्त था उसके कारण आपको 'आशुकवि' कहा जाने लगा था।

आपका निधन सन् 1956 में हुआ था।

श्री बलदेवप्रसाद मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर के दीनदारपुरा नामक मोहल्ले में सन् 1869 में हुआ था। आप प्रख्यात साहित्यकार विद्यावारिधि ज्वालाप्रसाद मिश्र के कनिष्ठ भ्राता थे। अपने अग्रज की भाँति आपकी प्रतिभा भी बहुमुखी थी। आपने अनेक गहन गम्भीर शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना करने के साथ-साथ उपन्यास और नाटक-लेखन में अपनी लेखनी का सदुपयोग किया था। आप संस्कृत तथा हिन्दी के अतिरिक्त गुजराती, मराठी आदि कई भारतीय भाषाओं के भी मर्मज्ञ विद्वान् थे।

सन् 1886 से सन् 1905 तक आपने अनवरत साहित्य-सर्जना में व्यस्त रहकर जिन अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन कराया था, वे आपकी सर्वांगीण लेखन-क्षमता के द्योतक हैं। अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना करने के साथ-साथ आपने बहुत-सी लोकोपयोगी पुस्तकों की रचना भी की थी। आपकी प्रमुख कृतियों में 'संसार व महा स्वप्न', 'पानीपत', 'राजपूत कीर्ति', 'होनहार', 'अनारकली', 'पृथ्वीराज चौहान', 'तात्या भील', 'प्रफुल्ल', 'कुन्दनन्दिनी', 'शिवाजी विजय' और 'महा मनमोहिनी' (सभी उपन्यास) के अतिरिक्त 'नेपाल का इतिहास', 'टाड का राजस्थान', 'नाट्य-प्रबन्ध', 'रस रहस्य', 'हितोपदेश', 'अध्यात्म रामायण', 'मेघदूत', 'पुरुष सूक्त' तथा 'बृहत् संहिता' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से कई अनुवाद हैं।

आयुर्वेद तथा तन्त्र-शास्त्र के क्षेत्र में भी आपकी पर्याप्त गति थी। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय आपके 'रसेन्द्र चिन्तामणि', 'यन्त्र चिन्तामणि', 'सूर्य सिद्धान्त', 'आयुर्वेद चिन्तामणि', 'गुप्त साधन तन्त्र', 'महा निर्वाण तन्त्र', 'योगमाला तन्त्र', 'गुरु तन्त्र', 'गायत्री तन्त्र', 'निरुष तन्त्र', 'कामरत्न तन्त्र', 'उड्डीस तन्त्र' तथा 'गौरी कांचलिका तन्त्र' आदि ग्रन्थों से मिलता है। आपके 'व्याख्यान रत्नमाला', 'नारी रत्नमाला', 'आल्हा खण्ड बावन लड़ाई', 'मिश्र निघण्टु' और 'धर्म दिवाकर' आदि ग्रन्थ भी अपनी उल्लेखनीय विशेषता रखते हैं।

पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन के क्षेत्र में भी आपकी प्रतिभा का ज्वलन्त परिचय मिला था। आपने 'साहित्य सरोज', 'सत्य सिन्धु', 'भारतवासी', 'भारत भानु' तथा 'सोलजर पत्रिका' आदि पत्रों का सम्पादन बड़ी योग्यतापूर्वक किया था।

खेद है कि आपका निधन केवल 36 वर्ष की स्वल्प-सी आयु में ही 7 अगस्त सन् 1905 को हो गया।

श्री बलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश'

श्री 'द्विजेश' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के निकटवर्ती ग्राम 'मिश्रौलिया' में सन् 1872 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा फारसी में हुई थी। आप प्रथमतः 'गायन और वादन' के माध्यम से ही माँ भारती के मन्दिर में प्रविष्ट हुए थे। आपके गायन-गुरु गोस्वामी प्रीतमदासजी थे और सितार-वादन की शिक्षा आपने उस्ताद इमदाद खाँ से ग्रहण की थी। गायन और वादन में निपुणता प्राप्त करने के उपरान्त आपने काव्य के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग किया और एक समय ऐसा आया जबकि आप अपने समय के ब्रजभाषा के उत्कृष्टतम कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

आपके काव्य-जीवन का प्रारम्भ उर्दू में शायरी करने

से हुआ था। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि आपकी प्रारम्भिक शिक्षा 'फारसी' में हुई थी। द्विजदेव और लछिराम के उपरान्त अवध प्रदेश में आप ही ब्रज-काव्य-परम्परा के अनन्य उन्नायकों में थे। कला और रस के जिस संगम की पुण्य धारा में आपके समकक्ष और मित्र कवि रत्नाकर ने असंख्य डुबकियाँ लगाई हैं वहाँ द्विजेशजी भी उनसे पीछे नहीं रहे थे। आपका अलंकार, पिंगल तथा काव्य-सिद्धान्तों का ज्ञान रीतिकालीन आचार्यों के समान ही गहन था। आपकी प्रतिभा के सम्बन्ध में यही कहना अधिक उपयुक्त होगा :

ज्यौं-ज्यौं निहारिये नियरे ह्वै नैननि,
त्यौं-त्यौं खरी निकसै सु निकाई।

आपकी कविताओं का संकलन 'द्विजेश दर्शन' नाम से सन् 1956 में प्रकाशित हुआ था। उससे आपकी प्रतिभा एवं कला-चातुरी का सम्यक् परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ में 'वन्दना', 'भक्ति और दर्शन', 'गंगा-गरिमा', 'शृंगार' तथा 'विविध' आदि अनेक खण्डों में आपकी उत्कृष्टतम रचनाएँ संकलित की गई हैं। इस संकलन में आपकी ब्रजभाषा-काव्य-क्षमता का जो उदात्त रूप देखने को मिलता है वह 'अनन्य' ही है।

आपका निधन सन् 1959 को हुआ था।

श्री बलिराम मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म बिहार के गया जिले के बारा नामक स्थान में 2 जनवरी सन् 1885 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपनी ननिहाल (जहानाबाद) में हुई थी। संस्कृत वाङ्मय में आपकी विशेष रुचि थी और खरखुरा (गया) के ब्रजभूषण संस्कृत महाविद्यालय से ज्योतिष और व्याकरण की मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण करके सन् 1907 में आपने पढ़ाई बन्द कर दी थी। मुख्यत: आप काव्य-रचना ही करते थे। आपकी ऐसी रचनाएँ 'संग्राम पचासा' नामक पुस्तक में संकलित हैं। आपने सत्यनारायण व्रत-कथा का हिन्दी पद्यानुवाद भी किया था।

आपका देहावसान 3 अप्रैल सन् 1945 को 60 वर्ष की अवस्था में हुआ था।

पंडित बस्तीराम आर्योपदेशक

पंडित बस्तीराम आर्योपदेशक का जन्म सन् 1841 में हरियाणा की झज्जर तहसील के खेड़ी सुलतान नामक ग्राम में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा माछरोली-निवासी पंडित हरसुखजी के पास हुई थी और कुछ दिन बाद आप अपने चाचा श्री जीवनरामजी के पास बनारस चले गए थे। वहाँ पर आपके चाचा शिक्षक का कार्य करते थे। जब सन् 1857 की जन-क्रान्ति हुई थी तब आप फिर अपने गाँव वापस आ गए थे। इसके उपरान्त आपने अपने ठाकुरजी के मन्दिर के पुजारी समचाना-निवासी श्री बलदेवसहाय से भी कुछ दिन अध्ययन किया था।

सन् 1867 में हरिद्वार में हुए कुम्भ मेले के अवसर पर आपको महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपने समाचार पत्रों में महर्षि द्वारा छपवाया गया 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' के फहराने का समाचार पढ़कर ही हरिद्वार जाने का संकल्प किया था। इस प्रकार की सूचना से आपके गाँव के ठाकुर सुलतानसिंह भी प्रभावित हुए थे। आप अपने सभी साथियों के साथ बैलगाड़ियों, घोड़ों तथा ऊँटों पर सवार होकर हरिद्वार में 'भीमगोड़ा' नामक उस स्थान पर पहुँचे जहाँ स्वामीजी ने इस अनुष्ठान को सम्पन्न करने की घोषणा की थी। वहाँ पर स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा अन्य पाखण्डी साधु-सन्तों में हुए प्रश्नोत्तरों से पंडित बस्तीराम अत्यन्त प्रभावित हुए और आपके मानस में वैदिक सिद्धान्तों के प्रति आस्था अत्यन्त दृढ़ता से बढ़ गई। पंडित बस्तीरामजी के साथ आए हुए ठाकुर सुलतानसिंह तथा अन्य ग्रामवासियों ने स्वामीजी द्वारा यज्ञोपवीत ग्रहण करके वैदिक धर्म की दीक्षा ग्रहण की।

पंडित बस्तीरामजी ने ग्रामीण शैली में भजनों की

रचना द्वारा हरियाणा प्रदेश में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार का जो कार्य किया वह आपकी निष्ठा तथा कार्य-तत्परता का द्योतक है। दिल्ली-दरबार के समय जब स्वामीजी दिल्ली पधारे थे तब श्री पंडित बस्तीराम ने वहाँ पहुँचकर उनके उपदेशों से अपने को धन्य किया था। सन् 1877 में अत्यधिक अस्वस्थता के कारण आपके नेत्रों की ज्योति क्षीण हो गई। सन् 1880 में जब स्वामीजी ने रिवाड़ी में रानी के तालाब पर आकर भाषण किए थे तब भी आप वहाँ पहुँचे थे। वहाँ पर रिवाड़ी के राजा राव तुलाराम के उत्तराधिकारी स्वामीजी से बहुत प्रभावित हुए थे।

आपने अपने सुधारपरक भजनों के द्वारा हरियाणा की जनता में धर्म तथा समाज के प्रति आस्था उत्पन्न करने के साथ-साथ उनके मानस में राष्ट्रीयता के बीज भी अंकुरित किए थे। आपके ही प्रचार का यह सुपरिणाम हुआ कि हरियाणा में हिन्दी तथा संस्कृत भाषा के प्रति इतना अनन्य अनुराग दिखाई देता है और सब जगह गुरुकुलों की स्थापना हो गई है। आपकी काव्य-रचनाओं में 'पाखण्ड खण्डिनी', 'भजन मनोरंजनी', 'भजन आग या अग्निबाण', 'मानस दीपिका','क्षत्री भजन संग्रह', 'महर्षि दयानन्द जीवन-कथा', (काशीशास्त्रार्थ), 'असली अमृत गीता', (दो भाग), 'अमृत कला', 'बस्तीराम रहस्य', 'पोप की नाखर', 'गऊ भजन संग्रह' तथा 'अघमर्षण प्रार्थना' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका देहावसान 26 अगस्त सन् 1958 को हुआ था। निधन के समय आपकी आयु 116 वर्ष 10 मास और 23 दिन थी।

श्री बाबूराम पालीवाल

श्री पालीवालजी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के कुरींकूपा नामक ग्राम में 25 अक्तूबर सन् 1907 को हुआ था। आपने 22 नवम्बर सन् 1928 में सरकारी नौकरी में प्रवेश किया था। भारत सरकार के अनेक विभागों में विभिन्न रूपों में कार्य करते हुए आप सन् 1962 में सेवा-निवृत्त हुए थे। सेवा-निवृत्ति के उपरान्त आप एक मार्च सन् 1963 से सन् 1970 तक आकाशवाणी के ब्रजभाषा-कार्यक्रम के प्रोड्यूसर भी रहे थे। अपनी नियमित शासन-सेवा के मध्य में भी आप कई वर्ष तक आकाशवाणी के दिल्ली-केन्द्र के हिन्दी वार्ता विभाग के अधिकारी रहे थे।

राजधानी के साहित्यिक क्षेत्र में आप एक कुशल संगठक और सहृदय मानव के रूप में जाने जाते थे। कवि तथा लेखक के रूप में आपकी विशेष ख्याति थी। सन् 1945 से पूर्व आप 'नीलम पालीवाल' नाम से लिखा करते थे। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'कनक किरन', 'चेतना', 'दादी की माला', 'चमचम चमके चन्दा मामा', 'खेल खेल में' और 'कार्यालय निर्देशिका' उल्लेखनीय हैं।

दिल्ली की 'कवि समाज', 'दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन' तथा 'ब्रजवासी समाज' आदि कई संस्थाओं से आपका अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क था।

आपका निधन 17 नवम्बर सन् 1978 को हुआ था।

श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर

श्री पराड़करजी का जन्म 6 नवम्बर सन् 1883 को काशी के एक महाराष्ट्री-परिवार में हुआ था। आपके पूर्वज पूना के निवासी थे। आपके पिता श्री विष्णुरावजी अपनी शैशवावस्था में ही वहाँ से काशी चले आए थे। श्री पराड़कर जी का अक्षर-ज्ञान काशी में ही हुआ था, किन्तु कुछ दिन बाद आप अपने पिता के पास बिहार चले गए थे, जहाँ पर आपके पिता एक हाईस्कूल में अध्यापक थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पहले छपरा में हुई, फिर कुछ दिन बाद आप अपने पिताजी के पास भागलपुर चले गए। दुर्भाग्य ने आपका यहाँ भी पीछा न छोड़ा। आप अभी केवल 15 वर्ष

के ही थे कि आपके पिताजी का देहावसान हो गया। परिवार का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर आ जाने पर भी आपने पढ़ाई बन्द नहीं की और हाईस्कूल करने के उपरान्त 'इण्टरमीडिएट' में प्रवेश ले लिया। इसके उपरान्त आपको विवश होकर काशी लौटना पड़ा और वहाँ पर पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए ट्यूशन आदि करके जीवन को चलाना पड़ा। आप इस प्रकार संघर्षमय परिस्थितियों में जीवन-यापन कर ही रहे थे कि आपको अपनी एकमात्र आशा-किरण माताजी के वियोग का दुःख भी उठाना पड़ा।

ट्यूशन आदि करने के साथ-साथ आप नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में जाकर अपने ज्ञान को बढ़ाने लगे। जब आप रोजाना तरह-तरह की पुस्तकें लिया करते थे तो एक दिन तत्कालीन पुस्तकाध्यक्ष श्री केदारनाथ पाठक ने कौतूहलवश आपसे यह प्रश्न कर दिया— 'क्यों भाई, रोज केवल किताबें ले ही जाते हो या पढ़ते भी हो।" पराडकरजी को यह बात बहुत बुरी लगी। आपने अपने स्वाभिमान को चोट पहुँचती अनुभव करके तत्काल यह उत्तर दिया— "अगर आपको किसी प्रकार का कोई सन्देह हो तो जिन पुस्तकों को मैं पढ़ चुका हूँ उनके सम्बन्ध में कुछ पूछ देखिएगा।" जब पुस्तकाध्यक्ष को आपके इस कथन पर भी विश्वास न हुआ तो उन्होंने अपना कौतूहल शान्त करने के लिए कुछ प्रश्न कर दिए। पराडकरजी के उत्तरों को सुनकर पुस्तकाध्यक्ष महोदय के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वे आपका मुँह ताकने लगे। पराडकरजी की इस स्वाध्याय-वृत्ति का ही यह सुपरिणाम था कि आप अपने सारे पत्रकार-जीवन में नई-से-नई पुस्तकों को ढूंढ-ढूंढकर पढ़ा करते थे। उन्हीं दिनों आपने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी बंगवासी' के लिए एक उपसम्पादक की आवश्यकता का विज्ञापन कहीं देखा। आपने अपना प्रार्थना-पत्र वहाँ भेज दिया। 'हिन्दी बंगवासी' का सम्पादन श्री हरिकृष्ण जौहर किया करते थे। उन्होंने तुरन्त पराडकरजी को अपने यहाँ बुला लिया।

कलकत्ता में पराडकरजी के मामा श्री सखाराम गणेश देउस्कर भी रहा करते थे और वे वहाँ से प्रकाशित होने वाले बंगला के सुप्रसिद्ध पत्र 'हितवार्ता' के प्रधान सम्पादक थे। पराडकरजी कलकत्ता जाकर उन्हींके पास ठहरे। उनके सम्पर्क में रहकर पराडकरजी के व्यक्तित्व तथा बौद्धिक विकास में जो निखार आया उससे आपका उत्साह दिनानुदिन द्विगुणित होता गया। वहाँ रहते हुए आपने अपने हिन्दी तथा अँग्रेजी भाषा के ज्ञान में वृद्धि करने के साथ-साथ बंगला भाषा में भी अच्छी प्रगति कर ली। 'हिन्दी बंगवासी' में कार्य करते हुए भी आपने अपने स्वाध्याय की आदत को नहीं छोड़ा, जिसके फलस्वरूप आपके जीवन में उत्कृष्ट पत्रकार बनने के सभी गुण आते जा रहे थे। जब 'हिन्दी बंगवासी' के संचालकों से उनकी प्रतिक्रियावादी नीति के कारण पराडकरजी का मतभेद हो गया तो आपने वहाँ से कार्य छोड़कर अपने मामा देउस्करजी के साथ ही 'हितवार्ता' के हिन्दी-संस्करण में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। पत्रकारिता के इस कठिन कार्य में अहर्निश व्यस्त रहने के साथ-साथ आप वहाँ के 'नेशनल कालेज' में हिन्दी तथा मराठी के अध्यापन का कार्य भी करते थे। यह कालेज बंगाल के तत्कालीन क्रान्तिकारी युवकों का अड्डा था और उसके प्रधानाचार्य योगी अरविन्द घोष थे। पराडकरजी ने इन्हीं दिनों अपने मामा श्री देउस्कर द्वारा बंगला में लिखी क्रान्तिकारी पुस्तक 'देशेर कथा' का हिन्दी अनुवाद 'देश की बात' नाम से किया था। हिन्दी में प्रकाशित होते ही वह पुस्तक जब्त कर ली गई थी, हालाँकि इससे पूर्व प्रकाशित उसके बंगला-संस्करण की ओर सरकार का ध्यान तक नहीं गया था।

धीरे-धीरे पराडकरजी की पत्रकार-कला में निखार आता गया और आप फिर वहाँ से ही प्रकाशित होने वाले 'भारत मित्र' के सम्पादकीय विभाग में चले गए। क्रान्तिकारी युवकों और उनके आन्दोलन से तादात्म्य होने के कारण आपके विचारों और भावनाओं में भी वैसी ही प्रखरता आती जा रही थी और 'भारतमित्र' में आपकी यह

विचार-धारा यदा-कदा प्रकट होती रहती थी। फलतः आपको भी क्रान्तिकारी समझकर गिरफ्तार कर लिया गया। यह सन् 1916 की बात है। राजबन्दी के रूप में श्री पराड़करजी ने लगभग साढ़े तीन वर्ष बंगाल की विविध जेलों में काटे थे। इस सम्बन्ध में पराड़करजी प्रायः यह कहा करते थे—"मैं गुप्त समितियों में कार्य करने के लिए ही कलकत्ता गया था, पत्रकार बनने नहीं। पत्रकारिता तो मेरे गले पड़ गई थी।" सन् 1920 में जब आप जेल से मुक्त हुए तो परिवार के लोगों के परामर्श पर आप काशी लौट आए। उन्हीं दिनों काशी के विख्यात जन-सेवी श्री शिवप्रसाद गुप्त ने अपनी 'ज्ञानमण्डल' संस्था की ओर से 'आज' नामक हिन्दी दैनिक के प्रकाशन का निश्चय किया और पराड़करजी उससे सम्बद्ध हो गए। 'आज' में रहते हुए पराड़करजी ने पत्रकारिता के जो मानदण्ड स्थापित किए, वे आपकी ध्येयनिष्ठा और कर्म-कुशलता के ज्वलन्त प्रमाण हैं। उनका आदर्श था—"पत्रकारिता का क्षेत्र सेवा का क्षेत्र है। इसमें पहले सेवा, और बाद में मेवा की अभिलाषा रखनी चाहिए। भले ही अन्धड़ और तूफान आए, भूकम्प और दमन चक्र चले, कोई भी सहयोगी बीमार पड़े या मरे, पत्रकार को तो समय पर पत्र निकालना ही होगा।"

अपनी इसी पुनीत धारणा की परिपालना आपने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक की और किसी प्रकार के प्रलोभन के सामने आपने घुटने नही टेके। यहाँ तक कि जब 'आज' की आर्थिक स्थिति नाजुक थी तब वेतन में कटौती कराकर भी आप उसकी सेवा में संलग्न रहे और 'वेंकटेश्वर समाचार' में जाना स्वीकार न किया। आपने 'आज' के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीयता की अस्मिता को बचाने का जो अथक प्रयास किया था, उसकी उपमा पराड़करजी स्वयं ही थे। आपकी पत्रकारिता के आदर्श बाल गंगाधर तिलक और गणेशशंकर विद्यार्थी थे। अपने इसी आदर्श की रक्षा के लिए आप यावज्जीवन संघर्ष ही करते रहे। 'आज' की सम्पादकीय टिप्पणियों को हिन्दी में जिस चाव से पढ़ा जाता था, उसके मूल में पराड़करजी की वही ध्येयनिष्ठा थी। नमक-सत्याग्रह के दिनों में जब प्रतिबन्धों के कारण 'आज' का प्रकाशन स्थगित हो गया तब आपने 'रणभेरी' नामक एक गुप्त पत्र का भी सम्पादन किया था। अनेक विदेशी शब्दों के हिन्दी रूपों के 'मानकीकरण' करने की दिशा में भी पराड़करजी का अत्यन्त अभिनन्दनीय योगदान था। 'नेशन' के लिए 'राष्ट्र', 'इन्फ्लेशन' के लिए 'मुद्रास्फीति' आदि शब्द हिन्दी-पत्रकारिता में पराड़करजी की ही देन माने जाते हैं। आप एक उत्कृष्ट कोटि के पत्रकार होने के साथ-साथ बहुत अच्छे साहित्यकार भी थे। आपकी इन्हीं सेवाओं के कारण आपको अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सन् 1938 में हुए शिमला-अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया था। आपने प्रेमचन्दजी के निधन के उपरान्त उनकी स्मृति में प्रकाशित 'हंस' के विशेषांक का भी सफल सम्पादन किया था।

कुछ दिन तक किन्हीं सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण आपने 'आज' से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। उन दिनों भी आप खाली नहीं रहे और 'संसार' दैनिक के सम्पादन के द्वारा अपनी पत्रकारिता को यथापूर्व बनाए रखा था। कुछ दिन तक आपने काशी से प्रकाशित 'कमला' नामक मासिक पत्रिका का भी सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। इस पत्रिका में आपके सहकारी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी थे। अपने दीर्घकालीन पत्रकार-जीवन में आपने जहाँ पत्रकारिता को नए मानदण्ड दिए वहाँ भाषा-परिष्कार तथा वर्तनी की दिशा में भी आपका योगदान कम महत्त्व नहीं रखता। पत्रकारिता तथा साहित्य के क्षेत्र में की गई उल्लेखनीय सेवाओं के लिए अखिल भारतीय सम्मेलन ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' की सम्मानित उपाधि भी प्रदान की थी।

आपका निधन 12 जनवरी सन् 1955 को हुआ था।

श्री बालकृष्ण भट्ट

श्री भट्टजी का जन्म 3 जून सन् 1844 में प्रयाग में हुआ था। आपकी शिक्षा पहले-पहल घर पर ही संस्कृत में हुई थी और बाद में आपने 'मिशन स्कूल' से इण्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। यह परीक्षा देने के उपरान्त ही आप वहाँ पर अध्यापक हो गए थे; किन्तु ईसाई-वातावरण के उस स्कूल में आपकी पट नहीं सकी और शीघ्र ही त्यागपत्र देकर अलग हो गए थे। इसके उपरान्त भट्टजी ने अपना स्वाध्याय घर पर ही जारी रखा। यद्यपि आपके पिता भट्टजी को

व्यापार में लगाना चाहते थे; किन्तु आपका रुझान पढ़ने-लिखने की ओर था। सन् 1868 के लगभग आपने वहाँ के सी० ए० वी० स्कूल में शिक्षक का कार्य प्रारम्भ किया और थोड़े दिन बाद आप 'कायस्थ पाठशाला इण्टर कालेज' में संस्कृत के शिक्षक हो गए। जिन दिनों आप इस विद्यालय में पढ़ाते थे तब अँग्रेजी के प्रख्यात पत्रकार तथा कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी मासिक 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय वहाँ पर प्रिंसिपल थे। आपकी तथा भट्टजी की बहुत पटा करती थी। उन दिनों प्रख्यात पत्रकार पंडित सुन्दरलाल और पुरुषोत्तमदास टण्डन आपके शिष्यों में थे। शिक्षक का कार्य करते हुए ही आपने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की प्रेरणा पर सितम्बर सन् 1877 में 'हिन्दी प्रदीप' नामक मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया था। 'हिन्दी प्रदीप' पर उन दिनों यह पद्य छपा करता था :

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनंद भरै।
बचि दुसह दुर्जन वायु सों मणि-दीप सम थिर नहिं टरै।।
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब या मैं जरै।
'हिन्दी प्रदीप' प्रकाश मूरखतादि भारत तम हरै।।

किन्तु 'मूड़ मुड़ाते ही ओले पड़े'। 'प्रदीप' में छपने वाले कई लेखों से ब्रिटिश नौकरशाही के चाकर नाराज हो गए और स्थानीय मजिस्ट्रेट ने भट्टजी को अनेक बार बुलाकर चेतावनी भी दी। भट्टजी को उन दिनों कितने सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था इसका प्रमाण इसी बात से मिल जाता है कि एक बार आपके एक मित्र मुन्शी कामताप्रसाद ने आपसे यह कहा—"देखो पंडितजी, आप मेरे यहाँ न आया करिए। आपके आने से मैं सरकार में बदनाम हो जाऊँगा।" कैसा विपरीत वातावरण उन दिनों था, इसका अनुमान आप इसी घटना से लगा सकते हैं। एक बार रामलीला और मुहर्रम के एक साथ पड़ने पर जब प्रयाग में कुछ उपद्रव का वातावरण बन गया तो भट्टजी ने 'न नीचो यवनात्परः' शीर्षक एक लेख 'हिन्दी प्रदीप' में छाप दिया। मुसलमानों ने उन पर अभियोग कर दिया। फलतः कई महीने तक आप उसमें उलझे रहे और राजनीतिक लेख 'प्रदीप' में बराबर लिखते रहे। आपके उग्र लेखों के परिणामस्वरूप कोई-न-कोई झंझट उन दिनों खड़ा ही रहता था। अन्त में आपने विवश होकर 'हिन्दी प्रदीप' को राजनीति-प्रधान पत्र से बदलकर पूर्णतः 'साहित्यिक' ही बना दिया था।

'हिन्दी प्रदीप' के संचालन में भट्टजी को भयंकर अर्थ-संकट से गुजरना पड़ा था और उसमें आपने अपने परिवार को ही अर्थ-कष्ट में डाल दिया था। इतना होने पर भी आपने उसे निरन्तर 33 वर्ष तक बड़े ही धड़ल्ले से प्रकाशित किया था। इस बीच 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना हो गई और उसका प्रथम अधिवेशन महामना पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। सन् 1812 में 'हिन्दी प्रेस एक्ट' के अनुसार 'हिन्दी प्रदीप' से 3 हजार रुपए की जमानत माँगी गई तब विवश होकर भट्टजी ने उसे बन्द कर दिया। अर्थ-कष्ट के कारण 'कायस्थ पाठशाला' की अच्छी खासी-नौकरी भी छोड़कर आप कालाकाँकर राज्य से प्रकाशित होने वाले 'सम्राट्' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करने के लिए वहाँ चले गए। आप अभी कठिनाई से 3-4 मास ही वहाँ रहने पाए थे कि बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुरोध पर 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से तैयार होने वाले 'कोश' में कार्य करने के लिए कश्मीर चले गए। क्योंकि उन दिनों श्यामसुन्दरदासजी की नौकरी कश्मीर में लग गई थी, अतः उन्होंने आपसे यह कार्य सँभालने का अनुरोध किया था। 68 वर्ष की आयु में भी भयंकर अर्थ-संकट के कारण आपको वहाँ जाना पड़ा था। जम्मू से काठ की सीढ़ी पर चढ़ते हुए आँखों के धोखा दे जाने पर आप फिसल गए और कूल्हे की हड्डी टूट गई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आपकी उन दिनों बड़ी सेवा की। इसी अवस्था में आपको जम्मू से प्रयाग पहुँचाया गया और किसी प्रकार 6-7 मास बाद ठीक हो गए थे। फिर ठीक होकर लगभग डेढ़ वर्ष तक आपने काशी में रहकर कोश का कार्य किया था।

भट्टजी जहाँ उच्चकोटि के पत्रकार थे वहाँ साहित्य-

रचना में भी आपकी अभूतपूर्व गति थी। आपके 'कलिराज की सभा', 'रेल का विकट खेल', 'बाल विवाह नाटक', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'आचार विडम्बना', 'भाग्य की परख', 'षड्दर्शन संग्रह' आदि अनेक लेखों के अतिरिक्त 'पद्मावती', 'शर्मिष्ठा', 'चन्द्रसेन', 'किरातार्जुनीय', 'पृथु चरित या वेणी संहार', 'शिशुपाल वध', 'नल दमयन्ती या दमयन्ती स्वयंवर', 'शिक्षा-दान', 'आचार विडम्बन', 'नई रोशनी का विष', 'बृहन्नला', 'सीता वनवास', 'पतित पंचम', 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने 'गुप्त वैरी', 'रसातल', 'दक्षिणा' और 'हमारी घड़ी' नामक उपन्यास भी लिखने प्रारम्भ किए थे, किन्तु वे पूरे नहीं हो सके थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि भट्टजी जहाँ उच्चकोटि के पत्रकार थे वहाँ सफल नाटककार तथा उपन्यासकार भी थे। एक उत्कृष्ट निबन्ध-लेखक के रूप में भी आपकी गणना की जाती है। आपके निबन्धों का संकलन 'भट्ट निबन्धावली' नाम से हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की ओर से कई भागों में प्रकाशित हुआ है। इनमें भट्टजी के सभी साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक निबन्ध संकलित हैं। आपके निबन्धों में शैली की प्रांजलता और भावनाओं का अद्भुत उभार दृष्टिगत होता है। सरल और मुहावरेदार भाषा लिखने में भट्टजी को जो दक्षता प्राप्त थी, कदाचित् वैसी उस युग के किसी लेखक में नहीं थी। आपके निबन्धों में 'पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर हैं', 'ईश्वर की भी क्या ठठोल है', 'नाक निगोड़ी भी बुरी बला है', 'अकिल अजीरन रोग', 'भकुआ कौन-कौन है', 'हम डार-डार तुम पात-पात', 'पंचों की सोहबत', 'अन्त को सखी और सूम मौसेरी भाई', 'अब तो बासी भात में भी खुदा का साझा होने लगा', 'कौआ परी और आशिक तन', 'इंग्लिश पढ़े सो बाबू होए' तथा 'पंचों के सरपंच सितारे' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। हिन्दी-आलोचना के प्रारम्भिक पुरस्कर्ताओं में भी भट्टजी का नाम लिया जाता है। सर्वप्रथम "हिन्दी प्रदीप' में ही हिन्दी पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई थीं। यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि 33 वर्ष तक निरन्तर प्रकाशित होकर भी 'हिन्दी प्रदीप' अप्रैल सन् 1909 के अंक के प्रकाशन के उपरान्त बन्द हो गया।

आपका निधन 20 जुलाई सन् 1914 को हुआ था।

श्री बालकृष्ण वामन भोंसले

श्री भोंसलेजी का जन्म 30 जुलाई सन् 1927 को बम्बई में हुआ था। आपने जीवन के प्रारम्भ से ही हिन्दी-प्रचार को अपना ध्येय बनाया था और कालान्तर में आपने सन् 1947 से सन् 1966 तक जहाँ बम्बई हिन्दी विद्यापीठ के कार्यालय-सचिव के रूप में सफलतापूर्वक कार्य किया वहाँ आप उसके प्रचार मन्त्री भी रहे। सन् 1966 से सन् 1970 तक विद्यापीठ के प्रधानमन्त्री के रूप में आपने जो सेवाएँ कीं उससे संस्था की सर्वांगीण प्रगति हुई और आपका नाम एक निस्वार्थ हिन्दी-सेवी के रूप में उभरकर हिन्दी-जगत् के सामने आया।
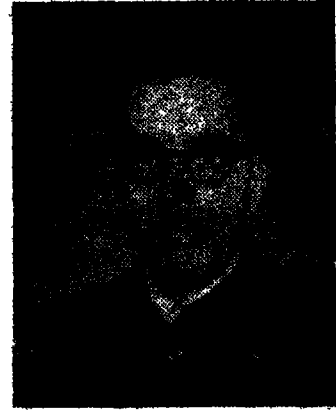
विद्यापीठ की ओर से होने वाली परीक्षाओं के लिए भी आपने 'मराठी हिन्दी दीपिका' (दो भाग), 'पुष्पांजलि' और 'भारती बोध' नामक जो पाठ्य-पुस्तकें तैयार की थीं उनसे आपकी लेखन-प्रतिभा का सम्यक् परिचय मिलता है।

ऐसे कर्मठ हिन्दी-सेवी का निधन 14 अगस्त सन् 1970 को हुआ था।

श्री बालदत्त पाण्डेय

श्री पाण्डेय का जन्म सन् 1892 में उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद के कठेरुआ नामक स्थान में हुआ था। सन् 1913 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने इलाहाबाद बैंक में नौकरी कर ली थी। साहित्य के प्रति आपको छात्रावस्था से ही अनुराग था। फलस्वरूप जब महामना पं० मदनमोहन मालवीय हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए चन्दा करने के प्रसंग में कलकत्ता

पधारे तब पाण्डेयजी ने एक लेख साप्ताहिक 'हितवार्ता' के तत्कालीन सम्पादक बाबूराव विष्णु पराड़कर की सेवा में भेजा था। वह लेख पराड़करजी ने अपने पत्र में छाप दिया। इसी प्रकार बाबू गंगाप्रसाद वर्मा के सम्बन्ध में आपका एक लेख आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित कर दिया। उस समय 'सरस्वती' में किसी नौसिखुए का लेख छप जाना साधारण बात न थी।

उक्त घटना से श्री पाण्डेयजी का उत्साह इतना बढ़ा कि आपने अपनी साहित्य-साधना बिलकुल भी न छोड़ी और आप समय-समय पर लेखादि लिखते ही रहे। द्विवेदीजी ने जहाँ आपकी लेखन-शैली की प्रशंसा की थी वहाँ आपके सामने 'सरस्वती' का सहायक सम्पादक बनने का प्रस्ताव भी रखा था, परन्तु बैंक में अच्छी नौकरी लग जाने के कारण आप वहाँ नहीं गए। फिर आपका स्थानान्तरण कलकत्ता से कानपुर हो गया और आप वहाँ रहते हुए भी अपनी साहित्य-साधना में तत्परतापूर्वक संलग्न रहे। आपने 'वनदेवी' नामक एक उपन्यास भी लिखा था, जिसकी भूमिका प्रख्यात हिन्दी-लेखक और 'ज्ञान मण्डल प्रकाशन काशी' के भूतपूर्व व्यवस्थापक पं० देवनारायण द्विवेदी ने लिखी थी। आपकी गद्य-शैली से प्रभावित होकर ही उन्होंने यह लिखा था—"वनदेवी एक खण्डकाव्य है।" आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी 'सरस्वती' में इसकी समीक्षा करते हुए भूमिका-लेखक से अपनी सहमति प्रकट की थी। आपकी रचनाएँ 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'मर्यादा', 'चाँद', 'सरोज', 'मस्त मतवाला' और 'औघड़' आदि पत्रों में छपा करती थीं।

श्री पाण्डेय का व्यक्तित्व अत्यन्त सरल, निश्छल और मनोहारी था। आपका तथा आचार्य द्विवेदी का प्रायः पत्राचार होता रहता था, किन्तु वह बहुत अधिक पारिवारिक ही था। अपने व्यवहार के कारण आप द्विवेदीजी के इतने स्नेह-भाजन बन गए थे कि प्रायः घर के लिए आभूषण आदि द्विवेदीजी आपके द्वारा कलकत्ता में ही बनवाया करते थे। पाण्डेयजी द्वारा लिखित भूमिका सहित उक्त सभी पत्र 'विशाल भारत' में प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि पाण्डेयजी उन्हें अपने जीवन-काल में प्रकाशित न देख सके।

आपका निधन 11 दिसम्बर सन् 1951 को हुआ था।

श्री बालमुकुन्द 'अनुरागी'

श्री अनुरागीजी का जन्म 1 जनवरी सन् 1901 को उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के 'कनौनी' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता पं० भगवानसहाय भारद्वाज गोत्रीय एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। सन् 1856 के अकाल के समय में आपने अपने घर में जमा सारा अनाज जनता में बाँटकर अपनी परोपकार-वृत्ति का परिचय दिया था। अनुरागीजी की शिक्षा-दीक्षा मेरठ के नानकचन्द हाईस्कूल में हुई थी और बाद में आप उसी स्कूल में शिक्षक हो गए थे।

सन् 1920 का असहयोग आन्दोलन शुरू होने पर आपने 'नानकचन्द स्कूल' से त्याग-पत्र देकर कांग्रेस द्वारा संचालित 'नेशनल स्कूल' में अध्यापन-कार्य प्रारम्भ कर दिया था और फिर सत्याग्रह में भाग लेकर जेल में चले गए थे। जेल से वापिस लौटने पर आपने 'रासना' नामक ग्राम में 'तिलक विद्यापीठ' की संस्थापना करके उसके माध्यम से नई पीढ़ी में राष्ट्रीयता की पुनीत भावनाएँ भरने का प्रशंसनीय कार्य किया था।

आपने स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करने की दृष्टि से मेरठ में 'अनुराग स्वदेशी भण्डार लिमिटेड' नामक संस्था की स्थापना की थी और 'अनुराग' नामक एक मासिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इस पत्र के सम्पादन में बाद में श्री भगवत्प्रसाद शुक्ल 'सनातन' और श्री विश्व-प्रकाश दीक्षित 'बटुक' ने भी सहयोग दिया था।

अनुरागीजी एक कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के कवि भी थे। आपके द्वारा लिखित 'आजादी की लड़ाई' तथा 'आजाद हिन्द फौज' नामक पुस्तकें 'आल्हा छन्द' में प्रकाशित हुई थीं। आपने 'साहित्य भण्डार' नाम से एक हिन्दी प्रकाशनों की दुकान भी मेरठ में सर्वप्रथम संचालित की थी। बाद में इसी संस्था से श्रीमती कमला चौधरी के कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए थे।

आपका निधन 4 अक्तूबर सन् 1962 को दिलशाद कालोनी, शाहदरा (दिल्ली) में हुआ था।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

श्री गुप्तजी का जन्म हरियाणा प्रदेश के रोहतक जनपद के 'गुड़ियानी' नामक ग्राम में 14 नवम्बर सन् 1865 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम की ही पाठ-शाला में उर्दू में हुई थी। सन् 1886 में आपने मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी और इस बीच अपने उस्ताद मुन्शी वजीरमुहम्मद की कृपा से आपने उर्दू लिखने का अच्छा अभ्यास कर लिया था और आपकी उर्दू रचनाएँ लखनऊ के 'अवध पंच', लाहौर के 'कोहेनूर' तथा मुरादाबाद के 'रहबर' आदि पत्रों में प्रकाशित होने लगी थीं। जब चुनार के सुप्रसिद्ध रईस बाबू हनुमानप्रसाद ने अपने यहाँ से 'अख-बारे चुनार' निकाला तब आपने बाबू बालमुकुन्द गुप्त को ही उसका सम्पादक बनाया था। आपके पत्रकार-जीवन का प्रारम्भ यहाँ से ही होता है। आप मूलतः उर्दू के पत्रकार थे, किन्तु बाद में आप हिन्दी में आ गए थे। उर्दू के जिन पत्रों का आपने सम्पादन किया था उनमें 'अखबारे चुनार' (1886-1888) के अतिरिक्त 'कोहेनूर' (1888-1889) का नाम प्रमुख है। 'कोहेनूर' के बाद आप हिन्दी के क्षेत्र में आ गए थे और सन् 1907 तक आपने अपनी जागरूक प्रतिभा से हिन्दी के परिष्कार और प्रचार में जो योगदान दिया वह सर्वथा अप्रतिम है। हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में गुप्तजी सनातन धर्म के सुप्रसिद्ध नेता पंडित दीन-दयालु शर्मा, व्याख्यान वाचस्पति की प्रेरणा पर आए थे।

कालाकाँकर (उत्तर प्रदेश) के राजा रामपालसिंह ने इंग्लैंड से आकर जब अपने राज्य से 'दैनिक हिन्दोस्थान' का प्रकाशन प्रारम्भ किया तब उसके आदि सम्पादक महामना मदनमोहन मालवीय थे। जिन दिनों सनातन धर्म महामण्डल का अधिवेशन वृन्दावन में हुआ था तब वहाँ पर श्री माल-वीयजी की भेंट श्री बालमुकुन्द गुप्त से हुई थी। आप पं० दीनदयालु शर्मा के साथ वहाँ पधारे थे। मालवीयजी ने जब शर्माजी से गुप्तजी को कालाकाँकर भेजने का अनुरोध किया तब शर्माजी की प्रेरणा पर गुप्तजी कालाकाँकर चले गए और आपने सन् 1889 से सन् 1891 तक 'दैनिक हिन्दो-स्थान' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया। इसके उपरान्त आप सन् 1893 में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी बंग-वासी' के सहकारी सम्पादक होकर वहाँ चले गए। उन दिनों 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादक श्री अमृत-लाल चक्रवर्ती थे। 'हिन्दी बंगवासी' के कार्य-काल में आपकी लेखनी में जो प्रखरता आई थी उसका उदात्त

रूप आगे चलकर हिन्दी-पाठकों को उस समय देखने को मिला जब आपने सन् 1899 में 'हिन्दी बंगवासी' से पृथक् होकर 'भारत मित्र' का सम्पादकत्व सँभाला था। 'भारत मित्र' में जाकर आपने पूर्ण तन्मयता से 'हिन्दी-पत्रकारिता' के उन्नयन तथा विकास के लिए जो कार्य किया वह आपकी सतर्क तथा सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। आपने जहाँ 'भारत मित्र' को सभी प्रकार की उपयोगी सामग्री से सम-न्वित किया वहाँ आपके द्वारा लिखे गए 'शिवशम्भु के चिट्ठे'

तथा 'चिट्ठे और खत' नामक कालमों में प्रकाशित होने वाले व्यंग्य-लेखों के कारण उसकी विशेष ख्याति हुई थी।

आपने 'भारत मित्र' के माध्यम से आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' में प्रयुक्त 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर जो आन्दोलन चलाया था उसके कारण अखिल हिन्दी-जगत् का ध्यान आपकी ओर अत्यधिक आकर्षित हुआ था। इसी प्रकार 'वेंकटेश्वर समाचार' के सम्पादक मेहता लज्जाराम शर्मा द्वारा प्रयुक्त 'शेष' शब्द की सार्थकता तथा निरर्थकता के सम्बन्ध में भी आपने जो विवाद 'भारत मित्र' के द्वारा किया था उससे भी भाषा-परिष्कार के क्षेत्र में बड़ी चहल-पहल मची थी। आप क्योंकि मूलतः उर्दू के पत्रकार रहे थे, इसलिए आपकी भाषा में उर्दू की सहज चपलता रहती थी। अपनी इन तीखी समालोचनाओं के कारण गुप्तजी उन दिनों हिन्दी-पत्रकारों में शीर्ष-स्थान पर प्रतिष्ठित हो गए थे। अँग्रेजी शासन की निरंकुशता तथा उसके द्वारा दिन-प्रतिदिन जनता पर किये जाने वाले अनेक निर्मम अत्याचारों की गुप्तजी ने जिस निर्भीकता से आलोचना की थी, उससे आपको 'गूँगी जनता का मुखर वकील' के रूप में अभिहित किया जाने लगा था। आपकी निर्भीकता, दृढ़ता, ओजस्विता और विनोदप्रियता आदि सभी ने मिलकर हिन्दी-पत्रकारिता में जो नई चेतना उद्भूत की थी वह बाद के पत्रकारों के लिए 'ज्वलन्त' प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हुई। आपकी व्यंग्योक्तियाँ कितनी प्रखर होती थीं इसका परिचय गुप्तजी द्वारा लार्ड कर्जन के सम्बन्ध में लिखित इस अंश से भली प्रकार मिल जाता है—"अहंकार, आत्मश्लाघा, जिद और गालबजाई में लार्ड कर्जन अपना सानी आप निकले। जब से अँग्रेजी राज्य प्रारम्भ हुआ है तब से इन गुणों में आपकी बराबरी करने वाला एक भी बड़ा लाट इस देश में नहीं आया। भारतवर्ष की बहुत-सी प्रजा के मन में धारणा है कि जिस देश में जल न बरसता हो, लार्ड कर्जन पदार्पण करें तो वर्षा होने लगती है और जहाँ के लोग अति वर्षा और तूफान से तंग हों, वहाँ कर्जन के जाने से स्वच्छ सूर्य निकल आता है।"

यह भी एक सौभाग्य की ही बात समझी जायगी कि मूलतः उर्दू के पत्रकार और लेखक होने पर भी आपने 'भारत मित्र', 'बंगवासी' तथा 'दैनिक हिन्दोस्थान' के अपने हिन्दी-पत्रकारिता के कार्य-काल में हिन्दी की हिमायत जिस दृढ़ता से की थी, वह आपकी ध्येयनिष्ठा की परिचायक है। उर्दू और हिन्दी के विवाद में आपने सदैव हिन्दी का ही पक्ष लिया था। तुलनात्मक समीक्षा की पद्धति प्रचलित करने की दिशा में भी आपका बहुत बड़ा योगदान था। अनुवादक के रूप में भी आपकी शैली की प्रखरता सर्वथा असन्दिग्ध है। आपके द्वारा किये गए 'रत्नावली' तथा 'मडेल भगिनी' नामक कृतियों के अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आपके चुने हुए लेखों का संकलन 'गुप्त निबन्धावली' नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपके द्वारा लिखित 'हरिदास', 'खिलौना', 'खेल-तमाशा' और 'सर्पाघात चिकित्सा' नामक पुस्तकें विशेष चर्चित रही हैं। जहाँ आपकी कविताओं का एक संकलन 'स्फुट कविता' नाम से प्रकाशित हुआ था वहाँ 'हिन्दी भाषा' नामक पुस्तक में हिन्दी के व्यापक रूप पर प्रकाश डाला गया है। आपके निधन के उपरान्त प्रख्यात पत्रकार पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी और झाबरमल्ल शर्मा के प्रयत्न से सन् 1950 में आपकी स्मृति में 'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रन्थ' नामक जो ग्रन्थ प्रकाशित किया गया था, उससे आपके व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

आपका निधन 18 सितम्बर सन् 1907 को दिल्ली में हुआ था।

श्री बालमुकुन्द त्रिपाठी

श्री त्रिपाठीजी का जन्म 4 अप्रैल सन् 1895 को मध्यप्रदेश के नागपुर (अब महाराष्ट्र) जनपद के परसोडी नामक ग्राम में हुआ था। आपके पूर्वज उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के रहने वाले थे। मैट्रिक तक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप अध्यापन तथा लेखन में ही संलग्न हो गए थे। एक निष्ठावान् राष्ट्र-सेवक के रूप में आपका मध्यप्रदेश में बहुत सम्मान था। जब बचपन में ही आपके माता-पिता आपको असहाय अवस्था में छोड़कर चल बसे तब आप अपने बहनोई और हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री के पास चले गए। अग्निहोत्रीजी उन दिनों मध्यप्रदेश की छुईखदान स्टेट में 'सैटलमेण्ट सुपरिंटेंडेंट' थे।

फिर सन् 1912 में टीचर्स ट्रेनिंग की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप उनके साथ जबलपुर चले आए थे।

सन् 1916 में आप जबलपुर के क्रिश्चियन बाइबिल मिशन कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए, किन्तु यह अध्यापकी अधिक दिन नहीं चल सकी। 5 वर्ष तक वहाँ कार्य करने के उपरान्त आपने असहयोग आन्दोलन के कारण त्यागपत्र दे दिया और सन् 1925 में विधिवत् 'खादी भण्डार' की स्थापना कर ली। 15 वर्ष तक निरन्तर एकनिष्ठ भाव से कार्य करने के उपरान्त भी जब आपको इस कार्य में सफलता नहीं मिली तब आपने उससे विश्राम ग्रहण कर लिया। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के प्रसंग में आपको कई बार जेल भी जाना पड़ा था।

जब सन् 1917 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन जबलपुर में हुआ तब आप उसकी स्वागतकारिणी समिति के उपमन्त्री बनाए गए थे। इस अधिवेशन के उपरान्त जब उसकी स्मृति में जबलपुर के बलदेव बाग में एक पुस्तकालय की स्थापना की गई तब आप उसके मन्त्री बनाए गए। आपने जहाँ आजीवन इस पुस्तकालय के विकास एवं समृद्धि के लिए प्रयास किया वहाँ आप मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी अनेक वर्ष तक मन्त्री रहे। जब सन् 1920 में नागपुर में अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था तब भी आपका उसमें बहुत उल्लेखनीय सहयोग रहा था। उन्हीं दिनों सन् 1922 में आप 'जबलपुर जिला कांग्रेस कमेटी' के मन्त्री भी चुने गए थे। फिर सन् 1930 में आप प्रदेश कांग्रेस के भी मन्त्री रहे थे और उसी प्रसंग में आपको 2 फरवरी सन् 1931 से 4 जून सन् 1931 तक सिवनी जेल में रहना पड़ा था।

आप कर्मठ समाज-सेवी और उत्कृष्ट राष्ट्र-कर्मी होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक भी थे। आपने जहाँ पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी को 'हितकारिणी' नामक पत्रिका के सम्पादन में उल्लेखनीय सहयोग दिया था वहाँ 'काव्यकुंज' नामक मासिक पत्र का सम्पादन भी अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक किया था। भले ही त्रिपाठीजी का स्थान मध्यप्रदेश के हिन्दी-साहित्य-सेवियों में अंगुलिगण्य न रहा हो, परन्तु फिर भी आपकी महत्ता उस 'नींव की ईंट' के समान है जिस पर प्रदेश की साहित्यिक चेतना का सारा प्रातिभ-भवन खड़ा है। आपकी प्रकाशित कृतियों में केवल 'स्वास्थ्य रक्षा' का उल्लेख ही मिलता है। आपके द्वारा लिखित 'रायबहादुर पंडित गोविन्दलाल पुरोहित की जीवनी' अभी अप्रकाशित ही है। शारदा पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य ने आपको 'सुनीति भास्कर' की सम्मानोपाधि से अभिषिक्त किया था।

आपका निधन 2 सितम्बर सन् 1932 को हुआ था।

श्री बिहारीलाल ब्रह्मभट्ट

श्री बिहारीलालजी का जन्म वीर-भूमि बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत बिजावर राज्य (मध्यप्रदेश) की राजधानी में सन् 1889 में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा आपके पितामह श्री दिलीप कवि की देख-रेख में हुई थी और आप 10 वर्ष की आयु में ही कविता करने लगे थे। बिजावर राज्य के तत्कालीन नरेश सवाई सावन्तसिंह जू देव ब्रजभाषा-साहित्य के अनन्य प्रेमी थे और वे बिहारीलालजी की काव्य-प्रतिभा के प्रति बहुत आशान्वित थे, अतः उन्होंने अपने दरबार के काव्यशास्त्र-निष्णात विद्वान् श्री हनुमत्प्रसादजी को उनका काव्य-गुरु नियत करके इस कार्य के लिए आपको मासिक वृत्ति
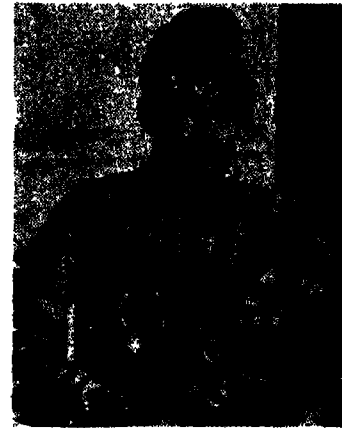
देनी भी प्रारम्भ कर दी थी। परिणामस्वरूप बिहारीलालजी ने उनसे साहित्य-शास्त्र का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया और समय-समय पर आप अपनी रुचिर रचनाओं के द्वारा महाराज को प्रसन्न करते रहे।

जब श्री बिहारीलालजी की काव्य-प्रतिभा चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई तो बिजावर नरेश ने आपको अपना दरबारी कवि बनाकर आपकी आजीविका का समुचित प्रबन्ध कर दिया। आपने वहाँ पर रहते हुए बिजावर-नरेश की इच्छानुसार 'साहित्य सागर' नामक एक ऐसा रीति-ग्रन्थ लिखा, जिसमें आधुनिक छन्द-शास्त्र से सम्बन्धित लगभग दो हजार से अधिक छन्द हैं। यह ग्रन्थ श्री बिहारीलाल ने तीन वर्ष में अनवरत अध्यवसाय करके पूर्ण किया था। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1937 में श्री लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी के सम्पादन में गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ की ओर से दो भागों में प्रकाशित हुआ है। आपकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर बिजावर नरेश ने आपको 'कवि भूषण', 'कविराज' और 'कविरत्न' की सम्मानोपाधियाँ प्रदान की थीं।

आपका निधन सन् 1961 में हुआ था।

श्रीमती बी० सरस्वती तंकच्ची

श्रीमती तंकच्ची का जन्म 24 अप्रैल सन् 1937 को केरल प्रदेश के त्रिवेन्द्रम नामक नगर में हुआ था। आप केरल हिन्दी प्रचार सभा के मन्त्री श्री वेलायुधन नायर की सहधर्मिणी और सभा की पत्रिका 'केरल ज्योति' की सम्पादन-समिति की सम्मानित सदस्या थीं। सभा की कार्यकारिणी की सक्रिय सदस्या होने के साथ-साथ आप सभा के 'स्नातकोत्तर शिक्षा-केन्द्र' की वरिष्ठ अध्यापिका भी थीं।

आप हिन्दी की उत्साही प्रचारिका होने के अतिरिक्त जहाँ आदर्श नारी, आदर्श माता और आदर्श पत्नी थीं वहाँ हिन्दी और मलयालम की उत्कृष्ट लेखिका भी थीं। आपने एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करने के उपरान्त अध्यापन-कार्य करते हुए 'हिन्दी और मलयालम की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध-प्रबन्ध लिखा था। अन्तिम दिनों में आपने अध्यापन-क्षेत्र से विश्राम ले लिया था।

आपकी रचनाएँ हिन्दी तथा मलयालम की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'कथा मंजरी' का नाम उल्लेखनीय है।

आपका निधन 28 जुलाई सन् 1978 को हुआ था।

श्री बुद्धिसागर वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म शाहजहाँपुर (उत्तर प्रदेश) में 1 जुलाई सन् 1896 को हुआ था। आपकी शिक्षा हरदोई, सीतापुर और इलाहाबाद नगरों में हुई थी और बी० ए० एल० टी० करके आप शिक्षक हो गए थे। आपका लेखन-कार्य सन् 1916 से प्रारम्भ हुआ था, जब आपकी रचना पहले-पहल किसी पत्र में छपी थी।

आपकी प्रमुख रचनाओं में 'नवीन व प्राचीन वेदान्त' (1925), 'इच्छा शक्ति के चमत्कार' (1932), 'स्त्री-सौन्दर्य और स्वास्थ्य' (1938) तथा 'उपदेशामृत सुमन-संचय' (1958) उल्लेख्य योग्य हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त आपकी कई पुस्तकें अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आपका निधन 28 अगस्त सन् 1974 को हुआ था।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

श्री 'उग्र' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जनपद के 'चुनार' नामक स्थान के एक निर्धन ब्राह्मण-परिवार में सन्

1900 में हुआ था। शैशव में ही पिता का देहावसान हो जाने के कारण आपको भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा आपके चाचा की कृपा से चुनार में ही थोड़ी-बहुत हुई थी; किन्तु उद्दण्ड स्वभाव का होने के कारण आपको विद्यालय से निकाल दिया गया था। इसके बाद आप अपने बड़े भाई के साथ बहुत दिनों तक अयोध्या में रहकर वहाँ के महन्तों द्वारा की जाने वाली राम-लीलाओं में सीता और भरत का अभिनय करते रहे थे।

कुछ दिन तक आपने काशी में रहकर फिर अपनी पढ़ाई प्रारम्भ की ही थी कि सहसा आप कलकत्ता चले गए और वहाँ पर एक दुकान में 'मुनीमी' का कार्य करते रहे। इस बीच राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ गया और आप काशी आकर उसमें सम्मिलित हो गए। इस प्रसंग में आपको जेल-जीवन की यातनाएँ भी भुगतनी पड़ी थीं। जेल से छूटने के बाद आप काशी से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'आज' में 'अष्टावक्र' नाम से राष्ट्रीय कहानियाँ लिखने लगे थे। हिन्दी में 'क्रान्तिकारी कहानी' के जन्मदाता 'उग्र' ही थे।

उग्रजी का शैशव क्योंकि अभावों और संघर्षों में व्यतीत हुआ था और आपका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जिसकी आजीविका जजमानी (आकाशी वृत्ति) पर चला करती थी, इसलिए उग्रजी के स्वभाव में उग्रता आ गई थी। क्योंकि आपके कोई एक दर्जन भाई-बहन असमय में ही काल के गाल में चले गए थे और तत्कालीन अन्धविश्वासों के अनुसार आपको पैदा होते ही एक टके में बेच दिया गया था इसलिए आपका नाम 'बेचन' पड़ा था। यह 'उग्रता' और 'बेचन' का सम्मिश्रण ही कालान्तर में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के नाम से जाना गया था। संगीत और अभिनय के साथ काव्य के प्रति अनुराग होने के कारण आप धीरे-धीरे लाला भगवानदीनजी के सम्पर्क में आए और उनसे अलंकार तथा काव्य-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन शुरू किया। कुछ समय में ही आप अच्छी कविता लिखने लगे थे। 20 वर्ष की छोटी-सी आयु में ही आपने 'ध्रुव धारणा' नामक एक राष्ट्रीय खण्ड-काव्य लिखा था। जिन दिनों आप 'आज' में 'अष्टावक्र' नाम से लिखा करते थे उन्हीं दिनों काशी से 'भूत' नामक एक मासिक पत्र भी निकला था। 'उग्र' जी ने उसके सम्पादन में भी अपना सक्रिय सहयोग दिया था। सन् 1924 में आपने गोरखपुर से श्री दशरथप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'स्वदेश' में भी कार्य किया था। इस पत्र के 'विजयांक' की उन दिनों इतनी धूम मची थी कि उसे सरकार ने जब्त कर लिया था। इस विशेषांक के सम्पादन के कारण उग्रजी पर राजद्रोह का मुकदमा चलाकर आपको जेल भी भेजा गया था। इसके बाद जब आप कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में सम्मिलित होने की दृष्टि से वहाँ गए तो वहाँ ही रम गए। मिर्जापुर के महादेवप्रसाद सेठ ने वहाँ से 'मतवाला' नामक जो पत्र निकाला था उसके सम्पादन में सर्वश्री ईश्वरीप्रसाद शर्मा, शिवपूजनसहाय, नवजादिकलाल श्रीवास्तव और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि जुटे हुए थे। 'उग्र' जी भी उसमें सम्मिलित हो गए और इस प्रकार यह मंडली 'मतवाला मंडल' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। क्योंकि उग्रजी के पारिवारिकजनों से महादेवप्रसाद सेठ का निकट का सम्पर्क था इसलिए उग्रजी उनके साथ मालिक-जैसा नहीं, बल्कि अपने सेवक का-सा व्यवहार करते थे और कभी-कभी गालियाँ भी दे देते थे। सेठजी उग्रजी की इन सब हरकतों को चुपचाप सहज भाव से सहन कर लिया करते थे। 'मतवाला' में कार्य करते हुए आपकी व्यंग्य-लेखन-प्रतिभा अत्यन्त प्रखर हो गई थी और इस काल में आपने अनेक व्यंग्य-रचनाएँ भी लिखी थीं। जब 'मतवाला' की आर्थिक स्थिति डावाँडोल हो गई तो आप वहाँ से बम्बई चले गए।

बम्बई में रहते हुए आपने कई फिल्मों में लेखक का काम करने के साथ-साथ अपना नियमित लेखन भी जारी रखा था। अपने कलकत्ता-प्रवास में आपने 'चाकलेट' नामक जो पुस्तक लिखी थी उसके विरुद्ध श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक आन्दोलन ही चला दिया था और आपने उनकी इस प्रकार की कृति को 'घासलेटी साहित्य' की संज्ञा दे दी थी।

यहाँ तक कि चतुर्वेदीजी ने अपने आन्दोलन के समर्थन में महात्मा गान्धी तक से भी सहमति-सूचक सम्मति प्राप्त कर ली थी। किन्तु जब बाद में महात्माजी ने उग्रजी की इस पुस्तक को पढ़ा तो वे लेखक द्वारा की गई यथार्थ अभिव्यक्ति को देखकर मौन हो गए। इस पर गान्धीजी ने श्री चतुर्वेदीजी के नाम जो पत्र लिखा था, उसकी कुछ पंक्तियाँ ही 'उग्र' जी की लेखन-क्षमता की उत्कृष्टता का प्रमाणमात्र हैं। उन्होंने लिखा था—"चाकलेट नामक पुस्तक पर जो पत्र था उसको 'यंग इंडिया' के लिए नोट लिखकर भेज दिया। पुस्तक तो नहीं पढ़ी थी। टीका केवल आपके पत्र पर निर्भर थी। मैंने सोचा इस तरह टीका करना उचित नहीं होगा, पुस्तक पढ़नी चाहिए। मैंने पुस्तक आज खत्म की। मेरे मन पर जो असर आप पर हुआ है, नहीं हुआ है। मैं पुस्तक का हेतु शुद्ध मानता हूँ। इसका असर अच्छा पड़ता है या बुरा; मुझे मालूम नहीं है। लेखक ने अमानुषी व्यवहार पर घृणा ही पैदा की है। आपके पत्र का पेज अब खुलवा दूंगा।"

यह खेद की बात है कि जिन दिनों यह आन्दोलन जोरों पर चल रहा था तब श्री चतुर्वेदीजी ने गान्धीजी के इस पत्र को प्रकट नहीं किया और अनेक वर्ष उपरान्त यह रहस्य प्रकट किया। 'चाकलेट' पुस्तक के नए संस्करण में गान्धीजी का यह पत्र पूरा प्रकाशित हुआ है। 'उग्र' जी ने 'चाकलेट' नामक अपनी उक्त पुस्तक सदुद्देश्य से प्रेरित होकर ही लिखी थी। यदि ऐसा न होता तो आप पुस्तक की भूमिका में यह क्यों लिखते—"यदि परस्त्री गमन, वेश्यागमन, शराबखोरी, जुआ खेलना आदि सामाजिक पाप हैं, तो यह अप्राकृतिक-कर्म या चाकलेटपन्थी महापाप है। यदि उन पापों के विरुद्ध समाज प्रचार भी करता है और खुलेआम आलोचना-प्रत्यालोचना भी, तो इस पाप के विरुद्ध भी प्रचार और आलोचनाएँ होनी चाहिएँ। ऐसा न होने से, एक दिन हमारा समाज भी उस देश के समाज का रूप धारण कर लेगा, जहाँ रखेलियों की तरह खूबसूरत लड़के भी पाले जाते हैं और पुरुषों की वासना के शिकार बनाए जाते हैं। भारतवर्ष में ऐसा होना, हमारी सभ्यता और संस्कृति का सर्वनाश होना है, जो किसी हालत में भी उचित नहीं।"

उग्रजी ने जहाँ समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियों पर करारी चोट करने वाली अनेक रचनाएँ की थीं वहाँ शैलीगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी आपका गद्य सभीके लिए अनुकरणीय था। आपकी 'बुढ़ापा' तथा 'रुपया' शीर्षक रचनाएँ इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आपके द्वारा लिखित 'महात्मा ईसा' जहाँ उत्कृष्ट नाटक है वहाँ आपके 'घण्टा', 'चुम्बन', 'बुधुआ की बेटी', 'दिल्ली का दलाल' तथा 'सरकार तुम्हारी आँखों में' नामक उपन्यासों ने किसी समय हिन्दी-जगत् में एक क्रान्ति मचा दी थी। आपके 'जी-जी-जी' तथा 'फागुन के दिन चार' नामक उपन्यास भी उत्कृष्ट शैली के द्योतक हैं। आपकी कविताएँ जहाँ आपकी 'कंचन घट' नामक पुस्तक में संकलित हैं वहाँ आपकी शताधिक कहानियों का प्रकाशन आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली से कई भागों में हुआ है। आपने 'अपनी खबर' नामक जो अपनी आत्मकथा लिखी है उसमें आपके जीवन के संघर्षों का यथातथ्य चित्रण मिलता है। आपकी 'गालिब उग्र' नामक रचना में उर्दू के महाकवि गालिब के काव्य पर बहुमुखी प्रकाश डालकर उनके उत्कृष्ट काव्य का संकलन प्रस्तुत किया गया है। उग्रजी के अपने कर्ममय साहित्यिक जीवन में जिन साहित्यकारों का आपसे पत्र-व्यवहार हुआ था उनमें से कुछ महानुभावों के पत्रों का संकलन आपकी 'फाइल-प्रो-फाइल' नामक रचना में प्रस्तुत किया गया है।

एक जागरूक तथा तेजस्वी पत्रकार के रूप में आपने अपनी जिस विशेषता का परिचय दिया था वह साहित्य के अध्येताओं के लिए अत्यन्त ध्यातव्य है। 'मतवाला', 'आज' तथा 'स्वदेश' के अतिरिक्त 'भूत', 'विक्रम', 'संग्राम', 'वीणा', 'स्वराज्य', 'हिन्दी पंच' और 'उग्र' नामक कई मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों के सम्पादन में भी आपने अद्वितीय सम्पादन-पटुता का परिचय दिया था। उग्रजी सच्चा पत्रकार किसे मानते थे इसका आभास आपके उस भाषण से भली-भाँति हो जाता है जो आपने एक बार सन् 1948 में लखनऊ के दैनिक 'स्वतन्त्र भारत' के कार्यालय में अपने सम्मान में हुई एक गोष्ठी में दिया था। आपने कहा था—"मैं तो ऐसे सम्पादक को सम्पादक नहीं मानता जो साल-भर में 15 बार जूतों से न पिटा हो, 4-5 बार जिसकी खोपड़ी न फूटी हो और 8-10 मुकदमे फौजदारी और दीवानी के उस पर न चले हों" वास्तव में उग्रजी ऐसे ही प्रखर पत्रकार थे और सदा-सर्वदा 'जुझारू मूड' में ही रहा करते थे। आपकी रचनाओं में जीवन की सभी तिक्त तथा कटु अनुभूतियों का चित्रण इतनी सहजता से किया गया है

कि पाठक उससे ऊबता नहीं, प्रत्युत वह उससे नई प्रेरणा ही प्राप्त करता है। अपने जीवन के अन्तिम 8-10 वर्ष आपने भारत की राजधानी दिल्ली में रहकर बिताए थे और आप पूर्ण तत्परता तथा जागरूकता से साहित्य-रचना में संलग्न रहते थे।

आपका निधन 23 मार्च सन् 1967 को हुआ था।

बैरिस्टर ब्रजकिशोर चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म 21 अक्तूबर सन् 1904 को कलकत्ता में हुआ था। पिछली 3-4 पीढ़ियों से आपके परिवार का कार्य-स्थल वहाँ पर ही था, किन्तु इससे पूर्व आपके पूर्वजों का सम्बन्ध मथुरा से रहा था। आपके जन्म के समय आपके पितामह श्री केदारनाथजी का वैभव उत्कर्ष पर था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा कलकत्ता में ही वहाँ के सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्थान 'विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' में हुई थी। आपके पिता श्री बनवारीलालजी यद्यपि अपने परिवार के साथ पहले कलकत्ता में ही रहते थे, किन्तु बाद में आप होलीपुरा (आगरा) में आकर रहने लगे थे। प्राइमरी की शिक्षा के उपरान्त ब्रजकिशोरजी को आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए श्री राधेलालजी के पास अलीगढ़ भेज दिया गया। परिणामस्वरूप आपने वहाँ से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके आगरा के सैण्ट जान्स स्कूल में प्रवेश ले लिया। उन दिनों उसी स्कूल में पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल भी पढ़ाते थे। वहाँ से ही आपने सन् 1920 में मैट्रिक की परीक्षा दी और फिर आगरा कालेज से इण्टर की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्हीं दिनों सन् 1922 में आपका विवाह हो गया। सन् 1925 में आगरा कालेज से ही बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने वहीं से सन् 1927 में एल-एल० बी० भी की।

आपने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आगरा में ही वहाँ के प्रतिष्ठित वकील मुन्शी कालिकाप्रसाद के साथ वकालत प्रारम्भ कर दी। उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क सर्वश्री अयोध्याप्रसाद पाठक, विश्वेश्वरदयालु चतुर्वेदी और श्रीकृष्णदत्त पालीवाल से हो गया और आप कई वर्ष तक वहाँ की 'नागरी प्रचारिणी सभा' के मन्त्री भी रहे। अध्यापक रामरत्न तथा कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी के सम्पर्क ने भी आपके मानस में हिन्दी-सेवा की पुनीत भावनाएँ जाग्रत की थीं। किन्तु विधि को कुछ और ही मंजूर था। अपने पारिवारिकजनों के अनुरोध तथा आग्रह के फलस्वरूप आप सन् 1928 में बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए लन्दन चले गए। वहाँ जाकर भी आपके 'हिन्दी-प्रेम' में कोई कमी नहीं आई और आप यदा-कदा अपने लेख 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ भेजते रहे थे।

इंगलैण्ड से वापिस लौटने पर आपकी नियुक्ति 21 मार्च सन् 1930 को बीकानेर राज्य में 'परीक्षाधीन अधिकारी' के रूप में हो गई और फिर 10 मई को आपने हनुमानगढ़ में स्वतन्त्र रूप से 'मुन्सिफ' का कार्य-भार सँभाल लिया। सन् 1933 में आप लेजिस्लेटिव डिपार्टमेण्ट के सेक्रेटरी हो गए और 19 जून सन् 1934 को हाईकोर्ट के जज बन गए। फिर सन् 1939 में वहाँ से त्यागपत्र देकर आप होलीपुरा (आगरा) लौट आए। इसके उपरान्त आप ग्वालियर राज्य की सेवा में उसके गृह-सचिव के रूप में चले गए और स्वतन्त्रता के उपरान्त जब सभी देशी राज्यों का विलयन हुआ तब आप मध्यप्रदेश में विभिन्न रूपों में सेवा करते रहे थे। आपकी पदोन्नति सुप्रीम कोर्ट के प्रथम कोटि के न्यायमूर्ति के रूप में होने वाली थी कि आप अचानक परलोकगामी हो गए।

चतुर्वेदीजी जहाँ अच्छे विधिवेत्ता और न्यायाधीश थे वहाँ उच्चकोटि के कवि, समीक्षक और व्यंग्यकार के रूप में भी हिन्दी में प्रतिष्ठित थे। हिन्दी-व्यंग्य-लेखन के शैशव-काल में आपकी 'मिस्टर चुकन्दर' नाम से 'श्रीमती बनाम श्रीमता' और 'पैरोड्यावली' नामक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं उनसे जहाँ आपकी व्यंग्य-लेखन-पटुता का परिचय मिलता
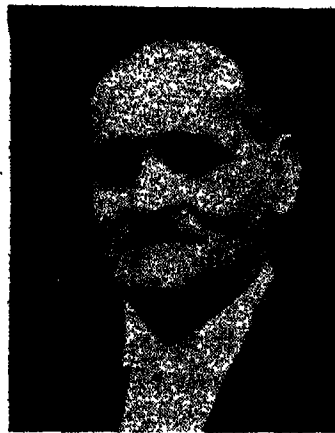
है वहाँ आपकी 'आधुनिक कविता की भाषा' नामक कृति में आपके समीक्षक रूप के दर्शन होते हैं। आपने जर्मनी के प्रख्यात कवि गैटे के प्रसिद्ध नाटक 'फाउस्ट' की प्रस्तावना 'प्रिल्यूज टू दि ड्रामा' का हिन्दी में जो काव्यानुवाद 'नाटक की प्रस्तावना' नाम से किया था, उसमें आपकी काव्य-प्रतिभा उत्कृष्टता से प्रकट हुई है। आपने चतुर्वेदियों के इतिहास से सम्बन्धित 'क्या चतुर्वेदी इण्डोग्रीक हैं?' शीर्षक जो ऐतिहासिक लेख लिखा था, उससे आपकी शोधपरक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। 'संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी' नामक आपकी पुस्तक में सांस्कृतिक रुचि के दर्शन होते हैं। एक बार जब जबलपुर विश्वविद्यालय की ओर से भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् को डाक्टरेट की मानद उपाधि प्रदान की गई थी तब विश्वविद्यालय के विधि-संकाय के अधिष्ठाता होने के नाते आपने संस्कृत में जो भाषण दिया था, उससे सभीको आश्चर्य हुआ था।

आप दिसम्बर सन् 1958 में जबलपुर में होने वाले अखिल भारतीय बंग साहित्य-परिषद् का उद्घाटन करने वाले थे कि 5 दिसम्बर को आपका आकस्मिक निधन हो गया। आपके निधन के उपरान्त आपकी स्मृति में जो विशाल ग्रन्थ सन् 1976 में प्रकाशित हुआ था, उससे आपके बहुमुखी व्यक्तित्व का व्यापक परिचय मिलता है।

श्री ब्रजकिशोर 'नारायण'

श्री नारायण का जन्म चम्पारन (बिहार) के बड़हरवा, मलाही गाँव में सन् 1918 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की प्राइमरी पाठशाला में हुई थी और बाद में आपके आर्यसमाजी पिता ने आपको विद्याध्ययन के लिए पंजाब भेज दिया था। गुजरानवाला के हिन्दू हाईस्कूल, लाहौर के खालसा कालेज और ओरियण्टल कालेज में शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त आपने पत्रकारिता के क्षेत्र को अपना लिया था। जब आप 8 वर्ष के थे तब अपनी मातृभाषा भोजपुरी में पद्य-रचना करके आपने सबको आश्चर्य-चकित कर दिया था।

'नारायण' जी की पहली कविता-पुस्तक 'सिंहनाद' का प्रकाशन लाहौर से सन् 1940 में हुआ था और दूसरी पुस्तक आपकी कहानियों का संकलन 'आज का प्रेम' थी, जिसे सन् 1943 में सामयिक साहित्य सदन, लाहौर ने प्रकाशित किया था। इसके उपरान्त 'नारायण' जी अपनी जन्मभूमि बिहार लौट गए और आपकी क्रमशः 'यशस्विनी', (1946), 'नारायणी' (1950), 'मधुमय' (1955), 'वक्र चन्द्रमा', (1959) तथा 'चन्द्रमुखी', (1966) नामक काव्य-पुस्तकों के प्रकाशन हुए। कविताओं के अतिरिक्त आपने उपन्यास, संस्मरण, नाटक, कहानी और व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। आपने लाहौर में रहते हुए ही 'अनारकली' नामक एक काव्य की रचना प्रारम्भ की थी, जो उन्हीं दिनों लाहौर से प्रकाशित होने वाली 'रेखा' नामक पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। पता नहीं, वह काव्य कैसे अधूरा रह गया और प्रकाशित न हो सका।

उपन्यास-लेखन की दिशा में भी आपकी लेखनी ने बेजोड़ कृतियाँ दी थीं। आपकी ऐसी रचनाओं में 'राष्ट्र के लिए' (1950), 'रीता' (1955), 'स्वस्तिका', (1960), 'मरने के बाद', (1961), 'नाना की नजर में', (1961), तथा 'खब्तुल हवास' (1966) आदि विशेष उल्लेख्य हैं। 'आज का प्रेम' के अतिरिक्त आपका एक और कहानी-संकलन 'पत्नी का कन्या-दान' भी प्रकाशित हुआ था। पहले कहानी-संकलन में जहाँ युवकोचित रोमांस को आधार बनाया गया था वहाँ इस दूसरे संकलन की अधिकांश रचनाएँ व्यंग्य-प्रधान हैं।

नाटक तथा एकांकी-लेखन की ओर भी आपके कलाकार का ध्यान गया था और उसमें आपको पर्याप्त सफलता मिली थी। आपकी ऐसी कृतियों में 'वर्धमान महावीर'

(1950) 'सपना टूट गया' (1959), तथा 'वर्षगाँठ' (1960) के नाम अन्यतम हैं। यात्रा-विवरण लिखने की कला में भी आपने साहित्य को अनेक रचनाएँ देकर अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। एकाधिक बार आपको अनेक देशों की यात्रा करने का सुयोग मिला था, और आपको ऐसी प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई थी, जिसके आधार पर आपने अनेक यात्रा-वृत्तान्त प्रस्तुत किए। आपकी ऐसी पुस्तकों में 'नन्दन से लन्दन', 'यूरोप : कुछ ऐसे, कुछ वैसे' तथा 'सात समुद्र पार' आदि विशिष्ट हैं।

बाल-साहित्य के सृजन में भी आप अद्वितीय थे और इस क्षेत्र में भी आपकी 'हँसी-खुशी', 'पेटू पाँडे', 'गोल गप्पेड़े', 'ताक धिना धिन', 'आ री निंदिया', 'लड्डू', 'पेड़े', 'बताशे', 'जलेबी' और 'रसगुल्ले' आदि पुस्तकें स्मरणीय हैं।

एक प्रखर पत्रकार के रूप में भी आपने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा प्रदर्शित की थी। अपनी साहित्य-यात्रा के प्रारम्भिक दिनों में आपने जहाँ पं० रामशंकर त्रिपाठी द्वारा संचालित और श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' द्वारा सम्पादित बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक हिन्दुस्थान' में कार्य किया था वहाँ कालान्तर में बिहार में जाकर वहाँ के अनेक शासकीय तथा अन्य पत्रों में जमकर खूब लिखा था। बम्बई के दैनिक 'हिन्दुस्थान' में प्रतिदिन जहाँ 'वक्र दृष्टि' नामक स्तम्भ 'त्रिनेत्र' नाम से आप लिखते थे वहाँ कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'लोकमान्य' के कार्य-काल में भी 'हजामत' नामक स्तम्भ को 'उल्टा उस्तरा' नाम से लिखा करते थे। आपकी पैनी व्यंग्य-शैली का सजीव प्रमाण पटना से प्रकाशित होने वाले 'चाणक्य' नामक पत्र में देखने को मिलता था। आपकी 'देखन में छोटे लगें' (1967) नामक पुस्तक में आपकी सूक्तिपरक लघुकथाएँ हैं।

बिहार के साहित्यिक जीवन में नारायणजी का अन्यतम स्थान था। हिन्दी के प्रखर समीक्षक श्री नलिन विलोचन शर्मा के निधन पर आपने 'नई धारा' का जो विशेषांक उनकी स्मृति में प्रकाशित किया था, उससे आपकी सम्पादन-पटुता का स्पष्ट परिचय मिलता है। वास्तव में ऐसा सुन्दर विशेषांक प्रकाशित करना आपकी ही हिम्मत का काम था।

आपका निधन 20 जनवरी सन् 1968 को पटना के मैडिकल कालेज अस्पताल में हुआ था।

श्री ब्रजकिशोरनारायण 'बेढब'

श्री बेढबजी का जन्म बिहार के पटना जिले के अमावाँ नामक स्थान में 14 अक्तूबर सन् 1885 को हुआ था। बचपन में ही पिता का देहान्त हो जाने के कारण आपने अपने ही अध्यवसाय से शिक्षा ग्रहण की थी। मिडिल की परीक्षा में आपने अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय देकर छात्रवृत्ति प्राप्त की थी। हिन्दी के अतिरिक्त आपने उर्दू और फारसी में भी दक्षता प्राप्त कर ली थी। गया के टाउन स्कूल से प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने पटना कालेज से आई० एस-सी० उत्तीर्ण की थी। जिन दिनों आप पटना कालेज में अध्ययन करते थे उन दिनों बिहार के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री तथा डॉ० श्रीकृष्ण सिंह तथा भूतपूर्व मन्त्री डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह भी आपके सहपाठी थे।

आरम्भ में आप बिहार के कई स्कूलों में शिक्षक रहे और फिर कानून की परीक्षा पास करके सन् 1917 से गया में विधिवत् वकालत करने लगे थे। वकालत के कार्यों के साथ-साथ आप सार्वजनिक सेवा के कार्यों में भी रुचि रखते थे। और महात्मा गान्धी के सत्याग्रह-आन्दोलन की ओर आपका विशेष झुकाव था। आपके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ श्री अवधकिशोरप्रसाद 'कुश्ता' के सम्पर्क से विधिवत् सन् 1929 में हुआ था। आप प्रायः हास्य-व्यंग्य में रचनाएँ किया करते थे और कवि-सम्मेलन में जनता आपकी कविताएँ सुनकर लोट-पोट हो जाती थी। उन दिनों के कवि-सम्मेलनों और मुशायरों में श्री कुश्ता और सुखदेवप्रसाद सिनहा 'बिस्मिल' के साथ आपको भी बड़े प्रेम से सुना जाता था। यह खेद की बात है कि आपकी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी।

आपका निधन 3 जुलाई सन् 1958 को हुआ था।

श्री ब्रजनन्दन 'ब्रजेश'

श्री ब्रजेश का जन्म मध्यप्रदेश के रीवाँ राज्य के सिलपरी नामक ग्राम में सन् 1871 में हुआ था। श्री ब्रजेशजी संस्कृत

साहित्य के उद्भट विद्वान् और 'साहित्य दर्पण' के रचयिता श्री विश्वनाथ के वंश में उत्पन्न हुए थे। आपके पिता श्री 'शीतलेश' जी भी ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे। आपको 'महाकवि' और 'काव्याचार्य' की उपाधियाँ भी प्रदान की गई थीं। आपके द्वारा रचित जिन ग्रन्थों का अभी तक पता चला है उनमें 'माधव विलास', 'रामायण सोरठा शतक', 'विरह वाटिका', 'ब्रजेश विनोद', 'रमेश रत्नाकर', 'विश्वनाथशरण भूषण', 'सत्यशंकर', 'रस रसांग निर्णय', 'अलंकार निर्णय', 'श्रृंगार शिरोमणि' तथा 'शान्त शतक' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से अन्तिम 6 अभी अप्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त 'महात्मा गान्धी का जीवन-चरित' भी अप्रकाशित पड़ा है।

आपका निधन सन् 1957 में 86 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री ब्रजनन्दनसहाय 'ब्रजवल्लभ'

श्री 'ब्रजवल्लभ' का जन्म सन् 1874 में बिहार प्रदेश के शाहाबाद जनपद के बख्तियारपुर नामक ग्राम में हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात लेखक श्री शिवनन्दन सहाय के सुपुत्र थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में ही हुई थी। बाद में गया के जिला-स्कूल से इण्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप पटना चले गए और वहाँ के बिहार नेशनल कालेज से बी०ए० बी०एल० करने के उपरान्त आपने लगभग 42 वर्ष तक आरा में वकालत की। आरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा' के आरम्भिक दिनों में आप ही उसके प्रधानमन्त्री थे। आपके पिता तथा परिवार के अन्य लोगों के उद्योग से आपके गाँव में एक 'नाटक-मण्डली' की स्थापना हुई थी, जिसमें आप अभिनय किया करते थे। उन दिनों आपको इस प्रसंग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा लाला खड्गबहादुर मल्ल आदि नाटककारों की रचनाएँ पढ़ने का सुअवसर भी मिलता रहता था। जिन दिनों आप एफ० ए० में पढ़ा करते थे तब पटना में बाबा सुमेरसिंह साहबजादे की अध्यक्षता में जिस 'कवि समाज' की स्थापना हुई थी, उसके मुखपत्र 'समस्या-पूर्ति' का सम्पादन आप ही किया करते थे। पहले-पहल आप ब्रजभाषा में कविता किया करते थे, किन्तु बाद में खड़ी बोली में रचना करने में आपने अपूर्व दक्षता प्राप्त कर ली थी। बी० ए० में पढ़ते हुए आपने बँगला भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त करके उसकी प्रख्यात कृति 'सप्तम प्रतिमा' (नाटक) तथा 'चन्द्रशेखर' (उपन्यास) के हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किए थे। इससे पूर्व भी आपके 'राजेन्द्र मालती' तथा 'अद्‌भुत प्रायश्चित्त' नाम के दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे।

आपकी रचनाएँ उन दिनों जहाँ 'बिहार बन्धु' (पटना), 'भारत भगिनी' (प्रयाग), 'कवि समाज' और 'कवि मण्डल पत्रिका' (काशी) तथा 'ब्राह्मण' (कानपुर) आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं वहाँ आपने अनेक उपन्यास, नाटक तथा जीवनियाँ लिखी थीं। आपके द्वारा लिखित मौलिक उपन्यासों में 'सौन्दर्योपासक', 'लाल चीन', 'विस्मृत सम्राट्', 'विश्व-दर्शन,' 'राजेद्र मालती', 'अद्‌भुत प्रायश्चित्त', 'राधाकान्त' तथा 'अरण्यबाला' के नाम जहाँ विशेष उल्लेखनीय हैं वहाँ अनूदित उपन्यासों में 'चन्द्रशेखर', 'रजनी' तथा 'कमलाकान्त का इजहार' ध्यातव्य हैं। आपकी नाटक-रचनाओं में 'सप्तम प्रतिमा', 'उद्धव नाटक', 'उषांगिनी', 'वरदान', 'कलंक मार्जन' (कैकेयी), 'बूढ़ा वर' तथा 'निर्जन द्वीपवासी का विलय' के अतिरिक्त 'हनुमान लहरी', 'ब्रज विनोद' और 'सत्यभामा मंगल' आदि आपके काव्य-ग्रन्थ हैं। आपके द्वारा लिखित 'पं० बलदेव मिश्र', 'बंकिमचन्द्र' तथा 'राधाकृष्णदास' जी की जीवनियाँ भी बहुत प्रसिद्ध हैं। बाल-साहित्य की रचना में भी आपने अपनी प्रतिभा का उल्लेखनीय परिचय दिया था। आपकी ऐसी रचनाएँ आपकी 'शिक्षा विलास' नामक पुस्तक में संकलित हैं।
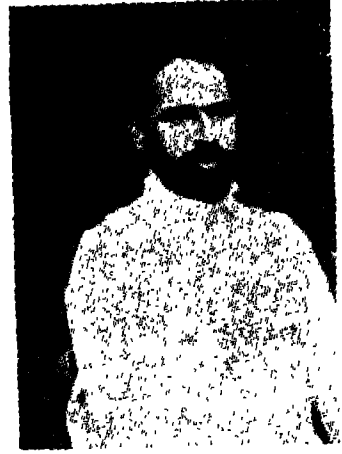
आपकी इन कृतियों में 'सौन्दर्योपासक' नामक अकेला

उपन्यास ही ऐसा है, जिसने अपनी विशिष्ट शैली के कारण हिन्दी-गद्य के विकास में अपनी प्रमुख छाप छोड़ी है। अनेक वर्ष तक यह जहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में पाठ्यक्रम के रूप में रहा वहाँ इस उपन्यास से प्रभावित होकर छतरपुर के महाराजा ने आपको अपने यहाँ आमन्त्रित करके सम्मानित किया था। काशी की 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने जहाँ अपनी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर आपका अभिनन्दन किया था वहाँ 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' ने भी सन् 1951 में आपको डेढ़ हजार रुपए के 'वयोवृद्ध साहित्यिक सम्मान पुरस्कार' से पुरस्कृत किया था। आरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी जब भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद को 'अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पित किया था तब आपको भी 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि प्रदान की गई थी। आपने 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के बेगू सराय में हुए चौदहवें अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी। जिन दिनों आप 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' के मन्त्री थे तब आपने बिहार के सभी विश्वविद्यालयों और कार्यालयों में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार के लिए उल्लेखनीय कार्य किया था।

आपकी रचनाओं की महत्ता इसीसे सिद्ध हो जाती है कि आपके 'सौन्दर्योपासक' नामक उपन्यास का जहाँ 'मराठी' और 'गुजराती' भाषाओं में अनुवाद हुआ वहाँ 'लाल चीन' को भी गुजराती में अनूदित किया गया था। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में आपके 'सौन्दर्योपासक' उपन्यास ने इतनी ख्याति प्राप्त की थी कि अपनी विशिष्ट गद्य-शैली के कारण उसे लोग *'गद्यकाव्य'* की संज्ञा देने लगे थे। *'काशी नागरी* प्रचारिणी सभा' की 'मनोरंजन पुस्तकमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित 'लाल चीन' की गणना तत्कालीन उत्कृष्टतम ऐतिहासिक उपन्यासों में की जाती थी। आपका हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के सर्वश्री बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, लाला सीताराम, दुर्गाप्रसाद मिश्र, रामकृष्ण वर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जगन्नाथप्रसाद 'रत्नाकर', बाबू श्यामसुन्दरदास, 'मिश्रबन्धु', पद्मसिंह शर्मा तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि साहित्यकारों से इतना घनिष्ठ सम्पर्क था कि उनसे सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण संस्मरण अब अप्राप्य ही रह गए हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य शिवपूजनसहाय ने आपके निधन के उपरान्त जनवरी 1957 के 'साहित्य' में यह ठीक ही लिखा था—"मुझे अफसोस है कि आपसे साहित्यिक संस्मरणों को सुनकर न लिख सका। इसी तरह अनेक वयोवृद्ध साहित्य-सेवियों के साथ अमूल्य साहित्यिक संस्मरण चले गए।"

आपका निधन आरा में 84 वर्ष की आयु में 20 सितम्बर सन् 1956 को हुआ था।

श्री ब्रजनाथ शर्मा गोस्वामी

श्री गोस्वामीजी का जन्म सन् 1881 में दिल्ली के छीपीवाड़ा नामक मोहल्ले में हुआ था। आपके पूर्वज हिसार (हरियाणा) के रहने वाले थे। आपके पिता पं० रघुनाथप्रसादजी का असामयिक देहावसान हो जाने के कारण आपका पालन-पोषण आपकी ननिहाल आगरा में हुआ था। आपके नाना पण्डित सोहनलालजी संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान् एवं भारत के माने हुए ज्योतिषियों में से एक थे। उन्हींके निरीक्षण में गोस्वामीजी की शिक्षा-दीक्षा हुई थी। प्रारम्भिक दिनों में अरबी-फारसी का अनिवार्य ज्ञान अर्जन करने के अनन्तर जहाँ आपने सेंट जॉन्स कालेज, आगरा से अँग्रेजी साहित्य की आधुनिकतम शिक्षा प्राप्त की वहाँ अपने नानाजी के निरीक्षण में वेद, कर्म-काण्ड, ज्योतिष, मंत्र-तंत्र-शास्त्र का भी सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त बँगला, गुजराती और मराठी पर भी आपने अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था।

आगरा नगर की आपने विभिन्न रूपों में उल्लेखनीय सेवा की थी। जहाँ आपने वहाँ की 'विद्या धर्मवर्द्धिनी पाठशाला'

के अधिष्ठाता के रूप में उस नगर के संस्कृत-प्रेमियों में अपना प्रमुख स्थान बनाया वहाँ उर्दू तथा हिन्दी के प्रमुख कवि नजीर अकबराबादी की स्मृति में आपने 'बज़्मे नजीर' नामक संस्था की स्थापना करके भावात्मक एकता के क्षेत्र में भी अत्यन्त अभिनन्दनीय कार्य किया था। आप आगरा की रामलीला कमेटी, गोशाला सोसाइटी, इण्डिया रैडक्रास सोसाइटी और नागरी प्रचारिणी सभा आदि विभिन्न संस्थाओं से इस प्रकार जुड़े हुए थे कि आज भी आगरा की जनता आपकी सेवाओं को सम्मान के साथ स्मरण करती है। स्थानीय संस्थाओं के विकास में रुचि लेने के साथ-साथ आप काशी नागरी प्रचारिणी सभा, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा ऋषिकुल ब्रह्मचर्य आश्रम, हरिद्वार आदि संस्थाओं के कार्य-कलापों में भी हार्दिकता से भाग लिया करते थे। सनातन-धर्म सभा, भारत धर्म महामण्डल, विद्वत्परिषद् अयोध्या और सारस्वत ब्राह्मण महासभा आदि अनेक लोकोपयोगी संस्थाओं के कार्यों में भी आप बराबर अपना सक्रिय सहयोग दिया करते थे।

आप जहाँ उच्चकोटि के समाज-सेवक थे वहाँ आपने लेखन और सम्पादन के क्षेत्र में भी अभिनन्दनीय सेवाएँ की थीं। आपने जहाँ अनेक वर्ष तक 'सारस्वत समाचार' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था वहाँ अपने 'कारोनेशन प्रेस' के माध्यम से प्रकाशन की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही थी। अखिल भारतीय सारस्वत ब्राह्मण महासभा के अनेक वर्ष तक अध्यक्ष और महामन्त्री के रूप में भी आपने सारस्वत समाज की उल्लेखनीय सेवाएँ की थीं। 'सारस्वत समाचार' के अतिरिक्त आपने 'ज्योतिष चन्द्रोदय' तथा 'आगरा समाचार' का भी अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। आप आगरा जर्नलिस्ट एसोसिएशन के उपाध्यक्ष भी रहे थे। आपकी साहित्य तथा समाज के प्रति की गई उल्लेखनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको अनेक संस्थाओं ने 'ज्योतिष-रत्न', 'धर्म-विनोद', 'संस्कृत-मनीषी', 'धर्म-मनीषी', 'साहित्याचार्य' और 'साहित्य वाचस्पति' आदि अनेक सम्मानित उपाधियाँ भी प्रदान की थीं। एक उत्कृष्ट पत्रकार होने के साथ-साथ आपने हिन्दी में समाज-सुधार-सम्बन्धी अनेक रचनाएँ लिखी थीं, जिनमें 'असभ्य रमणी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपका देश के जिन विद्वानों से विशेष सम्पर्क था उनमें महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और महामहोपाध्याय पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री के नाम प्रमुख हैं। उक्त दोनों महानुभावों के जीवन-विकास में आपका उल्लेखनीय सहयोग रहा था। जिन दिनों आप ऋषिकुल ब्रह्मचर्य आश्रम, हरिद्वार के मन्त्री रहे थे उन दिनों उक्त दोनों महानुभाव इसी संस्था में कार्य-रत थे।

आपका निधन 29 जनवरी सन् 1963 को आगरा में हुआ था।

श्री ब्रजबिहारीसिंह

श्री ब्रजबिहारीजी का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बसन्तपुर नामक ग्राम में सन् 1882 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी और 16 वर्ष की आयु में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। इसके बाद स्वाध्याय के बल पर ही आपने अँग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, फारसी, बंगला, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सन् 1900 में आपने छपरा में दवाइयों की एक दुकान खोली और उसके माध्यम से अच्छा धन अर्जित किया। उन्हीं दिनों सुरसंड राज्य के राजा साहब श्री सरयूप्रसादनारायणसिंह से आपका सम्पर्क हुआ और आपको अपने यहाँ मैनेजर के रूप में रख लिया। सरयूप्रसाद नारायणसिंह उत्तर प्रदेश के वर्तमान राज्यपाल श्री चन्द्रेश्वरप्रसादनारायणसिंह के पिता थे। इनके दूसरे पुत्र श्री राजेश्वरप्रसादनारायणसिंह हिन्दी के अच्छे लेखक हैं और अनेक वर्ष तक राज्यसभा के सदस्य भी रहे हैं।

सन् 1900 से आपका झुकाव साहित्य-निर्माण की ओर हुआ और आपने कलकत्ता जाकर 'भारत मित्र' में काम करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन तक आप पटना से प्रकाशित होने वाले 'बिहार बन्धु' नामक पत्र के सम्पादकीय विभाग में रहे थे। सन् 1908 में पटना से प्रकाशित होने वाले 'हित चिन्तक' नामक पाक्षिक पत्र के प्रबन्धक और सम्पादक का पद भी आपने सँभाला था। आपकी रचनाएँ 'भारत मित्र' और 'बिहार बन्धु' के अतिरिक्त 'भूमिहार ब्राह्मण' आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होती रहती

थीं। हिन्दी में आपके द्वारा लिखित 'कोटारानी' नामक एक उपन्यास प्रकाशित हुआ है। आपने हिन्दी में 'वनौषधि चन्द्रिका' तथा 'एलेक्ट्रो होम्योपैथी' नामक पुस्तकें भी लिखी थीं, जो प्रकाशित न हो सकीं।

आपका निधन 5 जनवरी सन् 1949 को हुआ था।

डॉ० ब्रजमोहन गुप्त

श्री गुप्त का जन्म 29 जुलाई सन् 1916 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के दूधली ग्राम में हुआ था। आपने हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षाएँ डी० ए० वी० कालेज, देहरादून से उत्तीर्ण करके प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० किया था। इसके उपरान्त सन् 1940 में आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० करने के उपरान्त आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से 'मध्यकालीन भारत में रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ' विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करके डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त की थी। इसी बीच आपने सन् 1934 में बेसिक ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद से एल० टी० की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली थी।

आपने अपने कार्मिक जीवन का प्रारम्भ सन् 1938 में मध्यप्रदेश की 'कोठी' स्टेट में शिक्षक के रूप में प्रारम्भ किया था। तदनन्तर आप सनातन धर्म इण्टर कालेज, मुजफ्फरनगर में प्रवक्ता के रूप में आ गए तथा सन् 1943 से सन् 1949 तक आप बेसिक ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद में शिक्षक रहे। सन् 1949 से सन् 1955 तक आप उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग में डिप्टी इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स रहे। फिर सन् 1964 तक आपने इलाहाबाद में असिस्टेंट डायरेक्टर के रूप में कार्य किया था।

आप जहाँ उत्कृष्ट कोटि के समीक्षक, सफल कथाकार और सहृदय कवि थे, वहाँ एकांकी-नाटक-लेखन की दिशा में भी आपने अपनी प्रतिभा का सम्यक् परिचय दिया था। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'जय-पराजय', 'स्वप्न और सत्य', 'यह दीवार कब गिरेगी' (कहानी संकलन), 'वियोग रागिनी', 'जीवन की लहरें', 'संघर्ष', 'जिज्ञासा', 'मन के वातायन', 'बीज और अंकुर' (कविता-संग्रह) तथा 'मध्यकालीन हिन्दी-कविता में रहस्य-भावना' (शोध प्रबन्ध) आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि अपने 'बीज और अंकुर' नामक कविता-संकलन से होने वाली समस्त आय को आपने 'साहित्यकार सहायता न्यास' को समर्पित कर दिया था। इस न्यास के अध्यक्ष काशी विद्यापीठ के तत्कालीन कुलपति श्री राजाराम शास्त्री थे और मन्त्री डॉ० शम्भूनाथसिंह। इस संकलन का प्रकाशन 'समकालीन प्रकाशन, सत्याग्रह मार्ग, वाराणसी' से हुआ था।

हिन्दी के विख्यात कवि डॉ० हरिवंशराय बच्चन से आपका अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क था। इसी कारण उन्होंने अपनी आत्मकथा का दूसरा भाग 'नीड़ का निर्माण फिर' आपको समर्पित किया था।

आपका निधन 21 अगस्त सन् 1972 को हुआ था।

श्री ब्रजमोहनलाल

श्री ब्रजमोहनलाल का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ नामक नगर में 22 जुलाई सन् 1899 में हुआ था। सन् 1915 में हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की प्रथमा तथा विशारद परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण कीं और उसके उपरान्त सन् 1918 में आपने रुड़की विश्वविद्यालय में जाकर इंजीनियरिंग की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। अपने अध्ययन-काल में आपने जहाँ हिन्दी में कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था वहाँ 'रास पंचाध्यायी' और 'भ्रमर गीत' आदि हिन्दी-काव्य-ग्रन्थों पर समालोचनात्मक अध्ययन भी लिखे थे।

सन् 1921 में विधिवत् इंजीनियर होकर सर्वप्रथम पंजाब सरकार की सेवा में चले गए और उसके सार्वजनिक निर्माण विभाग में कार्य करने लगे। आप लगभग एक वर्ष तक ही वहाँ कार्य कर पाए थे कि फिर 3 नवम्बर सन् 1922 से आप भारत सरकार की सेवा में चले आए और यहाँ पर 'सहायक अभियन्ता' हो गए। सन् 1928 में आप 'स्थानापन्न कार्यकारी अभियन्ता' के पद पर प्रतिष्ठित हुए और फिर आपने पंजाब के कांगड़ा क्षेत्र का कार्य-भार सँभाला और वहाँ पर 'कार्यकारी अभियन्ता' के रूप में 1 अक्तूबर सन् 1931 से सन् 1943 तक रहे। जब सन् 1934 में 'इण्डिया रोड कांग्रेस' की स्थापना हुई थी तो आप उसके सक्रिय सदस्य भी रहे थे।

अपनी शासकीय सेवा के दौरान आपने सन् 1943 में 'अधीक्षक अभियन्ता' का पद सँभाला और फिर सन् 1944 में 'इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स' (इण्डिया) के सक्रिय सदस्य हो गए थे। अपने इस कार्य-काल में आपने देश की बहुविध सेवा की थी। सन् 1946 में आपकी प्रशंसनीय शासकीय सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको 'राय बहादुर' का सम्मान भी भारत सरकार की ओर से प्रदान किया गया था। आप 1 सितम्बर सन् 1953 को 'मुख्य अभियन्ता' के पद से सेवा-निवृत्त हुए थे।

शासकीय सेवा से निवृत्ति पाने के उपरान्त भी आप अनेक वर्ष तक 'इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स' (इण्डिया) के हिन्दी विभाग के सलाहकार रहे थे और उसकी 'शोध-पत्रिका' का सम्पादन आपने अपने हाथ में लिया था। यह शोध पत्रिका सन् 1949 से, जब से हिन्दी संविधान में राजभाषा स्वीकार हुई थी, अब तक बराबर निकल रही है। आपने हिन्दी में उच्चकोटि के शोध-लेख लिखकर यह सिद्ध कर दिया था कि हिन्दी में सभी प्रकार के गूढ़-से-गूढ़ विचारों को प्रकट करने की अद्भुत क्षमता है। आपने जहाँ यान्त्रिकी क्षेत्र में हिन्दी का प्रचार तथा प्रसार किया वहाँ अनेक लेखकों का मार्ग-प्रदर्शन भी किया था। ऐसे अनेक लेखक आज हिन्दी में हैं जिन्हें इंजीनियरी के ग्रन्थ हिन्दी में लिखने के लिए आपने ही प्रोत्साहित किया था। इंजीनियरी-क्षेत्र के प्राचीनतम ग्रन्थ 'मानसार वास्तु-शास्त्र' का हिन्दी-अनुवाद आपने ही प्रकाशित कराया था। इंजीनियरी के क्षेत्र में हिन्दी का प्रचलन करने की दिशा में आपका अत्यन्त प्रशंसनीय योगदान था।

आपका निधन 1 मार्च सन् 1979 को नई दिल्ली में हुआ था।

श्री ब्रजमोहन वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म 5 सितम्बर सन् 1900 को उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड अंचल के कालपी नामक नगर में हुआ था। आपके पितामह श्री कन्हईप्रसाद खत्री 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के बैंकर थे। सन् 1857 के स्वाधीनता-संग्राम के समय उन्होंने यह पद त्याग दिया था। श्री वर्माजी के चाचा श्री कृष्णबलदेव वर्मा भी हिन्दी के अच्छे लेखक थे और उनके सत्संग से ही ब्रजमोहन वर्मा साहित्य के प्रति उन्मुख हुए थे। श्री वर्मा प्रारम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि थे और 1918 में आपने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। जिन दिनों आप इस परीक्षा की तैयारी कर रहे थे उन्हीं दिनों आपको 'कूल्हे' की बीमारी हो गई। आप उठने में भी अशक्त हो गए थे। वर्माजी ने इस असहाय अवस्था में ही खाट पर पड़े-पड़े

पढ़ना प्रारम्भ किया और निरन्तर अध्ययन करते रहने की इस प्रवृत्ति ने आपकी योग्यता को चार चाँद लगा दिए। उन्हीं दिनों आप चिकित्सा के लिए अपने भाई के पास कलकत्ता चले गए और वहाँ पहुँचकर आपकी इस प्रवृत्ति को बहुत प्रोत्साहन मिला।

उन दिनों कलकत्ता का कोई ऐसा पुस्तकालय नहीं बचा था जिससे पुस्तकें मँगवाकर वर्माजी ने न पढ़ी हों। आप एक-एक दिन में कई-कई सौ पृष्ठों की पुस्तकों को एक निगाह में सरसरी दृष्टि से देख जाते थे। आपकी जानकारी इतनी अद्‌भुत हो गई थी कि किस विषय पर, किस ग्रन्थकर्त्ता ने क्या लिखा है, और किस विषय की जानकारी किस ग्रन्थ से मिल सकती है इत्यादि विवरण आप चुटकी बजाते ही दे देते थे। हिन्दी और उर्दू की अनेक कविताएँ आपको ऐसी कण्ठाग्र हो गई थीं जैसे वर्षों से आपका उनसे साबका रहा हो। 18 महीने के निरन्तर उपचार और औषधि-सेवन से आपके फेफड़ों में खराबी आने के साथ-साथ पीठ और गर्दन भी अकड़ गई थी तथा टाँगें भी कुछ मुड़ गई थीं। परिणामस्वरूप आपको बैसाखी के सहारे चलने को विवश होना पड़ा था।

रोग-शैया से मुक्ति प्राप्त करने के उपरान्त आपने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'श्रीकृष्ण सन्देश' और 'हिन्दू पंच' आदि पत्रों में 'चतुष्पाद' के छद्म नाम से हास्य-व्यंग्यमय चुटकुले, कविताएँ और लेख आदि लिखने प्रारम्भ कर दिए और थोड़े ही दिनों में आपने अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा लिया। उन्हीं दिनों सन् 1929 में आपके चाचा श्री कृष्णबलदेव शर्मा आपको साथ लेकर एक दिन 'विशाल भारत' कार्यालय में उसके सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के पास गए और उनसे ब्रजमोहन वर्मा की सहायता करने की याचना की। चतुर्वेदीजी ने उनके अनुरोध को टाला नहीं और वर्माजी को 'विशाल भारत' में अपना सहकारी बना लिया।

'विशाल भारत' में जाकर वर्माजी ने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया उसके साक्षी श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के वे शब्द हैं जो उन्होंने माननीय श्रीनिवास शास्त्री से 'विशाल भारत' कार्यालय में आने पर कहे थे। उन्होंने कहा था—"वर्माजी ही 'विशाल भारत' की आत्मा और प्राण हैं और इसकी सफलता का 75 प्रतिशत श्रेय आपको ही है।" आपकी विद्वत्ता, मिलनसारी, चुहलबाजी और परोपकारिता की भावना ऐसी थी कि जो भी व्यक्ति एक बार आपके सम्पर्क में आता था वह आपको अपना ही मान लेता था। हास्य-रस की रचनाएँ लिखने में तो आप सर्वथा बेजोड़ थे। कहानी, कविता तथा व्यंग्य-लेखन के साथ-साथ आप गम्भीर-से-गम्भीर विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाते रहते थे। वास्तव में 'विशाल भारत' की लोकप्रियता का एक कारण वर्माजी भी थे।

सन् 1937 में जब बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' छोड़ा और उसके प्रधान सम्पादक श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' बनाए गए तब कठिनाई से कुछ दिनों तक ही वर्माजी उन्हें सहयोग दे पाए थे कि आपको 'टाइफाइड' हो गया। इस बीमारी में भी आपको 'विशाल भारत' की ही चिन्ता लगी रहती थी। निरन्तर 2 मास की चिकित्सा और उपवास के उपरान्त ही आपका वह ज्वर उतरा था। उन्हीं दिनों 'विशाल भारत' छोड़कर आपने कुछ दिन तक 'औघड़' नामक एक हास्य-व्यंग्य-प्रधान मासिक पत्र भी कलकत्ता से सम्पादित-प्रकाशित किया था। चिकित्सकों के परामर्श पर आप अपनी निर्बलता को दूर करने के लिए कुछ दिन के लिए जलवायु-परिवर्तनार्थ इटावा और कानपुर भी गए थे। लेकिन स्वास्थ्य सुधरने की बजाय दिन-प्रतिदिन बिगड़ता ही गया और 10 दिसम्बर सन् 1937 को कानपुर में आपका देहावसान हो गया।

श्री ब्रजरत्नदास अग्रवाल

श्री ब्रजरत्नदास का जन्म यद्यपि काशी में सन् 1890 में हुआ था, किन्तु आपके पूर्वज सन् 1878 में इलाहाबाद जिले के शहजादपुर नामक स्थान से वहाँ आकर बस गए थे। आपके पिता श्री बलदेवदास एक उच्चकोटि के व्यापारी होने के साथ-साथ साहित्यिक सुरुचि भी रखते थे। यही कारण था कि आपने प्रारम्भ में श्री ब्रजरत्नदासजी को घर पर ही हिन्दी, उर्दू, फारसी और अँग्रेजी का अध्ययन कराया था। 12 वर्ष की अवस्था में आप क्वीन्स कालेज में प्रविष्ट हुए और उसी कालेज से सन् 1910 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में वहाँ से इण्टर (साइंस) पास करके आपने लग-

भग एक वर्ष तक बी० एस-सी० कक्षाओं में भी विधिवत् अध्ययन किया था। किन्तु अचानक स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण आपको अपनी शिक्षा वहीं रोक देनी पड़ी और तभी से हिन्दी-सेवा में संलग्न हो गए। लगभग 7-8 वर्ष अस्वस्थ रहने के बाद जब आप पूर्णतया स्वस्थ हुए तो फिर आपका ध्यान अपनी शैक्षणिक योग्यता बढ़ाने की ओर गया। हर्ष है कि अपनी इसी भावना की पूर्ति के लिए आपने 1926 में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० करके 1929 में हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। इसी वर्ष आपके पिताजी का देहावसान हो गया और आप पूर्णतः वकालत में पड़ गए।

श्री ब्रजरत्नदास अग्रवाल भारतेन्दु युग की आधिकारिक और प्रामाणिक जानकारी रखने वाले एक ऐसे साहित्य-साधक थे जिन्हें इस युग की अन्तिम कड़ी कहा जाता था। आपकी माता श्रीमती विद्यावतीजी भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी की पुत्री थीं। यद्यपि भारतेन्दुजी का सम्पर्क और संसर्ग तो आपको प्राप्त नहीं हो सका था, किन्तु उस समय की सामाजिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों की व्यापक जानकारी आपको अवश्य थी। एक प्रकार से 'साहित्यिक अभिरुचि' और 'गहरी अध्ययनशीलता' आपको अपनी ननिहाल से विरासत में ही मिली थी।

वैसे तो ब्रजरत्नदासजी में अपने जीवन के प्रारम्भ से ही साहित्यिक सुरुचि पर्याप्त मात्रा में थी, परन्तु उसका विशेष विकास उस समय हुआ जबकि आप अपने पिताजी के निधन के उपरान्त पूर्णतः वकील का जीवन बिता रहे थे। अपने मामा श्री ब्रजचन्दजी के सम्पर्क से आपमें साहित्यिक चेतना के जो बीज अंकुरित हुए थे, श्री केदारनाथ पाठक का विशेष सम्पर्क और साहचर्य पाकर वे शीघ्र ही पल्लवित और पुष्पित हो गए। इस प्रकार

जहाँ आप मौलिक साहित्य के सृजन में संलग्न हुए वहाँ उर्दू और फारसी के अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों का भी आपने हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया। आपकी सबसे पहली रचना 'चित्तौड़ का अन्तिम साका' आपके मामा श्री ब्रजचन्दजी ने ही संशोधित करके 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित कराई थी। उत्कृष्ट साहित्य का सृजन और सम्पादन करने के साथ-साथ आपने हिन्दी के प्रचार और प्रसार में योग देने के लिए 'नागरी प्रचारिणी सभा' की अनेक प्रकार से सेवा की। आप जहाँ सन् 1920 से 1923 तक उसके उपमंत्री रहे वहाँ सन् 1934 में मन्त्री भी निर्वाचित हुए थे। सन् 1938 से सन् 1940 तक के उनके अर्थ-मन्त्रित्व-काल में 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने पर्याप्त उन्नति की थी। इन उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रहने के अतिरिक्त आप प्रायः समय-समय पर सभा की प्रबन्ध-समिति के सदस्य भी रहे थे।

श्री ब्रजरत्नदासजी वास्तव में बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। एक ओर आपने जहाँ 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'उर्दू साहित्य का इतिहास', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'हिन्दी नाटक साहित्य' और 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य'-जैसे गम्भीर अन्वेषणपरक ग्रन्थ लिखे वहाँ दूसरी ओर हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के विशेष अनुरोधपूर्ण आमन्त्रण पर 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की विस्तृत और प्रामाणिक जीवनी भी तैयार की। इस ग्रन्थ में श्री ब्रजरत्नदासजी ने भारतेन्दु की आधिकारिक जीवन-गाथा प्रस्तुत करने के साथ-साथ उस युग की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक हलचलों का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया है। आपकी 'भारतेन्दु-मण्डल' नामक पुस्तक इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि आप न केवल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-सम्बन्धी सामग्री के ही अधिकारी विद्वान् थे, प्रत्युत उनके सहवर्ती तथा सहयोगी मण्डल की भी पूरी जानकारी रखते थे।

एक ओर आपने जहाँ संस्कृत के अमर ग्रन्थ महाकवि दण्डी के 'काव्यादर्श' का उत्कृष्ट अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किया वहीं भास के सभी नाटकों को आपने 'भास नाटकावली' के नाम से हिन्दी में प्रकाशित कराया। उर्दू और फारसी-साहित्य के अनवरत अनुशीलन में तो आपने अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग ही लगा दिया था। 'हुमायूँनामा' तथा 'मआसिरुल उमरा' (दो भाग) नाम की फारसी की दो अमर कृतियाँ हैं, जिनके अनुवाद आपकी प्रतिभा के परिचायक हैं। आप जहाँ काव्य और साहित्य के मर्मी विवेचक

और विद्वान् थे। वहाँ ऐतिहासिक खोज की रचनाओं में भी पर्याप्त रुचि लेते थे। अपनी 'सर हेनरी लारेंस', 'बादशाह हुमायूँ', 'जहाँगीर', 'मुगल दरबार' और 'शाहजहाँ' नामक कृतियों में आपने उत्कृष्ट इतिहास का आदर्श प्रस्तुत करने के साथ-साथ जीवनी-लेखन का भी उदात्त उदाहरण प्रस्तुत किया है।

वैसे तो श्री ब्रजरत्नदासजी ने साहित्य के सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था, परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' और 'भारतेन्दु नाटकावली' का दो-दो भागों में सुसम्पादित प्रकाशन हिन्दी को आपकी विशिष्ट देन है। इसके अतिरिक्त 'खुसरो की हिन्दी कविता', 'इन्शाअल्ला का काव्य' तथा 'रानी केतकी की कहानी', 'प्रेम सागर', 'तुलसी ग्रन्थावली', 'रहिमन विलास', 'भ्रमर गीत' एवं 'भाषा भूषण' आदि अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका सम्पादन आपकी प्रबुद्ध मेधा और प्रखर लेखनी से हुआ था। इसके अतिरिक्त आपके पास हिन्दी के 300 से अधिक ऐसे हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह भी था जो हिन्दी साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि करने की दिशा में अपना सानी नहीं रखते। हिन्दी की अनेक प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं का जितना प्रचुर और व्यवस्थित संग्रह श्री ब्रजरत्नदासजी ने किया था, उतना कदाचित् अन्यत्र कहीं ही देखने को मिले। वास्तव में आप ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने अपना समस्त जीवन साहित्य को ही समर्पित कर दिया था। प्रचार और विज्ञापन की चकाचौंध से सर्वथा दूर रहकर मूक भाव और एकान्तनिष्ठा से इतना काम कर लेना आप-जैसे समर्थ व्यक्ति का ही काम था। आप वकालत जैसे कठिन और शुष्क क्षणों में भी साहित्य-सरिता में अवगाहन करके अपने में ताजगी लाते रहते थे। ऐसे साहित्यकारों की अब कमी होती जा रही है जो हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू और फारसी आदि दूसरी भाषाओं का भी वैसा ही गम्भीर ज्ञान रखते हों, जैसी निष्ठा और तत्परता से वे हिन्दी भाषा और साहित्य की विभिन्न विधाओं की अभिवृद्धि में रुचि लेते हैं। वकालत तो आपका साधन था, साध्य नहीं। निरन्तर नई दिशाओं की खोज में लगे रहना ही आपके जीवन का 'मिशन' था। आप वास्तव में भारतेन्दु-युगीन साहित्य और उसके उन्नायक लेखकों की भरपूर जानकारी रखने वाले ऐसे साहित्यकार थे कि आपके निधन से आज हमें ऐसा अनुभव हो रहा है कि मानो भारतेन्दु युग की अन्तिम कड़ी ही टूट गई। क्या गद्य क्या पद्य, क्या शोध क्या समीक्षा; गर्ज कि साहित्य का ऐसा कोई भी अंग अछूता नहीं बचा, जिसमें आपने अपनी शोध तथा अध्यवसाय से परिपूर्ण प्रतिभा का परिचय न दिया हो। ऐसा अनुभव हो रहा है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के दौहित्र के रूप में हमने भारतेन्दु-परिवार का एक उज्ज्वल और कीर्तिमान नक्षत्र ही खो दिया है। हर्ष का विषय है कि आपकी अन्तिम कृति 'मुगल दरबार' का अन्तिम पाँचवाँ खण्ड काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो गया है।

आपका निधन सन् 1966 में हुआ था।

श्री ब्रजलाल बियाणी

श्री बियाणी का जन्म महाराष्ट्र के अकोला जनपद के बालापुर क्षेत्र के हायरून नामक ग्राम में 6 दिसम्बर सन् 1895 को हुआ था। हायरून में केवल तीसरी कक्षा तक अध्ययन करने के उपरान्त आपने अकोला के हाईस्कूल से सन् 1915 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए आप नागपुर के मारिस कालेज में भरती हो गए। छात्रावस्था में ही आप पर राष्ट्रीयता का रंग पूरी तरह चढ़ गया और एक बार आपने कालेज में हड़ताल भी करा दी थी। सन् 1919 में बी० ए० पास करने के बाद आपने वकालत का अध्ययन शुरू किया और सन् 1920 में आपने प्रथम वर्ष की परीक्षा भी पास कर ली जब दूसरे वर्ष में प्रवेश करने का समय आया तो देश में असहयोग आन्दोलन छिड़ गया और उन्हीं दिनों कांग्रेस का जो ऐतिहासिक अधिवेशन
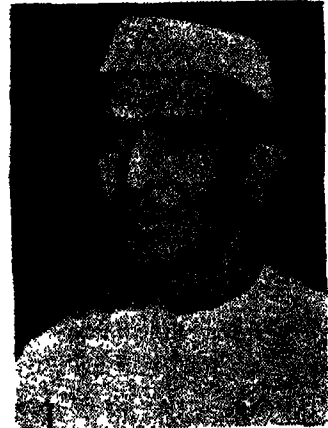
नागपुर में हुआ था उसने इस आन्दोलन की पुष्टि कर दी। परिणामस्वरूप बियाणीजी भी इससे अछूते न रह सके और आपने कालेज की पढ़ाई को तिलांजलि दे दी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस अवसर पर महात्मा गान्धी के ठहरने का प्रबन्ध जिस 'मारवाड़ी बोर्डिंग हाउस' में किया गया था उसकी व्यवस्था का भार श्री बियाणीजी पर ही था। गान्धीजी के इस सम्पर्क ने आपके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। उन्हीं दिनों आपको अकोला में होने वाले माहेश्वरी महासभा के वार्षिक अधिवेशन की स्वागत समिति का महामंत्री बना दिया गया। तब से आपकी गणना माहेश्वरी समाज के प्रमुख व्यक्तियों में की जाने लगी। आपका झुकाव उन दिनों समाज-सेवा के अतिरिक्त लेखन, मुद्रण और प्रकाशन की ओर भी था फलतः सन् 1922 में आपने अकोला में ही 'राजस्थान प्रेस' की स्थापना करके उसकी ओर से एक पत्र निकालने की भी योजना बनाई। इस प्रेस से आपने 'राजस्थान' नाम से एक मासिक और साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। कई वर्ष तक आपने इसी प्रेस से 'प्रवाह' नामक एक साहित्यिक पत्र का प्रकाशन भी किया था। यहाँ यह स्मरणीय है कि 'राजस्थान' साप्ताहिक के सम्पादन में श्री बियाणीजी को किसी समय श्री रामनाथ 'सुमन' ने भी सहयोग दिया था।

एक उत्कृष्ट पत्रकार होने के साथ-साथ बियाणीजी राजनीति के क्षेत्र में भी सदा अग्रणी स्थान पर ही रहे। आपका राजनैतिक जीवन सन् 1926 में तब प्रारम्भ हुआ था जब आप कांग्रेस स्वराज्य पार्टी के टिकट पर प्रान्तीय धारा सभा के सदस्य चुने गए। इससे पूर्व आप अकोला म्यूनिसिपल कमेटी के उपाध्यक्ष भी रहे थे। सन् 1930 से आपने भारतीय स्वाधीनता के लिए कांग्रेस द्वारा समय-समय पर किये गए सभी आन्दोलनों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। आप सन् 1930-32 में जहाँ सत्याग्रह आन्दोलन के डिक्टेटर नियुक्त किये गए थे वहाँ सन् 1935 में आप बरार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी मनोनीत हुए थे। आपको सबसे बड़ा गौरव सन् 1940 में उस समय मिला जब महात्मा गान्धी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए प्रथम सत्याग्रही आचार्य विनोबा भावे के बाद आपको द्वितीय सत्याग्रही चुना। आप सन् 1936 में प्रदेश की ओर से कौंसिल ऑफ स्टेट के सदस्य भी रहे थे। अगस्त-आन्दोलन के समय भी आपको देश के अन्य नेताओं के साथ गिरफ्तार करके मद्रास की वेलोर जेल में रखा गया था। बियाणीजी की इन सेवाओं का मूल्यांकन आपके प्रान्त ने इस तत्परता और तन्मयता से किया कि आपको 'विदर्भ केसरी' के गौरव-मय विशेषण से अभिहित किया जाने लगा। यह एक दुर्भाग्य ही था कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आपका देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू से टकराव हो गया और आप देश के राजनीतिज्ञों की प्रथम पाँत में आने से वंचित कर दिए गए। आपका एक-मात्र अपराध यही था कि आप भाषावार प्रान्त बनने के आन्दोलन में महाराष्ट्र से अलग विदर्भ प्रान्त बनाने के पक्षधर थे। सन् 1965 में आपको आपकी 71वीं वर्षगाँठ पर 'बियाणी : मित्रों की नजर में' नामक एक अभिनन्दन-ग्रन्थ इन्दौर में आपके मित्रों द्वारा भेंट किया गया था।

राजनीति-जैसे शुष्क क्षेत्र में रहते हुए भी आपने अपने साहित्यकार को सदा जीवंत बनाए रखा, यह एक उल्लेखनीय बात है। आप जहाँ एक जागरूक पत्रकार और सुधारक नेता के रूप में समाज के सामने आए वहाँ साहित्य के क्षेत्र में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। यह एक संयोग की ही बात है कि राजनीति का रंग आप पर इतना चढ़ गया था कि छात्रावस्था में लिखा गया अपना एक उपन्यास आपने आग की भेंट कर दिया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस उपन्यास को सेठ जमनालाल बजाज ने इतना अधिक पसन्द किया था कि आप उसे अपने व्यय पर प्रकाशित करना चाहते थे परन्तु जब उन्हें उसे अग्नि को भेंट कर देने का समाचार मिला तो बड़े दुखी हुए। फिर भी बियाणीजी के मानस की अनुभूतियाँ उनकी 'कल्पना कानन', 'जेल में', 'विनोबा भावे' तथा 'धरती और आकाश' आदि कृतियों में उभरकर सामने आई हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'त्रिविधा' नामक पुस्तक भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आपने सन् 1963 में 'विश्व विलोक' नामक एक अत्यन्त उच्च-कोटि की विचार-प्रधान पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन एवं सम्पादन भी किया था। साथ ही आपने एक ऐसे विचार-केन्द्र की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य सभी सामयिक विषयों पर स्वतन्त्रता-पूर्वक विचारों का आदान-प्रदान करना था।

आपका निधन सन् 1968 में हुआ था।

श्री ब्रजेन्द्र गौड़

श्री गौड़ का जन्म सन् 1925 में लखनऊ में हुआ था; वैसे आपके पूर्वज इटावा के निवासी थे। आप बहुमुखी प्रतिभा वाले ऐसे लेखक थे जिनकी लेखनी सभी क्षेत्रों में समान रूप से सक्रिय रही। आप जहाँ एक सहृदय कवि थे वहाँ संवेदनशील कहानी-लेखक के रूप में भी आपकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई थी। एक मसीजीवी पत्रकार के रूप में अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ करके आपने 'फिल्मी दुनिया' तक पहुँचने में जो अथक संघर्ष किया था, उसका ज्वलन्त साक्षी आपका जीवन ही है।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक दिनों में ही आपने एक उत्कृष्ट कवि, सफल कथाकार और जागरूक पत्रकार के रूप में जो लोकप्रियता प्राप्त की थी, वह आपकी प्रतिभा की परिचायक है। आपने जहाँ 'अतृप्त मानव' शीर्षक अपनी पहली कथाकृति से सन् 1941 में देश के आदर्शवादियों में हड़कम्प मचा दिया था, वहाँ अपने 'पैरोल पर' नामक राजनीतिक उपन्यास के माध्यम से ब्रिटिश नौकरशाही को आतंकित कर दिया था और उसे सरकार ने जब्त भी कर लिया था। आपकी 'सिन्दूर की लाज', 'कलकत्ते का कत्ले-आम', 'भाई-बहन', 'सीप के मोती', 'युद्ध की कहानियाँ' और 'कागज की नाव' आदि कृतियाँ पर्याप्त लोकप्रिय हुई थीं।

लखनऊ-निवास के दिनों में आपने 'ऊर्मिला', 'कृषक', 'विज्ञापक' और 'विजय' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करने के साथ-साथ 'अखिल भारत श्रमजीवी लेखक मण्डल' की स्थापना करके देश में सर्वप्रथम श्रमजीवी लेखकों की समस्याओं के प्रति संघर्ष करने का द्वार उद्घाटित किया था। उन दिनों आपने 'बंकिम' नाम से आकाशवाणी लखनऊ के लिए जहाँ अनेक गीत लिखे वहाँ विभिन्न विषयों पर वार्ताएँ, नाटक एवं फीचर भी लिखे थे।

जब आप स्वतन्त्र लेखन से उकता गए तो विवश होकर फिल्मी दुनिया की ओर चले गए थे। आपके इस जीवन का प्रारम्भ 'सावन' नामक फिल्म से हुआ था। इसमें आपने संवाद लिखने के साथ-साथ गीत भी लिखे थे। जब आप बम्बई की इस दुनिया में गए थे तब तक आपसे पूर्व प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी और अमृतलाल नागर-जैसे अनेक हिन्दी-लेखक वहाँ से असफल होकर लौट चुके थे। लेकिन गौड़जी वहाँ इस प्रकार जमे कि आप फिर बम्बई के ही होकर रह गए।

बम्बई टाकीज से अपनी यात्रा प्रारम्भ करके आपने 25-30 वर्ष के भीतर लगभग 200 फिल्मों के संवाद, कथा और गीत आदि लिखे थे। इनमें से कुछ ऐसी फिल्में भी हैं जिन्हें विभिन्न पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। आपकी ऐसी लोकप्रिय फिल्मों में 'अखियों के झरोखे से' और 'दुलहन वही जो पिया मन भाए' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने जहाँ देवानन्द की नई फिल्मों के संवाद लिखे थे वहाँ फिल्म-निर्देशन में भी आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध फिल्म-निर्माता और निर्देशक श्री शक्ति सामन्त ने भी गौड़जी के सहायक के रूप में कार्य किया था। आपकी हिन्दी फिल्म 'दुलहन वही जो पिया मन भाए' को जहाँ सर्वश्रेष्ठ कहानी का 'फिल्म फेयर पुरस्कार' प्राप्त हुआ था वहाँ आप 'फिल्म लेखक संघ' के उपाध्यक्ष भी थे।

आपका निधन 7 अगस्त सन् 1980 को बम्बई के 'भारतीय आरोग्य-विधि अस्पताल' में हुआ था।

श्री ब्रह्मदत्त शर्मा

श्री शर्मा का जन्म हरियाणा प्रदेश के रोहतक जनपद की झज्जर तहसील के कोसली नामक ग्राम में 28 अप्रैल सन् 1898 को हुआ था। आप संस्कृत साहित्य और ज्योतिष शास्त्र के उद्भट विद्वान् होने के साथ-साथ हिन्दी के सुलेखक भी थे। आपकी शिक्षा 'शेखावटी ब्रह्मचर्याश्रम भिवानी' में हुई थी और आपने अपना जीवन एक सफल शिक्षक के रूप

में ही व्यतीत किया था।

आप कई वर्ष तक गौड़ स्कूल, रोहतक तथा गवर्नमेण्ट स्कूल, हिसार में शिक्षक का कार्य करने के उपरान्त सन् 1928 में दिल्ली आ गए और आपने राजधानी के 'कामर्शियल हाई स्कूल' तथा 'जैन समनोपासक हाई-स्कूल' में कई वर्ष कार्य करने के उपरान्त फिर सन् 1936 से सन् 1946 तक बेरी (हरियाणा) 'म्युनिसिपल हाईस्कूल और सन् 1951 से सन् 1954 तक बिहटा (हरियाणा) के स्कूल में अध्यापन-कार्य किया था। स्वच्छन्द प्रवृत्ति और लड़ाकू स्वभाव के होने के कारण आप बीच-बीच में बेकार भी रहे थे।

आप जहाँ ज्योतिष-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे वहाँ 'रेलवे बजट' के सम्बन्ध में भी साधिकार लिखा करते थे। आपके रेलवे बजट-सम्बन्धी लेख सन् 1925 से ही हिन्दी के प्रायः सभी दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित होने लगे थे। 'दैनिक हिन्दुस्तान', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'कादम्बिनी' आदि पत्र-पत्रिकाओं में आपकी पौराणिक कहानियाँ प्रकाशित होती रहती थीं। जन्म-पत्री बनाने में भी आप बड़े दक्ष थे। द्विवेदी युग के अनेक साहित्यकारों के सम्बन्ध में भी आपके संस्मरण पत्रों में प्रकाशित होते रहते थे। आपकी पौराणिक कथाओं की एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई थी।

आपका निधन 19 दिसम्बर सन् 1976 को हुआ था।

श्री ब्रह्मानन्द

आपका जन्म 21 अगस्त सन् 1908 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद के मीरांपुर नामक कस्बे में हुआ था। आप मूलतः शिक्षक थे और अनेक वर्ष तक आपने दिल्ली के रामजस स्कूल में शिक्षक का कार्य किया था। बाद में राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेकर आपने 'अगस्त-आन्दोलन' के दिनों में जेल-यात्रा भी की थी। आप शिक्षा के क्षेत्र में तो अग्रणी कार्य कर ही रहे थे, संस्कृति का क्षेत्र भी आपकी प्रतिभा से लाभान्वित हुआ था। आप जहाँ अरविन्द के जीवन-दर्शन के अध्ययनशील व्याख्याता थे वहाँ साहित्य-रचना के क्षेत्र में भी आपकी देन अनन्य है।

अपने छोटे भाई श्री विष्णु प्रभाकर के विकास में आपने जहाँ अपनी उल्लेखनीय प्रेरणा प्रदान की वहाँ स्वयं भी लेखन के क्षेत्र में कुछ-न-कुछ करते ही रहे। आपकी 'प्रकाश की बातें' (1956), 'ध्वनि की लहरें' (1956) और 'गर्मी की कहानी' (1958) नामक पुस्तकें बालकों और प्रौढ़ों को विज्ञान-सम्बन्धी जानकारी देने की दिशा में विशेष महत्त्व रखती हैं। इनमें से पहली और तीसरी पुस्तक तो भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आपने विज्ञान-सम्बन्धी कुछ पुस्तकों अकानुवाद भी किया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'अन्तरिक्ष यात्री' और 'इलैक्ट्रानिक्स अग्रगामी ली० डि० फारेस्ट' उल्लेखनीय हैं। आपने यूनेस्को के लिए जहाँ गणित के एक विशालकाय ग्रन्थ का अनुवाद किया था, वहाँ आपको यूनेस्को द्वारा रंगून-बर्मा में आयोजित 'रीजनल सेमिनार ऑन द प्रोडक्शन ऑफ रीडिंग मैटीरियल' में भारत के प्रतिनिधि के रूप में भी निमन्त्रित किया था। यह सेमिनार 28 अक्तूबर से 30 नवम्बर सन् 1957 तक हुआ था। उसी समय आपने 'ब्रह्मदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रंगून' के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी।
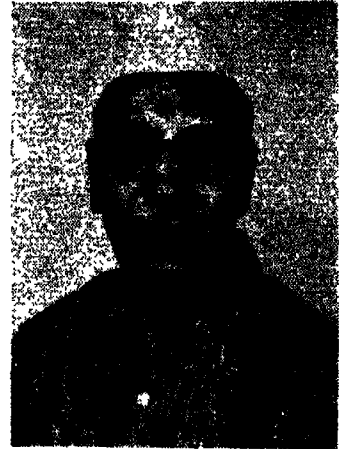
योगिराज अरविन्द के जीवन और विचारों के मौलिक

चिन्तक और व्याख्याता के रूप में आपको जहाँ आकाशवाणी में अनेक बार वार्ताएँ प्रसारित करने के लिए आमन्त्रित किया गया वहाँ आपने आकाशवाणी द्वारा आयोजित शब्द-निर्माण-सम्बन्धी संवादमाला में भी एकाधिक बार भाग लिया था। आपने हिन्दी में मौलिक कहानियाँ तथा अनेक विषयों पर मौलिक लेख लिखने के अतिरिक्त 'अरविन्द-दर्शन और शरत्-साहित्य' का हिन्दी से अँग्रेजी और अँग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद-कार्य भी किया था। समाज-सेवा के क्षेत्र में भी आपकी देन कम महत्त्वपूर्ण नहीं। राजधानी की अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं से आपका निकट का सम्बन्ध था और समय-समय पर आप अपने उपयोगी परामर्श से उन्हें लाभान्वित करते रहते थे। सन् 1946 में नई दिल्ली में आयोजित प्रथम एशियायी कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने वाले सभी विदेशी प्रतिनिधियों से आपने भेंट-वार्ताएँ ली थीं, जो उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। आप कई वर्ष तक प्रसिद्ध गान्धीवादी प्रकाशन-संस्था 'सस्ता साहित्य मंडल' से भी सम्बद्ध रहे थे।

आपका निधन 14 फरवरी सन् 1980 को हुआ था।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

श्री वाजपेयीजी का जन्म 11 अक्तूबर सन् 1899 को उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के मंगलपुर नामक कस्बे में हुआ था। यह कस्बा अपने देव-मंदिरों, विशाल सरोवरों और बाग-बगीचों की दृष्टि से जिले का एक विशिष्ट स्थान माना जाता है। आज जिसको विधिवत् शिक्षा-लाभ कहा जाता है, उससे वाजपेयीजी वंचित ही रहे थे। आपके परिवार की आर्थिक स्थिति उन दिनों ऐसी नहीं थी कि हिन्दी-मिडिल पास कर लेने के बाद आपको जिले के हाई स्कूल में भरती कराया जाता। उर्दू वाजपेयीजी की द्वितीय भाषा थी, अतः उसका आपको सामान्य ज्ञान ही बना रहा। ट्यूटर रखकर अँग्रेजी भी आपने तब पढ़ी, जबकि आप सन् 1922-23 में 'माधुरी' के सम्पादकीय विभाग में चले गए थे। बंगला भाषा का सामान्य ज्ञान उन दिनों प्राप्त किया, जब आप प्रयाग में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में सहायक मंत्री थे। एक बार सन् 1955 में जब आप प्रयाग विश्वविद्यालय की हिन्दी-परिषद् की अध्यक्षता करने गए थे, तब आपने अपनी शिक्षा के सम्बन्ध में जो स्पष्टोक्ति की थी, उससे वहाँ के छात्र चकित रह गए थे; और एक ने तो अपना सिर वाजपेयीजी के पैरों पर ही रख दिया था।

वाजपेयीजी के कार्य-क्षेत्र में उतरने की कथा भी कम रोचक नहीं है। जिस समय वाजपेयीजी ने मिडिल पास किया था, उन दिनों आपकी अवस्था केवल 14 वर्ष की थी। जब आप केवल 11 वर्ष के थे और चौथी कक्षा में पढ़ते थे, तब आपका विवाह हो गया था। इतनी कम आयु होने के कारण प्रयत्न करने पर भी जिले के शिक्षा-विभाग में आपको नौकरी न मिल सकी। चार वर्ष बाद 18 वर्ष की अवस्था में गाँव के स्कूल में ही आप सहायक-अध्यापक हो गए। उन दिनों 'इन्दु', 'सरस्वती', 'मर्यादा' तथा 'प्रताप' साप्ताहिक आदि पत्र-पत्रिकाएँ आपको पढ़ने को मिल जाती थीं। 'सरस्वती' में प्रकाशित होने वाले स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के अमेरिका-यात्रा सम्बन्धी लेखों को पढ़कर कभी-कभी वाजपेयीजी का मन विद्रोह कर उठता था। फलतः वाजपेयीजी नौकरी की

परवाह किये बिना ही मालवा (मध्य प्रदेश) के बड़नगर नामक स्थान पर चले गए, जहाँ उन दिनों आपके चचेरे भाई वकालत किया करते थे। आपने वाजपेयीजी को 'नायब तहसीलदार' बनवाने का आश्वासन दिया और वह अवसर की प्रतीक्षा में कुछ दिन वहाँ रहे भी। किन्तु थोड़े दिन बाद बीमार हो जाने के कारण आपको फिर से अपनी जन्मभूमि मंगलपुर लौट आना पड़ा। यह सन् 1918 की बात है। जब श्रीमती एनी बेसेण्ट का होमरूल-आन्दोलन देश में जोरों पर था; उन्हीं दिनों कानपुर की होमरूल लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन के पद पर वाजपेयीजी की नियुक्ति 12 रुपए मासिक पर हो गई और आप गाँव से कानपुर चले आए। गाँव के स्कूल

में आपको 8 रुपए मासिक वेतन मिलता था। जब आप सन् 1925 में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के सहकारी मंत्री थे तब वहाँ 60 रुपए मासिक वेतन पाते थे। आप सम्मेलन में सन् 1925 से 1928 तक रहे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सन् 1919 में होमरूल लीग के पुस्तकालय में काम करते हुए भी अपने बड़े भाई के स्वर्गवास हो जाने के कारण वाजपेयीजी पुस्तकों का गट्ठर कंधे पर लादकर शहर में इधर-उधर उनकी बिक्री करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। चार वर्ष बाद जब लीग के पुस्तकालय से नौकरी छूट गई तब आपने अपनी धर्मपत्नी के सारे आभूषण बेचकर एक 'स्वदेशी स्टोर' भी खोला था। किन्तु छः मास बाद दुकान में चोरी हो जाने के कारण उसे भी बन्द करना पड़ा। बेकारी के दिन काटने के लिए कुछ महीने तक एक 'डिस्पेन्सरी' में कम्पाउण्डरी की, और साथ में एक प्रेस में 'प्रूफरीडरी' का कार्य भी मिल गया। बाद में कम्पाउण्डरी छूट गई और उसी प्रेस से प्रकाशित होने वाले 'संसार' नामक मासिक पत्र में सहकारी सम्पादन का कार्य आपने किया और फिर धीरे-धीरे आप उसके मुख्य सम्पादक भी हो गए।

इस प्रकार वाजपेयीजी का जीवन एक ऐसे संघर्षशील साहित्यकार का जीवन था, जिसने अपने जीवन को सफलता के पथ पर अग्रसर करने के लिए पैसों से भरे थैले कोसों तक अपने कंधे पर लादकर जहाँ देहात के बाजारों में साहूकारी की, वहाँ इधर-उधर घूम-घूमकर लैक्चरबाजी भी की। आवश्यकतावश आपने गाँव में गाय-भैंस, बैल और बकरियाँ भी चराईं।

वाजपेयीजी का साहित्यिक जीवन उस समय प्रारम्भ हुआ था जब आप कानपुर में आकर बसे थे। सबसे पहले आपने कविता लिखनी प्रारम्भ की थी। कविता के क्षेत्र में आपको अपने काव्य-गुरु स्व० बाँकेलाल चतुर्वेदी से आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली थी। पिंगल और अलंकारों का विधिवत् ज्ञान भी आपको चतुर्वेदीजी की कृपा से ही प्राप्त हुआ था। गद्य लिखने की प्रेरणा आपको पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र (भूतपूर्व मुख्यमंत्री, मध्य प्रदेश) से मिली थी, जो उन दिनों कानपुर के क्राइस्ट चर्च कालेज में पढ़ते थे और नित्यप्रति होमरूल-लीग के वाचनालय में आया करते थे। कहानी-लेखन की ओर वाजपेयीजी को स्व० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक (प्रसिद्ध कहानीकार) ने उन्मुख किया था। वाजपेयीजी की पहली कविता मई सन् 1917 में लाला भगवानदीन के सम्पादन में गया (बिहार) से प्रकाशित होने वाली 'लक्ष्मी' नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। आपका पहला लेख सन् 1919 में कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'संसार' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ था, जब कि आप उसके सहकारी सम्पादक थे। 'यमुना' शीर्षक आपकी पहली कहानी सन् 1922 में जबलपुर (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित होने वाली 'श्रीशारदा' नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, और उस पर तीन रुपए पारिश्रमिक भी प्राप्त हुआ था। 'श्री शारदा' के सम्पादक श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ही थे।

वाजपेयीजी का सबसे पहला उपन्यास 'प्रेम-पथ' सन् 1926 में 'पुस्तक भंडार' लहेरियासराय, दरभंगा (बिहार) से प्रकाशित हुआ था। वाजपेयीजी के इस उपन्यास की विस्तृत भूमिका में प्रेमचन्दजी ने उन दिनों वाजपेयीजी के उपन्यासकार-रूप की जो प्रशंसा की थी, उससे आपको इस क्षेत्र में आगे बढ़ने की पर्याप्त प्रेरणा मिली। प्रेमचन्दजी ने लिखा था—"भगवतीप्रसादजी ने हिन्दी-संसार को बहुत अच्छी वस्तु भेंट की है। इसमें वासना और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप चकित रह जाएँगे। स्त्री-पुरुष में प्रेम हो जाना स्वाभाविक क्रिया है, लेकिन जिस प्रेम का अन्त विवाह न होकर, केवल वासना हो, वह कलुषित है। उसकी निन्दा होती है, और होनी भी चाहिए, अन्यथा विवाह की मर्यादा भंग हो जाएगी।" इस प्रकार वाजपेयीजी ने अपने पहले उपन्यास की भूमिका लिखवाकर ही प्रेमचन्दजी का आशीर्वाद प्राप्त नहीं किया, प्रत्युत आपकी दूसरी कहानी 'अनधिकार चेष्टा' भी उन्होंने 'मर्यादा' में प्रकाशित की। उन दिनों वे उसके सम्पादक थे। जब वाजपेयीजी ने उनसे पारिश्रमिक की माँग की तब व्यंग्यात्मक शैली में पत्र लिखते हुए उन्होंने यह संकेत किया कि, "यह आपकी अनधिकार-चेष्टा है, किन्तु फिर भी पाँच रुपए भेज रहे हैं।"

प्रेमचन्दजी के प्रोत्साहन और विषम आर्थिक स्थिति के आलोड़न-विलोड़न ने आपको विवश किया कि आप कथा-लेखन की दिशा में अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग करें। पहले-पहल आपने कहानियाँ ही अधिक लिखीं, लेकिन बाद में उपन्यास-लेखन की ओर भी अग्रसर हुए। आपने अनुभव

किया कि मनोग्रन्थियों का पूर्ण विश्लेषण कहानी की अपेक्षा उपन्यास में अधिक सफलता से हो सकता है। कालान्तर में आप इस निष्कर्ष पर भी पहुँचे कि कहानी में जीवन की सांगोपांग सर्वांगीण व्याख्या भी नहीं हो पाती। परिणाम यह हुआ कि उपन्यास-लेखन ही वाजपेयीजी के साहित्य-सृजन की मुख्य विधा बन गई और इस ओर आप पूर्ण तन्मयता से जुट गए। एक कारण यह भी था कि कहानियों से उन दिनों अधिक-से-अधिक पारिश्रमिक दस-पन्द्रह रुपए ही मिल पाता था और उपन्यास की ओर जनता का रुझान बढ़ता जा रहा था।

'माधुरी' के सम्पादकीय विभाग से त्याग-पत्र देकर जब आप सन् 1925 में प्रयाग गए, तब से ही आपके साहित्यिक जीवन का उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ। वहाँ आप सन् 1925 से सन् 1944 तक रहे। बाद में फिल्म-व्यवसाय की आँख-मिचौनी से आकर्षित होकर आप बम्बई चले गए थे। प्रयाग में जहाँ आपका सम्पर्क अनेक सुधी साहित्यकारों, समीक्षकों, कवियों और पत्रकारों से हुआ, वहाँ साहित्य-निर्माण की दिशा में भी आपने पर्याप्त प्रगति की। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वहाँ पर आपने सात-आठ वर्ष तक पुस्तक-विक्रय और प्रकाशन का कार्य भी किया; किन्तु जब उसमें सफलता नही मिली तब सन् 1935 से स्वतन्त्र लेखन को ही अपना प्रमुख ध्येय बनाया। पुस्तक-विक्रय और प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व वाजपेयीजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सहायक मंत्री होकर ही प्रयाग पहुँच गए थे।

जिन दिनों वाजपेयीजी प्रयाग में थे, उन दिनों आपकी कोई निश्चित आय नहीं थी। बड़ी कन्या कृष्णा (वाजपेयीजी के मात्र दो कन्याएँ ही हैं, जो अब गृहस्थ जीवन में हैं) के विवाह-योग्य हो जाने के कारण आप निरन्तर चिन्तित और अव्यवस्थित रहा करते थे। परिणामस्वरूप हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री अमृतलाल नागर ने आपको बम्बई की 'विष्णु सिनेटोन' नामक फिल्म कम्पनी में कहानी, संवाद और गीत लिखने के लिए नियुक्त करवा दिया और आप जनवरी सन् 1945 में बम्बई चले गए। उस समय धीरूभाई देसाई और नटवर श्याम उसके निर्देशक और निर्माता थे। लगभग एक वर्ष तक 'विष्णु सिनेटोन' में कार्य करने के उपरान्त वाजपेयीजी 'जीवन कला-चित्र' और 'संसार मूवीटोन' में स्वतन्त्र रूप से कहानी, संवाद और गीत-लेखन का कार्य करते रहे और सन् 1948 के अक्तूबर महीने में आप बम्बई से लौट आए। जिन दिनों वाजपेयीजी बम्बई में थे, उन दिनों श्री अमृतलाल नागर के अतिरिक्त श्री भगवतीचरण वर्मा और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' भी बम्बई में ही थे। भारत-विभाजन हो जाने के कारण बम्बई के कई स्टुडियो बन्द हो चुके थे, इसी कारण जब उक्त तीनों साहित्यकार बम्बई से चले आए तब वाजपेयीजी का मन भी वहाँ से उखड़ गया। बम्बई के फिल्म-जीवन के सम्बन्ध में वाजपेयीजी के विचार बड़े क्रान्तिकारी हैं। आपकी मान्यता थी, "ऐसे जीवन का क्या, जिसमें कोई सगा नहीं होता; क्योंकि वहाँ का माई-बाप होता है 'पैसा'। वहाँ बेईमानी का नाम है 'चातुर्य', विश्वास-घात का नाम है 'आगे बढ़ना', 'उन्नति करना'। मैंने वहाँ यह अनुभव किया कि साहित्य में जिसे कहानी कहते हैं, सिनेमा-उद्योग में उसका कोई महत्त्व नहीं है। उछल-कूद, हा-हा, ही-ही, मार-पीट, मर्डर, कोर्ट सीन और अन्त में खल-नायक के षड्यन्त्र का भंडाफोड़ एवं नायक-नायिका का मिलन ही 'फिल्म स्टोरी' के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य है।"

वाजपेयीजी ने यद्यपि उपन्यास और कथा-लेखन में ही अधिक ख्याति अर्जित की है, तथापि आजीविका-निर्वाह के लिए आपने दो नाटक ('छलना' तथा 'राय पिथौरा') भी प्रकाशकों के अनुरोध पर लिखे हैं। 'बाल साहित्य' के सृजन की दिशा में भी आपकी देन कम नहीं है। आपकी ऐसी कृतियों में 'आकाश पाताल की बातें', 'बालकों के शिष्टाचार', 'शिवाजी', 'बालक प्रह्लाद', 'बालक ध्रुव', 'हमारा देश', नागरिक-शास्त्र की कहानियाँ' तथा 'प्रौढ़ शिक्षा की योजना' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आपकी सम्पादित पुस्तकों में 'प्रतिनिधि कहानियाँ', 'हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ', 'नव कथा', 'नवीन पद्य-संग्रह' और 'युगारम्भ' आदि हैं।

वाजपेयीजी ने कुल मिलाकर 55 उपन्यास और 300 से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। आपके उपन्यासों के पात्र, घटनाएँ, वातावरण और कथानक ऐसे हैं, जो जन-साधारण की पकड़ से दूर नहीं प्रतीत होते। मनुष्य-जीवन की कोई भी ऐसी समस्या नहीं दिखाई देती, जो आपके उपन्यासों में विवेचित न हुई हो। आपके उपन्यासों के पात्रों का चाल-ढाल, रहन-सहन, वार्तालाप और जीवन-क्रम इस स्वाभाविकता से घटित होता चलता है कि पाठक को उससे बड़ी

प्रेरणा मिलती है। अपनी उपन्यास-कला के सम्बन्ध में आपका यह कथन वास्तव में सही उतरता प्रतीत होता है— "अपने प्रारम्भिक लेखन में टैगोर और शरत् की कृतियों से मैंने प्रेरणा पाई है, किन्तु मैंने अपनी टेकनीक का निर्माण सर्वथा स्वतन्त्र रूप से कर लिया है। मेरा विश्वास है कि कलाकार वहाँ समाप्त हो जाता है जहाँ वह किसी श्रेष्ठ कलाकार की शैली, अभिव्यंजना अथवा टेकनीक का अनुसरण करता है; यद्यपि प्रारम्भ में बड़े-से-बड़े कलाकार अपने पूर्ववर्ती कलाकारों से प्रभावित होते देखे जाते हैं।'

वाजपेयीजी के लगभग 55 उपन्यासों में से यद्यपि सबसे अधिक उल्लेखनीय नाम निकालने कठिन हैं, किन्तु फिर भी 'चलते-चलते', 'राजपथ', 'विश्वास का बल', 'सूनी राह', 'उनसे न कहना', 'सपना बिक गया', 'एक प्रश्न' तथा 'एकदा' आदि विशेष परिगणनीय है। यद्यपि आपको 'दो बहनें' तथा 'पतिता की साधना' नामक उपन्यासों के कारण 'उपन्यासकार' के रूप में अधिक ख्याति मिली थी, किन्तु कला की दृष्टि से आपके पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा ये उपन्यास अधिक सशक्त और सफल कहे जा सकते हैं। वैसे वाजपेयीजी को लौकिक और व्यावहारिक दृष्टि से सबसे अधिक अर्थ-लाभ अपने 'गुप्त धन' उपन्यास से हुआ है, जो किसी समय उत्तर प्रदेश की इण्टरमीडिएट परीक्षा में पाठ्य-क्रम में था। इस अकेले उपन्यास से ही आपको 10 हजार रुपए से अधिक की उपलब्धि हुई थी, ऐसा आप कहा करते थे।

अपनी तीन सौ से अधिक कहानियों में से आपको सबसे अधिक ख्याति 'मिठाई वाला' और 'निंदिया लागी' के कारण मिली है। जो लोग कहते हैं कि आपकी 'मिठाई वाला' कहानी पर टैगोर की 'काबुली वाला' कहानी का प्रभाव है, वे वाजपेयीजी के व्यक्तित्व और आपकी कला के साथ अन्याय करते हैं। आपकी कहानियों के आठ संग्रहों में से 'खाली-बोतल' तथा 'उतार-चढ़ाव' कला की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वाजपेयीजी की साहित्यिक देन और आपका कृतित्व इतना है कि उसके अनुरूप हिन्दी-जगत् ने आपका यथोचित सम्मान नहीं किया। वैसे सन् 1941 में अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अबोहर-अधिवेशन में होने वाली 'साहित्य-परिषद्' की अध्यक्षता भी आपने की थी, किन्तु इतना ही तो बहुत-कुछ नहीं कहा जा सकता। इतने महत्त्वपूर्ण उपन्यासों, कहानियों और नाटकों की सर्जना करने के बाद भी वाजपेयीजी की साहित्यिक देन का जो समुचित मूल्यांकन नहीं किया गया, यह हमारा ही दुर्भाग्य कहा जा सकता है। कानपुर के कुछ साहित्यकारों द्वारा वाजपेयीजी की 55वीं वर्षगाँठ पर आपकी साहित्यिक सेवाओं पर प्रकाश डालने वाला 'साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी' नामक एक अभिनन्दन-ग्रन्थ आपको भेंट किया गया था। अपनी मृत्यु (8 मई, 1973) से पूर्व भी आपको एक विशालकाय अभिनन्दन ग्रन्थ कानपुर में डॉ० ललित शुक्ल के सम्पादन में भेंट किया गया था। आपका देहावसान दतिया में अपनी पुत्री के निवास पर हुआ था।

श्री भगवन्नारायण भार्गव

श्री भार्गवजी का जन्म 25 नवम्बर सन् 1891 को उत्तर प्रदेश के झाँसी जनपद के मऊरानीपुर नामक ग्राम में हुआ था। एम० डी० हाई स्कूल, झाँसी से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने आगरा विश्वविद्यालय से वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् 1945 से सन् 1946 तक आप प्रैक्टिस करते रहे। इस बीच सन् 1919 से आप राजनीति में भी सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे और जब सन् 1923 में उत्तर प्रदेश में लेजिस्टलेटिव कौंसिल बनी तब आप उसके सदस्य भी चुने गए थे। इसके उपरान्त आप झाँसी जिला परिषद् के अध्यक्ष भी अनेक वर्ष तक रहे थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आपने अनेक बार जेल-यात्राएँ भी की थीं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जब उत्तर प्रदेश में

'पंचायत राज्य-प्रणाली' का श्रीगणेश हुआ तब आप उसके संचालक नियुक्त किये गए थे। फिर कई वर्ष तक आप 'हरिजन व समाज-कल्याण विभाग' के भी संचालक रहे थे। सन् 1960 से सन् 1966 तक आप राज्य-सभा के भी सदस्य रहे थे।

साहित्य-रचना और हिन्दी-प्रचार के प्रति आपका झुकाव प्रारम्भ से ही था। आपने सन् 1910 से नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के विभिन्न कार्य-कलापों में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। आप जहाँ एक सफल लेखक थे वहाँ उत्कृष्ट कवि के रूप में भी जाने जाते थे। आपकी रचनाएँ देश की तत्कालीन सभी पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थीं। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आपको कैंसर हो गया था और आँखों से भी कम दिखाई देने लगा था।

आपका निधन 26 सितम्बर सन् 1980 को बाँदा (उत्तर प्रदेश) में अपने छोटे भाई श्री गंगानारायण भार्गव के पास हुआ था।

लाला भगवानदीन 'दीन'

श्री 'दीन' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद के बरबट नामक ग्राम में अगस्त सन् 1866 में हुआ था। आपके पूर्वज पहले रायबरेली में रहते थे और बाद में आप लोग रामपुर चले गए थे। वहाँ से ही आपके पारिवारिकजन बरबट में आए थे। 11 वर्ष की आयु तक आप अपनी जन्मभूमि में रहकर ही उर्दू तथा फारसी पढ़ते रहे थे। तदनन्तर आपके पिता 'दीन' जी को बुन्देलखण्ड में ले गए, जहाँ पर वे नौकर थे। किन्तु आपकी पढ़ाई की वहाँ भी कोई उचित व्यवस्था न होती देखकर आपको फिर गाँव में ही वापस भेज दिया। 17 वर्ष की आयु में आपको फतेहपुर के हाईस्कूल में प्रविष्ट किया गया, जहाँ से आपने इण्ट्रैंस की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस बीच आपका विवाह भी हो गया था। इण्ट्रैंस की परीक्षा देने के अनन्तर आपने इलाहाबाद जाकर वहाँ के म्योर सेण्ट्रल कालेज में आगे की पढ़ाई प्रारम्भ की और साथ-साथ ट्यूशन आदि भी करते रहे। गृहस्थी के झंझटों के कारण आपकी कालेज की पढ़ाई नहीं हो सकी और आपने 'कायस्थ पाठशाला' में अध्यापन-कार्य प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद आपने कुछ दिन तक प्रयाग के ही 'गर्ल्स मिशन स्कूल' में फारसी पढ़ाने का कार्य प्रारम्भ किया और फिर छतरपुर (बुन्देलखण्ड) चले गए। वहाँ के स्कूल में आपने सन् 1894 से सन् 1907 तक कार्य किया और तदनन्तर काशी के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में उर्दू के शिक्षक होकर चले गए। यह एक विचित्र संयोग की बात है कि उर्दू तथा फारसी से अपने जीवन का प्रारम्भ करके आप बाद में हिन्दी के प्रति ऐसे उन्मुख हुए कि फिर आपकी गणना साहित्य के धुरन्धरों में होने लगी।

काशी में जाकर आपके कार्य-क्षेत्र का विस्तार हुआ और आपने उर्दू-शिक्षण के कार्य को सर्वथा तिलांजलि देकर 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से तैयार होने वाले 'शब्द कोश' के निर्माण में सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे आपने हिन्दी में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली कि जब बाबू श्यामसुन्दरदास के कश्मीर राज्य की सेवा में संलग्न हो जाने पर 'कोश विभाग' वहाँ चला गया तब आप गया से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'लक्ष्मी' के सम्पादक होकर वहाँ चले गए। जिन दिनों आप छतरपुर में शिक्षक थे तब आपने अपना हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान स्वाध्याय के बल पर इतना बढ़ा लिया था और बुन्देलखण्ड के अनेक कवियों की इतनी रचनाएँ स्मरण कर ली थीं कि धीरे-धीरे आपने भी कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। वहीं पर आपने पंडित गंगाधर व्यास से अलंकार तथा छन्द-सम्बन्धी नियमों का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। वहाँ पर रहते हुए ही आपने 'शृंगार तिलक' और 'रामायण' के दोहों के आधार पर अनेक कुण्डलियों की रचना भी की थी। छतरपुर में ही आपने 'कवि समाज' और 'काव्य लता' नामक दो

साहित्यिक संस्थाओं की संस्थापना करने के अतिरिक्त 'भारती भवन' नामक एक पुस्तकालय भी खोला था। वहाँ पर रहते हुए ही आपने 'रसिक मित्र', 'रसिक वाटिका' तथा 'लक्ष्मी उपदेश लहरी' नामक पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाएँ प्रकाशनार्थ भेजनी प्रारम्भ कर दी थीं।

'लक्ष्मी' के सम्पादन-कार्य को सँभालने के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि उसके सम्पादक देवरी-निवासी श्री मंजु सुशील का जब देहान्त हो गया तो उसके संचालकों ने आपको इसलिए आमन्त्रित किया था कि मंजु सुशीलजी मरने से पूर्व 'लक्ष्मी' के संचालकों को यह परामर्श दे गए थे कि उनके बाद 'लक्ष्मी' के सम्पादन का कार्य 'दीन' जी को ही सौंपा जाय। 'दीन' जी ने यह कार्य अत्यन्त योग्यतापूर्वक सम्पन्न किया था। जहाँ आपकी 'भक्ति भवानी' नाम की एक कविता को कलकत्ता की 'बड़ा बाजार लायब्रेरी' ने 'स्वर्ण पदक' प्रदान किया था वहाँ आपके 'रूस पर जापान क्यों विजयी हुआ' शीर्षक निबन्ध पर 100 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया था। आपने अपनी पहली धर्मपत्नी 'बुन्देला बाला' को पढ़ा-लिखाकर इतना योग्य बना लिया था कि वे कविता भी करने लगी थीं। उनका नाम हिन्दी की प्रमुख कवयित्रियों में गिना जाता है। खेद की बात है कि उनका असमय में ही देहावसान हो जाने के कारण 'दीन' जी ने छतरपुर में ही दूसरा विवाह कर लिया था। काशी जाने पर आपकी वह पत्नी भी चल बसीं और सन् 1912 में आपने तीसरा विवाह कर लिया। काशी में रहते हुए आपने 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' में भी अध्यापन-कार्य किया था। आप मुख्य रूप से केशव और बिहारी के काव्य के ही विशेषज्ञ समझे जाते थे और इन्हीं कवियों को पढ़ाया करते थे।

एक कुशल शिक्षक होने के साथ-साथ 'दीन' जी अच्छे कवि, गम्भीर लेखक और सहृदय समीक्षक भी थे। आपने जहाँ 'धर्म और विज्ञान', 'वीर प्रताप', 'वीर बालक' और 'वीर क्षत्राणी' नामक पुस्तकें लिखीं वहाँ 'राम चन्द्रिका', 'कवि प्रिया', 'रसिक प्रिया', 'कवितावली' और 'बिहारी सतसई' की प्रामाणिक टीकाएँ भी प्रस्तुत कीं। आपके द्वारा लिखित 'अलंकार मंजूषा' नामक ग्रन्थ अलंकार-वर्णन की दिशा में सर्वथा बेजोड़ है। इसमें 10 शब्दालंकारों और 108 अर्थालंकारों का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आपका शब्द-शक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थ 'व्यंग्यार्थ मंजूषा' भी अपनी अनूठी विशेषता रखता है। आपकी 'नवीन बीन' तथा 'नदीमे दीन' नामक काव्य-कृतियाँ भी उल्लेख्य हैं। इनमें से पहली में जहाँ 'दीन' जी की हिन्दी-रचनाएँ संकलित हैं वहाँ दूसरी में उर्दू-रचनाएँ समाविष्ट हैं। 'वीर पंचरत्न' नामक आपकी पुस्तक वीर-रस के क्षेत्र में सर्वथा अद्वितीय है। आप अपनी रचनाओं में उर्दू छन्दों का प्रयोग भी किया करते थे। आपके द्वारा सम्पादित 'सूक्ति सरोवर' नामक ग्रन्थ भी सर्वथा संग्राह्य एवं उपादेय है।

काशी विश्वविद्यालय के शिक्षण-काल में आपने हिन्दी के अनेक ऐसे महारथी तैयार कर दिए थे, जिन्होंने आगे चलकर आपकी गम्भीर पाण्डित्य-परम्परा को पुनर्स्थापित करने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। ऐसे महानुभावों में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का नाम सर्वोपरि है। आपकी स्मृति में काशी में स्थापित 'भगवानदीन साहित्य विद्यालय' अब भी हिन्दी की उल्लेखनीय सेवा कर रहा है।

आपका निधन जुलाई सन् 1930 में हुआ था।

श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित

श्री दीक्षितजी का जन्म सन् 1884 में उत्तर प्रदेश के आगरा मण्डल के बटेश्वर (इटावा) नामक स्थान के निकट मई नामक ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा प्रयाग में हुई थी। विद्याध्ययन के उपरान्त पहले आप कोटा (राजस्थान) के नार्मल स्कूल के प्रधानाध्यापक तथा बाद में इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स और इण्टर कालेज के प्रोफेसर रहे थे।

राजस्थान से आने के उपरान्त कुछ समय तक आपने हिन्दी

साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा संचालित 'हिन्दी विद्यापीठ' के प्रधानाचार्य का कार्य भी सँभाला था। आप लखनऊ के सेन्ट जोसफ तथा नेशनल हाई स्कूल में भी शिक्षक रहे थे।

आपने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की 'साहित्यरत्न' परीक्षा सन् 1929 में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की थी और इसी कारण साहित्य की शोध तथा समीक्षा की ओर आपका सहज झुकाव हो गया था। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण कुछ समय तक आपने नागरी प्रचारिणी सभा काशी में शोध तथा अनुसन्धान का कार्य भी किया था। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'शिवा बावनी', 'साहित्य सरोज', 'हिन्दी व्याकरण शिक्षा', 'साहित्य सुधाकर', 'गद्य प्रवेशिका', 'गाजी मियाँ', 'हिन्दू जाति की पाचन-शक्ति', 'दीक्षित कोष' और 'वीर काव्य-संग्रह' (डॉ० उदयनारायण तिवारी के साथ) आदि विशिष्ट हैं।

आपके शोधपूर्ण लेखों के कारण आपकी ख्याति हिन्दी के उच्चतम समीक्षकों मे होती थी। आपके ऐसे शोधपूर्ण लेख 'माधुरी', 'सुधा', 'सरस्वती', 'गंगा', 'भारत', 'काव्य-कुब्ज', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'हिन्दुस्तानी' आदि हिन्दी की सभी उच्चकोटि की पत्र-पत्रिकाओं में पकाशित हुआ करते थे। आपके ऐसे लेखों में 'कौशाम्बी', 'बटेश्वर का वर्णन', 'महाकवि भूषण', 'मतिराम और भूषण के आक्षेपों का उत्तर' तथा 'रहीम, कबीर और तुलसी के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कुछ दिन तक आपने अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के प्रचार तथा उनके केन्द्र आदि स्थापित करने का कार्य भी किया था। पंजाब और राजस्थान में अनेक स्थानों की यात्रा करके आपने वहाँ की जनता को हिन्दी के प्रति उन्मुख किया था। अपनी गहन विद्वत्ता और शोध-प्रवृत्ति के कारण आप 'भूषण-काव्य' के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। भूषण को राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में आपने बहुत संघर्ष किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप लखनऊ में रहने लगे थे। वहाँ पर रहते हुए आपने अनेक छात्रों को भूषण तथा रीति-काल के काव्य का अच्छा अध्ययन कराया था।

आप सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री गेंदालाल दीक्षित के छोटे भाई थे। अपने भाई के अनुरूप क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों में भाग लेने, संकटों से जूझने और बाधाओं से टकराने का आपका स्वभाव बन गया था। उच्चकोटि के कवि, लेखक और समीक्षक तो आप थे ही, आपने हिन्दी की अनेक प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में भी कार्य किया था। वास्तव में आप 'आचार्यों के भी आचार्य' थे।

आपका निधन 8 जनवरी सन् 1976 को लखनऊ में हुआ था।

श्री भगीरथप्रसाद शारदा

श्री शारदाजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के सरधना नामक नगर में 23 मार्च सन् 1913 को हुआ था। आपका अधिकांश कार्य-क्षेत्र सहारनपुर में ही रहा था। वहाँ पर रहते हुए आपने 'माहेश्वरी' तथा 'विकास' आदि पत्रों में कार्य किया था। इन्हीं पत्रों में आपकी कुछ स्फुट गद्य तथा पद्य-रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

आपका निधन 30 जून सन् 1976 को सहारनपुर में ही हुआ था।

श्री भवानीदयाल संन्यासी

श्री भवानीदयाल संन्यासी के पूर्वज यद्यपि बिहार के शाहाबाद जिले के निवासी थे, परन्तु आपका जन्म दक्षिण अफ्रीका के 'जोहान्सबर्ग' नामक नगर में 10 सितम्बर सन् 1892 को हुआ था। आपके पिता बाबू जयरामसिंह शर्तबादी कुली-प्रथा के शिकार होकर दक्षिण अफ्रीका चले गए थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जोहान्सबर्ग में 'सेण्ट सिप्रियन' तथा 'वेस्लन मैथोडिस्टी' नामक स्कूलों में अँग्रेजी माध्यम से हुई थी और हिन्दी का ज्ञान आपने आत्मारामजी गुजराती की पाठशाला में प्राप्त किया था। आपने कहीं से भी किसी स्कूल की पढ़ाई का प्रमाण-पत्र प्राप्त नहीं किया था और सारी योग्यता अपने स्वाध्याय के बल पर ही बढ़ाई थी। सन् 1899 में जब आपकी माताजी का देहावसान हो गया तो सन् 1904 में आप अपने पिताजी के साथ पहले-पहल भारत पधारे थे।

जिन दिनों आप भारत पधारे थे उन दिनों देश में 'बंग-भंग आन्दोलन' जोरों पर था। अपने गाँव में आकर आपने हिन्दी का अच्छा अभ्यास किया और वहाँ एक 'राष्ट्रीय पाठशाला' खोलकर वहाँ के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने लगे। भारत आने पर आपके पिताजी ने 'बहु-आरा' ग्राम को खरीद लिया था। पास के 'इस्माइलपुर' तथा 'तेंदुनी' नामक गाँवों का कुछ भाग भी उन्होंने अपने कब्जे में ले लिया था। सन् 1909 में आप पूर्णतः आर्यसमाज के प्रभाव में आ गए और अपने ग्राम में 'वैदिक पाठशाला' खोलने के अतिरिक्त 'सासाराम' शहर में भी 'आर्यसमाज' की स्थापना करने में पूर्ण सहयोग दिया। धीरे-धीरे आप आर्यसमाज की गतिविधियों में इतने तल्लीन हो गए कि सन् 1911 में आपने 'बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा' का अवैतनिक उपदेशक पद स्वीकार कर लिया। साथ ही सभा की ओर से प्रकाशित होने वाले 'आर्यावर्त' नामक मासिक पत्र के भी आप सहकारी सम्पादक हो गए।

इसी बीच सन् 1908 में आपका विवाह शाहाबाद जिले के 'सखरा' गाँव की एक कन्या के साथ हो गया। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती जगरानी देवी था। वे सर्वथा निरक्षर थीं, किन्तु भवानीदयालजी ने उन्हें विधिवत् पढ़ाकर इतना सुयोग्य बना लिया कि वे आपके भावी जीवन में बहुत सहायक सिद्ध हुईं। जून सन् 1911 में आपके पिताजी का देहान्त हो जाने के उपरान्त जब आपके घर में कलह उत्पन्न हो गया तो आपके चित्त में घनघोर विरक्ति उत्पन्न हो गई। झगड़े का कारण आपके पिताजी का दूसरा विवाह था, जिससे एक पुत्र तथा एक पुत्री थी। विधवा विमाता से आपने झगड़ा करना उचित न समझकर निर्वाह मात्र के लिए थोड़ी-सी सम्पत्ति अपने लिए रखकर सारी सम्पत्ति उन्हें सौंप दी। इसके बाद आप अपनी धर्मपत्नी श्रीमती जगरानी देवी और अनुज देवीदयाल को साथ लेकर सन् 1912 में फिर दक्षिण अफ्रीका चले गए।

स्वामीजी ने दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गान्धी के सत्याग्रह में भाग लेकर सपत्नीक जेल-जीवन व्यतीत किया और वहाँ से सन् 1914 में महात्मा गान्धी ने 'इण्डियन ओपीनियन' नामक जो अँग्रेजी पत्र प्रकाशित किया था उसके हिन्दी संस्करण का सम्पादन आपने ही किया था। महात्मा जी के दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस लौटने के बाद सन् 1915 में आपने वहाँ हिन्दी-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। इस बीच आपने दो वर्ष तक जर्मिस्टन, न्यू कासल, डेन हाउसर, हार्टिंग स्प्रुट, ग्लेंको, बर्न साइड, बिनेन, लेडी स्मिथ और जेकब्स आदि नगरों में 'हिन्दी प्रचारिणी सभाएँ' और 'हिन्दी पाठशालाएँ' स्थापित कीं। डरबन नगर के निकट क्लेर इस्टेट नामक स्थान पर आपने एक 'हिन्दी आश्रम' बनाया, जिसमें 'हिन्दी विद्यालय' तथा 'हिन्दी पुस्तकालय' चलता था। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती जगरानी देवी उस विद्यालय की 'अधिष्ठात्री' थीं। आपने वहाँ 'दक्षिण अफ्रीका हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की नींव भी डाली थी, जिसके कई अधिवेशन बड़े समारोहपूर्वक हुए थे। उसका पहला अधिवेशन 'लेडी स्मिथ' में और दूसरा 'मेरित्सबर्ग' में हुआ था।

हिन्दी-प्रचार का यह कार्य चल ही रहा था कि उन्हीं दिनों आपने 'धर्मवीर' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी प्रारम्भ किया था, जो अँग्रेजी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। सन् 1922 में 'हिन्दी' नामक एक और पत्र आपने निकाला। यह भी दोनों भाषाओं में छपता था। इसी समय आपने डरबन के निकट 'जेकब्स' नामक स्थान में अपनी पत्नी के नाम पर 'जगरानी प्रेस' खोला। 'हिन्दी' का मुद्रण इसी प्रेस में होता था। यह पत्रिका विश्व-भर के प्रवासी भारतीयों में बहुत लोकप्रिय हुई थी। इसके कई विशेषांक इतने सर्वांग सुन्दर निकले थे कि वे हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि 'हिन्दी' के प्रकाशन से एक मास पूर्व ही आपकी धर्मपत्नी श्रीमती जगरानी देवी का देहान्त हो गया था। सन् 1925 के अन्त में जब दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों पर विपत्ति आई तो आप 'हिन्दी' का प्रकाशन स्थगित करके भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग से मिलने और श्रीमती सरोजिनी नायडू की

अध्यक्षता में हुई कांग्रेस के कानपुर-अधिवेशन में उनकी कष्ट-कथा सुनाने के लिए भारत आए थे। उसी वर्ष भारतवर्ष में आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्म-शताब्दी मनाने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसके अध्यक्ष आप ही बनाए गए थे। इसी अवसर पर 'नेटाल आर्य प्रतिनिधि सभा' की भी स्थापना हुई और आपको उसका भी प्रधान बनाया गया। अपनी इस ऐतिहासिक यात्रा की स्मृति में आपने अपने जन्म-ग्राम में 'प्रवासी भवन' भी बनवाया था।

आपने सन् 1927 की रामनवमी को संन्यास ग्रहण किया था, किन्तु अपना नाम न बदलकर उसके अन्त में 'संन्यासी' शब्द ही जोड़ लिया था। फिर आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली की ओर से वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए दक्षिण अफ्रीका लौट गए और दो वर्ष तक वहाँ प्रचार-कार्य करते रहे। सन् 1929 में आप फिर भारत आ गए और सन् 1930 में जब महात्मा गान्धी ने 'दाँडी सत्याग्रह' आरम्भ किया तब आप भी मार्च, 1930 में आरा स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिए गए। आप पर बक्सर, डुमराँव और जगदीशपुर आदि स्थानों में जोशीले भाषण देने पर 'राजद्रोह' का अभियोग चलाया गया। आप ढाई वर्ष तक हजारीबाग की सेण्ट्रल जेल में रहे। आपने वहाँ पर रहते हुए भी 'कारागार' नाम से एक हस्तलिखित मासिक पत्र सम्पादित किया था। इसका 'सत्याग्रह विशेषांक' अत्यन्त उल्लेखनीय है। इस पत्र के 6 अंक 'बिहार विद्यापीठ' को सौंप दिए गए थे। सन् 1930 में आप गुरुकुल वृन्दावन में हुई 'प्रवासी परिषद्' के अध्यक्ष मनोनीत हुए थे। उसी वर्ष आपको शाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष भी चुना गया था। आपने सन् 1931 में देवघर (बिहार) में सम्पन्न हुए 'बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के दसवें अधिवेशन की अध्यक्षता की थी और उसके बाद आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन में हुए 'सम्पादक सम्मेलन' के अध्यक्ष बनाए गए थे। उन दिनों आप पटना से प्रकाशित होने वाले 'बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा' के पत्र 'आर्यावर्त' साप्ताहिक का भी सम्पादन करते थे।

सन् 1944 में 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी के स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव का अध्यक्ष भी आपको चुना गया था। इसके उपरान्त आप स्थायी रूप से अजमेर में रहने लगे थे और 'प्रवासी भवन' बनाकर एक 'प्रवासी' नामक पत्र भी वहाँ से निकालने लगे थे। आपके द्वारा लिखित पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास', 'दक्षिण अफ्रीका के मेरे अनुभव', 'सत्याग्रही महात्मा गान्धी', 'हमारी कारावास कहानी', 'ट्रान्सवाल में भारतवासी', 'नेटाली हिन्दू', 'शिक्षित और किसान', 'वैदिक धर्म और आर्य सभ्यता', 'वैदिक प्रार्थना', 'भजन प्रकाश' 'प्रवासी की आत्म-कथा', 'वर्ण व्यवस्था और मरण-व्यवस्था', 'बोअर-युद्ध का इतिहास', 'स्वामी शंकरानन्द की बृहत् जीवनी' तथा 'सत्याग्रह का इतिहास'। इन पुस्तकों के अतिरिक्त आपकी 'दक्षिण अफ्रीका में आर्य संन्यासी' नामक एक अप्रकाशित रचना भी है। इनके अतिरिक्त आपके द्वारा लिखित अनेक लेख तथा भाषण विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। यदि इनका ही संकलन प्रकाशित कर दिया जाय तो एक महा ग्रन्थ हो जायगा। आपकी हिन्दी-सेवाओं को दृष्टि में रखकर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' की सम्मानित उपाधि भी प्रदान की थी।

आपका परलोक-वास सन् 1951 में हुआ था।

श्री भागीरथ कानोड़िया

श्री भागीरथ कानोड़िया का जन्म राजस्थान के मुकन्दगढ़ नामक स्थान में सन् 1884 को हुआ था। आप 15 वर्ष की अल्पायु में ही अपनी जन्मभूमि को छोड़कर उद्योग-नगरी कलकत्ता चले गए थे और वहाँ पर अपने अथक परिश्रम और अनवरत अध्यवसाय से प्रचुर धन अर्जित किया था। कलकत्ता की अनेक सामाजिक संस्थाओं से निकट का सम्बन्ध रखने के साथ आप प्रत्येक क्षेत्र में अपना उदारतापूर्ण योगदान देते रहते थे।

विश्वभारती शान्ति निकेतन में जिन दिनों 'हिन्दी भवन' की संस्थापना का प्रश्न आया तब श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा पर आपने तथा श्री सीताराम सेकसरिया ने प्रचुर

धनराशि प्रदान करके इस कार्य में हाथ बटाया था। राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के अभिनन्दन के समय भी आपने बहुत सहायता की थी।

कलकत्ता की 'मातृ-सेवा सदन', 'मारवाड़ी बालिका विद्यालय', 'शुद्ध खादी भण्डार', 'श्री शिक्षायतन', 'अभिनव भारती' और 'भारतीय भाषा परिषद्' आदि अनेक प्रमुख समाजोपयोगी संस्थाओं से आपका निकटतम सहयोग रहा था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप सीकर (राजस्थान) में बनने वाले टी० बी० सेनेटोरियम का काम देख रहे थे।

देश की स्वाधीनता की लड़ाई में भी आपका बहुत बड़ा योगदान रहा था। गान्धीजी, जमनालाल बजाज, राजेन्द्र बाबू, सुभाष बाबू, टण्डनजी, सरदार पटेल और जयप्रकाश नारायण-जैसे अनेक नेताओं और सुधारकों से आपका अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क था। हीरालाल शास्त्री की 'वनस्थली विद्यापीठ' के विकास में भी आपका बहुत अधिक योगदान था। राजस्थानी भाषा और साहित्य से भी आपको अनन्य अनुराग था और समय-समय पर आप उसकी समृद्धि के लिए प्रयास करते रहते थे। स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के कारण आपने कुछ दिन कारावास में भी बिताए थे।

समाज-सेवा के क्षेत्र में अग्रणी कार्य करने के साथ-साथ साहित्य-रचना की दिशा में भी आपने अपनी प्रेरक प्रतिभा का परिचय दिया था। कहावतों को कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करने का जो अद्भुत कार्य आपने अपनी 'बहता पानी निर्मला' नामक रचना में किया है वह आपकी प्रतिभा का द्योतक है। राजस्थानी कहावतों के एक कोश का निर्माण भी आपने चूरू के 'लोक संस्कृति शोध संस्थान' के निदेशक श्री गोविन्द अग्रवाल के सहयोग से किया है। आप सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली के ट्रस्टी भी थे।

आपका निधन 29 अक्तूबर सन् 1979 को हुआ था।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर सन् 1850 को अपनी ननसाल में हुआ था। जब आप 5 वर्ष के थे तो आपकी माता का तथा जब आप 10 वर्ष के थे तब आपके पिता का देहावसान हो गया था। आप आधुनिक हिन्दी के निर्माता थे। आपने केवल 35 वर्ष की अल्पायु में ही वह क्रान्तिकारी कार्य कर दिया जिसे बड़े-बड़े लेखक इतने कम समय में नहीं कर सकते। अठारह वर्ष की आयु में आते-आते आपने जहाँ 'विद्यासुन्दर'-जैसा सशक्त नाटक लिखा वहाँ अपने लेखन को गति देने की दृष्टि से 'कवि-वचन-सुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन भी प्रारम्भ किया। 20 वर्ष की अवस्था में आप साहित्यिक और सामाजिक जागरण की ओर भी उन्मुख हुए जिसका ज्वलन्त प्रमाण आपके द्वारा संस्थापित 'कविता वर्द्धिनी सभा' है। अपने साथी-संगियों में हिन्दी के प्रति रुचि जाग्रत करके उनको कविता-लेखन की दिशा में उन्मुख करना ही आपकी इस सभा का मुख्य उद्देश्य था। इस सभा में उन दिनों सरदार, सेवक और दीनदयाल गिरि आदि कवि रुचि और उत्साह-पूर्वक भाग लिया करते थे। इसके 3 वर्ष बाद आपने 'पैनी रीडिंग क्लब', 'तदीय समाज', 'यंगमैंस एसोसिएशन' और 'डिबेटिंग क्लब' आदि कई संस्थाओं की संस्थापना की थी। इन सब संस्थाओं का उद्देश्य समाज के नवयुवकों में सांस्कृतिक और राजनीतिक जागृति उत्पन्न करके उन्हें सुयोग्य वक्ता बनाना भी था।

भारतेन्दु ने जहाँ अपने सम्पर्क में आने वाले युवकों को देश की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक भाव-धारा से परिचित कराया वहाँ उनमें राष्ट्रभाषा हिन्दी में विभिन्न विषय के लेखन की ओर अग्रसर होने की भावना भी उत्पन्न की। अपनी पत्रिका 'कवि वचन सुधा' के माध्यम से आपने जहाँ लेखन की दिशा में अनेक नए प्रयोग किए वहाँ आपके द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'बाला बोधिनी' आदि पत्रिकाओं की भूमिका भी कम महत्त्व नहीं रखती। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' तथा 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' ने जहाँ देश की शिक्षित जनता को राष्ट्रभाषा हिन्दी में अपने विचारों के प्रचार करने का खुला मंच प्रदान किया

वहाँ 'बाला बोधिनी' के माध्यम से आपने महिलाओं को भी इस दिशा में आगे बढ़ाने का सराहनीय कार्य किया। यहाँ तक कि अक्तूबर सन् 1877 की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में

तो आपने हास्य-रस की एक पत्रिका 'पंच' नाम से प्रकाशित करने की घोषणा भी कर दी थी। खेद है कि केवल 13 ग्राहक ही बन पाने के कारण आप अपने इस स्वप्न को साकार न कर सके। आपका विचार सौ ग्राहक स्थायी बन जाने पर ही उसे प्रकाशित करने का था। इस प्रकार भारतेन्दु ने पत्रकार के रूप में जहाँ समस्त देश को जागरण का नवसंदेश देने का अभूतपूर्व प्रयत्न किया वहाँ एक उत्कृष्ट कवि, नाटककार और गद्य-लेखक के रूप में भी आपका अप्रतिम योगदान था। आपने पत्रकारिता के माध्यम से लेखकों का जो मण्डल तैयार किया था उन्हें भी साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचना करने की प्रेरणा देने में आप पीछे नहीं रहे। एक ओर भारतेन्दु जहाँ साहित्यिक अभिवृद्धि के लिए अपनी प्रतिभा का सदुपयोग कर रहे थे वहाँ दूसरी ओर देश की दुर्दशा के प्रति भी आप पूर्णतः सजग और सचेष्ट थे। आपने अपने लेखन का विषय मुख्यतः देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों द्वारा दिन-प्रतिदिन किया जाने वाला शोषण और दीन-हीन जनता के उद्धार को ही बनाया था। वास्तव में यदि हम एक वाक्य में कहें तो आप 'भारतीय नव-जागरण के अग्रदूत' थे।

जिस समय भारतेन्दु का जन्म हुआ था उन दिनों भारत की जनता ब्रिटिश नौकरशाही के दमन-चक्र में बुरी तरह पिस रही थी। क्योंकि भारतेन्दु का परिवार एक राज-भक्त परिवार समझा जाता था अतः साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ भी आपने 'प्यारी अमी की कटोरिया सी, चिर जीवो सदा विक्टोरिया रानी' और 'श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र'-जैसी रचनाओं से किया था। किन्तु जब धीरे-धीरे आपके साहित्यकार ने आँखें खोलीं तब आपको यह लिखने के लिए विवश होना पड़ा :

अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यही है ख्वारी।।

यही नहीं कि आपको देश के धन के विदेश चले जाने की मर्मान्तक पीड़ा थी, आपको तो यह भी दुःख था कि भारत की जनता दिन-रात शोषण की चक्की में क्यों पिसती जा रही है। आपके कवि ने अपनी पीड़ा को जहाँ :

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

यह लिखकर प्रकट किया वहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी के उत्कर्ष की भावना भी इन पंक्तियों में प्रकट की :

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न तन को सूल।।

आपने न केवल हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में अपनी प्रतिभा का पूर्ण प्रयोग किया, बल्कि अपनी प्रायः सभी रचनाओं में देश की तत्कालीन समस्याओं, बुराइयों और बेकारी पर खुले शब्दों में चोट की। यहाँ तक कि अँग्रेजी भाषा के व्यापक प्रचार को देखकर आपका कवि-हृदय इस प्रकार चीख उठा :

तीन बुलाए, तेरह आवैं।
निज-निज विपता रोइ सुनावैं।।
आँखों फूटे, भरा न पेट।
क्यों सखि सज्जन, नहिं ग्रेजुएट।।

आपकी अँग्रेजी और अँग्रेजों के प्रति यह भावना इन पंक्तियों में और भी मुखरता से प्रकट हुई है :

भीतर-भीतर सब रस चूसे।
हँसि-हँसि के तन मन धन मूसे।।
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि सज्जन, नहिं अँग्रेज।।

आपने अँग्रेजों और उनके मुसाहिबों की झूठी लफ्फाजी का पर्दाफाश जिस सशक्त और प्राणदायी शैली में किया है वह आगे चलकर हमारे साहित्य के अनेक महारथियों को प्रेरणा देने वाला बना।

भारतेन्दु जहाँ एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्य-लेखक, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार और जीवन्त गद्य-लेखक थे, वहाँ राष्ट्रीय जागरण की चेतना जगाने में भी आप किसी से पीछे नहीं रहे। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय 8 जून,

1874 की 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित उन पंक्तियों से मिलता है जिनमें आपने देशवासियों को विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने के लिए ललकारा था। आपने लिखा था— "भाइयों! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोंक के इनके सामने खड़े हो जाओ। देखो, भारतवर्ष का धन देश से बाहर न जाने पाए, वह उपाय करो।"

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र उत्कृष्ट साहित्यकार होने के साथ-साथ भारतीय मनीषा को चैतन्य प्रदान करने वाले ऐसे प्रेरणा-बिन्दु थे जिनके कार्य-कलापों के प्रभाव से आज समग्र देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी का पावन सन्देश प्रसारित हो रहा है। आपका निधन 6 जनवरी सन् 1885 को 34 वर्ष 4 मास की अल्पायु में हुआ था। आपकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं: नाटक— 'विद्यासुन्दर' (1868), 'रत्नावली' (1868), 'पाखंड-विडम्बन'(1872), 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'(1873), 'धनंजय विजय' (1873), 'मुद्राराक्षस' (1978), 'सत्य हरिश्चन्द्र' (1875), 'प्रेम योगिनी' (1875), 'विषस्य विषमौषधम्' (1876), 'कर्पूर मंजरी' (1875), 'श्री चन्द्रावली' (1876), 'भारत दुर्दशा' (1880), 'भारत जननी' (1877), 'नीलदेवी' (1881), 'दुर्लभ बंधु' (1880), 'अंधेर नगरी चौपट्ट राजा' (1881), 'सती प्रताप' (1883); 'नाटक'; काव्य— 'भक्ति सर्वस्व' (1870), 'प्रेममालिका' (1871), 'कार्तिक स्नान' (1872), 'वैशाख माहात्म्य' (1872), 'प्रेम सरोवर' (1873), 'प्रेमाश्रुवर्षण' (1873), 'जैन-कुतूहल' (1873), 'प्रेम-माधुरी' (1875), 'प्रेम-तरंग' (1877) 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' (1876-77), 'प्रेम प्रलाप' (1877), 'गीतगोविन्दानन्द' (1877-78), 'सतसई-सिंगार' (1875-78), 'होली' (1879), 'मधुमुकुल' (1880), 'राग-संग्रह' (1880), 'वर्षा विनोद' (1880), 'विनय-प्रेम-पचासा (1880), 'फूलों का गुच्छा' (1882), 'प्रेम फुलवारी' (1883), 'कृष्ण चरित्र' (1883), 'श्री अलबरत वर्णन अंतर्लापिका' (1861), 'श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र' (1869), 'देवी छद्मलीला' (1873), 'प्रातः स्मरण मंगल पाठ' (1873), 'दैन्य प्रलाप' (1873), 'उरहना' (1873), 'तन्मय-लीला' (1873), 'दान-लीला (1873), 'रानी छद्मलीला' (1874), 'बसंत होली' (1874), 'मुँह दिखावनी' (1874), 'प्रबोधिनी' (1874), 'प्रात-समीरन' (1874), 'बकरी-विलाप' (1874), 'स्वरूप-चिंतन' (1874), 'श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन' (1875), 'भारत भिक्षा' (1875), 'सर्वोत्तम स्तोत्र' (1876), 'निवेदन-पंचक' (1876), 'नामसोपायम' (1877), 'प्रातः स्मरण स्तोत्र' (1877), 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' (1877), 'अपवर्गदाष्टक' (1877), 'मनोमुकुलमाला' (1877), 'वेणुगीति' (1877), 'श्रीनाथ स्तुति' (1877), 'अपवर्ग पंचक' (1877), 'पुरुषोत्तम पंचक' (1877), 'भारत-वीरत्व' (1878), 'श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र' (1879), 'श्रीरामलीला' (1879), 'भीष्म-स्तवराज' (1879), 'मानलीला फूलबुझौवल' (1879), 'बन्दर सभा' (1879), 'विजय वल्लरी' (1881), 'विजयिनी-विजय-पताका या वैजयन्ती' (1882), 'नए जमाने की मुकरी' (1884), 'जातीय संगीत' (1884), 'रिपनाष्टक' (1884); इतिहास—'अग्रवालों की उत्पत्ति' (1871), 'चरितावली' (1871-80), 'पुरावृत्त-संग्रह' (1872-74 तथा 82), 'अष्टादश पुराणों की उपक्रमणिका (1875), 'महाराष्ट्र देश का इतिहास' (1875-76), 'दिल्ली-दरबार-दर्पण' (1877), 'उदयपुरोदय' (1877), 'खत्रियों की उत्पत्ति' (1878), 'बूँदी का राजवंश' (1882), 'कश्मीर-कुसुम' (1884), 'बादशाह दर्पण' (1884), 'कालचक्र' (1884), 'रामायण का समय' (1884), 'पंचपवित्रात्मा' (1884); धर्मग्रन्थ—'कार्तिक-कर्म-विधि' (1872), 'कार्तिक-नैमित्तिक कृत्य' (1872), 'मार्गशीर्ष महिमा' (1872), 'माघ-स्नान-विधि' (1873), 'पुरुषोत्तम मास विधान' (1873-74), 'भक्तिसूत्र-वैजयन्ती' (1873-74), वैष्णव सर्वस्व' (1875), 'वल्लभीय सर्वस्व' (1875), 'तदीय सर्वस्व' (1874-76), 'श्रीयुगल सर्वस्व' (1876), 'उत्सवावली' (1876-77), 'वैष्णवता और भारतवर्ष' (1877), 'हिन्दी कुरान शरीफ' (1875-77), 'ईशु खृष्ट और ईश कृष्ण' (1879), 'श्रुतिरहस्य' (1876), 'दूषणमालिका'; अन्य स्फुट रचनाएँ—'मदालसोपाख्यान' (1876), 'राजसिंह', 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जग-बीती', 'पाँचवाँ पैगंबर' (निबन्ध), 'स्वर्ग में विचार-सभा (निबन्ध), 'परिहासिनी' (चुटकुलों का संग्रह), 'संगीत-सार' (1875), बलिया में व्याख्यान' (1877),

'तहकीकातपुरी की तहकीकात' (1871), 'सीतावट निर्णय', 'कृष्ण भोग' (1884), 'स्तोत्र पंचरत्न' (परिहासात्मक गद्य-पद्यमय लेख), 'हिन्दी भाषा' (लेख)।

श्री भीमसेन विद्यालंकार

श्री भीमसेनजी का जन्म 15 अक्तूबर सन् 1900 को जम्मू (ननिहाल) कश्मीर में हुआ था। वैसे आपका पैतृक स्थान पंजाब प्रदेश का श्री हरगोविन्दपुर (गुरदासपुर) था। आपकी शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई थी और वहाँ से सन् 1921 में 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त करके आपने 2 वर्ष तक वहीं पर अर्थशास्त्र तथा इतिहास के अध्यापक के रूप में कार्य किया था। इसके अनन्तर लाला लाजपतराय के 'नेशनल कालेज' में प्राध्यापक रहे। वहाँ पर आपका सम्पर्क सरदार भगतसिंह, सुखदेव, भगवती चरण वोरा और किशोरी लाल आदि कई क्रान्तिकारी युवकों से हुआ था और आपने ही वहाँ पर उन्हें 'रौलेट कमेटी की रिपोर्ट' नामक पुस्तक से परिचित कराया था। इस पुस्तक में विभिन्न क्रान्तिकारियों द्वारा अपनाई गई कार्य-पद्धतियों का विस्तृत विवरण छपा था। इसी पुस्तक से उन युवकों ने बम बनाना सीखा था। फिर आप सन् 1924-25 में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक अर्जुन' के सम्पादक रहे। इस प्रसंग में अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के मुकदमे से सम्बन्धित विवरण को अपने पत्र में प्रकाशित करने पर आपको कारावास भी भुगतना पड़ा था। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि स्वतन्त्रता-आन्दोलन के सिलसिले में भी आप कई बार जेल गए थे।

इस बीच गान्धीजी की प्रेरणा पर आपने अपनी जन्म-भूमि पंजाब में ही रहकर हिन्दी-प्रचार का कार्य करने का संकल्प किया और 'अर्जुन' की सम्पादकी छोड़कर लाहौर चले गए। वहाँ पर जाकर सन् 1926 में 'सत्यवादी' नामक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया, किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह चल नहीं सका। इसके उपरान्त जब राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन पंजाब में 'पंजाब नेशनल बैंक' के मैनेजर होकर लाहौर गए तो उनकी प्रेरणा पर आपने 'सर्वेण्ट्स ऑफ पीपुल्स सोसाइटी' (लोक सेवक मण्डल) के तत्त्वावधान में प्रकाशित होने वाले 'वन्देमातरम्' और 'पंजाब केसरी' पत्रों का सम्पादन किया। लाहौर-कांग्रेस के समय उर्दू तथा अँग्रेजी के दैनिकों के मुकाबले में आपने, अकेले ही अपने प्रयास से 'पंजाब केसरी' का दैनिक संस्करण भी निकाला था। टण्डनजी की प्रेरणा पर ही आपने 'पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का संगठन करके लाहौर कांग्रेस के समय सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में 'राष्ट्र-भाषा सम्मेलन' का आयोजन भी किया था। पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मन्त्री के रूप में आपने 'हीर राँझा' तथा 'लैला मजनूं' आदि पंजाब की प्रसिद्ध लोक-कथाओं और उन पर आधारित गीतों को सम्मेलन की ओर से देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराया था।

पत्रकारिता के क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य करते हुए आपने आर्यसमाज के माध्यम से भी हिन्दी-प्रचार का उल्लेखनीय कार्य किया था। आप 17 वर्ष तक 'पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा' के मन्त्री रहने के साथ-साथ उसके साप्ताहिक पत्र 'आर्य' का सम्पादन भी किया करते थे। सन् 1933 से सन् 1937 तक आपने 'अलंकार' नामक मासिक पत्र का सम्पादन किया था। भारत-विभाजन के उपरान्त जब आपने अपना कार्य-क्षेत्र अम्बाला को बनाया तब वहाँ रहते हुए भी आपने 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन पंजाब' की गतिविधियों को जारी रखा और उसकी ओर से 'हिन्दी सन्देश' नामक पत्र बराबर निकालते रहे।

एक सफल हिन्दी प्रचारक तथा लगनशील पत्रकार होने के साथ-साथ आप सुलेखक भी थे। आपके द्वारा लिखी गई पुस्तकों में 'वीर मराठे', 'वीर शिवाजी', 'वीर पूरबिये' और 'वीर पंजाबी' नामक पुस्तकें अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। आपने 'बाल महाभारत' और 'दयानन्दोपनिषद्' नामक पुस्तकों की रचना करने के साथ-साथ लाला लाजपतराय द्वारा लिखित

'आत्मकथा' तथा 'वर्तमान भारत' नामक पुस्तक का सम्पादन भी किया था। आप हिन्दी-संस्कृत और अँग्रेजी के ज्ञाता होने के साथ-साथ मराठी, गुजराती, पंजाबी और उर्दू का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। यह प्रसन्नता की बात है कि आपके सुपुत्र श्री अजयकुमार भी अच्छे पत्रकार हैं और अब 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध हैं। हिन्दी में खेल-सम्बन्धी साहित्य के निर्माण में आप बहुत रुचि रखते हैं।

आपका निधन 18 जुलाई सन् 1965 को नई दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में हुआ था।

श्री भुवनेश्वरप्रसाद

श्री भुवनेश्वरप्रसाद का जन्म उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर नामक नगर में सन् 1910 में हुआ था। अपने नगर से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप इलाहाबाद चले गए और वहाँ से आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की। आप हिन्दी के अच्छे एकांकीकारों में गिने जाते हैं। आपने डी० एच० लारेंस, शा, फ्रायड और इब्सन आदि पाश्चात्य लेखकों का अच्छा अध्ययन किया था और आप इलाहाबाद के बौद्धिक समाज में 'इण्टलैक्चुअल हौआ' के रूप में विख्यात थे। अपने इसी 'फ्रायडियन' स्वभाव के कारण आपके मन में समाज के प्रति तीव्र विद्रोह तथा गहन अनास्था व्याप्त थी।

भुवनेश्वर ने यद्यपि कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं, किन्तु आपको ख्याति एक उत्कृष्ट एकांकीकार के रूप में ही मिली थी। आपकी कहानियाँ उपन्यास-सम्राट् मुन्शी प्रेमचन्द को बहुत पसन्द थीं, इसी कारण आपने अपने एक सम्पादित संकलन में आपकी 'मौसी' नामक कहानी को समाविष्ट किया था। प्रेमचन्द ने अपनी संयत असहमति के साथ आपकी इस कहानी की प्रशंसा इन शब्दों में की थी—"भुवनेश्वर की रचनाओं में कला का आभास है। यद्यपि उन पर पाश्चात्य प्रभाव छिपे नहीं रह सके हैं। आपकी शैली जैनेन्द्र के रास्ते पर चलती नजर आती है, परन्तु जैनेन्द्र की भाषा की शिथिलता इसमें अनुपस्थित है।" आपके एकांकी नाटकों की विशेषता के सन्दर्भ में प्रेमचन्द ने यह सही ही लिखा था—"भुवनेश्वर प्रसाद जी में प्रतिभा है, गहराई है, दर्द है, पते की बात कहने की शक्ति है। मर्म को हिला देने वाली वाक्-चातुरी है।"

भुवनेश्वर की सबसे पहली रचना 'श्यामा—एक वैवाहिक विडम्बना' दिसम्बर सन् 1933 के 'हंस' में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद आपके कई 'एकांकी' प्रकाशित हुए। इन एकांकियों का संकलन 'कारवाँ' नाम से सन् 1935 में प्रकाशित हुआ था। यौन समस्या तथा प्रेम के त्रिकोण से ऊपर उठकर भी आपने समाज के दुःख-दर्द पर व्यापक संवेदनात्मक रुचि प्रदर्शित की थी। आपके 'आदमखोर' नामक नाटक में आपकी ऐसी ही प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। आपके 'ऊसर' तथा 'स्ट्राइक' नामक एकांकियों ने हिन्दी में अपने शैलीगत वैशिष्ट्य के लिए उल्लेखनीय स्थान बना लिया है। भुवनेश्वर की रचनाधर्मिता की यह विशेषता थी कि आप यथार्थ को कटु सत्य के रूप में चित्रित करते थे, किन्तु उसमें 'अश्लीलता' या 'सैक्स' के दर्शन कठिनाई से ही होते थे। इस मामले में आप प्रेमचन्द के अनुयायी थे। आप 'आदर्शवाद' और 'यथार्थवाद' की व्यर्थ की खेमेबाजी से सर्वथा दूर रहते थे। चोर दरवाजे से घुसकर आराम की जिन्दगी बिताने से आप सर्वथा दूर ही रहे थे।

यह दुर्भाग्य की ही बात है कि ऐसे प्रतिभाशाली लेखक के अन्तिम दिन विक्षिप्तता, बेकारी और सड़क पर माँगते-खाते बीते। अपने अँग्रेजी भाषा के अच्छे ज्ञान के कारण आप इलाहाबाद के पत्रकारों, अफसरों, विश्वविद्यालय के शिक्षकों तथा साहित्यकारों के बीच एक 'आतंक' की भाँति छाए रहते थे। एक बार जब आपने 'माधुरी' में कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के विरुद्ध एक छोटी-सी टिप्पणी लिख दी तो हिन्दी में तहलका-सा मच गया था। निरालाजी-जैसे प्राणवान व्यक्ति भी आपकी उस टिप्पणी से ऐसे घबरा गए थे कि उन्हें अपने समर्थन में पंडित बलभद्रप्रसाद मिश्र और वाचस्पति पाठक की टिप्पणियाँ साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करनी पड़ी थीं। भुवनेश्वर ने यह कल्पना तक न की थी कि 'निराला' जी-जैसे व्यक्ति आपकी उस टिप्पणी से इतने तिलमिला जायँगे। इस घटना के बाद आपने अपने समकालीन किसी भी साहित्यकार या आलोचक के विषय में कोई वक्तव्य नहीं दिया।

यह भी क संयोग की ही बात है कि ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को उसके जीवन की विकृतियों ने अन्त में विक्षिप्त बना दिया और उनसे जेल तक में जाना पड़ा। एक समय तो ऐसा भी आया था जब वे चीकट पैंट, कमीज पहनकर, कभी-कभी टाट लपेटकर, बिजली के तारों की बेल्ट बाँधे हुए इलाहाबाद की सड़कों पर चन्दा माँगते घूमते थे और उन्हीं पैसों की शराब पी जाते थे। पैसे की मजबूरी में ही जब आप सन् 1956-1957 में इलाहाबाद और लखनऊ में भटककर बनारस पहुँचे तो 'आज' के लिए आपने 'खामोशी' नामक एक नाटक भी लिखा था। ऐसा भी सुना जाता है कि पैसे की आवश्यकता को पूरी करने के लिए आपने नागरी प्रचारिणी सभा काशी की ओर से डॉक्टर रामअवध द्विवेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली 'हिन्दी रिव्यू' नामक अँग्रेजी पत्रिका के लिए कुछ कविताएँ भी लिखी थीं।

यह दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार का अवसान एक गुमनाम व्यक्ति की भाँति सन् 1957 की किसी तारीख को काशी की श्रीकृष्ण धर्मशाला में हो गया। बीमारी, भूख और शराब ही आपकी इस असामयिक मृत्यु का कारण बने।

श्री भूदेव मुखोपाध्याय

आपका जन्म कलकत्ता के हरीतकी बागान लेन नामक मोहल्ले में 12 फरवरी सन् 1825 को हुआ था। आपके पूर्वज बंगाल के हुगली जिले के नतीबपुर नामक ग्राम के निवासी थे। सन् 1846 में आप शिक्षा समाप्त करके अध्यापक हो गए और धीरे-धीरे अपने अध्यवसाय से प्रधानाध्यापक के पद पर भी अनेक वर्ष तक कार्य किया था। जुलाई 1862 से आपने बंगाल के स्कूलों के असिस्टेंट इंसपेक्टर के पद पर स्थायी रूप से कार्य प्रारम्भ किया और सन् 1877 में आपको बंगाल, बिहार और उड़ीसा के 21 जिलों की शिक्षा का प्रबन्ध करने का कार्य सौंपा गया। सन् 1882 में आप बंगाल की व्यवस्थापिका सभा तथा शिक्षा आयोग के भी सदस्य बनाए गए और सन् 1883 में आपने अवकाश ग्रहण कर लिया।

अपने कार्य-काल में आपने बिहार की अदालतों में फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि के प्रचलन के लिए अथक प्रयास किया और बाबू रामदीनसिंह को सहयोग देकर बाँकीपुर (पटना) में खड्गविलास प्रेस की स्थापना भी कराई। इस प्रेस का नाम पहले 'बोधोदय प्रेस' था। बाद में बाबू रामदीनसिंह ने अपने मित्र मझोली नरेश लाल खड्गमल्लबहादुर के नाम पर इसका नाम परिवर्तित कर दिया था। इस प्रेस के माध्यम से हिन्दी में अनेक पुस्तकों का मौलिक प्रकाशन हुआ था। हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार के लिए श्री मुखोपाध्याय अहर्निश प्रयत्नशील रहते थे। आपके ही प्रयत्न से गया जिले का भूगोल हिन्दी में लिखा गया था।

आपका निधन 16 मई सन् 1894 को 70 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री भूदेव विद्यालंकार

श्री भूदेवजी का जन्म सन् 1893 में दार्जिलिंग में हुआ था। आपके पिता श्री माधवप्रसाद तिवारी कानपुर के निवासी थे। आप उत्तर भारत की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था 'गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी' के प्रतिष्ठित स्नातक थे। शिक्षा-समाप्ति के उपरान्त आप प्रख्यात आर्य संन्यासी और नेता स्वामी श्रद्धानन्द के 'निजी सचिव' रहे और फिर जोधपुर के राजा ने आपको अपने दो पुत्रों (तेजसिंह और रामसिंह) के अभिभावक-शिक्षक नियुक्त कर लिया। कुछ दिन तक शान्तिनिकेतन में संस्कृत-शिक्षक रहने के उपरान्त आप कानपुर आकर सन् 1923 से लोहे का व्यापार करने लगे।

समाज-सेवा के कार्यों में अग्रणी रहने के साथ-साथ

साहित्य-लेखन में भी आपकी पर्याप्त रुचि थी। आपने सन् 1915 में 'राजहंस प्रेस' की स्थापना करके उसके द्वारा प्रकाशन का कार्य भी किया था। आपके द्वारा रचित पुस्तकों में 'महावीर गैरीबाल्डी' तथा 'भारत के स्वतन्त्रता सेनानी' नामक पुस्तकें अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। अन्तिम पुस्तक ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली थी। यह पुस्तक अब भी यू० एस० एस० आर० की लायब्रेरी में उपलब्ध है। आपकी समीक्षात्मक रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं। अन्तिम दिनों में आपने 'तुलसी रामायण' पर एक समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखा था, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका।
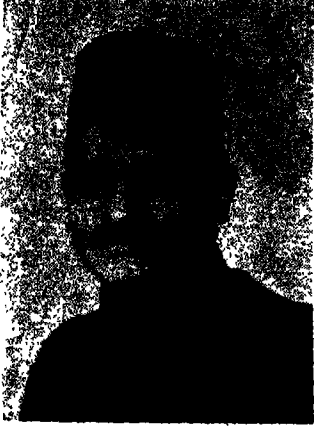
सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आपको 6 मास का कारावास भी भोगना पड़ा था। आप हिन्दू महासभा तथा आर्यसमाज के भी सक्रिय कार्यकर्ता रहे थे।

आपका निधन 6 नवम्बर सन् 1968 को हुआ था।

श्री मंगलखाँ

आपका जन्म सन् 1823 में आगर (मालवा) में हुआ था। आपकी मनिहारी की दुकान थी और मुसलमान होते हुए भी हिन्दी में उत्कृष्टतम कविता किया करते थे। आपकी कविता में निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता की झलक दिखाई देती है। एक बार मंगलखाँ जब आगर छावनी से आम या शक्कर खरीदकर उसे अपनी बगल में दबाए शहर को जा रहे थे तो चुंगी के कर्मचारियों ने आपको रोक दिया। इस पर आपको बहुत क्रोध आया और उनकी खूब धूल झाड़ी। इसका वर्णन आपने अपनी लावनियों में बड़ी ही निर्भीकता से किया है। आपकी ऐसी लावनियाँ आज भी वहाँ के नागरिकों की जबान पर हैं। समाज-सुधार की भावनाओं का परिचय भी आपकी रचनाओं से मिलता है। बाल-विवाह के विरोध में भी आपने अनेक कविताएँ लिखी थीं।

आपका निधन सन् 1893 में 70 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री मंगलदेव शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म सन् 1895 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नामक नगर में हुआ था। आपकी शिक्षा गुरुकुल सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) में हुई थी और आपने अपना कर्ममय जीवन एक आर्योपदेशक के रूप में प्रारम्भ किया था। वैदिक धर्म के प्रचार के सिलसिले में आप बर्मा भी गए थे। आपने अनेक मुसलमानों तथा ईसाइयों को शुद्ध करके आर्य (हिन्दू) धर्म में दीक्षित किया था।

वैदिक सभ्यता और संस्कृति के प्रचारार्थ आपने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक सैद्धान्तिक लेख समय-समय पर लिखे थे। आप एक कुशल गद्य-लेखक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि भी थे। आपकी 'चन्द्र विश्वेश्वर उर्फ कृष्णावतार' नामक आलोचनात्मक पुस्तक विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आपका निधन 10 मार्च सन् 1974 को अपने सुपुत्र के पास बंगलौर में हुआ था।

श्री मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

श्री विश्वकर्माजी का जन्म 1 अक्तूबर सन् 1902 को जबलपुर में हुआ था। आपने अपना साहित्यिक जीवन जबलपुर से प्रकाशित होने वाली 'श्रीशारदा' नामक पत्रिका के माध्यम से प्रारम्भ किया था। आपकी कविताएँ तथा कहानियाँ उक्त पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती थीं

और आप उसी पत्रिका में कार्य भी करते थे। कुछ दिन तक आपने इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'चाँद' नामक प्रख्यात मासिक में भी सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य किया था।

जिन दिनों श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी 'सरस्वती' का सम्पादन किया करते थे तब आपकी कहानी-कला में और भी निखार आया था और आपकी कहानियाँ उसमें प्रकाशित हुई थीं। उन्हीं दिनों आपकी कहानियों का एक संकलन 'अश्रुदल' नाम से प्रकाशित हुआ था। ये कहानियाँ आपने अपनी सहधर्मिणी की स्मृति में लिखी थीं। आपकी कविताओं का एक संकलन 'रेणुका' नाम से प्रकाशित हुआ था। कहानी तथा कविता के अतिरिक्त आपने अनेक निबन्ध भी लिखे थे। आपकी 'मेहरुन्निसा' नामक एक कृति भी प्रकाशित हुई थी।

गीति-नाट्य की विधा में भी आपने अपनी प्रतिभा का प्रचुर परिचय दिया था। छायावादी भाव-धारा के अनुरूप गीति-नाट्य-लेखन में आपको जो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी उसका प्रमाण आपकी 'चित्रलेखा' नामक कृति में मिलता है। आपकी भाषा भावों के अनुरूप इतनी प्रांजल तथा हृदय-स्पर्शी होती थी कि उनसे आपके गीति-नाट्यों का शृंगार द्विगुणित हुआ है। आप ज्योतिष तथा सामुद्रिक शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। आपने इस विषय पर भी 'हस्तरेखा शास्त्र' नामक पुस्तक लिखी थी।
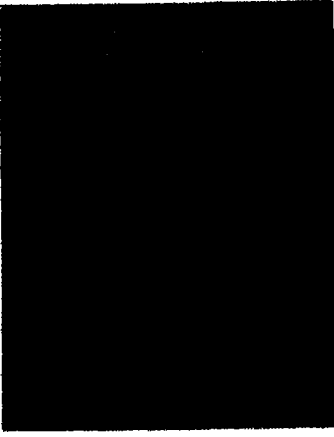
आप उच्चकोटि के निर्भीक पत्रकार भी थे। आपके द्वारा सम्पादित 'शुभचिन्तक' साप्ताहिक के सभी अंक इसके साक्षी हैं। आपने अपने जीवन के आखिर तक उसका सफलता पूर्वक सम्पादन किया था।

आपका निधन सन् 1939 में हुआ था।

श्रीमती मंगला बालूपुरी

श्रीमती मंगलाजी का जन्म काशी के एक कायस्थ-परिवार में सन् 1918 में हुआ था। आपके पिता हिन्दी के समस्त व्यंग्यकार और कथा-लेखक श्री अन्नपूर्णानन्द थे और आपका विवाह 28 जून सन् 1934 को 16 वर्ष की आयु में हिन्दी के यशस्वी पत्रकार और कवि श्री सुरेन्द्र बालूपुरी के साथ हुआ था।

छोटी-सी आयु में आपने कवयित्री और लेखिका के रूप में अपना अच्छा स्थान बना लिया था। आपकी रचनाओं का एक संकलन 'तूणीर' नाम से प्रकाशित हुआ था। आप अगस्त सन् 1938 में उत्तर प्रदेश की तत्कालीन कांग्रेस-सरकार द्वारा बलिया में आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाई गई थीं।

खेद है कि असमय में ही आपका 12 मई सन् 1940 को अल्पावस्था में देहावसान हो गया।

श्री मथुरादत्त त्रिवेदी

श्री त्रिवेदीजी का जन्म सन् 1895 में कूर्मांचल प्रदेश के अलमोड़ा नगर से लगभग 9 मील दूर सुपई नामक ग्राम में हुआ था। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप द्वाराहाट में अध्यापक हो गए और अपने स्वाध्याय के बल पर हिन्दी और अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ आपने उर्दू तथा बंगला भाषाओं का भी गहन अध्ययन किया। साथ ही अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि लिखते रहे। फिर कूर्मांचल की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'शक्ति' के सम्पादन में भी सहयोग किया।

इसके साथ-साथ पर्वतीय संस्कृति तथा उस प्रदेश के लोक-गीतों आदि का आपने गहनता से अध्ययन किया। जब आपका स्थानान्तरण द्वाराहाट के स्कूल से अलमोड़ा के मिशन स्कूल में हुआ तो आपकी रचनात्मक प्रवृत्तियों को और भी प्रोत्साहन मिला। जब आप द्वाराहाट में थे तब से ही 'हितचिन्तक सभा' की स्थापना करके उसके माध्यम से सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया था।

कूर्मांचल के 'आगेश्वर' नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान के उद्धार के लिए भी आपने प्रयास किया। आपके ही प्रयास से बाद में उसकी देख-रेख का कार्य 'पुरातत्व विभाग' ने ले लिया। जब आप स्कूल में रहते हुए भी समाज-सेवा के इन कार्यों में बराबर लगे रहते थे तो अधिकारी आपसे रुष्ट हो गए और यह नोटिस देकर आपकी सेवाओं को समाप्त कर दिया—"आपको सार्वजनिक कार्यों के लिए स्कूल की सेवाओं से मुक्त किया जाता है।" श्री त्रिवेदीजी हिन्दी के प्रख्यात पत्रकार और 'दैनिक हिन्दुस्तान' के भूत-पूर्व उप-सम्पादक श्री हरिकृष्ण त्रिवेदी के बड़े भाई थे।

आपका निधन 26 मई सन् 1945 को हुआ था।

श्री मथुराप्रसादसिंह

आपका जन्म बिहार के सारन जिले के तेलछा नामक ग्राम में सन् 1883 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। एक मौलवी साहब भी आपको उर्दू और फारसी पढ़ाने आया करते थे। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० बी० एल० करने के उपरान्त छपरा में वकालत शुरू की थी। जब गान्धीजी के आह्वान पर असहयोग आन्दोलन की लहर फैली तो आपने भी उसमें रुचि लेनी प्रारम्भ की और आप डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के अनन्य सहयोगी हो गए। आपके ग्राम तेलछा ने उन दिनों 'साबरमती' का स्थान ले रखा था। घर-घर में गान्धीजी का सन्देश पहुँचाया जा रहा था। आपने अपने जीवन को पूर्णत: देश-सेवा के लिए ही अर्पित कर दिया।

देश-सेवा के इतने लम्बे समय में आपको अनेक बार कारावास की यातनाएँ भी भोगनी पड़ीं। यहाँ तक कि सन् 1942 की क्रान्ति में भी आपने बढ़-चढ़कर भाग लिया। आप अनेक बार बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, गान्धी सेवा संघ और चर्खा संघ के भी पदाधिकारी रहे। बिहार विद्यापीठ के तो आप संस्थापकों में से ही थे। अनेक वर्ष तक आप भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के सचिव के रूप में भी कार्य करते रहे। चम्पारन सत्याग्रह से लेकर भूकम्प पीड़ितों की सहायता तक के कार्य में आपका योगदान अत्यन्त उल्लेखनीय रहा था।

सामाजिक सेवा के इन कार्यों के अलावा आपने बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यों में भी सक्रिय योगदान किया था। आप इस सम्मेलन की स्थायी समिति के भी सदस्य थे। बाबू राजेन्द्रप्रसादजी ने जिस समय पटना में 'देश' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था उस समय उसके सम्पादक आप ही थे। सन् 1912 में कलकत्ता में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन की स्वागत समिति को भी आपने उल्लेखनीय सहयोग दिया था। राजेन्द्र बाबू इस अधिवेशन की स्वागत समिति के मंत्री थे। इस अधिवेशन की अध्यक्षता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अनन्य मित्र बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने की थी। श्री मथुराबाबू द्वारा लिखित लेख आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों में ही देखे जा सकते हैं।

आपका निधन 2 फरवरी सन् 1947 को नई दिल्ली में हुआ था।

श्री मदनगोपाल सिंहल

श्री सिंहल का जन्म मेरठ नगर के एक अत्यन्त सम्भ्रान्त वैश्य परिवार में सन् 1909 में हुआ था। साहित्य, धर्म और राजनीति की त्रिवेणी के रूप में आपका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखरता से निखरा था। आप जहाँ सनातन धर्म के क्षेत्र में होने वाली विविध प्रवृत्तियों के स्रोत थे वहाँ साहित्य-रचना की दिशा में भी आपकी प्रतिभा सर्वथा अद्वितीय थी। बाल-साहित्य के निर्माण में आपने जिस तन्मयता का परिचय दिया था वहाँ प्रौढ़ रचना करने के क्षेत्र में भी आप

सर्वथा अद्वितीय थे।

एक जागरूक पत्रकार के रूप में श्री सिंहलजी ने उल्लेखनीय कार्य किया था। आपके द्वारा सम्पादित 'बाल-वीर', 'धर्म प्रभा', 'वैश्य हितकारी', 'आदेश', 'सन्मार्ग' तथा 'राम राज्य' आदि पत्र इसके साक्षी हैं। साहित्य के प्रति जन-साधारण में रुचि जागृत करने की दृष्टि से आपने जहाँ मेरठ में 'श्याम-पुस्तकालय' की स्थापना की थी वहाँ आपने 'मनोरंजन मण्डल' नामक एक साहित्यिक संस्था का संचालन भी किया था। प्रकाशन के क्षेत्र में भी आपके द्वारा संस्थापित 'गोपाल प्रिंटिंग प्रेस' तथा 'गोपाल प्रकाशन' के नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

आप जहाँ उच्चकोटि के समाज-सेवक और जागरूक पत्रकार थे वहाँ एक सजग तथा संवेदनशील कवि के रूप भी आपकी प्रतिभा उन्मुक्त भाव से प्रकट हुई थी। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'बड़ों का बचपन', 'नन्हें नेहरू', 'मोनिया गान्धी', 'वीर बालक', 'वीर बालिकाएँ', 'कौन बनोगे', 'आओ बच्चो तुम्हें सुनाएँ', 'शिवा', 'भक्त मीरा', 'कलिका', 'धर्मद्रोही राजा बेन', 'सत्यनारायण' तथा 'वीरांगना लक्ष्मीबाई' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आपने मेरठ जनपद के कवियों की कविताओं का सकलन भी 'फूल-पत्ती' नाम से सम्पादित करके प्रकाशित किया था। आपके द्वारा सम्पादित 'आदेश' का 'मेरठ अंक' अत्यन्त उपादेय था। सन् 1948 में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मेरठ-अधिवेशन को सफल बनाने में आपका प्रमुख हाथ था। आपकी साहित्य, समाज और संस्कृति-सम्बन्धी सेवाओं को दृष्टि में रखकर 15 फरवरी सन् 1959 को आपका अभिनन्दन करके मेरठ की जनता ने एक ग्रन्थ भी समर्पित किया था।

आपका निधन 55 वर्ष की आयु में जनवरी सन् 1964 में हुआ था।

श्री मदनमोहन तिवारी

श्री तिवारीजी का जन्म आगरा नगर के बल्का बस्ती मोहल्ले में सन् 1838 में हुआ था। आप ब्रजभाषा के प्रतिष्ठित कवि ब्रजकोकिल सत्यनारायण कविरत्न के गुरु थे और आगरा के सेण्ट्रल नार्मल स्कूल में पढ़ाते थे। आपकी 'हितोपदेश मंजरी' तथा 'अमोल सार' नामक पुस्तकें प्राप्य हैं। आपने 'राजनीति' नाम से भी एक पुस्तक लिखी थी।

आपका निधन सन् 1920 में 82 वर्ष की आयु में आगरा में हुआ था।

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

मालवीयजी का जन्म उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद के अहियापुर (अब मालवीयनगर) नामक मोहल्ले में 25 दिसम्बर सन् 1861 को हुआ था। आपके पूर्वज मध्य प्रदेश के 'मालवा' नामक क्षेत्र से आकर वहाँ बसे थे, इसी कारण आपका परिवार 'मालवीय' कहलाने लगा था। आपके पिता पण्डित ब्रजनाथजी संस्कृत साहित्य के उद्‌भट विद्वान् थे, इसी कारण आपकी प्रारम्भिक शिक्षा 'सर्व ज्ञानोपदेश संस्कृत पाठशाला' तथा 'धर्मवर्द्धिनी सभा की पाठशाला' में हुई थी। आपने सन् 1879 में मैट्रिक तथा सन् 1884 में म्योर सेण्ट्रल कालेज से बी० ए० की परीक्षा दी थी। पारिवारिक स्थिति ठीक न होने के कारण आपने आगे की पढ़ाई बन्द करके स्थानीय गवर्नमेंट स्कूल में 50 रुपए मासिक की नौकरी कर ली थी। अपने छात्र-जीवन के प्रारम्भ से ही आपमें समाज तथा साहित्य की सेवा करने की भावनाएँ विद्यमान थीं, इसलिए आपने इलाहाबाद में 'लिटरेरी इंस्टीट्यूट' (साहित्य सभा) और 'हिन्दू समाज' नामक संस्थाओं की स्थापना की थी। सन् 1886 में कांग्रेस का जो दूसरा अधिवेशन दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ था आप अपने गुरु श्री आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ उसमें सम्मिलित हुए थे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक राष्ट्रोद्धार के कार्यों में ही लगे रहे थे।

कलकत्ता की इसी कांग्रेस में आपका परिचय काला-

कालाकाँकर (उत्तर प्रदेश) के राजा रामपालसिंह से हुआ था। उन्होंने उन्हीं दिनों अपने यहाँ से हिन्दी का एक पत्र 'दैनिक हिन्दोस्थान' नाम से निकालना प्रारम्भ किया था। आपकी योग्यता तथा सत्य-निष्ठा पर मुग्ध होकर उन्होंने आपको 250 रुपए मासिक पर अपने इस पत्र का सम्पादक बनाकर कालाकाँकर बुला लिया था। उन दिनों हिन्दी के सम्पादकों को जो वेतन मिला करता था, यह राशि उससे बहुत अधिक थी। मालवीयजी ने हिन्दी-लेखन का अभ्यास अपने छात्र-जीवन से ही कर लिया था और आप श्री बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित 'हिन्दी प्रदीप' में प्रायः लिखा भी करते थे। इस प्रकार 'दैनिक हिन्दोस्थान' के सम्पादक के रूप में मालवीयजी ने अपने कर्ममय जीवन का शुभारम्भ किया और उसमें पर्याप्त सफलता भी अर्जित की।
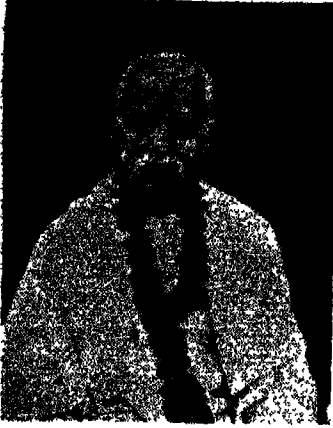
आपकी वक्तृत्व शैली और प्रतिभा को देखकर आपके बहुत से मित्रों और गुरुजनों ने आपको वकालत पढ़ने के लिए प्रेरित किया और सम्पादन का कार्य करते हुए ही आपने सन् 1891 में वकालत की परीक्षा पास करके विधिवत् वकालत प्रारम्भ कर दी। वकालत करते हुए भी आपका मन देश की दुर्दशा को देखकर तड़प-तड़प उठता था; फलस्वरूप आपने उसे केवल सार्वजनिक सेवा के कार्य में साधन के रूप में ही अपनाया था। देश-सेवा की पुनीत भावनाओं के वशीभूत होकर आपने कांग्रेस के सभी अधिवेशनों में सम्मिलित होना प्रारम्भ कर दिया था। उन दिनों आपने अपने भाषणों से कांग्रेस के नेताओं और जनता दोनों को इतना चमत्कृत कर दिया था कि मि० ह्यूम को कांग्रेस की रिपोर्ट में यह लिखना पड़ा था—"जिस भाषण के लिए कांग्रेस के अधिवेशन में कई बार तालियाँ बजीं, और जिसको जनता ने बहुत उत्साह से सुना वह पण्डित मदनमोहन मालवीय का भाषण था। पण्डितजी की गौरवपूर्ण मूर्ति और हृदयग्राही भाषण ने वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्तियों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।" इसके बाद से मालवीयजी ने कांग्रेस में रहकर देश का अनेक रूपों में जो नेतृत्व किया वह स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में अपना विशेष महत्त्व रखता है।

मालवीयजी की देश को सबसे बड़ी देन काशी का 'हिन्दू विश्वविद्यालय' है। सन् 1904 में उसकी स्थापना के लिए आपने अपने मानस में जो स्वप्न सँजोया था उसे मूर्त्त रूप देने के लिए सन् 1911 में एक योजना बनाकर और गले में भिक्षा की झोली डालकर देश-व्यापी दौरे पर आप घर से निकल पड़े और जन-साधारण से लेकर देश के बड़े-बड़े राजाओं-महाराजाओं तथा सेठ-साहूकारों के असीम एवं उदारतापूर्ण सहयोग से आपने थोड़े ही दिनों में एक करोड़ रुपया जमा करके 4 फरवरी सन् 1918 को शुभ मुहूर्त्त में शास्त्रोक्त रीति से 'हिन्दू विश्वविद्यालय' की विधिवत् स्थापना कर दी। हिन्दू विश्वविद्यालय आपकी अटूट आस्था और अथक परिश्रम का ज्वलन्त कीर्ति-शिखर है। यदि आपने जीवन में और कुछ भी न किया होता, तो भी अकेला 'हिन्दू विश्वविद्यालय' ही आपके नाम को अमर करने के लिए पर्याप्त था। राजनीति और शिक्षा के क्षेत्र में इतने महत्त्वपूर्ण कार्य करने के साथ-साथ आपने संस्कृति और साहित्य के उद्धार के लिए भी अपनी उर्वरा प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग किया था। आपने जहाँ हिन्दी के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के लिए 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना करने के साथ उसके पहले और नवें वार्षिक अधिवेशनों की अध्यक्षता की थी वहाँ 'दैनिक हिन्दोस्थान' का सम्पादन करने के अतिरिक्त सन् 1902 में 'अभ्युदय' साप्ताहिक का सम्पादन-संचालन भी प्रारम्भ किया था और सन् 1910 में 'मर्यादा' नामक मासिक पत्रिका भी निकाली थी। मालवीयजी द्वारा सम्पादित इन पत्रों का भी हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान है। इस पत्रों के अतिरिक्त काशी से 'सनातन धर्म' और लाहौर से 'विश्वबन्धु' साप्ताहिक भी आपकी प्रेरणा से ही प्रकाशित हुए थे।

सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में आपने हिन्दी के विकास के लिए जहाँ अनेक उपयोगी योजनाएँ प्रारम्भ कीं वहाँ

आपने सन् 1900 में उत्तर प्रदेश की अदालतों में उर्दू के साथ हिन्दी को प्रचलित कराने के लिए भी अथक प्रयास किया था। इस सम्बन्ध में आपने पश्चिमोत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर को जो प्रतिवेदन दिया था उसमें अनेक सुपुष्ट तर्कों और आँकड़ों के आधार पर यह सिद्ध किया गया था कि उत्तर प्रदेश में हिन्दी ही व्यवहार-योग्य भाषा के रूप में स्वीकृत की जाने की क्षमता रखती है। आपने लिखा था—"पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध की प्रजा में शिक्षा का फैलना इस समय सबसे आवश्यक कार्य है और गुरुतर प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि इस कार्य में सफलता तभी प्राप्त होगी जब कचहरियों और सरकारी दफ्तरों में नागरी अक्षर जारी किए जाएँगे। अतएव अब इस शुभ कार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिए।" आपके इस सत्प्रयास से ही हिन्दी का प्रचलन उत्तर प्रदेश की अदालतों में हुआ था। आपने जहाँ 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना की थी वहाँ 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना में भी सन् 1893 में अपना पूर्ण सहयोग दिया था। उच्च शिक्षा के माध्यम के लिए हिन्दी-ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य आगे बढ़ाने की दृष्टि से आपने 'हिन्दू विश्वविद्यालय' में 'हिन्दी प्रकाशन मंडल' की स्थापना भी कराई थी।

यह बात कदाचित् हमारे अनेक पाठकों को मालूम ही न होगी कि मालवीयजी उच्चकोटि के पत्रकार तथा लेखक होने के साथ-साथ सहृदय कवि भी थे। आपने 'मकरन्द' उपनाम से ब्रजभाषा में इतनी सुन्दर रचनाएँ की हैं कि उनको देखकर आपकी काव्य-प्रतिभा का स्पष्ट आभास हो जाता है। आपकी वे कविताएँ हिन्दी के प्राचीन रससिद्ध कवियों की रचनाओं से किसी भी दृष्टि से कम महत्त्व नहीं रखतीं। केवल 14 वर्ष की आयु में शृंगार-रस के सम्बन्ध में लिखा गया आपका यह दोहा आपकी काव्य-प्रतिभा की उदात्तता का प्रमाण प्रस्तुत करता है :

यह रस ऐसो है बुरो, मन को देत बिगारि।
याके पास न जाइए, जब लौं होय अनारि॥

ब्रजभाषा के सवैये लिखने में आपने जो सिद्धि प्राप्त की हुई थी वह सर्वथा अनुपम कही जा सकती है। आपके सवैये 'घनानन्द' के समकक्ष ठहरने की क्षमता रखते हैं। उदाहरणार्थ एक सवैया इस प्रकार है :

इन्दु सुधा बरस्यो नलिनीन पै,
वै न बिना रवि के हरषानी।
त्यों रवि तेज दिखायो तऊ,
बिनु इन्दु कुमोदिनि ना बिकसानी॥
न्यारी कहूँ यह प्रीति की रीति,
नहीं 'मकरन्द' जू जात बखानी।
साँवरे कामरी वारे गोपाल पै,
रीझि लटू भई राधिका रानी॥

आप जहाँ हिन्दी के उत्कृष्ट कवि थे वहाँ उर्दू में भी 'मदनमोहन' नाम से रचनाएँ किया करते थे। संस्कृत की रचना करने में भी आप बहुत प्रवीण थे। आपकी संस्कृत तथा हिन्दी की रचनाएँ काशी से प्रकाशित होने वाले 'सनातन धर्म' पत्र में प्रकाशित होती रहती थीं। आपकी राष्ट्र-भाषा हिन्दी तथा साहित्य-सम्बन्धी सेवाओं को दृष्टि में रखकर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' की सम्मानित उपाधि प्रदान की थी।

आपका निधन 12 नवम्बर सन् 1946 को हुआ था।

श्री मदनलाल चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म सन् 1903 में उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के 'चन्द्रपुर' नामक ग्राम के जौनमाने-परिवार के पंडित नेकराम चतुर्वेदी के यहाँ हुआ था। लगभग 5 वर्ष की आयु में आप अपने पिताजी के साथ कानपुर चले गए थे। आपके पिता पहलवान थे और वहाँ पर दलाली का कार्य करते थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा एवं साहित्यिक जीवन का निर्माण और विकास कानपुर में ही हुआ था। आपने कानपुर के पी० पी० एन० स्कूल तथा डी० ए० वी० कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी और आपकी विचार-धारा पर आर्यसमाज का पर्याप्त प्रभाव हो गया था। यों आप कट्टर सनातनी थे और कलकत्ता-प्रवास के अपने 40 वर्ष से अधिक काल में आप सदा अपने हाथ से बनाया हुआ भोजन ही किया करते थे।

आपके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ पत्रकारिता से हुआ था, वैसे आप ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे। जब श्री

गणेशशंकर विद्यार्थी जेल चले गए थे, तब बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने आपको अपनी सहायतार्थ 'प्रताप' के सम्पादकीय विभाग में बुलाया था। चतुर्वेदीजी ने वहाँ पर 5-6 महीने तक बिना पारिश्रमिक लिये ही वह कार्य किया था। इसके उपरान्त आपने श्री अनूप शर्मा के साथ दैनिक 'वर्तमान' में कार्य किया था। जिन दिनों स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने कानपुर से प्रसिद्ध कविता-मासिक 'कवीन्द्र' का सम्पादन-प्रकाशन प्रारम्भ किया था उन दिनों आपने उन्हें भी सहयोग दिया था। तब तक चतुर्वेदीजी की गणना ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों में होने लगी थी। उन दिनों आपकी कविताएँ 'सम्मेलन पत्रिका', 'विशाल भारत', 'माधुरी', 'विद्यार्थी', 'सुकवि', 'समालोचक', 'वीणा' तथा 'शारदा' आदि अनेक प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं।

सन् 1924 में आप श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के अनुरोध पर कलकत्ता चले गए और वहाँ वाजपेयीजी द्वारा सम्पादित 'स्वतन्त्र' नामक दैनिक पत्र में आपने सहकारी सम्पादक के रूप में लगभग 4-5 वर्ष तक कार्य किया। आपके लेख राष्ट्रीय विचार-धारा के होते थे और अँग्रेज शासक आपकी तीखी आलोचना से तिलमिला जाते थे। 'स्वतन्त्र' के उपरान्त आप 'भारत मित्र' के सम्पादक-मण्डल में सम्मिलित हो गए और सन् 1930 में जब पंडित रामशंकर त्रिपाठी ने 'लोकमान्य' का प्रकाशन प्रारम्भ किया तब आप उसमें चले गए और सन् 1971 तक उसके सम्पादन में अपना अनन्य सहयोग दिया। जब 'लोकमान्य' साप्ताहिक रूप में प्रकाशित हुआ तो उसके सम्पादक भी आप ही रहे थे। सन् 1976 में आप ग्वालियर आ गए थे और वहीं पर रहने लगे थे। आपका हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, अँग्रेजी, उर्दू और बंगला का ज्ञान अद्भुत तथा अनुपम था। अनेक अँग्रेजी कविताओं का अनुवाद भी आपने ब्रजभाषा-काव्य में किया था। आपकी रचनाएँ 'गीत मंजरी' और 'अंजलि' नामक पुस्तकों में संकलित हैं।

आपका निधन ग्वालियर में 2 नवम्बर सन् 1976 को 73 वर्ष की आयु में हुआ था।

कुँवर मदनसिंह

कुँवर मदनसिंह का जन्म राजस्थान के करौली नामक राज्य में हुआ था। आप 'राजस्थान सेवा संघ' के आजीवन सदस्य थे। करौली राज्य में हिन्दी का प्रचार करने के लिए आपने अनशन किया था। आप 'राजस्थान हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' के संस्थापकों में से एक थे। यदि किसी हिन्दी-लेखक के मुख से भूल से अँग्रेजी भाषा का कोई शब्द भी निकल जाता था तो आप उसे तुरन्त टोक दिया करते थे। राजस्थान के राष्ट्रीय आन्दोलन में भी आपने बढ़-चढ़कर भाग लिया था।

आपका देहावसान सन् 1927 में हुआ था।

श्री मधु धाँधी

श्री धाँधी का जन्म मध्यप्रदेश के रायपुर जिले के कसडोल विकास खण्ड के पिसीद नामक ग्राम में 21 जून सन् 1951 को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा क्रमशः दुर्ग व पिथौरा में प्राप्त करके आप महाविद्यालयीन उच्च शिक्षा के लिए बागबहरा, महासमुन्द और रायपुर में गए; किन्तु परिस्थितिवश बी० ए० न कर सके। आप हिन्दी तथा छत्तीसगढ़ी भाषाओं

में समान रूप से लिखते थे। अपने साहित्यिक जीवन के उषा-काल में ही आपने अपने क्षेत्र के साहित्यकारों में अच्छा स्थान बना लिया था। आपकी कविताएँ 'सरिता', 'मुक्ता', दैनिक 'देशबन्धु' और 'महाकौशल' के अतिरिक्त राजनाद-गाँव (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित होने वाले 'छत्तीसगढ़ झलक' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। आप आकाश-वाणी के केन्द्रों से होने वाले अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों में भी भाग लिया करते थे। खेद है कि मधुर स्वभाव के धनी इस कलाकार ने 3 अप्रैल सन् 1977 को पिथौरा के निकटवर्ती खुटेरी नामक ग्राम में मानसिक परेशानियों के कारण आत्म-दाह करके अपने जीवन का अन्त कर दिया। आपकी रच-नाओं का संकलन 'हृदय का पंछी' नाम से पिथौरा (रायपुर) की 'मधु धांधी स्मृति साहित्य एवं सांस्कृतिक समिति' द्वारा आपके निधन के उपरान्त प्रकाशित किया गया है। इस संकलन का सम्पादन श्री स्वराज्य 'करुण' ने किया है।

राय महबूबनारायण

राय महबूबनारायण का जन्म 2 फरवरी सन् 1902 को हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) में हुआ था। आप मूलतः उर्दू-लेखक थे। किन्तु हिन्दी-मुहावरों-लोकोक्तियों तथा नागरी-लिपि के विषय में आपका शोध-कार्य अन्यतम रहा है। पुरानी हैदराबाद रियासत तथा वर्तमान आन्ध्र प्रदेश में पुस्त-कालय-आन्दोलन को प्रतिष्ठित करने में आपने अभिनन्दनीय कार्य किया था। आपने अनेक वर्ष तक विभिन्न स्थानीय संस्थाओं के पुस्तकालय-संगठन में महत्त्वपूर्ण पदों पर रहकर कार्य किया था।

हैदराबाद के झाली बंडा नामक स्थान पर स्थापित 'भारत गुणवर्द्धक संस्था' के पुस्तकालय के विस्तार में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। इस पुस्तकालय में आपने प्रयत्नपूर्वक भारत और विदेश की विभिन्न भाषाओं के कोशों और सन्दर्भ-ग्रन्थों का अद्वितीय संग्रह कराया था।

इसके अतिरिक्त 'हिन्दी प्रचार सभा' हैदराबाद के कार्यों और प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने में भी आपका महत्त्व-पूर्ण सहयोग रहा था।

आपका निधन 27 मई सन् 1980 को हुआ था।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

आचार्य द्विवेदीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के दौलतपुर नामक ग्राम में सन् 1864 में हुआ था। आपके पिता श्री रामसहाय द्विवेदी महावीर हनुमान के परम भक्त थे और इसी कारण आपने अपने पुत्र का नाम 'महावीर-सहाय' रखा था, जो बाद में आचार्य द्विवेदी के अध्यापक की भूल से 'महावीरप्रसाद' हो गया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आचार्यजी के जन्म के आध घण्टे बाद 'जात कर्म' होने से पूर्व पण्डित सूर्यप्रसाद द्विवेदी नामक एक ज्योतिषी ने आपकी जीभ पर 'सरस्वती' का बीज मन्त्र लिखा था। कदाचित् इस मन्त्र ने ही आगे चलकर यह करिश्मा दिखाया कि 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में आचार्य द्विवेदीजी ने चरम कोटि की प्रसिद्धि प्राप्त की थी। प्रारम्भ में आपने घर पर ही संस्कृत की 'दुर्गा सप्तशती', 'विष्णु सहस्र नाम', 'शीघ्रबोध' तथा 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' आदि कई पुस्तकें कंठस्थ कर ली थीं। गाँव के प्राइमरी स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आप 13 वर्ष की आयु में अँग्रेजी पढ़ने के लिए अपने ग्राम से 32 मील दूर रायबरेली के हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। अँग्रेजी के साथ आपने दूसरी भाषा फारसी रखी। क्योंकि उन दिनों स्कूलों में संस्कृत पढ़ाई नहीं जाती थी, इसलिए द्विवेदीजी ने उसका ज्ञान घर पर ही प्राप्त कर लिया था। क्योंकि रायबरेली का स्कूल दौलतपुर से दूर था, अतः आप सुविधा की दृष्टि से पास के उन्नाव जनपद के 'रणजीतपुरवा' नामक स्थान के स्कूल में आ गए।

किन्तु जब वह स्कूल किसी कारण बन्द हो गया तब आपको फतहपुर के स्कूल में जाना पड़ा। यहाँ से भी किन्हीं असुविधाओं के कारण पढ़ने के लिए आप उन्नाव चले गए। इस प्रकार जगह-जगह मारे-मारे फिरने और अनेक स्कूल बदलते रहने के कारण आपकी शिक्षा व्यवस्थित रूप से न हो सकी और आपने अंत में स्कूल को नमस्कार करके अजमेर आकर रेलवे की 15 रुपए मासिक की नौकरी कर ली।

जिन दिनों आपने यह नौकरी प्रारम्भ की थी तब आपके पिता बम्बई में थे। कुछ दिन तक अजमेर में कार्य करने के उपरान्त आप नागपुर आ गए और फिर बम्बई में तार देने की विधि सीखकर रेलवे में ही 'सिग्नलर' हो गए। वहाँ पर कार्य करते हुए धीरे-धीरे आपकी उन्नति होती गई और महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश के अनेक नगरों में रहकर फिर आप झाँसी आकर जी० आई० पी० रेलवे के 'डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिंटेंडेंट' के कार्यालय में हेड क्लर्क हो गए। झाँसी में रहते हुए आपने अपने कुछ बंगाली मित्रों की कृपा से बंगला भाषा का भी ज्ञान बढ़ा लिया। मराठी का अध्ययन आपने महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के कार्यकाल में कर लिया था। यहाँ रहते हुए ही आपने संस्कृत के काव्य तथा अलंकार-शास्त्र का विधिवत्

अध्ययन करने के साथ-साथ अपने काव्य-रचना के अभ्यास को बढ़ाया। अपनी इस साहित्य-साधना के क्रम में आपके संस्कृत ग्रन्थों के कई अनुवाद तथा समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। द्विवेदीजी ने नौकरी छोड़कर 'साहित्य-सेवा' के क्षेत्र में अवतरित होने का विचार पहले से ही बना रखा था कि इस बीच एक ऐसी घटना घट गई जिसके कारण आपको तुरन्त नौकरी छोड़ने का निश्चय करना पड़ा। एक दिन आपकी अपने कार्यालय के नए सुपरिंटेंडेंट से खटपट हो गई और आपने तुरन्त त्यागपत्र दे दिया।

सरकारी नौकरी के नीरस वातावरण से मुक्ति पाकर आपने इण्डियन प्रेस प्रयाग के स्वत्वाधिकारी श्री चिन्तामणि घोष के आग्रह पर 'सरस्वती' के सम्पादन का जो कार्य सन् 1903 में सँभाला था उसे लगभग 20 वर्ष तक पूर्ण तत्परता एवं लगन से निबाहते रहे। आपके सम्पादन में 'सरस्वती' की जहाँ बहुमुखी उन्नति हुई वहाँ आपके द्वारा हिन्दी-साहित्य के उत्कर्ष का नया अध्याय ही प्रारम्भ हुआ। आपने अपनी कर्मठता से यह सिद्ध करके दिखा दिया कि एक पुरुष अपने ही उद्योग से विद्वत्ता प्राप्त करके साहित्य-निर्माण की दिशा में किस प्रकार उन्नति के शिखर पर प्रतिष्ठित हो सकता है। आपने अपनी पारिवारिक स्थिति और तत्कालीन परिवेश का वर्णन करते हुए अपने जीवन के संघर्षों के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए थे वे हम सबके लिए ही प्रेरणाप्रद हैं। आपने लिखा था—"मैं एक ऐसे देहाती का एकमात्र आत्मज हूँ, जिसका मासिक वेतन सिर्फ 10 रुपए था। अपने गाँव के देहाती मदरसे में थोड़ी-सी उर्दू और घर पर थोड़ी-सी संस्कृत पढ़कर 13 वर्ष की आयु में मैं 36 मील दूर रायबरेली के जिला-स्कूल में अँग्रेजी पढ़ने लगा। आटा, दाल घर से पीठ पर लादकर ले जाता था। दाल ही में आटे के पेड़े या टिकियाँ पका करके पेट-पूजा किया करता था। रोटी बनाना तब मुझे आता ही न था। दो आने फीस देता था। संस्कृत भाषा उस समय उस स्कूल में वैसी ही अछूत समझी जाती थी जैसे कि मद्रास के नम्बूदिरी ब्राह्मणों में वहाँ की शूद्र जाति समझी जाती है। विवश होकर अँग्रेजी के साथ फारसी पढ़ता था। एक वर्ष किसी तरह वहाँ काटा। फिर पुरवा, फतहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दुरवस्था के कारण मैं उससे आगे न पढ़ सका। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं समाप्त हो गई।" आपको आजीवन संघर्षों से जूझकर अपने लिए नए मार्ग का निर्माण करना पड़ा था।

आपकी प्रतिभा का ज्वलन्त प्रमाण यही है कि इतने संघर्षों में रहते हुए भी आपने अपनी लेखनी को विराम नहीं दिया और प्रतिवर्ष कोई-न-कोई नई रचना हिन्दी-साहित्य को देते रहे। आपने जहाँ संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद प्रस्तुत किये वहाँ कई अँग्रेजी की उपयोगी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी साहित्य-संसार को प्रदान किए। आपकी ऐसी कृतियों में 'कुमार-सम्भव-सार', 'नैषध-

'चरित-चर्चा', 'विक्रमांकदेव चरित्र चर्चा', 'कालिदास की निरंकुशता', 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'किराता-र्जुनीय की टीका' और 'मेघदूत की टीका' के अतिरिक्त 'स्वाधीनता' (जान स्टुअर्ट मिल की 'लिबर्टी' का अनुवाद), और 'शिक्षा' (हर्बर्ट स्पैंसर की 'एजुकेशन' का अनुवाद) उल्लेखनीय हैं। आपने लार्ड बेकन के प्रमुख निबन्धों का अनुवाद भी 'बेकन विचार रत्नावली' नाम से किया था। आपके समीक्षात्मक तथा वर्णनात्मक निबन्धों के संकलन आपकी 'अद्भुत आलाप', 'आध्यात्मिकी', 'आलोचनांजलि', 'कोविद कीर्तन', 'नाट्य-शास्त्र', 'प्राचीन चिह्न', 'प्राचीन पण्डित और कवि', 'पुरातत्त्व-प्रसंग', 'रसज्ञ-रंजन', 'लेखां-जलि', 'विचार-विमर्श', 'संकलन', 'साहित्य सन्दर्भ', 'साहि-त्य-सीकर', 'सुकवि-संकीर्तन' तथा 'हिन्दी भाषा की उन्नति' पुस्तकों में हैं। आपकी 'सुमन', 'कविता-कलाप', 'द्विवेदी काव्यमाला' और 'काव्य-मंजूषा' नामक पुस्तकें कविताओं के संकलन हैं और 'आख्यायिका सप्तक', 'चरित-चर्चा', 'जल चिकित्सा', 'वनिता विलास', 'नगर-विलास', 'विदेशी विद्वान्', 'विज्ञान-वार्ता', 'वैचित्र्य चित्रण', 'सम्पत्ति-शास्त्र' और 'हिन्दी महाभारत' आदि अन्य पुस्तकों का भी हिन्दी के बहुमुखी विकास में बहुत बड़ा योगदान है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त आपकी 'विनय विनोद', (भर्तृहरि के 'वैराग्य शतक' का दोहों में अनुवाद), 'बिहार वाटिका', (गीत गोविन्द' का अनुवाद), 'स्नेह माला', (भर्तृहरि के 'शृंगार शतक' का दोहों में अनुवाद), 'श्री महिम्न स्तोत्र', (संस्कृत के 'महिम्न स्तोत्र' का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद), 'भामिनी विलास', (पंडितराज जगन्नाथ के ग्रन्थ का अनुवाद), 'गंगा लहरी', (पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' का सवैयों में अनुवाद), तथा 'ऋतु तरंगिणी', (कालिदास के 'ऋतु संहार' का छायानुवाद) आदि पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं। आपने बाइरन के 'ब्राइडल नाइट' का छायानुवाद भी 'सोहाग रात' नाम से किया था, जो अप्रकाशित ही रह गया। आप संस्कृत के भी सुलेखक तथा कवि थे। आपकी संस्कृत की प्रकाशित रचनाओं में 'देवी स्तुति शतक', 'कान्यकुब्जावली व्रतम्' तथा 'समाचार पत्र सम्पादकस्तवः' आदि प्रमुख हैं। आपकी स्वाध्यायशीलता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि इतना बहुविध लेखन आपने किया था।

आपने 20 वर्ष के सम्पादन-काल में आचार्य द्विवेदीजी ने जहाँ भाषा के परिष्कार और उसके स्वरूप-निर्धारण के लिए अथक संघर्ष किया था वहाँ हिन्दी में लेखकों तथा कवियों की एक पीढ़ी का निर्माण ही आपने कर दिया। राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त-जैसे प्रतिभाशाली कवि और अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी-जैसे तेजस्वी पत्रकार आपकी देन हैं। अपने कार्य-काल में द्विवेदीजी ने जहाँ हिन्दी में अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात किया था वहाँ साहित्य-क्षेत्र में व्याप्त बहुत-सी अराजकताओं का निराकरण करने में भी आप नहीं चूके। अँग्रेजी पढ़े-लिखे बाबू जब हिन्दी में लिखना अपना अपमान समझते थे तब आपने हिन्दी का वातावरण तैयार करके सैकड़ों हिन्दी-लेखक तैयार किए। 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के आप कट्टर विरोधी थे। आपकी ऐसी धारणा का परिचय इन पंक्तियों से मिलता है—"कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊँचा उद्देश्य अवश्य रहना चाहिए। केवल कविता के लिए कविता करना एक तमाशा है।" भाषा की एकरूपता तथा सरलता के सम्बन्ध में भी आपके विचार अनुकरणीय और मननीय हैं। इस सम्बन्ध में हिन्दी में व्याप्त विषमता का विवेचन करते हुए आपने यह ठीक ही लिखा था—"गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् नहीं होनी चाहिए। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य समाज की जो भाषा हो, उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए—बोलना एक भाषा, और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। जो लोग हिन्दी बोलते हैं और हिन्दी ही के गद्य-साहित्य की सेवा करते हैं, उनके पद्य में ब्रजभाषा का आधिपत्य बहुत दिनों तक नहीं रह सकता।"

आपकी हिन्दी भाषा तथा साहित्य-सम्बन्धी उल्लेखनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने जनवरी सन् 1931 में जब द्विवेदीजी को अभिनन्दन पत्र अर्पित किया था तब आचार्य शिवपूजनसहाय ने सभा की ओर से एक अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करने की योजना भी प्रस्तुत की थी। फलतः 2 मई सन् 1933 को सभा ने बड़े समारोहपूर्वक काशी में वह अभूतपूर्व 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट करके अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की थी। इसके 2 दिन बाद प्रयाग में भी ठाकुर श्रीनाथसिंह, मुन्शी कन्हैयालाल एड-वोकेट तथा श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि अनेक महानुभावों

के उद्योग से 'द्विवेदी-मेला' आयोजित करके उसमें भी द्विवेदीजी का अभिनन्दन किया गया था। आचार्य द्विवेदी 'प्रचार और विज्ञापन' से इतना दूर रहते थे कि अनेक बार प्रयास करने पर भी आपको अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए तैयार न किया जा सका। हाँ, स्वागत-सत्कार करने में आप सबसे आगे रहते थे। इसका प्रमाण हमें इस बात से मिल जाता है कि जब कानपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 13 वाँ अधिवेशन सन् 1922 में किया गया था तब उसकी 'स्वागत-समिति' की अध्यक्षता का भार आपने सहर्ष सँभाला था। 'सरस्वती' से अलग होने पर अपने जीवन के 18 वर्ष आपने अपने गाँव में रहकर ही व्यतीत किए थे। इण्डियन प्रेस से आपको पेंशन के जो 50 रुपए मासिक मिलते थे द्विवेदीजी उसीमें अपना जीवन-यापन करते थे। स्वाभिमानी इतने थे कि कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया और अपनी गरीबी में ही मस्त रहे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको अपनी सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' से सम्मानित किया था।

आपका निधन 21 दिसम्बर सन् 1938 को हुआ था।

श्री महेन्दुलाल गर्ग

श्री गर्ग का जन्म उत्तर प्रदेश के मथुरा जनपद के सलेमपुर नामक ग्राम में 4 अगस्त सन् 1870 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा निकट के ही 'फरह' नामक कस्बे में हुई थी। 14 वर्ष की अवस्था में आपने हिन्दी की मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त उर्दू का भी अध्ययन किया था। अँग्रेजी की शिक्षा आपने आगरा जाकर प्राप्त की थी। आगरा में रहते हुए भी आपका सम्पर्क सौभाग्य से एक ऐसे महानुभाव से हो गया था जिनके पास हिन्दी-पुस्तकों का बहुत अच्छा संग्रह था। गर्गजी ने इन पुस्तकों के स्वाध्याय के बल पर अपनी योग्यता को बहुत बढ़ाया था।

उन्हीं दिनों आगरा के मैडिकल स्कूल में स्त्रियों के लिए हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता हुई जो हिन्दी और उर्दू जानने के साथ-साथ अँग्रेजी की अच्छी योग्यता रखता हो। फलस्वरूप आप परीक्षा देने के उपरान्त वहाँ नियुक्त हो गए और 2 वर्ष तक पाठ्य-पुस्तकें तैयार करते रहे। यह काम करते हुए आपने भी मैडिकल स्कूल में पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और सन् 1891 में वहाँ से 'हास्पिटल असिस्टेंट' का डिप्लोमा प्राप्त करके आप सेना विभाग में डॉक्टर के रूप में कार्य करने लगे।

सेना में कार्य करते हुए आपको देश के विभिन्न स्थानों को देखने का एक ऐसा सुअवसर मिल गया था कि उससे आपके ज्ञान की अभिवृद्धि भी होती गई। आपने जहाँ कश्मीर के विभिन्न दर्शनीय स्थानों की यात्रा की थी वहाँ आप गिल-हित में भी गए थे। इस प्रसंग में आपको कई वर्ष तक पंजाब और सीमा प्रान्त में भी रहना पड़ा था। सन् 1899 में आप भारतीय सेना के साथ चीन भी गए थे। उन दिनों चीन की राजधानी पीकिंग में अमरीका, रूस, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया, फ्रांस और इंगलैण्ड की प्रमुख सेनाएँ एकत्र हो गई थी। अपनी इन यात्राओं के दौरान आप समय-समय पर अपने अनुभव तथा संस्मरण भी हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजते रहते थे। आपने कई वर्ष तक 'भारत मित्र' में अपनी 'गर्ग विनोद' नामक एक लेखमाला प्रकाशित कराई थी। बाद में यह लेखमाला प्रकाशित भी हो गई थी। अन्तिम दिनों में आप मथुरा के सैनिक अस्पताल में काम करते थे।
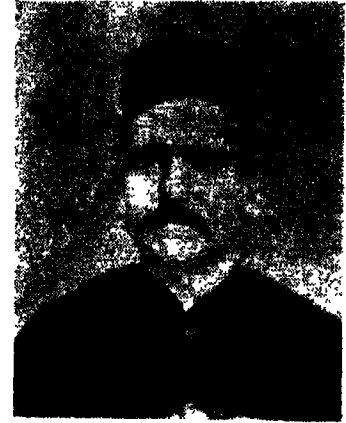
फुटकर लेख लिखने के अतिरिक्त आपने हिन्दी में कई पुस्तकें भी लिखी थीं। आपकी ऐसी पुस्तकों में 'शिशु पालन', 'पृथ्वी परिक्रमा', 'पति-पत्नी संवाद', 'दन्त रक्षा', 'तरुणों की दिनचर्या', 'चीन दर्पण', 'अनन्त ज्वाला', 'जापानीय स्त्री शिक्षा' 'प्लेग-चिकित्सा', 'ध्रुव देश', 'सुख मार्ग' तथा 'परिचर्या प्रणाली' आदि प्रमुख रूप से उल्लेख-योग्य हैं।

आपका निधन सन् 1942 में हुआ था।

मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

मुनि श्री महेन्द्रकुमार का जन्म 27 जुलाई सन् 1930 को राजस्थान के राजलदेसर नामक स्थान में हुआ था। आपने सन् 1941 में जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा के बाद आपने मुनि श्री नगराज डी० लिट्० के सान्निध्य में अपने जीवन को समर्पित करके सतत अध्ययन-अध्यापन द्वारा अवधान विद्या में विशेष ख्याति अर्जित की थी।

आप संस्कृत के आशुकवि होने के साथ-साथ हिन्दी के भी सुलेखक थे और जैन कथा-साहित्य को सर्वथा आधुनिक शैली में प्रस्तुत करने की दिशा में आपने एक अभिनन्दनीय कार्य किया था। आपके द्वारा लिखित व सम्पादित लगभग 80 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और 20 ग्रन्थ प्रकाशनाधीन हैं। इतनी छोटी-सी आयु में सौ ग्रन्थों का प्रणयन करके आपने वास्तव में एक आश्चर्यजनक कार्य किया है। आपकी रचनाओं में 'भगवान् महावीर : जीवन और दर्शन', 'अप्रतिम योगी भगवान् महावीर', 'तीर्थंकर ऋषभ और चक्रवर्ती भरत' तथा 'स्मृति को बढ़ाने के प्रकार' के अतिरिक्त 'जैन कहानियों के तीस भाग' एवं 'आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन' आदि प्रमुख हैं।

आपकी स्मरण-शक्ति भी अद्भुत थी। एक बार सुनकर ही आप कैसी भी जटिलतम बात को हृदयस्थ कर लेते थे। कैसे भी जटिल प्रश्न का उत्तर देना आपके लिए बहुत सहज था। आपकी इस अवधान विद्या के प्रयोग भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अनेक बार राष्ट्रपति भवन के अशोक कक्ष में कराए थे। उस समय भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और उपराष्ट्रपति राधाकृष्णन् भी आपकी इस अवधान विद्या को देखकर आश्चर्यचकित रह गए थे। सभी लोगों ने उसे भारतीय योग विद्या का एक चमत्कार माना था।
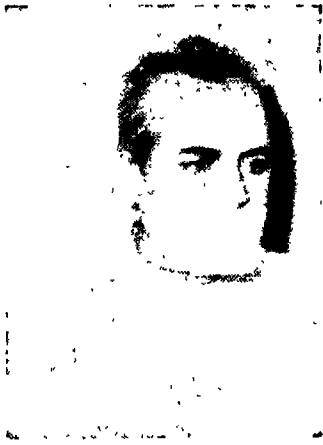
आपका निधन 5 अप्रैल (रामनवमी) सन् 1979 को कलकत्ता में रक्तस्राव के कारण हुआ था।

श्री महेन्द्रसिंह

श्री महेन्द्रसिंह का जन्म बिहार के सारन जिले के मानिकपुर (गोपालगंज) नामक ग्राम में सन् 1886 में हुआ था। आपने वहाँ के बी०एम०एच०ई० स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास करके सन् 1910 में अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इसी बीच आपने संस्कृत का भी ज्ञान अर्जित कर लिया और उसकी प्रथमा परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। सन् 1910 से 1920 तक अध्यापन-कार्य करने के अनन्तर आप सन् 1920 में महात्मा गान्धी के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े और सन् 1921 के जनवरी मास में गिरफ्तार कर लिए गए। सन् 1923 में आप गोपालगंज लोकल बोर्ड के चेयरमैन हुए और इस पद पर एक वर्ष तक कार्य करते रहे। सन् 1919 में आपने अपने ग्राम में एक नेशनल स्कूल भी खोला था।

आपने लेखन का कार्य सन् 1937 से ही प्रारम्भ किया था और उन्हीं दिनों आपने 'श्रीमद्भागवत' का हिन्दी अनुवाद भी किया था। आपके द्वारा लिखित 'पाँच विकट यात्राएँ' तथा 'मानसरोवर की झाँकी' नामक दो पुस्तकें मिलती हैं। इनका प्रकाशन वाणी मन्दिर छपरा के द्वारा हुआ था।

आपका निधन 28 जुलाई सन् 1951 को कैंसर के कारण हुआ था।

श्री महेशचन्द्र शास्त्री विद्याभास्कर

श्री महेशचन्द्र शास्त्री का जन्म मध्यप्रदेश के इन्दौर नामक नगर में श्री वैद्य नारायणराव इन्दौरकर के यहाँ 7 सितम्बर सन् 1921 को हुआ था। वंश-परम्परा से वैद्यक का व्यवसाय चला आने के कारण आपने भी उत्तर भारत की संस्था

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर से स्नातक होकर 'विद्या-भास्कर' की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त 'आयुर्वेदाचार्य' और 'वैद्य वाचस्पति' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। इसके उपरान्त सन् 1944 में 'साहित्यरत्न' और 'शास्त्री' की परीक्षाएँ भी आपने उत्तीर्ण कर लीं और कार्य-क्षेत्र में अवतरित हो गए।

आपके पिता तो आपको वैद्य बनाना चाहते थे, परन्तु आपकी रुचि लेखन और सम्पादन की ओर ही थी। फलतः आप सन् 1947 से 1955 तक प्रख्यात वैदिक विद्वान् श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के पारड़ी (महाराष्ट्र) स्थित 'स्वाध्याय मण्डल' में अनुसन्धान-कार्य करने के साथ-साथ वहाँ से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'वैदिक धर्म' का भी सम्पादन योग्यतापूर्वक करने लगे। मराठी से हिन्दी में अनुवाद का कार्य भी आप वहाँ बड़ी तत्परता तथा योग्यतापूर्वक किया करते थे। सम्पादन, अनुसन्धान और अनुवाद-कार्य के अतिरिक्त वहाँ से आपने संस्कृत की परीक्षाओं का संचालन भी किया था।

संस्कृत-लेखन और भाषण में आपकी अबाध गति देखकर भारतीय संस्कृति के अनन्य अध्वर्यु श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी आपको अपनी संस्था 'भारतीय विद्या भवन' में ले गए और आपको वहाँ पर संस्कृत परीक्षाओं का संचालन करने के लिए 'परीक्षा मन्त्री' बनाया गया। इस पद पर रहते हुए आपने सारे देश में ही नहीं, प्रत्युत विदेशों में भी इन परीक्षाओं के केन्द्र स्थापित किए। आपने इन परीक्षाओं को जन साधारण में लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से संस्कृत की सरल पाठ्य पुस्तकें भी लिखीं, जिनका अनुवाद देश की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। इन परीक्षाओं का व्यापक प्रचार करने की दृष्टि से आपने सन् 1969 में अनेक एशियायी देशों की यात्रा भी की थी।

आपका देहावसान सन् 1976 में हुआ था।

श्री महेशचरण सिनहा

श्री सिनहा का जन्म लखनऊ के एक कायस्थ परिवार में 6 नवम्बर सन् 1882 को हुआ था। आप जब केवल 11 वर्ष के ही थे कि आपके पिता का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। आपने अपनी शिक्षा प्रयाग में प्रारम्भ की और सन् 1897 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने पारिवारिक आजीविका चलाने की दृष्टि से बीच में ही पढ़ना छोड़ दिया। फिर आपने धीरे-धीरे क्रिश्चियन कालेज, लखनऊ से बी० ए० की परीक्षा देकर इलाहाबाद में वकालत का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। उन दिनों ही आपका सम्पर्क श्री सच्चिदानन्द सिनहा और श्री सी० वाई० चिन्तामणि से हुआ था।

जिन दिनों आप प्रयाग में वकालत का अध्ययन कर रहे थे तब आपको विज्ञान विषय का अध्ययन करने के लिए जापान जाने के लिए एक व्यापारी 'वासिया माल' द्वारा छात्र-वृत्ति दी गई और आप बर्मा, मलाया और चीन होते हुए जापान पहुँच गए। वहाँ जाकर आपको जब यह मालूम हुआ कि यह छात्रवृत्ति तो आगे अध्ययन करने के लिए अपर्याप्त होगी तो आपने वहाँ की एक फैक्टरी में नौकरी करके अपना अध्ययन जारी रखा। टोकियो विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए आपमें राष्ट्रीयता का बीज अंकुरित हो गया था। उस समय ही आपने यह अनुभव कर लिया था कि जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होगा तब तक वह उन्नति नहीं कर सकेगा। सन् 1904 में आप वहाँ से संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए चले गए। अध्ययन करते हुए आपने अमरीकी जनता में भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रति रुचि जागृत करने का भी प्रशंसनीय कार्य किया। आप वहाँ भारत से अध्ययनार्थ आए हुए अनेक भारतीय छात्रों से भी मिलते रहे और उनमें देश-भक्ति की भावनाएँ भरते रहे। सन् 1907 में आप इंगलैंड गए और वहाँ भी भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का सन्देश देने का अग्रणी कार्य करते रहे। वहाँ से वापस भारत आकर आप लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की अध्यक्षता में हुए सूरत के कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित हुए। तिलक की गरम विचार-धारा का आपके मन पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि आप 'गरम दल' के समर्थक बन गए।

उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क प्रख्यात क्रान्तिकारी नेता और प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन के संस्थापक राजा महेन्द्र-प्रताप से हो गया। उन्होंने आपको अपने विद्यालय में औद्योगिक प्रशिक्षण का कार्य देखने के लिए बुला लिया। राजा महेन्द्रप्रताप जब क्रान्तिकारी जीवन व्यतीत करने के लिए विदेश चले गए तब लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द के अनुरोध पर आप गुरुकुल कांगड़ी में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष के रूप में चले गए। वहाँ जाकर विज्ञान-जैसे गूढ़ विषय को हिन्दी माध्यम से प्रस्तुत करने की दिशा में आपने उल्लेखनीय कार्य किया। आपने विज्ञान के अनेक पक्षों पर जहाँ हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण करने में अग्रणी कार्य किया वहाँ उसके लिए गुरुकुल के छात्रों में उचित वातावरण भी तैयार किया।

हिन्दी में विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण की दिशा में श्री सिनहा का कार्य सर्वथा अभिनन्दनीय कहा जा सकता है। आप ऐसे प्रथम हिन्दी लेखक थे, जिन्होंने विज्ञान का अध्यापन हिन्दी-माध्यम से करने का मार्ग उद्घाटित किया था। आपकी 'रसायन शास्त्र' (1909), 'वनस्पति शास्त्र' (1911), और 'विद्युत् शास्त्र' (1912) आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। कदाचित् हिन्दी में बहुत कम पाठकों को यह विदित होगा कि आपकी सुपुत्री श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा हिन्दी की उत्कृष्ट कवयित्री हैं। आप काफी दिन तक सन् 1919 से सन् 1923 तक लखनऊ नगरपालिका के सदस्य भी रहे थे।

आपका निधन सन् 1942 में हुआ था।

श्री महेशनारायण

श्री महेशनारायण का जन्म सन् 1858 में बिहार के सन्ताल परगना के राजमहल अनुमण्डल के अन्तर्गत बमन-गामा नामक ग्राम के एक सम्भ्रान्त कायस्थ परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम भगवतीचरण था। आप फारसी और संस्कृत के विद्वान् थे। बिहार में उन दिनों केवल एक ही 'पटना कालेज' था और उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त लोगों की गणना केवल उँगलियों पर ही होती थी। महेशनारायण के ज्येष्ठ भ्राता श्री गोविन्दचरण बिहार के पहले एम० ए० थे। पटना में जब 'बी० एन० कालेज' की स्थापना हुई थी तब आप ही उसके प्रथम मन्त्री थे। गोविन्द बाबू पटना में वकालत करते थे और उन्होंने अपने छोटे भाई श्री महेश-नारायण को प्रायः गोद ही ले लिया था; क्योंकि उनके कोई सन्तान नहीं थी। वे आपको अपने छोटे भाई की तरह नहीं, प्रत्युत पुत्र की भाँति मानते थे। महेश-नारायण और गोविन्दचरण की आयु में लगभग 18 वर्ष का अन्तर था। पटना में इण्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप आगे की पढ़ाई के लिए कलकत्ता चले गए थे, क्योंकि उन दिनों बंगाल और बिहार एक ही प्रदेश माना जाता था। बिहार का अलग अस्तित्व नहीं था। वहाँ पर बंगाली छात्र बिहारी विद्यार्थियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते थे और वे प्रायः आप पर भी छींटाकशी किया करते थे। इससे खिन्न होकर महेशनारायण ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी और आप बिहार के अलग अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगे। आपने पटना लौटकर बिहार का अलग प्रान्त बनाए जाने के आन्दोलन का सूत्रपात किया और वहाँ के 'बिहार बन्धु' (हिन्दी) तथा 'बिहार हैरल्ड' (अँग्रेजी) नामक पत्रों में इसके निमित्त एक संगठन बनाने की बात अत्यन्त सशक्त ढंग से उठाई। आपके थोड़े ही प्रयास से आपका यह आन्दोलन सफल हो गया और अलग बिहार प्रान्त बन गया।

इस प्रकार श्री महेशनारायण ने राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जहाँ एक अच्छे 'जननायक' की भूमिका निबाही वहाँ हिन्दी के उत्कृष्ट कवि के रूप में भी साहित्य के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया। जिस समय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने खड़ी बोली में कविता करने में कठिनाई अनुभव की थी तब श्री महेशनारायण ने 1881 के

पूर्व ही खड़ी बोली में कविता करके यह प्रमाणित कर दिया था कि खड़ी बोली में सफल कविता की जा सकती है। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि श्री महेशनारायण से भी पहले मेरठ के सन्त कवि गंगादास (1823-1913) ने खड़ी बोली में सफल रचनाएँ करके अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर दी थी। हाँ, यह अवश्य विचारणीय है कि भारतेन्दु से पूर्व जब ये दोनों महानुभाव खड़ी बोली कविता का मार्ग प्रशस्त करने में संलग्न थे तब इतिहासकारों ने उनकी सर्वथा उपेक्षा करके अकेले भारतेन्दुजी को ही यह श्रेय क्यों दिया था? आपकी 'स्वप्न' नामक लम्बी कविता 'बिहार बन्धु' के 13 अक्तूबर सन् 1881 के अंक में प्रकाशित हुई थी। आपकी यह रचना हिन्दी में मुक्त छन्द का पहला प्रयोग कही जा सकती है।

कांग्रेस के जन्म से पूर्व राष्ट्रीय विचार-धारा का प्रसार-प्रचार करने की दिशा में श्री महेशनारायण का अद्वितीय योगदान था। जिन दिनों राष्ट्र के विषय में कुछ सोचना तक अपराध समझा जाता था तब राष्ट्रीय रचना करने की पहल करना आप-जैसे तेजस्वी व्यक्तित्व का ही कार्य था। आपकी राष्ट्रीय रचनाओं में जैसी तीव्रता और उत्कटता है वैसी भारतेन्दुजी की रचनाओं में भी नहीं है। आज जिस 'नई कविता' के जनक के रूप में सन् 1943 में श्री अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' का नाम लिया जाता है यह सर्वथा भ्रान्त धारणा है। श्री महेशनारायण की सन् 1880-1881 में लिखी गई रचनाएँ 'नई कविता' की कसौटी पर खरी उतरती दृष्टिगत होती हैं। जो लोग 'नई कविता' की वकालत के लिए बार-बार इलियट तथा एजरा पाउण्ड का नाम लेते हुए नहीं थकते उन्हें श्री महेशनारायण की कविताओं को ध्यान से पढ़ना चाहिए।

यह खेद है की बात है कि श्री महेशनारायण के कृतित्व का जितना मूल्यांकन होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। केवल 2 दशक पूर्व बिहार के प्रख्यात साहित्यकार श्री उमाशंकर ने दुमका में 'महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान' की स्थापना करके उसके द्वारा कुछ कार्य प्रारम्भ किया था कि अकस्मात् उनका भी निधन हो गया। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् को अब इस दिशा में कुछ अवश्य करना चाहिए।

आपका निधन 1 अगस्त सन् 1907 को केवल 49 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जनपद के बाबई नामक ग्राम में 4 अप्रैल सन् 1889 को हुआ था। चतुर्वेदीजी का परिवार राधावल्लभ-सम्प्रदाय का अनुयायी होने के कारण वैष्णव भावनाओं से आप्लावित था। इसी कारण चतुर्वेदीजी के बाल-मानस पर वैष्णव सन्तों की भक्ति-भावना का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था। गाँव की ही प्राथमिक पाठशाला में प्रारम्भिक पढ़ाई करने के साथ-साथ आपने संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया था। मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके सन् 1903 में आपने नार्मल की परीक्षा दी, और सन् 1904 में खण्डवा के मिडिल स्कूल में 8 रुपए मासिक पर अध्यापक हो गए। अध्यापन-कार्य में संलग्न रहते हुए आपने अपना अँग्रेजी भाषा का ज्ञान भी अच्छा बढ़ा लिया था। इस बीच देश में स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और सन् 1906 में आप क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गए। इसी बीच अध्यापन से त्यागपत्र देकर आपने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की राजनीति का पूर्णत: समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया। सन् 1913 में आपने 'प्रभा' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया, जो पहले चित्रशाला प्रेस, पूना और बाद में प्रताप प्रेस, कानपुर से छपती थी। इसी प्रसंग में आपका सम्पर्क श्री गणेशशंकर विद्यार्थी से हुआ और उन्हीं के साथ आपने सन् 1917 में महात्मा गान्धी से भेंट की थी। विद्यार्थीजी के सम्पर्क और गान्धीजी की इस भेंट का चतुर्वेदी जी के जीवन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि आप फिर पूर्णत: राष्ट्र को समर्पित हो गए।

आपके मानस में राष्ट्रीयता की भावनाएँ इतनी उग्रता से हिलोरें लेने लगी थी कि एक दिन सहसा आपके कवि-मानस से यह पंक्तियाँ फूट पड़ीं :

मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर देना तू फेंक।
मातृ-भूमि-हित शीश चढ़ाने,
जिस पथ जाएँ वीर अनेक।।

आपने अपनी लेखनी तथा वाणी दोनों का ही सदुपयोग राष्ट्र-हित में करने का संकल्प कर लिया और जमकर राष्ट्रीय रचनाएँ लिखीं। इस बीच सन् 1918 में आपने

जहाँ 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक अपने प्रख्यात नाटक (प्रथम और अन्तिम) की रचना की वहाँ आपने जबलपुर के प्रख्यात पत्रकार श्री माधवराव सप्रे के सहयोग से सन् 1919 में 'कर्मवीर' साप्ताहिक का सम्पादन-प्रकाशन प्रारम्भ किया। सम्पादन के साथ-साथ आपने लोक-मानस में राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित करने के लिए खण्डवा में 'प्रान्तीय राजनीतिक परिषद्' की स्थापना करके उग्र विचारों की राजनीति का प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच आप 'मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' के सागर में सम्पन्न हुए तीसरे अधिवेशन में उसकी स्थायी समिति के मन्त्री निर्वाचित हो गए और 12 मई सन् 1921 को राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिए गए। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि महाकौशल से राजनीतिक आन्दोलन में जेल-यात्रा करने वाले चतुर्वेदीजी पहले ही व्यक्ति थे। चतुर्वेदीजी को 'राजद्रोह' के अपराध में सजा सुनाते हुए विलासपुर के जिला मजिस्ट्रेट ने जो शब्द कहे थे उनसे चतुर्वेदीजी की उग्रता का स्पष्ट आभास हो जाता है। उसने कहा था—"जो व्यक्ति जनता की दृष्टि में सरकार की प्रतिष्ठा को गिराता है वह राजद्रोह के अपराध में दण्डनीय है।" चतुर्वेदीजी की वैचारिक तथा कार्मिक उग्रता ने इतना भयंकर रूप धारण कर लिया था कि आपने 'मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के चौथे अधिवेशन में यह प्रस्ताव रख दिया कि "सभी साहित्यकार अपनी रचनाएँ स्वाधीनता प्राप्त करने के ध्येय से ही लिखें।" यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इससे पूर्व साहित्य के मंच से इतने उग्र विचार कभी प्रकट नहीं किये गए थे और सम्मेलन को राजनीति से दूर ही रखा जाता था।

कदाचित् हिन्दी के आधुनिक कवियों में चतुर्वेदीजी ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा तथा योग्यता का पूर्ण सदुपयोग राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर किया। आपने जहाँ सन् 1923 में नागपुर में हुए ऐतिहासिक 'झण्डा-सत्याग्रह' में डटकर भाग लिया वहाँ सन् 1924 में गणेशशंकर विद्यार्थी की गिरफ्तारी पर कानपुर जाकर 'प्रताप' का सम्पादन भी किया। कानपुर में रहते हुए आपने 'प्रभा' का पुनर्प्रकाशन भी किया और उसके माध्यम से देश की नई उठती हुई पीढ़ी में राष्ट्रीयता की अद्भुत चेतना जागृत की थी। अपने इन साहित्यिक कार्यों में संलग्न रहते हुए आपने सन् 1926 में केन्द्रीय धारा-सभा के चुनावों में महाकौशल कांग्रेस का सफल नेतृत्व किया और सन् 1929 में सम्पन्न अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भरतपुर-अधिवेशन के अवसर पर आयोजित 'सम्पादक सम्मेलन' की अध्यक्षता भी की। इस सम्मेलन के अध्यक्ष पद से चतुर्वेदीजी ने जो भाषण दिया था वह बड़ा क्रान्तिकारी था। उसमें आपने हिन्दी के सभी पत्र-सम्पादकों से राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग देने का जो अनुरोध किया था वह आपकी राष्ट्र-निष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण है।

'कर्मवीर' और 'प्रभा' के सम्पादन-काल में आपने हिन्दी में राष्ट्रीय काव्य-धारा का जो प्रचलन किया उससे प्रभावित होकर सामान्यतः समग्र देश तथा विशेषतः मध्यप्रदेश में अनेक कवि इस ओर अग्रसर हुए। आपने जहाँ पत्रकारिता के क्षेत्र में एक ऐसी पीढ़ी तैयार की थी जो स्वतन्त्रता को आदर्श मानकर उसकी प्राप्ति के लिए बड़े-से-बड़े त्याग करने को तत्पर थी वहाँ कवियों में भी अनेक ऐसे थे, जिनकी प्रतिभा उन दिनों चतुर्वेदीजी की जागरूक मेधा का पावन परस पाकर ही विकसित हुई थी। सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की अकेली 'झाँसी की रानी' कविता ने ही देश में जागृति का जो भैरवी मन्त्र फूंका था, वह चतुर्वेदीजी का ही प्रताप था। यह चतुर्वेदीजी की अभूतपूर्व मेधा का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि आपने साहित्य, समाज और राजनीति में समान रूप से सफलता प्राप्त की थी। राजनीति में आकण्ठ निमग्न रहते हुए भी आपकी साहित्य-साधना में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आई थी। आपके व्यक्तित्व की यह एक और विशेषता थी कि आपका लेखन तथा भाषण एक-जैसा ही होता था। आपके भाषणों को सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सरस्वती गद्य-गंगा के रूप में उन्मुक्त भाव से अवतरित हो रही हो। आपकी वाणी में

ओज और तेजस्विता का अद्भुत सम्मिश्रण होता था। आपके भाषणों में भी काव्य का-सा आनन्द आता था। आप वाणी के घोड़े पर चढ़कर भाषा और भावों को जिस तरह चाहते थे, नचाते थे। पत्रकारिता में चतुर्वेदीजी ने जहाँ सर्वश्री कालूराम गंगराड़े, विष्णुदत्त शुक्ल और माधवराव सप्रे को अपना आदर्श समझा वहाँ लोकमान्य तिलक की उग्रता को भी पूर्णतः अपनाया था।

कवि के रूप में चतुर्वेदीजी ने जो प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता अर्जित की थी उसकी उपमा आप स्वयं ही थे। 'एक भारतीय आत्मा' के रूप में राष्ट्रीय रचनाएँ करके आपने देश को जागृति का जो सन्देश दिया था उसीका सुपरिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय रचना के क्षेत्र में कवियों की बाढ़ आ गई थी और उन्होंने चतुर्वेदीजी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर काव्य-रचना करके समाज को नई चेतना प्रदान की थी। आपकी प्रथम काव्य-कृति 'हिम किरीटिनी' ने हिन्दी-काव्य को जहाँ नया मोड़ दिया वहाँ आपकी 'हिम तरंगिनी' नामक काव्य-कृति को साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली ने सर्वप्रथम पुरस्कृत किया था। आपकी 'साहित्य देवता' नामक कृति में जहाँ चतुर्वेदीजी का उत्कृष्ट गद्य प्रस्तुत किया गया है वहाँ 'अमीर इरादे गरीब इरादे' तथा 'चिन्तक की लाचारी' नामक रचना में समय-समय पर लिखे गए आपके निबन्ध आकलित हैं। आपकी 'कला का अनुवाद' नामक रचना में चतुर्वेदीजी द्वारा समय-समय पर लिखी गई कहानियाँ समाविष्ट हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'माता', 'युग-चरण', 'समर्पण', 'समय के पाँव', 'मरण ज्वार', और 'वेणु लो गूँजे धरा' नामक काव्य-संकलन उल्लेखनीय हैं। आपकी प्रारम्भिक कविताओं में जहाँ वैष्णवी भक्ति के दर्शन होते हैं वहाँ कालान्तर में वह राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुई और युगानुरूप छायावादी भावधारा का अनुगमन आपके कवि ने किया। आपकी ऐसी कविताओं में रहस्य-भावना की मधुरा भक्ति के साथ एक अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

चतुर्वेदीजी कविता को एक साधना मानते थे। आपकी रचनाओं में सौन्दर्य-बोध, गम्भीर अनुभूति और उपयोगी सत्य इन तीन गुणों का जो समन्वित रूप उभरकर सामने आया है वह आपके साहित्यकार की अद्भुत आस्था का परिचायक है। यदि ऐसा न होता तो आप यह क्यों कहते—"कविता जीवन की तरह ही जितनी दुलराए जाने की वस्तु है, उतनी युगों के लिए क्रियात्मक साधना की वस्तु भी है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, धार्मिक धारणा, सामाजिक नियम, राष्ट्रीय आवश्यकता, नैतिक आधार और व्यक्ति की उमंगों और आकांक्षाओं के बावजूद यह हमें ध्यान रखना होगा कि कविता, कविता है। यह हमारी न जाने कैसी प्रवृत्ति है कि हम काव्य की प्रवृत्तियों से दो माँगें एक साथ करते हैं, जो एक-दूसरे से विपरीत पड़ती हैं। हम युग की काव्य-प्रवृत्ति से कहते हैं कि ऐसा लिखो, जिसमें अनहोनापन हो, कुछ ऐसा-सा बोलो, जिस पर समय की दुहराहट के दाग न पड़े हों। और जब कोई मस्तानी कलम दुखती-सी कसकों और दीखती-सी अपदाओं के बीच अपने जीवन के अनन्त वैभव को अनोखे अनहोनेपन के साथ कागज पर उतार देती है, तब हम अपनी घिसी-पिटी यादों का पुराना कारखाना खोलकर कह उठते हैं—यह व्यास-जैसा तो नहीं आया, वाल्मीकि-जैसा तो नहीं बना, इसमें भवभूति-जैसी आर्य भावना कहाँ है, कालिदास-जैसा नाविन्य भी इसमें नहीं है। नवीनता से पुरानापन वसूल करने का हमारा यह मोह हमारी नवीन पीढ़ी के काव्य में विद्रोह जागृत करता है। इसीलिए इस युग के कवि ने प्राचीनता के वैभव-रथों पर बैठना त्याग दिया है। वह अपनी प्रतिभा के पैरों पाँव-पाँव चलने को बाध्य है।" आप कवि के लिए शब्दों के प्रयोग को इतना पवित्र मानते थे कि एक अक्षर के निरर्थक जाने का भी आपको मलाल होता था। अपनी इस भावना को चतुर्वेदीजी ने इस प्रकार व्यक्त किया था—"शब्द अक्षरों से ही बने हैं, वे चाहे जहाँ घसीटे जाते हैं—जा सकते है। परन्तु जब वे कवि के निकट होते हैं तब वे अपने गौरव के पूर्ण भाव को अनुभव करते हैं, उनके कदम उठाने पर हर्ष में भी जय-ध्वनि होती है, वेदना में भी मस्तक झुकते हैं। मुस्कान वहाँ मीठी होती है, आँसू वहाँ उससे भी मीठे हो जाते हैं।"

चतुर्वेदीजी शब्दों के ऐसे शिल्पी थे कि एक-एक शब्द का प्रयोग करने में आप बहुत सावधानी बरतते थे। यही कारण है कि आपके पद्य तथा गद्य में हार्दिकता तथा संवेदनशीलता पूर्णतः एकाकार होती-सी लगती है। एक उत्कृष्ट शब्द-शिल्पी के रूप में आपकी रचनाओं में एक शब्द का भी वही महत्त्व है जो किसी विशाल अट्टालिका की एक ईंट का होता है। जिस प्रकार एक ईंट को भी सरका देने से उस विशाल अट्टालिका के अरराकर गिरने का खतरा रहता है

इसी प्रकार आपकी रचना से एक शब्द को भी हटाने से वह बे-मानी हो जाती है। चतुर्वेदीजी ने साहित्य में अपनी बहु-आयामी प्रतिभा से ऐसा उल्लेखनीय स्थान बना लिया था कि जहाँ 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने आपको अपने हरिद्वार-अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया वहाँ भारत के राष्ट्रपति ने सन् 1963 में आपको 'पद्म-भूषण' की उपाधि से विभूषित करके भारत-राष्ट्र की कृतज्ञता प्रदर्शित की थी। सागर विश्वविद्यालय ने आपको जहाँ डी० लिट्० की मानद उपाधि से अभिषिक्त किया था वहाँ 'मध्य प्रदेश शासन परिषद्' ने भी सन् 1965 में आपका सम्मान किया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने खण्डवा जाकर आपके निवास-स्थान पर 'प्रशस्ति पत्र' भेंट किया था। जब 1967 में भारत सरकार ने 'राष्ट्रभाषा संशोधन विधेयक' पारित करके हिन्दी के राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होने की अवधि बढ़ाई तब आपने उसके विरोध में सरकार द्वारा प्रदत्त 'पद्मभूषण' के अलंकरण को वापिस करके हिन्दी के गौरव की रक्षा की थी।

यह एक संयोग ही कहा जायगा कि आपका निधन 30 जनवरी सन् 1968 को राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के शहीद-दिवस के दिन हुआ था।

सरदार माधवराव विनायक किबे

सरदार किबे का जन्म इन्दौर के एक महाराष्ट्रीय कहाड़ा ब्राह्मण घराने में 4 अप्रैल सन् 1877 को हुआ था। आप अपने पिता विनायकराव किबे के देहावसान के उपरान्त अपनी जागीरों (राउ और बनेडिया) के स्वामी हुए थे। आपको पारिवारिकजनों में 'भैया साहब' कहा जाता था। आपकी शिक्षा-दीक्षा इन्दौर और प्रयाग में हुई थी और आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् 1901 में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। डेली कालेज, इन्दौर से बी० ए० करने वाले आप प्रथम छात्र थे।

शिक्षा-समाप्ति के बाद सर्वप्रथम आपको भारत सरकार की ओर से इन्दौर में नियुक्त मध्यप्रदेश के गवर्नर जनरल का निजी सचिव बनाया गया और बाद में आप सन् 1911 से सन् 1914 तक देवास (जूनियर) राज्य में मन्त्री के पद पर रहे। फरवरी सन् 1915 में आपको इन्दौर के महाराजा तुकोजीराव होल्कर (तृतीय) ने अपना निजी सचिव नियुक्त किया। सन् 1916 में आपने आबकारी मन्त्री-पद पर रहने के अतिरिक्त सन् 1925 में सामान्य प्रशासन मन्त्री के पद को सँभाला। सन् 1926 में आप इन्दौर राज्य के उप-प्रधानमंत्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त हुए।

आप होल्कर राज्य की 'प्रिवी कौंसिल' के सदस्य भी रहे थे। आपने इन्दौर रियासत के प्रतिनिधि के रूप में लन्दन में आयोजित 'गोलमेज सम्मेलन' में भी भाग लिया था। सन् 1912 में आपको भारत सरकार ने 'राव बहादुर' की उपाधि प्रदान की थी।

सरदार किबे एक कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ इतिहास और अर्थशास्त्र के निष्णात विद्वान् थे। ज्योतिष-शास्त्र में भी आपकी अच्छी गति थी। आपने अनेक सभा-सम्मेलनों में शोधपूर्ण भाषण देकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। आपने जहाँ 'मराठी साहित्य सम्मेलन' के 12वें बम्बई अधिवेशन की अध्यक्षता सन् 1926 में की थी वहाँ 'मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर' के भी आप प्रमुख सूत्रधार थे। अपनी सहधर्मिणी श्रीमती कमलाबाई को हिन्दी-प्रचार में लगाने का प्रमुख श्रेय आपको ही दिया जाता है। वास्तव में आप हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे।

आपका निधन 12 अक्तूबर सन् 1963 को हुआ था।

श्री माधवराव सप्रे

श्री सप्रेजी का जन्म मध्य प्रदेश के दमोह जिले के पथरिया

नामक ग्राम में 19 जून सन् 1871 को हुआ था। उन दिनों आपके पिता पथरिया की देहाती पाठशाला में अध्यापक थे। थोड़े दिन बाद जब सप्रेजी 4 वर्ष की अल्पायु में ही माता-पिता के साथ अपनी मातृभूमि को छोड़कर बिलासपुर चले गए तब वहाँ पर ही आपकी हिन्दी की शिक्षा प्रारम्भ हुई थी। जब आप कठिनाई से 8-9 वर्ष के ही थे कि आपके पिता का देहावसान हो गया और सन् 1887 में आपने अँग्रेजी स्कूल में प्रवेश पाकर वहाँ से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके छात्रवृत्ति प्राप्त की। उन दिनों प्रख्यात हिन्दी पत्रकार श्री रामराव राजाराम चिंचोलकर आपके सहपाठी थे। रायपुर के स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने ठेकेदारी का कार्य प्रारम्भ किया और उसमें अनुभवहीनता के कारण असफल होने पर ग्वालियर चले गए, जहाँ पर आपने इण्टर की परीक्षा दी। सन् 1898 में सप्रेजी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी०ए० की परीक्षा देकर एल-एल० बी० की तैयारी पूर्ण की। किन्तु जिस दिन परीक्षा देनी थी उस दिन परीक्षा-भवन तक जाकर भी आप यह सोचकर वापस लौट आए कि मुझे वकील न बनकर साहित्यकार ही बनना है। सन् 1897 से आपका झुकाव हिन्दी की ओर हो गया था और आपने मन-ही-मन हिन्दी का साहित्यकार बनने का संकल्प कर लिया था।

उन्हीं दिनों आप पेंड्रा (बिलासपुर) के राजकुमारों को पढ़ाने के लिए नियुक्त किये गए। वहाँ से मिलने वाले वेतन से पैसा बचाकर आपने जनवरी सन् 1900 में 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया। हिन्दी के खड़ी बोली काव्य के संवाहक श्री श्रीधर पाठक की महत्त्वपूर्ण कृतियों ('ऊजड़ ग्राम', 'एकान्तवासी योगी' तथा 'जगत् सचाई सार' आदि) की विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक समालोचना सर्वप्रथम इसी पत्र में प्रकाशित हुई थी। इसी प्रकार मिश्रबन्धुओं तथा पं० कामताप्रसाद गुरु आदि अनेक तत्कालीन महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों की कृतियों की समीक्षाएँ सप्रेजी ने ही उन दिनों लिखी थीं। सप्रेजी की 'एक टोकरी मिट्टी' शीर्षक कहानी का प्रकाशन 'छत्तीसगढ़ मित्र' में ही सन् 1901 में हुआ था। इस कहानी को कुछ लोग हिन्दी की पहली मौलिक कहानी बतलाते हैं। पहले 'छत्तीसगढ़ मित्र' रायपुर के कैयूमी प्रेस में छपता था, किन्तु बाद में वह नागपुर के 'देश सेवक प्रेस' से प्रकाशित होने लगा था। खेद है कि केवल एक वर्ष चलने के बाद ही यह अर्थाभाव के कारण बन्द हो गया। 'छत्तीसगढ़ मित्र' हिन्दी का पहला समालोचनात्मक पत्र था। इसका प्रमाण 'सरस्वती' (जुलाई सन् 1901) में प्रकाशित मिश्रबन्धुओं की यह पंक्तियाँ हैं—"छत्तीसगढ़ मित्र की देखा-देखी समालोचना की चाल हिन्दी में भी चल पड़ी।"

'छत्तीसगढ़ मित्र' के बन्द हो जाने पर भी सप्रेजी के उत्साह में कोई कमी नहीं आई और आपने 'देश सेवक प्रेस' मे नौकरी करते हुए भी 'हिन्दी ग्रन्थमाला' नाम से अपना प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिससे आपने आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी द्वारा अनूदित जॉन स्टुअर्ट मिल के प्रख्यात अँग्रेजी ग्रन्थ 'लिबर्टी' का हिन्दी-अनुवाद 'स्वाधीनता' नाम से प्रकाशित किया था। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने जब सन् 1902 में 'विज्ञान कोश' के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया था तब उसके 'अर्थशास्त्र विभाग' का सम्पादन सप्रेजी को ही सौंपा गया था। जिन दिनों सप्रेजी ने पत्रकारिता में प्रवेश किया था तब भारतीय राजनीति में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की उग्र विचार-धारा का बड़ा प्रचार था। परिणामस्वरूप सप्रेजी ने तिलक से सम्पर्क करके नागपुर से सन् 1907 में 'हिन्दी केसरी' नामक एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र के महत्त्व का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि प्रख्यात पत्रकार पं० सुन्दरलाल ने उसके सम्बन्ध में यह उद्गार प्रकट किए हैं—"सप्रेजी के 'हिन्दी केसरी' से मुझे देश-भक्ति की स्फूर्ति मिली। सप्रेजी की विद्वत्ता, अध्यात्म का अभ्यास, अकृत्रिम निष्ठा, स्पष्ट व्यवहार, सादगी तथा स्वार्थ-त्याग के लिए मेरे मन में बड़ा आदर है। खेद इतना ही है कि उन-जैसे योग्य पुरुष महात्मा गान्धी के उदात्त राजनीतिक तत्त्व-ज्ञान का आकलन पूरी तरह न कर सके।"

सन् 1908 में 'हिन्दी केसरी' ने 'राष्ट्रीय आन्दोलन का हिन्दी भाषा से क्या सम्बन्ध है?' विषय पर जो निबन्ध-प्रतियोगिता आयोजित की थी उसमें पं० माखनलाल चतुर्वेदी के निबन्ध को सर्वोत्तम ठहराया गया था और उनको 15 रुपये का पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। इसके उपरान्त जब सन् 1915 में श्री माखनलाल चतुर्वेदी से सप्रेजी की भेंट हुई तो आपने उनसे कहा—"मुझे मध्यप्रदेश के लिए एक बलि की जरूरत है, अनेक तरुण मुझे निराश कर चुके हैं, अब मैं तुम्हारी बर्बादी पर उतारू हूँ। माखनलाल, तुम मुझे वचन दो कि अपना समस्त जीवन मध्यप्रदेश की उन्नति में लगा दोगे।" इस पर माखनलालजी ने आपको आश्वस्त करते हुए यही कहा—"यदि प्रान्त के लिए मेरा उपयोग किया जा सकता है तो मैं आपके दरवाजे पर ही हूँ।" परिणामस्वरूप सन् 1920 में माखनलाल चतुर्वेदी ने जबलपुर से जब 'कर्मवीर' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया तब उसके पीछे सारी प्रेरणा तथा मेहनत सप्रेजी की थी। सप्रेजी ने माखनलालजी को आगे बढ़ाने में जो परिश्रम किया उसे सब जानते हैं। 'कर्मवीर' आपका सच्चा स्मारक सिद्ध हुआ।

इसी बीच सप्रेजी ने रायपुर में एकान्तवास करते हुए 'हिन्दी दासबोध', 'रामदास स्वामी की जीवनी', 'आत्म विद्या', 'एकनाथ चरित्र' और 'भारतीय युद्ध' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। कुछ समय बाद आपने लोकमान्य तिलक के 'गीता रहस्य' का हिन्दी अनुवाद भी किया था, जो सन् 1916 में प्रकाशित हुआ था। सन् 1915 में आपने जबलपुर में 'शारदा मंदिर' नामक संस्था की स्थापना करके उसकी ओर से 'शारदा विनोद' नामक मासिक पत्र भी प्रारम्भ किया था, जो 17 महीने चलकर बन्द हो गया। इसके बाद ही विष्णुदत्त शुक्ल और माखनलालजी को प्रेरित करके आपने 'कर्मवीर' का प्रकाशन कराया था। मध्य प्रदेश को साहित्य के क्षेत्र में विष्णुदत्त शुक्ल और माखनलाल चतुर्वेदी के अतिरिक्त सर्वश्री सेठ गोविन्ददास, द्वारकाप्रसाद मिश्र, कामताप्रसाद गुरु और मावलीप्रसाद श्रीवास्तव-जैसे अनेक महारथी प्राप्त कराने का श्रेय श्री सप्रेजी को ही है। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में सप्रेजी का जो योगदान है वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। आप जहाँ उच्च-कोटि के पत्रकार थे वहाँ उत्कृष्ट निबन्धकार तथा साहित्यकार के रूप में भी आपकी देन अनन्य है। आपके द्वारा लिखित 80 से अधिक निबन्ध 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'अभ्युदय' और 'श्रीशारदा'-जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। आपने अनेक विचारोत्तेजक तथा उपयोगी निबन्ध लिखे थे।

आपकी साहित्य-सम्बन्धी इन सेवाओं से प्रभावित होकर ही आपको अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1924 में देहरादून में सम्पन्न हुए 15वें अधिवेशन का सभापति निर्वाचित किया गया था। इस सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से बोलते हुए आपने जो विचार प्रकट किए थे उनसे सप्रेजी की हिन्दी-निष्ठा और ध्येय के प्रति अटूट लगन का अद्भुत परिचय मिलता है। आपने कहा था—"मैं महाराष्ट्रीय हूँ, परन्तु हिन्दी के विषय में मुझे उतना ही अभिमान है जितना किसी भी हिन्दी-भाषी को हो सकता है। मैं चाहता हूँ कि इस राष्ट्रभाषा के सामने भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भूल जाए कि मैं महाराष्ट्रीय हूँ, बंगाली हूँ, गुजराती हूँ या मद्रासी हूँ। ये मेरे 35 वर्ष के विचार हैं और तभी से मैंने इस बात का निश्चय कर लिया है कि मैं आजीवन हिन्दी भाषा की सेवा करता रहूँगा। मैं राष्ट्रभाषा को अपने जीवन में ही सर्वोच्च शासन पर विराजमान देखने का अभिलाषी हूँ।" एक बार तो आपने यहाँ तक कहा था—"मराठी मेरी मातृभाषा है, पर मैं अपनी माँ की गोद में नहीं पला हूँ। हिन्दी मेरी मौसी है और यही मुझे पाला-सँभाला करती है। इसलिए जो कुछ भी मुझसे सेवा बनी, मौसी की ही कर पाया।"

सम्मेलन के देहरादून-अधिवेशन के उपरान्त तो आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और फिर आप पूर्णतः स्वस्थ न हो सके। परिणामस्वरूप 23 अप्रैल सन् 1926 को आपका रायपुर में देहावसान हो गया।

पण्डित माधव शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म सन् 1881 में इलाहाबाद के एक मालवीय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आप एक उत्कृष्ट नाटककार तथा कुशल कवि होने के साथ-साथ सफल अभि-

नेता तथा निर्भीक गायक भी थे। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आपका नाम इसलिए भी अमर रहेगा कि आपने सर्वप्रथम अपनी लेखनी को जहाँ देश की स्वाधीनता के लिए किये गए संग्राम को पूर्णतः समर्पित कर दिया था वहाँ सारे देश के युवकों को आजादी की बलिवेदी पर बलिदान होने का आमन्त्रण भी दिया था। एक समय था जब आपकी :

मेरी जाँ न रहे, मेरा सर न रहे
सामाँ न रहे, न ये साज रहे
फक़त हिन्द मेरा आजाद रहे,
माता के सर पर ताज रहे।

पंक्तियों ने देश की तरुणाई को झकझोरकर स्वतन्त्रता-संग्राम में बढ़-चढ़कर भाग लेने की अद्‌भुत प्रेरणा दी थी। वास्तव में राम के लिए जो कुछ तुलसी ने किया तथा शिवाजी के लिए जो भूषण ने किया वही शुक्लजी ने गान्धीजी द्वारा चलाये गए असहयोग आन्दोलन के लिए किया था। आपकी राष्ट्रीय रचनाओं ने मृतप्राय: भारतीयों के मानस में चेतना की जो हिलोर पैदा कर दी थी वह सर्वथा अद्वितीय थी। आपकी यही पंक्तियाँ थीं जिन्होंने हिन्दू तथा मुसलमानों को एक ही मंच पर ला खड़ा किया था :

मेरे हिन्दू मुसल्माँ एक रहें
भाइ-भाई-सा रस्मो-रिवाज रहे
मेरे वेद-पुरान-कुरान रहें
मेरी पूजा रहे औ नमाज रहे।

आपकी रचनाओं ने महात्मा गान्धीजी को भी इतना प्रभावित किया था कि उन्होंने इन शब्दों में शुक्लजी की कविता-शैली की प्रशंसा की थी—"माधव शुक्लजी की कविता सुनने का मौका मुझे मिला है। उनकी जबान में बड़ी ताकत थी। जो सुनता था उसमें जान आ जाती थी। देश के लिए उन्होंने बड़ी तकलीफें सही थीं, बड़ा काम किया था। उनकी एक-एक कविता कीमती है।" आपकी कवित्व-शक्ति का उज्ज्वल दर्पण आपकी 'भारत गीतांजलि', 'राष्ट्रीय गान' और 'उठो हिन्द सन्तान' नामक कृतियाँ हैं। आपकी रचनाओं की प्रेरणा की अनुगूंज भारत के कण-कण में सुनाई देती थी। असहयोग आन्दोलन के समय और बाद में भी विश्वबन्धु गान्धीजी के सम्बन्ध में हिन्दी में असंख्य रचनाएँ हुई हैं। लेकिन जितनी प्रभावकारी शुक्लजी की रचनाएँ थीं वैसी बहुत कम दिखाई देती हैं। गान्धीजी के प्रति शुक्लजी की अटूट तथा असीम आस्था का प्रमाण आपकी ये पंक्तियाँ हैं :

ऐसी अभेद्य उच्च अविचल हिये-सी शक्ति,
हमने न देखी कहीं विश्व के पहाड़ में।
त्यों ही निर्भीक घोर क्रूर कम्पकारी स्वर,
दुर्लभ सिन्धु-गर्जन में, सिंह की दहाड़ में।।
सभ्यता न देखी ऐसी हरिचन्द-दधीचिहु में,
देश-भक्ति हू न लखी जीवित मेवाड़ में।
कहते बटोर विश्व-शक्ति भर दीन्ही नाथ,
'माधव' या गान्धी के मुट्ठी-भर हाड़ में।।

एक उच्चकोटि के नाटककार के रूप में भी आपने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी वह अनुपम और अद्वितीय है। जिन दिनों आपने इस क्षेत्र में प्रवेश किया था तब 'पारसी थियेट्रिकल कम्पनी' ही हिन्दी के नाटक किया करती थी। एक बार सन् 1916 में जब कलकत्ता के अलफ्रेड थियेटर (जो आजकल दीपक सिनेमा के नाम से विख्यात है) में 'काँटों का फूल' नाम से पूना की 'किर्लोस्कर मण्डली' का जो नाटक खेला गया तब उसे देखने कुछ हिन्दी-प्रेमी भी गए। जो लोग वहाँ नित्य-प्रति बंगला के अच्छे-से-अच्छे नाटक देखा करते थे उनकी यह हार्दिक आकांक्षा होती थी कि हिन्दी में भी उच्चकोटि के नाटक खेले जायें और हिन्दी का अपना विशिष्ट और आदर्श रंगमंच बने। उस दिन इण्टरवेल के समय अचानक मंच पर एक सज्जन खड़े हुए और उन्होंने कहा कि मैं भी कुछ बोलना चाहता हूँ। उन्होंने बड़ी ही तेजस्वी वाणी में ये बोलना शुरू किया—"मैं बड़ी आशा लेकर आया था कि हिन्दी नाटक के नाम से पारसी कम्पनियाँ हिन्दी की जो दुर्दशा कर रही हैं उससे उद्धार पाने का रास्ता मिलेगा और मैं हिन्दी के नाटकों का और नाट्य-कला का सच्चा रूप देख सकूँगा। पर दुःख के साथ कहना पड़ता
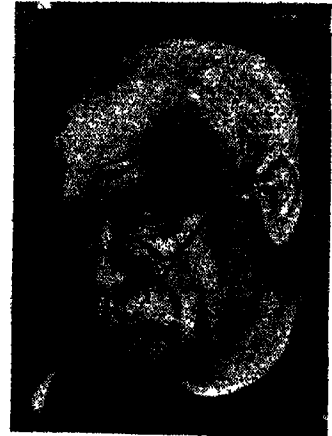
है कि यहाँ आकर जो कुछ देखा वह न हिन्दी का है और न पारसी कम्पनियों का है; यह तो पारसी कम्पनियों की जूठन-जैसी चीज है।" वे अभी बोल ही रहे थे कि दर्शकों में तालियाँ बजने लगीं। इस पर उन्होंने सभी को धिक्कारते हुए तेजस्वी वाणी में यह कहा—"मित्रो, यह ताली पीटने का समय नहीं है—रोने का समय है। हम देख रहे हैं कि हिन्दी के नाम पर जो चाहे वही हिन्दी की दुर्गति कर सकता है, हमें यह बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। अगर आप सचमुच हिन्दी से और हिन्दी-नाटकों से प्रेम करते हैं तो 'विशुद्ध हिन्दी रंगमंच' की स्थापना कीजिए।" यह सिंह-गर्जना करने वाले सज्जन और कोई नहीं, शुक्लजी ही थे।

इस घटना के उपरान्त वास्तव में शुक्लजी ने 'हिन्दी नाटकों' के अभिनय और रचना की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। वैसे तो इससे पूर्व ही आपने सन् 1914 में 'हिन्दी नाटक परिषद्' की स्थापना करके कलकत्ता में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु अब आपने उसे और भी तेजी से आगे बढ़ाया। इस कार्य को गति देने के लिए आपने 'भामाशाह की राज-भक्ति' नामक नाटक लिखा और उसमें 'राणा प्रताप' की भूमिका स्वयं निबाही थी। आपका दूसरा नाटक 'मेवाड़ पतन' था, जिसमें शुक्लजी ने गोबिन्दसिंह का अभिनय किया था। आपके नाटकों, कविताओं और भाषणों सभीमें पूर्ण राष्ट्रीयता का रंग रहता था। इनके अतिरिक्त आपके 'सीय स्वयंवर' तथा 'महाभारत' नामक नाटकों की भी बहुत चर्चा रही थी। आप जहाँ सफल साहित्यकार के रूप में समाज में प्रतिष्ठित थे वहाँ राजनीति में भी आपका अभूतपूर्व स्थान था। अपनी राष्ट्र-सेवा-सम्बन्धी गतिविधियों के प्रसंग में आपको अनेक बार कारावास की नृशंस यातनाएँ भी भोगनी पड़ी थीं। एक बार जब आप जेल में थे और आपका एक-मात्र जामाता छत से गिरकर मर गया तो आपके सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि आप क्षमा माँगकर अपने परिवार वालों को सान्त्वना देने चलिए तो आपने स्पष्ट स्वर में जो भावनाएँ व्यक्त की थीं, उनसे आपके व्यक्तित्व की प्रखरता का परिचय मिलता है। आपने कहा था—"मैं हरिश्चन्द्र और महाराणा प्रताप का अभिनय करने वाला व्यक्ति हूँ। ऐसे भीषण आघात से विचलित होकर भी मेरे लिए क्षमा-प्रार्थना करना सर्वथा असम्भव है।"

ऐसे तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी शुक्लजी का निधन सन् 1943 में हुआ था।

श्री माधवाचार्य शास्त्री

श्री माधवाचार्य शास्त्री का जन्म हरियाणा के जिला करनाल के कौल नामक स्थान में सन् 1898 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की ही संस्कृत पाठशाला में हुई; फिर आप उच्च शिक्षा के लिए दिल्ली आ गए और यहाँ पर महामहोपाध्याय पं० हरनारायण शास्त्री आदि अनेक उच्चकोटि के विद्वानों के सम्पर्क में आए। यहीं से आपने पंजाब विश्वविद्यालय की 'शास्त्री' परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की।

संस्कृत साहित्य के गहन अध्ययन के कारण थोड़े ही दिनों में आपकी ख्याति सारे देश के गण्यमान्य विद्वानों में होने लगी। मुख्यतः आप शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर 'शास्त्रार्थ' आदि किया करते थे। भारत के कोने-कोने में आपने अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ किए थे। उन दिनों सर्वश्री कालूराम शास्त्री, ज्वालाप्रसाद मिश्र, पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और अखिलानन्द शर्मा के साथ आपका नाम भी सनातन धर्म के प्रमुख विद्वानों में गिना जाता था। महामना मदनमोहन मालवीय तथा गोस्वामी गणेशदत्त जी आदि आपकी विद्वत्ता का बहुत सम्मान करते थे।

आप वर्णाश्रम धर्म, वर्ण-व्यवस्था, जात-पाँत, मूर्ति-पूजा, अवतारवाद तथा श्राद्ध, तर्पण आदि सनातनधर्म के प्रमुख सिद्धान्तों पर घंटों तक जमकर बोल सकते थे। एक
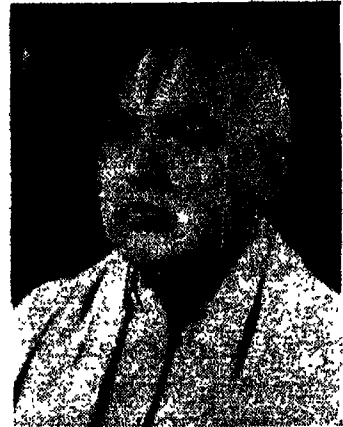
बार जब महात्मा गान्धीजी लाहौर गए तब आपके नेतृत्व में सनातन धर्म के प्रमुख पंडितों का एक शिष्ट-मण्डल उनसे मिला और आपने गान्धीजी को बताया कि "अस्पृश्यता घृणा-मूलक नहीं, अपितु विज्ञानमूलक है। हरिजन हमारे प्राणप्रिय बन्धु और अभिन्न अंग हैं। हम उनसे कभी घृणा नहीं करते। हम तो शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं।" एक बार आपका 'पुराण दिग्दर्शन' (सन् 1932) नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ तब महामना मालवीयजी उससे इतने प्रभावित हुए कि आपको 'हिन्दू विश्वविद्यालय' के पुराण विभाग का अध्यक्ष बनाने के लिए भी आमन्त्रित किया, परन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तों का देश-भर में घूमकर प्रचार करने की लगन के कारण आपने उसे स्वीकार नहीं किया।

शास्त्रीजी 'सनातन धर्म सभा', 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' तथा 'धर्म संघ' आदि संस्थाओं के मंचों से भारतीय संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार के कार्य में यावज्जीवन लगे रहे। आपने जगद्गुरु स्वामी कृष्णबोधाश्रम तथा करपात्रीजी महाराज के नेतृत्व में सनातन धर्म की रक्षा के लिए अनेक आन्दोलनों में खुलकर भाग लिया था। जहाँ आप कुशल वक्ता तथा शास्त्रार्थ महारथी थे वहाँ एक उत्कृष्ट लेखक के रूप में भी आपकी देन कम नहीं है। 'पुराण दिग्दर्शन' के अतिरिक्त आपकी 'धर्म दिग्दर्शन' (1952), 'क्यों' (1956), 'वेद दिग्दर्शन' (1963), 'दृष्टान्त दिग्दर्शन' (1968), 'विविध रामायण' (1973) तथा 'अथर्ववेद भाष्य' (1973) आदि कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपकी 'पुराण दिग्दर्शन' तथा 'वेद दिग्दर्शन' नामक कृतियों को अध्यात्म विद्यापीठ, सीतापुर (उत्तर प्रदेश) और धर्म चन्द्रोदयपीठ, चान्दोद (गुजरात) की ओर से क्रमशः 1100 रुपए के पुरस्कारों से सम्मानित किया गया था। आपकी 'दृष्टान्त दिग्दर्शन' नामक कृति को भी केन्द्रीय संस्कृत परिषद् दिल्ली और काशी विद्वत् परिषद् ने सम्मानित किया था। आप अनेक वर्ष तक 'लोकालोक' नामक पत्र का सम्पादन भी करते रहे थे। आपकी साहित्य-सेवाओं के उपलक्ष्य में सन् 1977 में हरियाणा राज्य सरकार ने एक 'प्रशस्ति पत्र' और 'शाल' अर्पित करके आपको सम्मानित किया था।

आपका निधन 25 दिसम्बर सन् 1979 को दिल्ली में हुआ था।

श्री मामराज शर्मा 'हर्षित'

श्री 'हर्षित' जी का जन्म सहारनपुर जिले के एक ग्राम में सन् 1910 में हुआ था। मुख्यतः आप चिकित्सक थे और आयुर्वेद के ग्रन्थों का अध्ययन करते समय संस्कृत साहित्य से प्रेरित होकर ही काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए थे। आपकी प्रकाशित रचना 'अनुभूति गीत' द्वारा आपके कवि का उदात्त स्वरूप प्रकट हुआ था। आपकी अप्रकाशित पांडुलिपियों में 'रति विलाप' (खण्डकाव्य) और 'परिणय' (महाकाव्य) सुरक्षित हैं। आपका एक 'लोपामुद्रा' नामक महाकाव्य भी था। खेद है कि ये सब कृतियाँ अप्रकाशित ही रह गई और हिन्दी-साहित्य 'हर्षित' जी की काव्य-प्रतिभा से भली-भाँति परिचय न प्राप्त कर सका।

इनके अतिरिक्त आपकी 'मधु-गीत', 'पक्षी-गीत' और 'शृंगार-गीत' नामक काव्य-रचनाएँ भी अप्रकाशित हैं।

आपका देहावसान सन् 1944 में क्षय रोग के कारण हुआ था।

श्रीमती मीरा महादेवन

श्रीमती मीरा जी का जन्म 5 सितम्बर सन् 1929 को कराची में हुआ था। आपकी मातृभाषा मराठी थी और आपका परिवार एक परम्परावादी यहूदी परिवार था। आपने प्रख्यात गान्धीवादी युवक और गान्धी स्मारक निधि के कर्मठ कार्यकर्ता श्री महादेवन् से सन् 1956 में विवाह किया था।

पहले आपने मराठी तथा अँग्रेजी में लेखन-कार्य प्रारम्भ किया और बाद

में हिन्दी की ओर उन्मुख हो गई। आपकी कहानियाँ हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थीं। आपके 'सो क्या जाने पीर पराई' तथा 'अपना घर' नामक दो उपन्यास भी हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं।

आपका निधन 22 जुलाई सन् 1977 को नई दिल्ली में हुआ था।

श्री मुकुन्दहरि द्विवेदी शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ नगर में 28 जनवरी सन् 1893 को हुआ था। आपके पिता पंडित रामगोपाल द्विवेदी अपने समय के प्रख्यात ज्योतिषी थे। शास्त्रीजी ने अपने बड़े भाई श्रीहरि द्विवेदी के साथ अल्पावस्था में ही गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस से 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण की और डी० ए० वी० स्कूल, अलीगढ़ में अध्यापक हो गए। इसी बीच आपने कलकत्ता से 'काव्यतीर्थ' की उपाधि प्राप्त कर ली और आप अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में हिन्दी-संस्कृत-अध्यापक के रूप में नियुक्त हो गए। उन दिनों इस विश्वविद्यालय का नाम 'मोहम्मदन एंग्लो ओरियण्टल कालेज' था। हिन्दी तथा संस्कृत के अतिरिक्त आपका उर्दू एवं अँग्रेजी भाषाओं पर भी समानाधिकार था।

जब आपने हिन्दी तथा संस्कृत भाषा की अवनति होती हुई देखी तो आपने सारे भारत के हिन्दी तथा संस्कृत-प्रेमियों को एकत्रित करके सन् 1925 में एक 'अखिल भारतवर्षीय विद्वत् सम्मेलन' की स्थापना की और कालान्तर में आपकी इस संस्था को अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन और संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा भी मान्यता प्राप्त हो गई। आप इस संस्था द्वारा हिन्दी तथा संस्कृत की परीक्षाओं का प्रचार-प्रसार करने लगे। कुछ दिन तक आप उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में भी प्राध्यापक रहे थे।

आप एक कुशल प्राध्यापक एवं सफल संगठनकर्ता होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के लेखक भी थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'अलंकार प्रवेशिका', 'अलंकार चन्द्रोदय', 'पिंगल पथ', 'रस चन्द्रिका', 'गल्प गगन के तारे', 'काव्य-कुंज' और 'हिन्दी साहित्य प्रवेशिका' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन 27 जनवरी सन् 1965 को 72 वर्ष की आयु में हुआ था।

महात्मा मुन्शीराम

महात्मा मुन्शीराम का जन्म सन् 1856 में जालन्धर (पंजाब) जनपद के 'तलवन' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री नानकचन्द्र उन दिनों 'शहर कोतवाल' थे और उन्हें बाद में 'रिसालदार' बनाकर सहारनपुर भेज दिया गया था। जिन दिनों वे सहारनपुर से मेलाघाट की लड़ाई पर नेपाल की तराई में गए हुए थे वहाँ पर ही उन्हें 'मुन्शीराम' जी के जन्म की सूचना मिली थी। जन्म के बाद आपके पारिवारिक पुरोहित ने बालक का नाम 'बृहस्पति' निकाला था, जो बाद में 'मुन्शीराम' हो गया और गुरुकुल की स्थापना के अनन्तर गान्धीजी ने आपके नाम के साथ 'महात्मा' शब्द और जोड़ दिया था। यही 'महात्मा मुन्शीराम' बाद में संन्यास आश्रम में दीक्षित होने के उपरान्त 'स्वामी श्रद्धानन्द' कहलाए।

जब आपके पिता की नियुक्ति स्थायी रूप से बरेली में हो गई तो उन्होंने बालक मुन्शीराम को भी बरेली ही बुला लिया। क्योंकि उन दिनों पुलिस विभाग में फारसी का ही बोलबाला था, इसलिए मुन्शीरामजी की प्रारम्भिक शिक्षा भी फारसी में ही हुई। बाद में जब आपके पिता श्री नानकचन्द्र का स्थानान्तरण बनारस के लिए हो गया तब आपकी शिक्षा के लिए एक हिन्दी-अध्यापक भी लगा दिया गया;

और बाद में उसे सन्तोषजनक न समझकर मुन्शीरामजी को इलाहाबाद के 'म्योर सेण्ट्रल कालेज' में प्रविष्ट करा दिया गया। यहाँ पर भी आपकी शिक्षा अधिक आगे नहीं बढ़ सकी और आपका विवाह कर दिया गया।

विवाहोपरान्त आपने सन् 1880 में लाहौर जाकर वकालत की पढ़ाई प्रारम्भ की और वहाँ पर रहते हुए आपने सामाजिक संस्थाओं में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। एक बार जब आप बरेली में अपने पिताजी के पास थे तब आपको वहाँ पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का भाषण सुनने का सुअवसर भी मिला था। उससे आपकी दिशा ही बदल गई और आप नास्तिक से एकदम आस्तिक बन गए।

लाहौर से मुख्तारी की परीक्षा उत्तीर्ण करके मुन्शीरामजी ने जालन्धर को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया और अपनी लगन, सत्यनिष्ठा और कर्म-कुशलता से आप नगर के प्रमुख वकीलों में गिने जाने लगे। अपना वकालत का कार्य करते हुए आपने 'आर्यसमाज' की गतिविधियों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। कई वर्ष तक आप वहाँ की आर्यसमाज का प्रधान रहने के साथ-साथ 'पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा' के भी प्रधान रहे थे। आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने की दृष्टि से आपने जालन्धर से 'सद्धर्म-प्रचारक' नामक एक उर्दू साप्ताहिक भी निकालना प्रारम्भ कर दिया था, जो बाद में सन् 1908 से हिन्दी में प्रकाशित होने लगा था। उन दिनों आर्यसमाजी जगत् का यह अकेला पत्र था और इसने निरन्तर 23 वर्ष तक पंजाब में आर्य सिद्धान्तों तथा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। सैकड़ों पंजाबी आर्यसमाजियों ने 'प्रचारक' के कारण ही हिन्दी का अभ्यास किया था। जब 'प्रचारक' उर्दू में निकलता था तब भी महात्माजी उसमें प्रायः हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के पक्ष में लेख लिखा करते थे। आपके उस प्रचार का ही यह प्रभाव हुआ था कि सभी आर्यसमाजी उर्दू पत्रों की भाषा भी हिन्दी-प्रभावित उर्दू हो गई थी।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा-पद्धति के प्रचार के लिए पंजाब में जहाँ महात्मा हंसराज ने डी० ए० वी० स्कूल स्थापित करने की पहल की वहाँ महात्मा मुन्शीराम ने उनसे एक कदम आगे बढ़कर गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के द्वारा वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा हिन्दी-माध्यम से दिलाने की दृष्टि से सन् 1899 में शिवालक पर्वत की उपत्यकाओं में हरिद्वार के समीप भगवती भागीरथी के पुण्य तट पर कांगड़ी (बिजनौर) ग्राम में 'गुरुकुल' की स्थापना कर दी, जो बाद में 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय' के रूप में देश-भर में विख्यात हुआ। इस संस्था ने जहाँ उच्चतम शिक्षा के लिए हिन्दी-माध्यम की सार्थकता प्रमाणित की वहाँ शिक्षा तथा राजनीति के क्षेत्र में कार्य करने वाले अनेक सुयोग्य स्नातक प्रदान किए। इस संस्था का लक्ष्य अपने छात्रों को पाश्चात्य प्रभाव से सर्वथा मुक्त करके विशुद्ध भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल आलोक में देश के सच्चे नागरिक बनाना था। जिन दिनों आप गुरुकुल में मुख्याधिष्ठाता के रूप में शिक्षा तथा संस्कृति के उन्नयन का यह नया प्रयोग कर रहे थे तब आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर श्री रेम्जे मैकडानल्ड ने आपके सम्बन्ध में यह सही ही लिखा था—"एक महान्, भव्य और शानदार मूर्ति—जिसको देखते ही उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है, हमारे आगे हमसे मिलने के लिए बढ़ती है। आधुनिक चित्रकार ईसा मसीह का चित्र बनाने के लिए उसको अपने सामने रख सकता है और मध्यकालीन चित्रकार उसे देखकर सैण्ट पीटर का चित्र बना सकता है। यद्यपि उस मछुआरे की अपेक्षा यह मूर्ति कहीं अधिक भव्य और अधिक प्रभावोत्पादक है।"

गुरुकुल तथा आर्यसमाज के कार्यों में समय देने के साथ-साथ आप राजनीतिक क्षेत्र में भी सक्रिय रूप से भाग लेते थे। आपके अभूतपूर्व साहस का परिचय सन् 1919 की उस घटना से ही मिल जाता है जबकि दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार में घंटाघर के सामने गोरे सिपाही गोलियों की बौछार करने की तैयारी में थे और स्वामीजी ने छाती खोलकर उन्हें ललकारते हुए यह निर्भीक घोषणा की थी—"लो चलाओ गोलियाँ।" ऐसी एक नहीं, अनेक घटनाएँ

आपके जीवन में घटी थी। गान्धीजी उन दिनों दक्षिण अफ्रीका के 'नैटाल सत्याग्रह' में व्यस्त थे। दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज ने मुन्शीरामजी के दिव्य गुणों का वर्णन उनसे किया था। उस समय आप केवल 'मुन्शीराम' थे और महात्मा गान्धी भी 'महात्मा' के विशेषण से विभूषित नहीं हुए थे। बाद में दोनों के नाम के साथ 'महात्मा' शब्द जुड़ गया। वह नामकरण भी दोनों ने परस्पर ही किया था। गान्धीजी ने सर्वप्रथम मुन्शीरामजी को 'महात्मा' नाम से सम्बोधित करते हुए 21 अक्तूबर सन् 1914 को दक्षिण अफ्रीका से जो पत्र लिखा था, वह इस प्रकार है—

"प्रिय महात्मा जी,

मि० एण्ड्रूज ने आपके नाम और काम का मुझे इतना परिचय दिया है कि मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं किसी अजनबी को पत्र नहीं लिख रहा। इसलिए आशा है कि आप मुझे आपको 'महात्माजी' लिखने के लिए क्षमा करेंगे। मैं और एण्ड्रूज साहब आपकी चर्चा करते हुए आपके लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। उन्होंने मुझे आपकी संस्था गुरुकुल को देखने के लिए अधीर बना दिया है।

—आपका मोहनदास गान्धी"

इस पत्र को लिखने के 6 मास बाद जब गान्धीजी भारत आए तो वे गुरुकुल भी पधारे थे। वहाँ गुरुकुल की ओर से उन्हें जो मानपत्र 8 अप्रैल सन् 1915 को दिया गया था उसमें गान्धीजी को भी पहले-पहल 'महात्मा' नाम से सम्बोधित किया गया था।

इस बीच अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् 1913 में आपको जहाँ अपने भागलपुर अधिवेशन का अध्यक्ष मनोनीत किया था वहाँ आपने अपनी संस्था गुरुकुल के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिन्दी के गौरव की अभिवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। सम्मेलन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए आपने हिन्दी की महत्ता के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए थे उनसे आपके राष्ट्रभाषा-प्रेम का उत्कृष्ट परिचय मिलता है। आपने न केवल 'साहित्य-सम्मेलन' के मंच से हिन्दी की महत्ता प्रतिपादित की प्रत्युत राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के अमृतसर में हुए अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष पद से भी हिन्दी में ही भाषण दिया था। आपके द्वारा लिखित 'कल्याण मार्ग का पथिक' नामक रचना आत्म-कथा-साहित्य की एक अभूतपूर्व निधि है। अपने जीवन के उत्तर-काल में आप शुद्धि-आन्दोलन के समर्थक हो गए थे और इसी कारण अब्दुल रशीद नामक एक धर्मान्ध मुस्लिम युवक ने 23 दिसम्बर सन् 1926 को, जब आप डबल निमोनिया से अस्वस्थ थे, तीन गोलियों का निशाना बनाकर आपके जीवन की बलि ले ली।

श्री मूलचन्द्र अग्रवाल

श्री अग्रवालजी का जन्म सन् 1893 में उत्तर प्रदेश के जालौन जनपद के कोटरा नामक ग्राम में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उरई में हुई थी और हाई स्कूल आपने इटावा से किया था। अपने इटावा के हाई स्कूल के प्रधानाचार्य का पत्र लेकर आप आगे की पढ़ाई करने के लिए मेरठ आए थे और यहाँ के श्री लाला रामानुजदयाल के सौजन्य-पूर्ण सहयोग से आपने मेरठ कालेज से बी० ए० किया था। जिन दिनों आप मेरठ में पढ़ते थे तब इटावा के कुँवर गणेशसिंह भदौरिया भी वहाँ आपके सहपाठी थे। बी० ए० करने के बाद आपने अध्यापक बनने के लिए एल० टी० की उपाधि प्राप्त करने के उद्देश्य से सरकार के साथ एग्रीमेण्ट करके 12 रुपए महीने की छात्र-वृत्ति भी प्राप्त की थी। किन्तु विधि को कुछ और ही मंजूर था। एल०टी० की परीक्षा न देकर आप अचानक कलकत्ता चले गए।

कलकत्ता पहुँचकर आपने पत्रकार बनने का संकल्प किया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप 'बंगवासी' के तत्कालीन सम्पादक श्री हरिकृष्ण जौहर से मिले। वहाँ अचानक आपकी भेंट अपने सहपाठी कुँवर गणेशसिंह भदौरिया से हो गई। आप वहाँ पर सहकारी

सम्पादक का कार्य करते थे। और उनके साथ-साथ 'कलकत्ता समाचार' का कार्य भी देखा करते थे। आपको जब उनसे इस काम में कोई सहायता मिलने की आशा नहीं रही तो स्वयं ही 'भारत मित्र' के सम्पादक श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी से जाकर मिले। वाजपेयीजी ने आपको तुरन्त 45 रुपए मासिक पर अनुवाद करने का कार्य सौंप दिया। आप मेरठ से चलते समय वहाँ के प्रतिष्ठित नागरिक सर सीताराम का एक सिफारिशी पत्र भी किसी परिचित महानुभाव के नाम ले गए थे। उस पत्र के कारण 4 रुपए मासिक का एक ट्यूशन भी आपको मिल गया। प्रख्यात पत्रकार श्री राधामोहन गोकुलजी की कृपा से निवास की व्यवस्था 'मारवाड़ी लाज' में हो गई। कुछ दिन तक आपने वहाँ के 'मारवाड़ी विद्यालय' में प्रधान अध्यापक का कार्य भी किया था। इस कार्य में आपको श्री गंगाप्रसादजी भौतिका का सहयोग सुलभ हो गया था। प्रधान अध्यापक का कार्य करते हुए आपने कुछ ट्यूशन करने के अतिरिक्त लॉ कालेज में प्रवेश भी ले लिया था। इस प्रकार सवेरे ट्यूशन, इसके बाद सहकारी सम्पादकी, इसके बाद हैड-मास्टरी; और फिर लॉ कालेज का छात्र-जीवन।

'भारत मित्र' में कार्य करते हुए आप 'रमता योगी' नाम से उसका हास्य-व्यंग्य का कालम लिखा करते थे, जिसके कारण उस पत्र की धूम मच गई। 'कलकत्ता समाचार' में भी आप सहयोग देने लगे और इस प्रकार आपने वाजपेयीजी, पराड़करजी, जौहरजी, कुँवर गणेशसिंह भदौरिया, राधामोहन गोकुलजी और गंगाप्रसाद भौतिका आदि कलकत्ता के सभी प्रमुख हिन्दी-सेवियों का स्नेह प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मारवाड़ी विद्यालय की हैड-मास्टरी और सम्पादकी करते हुए आपका समय बड़े आराम से बीत रहा था कि एक लक्षाधीश श्वसुर का दामाद बनने का सौभाग्य भी आपको प्राप्त हो गया। कोई मारवाड़ी श्वसुर होता तो एक चैक भेजकर दामाद की सभी समस्याएँ हल कर देता। इस बीच एक प्रेस में साझीदारी करके अग्रवालजी ने सन् 1915 में 'विश्वमित्र' का संचालन प्रारम्भ किया।

'विश्वमित्र' के संचालन में आपको कितने संघर्ष करने पड़े इसके साक्षी तो वे ही लोग हो सकते हैं जो आपके इस अभियान के प्रत्यक्ष दर्शक रहे थे। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि आपने अपने अथक परिश्रम और कर्तव्य-निष्ठा से 'विश्वमित्र' को इस लोकप्रियता तक पहुँचाया कि उसके दैनिक, साप्ताहिक और मासिक संस्करण अनेक वर्ष तक प्रकाशित करने के साथ-साथ आपने बंगला का 'मातृभूमि' (दैनिक) और अँग्रेजी के 'एडवांस' (दैनिक) और 'इलस्ट्रेट इण्डिया' (साप्ताहिक) पत्र भी अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक प्रकाशित किए। इस पत्रकार-जीवन में अनेक बार आपको ब्रिटिश नौकरशाही के दमन का शिकार भी होना पड़ा और जेल-यातनाएँ भी भोगीं। कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में अगुआ बनकर समाज-सुधार की भूमिका भी आपने अत्यन्त निर्भीकता से निबाही थी। आप कई वर्ष तक 'अखिल भारतीय हिन्दी समाचार-पत्र-सम्पादक-सम्मेलन' तथा 'अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा' के अध्यक्ष भी रहे थे। अपने अध्यवसाय और कर्मठता से व्यक्ति कहाँ से कहाँ पहुँच सकता है इसके मूर्तिमन्त उदाहरण अग्रवालजी थे। आजकल 'विश्वमित्र' दैनिक रूप में ही प्रकाशित होता है और कलकत्ता के अतिरिक्त पटना, कानपुर तथा बम्बई से भी इसके संस्करण प्रकाशित होते हैं।

आपका निधन 31 अक्तूबर सन् 1956 को हुआ था।

श्री मूलचन्द्र शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म भारत की राजधानी दिल्ली के लाल कुआ नामक मोहल्ले में पंडित यादराम शर्मा (गंगायचा वाले) के यहाँ 24 अप्रैल सन् 1905 को हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा अधिक नहीं हुई थी, लेकिन फिर भी अपने स्वाध्याय के बल पर आपने जो योग्यता अर्जित की थी उसके कारण ही आप नेपाल राज्य के वन विभाग में ठेकेदार हो गए थे।

प्रारम्भ से ही आपका झुकाव कविता-लेखन की ओर था और बाद में गद्य-लेखन में भी आपने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। आपके द्वारा रचित पुस्तकों में 'विश्वकर्मा दिग्दर्शन', 'पुष्पक विमान', 'गीत गोविन्दम्', 'शर्मा गीतांजलि', 'हम कौन', 'डाइरैक्टरी', 'मौसर और नुक्ता',

'श्रीकृष्ण सुदामा' और 'यज्ञोपवीत पद्धति' आदि प्रमुख हैं। आपका निधन 22 फरवरी सन् 1964 को हुआ था।

राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त

श्री गुप्तजी का जन्म उत्तर प्रदेश के झांसी जनपद के चिरगाँव नामक स्थान में सन् 1886 में हुआ था। आपके पिता सेठ रामचरणजी कनकने भी बड़े कविता-प्रेमी और उदारमना महानुभाव थे। गुप्तजी की प्रारम्भिक शिक्षा पहले घर पर ही हुई और फिर कुछ दिन के लिए आप अपने गाँव के प्राइमरी स्कूल में ही अध्ययन करने लगे, किन्तु बहुत दिनों तक आपका यह क्रम न चल सका। फिर घर पर ही रहकर आपने निजी स्वाध्याय के बल पर संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त मराठी तथा बंगला का भी अच्छा ज्ञान अर्जित किया। इसी बीच आपने छोटी-मोटी कविताएँ भी लिखनी प्रारम्भ कर दी थीं, जो आपके जातीय पत्र 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती रहती थीं। आपने जिन दिनों लिखना प्रारम्भ किया था तब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' का सम्पादन किया करते थे। सौभाग्यवश आपका परिचय उनसे हो गया और आपकी रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन और निर्देशन में गुप्तजी की काव्य-प्रतिभा में दिन-प्रतिदिन निखार आता गया और एक दिन वह भी आया जब सन् 1909 में आपकी पहली पुस्तक 'रंग में भंग' प्रकाशित हुई।

'रंग में भंग' के प्रकाशन के उपरान्त गुप्तजी की जिस पुस्तक ने हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान अपनी ओर सबसे अधिक आकर्षित किया वह 'भारत भारती' थी। इसका प्रकाशन सन् 1912 में हुआ था। 'भारत भारती' में गुप्तजी ने देश के अतीतकालीन गौरव का वर्णन करके तत्कालीन दुरवस्था के प्रति एक नई चेतना जागृत की थी। 'भारत भारती' ने जहाँ देश के नागरिकों में स्वदेश-प्रेम की भावनाएँ उद्बुद्ध कीं वहाँ असंख्य नवयुवकों में राष्ट्र-प्रेम की भावधारा भी प्रवाहित की थी। यहाँ तक कि हिन्दी के पाठकों ने उसे अपने जातीय जीवन में भगवद्गीता और रामायण से भी बढ़कर स्थान दिया था। उन दिनों जितने भी युवक स्वाधीनता-आन्दोलन के प्रसंग में जेलों में गए थे उनमें से अधिकांश 'भारत भारती' से ही प्रेरणा पाकर उस पथ के पथिक बने थे। यद्यपि 'भारत भारती' से पूर्व गुप्तजी का 'जयद्रथ वध' काव्य सन् 1910 में प्रकाश में आ चुका था किन्तु 'भारत भारती' ने देश में राष्ट्रीय जागरण की जो चेतना प्रवाहित की थी वह सर्वथा अद्वितीय थी। खड़ी बोली की कविता को जन-साधारण में प्रतिष्ठित करने का श्रेय गुप्तजी को ही दिया जा सकता है। जिस प्रकार 'रामचरित-मानस' ने राम के नाम को देश के कोने-कोने में फैलाया उसी प्रकार 'भारत भारती' ने भी न केवल हिन्दी-भाषियों अपितु देश के सभी निवासियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। देश की राष्ट्रीयता के इतिहास में 'भारत भारती' के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

'भारत भारती' की रचना गुप्तजी ने जिन पावन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर की थी वे ऐसे महान् थे कि उनकी पूर्ति के लिए आपको अपनी कविता में काफी कटुता का आश्रय भी लेना पड़ा था। इसका स्पष्टीकरण देते हुए गुप्तजी ने 'भारत भारती' की भूमिका में यह ठीक ही लिखा है—"मुझे दुःख है कि इस पुस्तक में कहीं-कहीं मुझे कड़ी बातें लिखनी पड़ी हैं, परन्तु मैंने किसी की निन्दा करने के विचार से कोई बात नहीं लिखी। अपनी सामाजिक दुरवस्था ने मुझे वैसा लिखने के लिए विवश किया। जिन दोषों ने हमारी यह दुर्गति की है और जिनके कारण दूसरे लोग हम पर हँस रहे हैं क्या उनका वर्णन कड़े शब्दों में किया जाना अनुचित है? मेरा विश्वास है कि जब तक हमारी बुराइयों की तीव्र आलोचना नहीं होगी तब तक हमारा ध्यान उनको दूर करने की ओर समुचित दृष्टि से आकर्षित नहीं होगा।" गुप्तजी के इस वक्तव्य से 'भारत भारती' की रचना करने

के उद्देश्य का स्पष्ट आभास हो जाता है। गुप्तजी ने जहाँ राष्ट्रीयता के अनन्य अध्वर्यु के रूप में देश को एक नई दिशा दी वहाँ हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने का जो स्वप्न अपने मानस में सँजोया था उसकी आंशिक झलक 'भारत भारती' के इस पद से मिलती है :

है राष्ट्रभाषा भी अभी तक,
देश में कोई नहीं।
हम निज विचार जना सकें,
जिससे परस्पर सब कहीं।।
इस योग्य हिन्दी है तदपि,
अब तक न निज पद पा सकी।
भाषा बिना भावैकता,
अब तक न हममें आ सकी।।

गुप्तजी के मानस में अपनी अतीतकालीन सम्पदा के प्रति जो प्रेम था उसीका प्रकटीकरण आपने 'भारत भारती' की इन पंक्तियों में किया था :

हम कौन थे क्या हो गए हैं
और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर
ये समस्याएँ सभी।।

वास्तव में आपकी यह भावना पूर्णतः साकार हुई और देश ने आपके इस आह्वान से प्रेरणा ग्रहण करके स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी। 'भारत भारती' उस समय सारे देश की जनता का ऐसा कण्ठ-हार बन गई थी कि उससे गुप्तजी की :

मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती।
भगवान् भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।।

ये पंक्तियाँ पूर्णतः सार्थक हो उठी थीं।

'भारत भारती' के अतिरिक्त आपकी 'पद्य प्रबन्ध' (1912), 'शकुन्तला' (1914), 'तिलोत्तमा' (1915), 'चन्द्रहास' (1916), 'वैतालिक' (1916), 'किसान' (1916), 'अनघ',(1925), 'पंचवटी', (1925), 'स्वदेश-संगीत' (1925), 'हिन्दू' (1927), 'शक्ति' (1927), 'सैरन्ध्री' (1927), 'वन वैभव' (1927), 'बक संहार' (1927), 'विकट भट' (1928), 'गुरुकुल' (1928), 'झंकार' (1929), 'साकेत' (1932), 'यशोधरा' (1932), 'द्वापर' (1936), 'सिद्धराज' (1936), 'मंगल घट' (1937), 'नहुष' (1940), 'कुणाल गीत' (1942), 'अर्जन और विसर्जन' (1942), 'काबा और कर्बला' (1942), 'विश्व वेदना' (1942), 'अजित' (1946), 'प्रदक्षिणा' (1950), 'पृथ्वीपुत्र' (1950), 'हिडिम्बा' (1950), 'अंजलि और अर्घ्य' (1950), 'जय भारत' (1952), 'राजा - प्रजा' (1956) और 'विष्णुप्रिया' (1957) आदि मौलिक काव्य-रचनाएँ प्रमुख हैं। आपने बँगला से भी कुछ प्रमुख कृतियों का अनुवाद किया था जिनमें 'विरहणी ब्रजांगना', 'पलासी का युद्ध' और 'मेघनाद वध' आदि प्रमुख हैं। आपने संस्कृत से जहाँ 'स्वप्नवासवदत्ता' का अनुवाद प्रस्तुत किया था वहाँ फारसी से 'रुबाइयात उमरखैयाम' के अनुवाद भी आपने किए थे।

आपकी 'साकेत' नामक काव्य-रचना पर जहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने सन् 1936 में अपना 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' प्रदान किया था वहाँ आपको सर्वोच्च सम्मानित उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' से भी विभूषित किया था। आगरा विश्वविद्यालय ने जहाँ आपको अपनी डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान की थी वहाँ भारत के राष्ट्र-पति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने भी आपको 'पद्मभूषण' के अलं-करण से सम्मानित किया था। इसके साथ-साथ आप राज्य सभा के भी सदस्य मनोनीत किये गए थे। राष्ट्रपति भवन के अशोक कक्ष में आपको 17 अप्रैल सन् 1960 को एक भव्य अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करते हुए प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र-प्रसाद ने अपनी कृतज्ञता इन शब्दों में प्रकट की थी—"राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त में देश-भक्ति की गंगा और श्रीराम-भक्ति की यमुना प्रवाहित होती है और आप स्वयं अन्तःसलिला सरस्वती के समान हैं। इस प्रकार तीनों गुणों से युक्त गुप्तजी त्रिवेणी से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।"

गुप्तजी स्वभाव से कितने नम्र थे इसका परिचय आपके द्वारा दिये गए उस भाषण से मिल जाता है जो आपने आगरा विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त डी० लिट्० की सम्मा-नोपाधि के उपलक्ष्य में 'बुन्देलखण्ड कवि परिषद्' और 'भारतीय साहित्य परिषद् झाँसी' द्वारा आयोजित समारोह के अवसर पर दिया था। आपने कहा था—"मैंने तो,आप सब जानते ही हैं पाठशाला में साधारण हिन्दी पढ़ी थी और अँग्रेजी का कुछ ही दिन अभ्यास कर पाया था। फिर भी यत्किंचित् सेवा हिन्दी-संसार की जैसी भी बन पड़ी मैंने की है। उस ही का यह फल है। विश्वविद्यालय ने यह मेरा नहीं

हिन्दी का सम्मान किया है। इससे हिन्दी-भाषा-भाषियों और आप सबका गौरव बढ़ा है, मैं तो निमित्त मात्र ही हूँ।" जनसमुदाय आपकी इस विनम्रता पर मंत्रमुग्ध हो गया था। आपने 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' के अक्तूबर सन् 1959 में हुए आठवें वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता की थी और आपके करकमलों से भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी 'बापू के कदमों' में नामक पुस्तक पर परिषद् का 'वयोवृद्ध साहित्यिक सम्मान पुरस्कार' ग्रहण किया था। यह भी एक संयोग की बात है कि जिस 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से आपके कवित्व का विकास हुआ था उसके 'हीरक जयन्ती समारोह' की अध्यक्षता भी आपने सन् 1963 में की थी। इस अवसर पर इण्डियन प्रेस, प्रयाग के मुख्य द्वार के समक्ष आचार्य द्विवेदी की प्रतिमा की प्रस्थापना भी आपके करकमलों द्वारा हुई थी।

राज्य सभा से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त आप अपने निवास-स्थान चिरगाँव में ही रह रहे थे कि अचानक 12 दिसम्बर सन् 1964 को आपका असामयिक निधन हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तजी को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था; यदि ऐसा न होता तो मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व ही आप यह कैसे लिखते :

प्राण न पागल हो तुम यों,
पृथ्वी पर है वह प्रेम कहाँ?
मोहमयी छलना भर है,
भटको न अहो अब और यहाँ॥
ऊपर को निरखो अब तो,
मिलता बस है चिर मेल वहाँ।
स्वर्ग वहीं, अपवर्ग वहीं,
सुख-स्वर्ग वहीं, निजवर्ग जहाँ॥

महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी

महात्मा गान्धी का जन्म 2 अक्तूबर सन् 1869 को गुजरात प्रदेश के पोरबन्दर (काठियावाड़) नामक स्थान में हुआ था। हाईस्कूल तक की शिक्षा भारत में ही प्राप्त करके आप बैरिस्टरी करने के लिए विलायत चले गए थे। आपकी धर्मपरायणा माँ ने मद्य-पान, मांस-भक्षण और पर-स्त्री-गमन न करने की प्रतिज्ञाएँ करवाकर आपको विदेश जाने की अनुमति दी थी। शुरू-शुरू में आप कुशल व्याख्याता नहीं थे। इस कारण बैरिस्टरी पास करके जब आप स्वदेश लौटे तो आपको अदालत में खड़े होकर बहस करने में एक बार चक्कर आ गया था। फिर धीरे-धीरे आपकी झिझक दूर हो गई। सन् 1893 में आप जब एक बार एक अभियोग के सिलसिले में दक्षिण अफ्रीका गए तब आप वहाँ के भारतीयों पर होने वाले अत्याचारों को देखकर बहुत द्रवित हुए थे। आपके मानस में उन अत्याचारों का प्रतिकार करने की भावना उत्पन्न हुई और आपने दक्षिण अफ्रीका की तत्कालीन सरकार द्वारा भारतीयों पर थोपे गए अनेकों काले कानूनों के विरोध में 'सत्याग्रह' के अस्त्र का सफल प्रयोग किया। आपको उन दिनों रस्किन तथा टालस्टाय के विचारों ने 'अहिंसात्मक सत्याग्रह' करने की जो प्रेरणा दी थी उसीके परिणामस्वरूप आपने वहाँ 'फीनिक्स आश्रम' की स्थापना करके 'इण्डियन ओपीनियन' नामक पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। आपके अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दम, तप, अस्तेय, सत्य एवं अपरिग्रह-जैसे गुणों ने आपको इस कार्य में आगे बढ़ने में बहुत सहायता पहुँचाई। जब गान्धीजी दक्षिण अफ्रीका से लौटकर भारत आए तब आप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में भी गए थे। इस संस्था में आपको जो मानपत्र 8 अप्रैल सन् 1915 को दिया गया था उसमें सर्वप्रथम आपको 'महात्मा' के विशेषण से पुकारा गया था।
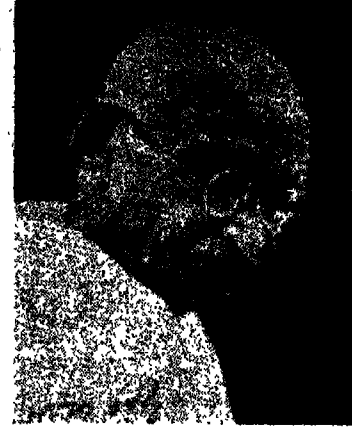
अफ्रीका के सत्याग्रह में विजय प्राप्त करके जब आप भारत आए तो यहाँ आपने महामान्य गोपालकृष्ण गोखले के नेतृत्व में भारत की राजनीति में प्रवेश किया। यहाँ आकर आपने जहाँ अहमदाबाद में 'साबरमती आश्रम' की स्थापना

करके आपने 'सत्याग्रह' के अनेक सफल प्रयोग किए। जब पंजाब के अमृतसर नामक स्थान में 'जलियानवाला बाग' का भीषण नर-हत्या-काण्ड हुआ तो आपके मन में भारत की राजनीति में एक ऐसी चेतना जगाने की भावना उठी, जिससे सारा देश ब्रिटिश नौकरशाही के विरुद्ध संघर्ष करने को तैयार हो गया। आपने 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ कर दिया और सारा देश उस आन्दोलन में कूद पड़ा। अपने उद्देश्यों की पूर्ति तथा प्रचार के लिए आपने जहाँ अँग्रेजी में 'यंग इण्डिया' नामक पत्र प्रारम्भ किया वहाँ 'नवजीवन' नामक हिन्दी पत्र भी निकाला। आपकी धीरे-धीरे यह धारणा होती जा रही थी कि यदि सारे देश में राष्ट्रीयता की लहर फैलानी है तो उसका सन्देश ऐसी भाषा में जनता तक पहुँचाना होगा जिसे देश की सभी जनता सरलता से समझ सके और वह भाषा 'हिन्दी' थी। इसीके परिणाम-स्वरूप 'नवजीवन' का प्रकाशन किया गया था। धीरे-धीरे वह समय आया जब भारत के राजनीतिक गगन पर महात्मा गान्धी ही छा गए और आपके द्वारा प्रारम्भ किये गए सभी आन्दोलनों में जनता पूर्णतः भाग लेने लगी।

महात्माजी ने जहाँ देश को राजनीतिक स्वाधीनता दिलाने के लिए अथक संघर्ष किया वहाँ उसमें राष्ट्रीय चेतना उद्‌बुद्ध करने की दृष्टि से आपने हिन्दी को अपनाया और सारे देश को एकता के सूत्र में ग्रथित करने की पुनीत भावना से प्रेरित होकर आपने 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन'-जैसी संस्था से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। धीरे-धीरे आपकी यह दृढ़ धारणा भी बन गई थी कि राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस को जनता तक अपना सन्देश पहुँचाने के लिए हिन्दी को ही अपनाना चाहिए। परिणाम-स्वरूप कांग्रेस के अधिवेशनों की कार्यवाही भी आपने हिन्दी में ही प्रारम्भ करा दी थी। आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर में सम्पन्न हुए आठवें अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए 29 मार्च सन् 1918 को जो भाषण दिया था उसमें आपने यह स्पष्ट रूप से घोषणा की थी—"हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की आवश्यकता और उसके दूर तक पहुँचने वाले लाभों को अभी हमारे पढ़े-लिखे भाइयों में भी थोड़े ही लोगों ने समझा है।...भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए वह हम लोगों में नहीं है।...हिन्दी वह भाषा है जिसे सारे देश में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं।...हिन्दी से स्पर्धा करने वाली दूसरी कोई भाषा नहीं है।...मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी है वहाँ भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह नहीं दिखाई देता।" अपनी इन भावनाओं को सफल करने की दृष्टि से महात्माजी ने जहाँ सम्मेलन के इस अधिवेशन में दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने के लिए प्रचुर धनराशि एकत्र की वहाँ इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त मद्रास में विधिवत् 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना करके उसके माध्यम से राष्ट्रीयता का सन्देश सारे देश में पहुँचाने का पावन संकल्प लिया।

महात्माजी ने दक्षिण में राष्ट्रीयता का सन्देश जन-जन तक पहुँचाने की दृष्टि से ही 'हिन्दी-प्रचार सभा' की स्थापना की थी और वह दिन भी आया जब दक्षिण में पहले हिन्दी-प्रचारक के रूप में अपने सुपुत्र श्री देवदास गान्धी को मद्रास भेजा। थोड़े ही दिनों में सभा के हिन्दी-प्रचारकों ने राष्ट्रीयता का जो कार्य कर दिखाया, वह पहले कभी नहीं हो सका था। यह महात्माजी की ही प्रेरणा का सुफल था कि देश की सारी जनता ने हिन्दी को राष्ट्र धर्म की संवाहिका शक्ति के रूप में उन्मुक्त मन से स्वीकार किया था। गान्धीजी राष्ट्रीय जागरण के लिए हिन्दी को कितना महत्त्व देते थे उसका परिचय आपके इन शब्दों से मिल जाता है—"जैसे अँग्रेज अपनी मातृभाषा अँग्रेजी मे ही बोलते और सर्वदा उसे ही व्यवहार में लाते हैं वैसे ही मैं भी आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारतमाता की एक भाषा बनाने का गौरव प्रदान करें।" यही नहीं, बल्कि आपने इस भावना को और भी दृढ़ता से इस प्रकार व्यक्त किया था—"जो स्थान इस समय अनुचित ढंग से अँग्रेजी को मिला हुआ है, वह स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए। इस विषय में मतभेद होने का कोई कारण न होने पर भी मतभेद होना, दुर्भाग्य की बात है। शिक्षित वर्ग को एक भाषा अवश्य चाहिए और वह हिन्दी ही हो सकती है। हिन्दी के द्वारा करोड़ों व्यक्तियों मे आसानी से काम किया जा सकता है। इसलिए उसे उचित स्थान मिलने में जितनी देरी हो रही है, उतना ही देश का नुकसान हो रहा है।"

हिन्दी के प्रति गान्धीजी का कितना अनन्य प्रेम था इसका सबसे उत्कृष्ट प्रमाण यही है कि आपने दक्षिण अफ्रीका

में रहते हुए भी हिन्दी का खुलकर प्रयोग किया था। सन् 1914 में जब आप दक्षिण अफ्रीका गए थे तब डरबन बन्दरगाह पर जहाँ अनेक प्रवासी भारतवासियों ने आपका 'वन्देमातरम्' के नारों से अभिनन्दन किया था वहाँ आपने भी हिन्दी में ही अपनी भावनाएँ व्यक्त की थीं। यहाँ तक कि जब आपसे अँग्रेजी में बोलने का आग्रह किया गया तब आपने स्पष्ट शब्दों में यह कहा था—"प्रत्येक भारतीय को दूसरे भारतीय से अपनी मातृभाषा में अथवा भारत देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही बोलना चाहिए।" इसी प्रकार जब 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना के समय आप बनारस पधारे थे तब आपने अपना भाषण हिन्दी में देकर अपने हिन्दी-प्रेम को प्रकट किया था। यद्यपि उस समारोह की सारी कार्यवाही अँग्रेजी में ही चल रही थी और भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग ने 'शिलान्यास' की विधि पूरी की थी। भाषायी एकता की समस्या का हल करने के लिए गान्धीजी 'देवनागरी लिपि' को अपनाने पर बहुत जोर दिया करते थे। आपकी यह निश्चित मान्यता थी कि यदि सारे देश में 'देवनागरी लिपि' को अपनाने का आन्दोलन जारी कर दिया जाय तो सभी भाषाएँ एक-दूसरे के निकट आ सकती हैं। इस सम्बन्ध में आपके ये विचार अत्यन्त महत्त्व रखते हैं—"हमारी सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है, और कोई नहीं। उर्दू को उसका प्रतिस्पर्द्धी बताया जाता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि उर्दू या रोमन किसी में भी वैसी सम्पूर्णता और ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं है, जैसी देवनागरी में है।" अन्य प्रान्तीय भाषाओं के बोलने वालों को आश्वस्त करते हुए आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन के अध्यक्ष-पद से बोलते हुए 20 अप्रैल सन् 1935 को जो विचार व्यक्त किए थे उनसे हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आपने कहा था—"हम किसी भी हालत में प्रान्तीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए हम हिन्दी भाषा सीखें। ऐसा कहने से हिन्दी के प्रति हमारा कोई पक्षपात नहीं प्रकट होता। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है जिसे अधिसंख्यक लोग जानते-बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी ही है। यह बात यह सम्मेलन सन् 1910 (स्थापना का समय) से बता रहा है और इसका कोई वचन देने लायक विरोध आज तक सुनने में नहीं आया है। अन्य प्रान्तों ने भी इस बात को स्वीकार कर ही लिया है।"

गान्धीजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्य साधन के रूप में अपनाया था और इसी दृष्टि से आप अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के दो-दो बार अध्यक्ष बने थे और ये दोनों ही अधिवेशन इन्दौर में हुए थे। जब आपने साबरमती को छोड़कर वर्धा में अपना नया आश्रम बनाया तब वहाँ भी आपकी प्रेरणा पर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना हुई। जहाँ दक्षिण के चारों प्रान्तों में 'दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा' के द्वारा हिन्दी-प्रचार का कार्य आगे बढ़ा है वहाँ देश के दूसरे अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में 'हिन्दी-प्रचार' का कार्य वर्धा की 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के माध्यम से होता है। इस समिति के द्वारा जहाँ इंगलैण्ड, अदन, इण्डोनेशिया, फीजी, श्रीलंका, बर्मा, पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका तथा चैकोस्लोवाकिया आदि विभिन्न देशों में हिन्दी-प्रचार का कार्य हो रहा है वहाँ कई विदेशी विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की सुन्दर व्यवस्था हो गई है। समिति ने नागा प्रदेश में जहाँ अपनी परीक्षाएँ चलाई हैं वहाँ वर्धा के मुख्य कार्यालय के तत्त्वावधान में नागपुर, पुणे, बम्बई, औरंगाबाद, कटक, शिलांग, इम्फाल, कलकत्ता, जयपुर, चण्डीगढ़, नई दिल्ली, भोपाल, श्रीनगर, हुबली, बेलगाँव तथा मडगाँव (गोआ) आदि विभिन्न नगरों में इसकी शाखाओं के द्वारा हिन्दी-प्रचार का अभिनन्दनीय कार्य हो रहा है। इस समिति की स्थापना के समय सन् 1936 में जो संचालक-मण्डल गठित किया गया था उसमें गान्धीजी के अतिरिक्त सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव, काका साहेब कालेलकर, बाबा राघवदास, शंकरराव देव, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि, हरिहर शर्मा, ब्रजलाल बियाणी, मोतूरि सत्यनारायण, नर्मदासिंह, श्रीनाथ सिंह और लोकसुन्दरी रमन आदि महानुभाव थे।

महात्माजी ने स्वराज्य-प्राप्ति के अद्वितीय साधन के रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दी के जिस महत्त्व को समझा था यावज्जीवन आप उसीकी सम्पूर्ति में लगे रहे और इसको व्यापक रूप देने के लिए देश में अनेक हिन्दी-प्रचार-संस्थाओं का जाल फैलाने के साथ-साथ अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों

के प्रचार के निमित्त 'सत्याग्रह आश्रम, वर्धा' से भी अनेक हिन्दी पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। आज देश के वातावरण में हिन्दी के प्रति जो जागृति है और हिन्दी-भाषी प्रान्तों के अतिरिक्त देश के दूसरे अंचलों में जो हिन्दी-प्रचार दिखाई देता है उसकी नींव में महात्मा गान्धी और आपके आन्दोलन से सम्बद्ध वे अनेक हिन्दी-प्रचारक हैं जो निष्ठा-पूर्वक हिन्दी को 'राष्ट्र धर्म' मानकर इस क्षेत्र में अवतरित हुए थे।

राष्ट्रभाषा के इस अनन्य प्रेमी का बलिदान 30 जनवरी सन् 1948 को एक मराठा युवक की गोली से हुआ था। कौन जानता था कि राष्ट्रपिता का अन्त इस प्रकार होगा। शायद ऐसे ही महापुरुषों को दृष्टि में रखकर प्रख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने यह कहा था—"सम्भव है कि आगामी पीढ़ियाँ यह कठिनाई से ही विश्वास करेंगी कि इस प्रकार का कोई रक्त-माँस वाला पुरुष धरती पर उत्पन्न हुआ होगा।"

श्री मोहनलाल

श्री मोहनलाल शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के पानची नामक ग्राम में सन् 1850 में हुआ था। आप खड़ी बोली के पहले कवि सन्त गंगादास के प्रमुख शिष्य थे। आपकी काव्य-कृतियों में केवल 'भजन सिया स्वयंवर' और 'निर्गुणपद' ही प्राप्त होती हैं। आपकी कुल 8 कृतियों में से 6 अभी तक अप्राप्य हैं। आपके काव्य में गंगादास की भाँति भक्ति और वैराग्य के ही दर्शन होते हैं। उदासीन कवियों में आपका प्रमुख स्थान था। डॉ० जगन्नाथ शर्मा ने अपने डी०लिट्० के शोध प्रबन्ध 'उदासीन सम्प्रदाय के हिन्दी कवि और उनका साहित्य' में आपके सम्बन्ध में उपयोगी जानकारी प्रस्तुत की है।

आपका निधन सन् 1930 में हुआ था।

श्री मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही'

श्री मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही' का जन्म भूतपूर्व होल्कर राज्यान्तर्गत रामपुरा नामक ग्राम में 25 जनवरी सन् 1921 को एक प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता पं० रामशंकरजी उपाध्याय ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित, बड़े ही धर्मात्मा व उदारमना व्यक्ति थे। श्री 'निर्मोही' अपने पिता की तीसरी व अन्तिम सन्तान थे। रामपुरा के ही प्राथमिक, माध्यमिक व उच्चतर विद्यालयों में श्री 'निर्मोही' की प्रारम्भिक शिक्षा हुई थी। सन् 1939 में अजमेर बोर्ड की हाई स्कूल की परीक्षा में हिन्दी विषय में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके आपने 'कामदार पुरस्कार' अर्जित किया था। इसके पश्चात् आपने इण्टर, बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ क्रमशः सन् 1953, 1955 तथा 1957 में श्रेष्ठ अंकों से उत्तीर्ण कीं। इसके अतिरिक्त आपने साहित्यरत्न तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'सम्पादन कला विशारद' और बाद में बी० एड० की परीक्षाएँ भी पास कीं।

अपने पिता की मृत्यु शीघ्र ही हो जाने के कारण युवक 'निर्मोही' का जीवन संघर्षों में आगे बढ़ा। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् आपने ट्यूशन तथा पार्ट टाइम सर्विस आदि करके अपनी आगे की शिक्षा ग्रहण की। विद्यार्थी काल से ही युवक 'निर्मोही' परिश्रमी, महत्त्वाकांक्षी व साहित्यानुरागी प्रवृत्ति के थे। आपकी रचनाएँ समय-समय पर 'वीणा', 'माधुरी', 'विश्वमित्र', 'नवयुग', 'स्वतन्त्र', 'अर्जुन', 'आज', 'कर्मवीर' आदि प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थी।

आपकी प्रथम नौकरी इन्दौर की 'मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति' में पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर हुई थी। यहीं से आपको पुस्तकों के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ, जो उत्तरोत्तर बढ़ता गया। वर्तमान में 'निर्मोही' का व्यक्तिगत संग्रहालय इन्दौर नगर का ही नहीं वरन् प्रदेश का एक समृद्ध पुस्त-

कायम है। कुछ समय पश्चात् समिति की नौकरी से स्वेच्छा से त्यागपत्र देकर आप रतलाम चले गए जहाँ 'वीनोदय प्रिंटिंग प्रेस' में व्यवस्थापक पद पर कार्य किया। साहित्य-प्रेम ने वहाँ भी आपका पीछा नहीं छोड़ा और रतलाम से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'मालव' का सम्पादन भी आपने किया। कुछ समय पश्चात् पुनः आप इन्दौर चले गए तथा वहाँ यूनाइटेड प्रेस के व्यवस्थापक रहे एवं वहाँ से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'जनता' के सम्पादक पद पर भी कार्य किया। कालान्तर में इन्दौर के प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों 'इन्दौर-समाचार' व 'जागरण' के भी आप सह-सम्पादक रहे।

साहित्य-सेवी प्रवृत्ति होने से आपने अन्य साहित्य-सेवियों के साथ इन्दौर में 'मालव हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की तथा सात वर्ष तक उसके संचालक रहे। जीवन के इन्हीं आवर्त्त-विवर्तों के मध्य आप अपने अग्रज की प्रेरणा से सन् 1954 में शासकीय सेवा में चले गए। आपकी कार्य-निष्ठा व साहित्य-सेवी भावना के कारण इन्दौर नगर के प्रसिद्ध विद्यालय 'मल्हाराश्रम' में आपको शिक्षक का पद सौंपा गया। यहाँ भी आपने विभिन्न विद्यालयीन पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। साथ ही आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा संचालित हिन्दी साहित्य की विभिन्न परीक्षाओं के इन्दौर केन्द्र के मुख्य व्यवस्थापक तथा राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित होने वाली परीक्षाओं के परीक्षा मन्त्री भी रहे। इसके अलावा मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति से प्रकाशित साहित्यिक मासिक पत्रिका 'वीणा' के सम्पादक मण्डल में भी आप रहे। आपकी साहित्य-सेवा व योग्यता को देखते हुए मध्यप्रदेश शासन ने आपको आदर्श उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, भोपाल में स्थानान्तरित किया। कुछ समय पश्चात् आप पुनः स्वेच्छा से इन्दौर आ गए तथा नूतन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में व्याख्याता के पद पर कार्य करते रहे। माध्यमिक शिक्षा-मण्डल, भोपाल ने हाई स्कूल व उच्चतर कक्षाओं की हिन्दी की पुस्तकों के संकलन के लिए आपको विशेष रूप से आमन्त्रित किया। इसके अन्तर्गत आपने गद्य, पद्य व अन्य सहायक पुस्तकों के सम्पादन का कार्य किया। इसके साथ ही एन० सी० ई० आर० टी० दिल्ली द्वारा आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य गोष्ठी में विशेष रूप से आप आमन्त्रित किये गए। यहाँ भी इस संस्था द्वारा प्रकाशित होने वाली हिन्दी की विभिन्न पुस्तकों के संकलन में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

आपकी साहित्यिक गतिविधियों एवं सेवाओं से प्रभावित होकर मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति से प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्रिका 'वीणा' के प्रधान सम्पादक का कार्य-भार आपको सौंपा गया। एक वर्ष के अल्प सम्पादन-काल में आपने कठोर परिश्रम से इस पत्रिका का जीर्णोद्धार करके इसे न केवल प्रदेश की अपितु देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में ला बिठाया। अपने सम्पादन-काल में आपने उसके 'ग्राम-संस्कृति अंक' व 'मालवी अंक' जैसे सुन्दर विशेषांकों का प्रकाशन करके इसे एक श्रेष्ठतम साहित्यिक पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। लेकिन इस पत्रिका की अधिकाधिक उन्नति करने तथा देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिका बनाने-सम्बन्धी आपके सभी स्वप्न साकार हों, इसके पूर्व ही काल के कठोर हाथों ने इस साहित्य-सेवी, कर्मठ व परिश्रमी साहित्यकार को 20 जनवरी सन् 1972 को अचानक हमसे छीन लिया।

आपके द्वारा लिखित रचनाओं में 'कलम के हिमायती' (कहानी संग्रह), 'पन्द्रह अगस्त' (कहानी संग्रह) तथा 'रूप-मती' (भाव नाट्य) आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने असंख्य पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी थीं।

श्री मोहनलाल मिश्र 'मच्छर भगवान्'

श्री मिश्रजी का जन्म 5 मई सन् 1912 को मथुरा में हुआ था। आप पहले बहुत कमजोर थे, इसीलिए आपने अपना नाम 'मच्छर भगवान्' रख लिया था। बाद में आप धीरे-धीरे स्वस्थ होकर एम० ए० करने के उपरान्त मथुरा के चम्पा अग्रवाल हाई स्कूल में संगीत अध्यापक के रूप में कार्य करने लगे थे। थोड़े दिन वहाँ कार्य करने के उपरान्त आप हाथरस के बागला कालेज में चले गए। पहले उसके इण्टर विभाग में अध्यापक रहे और बाद में आजीवन उसके डिग्री विभाग में 'प्रवक्ता' रहे।

आप बड़े मिलनसार, व्यवहार-कुशल, मृदुभाषी और

सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। कविता को आपने अपने जीवन का ऐसा अंग बना लिया था कि आप उसी में रम गए थे। आपने ब्रजभाषा में 'श्री सत्यकथा व्रत-सार' नामक जो पुस्तक लिखी थी उसमें सत्यनारायण की कथा को पद्यबद्ध किया था। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के कार्यों में आप सदा अग्रणी रहा करते थे।

अनेक कवि-गोष्ठियों में सम्मिलित होने के साथ-साथ आपने रंगमंच पर भी अनेक नाटक अभिनीत किए थे।

आपके द्वारा किया हुआ 'श्रीमद्भगवद्गीता' का ब्रजभाषा में दोहा तथा चौपाई पद्धति में किया गया अनुवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसे आपने सन् 1936 में 'मोहन गीता' नाम से प्रकाशित कराया था। इसका जो द्वितीय संस्करण सन् 1964 में प्रकाशित हुआ था उसकी भूमिका प्रख्यात लेखक डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखी थी। इसके पहले संस्करण की प्रशंसा जहाँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने की थी वहाँ डॉ० भगवानदास, कन्हैयालाल पोद्दार तथा हरिशंकर शर्मा आदि अनेक मनीषी साहित्यकारों ने भी उसे सराहा था।

आपका निधन 19 जनवरी सन् 1963 को हुआ था।

श्री मौलिचन्द्र शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म हरियाणा के झज्जर नामक नगर में सन् 1901 में हुआ था। आपके पिता व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयालु हिन्दू-समाज के अग्रणी नेता के रूप में विख्यात रहे हैं। सनातन धर्म-जगत् में आपकी वाणी का ऐसा जादू था कि बात-की-बात में आप बड़े-से-बड़ा काम कर डालते थे। अपने पिता के अनुरूप मौलिचन्द्र जी में भी ऐसे कई गुण थे।

आप जहाँ पहले सन् 1930 में 'चैम्बर आफ प्रिंसेज' के मन्त्री के रूप में लन्दन में हुए 'गोलमेज सम्मेलन' में सम्मिलित हुए थे वहाँ 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के प्रधानमन्त्री भी रहे थे। राजनीति में आप जहाँ 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष रहे थे वहाँ कांग्रेस के भी सक्रिय सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित थे। अनेक वर्ष तक आप जहाँ भारत सरकार के 'विधायी आयोग' के कर्मठ सदस्य रहे थे वहाँ अपने जीवन के अन्तिम दिनों में 'टाइम्स आफ इण्डिया' के प्रकाशनों के प्रशासक-मंडल से भी सम्बद्ध थे।
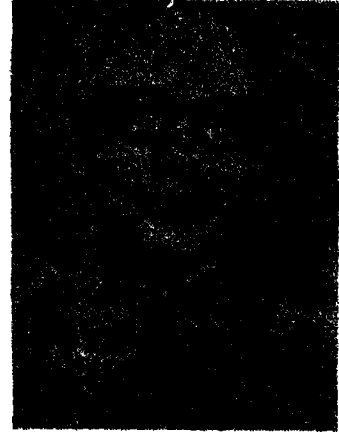
हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के आन्दोलन मे आपने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य किया था और अन्तिम दिनों में आप सम्मेलन के प्रशासी निकाय के अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका निधन 12 जनवरी सन् 1979 को नई दिल्ली के 'आल इण्डिया इस्टीट्यूट ऑफ मैडिकल साइंजेज' में हुआ था।

श्री यज्ञदत्त शर्मा 'अक्षय'

श्री 'अक्षय' जी का जन्म 17 जुलाई सन् 1913 को अजमेर (राजस्थान) में हुआ था। प्रारम्भ में अजमेर से प्रकाशित होने वाली अनेक पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहने के उपरान्त

आप 'तकीज़ राजस्थान' और 'लोकवाणी' के सम्पादकीय विभाग में भी रहे।
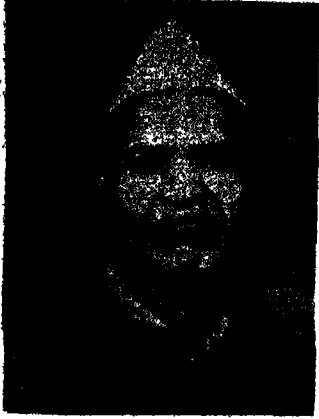
अनेक वर्ष तक आपने राजस्थान सरकार के सूचना विभाग में 'जन-सम्पर्क अधिकारी' के रूप में भी कार्य किया था। आप एक उत्कृष्ट कवि, संवेदनशील कथाकार और मँजे हुए लेखक थे। आपकी रचनाएँ देश के सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। स्काउटिंग के क्षेत्र में भी आपने उल्लेखनीय कार्य किया था।

आपका निधन 23 जून सन् 1977 को हुआ था।

श्री यज्ञराम खारघरीया फुकन

श्री फुकन का जन्म सन् 1805 में असम प्रान्त के कामरूप जिले में हुआ था। आपने असम में हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने के साथ-साथ सन् 1832 में 'हिन्दी व्याकरण और अभिधान' नामक पुस्तक लिखने की अभिनन्दनीय योजना बनाई थी और इसके दो खण्ड आपने पूर्ण भी कर लिए थे। इस ग्रन्थ के कुछ नमूने के कागज-पत्र (साँचिपात) कलकत्ता के एक पुस्तकालय में उपलब्ध हैं।

आपका निधन सन् 1837 में हुआ था।

श्री यशपाल सिद्धान्तालंकार

श्री यशपालजी का जन्म सन् 1902 में पंजाब प्रदेश के होशियारपुर जनपद के बैजवाड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आप गुरुकुल कांगड़ी के ख्यातनामा आचार्य श्री रामदेवजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई थी और सन् 1923 में वहाँ से स्नातक होने के उपरान्त आपने अपना सारा जीवन आर्यसमाज की सेवा में ही समर्पित कर दिया था। आप जहाँ अनेक वर्ष तक आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के 'वेद-प्रचार-विभाग' के अधिष्ठाता रहे थे वहाँ आपने कुछ समय तक कन्या गुरुकुल, देहरादून के प्रबन्धक के रूप में भी कार्य किया था।

आप कुशल वक्ता और गम्भीर विचारक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'शक्ति रहस्य' और 'वैदिक कोष' (संकलन) उल्लेखनीय हैं। आपने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ जहाँ बर्मा आदि देशों की अनेक यात्राएँ की थीं वहाँ क्वेटा (बिलोचिस्तान) में भी लगभग 7 वर्ष तक प्रचार-कार्य किया था। आप कई वर्ष तक गुरुकुल की 'विद्या सभा' के भी सक्रिय सदस्य रहे थे।
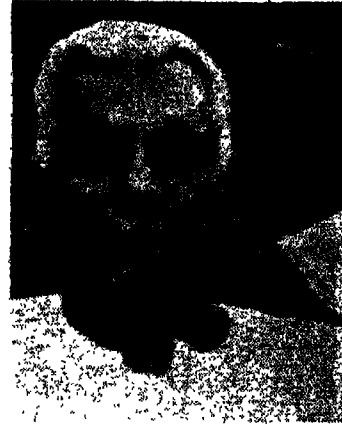
आपका निधन सन् 1963 में हुआ था।

श्री यादवचन्द्र जैन

श्री यादवचन्द्र जैन का जन्म 9 अगस्त सन् 1920 को कानपुर में हुआ था। आपके पिता हकीम बनारसीदास जैन कानपुर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक थे। आप जन्म से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक अस्वस्थ ही रहे और इसी अवस्था में साहित्य-रचना में प्रवृत्त रहे। हिन्दी की उच्चतम शिक्षा (एम० ए०) प्राप्त करके आप राजनीति तथा समाज-सेवा के क्षेत्र में अग्रणी कार्य करते रहे। आप जहाँ जैन मंडल कानपुर के संस्थापक एवं प्रधान मन्त्री रहे वहाँ साहू शान्तिप्रसाद जैन की अध्यक्षता में सन् 1943 में कानपुर में सम्पन्न

हुए अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद् के अधिवेशन की स्वागत-समिति के प्रचार मन्त्री भी रहे। कांग्रेस कमेटी कानपुर के भी आपने अनेक पदों को सुशोभित किया। सन् 1964-65 में आपने 'कानपुर साहित्यकार संसद्' नामक संस्था की स्थापना करके आपने कानपुर के साहित्यिक जागरण का भी अभिनन्दनीय कार्य किया था।

आपकी प्रथम औपन्यासिक कृति 'पत्थर पानी' सन् 1954 में हमारे प्रयास से ही 'नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, की ओर से प्रकाशित हुई थी। इसके उपरान्त आपकी प्रतिभा अत्यन्त मुखर रूप से प्रस्फुटित हुई और अपनी 49 वर्ष की अल्प-सी आयु के केवल 14 वर्ष के लेखक-काल में ही लगभग 27 उपन्यासों के अतिरिक्त एक आलोचनात्मक कृति हिन्दी-साहित्य को अर्पित की। आप मुख्यतः उपन्यासकार ही थे। आपके उपन्यासों में 'पत्थर पानी' के अतिरिक्त 'अन्धेरा-सवेरा' (1954), 'मल्ल-मल्लिका' (1956), 'बहती बयार' (1957), 'उत्तरा पथ' (1957), 'जाग्रत भारत' (1957), 'शिवनेर केसरी' (1957), 'आदि सम्राट्', (1958) तथा 'आरजू' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा अनूदित उपन्यासों में 'नाना', 'लहरों के बीच', 'मौजी जीवन' और 'तीन बेटे' विशेष उल्लेखनीय हैं।
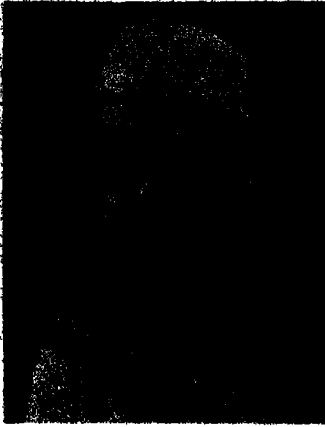
आपने सन् 1951 में 'प्रतिभा' नामक एक सांस्कृतिक साहित्यिक पत्रिका का भी सम्पादन किया था। दुर्भाग्यवश उसके कुछ अंक ही निकल पाए थे। पाकिस्तानी आक्रमण के समय 'ललकार' नाम से आपने 'वीररस' की कविताओं का एक संकलन भी सम्पादित किया था। सन् 1966-67 में आपने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् के मुखपत्र 'वीर' का सम्पादन भी किया था। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में आपने 'आरजू' नामक उपन्यास रोगशैया पर ही लिखा था। चिकित्सकों के मना करने के बावजूद भी आप साहित्य-सेवा से अपने को विरत नहीं रख सके और 29 दिसम्बर सन् 1968 को आपका देहावसान हो गया।

पंडित युगलकिशोर मिश्र 'ब्रजराज'

श्री मिश्रजी का जन्म सन् 1861 में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के गन्धौली नामक स्थान में हुआ था। आपके पूर्वज मौझगाँव के रहने वाले थे और गदर में इनके पूर्वज गन्धौली आ गए थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा फारसी में हुई थी और आपने 'गुलिस्ताँ', 'बोस्ताँ' तथा 'बहार दानिश' आदि पुस्तकें पढ़ने के उपरान्त संस्कृत के अनेक ग्रन्थ पढ़े थे। आपके पिता भी संस्कृत के अच्छे कवि थे और उनके पास बहुत-से अच्छे-अच्छे कवि आया करते थे।

अपने पिता के संस्कारों के कारण आपकी रुचि पहले-पहल कविता की ओर ही हुई थी और आप समस्या-पूर्ति के माध्यम से इस क्षेत्र में उतरे थे। अपने पिताजी के पास आने वाली समस्याओं की पूर्ति आप ही किया करते थे और आपकी वे रचनाएँ काशी के 'कवि-समाज' और 'कवि-मण्डल', पटना के 'कवि-समाज' तथा कानपुर के 'रसिक-समाज' के मुखपत्रों में छपा करती थीं। बिसवाँ के 'कवि-मण्डल' ने आपको 'साहित्य शिरोमणि' की उपाधि से सम्मानित किया था।

आपकी शिष्य-मण्डली बहुत बड़ी थी और आपने 60 से अधिक व्यक्तियों को कविता की दीक्षा दी थी। पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र तथा ठा० रामेश्वरबख्शसिंह ताल्लुकेदार ने आपके द्वारा ही काव्य-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया

था। आपकी अपने पूर्ववर्ती सरदार, सेवक, लछिराम, अयोध्या-नरेश, भारतेन्दुजी, बाबू रामकृष्ण वर्मा, राय देवी-प्रसाद पूर्ण, बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' तथा कविराजा मुरारिदान आदि अनेक कवियों और साहित्यकारों से अच्छी घनिष्ठता थी।

आपने 'साहित्य पारिजात' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने के अतिरिक्त 'शब्द रसायन' की टीका भी की थी। पुराने कवियों की अनेक रचनाएँ आपको इतनी कण्ठाग्र थीं, कि उन्हें सुनकर आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता था।

आपका निधन सन् 1917 में हुआ था।

श्री युगलकिशोर शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म कानपुर में सन् 1788 को हुआ था। आपको हिन्दी पत्रकारिता का जनक कहा जाता है। आपने ही सर्वप्रथम 30 मई सन् 1826 को कलकत्ता से 'उदन्त मार्तण्ड' नामक हिन्दी का सबसे पहला साप्ताहिक पत्र निकाला था। इसको प्रकाशित करने की अनुमति शुक्लजी ने 16 फरवरी सन् 1826 को प्राप्त की थी। आप पहले कलकत्ता की दीवानी कचहरी में 'प्रोसीडिंग रीडर' थे और बाद में वकालत करने लगे थे।

अँग्रेजों की कूटनीति और अँग्रेजी भाषा के बढ़ते हुए प्रचार को देखकर आपके मन में एक गहन आशंका ने घर कर लिया था और इसी आशंका के निराकरण के लिए आपने सरकारी कर्मचारी होते हुए भी यह साहसपूर्ण कदम उठाया था। 'उदन्त मार्तण्ड' के माध्यम से शुक्लजी ने हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु जुझारू हिन्दी पत्रकारिता की नींव डाली थी। आपकी ऐसी जुझारू प्रवृत्ति का परिचय उसके प्रथम अंक की इन पंक्तियों से मिलता है—"यह 'उदन्त मार्तण्ड' अब पहले-पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अँग्रेजी ओ पारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्ने ओ पढ़ने वालों को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेयँ ओ पराई अपेक्षा न करें जो अपने भाषे की उपज न छोड़ें। इसलिए श्रीमान् गवर्नर जनरल बहादुर की आयस से ऐसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाठ ठाठा। जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ा तला की गली 37 अंक मार्तण्ड छापाघर में अपना नाम ओ ठिकाना भेजने से ही सतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे और बाहिर के रहने वाले डाक पर कागज पाया करेंगे।"

इन शब्दों से शुक्लजी का हिन्दी-प्रेम प्रकट होता है। आप कई भाषाओं के जानकार थे तथा भाषा, नाम और व्याकरण आदि के बारे में समसामयिक बंगला पत्रों से भी डटकर टक्कर लिया करते थे। 'उदन्त मार्तण्ड' में देशी, विदेशी तथा स्थानीय समाचारों के अतिरिक्त हास्य-व्यंग्य आदि की टिप्पणियाँ एवं लेख हुआ करते थे। इस पत्र का अन्तिम अंक 4 दिसम्बर सन् 1827 को निकला था। अपने सीमित साधनों और स्वल्प-सी पूँजी के बल पर लगभग डेढ़ वर्ष तक इसे निकालकर शुक्लजी ने यह घोषणा कर दी :

आज तलक लौं उगि चुक्यो, मार्तण्ड उद्न्त।
अस्ताचल को जात है, दिनकर दिन अब अन्त॥

इसको बन्द करके भी शुक्लजी चुप नहीं बैठे। इसके उपरान्त आपने फिर कुछ पैसा इकट्ठा करके सन् 1850 में 'साम्यदन्त मार्तण्ड' नामक एक और पत्र निकाला। खेद की बात है कि यह पत्र भी पूँजी के अभाव में शुक्लजी ने लगभग 2 वर्ष चलाकर सन् 1852 में बन्द कर दिया। यह शुक्लजी-जैसे निर्भीक पत्रकार की हिम्मत थी कि बिना शासकीय सहायता के इतने दिन तक आपने पत्र चलाने का साहस किया, क्योंकि उन दिनों प्रकाशित होने वाले फारसी पत्र 'जामे जहानुमा' और बंगला पत्र 'समाचार दर्पण' को सरकार आर्थिक सहायता देती थी। शुक्लजी के इसी स्वाभिमान की रक्षा हिन्दी के मनस्वी पत्रकारों ने स्वतन्त्रता से पूर्व पग-पग पर की थी। यदि आप चाहते तो सरकार से सहायता लेकर पत्र को आसानी से चला सकते थे, परन्तु आपके स्वाभिमानी स्वभाव को ब्रिटिश नौकरशाही के सामने झुकना गवारा न था। हिन्दी वालों के लिए आपको जहाँ बंगला के पत्रों से लड़ना पड़ा वहाँ हिन्दी-हित-कामना से प्रेरित होकर अकेले ही मारवाड़ी व्यवसायियों और बंगालियों की समस्या का समाधान भी खोजना पड़ा था।

श्री शुक्लजी का निधन सन् 1853 में हुआ था।

श्री युधिष्ठिरप्रसाद चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म सन् 1893 में भरतपुर में हुआ था। आप भरतपुर के पुराने निष्ठावान हिन्दी-सेवक थे। सन् 1926 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की अध्यक्षता में भरतपुर में हुआ था उसके प्रमुख आयोजकों में आप भी एक थे। आप जहाँ सम्मेलन के अधिवेशन का प्रबन्ध करने वाली स्वागत समिति के 'उपमन्त्री' रहे थे वहाँ ओझाजी को 'अध्यक्षता' के लिए निमन्त्रित करने के लिए आप ही जयपुर भेजे गए थे।

'हिन्दी साहित्य समिति, भरतपुर' के माध्यम से आपने हिन्दी साहित्य और भाषा के प्रचार तथा प्रसार के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे। आप कई वर्ष तक समिति के अध्यक्ष रहने के साथ-साथ अन्य पदों पर भी आसीन रहे थे। 8 दिसम्बर सन् 1975 को समिति के 'हीरक जयन्ती समारोह' के अवसर पर आपको 'समिति' की ओर से एक 'प्रशस्ति-पत्र' भेंट करके आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया था।

आपका निधन 11 अगस्त सन् 1978 को 'तुलसी जयन्ती' के दिन हुआ था।

श्री युधिष्ठिर भार्गव

श्री युधिष्ठिर भार्गव का जन्म 18 अप्रैल सन् 1909 को ग्वालियर में हुआ था। आप बचपन से ही एक मेधावी छात्र के रूप में जाने जाते थे। माधव महाविद्यालय, उज्जैन से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गए और वहाँ से बी० एस-सी० (आनर्स) तथा एम० एस-सी० (भौतिकी) दोनों में प्रथम श्रेणी में सर्वप्रथम होने के साथ-साथ उस समय तक अधिकतम अंकों का भी रिकार्ड स्थापित किया।

कुछ समय तक शोध-कार्य में संलग्न रहने के उपरान्त आप वहाँ अध्यापन-कार्य भी करते रहे और फिर ग्वालियर राज्य की सेवा में संलग्न हो गए। साहित्य के क्षेत्र में आपने सर्वप्रथम पत्रकारिता के माध्यम से प्रवेश किया था। कुछ दिन तक आप 'जयाजी प्रताप' (ग्वालियर) के सम्पादक भी रहे थे।

आई० ए० एस० करने के उपरान्त आप मध्यप्रदेश शासन के विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए इन्दौर सम्भाग के आयुक्त और प्रदेश सरकार के विभिन्न विभागों में सचिव रहे। आप कुछ समय तक उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय के 'कुलपति' भी रहे थे।

आपके विविध विषयों के निबन्धों का संकलन 'संस्कृति और जन-जीवन' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में साहित्य, संस्कृति, इतिहास और पुरातत्त्व आदि विषयों पर सर्वकालीन महत्त्व की रचनाएँ समाविष्ट हैं।

आपका निधन 12 जून सन् 1967 को हुआ था।

श्री रंगनारायणपाल वर्मा

श्री रंगनारायणपाल का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के हरिहरपुर नामक ग्राम में सन् 1864 में हुआ था। आप

'रंगपाल' तथा 'वीरेश' नाम से भी लिखा करते थे। आपके पिता हरिहरपुर के ताल्लुकेदार महाराजकुमार बाबू वीरेश्वरबक्शपाल वर्मा 'वीरेश' थे। श्री वीरेश्वरजी की चार पत्नियाँ थीं, जिनमें से सबसे छोटी श्रीमती सुशीलमती देवी आपकी माता थीं। वे संस्कृत की विदुषी होने के साथ-साथ हिन्दी की भी उत्कृष्ट कवयित्री थीं। भारतेन्दु बाबू आपको अपना घनिष्ठ मित्र मानते थे और उन्होंने आपकी कवित्व-प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको 'महाकवि' की सम्मानित उपाधि भी प्रदान की थी। एक बार जब काँकरौली-नरेश के यहाँ हुए विराट् कवि-सम्मेलन में आपको केवल 18 वर्ष की आयु में ही 1000 रुपए का पुरस्कार मिला था तो आपने उसे विनम्रतावश अस्वीकार कर दिया था। आपकी इस विनम्रता पर मुग्ध होकर काँकरौली-नरेश ने आपको सम्मानित किया भी था।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'अंगादर्श', 'प्रेम लतिका', 'सज्जनानन्द', 'छत्रपति शिवाजी', 'वीर विरुद', 'पितृ विरह वारीश', 'फूल नामावली' तथा 'खग नामावली' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने 'रसिकानन्द' और 'शान्त रसार्णव' नामक संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना भी की थी।

आपका निधन 72 वर्ष की आयु में सन् 1936 में हुआ था।

प्रो० रंजन

प्रो० रंजन का जन्म 1 अक्तूबर सन् 1914 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के खिमसेपुर (रैसेपुर) नामक ग्राम में हुआ था। आपका वास्तविक नाम 'रघुराजसिंह राठौर' था। आपके पिता जागीरदार थे। 19 वर्ष की आयु से ही आपका जेल जाने और लौटने का जो क्रम चालू हुआ था वह तब तक बराबर चलता रहा जब तक कि भारत स्वतन्त्र नहीं हो गया। आपने जहाँ सन् 1930 के 'नमक सत्याग्रह' में भाग लेकर 3 मास की जेल भुगती थी वहाँ 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' में 6 मास जेल में रहे थे।

जेल से छूटकर आप कुछ दिन काशी विद्यापीठ में रहे। सन् 1933 में आपने कानपुर से इण्टर की परीक्षा दी। सन् 1936 में सनातन धर्म कालेज, कानपुर से बी० ए० किया। सन् 1936 से सन् 1939 तक आप 'प्रताप हाई स्कूल, कानपुर' के प्रधानाध्यापक रहे और इसी पद पर कार्य करते हुए आपने 'साहित्यरत्न' और इतिहास विषय में एम० ए० की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कीं। रंजनजी स्वभाव से घुमक्कड़ थे। किसी एक स्थान पर बँधकर बैठने का आपका स्वभाव नहीं था। सन् 1939 में कानपुर छोड़कर आप वर्धा चले गए थे और शिक्षण के साथ-साथ राष्ट्रीय कार्यों में भी योग देने लगे थे।

सन् 1942 में जब आप 'वनस्थली विद्यापीठ' में कार्य करते थे तब आपका श्री हीरालाल शास्त्री से इस बात पर मतभेद हो गया कि उन्होंने 'विद्यापीठ' को अपनी निजी सम्पत्ति घोषित कर दिया था। फलतः आपने विद्यापीठ छोड़कर आन्दोलन में भाग लिया और गिरफ्तार हो गए। सन् 1944 में जब आप अजमेर जेल से नजरबन्दी की हालत में फरार हो गए तो उसी हालत में आपने नाम बदलकर नागपुर विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा दी। किन्तु जब गुप्तचर विभाग को वास्तविक स्थिति का पता चला तो आप फिर गिरफ्तार कर
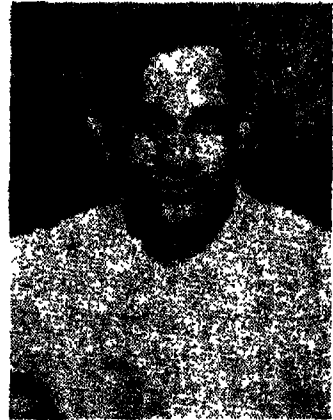
लिए गए। 'नागपुर विश्वविद्यालय' की परीक्षा आपने 'श्री रंजन' नाम से दी थी। आप हैदराबाद (दक्षिण) के 'भगवानदास नानकराम साइंस कालेज' के प्राचार्य भी रहे थे।

जब आप भारत सरकार के तत्कालीन सूचना तथा प्रसारण मन्त्री डॉ० बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर के प्रयास से जेल से मुक्त किये गए तो फिर आपने 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' में रहकर स्वतन्त्र लेखन और पत्रकारिता प्रारम्भ की। तदनन्तर आप हैदराबाद से प्रकाशित होने वाले 'उदय' साप्ताहिक के सम्पादक होकर वहाँ आ गए। कुछ दिन आप 'कल्पना' के सम्पादक मण्डल के सदस्य रहे। इसके उपरान्त आपने मध्यप्रदेश के शिवपुर कलाँ नामक स्थान पर जाकर सहकारी कृषि का कार्य भी किया। उसमें जब सफलता न मिली तो फिर वर्धा चले गए और स्वतन्त्र लेखन का कार्य करने लगे। वहाँ रहकर समाजवाद-सम्बन्धी कई पुस्तकों का अनुवाद किया। आपकी मूल पुस्तकों में 'पूँजीवाद की पोल', 'समाजवाद' और 'हमारे पड़ौसी देश' उल्लेखनीय हैं। आपने हालकेन के एक उपन्यास का अनुवाद भी किया था। आपने स्याम और हिन्द चीन की यात्रा भी की थी।

अन्तिम दिनों में आप हैदराबाद में ही रह रहे थे, जहाँ पर 18 जनवरी सन् 1955 को आपका देहावसान हो गया।

श्री रघुनन्दन शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद (अब गाजियाबाद) के हापुड़ नामक नगर में 2 नवम्बर सन् 1898 को हुआ था। आपके पिता पण्डित रामजीलाल शर्मा हिन्दी के ख्याति-प्राप्त साहित्यकार, हिन्दी प्रेस, प्रयाग के संचालक तथा 'खिलौना' एवं 'विद्यार्थी' मासिक के संस्थापक रहे थे। जिन दिनों श्री रघुनन्दन शर्मा का जन्म हुआ था तब आपके पिता मेरठ के श्री तुलसीराम स्वामी के 'स्वामी प्रेस' में प्रूफ-रीडर का कार्य करते थे और परिवार हापुड़ में रहता था। आपके जीवन पर अपने पिता के संस्कारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। जिन दिनों आपके पिता प्रयाग में रहते हुए अपनी 'बाल रामायण' की रचना कर रहे थे तब बालक रघुनन्दन के मन में उसकी कथा सुनने का चाव हो गया था और आप प्रायः अपने पिताजी के पास बैठकर उसके विषय में जिज्ञासाएँ करते रहते थे। सन् 1915 में आपने इण्ट्रेंस की परीक्षा दी और गणित में फेल हो गए। फलस्वरूप आपने पढ़ाई बीच में ही छोड़कर अपने पिताजी के प्रेस तथा लेखन-सम्बन्धी कार्यों में ही सहायता करनी प्रारम्भ कर दी।

आपके पिताजी का निजी पुस्तकालय अत्यन्त समृद्ध था। शर्माजी ने धीरे-धीरे उन सभी पुस्तकों का स्वाध्याय कर लिया जिनमें आपकी रुचि थी। उन पुस्तकों के पारायण और अपने पिताजी के पास आने वाले साहित्यकारों के वार्तालाप आदि को सुनकर धीरे - धीरे आपके मानस में भी साहित्य-

रचना के संस्कार जगने लगे और एक दिन वह भी आया जब आप लेखक हो गए। उन दिनों आपके पिताजी के पास जो साहित्यकार प्रायः आया करते थे उनमें सर्वश्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', मैथिलीशरण गुप्त, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, बाबूराव विष्णु पराडकर, लक्ष्मणनारायण गर्दे, बनारसीदास चतुर्वेदी, नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', पीर मुहम्मद मूनिस, पद्मसिंह शर्मा, नरदेव शास्त्री, माखनलाल चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु तथा हरिशंकर शर्मा आदि प्रमुख हैं। आपके पिता श्री रामजीलाल शर्मा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रबन्ध मन्त्री भी रहे थे, इस कारण आप उनके साथ सम्मेलन के अधिवेशनों में भी जाते रहते थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन से सम्पर्क के कारण आपके पिताजी साहित्य तथा राजनीति दोनों में समान भाव से रुचि लिया करते थे। प्रख्यात क्रान्तिकारी और उत्कृष्ट पत्रकार श्री राधामोहन गोकुलजी भी आपके पिताजी के 'हिन्दी प्रेस' में
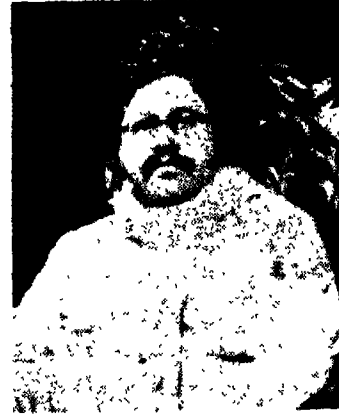
बराबर आया करते थे। उनसे भी शर्माजी का अच्छा परिचय हो गया था।

जब सन् 1930 में आपके पिता पंडित रामजीलाल शर्मा का निधन हो गया तब 'हिन्दी प्रेस' के संचालन के साथ-साथ 'विद्यार्थी' और 'खिलौना' के सम्पादन का भार आप पर ही पड़ा था। अपने इस कार्य-काल में आपने जहाँ अपने छोटे भाई ब्रजनन्दन शर्मा तथा दो बहनों के विवाह किए वहाँ प्रयाग के कटरा मोहल्ले में एक मकान भी बनाया। किन्तु फिर 2-3 वर्ष बाद आपको परिस्थितिवश प्रयाग छोड़ देना पड़ा। सम्पत्ति का बँटवारा हो जाने के उपरान्त आप मेरठ आ गए और यहाँ से 'खिलौना' का प्रकाशन करते रहे। फिर आप अलवर राज्य के प्रेस के सुपरिंटेंडेंट होकर वहाँ चले गए और सन् 1943 में आप अपने परिवार को लेकर ग्वालियर चले गए और वहाँ पर जाकर भी आपने अपना प्रकाशन-कार्य जारी रखा और 'खिलौना' का सम्पादन भी करते रहे। आपकी लिखी हुई पुस्तकों में 'भाई के लाल' (चार भाग), 'कथा-कहानी' (चार भाग), 'जलेबी', 'रसगुल्ला', 'समोसा', 'लाल' तथा 'हिन्दी कोष' आदि विशेष लोकप्रिय थीं। 'खिलौना' का प्रकाशन आप सन् 1961 तक निरन्तर करते रहे थे, फिर अर्थ-संकट के कारण उसे बन्द कर देना पड़ा। आजकल आपके सुपुत्र श्री चन्द्रकुमार शर्मा प्रयाग में रहकर 'ब्रजकौशल प्रेस' का संचालन करते हैं।

आपका निधन 8 जून सन् 1973 को ग्वालियर में हुआ था।

श्री रघुनन्दन शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म 2 अक्तूबर सन् 1904 को हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जनपद के नूरपुर नामक ग्राम में हुआ था। पहले-पहल आपकी शिक्षा डी० ए० वी० स्कूल तथा डी० ए० वी० कालेज में हुई और बाद में ओरियण्टल कालेज लाहौर से 'शास्त्री' की परीक्षा में आप प्रथम श्रेणी में 'उत्तीर्ण' हुए और वहीं से एम० ए०, एम० ओ० एल० की परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण कीं। इन सफलताओं पर आपको 'सर मैकलोड गोल्ड मैडल' तथा 'सर गोपालदास भण्डारी गोल्ड मैडल' भी पुरस्कार में मिले। इसके उपरान्त 'म्यो पटियाला रिसर्च स्कालरशिप' लेकर आपने कांगड़ा की पहाड़ी बोलियों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन करके उनका एक व्याकरण बनाया और सन् 1932-33 में एचिसन चीफ कालेज, लाहौर में अध्यापक हो गए।

इसके उपरान्त आपने सन् 1935-36 में 'फिनेअर्ड कालेज' लाहौर में अध्यापन प्रारम्भ किया और सन् 1936 से सन् 1948 तक ओरियण्टल कालेज, लाहौर में शास्त्री तथा एम० ए० की उच्चतम कक्षाओं के अध्यापक हो गए। इसी बीच सन् 1933-34 में आपने 'आदर्श भारत' नामक एक मासिक पत्र का सम्पादन भी किया था। आप एक उच्च-कोटि के शिक्षक होने के साथ-साथ सफल लेखक भी थे। आपकी 'गुप्त वंश का इतिहास', 'अलंकार प्रवेशिका', 'सूक्ति स्तबक', 'प्रस्ताव प्रदीपिका', 'पंजाब में हिन्दी की प्रगति', 'दृश्य कुसुमाकर', 'नागरिक शिक्षा' तथा 'हिन्दी छन्द प्रकाश' आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'पंजाब में हिन्दी की प्रगति' नामक पुस्तक का प्रकाशन जहाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से हुआ था वहाँ आपको आपकी 'गुप्त वंश का इतिहास' नामक कृति पर 400 रुपए और 'नागरिक शिक्षा' पर 500 रुपए के पुरस्कार क्रमशः सन् 1933 और सन् 1942 में प्राप्त हुए थे।

भारत विभाजन के उपरान्त आप 'पंजाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो' में सम्पादक हो गए थे और इसी पद पर रहते हुए सेवा-निवृत्त हुए थे। आपकी रचनाओं में से अधिकांशतः पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी-परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में भी निर्धारित थीं।

आपका निधन 17 मार्च सन् 1974 को हुआ था।

श्री रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल 'अटल'

श्री अटलजी का जन्म सन् 1905 की राधा अष्टमी को वाराणसी में हुआ था। आपने उच्चकोटि के लेखक, वक्ता और पत्रकार के रूप में जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी वह बहुत कम लोगों को सुलभ हो पाती है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपने 'वेंकटेश्वर समाचार' (बम्बई) से कार्य प्रारम्भ करके काशी के 'पंडित पत्र', 'आज', 'संसार' और 'सन्मार्ग' आदि विविध पत्रों में सहायक सम्पादक और समाचार-सम्पादक के रूप में अनेक वर्ष तक उल्लेखनीय कार्य किया था। आपने जहाँ 'सन्मार्ग' के दिल्ली तथा कलकत्ता-संस्करणों के प्रारम्भ करने में अपना अद्वितीय योगदान दिया वहाँ 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी विश्व कोश' के सम्पादन में भी सहयोग दिया था।

आप संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, मराठी और गुजराती आदि भाषाओं के अच्छे मर्मज्ञ होने के साथ-साथ अँग्रेजी के भी निष्णात पंडित थे। नाटक-लेखन के क्षेत्र में आपको जहाँ अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई थी वहाँ 'श्रीमद्भागवत' को पद्यबद्ध करके भी आपने अभिनन्दनीय कार्य किया था। आपकी रचनाओं में 'सती दमयन्ती', 'मीराबाई', 'सती अनसूया', 'हिरण्याक्ष वध' तथा 'अर्गल की रानी' (सभी नाटक) के अतिरिक्त 'शान्ति के अग्रदूत' तथा 'शिव संकीर्तन, (काव्य) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आपकी उर्वरा प्रतिभा का सबसे सुपुष्ट प्रमाण यह है कि आप निर्भीक तथा निष्पक्ष पत्रकार के रूप में तो प्रतिष्ठित थे ही, नाटक-लेखन की प्रक्रिया में भी आपको अद्भुत प्रावीण्य प्राप्त था।

आपका निधन सन् 1966 को हुआ था।

श्री रघुनन्दनलाल श्रीवास्तव 'राघवेन्द्र'

श्री राघवेन्द्र का जन्म सन् 1901 में झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता श्री देवीदयाल श्रीवास्तव भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। 'राघवेन्द्र' जी की काव्य-प्रतिभा 14 वर्ष की स्वल्प-सी आयु में ही प्रस्फुटित हो गई थी और आजीवन आप 'हिन्दी-सेवा' में ही लगे रहे।

रेलवे में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए आप 'ट्रेन एग्जामिनर' के पद से सेवा-निवृत्त हुए थे। आप अपनी धुन के ऐसे पक्के थे कि आपने उत्तर प्रदेश सरकार से भयंकर संघर्ष करके 'साहित्यिक पेंशन' प्राप्त की थी।

आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'गर्जना', 'झाँसी विजन' और 'खडवा का ठाकुर' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये तीनो ही ग्रन्थ 'खण्ड काव्य' हैं और इनमें आपकी प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रकाशित हुई है।

आपका निधन 10 जनवरी सन् 1978 को हुआ था।

श्री रघुनाथ पाण्डेय 'प्रदीप'

श्री 'प्रदीप' जी का जन्म सन् 1909 में उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के 'भीनापुर' नामक ग्राम में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के ही स्कूल में हुई और मैट्रिक की परीक्षा आपने कलकत्ता जाकर दी थी। यद्यपि आपके पिता की हार्दिक इच्छा आपको 'पोस्ट आफिस' में लगाने की थी, परन्तु 'प्रदीप' जी का झुकाव प्रारम्भ से ही पत्रकारिता की ओर था। परिणाम-स्वरूप अपने पिता की इच्छा का विरोध करके आपने आगे की पढ़ाई जारी रखने की दृष्टि से 'विद्या सागर कालेज कलकत्ता' में प्रवेश ले लिया।

अपने अध्ययन को जारी रखते हुए आपने श्री बैजनाथ केडिया की 'हिन्दी पुस्तक एजेंसी' के 'वणिक प्रेस' में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया और थोड़े ही दिनों में आप प्रख्यात पत्रकार श्री रामशंकर त्रिपाठी के 'लोकमान्य' नामक पत्र में कार्य करने लगे। कुछ दिन तक वहाँ कार्य करने के उपरान्त आप 'दैनिक विश्वमित्र' में चले गए और उसके कलकत्ता-संस्करण के अतिरिक्त बम्बई, कानपुर और पटना-संस्करणों

में भी कई वर्ष तक कार्य किया। कुछ दिन तक आप कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'प्रदीप' के प्रधान सम्पादक भी रहे थे। वहाँ से प्रकाशित 'जागृति' दैनिक में भी आपने कार्य किया था।

जब कलकत्ता से आपका मन ऊब गया तब कुछ दिन के लिए आपने पटना से प्रकाशित होने वाले 'नवराष्ट्र' और 'राष्ट्रवाणी' आदि पत्रों में भी कार्य किया था। कलकत्ता से प्रकाशित 'विश्वबन्धु' ने आपके सम्पादन में अच्छी ख्याति अर्जित की थी। आप एक अच्छे पत्रकार होने के साथ-साथ उच्चकोटि के कथाकार भी थे। आपकी कहानियाँ कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'आदर्श' मासिक में ससम्मान छपती थीं। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जब आप 'विश्वमित्र' में कार्य कर रहे थे तब सन् 1955 में केवल 46 वर्ष की अवस्था में आपका निधन हो गया।

श्री रघुनाथ माधव भगाड़े

श्री भगाड़े का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह नामक नगर में सन् 1874 में हुआ था। मराठी-भाषी हिन्दी-लेखकों में आपका नाम अग्र पंक्ति में प्रतिष्ठित होने योग्य है। आपने मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी' का जो हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था उसका उन दिनों हिन्दी-भाषी जनता में अपूर्व स्वागत हुआ था। इसकी लोकप्रियता का इससे अधिक और प्रमाण क्या हो सकता है कि सन् 1955 में इसका संशोधित संस्करण भी प्रकाशित हुआ था।

'ज्ञानेश्वरी' के अनुवाद के अतिरिक्त आपने 'एकनाथी भागवत' का हिन्दी-अनुवाद भी प्रारम्भ किया था, जो अधूरा ही रह गया और सन् 1938 में आपका असामयिक निधन हो गया।

श्री रघुनायक विनायक धुलेकर

श्री धुलेकरजी का जन्म 6 जनवरी सन् 1891 को झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपकी मातृभाषा मराठी थी, किन्तु हिन्दी-लेखन का आपने व्रत ही लिया हुआ था। आपकी शिक्षा कलकत्ता और प्रयाग विश्वविद्यालयों में हुई थी।

आप एक कर्मठ स्वतन्त्रता सेनानी और उत्कृष्ट कोटि के समाज-सेवक थे। अनेक बार एम० एल० ए० रहने के अतिरिक्त आप उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष, लोकसभा और विधान निर्मात्री सभा के सदस्य भी रहे थे। आप जहाँ 'बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, झाँसी' के संस्थापक थे वहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन तथा विकास में भी आपका अनन्य सहयोग रहा था।

हिन्दी में 'अब्दकोश' (ईयर बुक) निकालने की दिशा में आपने ही सर्वप्रथम अग्रणी कार्य किया था। आप हिन्दी तथा संस्कृत के मर्मज्ञ लेखक होने के साथ-साथ एक कुशल पत्रकार भी थे। आपने झाँसी से जहाँ सन् 1922 से सन् 1924 तक 'मातृभूमि' नामक दैनिक पत्र का सम्पादन किया था वहाँ कानपुर से भी सन् 1924 से सन् 1928 तक उसे साप्ताहिक रूप में प्रकाशित किया था। इसके अतिरिक्त आपने झाँसी से 'उत्साह' नामक अर्ध साप्ताहिक भी प्रकाशित किया था।

आप अपने जीवन के अन्तिम दिनों में राजनीति से सर्वथा संन्यास लेकर अध्यात्म-चिन्तन और लेखन-कार्य में

ही [illegible] निवास हो गए थे। प्रति रविवार को आप गीता पर प्रवचन किया करते थे। आपने वहाँ गीता पर विस्तृत विवेचना लिखी वहाँ मुण्डक, प्रश्न, श्वेताश्वतर, माण्डूक्य तथा कठोपनिषद् के भी भाष्य किए। आपके 'यजुर्वेद विषयानुगामी भाष्य' नामक ग्रन्थ पर 'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान' ने 2500 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया था। इनके अतिरिक्त आपकी 'कौंसिल सुधार' (1920) नामक पुस्तक भी उल्लेखनीय है।

आपकी साहित्य-सेवाओं को दृष्टि में रखकर उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् 1974 में आपको 'साहित्य वारिधि' की सम्मानोपाधि से विभूषित किया था।

आपका देहान्त 22 फरवरी सन् 1980 को हुआ था।

श्री रघुवंशप्रसाद तिवारी 'रसबिन्दु'

आपका जन्म मध्य प्रदेश की रीवाँ रियासत के अमिलई नामक ग्राम में सन् 1886 में हुआ था।

आपने सन् 1944 से लेकर सन् 1964 तक रायगढ़ में रहकर साहित्य-सेवा का उल्लेखनीय कार्य किया। आपके सान्निध्य से रायगढ़ क्षेत्र के अनेक युवक साहित्य के क्षेत्र में अग्रसर हुए थे। ऐसे महानुभावों में जन-कवि आनन्दीसहाय शुक्ल, सुख्यात आलोचक श्री प्रमोद वर्मा और राममूर्ति तिवारी 'बचई' आदि उल्लेखनीय हैं।

आप प्रकृति से फक्कड़ और रीतिकालीन काव्य-साहित्य के अत्यन्त मर्मज्ञ अध्येताओं में थे। पल-पल में दोहे-पर-दोहे और सवैये-पर-सवैये रचने में आपको बहुत दक्षता प्राप्त थी।

आपकी रचनाओं का जो संकलन 'रसबिन्दुमयी' नाम से सन् 1964 में गुप्ता प्रकाशन, सतना (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित हुआ है उसमें शृंगार, वैराग्य तथा नीति से सम्बन्धित 100-100 दोहे संकलित हैं। उनसे आपकी काव्य-प्रतिभा का परिचय भली-भाँति मिल जाता है। आपने कालिदास के 'मेघदूत' का काव्यानुवाद भी किया था।

आपका देहावसान सन् 1969 में हुआ था।

श्री रघुवरप्रसाद द्विवेदी

श्री द्विवेदीजी का जन्म सन् 1864 को मध्य प्रदेश के जबलपुर नगर से दो मील दूर गढ़ा नामक स्थान में हुआ था। यह स्थान अपनी ऐतिहासिक महत्ता के लिए बहुत विख्यात है। सर्वप्रथम आप मिडिल और मैट्रिक की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके अध्यापन-कार्य में संलग्न हो गए थे और एम० ए० तथा बी० ए० की परीक्षाएँ आपने अपने इसी अध्यापन-काल में उत्तीर्ण की थीं। आप जबलपुर के मिशन स्कूल में अध्यापन करते थे। विचारों से कट्टर सनातनधर्मी होने के कारण आपकी मिशन स्कूल के अधिकारियों से प्रायः खट-पट ही रहा करती थी, फलतः 18 वर्ष नौकरी करने के उपरान्त आप वहाँ से अलग हो गए और सन् 1902 में जबलपुर के प्रख्यात शिक्षा-केन्द्र 'हितकारिणी हाई स्कूल' में कार्य करने लगे और लगभग 45 वर्ष तक आप इस कार्य में संलग्न रहे।

शिक्षण के कार्य में व्यस्त रहते हुए भी आपने लेखन तथा सम्पादन दोनों ही क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। आपने अपने कर्ममय जीवन में जहाँ अनेक वर्ष तक 'कान्यकुब्ज नायक', 'शिक्षा प्रकाश', 'हितकारिणी' तथा 'शुभचिन्तक' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया वहाँ ग्रन्थ-लेखन में भी

अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'शाहजादा फकीर', 'उमरा की बेटी', 'स्वदेश की बलिवेदी', 'सदाचार दर्पण' तथा 'भारत का इतिहास' नामक गद्य-पुस्तकों के अतिरिक्त बुन्देलखण्डी भाषा में 'गढ़ा गौरव' नामक एक खण्ड-काव्य भी लिखा था। आपकी अनेक शोध-रचनाएँ 'माधुरी' तथा 'श्रीशारदा' की पुरानी फाइलों में बिखरी पड़ी हैं।

लेखन-सम्पादन तथा शिक्षण के क्षेत्र में तो आपकी सेवाएँ उल्लेखनीय हैं ही, समाज-सेवा की दिशा में भी द्विवेदीजी का व्यक्तित्व सर्वथा अद्भुत था। आप जहाँ नागपुर विश्वविद्यालय के कला संकाय के प्रतिष्ठित सदस्य थे वहाँ नागपुर तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आदि की अनेक परीक्षाओं के परीक्षक तथा पाठ्य-पुस्तक-निर्धारण-समितियों के कर्मठ सदस्य थे। सन् 1916 में पाण्डेय रामावतार शर्मा की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो सातवाँ अधिवेशन जबलपुर से हुआ था उसकी स्वागत समिति के मन्त्री आप ही थे। आपने अपने सद्व्यवहार, प्रोत्साहन तथा संगठनक्षमता के बल पर मध्य-प्रदेश के तरुण लेखकों की एक नई पीढ़ी तैयार कर दी थी। 'हितकारिणी स्कूल' की उन्नति आपके ही कार्य-काल में अधिक हुई थी। जब जबलपुर में भयंकर रूप से प्लेग फैला था तब आपने वहाँ की जनता की प्रशंसनीय सेवा की थी।

आपका निधन 65 वर्ष की आयु में 24 अप्रैल सन् 1928 को हुआ था।

आचार्य रघुवीर

आचार्य रघुवीर का जन्म 30 दिसम्बर सन् 1902 को पश्चिमी पंजाब के रावलपिण्डी नगर में हुआ था। आपके पिता श्री मुन्शीरामजी निर्भीक तथा सदाचारी शिक्षक थे। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों से आपका अनन्य अनुराग था। आपने अपने विद्यानुरागी पिता के संस्कारों के अनुसार पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से एम० ए० करने के उपरान्त लन्दन विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। अपने छात्र-जीवन में ही आपने हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, बंगला और अँग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करके उनका इतना अभ्यास कर लिया था कि भावी जीवन में वह आपकी सफलता का मेरुदण्ड बना।

डॉ० रघुवीर भारतीय संस्कृति और अस्मिता के अद्वितीय उन्नायक तथा हिन्दी के महान् कोशकार थे। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का प्रश्न आया तब आपने यह सिद्ध कर दिखाया था कि हिन्दी का मूल संस्कृत में है और संस्कृत इतनी समृद्ध भाषा है कि उसकी धातुओं और उपसर्गों के सहयोग से अनन्त शब्दों का निर्माण हो सकता है। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल ने जब आपको अपने राज्य में 'पारिभाषिक शब्दावली' बनाने का आमन्त्रण दिया और आपको सभी सुविधाएँ उपलब्ध करा दीं तब प्रायः सभी प्रशासकों के मस्तिष्क में यह बात घुसी हुई थी कि हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हो ही नहीं सकता और अँग्रेजी के बिना शासन का कार्य चलना सर्वथा असम्भव है। लेकिन 3-4 वर्ष के अपने अथक परिश्रम से आपने अँग्रेजी-हिन्दी के एक ऐसे विशाल शब्दकोष का निर्माण कर डाला कि जिसे देखकर आश्चर्य होता था। प्रारम्भ में तो वे शब्द अटपटे लगते थे, लेकिन फिर धीरे-धीरे लोगों को यह पक्का विश्वास हो गया कि संस्कृत के आधार पर ही वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण हो सकता है।

आचार्य रघुवीर के इस चमत्कारपूर्ण सिद्धान्त के अनुसार फिर धीरे-धीरे उत्तर प्रदेश और बिहार में भी हिन्दी-शब्दावली का निर्माण होने लगा। किन्तु बाद में आप नागपुर से दिल्ली आ गए और यहाँ पर 'अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक अकादमी' की स्थापना करके आपने भारतीय संस्कृति के स्रोतों का अन्वेषण करने के निमित्त मंगोलिया, हिन्द चीन और हिन्देशिया आदि अनेक देशों की यात्राएँ कीं। इन यात्राओं में आप वहाँ से अनेक ग्रन्थों, मूर्तियों और चित्रों का बहुत बड़ा संग्रह लाए। आपने बहुत से ऐसे ग्रन्थ प्राप्त किए जो भारत से सर्वथा लुप्त हो चुके थे। आपने तिब्बती लिपि के साथ देवनागरी लिपि में पुस्तकें छापने के लिए विशेष टाइप भी बनवाए। जिस प्रकार राहुलजी ने तिब्बत जाकर बहुत-से ऐसे ग्रन्थों का पता लगाया था जिनका भारत में केवल नाम ही सुना जाता

था और आप उन्हें खच्चरों पर लादकर भारत लाए थे उसी प्रकार आचार्य रघुवीर ने भी भारतीय संस्कृति के अवशेषों को थाईलैंड, इण्डोनेशिया, बर्मा, लाओस, वियतनाम, चीन, जापान और मंगोलिया आदि देशों का भ्रमण करके ऐसी प्रचुर सामग्री प्राप्त की जिससे 'भारतीय पुराविद्या विशारदों' को बहुत प्रेरणा मिलती है। आपके द्वारा संस्थापित 'सरस्वती विहार' का यह विशाल संग्रहालय आज भारत ही नहीं, प्रत्युत विश्व के पुराविदों के लिए स्मरणीय तीर्थ बन गया है।

एक साधारण संस्कृत शिक्षक के रूप में लाहौर में अपना कर्ममय जीवन प्रारम्भ करके आचार्य रघुवीर ने वहाँ पर ही 'सरस्वती विहार' नामक जिस संस्था की स्थापना सन् 1934 में की थी कालान्तर में वह इतना विशाल रूप ले लेगी, इसकी कल्पना कदाचित् आपने भी नहीं की थी। इस संस्था के द्वारा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावलियों के निर्माण का जो कार्य आपने वहाँ आरम्भ किया था, भारत-विभाजन के उपरान्त वह और भी आगे बढ़ा। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से आपने ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित 20 लाख शब्द बनाने का जो हिमालयी संकल्प किया था, उसमें आपने अपनी सुदृढ़ संकल्प-शक्ति के बल पर यत्किंचित् सफलता भी प्राप्त कर ली थी। अपने जीवन-काल में आपने लगभग 4 लाख शब्दों का निर्माण किया था। हिन्दी के सर्वतोमुखी विकास के लिए आपने सन् 1962 के जुलाई मास में समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों का जो सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया था उसमें दक्षिण की सभी भाषाओं के प्रतिनिधियों ने हिन्दी की महत्ता को स्वीकार करते हुए यह मन्तव्य प्रचारित किया था कि उनका न तो राष्ट्रभाषा हिन्दी से विरोध है, और न वे यह चाहते हैं कि उनकी राष्ट्रभाषा और मातृभाषा का स्थान अँग्रेजी ले। आचार्यजी का एकमात्र लक्ष्य अँग्रेजी के उस वट-वृक्ष को जड़ से उखाड़ फेंकना था जिसके कारण भारतीय भाषाओं का विकास रुका हुआ था। आपकी यह निश्चित मान्यता थी कि "अँग्रेजी भाषा एक वट-वृक्ष है। उसके नीचे ये बेचारे छोटे पौधे कैसे पनप सकते हैं। इस वट-वृक्ष के हाथ में आज समस्त शासन की शक्ति है। अँग्रेजी जानने वाले भारत में केवल 2 प्रतिशत हैं। 98 प्रतिशत व्यक्ति अँग्रेजी नहीं जानते। प्रजातन्त्र में 98 प्रतिशत की बात चलनी चाहिए या 2 प्रतिशत की।" आपके मन में यही बात काँटे की तरह चुभती रहती थी।

आचार्यजी द्वारा स्थापित 'सरस्वती विहार' के कार्य की महत्ता का परिचय इसी बात से मिल जाता है कि जब सन् 1956 में इसके भवन का शिलान्यास भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के करकमलों से सम्पन्न हुआ था तब उन्होंने उसके कार्यों की आशंसा इन शब्दों में की थी—"पूर्व की प्राचीन विचार-धारा तथा ज्ञान-भण्डार की खोज का कार्य कुछ और संस्थाएँ भी कर रही हैं, किन्तु दक्षिण-पूर्वी एशिया, सुदूर पूर्व तथा केन्द्रीय एशिया के विभिन्न स्थलों में जितना विस्तृत अनुसन्धान-कार्य 'सरस्वती विहार' ने किया है, उतना अभी तक दूसरी संस्थाओं द्वारा नहीं हो सका है।" आचार्य रघुवीर ने राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति के उन्नयन के निमित्त अपनी इस संस्था के माध्यम से जो सपना सँजोया था, उसको मूर्त्त रूप देने में आपके सुपुत्र डॉ० लोकेशचन्द्र आज भी अनवरत कर्म-रत हैं। आपने अपने मध्यप्रदेश के कार्य-काल में जिन शब्दों का निर्माण किया था उनका प्रकाशन जून 1955 में 'ए काम्प्रहेंसिव इंगलिश-हिन्दी डिक्शनरी' के नाम से हुआ था। यह प्रसन्नता की बात है कि आपके इस कोश ने ही 'पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण' का द्वार उद्घाटित किया था। संविधान-सभा के सदस्य के रूप में भी आपने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने के लिए अथक संघर्ष किया था। आपकी यह निश्चित मान्यता थी—"हिन्दी का प्रश्न राष्ट्रीयता का प्रश्न है। यदि देश की किसी भाषा को राष्ट्रभाषा का पद दिया जा सकता है तो वह सर्वतोभावेन हिन्दी ही होगी। उसका यह स्वत्व छीनना किसी को स्वीकार्य न होगा।"

आपका निधन 14 मई सन् 1963 को कानपुर से फर्रुखाबाद जाते हुए कार-दुर्घटना में हुआ था।

श्री रघुवीरशरण जौहरी

श्री जौहरी का जन्म 5 मार्च सन् 1910 में उज्जैन (मध्य-

प्रदेश) में हुआ था। आप हिन्दी-काव्य के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ संगीत शास्त्र के भी प्रकाण्ड पंडित थे।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'परिभाषा' (1936) तथा 'कविताएँ और पद' (1973) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से अन्तिम कृति आपकी मृत्यु के उपरान्त प्रकाशित हुई थी।

आपका निधन 7 अगस्त सन् 1942 को हुआ था।

श्री रघुवीरशरण दुबलिश

श्री दुबलिश का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के मवाना नामक कस्बे में सन् 1886 में हुआ था। आपके पिता श्री रामदासजी एक साधन-सम्पन्न परिवार में उत्पन्न हुए थे। आपकी शिक्षा मेरठ कालेज से हुई थी। जब आप कालेज में ही पढ़ते थे तब आपने यह संकल्प किया था कि "बड़ा होकर शिक्षा-समाप्ति पर प्रेस का व्यवसाय करूँगा।" आपकी डायरी में लिखे संकल्प की यह पंक्तियाँ अक्षरशः सत्य सिद्ध हुईं और आपने शिक्षा-समाप्त करते-न-करते मेरठ में एक प्रेस की स्थापना कर दी, जिसका नाम 'भास्कर' प्रेस' रखा। फिर आपने इस प्रेस से 'भास्कर

(1912) तथा 'आर्य महिला' (1913) नामक मासिक पत्र भी प्रकाशित किए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्री दुबलिशजी आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के दो वर्ष तक मन्त्री भी रहे थे। आपने अपने थोड़े-से जीवन में उक्त दोनों पत्रों के सम्पादन के अतिरिक्त कई ग्रन्थ भी लिखे थे। आपके द्वारा लिखे गए ग्रन्थों में 'भारतवर्ष का सच्चा इतिहास', 'संस्कृत-हिन्दी कोष' और 'वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद' प्रमुख हैं।

यह दुबलिश जी को ही सौभाग्य प्राप्त है कि आपने हिन्दी को महापंडित राहुल सांकृत्यायन-जैसा उद्भट विद्वान् लेखक प्रदान किया। श्री राहुलजी का पहला हिन्दी-लेख सन् 1916 में 'भास्कर' में ही छपा था। यह बात उन दिनों की है जबकि राहुलजी सन् 1915 में आगरा के 'आर्य मुसाफिर विद्यालय' में पढ़ते थे और 'केदारनाथ विद्यार्थी' के नाम से जाने जाते थे। इस बात का उल्लेख राहुलजी ने अपनी आत्मकथा में किया है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि आप अधिक दिन तक जीवित न रह सके और आपका निधन 18 अक्तूबर सन् 1918 को हो गया।

ब्योहार रघुवीरसिंह

श्री ब्योहार रघुवीरसिंह का जन्म मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर के एक सम्भ्रान्त कायस्थ परिवार में सन् 1877 में हुआ था। आपने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, मध्यप्रदेश विधान सभा तथा केन्द्रीय असेम्बली में हिन्दी के प्रयोग के लिए प्रबल आन्दोलन करने के साथ-साथ अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।

आपकी प्रमुख कृतियों में 'शास्त्र सिद्धान्त सार' और 'कादम्बरी का हिन्दी अनुवाद' के नाम स्मरणीय हैं। 'शास्त्र सिद्धान्त सार' नामक ग्रन्थ की रचना आपने चिरंजीव भट्टाचार्य-कृत संस्कृत भाषा के 'विद्वन्मोद तरंगिणी' नामक ग्रन्थ के आधार पर की थी। यह पूरा ग्रन्थ 6 तरंगों में विभाजित है। आप हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार ब्योहार राजेन्द्रसिंह के स्वनामधन्य पिता थे।

आपका निधन सन् 1960 में हुआ था।

श्रीमती रजनी पनिक्कर

श्रीमती पनिक्कर का जन्म 11 सितम्बर सन् 1924 को

लाहौर के एक पंजाबी खत्री (नैयर) परिवार में हुआ था, किन्तु ट्रावनकोर (दक्षिण) के एक फौजी अफसर श्रीधर पनिक्कर से विवाह हो जाने के उपरान्त आप 'रजनी नैयर' से 'रजनी पनिक्कर' बन गई थीं। अँग्रेजी और हिन्दी साहित्य में एम० ए० करने के उपरान्त आपने सबसे पहले बम्बई से प्रकाशित होने वाली एक अँग्रेजी कहानी पत्रिका का सम्पादन किया था और बाद में आप भारत-विभाजन के उपरान्त पंजाब सरकार के सूचना-विभाग के पाक्षिक हिन्दी पत्र 'प्रदीप' की सम्पादिका बन गईं।
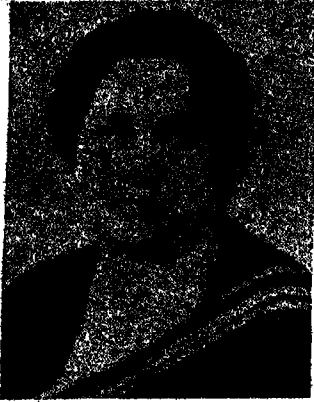
कहानी तथा उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में आपने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। आपके 6-7 उपन्यास और 2-3 कहानी-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'ठोकर' (1949), 'पानी की दीवार' (1954), 'मोम के मोती' (1954), 'प्यासे बादल' (1955), 'काली लड़की' (1958), 'जाड़े की धूप' (1958), 'महानगर की मीता', 'सिगरेट के टुकड़े' (1956) और 'प्रेम चुनरिया बहुरंगी' आदि उल्लेखनीय हैं।

श्रीमती पनिक्कर ने अपने सभी उपन्यासों में अनेक पात्रों के माध्यम से आज के समाज की जिन विभीषिकाओं का चित्रण किया है वे सबकी अनुभूति को प्रेरित करती प्रतीत प्रतीत होती है।

आप अनेक वर्ष तक आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर अधिकारी के रूप में रही थीं और आपकी रचनाओं में नारी-जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्र यथातथ्य रूप में अंकित मिलते हैं। आपकी रचनाएँ हिन्दी के सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती रहती थीं।

आप राजधानी की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'दिल्ली लेखिका समाज' की संस्थापिका और उसकी प्रथम अध्यक्षा थीं।

आपका निधन 18 नवम्बर सन् 1974 को हुआ था।

श्री रणछोड़जी दयालजी देसाई

आपका जन्म गुजरात प्रदेश के सूरत जनपद के वावर (कामरेज) नामक स्थान में 19 फरवरी सन् 1902 को हुआ था। आपने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के आह्वान पर दक्षिण गुजरात में हिन्दी-प्रचार के कार्य में अनन्य योगदान दिया था। मुख्य रूप से आप हिन्दी-शिक्षक के रूप में ही कार्य करते रहे थे।

आपकी प्रकाशित कृतियों में 'साहित्य परिचय' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त आपने अनेक पाठ्य-पुस्तकों की रचना भी की थी। सन् 1960 में आपको भारत के राष्ट्रपति की ओर से 'उत्तम शिक्षक' के रूप में सम्मानित तथा पुरस्कृत किया गया था।

आपका निधन 23 फरवरी सन् 1963 को हुआ था।

श्री रणजीतसिंह वानप्रस्थी

श्री वानप्रस्थीजी का जन्म 10 जनवरी सन् 1901 को उत्तर प्रदेश के बरेली जनपद की बहेड़ी तहसील में हुआ था। आपकी शिक्षा 'गुरुकुल कांगड़ी' तथा 'आयुर्वेदिक कालेज, पीलीभीत' में हुई थी। कुछ समय तक सरकारी औषधालय में 'चिकित्सक' का कार्य करने के उपरान्त आपने फिर स्वतन्त्र चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

चिकित्सा के कार्य के साथ-साथ समाज-सेवा के पुनीत क्षेत्र में आपने विविध रूपों में कार्य किया था। पीलीभीत की ऐसी कोई समाज-सेवी संस्था नहीं थी जिसमें आपने सक्रिय योगदान न दिया हो।

आप कुशल चिकित्सक होने के साथ-साथ अच्छे लेखक भी थे। आपका बहुत-सा साहित्य अभी तक अप्रकाशित पड़ा है। आपके लेख आदि 'वीर अर्जुन', 'सार्वदेशिक' और 'आर्य मित्र' आदि अनेक प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होते रहते थे। आपकी 'पौराणिक देवी-देव पूजन', 'सती सावित्री या हिन्दू कोड बिल' (नाटक) तथा 'वैदिक मानव' आदि कृतियाँ प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 13 अप्रैल सन् 1975 को अपने बड़े पुत्र के पास फरीदपुर (बरेली) में हुआ था।

राजकुमार रणवीरसिंह 'वीर'

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के अवध अंचल की अमेठी रियासत के राज-परिवार में 21 जुलाई सन् 1899 को हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा राज दुर्ग रामनगर में ही अँग्रेजी और हिन्दी-संस्कृत के विशिष्ट विद्वानों द्वारा हुई थी।

आप अखण्ड ब्रह्मचारी तथा ओजस्वी वक्ता होने के साथ-साथ हिन्दी के सुलेखक तथा सुकवि थे। क्योंकि आपका सारा परिवार वैदिक धर्मावलम्बी था, अत: आपके जीवन पर भी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के सिद्धान्तों की अमिट छाप पड़ी थी। आप विचारों से पूर्णतः आस्तिक तथा कट्टर देश-भक्त होने के साथ-साथ वैदिक धर्म-प्रचार, शिक्षा-प्रचार और समाज-सुधार के सभी कार्यों में अग्रणी स्थान रखते थे। आपकी प्रतिभा का ज्वलन्त परिचय इससे ही मिल जाता है कि केवल 19 वर्ष की अवस्था में आपने अपना परिचय एक कविता में इस प्रकार दिया था :

राजा का द्वितीय पुत्र मैं हूँ, 'रणवीरसिंह'
मेरा नाम है, अभी तलक ब्रह्मचारी हूँ।
छात्र हूँ, अवस्था मेरी उन्नीस बरस की है,
हिन्दी का अनन्य भृत्य और हितकारी हूँ॥
भारत का भक्त, आर्य धर्म अनुरक्त और,
धृष्टता क्षमा हो शुद्ध वीर रक्तधारी हूँ।
कविता का सेवक और प्रेमी, दृढ़ आर्य हूँ मैं,
सूर्य वंशी क्षत्रिय निरामिष आहारी हूँ॥

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'सुवीर संगर' (1917), 'विजयोल्लास' (1917), 'मित्रम् प्रति समुचित:' (1918), 'सुभट तरुण' (1918), 'सामाजिक सुधार' (1919) तथा 'उत्थानोद्बोधन' (1919) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त लगभग 23 पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं। आपकी प्रतिभा इतनी बहुमुखी तथा प्रखर थी कि स्वल्प-सी आयु में आपने इतने प्रचुर साहित्य की सर्जना की थी।

आपका निधन 7 फरवरी सन् 1921 को केवल 22 वर्ष की आयु में हुआ था।
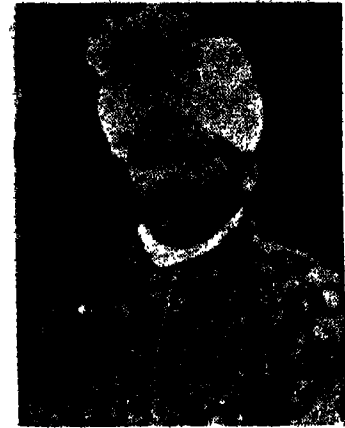
ठा० रणवीरसिंह शक्तावत 'रसिक'

श्री 'रसिक' जी का जन्म राजस्थान के अजमेर क्षेत्र के समीपवर्ती पिपलाज (वाया कादेड़ा) नामक ठिकाने में सन् 1909 में हुआ था। काव्य-रचना की मूल प्रेरणा आपको बाल्य-काल में ही अपने स्वर्गीय पिता ठा० सामन्तसिंह शक्तावत से प्राप्त हुई थी। वे भी अच्छे कवि और साहित्यकार थे। आपकी रचनाएँ किसी समय कवि-सम्मेलनों में बड़े

चाव से सुनी जाती थीं और देश की सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ससम्मान स्थान पाती थीं। सन् 1933 में आयोजित अखिल मेदपाटीय साहित्य-सम्मेलन में आपको 'सुकवि' की सम्मानोपाधि से अभिषिक्त किया गया था। आपको साहित्यरत्न, साहित्य महोपाध्याय और विद्यालंकार आदि उपाधियाँ भी प्रदान की गई थीं।
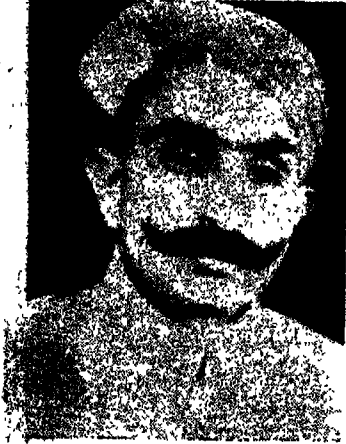
आप राजस्थानी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली तीनों भाषाओं में विविध विषयक काव्य-रचना करने में इतने कुशल थे कि जनता उन्हें सुनकर मुग्ध हो जाया करती थी। आपकी रचनाओं में प्राचीन और नवीन भावों का सम्मिश्रण बड़ी ही सफलता से किया गया है। आपकी भाषा और शैली में प्राचीन और नवीन का सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है।

आपने मेवाड़ राज्य में कई उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर अनेक वर्ष तक सफलता पूर्वक कार्य किया था। आपकी योग्यता, लगन, कार्यपटुता, ईमानदारी और सादगी आदि गुणों ने आपके व्यक्तित्व को बहुत ही लोकप्रियता प्रदान की थी। अनेक वर्ष तक आप राजस्थान सरकार के रेवेन्यू बोर्ड में अधीक्षक के रूप में कार्य करते रहे थे। आपकी अनेक रचनाओं पर बहुत से स्थानों एवं संस्थाओं से पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। राजस्थान साहित्य अकादेमी की ओर से भी आपको सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया था।

आपकी रचनाओं में 'रणवीर सुभाषित माला', 'नरसी चरित' (खण्ड-काव्य), 'काव्य-कुंज', 'हनुमच्चरित' (खण्ड-काव्य) और 'प्रताप' (महाकाव्य) प्रमुख हैं। किसी राजस्थानी द्वारा खड़ी बोली में महाराणा प्रताप विषयक महाकाव्य लिखने का यह प्रथम और सफल प्रयास है।

आपका देहावसान 1 अगस्त सन् 1980 को आपके मूल निवास पिपलाज में हुआ था।

श्री रतनलाल जैन

श्री जैन का जन्म 20 अगस्त सन् 1892 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के अफजलगढ़ नामक स्थान में हुआ था। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी०एस-सी०, एल-एल०बी० करके पहले नगीना तथा बाद में मुरादाबाद में वकालत की प्रैक्टिस प्रारम्भ की, किन्तु इस कार्य को धर्म तथा नैतिकता के विरुद्ध समझकर आपने 'तिलांजलि' दे दी और अपने फूफा श्री हीरालालजी के पास बिजनौर चले आए तथा आपने अपने जीवन को राष्ट्र और समाज की सेवा में ही पूरी तरह लगा दिया।

जहाँ आप अनेक वर्ष तक बिजनौर जिले की कांग्रेस कमेटी के सक्रिय सदस्य और पदाधिकारी रहे वहाँ जैन समाज की उन्नति के लिए भी आपने अपने जीवन को पूरी तरह खपा दिया। जैन समाज के प्रख्यात नेता बैरिस्टर चम्पतराय के सम्पर्क में आकर तो आपने उनके अनेक सुधारवादी आन्दोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। आपने जहाँ सन् 1931 के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर जेल-यात्रा की वहाँ सन् 1940 तथा सन् 1942 के आन्दोलनों में भी कारावास में रहे। आप सन् 1937 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य चुने जाने के अतिरिक्त सन् 1952 से सन् 1957 तक उत्तर प्रदेश विधान सभा के भी सदस्य रहे थे।

आप सच्चे समाज-सेवक और उद्भट राष्ट्रीय नेता होने के साथ-साथ गम्भीर भावना के पोषक लेखक भी थे। आपकी 'आत्म-रहस्य' तथा 'जैन धर्म' नामक कृतियाँ इसकी साक्षी हैं। 'आत्म-रहस्य' में जहाँ आत्म-तत्त्व का विश्लेषण वैज्ञानिक शैली में किया गया है वहाँ 'जैन धर्म' नामक पुस्तक में जैन धर्म का सामान्य परिचय सरल एवं सुबोध शैली में

कराया गया है।

आपका निधन 24 मई सन् 1976 को हुआ था।

श्रीमती डॉ० रत्नकुमारी देवी

श्रीमती रत्नकुमारी देवी का जन्म सन् 1910 में हुआ था और आप आर्यजगत् के प्रख्यात संन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश (प्रयाग विश्वविद्यालय से सम्बद्ध प्रख्यात वैज्ञानिक लेखक डॉ० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०) की सहधर्मिणी थीं और एम० ए०, डी० फिल० करके आप आर्यसमाज, प्रयाग द्वारा संचालित लड़कियों के इण्टर कालेज की आजीवन प्राचार्या रही थीं। आपका शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवि' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस शोध-प्रबन्ध के निदेशक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा थे।

अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण हिन्दी-लेखन में आपकी प्रारम्भ से ही रुचि थी, क्योंकि आपके पति जहाँ अच्छे लेखक हैं वहाँ आपके श्वसुर श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय भी हिन्दी के पुराने लेखकों में अग्रणी स्थान रखते थे। आपकी एक यात्रा-पुस्तक 'प्राची-प्रतीची' नाम से सन् 1972 में प्रकाशित हुई थी। इसमें आपकी उस यूरोप-यात्रा के मनोरंजक संस्मरण हैं जो आपने अपने पति डॉ० सत्यप्रकाश के साथ की थी। इस पुस्तक की भूमिका डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखी है। आपकी स्मृति में आपके पति स्वामी सत्यप्रकाश ने 'डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान' की स्थापना की है। आपकी इस यात्रा-पुस्तक का प्रकाशन आपके निधन के उपरान्त ही हुआ था।

आपका निधन 1 दिसम्बर सन् 1964 को हुआ था।

महाराजकुमार रत्नसिंह 'नटनागर'

महाराजकुमार रत्नसिंह का जन्म मध्यप्रदेश के मालवा अंचल के लदूना (सीतामऊ) नामक स्थान में 11 अप्रैल सन् 1808 को हुआ था। आप संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के साथ-साथ फारसी, उर्दू और डिंगल भाषाओं के भी अच्छे जानकार थे। आपका इन भाषाओं पर इतना अधिकार था कि आपने सभी में उत्कृष्ट काव्य-रचना की है। आपने उर्दू में भी एक पुस्तक 'दीवाने उश्शाक' नाम से लिखी थी, जिसकी पाण्डुलिपि आज भी 'श्री नटनागर शोध-संस्थान, सीतामऊ' में सुरक्षित है। आप उर्दू कविता 'उश्शाक' नाम से लिखा करते थे।

महाराजकुमार श्री नटनागर एक कुशल कवि और अध्ययनशील साहित्यकार होने के साथ-साथ अनन्य पुस्तक-प्रेमी भी थे। आपने अपने यहाँ अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह करने के अतिरिक्त बहुत-से उल्लेखनीय ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ भी तैयार कराई थीं, जो आज भी आपकी स्मृति में स्थापित 'श्री नटनागर शोध-संस्थान' में सुरक्षित हैं। आपने अपने जीवन-काल में सीतामऊ को जहाँ साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध किया था वहाँ साहित्यकारों का सम्मान करने में भी पीछे नहीं रहते थे। उन दिनों सीतामऊ राज्य को 'छोटी काशी' कहा जाता था। राजस्थानी के महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण श्री नटनागरजी की काव्य-प्रतिभा से विशेष प्रभावित थे और दोनों के मध्य पद्यमय पत्रों का आदान-प्रदान हुआ करता था। सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'वंश भास्कर' में महाराजकुमार रत्नसिंह के गुणों का उल्लेख विशेष रूप से किया है। आपके कृतित्व को 'श्री नटनागर शोध संस्थान' आलोकित कर रहा है।

आपका निधन 27 जनवरी सन् 1864 में हुआ था।

श्री रत्नाम्बरदत्त चन्दोला 'रत्न'

श्री चन्दोलाजी का जन्म उत्तर प्रदेश के पौड़ी-गढ़वाल क्षेत्र के ग्राम थापली पट्टी कफोलस्यूं में सितम्बर सन् 1901 में हुआ था। आपके पिता श्री पीताम्बरदत्त चन्दोला फौज में नौकरी करते थे। देहरादून के मिशन स्कूल से आठवीं कक्षा तक विद्याध्ययन करके आप काशीपुर (नैनीताल) चले गए और वहाँ से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्हीं दिनों आपके पिता तथा बड़े भाइयों के असामयिक देहावसान हो जाने के कारण सारे परिवार के भरण-पोषण का भार आप पर ही आ पड़ा और विवश होकर आपको भारतीय सेना में लिपिक की नौकरी करनी पड़ी। प्रारम्भ में आप कुछ दिन तक मेरठ रहे और बाद में आपका स्थानान्तरण लैंसडोन को हो गया। सेना में आपकी पदोन्नति होने ही वाली थी कि आपकी राष्ट्रीय विचार-धारा से रुष्ट होकर अधिकारियों ने आपको बर्मा भेजकर एक प्रकार से वनवास ही दे दिया और आप पूरे 14 वर्ष (सन् 1928 से सन् 1942 तक) वहाँ रहकर भारत लौटे थे। जिन दिनों आप बर्मा में थे तब एक हवाई दुर्घटना के कारण आपकी एक टाँग ही काट दी गई थी। इस प्रकार जब आप बर्मा से स्थानान्तरित होकर लखनऊ आए तब आप 'सूबेदार मेजर' थे। आपको वहाँ आनरेरी लेफ्टिनेंट और ओ० बी० ई० का सम्मान दिया गया और फिर कुछ दिन कांगड़ा तथा पूना रहने के उपरान्त आप सन् 1953 में मेजर के रूप में सेवा-निवृत्त हुए थे।

सेवा-निवृत्ति के पश्चात् आप लगभग 12 वर्ष तक पूना में ही रहे और वहाँ रहकर आपने फौज के अपंग व्यक्तियों की सहायता के लिए 'सोसाइटी फार रिहैब्लिटेशन ऑफ फिजीकली हैंडीकैप्ड' नामक एक संस्था की स्थापना की और इन्हीं सेवाओं के कारण आपको सन् 1958 में भारत के प्रथम राष्ट्रपति महोदय का ए०डी०सी० नियुक्त किया गया। सन् 1961 में आप इसी कार्य के लिए श्रीलंका के दौरे पर गए और फिर लन्दन में आयोजित अपंगों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भी आप सम्मिलित हुए थे। सन् 1965 में आप पूना से देहरादून आकर रहने लगे थे और वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों में सम्मिलित होकर अपना जीवन-यापन कर रहे थे।

श्री चन्दोला ने ब्रिटिश नौकरशाही के शासन-तन्त्र की अनेक बाधाओं में भी अपने साहित्य-प्रेम को सर्वथा अक्षुण्ण रखा था। इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि आप एक कवि के रूप में साहित्य-जगत् में प्रतिष्ठित हुए थे। आपकी पहली कविता सन् 1919 में 'गढ़वाली' में प्रकाशित हुई थी। जब आप सन् 1924 में मेरठ में रहते थे तब आपने श्री महेशानन्द थपलियाल द्वारा सम्पादित 'हृदय' नामक पत्र के प्रकाशन में भी अपना अनन्य तथा उल्लेखनीय सहयोग दिया था। जब आर्थिक कठिनाइयों के कारण 'हृदय' का प्रकाशन बन्द हो गया तो आपने 'आशा' नाम की एक और पत्रिका के सम्पादन में भी रुचि ली थी, किन्तु दुर्भाग्यवश वह भी बन्द हो गई। उन दिनों आप 'रत्न' नाम से लिखा करते थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो वार्षिक अधिवेशन सन् 1925 में श्री अमृतलाल चक्रवर्ती की अध्यक्षता में वृन्दावन में हुआ था, उसमें भी आपने भाग लिया था। उस अवसर पर आयोजित कवि-सम्मेलन में आपकी कविता को सुनकर श्री माखनलाल चतुर्वेदी-जैसे प्रतिष्ठित कवि भी झूम-झूम उठे थे और उनका यह स्नेह आपकी भावी साहित्य-यात्रा में बड़ा सहायक हुआ था। वैसे इससे पूर्व भी सम्मेलन का जो अधिवेशन श्री माधवराव सप्रे की अध्यक्षता में देहरादून में हुआ था, उसमें भी आपने सक्रिय रूप से भाग लिया था। जब आप नैनीताल में रहते थे तब सुकवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के सम्पर्क से आपके काव्य-जीवन में और भी विकास हुआ और एक दिन वह भी आया जब आपकी रचनाएँ देश की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में छपने लगी थीं।

आपकी कविताओं का जो एक-मात्र संकलन 'मधुकोष' नाम से सन् 1932 में प्रकाशित हुआ था, उसका भी स्वागत हिन्दी-जगत् ने बड़े उत्साह तथा चाव से किया था। इसके अतिरिक्त आपकी 'शिवाजी और भूषण', 'टूटा खिलौना',

'आत्म विद्रोह' (नाटक) और 'मेरी माँ' (संस्मरण) नामक कृतियाँ अभी अप्रकाशित ही हैं। जिन दिनों आप पूना में थे तब 'निष्काम' नाम से एक मासिक पत्र भी आपने लगभग 2 वर्ष तक प्रकाशित किया था। आपकी रचना-प्रतिभा का सबसे अधिक सुपुष्ट प्रमाण यही है कि 'मधुकोष' की अभ्यर्थना प्रख्यात समीक्षक डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने उन्मुक्त मन से की थी।

आपका निधन 27 फरवरी सन् 1975 को देहरादून में हुआ था।

श्री रमाकान्त त्रिपाठी 'प्रकाश'

श्री 'प्रकाश' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के ग्राम बण्डा (गडवारा बाजार) में सन् 1902 में हुआ था। आप मूलतः पत्रकार थे और पत्रकार के रूप में आपने जो भी कार्य किया, वह सर्वथा अनुपम तथा अभिनन्दनीय है।

पहले-पहल आप गान्धीजी के द्वारा चलाए गए असहयोग-आन्दोलन में भाग लेकर जेल गए और इसके कारण आपमें राष्ट्रीयता कूट-कूटकर भरी थी। पहले आपने कुछ दिन बम्बई में रहकर वहाँ के 'मारवाड़ी पुस्तकालय' में कार्य किया, कुछ दिन अध्यापक भी रहे, किन्तु बाद में कलकत्ता जाकर ऐसे जमे कि वहीं के हो गए। पत्रकारिता से पूर्व आप वीर रस के कवि के रूप में भी अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। आपने प्रतापगढ़ से 'पूर्णेन्दु' नामक मासिक पत्र का सम्पादन करने के अतिरिक्त कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दू पंच', 'विकास', 'सेवक' और 'जागृति' नामक पत्रों के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। किसी समय आपके सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'जागृति' के साहित्यांकों की धूम रहती थी।

कलकत्ता में रहते हुए आपने हिन्दी-काव्य को समृद्ध करने की दृष्टि से 'काव्य-कलाधर' नामक जो पत्र प्रकाशित किया था उसने हिन्दी के तत्कालीन पत्रों में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। 'प्रकाश' जी ने देश के विभिन्न प्रदेशों के काव्य की प्रगति पर प्रकाश डालने की दृष्टि से इस पत्र के जो विशेषांक प्रकाशित किए वे उनका हिन्दी-साहित्य में अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। उसके प्रकाशन से पूर्व 'सुकवि' का हिन्दी-साहित्य में जो स्थान था 'काव्य कलाधर' ने उसको और भी नई दिशा देकर बहुत समृद्ध किया। स्वल्प-से साधनों में ऐसे महत्त्वपूर्ण विशेषांकों का प्रकाशन करना 'प्रकाश' जी के साहस का ही काम था।

एक उत्कृष्ट कवि तथा सफल पत्रकार होने के साथ-साथ 'प्रकाश' जी ने साहित्य-रचना की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। सोद्देश्य साहित्य की रचना करना ही आपके कलाकार का कर्त्तव्य था। इसी दृष्टि से आपने जहाँ 'प्रेम का पागल', 'समाज की खोपड़ी' तथा 'हीरे की चोरी' आदि उपन्यास लिखे वहाँ आपकी 'सचित्र महाभारत', 'कवियों की ठिठोली', 'उर्दू-हिन्दी गुलदस्ता', 'पत्र प्रभाकर', 'व्यापार प्रकाश', 'पाक प्रकाश', 'प्रकाश प्रमोद', 'वेंकटाचल माहात्म्य सार' और 'पंच मेवा' आदि पुस्तकें भी महत्त्वपूर्ण हैं। आपने 'चार आना' सीरीज में 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता' के लिए जो बाल-जीवनियाँ लिखी थीं उनका भी अपने समय में बहुत अधिक महत्त्व था। आपकी ऐसी पुस्तकों में 'स्वामी दयानन्द', 'स्वामी शंकराचार्य', 'महात्मा कबीर', 'सुभाषचन्द्र बोस', 'पं० जवाहरलाल नेहरू', 'पं० मोतीलाल नेहरू', 'गुरु गोविन्दसिंह', 'सी० आर० दास', 'लोकमान्य तिलक', 'मीराबाई', 'स्वामी विवेकानन्द', 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर', 'भगवान् बुद्ध', 'वीर दुर्गादास राठौर' और 'बाल-नीति कथा' आदि के नाम स्मरणीय हैं।

आपका निधन सन् 1942 में हुआ था।
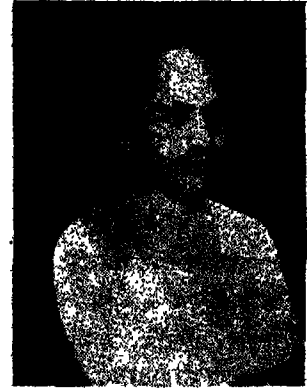
श्रीमती रमा विद्यार्थी

श्रीमती रमा विद्यार्थी का जन्म 13 मई सन् 1918 को

हुआ था। आपकी शिक्षा एम० ए० (हिन्दी) तक हुई थी और अँग्रेजी, उर्दू तथा पंजाबी भाषाओं की भी आप अच्छी जानकार थीं। अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिशंकर विद्यार्थी की आप द्वितीय पत्नी थीं। विद्यार्थी-परिवार के सम्पर्क में आकर आपने कानपुर के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में अपना प्रमुख स्थान बना लिया था।

आपने जहाँ हिन्दी के अनेक उत्कृष्ट भाव-निबन्ध लिखे थे वहाँ अपने पति श्री हरिशंकर विद्यार्थी के निधन के उपरान्त सन् 1955 से सन् 1965 तक 'दैनिक प्रताप' की देख-रेख का कार्य भी सफलता पूर्वक किया था। कांग्रेस की उत्कृष्ट कार्यकर्त्री होने के अतिरिक्त आपका नगर की अनेक शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं के संचालन में प्रमुख योग रहता था।

आपका निधन 18 सितम्बर सन् 1971 को कानपुर में हुआ था।

पण्डिता रमाबाई डोंगरे

पण्डिता रमाबाई का जन्म सन् 1858 में मैसूर राज्य के एक गाँव में हुआ था। आप संस्कृत की विदुषी होने के साथ-साथ कन्नड़, बंगला, मराठी और हिन्दी भाषाओं की मर्मज्ञा थीं। आपने पूना में 'आर्य महिला समाज' की स्थापना करने के साथ-साथ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से भी प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की थी।

आपने सन् 1889 में प्रकाशित अपनी मराठी भाषा की 'लोकस्थिति' नामक पुस्तक में यह विचार प्रकट किया था कि भारत की एकता के लिए 'राष्ट्रभाषा-हिन्दी' तथा 'राष्ट्र-लिपि देवनागरी' को अपनाना नितान्त आवश्यक है। आपने अपने अमरीका-प्रवास में भी हिन्दी के महत्त्व पर उल्लेखनीय प्रकाश डाला था। पण्डिता रमाबाई ने मेरठ में आकर स्वामी दयानन्द सरस्वती से 'वैशेषिक दर्शन' पढ़ा था। स्वामीजी चाहते थे कि वे ब्रह्मचारिणी रहकर आर्यसमाज का प्रचार करें; किन्तु रमाबाई ने ऐसा करने में असमर्थता प्रकट की थी।

आपका निधन सन् 1922 में हुआ था।

श्री रमाशंकर जैतली 'विश्व'

श्री 'विश्व' का जन्म सन् 1897 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर में हुआ था। आपकी शिक्षा एम० एस-सी० तक हुई थी और हिन्दी की 'विशारद' परीक्षा भी आपने उत्तीर्ण की थी। आप एक उत्कृष्ट कवि और कथाकार के रूप में विख्यात थे और आपकी रचनाएँ श्री प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित 'हंस' में भी ससम्मान प्रकाशित होती थीं।

आपने जहाँ सन् 1932 से सन् 1936 तक मुरादाबाद से प्रकाशित होने वाले बाल-साहित्य के श्रेष्ठ मासिक पत्र 'बाल विनोद' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था वहाँ कुछ समय तक आप प्रख्यात कहानी-मासिक 'अरुण' (मुरादाबाद) के सहकारी सम्पादक भी रहे थे।

आपकी प्रकाशित कृतियों में 'कसक' (खण्ड काव्य), 'तरल नेत्र' (उपन्यास) और 'बाँस' (कहानी-संग्रह) उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1937 में हुआ था।

श्री रमेशचन्द्र आर्य

श्री रमेशचन्द्र आर्य का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के विजयगढ़ नामक कस्बे में सन् 1910 में हुआ था और आपका जन्म-नाम 'रामसहाय' था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा विजयगढ़ के मिडिल स्कूल में हुई थी और मिडिल की परीक्षा में आपने प्रान्त में सर्वोच्च अंक प्राप्त करके प्रथम स्थान प्राप्त किया था। आपने अँग्रेजी की शिक्षा घर पर रहकर ही प्राप्त की थी और अपने ही नगर के निवासी वैद्यराज श्री गुरुदत्त शर्मा के सम्पर्क से आपका झुकाव आर्य-समाज की ओर हुआ था। अपने इन्हीं संस्कारों के कारण आप 21 वर्ष तक आते-आते आर्यसमाज विजयगढ़ के मन्त्री बन गए थे। आपकी रुचि उन्हीं दिनों लेखन की ओर हो गई थी और आपने आर्य-सिद्धान्तों के सम्बन्ध में काव्य-रचना करनी भी प्रारम्भ कर दी थी।

आप अपने अध्ययन को आगे बढ़ाना चाहते थे कि देश में सत्याग्रह-संग्राम छिड़ गया और आपका परिवार भी

उसके प्रभाव से अछूता न रह सका। युवक रमेश ने विजयगढ़ में विदेशी वस्त्रों की होली जलाने के साथ-साथ अलीगढ़ और हाथरस जाकर भी दुकानों के सामने 'पिकेटिंग' की। सत्याग्रह की समाप्ति के उपरान्त आपने नन्दकुमार देव वशिष्ठ की अध्यक्षता में 'हिन्दुस्तानी सेवा दल' में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया और अपने लेखन का क्रम भी जारी रखा। आपके 'वृद्धों के प्रति' तथा 'युवकों के प्रति' शीर्षक दो लेख उन्हीं दिनों अलीगढ़ से प्रकाशित होने वाले 'वैश्य हितकारी' नामक पत्र में प्रकाशित हुए थे। धीरे-धीरे आपकी रुचि पत्रकारिता की ओर हुई और आप सन् 1933 में अपने चाचा श्री छबीलेराम सर्राफ की प्रेरणा पर दिल्ली आ गए। उन्हीं दिनों यहाँ पर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ की अध्यक्षता में होने वाला था। रमेशजी ने स्वागत-समिति को अपनी सेवाएँ समर्पित कर दीं। समिति के प्रमुख सूत्रधार प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति आपके कार्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने आपको 'अर्जुन' में अपना सहकारी ही बना लिया।
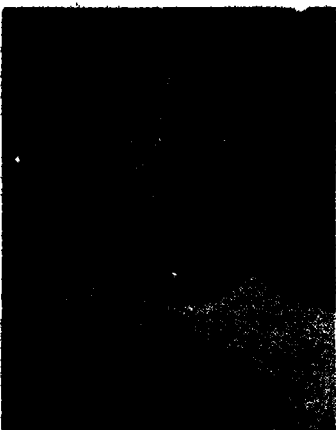
'अर्जुन' में कार्य करते हुए आपकी लेखन-प्रतिभा और भी विकसित हुई। आपने साहित्य-सृजन का अपना कार्य निरन्तर जारी रखा और उसीके परिणामस्वरूप आपकी 'सुभाषचन्द्र बोस' (1937), 'मौलाना अबुलकलाम आजाद' (1938), तथा 'समाज के शिकार' (1939) नामक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। पहली दो जहाँ जीवनियाँ थीं वहाँ तीसरी पुस्तक में आपने उन पीड़ित, दलित, शोषित व्यक्तियों के चित्र अंकित किए थे, जो समाज की उपेक्षा के शिकार रहते हैं। इनके अतिरिक्त आपने लाला हरदयाल, मैथिलीशरण गुप्त, स्वामी श्रद्धानन्द और खान अब्दुलगफ्फारखाँ की जीवनियाँ भी उन्हीं दिनों तैयार की थीं। यह दुर्भाग्य की बात है कि आपकी ये रचनाएँ अप्रकाशित ही रह गईं। इसी बीच जब आर्यसमाज ने हैदराबाद का सत्याग्रह छेड़ा तो उसमें भी आपने सक्रिय रूप से अपना योगदान दिया था। सत्याग्रह के संचालकों ने आपको जेल न जाने देकर बाहर प्रचार-कार्य करने के लिए रोक लिया। फलस्वरूप आपने उत्तर-भारत के अनेक नगरों में घूम-घूमकर हजारों नवयुवकों को उस सत्याग्रह-संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा दी।

इस बीच यूरोपीय युद्ध का श्रीगणेश हो गया और कांग्रेस ने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में इसका विरोध करने के लिए 'व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा कर दी। रमेशजी भी इसमें भाग लेने से नहीं चूके और 23 फरवरी सन् 1940 को युद्ध-विरोधी नारे लगाकर विजयगढ़ में उन्होंने अपनी गिरफ्तारी दे दी। जेल में जाकर भी आपकी लेखनी चुप नहीं रही और वहाँ पर आपने 'बन्दी' नामक एक हस्तलिखित पाक्षिक पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े दिन बाद आप बाराबंकी चले गए। वहाँ जाकर आपकी कवित्व-प्रतिभा और भी प्रस्फुरित हुई। बाराबंकी में लिखी गई आपकी 'आत्म-परिचय' नामक कविता से वहाँ के सारे बन्दी फड़क उठे थे। 14 मास के कठिन कारावास को भोगकर जब आप लौटे थे तो आपने फिर 'अर्जुन' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। आप जब जेल से लौटे थे तो दिल्ली की जनता ने आपका रेलवे स्टेशन पर अत्यन्त भावपूर्ण स्वागत किया था।

आप तत्परतापूर्वक 'अर्जुन' के सम्पादकीय विभाग में कार्य कर ही रहे थे कि अचानक 8 अगस्त सन् 1942 को 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छिड़ गया और देश में सर्वत्र गिरफ्तारियाँ होनी शुरू हो गईं। रमेशजी भी पीछे कैसे रहते? आपने अपनी 'हम प्रलय मचाने वाले हैं' शीर्षक कविता में 'करो या मरो' का जो उद्घोष किया उससे दिल्ली की पुलिस आतंकित हो गई। दिल्ली में जब यहाँ की पुलिस आपके पीछे पड़ गई तो आप उसकी आँख बचाकर अपनी जन्म-भूमि विजयगढ़ पहुँचे और वहाँ पर प्रचार-कार्य प्रारम्भ कर दिया। अलीगढ़, एटा, मैनपुरी और आगरा जिलों के अनेक स्थानों में घूम-घूमकर आपने क्रान्ति का जो भीषण मन्त्र वहाँ की जनता में प्रचारित किया, उससे उस क्षेत्र की पुलिस भी आपके पीछे पड़ गई। फलस्वरूप 17 जून सन् 1943 को गिरफ्तार करके आपको जेल भेज दिया गया।

आपको जेलर ने बुलाकर स्पष्ट रूप से यह कहा—"तुम पर कई डकैती केस चलाये जायेंगे, यदि तुम उनसे छुटकारा पाना चाहते हो तो मुखबिर बन जाओ।" रमेशजी पर जेल-अधिकारियों की इस धमकी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और आपने निर्भीकतापूर्वक इसका प्रतिवाद किया।

18 जून सन् 1943 को प्रातः से ही आपको हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहनाकर एक अलग कोठरी में बन्द कर दिया गया। सन्ध्या के समय दो पुलिस अफसर आपको उस कोठरी से निकालकर अलग कमरे में ले गए और फिर अगले दिन प्रातःकाल ही यह समाचार सारी जेल में फैल गया कि रमेशजी का शव जेल के कुए में मिला है। इस रहस्यपूर्ण घटना का उत्तर ब्रिटिश नौकरशाही के वे गुर्गे ही दे सकेंगे, जिन्होंने रमेशजी का यह बलिदान लिया था। पुलिस की निर्ममता और क्रूरता की कहानी आपका शव स्वयं ही कह रहा था। आपके शव पर अनेक प्रकार के निशान थे और आपका मुँह टेढ़ा हो गया था। रमेशजी के इस बलिदान को एक कलंकपूर्ण घटना ही कहा जायगा। इस प्रकार 19 जून सन् 1943 को यह स्वाभिमानी पत्रकार बलि-पन्थी बना। आपकी स्मृति में 'शहीद रमेश' नामक जो पुस्तक सन् 1949 में सर्वश्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, बनारसीदास चतुर्वेदी और यशपाल जैन के सम्पादन में प्रकाशित हुई थी वह आपके अमर बलिदान का उज्ज्वल आलेख प्रस्तुत करती है।

डॉ० रमेशचन्द्र जैन 'सारंग'

डॉ० जैन का जन्म 4 दिसम्बर सन् 1933 को आगरा के एक सुशिक्षित मध्यवर्गीय जैन-परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री फूलचन्द्र जैन 'सारंग' भी अच्छे कवि और साहित्यकार थे। आपने एम० ए० (अर्थशास्त्र तथा हिन्दी) करने के उपरान्त आगरा विश्वविद्यालय से 'हिन्दी में समास-रचना का अध्ययन' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी।

शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त आपकी नियुक्ति सर्वप्रथम पोद्दार कालेज, नवलगढ़ (राजस्थान) में हुई थी और उसके उपरान्त आप दिल्ली के 'दयालसिंह कालेज' में हिन्दी-प्रवक्ता बनकर यहाँ आ गए थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'हिन्दी में समास - रचना का अध्ययन', 'बड़ों का बचपन', 'हमारे वैज्ञानिक', 'निबन्ध-सरोवर' और 'साहित्य-सरोवर' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 14 फरवरी सन् 1968 को हुआ था।

श्री रमेशचन्द्र त्रिभुवनदास महेता

श्री महेता का जन्म गुजरात प्रान्त के बलसाड नामक स्थान में 13 जनवरी सन् 1936 को हुआ था और गुजरात प्रदेश के विभिन्न अंचलों में आपने हिन्दी-प्रचार की दिशा में अग्रणी कार्य किया था। बलसाड़ के 'हिन्दी-प्रचार केन्द्र' के कार्य-कर्ताओं में आपका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। हिन्दी-शिक्षण की कक्षाओं और परीक्षाओं की समुचित व्यवस्था करने में आप बहुत निपुण थे। आपकी हिन्दी-निष्ठा अत्यन्त सराहनीय थी।

आपका निधन 26 जून सन् 1979 को हुआ था।

श्री रमेशचन्द्र शास्त्री

श्री रमेशचन्द्र शास्त्री का जन्म उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के 'गंज दारानगर' नामक ग्राम में 14 जनवरी सन् 1915 को हुआ था। यह स्थान गंगा के तट पर है और यहीं

घर विदुर का वह आश्रम है जहाँ परम्परागत अनुश्रुतियों के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने 'दुर्योधन की मेवा त्यागी, साग विदुर घर खायो' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला आतिथ्य स्वीकार किया था। स्वतन्त्रता के उपरान्त अब इस स्थान का पुनरुद्धार एवं विकास कर दिया गया है। शास्त्रीजी की प्रारम्भिक शिक्षा उत्तर प्रदेश के प्रमुख शिक्षणालय 'गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर' में हुई थी और सन् 1933 में आपने वहाँ से स्नातक होकर विधिवत् 'विद्याभास्कर' की उपाधि प्राप्त की थी। गुरुकुल में रहते हुए शास्त्रीजी ने वेद, दर्शन, साहित्य और व्याकरण आदि की सर्वांगीण शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त अपने गुरुजनों के प्रोत्साहन से लेखन का भी अच्छा अभ्यास किया था। आपके गुरुजनों में आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ-जैसे निष्णात विद्वान् और सुलेखक थे।

गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त आप राजस्थान के शाहपुरा राज्य के संस्कृत महाविद्यालय में आचार्य पद पर नियुक्त हुए और वहाँ पर 7 वर्ष तक निष्ठापूर्वक कार्य करने के बाद आप अजमेर आकर वहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगे। साथ ही आपने लेखन-कार्य को भी जारी रखा। सन् 1947 के उपरान्त आपने अपनी साहित्य-साधना को और भी व्यापक किया और विभिन्न विषयों के अनेक ग्रन्थों की रचना की।

सन् 1964 में आपने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की और सन् 1965 में वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर के 'ज्ञान विज्ञान महाविद्यालय' में संस्कृत के प्राध्यापक हो गए। इसके उपरान्त अगस्त 1969 से आप डी० ए० वी० कालेज में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर आसीन हो गए।

आपने अध्यापन-कार्य में संलग्न रहते हुए विभिन्न विषयों के अनेक ग्रन्थों की रचना करने के साथ-साथ सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को भी बढ़ाया था। आपने जहाँ संस्कृत के बहुत से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की वहाँ हिन्दी के 'दयानन्द गुरु पथ' (1938), 'धरा-नंदिनी सीता' (1968), 'महाभिनिष्क्रमण' (1969) तथा 'देव पुरुष गान्धी' (1969) नामक काव्यों का प्रणयन भी किया। आपकी अन्य रचनाओं में 'पंचों में भगवान्' (उपन्यास), 'विश्व का वैदिक आधार', 'ईश्वर क्या नहीं है? और क्या है?', 'भारत में पंचायती राज्य', 'भविष्य का निर्माण करो', 'चारु चरितावली', 'दयानन्द-वाणी', 'छन्द-अलंकार-परिचय' और 'आधुनिक निबन्ध एवं हिन्दी-रचना' आदि के नाम विशेष उल्लेख्य हैं।

आप एक अच्छे शिक्षक, लेखक, वक्ता और कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के संगठक भी थे। आपने राजस्थान की अनेक समाज-सेवी संस्थाओं के साथ सम्बद्ध रहकर अनेक वर्ष तक जो समाजोपयोगी कार्य किए थे, वे सदा-सर्वदा स्मरण किये जायँगे। अनेक वर्ष तक आपने खादी-प्रचार के कार्य में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था।

आपका निधन 21 नवम्बर सन् 1980 को हुआ था।

श्री रमेश वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म 11 अप्रैल सन् 1930 को बाँदा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० और एम० ए० (अँग्रेजी) करने के उपरान्त आप पूर्णतः पत्रकारिता और लेखन में ही रम गए। आपने 'रूपसी' (1951-1953) तथा 'किशोर भारती' (1953) मासिक पत्रिकाओं में सहकारी सम्पादक तथा सम्पादक के रूप में कार्य करने के उपरान्त सन् 1955-56 में लीडर प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले हिन्दी दैनिक 'भारत' में सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य किया था। इसके उपरान्त आप स्थायी रूप से दिल्ली आ गए थे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक यहाँ ही कर्म-रत रहे थे। दिल्ली में वर्माजी कई वर्ष तक राजपाल एण्ड संस तथा प्रभात प्रकाशन आदि प्रकाशन-संस्थाओं में साहित्यिक सलाहकार का कार्य करने

के उपरान्त सन् 1965 में 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के संस्थान की ओर से प्रकाशित होने वाले 'दिनमान' साप्ताहिक में 'विज्ञान-सम्पादक' हो गए थे। सन् 1968-1969 में आपने विज्ञान-सम्बन्धी मासिक पत्र 'अन्तरिक्ष' का सम्पादन भी किया था।

पत्रकारिता के इस दीर्घकालीन कर्म-मय जीवन में अहर्निश संघर्ष-रत रहते हुए आपने साहित्य-निर्माण की दिशा में भी अभिनन्दनीय कार्य किया था। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अभाव को अनुभव करके वर्माजी ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा का प्रयोग इसी दिशा में किया था। आपकी प्रमुख मौलिक रचनाओं में 'सिसकती रात' (उपन्यास), 'जयजयवन्ती', 'धुन्ध' (उपन्यास) तथा 'इतिहास के आँचल से' (एकांकी) के अतिरिक्त 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'घड़ी कैसे बनी', 'संसार का अन्त कैसे होगा', 'सितारों का सफर', 'उड़न तश्तरी—कितना सच, कितना झूठ', 'विकास की कहानी', 'झिलमिलाते सितारे', 'हमारा पड़ौसी चाँद', 'आग हमारी मित्र व शत्रु', 'कम्प्यूटर—मानव का मशीनी मस्तिष्क' तथा 'अन्तरिक्ष की खोज' आदि प्रमुख हैं। विज्ञान-सम्बन्धी उक्त अनेक मौलिक पुस्तकों की रचना करने के साथ-साथ आपने बच्चों में विज्ञान-सम्बन्धी जानकारी बढ़ाने की दृष्टि से कुछ बालोपयोगी वैज्ञानिक उपन्यास भी लिखे थे। ऐसे पुस्तकों में 'सिन्दूरी ग्रह की यात्रा', 'अन्तरिक्ष-स्पर्श', 'आकाश के कीड़े' और 'मृत्यु-निमन्त्रण' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने विज्ञान-सम्बन्धी अनेक अँग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद भी हिन्दी में प्रस्तुत करके प्रशंसनीय कार्य किया था। वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवादों के अतिरिक्त आपने डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राधाकमल मुखर्जी, जेम्स अलैक्जेण्डर और बेंजामिन फ्रेंकलिन आदि कई देशी तथा विदेशी लेखकों की गम्भीर रचनाओं के अतिरिक्त आपने अँग्रेजी से कुछ उपन्यासों के अनुवाद भी किये थे।

आपका निधन स्कूटर-दुर्घटना के कारण 28 नवम्बर सन् 1970 को हुआ था।

राजा रमेशसिंह 'रमेश'

राजा रमेशसिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के कालाकाँकर नामक राज्य में सन् 1875 में हुआ था। आपने अपने पिता राजा रामपालसिंह की परम्परा को जीवित रखने की दृष्टि से 'सम्राट्' नामक पत्र का प्रकाशन कालाकाँकर से किया था। आपके कार्य-काल में कालाकाँकर-राज्य में कवियों और कवि-सम्मेलनों की बहुत धूम रही थी। आप स्वयं भी उस समय के ब्रजभाषा के अच्छे कवियों में गिने जाते थे।

रमेशसिंह जी के निधन के उपरान्त यद्यपि कुछ दिन के लिए कालाकाँकर की साहित्यिक छटा धूमिल हो गई थी, परन्तु बाद में आपके सुपुत्र श्री सुरेशसिंह ने न केवल अपनी पारिवारिक गौरव-सम्पदा को अक्षुण्ण रखा, बल्कि स्वयं भी हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों में अपना उल्लेखनीय स्थान बनाया। आपने कालाकाँकर से 'कुमार' तथा 'रूपाभ' आदि पत्र कविवर सुमित्रानन्दन पन्त तथा नरेन्द्र शर्मा के सहयोग से प्रकाशित किये। राजा रमेशसिंह के शासन-काल में साहित्य की जो अभूतपूर्व समृद्धि हुई थी उसकी रक्षा करके आपके सुपुत्र श्री सुरेशसिंह ने अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा की थी।

श्री रमेशसिंह का निधन सन् 1910 में हुआ था।

श्री रविचन्द्र शास्त्री 'नीरव'

श्री नीरवजी का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के बरौठा नामक ग्राम में सन् 1911 में हुआ था। आपने 'वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' से व्याकरण-शास्त्री तथा आयुर्वेदाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। आपका विवाह अलीगढ़ जनपद के प्रख्यात साहित्यकार पंडित गोकुलचन्द्र शर्मा की ज्येष्ठ पुत्री के साथ हुआ था। हिन्दी के सुप्रसिद्ध गीतकार श्री मधुर शास्त्री आपके अनुज हैं।

आप एक अनुभूति-प्रवण तथा सहृदय कवि थे। आपने बम्बई के फिल्म उद्योग में श्री नरेन्द्र शर्मा के साथ लगभग 10 वर्ष तक एक सफल गीतकार तथा अभिनेता के रूप में कार्य किया था। आपकी 'वेदना', 'सीप', 'मरघट', 'रज-कण', 'विराट नगर' और 'अरमान' नामक रचनाएँ प्रमुख हैं, जिनमें से 'वेदना' और 'सीप' रचनाओं का प्रकाशन हो चुका है। शेष रचनाओं के प्रकाशन की व्यवस्था की जा रही है।

आपका आकस्मिक निधन 28 मार्च सन् 1959 को बम्बई में हुआ था। आपके निधन के उपरान्त बम्बई के तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने आपकी साहित्यिक प्रतिभा से प्रभावित होकर महाराष्ट्र सरकार से अनुरोध करके, जहाँ पर आप रहते थे उस मोहल्ले का नाम 'नीरव गली' रखवाकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया था।

डॉ० रविप्रतापसिंह 'श्रीनेत'

डॉ० श्रीनेत का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह नामक नगर में सन् 1914 में हुआ था। आपने म्यूनिख विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। उन दिनों किसी विदेशी विश्वविद्यालय से यह उपाधि प्राप्त करने वाले आप अपने प्रदेश के पहले व्यक्ति थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा छिन्दवाड़ा में हुई थी। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी और साहित्य, इतिहास, संस्कृति तथा राजनीति में आप प्रायः आकण्ठ डूबे रहते थे। प्रचार और विज्ञापन से सर्वथा दूर रहकर आपने बहुत-से गम्भीर साहित्य का निर्माण किया था। हिन्दी का कदाचित् कोई पत्र ही ऐसा होगा जिसमें आपके लेख आदि न प्रकाशित हुए हों।

अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ आपने बाल-साहित्य के निर्माण से किया था। बाल-साहित्य के सम्बन्ध में आपने उन दिनों जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखे थे वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे और उन दिनों की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी काफी चर्चा हुई थी। आपकी बालोपयोगी रचनाएँ सन् 1933-34 के आस-पास 'बाल सखा', 'खिलौना', 'बालक' तथा 'नट-खट' आदि प्रमुख बाल-मासिकों में महत्त्वपूर्ण स्थान पर छपा करती थीं। बालोपयोगी रचनाओं के अतिरिक्त आपके गम्भीर लेख आज भी आपकी ज्ञान-गरिमा का ज्वलन्त साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द के सम्पादन में प्रकाशित 'हंस' की फाइलों में आपके ऐसे लेख अब भी देखे जा सकते हैं।

आपके अपने जीवन के 4-5 वर्ष मध्यप्रदेश के सरगुजा तथा बस्तर आदि क्षेत्रों में बसे हुए आदिवासियों के बीच में व्यतीत किए थे और उनके सामाजिक जीवन तथा संस्कृति के सम्बन्ध में भी आपने अनेक लेख लिखे थे। आपने परिश्रम पूर्वक इन आदिम जातियों की लोक-कथाओं का जो संकलन किया था, उनमें से बहुत-सी अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आप जहाँ राजनीति, समाज-विज्ञान और बाल-साहित्य के सफल लेखक थे वहाँ उच्च कोटि के अनुवादक एवं जागरूक पत्रकार भी थे। आपने सन् 1939-1940 में जहाँ वालोपयोगी मासिक पत्र 'बाल' और सन् 1942 से सन् 1944 तक 'मराठा राजपूत' एवं दैनिक 'आलोक' (भोपाल) का सफलता-पूर्वक सम्पादन किया था वहाँ अनेक विदेशी कथा-लेखकों की उत्कृष्ट कहानियों को भी हिन्दी में अनूदित किया था।

आपने भोपाल से प्रकाशित 'अवसाद' नामक काव्य-संकलन के सम्पादन तथा प्रकाशन में सहयोग देने के साथ-साथ उसकी एक विस्तृत भूमिका भी लिखी थी। आप साहित्य-सम्बन्धी विभिन्न गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के अतिरिक्त अनेक समाज-सेवी संस्थाओं से भी सम्बद्ध रहे थे। आप जहाँ 'इण्डो सीलोन फ्रेंडशिप एसोसिएशन' के सदस्य थे वहाँ साँची (मध्यप्रदेश) में पालि और बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिए स्थापित 'बुद्धिस्ट कल्चर सेण्टर' के परामर्शदाता भी रहे थे। सन् 1961-62 में आप 'मध्यप्रदेश इतिहास परिषद्' की कार्यकारिणी के सदस्य रहने के अतिरिक्त 'भारत सेवक समाज' के भी संयोजक रहे थे।

आपका निधन 19 मई सन् 1964 को हृदय गति रुक जाने के कारण हुआ था।

डॉ० रांगेय राघव

डॉ० रांगेय राघव का जन्म 17 जनवरी सन् 1923 को आगरा में हुआ था। आपकी माता कन्नड़ और पिता तमिल-भाषी थे। आपका मूल नाम टी० एन० वी० आचार्य था। साहित्य के क्षेत्र में आने पर ही आपने 'रांगेय राघव' नाम अपनाया था। यद्यपि आपकी मातृभाषा तमिल थी, परन्तु हिन्दी के गढ़ आगरा में जन्म लेने के कारण आपके परिवार का संस्कार उत्तर प्रदेश की सामाजिक पृष्ठभूमि पर ही बना था। आपके परिवार के लोग काफी दिन पहले मथुरा में आकर बस गए थे और आज भी भरतपुर के पास वैर नामक स्थान में आपकी जमींदारी है। आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० करने के उपरान्त आपने वहीं से सन् 1948 में 'श्री गुरु गोरखनाथ और उनका युग' विषय पर एक शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। इस ग्रन्थ में 'भारतीय मध्य युग के संधिकाल का मनन' प्रस्तुत किया गया है। अत्यन्त खेद का विषय है कि यह शोध-प्रबन्ध आपकी मृत्यु के बाद ही प्रकाशित हो सका। आपने सन् 1937 से लिखना प्रारम्भ किया था और आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक लिखते रहे।

डॉ० राघव ने अपने अप्रितम पांडित्य और विलक्षण सृजनात्मक प्रतिभा के बल पर हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों की समृद्धि की है। कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, इतिहास और कला आदि विषयों से सम्बन्धित आपकी अनेक महत्त्वपूर्ण और उपादेय कृतियाँ हमारे इस कथन की साक्षी हैं। हिन्दी की युवा पीढ़ी के लेखकों में डॉ० राघव ही ऐसे कलाकार थे जिन्होंने पौर्वात्य और पाश्चात्य ज्ञान-राशि का अद्वितीय समन्वय अपने जीवन, साहित्य और चिन्तन में कर लिया था। जिस रुचि और मनोयोग से आप कविता तथा कहानी लिखते थे, उसीसे वे ज्ञान के साहित्य की भी रचना करते थे। यद्यपि आप काफी लम्बे अरसे तक प्रगतिवादी आन्दोलनों के प्रमुख सूत्रधारों में गिने जाते रहे, किन्तु आपने ऐसा अवसर कभी भी नहीं आने दिया, जब वादों का विवाद आपके कलाकार पर हावी हो गया हो। वह अपने संक्षिप्त साहित्यिक जीवन में 150 के लगभग अमूल्य कृतियाँ हिन्दी-जगत् को प्रदान कर गए हैं, यह क्या कम आश्चर्य की बात है?

आपके जीवन का एक-एक क्षण निरन्तर संघर्ष करते हुए बीता। आप एक साथ 5-7 ग्रन्थों की रचना में तल्लीन रहते थे। यह एक आश्चर्य की ही बात है कि उपन्यास-लेखन में आप जिस तन्मयता से संलग्न रहते थे, उसी तल्लीन भावना से सृजन के प्रेरणा-दीप्त क्षणों में वह इतिहास और राजनीति-जैसे शुष्क विषयों के ग्रन्थों की रचना भी करते थे। कभी ऐसा नहीं हुआ कि राजनीति के बीहड़ पथ पर भटकते-भटकते आपके लेखक ने अपने उपन्यासों के पात्रों की कथा का सूत्र ही छोड़ दिया हो! यह आपकी एकनिष्ठ जागरूकता और सचेतन व्यक्तित्व का ही द्योतक है कि एक ही समय में आपने अनेक कृतियों के लेखन में व्यस्त रहते हुए भी अपने मस्तिष्क की एकान्त एकाग्रता को अक्षुण्ण

बनाए रखा। लेखन के अतिरिक्त यात्राएँ करने का व्यसन भी आपको बहुत था। सन् 1944 के बंगाल के अकाल के दिनों में उस भयंकर विभीषिका से आक्रान्त प्रदेश की पैदल

यात्रा करके जो 'रिपोर्ताज' आपने लिखे थे, उनके कारण सर्वप्रथम हिन्दी के अनेक साहित्यकारों का ध्यान डॉ० राघव की ओर गया था और जब वे 'हंस' में प्रकाशित होने प्रारम्भ हुए तो साहित्यिक क्षेत्र में एक नवीन चेतना के उदय का आभास हुआ था। बाद में तो हिन्दी में 'रिपोर्ताज'-लेखन की परम्परा-सी चल पड़ी। हमारे विचार में डॉ० रांगेय राघव उन साहित्यकारों में हैं, जिन्हें हिन्दी-साहित्य की इस सर्वथा नवीन विधा के प्रवर्त्तकों में माना जाना चाहिए।

सन् 1946 में जब आपका सबसे पहला उपन्यास 'घरौंदे' प्रकाशित हुआ तो उसने भी अपनी विशिष्ट लेखन-शैली और कथावस्तु के कारण हिन्दी के पाठकों और अध्येताओं को अपनी ओर आकृष्ट किया। 'घरौंदे' के कारण आपको जो ख्याति मिली उसका ही यह प्रभाव था कि उपन्यास-लेखन की दिशा में डॉ० राघव विशेष रूप से अग्रसर हुए। आपने 50 से ऊपर उपन्यास लिखे हैं। डॉ० राघव ने अपने उपन्यासों में ऐसे-ऐसे कथा-सूत्रों को उठाया है जिनकी ओर साधारणतः हमारे लेखकों का ध्यान ही नहीं गया था। उनके 'भारती के सपूत', 'लोई का ताना', 'रत्ना की बात', 'देवकी का बेटा', 'यशोधरा जीत गई', 'लखमा की आँखें', 'धूनी और धुआँ' तथा 'मेरी भव बाधा हरो' आदि उपन्यास इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इन उपन्यासों में आपने साहित्यिक और सांस्कृतिक महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को उपन्यास के रस में डुबोकर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। ये उपन्यास क्रमशः भारतेन्दु, कबीर, तुलसी, कृष्ण, बुद्ध, विद्यापति, गोरखनाथ और बिहारी के सम्बन्ध में लिखे गए हैं।

आपके अन्य प्रमुख उपन्यासों में 'मुर्दों का टीला', 'सीधा-सादा रास्ता' और 'कब तक पुकारूँ' आदि ऐसे हैं, जिन्होंने डॉ० राघव के कथाकार को हिन्दी-पाठकों के समक्ष अत्यन्त सबल रूप से उपस्थित किया है। यों आपने सामाजिक उपन्यास ही अधिक लिखे हैं, किन्तु राजनीतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भी अपने अभीष्ट का प्रतिपादन करने में आपको अभूतपूर्व सफलता मिली है।

कहानी-लेखन के क्षेत्र में भी डॉ० रांगेय राघव किसी से पीछे नहीं रहे। वास्तव में अपने साहित्यिक जीवन में पदार्पण करने से पूर्व आपने कहानियाँ ही अधिक लिखी थीं। 'देवदासी', 'तूफानों के बीच', 'साम्राज्य का वैभव', 'जीवन के दाने', 'अधूरी सूरत', 'समुद्र के फेन', 'अंगारे न बुझे', 'इंसान पैदा हुआ' और 'पाँच गधे' आदि आपकी कहानियों के संग्रह हैं। 'गदल' शीर्षक आपकी अकेली कहानी आपको एक कथाकार के रूप में अमर रख सकती है। कविता-लेखन की दिशा में भी आपकी 'अजेय खण्डहर', 'पिघलते पत्थर', 'राह के दीपक', 'रूप की छाया' और 'मेधावी' आदि कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नाटक और एकांकी भी आपने कई लिखे, और खूब जमकर लिखे। आपका 'विरूढक' नाटक ऐसा ही है। 'इन्द्र-धनुष' नामक पुस्तक में आपके एकांकी संकलित हैं।

डॉ० राघव द्वारा लिखित शास्त्रीय और व्यावहारिक समीक्षा के ग्रन्थ आपकी गहन अन्वेषी प्रवृत्ति और सूक्ष्मदर्शी दृष्टि के परिचायक हैं। आपकी ऐसी कृतियों में 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार', 'आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली', 'काव्य, कला और शास्त्र', 'काव्य, यथार्थ और प्रगति', 'समीक्षा और आदर्श', 'महाकाव्य-विवेचन', 'प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड' और 'तुलसीदास का कथा-शिल्प' आदि विशेष रूप से परिगणनीय हैं। इतिहास-जैसे शुष्क विषय पर भी आपकी लेखनी नहीं रुकी। 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास' तथा 'भारतीय-चिन्तन'-जैसे ग्रन्थ आपके गम्भीर इतिहास-ज्ञान के परिचायक हैं। इनमें से 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास' नामक ग्रन्थ पर तो आपको कई पुरस्कार भी प्राप्त हुए थे। इसी ग्रन्थ पर आपको सन् 1951 में 'हरजीमल डालमिया पुरस्कार' मिला था।

हिन्दी में कदाचित् आप ही सबसे पहले लेखक थे जिन्होंने

'शेक्सपीयर' के प्रायः सभी नाटकों का सरल और सुबोध शैली में अनुवाद करके हिन्दी के साहित्य-भण्डार की अभिवृद्धि की। यही नहीं, संस्कृत के अमर ग्रन्थों के अनुवाद प्रस्तुत करने की दिशा में भी आपने कम उल्लेखनीय कार्य नही किया। आपके 'ऋतु संहार', 'मेघदूत', 'दशकुमारचरित', 'मृच्छकटिक' और 'मुद्राराक्षस' आदि ग्रन्थों के अनुवाद हमारे साहित्य की अमूल्य निधि है। आपके द्वारा प्रस्तुत 'गीत गोविन्द' का अनुवाद भी आपकी समर्थ अनुवाद-शक्ति का परिचायक है। खेद की बात है कि हिन्दी का यह अमर साहित्यकार अपने जीवन-काल मे 'ऋतु संहार' के अनुवाद को प्रकाशित रूप में नही देख सका। केवल अनुवाद में ही आपने परिश्रम नही किया था, बल्कि इस अनुवाद के साथ प्रकाशित होने वाले चित्र भी आपने ही बनाए थे। डॉ० रांगेय राघव उच्चकोटि के साहित्यकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट चित्रकार भी थे।

रांगेय राघव कोरे उपन्यासकार, कवि, नाटककार, कहानीकार, आलोचक और चित्रकार ही नही थे, आप भारतीय दर्शन, धर्म, राजनीति और समाज-शास्त्र के भी पारंगत विद्वान् थे। आपकी 'संस्कृति और समाज-शास्त्र' (दो भागों मे) 'अपराध शास्त्र', 'सामाजिक समस्याएँ और विधान', सामाजिक संस्थाएँ और रीति-रिवाज' तथा 'संस्कृति और मानव-शास्त्र' आदि कृतियाँ आपके इस कथन की पुष्टि करती हैं। हिन्दी के इस वरद पुत्र का निधन 12 सितम्बर सन् 1962 को बम्बई के 'टाटा मेमोरियल अस्पताल' में हुआ था। वहाँ पर आप कैंसर का इलाज करा रहे थे।

स्वामी राघवाचार्य

स्वामी राघवाचार्य का जन्म 15 नवम्बर सन् 1916 को उत्तर प्रदेश के बरेली नगर में हुआ था। आज जब 3 वर्ष के ही थे तब आपके पिता श्री वेंकटाचार्य का देहान्त हो गया था और आपका लालन-पालन आपकी माता सुन्दरम्मा ने किया था। बी० ए०, एल-एल० बी० तक की शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त आपने 22 वर्ष की आयु में अयोध्या की 'जय लक्ष्मी' नामक कन्या से विवाह किया था। 3 वर्ष तक अत्यन्त सफलतापूर्वक वकालत करने के उपरान्त आप पूर्णतः धार्मिक क्षेत्र में अवतरित हो गए थे। मूलतः तमिल-भाषी होते हुए भी आपके परिवार में संस्कृत तथा हिन्दी के प्रति पूर्ण प्रेम था।

धार्मिक क्षेत्र को अपना लेने के उपरान्त आपने जहाँ 'आचार्य पीठ' की स्थापना करके उसकी ओर से 'आचार्य', 'श्री वैष्णव सम्मेलन' तथा 'बाल मुकुन्द सन्देश' नामक पत्रों का सफलतापूर्वक सम्पादन किया वहाँ 'बालमुकुन्द ग्रन्थ-माला' के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किए। भारतीय इतिहास के सम्बन्ध मे आपका दृष्टिकोण सर्वथा नवीन तथा अनन्य था। अपने सिद्धान्तो एवं मान्यताओं का प्रचार करने की दृष्टि से आपने जो अनेक ग्रन्थ लिखे थे उनमें 'सांख्य दर्शन', 'जीवन का लक्ष्य', 'गीतोपदेश', 'भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन', 'न्याय दशक', 'वेदान्त देशिक' तथा 'शिव तत्त्व विवेचन' उल्लेख्य हैं।
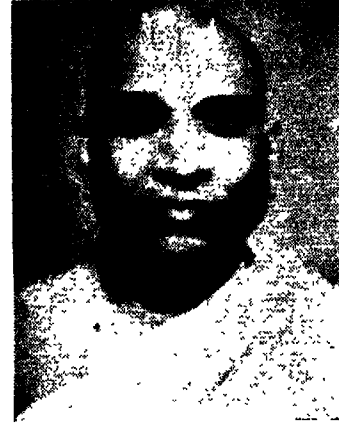
'आचार्य पीठ' के द्वारा आपने जहाँ देश में अपनी सांस्कृतिक विचार-धारा के प्रचार का अद्भुत कार्य किया वहाँ 'संस्कृत परिषद्' की स्थापना करके उसके माध्यम से संस्कृत-प्रचार का देश-व्यापी कार्य भी आपने किया था। इसके अतिरिक्त आपने 'श्रौत-स्मार्त्त-मण्डल' तथा 'भारतीय अनुशीलन प्रतिष्ठान' नामक संस्थाओं की स्थापना भी की थी। आप जहाँ गम्भीर प्रकृति के उत्कृष्ट लेखक थे वहाँ सर्व-धर्म-समन्वय की भावना के भी अद्वितीय प्रचारक थे। यद्यपि आप रामानुजाचार्य की गद्दी पर अधिष्ठित थे और नियमानुसार छत्र, चँवर तथा स्वर्ण-सिंहासन का उपयोग कर सकते थे, किन्तु बाहरी ठाठ-बाट से घृणा होने के कारण आपने वैसा नही किया।

आपने भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए जहाँ अपनी

वाणी का उन्मुक्त भाव से प्रयोग किया वहाँ अपनी लेखनी को भी इस दिशा में सर्वात्मना संलग्न रखा। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक ग्रन्थ लिखने के साथ-साथ आपने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि भी लिखे थे। आपके ऐसे महत्त्वपूर्ण विचार आज भी 'कल्याण', 'सन्मार्ग', 'सिद्धान्त', 'राष्ट्रधर्म', 'पांचजन्य', 'ज्ञान भारती' और 'विरक्त' आदि पत्रों में देखे जा सकते हैं। आप 'श्रीमद्-भागवत', 'वाल्मीकि रामायण' तथा 'महाभारत' के अतिरिक्त अनेक धर्म-ग्रन्थों का अद्वितीय ज्ञान रखने के साथ-साथ ईसाई, इस्लाम तथा आर्यसमाज के सिद्धान्तों के भी मर्मज्ञ थे।

आपका निधन 10 अप्रैल सन् 1966 को 50 वर्ष की आयु में अकस्मात् हृदय-गति रुक जाने के कारण हुआ था।

श्री राजकिशोरसिंह

श्री सिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के असना नामक ग्राम के एक मध्यवर्गीय किसान-परिवार में सन् 1915 में हुआ था। अपने शैशव-काल से ही आपको प्रख्यात पत्रकार श्री सुरेन्द्र बालूपुरी का सत्संग मिल गया था और आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उन्हींके निरीक्षण में हुई थी। यद्यपि घर वाले आपको घर के काम-काज में ही लगाना चाहते थे, किन्तु श्री बालूपुरी के प्रोत्साहन से आप शिक्षा-प्राप्ति में अग्रसर हुए और आप बलिया से मैट्रिक करके आगे की पढ़ाई के लिए लखनऊ चले गए। शिक्षा-प्राप्ति के इस काल में आपका सम्पर्क आचार्य नरेन्द्रदेव और डॉ० सम्पूर्णानन्द से हो गया था।

जब आप लखनऊ में पढ़ ही रहे थे कि देश में सन् 1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' शुरू हो गया और आप भी उसमें कूद पड़े। जेल में जाकर आपकी विचार-धारा में ऐसा परिवर्तन हुआ कि आप उग्र क्रान्तिकारी आन्दोलन के समर्थक हो गए। जेल से छूटने के उपरान्त आपने कलकत्ता जाकर बी० कॉम तथा एल-एल० बी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं और विधिवत् पत्रकारिता को अपना लिया तथा 'लोकमान्य' में कार्य करने लगे। बाद में जब सन् 1948 में जब कलकत्ता से 'सन्मार्ग' का प्रकाशन हुआ तब आप उसमें चले गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उसीसे सम्बद्ध रहे। इसके अतिरिक्त आपने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'प्रगति', 'अधिकार', 'संघर्ष', 'छाया', 'विश्वमित्र', 'विश्वबन्धु' तथा 'गल्प भारती' आदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में भी अपना उल्लेखनीय सहयोग दिया था।

पत्रकार के नाते आपने सन् 1956 में हैलसिंकी में हुए 'अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार सम्मेलन' में भारत का प्रतिनिधित्व किया था। पूर्वांचल के कदाचित् आप ही अकेले ऐसे पत्रकार थे जिन्होंने यूरोप, एशिया, अरब, रूस, चीन, कोरिया आदि का व्यापक भ्रमण किया था। आप कलकत्ता के 'भोजपुरी समाज' और 'भारत-मारीशस मैत्री परिषद्' के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष होने के अतिरिक्त नगर की विभिन्न संस्थाओं के पोषक तथा सहयोगी भी रहे थे।

आप उत्कृष्ट पत्रकार होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक भी थे। आपकी 'दिल्ली चलो', 'जीवन', 'भूख का ताण्डव', 'युद्धोत्तर भारत', 'रोटी' और 'परिवर्तन' आदि रचनाएँ इसकी साक्षी हैं। अनेक सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहने के अतिरिक्त आप बड़ा बाजार कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष भी रहे थे।

आपका निधन 12 जून सन् 1978 को हुआ था।

श्रीमती राजकिशोरी मेहरोत्रा

श्रीमती मेहरोत्रा का जन्म सन् 1906 में फर्रुखाबाद जिले के एक ग्राम में हुआ था और सन् 1918 में श्री परशुराम मेहरोत्रा से आपका विवाह केवल 12 वर्ष की आयु में ही हो

गया था। जब आपके पति महात्मा गान्धी से प्रभावित होकर 'असहयोग आन्दोलन' में कूद पड़े तब आप भी गान्धीजी के साबरमती आश्रम में चली गईं।

जब सन् 1926 में श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में कानपुर में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था तब आपने वहाँ 'स्वयं सेविका' के रूप मे कार्य किया था। आपने स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू की सहधर्मिणी श्रीमती कमला नेहरू के अनुरोध पर लगभग 4 वर्ष तक प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'महिलोपयोगी' मासिक पत्र 'स्त्री दर्पण' का सम्पादन भी किया था।

आपका निधन सन् 1928 मे मेरठ में हुआ था।

श्रीमती राजकुमारी श्रीवास्तव

श्रीमती राजकुमारीजी का जन्म सन् 1910 मे जबलपुर (मध्यप्रदेश) मे हुआ था। आप जबलपुर के प्रख्यात नागरिक बैरिस्टर श्री देवीप्रसाद श्रीवास्तव की छोटी बहन थी और आपका विवाह मैसूर प्रदेश के 'इण्टर यूनिवर्सिटी बोर्ड' के सेक्रेटरी श्री जयन्तीप्रसाद विद्यार्थी मे सन् 1930 मे हुआ था और सन् 1936 में आप विधवा हो गई थी। श्री विद्यार्थी का निधन एक ट्रक-स्कूटर - दुर्घटना में हुआ था।

मैसूर में रहते हुए भी आपने राष्ट्र-भाषा के प्रचार-कार्य में उल्लेखनीय सहयोग दिया था। आपको अपने शैशव-काल से ही अच्छा साहित्यिक वातावरण मिला था। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने आपकी काव्य-प्रतिभा को प्रस्फुटित करने में जहाँ अपनी प्रमुख भूमिका निबाही थी वहाँ राजकुमारी जी की बड़ी बहन श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव का योगदान भी इसमें कम नहीं था। आपकी रचनाओं में जहाँ राष्ट्रीयता का उत्कृष्ट उद्घोष देखने को मिलता है वहाँ नारी-सुलभ वेदना के भी दर्शन होते हैं।

आपकी रचनाएँ देश के जिन प्रमुख हिन्दी पत्रों में प्रकाशित हुआ करती रहती थीं उनमें 'आजकल', 'हिन्दुस्तान', 'सुधा' तथा 'माधुरी' आदि प्रमुख है। आपके निधन के उपरान्त आपकी बड़ी बहन श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव (धर्मपत्नी स्व० श्री हरिहरनाथ शास्त्री) के प्रयास से आपकी रचनाओ का 'साकार प्रश्न' नामक जो संकलन प्रकाशित हुआ है वह आपकी बहुमुखी रचना-प्रतिभा का सुपुष्ट प्रमाण है।

5 नवम्बर सन् 1962 को आपका निधन ट्यूमर के कारण हुआ था।

श्री राजकृष्ण गुप्त 'झपसट बनारसी'

श्री 'झपसट बनारसी' का जन्म उत्तर प्रदेश के वाराणसी नगर मे सन् 1912 में हुआ था। आप नगर के हास्य-कवियो में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। आपकी रचनाएँ 'गरम चाय' नामक संकलन में प्रकाशित हुई है।

आपका निधन सन् 1950 मे हुआ था।

श्री राजदेव झा

आपका जन्म सन् 1888 में बिहार के दरभंगा जिले के भखराइन (मधेपुर) नामक ग्राम में हुआ था। जब आप पन्द्रह वर्ष के ही थे कि आपके पिता का देहावसान हो गया और आपका अध्ययन बीच में ही छूट गया। अर्थाभाव के कारण आप विधिवत् किसी विद्यालय मे नही पढ़ सके। फलतः घर पर ही रहकर आपने व्याकरण, साहित्य, पिंगल और ज्योतिष आदि का गहन अध्ययन किया और धीरे-धीरे कविताएँ तथा लेख आदि लिखे। आप हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, मैथिली और उर्दू आदि भाषाओं में भी रचनाएँ किया करते थे।

आपका 'बाल्य गीत गोविन्द' नामक गीति-नाट्य बहुत प्रसिद्ध है। आपकी प्रकाशित रचनाओं में उक्त नाटक के अतिरिक्त 'ब्राह्मण शुद्धि सभा', 'कर्ण कायस्थ कुरीतिवर्णन' तथा 'भविष्यवाणी' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1950 में हुआ था।

श्री राजबहादुर लमगोड़ा

श्री लमगोड़ाजी का जन्म 20 दिसम्बर सन् 1886 को उत्तरप्रदेश के फतहपुर नगर के खेलदार मोहल्ले में एक मध्यम श्रेणी के कायस्थ-परिवार में हुआ था। आपके पिता मुन्शी दयाशंकर लमगोड़ा माल विभाग में कानूनगो थे और आपके पूर्वज मुगल-सम्राट् हुमायूं तथा अकबर के दरबारी थे। इस उपलक्ष्य में आपके परिवार को मुगल-सम्राटों द्वारा कुछ भूमि तथा सनद प्राप्त हुई थी। आपके परिवार के साथ 'लमगोड़ा' शब्द कैसे जुड़ा? इस सम्बन्ध में यह किंवदन्ती है कि एक बार जब हुमायूं अपनी सेना के साथ घोड़े पर सवार होकर ग्राण्ड ट्रंक रोड से निकला तब अचानक घोड़े के भड़क जाने से जब वह गिर रहा था तब लम्बे कद वाले आपके एक पारिवारिकजन ने उसको अपने हाथों का सहारा देकर गिरने से सँभाला था। इसलिए 'हुमायूं' ने उन्हे 'लमगोड़ा' की संज्ञा दी।

श्री लमगोड़ा अपने छात्र-जीवन से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे और आपने हाई स्कूल से लेकर एम० ए० तथा एल-एल० बी० तक की सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में ससम्मान उत्तीर्ण की थीं। आगरा विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में आपका स्थान विश्वविद्यालय में तीसरा था। कानपुर के सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव आपके छात्र-जीवन के साथी थे। श्री लमगोड़ाजी कायस्थ-परिवार में जन्म लेकर भी कट्टर वैष्णव, मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा 'रामचरितमानस' के अनन्य भक्त थे। वकालत के पेशे में रहते हुए भी आपने अपने स्वाध्याय के बल पर 'राम-चरित' का ऐसा गहन-गम्भीर अध्ययन किया था कि अपने शोधपूर्ण लेखों के कारण आप थोड़े ही दिनों में उच्चकोटि के 'मानस-मर्मज्ञ' माने जाने लगे थे। राम-चरित तथा रामायण से सम्बन्धित आपके विद्वत्तापूर्ण लेख 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा' तथा 'कल्याण' आदि विभिन्न उच्चकोटि के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करते थे।

अयोध्या के सुप्रसिद्ध सन्त श्री अंजनिनन्दनशरण से आपने दीक्षा ग्रहण की थी और अपने जीवन को सर्वात्मना 'राम-नाम-गुण-गान' में ही लगा दिया था। स्वतन्त्रता के उपरान्त उत्तर प्रदेश सरकार के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने आपको 'रामचरितमानस'-सम्बन्धी शोध के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश शासन से 100 रुपए मासिक की पेंशन स्वीकृत की थी। आपकी यह हार्दिक आकांक्षा थी कि आपके जीवन का अन्तिम समय भगवान् राम की जन्म-स्थली अयोध्या में ही व्यतीत हो। उत्तर प्रदेश सरकार ने आपकी यह मनोकामना पूरी कर दी थी। अनेक शोधपूर्ण लेखों के अतिरिक्त आपने भक्तिरस से परिपूर्ण कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं, जो उन दिनों प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'नई कहानियाँ' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं।

आपका निधन 62 वर्ष की अवस्था मे आपकी इच्छानुसार 28 अप्रेल सन् 1949 को अयोध्या में हुआ था।

ठाकुर राजबहादुरसिंह

ठाकुर राजबहादुरसिंह का जन्म 10 दिसम्बर सन् 1903 को उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर नगर में हुआ था। बी० ए० करने के उपरान्त आप असहयोग-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण जेल चले गए थे। जेल से लौटने के उपरान्त आपने सर्वप्रथम दिल्ली से प्रकाशित होने वाले

दैनिक 'वीर अर्जुन' से पत्रकारिता प्रारम्भ की तथा कुछ दिन 'वेंकटेश्वर समाचार' में कार्य करने के उपरान्त आप 'नवभारत टाइम्स' के बम्बई-संस्करण के सम्पादक रहने के साथ-साथ कुछ दिन तक उसके दिल्ली-संस्करण के भी सम्पादक रहे। भारतीय विद्या भवन, बम्बई की ओर से प्रकाशित हिन्दी पत्रिका 'भारती' का सम्पादन करने के अतिरिक्त आपने गान्धी स्मारक निधि के पत्र 'गान्धी मार्ग' का भी सम्पादन-कार्य कई वर्ष तक किया था।
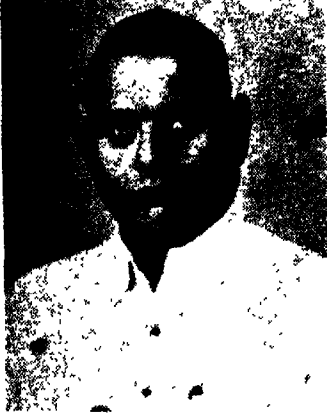
आप मूलत: मसिजीवी साहित्यकार थे और आपका अधिकाश जीवन स्वतन्त्र लेखन में ही व्यतीत हुआ था। आपने जहाँ अनेक साहित्यिक उपन्यासों की रचना की थी वह कहानी-लेखन के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। बहुत-सी अँग्रेजी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करने के अतिरिक्त आपने अन्य अनेक पुस्तकें भी सम्पादित की थी। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'जब आकाश रो पड़ा', 'कलाकार का प्रेम', 'आस-निरास' (उपन्यास), 'खून की होली' तथा 'वज्रघोष' (कहानियाँ), 'लेनिन और गान्धी', 'टालस्टाय की डायरी', 'रूस का पंचवर्षीय आयोजन', 'जीवन पथ', 'सोफिया', 'पितृ भूमि', 'देहात की सुन्दरी', 'चार क्रान्तिकारी', 'विफल विद्रोह', 'रानी की अँगूठी', 'यौवन की आँधी', 'संसार के महान् साहित्यिक', 'प्रवासी की कहानी', 'सन्त तुकाराम', 'समर्थ गुरु रामदास', 'स्वामी रामतीर्थ', 'स्वामी विवेकानन्द' (अनुवाद) तथा 'गान्धीजी की सूक्तियाँ' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने बालोपयोगी साहित्य-रचना की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। आपकी ऐसी रचनाओं की संख्या लगभग 65 हैं। आप 'त्रिदण्डी' नाम से भी लिखा करते थे।

आपका निधन 6 अगस्त सन् 1969 को बम्बई में हुआ था।

श्रीमती राजरानी देवी

श्रीमती राजरानी देवी का जन्म अगस्त सन् 1869 में मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जनपद के पिपरिया नामक ग्राम में हुआ था। आपका विवाह 13 वर्ष की आयु में नरसिंहपुर-निवासी बा० लक्ष्मीप्रसाद के साथ हुआ था। आप हिन्दी के ख्याति-प्राप्त कवि और एकांकीकार डॉ० रामकुमार वर्मा की माताजी थी। क्योंकि वर्माजी के पिता सरकारी नौकरी में थे, अत: उनकी माताजी भी उनके साथ मध्यप्रदेश के विभिन्न नगरों में रही थी। आपकी कविता में भारतेन्दु-युगीन राष्ट्रीय चेतना और समाज की दुर्दशा के प्रति चिन्ता के भाव स्थल-स्थल पर अभिव्यक्त हुए है। एक स्थल पर भारत की महिलाओं को सम्बोधित करते हुए आपने यह ठीक ही लिखा है :

देवियो, क्या पतन अपना देखकर,
नेत्र से आँसू निकलते हैं नही।
भाग्यहीना क्या स्वय को लेखकर,
पाप में कलुषित हृदय जलते नही ।।

जिस प्रकार पुरुष कवियों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कविता में नए युग का सूत्रपात किया था उसी प्रकार महिला कवयित्रियों में भी आपने वही मार्ग अपनाया था। उन दिनों की कवियित्रियाँ जिस काव्य-जगत् में विचरण किया करती थी श्रीमती राजरानी का ससार उन सबसे भिन्न था।

आपकी 'प्रमदा प्रमोद' और 'सती संयुक्ता' नामक दो कविता-पुस्तकें प्रकाशित हुई थी। आपकी रचनाएँ 'चाँद', 'मनोरमा' और 'उषा' आदि प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थी।

आपका निधन 27 अप्रैल सन् 1928 को हुआ था।

महाराजा श्री राजसिंह

महाराजा श्री राजसिंह का जन्म मध्यप्रदेश के मालवा अंचल के सीतामऊ नामक स्थान में सन् 1783 में हुआ था। आपका सीतामऊ के राज-परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। आप हिन्दी के अच्छे कवि थे, किन्तु आपके केवल 2 छन्द ही प्राप्त हो सके हैं। ये छन्द सीतामऊ के महाराजकुमार स्व० श्री रत्नसिंह 'नटनागर' की प्रख्यात कृति 'नटनागर विनोद' की भूमिका मे दिये गए हैं, जिसका प्रकाशन सन् 1935 में हुआ था।

आपका निधन सन् 1867 में हुआ था।

श्री राजा दुबे

श्री राजा दुबे का जन्म 13 जुलाई सन् 1932 को मध्यप्रदेश के सागर नामक नगर में हुआ था। सागर विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त आप सन् 1958 मे हैदराबाद (दक्षिण) से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'कल्पना' के सम्पादकीय विभाग मे चले गए थे। उससे पूर्व आपने सागर से 'समवेत' नामक एक काव्य-संकलन सम्पादित और प्रकाशित करके समसामयिक लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था।

लगभग 1 वर्ष तक 'कल्पना' मे कार्य करने के उपरान्त आप हैदराबाद के प्रमुख शिक्षा-संस्थान 'विवेकवर्धिनी महाविद्यालय' में 'सायंकालीन कक्षाओं' मे अध्यापक का कार्य करने लगे थे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वहीं मे सम्बद्ध रहे थे। वहाँ पर कार्य करते हुए भी आपने दुबारा 'कल्पना' के सम्पादन में सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1962 में आपने अपनी एक छात्रा कुमारी सरला दीक्षित से विवाह भी कर लिया था।

आपकी रचनाओं का संकलन 'एक हस्ताक्षर और' नाम से नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद से हुआ था। इस संकलन का मुखपृष्ठ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार श्री मकबूल फिदा हुसैन ने तैयार किया था। राजा दुबे ने नव-लेखन के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट रचना-शैली का जो परिचय दिया था वह कालान्तर में आपके रंगमंच-प्रेम में रूपायित हुआ और आपने कई नाटकों का मंचन भी कराया था। कुछ मित्रों के सहयोग से आपने 'अंटार्कटिका' नामक पोस्टर-पत्रिका भी प्रकाशित की थी।

आप प्रतिवर्ष अपने ग्रीष्मकालीन अवकाश के दिन सागर में पारिवारिकजनों के साथ ही बिताया करते थे और अपने जीवन के अन्तिम 3 वर्ष तो आपने सागर के होटलों के कमरों में ही व्यतीत किए थे। अपनी ऐसी ही यात्रा के प्रसंग मे जब आप सन् 1978 में सागर गए हुए थे तब 26 जून को वहाँ के एक होटल की सीढ़ियों से उतरते हुए फिसल जाने के कारण उपचार की सहायता मिलने से पूर्व ही दम तोड़ गए।

श्री राजाराम शास्त्री

श्री राजाराम शास्त्री का जन्म सन् 1867 में अविभाजित पंजाब के गुजरानवाला जनपद के किला मिहांसिह नामक ग्राम में हुआ था। ग्राम मे कोई पाठशाला न होने के कारण आपके पिता पंडित सूबामलजी ने आपको 6 वर्ष की आयु में स्वयं घर पर ही पढ़ाना प्रारम्भ किया था। प्राइमरी कक्षाओं मे छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाले उन दिनों आप अकेले ही छात्र थे। इन्हीं दिनों एक अँग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवक को ईसाई धर्म स्वीकार करता देखकर आपने अँग्रेजी भाषा के अध्ययन को तिलांजलि दे दी और संस्कृत के अध्ययन में लग गए। 16 वर्ष की अल्पायु में ही आपका विवाह हो गया।

संस्कृत का अध्ययन करने के दिनों में ही आपने महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ पढ़ा; जिससे आपकी रुचि वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करने में हो गई। उस समय तक आपने व्याकरण, काव्य और न्याय-

दर्शन का अध्ययन कर लिया था। तदुपरान्त शंकर भाष्य सहित उपनिषदों को पढ़कर आप 'महाभाष्य' के अध्ययन के लिए जम्मू चले गए। सन् 1889 में घर लौटकर आपने एक 'हिन्दी पाठशाला' की स्थापना की और फिर अमृतसर जाकर वहाँ के आर्यसमाज के स्कूल में 2 वर्ष तक अध्यापन-कार्य किया। सन् 1892 में डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के तत्कालीन प्रिंसिपल महात्मा हंसराजजी ने आपको वहाँ बुलाकर संस्कृत का अध्यापक नियुक्त कर दिया। अगस्त 1894 में आपको कालेज की ओर से 60 रुपए की विशेष छात्रवृत्ति देकर 'मीमांसा दर्शन' तथा अन्य शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करने के लिए काशी भेजा गया था।

काशी जाकर आपने महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री तथा भोलानाथ सोमैया आदि विद्वानों से संस्कृत वाङ्मय का सर्वांगीण अध्ययन किया और सन् 1901 मे आप फिर लाहौर जाकर विधिवत् कार्य करने लगे। इन्हीं दिनों आपने 'आर्ष ग्रन्थावली' नाम से समस्त संस्कृत ग्रन्थों का वैदिक दृष्टि से प्रकाशन प्रारम्भ किया और इस पुस्तकमाला के लिए आपने अनेक ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद किए। आपके द्वारा अनूदित तथा मौलिक ग्रन्थों की संख्या 100 से ऊपर है। इन ग्रन्थों के विषय वेद, निरुक्त, दर्शन तथा उपनिषदों से सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त आपने 'वाल्मीकि रामायण' और 'श्रीमद्भगवद्गीता' के अनुवाद भी किए थे। आपकी इतिहास तथा जीवन-चरित-सम्बन्धी रचनाओं में 'सूर्यवंश', 'नल दमयन्ती', 'द्रोपदी का पति', 'शंकराचार्य का जीवन-चरित और उनकी शिक्षा', 'आर्य जीवन', 'दिव्य जीवन' तथा 'शास्त्र रहस्य' आदि प्रमुख है। व्याकरण और शब्द-कोश-रचना के क्षेत्र में भी आपकी देन अभूतपूर्व थी। आपने जहाँ 'राज व्याकरण', 'बाल व्याकरण', 'शब्द शास्त्र' और 'संस्कृत प्रवेशिका' आदि ग्रन्थों की रचना की थी वहाँ 'पंजाबी-संस्कृत शब्दकोश' तथा 'राजकोश' का प्रणयन भी किया था। आपके द्वारा विरचित अनेक ग्रन्थ पंजाब विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं में 'पाठ्य-पुस्तक' के रूप में भी निर्धारित रहे थे।

वैदिक साहित्य के निर्माण की दिशा में आपकी सेवाएँ इसलिए भी उल्लेखनीय हैं कि आपकी 'वैदिक स्तुति प्रार्थना' तथा 'आर्य पंच महायज्ञ पद्धति', 'उपदेश कुसुमांजलि' तथा 'उपदेश सप्तक' आदि रचनाओं से आर्य-सिद्धान्तों का पर्याप्त प्रचार हुआ है। आपकी प्रतिभा तथा योग्यता का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपके 'अथर्ववेद भाष्य', 'निरुक्त भाष्य', 'बाल व्याकरण', 'श्रीमद्भगवद्-गीता' तथा 'वाल्मीकीय रामायण' आदि ग्रन्थ विभिन्न संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हुए थे। आपके वैदिक वाङ्मय-सम्बन्धी वैदुष्य की आशंसा डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, महामहो-पाध्याय पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री तथा पंडित चारुदेव शास्त्री आदि विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से की थी। आप प्रबुद्ध तार्किक एवं कुशल वक्ता भी थे।

आपका निधन 18 अगस्त सन् 1948 को हुआ था।

पंडित राजेन्द्र

पंडित राजेन्द्र का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के अतरौली नामक नगर में सन् 1896 में हुआ था। आप विचारों से राष्ट्रीयता के घनघोर उपासक और व्यवहार में आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनन्य अनुयायी थे। आप जहाँ एक उच्चकोटि के समाज-सेवक थे वहाँ अच्छे लेखक भी थे। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'भारत में मूर्ति पूजा' (1957), 'ऋषि दयानन्द के पुण्य संस्मरण' (1958), 'गीता विमर्श' (1959), 'गीता की पृष्ठभूमि' (1962), 'सनातन धर्म' (1966), 'आर्य संस्कृति के तीन प्रतीक' और 'ब्राह्मण समाज के तीन महापातक' उल्लेखनीय हैं। पंडितजी की विचार-पद्धति अत्यन्त तर्क-पुष्ट और भाषा-शैली प्रांजल है।

पंडितजी बड़े कर्मनिष्ठ और आस्तिक पुरुष थे। आप अपने जीवन के अन्तिम चरण तक दोनों समय सन्ध्या तथा

अग्निहोत्र करते रहे थे और सच्चे आर्य के समान आपने अत्यन्त धैर्यपूर्वक मृत्यु का वरण किया था। अतरौली के सामाजिक जीवन में भी आपका विशेष स्थान था और आप वहाँ की नगरपालिका के सदस्य और उपाध्यक्ष भी रहे थे। अतरौली के इण्टर कालेज और उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय के साथ भी आपका बहुत निकट का सम्बन्ध था। आप कई वर्ष तक इन दोनों संस्थाओं के प्रबन्धक भी रहे थे। आपके सुपुत्र डॉ० नगेन्द्र हिन्दी के ख्याति-प्राप्त समीक्षक हैं।

आपका निधन सन् 1969 में हुआ था।

श्री राजेन्द्रकुमार

श्री राजेन्द्रकुमार का जन्म देहरादून के समीपवर्ती एक ग्राम बद्रीपुर में 28 दिसम्बर सन् 1928 को हुआ था। देहरादून के डी० ए० वी० कालेज में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने पत्रकारिता और लेखन को ही अपना प्रमुख ध्येय बनाया और उसी दिशा में निरन्तर बढ़ते रहे। आपने जहाँ कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक नवभारत टाइम्स' और 'सन्मार्ग' पत्रों में सन् 1950 तथा सन् 1951 में कार्य किया; वहाँ देहरादून में आकर 'साप्ताहिक हिमाचल' (1952-1953) तथा 'साप्ताहिक आवाज' (1954-1955) का सम्पादन भी किया। आपने देहरादून से ही 'छवि' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की थी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने के साथ-साथ आपने अपनी रचनात्मक प्रतिभा का भी पूर्ण परिपाक प्रस्तुत किया था। आपके 'तूफान के बाद' (1958) तथा 'कुहासा और चाँदनी' (1962) नामक उपन्यास और 'नये मोड़' (1956) नामक कहानी-संग्रह इसके ज्वलन्त साक्षी है।

आपका निधन सन् 1976 को हुआ था।

श्री राजेन्द्रकुमार जैन 'कुमरेश'

श्री 'कुमरेश' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जनपद के बिलराम नामक एक ग्राम मे 12 जून सन् 1912 को हुआ था। आपने आयुर्वेद तथा हिन्दी-सम्बन्धी गहन ज्ञान घर पर ही रहकर अपने पिता जी के निरीक्षण में प्राप्त किया था और विधिवत् शिक्षा ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी (मथुरा) तथा 'आयुर्वेदिक कालेज कानपुर में ग्रहण की थी। आप शाहदरा-निवासी पण्डित जिनेश्वरदास प्रतिष्ठाचार्य को अपना प्रेरणा-स्रोत माना करते थे। कुमरेशजी का जीवन प्रायः राजस्थान तथा मध्यप्रदेश के राघोगढ़, करैरा तथा चन्देरी आदि स्थानों में ही व्यतीत हुआ था। एक सिद्धहस्त वैद्य तथा कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में आपको सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। आप अनेक संस्थाओं

के प्रेरणा-स्रोत होने के साथ-साथ राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी थे।

आप जहाँ उत्कट देशभक्त और प्रबुद्ध जननेता थे वहाँ उच्चकोटि के कवि, नाटककार, कहानीकार तथा निबन्धकार होने के साथ-साथ जागरूक पत्रकार भी थे। आपने अनेक वर्ष तक दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'जैन प्रचारक' नामक पत्र का सम्पादन करने के अतिरिक्त हिन्दी में लगभग 16 पुस्तकों की रचना की थी। आपकी रचनाएँ 'नवप्रभात', 'अहिंसा वाणी', 'जैन सन्देश' तथा 'जैन मित्र' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। कुशल अभिनेता के रूप में भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'जैन वीरों से', 'अहिच्छत्र कीर्तन', 'भजन पच्चीसी', 'झण्डा गायन', 'काया गीत', 'विवाह', 'विदा की वेला', 'जीवन-साथी', 'अपनी भूल', 'प्रतिज्ञा' और 'प्रणाम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कृतियाँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी है।

आपका निधन सन् 1975 में हुआ था।

श्री राजेन्द्रनारायण द्विवेदी

श्री द्विवेदीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद के चकवा नामक ग्राम में 15 जुलाई सन् 1926 को हुआ था।

आपने संस्कृत और हिन्दी की क्रमश: प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री, प्रभाकर, विशारद और साहित्यरत्न आदि की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के साथ-साथ अँग्रेजी की बी० ए० और एम० ए० परीक्षाएँ भी अच्छी योग्यता के साथ उत्तीर्ण की थीं।

भारत सरकार के अनेक मन्त्रालयों में आपने अनुवादक, वरिष्ठ अनुवादक, हिन्दी अधिकारी, वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी तथा सहायक शिक्षा परामर्शदाता के रूप में अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक कार्य करने के अतिरिक्त विशेष अधिकारी (हिन्दी) के पद पर भी कार्य किया था। यह सेवा-काल सन् 1951 से लेकर मृत्यु-पर्यन्त कहा जा सकता है।

आप संस्कृत तथा हिन्दी के मर्मी विद्वान् और कुशल लेखक थे। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश' (1958) तथा 'भाषा शास्त्र का प्रारम्भिक शब्दकोश' (1963) विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा अनूदित रचनाओं में 'शेक्सपियर के सानेट' (1958) तथा 'भारतीय विज्ञान के कर्णधार' (1973) आदि के नाम विशिष्ट रूप से उल्लेख्य है।

आपका निधन 8 नवम्बर सन् 1975 को हुआ था।

डॉ० राजेन्द्र शुक्ल

डॉ० राजेन्द्र शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के भैसई कोयल नामक ग्राम में 15 जुलाई सन् 1929 को हुआ था। आपके जन्म के 1 वर्ष बाद ही आपकी माताजी का देहान्त हो गया था और आपके पिता ग्राम में ही कृषि-कार्य करते थे।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की प्राथमिक पाठशाला में प्राप्त करने के उपरान्त आप आगे के अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश के प्रमुख शिक्षणालय गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में चले गए थे। 6 वर्ष तक गुरुकुल में अध्ययन करने के उपरान्त आप घरेलू जटिल परिस्थितियों के कारण बीच में ही गाँव चले गए और फिर अनेक संघर्षों से जूझते हुए आपने इन्दौर विश्वविद्यालय में एम० ए० (संस्कृत), पी-एच०डी० किया। आपके शोध-प्रबन्ध का विषय 'प्राचीन भारतीय राजनीति' था।

इस संघर्षपूर्ण जीवन-यात्रा में शुक्लजी को पत्रकारिता भी करनी पड़ी थी। ग्वालियर से प्रकाशित होने वाले 'नवप्रभात' दैनिक में आपने कई वर्ष तक कार्य-रत रहते हुए अपना अध्ययन पूर्ण किया था। सन् 1960 में आपने इन्दौर

के क्रिश्चियन कालेज में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में नियुक्त होकर शिक्षा-क्षेत्र में प्रवेश किया था। इस बीच आप सन् 1964 में दिल्ली के हिन्दू कालेज में 'संस्कृत - शिक्षक' होकर यहाँ आ गए थे। अनेक वर्ष तक घनघोर संघर्ष करने के उपरान्त श्री शुक्लजी को यहाँ आकर ही चैन की साँस लेने का अवसर मिला था।

आप एक कुशल शिक्षक और उद्यमी पत्रकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपके बहु-विषयक लेख हिन्दी के प्राय. सभी पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते थे।

आपका निधन 25 दिसम्बर सन् 1973 को हृदय-गति बन्द हो जाने के कारण हुआ था।

महाराणा राजेन्द्रसिंह 'सुधाकर' (झालावाड़-नरेश)

झालावाड़-नरेश श्री राजेन्द्रसिहजी का जन्म झालावाड़ (राजस्थान) में सन् 1900 में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती व्रजकुँवर देवी था। आपके पिता महाराजा-राणा सर श्री भवानीसिहजी एक कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ बहुमुखी प्रतिभा के धनी व परम विद्या-प्रेमी नरेश थे।

आप अपने पिता के अनुरूप ही योग्य शासक होने के साथ-साथ परम विद्या-व्यसनी, काव्य-प्रेमी स्वयं अच्छे कवि तथा अनेक कवियों के सम्मानकर्ता थे। आपके राज्य-काल में झालावाड़ में साहित्यिक वातावरण का समाँ-सा बँधा रहता था और समय-समय पर अनेक कवि-सम्मेलन होते रहते थे और उस वातावरण में पले हुए अनेक व्यक्ति आगे चलकर अच्छे कवि व साहित्यकार बने थे। आप हिन्दी में 'सुधाकर' व उर्दू में 'मखमूर' के नाम से काव्य-रचना किया करते थे। आप भारी समाज-सुधारक, सच्चे प्रजा-हितैषी महापुरुष थे। सन् 1942 में सर्वप्रथम जब श्रीमती रामेश्वरी नेहरू झालावाड़ आई थी तब महाराणा श्री राजेन्द्रसिंहजी ने झालरापाटन में श्रीद्वारिकाधीश के मंदिर में हरिजन बन्धुओं के साथ प्रवेश किया था और सभी सार्वजनिक स्थान हरिजनों के लिए खोल दिए थे। आपकी महारानी श्रीमती हीराकुँवरि देवी के गुजराती साहित्य की मर्मज्ञा होने के कारण श्री सुधाकरजी का भी झुकाव उस ओर रहा। लाठी-नरेश स्व० कलापी (गुजराती के प्रतिष्ठित कवि) की अनेक रचनाओं को आपने हिन्दी-रूप दिया था।

आप सच्चे कृष्ण-भक्त नरेश थे और आपकी भक्ति में मानवीयता थी। 'सुधाकर' नाम से लिखे गए अनेक भजन इसके द्योतक हैं। श्री सुधाकर की रचनाओं में नीति, प्रीति, भक्ति, स्वदेश-प्रेम की पूर्ण झलक देखने को मिलती है। आपकी प्रकाशित कृतियाँ 'सुधाकर काव्य कला', 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'शंकर शतक' हैं। इसके अतिरिक्त बहुत-सा साहित्य राजमहल में अभी भी सुरक्षित है।

आपका निधन सन् 1943 में हुआ था।

लाला राधाकृष्ण

लाला राधाकृष्ण का जन्म अप्रैल सन् 1878 में अमृतसर के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। बचपन में ही आपको

आपके नाना ने गोद ले लिया था, किन्तु कुछ मास बाद ही उनका देहावसान हो गया। परिणामस्वरूप सारे परिवार के भरण-पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व आप पर ही आ पड़ा, जिसके कारण आपकी शिक्षा यथोचित रूप से नहीं हो सकी। स्वाध्याय के बल पर आपने अपनी शैक्षिक योग्यता को बाद में धीरे-धीरे बढ़ा लिया था। 9 वर्ष की अल्पायु में ही आपका विवाह हो गया। अभी तीन वर्ष भी विवाह को नहीं हो पाए थे कि आपकी सहधर्मिणी चल बसीं और कारोबार में भी घाटा हो गया। जो कुछ नकद जमा-पूँजी थी उसके अपनी बहनों के विवाह में खर्च हो जाने के कारण आपको सन् 1893 में दो रुपए मासिक की नौकरी करनी पड़ी थी। धीरे-धीरे अपने अनवरत अध्यवसाय तथा कठिन परिश्रम से आपने अपनी आर्थिक स्थिति सुधारकर कुछ ही वर्षों में नया कारोबार संगठित कर लिया था।

सन् 1895 में आपके कानों में पहली बार स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा प्रवर्तित 'आर्यसमाज' के आन्दोलन की भनक पड़ी। आप भला इससे पीछे कैसे रहते? आपने ढूँढ़-ढूँढ़कर 'आर्यसमाज' से सम्बन्धित सभी साहित्य पढ़ा और आर्यसमाज की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया आपके स्वभाव के अनुरूप क्योंकि आर्यसमाज के इस आन्दोलन का रूप भी सुधारवादी था, अतः आपका सम्बन्ध उससे घनिष्ठ से घनिष्ठतर होता चला गया। इस बीच आपका आर्य-समाजी क्षेत्र के जिन नेताओं से परिचय हुआ उनमे महात्मा मुन्शी-राम (स्वामी श्रद्धा-नन्द), (स्वामी स्वतन्त्रानन्द, लाला देवराज, प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति और महाशय मेघवरुण आदि प्रमुख थे। इनके सम्पर्क से तो लालाजी के हौसले और भी बढ़ गए और आपने आर्यसमाज का काम बहुत उत्साह-पूर्वक किया।
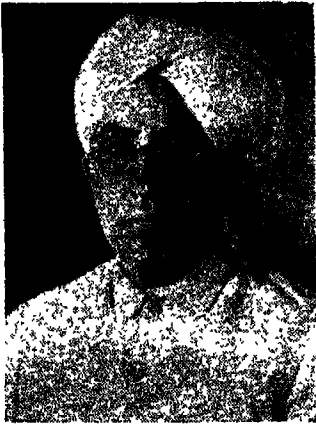
इस बीच मित्रों के परामर्श पर लालाजी ने सन् 1910 में पुनर्विवाह किया। किन्तु दुर्भाग्यवश यह पत्नी भी सन् 1916 में एक पुत्री और एक नन्हें पुत्र को छोड़कर असमय में स्वर्ग सिधार गई। तत्कालीन प्रथा के अनुसार आपने उसी वर्ष श्रीमती लक्ष्मी देवी से तीसरा विवाह कर लिया। पहली पत्नी से तो आपको कोई सन्तान नहीं थी, दूसरी से श्रीमती सुमित्रा देवी और श्री ओंप्रकाश तथा तीसरी से श्री देवराज, सुमेधा देवी और श्री भीमसेन नामक सन्तानें हुईं। व्यापार की उत्तरोत्तर प्रगति के साथ-साथ आपके स्वाध्याय का क्रम जारी रहा और धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन की दिशा में आपने विशेष सफलता प्राप्त की। क्योंकि उन दिनों पंजाब में हिन्दी के प्रचार की अत्यधिक आवश्यकता थी, अतः इस दृष्टि से आपने अमृतसर में एक ट्रस्ट के प्रबन्ध में 'स्वतन्त्रानन्द वैदिक पुस्तकालय' की स्थापना कर दी। इस ट्रस्ट के ट्रस्टियों में उन दिनों महात्मा मुन्शीराम और स्वामी स्वतन्त्रानन्द-जैसे व्यक्ति थे। थोड़े ही दिनों में अमृतसर शहर के बीचो-बीच हाल बाजार में अच्छी जमीन खरीदकर एक भव्य भवन बनाने का संकल्प कर लिया और सन् 1927-28 तक यह भवन भी बनकर तैयार हो गया। 'स्वतन्त्रानन्द वैदिक पुस्तकालय' आज इसी भवन में नगर की जनता की उल्लेखनीय सेवा कर रहा है।

स्वामी श्रद्धानन्द से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण आप उनके द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय और देहरादून के कन्या गुरुकुल की भी सदैव सहायता करते रहते थे। आज भी आपके द्वारा दान मे दी गई निधि से दोनों संस्थाओं मे गरीब तथा साधनहीन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ मिल रही हैं। जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के समय आपने महात्मा गान्धी से सम्पर्क करके उस स्थान को खरीदकर राष्ट्रीय स्मारक बनाने का सुझाव भी दिया था। आपके सक्रिय सहयोग तथा उदारतापूर्व साहाय्य से यह स्वप्न साकार हो सका था। लालाजी के संस्कारों के अनु-रूप आपकी सन्तानों (सर्वश्री ओंप्रकाश, देवराज तथा भीमसेन) ने हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार के पावन उद्देश्य से प्रेरित होकर ही राजधानी दिल्ली में 'राजकमल प्रकाशन' नाम से अपना जो कारोबार प्रारम्भ किया था उसने हिन्दी के प्रकाशन-साहित्य में सर्वथा नए मानदण्ड स्थापित किए। बाद में किसी कारणवश इन तीनों भाइयों ने क्रमशः 'राधाकृष्ण

प्रकाशन', 'शुचि प्राइवेट लिमिटेड' और 'अनुपम प्रकाशन' नाम से प्रकाशन और मुद्रण का कार्य अलग-अलग प्रारम्भ कर दिया था। ये तीनों संस्थाएँ भी अपने-अपने कार्यों में सर्वथा विशिष्ट स्थान बनाए हुए हैं। आपकी द्वितीय सुपुत्री श्रीमती सुमेधा के दोनों पुत्रों (श्री रमेशचन्द्र ग्रोवर और श्री दिनेशचन्द्र ग्रोवर) ने भी प्रयाग में 'लोक भारती प्रकाशन' नाम से प्रकाशन का कार्य किया हुआ है।

निरन्तर कर्म-रत रहते हुए भी लालाजी को सन् 1930-32 में जिस हृदय-रोग ने आ घेरा था, अन्त में उसी-से संघर्ष करते हुए आप सन् 1952 में इस असार संसार से विदा हो गए।

श्री राधाकृष्ण खेमका

श्री खेमकाजी का जन्म सन् 1917 में कलकत्ता में हुआ था। एक सम्पन्न मारवाड़ी परिवार में जन्म लेकर आपने समाज-सेवी के क्षेत्र में अग्रणी कार्य किया था। आप अनेक वर्ष तक असम विधान सभा के सदस्य रहे थे और विधानसभा में असमिया भाषा में न बोलकर हिन्दी में बोला करते थे। आप सन् 1935 से लेकर मृत्यु-पर्यन्त भारत के पूर्वी अंचल की जनता की बहुविध सेवा में ही संलग्न रहकर जनता का प्रेम अर्जित करते रहे।

आपके राजनीति, समाज-सेवा और साहित्यिक विषयों पर लिखे गए अनेक लेख आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। असम प्रदेश में हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने की दिशा में आपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।
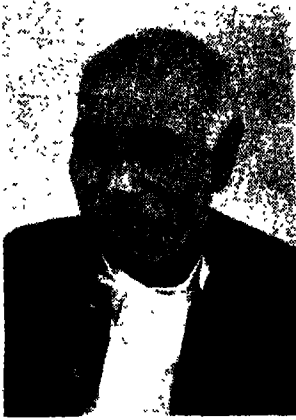
आपका निधन 28 दिसम्बर सन् 1977 को बेलूर के चिकित्सालय में हुआ था।

बाबू राधाकृष्णदास

बाबू राधाकृष्णदास का जन्म अगस्त सन् 1865 में वाराणसी (उ० प्र०) में हुआ था। आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे और क्योंकि उनके फूफा अर्थात् बाबू राधाकृष्ण के पिता का असमय में ही देहावसान हो गया था, अतः भारतेन्दुजी ने अपनी फूफी (राधाकृष्णदास की माता) को अपने घर ही बुला लिया था। उस समय आपकी आयु केवल 10 मास ही थी। आपकी शिक्षा-दीक्षा का सारा प्रबन्ध भारतेन्दु-परिवार में हुआ था। हिन्दी तथा उर्दू की साधारण शिक्षा घर पर ही प्राप्त करने के अनन्तर आपको विधिवत् अध्ययन के लिए जब विद्यालय में भेजा गया तब प्रायः अस्वस्थ रहने के कारण आपका नियमित अध्ययन न हो सका। फिर भी भारतेन्दुजी के सत्प्रयास से घर पर ही रहकर आपने हिन्दी और अँग्रेजी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

भारतेन्दु के सम्पर्क के कारण आपकी प्रवृत्ति हिन्दी की ओर प्रारम्भ से ही हो गई थी। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि आप हिन्दी-लेखन की ओर अग्रसर हो गए। आपकी पहली रचना 'दुःखिनी बाला' है। इसके पश्चात् आपने 'निस्सहाय हिन्दू', 'महारानी पद्मावती' और 'प्रताप नाटक' आदि पुस्तकों की रचना की। बाबू श्यामसुन्दरदास आपकी सभी रचनाओं का सकलन करके 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली' नाम से प्रकाशित करना चाहते थे, किन्तु इसका केवल एक खण्ड ही नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित हो सका है। यह ग्रन्थावली चार खण्डों में विभक्त है। इसके प्रथम खण्ड में जहाँ आपकी 13 छोटी-बड़ी कविताएँ संकलित हैं वहाँ दूसरे खण्ड में पुरातत्त्व तथा साहित्य-सम्बन्धी लेख दिये गए हैं। इसी प्रकार तीसरे भाग में कुछ जीवन-चरित और चौथे में 5 नाट्य-कृतियाँ समाविष्ट हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू राधाकृष्णदास को

मुख्यतः नाटककार के रूप में ही अभिहित किया गया है; क्योंकि आपकी रचनाओं मे नाटकों की संख्या अधिक थी और आपकी प्रथम रचना 'दुखिनी बाला' भी नाटक ही थी। इसके उपरान्त आपकी 'महारानी पद्मावती' तथा 'महाराणा प्रताप' नामक नाट्य-कृतियाँ उल्लेखनीय है। आपके 'महाराणा प्रताप' नाटक को आधुनिक पद्धति पर निर्मित पहला नाटक कहा जाता है। समीक्षा और जीवनी-लेखन की दिशा मे भी आपने अच्छी सफलता प्राप्त की थी। मौलिक उपन्यास-लेखन मे आपकी अभूतपूर्व सफलता का प्रमाण आपका 'निःसहाय हिन्दू' है। 'हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास' नामक आपकी रचना जहाँ आपकी इतिहास-लेखन की क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है वहाँ आपके द्वारा लिखित भारतेन्दुजी के पिता 'गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास' तथा 'भारतेन्दु की जीवनी' आपको उत्कृष्ट जीवनी-लेखक के रूप में उपस्थित करती है। आप जहाँ समस्या-पूर्ति करने मे अत्यन्त निपुण थे वहाँ 'कुण्डलिया' रचने की प्रक्रिया में भी अद्वितीय थे। आपकी 'रहिमन विलास' नामक कृति इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।
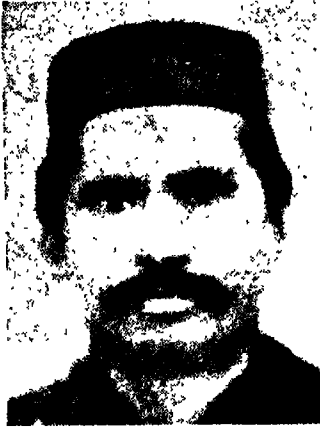
आप जहाँ उत्कृष्ट कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार और नाटककार थे वहाँ हिन्दी तथा देवनागरी के प्रचार के लिए आपकी देन सर्वथा अनुपम थी। 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना में सहयोग देने के साथ-साथ आप उसके अध्यक्ष भी रहे थे। इसके अतिरिक्त सन् 1906 मे आपने सभा की मुख पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का सम्पादन भी सफलतापूर्वक किया था। नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से जब सर्वप्रथम 'सरस्वती' का प्रकाशन सन् 1900 में प्रारम्भ हुआ था तब उसके 'सम्पादक-मण्डल' में आपका भी नाम प्रकाशित होता था। आपके अतिरिक्त सम्पादक-मण्डल के दूसरे सदस्य बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, बाबू श्यामसुन्दरदास, पंडित किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री थे। जिन दिनों सभा को बाबू गदाधरसिंह ने अपना 'आर्य भाषा पुस्तकालय' प्रदान किया था, उसकी 'वसीयत' लिखाने में भी आपने बहुत दौड़-धूप की थी।

आपका निधन 2 अप्रैल सन् 1907 में 42 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री राधाकृष्ण द्विवेदी वैद्य

श्री वैद्यजी का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद की खैर तहसील के बामोनी नामक ग्राम मे हुआ था। आपके पिता श्री हुलासीराम मन्त्र-मार्तण्ड प्रख्यात ज्योतिषी थे। संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य का अच्छा ज्ञान रखने के साथ-साथ वे ज्योतिष और आयुर्वेद शास्त्र के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। द्विवेदीजी मे भी यह सारे गुण अपने पिताजी मे विरासत में मिले थे। प्रारम्भ में आपने हाथरस, अलीगढ़ और मथुरा आदि नगरों में रहकर आयुर्वेद की चिकित्सा के माध्यम से जन-सेवा का मार्ग प्रशस्त किया था और बाद में बम्बई होते हुए आप हैदराबाद पहुँच गए तथा अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वहीं रहे थे।

हैदराबाद जाकर आपने वहाँ एक गुरुकुल की स्थापना की और हिन्दी के माध्यम से अनेक छात्रों को भारतीय संस्कृति के वैभव से पूर्ण परिचित किया। थोड़े दिन बाद आपने वहाँ एक 'आयुर्वेद कालेज' तथा 'औषधालय' की स्थापना की थी। आप जहाँ कुशल चिकित्सक थे वहाँ लेखक भी उच्च-

कोटि के थे। आपके द्वारा लिखित पुस्तकों में 'चेचक', 'चेचक से बचने के उपाय', 'शीतला प्रबन्ध', 'अनुभूत पद्य-संग्रह', 'भारतीय चौदह विद्याएँ', 'रसतन्त्र सार सिद्ध प्रयोग संग्रह', 'चिकित्सा तत्त्व प्रदीप', 'गाँवों में औषध रत्न', 'वैज्ञानिक विचारणा' तथा 'औषध गुण धर्म विवेचन' आदि प्रमुख हैं। आपके लेख आदि भी देश के सभी प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होते रहते थे।

आपका निधन सन् 1969 में हुआ था।

श्री राधाप्रसाद

श्री राधाप्रसाद का जन्म सन् 1889 में बिहार के शाहाबाद जिले के भरखर (मोहनिया) नामक ग्राम में हुआ था। घर पर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर आपने बनारस सेंट्रल हिन्दू स्कूल से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके अध्यापन-कार्य प्रारम्भ किया था। इस क्रम में आप क्रमशः आरा के टाउन हाईस्कूल तथा सूर्यपुरा के राज राजेश्वरी हाईस्कूल में अँग्रेजी भाषा के शिक्षक रहे थे। सन् 1916 से लेकर सन् 1940 तक आपने बिहार के अनेक विद्यालयों में शिक्षण का कार्य किया था। हिन्दी की प्राचीन कविताओं के प्रति आपका विशेष अनुराग था और उन्हीं से प्रभावित होकर लेखन की ओर अग्रसर हुए थे। आपकी अनेक साहित्यिक रचनाएँ 'लक्ष्मी' तथा 'शिक्षा' आदि पत्र-पत्रिकाओं में बड़े आदर के साथ प्रकाशित हुआ करती थी।

श्री राधामोहन गोकुलजी

श्री गोकुलजी का जन्म सन् 1865 में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जनपद के लाल गोपालगंज नामक स्थान में हुआ था। आपके पूर्वज वैसे राजस्थान के खेतड़ी राज्य के निवासी थे और दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व आजीविका की तलाश में यहाँ चले आए थे। गोकुलजी के प्रपितामह लाला परमेश्वरीदास इलाहाबाद के निकटवर्ती भदरी राज्य के राव साहब के यहाँ खजांची का काम करते थे। श्री गोकुलजी के पिता का नाम गोकुलचन्द था। उनके मकान 'लाल गोपालगंज' और 'बिहार' नामक दो स्थानों पर थे और दोनों का फासला केवल 4 मील का था। राधामोहनजी की प्रारम्भिक शिक्षा बिहार के ग्रामीण स्कूल में ही हुई थी। प्रारम्भ में आपने हिन्दी पढ़ी थी, परन्तु फिर 2-4 महीने बाद आपको उर्दू के अध्यापक के आग्रह पर उर्दू की क्लास में भेज दिया गया था। आपने वहाँ एक 'मकतब' में फारसी भी पढ़ी थी। आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए आपको जब कानपुर भेजा गया तो वहाँ जाकर भी गोकुलजी ने अपने अँग्रेजी-विरोध के कारण फारसी और बही-खाता ही सीखना जारी रखा।

जब आप 13 वर्ष के थे तो आपका विवाह कर दिया गया। विवाह के उपरान्त आप अपने चाचा के पास आगरा चले गए और वहाँ से 'सैन्ट जान्स कालिजिएट स्कूल' में अँग्रेजी पढ़ी। सन् 1884 में एक व्यापारिक दुर्घटना के फलस्वरूप आपके परिवार की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो गई और आप नौकरी की तलाश में इलाहाबाद चले गए। इलाहाबाद में सरकारी 'अकाउण्ट्स डिपार्टमेण्ट' में आपको 20 रुपए की नौकरी मिल गई, किन्तु वहाँ भी गोरे कर्मचारी से झगड़ा हो जाने के कारण आप उस नौकरी को छोड़कर चले आए और भविष्य में नौकरी न करने की प्रतिज्ञा की। यह घटना सन् 1886 की है। सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी और 'स्वदेशी' का पूरा प्रचार देश में हो रहा था। आपने इसी भावना के वशीभूत होकर आर्थिक दशा ठीक न होते हुए भी इलाहाबाद में बनी 'स्वदेशी व्यापार कम्पनी' का 25 रुपए का एक शेयर भी खरीदा था। इससे आपके 'स्वदेश' और 'स्वदेशी' के प्रति प्रेम का परिचय मिलता है।

इलाहाबाद में कोई रोजगार न मिलने पर आप रीवाँ

चले गए और एक-डेढ़ वर्ष वहाँ रहकर फिर कानपुर आ गए। कानपुर में उन दिनों श्री प्रतापनारायण मिश्र के पत्र 'ब्राह्मण' की बड़ी धूम थी। गोकुलजी का झुकाव उनकी तरफ हो गया और आप श्री मिश्रजी के साथ मिलकर 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' के उपासक बन गए। उन दिनों 'ब्राह्मण' पर आपका नाम 'आनरेरी मैनेजर' के रूप में छपता था। इससे पूर्व इलाहाबाद में ही आप कविता लिखने लगे थे और पंडित बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' में आपके लेख छपने लगे थे। उन्हीं दिनों आपने कानपुर में देश की तत्कालीन दशा पर एक पुस्तक लिखी यह पुस्तक इतनी उग्र भाषा में लिखी गई थी कि कानपुर के सुप्रसिद्ध समाज-सेवी वकील पंडित पृथ्वीनाथ के परामर्श पर उसे जला दिया गया। आपका कहना था कि ऐसी रचनाओं का समय पचास वर्ष बाद आयगा। इस बीच आपके परिवार की स्थिति और भी जटिल हो गई और आप हसनपुर (गुड़गाँव) तथा कोसी कलाँ (मथुरा) चले आए। उन्हीं दिनों आपकी पुत्री और धर्मपत्नी का भी देहान्त हो गया। दुर्भाग्य ने यहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा। सन् 1901 में 16 वर्ष की आयु में आपके एक-मात्र पुत्र का भी देहावसान हो गया। इससे फिर आप आगरा चले गए और वहीं रहने लगे।

जब आपके ऊपर सब ओर से आपत्तियों के बादल मँडरा रहे थे तब सन् 1904 के अन्तिम दिनों में आप कलकत्ता पहुँच गए। वहाँ पर आप गए तो थे आजीविका की तलाश में, किन्तु परिस्थितिवश वहाँ क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आकर मारवाड़ी युवकों को इस आन्दोलन में सहायता करने के लिए प्रेरित करने लगे। वहाँ पर आपने कलकत्ता आर्यसमाज के सहयोग से 'सत्य सनातन धर्म' नामक एक पत्र निकालकर समाज में फैली हुई कुरीतियों का भंडाफोड़ करना प्रारम्भ कर दिया। सन् 1907 में जब लाला लाजपतराय को देश-निकाला दिया गया तब आपने 'देश-भक्त लाजपत' नामक एक पुस्तक लिखी। इसके उपरान्त 'मेजिनी' और 'गैरीबाल्डी' के जीवन-चरित्र भी लिखे, जो बाद में 'प्रणवीर' कार्यालय, नागपुर से प्रकाशित हुए थे। जब 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' ने अपनी 'मनोरंजन पुस्तकमाला' का प्रकाशन प्रारम्भ किया तो गोकुलजी की 'नेपोलियन बोनापार्ट' नामक पुस्तक उसके अन्तर्गत ही प्रकाशित हुई थी। इसके बाद आपकी लेखनी ने विश्राम ही नहीं लिया और 'गुरु गोविन्दसिंह', 'नीति दर्शन' तथा 'देश का धन' आदि कई पुस्तकें आपने लिखीं। नागपुर के श्री सतीदास मूँधड़ा नामक एक युवक के सम्पर्क में आकर आपने नागपुर से 'प्रणवीर' नामक एक अर्ध साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी प्रारम्भ किया। वहाँ पर एक भाषण देने के अभियोग में आपको 6 मास का कारावास भी भोगना पड़ा था।

इसके उपरान्त आप सन् 1925 में कानपुर आकर कम्युनिस्ट-कांग्रेस में सहयोगी बने। यहाँ पर आपने एक 'क्रान्तिकारी दल' का गठन किया तथा सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य के मकान में श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल और भगतसिंह से भी आपका सम्पर्क हुआ। 'काकोरी केस' के बाद बचे-खुचे युवकों को बटोरकर और भी सुदृढ़ संगठन किया। उन्हीं दिनों काकोरी केस से फरार होकर श्री चन्द्रशेखर आजाद ने कुछ दिन तक श्री गोकुलजी के घर पर ही कानपुर में निवास किया था। सन् 1927 में आपने कानपुर के 'क्रान्ति दल' की बहुत सहायता की। सन् 1929 में जब श्री सांडर्स की हत्या के कारण देश में बहुत हलचल थी तब आगरा में श्री गोकुलजी के मकान की तलाशी ली गई। पुलिस ने गोकुलजी की 'कम्युनिज्म क्या है?' नामक पुस्तक को अपने कब्जे में कर लिया। आपकी 'क्रान्ति का आगमन' नामक पुस्तक भी ऐसी ही थी। आपने आगरा से सन् 1923 में 'नवयुग' नामक एक दैनिक भी निकाला था।

जब आप पर सब ओर से संकट के बादल मँडराने लगे और आपका स्वास्थ्य भी खराब हो गया तो जून सन् 1935 में आप स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा संस्थापित एक विद्यालय (खोही, हमीरपुर) में चले गए और वहाँ रहकर ही गुप-चुप क्रान्ति-दल का संगठन-कार्य करने लगे। उन्हीं दिनों आपको अचानक पेचिश हो गई और चिकित्सा के अभाव में पाँच-सात दिन में आपने इहलीला समाप्त कर दी। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ने आपकी स्मृति में 'समाज-सुधार-सम्बन्धी उत्कृष्ट पुस्तक लिखने पर 'राधामोहन गोकुलजी पुरस्कार' देने की घोषणा की थी। 20 फरवरी सन् 1972 को आगरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा' के भवन में गोकुलजी का एक चित्र भी आपकी 108वीं जयन्ती पर लगाया गया था। इस चित्र का निर्माण गोकुलजी के पत्री श्री प्रकाशचन्द्र ने कराया था।

श्री राधावल्लभ पाण्डेय 'बन्धु'

श्री पाण्डेय जी का जन्म सन् 1888 में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के मसवासी नामक ग्राम में हुआ था। हिन्दी-उर्दू मिडिल तथा वी० टी० सी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप अध्यापक हो गए थे और इस अध्यापन-काल में ही साहित्य के प्रति आपका जो झुकाव हुआ वह धीरे-धीरे परिपुष्ट होता गया। आप हिन्दी, उर्दू तथा संस्कृत के अतिरिक्त अँग्रेजी, फारसी, अरबी तथा बंगला आदि भाषाओं के भी मर्मज्ञ थे।

एक उच्चकोटि के कवि के रूप में आपने अपने समय में अच्छी ख्याति अर्जित की थी। 'घनाक्षरी', 'सवैया' तथा 'दोहा' आदि विविध छन्दों में रचना करने में आप इतने दक्ष थे कि अपने समय के कवियों में आपकी अच्छी ख्याति थी। आपकी रचनाओं में 'बन्धु दोहावली', 'बन्धु प्रकाश', 'बन्धु चपल चौपदे', 'बन्धु गीत सागर', 'बन्धु छन्दावली', 'बन्धु स्फुट पद्य-प्रभा' तथा 'रोटी' आदि उल्लेखनीय हैं।

आप कवि-सम्मेलन में काव्य-पाठ करने में इतने दक्ष थे कि अनेक कवि-सम्मेलनों में आपको असंख्य 'स्वर्ण-पदक' तथा 'रजत-पदक' प्राप्त हुए थे। आपकी रचनाएँ 'सुकवि', 'प्रभा', 'कवि', 'कवीन्द्र', 'सरस्वती', 'माधुरी', 'अभ्युदय' तथा 'प्रताप' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में सम्मान सहित प्रकाशित होती थी।

आपका निधन 7 नवम्बर सन् 1972 को हुआ था।

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह

राजा साहब का जन्म 10 सितम्बर सन् 1890 को सूर्यपुरा (बिहार) के अत्यन्त प्रसिद्ध राज-परिवार में हुआ था। आपके बाबा दीवान रामकुमार सिंह कुमार और पिता राजा राजराजेश्वरप्रसादसिंह 'प्यारे' दोनों ही साहित्य, संगीत और कला के मर्मज्ञ थे। ऐसा कहा जाता है कि रीतिकाल के कवि 'पजनेश' और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता राजा साहब के बाबा के समकालीन थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता तथा राजा साहब के बाबा का जन्म एक ही सन् (1833) में हुआ था और दोनों ही कविता किया करते थे। जिस प्रकार दीवान रामकुमार सिंह का कविता के प्रति लगाव था उसी प्रकार राजा साहब के पिता राज-राजेश्वरीप्रसादसिंह 'प्यारे' भी काव्य-रसिक थे और हिन्दी में कविता किया करते थे। राजा साहब की उच्च शिक्षा कलकत्ता में हुई थी और कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही आपने सन् 1914 में एम० ए० (इतिहास) की परीक्षा उत्तीर्ण की थी तथा वहीं पर आपका सम्पर्क कवीन्द्र रवीन्द्र से हुआ था। क्योंकि कवि रवीन्द्र राजा साहब के पिताजी के अनन्य मित्रों में थे, इसलिए राजा साहब आपके यहाँ सरलता से आ-जा सकते थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आपने एफ० ए० की परीक्षा आगरा कालेज तथा बी० ए० की परीक्षा सन् 1912 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के म्योर सेण्ट्रल कालेज से दी थी और संस्कृत में स्वर्ण पदक प्राप्त किया था।

इस बीच सन् 1903 में आपके पिताजी का देहान्त हो जाने के कारण सूर्यपुरा राज्य 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स' के अधीन हो गया था और आप सन् 1916 में राज्य के मैनेजर बनाए गए थे। जब सन् 1918 मे जब आपका राज्य सरकारी अधिकार से मुक्त हुआ तब पूर्णतः राज्य-शासन का संचालन आपके ही ऊपर आ गया और सन् 1920 की पहली जनवरी को आपको विधिवत् 'राजा' की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1922 से सन् 1928 तक आप शाहाबाद (आरा) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्रथम भारतीय चेयरमैन नियुक्त हुए। साहित्य के प्रति प्रेम आपको परम्परा में ही मिला था अतः उस दिशा में आपकी लेखनी ने विभिन्न रचनाएँ करके अपने शैलीगत वैशिष्ट्य का जो परिचय दिया वह इतिहास के पन्नों का अमर आलेख हो गया है। अनेक सूक्तियों और मुहावरों से परिपूर्ण आप

ऐसी भाषा लिखते थे जिससे पाठक ऊबता नहीं था, प्रत्युत आपके पात्रों की भाषा की सादगी में ही खो जाता था। अनावश्यक शब्दों का तूमार खड़ा करके प्रतिपाद्य विषय को दुर्बोध और रहस्यपूर्ण बना देने की प्रवृत्ति राजा साहब की नहीं थी। आप जो भाषा लिखते थे वही अपने भाषण में भी प्रयुक्त करते थे। आपके भाषणों को सुनकर गद्य-काव्य का-सा आनन्द अनुभव होता था। आपके साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय इसीसे मिल जाता है कि आपने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बेतिया में आयोजित द्वितीय अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।

अपने साहित्यकार-व्यक्तित्व के प्रारम्भिक काल में ही आपने अपनी लेखनी से जिन रचनाओं की सृष्टि की, वे अपनी विशेषताओं के कारण साहित्य का शृंगार बन गई। आपने अपनी प्रतिभा का परिचय जिस चमत्कारपूर्ण ढंग से दिया था, वह बहुत-से व्यक्तियों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है। आपने जहाँ कहानी, उपन्यास और नाटक तन्मयतापूर्वक लिखे वहाँ संस्मरणों में भी आपकी कला उत्कृष्टता से मुखरित हुई। आपकी पहली रचना 'कानों में कँगना' काशी के 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी। आपने सर्वप्रथम 'नये रिफार्मर' (1911) नामक जो नाटक लिखा था वह प्रकाशित ही न हो सका। आपकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'गल्प कुसुमावली' है; जिसकी कहानियों ने सन् 1911-12 में हिन्दी-संसार में एक तहलका-सा मचा दिया था। आपने हिन्दी साहित्य को जो महत्त्वपूर्ण कृतियाँ दी है उनमें उक्त दोनों रचनाओं के अतिरिक्त शेष के नाम कालक्रमानुसार इस प्रकार है—'नवजीवन या प्रेम लहरी' (लघु उपन्यास, 1912), 'तरंग' (लघु उपन्यास, 1912), 'राम-रहीम' (बृहद् उपन्यास, 1936), 'गांधी टोपी' (कहानी संग्रह, 1938), 'सावनी समाँ' (कहानी संग्रह, 1938), 'पुरुष और नारी' (उपन्यास, 1939), 'टूटा तारा' (संस्मरण, 1941), 'सूरदास' (उपन्यास, 1942), 'संस्कार' (उपन्यास, 1944), 'नारी—क्या एक पहेली?' (कहानियाँ, 1951), 'पूरब और पश्चिम' (उपन्यास, 1951), 'हवेली और झोपड़ी' (कहानियाँ, 1951), 'देव और दानव' (कहानियाँ, 1951), 'धर्म की धुरी' (नाटक, 1953), 'अपना पराया' (नाटक, 1953), 'वे और हम' (कहानियाँ, 1956), 'चुम्बन और चाँटा' (उपन्यास, 1957), 'धर्म और मर्म' (धर्मचर्चा, 1959), 'तब और अब' (संस्मरण, 1959), 'नजर बदली, बदल गए नजारे' (नाटक, 1961), 'अबला क्या ऐसी सबला' (कहानियाँ, 1962), 'बिखरे मोती', खण्ड-1 (कहानियाँ, 1965), 'माया मिली न राम' (लघु उपन्यास, 1963), 'माडर्न कौन, सुन्दर कौन?' (लघु उपन्यास, 1964), 'अपनी-अपनी नजर, अपनी-अपनी डगर' (लघु उपन्यास, 1966), 'बिखरे मोती', खण्ड-2 (संस्मरण, 1966), 'बिखरे मोती', खण्ड-3 (स्फुट रचनाएँ, 1969), 'बिखरे मोती', खण्ड-4 (भाषण-संकलन, 1970)।

राजा साहब की हिन्दी-साहित्य को सबसे बड़ी देन आपकी भाषा-शैली है। अँग्रेजी, अरबी, फारसी और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ-साथ आपकी भाषा में शब्दों की ऐसी पच्चीकारी की गई है कि जिसे देखकर और आपके शेरो-शायरी से लबालब संवादों को पढ़कर पाठक सहज ही अभिभूत हो जाता है। चुस्त, दुरुस्त, मुहावरेदार भाषा का प्रयोग आपकी शैली की विशेषता है।

आपकी साहित्यिक सेवाओं का ज्वलन्त उदाहरण यह भी है कि जहाँ आप 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' के आजीवन सभापति रहे थे वहाँ 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्', 'साहित्य अकादेमी' तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' आदि अनेक संस्थाओं के सदस्य भी रहे थे। आपकी बहुविध साहित्य-सेवाओं को दृष्टि में रखकर जहाँ भारत के तत्कालीन प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने आपको सन् 1962 में 'पद्म भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया था, वहाँ मगध विश्वविद्यालय ने सन् 1969 में आपको डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान की थी। इसी प्रकार सन् 1965 में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने जहाँ आपको 'वयोवृद्ध साहित्यिक सम्मान पुरस्कार' प्रदान किया था वहाँ सन् 1970 में 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' के विरुद से अलंकृत किया था। आप जहाँ बिहार की अनेक सांस्कृतिक, सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं के प्रेरणा-स्रोत थे वहाँ आपने अशोक प्रेस से अप्रैल सन् 1950 में 'नई धारा' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका का प्रकाशन करके हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है। इसके आदि सम्पादक प्रख्यात शैलीकार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी थे और अब यह

राजा साहब के सुयोग्य साहित्यिक पुत्र श्री उदयराजसिंह के सम्पादन में अविराम भाव से निकल रही है। 'नई धारा' ने जहाँ साहित्य में अनेक नए आन्दोलनों की सृष्टि की वहाँ इसके अनेक विशेषांक भी महत्त्वपूर्ण रहे। इसके 'बर्नार्ड शा' तथा 'रंगमंच' विशेषांकों ने जहाँ विश्व-स्तर की ख्याति अर्जित की थी वहाँ बिहार के दिवंगत साहित्यकारों (श्री नलिनविलोचन शर्मा, आचार्य शिवपूजन सहाय, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी और राजा राधिकारमणप्रसादसिंह) के निधन पर भी उपादेय और संग्रहणीय विशेषांक प्रकाशित करके एक नई परम्परा स्थापित की थी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राजाजी की सभी रचनाओं को आपके अशोक प्रेस से 'राजा राधिकारमण ग्रन्थावली' नाम से भी पाँच खण्डों में प्रकाशित किया गया है।

आपका निधन 24 मार्च सन् 1971 को हुआ था।

श्री राधेमोहन अग्रवाल

श्री अग्रवालजी का जन्म आगरा में 1 अगस्त सन् 1911 को हुआ था। आप हिन्दी की प्रमुख प्रकाशन-संस्था 'मैसर्स शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी' के सचालक तथा संस्थापक थे। आपने अपने जीवन का निर्माण स्वयं ही अपने अध्यवसाय

तथा योग्यता के बल पर किया था। आप राष्ट्रीय विचार-धारा से ओत-प्रोत ऐसे महानुभाव थे, जिन्होंने हिन्दी-प्रकाशन को व्यवसाय के साथ-साथ सेवा का भी एक उत्कृष्ट माध्यम माना था और इसी दृष्टि से आपने जहाँ व्यावसायिक प्रकाशन किए वहाँ कुछ ऐसे ग्रन्थ भी प्रकाशित किए जिनमे व्यवसाय कम और समाज-सेवा अधिक हुई है।

आपने स्वाधीनता-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेकर जहाँ दो बार कारावास की नृशंस यातनाएँ भोगी थीं वहाँ अपने जीवन के अन्तिम दिनों मे आपने 'रामचरित मानस' का सर्वांगीण पारायण करके अपनी स्वाध्यायशीलता के बल पर हिन्दी को कुछ ऐसे ग्रन्थ भी भेंट किए, जिनसे तुलसी-साहित्य के अध्येताओं को सर्वथा नई दिशा मिलती है। आपके द्वारा सम्पादित तथा संकलित ऐसी रचनाओ मे 'मानस मणि' (1969) तथा 'भरत-भक्ति' (1976) उल्लेखनीय है। आपने 'रमण महर्षि से बातचीत' नामक एक और ग्रन्थ का सम्पादन तथा प्रकाशन भी किया था। आपने अपने प्रकाशन-संस्थान से इतिहास, राजनीति, संस्कृति और धर्म-सम्बन्धी अनेक उल्लेखनीय ग्रन्थों का प्रकाशन किया था।

आपका निधन 23 मई सन् 1979 को हुआ था।

श्री राधेलाल 'पंकज'

श्री 'पंकज' का जन्म सन् 1856 में पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) के आसफ जान मोहल्ले में हुआ था। पहले आपके यहाँ सर्राफे की दुकान थी, किन्तु बाद मे दिल्ली के नया बाँस नामक मोहल्ले में पान की थोक आढ़त का काम करने लगे थे। आपको 'भगत जी' भी कहा जाता था।

आपका अधिकांश समय पीलीभीत के राजा श्री लालताप्रसाद के यहाँ ही व्यतीत होता था, किन्तु बाद में अपने स्वाभिमान को चोट पहुँचती देख आपने पीलीभीत को छोड़कर पूर्णतः दिल्ली-निवास ही कर लिया था।

आपकी प्रमुख रचनाओं में 'संसारोपवन वाटिका' (1916), 'अपूर्व नौका' (1917), 'रसोल्लास' (1918) तथा 'भुवन मोहिनी' (1927) के नाम विशेष उल्लेख्य हैं। इनमें से 'संसारोपवन वाटिका' पीलीभीत के राजा स्व० श्री लालताप्रसाद को समर्पित की गई थी और 'भुवन मोहिनी' 10 भागों मे प्रकाशित एक उपन्यास है।

पीलीभीत में रहते हुए आपने वहाँ के 'कवि मण्डल' की संस्थापना में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया था और उसकी अधिकांश गोष्ठियाँ आपके निवास-स्थान पर हुआ करती थीं।

आपका निधन 26 जनवरी सन् 1951 को हुआ था।

श्री राधेश्याम कथावाचक

श्री कथावाचकजी का जन्म 15 नवम्बर सन् 1890 को बरेली (उत्तर प्रदेश) के एक निर्धन ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। होश सँभालते ही आपको स्वाध्याय का शौक लगा और 8-10 वर्ष की अवस्था तक आते-आते आपने तुलसी-कृत रामायण का पूरा स्वाध्याय कर लिया। उसके साथ-साथ हारमोनियम आदि वाद्यों का भी आपने अच्छा अभ्यास कर लिया था। अपने मस्त स्वभाव तथा स्वस्थ शरीर के कारण आपने थोड़े से हीं अभ्यास से संगीत तथा वाद्य का अच्छा अभ्यास कर लिया और रामचरितमानस का कथा-वाचन करने लगे। एक बार जब राष्ट्रनायक पंडित जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू बहुत अस्वस्थ हो गई तब डॉक्टर की सलाह पर 'रामचरितमानस' की कथा सस्वर सुनाने के लिए किसी अच्छे कथावाचक की आवश्यकता हुई तब आपने ही एक मास तक 'आनन्द भवन' में कथा कहकर माता स्वरूपरानी नेहरू को प्रसन्न-वदन किया था। यह एक सुयोग ही था कि आप किसी मुकदमे के प्रसंग में इलाहाबाद गये हुए थे और आपने स्वयं ही यह दायित्व अपने ऊपर लेकर पंडित मोतीलाल नेहरू को निश्चिन्त किया था।

धीरे-धीरे आपकी ख्याति इतनी हो गई कि आपने स्वयं ही 'रामचरितमानस' के आधार पर अपनी प्रतिभा के बल पर 'राधेश्याम रामायण' नाम से एक नई रामायण की रचना कर डाली और अखिल देश मे उसकी ऐसी धूम मचा दी कि उसने राधेश्यामजी का अर्थ-संकट दूर कर दिया। आपकी इस रामायण की भाषा इतनी सरल तथा रोचक होती थी कि जनसाधारण इससे राम-कथा का आस्वाद सहज ही में ले लेता था। आप जब बोलते थे तो श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे। आपने लगभग 30 वर्ष तक देश के कोने-कोने में राम-कथा को लोकप्रिय बनाया था। यहाँ तक कि सभी राज-दरबारों में आपकी माँग होने लगी थी। आपकी कथा का श्रवण-लाभ जहाँ नेपाल-नरेश ने प्राप्त किया था वहाँ लोकमान्य बालगंगाधर तिलक-जैसे नेता भी उससे लाभान्वित हुए थे।

जब आपकी इस रामायण की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी तो आपने स्वयं ही सन् 1908 में 'श्री राधेश्याम पुस्तकालय' तथा 'राधेश्याम प्रेस' (1921) की स्थापना करके उसके द्वारा अपना प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे जब काम बढ़ता चला गया तो 'राधेश्याम प्रेस' का अपना पोस्ट आफिस भी हो गया और कुछ दिन बाद बरेली की नगरपालिका ने उस सड़क का नाम 'राधेश्याम मार्ग' ही रख दिया, जिस पर आपका मकान था। जब 'राधेश्याम रामायण' जन-साधारण में लोकप्रियता के चरम शिखर को छू गई तो आपने नाटक लिखने प्रारम्भ कर दिए। आपके नाटकों को 'रामायण' की भाँति ही जनता का असीम प्यार मिला तथा आपके 'वीर अभिमन्यु' जैसे अनेक नाटक सारे देश मे बहुत लोकप्रिय हुए। जिस प्रकार 'रामचरितमानस' के अनुकरण पर आपने 'राधेश्याम रामायण' की रचना की थी, उसी प्रकार कृष्ण-कथा को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से आपने 'कृष्णायन' की रचना भी की थी।

जब आपका प्रकाशन का कार्य बढ़ गया तो आपने अपने साहित्य के प्रचार के लिए 'भ्रमर' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्र भी प्रारम्भ किया था। कभी वह समय था जबकि 'भ्रमर' में सभी उच्चकोटि के लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित हुआ करती थीं। इस पत्र के सम्पादकीय विभाग में प्रख्यात पत्रकार श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय भी कुछ वर्ष तक रहे थे। उन दिनों बरेली में श्री उदयशंकर भट्ट भी रहा करते थे। 'श्री राधेश्याम प्रेस' के व्यवस्थापक श्री रामनारायण पाठक ने भी कुछ समय तक 'भ्रमर' का सम्पादन करके अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया था। 'भ्रमर' के प्रकाशन से पं० राधेश्याम कथावाचक की प्रतिष्ठा साहित्यिक जगत् में बहुत हुई थी। आपके नाटकों ने उस समय रंगमंच पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने में अभिनन्दनीय कार्य किया था, जब सर्वत्र 'पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों' का ही साम्राज्य था। आपने कुछ दिन 'न्यू अल्फ्रेड कम्पनी' तथा 'न्यू अल्बर्ट कम्पनी' में भी कार्य किया था।

आपके नाटकों में 'वीर अभिमन्यु' के उपरान्त जिनको अच्छी ख्याति मिली थी उनमें 'परिवर्तन', 'प्रह्लाद', 'श्रीकृष्णावतार', 'रुक्मिणी मंगल', 'श्रवणकुमार', 'ईश्वर-भक्ति', 'द्रोपदी स्वयंवर', 'शकुन्तला', 'महर्षि वाल्मीकि' तथा 'सती पार्वती' आदि प्रमुख हैं। हिन्दी-रंगमंच की समृद्धि में आपका योगदान अभूतपूर्व और अभिनन्दनीय है। जिन दिनों आप हिन्दी-नाटक-लेखन के क्षेत्र में उतरे थे, उन दिनों सर्वश्री नारायणप्रसाद 'बेताब', हरिकृष्ण 'जौहर', तुलसी-दत्त 'शैदा' तथा विश्वम्भरसहाय 'व्याकुल'-जैसे अनेक नाटक-लेखक अपनी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को दे रहे थे; परन्तु आपकी प्रतिभा सर्वथा निराली थी। आपको अपने संघर्षमय जीवन में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, इसकी कुछ झाँकी आपकी आत्मकथा 'मेरा नाटक-काल' में प्रस्तुत की गई है। *राम-कथा को लोक-नाट्य-शैली* में प्रस्तुत करने में पण्डित राधेश्याम कथावाचक ने जिस प्रतिभा का परिचय दिया था उसी तत्परता से नाटक के क्षेत्र में भी आपकी देन सर्वथा अभिनन्दनीय है।

आपका निधन सन् 1963 में हुआ था।

श्री राधेश्याम 'प्रवासी'

श्री 'प्रवासी' का जन्म उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद के कछौना नामक स्थान में जून सन् 1935 में हुआ था। आपने अल्पायु में ही 'बभ्रुवाहन', 'भारती को गर्व है', 'मतवाली व्रजांगना', 'निकुंज', 'शुक रम्भा', 'वीर बन्दा वैरागी', 'भीम प्रतिज्ञा' (काव्य), 'आग और अंगारे', 'लद्दाख का शहीद', 'बेबसी का सौदा' (नाटक), 'ज्वार भाटा' (उपन्यास) तथा 'प्रवासी की कहानियाँ' नामक अनेक कृतियों की रचना की थी, जो अभी तक अप्रकाशित ही हैं।

इसके अतिरिक्त आप 'सम्भवामि युगे-युगे' नामक एक और खण्ड-काव्य की रचना कर रहे थे। खेद है कि असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण आपका यह काव्य अधूरा ही रह गया। आपके गीतों का संकलन 'सर्जना' नाम से सन् 1960 में प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन 8 अप्रैल सन् 1964 को विचित्र रहस्यमयी स्थिति में हुआ था।

श्री रामआधार मिश्र 'कविराम'

आपका जन्म सन् 1913 में उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जनपद के पुवायाँ नामक स्थान में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा वहीं पर हुई थी।

'कल्पवृक्ष' (1940) आपकी प्रमुख रचना है। इसके अतिरिक्त भी आपने बहुत-कुछ लिखा था, जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में है।

आपका निधन 23 मार्च सन् 1974 को हुआ था।

श्री रामआसरे

श्री रामआसरेजी का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में 16 दिसम्बर सन् 1924 को हुआ था। आप छात्र-जीवन से ही राजनीति में सक्रिय भाग लिया करते थे। ट्रेड यूनियन और कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं में से आप एक थे। राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपको कई बार जेल भी जाना पड़ा था।

'नया सवेरा', 'नया पथ', 'जनयुग' आदि पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख सम्मानपूर्वक प्रकाशित होते रहते थे। साप्ताहिक 'मजदूर राजनीति' का आपने सन् 1969 से सन् 1973 तक सफल सम्पादन भी किया था। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'गान्धी का जिन्ना-पत्र-व्यवहार', 'माओ के देश में', 'उन्नीस सितम्बर जिन्दाबाद', 'सम्पूर्णानन्द एवार्ड : हमें क्या मिला ?', 'मई दिवस का इतिहास', 'अमरीकी साम्राज्यवाद का विरोध करो', 'समाजवाद और व्यक्ति' (अनुवाद : वेग्वेवारा द्वारा रचित), 'माओत्से तुंग
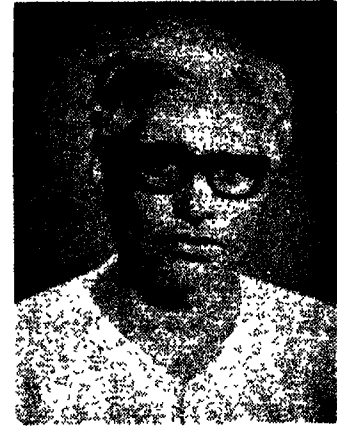
ग्रन्थावली' (अनुवाद : भाग 1 से 4 तक), 'फौजी रचनाएँ' (अनुवाद : माओत्से तुंग द्वारा रचित), 'कम्युनिस्ट शिक्षा' (अनुवाद : कालिनिन द्वारा रचित), 'कुँवारी धरती' (अनुवाद) और 'क्यूबा की कहानी' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन 11 अप्रैल सन् 1973 को हुआ था।

श्री रामकिशोर गुप्त (अलंकार शास्त्री)

श्री शास्त्रीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद के मण्डी धनौरा नामक स्थान में सन् 1890 में हुआ था। आपके पिता साहू छेदालाल नगर के एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे। इतने सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर भी रामकिशोर जी का ध्यान व्यवसाय की ओर न जाकर संस्कृत के पारायण की ओर हो गया और अपने स्वल्प प्रयास से ही संस्कृत की प्रथमा (1911), मध्यमा (1913) तथा शास्त्री (1915) परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके आपने अपने जीवन को पूर्णतः साहित्य को ही समर्पित कर दिया।

सर्वप्रथम आपने संस्कृत के 'मेघदूत' नामक काव्य का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था और फिर अपने ही नगर के निवासी और संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् श्री प्यारेलाल दीक्षित के सहयोग से सन् 1915 में 'मनोरमा' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्रिका प्रारम्भ की, जिसका प्रकाशन लगभग दो वर्ष तक सफलतापूर्वक होता रहा था। इस पत्रिका के पुराने अंकों को देखने पर आपकी सम्पादन-पटुता तथा विषय-चयन की क्षमता का सहज ही अनुमान हो जाता है। इस पत्रिका में उस युग के प्रायः सभी लेखक लिखा करते थे और इसमें प्रायः संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद ही छपा करते थे।

आपका निधन सन् 1919 में हुआ था।

श्री रामकुमार अग्रवाल

श्री अग्रवालजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद के मण्डी धनौरा नामक स्थान में सन् 1897 में हुआ था। मिडिल स्कूल में विधिवत् शिक्षा प्राप्त करके सन् 1916 में बी० टी० सी० करने के उपरान्त आप शिक्षक हो गए और अनेक वर्ष तक अध्यापन-कार्य करते रहे। अपने इस अध्यापन-काल में ही आपने कुछ शिक्षा-सम्बन्धी सहायक पुस्तकों की रचना की; और जब उनका पाठकों ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया तब उससे प्रभावित होकर आपने अपने नगर के ही एक मित्र श्री मागरमल गर्ग के साथ मिलकर 'गुप्ता ब्रदर्स' नाम से एक प्रकाशन-संस्था का सूत्रपात कर दिया तथा कालान्तर में उसकी ओर से एक शिक्षा-सम्बन्धी मासिक पत्र 'शिक्षा-सुधा' का प्रकाशन भी किया। 'शिक्षा-सुधा' के माध्यम से आपने जहाँ शिक्षा-जगत् की प्रायः सभी समस्याओं पर प्रकाश डालने वाली रचनाएँ प्रकाशित की वहाँ परीक्षोपयोगी लेख भी उसमें प्रचुरता से प्रकाशित होते थे।

'गुप्ता ब्रदर्स' संस्था की ओर से आपने जहाँ शिक्षा-सम्बन्धी अनेक उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन किया वहाँ कई ऐसी रचनाएँ भी प्रकाशित की जो छात्रों के अतिरिक्त अन्य साधारण पाठकों के लिए भी उपयोगी थीं। ऐसी पुस्तकों में 'सुमन संचय' और 'हिन्दी साहित्य कोश' उल्लेख-

नीय हैं। आपकी सूझ-बूझ तथा अथक परिश्रम से जहाँ 'गुप्ता ब्रदर्स' के प्रकाशन जनसाधारण में लोकप्रिय हुए वहाँ उस समय के बेसिक स्कूलों तथा मिडिल स्कूलों में भी उनकी उपयोगिता सिद्ध हुई।

आप कुशल व्यवस्थापक होने के साथ-साथ हिन्दी-लेखन में भी रुचि रखते थे। आपके द्वारा लिखित 'सत्यनारायण कथा' तथा 'अकल का पुतला' नामक पुस्तकें विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओं के लिए उपयोगी अनेक पाठ्य तथा सहायक पुस्तकें भी आपने संकलित तथा सम्पादित की थी। आप समाज-सेवा के क्षेत्र में भी सर्वथा अग्रणी स्थान रखते थे और आपकी ऐसी कर्मठता के परिणामस्वरूप मण्डी धनौरा में स्थापित आर्यसमाज, गान्धी विद्यालय इण्टर कालेज, थियेटरी क्लब तथा कुमार सभा आदि-संस्थाएँ आज तक इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही है।

आपका निधन 30 अक्तूबर सन् 1948 को हुआ था।

श्री रामकुमार भुवालका

श्री भुवालका जी का जन्म राजस्थान के रतनगढ़ नामक नगर में 4 मई सन् 1897 को हुआ था। आप प्रख्यात उद्योगपति होने के साथ-साथ अच्छे विचारक और साहित्यकार भी थे। गान्धीजी के सन् 1921 के असहयोग - आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण आप राजनीति में आए तथा सन् 1942 के आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया।

आपने राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के प्रसंग में 7 बार और सन् 1926 तथा सन् 1946 के हिन्दू-मुस्लिम-दंगों के जेल-यातनाएँ भी भोगीं दिनों में भी बंगाल में अभूतपूर्व सहायता-कार्य किया था। आप सन् 1954 में पश्चिम बंगाल विधान परिषद् तथा 1963 में राज्य सभा के सदस्य भी चुने गए थे।

आपके द्वारा संस्थापित 'भुवालका जनकल्याण ट्रस्ट कलकत्ता' देश के धार्मिक एवं शैक्षणिक कार्यों में यथाशक्य सहायता करता रहता है। आप सन् 1928 में 'बंगाल फ्लाइंग क्लब' के सदस्य बने और दमदम में वायुयान चलाना सीखकर 'बी' श्रेणी का लाइसेंस भी प्राप्त किया। आप सन् 1936 से वायुयान चलाते थे।

आप एक उत्कृष्ट समाज-सेवी और उद्योगपति होने के साथ-साथ हिन्दी के अच्छे लेखक भी थे। आपकी रचनाओं में 'निबन्ध निकुंज' और 'सामयिक चिन्तन' उल्लेखनीय है। आपकी 'मानस सर्वस्व' और 'चिन्तनिका' पुस्तकें प्रकाशनाधीन है।

आपका देहावसान 24 नवम्बर सन् 1979 को हुआ था।

श्रीमती रामकुमारी चौहान

श्रीमती रामकुमारी चौहान का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद के सीसामऊ में सन् 1899 में हुआ था। आपके पिता-माता (रावत भूपसिंह चन्देल 'भूप' तथा रूपकुमारी चन्देल 'रूप') भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। 13 वर्ष की आयु तक आते-आते आप अच्छी कविताएँ करने लगी थी। 15 वर्ष की आयु में आपका विवाह झाँसी के प्रसिद्ध वकील श्री रतनसिंह चौहान से हो गया। विवाह के कुछ समय बाद ही आपके पिताजी का असमय में स्वर्गवास हो गया और आपके अनुज श्री रामपालसिंह चन्देल 'प्रचण्ड' तथा छोटी बहन राजरानी भी आप ही के पास झाँसी आकर रहने लगे।

आप हिन्दी की उत्कृष्ट कवयित्री होने के साथ-साथ निबन्ध, नाटक, कहानी, संस्मरण और बालोपयोगी साहित्य की रचना करने में अत्यन्त दक्ष थीं। आपने झाँसी में 'अखिल

'भारतीय महिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना की थी और अनेक वर्ष तक उसकी अध्यक्षा भी रही थीं। ब्रज-भाषा और खड़ी बोली दोनों भाषाओं में आपने लगभग 50 वर्ष तक काव्य-रचना करके साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की थी। सन् 1929 में आपको अपने पति का वियोग सहना पड़ा था। पति के इस असह्य वियोग के उपरान्त आपने जो रचनाएँ की थीं वे आपकी 'निश्वास' नामक कृति में संकलित हैं। नियति के इस कर्कश आघात के कारण आपकी रचनाओं की दिशा ही बदल गई थी। आपकी रचनाओं में दार्शनिकता की जो पुट है, कदाचित् यही इसका कारण है। आपकी इस कृति पर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1935 में नागपुर में हुए 25वें अधिवेशन के अवसर पर 'सेकसरिया पुरस्कार' प्रदान किया गया था। सम्मेलन का यह अधिवेशन डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में हुआ था।

आपकी काव्य-प्रतिभा का अनुमान इसी बात से भली-भाँति हो जाता है कि 'निश्वास' की भूमिका 'सरस्वती' के तत्कालीन सम्पादक श्री देवीदत्त शुक्ल ने लिखी थी। उनकी यह पंक्तियाँ श्रीमती रामकुमारी चौहान के काव्य-व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए पर्याप्त है— "इन सब (रचनाओं) में करुण रस का जो परिपाक हुआ है वह श्रीमती चौहान को कविता-क्षेत्र की प्रथम पंक्ति में आसीन कर देने के लिए पर्याप्त है।" आपकी साहित्य-साधना से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द ने आपके लिए 50 रुपए मासिक की आर्थिक सहायता प्रदान की थी, जो आपको 5 वर्ष तक मिलती रही थी। आपने 'महिला राष्ट्रीय संगठन' के माध्यम से स्वाधीनता-आन्दोलन में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था।

आपका निधन 10 अक्तूबर सन् 1966 को हुआ था।

श्री रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर

श्री खाडिलकरजी का जन्म 1 अप्रैल सन् 1914 को काशी में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा महाराष्ट्र विद्यालय, काशी तथा हरिश्चन्द्र हाई स्कूल (अब कालेज) में हुई थी। सन् 1935 में हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से बी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त करके आपने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया और सर्वप्रथम दैनिक 'आज' में कार्य करते हुए विख्यात पत्रकार बाबूराव विष्णु पराडकर से विधिवत् दीक्षा ग्रहण की। 'आज' के बन्द होने पर सन् 1942 से सन् 1948 तक आपने क्रमश: 'खबर' (दैनिक), 'संसार' (दैनिक और साप्ताहिक) 'नागपुर टाइम्स' (अंग्रेजी दैनिक नागपुर) तथा 'अधिकार' (दैनिक लखनऊ) आदि कई पत्रों में कार्य किया था।

इसके बाद आप फिर 'आज' में आ गए और सन् 1955 में श्री पराडकरजी के निधन के उपरान्त तो आप उसके प्रधान सम्पादक हो गए। अपने पत्रकारिता के व्यस्त तथा कर्ममय जीवन में आप अनेक संस्थाओं से भी सम्बद्ध रहे थे। आपने जहाँ दो-दो बार 'उत्तर प्रदेश पत्रकार सम्मेलन' का अध्यक्ष पद सुशोभित किया था वहाँ आप सन् 1954 में पत्रकारिता के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन करने की दृष्टि से हालैण्ड भी गए थे। एक बार आप रूस की यात्रा पर भी गए थे।

लेखक के रूप में भी आपने अपनी प्रतिभा का समुचित प्रयोग किया था। आपकी प्रतिभा का सबसे सुपुष्ट प्रमाण यही है कि आपने पत्रकारिता के क्षेत्र में रहते हुए भी अनेक पुस्तकें लिखीं। आपकी लेखकीय प्रतिभा का परिचय आपकी 'परमाणु बम' (1945), 'रेडियो' (1945), 'कीमती आँसू' (1945), 'दो सिपाही' (1946), 'कल की

दुनिया' (1946), 'मालवीय जी' (1947), 'गांधी हत्या-काण्ड' (1949), 'हाइड्रोजन बम' (1951), 'आधुनिक पत्रकार कला' (1953), 'गंगा की आधुनिक कहानी' (1954), 'हालैण्ड में पच्चीस दिन' (1955), 'काशी विश्वनाथ मन्दिर' (1958), 'गणित चमत्कार' (1958) तथा 'बदलते रूस में' (1958) से मिलता है। आपकी 'आधुनिक पत्रकार कला' पुस्तक पर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की ओर से उसके सप्तम अधिवेशन के अवसर पर एक हजार रुपए का सम्मान-पुरस्कार प्रदान किया गया था।

खाडिलकरजी ने अपने लेखन का प्रारम्भ छात्र जीवन में मराठी भाषा से किया था, किन्तु बाद में आप हिन्दी की ओर आ गए और अपने को पूर्णतः उसकी समृद्धि के लिए ही समर्पित कर दिया।

आपका निधन 28 फरवरी सन् 1960 को लखनऊ में हुआ था।

श्री रामकृष्ण वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म उत्तर प्रदेश के वाराणसी नामक नगर में सन् 1859 में हुआ था। आपके पिता श्री हीरालाल खत्री सन् 1840 में पंजाब से पैदल चलकर वहाँ पहुँचे थे और उन्होंने वहाँ पर परचून की दुकान खोल ली थी। जब वर्माजी केवल एक वर्ष के ही थे तब आपके पिताजी का असामयिक निधन हो गया और आपकी माता ने बड़े कष्ट के साथ परिवार का भरण-पोषण किया। आपने जयनारायण कालेज से मैट्रिक की परीक्षा पास करके क्वीन्स कालेज में बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त की थी; किन्तु आप उसमें सफल न हो सके थे।

आपने संस्कृत का अध्ययन घर पर ही रहकर पंडित हरिभट्ट मानेकर नामक सज्जन से किया था। जयनारायण कालेज में पढ़ने के कारण उन पर ईसाई धर्म का रंग जमता जा रहा था, जो पंडित हरिभट्ट मानेकर के सम्पर्क में आने के कारण दूर हुआ था। जयनारायण कालेज क्योंकि ईसाई मिशनरियों का संस्थान था इसलिए उसमें बाइबिल की शिक्षाओं का अधिकाधिक प्रचार किया जाता था।

क्योंकि वर्माजी के परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी इसलिए आपने छात्रावस्था से ही ट्यूशनों द्वारा अपने परिवार की सहायता करनी प्रारम्भ कर दी थी। पढ़ना छोड़ने के अनन्तर आपने वहाँ के हरिश्चन्द्र स्कूल में नौकरी कर ली, किन्तु जब उसमें भी मन नहीं लगा तो आपने उसे छोड़कर पुस्तकों की एक दुकान प्रारम्भ कर दी। सौभाग्यवश आपकी यह दुकान चल निकली और सन् 1884 में धीरे-धीरे आपने 'भारत जीवन' नामक एक प्रेस भी खोल दिया तथा उसकी ओर से 'भारत जीवन' पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रेस तथा पत्र का नामकरण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने किया था। इस प्रेस से सबसे पहले आपने 'ईसाई मत खण्डन' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। आप भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख सदस्य थे। 'भारत जीवन' पत्र के माध्यम से जहाँ आपने अपने समकालीन साहित्यकारों में प्रमुख स्थान बनाया वहाँ 'कवि समाज' नामक एक ऐसी संस्था की स्थापना भी की जिसमें भरतपुर के राव कृष्णदेवशरण सिंह, ठा० जगमोहन-सिंह, सुमेरसिंह साहबजादे तथा अम्बिकादत्त व्यास प्रभृति कविगण

आकर अपनी समस्या-पूर्तियों को सुनाया करते थे। इस समाज में पढ़ी जाने वाली ऐसी सभी रचनाएँ कई भागों में प्रकाशित भी होती थीं। आप स्वयं भी ब्रजभाषा में 'बलवीर' और 'वीर कवि' उपनाम से बड़ी सरस काव्य-रचनाएँ किया करते थे। डॉ० श्यामसुन्दरदास ने आपकी ऐसी रचनाओं का संकलन 'बलवीर पचासा' नाम से प्रकाशित होने का उल्लेख अपनी 'हिन्दी के निर्माता' नामक पुस्तक में किया है।

वर्माजी प्रकृति से बड़े परिश्रमी और सहृदय व्यक्ति थे। आपने जहाँ अपने परिश्रम से अपने कारोबार को

उन्नत किया वहाँ अनेक साहित्यकारों को भी अपने प्रेस में कार्य देकर उनके भावी जीवन निर्माण में बहुत सहायता की। आपने जहाँ बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, बाबू रामचन्द्र वर्मा, श्री हरिकृष्ण जौहर तथा उनके छोटे भाई श्री कृष्ण हसरत की समय-समय पर बहुत सहायता की थी वहाँ बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' को अयोध्या की महारानी का निजी सचिव नियुक्त कराने में भी आपका अत्यधिक सहयोग रहा था। आप जहाँ उर्दू और बंगला आदि भाषाओं के जानकार थे वहाँ उनकी उत्कृष्टतम रचनाओं को हिन्दी में अनूदित करने की दिशा मे भी उल्लेखनीय कार्य किया था। आपके द्वारा अनूदित ऐसी रचनाओं में 'ठग वृत्तान्त माला', 'पुलिस वृत्तान्त माला', 'अमला वृत्तान्त माला', 'संसार दर्पण', 'वीर नारी', 'कृष्णाकुमारी', 'पद्मावती' और 'चित्तौड़ चातकी' के नाम स्मरणीय हैं। आपके द्वारा संस्कृत से हिन्दी मे अनूदित 'कथासरित्सागर' नामक रचना भी उल्लेख-योग्य है, जिसका प्रकाशन दस भागों में किया गया था। उर्दू, बंगला तथा संस्कृत के इन अनुवादों के अतिरिक्त आपने डॉ० वानलिम्बर्ग ब्राडअर द्वारा लिखित अँग्रेजी के ग्रन्थ 'अकबर' का अनुवाद भी दो भागों में प्रकाशित कराया था।

वर्माजी जहाँ अध्यवसायी साहित्यकार के रूप में अपनी प्रतिष्ठा बना रहे थे वहाँ 'नागरी प्रचारिणी सभा' की प्रवृत्तियों में भी आपका उल्लेखनीय योगदान रहता था। आपने आजीवन सभा के सभी कार्यों मे बढ़-चढ़कर भाग लिया था। आपको शतरंज खेलने का बहुत शौक था और पं० अम्बिकादत्त व्यास भी आपके साथ कचौड़ी गली में शतरंज में शामिल हुआ करते थे। आपने 'चेस क्लब' नामक एक संस्था की स्थापना भी की थी और सन् 1881 में आपने 'ताश कौतुक पच्चीसी' नामक एक पुस्तक भी लिखी थी, जिसका प्रकाशन हरिप्रकाश प्रेस, काशी से हुआ था।

आपका निधन 25 दिसम्बर सन् 1906 को जलोदर रोग के कारण हुआ था।

श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख'

श्री 'शिलीमुख' जी का जन्म सन् 1901 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नामक नगर में पं० नन्दकिशोर शुक्ल के यहाँ हुआ था। आपकी शिक्षा मुरादाबाद, आगरा, काशी तथा प्रयाग में हुई थी। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त आपने वहीं पर अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया और फिर डॉ० अमरनाथ झा की अनुशंसा पर आपकी नियुक्ति जयपुर के महाराजा कालेज मे हो गई और सन् 1956 तक (सेवा निवृत्ति का समय) आप इसी कालेज मे हिन्दी-संस्कृत के विभागाध्यक्ष रहे। जब 'राजस्थान विश्वविद्यालय' का निर्माण जयपुर मे हुआ तब आप ही उसके प्रथम विभागाध्यक्ष बने थे।
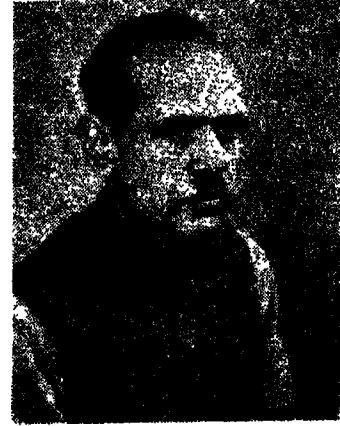
अपने छात्र-जीवन से ही आपमे लेखन की अभूतपूर्व प्रतिभा थी, जिसका प्रमाण आपकी वे असंख्य कृतियाँ हैं जो आपने परिश्रम पूर्वक लिखी है। जिन दिनो हिन्दी में प्रेमचन्द का उदय हुआ था तब आपने ही सबसे पहले उनकी रचनाओं मे अनेक विदेशी कृतियों का भद्दा अनुकरण होने का साहसपूर्ण अभियान हिन्दी की तत्कालीन प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में चलाया था। बाद में डॉ० अवध उपाध्याय भी 'शिलीमुख' जी के इस अभियान मे शामिल हो गए थे और प्रेमचन्दजी को सार्वजनिक रूप मे 'सुधा' के सम्पादक दुलारेलाल भार्गव के नाम लिखे अपने पत्र मे यह बात स्वीकार करनी पड़ी थी। वह पत्र 'सुधा' के नवम्बर सन् 1927 के अंक मे प्रकाशित हुआ है।

आप उच्चकोटि के समीक्षक, कथाकार, नाटककार और निबन्ध-लेखक थे। अनुवाद के क्षेत्र में भी आपकी देन सर्वथा अनन्य है। आपकी समीक्षा-कृतियों में 'प्रसाद की नाट्य-कला', 'कला और सौन्दर्य', 'शिलीमुखी', 'काव्य-जिज्ञासा', 'राष्ट्रभाषा और संस्कृति', 'सुकवि समीक्षा' तथा 'आलोचना-समुच्चय' के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य

हैं। कहानीकार के रूप में भी आपने अपनी विशिष्ट रचना-प्रतिभा का परिचय दिया था। आपकी कहानियों का संकलन 'स्वर्ण रेख' नाम से प्रकाशित हुआ है। उपन्यास लिखने में भी आप अत्यन्त पटु थे। आपका 'अमृत और विष' तथा 'ठोकर' नामक उपन्यास इसके उदाहरण हैं। आपने जहाँ मराठी के प्रख्यात कथाकार श्री हरनारायण आप्टे के उपन्यास का अनुवाद 'प्रणवीर' नाम से किया था वहाँ 'उसका प्यार' तथा 'हः हः हः' नाम से कुछ विदेशी कृतियों के अनुवाद भी प्रस्तुत किए थे। पहली रचना में कुछ कहानियाँ हैं और दूसरी प्रहसन है।

इन मौलिक तथा अनूदित रचनाओं के अतिरिक्त आपने कुछ छात्रोपयोगी रचनाओं का लेखन भी किया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'रचना रहस्य' (व्याकरण), 'अपठित हिन्दी और रचना-रहस्य', 'रामचरित मानस' (सुन्दर काण्ड की टीका व भूमिका), 'आधुनिक हिन्दी-कहानियाँ' (सम्पादन) 'अतीत स्मृतियाँ', 'यूरोप के महापुरुष' तथा 'निबन्ध-प्रबन्ध' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन 9 दिसम्बर सन् 1958 को हुआ था।

श्री रामकृष्ण श्रीवास्तव

श्रीवास्तवजी का जन्म 4 अक्तूबर सन् 1926 को जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। साहित्य के प्रति आपकी रुचि बचपन से ही रही थी। आपने नागपुर विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। नागपुर में आपका सम्पर्क श्री गजानन माधव मुक्तिबोध से हुआ, जिसके कारण आपकी सृजनात्मक प्रतिभा को काफी प्रोत्साहन मिला। कुछ दिनों बाद आपका सम्पर्क 'नवभारत' (नागपुर) के सम्पादक श्री शैलेन्द्रकुमार और पं० शिवनारायण द्विवेदी से भी हो गया। एक-सी विचार-धारा होने के परिणामस्वरूप प्रगतिशील चिन्तकों का एक परिवार-सा बन गया था। अपनी प्रगतिशील विचारधाराओं को साकार करने के उद्देश्य से ही आपने कुछ पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया; जिनमें से 'नयी दिशा' और 'नया खून' के सम्पादन का उत्तरदायित्व आपको ही सौंपा गया था। कुछ दिनों नागपुर रहने के बाद आप अकोला चले गए, जहाँ सीताबाई कला महाविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए। इसके साथ-साथ आपने वहाँ अनेक प्रकार से हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार किया। एक ओर जहाँ आपने अनेक उदीयमान प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करके हिन्दी मंच पर प्रतिष्ठित कराया वहाँ दूसरी ओर स्वयं भी

हिन्दी मंच का संचालन प्रगतिशील दृष्टिकोण से किया। कवि-सम्मेलनों के माध्यम से आपने वहाँ की जनता में हिन्दी के प्रति रुझान पैदा करके महत्त्वपूर्ण योगदान किया। आपकी कार्य-कुशलता और निस्वार्थ सेवा ने कुछ ही दिनों में नगरवासियों के हृदय में अपना अनन्य स्थान बना लिया। धीरे-धीरे वह समय आया जबकि आप उसी विद्यालय के प्राचार्य भी हो गए थे।

एक प्रगतिशील कवि होने के साथ-साथ आपकी समालोचना तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में की गई सेवाएँ भी भुलाई नहीं जा सकतीं। आपका 'चट्टान की आँखें' (1970) नामक काव्य-संग्रह एक ऐसी रचना है जिसका हिन्दी के मनीषियों ने उन्मुक्त मन से स्वागत किया था।

खेद का विषय है कि 29 सितम्बर सन् 1967 को आप दिल का दौरा पड़ने के कारण सदा के लिए इस संसार से विदा हो गए।

श्री रामगोपाल विद्यालंकार

श्री रामगोपाल विद्यालंकार का जन्म उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के हलदौर नामक कस्बे में सन् 1900 में हुआ था। आपके पिता श्री भवानीप्रसाद जी उस क्षेत्र के प्रख्यात

आर्यसमाजी थे। सन् 1921 में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त करके आप पत्रकारिता में आ गए तथा अन्त समय तक पत्रकार के रूप में ही जीवन-यापन किया।

जब नागपुर से श्री सतीदास मूँधड़ा और राधामोहन गोकुलजी के सम्पादन में 'प्रणवीर' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था तब आप उसमें सहकारी सम्पादक हो गए तथा फिर 'विश्वमित्र' के सम्पादक होकर कुछ दिन के लिए कलकत्ता चले गए। अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण 20 वर्ष आपने 'अर्जुन' दैनिक के सम्पादक के रूप में व्यतीत किए और फिर कुछ दिन तक 'हिन्दुस्तान' में भी कार्य किया था। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने दिल्ली से 'भारतवर्ष' दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया था तब श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे के उपरान्त आपने ही उसका सम्पादन-भार सँभाला था। कुछ वर्ष तक आप 'नवभारत टाइम्स' दैनिक के सम्पादक भी रहे थे।
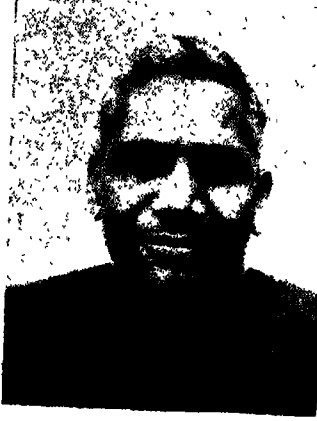
आप कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ गम्भीर प्रकृति के लेखक भी थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी', 'आचार्य रामदेव' और 'संस्कार विधि की टीका' प्रमुख है।

आपका निधन सन् 1963 में हुआ था।

श्री रामगोपाल वैद्य 'सौरभ'

श्री 'सौरभ' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर नगर के रेती नामक मोहल्ले में 12 नवम्बर सन् 1913 को हुआ था। आप खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे और आपकी रचनाएँ प्राय: श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' द्वारा सम्पादित 'सुकवि' नामक पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं। खेद है कि आपकी कोई रचना प्रकाशित नहीं हो सकी।

आपका निधन 13 नवम्बर सन् 1976 को हुआ था।

वैद्य श्री रामगोपाल शास्त्री

आपका जन्म पंजाब के लाहौर (अब पाकिस्तान) नामक नगर में 8 अगस्त सन् 1896 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वहाँ के जौड़े मोरी मोहल्ले के डी० ए० वी० स्कूल मे हुई थी। प्राइमरी तक वहाँ से शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपको अपने बड़े भाई जयगोपाल के साथ 'वैदिक आश्रम' में प्रविष्ट किया गया। आपने वहाँ पर पं० भक्तराम वेदतीर्थ की छत्रछाया मे संस्कृत की प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके सन् 1911 में पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा भी दी। शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपकी नियुक्ति संस्कृत शिक्षक के रूप में डी० ए० वी० स्कूल मोहनलाल रोड में हुई। आप उस विद्यालय में संस्कृत के साथ-साथ 'धर्म शिक्षा' भी पढ़ाया करते थे।

अपने अध्यापन-काल में ही आपने स्वाध्याय के बल पर अँग्रेजी का और भी अध्ययन कर लिया तथा आप आर्य सभाओं के वार्षिक उत्सवों में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार भी करने लगे। उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क आर्यसमाज के आचार्य विश्वबन्धु, पं० भगवद्दत्त तथा डॉ० गोवर्धनलाल दत्त आदि अनेक विद्वानों से हो गया और आप धीरे-धीरे इस क्षेत्र में अच्छी ख्याति प्राप्त करने लगे।

यह बात कदाचित् बहुत-से महानुभावों को मालूम नहीं होगी कि दिल्ली की 'आर्यसमाज बाजार सीताराम' की स्थापना वैद्य रामगोपाल द्वारा ही हुई थी। सन् 1919 में जब डी० ए० वी० कालेज प्रबन्ध समिति के प्रयास से लाहौर में 'लालचन्द पुस्तकालय' में पं० भगवद्दत्त बी० ए० की अध्यक्षता में 'वैदिक शोध विभाग' खोला गया तब शास्त्री जी को स्कूल से स्थानान्तरित करके उसमें बुला लिया गया। आपने निरन्तर 4 वर्ष तक घनघोर परिश्रम करके इस

विभाग की ओर से 'बृहत् सर्वानुक्रमणिका' तथा 'दन्त्योष्ठ विधि' नामक ग्रन्थों का प्रकाशन कराया। 'कौत्सव्य निघण्टु' तथा 'आर्ष ग्रन्थावली' का प्रकाशन पं० राजाराम शास्त्री ने किया था।

धीरे-धीरे आपकी गणना आर्यसमाज के प्रमुख विद्वानों में होने लगी और जब सन् 1924 में आर्यसमाज के लिए विद्वान् उपदेशक तैयार करने की दृष्टि से डी० ए० वी० कालेज की प्रबन्ध समिति ने 'दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय' की स्थापना लाहौर में की तथा पं० विश्वबन्धु शास्त्री को उसका आचार्य बनाया गया तब आपको वहाँ पर 'उपाचार्य' का पद सौंपा गया था। आप जहाँ कुशल वक्ता के रूप में प्रचुर ख्याति अर्जित कर चुके थे वहाँ 'ब्राह्म महाविद्यालय' में आकर आपने एक 'कुशल अध्यापक' के रूप में भी बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। इसी बीच देश में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ हो गया था और शास्त्रीजी धीरे-धीरे उससे प्रभावित होते जा रहे थे। अपने राष्ट्रीय विचारों के प्रचार के लिए आपने लाहौर में 'आर्य स्वराज्य सभा' की स्थापना कर दी और

अध्यापन के साथ-साथ आप राष्ट्रीय गतिविधियों में भी भाग लेने लगे। कालेज के अधिकारी शास्त्रीजी की इन गतिविधियों से असन्तुष्ट रहने लगे थे। उनके मत में शास्त्रीजी का यह कार्य उनके शैक्षणिक कार्यों में बाधा डालने वाला था। परिणामस्वरूप शास्त्रीजी ने सन् 1928 में वहाँ से त्यागपत्र दे दिया और आजीविका के लिए कोई और ऐसा कार्य करने का संकल्प सँजोया, जिसमें किसी की कोई बाधा न रहे।

अपने उक्त विचारों को मूर्त्त रूप देने की दृष्टि से आप अपने अनन्य मित्र श्री मस्तराम वैद्य के परामर्श पर आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए उनके पास रावलपिण्डी चले गए। 6 मास के अनवरत परिश्रम से आपने वहाँ पर रहकर आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ औषध-निर्माण की प्रक्रिया भी सीखी। इसी बीच आपका सम्पर्क योगी रामनाथजी से हुआ, जो एक सफल चिकित्सक होने के साथ-साथ धार्मिक प्रवृत्ति के अच्छे जन-नेता भी थे। 6 मास तक आयुर्वेद का अच्छा अध्ययन करने के उपरान्त आप लाहौर चले आए और वहाँ के 'शाह आलमी' दरवाजे के अन्दर नगर के 'मच्छी हट्टा' नामक प्रमुख बाजार में अपना चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे आपकी ख्याति शहर की तंग गलियों से निकलकर शहर के बाहरी क्षेत्र में भी हो गई और आप नगर के प्रमुख वैद्यों में गिने जाने लगे। सन् 1931-32 में आपने अपना चिकित्सालय शहर के बाहर 'चैम्बरलेन रोड' पर खोला, जो 'भारत-विभाजन' के समय तक वहीं रहा था।

'आर्य स्वराज्य सभा' नामक अपनी संस्था के माध्यम से आपने राष्ट्रीय जागरण का जो संकल्प अपने मानस में सँजोया था, धीरे-धीरे वह भी कार्यान्वित होने लगा और सरदार भगतसिंह-जैसे अनेक युवक आपके उस अभियान में सहायक हो गए। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सरदार भगतसिंह के पिता और दादा कट्टर आर्यसमाजी थे और उनके पिता सरदार किशनसिंह जी रावी रोड पर स्थित 'आर्य अनाथालय' के व्यवस्थापक भी थे। भगतसिंह को जब उन्होंने डी० ए० वी० स्कूल में विद्याध्ययन के लिए प्रविष्ट कराया था तब 'वैद्य रामगोपाल शास्त्री' ही वहाँ पर 'धर्म-शिक्षक' थे। जब शास्त्रीजी ने 'चैम्बरलेन रोड' पर अपना चिकित्सालय खोला था तब सरदार भगतसिंह लाला लाजपतराय द्वारा संस्थापित 'नेशनल कालेज' में पढ़ा करते थे। वे नियमित रूप से शास्त्रीजी से परामर्श करने आपके चिकित्सालय मे आया करते थे। जब अपनी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों के कारण वे लाहौर जेल में चले गए थे तब भी वहाँ से 'चिकित्सा' के बहाने आपके पास आने का उनका क्रम बराबर बना रहता था।

शास्त्रीजी ने अपने इस चिकित्सा-काल में उदर रोगों को समझने में विशेष प्रावीण्य प्राप्त कर लिया था। अपने इस ज्ञान मे और भी अधिक निपुणता प्राप्त करने की दृष्टि से आपने कनखल के प्रख्यात चिकित्सक और उदर-रोग-विशेषज्ञ पण्डित योगेश्वरजी के पास जाकर 4-5 मास तक विधिवत् ज्ञान अर्जित किया। उनसे शिक्षा प्राप्त करने के

अनन्तर तो शास्त्रीजी की ख्याति 'उदर रोग विशेषज्ञ' के रूप में ही हो गई। एक कुशल शिक्षक के रूप में आपने जैसी चूड़ान्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी, राष्ट्रीय नेता के रूप में भी आप वैसे ही लोकप्रिय थे। आपकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के बलिदान के अनन्तर आपने स्वल्प से प्रयास से लाहौर के गोल बाग में उनकी 'प्रस्तर प्रतिमा' स्थापित करा दी थी। इस प्रतिमा का अनावरण 'केन्द्रीय धारा सभा' के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विट्ठलभाई पटेल ने किया था। भारत-विभाजन के उपरान्त अब यह प्रतिमा 'आर्य स्वराज्य सभा' की ओर से शिमला में स्थापित कर दी गई है।

अपनी अनेक राष्ट्रीय गतिविधियों के कारण आपने जहाँ कारावास की नृशंस यातनाएँ भोगी वहाँ देश के विभाजन के उपरान्त दिल्ली आकर अपने कार्य को बिन्दु से प्रारम्भ करके सिन्धु का रूप दिया। आपके हिन्दी-प्रेम का सबसे ज्वलन्त उदाहरण यह है कि 'स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया' की करौल बाग शाखा में आपने चैकों पर हिन्दी में हस्ताक्षर करने के लिए प्रबल आन्दोलन किया। आपके इस आन्दोलन का ही सुपरिणाम यह हुआ था कि सरकार को सन् 1968 में यह घोषणा करनी पड़ी थी—"स्टेट बैंक की किसी भी शाखा के अधिकारियों ने यदि किसी व्यक्ति को चैकों पर हिन्दी में हस्ताक्षर करने में बाधा उपस्थित की तो उसके विरुद्ध कार्रवाई की जायगी।"

आप जहाँ सफल चिकित्सक, उत्कट देशभक्त और ध्येयनिष्ठ सामाजिक कार्यकर्त्ता थे वहाँ कुशल लेखक भी थे। आपके द्वारा लिखित ग्रन्थों में 'वेदों में आयुर्वेद', 'सत्यार्थ प्रकाश कवितामृत', 'आयुर्वेदीय बृहत् सर्वानुक्रमणिका', 'अथर्ववेदीय दन्त्योष्ठ विधि', 'कौत्सव्य निघण्टु', 'कठोपनिषद् हिन्दी अनुवाद', 'दस अवतारों की कल्पना' 'अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द', 'वेदों में आर्य-दास-युद्ध-सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन', 'वेदान्त : प्राचीन और नवीन', 'पंजाबी भाषा का मूल स्रोत--संस्कृत', 'वेदरत्न माला', 'हिन्दुत्व के द्वार फिर खोल दो', 'वेद के आख्यानों का यथार्थ स्वरूप', 'महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय विचार-धारा', 'हिंसा और अहिंसा का वैदिक स्वरूप समझिए', 'वैदिक रुद्र और शिवशंकर महादेव', 'बौद्ध वैद्यकम् तथा जीवक जीवनम्', 'क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है?', 'श्रीकृष्ण और उनकी नीति', 'भूल सुधार अर्थात् हिन्दू जाति के पतन के कारण और उत्थान-कार्यक्रम', 'सत्य और अहिंसा पर प्राचीन आर्यों के विचार', 'गीत सुमन', 'आहार दर्पण', 'पेट की बनावट तथा उसमें होने वाले रोगों का वर्णन' और 'संस्कार विधि मण्डनम्' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 9 जून सन् 1974 को हुआ था।

श्री रामगोपाल शर्मा 'रत्न'

श्री शर्मा जी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर में सन् 1896 में हुआ था। आप हिन्दी, उर्दू तथा फारसी के अतिरिक्त संस्कृत तथा अँग्रेजी भाषाओं के भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपने जहाँ अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किए थे वहाँ सन् 1945 से सन् 1950 तक मुरादाबाद से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'अरुण' का सम्पादन भी सफलतापूर्वक किया था।

आपके द्वारा हिन्दी-पद्य में अनूदित 'किरातार्जुनीयम्' तथा 'रघुवंश' के अतिरिक्त 'गीतशतक' नामक रचना भी अभी अप्रकाशित ही है।

आपका निधन जुलाई सन् 1978 में 82 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री रामचन्द्र चिन्तामणि श्रीखण्डे

श्री श्रीखण्डे जी का जन्म महाराष्ट्र प्रदेश के कोल्हापुर जनपद के शेलोनि नामक स्थान में 5 अक्तूबर सन् 1884 को हुआ था। आप व्यवसाय से डॉक्टर (एम० बी० बी० एस०) होते हुए भी साहित्य तथा संस्कृति के अनन्य प्रेमी थे। आपने भारतीय सेना में चिकित्सक के रूप में अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक कार्य किया था।

आप मराठी के उत्कृष्ट साहित्यकार होने के साथ-साथ हिन्दी के भी अनन्य प्रेमी थे। आपके हिन्दी-प्रेम का सबसे

ज्वलन्त प्रमाण यह है कि आपने गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का मराठी भाषा में पद्यानुवाद 'सुश्लोक मानस' नाम से किया था जो सन् 1955 में प्रकाशित हुआ था। आपने तुलसी के दोहों का भी 'तुलसी दोहावली' नाम से मराठी में पद्यानुवाद किया था। यह अनुवाद भी सन् 1969 में प्रकाशित हुआ था। इन दोनों ग्रन्थों में पद्यों के साथ गद्यानुवाद भी दे दिया गया है।

आपको इन सभी अनुवादों के कारण 'सुश्लोक श्रीखण्डे' की उपाधि से विभूषित किया गया था। आपने जहाँ हिन्दी की 'रामचरितमानस' को मराठीभाषी जनता में लोकप्रिय बनाया था वहाँ अनेक संस्कृत-ग्रन्थों को भी मराठी में अनूदित किया था।

सेना में कार्य करने के कारण आपको 'किंग्स कमीशन' मिलने के साथ-साथ 'कैप्टेन' का पद भी प्राप्त हुआ था।

आपका निधन 1 अक्तूबर सन् 1961 को हुआ था।

श्री रामचन्द्र पीताम्बरदास आचार्य

श्री आचार्यजी का जन्म गुजरात प्रदेश के जूनागढ़ नामक नगर में 1 जून सन् 1913 को हुआ था। आप महात्मा गान्धी के आह्वान पर हिन्दी-प्रचार के पुनीत कार्य में संलग्न हुए थे और प्रायः यह कहा करते थे—"महात्मा गान्धी के रचनात्मक कार्यों में अपनी शक्ति के अनुसार लगे रहना, मैं अपना फर्ज समझता हूँ।" इसी भावना के वशीभूत होकर आपने गुजरात प्रदेश के बलसाड़ हिन्दी-प्रचार-केन्द्र का संगठन करके अनेक हिन्दी-प्रचारक तैयार किए थे।

आपका निधन 21 नवम्बर सन् 1979 को हुआ था।

श्री रामचन्द्र वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म 8 जनवरी सन् 1890 को काशी के एक चोपड़ा परिवार में दीवान परमेश्वरीदास के यहाँ हुआ था। आपके पूर्वज पंजाब के गुजराँवाला (पाकिस्तान) जिले के अकालगढ़ नामक कस्बे से सम्बद्ध थे। वर्माजी जब 8-9 वर्ष के ही थे तब आपके पिताजी का देहान्त हो गया। आपकी माता ने ज्यों-त्यों करके आपका पालन-पोषण किया। साधनहीनता के कारण आपकी विधिवत् शिक्षा आठवें दर्जे से आगे न हो सकी। इन्हीं दिनों आपका सम्पर्क श्रीकृष्ण वर्मा नामक युवक से हो गया, जो आपके सहपाठी और हिन्दी के प्रख्यात लेखक तथा 'भारत जीवन' के सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा के भतीजे थे। श्री रामकृष्ण वर्मा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अनन्य मित्र थे और उनके सम्पर्क से ही वे साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुए थे। वर्मा जी ने धीरे-धीरे भारत जीवन प्रेस में जाना प्रारम्भ कर दिया और वहाँ पर आने वाले अनेक साहित्यकारों के सम्पर्क ने ही आपको साहित्य-सेवा के पथ पर अग्रसर किया।

वर्माजी 14-15 वर्ष की अवस्था से ही हिन्दी में लिखने लगे थे और 'भारत जीवन' प्रेस में निरन्तर बैठने के कारण आपका साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान भी परिपुष्ट होता जा रहा था। वास्तव में भारत जीवन प्रेस के कारण ही आप प्रूफ-संशोधन तथा अनुवाद आदि करने की प्रक्रिया में पारंगत हो सके। इसी बीच सन् 1907 में जब लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के मराठी पत्र 'केसरी' का हिन्दी संस्करण माधवराव सप्रे के सम्पादन में नागपुर से 'हिन्दी केसरी' नाम से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ तब वर्माजी भी उसी में चले गए। जब काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से कोश विभाग की स्थापना हुई तो आप

नागपुर छोड़कर कोश-विभाग में आ गए। आपकी कार्य-क्षमता तथा लगन से सभा के मन्त्री श्री श्यामसुन्दरदास और कोश विभाग के सम्पादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बहुत प्रभावित हुए और आपको अपना सहायक बना लिया। उन दिनों कोश के सम्पादक-मण्डल में शुक्लजी के अतिरिक्त बाबू बालकृष्ण भट्ट, लाला भगवानदीन, बाबू अमीरसिंह तथा जगन्मोहन वर्मा आदि थे। इसी बीच जब डॉ० श्यामसुन्दरदास की नियुक्ति जम्मू-कश्मीर में हो गई और कोश विभाग भी उनके साथ चला गया तब आपने पटना के 'बिहार बन्धु' नामक पत्र में जाकर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। जिन दिनों बाबू श्यामसुन्दरदास के काशी आ जाने के कारण कोश विभाग काशी आ गया तो आप भी पटना छोड़कर उसीमें कार्य करने लगे और कोश की समाप्ति के समय (सन् 1930) तक बराबर उसीमें रहे। आपके इस काल के सहयोग की प्रशंसा बाबू श्यामसुन्दरदास ने कोश की भूमिका में इस प्रकार की है—"इस कोश को प्रस्तुत करने में दूसरा मुख्य स्थान है बाबू रामचन्द्र वर्मा का। उनमें प्रत्येक बात को शीघ्र समझ लेने की शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढग जानते हैं। और इस प्रकार इस विशाल कोश के सम्पादन का उनको भी पूरा-पूरा श्रेय है।" कोश विभाग की समाप्ति के बाद आपने 'साहित्यरत्नमाला कार्यालय' नामक एक प्रकाशन संस्थान का सूत्रपात कर दिया जिसकी ओर से डॉ० श्यामसुन्दरदास, श्री जयशंकरप्रसाद तथा पं० जनार्दन भट्ट-जैसे लेखकों की रचनाओं के अतिरिक्त अपनी भी रचनाएँ प्रकाशित की थीं।

वर्माजी जहाँ एक अच्छे कोशकार थे वहाँ प्रखर भाषा-वैज्ञानिक भी। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय आपकी 'अच्छी हिन्दी', 'हिन्दी प्रयोग', 'मानक हिन्दी व्याकरण', 'शब्द और अर्थ', 'शब्द साधना', 'शब्दार्थ दर्शन' और 'कोश कला' नामक कृतियों में मिलता है। आपने अपने कर्ममय जीवन में अपनी लेखनी को कभी विराम ही नहीं दिया था। इसका उज्ज्वल प्रमाण आपकी सौ से अधिक कृतियाँ हैं। उक्त रचनाओं के अतिरिक्त आपने बंगला, मराठी, गुजराती और अँग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के उत्कृष्ट ग्रन्थों का अनुवाद भी किया था। ऐसे ग्रन्थों में 'हिन्दी ज्ञानेश्वरी', 'दास बोध', 'हिन्दू राज तंत्र', 'साम्यवाद', 'धर्म की उत्पत्ति और विकास' 'छत्रसाल', 'पुरानी दुनिया', 'प्राचीन मुद्रा', 'राइफल' तथा 'देवलोक' आदि प्रमुख हैं। आपकी बहुमुखी साहित्य-सेवाओं को दृष्टि में रखकर जहाँ भारत सरकार की ओर से सन् 1958 में आपको 'पद्मश्री' का अलंकरण प्रदान किया गया था वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् 1966 में अपनी सम्मानोपाधि 'साहित्य वाचस्पति' भी प्रदान की थी। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के प्रयास से सन् 1968 में भी वर्माजी का हरिद्वार में अभिनन्दन किया गया।

आपका निधन 18 जनवरी सन् 1969 को काशी में हुआ था।

श्री रामचन्द्र शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद के हसनपुर नामक कस्बे में 13 दिसम्बर सन् 1895 को हुआ था। आप वैसे व्यवसाय से शिक्षक थे, किन्तु लेखन तथा सम्पादन में भी आपकी गहन रुचि थी। आपने जहाँ अनेक वर्ष तक 'अध्यापक' पाक्षिक और 'हैदराबाद सत्याग्रह पत्रिका' का सम्पादन किया था वहाँ आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग महिला विद्यापीठ तथा हिन्दी साहित्य परिषद्, चन्दौसी आदि अनेक संस्थाओं से भी सक्रिय रूप से सम्बद्ध थे।
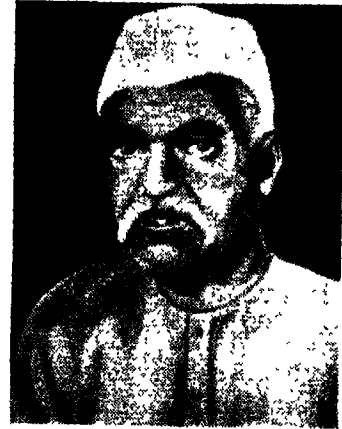
आपकी रचनाओं में 'हिन्दी कल्पलता', 'वैदिक कर्म पद्धति', 'आदर्श गीतावली' (तीन भाग), 'सुमन संचय', 'हिन्दी साहित्य कोष' तथा 'निबन्ध चन्द्रिका' आदि प्रमुख है। इनमें से 'सुमन संचय' और 'हिन्दी साहित्य कोश' के कई संस्करण हुए थे। इन पुस्तकों का प्रकाशन गुप्ता ब्रादर्स, मण्डी

धनौरा (मुरादाबाद) से हुआ था।

आपका निधन 30 अगस्त सन् 1957 को हुआ था।

श्री रामचन्द्र शर्मा आर्योपदेशक

श्री शर्माजी का जन्म अलीगढ़ जनपद के नगला केसों उर्फ नगरिया (सासनी) नामक ग्राम में सन् 1884 में हुआ था। आपके पिता श्री केसरीराम शर्मा उस क्षेत्र के अच्छे ज्योतिषी थे। पं० रामचन्द्र शर्मा आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के अनन्य अनुयायी थे और आपने उनसे ही वेद, शास्त्र, उपनिषद् तथा दर्शन आदि का ज्ञान प्राप्त किया था।

आपने आर्यसमाज के उत्सवों में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करने का नियम-सा बना लिया था और आपके भाषणों को जनता बड़ी रुचि तथा एकाग्रता से सुना करती थी। आपने आर्य वैदिक धर्म के प्रचार के लिए जावा, सुमात्रा, रंगून तथा जापान आदि देशों की यात्रा भी की थी। एक बार जब फर्रुखाबाद में हिन्दू-मुस्लिम दंगा होने की नौबत आ गई तब आपने वहाँ आर्यसमाज का उत्सव कराकर उसे समाप्त किया था। इससे प्रसन्न होकर वहाँ के कलक्टर ने पण्डितजी को एक बन्दूक प्रदान की थी।

एक उच्चकोटि के वक्ता होने के साथ-साथ आप उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपने 'अमरसिंह राठौर', 'नील देवी', 'द्रोपदी चीर', 'चूड़ावत सरदार', 'वीर भजनावली', 'नवीन भजनावली', 'कुरीति खण्डन', 'वीरांगना कलावती' और 'क्षत्राणी वीरमती' आदि 18 पुस्तकें लिखी थीं।

आपका निधन सन् 1960 में हुआ था।

श्री रामचन्द्र शर्मा 'महारथी'

महारथीजी का जन्म 12 जुलाई सन् 1897 को पंजाब के जालन्धर जिले के नकोदर नामक स्थान में एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। बचपन में ही आपके माता-पिता का देहान्त सन् 1905 में प्लेग की संक्रामक बीमारी में हो गया था और आपका पालन-पोषण श्री शिवनारायण भटनागर नाम के एक सज्जन ने किया था, जो उन दिनों वहाँ हेडमास्टर थे। प्राइमरी की शिक्षा नकोदर में प्राप्त करके मिडिल आपने जीरा (फीरोजपुर) के स्कूल से किया था। सन् 1912 में दयालसिंह हाईस्कूल लाहौर से मैट्रिक की परीक्षा देकर आगे पढ़ाई के लिए आपने दयालसिंह कालेज में प्रवेश ले लिया। उन दिनों श्री टी० एल० वास्वानी उसके प्रिंसिपल थे, जो बाद में साधु टी० एल० वास्वानी के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रख्यात वैज्ञानिक सर शान्तिस्वरूप भटनागर भी उसी कालेज में इनसे 2 वर्ष आगे पढ़ते थे। उन दिनों प्रो० पी० ई० रिचर्ड्स की पत्नी श्रीमती नोरा रिचर्ड्स लाहौर में शेक्सपीयर के अँग्रेजी नाटकों को स्टेज किया करती थीं। सर शान्तिस्वरूप भटनागर और महारथीजी दोनों ही उन नाटकों में भाग लिया करते थे। श्रीमती नोरा रिचर्ड्स के प्रयत्न से ही 'दीना की बारात' नामक पंजाबी एकांकी भी सन् 1913 में वहाँ स्टेज किया गया था। थोड़े दिनों बाद परिस्थितियों की जटिलता ने आपको वहाँ से उखाड़ फेंका और सन् 1915 में आपने रणधीर कालेज कपूरथला से एफ० ए० की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की।

एफ० ए० करने के उपरान्त युवक रामचन्द्र शर्मा पहले तो दिल्ली के समीपवर्ती पलवल नामक कस्बे में एक मिडिल स्कूल के हेडमास्टर हो गए और बाद में दिल्ली की पहाड़ी धीरज नामक बस्ती के सैंट स्टीफेंस स्कूल की शाखा में उसके हेडमास्टर बनकर आ गए। बाद में जैन एंग्लो संस्कृत हाई-स्कूल दरीबा में आ गए और वहाँ आकर आपने सर्वप्रथम डालटन-शिक्षा-पद्धति का महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया। कुछ दिन आपने कूचा नटवाँ के एक छोटे से स्कूल में भी अध्यापन किया था। फिर यहाँ के हिन्दू कालेज से आपने धीरे-धीरे सन् 1919 में बी० ए० किया। उन दिनों श्री मौलिचन्द्र शर्मा आपके सहपाठी थे। दिल्ली में आते ही आपको जन-सेवा के कामों में दिलचस्पी हो गई। फलतः आपने यहाँ सन् 1915 में 'इन्द्रप्रस्थ सेवक मण्डली' नामक संस्था की स्थापना करके स्काउटिंग के माध्यम से युवकों से सेवा-भावना का संचार करना प्रारम्भ कर दिया। उनमें अध्य-यन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के निमित्त 'मारवाड़ी पुस्त-

कालय' की स्थापना भी कर दी गई। आपके इस प्रयत्न में सेठ केदारनाथ गोयनका, ला० डिप्टीमल जैन और श्री चन्द्रभान अग्रवाल (रिटायर्ट जज हाईकोर्ट इलाहाबाद) आदि प्रमुख सहायक थे। हर्ष का विषय है कि 'इन्द्रप्रस्थ सेवक मण्डली' और 'मारवाड़ी पुस्तकालय' नामक दोनों संस्थाएँ आज भी राजधानी की प्रशंसनीय सेवा कर रही हैं। उसी समय राजधानी में हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार करने की दृष्टि से आपने 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की थी। यह 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' ही आज 'दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के रूप में यहाँ की जनता की उल्लेखनीय सेवा कर रही है। कदाचित् यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि सन् 1944 में महारथीजी के अथक प्रयत्न से ही 'दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन' को यह नया रूप दिया गया था। आपने 'इन्द्रप्रस्थ नाट्य परिषद्' की भी स्थापना की थी, और उसके माध्यम से राजधानी में हिन्दी-रंगमंच का सूत्रपात किया था। इसके प्रारम्भिक सदस्यों में पाकिस्तान के चीफ जस्टिस मि० अब्दुल रहमान भी थे।

स्काउटिंग आन्दोलन और जन-सेवा की उस अदम्य प्रेरणा ने शर्माजी को चुप नहीं बैठने दिया और एक दिन वह भी आया जब आपका वह संकल्प, वह सपना 'महारथी' मासिक के रूप में समाज के सामने साकार हुआ। वीर-रस-प्रधान इस मासिक का पहला अंक जब सितम्बर सन् 1925 में विजयदशमी के प्रेरक पर्व पर प्रकाशित हुआ, तब जनता ने उसको सिर-आँखों पर उठा लिया और धीरे-धीरे वह न केवल भारतीय युवकों का प्रेरणा-स्रोत बना, प्रत्युत हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में भी उसने अपना उल्लेखनीय तथा महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। यह उसको ही सौभाग्य प्राप्त है कि उसके माध्यम से ऐसे अनेक लेखक हिन्दी-जगत् के सामने आए, जो आज साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। सर्वश्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्रकुमार, ऋषभचरण जैन, कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर', प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', जहूरबख्श 'हिन्दी कोविद', देवीप्रसाद धवन 'विकल', सुन्दरलाल त्रिपाठी तथा ठा० राजबहादुरसिंह आदि ऐसे अनेक ख्यातनामा लेखक हैं जिनको 'महारथी' ने ही आगे बढ़ाया था। ऋषभचरण जैन की सबसे पहली कहानी 'मिट्टी के रुपये' सन् 1926 में 'महारथी' में ही प्रकाशित हुई थी। श्री भगवानदास केला की 'भारतीय नागरिकता' नामक पहली पुस्तक 'महारथी' में ही धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुई थी। श्री जैनेन्द्रकुमार और आचार्य चतुरसेन भी 'महारथी' में कार्य करते थे। प्रख्यात पत्रकार श्री नन्दकिशोर तिवारी 'चाँद' का सम्पादन छोड़कर अप्रैल सन् 1928 में दिल्ली आ गए थे और 'महारथी' पर सम्पादक के रूप में उनका नाम भी प्रकाशित होता था। सर्वश्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', हरिकृष्ण 'प्रेमी', शान्तिप्रिय द्विवेदी, सोहनलाल द्विवेदी, मोहनलाल महतो 'वियोगी' तथा दुर्गादत्त त्रिपाठी आदि अनेक ख्यातिप्राप्त कवियों की प्रारम्भिक कविताएँ 'महारथी' की फाइलों में आज भी उनके साहित्यिक शैशव की साक्षी दे रही हैं। कदाचित् यह बहुत कम पाठक जानते होंगे कि हिन्दी के प्रख्यात आलोचक आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी भी कभी कविताएँ लिखते थे। वाजपेयीजी की वीररसपूर्ण अनेक रचनाएँ 'महारथी' में देखी जा सकती हैं। इसका प्रमाण डॉ० रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित 'निराला और उसकी साहित्य-साधना' नामक पुस्तक के तृतीय भाग में प्रकाशित निरालाजी को लिखे गए वाजपेयीजी के पत्रों से मिलता है।

देश के युवकों और महिलाओं में तप, त्याग, बल, बलिदान और साहस की उदात्त भावनाओं का संचार करने के लिए 'महारथी' ने जहाँ 'तेजोसि तेजो मयि धेहि' को अपना आलम्बन बनाया वहाँ 'जियो और जीने दो' का पुण्य-पुनीत आदर्श भी अपने सामने रखा। वह जहाँ 'वीर भोग्या वसुन्धरा' का समर्थक बना वहाँ उसने 'मन्युरसि मन्यु मयि धेहि' तथा 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य.' के उज्ज्वल ध्येय को भी अपनाया। उसने 'शक्ति अंक (अक्तूबर 1927), 'राजपूत अंक' (अक्तूबर 1928), 'प्रताप अंक' (मई 1929) तथा

'मराठा अंक' (अक्तूबर 1929) आदि विभिन्न प्रेरक विशेषांकों के माध्यम से अपनी इस भावना की पुष्टि की। कदाचित् यही कारण था कि महारथीजी ने अपने पत्र का स्त्रैण (जनाना) नाम न रखकर 'महारथी' (सिपाही) रखा था। जब इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था, उन दिनों 'सरस्वती', 'मनोरमा', 'माधुरी', 'श्रीशारदा' तथा 'लक्ष्मी' आदि जनाने नामों वाली पत्रिकाएँ ही अधिक प्रकाशित होती थीं। बाद में भी 'वीणा', 'वाणी', 'सुधा', 'सहेली', 'कमलिनी', 'कमला' तथा 'छाया' आदि अनेक पत्रिकाएँ ऐसी ही निकली थीं। वीर-रस-प्रधान रचनाएँ प्रकाशित करना ही 'महारथी' का प्रमुख उद्देश्य था। अतीत के विलुप्त वैभव की प्राप्ति और वर्तमान की दासता को समाप्त करना ही उसका लक्ष्य था। 'महारथी' के पहले अंक में प्रकाशित श्री रामनरेश त्रिपाठी की 'अतीत-चिन्ता' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ उसके उद्देश्य की सार्थकता सिद्ध करती-सी लगती है :

सौभाग्य का विकास था प्रत्येक धाम में
इतिहास का निवास था प्रत्येक नाम में
उत्साह था, विवेक था प्रत्येक काम में
आनन्द था प्रभात में, सन्तोष शाम में
जब देश था स्वतन्त्र, यहाँ भी बहार थी।
तब एक से बढ़ एक यहाँ थे महारथी॥

दिल्ली के उर्दू-प्रधान वातावरण में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम जाग्रत करना भी 'महारथी' का एक लक्ष्य था।

'महारथी' के उद्देश्यों तथा लक्ष्य की पूर्ति के लिए श्री शर्माजी ने जी-जान की बाजी लगा दी और अपने उत्साह में रंच-मात्र भी कमी न आने दी।

अक्तूबर सन् 1925 से मार्च सन् 1936 तक 'महारथी' मासिक के 54 अंक प्रकाशित हुए। अपने प्रकाशन के पहले दिन से ही राष्ट्रीय जागरण का समर्थक होने के कारण उसे सामाजिक विभीषिकाओं, आर्थिक कठिनाइयों और ब्रिटिश नौकरशाही के कोप से जो घनघोर संघर्ष करना पड़ा, उसकी कहानी ही रामचन्द्र शर्मा को 'महारथी' बनाने वाली सिद्ध हुई। रात-दिन सरकारी आर्डिनेंसों, प्रतिबंधों और जुरमानों की पाशविक यन्त्रणाओं को झेलकर भी आपने 'महारथी' का प्रकाशन बन्द नहीं होने दिया, यह आपकी जीवन्तता का ज्वलन्त साक्षी है। एक समय ऐसा भी आया था, जबकि सन् 1929 में सरदार भगतसिंह 'महारथी' कार्यालय में ही निवास किया करते थे। आपके तथा शिववर्मा के लेख 'महारथी' में छपा करते थे। ब्रिटिश पार्लमेंट में फायरिंग के समय दिया गया मदनलाल ढींगरा का प्रख्यात वक्तव्य भी अकेले 'महारथी' ने ही छापा था। प्रख्यात क्रान्तिकारी लाला हरदयाल भी 'महारथी' के पोषक लेखकों में से थे। इसकी कीमत 'महारथीजी' को बहुत मँहगी चुकानी पड़ी, किन्तु उनको इसका रंच-मात्र भी मलाल नहीं था। अनेक बार ब्रिटिश नौकरशाही ने उन पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए, लेकिन 'सिपाही पत्रकार' महारथी न झुकना तो सीखा ही न था। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के बलिदान पर तो आपने कमाल ही कर दिखाया था। दिसम्बर सन् 1928 में आपने 'महारथी' का 'लाजपत अंक' प्रकाशित करके कलकत्ता-कांग्रेस के अवसर पर स्वयं वहाँ जाकर श्री जवाहरलाल नेहरू के हाथों में दिया था। यह सारा विशेषांक केसरिया रंग के कागज पर लाल स्याही में छापा गया था। बीच-बीच में 'महारथी' पर नौकरशाही ने अनेक प्रतिबन्ध लगाए, लेकिन उनसे आपकी प्रगति में कोई बाधा नहीं आई। अप्रैल सन् 1930 में अचानक प्रेस-आर्डिनेंस के लागू होने, प्रेस और पत्र से बड़ी-बड़ी जमानतें माँगे जाने पर जुरमाना न देने की नीति के फलस्वरूप विवश होकर 'महारथी' मासिक को बन्द कर देना पड़ा।

देश की स्वतन्त्रता के सजग सिपाही 'महारथी' जी चुप कैसे बैठे रह सकते थे। अन्त में आपने बिना नया डिक्लेरेशन लिये ही 'वीर-रस-प्रधान' सचित्र मासिक पत्र 'महारथी का दैनिक संस्करण' नाम से उसे 4 जून 1930 को प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। श्री रामगोपाल विद्यालंकार भी तब इसके सम्पादकीय विभाग में थे। उन दिनों कलकत्ता से डिक्लेरेशन लेना पड़ता था, इसलिए मासिक का 'दैनिक संस्करण' निकालने की युक्ति ही आपके लिए कारगर सिद्ध हुई। इसी दैनिक का 20 नवम्बर सन् 1930 को लाला लाजपतराय की दूसरी निधन-तिथि पर 16 पृष्ठ का एक विशेषांक प्रकाशित हुआ। इस अंक में प्रकाशित 'कफन की कीलें' शीर्षक अग्रलेख के कारण महारथीजी पर मुकद्दमा चला और इस पर तुर्रा यह कि उस अग्रलेख का अँग्रेजी अनुवाद भी सरकारी अधिकारियों ने महारथीजी से ही कराया था। मुकद्दमा चलता रहा और पत्र भी निकलता

रहा। मुकद्दमे में महारथीजी को भारतीय दंड विधान की 124 ए धारा के अन्तर्गत 9 मास की सजा हुई। पहले आप कुछ दिन दिल्ली जेल में रहे। फिर बाद में मुलतान भेज दिए गए। वहाँ पर उन दिनों आपके साथ बाबा खड़कसिंह, केदारनाथ गोयनका और चौधरी शेरजंग भी थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 6 मई सन् 1931 को जब दिल्ली में पहली बार गोली चली थी तब महारथी-कार्यालय में ही 18 डॉक्टरों ने यहाँ की जनता की सेवा की थी। उन दिनों 'महारथी' का प्रेस तथा कार्यालय चाँदनी चौक में उस बिल्डिंग में था जहाँ कभी 'लक्ष्मी रेस्टोरेंट' रहा था। फलत: 9 जनवरी सन् 1931 को अन्तिम अंक निकालकर इसका प्रकाशन स्थगित करते हुए 'महारथी ट्रस्ट के हाथों में' शीर्षक पंक्तियों में आपने जो भाव व्यक्त किए थे, वे अपनी कहानी स्वयं कह रहे हैं। आपने लिखा था—

"महारथी गत 6 वर्षों से चुपचाप यथाशक्ति समाज-सेवा कर रहा है, जनता ने उसको खूब अपनाया है और सरकार ने उस पर निरन्तर प्रहार करके उसकी सेवाओं की उपयोगिता को स्वीकार किया है। प्रेस-आर्डिनेंस के आधार पर 'महारथी' से भी सबसे प्रथम जमानत माँगी गई थी। तब से अब तक सदा बराबर चेतावनियों का ताँता लगा रहा और अब तो प्रेस-आर्डिनेंस का पुनर्जन्म ही हो गया, क्योंकि लेखों और कहानियों आदि पर अधिकारियों को आपत्ति थी, अत: जन-साधारण की सेवा कर सकें इस विचार से अग्रलेख बन्द कर दिए गए। परन्तु 'महारथी' की कविताओं और समाचारों की शैली भी खटकती है, अत: उस पर आक्षेप और कड़ी निगाह जारी है। कार्यालय पर पहरा रहता है और प्रेस-आर्डिनेंस का कोड़ा सिर पर है। मुझसे सरकार चिढ़ी हुई है। उधर 'प्रताप' और 'सैनिक' का गला घुट ही चुका है। ऐसी परिस्थितियों में कब क्या हो जाए, यह सोचकर 'महारथी' को एक उत्तरदायी ट्रस्ट के हाथों में सौंपने की योजना की गई है।"

'महारथी' में वैसे तो सारी ही सामग्री शासन-विरोधी रहा करती थी, परन्तु चित्रों तथा कार्टूनों के बीच छपने वाली उसकी कविताओं ने तो नौकरशाहों की नींद हराम ही कर रखी थी।

ऐसी एक कविता की बानगी यहाँ प्रस्तुत है :

जैसी यह लड़ाई आज छाई भूमि भारत पै,
अपुनी ही सानी की निसानी रह जाएगी।
एक ओर शक्तिशाली ब्रिटिश गुमानधारी,
बूढ़े के अगाड़ी क्या गुमानी रह जाएगी।।
केते भये राजा, और होएँगे कितेक यहाँ,
कौन की कहो तो राजधानी रह जाएगी।
थूकेगो जहान सरकार के किये पै प्रिय,
गान्धी की अहिंसा की कहानी रह जाएगी।।

जब जेल से लौटकर आए तो देखा सब खेल खत्म था। इतने दिन की साधना सब व्यर्थ हो गई थी। प्रेस तितर-बितर हो चुका था और सब कर्मचारी चले गए थे। विवश होकर कुछ मनचले मित्रों के परामर्श पर सन् 1931 में शाहदरा में 26 बीघे जमीन लेकर 'महारथी गढ़' की स्थापना कर दी और उस बस्ती का नाम 'महारथी कालोनी' रख दिया। यह कालोनी आज भी वहाँ 'महारथी' के वैभव की कहानी कह रही है। महारथीजी के आग्रहपूर्ण अनुरोध पर ही आचार्य चतुरसेन शाहदरा आकर बसे थे। सन् 1936 में 'महारथी' को साप्ताहिक का रूप दिया गया, जो 4-6 महीने चलकर बन्द हो गया। उन दिनों वह 20 × 30 चौथाई आकार के 50 पृष्ठों का निकलता था और एक आने में मिलता था। इसमें अनेक इकरंगे और तिरंगे चित्र तथा कार्टून भी प्रकाशित होते थे। इस साप्ताहिक के 'ईद अंक' तथा 'दीवाली अंक' विशेष महत्त्व रखते हैं। सन् 1937 में श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के विशेष अनुरोध पर वे दैनिक 'सैनिक' में आगरा चले गए। पालीवालजी क्योंकि उन दिनों उत्तर प्रदेश के मंत्रिमंडल में चले गए थे, इसीलिए उन्हें महारथीजी के सहयोग की आवश्यकता पड़ी थी। उन दिनों हरिपुरा-कांग्रेस होने वाली थी। 'सैनिक' को बड़ा आकार आपने ही वहाँ जाकर दिया था। उन दिनों सम्पादक के स्थान पर श्री जीवाराम पालीवाल का नाम इसलिए छपता था क्योंकि आपने अपना नाम देने से इन्कार कर दिया था। सन् 1940 में आपने भारतीय परिवारों में नए गार्हस्थिक अर्थशास्त्र का प्रचार करने तथा उनमें सामाजिक उत्तर-दायित्व की भावनाएँ भरने की दृष्टि से 'मा' नामक मासिक पत्रिका का सूत्रपात किया। सामग्री, मुद्रण तथा साज-सज्जा आदि की दृष्टि से यह पत्रिका सर्वथा अनूठी थी। खेद है कि उसके केवल 7 अंक ही प्रकाशित हुए। लेकिन इसकी उप-

योगिता इसीसे सिद्ध है कि इसका एक-एक अंक उस समय 25 रुपए तक में खरीदा गया था। श्री केदारनाथ सारस्वत के अनुरोध पर ऋषिकेश से प्रकाशित होने वाले 'चरित्र निर्माण' नामक मासिक पत्र का सम्पादन भी कुछ दिन तक आपने दिल्ली से किया था।

भारत-विभाजन में जहाँ लाखों घर उजड़ गए वहाँ 'महारथी' जी भी कैसे पीछे रहते! किसी समय 'महारथी' के मारू बाजे की मोहक वाणी से जो व्यक्ति देश के असंख्य युवकों को प्रेरणा का अमर सन्देश देता था, काल-गति से वही समाज की निगाहों से ऐसा ओझल हुआ कि किसी को उसके सुख-दुःख की परवाह तक न रही। जो हर समय अपने को होम देने को तत्पर रहता था, वही समाज की कृपा-कोर का मोहताज बन गया। देश की स्वाधीनता की लड़ाई के लिए जिसने अनेक नवयुवक तैयार किए, वही सैनिक असहाय अकेला देश के सूत्रधारों की कथनी और करनी के अन्तर को मूक भाव से टुकुर-टुकुर निहारता रहा। 'महारथी' के इस्पाती व्यक्तित्व में सोया हुआ 'सिपाही' कभी-कभी करवट लेकर अपनी भावनाओं को प्रतिफलित करने का जो स्वप्न लेता था उसीका साकार रूप आपका 'मोहल्ला सुधार समिति' का आन्दोलन है। इस आन्दोलन के माध्यम से सच्ची समाज-सेवा के सहारे उत्कृष्ट नागरिक निर्माण करने की आपकी जो अमिट साध थी वह आपको चुप नहीं बैठने देती थी। अपने इस स्वर्णिम संकल्प को मूर्त्त रूप देने की दृष्टि से आपने 'दिल्ली समाचार' नामक जो पाक्षिक पत्र आज से 26 वर्ष प्रारम्भ किया था वह आपके जीवन के अन्त (3 मार्च सन् 1978) तक अत्यन्त सादगी से अपनी बात कहने में लगा था।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के अगोना नामक ग्राम में सन् 1884 में हुआ था। शुक्लजी की प्रारम्भिक शिक्षा पंडित गंगाप्रसाद नामक अध्यापक की अध्यक्षता में 6 वर्ष की आयु में प्रारम्भ हुई थी। आपके पिता हमीरपुर जनपद की राठ तहसील में सुपरवाइजर कानूनगो होकर गए थे। वहाँ पर ही शुक्लजी ने उन पंडित जी से अक्षरारम्भ किया था। इसके उपरान्त आप वहाँ के स्कूल में हिन्दी तथा उर्दू इतनी तन्मयतापूर्वक पढ़ने लगे थे कि 2 वर्ष में ही आप चौथी कक्षा में आ गए थे। आप अपनी दादी से 'रामायण' तथा 'सूरसागर' और पिताजी से 'रामचन्द्रिका' एवं भारतेन्दु के नाटकों को बड़े चाव से सुना करते थे। इसके उपरान्त शुक्लजी के पिताजी की नियुक्ति सन् 1892 में सदर कानूनगो के रूप में मिर्जापुर में हो गई। वहाँ पर ही सन् 1901 में आपने मिशन स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर आप इण्टर की परीक्षा देने के लिए प्रयाग आकर वहाँ के कायस्थ पाठशाला इण्टर कालेज में प्रविष्ट हो गए। गणित में कमजोर होने के कारण आपने वकालत पढ़नी चाही, लेकिन उसमें भी सफल न हो सके। अपनी पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त आप प्रायः साहित्य-सम्बन्धी और पुस्तकों का स्वाध्याय करते रहते थे।

इसी बीच केवल 12 वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह काशी के एक ज्योतिषी-परिवार में हो गया। मिर्जापुर में रहते हुए आपका सम्पर्क सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल से हो गया था, जिसके कारण हिन्दी की ओर आपका झुकाव और भी दृढ़ता के साथ हुआ। एक बार जब आप काशी गए थे तब भारतेन्दुजी के मकान के पास ही आपका श्री केदारनाथ पाठक से परिचय हो गया। पाठकजी उन दिनों नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकाध्यक्ष थे। उनकी कृपा से आपको अच्छी-अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय करने का सहज ही सुअवसर मिल गया। जब सन् 1909-10 में नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से शब्दकोश बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया तब आप उसमें सहायक सम्पादक के रूप में कार्य करने के लिए आ गए।

वैसे मिर्जापुर में रहते हुए आप वहाँ के कलक्टर के कार्यालय में कुछ दिन लिपिक रहने के अतिरिक्त वहाँ के मिशन स्कूल में ड्राइंग-टीचर भी रहे थे, लेकिन स्वतन्त्र और खरी प्रकृति के होने के कारण आपने इन कार्यों में तनिक भी रुचि नहीं ली। आपकी इस प्रकार की प्रवृत्ति का परिचय 'हिन्दुस्थान रिव्यू' नामक अँग्रेजी पत्र में प्रकाशित आपके 'ह्वाट हैज इण्डिया टू डू' नामक लेख से मिलता है। साहित्य-रचना के प्रति आपका झुकाव अपने बाल्य-काल से ही था।

जब आप केवल 13 वर्ष के थे तो खेल-खेल में ही आपने एक 'हास्य विनोद' नाटक की रचना कर डाली थी। 'संयोगिता स्वयंवर' और 'दीप निर्वाण' नामक नाटको को देखकर इनके मन में भी नाटक लिखने की भावना उत्पन्न हुई थी। 16 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते आपने कविता लिखनी प्रारम्भ कर दी थी और आपकी पहली रचना 'मनोहर छटा' नाम से 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। सन् 1896 में आपने एक ऐसी लेख-माला भी अँग्रेजी में लिखी थी जिसमें उन लेखकों की खबर ली गई थी जो अनूदित ग्रन्थों को मौलिक बतलाने का दुस्साहस किया करते थे। आपके इन लेखों से उन दिनों हिन्दी के पत्रों में बहुत दिनों तक हलचल रही थी।

नागरी प्रचारिणी सभा में आकर और पंडित केदारनाथ पाठक का मित्रतापूर्ण सहयोग पाकर आपके लेखन का बहुमुखी विस्तार हुआ। विभिन्न भाषाओं के उत्कृष्टतम ग्रन्थों के स्वाध्याय से आपके लेखन में गम्भीरता भी आती गई और आपने अनेक समीक्षात्मक तथा मनोवैज्ञानिक निबन्धों की रचना करके हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान दिया। आपने जहाँ एडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' नामक ग्रन्थ का 'बुद्ध चरित' नाम से ब्रजभाषा में सरल पद्यानुवाद किया वहाँ जोसिफ एडीशन के 'प्लेजर्स ऑफ इमेजीनेशन' नामक ग्रन्थ का 'कल्पना का आनन्द' नाम से गद्यानुवाद करके अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया था। निरन्तर स्वाध्याय-रत रहने के कारण आपने बंगला भाषा पर भी असाधारण अधिकार कर लिया था, जिसके परिणामस्वरूप आपने बंगला के सुप्रसिद्ध लेखक श्री राखालदास वन्द्योपाध्याय के 'शशांक' नामक उपन्यास का हिन्दी अनुवाद किया था। साहित्य तथा मनोविज्ञान की गूढ़तम प्रवृत्तियों के विश्लेषण में आपने इतनी दक्षता प्राप्त कर ली थी कि जिसके कारण आपको 'रस मीमांसा'-जैसी पुस्तक के निर्माण में कोई कठिनाई नहीं हुई। गम्भीर साहित्यिक समीक्षाओं के लेखन की दिशा में भी आपने अपनी प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग करके साहित्य-जगत् को 'गोस्वामी तुलसीदास' तथा 'महाकवि सूरदास'-जैसे गम्भीर ग्रन्थ प्रदान किए। आपके द्वारा सम्पादित 'तुलसी ग्रन्थावली' और 'जायसी ग्रन्थावली' तथा 'भ्रमर गीत सागर' नामक ग्रन्थों की भूमिकाएँ आपके चूड़ान्त काव्य-ज्ञान का सुपुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में आपने हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिगत विकास प्रस्तुत करके हिन्दी-साहित्य के इतिहास का जो सूत्रपात किया था कालान्तर में वही आपकी समीक्षा-सम्बन्धी शैली और गम्भीर ऐतिहासिक दृष्टि का ज्वलन्त प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हुआ। आपकी 'विश्व प्रपंच' नाम पुस्तक यद्यपि अँग्रेजी की 'रिडल ऑफ दि यूनिवर्स' का अनुवाद है लेकिन उसकी भूमिका में शुक्लजी ने अपने जिस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का स्वरूप प्रस्तुत किया है वह आपका सर्वथा मौलिक है। शुक्लजी के लेखन में जो गम्भीर मनो-विश्लेषण तथा साहित्य के सूक्ष्मतम तत्त्वों का गहन ज्ञान परिलक्षित होता है उसकी पृष्ठ-भूमि में आपका बहुआयामी स्वाध्याय है। शुक्लजी ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में साहित्य को जिस समीक्षा-पद्धति की दृष्टि दी वह आपकी सर्वथा अपनी है। अपने निबन्धों में आप जहाँ समाज के मनोविज्ञान पर दृष्टि रखते थे वहाँ साहित्य-मीमांसा के क्षेत्र में आपकी दृष्टि तुलनात्मक रहती थी। आपका यह दृष्टिकोण बहुत कुछ विदेशी साहित्य की सममामयिक चिन्तन-धारा से प्रभावित होता था।

शुक्लजी की समीक्षा-पद्धति और आपके अध्ययन की व्यापकता को दृष्टि में रखकर कोश का कार्य समाप्त हो जाने के बाद महामना पंडित मदनमोहन मालवीय ने आपको काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता के रूप में बुला लिया। उन्हीं दिनों सन् 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में हुई साहित्य परिषद् की अध्यक्षता भी आपने ही की थी। इसके उपरान्त सन् 1937 में आप वहाँ विभागाध्यक्ष भी हो गए। विश्वविद्यालय में जाकर शुक्लजी के साहित्यिक व्यक्तित्व में और

भी निखार आया। आपके कार्य-काल में हिन्दू विश्वविद्यालय में जो छात्र पढ़ा करते थे उनमें से अधिकांश कालान्तर में साहित्य-जगत् में अत्यन्त प्रतिष्ठित रहे हैं। आपकी गम्भीर मनोवैज्ञानिक समीक्षा-पद्धति का पूर्ण परिपाक आपकी 'चिन्तामणि' (दो भाग) नामक पुस्तक में देखने को मिलता है।

आचार्य शुक्लजी को हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा का अद्वितीय अध्वर्यु माना जाता है; और यह बात किसी सीमा तक सही भी है। आपसे पूर्व साहित्य का प्रवृत्तिगत विश्लेषण करके ऐसा कार्य करने का साहस किसी ने नहीं किया था। यद्यपि आपसे पूर्व 'शिवसिंह सरोज'-जैसे ग्रन्थ भी हिन्दी में प्रकाशित हो चुके थे किन्तु उनमें इतिहास को उस दृष्टि से नहीं जाँचा-परखा गया था जिससे शुक्लजी ने अपने इतिहास की रचना की थी। शुक्लजी ने अपनी तात्कालिक सीमाओं में साहित्य को जिस दृष्टि से निरखा और परखा था वह आपकी अपनी विशेषता थी। यह खेद की ही बात है कि अभी तक हम रंच-मात्र भी शुक्लजी के इतिहास से आगे नहीं बढ़े हैं।

आपका निधन सन् 1940 में श्वास के दौरे के कारण हुआ था।

श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

श्री 'चन्द्र' जी का जन्म आगरा जिले के ढोलापुर नामक ग्राम में सन् 1904 में हुआ था। आपके पिता श्री बिहारीलाल श्रीवास्तव एक सरकारी कर्मचारी थे। श्रीवास्तवजी की उच्च शिक्षा आगरा में हुई थी। आपने आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी तथा दर्शन-शास्त्र में एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग की 'साहित्य-रत्न' परीक्षा भी ससम्मान उत्तीर्ण की थी। आपके पिताजी की हार्दिक इच्छा यह थी कि आप वकालत करें। फलस्वरूप एल-एल० बी० करके आपने आगरा में ही प्रैक्टिस प्रारम्भ कर दी, किन्तु आपका मन वकालत में नहीं लगा और आप अपना अधिकांश समय आगरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा' के कार्यों में ही लगाने लगे।

'चन्द्र' जी हिन्दी के उन सेवकों में थे जिन्होंने अपना सर्वस्व हिन्दी के अध्ययन, अध्यापन तथा प्रचार में लगा दिया था। कायस्थ-परिवार में जन्म लेने कारण बी० ए० तक आपने उर्दू-फारसी ही पढ़ी थी; परन्तु 'रामचरितमानस' के निरन्तर पारायण ने आपको हिन्दी की ओर उन्मुख किया और एक दिन ऐसा आया कि आपने हिन्दी के प्रति अपने जीवन को ही समर्पित कर दिया।

'चन्द्र' जी के साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ आगरा में बाबू गुलाबराय, पं० हरिशंकर शर्मा और महेन्द्रजी के सान्निध्य में हुआ था। 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा संचालित 'हिन्दी-साहित्य विद्यालय' के प्रधानाचार्य के रूप में अनेक वर्ष तक कार्य करने के अतिरिक्त आप आगरा से प्रकाशित होने वाले आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के साप्ताहिक पत्र 'आर्य-मित्र' में भी सहकारी सम्पादक रहे थे। उन दिनों 'आर्य-मित्र' के सम्पादक श्री हरिशंकर शर्मा थे। इसके पश्चात् आप ग्वालियर से प्रकाशित होने वाले रियासत के साप्ताहिक पत्र 'जयाजी प्रताप' के भी कई वर्ष तक सम्पादक रहे थे।

क्योंकि आपके मानस में हिन्दी साहित्य के गम्भीर अध्ययन के कारण निरन्तर नई-नई उद्भावनाएँ उठती रहती थीं इस कारण पत्रकारिता को सर्वात्मना तिलांजलि देकर आप अध्यापन के क्षेत्र में चले गए और अपने जीवन के अन्त तक अध्यापक ही रहे। पहले तो आपकी नियुक्ति ग्वालियर रियासत के शिक्षा विभाग में ही हुई थी, परन्तु जब बाद में मध्यप्रदेश का निर्माण हुआ तब आप ग्वालियर के 'विक्टोरिया कालेज' के बाद माधव कालेज, उज्जैन एवं होलकर कालेज, इन्दौर में हिन्दी के प्राध्यापक रहे। होलकर कालेज इन्दौर से सेवा-निवृत्त होने के उपरान्त आप

नवीन महाविद्यालय, शाजापुर तथा 'अम्बाह महाविद्यालय' के प्राचार्य भी रहे थे। जिन दिनों आप इन्दौर में थे तब आपने कई वर्ष तक वहाँ की 'मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति' की मासिक मुख पत्रिका 'वीणा' का सम्पादन करने के अतिरिक्त वहाँ की अनेक साहित्यिक गतिविधियों में भी अभिनन्दनीय योगदान दिया था।

एक निष्ठावान शिक्षक होने के साथ-साथ आप उच्च-कोटि के लेखक भी थे। आपकी 'यादगार' (1940), 'पाँच धागे' (1943), 'रचना रहस्य' (1944), 'काव्य की परिभाषा' (1951) तथा 'कबीर साखी-सुधा' (1954) आदि अनेक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन रक्त-चाप के कारण 10 मार्च सन् 1972 को अम्बाह (मुरैना) में हुआ था।

श्री रामजीलाल कपिल

श्री कपिलजी का जन्म मुजफ्फरनगर जनपद के बरला नामक ग्राम के एक ब्राह्मण-परिवार में 22 सितम्बर सन् 1897 को हुआ था। बाल्यावस्था से ही आपका झुकाव कविता की ओर था और जब आप कक्षा 3 में पढ़ते थे तब अपने गुरु श्री जयभगवान (सिसौली - निवासी) की कृपा से कविता लिखने लगे थे। प्रख्यात साहित्यकार और छन्द - शास्त्र-मर्मज्ञ श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' को आप अपना गुरु मानते थे। उनकी 'छन्द प्रभाकर' तथा 'काव्य प्रभाकर' नामक कृतियों ने कपिलजी को छन्द-शास्त्र का गहन ज्ञान कराया था।
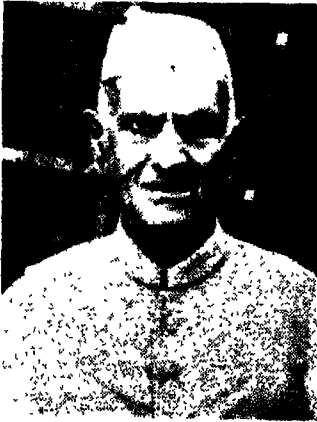
वैसे तो कपिलजी व्यवसाय से पटवारी थे किन्तु आप पूर्णतः साहित्य को ही समर्पित थे। कभी वह समय था जब पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ मंडल के कवि-सम्मेलनों में आपकी रचनाओं की धूम रहती थी। 'समस्या-पूर्ति' के क्षेत्र में आपका उन दिनों कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। उत्कृष्ट कवि होने के साथ आप ज्योतिषी भी थे। आपकी 'पंचांग प्रबोध' नामक रचना आपके ज्योतिष-ज्ञान को सिद्ध करती है।

आपका निधन सन् 1972 में हुआ था।

पण्डित रामजीलाल शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म मेरठ जनपद की हापुड़ तहसील के अतराड़ा ग्राम में सन् 1876 में एक निर्धन किन्तु विद्वान् ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। बाल्यकाल में शर्माजी को मातृ-बिछोह सहना पड़ा था। पिता पण्डित श्रीराम शर्मा व्याकरण के आचार्य तथा वैद्य-विद्या में निष्णात थे। उनके पितामह ऋषि-तुल्य पं० मोतीराम भी अपने समय के संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। उनके संस्कृत-ज्ञान की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। फलतः सैंकड़ों ज्ञान-पिपासु विद्यार्थी उनसे संस्कृत पढ़ने आया करते थे। पं० मोतीराम संस्कृतज्ञ होने के साथ-साथ परम वैष्णव तथा ईश्वर-भक्त थे। अपने पितामह तथा पिता के इस संस्कृत-अनुराग का प्रभाव बालक रामजीलाल के जीवन पर भी पड़ा। आपने अपने ग्राम की पाठशाला में हिन्दी की पाँचवीं कक्षा तक ही शिक्षा पाई थी। किन्तु पहले तथा बाद में खुर्जा के पास धरपा ग्राम के पण्डित त्रिवेणीदत्तजी के श्रीचरणों में बैठकर आपने संस्कृत भाषा और साहित्य का ज्ञानार्जन किया। अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा प्रतिभा के बल पर शर्माजी ने अल्पकाल में ही संस्कृत तथा वैद्यक के सभी श्रेष्ठ ग्रन्थों का अनुशीलन कर डाला था।

शर्माजी जब बीस वर्ष के थे तब आपके पिताश्री जीविका-निर्वाह के लिए हापुड़ में आ बसे थे। हापुड़ आकर वहाँ के प्रसिद्ध परिवार 'कोठी वालों' से उनका सम्पर्क हुआ, जिनसे उन्हें अपने काम को जमाने में पर्याप्त सहयोग मिला। हापुड़ नगर में ही शर्माजी का विवाह हुआ और वहीं रहकर शर्माजी के हृदय में हिन्दी-साहित्य के प्रति अनुराग पैदा हुआ। यह अनुराग कालान्तर में आपके जीवन

के लक्ष्य हिन्दी-सेवा के रूप में प्रकट हुआ। हिन्दी-सेवा के प्रति दृढ़-संकल्प और आस्था-भाव ने आपका भाग्य परिवर्तन कर दिया। आप सन् 1899 में अपने परिवार के साथ मेरठ चले गए। मेरठ के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता पं०तुलसीराम स्वामी ने आपकी योग्यता से प्रभावित होकर आपको अपने प्रेस में प्रूफ-संशोधक के रूप में 15 रुपए मासिक वेतन पर रख लिया।

स्वामी प्रेस में नौकरी करने के साथ ही शर्माजी का साहित्यानुराग प्रगाढ़ होता गया। फलस्वरूप आपने हिन्दी-संस्कृत के दो ट्रैक्ट 'टके सेर मुक्ति' और 'टके सेर लक्ष्मी' लिखकर प्रकाशित कराए, जिनका साहित्य-जगत् में पर्याप्त समादर हुआ। तदनन्तर आपकी साहित्यिक प्रतिभा की कली शनैः-शनैः प्रस्फुटित होने लगी, आपमें मातृभाषा के प्रति अनुराग के अंकुर फूटने लगे और हिन्दी-सेवा का भाव आपके मन में हिलोरें लेने लगा। पं० तुलसीराम स्वामी के सम्पर्क में आने के बाद शर्माजी पूर्णतः आर्यसमाज की विचारधारा के रंग में रँग गए। आप आर्यसमाज के मंच से जन-सेवा के कार्यों में भी रुचि लेने लगे। इधर वैदिक प्रेस, अजमेर को एक संस्कृतज्ञ प्रूफ-संशोधक की आवश्यकता थी। शर्माजी तुलसीराम स्वामी की अनुमति प्राप्त कर वैदिक प्रेस, अजमेर चले गए, जहाँ आप 20 रुपए मासिक पर कार्य करने लगे।

वैदिक प्रेस, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित 'परोपकारिणी सभा' के द्वारा संचालित होता था और उसमें अधिकांशतः स्वामीजी के ग्रन्थ ही मुद्रित होते थे। वहाँ शर्माजी ने शीघ्र ही अपनी कार्य-कुशलता की धाक जमा दी। वहाँ पर आप अनेक विद्वानों के सम्पर्क में आए। उन दिनों अजमेर में आर्यसमाज का आन्दोलन बहुत जोर पर था। शर्माजी के हृदय से लुप्त जन-सेवा की भावना यहाँ आकर पुनः जाग्रत होने लगी। आप आर्यसमाज तथा उससे सम्बन्धित संस्थाओं का काम भी बड़ी योग्यता से करने लगे। 'दयानन्द अनाथालय' से 'अनाथ-रक्षक' मासिक निकालने की योजना आपने ही बनाई थी। बाद में उसके सम्पादन का भार भी आपको ही उठाना पड़ा। प्रयाग में 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की नियुक्ति हो चुकी थी। 'इण्डियन प्रेस' का हिन्दी-जगत् में खूब नाम चल रहा था। शर्माजी भी हिन्दी-सेवा का व्रत लेकर सन् 1905 में प्रयाग आ पहुँचे और इण्डियन प्रेस के अध्यक्ष श्री चिन्तामणि घोष ने शर्माजी को अपने यहाँ स्थायी रूप से 30 रुपए मासिक पर नियुक्त कर लिया।

शर्माजी का साहित्यिक जीवन तो सन् 1900 के लगभग उस समय ही प्रारम्भ हो चुका था जब आप अजमेर में रहकर 'अनाथ-रक्षक' पत्र के सम्पादन में योगदान देते थे। परन्तु प्रयाग में आने पर आपकी साहित्यिक प्रतिभा को पुष्पित एवं पल्लवित होने का और भी अधिक सुअवसर मिला। इण्डियन प्रेस के स्वामी श्री चिन्तामणि घोष बंगाली भाषी होकर भी हिन्दी-प्रेमी थे। घोष बाबू की हिन्दी
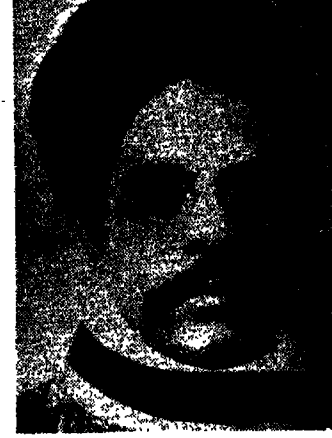
भाषा के भण्डार को समृद्ध करने की योजना को कार्यान्वित करने में आपने बढ़-चढ़कर सहयोग दिया। शर्माजी ने स्वयं तो अनेक पुस्तकों की रचना की ही, साथ ही अनेक लेखकों से आग्रह करके वहाँ के लिए सैकड़ों पुस्तकें लिखवाईं। शर्माजी की लिखी पुस्तकों में 'बाल रामायण', 'बाल मनुस्मृति', 'बाल भागवत' (दो भाग), 'बाल नीतिमाला', 'बाल विनोद' (पाँच भाग), 'बाल-बोधिनी' (लड़कियों के लिए पाँच भाग में), 'बाल-व्याकरण' आदि मुख्य हैं। आपने बाबू गिरिजाकुमार के सान्निध्य से बंगला भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। फलतः आपने बंगला भाषा की पुस्तकों का भी हिन्दी में अनुवाद किया, जिनमें 'बाल-आरब्योपन्यास' (चार भाग), 'साहित्य-सेवी', 'सीता-वनवास' तथा 'भारत विदुषी' उल्लेखनीय हैं। बाल-साहित्य-सृजन के अतिरिक्त शर्माजी ने हिन्दी की शिक्षा को सुरुचिपूर्ण बनाने के दृष्टिकोण से बीसियों पाठ्य-पुस्तकों का सम्पादन भी किया था। आपकी पाठ्य-पुस्तकों को संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-विभाग ने विभिन्न कक्षाओं के लिए स्वीकृत भी किया था जिससे आपको धन और यश दोनों की प्राप्ति हुई।

शर्माजी के हिन्दी-प्रेम का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या

हो सकता है कि आपने सन् 1913 में इण्डियन प्रेस की नौकरी छोड़कर अपना निजी प्रेस 'हिन्दी-प्रेस' के नाम से स्थापित कर लिया। अत्यल्प पूँजी से स्थापित यह प्रेस आपके अध्यवसाय से शीघ्र ही भारत के श्रेष्ठ प्रेसों में गिना जाने लगा। इसी बीच प्रयाग में शर्माजी का सम्पर्क पं० मदनमोहन मालवीयजी से हुआ। उन्होंने शर्माजी के कई लेख 'सरस्वती' पत्रिका में देखे थे। फलतः मालवीयजी ने शर्माजी में होनहार लेखक के गुण देखकर आपको अपनी पत्रिकाओं—'मर्यादा' तथा 'अभ्युदय' में लेख भेजते रहने को कहा। मालवीयजी के आशीर्वाद से शर्माजी के लेख इन दोनों पत्रिकाओं में निरन्तर छपते रहे।

शर्माजी ने अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य उसके जन्म से ही बड़ी निष्ठा और उत्साह के साथ किया था। आप कुछ दिनों तक सम्मेलन के प्रबन्ध मन्त्री तथा बाद में उसके प्रधानमन्त्री (सन् 1923 से सन् 1928 तक) रहे। सम्मेलन का विशाल 'हिन्दी विद्यापीठ' आपके पुरुषार्थ का प्रतीक है। जब आपको पुस्तक-प्रकाशन और लेखन से सन्तोष नहीं हुआ तो आपने 'विद्यार्थी' (युवकों के लिए) और 'खिलौना' (बालकों के लिए) दो पत्र निकाले। इन पत्रों के द्वारा आप जीवन-भर भावनात्मक एकता, राष्ट्रीयता और देशोद्धार-जैसे मन्त्र भारत के भावी नागरिकों—विद्यार्थी-वर्ग तक पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील रहे।

कवि-सम्राट् नाथूराम शर्मा 'शंकर', पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पं० रामनारायण मिश्र, 'राष्ट्रकवि' मैथिलीशरण गुप्त, पं० हरिशंकर शर्मा, पं० सोहनलाल द्विवेदी, प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' आदि अनेक कवि-लेखक आपके प्रति अपार श्रद्धा रखते थे। 'बिस्मिल' इलाहाबादी जैसे शायर भी आपके कृपा-भाजन थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं० पद्मसिंह शर्मा के अतिरिक्त हिन्दी के अनन्य सेवक बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, पं० बदरीदत्त जोशी, पं० चन्द्रशेखर शास्त्री, वेदतीर्थ पण्डित नरदेव शास्त्री, व्याकरणाचार्य पं० कामताप्रसाद गुरु, पं० झाबरमल्ल शर्मा, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, उपन्यासकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखक शर्माजी के मुक्त-कण्ठ से प्रशंसक थे। ऐसा गुणी और राष्ट्रभाषा हिन्दी का उन्नायक नररत्न 30 अगस्त सन् 1930 को काल-कवलित हो गया। इस अप्रत्याशित घटना से हिन्दी-सेवियों पर जो वज्रपात हुआ उसका सजीव चित्रण 'विद्यार्थी' के नवम्बर सन् 1930 के उस 'श्रद्धांजलि अंक' में किया गया है, जो आपकी स्मृति में प्रकाशित हुआ था। तब राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने यरवदा जेल से 22 सितम्बर सन् 1930 को शर्माजी के देहावसान का समाचार सुनकर उनके पुत्र को ढाढस बँधाते हुए लिखा था—"तुम्हारे पिताजी की मृत्यु का समाचार पाकर मुझे दुःख हुआ है। सब कुटुम्बी-जनों को मेरा आश्वासन।"

श्री रामजीवन नागर

श्री नागरजी का जन्म मध्यप्रदेश की ग्वालियर रियासत के श्योपुर नामक स्थान में सन् 1875 में हुआ था। मैट्रिक तक की पढ़ाई करके आप बम्बई के 'वेंकटेश्वर प्रेस' में चले गए थे और वहाँ पर अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर काफी दिनों तक रहे थे। इसके बाद आपने बूंदी (राजस्थान) में आकर सन् 1887 में वहाँ के 'श्री रंगनाथ प्रेस' में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

आप हिन्दी के अच्छे लेखक थे। आपकी कृतियों में 'वीर भालोजी भोंसले', 'जगदेव परमाल', 'स्वर्ग कविमान', 'कौतुक माला और बोधवचन', 'सती चरित्र संग्रह' (दो भाग), 'झा का वंश-कथा', 'राम और रावण', 'आयुर्वेद मार्गोपदेशिका', 'मालती', 'रसीली वार्ता', 'शरीर और वैद्यक शास्त्र', 'ऊल-जलूल', 'दुखहरिया', 'स्वर्ग की कुंजी' 'प्यार बड़ा या पैसा', 'स्वर्ग का खजाना', 'मुक्ता' और 'दीर्घजीवी कैसे हों?' उल्लेखनीय हैं।

आपका देहान्त सन् 1952 में हुआ था।

डॉ० रामदत्त भारद्वाज

डॉ० भारद्वाज का जन्म 27 नवम्बर सन् 1902 को बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता पं० जौहरीलाल शर्मा भी संस्कृत तथा हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित थे। भारद्वाजजी की शिक्षा-दीक्षा उनके निरीक्षण में विधिवत् सम्पन्न हुई थी। आपने जहाँ आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी तथा दर्शन विषय लेकर एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं वहाँ दिल्ली विश्वविद्यालय से भी दर्शन विषय में एम० ए० की परीक्षा दी थी। इलाहाबाद से एल०टी० की परीक्षा देने के साथ-साथ आपने आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० की उपाधियाँ भी प्राप्त की थीं।

लगभग 30 वर्ष तक उत्तर प्रदेश के अनेक इण्टर कालेजों में अध्यापन करने के उपरान्त आप सन् 1959 में दिल्ली आए थे और 1967 में यहाँ के देशबन्धु कालेज में हिन्दी-प्राध्यापक के रूप में कार्य करने के उपरान्त वहाँ से निवृत्ति पाने पर आपने कई वर्ष तक दिल्ली विश्वविद्यालय में एम० ए० की कक्षाओं को शिक्षण भी दिया था। आपने इस शिक्षण-काल में जहाँ अनेक शोध छात्रों का मार्ग-प्रदर्शन किया वहाँ सेवा-निवृत्ति के उपरान्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की 'सेवा-निवृत्ति अध्यापक-योजना' के अन्तर्गत भी आप कई वर्ष तक अध्यापन का कार्य करते रहे थे। आप जहाँ 'इण्डियन फिलासोफिकल कांग्रेस' और 'इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस' के सम्मानित सदस्य रहे थे वहाँ आपने गोस्वामी तुलसीदास के जन्म, परिवार तथा उनकी पत्नी रत्नावली के सम्बन्ध में अनेक सुपुष्ट प्रमाणों के आधार पर अत्यन्त उपयोगी जानकारी प्रदान की थी। आपकी स्थापना थी कि तुलसी का जन्म सोरों में हुआ था और वहीं पर उनकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई थी। वे 36 वर्ष की आयु में संन्यासी हो गए थे और 'गृह त्याग' करके बाद में 'राजापुर' चले गए थे।

तुलसी के जीवन-साहित्य तथा उसके दर्शन के सम्बन्ध में डॉ० भारद्वाज की प्रतिभा का पूर्ण परिचय आपकी असंख्य रचनाओं में मिल सकता है। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'तुलसीदास : जीवन, व्यक्तित्व और दर्शन', 'तुलसी-चर्चा', 'तुलसी का घर-बार', 'रत्नावली', 'तुलसीदास और उनके काव्य', 'सन्त तुलसीदास' (नाटक), 'स्त्रियों के व्रत, त्योहार और कथाएँ' तथा 'काव्य शास्त्र की रूप-रेखा' आदि प्रमुख हैं।

आपने सोरों में तुलसीदास की एक आदमकद प्रतिमा की स्थापना कराने के अतिरिक्त कासगंज (एटा) में 'गोखले सरस्वती सदन' नामक पुस्तकालय की स्थापना भी की थी।

आपका निधन 10 अप्रैल सन् 1980 को हापुड़ में हुआ था।

सेठ रामदयालु नेवटिया

श्री नेवटिया का जन्म राजस्थान के जयपुर राज्य के फतहपुर (सीकर) नामक स्थान मे सन् 1825 में हुआ था। आपका उपनाम 'कृष्णदास' था और आप राजस्थानी और हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, गुजराती, मराठी और उर्दू आदि कई भाषाएँ जानते थे। आपकी रचनाएँ अधिकांशतः भक्ति-रस की होती थीं।

आपके पिता सेठ मनसारामजी पूना में कारोबार किया करते थे। सन् 1839 में पिता का देहान्त हो जाने के कारण व्यापार का सारा दायित्व आपके ही कन्धों पर आ गया था। आपने अपने सरल स्वभाव और मिलनसारी के कारण पूना के प्रायः सभी प्रमुख व्यापारियों का सहयोग प्राप्त कर लिया था। 7 वर्ष तक पूना में रहने के उपरान्त नेवटिया अजमेर लौट आए और फिर फतहपुर में ही रहने लगे थे। आपने सन् 1857 का 'सिपाही विद्रोह' अपनी आँखों से देखा था।

आप बड़े विद्या-व्यसनी और धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष

थे। आपके यहाँ विविध विषयों के ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अनन्य मित्र थे। आपके पौत्रों में श्रीगोपाल नेवटिया स्वयं भी अच्छे कवि और लेखक थे।
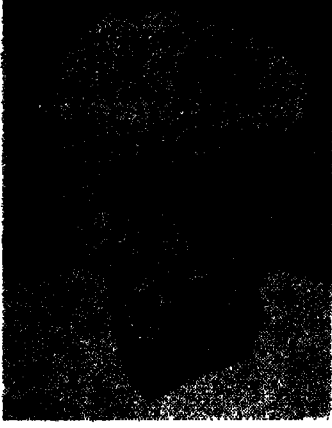
आपके पारिवारिक जनों ने आपकी सभी कृतियों का प्रकाशन कर दिया है, जिनमें 'प्रेमांकुर', 'बलभद्र विजय', 'लक्ष्मण मंगल' और 'पदावली' प्रमुख हैं।

आपका निधन सन् 1918 में हुआ था।

आचार्य रामदहिन मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म बिहार के शाहाबाद जिले के पथार नामक स्थान में सन् 1886 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी और उसके उपरान्त आपने डुमराँव (भोजपुर) में रहकर संस्कृत की विधिवत् शिक्षा प्राप्त करके 'काव्यतीर्थ' की परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की थी। काशी में जाकर आपने न्याय, वेदान्त आदि के गहन अध्ययन के साथ-साथ अँग्रेजी का भी ज्ञान अर्जित किया था।

सन् 1910 में आपने अध्यापन के क्षेत्र में प्रवेश किया था। आप टी० के० घोषाल एकेडेमी पटना, जिला स्कूल मोतीहारी, ट्रेनिंग स्कूल पटना तथा पटना बालिका विद्यालयों में शिक्षण-कार्य करने के उपरान्त सन् 1928 में सरकारी नौकरी की तिलांजलि देकर पूर्णतः प्रकाशन-कार्य में अग्रसर हुए थे। वैसे आपने शिक्षक रहते हुए भी सन् 1913 में 'ग्रन्थमाला कार्यालय' की स्थापना करके उसके द्वारा प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1924 में 'बाल शिक्षा समिति' की स्थापना की थी और फिर सन् 1932 में 'हिन्दुस्तानी प्रेस' खोल दिया था।

अपने इस प्रेस तथा प्रकाशन-संस्थान के द्वारा आपने जहाँ अपने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन किया वहाँ सन् 1934 में 'बाल-शिक्षा' नामक एक मासिक ग्रन्थमाला भी प्रारम्भ की थी। इस बीच जब आपका कार्य धीरे-धीरे जम गया तो आपने सन् 1939 में 'किशोर' नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन-सम्पादन भी प्रारम्भ किया था। इस पत्र के माध्यम से आपने सामान्यतः समस्त देश और विशेषतः बिहार के अनेक लेखकों को प्रोत्साहन तथा प्रश्रय प्रदान किया था। इस पत्र के अनेक उल्लेखनीय विशेषांकों ने हिन्दी-जगत् में अपनी विशेष छाप छोड़ी है। इसके 'कश्मीर अक' तथा 'मेघांक' आदि अत्यन्त संग्रहणीय और उपादेय बन पड़े थे।
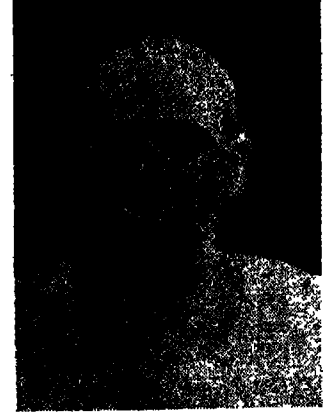
आपकी साहित्य तथा शिक्षा-सम्बन्धी अनेक उल्लेखनीय सेवाओं के उपलक्ष में जहाँ 'शाहाबाद जिला साहित्य सभा' ने अपने प्रथम अधिवेशन के समय सन् 1939 में आपको 'विद्या वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया था वहाँ 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' ने सन् 1952 में ताम्रपत्र सहित 1500 रुपए के वयोवृद्ध साहित्यिक सम्मान पुरस्कार भी प्रदान किया था।

आप प्राचीन भारतीय संस्कृत वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान् होने के साथ-साथ उच्चकोटि के समीक्षक और साहित्य-मर्मज्ञ भी थे। आपकी प्रखर विद्वत्ता तथा गहन पाण्डित्य के कारण आपकी गणना हिन्दी के उत्कृष्ट समीक्षकों में की जाती थी। आपकी प्रतिभा के उज्ज्वल कीर्तिमान आपके द्वारा प्रणीत 'काव्यालोक', 'काव्य विमर्श', 'काव्य दर्पण', 'काव्य में अप्रस्तुत योजना' और 'हिन्दी मुहावरा कोश' आदि ग्रन्थ हैं। आपने सन् 1911 में 'पार्वती परिणय' नामक नाटक का अनुवाद करने के अतिरिक्त 'मगध का प्राचीन

इतिहास', 'कर्मवीर' तथा 'बिहार के रत्न' आदि अनेक पुस्तकों की रचना भी की थी।

आपका निधन 1 दिसम्बर सन् 1952 में पटना में हुआ था। 'किशोर' का जो 'स्मृति अंक' आपके निधन के उपरान्त प्रकाशित हुआ था, वह अत्यन्त उपादेय एवं पठनीय था। आचार्य जी के सुपुत्र श्री देवकुमार मिश्र भी हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् तथा सुलेखक हैं।

रूप में जहाँ अच्छी ख्याति प्राप्त की थी वहाँ 'इतिहासकार' के रूप में आप अत्यन्त प्रसिद्ध थे। चार भागों में हिन्दी में प्रकाशित आपकी 'भारतवर्ष का इतिहास' नामक कृति इसका उत्कृष्ट प्रमाण है। इसके अतिरिक्त आपकी 'पुराणमत पर्यालोचन' तथा 'दयानन्द दिग्विजय' नामक रचनाएँ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

आपका निधन 9 दिसम्बर सन् 1939 को हुआ था।

आचार्य रामदेव

आचार्यजी का जन्म 31 जुलाई सन् 1881 को बैजवाड़ा (होशियारपुर) में हुआ था। आपने आर्यसमाज की प्रख्यात शिक्षण-संस्था 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय' के आचार्य के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त की थी। कुछ दिन तक आप इस संस्था के मुख्याधिष्ठाता तथा कुलपति भी रहे थे। कन्या गुरुकुल, देहरादून की संस्थापना में आपका बहुत बड़ा योगदान था।

आप हिन्दी तथा अँग्रेजी के अच्छे लेखक होने के साथ-साथ उच्चकोटि के विचारक एवं सम्पादक थे। आपने आर्य सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए जहाँ अँग्रेजी भाषा में 'वैदिक मैगजीन' नामक पत्रिका का सम्पादन अनेक वर्ष तक किया था वहाँ ईसाई तथा इस्लाम मतों के सम्बन्ध में अनेक उपयोगी लेख उसमें लिखे थे। आपके 'वैदिक मैगजीन' में प्रकाशित लेखों को पढ़कर टालस्टाय तथा रोम्याँ रोला-जैसे अनेक विचारक भी बहुत प्रभावित हुए थे।

आपने अँग्रेजी-हिन्दी के उत्कृष्ट पत्रकार तथा लेखक के

श्री रामधारी शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म हरियाणा प्रदेश के हिसार जनपद के सातरोड नामक ग्राम में 31 जुलाई सन् 1932 को हुआ था। आप दैनिक 'हिन्दुस्तान' के अवकाश-प्राप्त उपसम्पादक श्री केदारनाथ शर्मा के कनिष्ठ भ्राता थे। विद्याध्ययन के उपरान्त आपने अपने ज्येष्ठ बन्धु के निरीक्षण में पत्रकारिता के क्षेत्र को ही अपनाया था और उनके परामर्श और निर्देशन में कार्य करते हुए आप व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र की पत्रकारिता में धीरे-धीरे अपना एक उल्लेखनीय स्थान बनाते जा रहे थे।

जिन दिनों आपने इस क्षेत्र में पदार्पण किया था तब हिन्दी-समाचार-पत्रों में 'व्यापारिक समीक्षा' का श्रीगणेश हो ही रहा था। प्रारम्भ में आपने जहाँ दिल्ली से प्रकाशित होने वाले हिन्दी पत्रों में व्यापारिक टिप्पणियाँ लिखनी प्रारम्भ की थीं वहाँ आप इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले अँग्रेजी दैनिक 'लीडर' में भी नियमित रूप से यह कालम लिखा करते थे।

अपने निधन से पूर्व 'हिन्दुस्तान टाइम्स' संस्थान में 'व्यापार-समीक्षक' के रूप में स्थायी रूप से कार्य कर रहे

थे और निधन से 15 दिन पहले ही आपको स्थायी सेवा का पत्र मिला था। यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि केवल 32 वर्ष की अल्प-सी आयु में ही 11 जुलाई सन् 1964 को बिजली का तार छू जाने का कारण आपका असामयिक निधन हो गया। वर्षा की भीषणता के कारण आपके घर की दीवारों में सील बैठ चुकी थी, जिसके कारण यह दुर्घटना हुई।

डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर'

डॉ० दिनकरजी का जन्म सन् 1908 में बिहार प्रान्त के मुंगेर जनपद के गंगा-तटवर्ती सिमरियाघाट नामक स्थान में हुआ था। अपने गाँव की पाठशाला में ही प्राइमरी तक की शिक्षा प्राप्त करके मोकामाघाट हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने सन् 1932 में पटना विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में बी०ए० (ऑनर्स) की उपाधि प्राप्त की और तदुपरान्त आप सीतामढ़ी में सब-रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त हो गए। जब आप मिडिल में ही पढ़ रहे थे तब आपके मानस में 'भारत भारती' और 'पथिक' के माध्यम से राष्ट्रीयता का जो बीज अंकुरित हुआ था वह जबलपुर से प्रकाशित होने वाले 'छात्र सहोदर' नामक मासिक के पृष्ठों पर पल्लवित होकर हिन्दी-पाठकों के समक्ष आया तथा मैट्रिक की परीक्षा तक पहुँचते-पहुँचते आपके कवि का ओजस्वी रूप 'प्रणभंग' तथा 'बारडोली विजय' नामक रचनाओं में पूर्णतः साकार हुआ।

हिन्दी के काव्याकाश पर दिनकर का उदय एक चमत्कारपूर्ण घटना थी। धीरे-धीरे आपकी कविताएँ हिन्दी में इतनी लोकप्रिय हो गई थीं कि बिहार के अनेक किशोरों-युवकों और राजनैतिक कार्यकर्ताओं के ओठों पर आपकी पंक्तियाँ थिरकने लगी थीं। प्रारम्भ में दिनकरजी की कुछ रचनाएँ 'अमिताभ' नाम से भी छपी थीं। जिन कविताओ में आपकी राष्ट्रीयता उदग्र रूप से मूर्तिमन्त होती थी और जिनसे दिनकरजी के ऊपर किसी प्रकार की आँच आने का सन्देह होता था उन पर ही 'अमिताभ' नाम छपता था, शेष रचनाएँ 'दिनकर' नाम से ही प्रकाशित होती थीं। वास्तव में यह अमिताभ नाम 'युवक' के तत्कालीन सम्पादक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने इसलिए दिया था कि कहीं उनकी संगति से दिनकरजी अँग्रेजों के कोप-भाजन न बन जायँ। दिनकरजी के कवि को प्रतिष्ठित करने का सर्वप्रथम श्रेय यदि किसी व्यक्ति को दिया जा सकता है तो वे बेनीपुरी ही थे। कालान्तर में 'विशाल भारत' के ख्यातनामा सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी दिनकरजी के कवि को लोकप्रियता के चरम शिखर पर प्रतिष्ठित करने की दिशा में अत्यन्त अभिनन्दनीय कार्य किया था।

जब दिनकरजी की काव्य-कृति 'रेणुका' (1935) का प्रकाशन हुआ तब आप सहसा हिन्दी-काव्य में ऐसे छा गए कि आपकी लोकप्रियता बिहार की सीमा को लाँघकर अखिल देश तक पहुँच गई और इसी बीच 'हुंकार' और 'रसवन्ती' (1940) के प्रकाशन ने आपको छायावादोत्तर-काल के अग्रणी कवियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित कर दिया। 'रेणुका' में जहाँ अतीतकालीन गौरव की गाथा कवि ने उन्मुक्त मन से वर्णित की है वहाँ 'हुंकार' में आपके राष्ट्रीय स्वरूप का विकास दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार 'रसवन्ती' में आपका सौन्दर्यान्वेषी कलाकार अत्यन्त सहज भाव से प्रकट हुआ है। 'सामधेनी' (1947) में आपका कवि-व्यक्तित्व स्थानीय परिवेश की सीमा को लाँघकर विश्व-स्तर तक प्रतिष्ठित हो गया था। इसी प्रकार अपनी 'नीलकुसुम' (1955) नामक कृति में आप सर्वथा नए रूप में काव्य-प्रेमी पाठकों के समक्ष आए थे।

सौन्दर्यान्वेषी तथा राष्ट्रवादी कवि के रूप में अपनी इन कृतियों के माध्यम से दिनकरजी ने हिन्दी-काव्य को जो गरिमा प्रदान की उससे भी अधिक एक जागरूक महाकवि के रूप में आपने अपनी प्रतिभा का उज्ज्वल आलोक साहित्य के क्षेत्र में प्रकीर्ण किया। आपकी ऐसी कृतियों में 'कुरुक्षेत्र' (1946), 'रश्मिरथी' (1952) और 'उर्वशी' (1961) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कुरुक्षेत्र' में आपने महाभारतकालीन जिस वातावरण की सृष्टि की है वह आपके वैचारिक धरातल की उदात्तता का स्पष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार 'रश्मिरथी' में भी आपका कवि अत्यन्त प्रखरता से अपने अभीष्ट का प्रतिपादन करने में सफल हुआ है। कामाध्यात्म की उत्कृष्टतम कृति 'उर्वशी' में दिनकरजी ने पुरुरवा के रूप में मानो अपने ही कवि को साकार कर दिया

है। वास्तव में प्रबन्ध काव्य की रचना के लिए जिस गाम्भीर्य और चिन्तन की आवश्यकता होती है वे सब गुण दिनकरजी के व्यक्तित्व में पूर्णतः समाहित थे। आपकी अन्य काव्य-रचनाओं में 'द्वन्द्व गीत', 'इतिहास के आँसू', 'सीपी और शंख', 'नीम के पत्ते', 'मृत्ति तिलक', 'हारे को हरिनाम', 'कोयला और कवित्व', 'नये सुभाषित', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'आत्मा की आँखें', 'बापू' और 'दिल्ली' के नाम विशेष स्मरणीय हैं।

दिनकरजी जहाँ उत्कृष्ट कवि के रूप में हिन्दी-काव्य-जगत् में प्रतिष्ठित थे वहाँ सफल गद्यकार के रूप में भी आपकी देन सर्वथा अनुपम है। आपकी 'अर्द्धनारीश्वर', 'मिट्टी की ओर', 'काव्य की भूमिका', 'साहित्यमुखी', 'उजली आग', 'पन्त प्रसाद और मैथिलीशरण' तथा 'रेती के फूल' नामक रचनाओं में जहाँ आपका जागरूक गद्यकार अत्यन्त प्रखरता से हमारे समक्ष आता है वहाँ आपके समीक्षक स्वरूप के भी दर्शन होते हैं। संस्मरण-लेखन की कला में भी आप सर्वथा अद्वितीय थे। आपकी ऐसी रचनाएँ 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ', 'मेरी यात्राएँ', 'देश-विदेश' और 'लोकदेव नेहरू' नामक पुस्तकों में संकलित हैं। डायरी-लेखन की विधा में भी आपने अपनी लेखनी का चमत्कार प्रस्तुत किया था, जिसकी झाँकी 'दिनकर की डायरी' नामक रचना में देखने को मिल जाती है। संस्कृति, इतिहास, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी आपका जागरूक लेखक अपनी प्रतिभा का परिचय देने से पीछे नहीं रहा और उस दिशा में आपने अपने चिन्तन का पूर्ण परिपाक हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। आपकी ऐसी रचनाओं में 'संस्कृति के चार अध्याय' के अतिरिक्त 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'भारतीय एकता', 'चेतना की शिखा' तथा 'धर्म, नैतिकता और विज्ञान' प्रमुख हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के परिष्कार और प्रचार में भी दिनकरजी ने प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया था। इसका ज्वलन्त प्रमाण आपकी 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता' तथा 'राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गान्धीजी' नामक कृतियाँ हैं। लघुविचार गद्य तथा सूक्तियों की सृष्टि करने में भी दिनकर का कवि तथा विचारक पीछे नहीं रहा। आपकी ऐसी प्रतिभा का कवि तथा विचारक पीछे नहीं रहा। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय 'दिनकर की सूक्तियाँ', 'उजली आग', 'वट पीपल' और 'वेणु वन' से मिलता है। गम्भीर साहित्य की सृष्टि करने के साथ-साथ दिनकरजी ने बालोपयोगी साहित्य का निर्माण करने में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। आपकी ऐसी रचनाओं के संकलन 'मिर्च का मजा', 'सूरज का ब्याह', 'धूप छाँह', 'चित्तौड़ का साका' और 'भारत की सांस्कृतिक कहानी' आदि हैं।

दिनकरजी ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से साहित्य में जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी उसीका सुपरिणाम यह हुआ कि देश में सर्वत्र आपके गौरव तथा सम्मान की अभ्यर्चना की गई। आपने जहाँ पूर्णिया में आयोजित बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तेरहवें अधिवेशन के अवसर पर कवि सम्मेलन की अध्यक्षता की थी वहाँ सन् 1944 में आप बिहार प्रान्तीय प्रगतिशील लेखक संघ के स्वागताध्यक्ष भी रहे थे। स्वतन्त्रता के बाद मुजफ्फरपुर के लंगटसिंह कालेज के हिन्दी-विभागाध्यक्ष होने के साथ-साथ सन् 1956 में आपने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रजत जयन्ती समारोह की अध्यक्षता भी की थी। जहाँ आप अनेक वर्ष तक राज्यसभा के सम्मानित सदस्य रहे थे वहाँ आपको भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि भी प्रदान की गई थी। भाषा, साहित्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में की गई आपकी महत्त्वपूर्ण सेवाओं को दृष्टि में रखकर जहाँ आपको भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति मनोनीत किया गया था वहाँ आप कई वर्ष तक भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार के पद पर भी प्रतिष्ठित रहे थे। आपकी 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक प्रख्यात कृति पर जहाँ भारत के तत्कालीन प्रधान-मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी विस्मृत भूमिका लिखकर उसकी आशंसा की थी वहाँ साहित्य अकादेमी ने भी उसे पुरस्कृत किया था। आपकी 'उर्वशी' नामक कृति पर भारतीय ज्ञानपीठ से एक लाख रुपए का पुरस्कार भी

प्रदान किया गया था। आप कई वर्ष तक 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' के संचालक मण्डल के सम्मानित सदस्य रहने के साथ-साथ भारत सरकार की अनेक समितियों तथा 'राजभाषा आयोग' के भी सदस्य रहे थे।

आपका निधन 25 अप्रैल सन् 1974 को मद्रास में हुआ था।

श्री रामनरेश त्रिपाठी

श्री रामनरेश त्रिपाठी का जन्म उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद के कोइरीपुर नामक ग्राम में सन् 1889 में हुआ था। आपके पिता एक साधारण किसान थे अतः आपको अधिक शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग सुलभ न हो सका और गाँव के पास के एक मिडिल स्कूल से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापक हो गए। सन् 1911 के आस-पास केवल 22 वर्ष की आयु में आपने कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। थोड़े दिन तक प्राइमरी स्कूल में कार्य करने के उपरान्त आप कलकत्ता चले गए। कलकत्ता उन दिनों हिन्दी-पत्रकारिता की दृष्टि से सर्वोत्तम केन्द्र था, लेकिन अचानक संग्रहणी हो जाने के कारण आप वहाँ न जम सके। अपने कलकत्ता-प्रवास के दिनों में ही आपका परिचय वहाँ के नेवटिया-परिवार से हो गया और उन्होंने आपको स्वास्थ्य-लाभ के लिए अपने राजस्थान-निवास फतहपुर भेज दिया, जहाँ के शुष्क जल-वायु तथा मट्ठे के कल्प से त्रिपाठीजी पूर्णतः स्वस्थ हो गए।

अपने राजस्थान-प्रवास के एकान्तिक क्षणों में आपको स्वाध्याय का बहुत अवसर मिला। फलस्वरूप आपने 'श्रीमद्भागवत', 'विष्णु पुराण', 'उपनिषद्' तथा संस्कृत-साहित्य के अनेक ग्रन्थों का पूर्णतः पारायण किया। आपके इस स्वाध्याय ने कालान्तर में आपके साहित्यिक उन्नयन में बहुत बड़ा योगदान दिया था। नेवटिया-परिवार की घनिष्ठ मित्रता के कारण आपको उनके साथ केसर-सुरभित कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी, रामेश्वर, सौराष्ट्र और आसाम तक देश के विभिन्न अंचलों की यात्रा करने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ उससे आपमें प्रकृति-प्रेम तथा देशभक्ति की भावनाओं ने जो हिलोरें मारीं उन्हींके परिणामस्वरूप आपके 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न' नामक खण्डकाव्यों की सृष्टि हुई। इन खण्डकाव्यों के प्रकाशन के अनन्तर हिन्दी-जगत् में आपकी प्रतिभा का चमत्कार सर्वत्र व्याप्त हो गया था।

सन् 1915 में जब आपके पिताजी का असामयिक देहावसान हो गया तब सन् 1917 से आपने अपना कार्य-क्षेत्र प्रयाग को बनाया और वहाँ 'हिन्दी मंदिर प्रयाग' नामक संस्था की स्थापना करके उसके माध्यम से प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ किया। 'हिन्दी मंदिर' की ओर से आपने जहाँ 'वानर' नामक एक बालोपयोगी पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया वहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रकाशित होने वाली उसकी त्रैमासिक पत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' का भी सफलतापूर्वक सम्पादन किया। त्रिपाठीजी ने अपने प्रकाशन-कार्य के साथ-साथ साहित्य-रचना की दिशा में भी पर्याप्त प्रगति की और आपने सारे देश का भ्रमण करके जहाँ प्रत्येक प्रान्त के लोकगीतों का संकलन किया वहाँ 'हिन्दी कविता कौमुदी' नामक ग्रन्थ के 6 भाग प्रकाशित किए, जिनमें हिन्दी और उर्दू के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं की कविताएँ भी संकलित की गई थीं। इसी 'कविता-कौमुदी' के तीसरे भाग में 'ग्राम गीत' प्रस्तुत किये गए थे।

श्री रामनरेश त्रिपाठी देश के उन साहित्यकारों में थे जिन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग राष्ट्र-निर्माण तथा समाज-सुधार की दिशा में किया था। आपकी एक प्रारम्भिक रचना किसी समय इतनी लोकप्रिय हुई थी कि देश के प्रत्येक विद्यालय में प्रातःकालीन प्रार्थना के समय उसका पाठ किया जाता था। वह प्रार्थना इस प्रकार थी ;

हे प्रभो, आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए॥
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, धर्म-रक्षक, वीर-व्रतधारी बनें॥

इस प्रार्थना ने उन दिनों देश के नवयुवकों में वही भावना जागृत की थी, जो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' द्वारा उत्पन्न हुई थी। 'रामचरितमानस' के आप मर्मज्ञ विद्वान् तो थे ही, उसकी बहुत-सी मान्यताओं के अच्छे व्याख्याता भी थे। 'रामचरितमानस' की टीका में आपके द्वारा लिखी गई विश्लेषणात्मक भूमिका आपके अगाध पाण्डित्य और अकाट्य तर्कना-शक्ति का परिचय देती है। आपने कविता के अतिरिक्त बहुविध साहित्य का निर्माण किया था, जिसमें आलोचना, कहानी, नाटक, जीवनी, धर्म, विज्ञान, छन्द-पिंगल और राजनीति आदि से सम्बन्धित कृतियाँ हैं। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'कविता कौमुदी', 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न' के अतिरिक्त 'वीरांगना' (1911), 'बालक सुधार शिक्षा' (1911), 'मारवाड़ी और पिशाचिनी' (1912), 'वीर बाला', 'सुभद्रा' (1914), 'दमयन्ती चरित्र' (1914), 'श्री सेठ रामदयालु नेवटिया का जीवन-चरित्र' (1914), 'भारतीय कथा अर्थात् हिन्दी महाभारत' (1915), 'पद्मावती' (1917), 'हिन्दी-पद्य-रचना' (1918), 'क्या होमरूल लेंगे ?' (1918), 'गान्धीजी कौन हैं ? '1920), 'देश का दुखी अंग' (1921), 'आकाश की बातें' (1921), 'आल्हा रहस्य' (1921), 'लक्ष्मी' (1924), 'सेठ जमनालाल बजाज' (1926), 'जयन्त' (1934), 'प्रेम लोक' (1934) तथा 'बफाती चाचा' (1939) आदि प्रमुख हैं। आपने 'हिन्दी-शब्द-कल्पद्रुम' (1925) तथा 'हिन्दुस्तानी कोश' (1933) नामक कोशों का सम्पादन करने के साथ-साथ गुजराती से 'इतना तो जानो' तथा 'कौन जानता है ?' नामक बालोपयोगी दो पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया था। इनके अतिरिक्त 'आधुनिक शिष्टाचार', 'मिट्टी के सुखदायक घर' और 'सोहर' नामक कृतियाँ भी आपकी प्रतिभा की परिचायक हैं।

समीक्षा के क्षेत्र में भी त्रिपाठीजी ने अपनी लेखनी का पावन अवदान हिन्दी को दिया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास' (1923), 'खड़ी बोली की कविता का संक्षिप्त परिचय' (1931) तथा 'उर्दू जबान का संक्षिप्त इतिहास' (1940) आदि उल्लेख्य हैं। 'रामचरित-मानस' की टीका के अतिरिक्त आपकी 'जानकी मंगल' (1935), 'पार्वती मंगल' तथा 'सुदामा चरित' की टीकाएँ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आपकी 'मानस के पात्र' (1954) तथा 'मानस की सूक्तियाँ' (1954) नाम पुस्तकें भी साहित्य के अध्येताओं के लिए सर्वथा उपादेय हैं। संस्मरण-लेखन की कला में भी त्रिपाठीजी सर्वथा बेजोड़ थे। आपका 'मालवीय जी के साथ तीस दिन' इस विधा का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त आपने 40 से अधिक बालोपयोगी पुस्तकें भी लिखी थीं।

आपका निधन 16 जनवरी सन् 1962 को प्रयाग में उस समय हुआ था जब आप 'सरस्वती' के 'हीरक जयन्ती समारोह' में सम्मिलित होने के लिए वहाँ गए थे।

श्री रामनाथ शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म ग्वालियर राज्य के भेलसा (विदिशा) जिले के पीपल खेड़ा नामक ग्राम में सन् 1888 में हुआ था। आपके पिता श्री किशनलाल चतुर्वेदी ने काशी में ज्योतिष और संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन करके 'आचार्य' की उपाधि प्राप्त की थी। अपने पिता के गुणानुरूप ही श्री शर्माजी भी संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और अँग्रेजी भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपकी अँग्रेजी भाषा की योग्यता को देखकर ही विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर के तत्कालीन प्रधानाचार्य ने आपको 'फारेस्ट ट्रेनिंग कालेज, देहरादून' में प्रशिक्षण के लिए भिज-

पाया था। वहाँ से सफलता प्राप्त करने के उपरान्त आप ग्वालियर राज्य के वन-विभाग में नियुक्त हो गए और उस विभाग के सर्वोच्च पद पर रहने के उपरान्त आप सन् 1940 में सेवा-निवृत्त हुए थे।

आप वन विभाग की सेवा में रहते हुए भी रुचि से साहित्यिक थे। आप रूढ़िवादिता के सर्वथा विरोधी थे और आर्यसमाज से प्रभावित होने के कारण अनेक भाषाओं के ज्ञाता होते हुए भी हिन्दी के कट्टर समर्थक थे। ग्वालियर की 'हिन्दी साहित्य सभा' की स्थापना में आपका अनन्य सहयोग था। इसके अतिरिक्त डी० ए० वी० स्कूल, आर्यसमाज, माधव अनाथालय और महिला मंडल आदि ग्वालियर की अनेक संस्थाओं को आपका सहयोग बराबर मिलता रहता था। एक निर्धन ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेकर भी आपने अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा और ईमानदारी के बल पर ही इतनी सफलता प्राप्त की थी। हिन्दी के विकास के लिए आप अहर्निश संलग्न रहते थे।

आप एक कुशल संगठक और सफल प्रशासक होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक भी थे। आपकी 'चन्देरी की औषधि वनस्पतियाँ', 'शासन शब्द-कोश' और 'त्रिभाषी शब्द कोष' (हिन्दी, संस्कृत व फारसी) आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। आपके इस 'त्रिभाषी कोष' की प्रस्तावना राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन लिखने वाले थे कि पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व ही श्री शर्माजी का सन् 1944 में देहावसान हो गया।

श्री रामनाथ शर्मा 'दुखिया'

आपका जन्म 9 नवम्बर सन् 1898 को उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद के गढ़ायटा नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता श्री नारायणप्रसादजी ग्वालियर तथा शिवपुरी होते हुए कोटा में जाकर स्थायी रूप से रहने लगे थे। दुखियाजी का शैशव कोटा में ही बीता और शिक्षा-दीक्षा भी वहीं पर हुई। नार्मल तक की शिक्षा प्राप्त करके आप राज्य के शिक्षा विभाग में शिक्षक हो गए और इस पद पर अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक कार्य करते रहे।

यद्यपि आपकी मातृभाषा ब्रज-प्रभावित हिन्दी थी, लेकिन बचपन से ही कोटा में रहने के कारण आपने वहाँ की हाड़ौती बोली में रचना करने का अच्छा अभ्यास कर लिया था। सन् 1916 से आपने जिस कवि-कर्म को स्वीकार किया था उसे अन्त तक सफलतापूर्वक निर्वाह करते रहे। आपकी हिन्दी तथा हाड़ौती की रचनाएँ देश के सभी प्रमुख पत्रों में छपा करती थी। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'भगवद्गीता' के प्रथम एवं द्वितीय सर्ग का पद्य में अनुवाद' (1950) तथा 'अर्चना के सुमन' (1973) उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपकी अनेक कृतियाँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं। बाल-साहित्य के निर्माण में भी आपका अभिनन्दनीय योगदान रहा था।
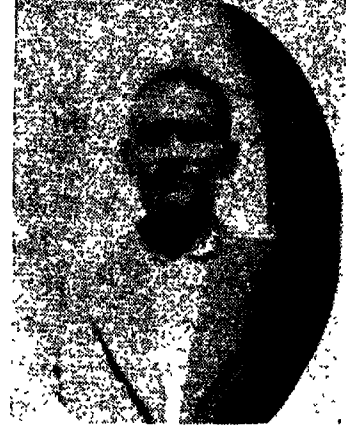
आपका निधन 8 जून सन् 1973 को हुआ था।

श्री रामनाथ शुक्ल ज्योतिषी

श्री ज्योतिषीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के भैरमपुर नामक ग्राम में सन् 1874 में हुआ था। आप अच्छे कवि होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के ज्योतिषी भी थे। आपने 20 वर्ष की आयु में ही चन्दापुर जाकर वहाँ के राजा श्री जगमोहनसिंह को अपनी 'ज्योतिष-कला' का अच्छा परिचय दिया था, इसी कारण आपके नाम के साथ 'ज्योतिषी' शब्द लग गया था।

उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क अयोध्या-नरेश के तत्कालीन निजी सचिव और हिन्दी के ख्याति-प्राप्त कवि श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' से हुआ। उन्होंने आपको राज्य के पुस्तकालय में 'पुस्तकालयाध्यक्ष' के रूप में रख लिया। श्री रत्नाकरजी

की प्रेरणा पर आप 'जयपुर-नरेश' के यहाँ सुरक्षित 'बिहारी सतसई' की प्रतिलिपि करने के लिए जयपुर भेजे गए और आपकी उस प्रतिलिपि के आधार पर ही श्री रत्नाकरजी ने 'बिहारी रत्नाकर' की रचना की थी।
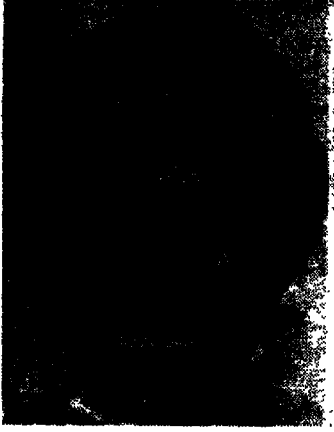
आपने बहुत दिन तक 'वैष्णव सम्मेलन' के मुखपत्र 'धर्म भूषण' का सम्पादन भी किया था। आपकी काव्य-कृतियों में 'श्रीरामचन्द्रोदय महाकाव्य' का नाम विशेष उल्लेख्य है। इसके अतिरिक्त 'काव्य-कल्पद्रुम', 'उपदेश शतक', 'भव रोगप्रभंजनी', 'शान्ति सरोवर', 'नीति मंजूषा', 'धर्म समाज', 'संक्षिप्त भारत', 'वीर भारत', 'कृष्ण दूत', 'गान्धी दूत' और 'ऋतु कुसुमाकर' आदि प्रमुख हैं। आपको ओरछा नरेश ने 'रामचन्द्रोदय महाकाव्य' के लिए दो हजार रुपये का 'देव पुरस्कार' भी प्रदान किया था।

आपका निधन 12 जून सन् 1943 को हुआ था।

श्री रामनारायण पाठक

श्री पाठकजी का जन्म मुरादाबाद जनपद के चन्दौसी नामक नगर में अप्रैल सन् 1894 में हुआ था। आपके पिता श्री बाँकेलालजी वहाँ अध्यापक थे और उन्होंने ही आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती को अँग्रेजी भाषा का अभ्यास कराया था। स्वामीजी का अँग्रेजी भाषा-सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार वे ही किया करते थे। जब श्री पाठकजी केवल 5 वर्ष के ही थे कि आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया और 2 वर्ष बाद आपके पिता श्री बाँकेलालजी भी आपको असहाय छोड़कर अचानक चल बसे। फलस्वरूप आपको विवश होकर अपने पैतृक स्थान बरेली लौटना पड़ा। बरेली जाकर भी आपको अपने पारिवारिक-जनों से जब कोई उल्लेखनीय सहयोग नहीं मिला तो आपने आगे की पढ़ाई जारी रखने की दृष्टि से बरेली कालेज में प्रवेश लिया। आप वहाँ से एफ० ए० तक की शिक्षा ही प्राप्त कर पाए थे कि पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आपको पढ़ाई बीच में ही छोड़कर ट्यूशन आदि करके परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता करनी पड़ी। उन्हीं दिनों आपका विवाह हो गया, फलस्वरूप पारिवारिक दायित्वों को पूरी तरह निबाहने की दृष्टि से आपने वहाँ के 'विक्टोरिया रेलवे स्कूल' में शिक्षक का कार्य स्वीकार कर लिया।

आप अभी पूरी तरह अपने इस दायित्व को सँभाल भी नहीं पाए थे कि आपको परिस्थितिवश बम्बई जाना पड़ा। बम्बई जाकर आप वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'वेंकटेश्वर समाचार' में सहायक सम्पादक हो गए। उन्हीं दिनों आपका परिचय बम्बई की प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्था 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' के स्वामी श्री नाथूराम 'प्रेमी' से हो गया और उनके प्रोत्साहन से आपने गुजराती और बंगला से अनुवाद का कार्य किया। आपके द्वारा अनूदित बंगला के प्रख्यात नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के एक नाटक और गुजराती की 'सरल दुग्ध चिकित्सा' नामक कृतियाँ उन दिनों प्रकाशित हुई थीं। थोड़े ही दिनों में बम्बई की जलवायु प्रतिकूल होने के कारण आप वहाँ से इलाहाबाद चले आए। इलाहाबाद आकर आप आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्री श्रीधर पाठक से मिले। आचार्यजी ने आपको इण्डियन प्रेस की ओर से प्रकाशित होने वाले 'बाल सखा' नामक पत्र में सहकारी सम्पादक बनवा दिया। आप वहाँ थोड़े ही दिन कार्य कर पाए थे कि सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री उदयशंकर भट्ट की प्रेरणा पर आप फिर बरेली चले आए और श्री राधेश्याम कथावाचक के यहाँ उनके 'राधेश्याम प्रेस' के व्यवस्थापक हो गए।

राधेश्याम प्रेस का कार्य-भार सँभालने के उपरान्त आपने वहाँ से 'भ्रमर' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्र प्रकाशित करने की योजना बनाई और कुछ दिन तक उसका सफलतापूर्वक सम्पादन भी किया। 'भ्रमर' का प्रकाशन लगभग सात वर्ष तक सफलतापूर्वक हुआ और उसमें हिन्दी के प्रायः सभी शीर्षस्थ साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से सहयोग दिया था। हिन्दी के प्रख्यात कथाकार और क्रान्ति-

कारी लेखक श्री यशपाल की पहली कहानी पाठकजी के सम्पादन में 'भ्रमर' में ही प्रकाशित हुई थी। इसका उल्लेख श्री यशपाल ने अपने 'सिंहावलोकन' नामक ग्रन्थ के प्रथम भाग में किया है। आपने सन् 1962 में 'भारतीय एकता' नामक एक और मासिक पत्र भी प्रकाशित किया था, किन्तु इसके कुछ ही अंक निकल सके थे। 'राधेश्याम प्रेस' और 'भ्रमर' के कार्य-काल में आपने अपने लेखन को भी पर्याप्त गति दी थी और अपने स्वाध्याय के बल पर ही आपने हिन्दी, संस्कृत तथा अँग्रेजी के अतिरिक्त उर्दू, गुजराती और बंगला आदि अनेक भारतीय भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सन् 1965 में राधेश्याम प्रेस से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त जब आप अपने पुत्र श्री विजयसुन्दर पाठक के पास दिल्ली आकर रहे थे तब आपने 'कादम्बिनी' के तत्कालीन सम्पादक श्री रामानन्द 'दोषी' के आग्रह पर 'अच्छी हिन्दी' नामक स्तम्भ भी लिखना शुरू किया था। श्री पाठकजी के सुपुत्र श्री विजयसुन्दर पाठक भी उन दिनों 'कादम्बिनी' के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध थे।

श्री पाठकजी ने जहाँ अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में कार्य किया वहाँ लेखन के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय आप बराबर देते रहे। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'प्रेत लोक', 'अहिरावण वध', 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'दृष्टान्त महासागर', 'अजायबघर', 'प्रह्लाद चरित', 'अर्जुन मोह', 'आत्मा की अमरता', 'कर्मयोग', 'विराट् रूप दर्शन', 'जीव ब्रह्म विवेक', 'अर्जुन का समाधान' तथा 'श्री सत्य-नारायण की कथा' आदि प्रमुख हैं। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप अपनी सुपुत्री कुमारी सरोजिनी पाठक (प्राचार्या आर्य इण्टर कालेज बिलसी, बदायूँ) के पास ही रह रहे थे कि 14 अक्तूबर सन् 1976 को आपका असामयिक निधन हो गया।

श्री रामनारायण मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म सन् 1900 में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद के हरचन्दपुर नामक ग्राम में हुआ था। आप विज्ञान के प्राध्यापक रहते हुए भी साहित्य के प्रति पूर्णतः समर्पित थे। आपकी 'सेतुबन्ध' (1967) नामक काव्य-कृति इसका सुपुष्ट प्रमाण है। आपका 'रामाभिषेक' नामक काव्य अभी अप्रकाशित ही है।

आप पहले नागपुर के कृषि महाविद्यालय में रसायन शास्त्र के वरिष्ठ प्राध्यापक थे और बाद में जबलपुर के जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष होकर आ गए थे।

आपका निधन 17 मार्च सन् 1977 को हुआ था।

श्री रामनारायण यादवेन्दु

श्री यादवेन्दुजी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा नगर के राजा मंडी मोहल्ले में सन् 1909 में हुआ था। आपके पिता श्री डालचन्दजी हकीम निम गोत्रीय जाटव (यादव) परिवार में जन्मे थे। यादवेन्दुजी की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के ही संरक्षण में हुई थी और आर्यसमाजी विचार-धारा से प्रभावित होकर उन्होंने सन् 1924 में आपको डी० ए०वी० हाईस्कूल, आगरा की सातवीं कक्षा में प्रविष्ट करा दिया था। स्कूल में अँग्रेजी तथा हिन्दी के नियमित अध्ययन के साथ-साथ आपको वैदिक धर्म की जो शिक्षा वहाँ दी जाती थी उसीका सुपरिणाम यह हुआ कि आप आर्यसमाज के सत्संगों में जाने लगे और धीरे-धीरे वैदिक धर्म के प्रति आपकी आस्था दृढ़ से दृढ़तर होती चली गई। डी० ए० वी० हाईस्कूल से मैट्रिक करने के उपरान्त आगे के अध्ययन के लिए आपने सेंट जॉन्स कालेज, आगरा में प्रवेश ले लिया और वहाँ से सन् 1930 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त सन् 1932 में मेरठ कालेज से राजनीति तथा हिन्दी के साथ बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। उसके पश्चात् आपने सन् 1935 में आगरा कालेज से

एल-एल० बी० की परीक्षा भी नियमित छात्र के रूप में उत्तीर्ण की थी।

जब श्री यादवेन्दुजी हाईस्कूल में ही पढ़ रहे थे तब आपकी प्रवृत्ति लेखन की ओर हुई और आपने लेख आदि लिखने प्रारम्भ कर दिए। आपका सबसे पहला लेख सन् 1924 में खुर्जा (बुलन्दशहर) से प्रकाशित होनेवाले 'दीनबन्धु' साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ था। यह लेख समाज-सुधार-सम्बन्धी था। आपका पहला साहित्यिक लेख अँग्रेजी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा समालोचक मैथ्यू आर्नल्ड पर था, जो सन् 1933 के अगस्त मास में प्रकाशित 'माधुरी' के विशेषांक में छपा था। अपने कालेज-जीवन में यादवेन्दुजी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं का पारायण अत्यन्त तन्मयता से किया था और उन्हीं दिनों आपने कहानी-कला से सम्बन्धित अपने विचारों तथा आदर्शों को हिन्दी-जगत् के समक्ष उपस्थित करने के उद्देश्य से 'कहानी कला' नामक एक पुस्तक की रचना की थी जो प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'चाँद' नामक मासिक पत्र में सन् 1933 में धारावाहिक रूप में छपनी प्रारम्भ हुई थी। इसके उपरान्त तो आपके लेख आदि हिन्दी की सभी उच्चकोटि की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे और एक समय ऐसा भी आया कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, भारतीय राजनीति तथा सामाजिक जीवन की किसी भी समस्या पर साधिकार लिखने वाले लेखकों में आपका नाम सर्वथा अग्रणी था। इस बीच आपने वकालत प्रारम्भ कर दी थी, किन्तु उसे शोषण और पीड़न का व्यवसाय समझकर आपने सर्वथा तिलांजलि देकर सन् 1939 में लेखन-व्रत ही ले लिया था। यह एक सुयोग ही कहा जायगा कि आपकी 'राष्ट्र संघ और विश्व शान्ति' तथा 'भारतीय शासन विधान' नामक पुस्तकें जहाँ सभी प्रदेशों के शिक्षा विभागों द्वारा उदारतापूर्वक अपनाई गई वहाँ 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने उनको अपनी साहित्यरत्न परीक्षा के पाठ्यक्रम में रखकर यादवेन्दुजी की लेखन-क्षमता का सम्मान किया। यहाँ तक कि सम्मेलन ने आपके 'भारत का दलित समाज' नामक ग्रन्थ पर अपना 'राधामोहन गोकुलजी पुरस्कार' भी प्रदान किया।

अपने साहित्यिक जीवन में यादवेन्दुजी ने जिन ग्रन्थों की सर्जना की थी उनसे उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है। आपके ग्रन्थों में 'कहानी कला', 'राष्ट्र संघ और विश्व शान्ति', 'दाम्पत्य जीवन', 'आदर्श पत्नी', 'इन्दिरा के पत्र', 'समाजवाद गान्धीवाद', 'भारतीय शासन विधान', 'औपनिवेशिक स्वराज्य', 'भारत का दलित समाज', 'पाकिस्तान', 'साम्प्रदायिक समस्या', 'हिटलर की नई युद्ध-कला', 'हिटलर की विचार-धारा', 'भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन', 'यदुवंश का इतिहास', अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान-कोश', 'साहित्यालोचन के सिद्धान्त', 'ग्राम स्वराज्य' तथा 'नवीन शासन विधान' आदि उल्लेखनीय हैं।

कुछ दिन तक आपने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले मासिक 'विश्वमित्र' का सम्पादन करने के अतिरिक्त स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की ओर से प्रकाशित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति-सम्बन्धी मासिक पत्र 'विश्व दर्शन' का सम्पादन भी किया था। इसके अतिरिक्त 'नवयुग साहित्य निकेतन' नाम से आपने राजा मण्डी, आगरा से प्रकाशन का कार्य भी कुछ दिन तक किया था।

आपका निधन 26 सितम्बर सन् 1951 को देहरादून के सेनीटोरियम में हुआ था।

श्री रामनारायण शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म सन् 1926 में बिहार के पटना जिले के मोकामा क्षेत्र के 'चिन्तामणि चक' नामक ग्राम में हुआ था। शास्त्रीजी की प्रारम्भिक शिक्षा आर्यसमाज द्वारा संचालित गुरुकुल वैद्यनाथ धाम(देवघर) में हुई थी और वहाँ से स्नातक होने के उपरान्त आपने सार्वजनिक क्षेत्र में पदार्पण

करते ही अपनी प्रखर वाग्मिता के कारण बिहार में अपना अत्यन्त विशिष्ट स्थान बना लिया था। आर्यसमाज के मंच से अपनी भावनाओं का प्रचार तथा प्रसार करने में आपको जो अद्वितीय सफलता मिली थी, उसीके कारण आप समस्त देश के आर्य नेताओं में गिने जाने लगे थे।

बिहार राज्य में जब उसकी सरकार के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' की स्थापना सन् 1951 में हुई तब शास्त्रीजी उससे सम्बद्ध हो गए और अपने जीवन की अन्तिम साँस तक उससे ही जुड़े रहे। निधन के समय आप परिषद् के 'निदेशक' पद पर पदोन्नत हो चुके थे। परिषद् में जाकर उसके तत्कालीन निदेशक आचार्य शिवपूजनसहाय की प्रेरणा पर आपने उसके अनुसन्धान विभाग को समृद्ध करने में अद्वितीय परिश्रम किया था। आपने जहाँ परिषद् की साहित्यिक अभिवृद्धि में अद्वितीय योगदान दिया था वहाँ 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के मन्त्री के रूप में भी आपने हिन्दी के प्रचार-प्रसार की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया था।

परिषद् में रहते हुए आपने जिन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन किया था उनमें गोस्वामी तुलसीदास से पूर्ववर्ती सन्त कवि सूरजदास द्वारा रचित 'राम जन्म', सन्त लालचदास द्वारा विरचित 'हरि चरित' तथा सन्त कवि दरियादास की 'दरिया ग्रन्थावली' आदि प्रमुख हैं। आपके द्वारा सम्पादित प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण भी परिषद् द्वारा छह खण्डों में प्रकाशित हुआ है।
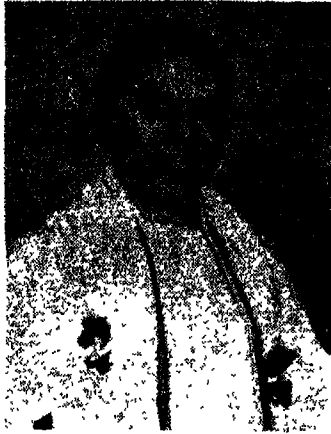
शास्त्रीजी एक कुशल संगठक के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। आप जहाँ 'बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा' के अनेक वर्ष तक पदाधिकारी रहे थे वहाँ 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली' के भी उपमन्त्री रहे थे।

आपका निधन 24 जनवरी सन् 1978 को हृदयाघात के कारण हुआ था।

श्री रामनारायण शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म 27 अक्तूबर सन् 1937 को उत्तर प्रदेश के हुसैनगंज (फतहपुर) नामक स्थान में हुआ था। प्रारम्भ में आपने कलकत्ता में अपने पिता की किताबों तथा तम्बाकू की दुकानों में सहयोग दिया और सान्ध्य कक्षाओं में अपनी पढ़ाई भी जारी रखी। व्यवसाय ठप्प हो जाने पर सन् 1958 के उपरान्त आपने आजीविका के लिए तरह-तरह के कार्य किए।

भाई-बहनों की पढ़ाई तथा परिवार के भरण-पोषण के लिए आपने ट्यूशन, अनुवाद तथा पत्रकारिता आदि के क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य किया। इसी काल में आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय में कामर्स विषय लेकर बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके एल-एल० बी० की पढ़ाई भी जारी रखी, जो दुर्भाग्यवश अधूरी ही रह गई।

कुछ वर्षों तक आपने इलाहाबाद के सरस्वती प्रेस की ओर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'कहानी' में सहायक सम्पादक का कार्य भी किया। फिर सन् 1966 में आप दिल्ली आ गए और 'सोवियत सूचना-केन्द्र' में हिन्दी-सम्पादक हो गए। आपकी मृत्यु के उपरान्त आपकी कहानियों का एक संकलन 'सहारा' नाम से सरस्वती प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया था। आपके छोटे भाई श्री प्रयाग शुक्ल 'दिनमान' के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध हैं।

आपका निधन 29 मई सन् 1968 को नई दिल्ली में हुआ था।

श्री रामनिवास शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1883 में राजस्थान के झालरापाटन नामक नगर में हुआ था। आपने पहले घर पर ही संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त करके बाद में काशी जाकर वहाँ पं० जयदेव झा मीमांसा तीर्थ और महामहोपाध्याय श्री तात्या शास्त्री से उच्चतम अध्ययन किया था। आप वैदिक एवं लौकिक वाङ्मय के ज्ञाता, उपनिषद्, दर्शन-पुराण और काव्य-साहित्य के मर्मज्ञ; मनोविज्ञान, तर्क-विज्ञान, समाजवाद और साम्यवाद आदि के प्रकाण्ड पण्डित, सुलेखक, सुकवि और सुवक्ता थे। संस्कृत भाषा के प्रचार तथा प्रसार के अतिरिक्त आप लेखन, भाषण, अध्यापन तथा वाद-विवाद आदि अनेक कलाओं की समृद्धि के लिए अहर्निश संलग्न रहा करते थे।
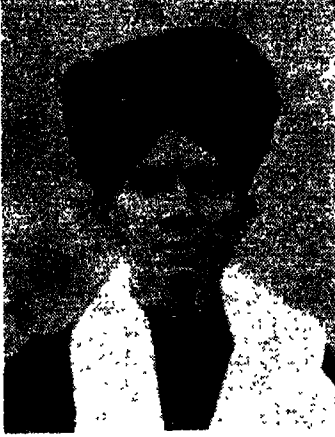
भारतीय वाङ्मय की ऐसी कोई भी विधा नहीं थी, जिसमें आपका चूड़ान्त प्रवेश न हुआ हो। आपकी इसी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको तत्कालीन झालावाड़ नरेश ने लन्दन के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में 'प्राचीन विज्ञान और संस्कृति' विषय पर भाषण देने के लिए चुना था और प्रख्यात विद्वान् श्री दीनानाथ शास्त्री चुलैट ने आपको 'विद्यामहोपाधि' की उपाधि प्रदान की थी। अपनी ऐसी ही प्रतिभा को प्रदर्शित करने के प्रसंग में आपको देश के अनेक नगरों की यात्रा करने का सुयोग भी अनेक बार सुलभ हुआ था।

अपने हिन्दी-लेखन-कार्य में आप जहाँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से अत्यधिक प्रभावित थे वहाँ आचार्य पद्मसिंह शर्मा और मेहता लज्जाराम शर्मा से भी आपने बहुत प्रेरणा ग्रहण की थी। 'सौरभ' नामक प्रख्यात सांस्कृतिक और साहित्यिक पत्र के यशस्वी सम्पादक के रूप में आपकी गणना हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रकारों में होती है। आपने इस सम्पादन-काल में अनेक लेखकों को प्रोत्साहित किया था।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'गायत्री' (1942) और 'सौरभ-कण' (1943) अत्यधिक प्रख्यात हैं। आपकी 'प्राचीन गवेषणा', 'साहित्य-माधुरी', 'समाज-सुधा', 'विश्व-मन्थन' तथा 'देहावली' आदि कृतियाँ अभी अप्रकाशित ही हैं। आपके शोधपूर्ण निबन्ध 'कल्याण', 'माधुरी', 'सरस्वती', 'वीणा' और 'वाणी' आदि अनेक प्रख्यात पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करते थे।

आपका निधन सन् 1965 में हुआ था।

राजा रामपाल सिंह

राजा रामपालसिंह का जन्म 23 अगस्त सन् 1849 को प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा अपने पिता श्री लाल प्रतापसिंह की देख-रेख में हुई थी, जो कालाकाँकर राज्य के अधिपति थे।

राजा साहब जहाँ अँग्रेजी के अच्छे लेखक और पत्रकार थे वहाँ हिन्दी को आगे बढ़ाने में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। आपने सन् 1883 में इंग्लैण्ड में रहते हुए जहाँ 'इण्डियन यूनियन' नामक एक अँग्रेजी भाषा का पत्र निकाला था वहाँ 'हिन्दोस्थान' नाम से हिन्दी का एक पत्र भी वहाँ प्रकाशित किया था। जब आप भारत लौटे तो 'हिन्दोस्थान' का दैनिक रूप में विधिवत् प्रकाशन कालाकाँकर से ही करके अपने अनन्य हिन्दी-प्रेम का परिचय दिया था। यह पत्र उत्तर
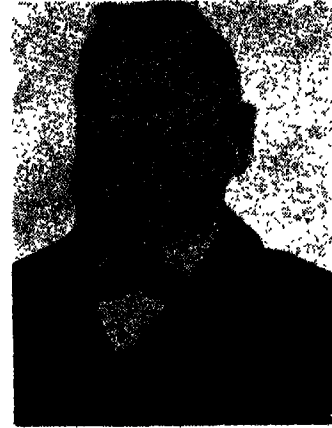
प्रदेश का प्रथम हिन्दी दैनिक था और इसके आदिसम्पादक महामना पं० मदनमोहन मालवीय थे। मालवीयजी ने सन् 1887 से सन् 1889 तक निरन्तर दो वर्ष इसका सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। मालवीयजी के बाद दैनिक 'हिन्दोस्थान' के सम्पादन में हिन्दी के जिन महान् उन्नायकों ने अपना सहयोग दिया था उनमें सर्वश्री बालमुकुन्द गुप्त, गोपालराम गहमरी तथा अमृतलाल चक्रवर्ती के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपने अपने राज्य में आचार्य वचनेश मिश्र-जैसे कवि तथा साहित्यकार को आमन्त्रित करके अनेक वर्ष तक जो गौरव प्रदान किया था वह आपकी हिन्दी-निष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण है। आपने कालाकाँकर राज्य में हिन्दी साहित्य को सम्मानित करने की जो परम्परा प्रचलित की थी उसका निर्वहण कालान्तर में आपके उत्तराधिकारियों (राजा रमेशसिंह, राजा अवधेशसिंह तथा कुँ० सुरेशसिंह) ने भली-भाँति करके हिन्दी की गौरव-वृद्धि करने में अपना अनन्य सहयोग दिया।

आपका निधन 28 फरवरी सन् 1909 को हुआ था।

संस्थाओं को राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त तथा सुभद्राकुमारी चौहान का संरक्षण भी प्राप्त था। आप वीर-रस के उच्चकोटि के कवि थे और अनेक कवि - सम्मेलनों में आपने ऐसी प्रतिभा का प्रचुर परिचय भी दिया था।

आपने 'युग मानव' (खण्डकाव्य) तथा 'प्रतापी परिमर्दिदेव परमाल' (खण्ड काव्य) के अतिरिक्त 'प्राचीन भारत में चन्देल राज्य' नामक एक ऐतिहासिक शोधपरक ग्रन्थ भी लिखा था। दुर्भाग्यवश ये सभी रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित हैं।

आपका निधन 7 अक्तूबर सन् 1978 को हुआ था।

श्री रामपालसिंह चन्देल 'प्रचण्ड'

श्री चन्देलजी का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर के सीसामऊ नामक मोहल्ले में सन् 1907 में हुआ था और बाद में आप अपनी छोटी बहन श्रीमती रामकुमारी चौहान के पास झाँसी जाकर रहने लगे थे। आपको कविता के प्रति प्रेम पारिवारिक परम्परा से ही प्राप्त हुआ था। आपकी दोनों बहनें (श्रीमती रामकुमारी चौहान तथा श्रीमती राजरानी चौहान) हिन्दी की उत्कृष्ट कवयित्री थीं और आप भी एक सिद्धहस्त कवि थे।

पहले आप भारतीय सेना में कार्य-रत थे, किन्तु कुछ दिन बाद उसे छोड़कर झाँसी के जिला बोर्ड में कार्य करने लगे थे। आपने 'बुन्देलखण्ड प्रान्तीय कवि परिषद्' का गठन करने के साथ-साथ 'बुन्देलखण्ड वागीश' नामक मासिक पत्रिका का संचालन भी किया था। आपकी इन

श्री रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

श्री त्रिपाठीजी का जन्म 1 अक्तूबर सन् 1919 को उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद के अढ़नपुर नामक ग्राम में हुआ था। संस्कृत तथा हिन्दी की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने अपनी निष्ठा, योग्यता और कार्य-कुशलता से साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। अनेक वर्ष तक आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रबन्ध मन्त्री के पद पर सफलतापूर्वक कार्य किया था।

आप एक कुशल प्रबन्धक तथा संगठक होने के साथ-साथ अच्छे लेखक भी थे। आपने जहाँ संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित किए थे वहाँ मौलिक साहित्य-सर्जना का भी अच्छा परिचय दिया था। आपकी अनूदित रचनाओं में 'वायु पुराण', 'मत्स्य पुराण' तथा

'भागवत पुराण' के अतिरिक्त 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपाल वध', 'मालती माधव', 'महावीर चरित', 'उत्तर रामचरित', 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'कुमार सम्भव', 'अभिज्ञान शाकुन्तल', 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'मालविकाग्निमित्र' आदि उल्लेखनीय हैं। आपने भवभूति के सभी ग्रन्थों का अनुवाद 'भवभूति ग्रन्थावली' नाम से प्रकाशित किया था।

हिन्दी में उत्कृष्टतम साहित्य की रचना करके भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'ऋषि-मुनियों की कहानियाँ', 'उपनिषदों की कहानियाँ', 'पुराणों की अमर कहानियाँ' तथा 'हिन्दुओं के व्रत और त्योहार' आदि विशिष्ट हैं। छात्रोपयोगी तथा बालोपयोगी रचना करने के क्षेत्र में भी आप पीछे नहीं रहे थे। आपकी 'नवीन हिन्दी व्याकरण और रचना', 'सरल संस्कृत व्याकरण और रचना', 'निबन्धालोक', 'प्राचीन भारत की झलक', 'पुष्करिणी', 'खेतों और खलिहानों में', 'मुक्ति का रहस्य : एक अध्ययन', 'हमारी कहानियाँ' (दो भाग), 'राष्ट्रभाषा के पुजारी', 'स्वतन्त्रता के स्तम्भ', 'रधिया', 'गुरु नानक', 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' तथा 'गुदड़ी के लाल' आदि ऐसे ही कृतियाँ हैं।

पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में भी आपकी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कार्य-काल में देखने को मिलता था। सम्मेलन की ओर से प्रकाशित होने वाले 'माध्यम', 'राष्ट्रभाषा सन्देश' और 'सम्मेलन पत्रिका' आदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में आपका पर्याप्त सहयोग रहता था।

यह दुर्भाग्य की ही बात कही जायगी कि हिन्दी के ऐसे अनन्य तथा कर्मठ सेवक का निधन बड़ी दुःखद परिस्थिति में हुआ। आप 5 अप्रैल सन् 1974 को सायंकाल साढ़े छह बजे के लगभग जब अपने घर जा रहे थे तब मार्ग में कुछ व्यक्तियों ने निरन्तर गोली-वर्षा करके आपको इस बुरी तरह आहत कर दिया था कि तीन दिन तक मृत्यु से जूझते रहने के बाद आप 7 अप्रैल को इस असार संसार से विदा हो गए।

श्री रामप्रताप शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म सन् 1902 में उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के बरकोट नामक गाँव में हुआ था। आपने अपना सारा ही जीवन घनघोर परिश्रम एवं अनवरत अध्यवसाय से निर्मित किया था। आप सन् 1928 में बम्बई के 'मारवाड़ी हिन्दी पुस्तकालय' के पुस्तकाध्यक्ष होकर वहाँ गए थे और फिर वहाँ के ही हो गए। आपने बम्बई में हिन्दी का प्रचार तथा प्रसार करने की दृष्टि से वहाँ मुन्शी प्रेमचन्द, बाबू सम्पूर्णानन्द, रामनरेश त्रिपाठी और सीताराम चतुर्वेदी-जैसे अनेक महानुभावों को बुलाकर साहित्यिक गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों का आयोजन समय-समय पर किया था। मारवाड़ी पुस्तकालय के प्रबन्धक के रूप में भी आपने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया था। आपके कार्य-भार सँभालने से पूर्व पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या भी नगण्य ही थी। शुक्लजी ने जहाँ अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें पुस्तकालय में मँगाकर रखीं वहाँ उनका वर्गीकरण भी किया था। जब सन् 1939 में आपने पुस्तकालय से त्याग-पत्र दिया तब पुस्तकों की संख्या कई हजार थी और वह हिन्दी-साहित्य का अच्छा अध्ययन-केन्द्र बन गया था।

आपने मारवाड़ी पुस्तकालय में कार्य करते हुए ही अपने
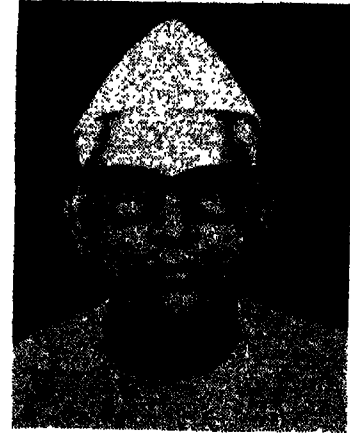
स्वाध्याय के बल पर लिखने का भी कार्य प्रारम्भ किया था। उन्हीं दिनों आपने एक काव्यमय 'हिन्दी पर्यायवाची कोश' की रचना भी की थी, जिसकी भूमिका प्रख्यात साहित्यकार श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखी थी। खेद है कि आपका यह कोश अप्रकाशित ही रह गया। मारवाड़ी पुस्तकालय से पृथक् होकर आपने वहाँ के 'अखण्ड भारत' दैनिक में कार्य प्रारम्भ किया और श्री मदनलाल अग्रवाल के सहयोग से एक प्रेस खोला और उससे 'आवाज' नामक हिन्दी साप्ताहिक का प्रकाशन भी किया। आपका प्रेस उन दिनों ब्रिटिश नौकरशाही की आँखों में बुरी तरह खटका करता था। क्योंकि आपके प्रेस से बहुत-सी क्रान्तिकारी सामग्री प्रकाशित हुआ करती थी, इसीलिए सरकार ने उसे जब्त कर लिया। सन् 1942 के आन्दोलन के समय श्री शुक्ल का वारण्ट हो गया, किन्तु आप भूमिगत हो गए। सन् 1943 के अन्त में आपने 'प्रभा' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक भी बम्बई से प्रकाशित किया। उन दिनों आपका तथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का साहित्यिक वाद-विवाद बड़ी चर्चा का विषय था।

जिन दिनों बम्बई में 'विक्रम द्विसहस्राब्दी महोत्सव' मनाया जा रहा था तब आपने वहाँ मारवाड़ी सम्मेलन के तत्वावधान में एक 'विराट् हिन्दी कवि-सम्मेलन' का आयोजन भी किया था। सन् 1948 में श्री शुक्ल 'सहकारिता आन्दोलन' को आगे बढ़ाने की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य करते रहे थे। सन् 1962 में आपने 'राष्ट्र चेतक' नामक एक साप्ताहिक का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया था, जो सन् 1963 तक चल सका और बाद में आर्थिक कठिनाइयों के कारण बन्द हो गया। सिनेमा के क्षेत्र में कार्य करने वाले हिन्दी के कवियों और साहित्यकारों को भी वहाँ प्रतिष्ठित करने में आपने उल्लेखनीय सहयोग दिया था। ऐसे महानुभावों में पण्डित इन्द्र, भरत व्यास, रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप' तथा अनजान आदि प्रमुख है। आपने पं० जमनादास पचेरिया तथा पं०भरत व्यास के सहयोग से बम्बई में हिन्दी-रंगमंच को प्रतिष्ठित और विकसित करने में भी अभिनन्दनीय कार्य किया था। आपके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री कमलाकान्त शुक्ल एक औद्योगिक पत्रकार तथा एसोसिएटेड सीमेण्ट कम्पनी में प्रकाशन-अधिकारी हैं।

आपका निधन 27 फरवरी सन् 1972 को बम्बई में बड़ाला-स्थित अपने निजी मकान पर हुआ था।

श्री रामप्रसाद 'किंकर'

श्री किंकरजी का जन्म उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में सन् 1924 में हुआ था। मैट्रिक तक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप रेल-डाक-सेवा में शार्टर के पद पर नियुक्त हो गए और आपको इसी काल में साहित्य-रचना का ऐसा चस्का लगा कि धीरे-धीरे आप अपने क्षेत्र में एक कुशल कवि के रूप में विख्यात हो गए।

अपने इस कार्य-काल के दौरान आपका स्थानान्तरण जब कानपुर हो गया तब आपके कवि-हृदय को और भी प्रोत्साहन तथा प्रश्रय मिला। कानपुर की साहित्यिक जागृति के कारण आप कविता-रचना में और भी निपुण हो गए। विशेषरूप से आचार्य बिहारी का सान्निध्य पाकर आपका कवि-व्यक्तित्व विकसित हुआ था। आप अत्यन्त सरल, निश्छल और सहृदय व्यक्ति थे। आपकी कुछ रचनाएँ 'हिन्दी साहित्य मण्डल, कानपुर' की ओर से प्रकाशित 'काव्य कलश' नामक कविता-संकलन में समाविष्ट की गई है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि श्री किंकरजी केवल 45 वर्ष की अवस्था में ही 13 अक्तूबर सन् 1969 को इस ससार से विदा हो गए।

श्री रामप्रसाद सारस्वत

श्री सारस्वत का जन्म सन् 1897 में आगरा जनपद के प्रख्यात स्थान फतहपुर-सीकरी में पंडित गणेशीलाल सारस्वत के यहाँ हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा सीकरी ग्राम में प्राप्त करने के बाद आपने मैट्रिक की परीक्षा सन् 1915 मे आगरा के गवर्नमेण्ट हाईस्कूल से उत्तीर्ण की। फिर आगरा कालेज मे प्रविष्ट होकर वहाँ से ही सन् 1920 में बी० ए० किया। सन् 1920 मे ही बी० ए० करने के उपरान्त आपकी नियुक्ति 'बलवन्त राजपूत हाई स्कूल' (आजकल कालेज) में भाषा-अध्यापक के रूप में हो गई और सन् 1923 मे आपने वाराणसी से एल०टी०की परीक्षा दी। अपने अध्यापन-कार्य में व्यस्त रहते हुए ही आपने एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा सन् 1930 में उत्तीर्ण की थी। जब यह

हाई स्कूल इण्टर की कक्षाओं तक बढ़ाया गया तब आप इण्टर कक्षाओं को भी पढ़ाने लगे थे।

आप कुशल अध्यापक होने के साथ-साथ गम्भीर प्रकृति के स्वाध्यायशील लेखक थे। ये संस्कार आपको अपने पिताश्री से वंशानुगत मिले थे। आपकी रचनाओं में 'श्रीकृष्ण' (खण्ड काव्य), 'शिवपुरी' (नाटक) तथा 'रघु-वंश' (पद्यानुवाद) उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन केवल 41 वर्ष 3 मास की आयु में 23 नवम्बर सन् 1938 को 'राजयक्ष्मा' रोग के कारण हुआ था।

श्री राममिश्र शास्त्री महामहोपाध्याय

श्री महामहोपाध्याय का जन्म राजस्थान के अलवर राज्य के 'दोसोद' नामक गाँव में सन् 1847 में हुआ था। आपके पिता पंडित शालिग्रामाचारी काशी के निवासी थे। राममिश्रजी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपकी विद्वत्ता का परिचय इसी बात से मिल जाता है कि आपके विद्या-गुरु पं० राधा-मोहन भट्टाचार्य तर्कभूषण और महामहोपाध्याय पं० कैलाश-चन्द्र शिरोमणि-जैसे सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र विद्वान् थे।

आपने अनेक वर्ष तक बनारस के गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में अध्यापन-कार्य करने के अनन्तर सन् 1902 में अवकाश ग्रहण किया था। हिन्दी और संस्कृत के साथ-साथ आप अँग्रेजी के भी अच्छे ज्ञाता थे। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर महारानी विक्टोरिया की जुबली के अवसर पर आपको 'महामहोपाध्याय' की सम्मानित-उपाधि भी प्रदान की गई थी।

आपकी 'चित्र मीमांसा', 'बलाबल परीक्षा', 'दर्शन रहस्य', 'रत्न परीक्षा' और 'सुजन सम्मेलन' आदि रचनाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

आपका देहावसान सन् 1906 में हुआ था।

राजा राममोहनराय

राजा राममोहनराय का जन्म सन् 1774 में कलकत्ता में हुआ था। आपके पिता श्री रामकान्तराय वहाँ के एक सम्भ्रान्त नागरिक थे। राममोहनराय की शिक्षा उनके ही निरीक्षण में हुई थी और उनकी प्रेरणा से ही आपने अँग्रेजी भाषा के अतिरिक्त बंगला, संस्कृत, फारसी, हिन्दी, अरबी, हिब्रू तथा ग्रीक आदि भाषाओं का ज्ञान अर्जित कर लिया था।

बंगाल के सांस्कृतिक जागरण में आपके द्वारा संस्थापित ब्राह्म धर्म की एक सर्वथा विशिष्ट तथा अनुपम भूमिका रही है। आपने ब्राह्म धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जहाँ 'बंगदूत' नामक साप्ताहिक पत्र 10 मई सन् 1829 को प्रकाशित किया था वहाँ अपने इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए अनेक पुस्तकें भी लिखी थीं। यहाँ यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि हिन्दी के सार्वभौमिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए आपने 'बंग दूत' को अँग्रेजी, बंगला और फारसी भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दी में भी प्रकाशित किया था और इसी दृष्टि से आपने श्री नीलरतन हालदार-जैसे बहुभाषाविद् व्यक्ति को उसका सम्पादक बनाया था।

हिन्दी के प्रति आपका यह झुकाव केवल 'बंग दूत' तक ही सीमित न रहकर आपकी 20 से अधिक पुस्तकों में भी

प्रकट हुआ था, जो कि आपने हिन्दी में ही प्रकाशित कराई थीं। आपकी ऐसी रचनाओं में 'वेदान्त भाष्य', 'वेदान्त सार', 'हिन्दुओं की पौत्तलिक धर्म प्रणाली', 'ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थ के लक्षण', 'गायत्री उपासना का विधान', 'अनुष्ठान', 'ब्रह्मोपासना', 'प्रार्थना पत्र' तथा 'ब्रह्म संगीत' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन 27 सितम्बर सन् 1833 को इंग्लैण्ड में हुआ था।

श्री रामरखसिंह सहगल

श्री सहगलजी का जन्म 28 सितम्बर सन् 1896 को लाहौर (अब पाकिस्तान) के निकट रखदेढ़ा नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता वन-विभाग में सेवा-रत थे, अतः आपका सारा बाल्य-काल अपने ताऊ रायसाहब लक्ष्मणसिंह सहगल के साथ बीता था। किशोरावस्था में आपको आपकी दादी की बहन रानी धनदेवी ने गोद ले लिया था, अतः कुछ समय तक आप उनके साथ जौनपुर में रहे थे। उन्ही दिनों असहयोग-आन्दोलन छिड़ गया और आप राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेने लगे। 'जलियाँ वाला काण्ड' की जाँच के समय जब आप जालन्धर गए थे तब ही आपका श्रीमती विद्यावतीदेवी से विवाह हो गया।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में आपने जो नए मानदण्ड स्थापित किए थे उनके कारण हिन्दी पत्रकारिता का गौरव ही बढ़ा है। सन् 1923 में आपने प्रयाग से 'चाँद' का प्रकाशन प्रारम्भ किया और सन् 1927 के आस-पास दैनिक तथा 'साप्ताहिक भविष्य' भी निकाला था। सन् 1937 में 'कर्मयोगी' तथा सन् 1940 के आस-पास 'गुलदस्ता' मासिक भी सम्पादित तथा प्रकाशित किया था। हिन्दी में विशेषांकों के प्रकाशन की परम्परा में सहगलजी ने जो नए कीर्तिमान स्थापित किए थे उन्हें आज तक कोई भी पत्रकार छू नहीं सका है। सर्वथा साधनहीन अवस्था में अपनी सूझ-बूझ तथा व्यवस्था के बल पर आपने 'चाँद' को हिन्दी के उल्लेखनीय तथा गरिमापूर्ण पत्रों की श्रेणी में प्रतिष्ठित कर दिया था। 'चाँद' का प्रमुख उद्देश्य वैसे तो विशेष रूप से नारी-जागरण था, किन्तु सेवा का ऐसा कोई क्षेत्र नही था, जिसमें आपने बढ़कर कार्य न किया हो। यहाँ तक कि जब देश में राष्ट्रीय आन्दोलन का जोर था तब आपने उसे गति देने की दृष्टि से 'चाँद' का 'फाँसी अंक' निकालने की क्रान्तिकारी योजना बनाई। अपने इस विशेषांक के कारण आपने जहाँ देश की तरुणाई को नई दिशा दी वहाँ अनेक क्रान्तिकारियों को अपने घर में पनाह भी दी। उन दिनों आपका निवास-स्थान देश-भर के क्रान्तिकारियों का गुप्त मन्त्रणा-स्थल बना हुआ था। महिलाओं को राजनीतिक मंच पर प्रतिष्ठित करके उनके द्वारा समाज-सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कराने की दृष्टि से आपने 'मातृ मन्दिर' नामक संस्था की स्थापना भी की थी। इस संस्था में दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी-जैसी क्रान्तिकारिणी महिलाओं का जमाव रहा करता था।
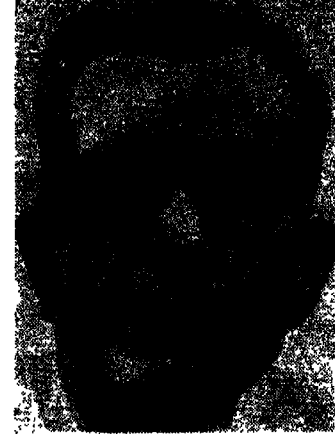
'चाँद' की स्थापना वैसे कहने को तो नारी जागरण के कार्य को आगे बढ़ाने की दृष्टि से हुई थी, किन्तु इसने समाज में बहुमुखी क्रान्ति करने की दृष्टि से अनेक उल्लेखनीय कार्य किए थे। उसके 'फाँसी अंक' ने जहाँ समग्र देश में क्रान्ति का भीषण शंखनाद किया वहाँ 'प्रवासी अंक', 'अछूत अंक', 'मारवाड़ी अंक', 'पत्रांक', 'राजपूताना अंक' तथा 'नारी आन्दोलन अंक' प्रकाशित करके सहगलजी ने समाज में तहलका मचा दिया था। यहाँ तक कि 'मारवाड़ी अंक' के प्रकाशन पर तो मारवाड़ी समाज इतना विक्षुब्ध हुआ था कि कलकत्ता के वासुदेव थरड नामक एक मारवाड़ी युवक ने श्री सहगलजी पर जूतों से भी आक्रमण करने की धृष्टता की थी। एक ओर आपको जहाँ ब्रिटिश नौकरशाही से डटकर लोहा लेना पड़ रहा था वहाँ समाज के अनेक वर्गों से भी आप जूझ रहे थे। अनेक विघ्न-बाधाओं में अपना मार्ग खोज लेने का जैसे आपका स्वभाव ही हो गया था। यह 'चाँद' को ही सौभाग्य प्राप्त था कि नवम्बर सन् 1931 में प्रकाशित

उसके 'फाँसी अंक' की 10 हजार प्रतियाँ छपी थीं और उसमें आपके लगभग 12 हजार रुपए व्यय हुए थे। इस पर भी 325 पृष्ठ के इस विशेषांक का मूल्य केवल दो रुपए था। यहाँ यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इसमें देश की स्वतन्त्रता के लिए हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे को चूमने वाले जिन अनेक शहीदों का वर्णन छपा था वह सरदार भगतसिंह के द्वारा मूलतः हिन्दी में ही लिखा गया था। यद्यपि प्रकाशन के तुरन्त बाद ब्रिटिश सरकार ने उसे जब्त कर लिया था, किन्तु फिर भी उसकी प्रतियाँ देश के कोने-कोने में पहुँच गई थीं।

लगभग इन्हीं दिनों जब आपने पंडित सुन्दरलाल द्वारा लिखित 'भारत में अँग्रेजी राज्य' नामक क्रान्तिकारी ग्रन्थ का प्रकाशन अपनी संस्था की ओर से किया तब उसे भी अँग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था। 'मरे को मारे शाह मदार' की लोकोक्ति यहाँ सहगलजी पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। एक ओर 'फाँसी अंक' के प्रकाशन ने आपको जहाँ आर्थिक कष्ट में डाल दिया था वहाँ इस घटना से आप और भी ऋण-ग्रस्त हो गए। आप पर इतना ऋण हो गया था कि उसका ब्याज ही आपको लगभग 15 सौ रुपया प्रति मास देना होता था। इसके उपरान्त आपने 'चाँद' का प्रकाशन एक 'प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी' बनाकर किया। 'चाँद' की लोकप्रियता में बीकानेर के सेठ रामगोपाल मोहता का भी बड़ा भारी योगदान था। यदि वे सहगलजी को अपना आर्थिक सहयोग प्रदान न करते तो कदाचित् सहगलजी 'चाँद' को इतना ऊपर नहीं उठा पाते। यह 'चाँद' का ही सौभाग्य था कि इसके सम्पादन में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डॉ० धनीराम 'प्रेम', चण्डीप्रसाद बी० ए० 'हृदयेश', मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' और नन्दकिशोर तिवारी-जैसे अनेक धुरन्धर हिन्दी-लेखकों ने अपना सक्रिय सहयोग दिया था।

'चाँद' की क्रान्तिकारी परम्परा को आगे बढ़ाने की दृष्टि से असहयोग आन्दोलन को गति देने के लिए आपने 'भविष्य' नामक एक सचित्र साप्ताहिक का प्रकाशन भी किया था। इस पत्र की यह विशेषता थी कि इसके लगभग छह सम्पादकों को उन दिनों कारावास की नृशंस यातनाएँ भुगतनी पड़ी थीं। इसका एक-एक अंक सशस्त्र क्रान्ति तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सही-सही विवरण प्रस्तुत करता था। साधनों के अभाव में जब निरन्तर संघर्ष करते हुए आप थक गए तो आपने सन् 1935 में अपने पुत्र के नाम पर देहरादून जाकर 'नरेन्द्र पब्लिशिंग हाउस' नाम से प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया, किन्तु खेद है कि उसमें भी आपको सफलता नहीं मिली। इस के अतिरिक्त आपने सन् 1938 की गान्धी जयन्ती के अवसर पर 'कर्मयोगी' नामक मासिक का प्रकाशन भी लखनऊ से किया था। खेद है कि इसके केवल छह अंक ही प्रकाशित हो सके थे। इसके उपरान्त उसे आपने साप्ताहिक रूप में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया, किन्तु वह भी नहीं चल सका। सन् 1940 में द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ जाने पर आपने 'गुलदस्ता' नामक एक और पत्र प्रकाशित किया था। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि 'चाँद' के प्रकाशन के दिनों में आपने इलाहाबाद से भी हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य किया था। सहगलजी उन दिनों कदाचित् अकेले ही ऐसे प्रकाशक थे, जिन्होंने विषय-वस्तु के साथ पुस्तकों की साज-सज्जा और गेट-अप की ओर भी समुचित ध्यान दिया था। मुद्रण-कला के तो आप अद्वितीय पारखी थे। हिन्दी के प्रकाशन-व्यवसाय को व्यावसायिकता के क्षेत्र से हटाकर उसे 'उपयोगिता' की दृष्टि से अपनाकर आपने सर्वथा नई पहल की थी। आज हिन्दी-साहित्य के इतिहास में ऐसे अनेक लेखक हैं जिन्हें चमकाने में आपने उल्लेखनीय योगदान दिया था। हास्य रस के अनूठे लेखक श्री जी० पी० श्रीवास्तव और प्रख्यात कथाकार श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के नाम उन्हींमें हैं।

यह दुर्भाग्य की ही बात है कि इतने तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी सहगलजी के अन्तिम दिन घोर अर्थ-संकट तथा भयानक संघर्षों में व्यतीत हुए और 1 फरवरी सन् 1952 को प्रयाग में आपका प्राणान्त हो गया।

श्री रामरतनदास महन्त

श्री महन्तजी का जन्म सन् 1838 में आगर (मालवा) के किसी गाँव में हुआ था। आप आगर के रणछोड़ मन्दिर के महन्त किशनदास के शिष्य थे। आप उच्चकोटि के विद्वान् होने के साथ-साथ कवि, संगीतज्ञ और चित्रकार भी थे।

जिन दिनों आप आगर में रहते थे उन दिनों वहाँ का रणछोड़ मंदिर भक्तों और जिज्ञासुओं के लिए ज्ञान-चर्चा का केन्द्र बना हुआ था। आप कुशल चित्रकार होने के साथ-साथ सितार बजाने की कला में भी बड़े दक्ष थे।

आपका निधन सन् 1898 में हुआ था।

अध्यापक रामरत्न

अध्यापक रामरत्न का जन्म आगरा जनपद के अकोला नामक स्थान में सन् 1883 में हुआ था। वर्नाकुलर मिडिल तक की शिक्षा प्राप्त करके आपने सर्वप्रथम आगरा के समीपवर्ती कोटला राज्य के राजघराने में शिक्षक का कार्य प्रारम्भ किया और फिर बलवन्त राजपूत हाईस्कूल, आगरा में नियुक्त हो गए।

वैसे अध्यापक जी ने यावज्जीवन शिक्षण-कार्य में व्यस्त रहते हुए साहित्य-सेवा को ही अपना प्रमुख ध्येय बनाया था किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में भी आपकी देन सर्वथा अविस्मरणीय है। वास्तव में उन दिनों आगरा में साहित्य तथा राजनीति से सम्बन्धित जो भी हलचलें होती थी उन सबमें अध्यापक जी का अग्रणी सहयोग रहता था। सन् 1922 में गान्धीजी द्वारा चलाये गए आन्दोलन में आपने 18 मास का कारावास भोगा था और आपको 500 रुपए जुरमाने के भी देने पड़े थे।

अध्यापन तथा राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्त रहते हुए भी आपने आगरा में 'रत्नाश्रम आगरा', 'भारतीय प्रकाशन मन्दिर', 'साहित्य रत्न भण्डार' तथा 'साहित्य कुंज' आदि संस्थाओं के द्वारा हिन्दी के जो ग्रन्थ प्रकाशित किए थे भी आपके साहित्य-प्रेम के परिचायक हैं। अनेक लेखकों की प्रतिभा को परखकर उन्हें आपने ही प्रतिष्ठित किया था। आगरा के श्री हृषिकेश चतुर्वेदी की पहली पुस्तक की भूमिका आपने ही लिखी थी। आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षा मन्त्री भी रहे थे।

आप सफल अध्यापक, कर्मठ देश-भक्त और कुशल संगठक होने के साथ-साथ अध्ययनशील लेखक भी थे। आपके द्वारा लिखित रचनाओं में 'हिन्दी व्याकरण प्रवेशिका', 'हिन्दी व्याकरण बोध', 'लोकोक्ति संग्रह', 'रचना-प्रबोध' तथा 'पिंगल प्रवेश' आदि उल्लेखनीय है। आपने गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के 'अयोध्या काण्ड' तथा 'कवितावली' की टीका लिखने के साथ-साथ 'जीवन ज्योति' नामक पुस्तक भी लिखी थी। आपकी रचनाओं में से अधिकतर पुस्तकें पाठ्य-क्रम में निर्धारित थीं।

आपका निधन सन् 1940 में हुआ था।

श्री रामराजेन्द्रसिंह वर्मा

आपका जन्म सन् 1904 में उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के 'दौराला' नामक ग्राम के एक जाट-परिवार में हुआ था। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करके यावज्जीवन शिक्षक के रूप में ही अपना जीवन व्यतीत किया था। आप गाजियाबाद के निकट फर्रुखनगर नामक कस्बे के एक इण्टर कालेज के उपप्राचार्य थे। यह विद्यालय आपने ही स्थापित किया था।

काशी विश्वविद्यालय में आप श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के प्रमुख शिष्यों में थे।

आप एक कुशल शिक्षक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपने गद्य तथा पद्य में अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। कहानी-लेखन में भी आप पूर्णतः दक्ष थे। मुख्यतः शब्दकोश-निर्माण की ओर आपका झुकाव था। आपने मेरठ मण्डल के मुहावरों के सम्बन्ध में एक बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी, जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हुई है।

आपका निधन 12 अक्तूबर सन् 1974 को 70 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री रामलाल पाण्डेय

श्री पाण्डेय का जन्म सन् 1881 में उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर में हुआ था। आप संस्कृत, पालि, प्राकृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अँग्रेजी और फ्रेंच आदि विभिन्न भाषाओं के अच्छे ज्ञाता होने के साथ-साथ हिन्दी के निष्णात विद्वान् थे। बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करके आपने सरकारी नौकरी कर ली थी, किन्तु अचानक असहयोग आन्दोलन छिड़ जाने के कारण आप उसमें कूद पड़े और उसमें सक्रिय रूप से भाग लेकर अनेक बार जेल-यात्राएँ भी कीं। आप अनेक वर्ष तक कानपुर जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री, अध्यक्ष और डिक्टेटर भी रहे।

आप हिन्दी के सुलेखक और जागरूक पत्रकार के रूप में अपनी अनेक विशेषताएँ रखते थे। आपने जहाँ कई वर्ष तक दैनिक 'वर्तमान' (कानपुर) का सम्पादन किया था वहाँ आपके विभिन्न विषयों से सम्बन्धित लेख आदि उन दिनों 'सरस्वती', 'माधुरी', 'वीणा' तथा 'विश्ववाणी' आदि पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित हुआ करते थे। आपके द्वारा अनूदित अबुल फजल के 'आइने अकबरी' के हिन्दी अनुवाद का बड़ा महत्त्व है। इस विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ का अनुवाद आपने अपने जीवन के बहुमूल्य 17 वर्ष लगाकर किया था। यह अत्यन्त खेद की बात है कि हिन्दी-जगत् को आपके परिश्रम का पूरा फल प्राप्त नहीं हो सका और इस ग्रन्थ के केवल 4 भाग ही अभी तक प्रकाशित हो सके हैं। आपकी अन्य प्रकाशित पुस्तकों में 'लार्ड कर्जन' और 'महात्मा मेजिनी' प्रसिद्ध हैं।

आपका निधन सन् 1951 में हुआ था।

श्री रामलाल पुरी

श्री पुरीजी का जन्म 26 फरवरी सन् 1902 को लाहौर में हुआ था। देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन छिड़ जाने के कारण आपकी शिक्षा 'इण्टरमीडिएट' से आगे नहीं हो सकी थी और आपने अध्ययन को छोड़कर आन्दोलन में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था।

आप एक कुशल व्यवसायी ही नहीं, बल्कि हिन्दी के प्रबल समर्थक और सहृदय मानव भी थे। वह हिन्दी की प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्था 'आत्माराम एण्ड संस' के संचालक थे और आपने अपनी कार्य-पटुता, योजना-प्रवणता और व्यवहार-कुशलता द्वारा बहुत थोड़े समय में ही हिन्दी-प्रकाशन-व्यवसाय को एक सर्वथा नई दिशा दी थी। विभाजन के उपरान्त लाहौर से दिल्ली में आकर पुरीजी ने अनेक विषम परिस्थितियों के होते हुए भी हिन्दी-प्रकाशन द्वारा साहित्य-सेवा का जो पावन व्रत लिया था वह वास्तव में आपकी लगन का परिचायक है।

वैसे इस संस्था की स्थापना लाहौर में श्री रामलाल पुरी के स्वनामधन्य पिता श्री आत्माराम पुरी ने सन् 1909 में उस समय की थी जब रामलाल पुरी केवल 5 वर्ष के थे। उन दिनों इसके माध्यम से हाई स्कूल और कालेज में पढ़ने वाले छात्रों के लिए उपयोगी पुस्तकें अँग्रेजी में ही प्रकाशित की जाती थीं। शैक्षणिक क्षेत्र में उन दिनों अँग्रेजी का ही बोल-बाला था। विभाजन से पूर्व 1939 में दिल्ली में भी इस संस्था की शाखा स्थापित हो चुकी थी, जो बाद में इसके संचालक श्री रामलाल पुरी को 'सतत संघर्षशीलता' और 'दुस्साहसिक कर्मठता' के कारण धीरे-धीरे हिन्दी-साहित्य के 'प्रकाशन' और 'वितरण' का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गई।

श्री पुरी ऐसे प्रकाशक थे जिन्होंने अपनी दुर्घर्ष कर्मठता के कारण बहुत थोड़े दिनों में ही जहाँ हिन्दी को विभिन्न प्रकार के उपयोगी प्रकाशनों से समृद्ध किया, वहाँ बहुत से

प्रश्नों पर हिन्दी-प्रकाशन को नई दिशा भी दी है। साहित्य का ऐसा कोई भी अंग अछूता नहीं है, जिसके अच्छे-से-अच्छे ग्रन्थ आपने अपनी संस्था से प्रकाशित न किए हों। हिन्दी में नए-नए विषयों की पुस्तकें प्रकाशित करने की अदम्य अभिलाषा होने के कारण ही ललित साहित्य और व्यावहारिक साहित्य के क्षेत्र में ऐसे बहुत-से ग्रन्थों का अनुवाद भी आपने प्रकाशित किया जिनके अभाव में हिन्दी-साहित्य अपूर्ण ही कहा जा सकता था। यह तो हम नहीं कहते कि आपने मात्र राष्ट्र-सेवा का व्रत लेकर हिन्दी के प्रकाशन में कूदने का 'दुस्साहस' किया किन्तु आपके मन में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रकाशनों को 'लोकोपयोगी' और 'स्तरीय' बनाने की जो लगन और उत्साह था, वही इसका मुख्य कारण है।

प्रकाशन की दिशा में आपने जहाँ अनेक पुस्तक-मालाओं का प्रकाशन करके अपनी योजना-प्रवणता का परिचय दिया है, वहाँ व्यावसायिक दृष्टि से भी आपने हिन्दी-प्रकाशन को बहुत आगे बढ़ाया है। आप अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के दो बार अध्यक्ष चुने गए थे। इस पद पर रहते हुए आपने हिन्दी की पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने की अनेक व्यावहारिक योजनाएँ हमारे सामने प्रस्तुत की थीं।

आपने विभिन्न प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकारों द्वारा पुस्तकों की खरीद के लिए अपनाई जाने वाली 'टेण्डर-प्रणाली' का भी खुलकर विरोध किया था। एक बार आपने इस दोषपूर्ण पद्धति की भर्त्सना स्व० नेहरूजी से इन शब्दों में की थी—"पुस्तकों की खरीद के लिए पुल, इमारत या सड़कें आदि बनवाने की तरह जो 'टेण्डर' तलब किए जाते हैं, वह तरीका पुस्तक-व्यवसाय के लिए अत्यन्त हानिकारक और आपत्तिजनक है। अच्छी पुस्तकों पर कोई भी प्रकाशक अधिक कमीशन नहीं दे सकता। टेण्डर-प्रणाली होने के कारण अधिकारियों तक पहुँच रखने वाले लोग ही अधिक कमीशन का टेण्डर देकर आर्डर ले लेते हैं और फिर भ्रष्टाचार का सहारा लेकर 'अच्छी' और 'उपादेय' पुस्तकों के स्थान पर 'सस्ती' और अधिक कमीशन वाली 'रद्दी' पुस्तकें आपको थोप दी जाती हैं। इस प्रकार अच्छे लेखक तथा प्रकाशक उचित पारिश्रमिक से वंचित हो जाते हैं।"

समय-समय पर पुरीजी ने जहाँ पुस्तकों के 'राष्ट्रीयकरण' की नीति के विरुद्ध खुलकर आवाज बुलन्द की थी वहाँ आपने भारत सरकार द्वारा बढ़ाई गई डाक-दरों का भी विरोध किया था। आपके इस मत से हम सर्वथा सहमत हैं कि "पुस्तकों की लोकप्रियता में डाक-व्यय का अधिक होना एक बहुत बड़ी बाधा है।" प्रकाशन-व्यवसाय को सरकारी संरक्षण देने की दिशा में भी आपके विचार उल्लेखनीय हैं। आपकी ऐसी मान्यता थी कि उल्लेखनीय विदेशी ग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत करने और 'स्तरीय' पाठ्य-ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए सरकार प्रकाशकों को विदेशी मुद्रा की बचत आदि की दिशा में उचित संरक्षण दे सकती है।

आत्माराम एण्ड संस के हिन्दी-प्रकाशन अपनी विषयगत विशिष्टताओं, विविधताओं और मुद्रण-आकल्पन-सम्बन्धी ऋजुताओं की दिशा में अपना सानी नहीं रखते। उनके पीछे श्री रामलाल पुरी की सतर्क और सूक्ष्म दृष्टि का बड़ा भारी हाथ था। पुरीजी ने यहाँ अनेक गुरु-गम्भीर ग्रन्थ अपने संस्थान से प्रकाशित करने का अभूतपूर्व साहस दिखाया था, वहाँ प्रौढ़ तथा बाल साहित्य के निर्माण और प्रकाशन के क्षेत्र में भी अनोखी सूझ-बूझ का परिचय दिया था। अपनी इसी योजना-पटुता और प्रकाशन-सम्बन्धी विशिष्ट अनुभव के कारण आपको कई बार विदेशों में भी जाने का सुअवसर मिला था। एक बार वियना में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता के रूप में भाषण देते हुए जो विचार पुरीजी ने प्रकट किए थे, उनसे आपकी प्रकाशन-सम्बन्धी भावनाओं और रुचियों का आभास भली-भाँति मिल जाता है। आपने कहा था—"पुस्तकों का खरीदना गरीबी और अमीरी पर निर्भर नहीं, बल्कि पढ़ने की आदत पर निर्भर करता है। अगर लोग दूसरी आवश्यकताओं के लिए रकम निकाल सकते हैं तो पुस्तकों के लिए भी यदि चाहें तो निकाल सकते हैं। सबसे पहली आवश्यकता है कि पुस्तकों को भोजन की भाँति आवश्यक समझा जाय।"

पुरीजी प्रकाशन की दिशा में अपनी रुचियों और मान्यताओं के प्रति कभी-कभी इतने दृढ़ दिखाई देते थे कि आपकी वह 'दृढ़ता' प्रायः लोगों को खटक जाती थी और वे उनको 'दुराग्रही' और 'हठी' समझने की भूल कर बैठते थे। मगर बात वास्तव में ऐसी नहीं है। वह ऊपर से 'नारियल' की तरह कठोर भले ही दिखाई देते थे, किन्तु आपके अन्दर एक 'सहृदय' मानव का निवास था। हम आपके इसी रूप के प्रशंसक रहे हैं। ऐसा भी हुआ है कि हमारे अनुरोध पर आपने 5-5 हजार रुपए की राशि लेखकों को बिना आगा-पीछा सोचे अग्रिम दे दी थी और कभी-कभी ऐसा हुआ था कि वह सौ रुपए तक देने के लिए आगा-पीछा सोचने लगते थे। इन दोनों स्थितियों में से पहली में जहाँ आपका 'सहृदय मानव' झाँकता होता था, वहाँ दूसरी में आपका 'व्यवसायी' रूप हावी दिखाई देता था। वास्तव में आप व्यवसाय के लिए नहीं, सेवा और परोपकार-परायणता के लिए ही हिन्दी-प्रकाशन के क्षेत्र में आए थे।

आपका निधन 29 अप्रैल सन् 1980 को 78 वर्ष की आयु में हुआ था।

आचार्य रामलोचनशरण

आचार्य रामलोचनशरण का जन्म 21 फरवरी सन् 1890 को बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के प्रधापुर नामक ग्राम में हुआ था। सन् 1907 में पटना के नार्मल स्कूल से नार्मल परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके आप अध्यापन के क्षेत्र में आ गए। जिन दिनों आप गया में अध्यापक थे, उन दिनों हिन्दी साहित्य के पुराने महारथी स्व० लाला भगवानदीन वहाँ से 'लक्ष्मी' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन-प्रकाशन किया करते थे। उन्हींकी प्रेरणा से आचार्य रामलोचनशरणजी साहित्य-पथ के पथिक बन गए और धीरे-धीरे अपनी अनन्य कार्यनिष्ठा, अभूतपूर्व परिश्रम तथा साधना के बल पर आपने लेखन को ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया। यह आपके व्यक्तित्व की विशेषता ही है कि बारह रुपए मासिक की वृत्ति से अपने जीवन को प्रारम्भ करके आपने हिन्दी भाषा और साहित्य के उन्नयन और प्रकाशन के क्षेत्र में अपनी वह स्थिति बना ली थी कि आपकी सेवाओं तथा कार्यों का उल्लेख किये बिना बिहार के साहित्यिक जागरण के इतिहास का कोई भी अध्याय अधूरा रहेगा।

बाल-साहित्य के उन्नायक, 'बालक' के भूतपूर्व सम्पादक और 'पुस्तक-भण्डार' (लहेरियासराय तथा पटना) के संस्थापक आचार्य श्री रामलोचनशरण को 'बिहार का द्विवेदी' कहा जाता है। बाल-साहित्य के निर्माण की दिशा में स्वयं उल्लेखनीय कार्य करने के साथ-साथ आपने 'बालक' तथा 'पुस्तक-भण्डार' के माध्यम से अनेक लेखक तैयार किए। आपने जहाँ हमारी नई पीढ़ी के बालकों और युवकों में कहानियों के माध्यम से जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पुनीत भावनाएँ भरने का अभूतपूर्व प्रयास किया, वहाँ वयस्कों और प्रौढ़ों के लिए भी अनेक उल्लेखनीय ग्रन्थों का प्रकाशन किया।

आचार्यश्री रामलोचनशरण हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के उन महारथियों में से एक थे जिन्होंने सामान्यतः समस्त हिन्दी-जगत् और विशेषतः बिहार के साहित्यिक जागरण में अप्रतिम योगदान दिया। स्व० आचार्य शिवपूजनसहाय ने आपको बिहार में 'अभिनव गद्य-शैली का प्रवर्तक' माना है। एक स्थल पर आपकी साहित्य-साधना का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है—"बाल साहित्य के निर्माता 'शरण' जी का बिहार में वही स्थान है जो गुजरात में गिजुभाई का। 'शरण' जी की बदौलत अब किसी को बिहार की हिन्दी पर हँसने का साहस नहीं हो सकता।" आपकी साहित्यिक महत्ता निरूपित करते हुए कविवर दिनकर ने लिखा था—"बिहार में हिन्दी के पाँव जमाने की दिशा में उन्होंने बहुत काम किया है। उनका कार्य उस समय आरम्भ हो चुका था, जबकि हम लोगों ने होश भी न सँभाला था।"
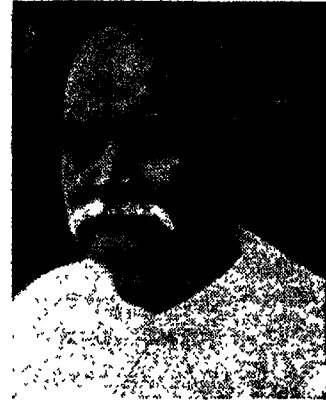
जिन दिनों आप दरभंगा के नार्थब्रुक स्कूल में अध्यापक थे, उन दिनों आपको हिन्दी व्याकरण की निर्दोष और सर्वांग सुन्दर पुस्तक का अभाव बहुत खटकता था। इसी बीच सन् 1915 में उत्तर प्रदेश (उन दिनों संयुक्त प्रांत) की सरकार ने व्याकरण की सर्वोत्तम पुस्तक पर पुरस्कार देने की घोषणा की थी। फिर क्या था, आचार्य रामलोचनशरण ने अपने अध्यापकीय अनुभव के आधार पर तुरन्त एक पुस्तक तैयार कर डाली और उसका नाम रखा 'व्याकरण-बोध'। केवल 32 पृष्ठ की इस पुस्तक को संयुक्त प्रान्त की सरकार ने सर्वोत्कृष्ट समझा और उसने आचार्यजी को 167 रुपए का पुरस्कार देकर सम्मानित किया। यहीं से आपके साहित्यिक जीवन के विकास का प्रथम चरण प्रारम्भ होता है।

सन् 1915 की 3 जनवरी को लहेरियासराय (दरभंगा) की एक छोटी-सी झोंपड़ी में आचार्यजी ने 'पुस्तक-भण्डार' की स्थापना की। आपने एक-मात्र अपनी लेखनी और अनवरत अध्यवसाय के बल पर जिस 'भण्डार' की नींव डाली थी, बाद में धीरे-धीरे उसके प्रकाशनों ने अपनी विशिष्टता के कारण समस्त हिन्दी-जगत् में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। पुस्तक-भण्डार की स्थापना से पूर्व सन् 1907 से सन् 1913 तक आचार्यजी ने गया के रामसहायलाल प्रकाशक को विभिन्न विषयों की अनेक पुस्तकें लिखकर दी थीं। उन दिनों आपको इन पुस्तकों का लेखन-पुरस्कार दस पैसे प्रति पृष्ठ की दर से लगभग 11 सौ रुपया प्राप्त हुआ था। बालोपयोगी साहित्य के निर्माण की दिशा में आपकी सहज रुचि थी। आपने सुकुमार मति बालकों के लिए संयुक्ताक्षर-रहित और कम संयुक्त अक्षरों वाली अनेक पुस्तकों का निर्माण और प्रकाशन किया। थोड़े ही दिन बाद बाल-साहित्य की अभिवृद्धि को दृष्टि में रखकर आपने इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, विज्ञान और नीति-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कीं जिनसे आपकी प्रतिभा का परिचय समस्त हिन्दी-जगत् को अनायास ही मिल गया।

बाल-साहित्य के प्रणयन में आचार्यजी का मन इतना रमा कि आपने सन् 1926 की बसन्त पंचमी को 'बालक' नाम से एक बालोपयोगी पत्र का सम्पादन और प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया। बाल-साहित्य के एक उत्कृष्ट लेखक के रूप में आपको जो प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी, उससे 'बालक' के प्रकाशन का सर्वत्र स्वागत हुआ और थोड़े ही दिनों में 'बालक' के माध्यम से आचार्यजी ने बिहार के हिन्दी-क्षेत्र में ऐसे अनेक लेखक तैयार कर दिए, जो आज हिन्दी के मूर्धन्य लेखकों में गिने जाते हैं। एक बालोपयोगी मासिक पत्र को नियमित रूप से प्रकाशित करने के लिए आपको अपने प्रेस की आवश्यकता अनुभव हुई, फलतः सन् 1928 में 'भण्डार' में ही 'विद्यापति प्रेस' की स्थापना भी कर दी गई।

आपके प्रेस से 'बालक' इतनी सजधज के साथ निकला कि जहाँ उसने बालोपयोगी पत्रों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया, वहाँ उसकी साज-सज्जा तथा मुद्रण की प्रशंसा 'सरस्वती', 'प्रताप', 'मतवाला', 'त्यागभूमि' तथा 'महारथी' आदि तत्कालीन प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्त कण्ठ से की। उन दिनों 'बालक' पत्र की कितनी धूम थी इसका अनुमान उपन्यास-सम्राट् स्व० प्रेमचन्द की इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है—"बालकों के लिए जितनी पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं, 'बालक' उन सभी में अच्छा है।" बिहार-विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के यह आशंसात्मक शब्द भी आचार्यजी और 'बालक' के महत्त्व पर अच्छा प्रकाश डालते है- -"श्रीयुत रामलोचनशरणजी के साहित्यिक प्रयत्नों में मैं एक अरसे से परिचित हूँ। बचपन बीत जाने के बाद भी आपके 'बालक' का मैं उत्साही पाठक हूँ।"

'विद्यापति प्रेस' की स्थापना के उपरान्त आचार्यजी का ध्यान साहित्यिक प्रकाशनों की ओर भी गया। परिणामतः बाल-साहित्य के साथ-साथ पुस्तक-भण्डार से अनेक साहित्यिक ग्रन्थों के प्रकाशन का ताँता लग गया। पुस्तक भण्डार के साहित्यिक प्रकाशनों में जहाँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर 'प्रसाद', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, विनोद-शंकर व्यास, सूर्यनारायण व्यास तथा श्रीरामनाथ 'सुमन' आदि बिहार से बाहर के अनेक ख्यातिप्राप्त लेखकों के उल्लेखनीय ग्रन्थ है, वहाँ बिहार के भी बहुत-से प्रतिष्ठित लेखकों की कृतियाँ पुस्तक-भण्डार ने प्रकाशित की हैं। आचार्य शिवपूजनसहाय और श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी तो वर्षों तक 'पुस्तक-भण्डार' से सम्बद्ध ही रहे हैं। आचार्य शिवजी ने जहाँ 10-12 वर्ष तक भण्डार के साहित्यिक प्रकाशनों के सम्पादन में अपना अभूतपूर्व योग दिया था, वहाँ श्री बेनीपुरीजी भी कई वर्ष तक 'बालक' का सम्पादन सफलता-

पूर्वक करते रहे थे। बिहार के अन्य लेखकों में कुछ ऐसे हैं, जिन्हें आचार्य रामलोचनशरण के 'पुस्तक-भण्डार' ने ही हिन्दी-जगत् में सुप्रतिष्ठित किया है। ऐसे लेखकों में सर्वश्री रामधारीसिंह 'दिनकर', मोहनलाल महतो 'वियोगी', जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', मनोरंजन, कलक्टरसिंह 'केसरी' तथा गोपालसिंह नेपाली आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सन् 1942 में आचार्यजी की साहित्यिक सेवाओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए विद्यापति हिन्दी सभा, दरभंगा की ओर से 'जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ' प्रकाशित किया गया। यह ग्रन्थ आचार्यजी की 'स्वर्ण जयन्ती' और 'पुस्तक-भण्डार' की 'रजत जयन्ती' के उपलक्ष्य में आपको समर्पित किया गया था। यह ग्रन्थ बिहार की सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं औद्योगिक समृद्धि का 'ज्ञानकोश' है।

प्रकाशन की दिशा में आचार्यजी ने नया अध्याय तब जोड़ा जबकि सन् 1929 में पटना में 'पुस्तक-भण्डार' की एक शाखा स्थापित की और अपने प्रकाशनों को और भी सुचारु रूप से मुद्रित करने की दृष्टि से सन् 1941 में वहाँ 'हिमालय प्रेस' खोला। लहेरिया सराय में तो 'विद्यापति प्रेस' पहले से था ही। अपने प्रदेश की राजधानी में आकर साहित्य-साधना करने की जो साध आचार्यजी वर्षों से अपने मानस में सँजोए हुए थे, उसकी सम्पूर्ति के लिए ही आपने यह समारम्भ किया था। पटना मे आकर आपने सन् 1946 में 'पुस्तक-भण्डार' से 'हिमालय' नामक एक उच्चकोटि के साहित्यिक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया और उसके सम्पादन के लिए आचार्य शिवपूजन सहाय का सक्रिय सहयोग भी आपको मिल गया। भारत गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की आत्मकथा का क्रमशः प्रकाशन सबसे पहले 'हिमालय' में ही हुआ था।

आचार्यजी जहाँ उत्कृष्ट सम्पादक, बाल-साहित्य के प्रणेता और अनूठी सूझ-बूझ रखने वाले प्रकाशक थे, वहाँ एक सहृदय समाज-सेवी भी थे। आपने 'बालक' तथा 'पुस्तक-भण्डार' के माध्यम से जहाँ अनेक लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन में योग दिया था वहाँ बहुत-से ऐसे अनेक साहित्यकारों की सेवा-सहायता की थी जिनका आपसे कोई विशेष सीधा व्यावसायिक सम्बन्ध न था। ऐसे अनेक विद्यार्थी तथा समाज-सेवी भी आपके जीवन में आए जिनकी शिक्षा तथा जीवन-यात्रा में आपने दिल खोलकर सहायता की। कलाकारों, साहित्यकारों और समाज-सेवियों की उदारतापूर्ण सेवा-सहायता करने के कार्य में आचार्यजी सदा-सर्वदा तत्पर रहते थे। बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का भव्य भवन पटना में आज जिस भूमि पर बना हुआ है वह आपकी आर्थिक सहायता से खरीदी गई थी। जब कभी आपके कान में किसी की पीड़ा या दुःख की भनक पड़ जाती थी तो आप यथा-सामर्थ्य उसकी सेवा कर देते थे। ऐसे ही किन्हीं मार्मिक और करुण क्षणों में श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी को आचार्यजी का सबल सम्बल मिला था। और केवल बेनीपुरीजी ही पुस्तक-भण्डार में नहीं गए, प्रत्युत आपने अपने साहित्यिक अग्रज श्री आचार्य शिवपूजनसहाय को भी वहाँ बुला लिया। यह आचार्य रामलोचनशरण की सहृदयता तथा उदारता का ही प्रमाण है कि श्री बेनीपुरी जी आपको अपना प्रमुख सहायक मानते थे। बेनीपुरीजी की ये पंक्तियाँ ही आपके व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए पर्याप्त हैं—"यदि मुझे आचार्य रामलोचनशरणजी के वरद हस्त की छाया न मिली होती, तो मेरी उस समय की सुकुमार प्रतिभा-लता शायद इस तरह झुलस गई होती कि मातृभाषा के चरणों में मैंने जो कुछ पत्र-पुष्प अर्पित किए हैं, उनका आज नाम-निशान भी न होता।"

'व्याकरण चन्द्रोदय' और 'हिन्दी-रचना-चन्द्रोदय' के अतिरिक्त आचार्यजी ने 'भारत-गौरव-गाथा' की रचना की। बालकों के लिए संयुक्ताक्षर-रहित पुस्तकों के सृजन के क्षेत्र में आपने जो अनेक रचनाएँ हिन्दी साहित्य को भेंट कीं, उनमें 'अली बाबा चालीस चोर', 'पेड़-पौधों की कहानियाँ', 'दादी की कहानियाँ' और 'नानी की कहानियाँ' आदि उल्लेखनीय हैं। मनोवैज्ञानिक आधार पर बच्चों के मानसिक स्तर के अनुरूप आपने जहाँ अनेक पुस्तकों की रचना की, वहाँ वयस्क शिक्षा के लिए भी सन् 1936 में सौ पुस्तकें तैयार की थीं। यूनेस्को की ओर से शिक्षा-सम्बन्धी प्रकाशनों का जो विस्तृत विवरण उन दिनों प्रकाशित हुआ था, उसमें हिन्दी-भाषा मे प्रकाशित जिन 14 पुस्तकों का उल्लेख किया गया था, उनमें एक पुस्तक आचार्यजी की भी है। आचार्यजी की साहित्यिक रचनाओं में 'विनय पत्रिका', 'कवितावली', 'दोहावली' तथा 'गीता-

बत्ती' की हिन्दी टीकाओं के अतिरिक्त 'रामचरितमानस' का मैथिली अनुवाद भी सम्मिलित है। आचार्यजी की हिन्दी-भाषा और साहित्य के उन्नयन के प्रति की गई ऐसी सेवाओं को दृष्टि में रखकर ही 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' ने अपने 1959 के नवम अधिवेशन में आपको 'वयोवृद्ध साहित्यिक सम्मान पुरस्कार' से सम्मानित किया था।

राष्ट्रीय कार्यों में भी आचार्यजी का योग रहा है। प्रारम्भ में आपने जहाँ स्व० बृजकिशोरप्रसाद, धरणीधर बाबू की आज्ञा और श्री राजेन्द्र बाबू के निर्देशानुसार बिहार राष्ट्रीय विद्यापीठ के लिए पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन तथा सम्पादन किया, वहाँ रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर 'बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन' नामक पुस्तक भी प्रकाशित करके स्वागत-समिति को प्रदान की। आचार्यजी के इस सहयोग की चर्चा राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में भी की है। आपने अँग्रेजी में भी 'गान्धी फुटस्टेप' नामक पुस्तकमाला के अन्तर्गत बहुत-से लोकोपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किए। आपके सतर्क निरीक्षण में प्रकाशित ऐसे ग्रन्थों में 'प्रसाद एण्ड नेहरू', 'टाल्सटाय एण्ड गान्धी', 'गान्धीज्म फार मिलियन्स', 'गान्धी इज माई मास्टर', तथा 'गान्धीज्म विल सरवाइव' आदि के नाम विशेष परिगणनीय हैं। निरक्षरता-निवारण और 'हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य' के लिए भी आपकी सेवाएँ बिहार के सार्वजनिक जीवन मे आदर के साथ स्मरण की जाती हैं। राष्ट्रपिता गान्धी ने एक बार अपने पत्र में लिखा था—"आपके काम की मुझे कद्र है।"

आचार्यजी का निधन सन् 1971 में हुआ था।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

श्री बेनीपुरी का जन्म जनवरी 1902 में बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जनपद के बेनीपुरी नामक ग्राम में हुआ था। गाँव की पाठशाला में ही प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप मैट्रिक तक ही पहुँचे थे कि असहयोग आन्दोलन के कारण आगे आपकी नियमित शिक्षा न हो सकी। बचपन में माता-पिता का असामयिक देहान्त हो जाने के कारण आपको पग-पग पर बहुत संघर्ष करना पड़ा था। तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' के निरन्तर पाठ करते रहने से आपका रुझान साहित्य की ओर हुआ और सर्वप्रथम कवि के रूप में ही आप प्रतिष्ठित हुए। 15 वर्ष की आयु में आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा उत्तीर्ण करके साहित्य के क्षेत्र में विधिवत् पदार्पण किया था और पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताएँ छपने लगीं थीं।

श्री बेनीपुरी जी ने सर्वप्रथम अपना साहित्यिक जीवन एक पत्रकार के रूप में प्रारम्भ किया और अपने कर्ममय जीवन में 'तरुण भारत' साप्ताहिक (1921), 'किसान मित्र' साप्ताहिक (1922), 'गोलमाल' साप्ताहिक (1924), 'बालक' मासिक (1926), 'युवक' मासिक (1929), 'लोक संग्रह'—मुजफ्फरपुर और 'कर्मवीर'—खण्डवा (1934), 'योगी' साप्ताहिक (1935), 'जनता' साप्ताहिक (1937-1946), 'हिमालय' मासिक (1946), 'जनवाणी' मासिक (1948), 'नई धारा' और 'चुन्नू मुन्नू' मासिक (1950) आदि अनेक पत्रों के सम्पादन के द्वारा अपनी लेखनी की प्रखरता का हिन्दी-जगत् को पूर्ण परिचय दिया। इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त आपने अपने जेल-जीवन में हजारी बाग जेल से 'कैदी' और 'तूफान' नामक हस्तलिखित मासिक भी निकाले थे। 'हिमालय' मासिक के सम्पादन में आपने जहाँ आचार्य शिवपूजन के साथ कार्य किया था वहाँ 'जनवाणी' का सम्पादन आपने आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में किया था। उक्त साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन मे अपना सक्रिय योग देने के अतिरिक्त बेनीपुरीजी पटना से सन् 1951 मे प्रकाशित 'दैनिक जनता' के प्रधान सम्पादक भी रहे थे।

एक प्रखर तथा ओजस्वी पत्रकार के रूप में बेनीपुरीजी ने हिन्दी मे जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी उसमें आपकी ध्येय-निष्ठा, कर्म-तत्परता और जागरूकता का बहुत बड़ा योगदान है। आपने अपने पत्रकार-जीवन में जहाँ देश के अनेक युवकों को स्वाधीनता-संग्राम में अपने प्राणों की बाजी तक लगा देने की प्रेरणा प्रदान की थी वहाँ साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात किया था। बालोपयोगी साहित्य-रचना के क्षेत्र में भी आपके द्वारा सम्पादित 'बालक' तथा 'चुन्नू-मुन्नू' ने अभिनन्दनीय कार्य किया था। आप जहाँ जागरूक पत्रकार के रूप में हिन्दी में प्रतिष्ठित रहे वहाँ सफल रेखा-चित्रकार की दृष्टि से भी आपकी देन कम

महत्त्वपूर्ण नहीं है। आपकी शैली सर्वथा अपनी है। छोटे-से-छोटे वाक्यों में आप जो बात लिखने की क्षमता रखते थे वह हिन्दी में तो क्या, भारत की किसी भी भाषा में ढूंढने से उपलब्ध नहीं होगी। रेखाचित्र शैली के तो आप जन्मदाता ही थे। यह आपकी कला का ही प्रमाण है कि आपके रेखाचित्रों के 'माटी की मूरतें' नामक संकलन को साहित्य अकादेमी की ओर से समस्त भारतीय भाषाओं में अनूदित करने के लिए चुना गया था और उसका प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। आपकी कलम में वह जादू था जो निष्क्रिय तथा जड़ पदार्थों में भी जीवन फूंक देने की अद्भुत क्षमता रखता है। हिन्दी साहित्य की कोई भी विधा या धारा ऐसी नहीं है जिसकी अभिवृद्धि में आपकी प्रतिभा का योगदान न रहा हो। क्या नाटक, क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या जीवनी और क्या आत्मकथा, सभी दिशाओं में आपकी प्रतिभा अत्यन्त सजीवता से मुखरित हुई थी। गम्भीर साहित्यिक समीक्षाएँ और टीकाएँ लिखने में भी आप अत्यन्त निपुण थे। अतीत काल में बिहार में जो भी साहित्यकार प्रतिष्ठा के उत्तुंग शिखर पर समासीन थे उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जिन्हें यदि बेनीपुरी-जैसे सुयोग्य साहित्यकार का सुतीक्ष्ण, सतर्क और सबल सहयोग प्राप्त न हुआ होता तो कदाचित् वे इतनी प्रतिष्ठा अर्जित न कर पाते। 'दिनकर' और 'जयप्रकाश' के व्यक्तित्व के विकास में बेनीपुरी की देन सर्वथा अविस्मरणीय और अभिनन्दनीय रही थी। बेनीपुरीजी के निधन पर 'दिनकरजी' ने उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जो भाव व्यक्त किए थे, वे हमारे इस कथन की पुष्टि करते हैं। उन्होंने लिखा था—"नाम से दिनकर मैं था, किन्तु काम से असली सूर्य बेनीपुरी जी थे।...आप सचमुच मेरी आत्मा के शिल्पी और मेरे कवि-जीवन के निर्माता थे। मेरे प्रति उनके प्रेम भाव ने मुझे बड़ा भारी प्रोत्साहन दिया।" बेनीपुरीजी का साहित्यकार जहाँ अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी और शिवपूजन सहाय-जैसे ऋषि-तुल्य व्यक्तियों के पवित्र सान्निध्य में अपने साधना-पथ पर बढ़ा था वहाँ आपके राजनीतिक व्यक्तित्व का विकास महामना मालवीय, महात्मा गान्धी, राजेन्द्र बाबू तथा आचार्य नरेन्द्रदेव-जैसे मनस्वी महापुरुषों की छत्र-छाया में हुआ था। आपकी बहुविध प्रतिभा का परिचय इसी बात से मिलता है कि पत्रकारिता और राजनीति में आकण्ठ डूबकर भी आपने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा को कुंठित नहीं होने दिया और साहित्य की सभी विधाओं को समृद्ध करने में आप पूर्णतः सक्षम रहे। आपकी रचनाओं का विवरण काल-क्रम से इस प्रकार है—'बगुला भगत', 'सियार पांडे', 'बिहारी सतसई की टीका', 'प्रेम' (अनुवाद), 'कविता-कुसुम' संग्रह (1925), 'विद्यापति की पदावली' (सटिप्पण), 'बिलाई मौसी', 'हिरामन तोता', 'आविष्कार और आविष्कारक', 'शिवाजी', 'गुरु गोविन्द सिंह', 'विद्यापति', 'लंगटसिंह' (1927-28), 'पतितों के देश में', 'चिता के फूल' (1930-32), 'साहस के पुतले', 'झोंपड़ी से महल', 'रंगबिरंग', 'बहादुरी की बातें', 'क्या' और 'क्यों' (दोनों अप्रकाशित), 'दीदी' (1935-36), 'लाल तारा', 'लाल चीन', 'जान हथेली पर', 'फूलों का गुच्छा', 'पद-चिह्न', 'सतरंगा धनुष', 'झोंपड़ी का रुदन' (1937-39), 'कैदी की पत्नी', 'लाल रूस', 'सात दिन' (अप्रकाशित), 'जोश' (अप्रकाशित) (1940), 'माटी की मूरतें', 'अम्बपाली', 'रोजा लुक्जेमबुर्ग', 'रवीन्द्र भारती' (अप्रकाशित) 'इकबाल' (अप्रकाशित), 'रूस की क्रान्ति', 'ट्यूलिप्स' (अप्रकाशित) (1941-45), 'जयप्रकाश : जीवनी', 'जयप्रकाश की विचार-धारा', 'तथागत', 'गेहूँ और गुलाब', 'नेत्रदान', 'सीता की माँ', 'नई नारी', 'संघमित्रा', 'मशाल', 'हवा पर', 'बेटे हों तो ऐसे', 'बेटियाँ हों तो ऐसी', 'हमारे पुरखे', 'पृथ्वी पर विजय', 'प्रकृति पर विजय', 'संसार की मनोरम कहानियाँ', 'हम इनकी सन्तान हैं', 'इनके चरण-चिह्नों पर', 'अनोखा संसार', 'अपना देश' (1948-50), 'पैरों में पंख बाँधकर', 'कार्ल मार्क्स', 'अमर ज्योति', 'नया समाज' (1951), 'पेरिस नहीं भूलती', 'उड़ते चलो, उड़ते चलो', 'अमृत की वर्षा', 'जीव-जन्तु' (1952), 'वन्दे वाणी विनायकौ', 'मुझे याद है', 'विजेता',
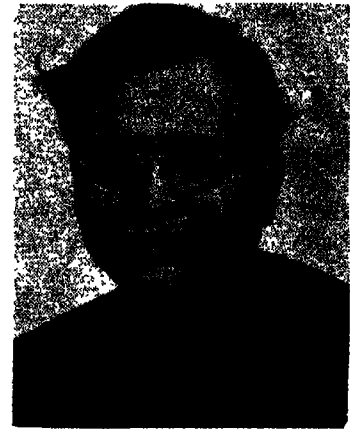
'कुछ मैं, कुछ वे !' (1953-54), 'जंजीरें और दीवारें' (1955) और 'मील के पत्थर' (1957) आदि। आपकी कुछ रचनाओं का प्रकाशन 'बेनीपुरी ग्रन्थावली' नाम से दो भागों में सन् 1955-56 में प्रकाशित हुआ था।

बेनीपुरीजी अच्छे साहित्यकार और राजनीतिक कार्य-कर्ता होने के साथ समाज-सेवा के क्षेत्र में भी अग्रणी स्थान रखते थे। आप कांग्रेस के क्षेत्र में जहाँ अनेक रूपों में सम्मानित थे वहाँ 'बिहार सोशलिस्ट पार्टी' और 'बिहार प्रान्तीय किसान सभा' के भी अनन्य सूत्रधार थे। स्वाधीनता-आन्दोलन में आपने विभिन्न अवसरों पर 10 बार जेल-यात्राएँ की थीं। 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के संस्थापन (1919) में सहयोग देने के साथ-साथ आप उसके अनेक वर्ष तक प्रधानमन्त्री भी रहे थे। जिन दिनों 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अध्यक्ष गणेशशंकर विद्यार्थी थे उन दिनों आप उसके प्रचार मन्त्री थे। बेनीपुरीजी के जीवन में साहित्य, संस्कृति और राजनीति की ऐसी त्रिवेणी प्रवाहित होती रहती थी कि सभी क्षेत्रों के व्यक्ति आपको सम्मान की दृष्टि से देखा करते थे। यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि जितना सम्मान आपको अपने प्रदेश में मिलना चाहिए था उतना नहीं मिल सका। जिनको उँगली पकड़कर आपने साहित्य तथा राजनीति के क्षेत्र में चलना सिखाया था जब वे सत्ता और सिंहासन की प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सफल हो गए और आपकी पूर्णतः उपेक्षा कर दी गई तो जीवन के अन्तिम वर्षों में बेनीपुरीजी के मन और मस्तिष्क पर उसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा था। यहाँ तक कि आपकी स्थिति मानसिक विस्मृति तक पहुँच गई थी। जिसकी एक हुंकार पर कभी जन-सागर में क्रान्ति का आन्दोलन फूट पड़ता था, और जिसकी कलम की नोक से जीवन, जागृति, बल और बलिदान की सरिताएँ प्रवाहित होती थीं वह वाणी का देवता प्रकृति के प्रकोप से इतना दयनीय और विवश हो गया था कि अपनी बात भी कह पाने में वह अक्षम था। हिन्दी में ऐसे बहुत कम साहित्यकार हैं जो साहित्य तथा राजनीति दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से समादृत हुए हों। बेनीपुरीजी इसके अपवाद थे।

यह विडम्बना की ही बात है कि बिहार के सारे विश्वविद्यालय आपकी ओर से आँख मीचे रहे। क्या ही अच्छा होता कि उनमें से कोई विश्वविद्यालय आपको डी० लिट्० की मानद उपाधि देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट कर देता। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको जहाँ सन् 1967 में अपना 'साहित्य वाचस्पति' का सर्वोच्च सम्मान दिया वहाँ जनवरी सन् 1968 में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने आपको अपने वयोवृद्ध साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित तथा पुरस्कृत किया था। किन्तु यह सम्मान तब 'का वर्षा जब कृषि सुखाने' की सूक्ति की सार्थकता को घोषित कर रहा था।

आपका निधन 7 सितम्बर 1968 को हुआ था।

डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

'रसालजी' का जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के मऊ छींवा नामक ग्राम में सन् 1898 में हुआ था। आपके पिता पं० कुंजबिहारीलाल संस्कृत के विख्यात विद्वान् थे। 27 वर्ष की अवस्था में एम० ए० करने के उपरान्त आप कान्यकुब्ज कालेज, लखनऊ में हिन्दी के अध्यापक हो गए। इसके उपरान्त सन् 1936 में आपको प्रयाग विश्वविद्यालय से 'इवोल्यूशन ऑफ हिन्दी पोयटिक्स' नामक अँग्रेजी शोध प्रबन्ध पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई। आप सन् 1933 से सन् 1950 तक प्रयाग विश्वविद्यालय में ही हिन्दी के प्राध्यापक रहे। तदुपरान्त आप सागर विश्वविद्यालय में रीडर होकर चले गए और बाद में गोरखपुर तथा जोधपुर विश्वविद्यालयों में कई वर्ष तक हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहने के बाद आप सन् 1966 से अपने निवास-स्थान प्रयाग में ही रह रहे थे।

ब्रजभाषा साहित्य के एक मर्मज्ञ विश्लेषक, जागरूक समीक्षक और कुशल कोशकार के रूप में रसालजी का स्थान हिन्दी-साहित्य में उल्लेखनीय है। हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के 'उद्धव शतक' तथा पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'रस कलस' नामक ग्रन्थों की रसालजी द्वारा लिखी गई भूमिकाएँ उनकी कीर्ति का ज्वलन्त शिखर हैं। जहाँ आपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', 'अलंकार पीयूष', 'आलोचनादर्श', 'नाट्य निर्णय' और 'छन्दशास्त्र'-जैसे साहित्यिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन

करने वाले अनेक समीक्षा-ग्रन्थ लिखे, वहाँ आपके द्वारा लिखी गई 'काव्य पुरुष','गुरु दक्षिणा','भोजराज', 'रघुचरित्र', 'श्री भीम विजय', 'अजस मोचन', 'उद्धव शतक', तथा 'रसाल मंजरी' आदि काव्य-कृतियाँ आपकी प्रतिभा की परिचायिका हैं। आपका 'गोपी उद्धव' नामक एक खण्डकाव्य अभी अप्रकाशित ही है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त आपकी 'सूर समीक्षा', 'गद्य-काव्यालोक', 'साहित्य प्रकाश', 'साहित्य परिचय', रचना, विकास', 'गद्य कुसुमांजलि', 'आधुनिक ब्रज-भाषा काव्य', 'मीरा माधुरी' आदि कृतियाँ भी अत्यन्त उल्लेखनीय है। आपकी तर्कशास्त्र के सम्बन्ध में लिखी गई 'आगमन और निगमन शास्त्र' नामक पुस्तक भी उल्लेखनीय है। अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ आपने एक सफल कवि के रूप में किया था और प्रयाग के प्रारम्भिक दिनों में वहाँ की 'रसिक मंडल' नामक एक संस्था द्वारा 'समस्या पूर्ति' और 'नई काव्य-रचना' के क्षेत्र में आपने उल्लेखनीय कार्य किया था। एक सफल अध्यापक, कुशल काव्य-शास्त्रज्ञ और प्रतिभा-सम्पन्न कोश-कार के रूप में रसालजी हिन्दी साहित्य में मूर्धन्य स्थान रखते थे। आपकी इन साहित्यिक सेवाओं को दृष्टि में रखकर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' की सम्मानोपाधि से भी विभूषित किया था।
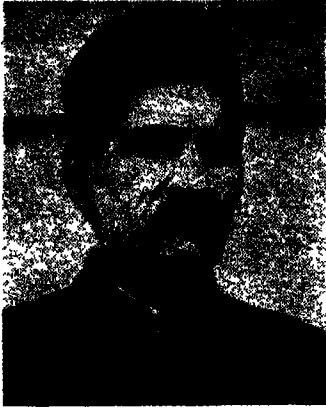
अपने स्वभाव के अक्खड़पन और प्रकृति के फक्कड़पन के कारण आप अपने इर्द-गिर्द प्रेमियों का वह परिवेश नहीं बना सके जो प्रायः हिन्दी के दूसरे महारथी बनाते रहते हैं। आपने किसी मान-सम्मान की भी परवाह नहीं की और अपनी मस्तमौला प्रकृति के अनुसार ही जीवन-यापन करते रहे। सन् 1978 में आपको उत्तर प्रदेश शासन ने पन्द्रह हजार रुपए की सम्मान-राशि भी प्रदान की थी। आपका निधन 19 मई, 1980 को हुआ था। यह एक संयोग की ही बात है कि ठीक एक वर्ष पूर्व इसी दिन हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी अवसान हुआ था।

श्री रामशंकर व्यास

श्री व्यासजी का जन्म 31 मार्च सन् 1860 को काशी के एक अत्यन्त सम्भ्रान्त व्यास-परिवार में हुआ था। आपके पिता पं० गौरीप्रसादजी व्यास बड़े पराक्रमी पुरुष थे। उनके निरीक्षण में व्यासजी की शिक्षा-दीक्षा अत्यन्त सतर्कतापूर्वक हुई थी। आरम्भ से ही आपको संस्कृत, अँग्रेजी और उर्दू का अच्छा ज्ञान हो गया था। अपने पिता के संस्कारों के कारण आपमें धार्मिक प्रवृत्ति भी अत्यधिक थी। आप परम वैष्णव और नित्यकर्मोपासक होने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रेमी थे।

व्यासजी के निरन्तर स्वाध्याय और लेखन की प्रवृत्ति ने धीरे-धीरे आपको हिन्दी के उत्कृष्ट लेखकों की पंक्ति में बिठा दिया और आप 'सारसुधानिधि' तथा 'उचित वक्ता' आदि पत्रों मे अपने लेख भेजने लगे। आपने 'कवि वचन सुधा' और 'आर्य मित्र' नामक पत्र का सम्पादन भी कई वर्ष तक सफलतापूर्वक किया था। कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ आपने अनेक उत्कृष्ट पुस्तकों की रचना भी की थी। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'खगोल दर्पण', 'वाक्य पंचाशिका', 'नेपोलियन की जीवनी', 'बात की करामात', 'वेनिस का बाँका', 'चन्द्रास्त', 'नूतन पाठ' और 'राय दुर्गाप्रसाद की जीवन चरित्र' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। लेखन-कला में निष्णात होने के साथ-साथ

आप उच्चकोटि के वक्ता भी थे। इस प्रसंग में अमृतसर, अलवर, आगरा, हरिद्वार तथा जौनपुर आदि में आपके धर्म-सम्बन्धी अनेक भाषण हुए थे। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अनन्य मित्र थे और उनको 'भारतेन्दु' की उपाधि देने का प्रस्ताव पहले-पहल आपने ही किया था।

आपका निधन सन् 1916 में हुआ था।

डॉ० रामशरणदास

डॉ० दासजी का जन्म उत्तर प्रदेश के हरदोई नामक नगर में 20 अक्तूबर सन् 1899 को हुआ था। 21 वर्ष की अल्पायु में ही आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० एस-सी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और वहीं पर जन्तु-विज्ञान के प्रवक्ता हो गए। आप प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। आपने 'कबूतर : एक अद्भुत पक्षी' विषय पर अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था।

विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी-लेखन को अपने जीवन का ध्येय बनाने वाले महानुभावों में आपका सर्वथा विशिष्ट स्थान था। विज्ञान परिषद् प्रयाग के मासिक मुखपत्र 'विज्ञान' के आप संस्थापक सदस्य थे। 'विज्ञान' के अतिरिक्त हिन्दी की तत्कालीन अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी आपके लेख ससम्मान प्रकाशित होते थे।

आपके द्वारा लिखित ग्रन्थों में 'सर्प संसार' का नाम अन्यतम है। इसका प्रथम संस्करण सन् 1942 में हुआ था, जिसका हिन्दी के पाठकों में बहुत स्वागत किया और थोड़े ही दिनों में उसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। उसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि सन् 1946 में उसे पुनर्मुद्रित भी करना पड़ा था।

आपका निधन 14 जुलाई सन् 1947 को हुआ था।

श्री रामसहाय मिस्त्री 'रमाबन्धु'

श्री रमाबन्धुजी का जन्म मध्य प्रदेश के दमोह जनपद के हटा नामक नगर में सन् 1890 में हुआ था। आपके पिता श्री अयोध्याप्रसाद मिस्त्री बड़े साहित्य-प्रेमी थे। आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा' भी हिन्दी के वरिष्ठ कवियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। यद्यपि आपकी शिक्षा-दीक्षा अधिक न हो सकी थी किन्तु फिर भी अपने अग्रज श्री रमाजी के प्रोत्साहन से आपने हिन्दी-कविता-लेखन में अच्छी निपुणता प्राप्त कर ली थी।

आपका रचना-काल सन् 1916 में शुरू हुआ था और आपकी सबसे पहली राष्ट्रीय रचना वृन्दावन से प्रकाशित होने वाले 'प्रेम' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुई थी। आपकी कविताओं के संग्रह 'मित्र मिलाप', 'मोहिनी रानी' तथा 'कृष्ण गीतांजलि' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

आपका निधन सन् 1973 में हुआ था।

राजा सर रामसिंह 'मोहन'

राजा सर रामसिंह के० सी० आई० का जन्म 2 जनवरी

सन् 1880 को मध्यप्रदेश के काछी-बड़ौदा (मालवा) में हुआ था। आप अत्यन्त विद्यानुरागी महानुभाव थे। विद्वानों की संगति तथा उनका आदर-सत्कार करने में आपको बहुत आनन्द आता था। हिन्दी तथा अँग्रेजी साहित्य के अलावा संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्य पर भी आपका विशेष अधिकार था। आप अनन्य ईश्वर-भक्त और राम - भक्ति-साहित्य के विशेष प्रेमी थे। अपने शासन-काल (1901-1908) में आपने सीतामऊ राज्य में शिक्षा और साहित्य के प्रचार तथा प्रसार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

आपने जहाँ जुलाई सन् 1920 में अपने उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सीतामऊ में सर रामसिंह हाई स्कूल (अब श्रीराम उच्चतर माध्यमिक विद्यालय) की स्थापना की वहाँ संस्कृत के अध्यापन के लिए एक संस्कृत विद्यालय भी खोला था। कदाचित् हिन्दी के बहुत कम पाठकों को यह विदित होगा कि हिन्दी के प्रख्यात कवि (आधुनिक भूषण) पं० अनूप शर्मा सन् 1928 से सन् 1939 तक निरन्तर 11 वर्ष सर रामसिंह हाईस्कूल के प्रधानाचार्य रहे थे। स्मरण रहे कि मध्यप्रदेश के मन्दसौर जिले में यह सबसे पुराना तथा प्रतिष्ठित विद्यालय है। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिए भी राजा रामसिंह ने अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा होने वाली प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षाओं के केन्द्र भी अपने राज्य में स्थापित कराए थे।

आप उत्कृष्ट कवि एवं लेखक भी थे। आपकी 'राम विलास' (1907), 'वायु विज्ञान' (1908) तथा 'मोहन विनोद' (1935) आदि मौलिक कृतियों के अतिरिक्त 'प्लेग निवारण' नामक अनूदित कृति भी उल्लेखनीय है।

आपका निधन 25 मई सन् 1967 को हुआ था।

श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'

श्री समीरजी का जन्म 6 जनवरी सन् 1900 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद के उमिलिया नामक ग्राम में हुआ था; लेकिन आप बस्ती जनपद के सोमा नामक ग्राम के निवासी थे। जिन दिनों आपने बस्ती के हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी उन दिनों उपन्यास-सम्राट् श्री प्रेमचन्दजी आपके शिक्षक थे। काशी विश्वविद्यालय से अँग्रेजी विषय में एम० ए० करने के उपरान्त आप सन् 1924 से सन् 1927 तक डी० ए०वी० कालेज, कानपुर में अँग्रेजी विषय के प्रवक्ता रहे थे।

आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा संस्थापित हिन्दी विद्यापीठ तथा धार रियासत के शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष रहने के साथ-साथ राजपूताना मध्यभारत, पंजाब और सिक्किम की बहुत-सी शिक्षा-संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया था। कुछ दिन तक आप दरभंगा राज्य हाई-स्कूल, सहरसा कालेज, हिन्दी विद्यापीठ, देवघर, पटना सिटी कालेज तथा मारवाड़ी कालेज, कानपुर के भी प्राचार्य रहे थे। इसके अतिरिक्त भारत सरकार के शिक्षा एवं शिक्षा मन्त्रालय की ओर से आप जापान तथा अफगानिस्तान में भी यात्रा के लिए भेजे गए थे। आपने सन् 1957 में 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' के वार्षिक अधिवेशन के समय 'अवधी भाषा और साहित्य' विषय पर जो निबन्ध - पाठ किया था उसका भाषा के इतिहास में एक सर्वथा विशिष्ट महत्त्व है।
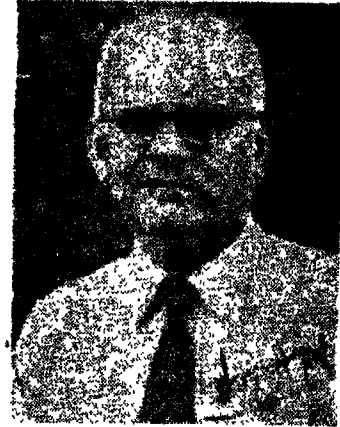
आप हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक थे और आपने अपना साहित्यिक जीवन पत्रकारिता से प्रारम्भ किया था। आपने 'चाँद', 'महारथी', 'कादम्बरी', 'यमदूत' और 'गोरख' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया था। आपकी प्रकाशित

पुस्तकों में 'सौरभ' (काव्य संग्रह), 'सोने की गाड़ी'(नाटक), 'पद्य पुंज', 'दूज का चाँद', 'संसार के साहित्यिक', 'संसार के सपूत', 'बड़ों की बाँहें', 'भारत का संविधान', 'जवाहरलाल की जीवनी' तथा 'अवधी कोश' प्रमुख हैं। आपके 'अवधी कोश' नामक ग्रन्थ को उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कृत भी किया था।

आपका निधन सन् 1969 में हुआ था।

हुए। आपकी कविताओं का एक संकलन 'गीले पंख' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपने श्री मधुर शास्त्री के सहयोग से राजधानी दिल्ली के कवियों का संकलन 'तूलिका' नाम से सम्पादित किया था, जिसकी भूमिका हमने लिखी थी। आपकी एक प्रकाशित कृति 'बिन्दु बिन्दु विचार' भी है; जिसका प्रकाशन आपके देहान्त के बाद हुआ था।

आपका निधन 13 अप्रैल सन् 1972 को हुआ था।

श्री रामानन्द 'दोषी'

श्री 'दोषी' जी का जन्म 21 जनवरी सन् 1921 को उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद (अब गाजियाबाद) के डुहरी नामक ग्राम में हुआ था। हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त करके आप भारतीय सेना में भरती हो गए थे और स्वतन्त्रता के उपरान्त आप वहाँ से त्यागपत्र देकर पत्रकारिता में प्रविष्ट हुए। सर्वप्रथम आपने 'विश्वमित्र' (बम्बई) में सहायक सम्पादक के रूप में कुछ दिन कार्य किया और फिर सन् 1950 के लगभग 'दैनिक हिन्दुस्तान' में आ गए। 'दैनिक हिन्दुस्तान' से आपको 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में सहकारी सम्पादक बनाकर भेज दिया गया और जब 'कादम्बिनी' का प्रकाशन हिन्दुस्तान-टाइम्स लिमिटेड के प्रबन्ध में प्रयाग से श्री बालकृष्णराव के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ तब राव साहब के त्यागपत्र देने पर आपको ही उसके सम्पादन का भार सौंपा गया था। आपने मृत्यु-पर्यन्त उसका सफलतापूर्वक सम्पादन किया।

आपने रचनात्मक साहित्यिक सृजन का प्रारम्भ अपने कहानी-लेखन से किया, किन्तु बाद में कवि के रूप में विख्यात

स्वामी रामानन्द शास्त्री

स्वामीजी का जन्म गुजरात प्रदेश के अहमदाबाद जनपद के धोलका नामक नगर में 7 फरवरी सन् 1907 को हुआ था। सोलंकी राजाओं के शासन के समय इस स्थान को 'धवलक' कहा जाता था। स्वामीजी का परिवार अस्पृश्य जाति से सम्बन्धित था और स्वामीजी के पिता श्री कान्हजी भगत उच्चकोटि की धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। पिता की आध्यात्मिकता का रंग बालक रामजी भगत पर भी पूरी तरह चढ़ गया था जिसके फलस्वरूप आपने 23 वर्ष की अल्पायु में ही संन्यास ग्रहण करके अपने जीवन को ही जन-सेवा में लगा दिया। आपके गुरु स्वामी देवानन्दजी व्याकरण और दर्शन के उच्चकोटि के विद्वान् थे और उन्हीके श्रीचरणों में बैठकर स्वामीजी ने विद्याध्ययन किया था। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि रामजी भगत का विवाह डाहीबेन नामक एक ग्रामबाला से हुआ था किन्तु भगवान् बुद्ध की तरह वे सन् 1930 में दीपावली की रात्रि को उसे अचानक सोती हुई छोड़कर घर से निकल गए थे।

स्वामीजी ने अपने अध्ययन को गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में आकर आगे बढ़ाया और वहाँ पर रहते हुए ही वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। अपनी शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त आप जन-सेवा के क्षेत्र में कूद पड़े और स्वतंत्रता के उपरान्त जब पहली लोक सभा का निर्वाचन हुआ तब 1952 में आप उन्नाव (उत्तर प्रदेश) की सुरक्षित सीट से लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए, फिर बराबर क्रमशः बाराबंकी, रामसनेही-घाट तथा बिजनौर से लोकसभा के सदस्य चुने जाते रहे।

स्वामीजी एक अच्छे समाज-सुधारक तथा राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक भी थे। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय आपकी 'रविदास और उनका काव्य' नामक कृति से मिल जाता है। आपके साठवें जन्म-दिन पर सन् 1970 में आपके भक्तों, प्रेमियों तथा हितैषियों ने लगभग 600 पृष्ठ का एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भी बिजनौर में समर्पित किया था। इस समारोह की अध्यक्षता बाबू जगजीवनराम ने की थी। स्वामीजी गुरुकुल महा-विद्यालय ज्वालापुर के वरिष्ठ उपाध्यक्ष भी रहे थे और सन् 1960 में आपको वहाँ की विद्या सभा ने 'विद्यावाचस्पति' की मानद उपाधि भी प्रदान की थी।

सितम्बर सन् 1972 में जब आप अनुसूचित जन-जातियों के 'अध्ययन मण्डल' के एक सदस्य के नाते भारत सरकार की ओर से 'अण्डमान निकोबार' (पोर्ट ब्लेयर) की यात्रा पर गए हुए थे तब मार्ग में जलयान में ही 26 सितम्बर को अचानक हृदय गति रुक जाने के कारण 62 वर्ष की अवस्था में आपका निधन हुआ था। 28 सितम्बर की रात्रि में आपका पार्थिव शरीर विमान द्वारा दिल्ली लाया गया और यहाँ के निगम बोध घाट पर आपका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से हुआ था।

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

श्री रामानुजबाबू का जन्म मध्यप्रदेश के सिहोरा नामक स्थान में सन् 1898 में हुआ था। आपके पिता श्री लक्ष्मण-प्रसाद बिलहारी (मूल पैतृक ग्राम) की पढ़ाई पूरी करके वहीं की प्राथमिक पाठशाला में शिक्षक हो गए थे। यद्यपि आपने उर्दू-फारसी पढ़ी थी। अपने स्वाध्याय के बल पर आपने हिन्दी में भी अच्छा दखल कर लिया था। आपकी माता का नाम श्रीमती गेंदादेवी था। वे संगीत में बहुत दक्ष थीं। अपने माता-पिता के संस्कारों के अनुरूप श्रीवास्तवजी भी साहित्य-संगीत-प्रेमी स्वभाव रखते थे। यद्यपि स्कूली शिक्षा तो आपको इण्टरमीडिएट से आगे प्राप्त नहीं हो सकी थी, किन्तु अपने अनवरत अध्यवसाय तथा स्वाध्याय के बल पर साहित्य की सभी विधाओं में आपने दक्षता प्राप्त कर ली थी। जीविकोपार्जन के लिए आपने पहले कटनी में स्टैनो-टाइपिस्ट, मध्यप्रदेश की एक छोटी-सी रियासत कोरिया में वहाँ के राजा के प्राइवेट सेक्रेटरी, बाद में ट्रेजरी आफिसर और जेल सुपरिंटेंडेंट आदि अनेक छोटी-मोटी नौकरियाँ कीं और सन् 1928 में इण्डियन प्रेस, प्रयाग की जबलपुर-ब्रांच के मैनेजर होकर आए तो जबलपुर के ही हो गए।

जिन दिनों श्रीवास्तवजी ने जबलपुर में यह कार्य-भार सँभाला था तब सारे प्रान्त में विदेशी प्रकाशकों का बोल-बाला था। आपने अपने परिश्रम और सूझ-बूझ से न केवल इण्डियन प्रेस की पुस्तकों का ही क्षेत्र बनाया, प्रत्युत मध्य-प्रदेश में साहित्यिक जागरण लाने की दृष्टि से जबलपुर से 'प्रेमा' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। 'प्रेमा' ने थोड़े ही दिनों में जहाँ मध्यप्रदेश के केशव पाठक, भवानी मिश्र और भवानी तिवारी आदि को साहित्य-मंच पर प्रस्थापित किया वहाँ सुभद्राकुमारी चौहान को कहानी-लेखिका के रूप में उपस्थित करने का श्रेय भी उसे ही दिया जाना चाहिए। उसके 'हास्यरसांक', 'शान्तरसांक', 'करुण रसांक' और 'शृंगार रसांक'-जैसे विशेषांकों ने किसी समय साहित्य-जगत् में धूम मचा दी थी। श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा किया गया 'रुबाइयात उमर ख़ैयाम' का हिन्दी पद्यानुवाद 'मधुप' नाम से यद्यपि
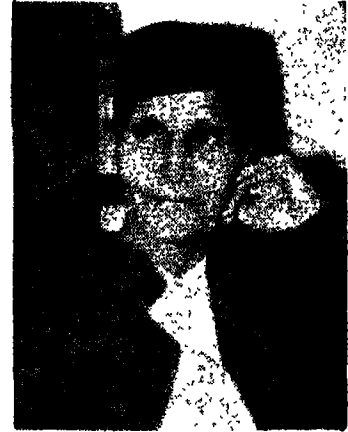
माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित और कानपुर के प्रताप प्रेस से प्रकाशित होने वाली 'प्रभा' नामक पत्रिका में प्रकाशित हो चुका था, फिर भी श्रीवास्तवजी ने केशव पाठक द्वारा किया गया रुबाइयात का दूसरा अनुवाद 'प्रेमा' में छापकर हिन्दी में 'हालावादी युग' प्रारम्भ किया।

श्रीवास्तवजी जहाँ उच्चकोटि के संगठक, कुशल सम्पादक तथा सहृदय कवि थे वहाँ कहानी, निबन्ध तथा व्यंग्य-लेखन में भी आपको अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई थी। 'ऊँट बिलहरवी' नाम से आपने सशक्त व्यंग्य-लेखन में अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया वह अभूतपूर्व है। आपकी रचनाएँ उन दिनों 'हितकारिणी', 'कर्मवीर', 'गृह लक्ष्मी', 'हिन्दी मनोरंजन' और 'बाल-सखा' आदि अनेक पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं। 'सरस्वती' में जब श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी गए तो उनके सम्पादन में श्रीवास्तवजी की कई कहानियाँ उसमें छपी थीं। 'प्रेमा' के लगभग 3 वर्ष के सम्पादन-काल में आपने अपनी लेखनी को जिस विविध साहित्य की सृष्टि करने में लगाया था, वह भी अभूतपूर्व था। आपके 'उनींदी रातें' (काव्य-संकलन), 'हम इश्क के बन्दे हैं' (कहानी-संग्रह), 'जज्बाते ऊँट' (व्यंग्य काव्य), 'महाकवि अनीस' (व्याख्या और जीवनी), 'प्रतिनिधि शोक गीत', 'विवेचनात्मक गल्प विहार' (सुभद्राकुमारी चौहान के संयुक्त सम्पादन में कथा-संग्रह) तथा 'महाकवि गालिब की गजलें' (टीका) आदि ग्रन्थ आपकी बहुमुखी प्रतिभा के उदात्त उदाहरण हैं।

'प्रेमा पुस्तकमाला' नाम से आपने जबलपुर से जो प्रकाशन किया था उसमें भी आपके साहित्य-प्रेम और लगन के दर्शन होते हैं। अच्छी रचनाओं के प्रकाशन की ललक आपको चुप नहीं बैठने देती थी। केशव पाठक द्वारा किया गया 'रुबाइयात का हिन्दी अनुवाद' आपने ही अपने इस प्रकाशन से प्रकाशित किया था। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का 'प्रदीप' नामक गद्य-संकलन भी वहाँ से ही छपा था। श्रीवास्तवजी इतने सहज और सरल व्यक्तित्व के धनी थे कि आपको कोई आडम्बर पसन्द नहीं था। लोग कहा करते हैं कि आप जिस प्रकार गद्य, पद्य और मद्य तीनों में पारंगत थे उसी प्रकार हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी में समान रूप से दखल रखते थे। आपके मद्य-पान के सम्बन्ध में श्री रामेश्वर गुरु ने सही ही लिखा है—"लोग कहते हैं कि रामानुजजी पीते हैं। यह बात छिपी नहीं है। शाम हुई नहीं कि वे स्वयं गोष्ठी में से यह कहकर उठते हैं कि उन्हें 'सन्ध्या-पूजन' करना है। उनका ऐलानिया पीना, उनके बाँकपन की निशानी है। साधु-सन्तों और परमहंसों की बात तो मैं नहीं करता, पर रामानुजजी के बारे में मैं बराबर कह सकता हूँ कि उनका पीना उनकी सेहत है, उनका अध्ययन और चिन्तन है और प्रेरणा का अजस्र स्रोत है।" वास्तव में रामानुजजी का कवि, कहानीकार, लेखक, वार्ताकार, साहित्य-सेवी, मित्र, सम्पादक और जिन्दादिल साथी का रूप पीने से ही पनपा था।

आप जबलपुर तो क्या समस्त मध्यप्रदेश की तीन पीढ़ियों के हृदय-हार थे। द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों का आपको जहाँ स्नेह प्राप्त था वहाँ छायावादयुगीन लोग आपको अपना मार्ग-दर्शक मानते थे और तीसरी आधुनिक पीढ़ी के लिए तो आप मसीहा ही थे। जिन्दादिली आपके हर घटना-क्रम से टपकती थी। 'जबलपुर साहित्य संघ' ने जहाँ आपकी 60वीं वर्ष गाँठ धूमधाम से मनाई थी वहाँ सन् 1972 में 'मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्' ने श्री हरिशंकर परसाई के सम्पादन में आपकी प्रतिनिधि रचनाओं का प्रकाशन करके अपने कर्तव्य का पालन किया था। इसी प्रकार मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी आपका अत्यन्त भाव-भीना अभिनन्दन किया था।

आपका निधन 26 अप्रैल सन् 1976 को हुआ था।

पाण्डेय रामावतार शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1877 में छपरा (बिहार) में हुआ था। शैशव काल से ही आपके कार्य-कलापों में विलक्षणता और असाधारणता के चिह्न प्रकट होने लगे थे। उनका परिचय तब मिला जबकि आपने काशी में जाकर संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन करके वहाँ की पण्डित-मण्डली पर अपने पाण्डित्य की गहरी छाप डाली थी। आपने काशी में पं० गंगाधर शास्त्री से संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन किया था। संस्कृत के साथ-साथ आपने अँग्रेजी भाषा का भी अध्ययन करके एम० ए० की सर्वोच्च उपाधि

प्राप्त की थी। हिन्दी के उत्कृष्ट समीक्षक स्व० श्री नलिन-विलोचन शर्मा आपके ही मेधावी सुपुत्र थे।

आप यावज्जीवन एक अध्यापक के रूप में ही कर्म-रत रहे तथा अपने इस कार्य-काल में आपने अपना लेखन-कार्य भी जारी रखा। आपकी लेखनी का प्रखर चमत्कार तो उस समय देखने को मिला जबकि आपने सातवें दर्शन की रचना करके षड्दर्शनों की परम्परा में अपना स्थान कपिल तथा कणाद-जैसे मुनियों की श्रेणी में बनाया। इस ग्रन्थ का नाम 'परमार्थ दर्शन' है। इसकी रचना आपने प्राचीन पद्धति के अनुसार संस्कृत सूत्रों में ही की थी तथा उसका भाष्य भी स्वयं ही किया था। इन ग्रन्थ में आपने ईश्वर के अस्तित्व को पूर्णतः नकार दिया था और आप अनीश्वरवादी के रूप में प्रसिद्ध हो गए थे।

आप जहाँ संस्कृत और हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक थे वहाँ हिन्दी-काव्य-रचना में भी आपने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया था। आपने निबन्ध, दर्शन, काव्य, साहित्य, व्याकरण, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व, नृतत्त्व, शिक्षा, धर्म, सभ्यता, संस्कृति, भाषा-विज्ञान, खगोल, भूगोल एवं ज्योतिष आदि विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालने वाले अनेक गूढ़तम ग्रन्थ हिन्दी में लिखे थे। सभी ग्रन्थों में आपके गम्भीर ज्ञान एवं अपार विद्वत्ता का गहनतम परिपाक हुआ था। आपके प्रमुख ग्रन्थों में 'भारत का इतिहास' (1927), 'धर्म प्रबोध' (1929),'आत्मबोध तरंगिनी' (1929), 'भारतीय ईश्वर-वाद' (1934) तथा 'व्याकरण संजीवन' (1935) उल्लेख-नीय हैं। आपके निधनके उपरान्त बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से आपके चुने हुए निबन्धों का संकलन भी सन् 1953 में 'रामावतार शर्मा निबन्धावली' नाम से प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन 52 वर्ष की अवस्था में 3 अप्रैल सन् 1929 को पटना में हुआ था।

श्री रामावतार शास्त्री विद्याभास्कर

श्री शास्त्रीजी का जन्म सन् 1892 में उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के रतनगढ़ नामक ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा उत्तर भारत के प्रमुख शिक्षण-केन्द्र गुरुकुल महाविद्यालय,ज्वाला-पुर में हुई थी। आप संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् होने के साथ-साथ हिन्दी के भी सुलेखक थे। वेदान्त, भक्ति तथा अध्यात्म की ओर अधिक झुकाव होने के कारण प्रारम्भ में आपने अपनी लेखनी को इसी दिशा में प्रवृत्त किया, और फिर बाद में विभिन्न लोकोपयोगी विषयों पर भी खूब जमकर लिखा।
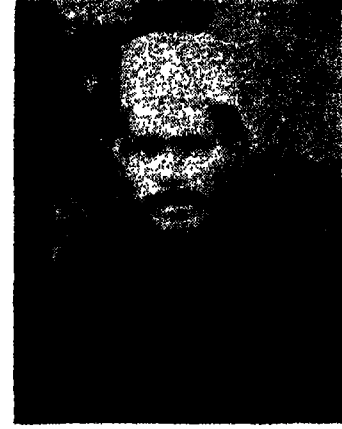
आपकी प्रकाशित कृतियों में 'पंचदशी' (1932), 'बोध सार' (1932), 'वाक्य सुयोग तारावली' (1933), 'दश श्लोकी' (1934), 'गीता परिशीलन' (1935), 'नारद भक्ति सूत्र' (1935), 'भारत की अध्यात्ममूलक संस्कृति अर्थात् जाग्रत जीवन' (1943), 'सिद्धान्त सार' (1944), 'बाल गीत', 'भारतीय संविधान की रूप-रेखा' और 'चाणक्य सूत्राणि' (1958) प्रमुख हैं। इनमे से 'गीता परिशीलन' और 'सिद्धान्त सार' नामक ग्रन्थों पर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त आपने कुछ उपनिषदों तथा योगदर्शन का सव्याख्या अनुवाद भी किया था, जो अब तक अप्रकाशित ही है।

आपका निधन 27 मई सन् 1958 को हुआ था।

श्री रामेश्वर 'करुण'

श्री 'करुण' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद के

एक छोटे-से गाँव 'कदमपुरा' में सन् 1901 की शिवरात्रि को हुआ था। आपकी पारिवारिक आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर थी, इसी कारण आपकी शिक्षा अधिक नहीं हुई थी। ज्यों-त्यों करके मिडिल की परीक्षा देने के उपरान्त आपने नार्मल ट्रेनिंग की, और फिर एक प्राथमिक पाठशाला में अध्यापक हो गए। उन्हीं दिनों आपको रीवाँ राज्य की चोरहट नामक जागीर के एक मिडिल स्कूल में 'प्रधानाध्यापक' का पद मिल गया और आप वहाँ चले गए। कुछ दिन तक इस पद पर कार्य करने के उपरान्त आप रीवाँ के महाराजा गुलाबसिंह के निजी कार्यालय में लिपिक के पद पर नियुक्त हो गए; किन्तु आपके अवचेतन में सामाजिक विषमता के प्रति इतना विद्रोह पनप चुका था कि वहाँ भी आप अधिक दिन नहीं रह सके और प्रयाग चले गए। प्रयाग में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से अहिन्दी-भाषी छात्रों को हिन्दी पढ़ाने का कार्य आपको मिल गया।

प्रयाग पहुँचकर भी आपका मन वहाँ नहीं लगा और आप अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए मध्यप्रदेश की सरगुजा रियासत की राजधानी अम्बिकापुर में जा पहुँचे। सौभाग्यवश वहाँ के एक-मात्र 'एडवर्ड हाईस्कूल' में हिन्दी-अध्यापक के पद पर आपकी नियुक्ति हो गई। आपकी मिलनसारिता, व्यापक ज्ञान तथा सामाजिक सेवा की भावना वहाँ भी आड़े आई और लोग आपके विरोधी हो गए। लगभग 2 वर्ष के अपने कार्य-काल में आपने अम्बिकापुर के नवयुवकों में जो राष्ट्रीय चेतना जागृत की थी उससे आपका मार्ग प्रशस्त होने की बजाय कंटकाकीर्ण हो गया और आपको राज्य की ओर से 24 घंटे के अन्दर-अन्दर बाहर जाने का आदेश हो गया। फलस्वरूप वहाँ से निर्वासित होकर आप काशी चले गए। काशी जाकर आपका
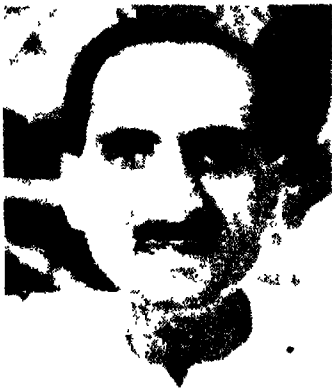
सम्पर्क हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री रामदास गौड़ से हो गया और आप उनके लेखन-कार्य में सहयोगी हो गए।

इसके उपरान्त आप आजीविका की दृष्टि से लाहौर पहुँच गए और वहाँ पर डी० ए० वी० कालेज कमेटी के प्रबन्धकों के सहयोग से एक हिन्दी विद्यालय खोल दिया। इन्हीं दिनों आपने अध्यापकों को प्रशिक्षण देने की दृष्टि से 'शिक्षा विज्ञान' नामक एक पुस्तक भी लिखी, जो वहाँ बहुत लोकप्रिय हुई। आपकी इस सफलता से प्रभावित होकर 'आर्य विद्या सभा' के अधिकारियों ने आपसे अपने प्राथमिक विद्यालयों के लिए पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने का अनुरोध किया। आपकी यह पुस्तकें पंजाब के प्रायः सभी विद्यालयों में पढ़ाई जाती थीं। 'करुण' जी जहाँ एक सफल अध्यापक और कुशल लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हुए वहाँ एक उत्कृष्ट कवि के रूप में आपकी प्रतिभा हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रकट हुई। उन्हीं दिनों आपने 'करुण सतसई' नामक एक ऐसे काव्य-ग्रन्थ की सर्जना की जिसमें देश की परतन्त्रता, आर्थिक विषमता और सामाजिक कुरीतियों के प्रति खुला विद्रोह प्रकट होता था। इस पुस्तक का हिन्दी-जगत् में पर्याप्त स्वागत हुआ। यहाँ तक कि पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ० सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव और महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रभृति महानुभावों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। इसके अतिरिक्त आपने 'ईसपनीति-निकुंज', 'वीरगाथा', 'चिनगारी', 'लवपुर लावण्य', 'बाल रामायण', 'गान्धी-गौरव', 'बाल गोपाल' और 'तमसा' आदि कृतियों की रचना भी की थी।

आप उत्कृष्ट कवि तथा सफल अध्यापक होने के साथ-साथ उच्चकोटि के पत्रकार भी थे। आपने जहाँ अनेक वर्ष तक 'शिक्षा' नामक मासिक पत्रिका का स्वतन्त्र रूप से सम्पादन-प्रकाशन किया था वहाँ आप लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक हिन्दी मिलाप' में 'शहर पनाह के कंगूरे से' शीर्षक स्तम्भ नियमित रूप से लिखा करते थे। आपने श्री सन्तराम बी० ए० के 'युगान्तर' मासिक के सम्पादन में भी अनेक वर्ष तक सहयोग दिया था। जब आपका स्वास्थ्य ढीला रहने लगा तो आप सन् 1946 में अपने जिले के फफूँद स्टेशन के समीप 'गोरी' नामक गाँव में आकर रहने लगे थे। यहीं पर 28 नवम्बर सन् 1947 को 46 वर्ष की अल्पायु में ही आपका असामयिक देहावसान हो गया।

श्री रामेश्वर टाँटिया

श्री टाँटियाजी का जन्म 26 जनवरी सन् 1910 को राजस्थान के सरदारशहर नामक नगर में हुआ था। 15 वर्ष की अल्पावस्था में ही आपने व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश किया था। प्रारम्भ में आप कलकत्ता की प्रसिद्ध अँग्रेजी फर्म जे० थामस कम्पनी के साधारण कर्मचारी थे और बाद में देश के प्रमुख उद्योगपतियों में आपकी गणना होने लगी थी। अपने अनवरत अध्यवसाय और सतत साधना से आपने यह सफलता प्राप्त की थी।

आप जहाँ सफल व्यवसायी थे वहाँ सामाजिक कार्यों में भी आपकी पर्याप्त रुचि थी। आपने सन् 1952 से सन् 1956 तक 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी कलकत्ता' के प्रधानमन्त्री के रूप में बंगाल के अकाल-पीड़ितों की सराहनीय सेवा कार्य करने के साथ-साथ देश के अनेक भू-भागों में अनेक समाजोपयोगी संस्थाओं की स्थापना भी की थी। ऐसी संस्थाओं में साइंस कालेज, शिवसागर (असम), टाँटिया हायर सेकेण्डरी स्कूल, कलकत्ता, टाँटिया गर्ल्स हाईस्कूल सरदारशहर (राजस्थान), एलोपैथिक फ्री डिस्पेंसरी, वाराणसी (उत्तर प्रदेश), सार्वजनिक पुस्तकालय धुबड़ी (असम) तथा हायर सेकेण्डरी स्कूल, लकुआ (असम) आदि प्रमुख हैं।

एक सफल उद्योगपति और समाज-सेवी होने के साथ-साथ आपको यात्रा करने का भी बहुत शौक था। अपनी यात्रा के अनेकविध अनुभवों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करके आपने अपनी अद्भुत लेखन-क्षमता का पूर्ण परिचय दिया है। आपकी ऐसी प्रतिभा आपकी 'विश्व यात्रा के संस्मरण' नामक कृति में अच्छी तरह रूपायित हुई है। इसके अतिरिक्त आपने और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें 'आर्थिक समस्याएँ', 'हमारा संसद् भवन', 'कुछ अपनी : कुछ जग की', 'कुछ घटनाएँ : कुछ संस्मरण' तथा 'कुछ देखी : कुछ सुनी' आदि प्रमुख रूप से ध्यातव्य हैं। वास्तव में इन कृतियों में श्री टाँटियाजी की 'संस्मरण-लेखन-कला' उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई है।

आप अनेक वर्ष तक 'भारतीय संसद्' के भी सदस्य रहे थे। सन् 1957 से सन् 1962 तक के अपने संसद्-सदस्य-काल में आप कांग्रेस-संसदीय पार्टी के कोषाध्यक्ष भी रहे थे। राजनीतिक कार्यों में आपकी रुचि बराबर रहती थी और आपका लोकनायक श्री जयप्रकाशनारायण तथा मातृकाप्रसाद कोइराला आदि नेताओं से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। आप जहाँ कई वर्ष तक कानपुर के नगरप्रमुख रहे वहाँ 'ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन' के प्रबन्ध-निदेशक भी रहे थे। इसके अतिरिक्त जनवरी सन् 1972 में आप कलकत्ता के 'अपर इण्डिया चैम्बर' के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए थे।

आपका निधन 22 जुलाई सन् 1977 को हुआ था।

श्री रामेश्वरप्रसाद शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म शहडोल-रीवाँ (मध्यप्रदेश) में सन् 1893 में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा जोधपुर में हुई थी। अँग्रेजी, संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती और हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त करके आप सन् 1915 तक महाराज माधवराव सिन्धिया के निजी सचिव रहे। परन्तु राज्यों के अत्याचारों से दुखी होकर देश-प्रेम की प्रेरणा से आप वहाँ से त्याग-पत्र देकर श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' साप्ताहिक के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगे। इसके उपरान्त आपने उरई से 'उत्साह' नामक पत्र निकाला और फिर महात्मा गान्धी के 'असहयोग आन्दोलन' से प्रभावित होकर सन् 1921 में आपने 'साहस' नामक पत्र भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। फिर सत्याग्रह-संग्राम में कूद पड़े और जेल चले गए। इसी बीच आपकी सहधर्मिणी श्रीमती लक्ष्मीदेवी का देहावसान हो गया, और फिर आपने श्रीमती कमलादेवी भार्गव से द्वितीय विवाह किया।

सन् 1915 तथा सन् 1916 में आप आचार्य महावीर-

प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली 'सरस्वती' के सहकारी सम्पादक भी रहे थे। कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन में आप उन दिनों ही सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे जबकि आप गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' में कार्य करते थे। आपने पत्रकारिता करने के साथ-साथ कई पुस्तकें भी लिखी थीं, जिनमें 'अस्तोदय', 'स्वावलम्बन', 'संसार के उद्योगी पुरुष' और 'कम्युनिस्ट क्या है' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 19 अक्तूबर सन् 1963 को ग्राम दिनारा (शिवपुरी) मध्यप्रदेश में हुआ था।

श्रीमती रामेश्वरी गोयल

श्रीमती गोयल का जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी नगर में 11 फरवरी सन् 1910 को हुआ था। आपने सन् 1932 में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आप हिन्दी के प्रगतिवादी समीक्षक और प्रयाग विश्वविद्यालय के अँग्रेजी-प्रवक्ता प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त की पहली पत्नी थीं। गुप्तजी के साथ इलाहाबाद में रहते हुए आपने कई वर्ष तक आर्य कन्या पाठशाला की प्रधानाचार्या के रूप में कार्य किया था।

आप मूलतः छायावादी विचार-धारा से प्रभावित ऐसी कवयित्री थीं जिनकी रचनाएँ तत्कालीन सामाजिक वातावरण को मूर्तिमन्त करने की क्षमता रखती थीं। आपने कुछ उत्कृष्ट गद्य-गीत भी लिखे थे। आपकी ऐसी रचनाओं का संकलन आपके निधन के उपरान्त 'जीवन का सपना' नाम से प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन सन् 1935 में हुआ था।

श्रीमती रामेश्वरीदेवी 'चकोरी'

श्रीमती 'चकोरी' का जन्म सन् 1916 में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के बेन्थर नामक ग्राम में श्री उमाचरण शुक्ल के यहाँ हुआ था। जब आप केवल ढाई वर्ष की ही थीं कि आपके पिताजी का देहावसान हो गया। परिणामतः आप अपनी ननिहाल लखनऊ के नरही मोहल्ले में आकर रहने लगी और वहीं पर आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई। सन् 1929 में आपका विवाह लखनऊ-निवासी श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' से हो गया। 'अरुण' जी भी स्वयं अच्छे कवि और साहित्यकार के रूप में उन दिनों खूब विख्यात थे और 'सुधा' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करते थे। उनके सम्पर्क से चकोरीजी की साहित्य-साधना में दिनानुदिन वृद्धि होती गई और एक दिन ऐसा भी आया जबकि आपकी लेखनी से यह छन्द फूट निकला :

नाम से हूँ विदित 'चकोरी' कवि-मण्डली में,
किन्तु न कलंकी निशा-नाथ से छली हूँ मैं।
भावुक जनों के मंजु मानस-सरोवर में,
पंकज-पराग हेतु भ्रमित अली हूँ मैं।।

विमल विभूति हूँ रसों में चारु कल्पना की,
काव्य-कुसुमों में एक नवल कली हूँ मैं।
भक्ति देवी शारदा की, शक्ति दीन-दलितों की,
'अरुण' सनेही के सनेह में पली हूँ मैं।।

आप बहुत छोटी अवस्था से ही काव्य-रचना करने लगी थीं और थोड़े ही समय में आपने अपनी प्रतिभा का ऐसा परिचय दिया कि आपकी रचनाओं ने समस्त साहित्य-संसार का मन मोहित कर लिया। आपकी रचनाओं को हिन्दी की सभी श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित किया जाता था। जब आप केवल 20 वर्ष की ही थीं तब आपका पहला काव्य-संकलन 'किंजल्क' प्रकाशित हो गया था। अपने साहित्यिक जीवन के केवल 5-6 वर्ष में ही आपने अच्छी ख्याति अर्जित कर ली थी। एक उत्कृष्ट कवयित्री होने के साथ-साथ आप कुशल कहानी-लेखिका भी थीं। आपके दूसरे काव्य-संकलन 'मकरन्द' के अतिरिक्त आपकी कहानियों का भी एक संग्रह 'धूप छाँह' नाम से प्रकाशित हुआ था।

यह दुर्भाग्य की बात है कि आपने दीर्घ जीवन नहीं पाया और असमय में ही 21 सितम्बर सन् 1935 को क्रूर काल के गाल में चली गईं। यदि आपको दीर्घ जीवन प्राप्त होता तो निश्चय ही आप अपनी अमूल्य कृतियों से साहित्य को और भी समृद्ध करतीं।

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू का जन्म लाहौर के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित परिवार में नवम्बर सन् 1886 में हुआ था। आपके पिता राजा नरेन्द्रनाथ के पूर्वज कश्मीर से आकर वहाँ बस गए थे। नरेन्द्रनाथजी ने अनेक वर्ष तक पंजाब में डिप्टी कमिश्नर और कमिश्नर के रूप में कार्य किया था। रामेश्वरीजी की प्रारम्भिक शिक्षा यद्यपि आपकी कुल-परम्परा के अनुसार उर्दू में एक मौलवी के निरीक्षण में हुई थी, किन्तु हिन्दी और अँग्रेजी का भी आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपकी अँग्रेजी की शिक्षा जहाँ एक क्रिश्चियन अध्यापिका के द्वारा हुई थी वहाँ हिन्दी का ज्ञान आपने अपनी माताजी के द्वारा प्राप्त किया था।

जब आपका विवाह इलाहाबाद के प्रतिष्ठित वकील और देश के प्रमुख नेता श्री मोतीलाल नेहरू के भतीजे श्री ब्रजलाल नेहरू से सन् 1902 में हुआ, तब आपके शिक्षा-क्रम में विघ्न पड़ गया। उन्हीं दिनों आपके पति श्री ब्रजलाल नेहरू 'सिविल सर्विस' की परीक्षा देने के विचार से इंगलैण्ड चले गए और वहाँ से ही उन्होंने बी० ए० और एम० ए० की डिग्रियाँ प्राप्त करके 'सिविल सर्विस' की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। सन् 1908 में जब 6 वर्ष तक विद्याध्ययन करके वे भारत लौटे तो उनकी नियुक्ति अच्छे प्रशासनिक पद पर हो गई।

यद्यपि विवाह हो जाने और पति के विदेश चले जाने के कारण आपकी शिक्षा में व्याघात उत्पन्न हो गया था, किन्तु फिर भी आपने अपनी माता तथा पिता के निरीक्षण में अपने स्वाध्याय को निरन्तर बनाए रखा। इस बीच आपने मुहम्मदी बेगम द्वारा सम्पादित उर्दू के साप्ताहिक पत्र 'तहज़ीब निस्वाँ' में उर्दू में लेख आदि लिखने प्रारम्भ कर दिए। जब कश्मीरियों का एक-मात्र उर्दू पत्र 'कश्मीर दर्पण' बन्द हो गया तब आपने अपने पति के बड़े भाई श्री मोहन-लाल नेहरू के परामर्श पर 'कश्मीर दर्पण' को पुनर्जीवित करने का विचार किया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि उसे हिन्दी में प्रकाशित किया जाय और केवल स्त्रियों से सम्बन्धित सामग्री ही उसमें हो। परिणामस्वरूप 'स्त्री दर्पण' नाम निश्चित हुआ और 1909 में उसका विधिवत् प्रकाशन आपके सम्पादकत्व में प्रयाग से हो गया। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि श्री मोहनलाल नेहरू हिन्दी के अच्छे कहानी-कार थे।

'स्त्री दर्पण' के माध्यम से श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने न केवल उर्दू-प्रेमी कश्मीरी महिलाओं में हिन्दी का प्रचार किया, प्रत्युत दूसरे वर्ग की महिलाओं को भी उस ओर

आकर्षित किया। शुरू-शुरू में इस पत्र के 1-2 अंक उर्दू-हिन्दी में निकले थे, किन्तु बाद में यह हिन्दी में ही प्रकाशित होने लगा था। 'स्त्री दर्पण' ने अपने प्रकाशन के द्वारा महिलाओं में लेखन की प्रवृत्ति जागृत करने की दिशा में भी अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किया था। 'स्त्री दर्पण' के पुराने अंक इसके ज्वलन्त साक्षी हैं।

इसके बाद श्रीमती नेहरू ने समाज-सेवा के क्षेत्र में भी अनेक प्रशंसनीय कार्य किए और अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप कई वर्ष तक 'हरिजन सेवक संघ' की अध्यक्षा भी रही थीं।

आपका निधन सन् 1966 में हुआ था।

दीवान रूपकिशोर जैन

दीवान रूपकिशोर जैन का जन्म 18 जून सन् 1884 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के विजयगढ़ नामक कस्बे में हुआ था। आपके पिता दीवान इन्द्रप्रसाद जिले के अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। सन् 1890 में बालक रूपकिशोर की शिक्षा-दीक्षा अपने पिता की देख-रेख में हुई थी। तत्कालीन परम्परा के अनुसार आपको भी पहले-पहल फारसी-उर्दू ही सिखाई गई थी और अपने इन्हीं संस्कारों के कारण आपने सर्वप्रथम 'बोस्ताँ' तथा 'गुलिस्ताँ' का अध्ययन किया था। सन् 1897 में आपने हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ किया था। स्कूली शिक्षा के नाम पर आपने केवल विजयगढ़ के स्कूल से मिडिल पास ही किया था। वैसे आपने रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र चटर्जी और शरच्चन्द्र चटर्जी की रचनाओं का आस्वादन करने के लिए बंगाली भी सीख ली थी। गुजराती, मराठी तथा अँग्रेजी भाषाओं का ज्ञान भी आपने घर पर रहते हुए अपने स्वाध्याय के बल पर ही प्राप्त कर लिया था। एक सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के कारण आपको सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। परिणामस्वरूप फोटोग्राफरी और चित्रकारी सीखने के साथ-साथ आपने आयुर्वेद का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

सन् 1895 में आपका पहला विवाह हुआ, किन्तु आपकी पत्नी अधिक दिन जीवित न रह सकी। परिणामस्वरूप आपने 14 फरवरी सन् 1905 को दूसरा विवाह किया। उन दिनों विजयगढ़ में वैद्य तो अनेक थे, किन्तु औषधालय एक भी नहीं था, अतः आपने एक निःशुल्क 'चिकित्सालय' और 'स्वाधीनता प्रेस' की स्थापना भी वहाँ की। यद्यपि आपकी विचार-धारा पूर्णतः राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थी, परन्तु घर वालों के भय के कारण आप कभी उसे खुलकर प्रकट नहीं करते थे। अपनी इस प्रकार की भावनाओं का प्रकटीकरण आपने अपने द्वारा रचित 'लावनियों' में किया है। आप स्वभाव से

इतने दयालु और हृदय से इतने कोमल थे कि अपने किसानों के प्रति भी पूर्ण सहृदयता का व्यवहार रखते थे। एक बार जब इसी प्रकार एक ऐसा किसान आपके सामने आया जिसकी ओर दस हजार रुपए बाकी थे और उसे बे-दखल कर दिया गया था तब आपने उसे क्षमा कर दिया और गाय देकर उसे विदा किया था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त जब जमींदारी-उन्मूलन हो गया तो आप अपने सुपुत्र श्री अक्षयकुमार जैन के पास दिल्ली आकर रहने लगे थे; जहाँ अक्षयजी 'नवभारत टाइम्स' के प्रधान सम्पादक थे।

आपने पहले-पहल उर्दू में 'किशोर' नाम से लिखना प्रारम्भ किया था। आपकी रचनाएँ भी कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'जमाना' नामक उसी पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं जिसमें प्रेमचन्दजी 'नवाबराय' नाम से लिखा करते थे। आपने बिजनौर से प्रकाशित होने वाले 'वीर', विजयगढ़ से प्रकाशित होने वाले 'महावीर' और हाथरस से प्रकाशित होने वाले 'मार्तण्ड' नामक पत्रों का सम्पादन करने के साथ-साथ 'हिन्दी गल्प' नामक एक और स्वतन्त्र पत्र भी निकाला था। आप जहाँ कुशल कवि और सफल पत्रकार थे वहाँ उत्कृष्ट कथा-लेखक के रूप में कम प्रसिद्ध नहीं हुए। 'अलिफ लैला' के प्रथम हिन्दी-अनुवादक के रूप में आपका नाम जहाँ

हिन्दी-साहित्य में अपनी विशिष्टता रखता है वहाँ आपके द्वारा लिखित अनेक उपन्यास हिन्दी-पाठकों के हृदय-हार रहे हैं। 'अलिफ लैला' का वह हिन्दी अनुवाद 'श्याम काशी प्रेस मथुरा' से 'सहस्र आख्यान मंजरी' नाम से प्रकाशित हुआ था और उन दिनों इसके लगभग 30 संस्करण हुए थे। उपन्यासों और नाटकों के अतिरिक्त आपने लगभग 500 कहानियाँ भी लिखी थीं।

आपके द्वारा लिखित उपन्यासों में 'शशिकान्ता' (1910), 'माधवी' (1911), 'रत्न प्रभाकर' (1912), 'मनोरमा' (1913), 'सुशील कन्या', 'सूर्यकुमार सम्भव' (1915), और 'कोकती' (1920) आदि के नाम विशेष उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त 'भारतीय वीरांगना', 'नील प्रबोध', 'अवन्तिकुमारी', 'कलावती', 'कुदसिया बेगम' और 'घूंघट वाली' भी आपकी विशिष्ट कथा-कृतियाँ हैं। आपने 'श्री देवी' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखा था। कविता के क्षेत्र में आपकी प्रतिभा पूर्णतः प्रस्फुटित हुई थी। आपकी ऐसी रचनाएँ 'बारहमासा रूपकिशोर' और 'किशोर पूर्णिमा' में संकलित हैं। पहली में जहाँ बारहमासे दिये गए है वहाँ दूसरी में लावनियाँ हैं। आपने 'फोटोग्राफी' और 'शरीर रचना' नामक पुस्तकों के अतिरिक्त 'कल्लू वैद्यराज' रूपक और 'सांगीत सब्जपरी गुलफाम' नामक स्वाँग की भी रचना की थी। आपकी प्रकाशित-अप्रकाशित प्रायः सभी रचनाओं की संख्या लगभग 60 है। इनके अतिरिक्त आपने उर्दू में भी कई पुस्तकें लिखी थीं। आपने कुछ समय तक 'जैन मार्तण्ड', 'महावीर' और 'भारत' आदि पत्रों का सम्पादन भी किया था।

आपका निधन 80 वर्ष की आयु में 12 दिसम्बर सन् 1960 को दिल्ली में हुआ था।

श्री रूपनारायण ओझा

श्री रूपनारायण ओझा का जन्म सन् 1919 में उत्तर प्रदेश के एटा जनपद की जलेसर तहसील के ग्राम जरारा में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) में हुई थी और आपके साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण प्रयाग में हुआ था। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के साहित्य विभाग में कार्य करते हुए आपकी लेखन-प्रतिभा का विकास श्री देवदत्त शास्त्री का सम्पर्क और सान्निध्य पाकर और भी क्षिप्र गति से हुआ था।

नित नई कल्पनाएँ और सूझ करना आपके व्यक्तित्व की निधि थी। आपके सम्पादन में प्रकाशित 'मैं लेखक कैसे बना' नामक पुस्तक इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इस पुस्तक के बाद आपका विचार 'मैं समालोचक कैसे बना' और 'मैं कवि कैसे बना' नामक पुस्तकों का सम्पादन-प्रकाशन करने का भी था। खेद है कि नवम्बर सन् 1959 में असामयिक निधन के कारण आपकी यह कल्पना मूर्त्त रूप नहीं ले सकी।

आपने अनेक लेख 'वेंकटेश्वर समाचार' तथा 'भारत' आदि पत्रों में अपने पुत्र 'देवात्मन शर्मा' के नाम से भी लिखे थे।

श्री रूपनारायण चतुर्वेदी 'निधिनेह'

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म दिसम्बर सन् 1910 में उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के कमतरी नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री हरिचरण चतुर्वेदी कलक्टर के पद पर कार्य-रत रहते हुए भी हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे और प्रायः अपने निवास पर कवि-सम्मेलनों का आयोजन करते रहते थे।

निधिनेहजी का बाल-जीवन यमुना तथा चम्बल के तटवर्ती बीहड़ कगारों और टीलों में ही बीता था, इसलिए प्राकृतिक सुषमा से आपका तादात्म्य हो गया था। आप अपने छात्र-जीवन से ही अच्छी कविता करने लगे थे। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि सन् 1932 में जब कवीन्द्र रवीन्द्र आगरा

पधारे थे और आगरा कालेज में आपका स्वागत करने की योजना बनाई गई थी तब आपको ही 'स्वागत-गान' लिखने का दायित्व सौंपा गया था। आगरा कालेज से उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप भी अपने पिता की भाँति 1935 में डिप्टी कलक्टर हो गए और अनेक स्थानों पर रहते हुए अनेक रूपों में आपने उत्तर प्रदेश-शासन की सेवा की।

शासन में रहते हुए भी आपने अपने कवि-कर्म को तिलांजलि नहीं दी और बराबर उसमें प्रगति करते रहे। आपने जहाँ 'विक्रमादित्य'-जैसे प्रौढ़ काव्य की रचना की पहल करके अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया वहाँ 'बाल-साहित्य' का सृजन करने में भी आप पीछे नहीं रहे। आपकी ऐसी रचनाएँ 'वाणी की कहानी' नामक पुस्तक में संकलित हैं। आपकी 'लोनी लता' तथा 'मणिका' नामक कृतियों में आपकी ब्रजभाषा में लिखित प्रौढ़ रचनाएँ संकलित हैं। अभी तक ये दोनों संकलन अप्रकाशित ही हैं। आपकी 'हनुमत् बावनी' नामक रचना में आपके हनुमत्-प्रेम का ज्वलन्त परिचय मिलता है।

आप जहाँ ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे वहाँ उर्दू भाषा में काव्य-रचना करने में भी अत्यन्त दक्ष थे। आपकी उर्दू की गजलों का संकलन 'तीन फूल' नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। आप प्रशासन के प्रसंग में जहाँ-जहाँ भी गए वहाँ साहित्य तथा कविता का वातावरण बनाने में कभी पीछे नहीं रहे। कवि-सम्मेलनों के आयोजनों के प्रसंग में आपके यहाँ हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख कवियों तथा साहित्यकारों का जमाव रहा करता था। जिन दिनों आप बुलन्दशहर में थे तब आपके प्रयास से वहाँ 'हिन्दी साहित्य परिषद्' की स्थापना हुई थी। रायबरेली, आजमगढ़ तथा सीतापुर आदि नगरों के साहित्यिक जागरण में भी आपका प्रमुख योगदान रहा था।

आपका निधन 6 जनवरी सन् 1971 को 59 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री रूपनारायण पाण्डेय

श्री पाण्डेयजी का जन्म उत्तर प्रदेश के लखनऊ नगर के रानीकटरा नामक मोहल्ले में सन् 1884 में हुआ था। आपके पिता पं० शिवराम पाण्डेय संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे अतः आपकी प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में ही उनके निरीक्षण में घर पर हुई थी। अँग्रेजी तथा बंगला आदि कई भाषाओं का ज्ञान पाण्डेयजी ने स्वतंत्र रूप से अपने पुरुषार्थ से ही अर्जित किया था। अपने शैशव-काल से पाण्डेयजी लेखन की ओर उन्मुख हो गए थे और आपने सर्वप्रथम एक कवि के रूप में ही अपनी रचना-चातुरी का परिचय हिन्दी-जगत् को दिया था। कविता में आप अपना नाम 'कमलाकर' लिखा करते थे। उत्कृष्ट कवि, अनुवादक लेखक और सम्पादक के रूप में पाण्डेयजी ने हिन्दी-साहित्य में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

जिन दिनों पाण्डेयजी ने साहित्य के क्षेत्र में अवतरण किया था उन दिनों हिन्दी में अनूदित रचनाओं का प्रकाशन धड़ल्ले से हो रहा था।

पाण्डेयजी का ध्यान भी उधर गया और आपने 'श्रीमद्भागवत' का हिन्दी अनुवाद केवल 17 वर्ष की अवस्था में ही 'शुकोक्ति सुधा सागर' नाम से किया था। इसके अतिरिक्त आपने बंगला से सर्वश्री द्विजेन्द्र लाल राय, बंकिमचन्द्र चटर्जी, शरच्चन्द्र चटर्जी तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनेक नाटकों, उपन्यासों तथा कहानियों के अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किए। महाभारत के 12 पर्वों का आपके द्वारा किया गया अनुवाद भी इण्डियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। आपकी सबसे पहली कविता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' में सन् 1913 में प्रकाशित हुई थी। एक उत्कृष्ट कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने के साथ-साथ उच्चकोटि के सम्पादक के रूप में भी आप अत्यन्त प्रसिद्ध थे। आपने जहाँ 'निगमागम चन्द्रिका', 'नागरी प्रचारक' और 'इन्दु' नामक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में अपनी

प्रतिभा का परिचय दिया वहाँ अनेक वर्ष तक लखनऊ से प्रकाशित होने वाली 'माधुरी' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया था। बीच के सात वर्षों को छोड़कर माधुरी के जन्म-काल से लेकर अन्त समय (1935) तक आपका 'माधुरी' से अटूट सम्बन्ध रहा था।

आपकी कवित्व-प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को सर्वप्रथम एक उत्कृष्ट 'सवैयाकार' के रूप में मिला था। 'पराग' (1924) में आपकी जो रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं वे इसका ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इसके अतिरिक्त 'वन वैभव' नामक पुस्तक में आपके अनेक प्रगीत, मुक्तक प्रकाशित हुए थे। एक उत्कृष्ट नाटककार के रूप में भी आपकी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को उस समय मिला था जब आपका 'सम्राट् अशोक' नामक नाटक प्रकाशित हुआ था। अपने सम्पादन-काल में पाण्डेयजी ने अनेक हिन्दी-लेखकों को प्रोत्साहन दिया था और अनुवादक के रूप में आपने हिन्दी-साहित्य को अनेक ऐसी कृतियाँ दी थीं, जिनका हिन्दी-जगत् में बड़ी उत्सुकता से स्वागत हुआ था। 'पराग' और 'वन वैभव' नामक रचनाओं के अतिरिक्त आपने 'श्रीकृष्ण चरित' नाम से एक काव्य भी लिखा था। इस काव्य में 18 सर्गों में भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन का चित्रण किया गया है। 60 से अधिक ग्रन्थों का अनुवाद करने के अतिरिक्त आपने लगभग 15 मौलिक ग्रन्थों की रचना की थी। आपके द्वारा सम्पादित तथा टीका किये गए ग्रन्थों की संख्या भी गिनी नहीं जा सकती। आप द्विवेदी युग के ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने अपनी प्रतिभा से साहित्य की विभिन्न विधाओं को कृतार्थ किया था। बाल-साहित्य के निर्माण की दिशा में भी आप उदासीन नहीं रहे थे और अपनी 'सुबोध भागवत', 'सुबोध महाभारत' तथा 'सुबोध रामायण' आदि कृतियों के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी बालोपयोगी पुस्तकें लिखी थीं।

संस्कृत और बंगला से आपने जहाँ अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों का अनुवाद किया था वहाँ 'शिवसिंह सरोज' तथा 'स्त्री सुबोधिनी' नामक ग्रन्थों का सम्पादन करने के अतिरिक्त तुलसी-कृत 'रामायण' और 'शिवराज भूषण' की टीकाएँ भी लिखी थीं। आपने बंगला साहित्य की उत्कृष्टतम कृति 'कृत्तिवास रामायण' (युद्ध तथा बालकाण्ड) का अनुवाद भी प्रस्तुत किया था। सम्पादक के रूप में आपने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जो सम्पादकीय विचार प्रकट किए थे उनमें समय-समय पर यथा प्रसंग आपने देश तथा विदेश की अनेक समस्याओं पर लिखने के अतिरिक्त साहित्य की समृद्धि के लिए भी उचित दिशा-निर्देश देकर अपनी जागरूकता का परिचय दिया था।

आपका निधन 12 जून सन् 1958 को हुआ था।

श्रीमती रूपवती जैन 'किरण'

श्रीमती 'किरण' का जन्म 16 अक्तूबर सन् 1925 को नागपुर में हुआ था। विवाहोपरान्त आप जबलपुर आ गईं और अनेक सामाजिक संस्थाओं में कार्य करते हुए आपने लेखन के क्षेत्र में भी पर्याप्त ख्याति अर्जित की। आपकी रचनाएँ जहाँ आकाशवाणी के भोपाल और जबलपुर केन्द्रों से ससम्मान प्रसारित होती थीं वहाँ आपने जैन समाज से सम्बन्धित अनेक पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाओं को प्रकाशित कराया था।

आपने जहाँ जबलपुर नगर में 'महिला पुस्तकालय' की स्थापना में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया था वहाँ आप नगर की 'अनेकान्त' नामक साहित्यिक संस्था की भी अध्यक्षा रही थीं।

देश के अनेकानेक नगरों में आयोजित कवि-सम्मेलनों तथा अन्य समारोहों में भाग लेने के अतिरिक्त आपने 'अनेकान्त' नामक एक कविता-संकलन का सम्पादन भी सन् 1969 में किया था। आपकी साहित्य तथा समाज के प्रति की गई उल्लेखनीय सेवाओं के लिए भगवान् महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती ने आपको एक 'स्वर्ण-

पदक' से सम्मानित किया था। आपने 'जैन महिलादर्श' नामक पत्रिका का सम्पादन (1969 में) करने के साथ-साथ आदिनाथ जैन नवयुवक समिति जबलपुर की ओर से आयोजित 'अभिनन्दन-समारोह-स्मारिका' का सम्पादन भी (1979 में) किया था।

आपके द्वारा लिखित रचनाओं में 'मंगल प्रभात' (1953), 'चांदन गाँव महावीर पूजन' (1955), 'जैन दर्शन में वर्तमान विज्ञान' (1956), 'कल्प वृक्ष' (1960) तथा 'वसन्त तिलक' (1965) आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 3 नवम्बर सन् 1979 को हुआ था।

कुमारी रेहाना बहन तैयबजी

कुमारी रेहाना का जन्म गुजरात प्रदेश के बड़ौदा नामक नगर में 26 जनवरी सन् 1901 को हुआ था। जन्मना मुस्लिम होते हुए भी आप परम कृष्ण-भक्त थीं और श्रीकृष्ण की इस भक्ति में भी आपकी 'सर्व धर्म समभाव' की भावना ही निहित रहती थी।

काका साहेब कालेलकर की एकनिष्ठ शिष्या रहकर आपने हिन्दी-प्रेम का जो पाठ पढ़ा था उसे यावज्जीवन निबाहने में आप पूर्णतः संलग्न रहीं। भारत और भारतीय संस्कृति में आपकी पूरी आस्था थी और 'पाकिस्तान' की तो आप पूर्णतः विरोधी थीं। आप अपने दैनिक कार्य-व्यापार में हिन्दी का व्यवहार करने की समर्थक थीं और मराठी, गुजराती अथवा हिन्दी में वार्तालाप करते हुए अँग्रेजी का एक भी शब्द प्रयुक्त नहीं करती थीं। वैसे अँग्रेजी भाषा पर भी आपका पूरा अधिकार था।

स्वराज्य हो जाने पर कुमारी रेहाना बहन तैयबजी ने गान्धीजी को जो पत्र लिखा था उससे भी आपके हिन्दी-प्रेम का परिचय भली-भाँति मिल जाता है। आपने लिखा था—"15 अगस्त के बाद दो लिपियों के बारे में मेरे ख्याल बिलकुल बदल गए हैं और अब पक्के हो गए हैं।···हिन्दुस्तान पर उर्दू लिपि लादने में इतना ही नहीं कि कोई फायदा नहीं है, बल्कि सख्त नुकसान है।···उर्दू लिपि सामाजिक मेल-जोल की जगह कभी नहीं ले सकती।···अगर वे हिन्दुस्तान में रहना चाहते हैं तो हिन्दुस्तानियों की तरह रहें। बेशक उन्हें उर्दू सीखने की सहूलियतें दी जाएँ। मगर उन्हें खुश करने की खातिर हिन्दुस्तान की सारी जनता पर उर्दू लिपि क्यों लादी जाय? · उर्दू लिपि के आग्रह से हमारा बोझ चौगुना हो जाता है।···हम हिन्दुस्तानियों का यही सूत्र रहे कि हमारी राष्ट्रलिपि नागरी है। बस।"

भारत की भाषा का नाम 'भारती' हो, इसकी आप प्रबल समर्थक थीं। आपका कहना था—"हमारे देश का नाम भारत है तो हमारी कौमी जबान का नाम 'भारती' होना चाहिए। 'हिन्दुस्तानी' नाम अच्छा नहीं लगता। 'हिन्दुस्तानी' कहते ही हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा, हिन्दी-उर्दू-तनाजा—सब ध्यान में आता है, जो हमें सचमुच अब दफनाना चाहिए। हमारे देश का नाम भारत है, हम सब भारतीय हैं, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि हमारी भाषाओं के सहयोग से बनने वाली हमारी भाषा 'भारती' है।"

आपके हिन्दी-लेख 'कल्याण' में भी प्रकाशित हुए थे और काका साहब के संरक्षण में प्रकाशित हिन्दी-पत्रों में तो आप प्रायः लिखा ही करती थीं। आपकी 'गोपी हृदय', 'नाश्ते से पहले' और 'सुनिये काका साहेब' नामक हिन्दी पुस्तकें आपके हिन्दी-प्रेम का उत्कृष्ट तथा उदात्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

आपका निधन 17 मई सन् 1975 को हुआ था।

श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे

श्री गर्देजी का जन्म 6 नवम्बर सन् 1883 को काशी के पत्थर गली नामक मोहल्ले में हुआ था। आपका परिवार महाराष्ट्र से काशी आया था और वहाँ आपकी कुछ पैतृक सम्पत्ति थी। काशी की 'आँग्रे का बाड़ा' की महाराष्ट्रीय पाठशाला में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई थी। इसके उपरान्त आपने वहाँ के क्वीन्स कालिजिएट स्कूल, मैकडानल हाई स्कूल और सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल से क्रमशः आठवीं, नवीं और दसवीं कक्षाओं की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अभी आपने 'सेण्ट्रल हिन्दू कालेज' की इण्टरमीडिएट कक्षा में प्रवेश ही लिया था कि महात्मा गान्धी द्वारा 'असहयोग आन्दोलन' प्रारम्भ हो गया और

आप उसमें सर्वात्मना संलग्न हो गए। यही घटना है जिसने गर्देजी का जीवन बदल दिया और हिन्दी को ऐसा समक्त तथा सम्त पत्रकार मिला। आधुनिक काल की हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में जिस 'त्रिमूर्ति' का स्मरण गौरव के साथ किया जाता है उसमें अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और बाबूराव विष्णु पराड़कर के साथ लक्ष्मणनारायण गर्दे का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गर्देजी ने अपना पत्रकारिता का जीवन सर्वप्रथम बम्बई के 'वेंकटेश्वर समाचार' नामक पत्र से प्रारम्भ किया था। यह एक संयोग की ही बात है कि आप गए तो थे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की उग्र राजनीति से प्रभावित होकर उनके मराठी 'केसरी' में काम करने के लिए, किन्तु उनके अचानक मांडले की जेल में चले जाने के कारण परिस्थितिवश लोकमान्य के अनन्य साथी श्री माधव राजाराम बोडस के आग्रह और अनुरोध पर आपको 'वेंकटेश्वर समाचार' में काम करने को विवश होना पड़ा था। जब आपको 'वेंकटेश्वर समाचार' के तत्कालीन सम्पादक श्री चन्दूलालजी से मिलाया गया तब उन्होंने आपके बंगला भाषा के ज्ञान से प्रभावित होकर गर्देजी को बंगला के एक पत्र का हिन्दी अनुवाद करने को दिया। आपके अनुवाद को देखकर उन्होंने कहा—"आपका काम बहुत आशाजनक है और आज से आप यहीं काम कीजिए।" परन्तु गर्देजी भारत की तत्कालीन राजनीति में लोकमान्य द्वारा प्रवर्तित विचार-धारा के अनन्य अनुयायी थे और उनके पास रहकर ही काम करने के विचार से पूना गए थे, इसलिए आपका मन 'वेंकटेश्वर समाचार' में नहीं लगा और आप वहाँ पर केवल 7 दिन कार्य करने के अनन्तर ही थाना और पूना की यात्रा करके काशी लौट आए।

जब आप बम्बई गए थे तब आपका दूसरा विवाह हो चुका था। पहला विवाह बहुत बचपन में ही हुआ था और पत्नी मर चुकी थी। आपकी दूसरी पत्नी हिन्दी के पुराने पत्रकार और कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले बंगला के 'हितवादी' नामक पत्र के ख्याति-प्राप्त सम्पादक श्री सखाराम गणेश देउस्कर की पुत्री थीं। बम्बई की यात्रा करने के उपरान्त गर्देजी अपने श्वसुर श्री देउस्कर जी तथा पराड़करजी की प्रेरणा पर कलकत्ता चले गए और वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'बंगवासी' नामक हिन्दी पत्र में सहकारी सम्पादक हो गए। उन दिनों 'बंगवासी' के प्रधान सम्पादक श्री हरिकृष्ण जौहर थे, जिन्होंने अनेक वर्ष तक 'वेंकटेश्वर समाचार' का सम्पादन भी सफलतापूर्वक किया था। वहाँ पर काम करते हुए गर्देजी को अभी कुछ ही दिन बीते थे कि अपने अक्खड़ स्वभाव के कारण आपने 'बंगवासी' छोड़ दिया और 'भारत मित्र' में कार्य करने लगे। 'भारत मित्र' में कार्य करते हुए ही आपने 'महाराष्ट्र रहस्य' नाम से एक लेखमाला उसमें चलाई थी, जो बाद में पुस्तक रूप में प्रकाशित भी हो गई थी। इस पुस्तक में गर्देजी ने शिवाजीकालीन महाराष्ट्र के शासन की दार्शनिक मीमांसा करके मराठा साम्राज्य के अभ्युदय की कहानी वर्णित की थी। यह एक संयोग की ही बात थी कि गर्देजी की इस लेखमाला की चर्चा बंगाल के 'मार्डन रिव्यू' आदि अनेक पत्रों में खुलकर हुई थी। गर्देजी की सफलता का द्वार इससे उद्घाटित हुआ और आप धीरे-धीरे, किन्तु दृढ़तापूर्वक अपने मार्ग को प्रशस्त करते गए। अभी आप 'भारत मित्र' में ठीक तरह जमे भी नहीं थे कि अपने स्वाभिमानी स्वभाव के कारण आपको वहाँ से भी विदाई लेनी पड़ी।

इसके उपरान्त आपने कुछ दिन तक कलकत्ता की प्रख्यात शिक्षा-संस्था 'विशुद्धानन्द विद्यालय' में शिक्षक का कार्य भी किया। वहाँ पर कार्य करते हुए आपकी भेंट एक कनफटे साधु से हो गई, जिनके सम्पर्क में आकर आप आध्यात्मिकता की ओर झुके और 18 दिन में गीता के 18 अध्यायों का पारायण किया। आपकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने इतना जोर मारा कि आप 'विशुद्धानन्द विद्यालय' से भी त्यागपत्र देकर काशी चले गए। अपने काशी-निवास के दिनों में आपने 'गीता' के अध्यात्म-दर्शन की व्याख्या 'सरल गीता' नाम से की; जो उसकी टीका न होकर स्वतन्त्र चिन्तन का आधार प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक की उपयोगिता इसी बात से प्रमाणित होती है कि भारत-भक्त श्री

सी० एफ० एण्ड्रूज ने प्रवासी भारतीयों में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिए इसकी काफी प्रतियाँ दक्षिण अफ्रीका भेजीं। आपने लगभग दो वर्ष तक काशी के 'हरिश्चन्द्र स्कूल' में अध्यापन का कार्य भी किया था। प्रख्यात दार्शनिक और राजनेता डॉ० सम्पूर्णानन्द और नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संस्थापकों में से एक श्री रामनारायण मिश्र भी उसी विद्यालय में शिक्षक का कार्य करते थे।

अध्यापन-कार्य करते हुए श्री गर्देजी ने अपने मित्र श्री गणपतिकृष्ण गुर्जर के सहयोग से 'ग्रन्थ-प्रकाशक समिति' नामक एक संस्था की स्थापना की और उसकी ओर से दो ग्रन्थ अपने तथा दो ग्रन्थ श्री गुर्जरजी के प्रकाशित किए। गुर्जरजी की पुस्तकें शैक्सपियर के 'हैमलेट' और टालस्टाय के कुछ लेखों का अनुवाद था और गर्देजी की 'सरल गीता' तथा 'महाराष्ट्र रहस्य' वाली लेखमाला थी। आपकी 'सरल गीता' नामक पुस्तक की प्रशंसा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पंडित भीमसेन शर्मा और पराडकरजी ने मुक्त कण्ठ से की थी। इन्हीं दिनों आपने गणपति कृष्ण गुर्जरजी के सहयोग से 'नवनीत' नामक एक मासिक पत्र भी काशी से निकाला था, जो दो-ढाई वर्ष चलकर बाद में आर्थिक कारणों से बन्द हो गया।

यह बात कदाचित् बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि हिन्दी की प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्था 'ज्ञानमण्डल' की स्थापना करने और उसका भावी कार्यक्रम बनाने वाले श्री शिवप्रसाद गुप्त के सर्वाग्रणी साथी श्री गर्देजी ही थे। ज्ञानमण्डल की ओर से प्रकाशित होने वाले हिन्दी दैनिक 'आज' के आदि सम्पादक श्री श्रीप्रकाश उन दिनों प्रयाग से प्रकाशित होने वाले अँग्रेजी दैनिक 'लीडर' के सहकारी सम्पादक थे। श्री रामदास गौड़ भी दूर थे। बाद में यह त्रिमूर्ति इकट्ठी हो गई और 'ज्ञानमण्डल' का कार्य धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

सन् 1918 की दिल्ली-कांग्रेस में श्री गर्देजी की श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी से भेंट हुई और उन्होंने आपसे फिर 'भारत मित्र' का सम्पादन करने के लिए कलकत्ता चलने का अनुरोध किया। परिणामतः आप उनके अनुरोध को टाल न सके और साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों के सम्पादन से निकलकर आपने दैनिक का कार्य-भार सँभाल लिया। दैनिक पत्र का सम्पादन करना बड़ी कठिन समस्या थी। आपके दिन-रात परिश्रम करने से उसकी ग्राहक-संख्या तो बढ़ गई, परन्तु आपका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा। गर्देजी ने निरन्तर 6 वर्ष तक 'भारत मित्र' का सम्पादन किया, किन्तु जब 1925 में उसका स्वामित्व 'सनातन धर्म महामण्डल' के हाथ में चला गया और उसके अधिकारियों ने अपनी नीति गर्देजी पर लादनी चाही तो देश-भक्त गर्देजी को झुकना स्वीकार न था और एक अग्रलेख लिखकर आपने उसमें अपने 'त्यागपत्र' की बात प्रकाशित कर दी। 'भारत मित्र' छोड़ने के उपरान्त आपने कलकत्ता के श्री चुन्नीलाल बर्मन के सहयोग से 'श्रीकृष्ण सन्देश' नामक एक साप्ताहिक प्रकाशित किया, किन्तु उसमें घाटा होने पर उसे बन्द करके श्री बैजनाथ केडिया के 'विजय' साप्ताहिक का आप सम्पादन करने लगे। पर्याप्त ग्राहक संख्या न हो पाने के कारण वह पत्र भी न चल सका और आप सन् 1931 में काशी लौट आए।

काशी आकर आपने स्वतन्त्र लेखन को ही अपना आधार बनाया और समय-समय पर गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले कल्याण के 'योगांक', 'सन्तांक', 'वेदान्तांक' और 'साधनांक' सरीखे सुप्रसिद्ध विशेषांकों के सम्पादन में भी महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। गीता प्रेस गोरखपुर से ही अँग्रेजी में प्रकाशित होने वाले 'कल्याण कल्पतरु' में आपके अनेक लेख प्रकाशित हुए थे। गीता प्रेस के अतिरिक्त श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी से भी गर्देजी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। श्री अरविन्द के 'योग प्रदीप' और 'गीता प्रबन्ध' नामक ग्रन्थों के अनुवाद भी आपके ही किये हुए हैं। आपके द्वारा अनूदित 'ज्ञानेश्वर' 'एकनाथ' और 'तुकाराम' के चरित्र भी गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हुए हैं। आपके 'नकली प्रोफेसर' और 'मियाँ की करतूत' नामक उपन्यास भी अत्यन्त लोकप्रिय रहे है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त 'श्रीकृष्ण चरित्र', 'एशिया का जागरण', 'गान्धी-सिद्धान्त', 'आरोग्य और उसके साधन', 'श्री अरविन्द योग' तथा 'जेल में चार मास' आदि आपकी पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त गर्देजी के अनेक साहित्यिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा संस्मरणात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं।

सन् 1947 में जब लखनऊ से 'नवजीवन' दैनिक का

प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तब उसके प्रथम सम्पादक श्री गर्देजी ही बनाए गए। नीतिविषयक किसी उलझन के कारण आपको वहाँ से त्यागपत्र देना पड़ा, किन्तु आप झुके नहीं। ऐसी ही एक क्रान्तिकारी घटना का उल्लेख हम यहाँ करना चाहेंगे। भारत-विभाजन के उपरान्त जब 16 अगस्त सन् 1948 से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्वावधान में दिल्ली से 'भारतवर्ष' नामक हिन्दी दैनिक के प्रकाशन का उपक्रम किया गया तब उसके सम्पादन के लिए श्री गर्देजी को काशी से बुलाया गया। परन्तु प्रथम अग्रलेख में ही किसी प्रकार का परिवर्तन स्वीकार न करने के कारण आप उल्टे काशी लौट गए। अग्रलेख के जिस वाक्य को बदलने की माँग संचालक-मण्डल की ओर से की गई थी वह इस प्रकार था—"जिन तत्वों के कारण महात्मा गांधी की हत्या हुई है; मैं उनको चेतावनी देना चाहता हूँ कि वे हिंसक कार्य से पृथक् रहें।" जब आपसे इसके संशोधन की बात कही गई तो आपने यही कहकर अपने स्वाभिमान की रक्षा की—"अब हमारी सीखने की उम्र नहीं रही। हमें वापस काशी भेज दो।" बहुत ही गिरी हुई आर्थिक स्थिति के होते हुए भी आपने उस समय 600 रुपए की नौकरी को ऐसे लात मार दी, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

पत्रकारिता के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में भी आपका योगदान कम नहीं था। आपने जहाँ अपने आध्यात्मिक प्रवचनों से जनता के मानस में सांस्कृतिक भावना का संचार किया था वहाँ आप कलकत्ता जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी रहे थे और इसी कारण आपको जेल-यात्राएँ भी करनी पड़ी थीं। आप जहाँ 'बिहार पत्रकार सम्मेलन' तथा 'काशी पत्रकार संघ' के अध्यक्ष रहे थे वहाँ 'राष्ट्रकवि परिषद् काशी' के प्रधान पद को भी आपने सुशोभित किया था। गर्देजी के पूर्वज महाराष्ट्र के 'रत्नागिरि' जिले के 'तेरे' नामक ग्राम के निवासी थे। आपका देहावसान 23 जनवरी सन् 1960 को काशी में हुआ था।

श्री लक्ष्मीदत्त सारस्वत

श्री सारस्वतजी का जन्म सन् 1907 में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के बिसवाँ नामक नगर में हुआ था। अपनी शिक्षा समाप्त करके आपने बिसवाँ में 'आदर्श रंगमंच' नामक संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा अनेक नाटकों का मंचन कराया था। वे नाटक स्वयं आपके द्वारा लिखे हुए होते थे। आपकी अधिकांश रचनाओं में धार्मिक इतिहास की सुरक्षा पर बल होने के साथ-साथ सहकारिता-आन्दोलन को आगे बढ़ाने की प्रेरणा भी दी गई है।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'गोला गोकर्णनाथ माहात्म्य' (1949), 'श्री मंशाराम माहात्म्य' (1952), 'सरौयका देवी का माहात्म्य' (1952) तथा 'चमखरि की सती' (1954) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 27 दिसम्बर सन् 1978 को हुआ था।

श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी

श्री वाजपेयीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद के मैथा नामक ग्राम में सन् 1886 में हुआ था। मिडिल तक की शिक्षा प्राप्त करके आपने मसवानपुर तथा कानपुर के स्कूलों में अध्यापन का कार्य किया था। फिर साहित्यिक बनने की झख में आपने अनेक कठिनाइयों में स्वाध्याय बढ़ाते हुए अपना मार्ग प्रशस्त किया। बाबू श्यामसुन्दरदास का पत्र लेकर आप श्री माधवराव सप्रे के पास नागपुर पहुँचे और वहाँ पर उनकी 'हिन्दी पुस्तकमाला' में कार्य करते हुए मराठी तथा अँग्रेजी का अच्छा अभ्यास किया। इसके उपरान्त जब सप्रेजी ने 'हिन्दी केसरी' निकाला तब आपको उन्होंने अपना सहकारी बनाया। सप्रेजी की गिरफ्तारी के

उपरान्त आप 'केसरी' के पूर्ण सम्पादक हो गए और उसे सफलतापूर्वक प्रकाशित करते रहे।

'हिन्दी केसरी' के अतिरिक्त आपने पूना के चित्रशाला प्रेस की ओर से प्रकाशित होने वाले 'चित्रमय जगत्' का सम्पादन भी कई वर्ष तक सफलतापूर्वक किया था। 'चित्रमय जगत्' का सम्पादन करने से पूर्व जब 'हिन्दी केसरी' बन्द हुआ था तब आप श्री सप्रेजी के साथ रामदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होकर 'माधवानुज' के नाम से उनके आश्रम में रहे थे। वहाँ रहते हुए आपने महाराष्ट्र के सन्तों के साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था और उससे सम्बन्धित कई पुस्तकें भी लिखी थीं। यहीं पर आपने सप्रेजी के सहयोग से मराठी के विशिष्ट ग्रन्थ 'दासबोध' तथा कालिदास के 'मेघदूत' के छन्दोबद्ध अनुवाद भी किए थे।

जिन दिनों आप नागपुर में 'हिन्दी केसरी' का सम्पादन करते थे तब आपका सम्बन्ध अनेक क्रान्तिकारी आन्दोलनों से हो गया था। परिणामतः जब सी० आई० डी० पुलिस आपकी ओर सन्देह की दृष्टि से देखने लगी और आपकी तलाश तेजी से होने लगी तब आप गेरुए वस्त्र धारण करके 'सर्वानन्द' हो गए और आगरा में आकर 'आर्यमित्र' का सम्पादन इसी नाम से करने लगे। आगरा में आकर भी आपका पिण्ड उन क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों ने नहीं छोड़ा और आपका घर क्रान्तिकारियों का अड्डा बन गया। परिणाम-स्वरूप आप गिरफ्तार कर लिये गए और अनेक वर्ष तक कारावास में रहे।

जेल से वापस लौटकर आपने इलाहाबाद को अपना केन्द्र बनाकर वहाँ 'तरुण भारत ग्रन्थावली' नामक एक संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा हिन्दी-प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। उन्हीं दिनों आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य मन्त्री भी रहे थे। अपनी इस प्रकाशन-संस्था के माध्यम से आपने जो पुस्तकें प्रकाशित की थीं उनका उन दिनों हिन्दी-जगत् में अच्छा स्वागत हुआ था। वाजपेयीजी स्वयं भी अच्छे लेखक थे और आपने धर्म, साहित्य, राजनीति, इतिहास तथा दर्शन आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित जो अनेक ग्रन्थ लिखे थे। उनमें से अधिकांश का प्रकाशन आपने अपनी इसी प्रकाशन संस्था की ओर से किया था। आप उग्र राजनीतिज्ञ, कट्टर समाज-सुधारक तथा गम्भीर प्रकृति के लेखक होने के साथ-साथ कुशल सम्पादक भी थे।

आपके द्वारा लिखित, अनूदित तथा सम्पादित ग्रन्थों की संख्या 50 के लगभग है। इन ग्रन्थों में 'मेघदूत' के अनुवाद के अतिरिक्त 'धर्म शिक्षा', 'गार्हस्थ्य शास्त्र', 'रानाडे', 'सदाचार और नीति', 'काव्य और संगीत', 'गैरीबाल्डी', 'वज्राघात', 'चाणक्य और चन्द्रगुप्त', 'इब्राहिम-लिंकन', 'विद्रोही राजकुमार', 'वीर राजपूत' तथा 'हिन्दी गद्य निर्माण' आदि प्रमुख हैं। इनमें आपकी 'धर्म-शिक्षा' नामक पुस्तक ही अकेली ऐसी है, जिसके अनेकों संस्करण हुए थे और उससे आपको पर्याप्त अर्थ-लाभ हुआ था। आपने सन् 1939 में प्रयाग से ही 'राष्ट्र मत' नामक एक साप्ताहिक भी निकाला था, जो कई वर्ष तक सफलतापूर्वक प्रकाशित हुआ था। कुछ दिन तक आपने श्री कृष्णकान्त मालवीय की 'मर्यादा' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया था।

आपका निधन सन् 1953 में हुआ था।

श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म 5 सितम्बर सन् 1902 को हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता श्रीनारायणदास शर्मा (ओझा) वहाँ के प्रतिष्ठित धार्मिक व्यक्ति थे। सन् 1920 में हैदराबाद के सिटी कालेज से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने बम्बई के डावर्स कालेज ऑफ कामर्स से अकाउंटेंसी, बैंकिंग और मर्कण्टाइल लॉ में डिप्लोमा प्राप्त करके महालेखा-कार्यालय में लेखा-परीक्षक का कार्य प्रारम्भ किया था और 'हैदराबाद स्टेट बैंक' के अधीक्षक पद से

सेवा-निवृत्त हुए थे।

इन शासकीय कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी आप नगर की सभी सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में बराबर भाग लेते रहते थे। आपने हैदराबाद में श्रीकृष्ण शुद्धाद्वैत मण्डल की स्थापना करके उसकी ओर से 'महाप्रभु श्रीमद्-वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग' (1975) नामक ग्रन्थ का प्रकाशन कराया था। आपकी अन्य प्रकाशित रचनाओं में 'सारस्वत वंश दीपिका' तथा 'रामायण कथा हार' (1979) प्रमुख हैं।

आपने हैदराबाद नगर में 'सनातन धर्म संस्कृत हिन्दी-विद्यालय की स्थापना करने के अतिरिक्त अनेक स्थानों पर अनेक रात्रि-पाठशालाओं और रामायण-सत्संग-मण्डलों की स्थापना भी की थी।

आपका निधन 22 अप्रैल सन् 1980 को हुआ था।

आपका कार्य-क्षेत्र सन् 1930 से ही सीतापुर (उत्तर प्रदेश) रहा था। सीतापुर के राष्ट्रीय महाविद्यालय में आप महाजनी के अध्यापक थे। आप 'सुकवि-मण्डल' के अत्यन्त ख्याति-प्राप्त कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। आपकी वीररसपूर्ण रचनाओं के कारण आपको 'कवि-केहरी' की उपाधि भी प्रदान की गई थी।

यद्यपि आपने 40 से अधिक ग्रन्थों की रचना की थी, किन्तु उनमें 'हिन्दुत्व', 'संचयिता', 'श्याम बावनी', 'कवि और क्रान्ति', 'पेमासिंह' तथा 'जन्मभूमि' आदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आपने 'शिशुपाल वध','नेताजी सुभाष' तथा 'कमलापति-नेहरू' नामक 3 महाकाव्य भी लिखे हैं।

आपका निधन 21 जून सन् 1973 को हुआ था।

श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा 'कृपाण'

श्री 'कृपाण' जी का जन्म हरियाणा प्रदेश के भिवानी नामक नगर में सन् 1886 में हुआ था। आप हिन्दी के सुकवि होने के साथ-साथ उद्‌भट देश-भक्त भी रहे थे। आपने अनेक बार देश की स्वाधीनता के लिए 'कारावास' की यात्राएँ भी की थीं। साहित्य तथा कविता के प्रति प्रेम आपको अपनी पारिवारिक परम्परा से मिला था। अपने अध्ययन-काल में ही आप अच्छी काव्य-रचना करने लगे थे।

आपकी रचनाओं में राष्ट्रीयता का जो स्वर मुखरित हुआ है वह आपकी उसी देश-भक्ति तथा कर्त्तव्य-निष्ठा का द्योतक है जो उनमें शैशवावस्था से कूट-कूटकर भरी हुई थी। यद्यपि आपका जन्म हरियाणा में हुआ था, किन्तु

श्री चल्ला लक्ष्मीनारायण शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म आन्ध्र प्रदेश के गुंटूर जिले के 'दंतुलूर अग्रहारम्' नामक ग्राम के एक साधारण ब्राह्मण-परिवार में 7 जनवरी सन् 1903 को हुआ था। पारिवारिक कठिनाइयों में रहते हुए भी आपने हिन्दी का गहन ज्ञान प्राप्त करके उसमें ऐसी योग्यता प्राप्त की कि आप उसमें क्षमता के साथ कविता करने लगे थे। श्री शिवन्न शास्त्री-जैसे प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान् के साहचर्य ने आपको हिन्दी की ओर उन्मुख किया और आपने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत के काव्यों का भी विधिवत् पारायण किया।

मातृभाषा होने के कारण तेलुगु भाषा के तो आप पारंगत विद्वान् थे ही। आपने जिन अनेक हिन्दी कृतियों का तेलुगु भाषा में अनुवाद किया था उनमें 'बिहारी सतसई' प्रमुख

है। आपने तमिल भाषा की उत्कृष्टतम कृति 'तिरुक्कुरल' का भी तेलुगु में अनुवाद किया था। आप हिन्दी के भी उत्कृष्टतम कवि थे। इधर आपके देहान्त के उपरान्त आपके सुपुत्र डॉ०सी०आर० शर्मा ने आपकी हिन्दी की उत्कृष्टतम सूक्ति कविताओं का एक संकलन 'मोतियों का हार' नाम से प्रकाशित किया है। इस संकलन में शास्त्रीजी ने कबीर, रहीम, वृन्द और मतिराम-जैसे हिन्दी के उच्चकोटि के प्राचीन कवियों द्वारा प्रदर्शित नीति-काव्य-परम्परा का ही निर्वहण किया है। शास्त्रीजी आंन्ध्र प्रदेश के उन विद्वान् साहित्यकारों में थे जिन्होंने हिन्दी का ज्ञान पूर्ण निष्ठा एवं भक्ति के साथ प्राप्त किया था और उसकी सेवा में जीवन-भर लगे रहे थे।

आपका निधन 24 नवम्बर सन् 1968 को हुआ था।

श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र आर्य

श्री आर्यजी का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के रावतपुर टिकोली नामक ग्राम में सन् 1865 को हुआ था। आपके पिता श्री देवीदत्त मिश्र आर्यसमाज के निष्ठावान् अनुयायी थे। आपने अपनी जन्मभूमि रावतपुर में संस्कृत का सर्वांगीण अध्ययन कराने के निमित्त एक ऐसी पाठशाला खोली थी जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित प्रणाली पर शिक्षा दी जाती थी। आपने 'यज्ञे पशु-बलि वेद विरुद्धः' नामक पुस्तक तथा 'श्रीमद्दयानन्द चरितामृतम्' नामक काव्य की रचना भी की थी।

श्री लक्ष्मीशंकर को अपने धर्मनिष्ठ पिता से जो संस्कार मिले थे उन्हींके कारण हैदराबाद के सामाजिक जीवन में आपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। आपने आर्य-समाज सुलतान बाजार में पौरोहित्य का कार्य करते हुए अपने पिताजी द्वारा प्रणीत संस्कृत-काव्य 'दयानन्द चरितामृतम्' का हिन्दी अनुवाद भी किया था। इसका प्रकाशन सन् 1935 में 'भाग्यनगरी राजस्थान मुद्रणालय' हैदराबाद द्वारा हुआ था। आपके द्वारा निर्मित 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' की व्याख्या आज भी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में निर्धारित है।

आपका निधन 4 अप्रैल सन् 1957 को हुआ था।

श्री लक्ष्मीप्रसाद तिवारी

श्री तिवारीजी का जन्म मध्यप्रदेश के बलौया बाजार नामक स्थान में सन् 1880 में हुआ था। आप छत्तीसगढ़ अंचल के प्रमुख जमींदारों में थे। आपने अपना एक गाँव अचानकपुर 'लक्ष्मीनारायण मन्दिर' के निर्माण के लिए अर्पित कर दिया था। समाज-सुधार के कार्यों में आपकी बहुत रुचि रहती थी। आपने सन् 1900 में अपनी जमींदारी के हरिजनों को 'यज्ञोपवीत' धारण कराए थे। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार करने में आपने अग्रणी कार्य किया था। आपने स्वाधीनता-आन्दोलन में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था और अनेक बार जेल-यात्राएँ की भी थीं।

आपका निधन सन् 1970 में हुआ था।

मेहता लज्जाराम शर्मा

श्री मेहताजी का जन्म बूंदी (राजस्थान) के एक गुजराती ब्राह्मण-परिवार में सन् 1863 में हुआ था। आपके जन्म के सम्बन्ध में यह सर्वविदित तथ्य है कि ईश्वरीय नियम के विपरीत आप माता के गर्भ में 9 मास के बजाय 18 मास तक रहे थे। इसका उल्लेख मेहताजी ने अपनी 'आत्मकथा' में इस प्रकार किया है—"यह ठहरी हुई बात है कि बिना किसी बीमारी के प्रकृति के नियत समय के अतिरिक्त बालक गर्भ में निवास नहीं कर सकता। मैं 18 मास तक गर्भ में रहा। इसके लिए मेरी माता कभी-कभी कुछ कहा भी करती थीं, किन्तु इतना निश्चय है कि मेरी बीमारी ने मेरे

साथ-साथ ही जन्म ग्रहण किया था। जन्म से लेकर आज तक के चौंसठ वर्षों का अधिक भाग मेरा बीमारी-ही-बीमारी में व्यतीत हुआ है।" आपके जीवन में एक बात और नई थी है, आप दाहिने हाथ की बजाय बाएँ हाथ से ही लिखा करते थे। आपका बचपन का नाम 'लल्लू' था, जो कालान्तर में विद्यालय में जाने पर 'लज्जाराम' हो गया था।

यद्यपि आपकी मातृभाषा गुजराती थी, किन्तु हिन्दी-भाषा के प्रचार तथा प्रसार के लिए आपने अपना समस्त जीवन ही खपा दिया था। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई थी और गुजराती के अतिरिक्त आपने हिन्दी, संस्कृत तथा अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपके पिता श्री गोपालराम नौकरी की तलाश में सन् 1854 के आस-पास बूँदी आए थे। इससे पूर्व आपके पितामह श्री गणेशराम जी कुछ समय तक अनूपशहर (बुलन्दशहर) भी रहे थे और वहाँ रहते हुए उन्होंने व्यापार भी अत्यन्त सफलतापूर्वक किया था। अनूपशहर में आपके परिवार की उन दिनों अच्छी ख्याति थी। बूँदी में क्योंकि आपके पिता राज्य की नौकरी में थे, अतः आपका परिवार भी स्थायी रूप से वहीं का निवासी हो गया था। आपके पिताजी ने सन् 1854 से सन् 1881 तक निरन्तर 27 वर्ष तक बूँदी राज्य की नौकरी अत्यन्त निष्ठापूर्वक की थी।

बाल्यावस्था से ही स्वाध्याय की प्रवृत्ति होने के कारण आप प्रायः पुस्तकों में खोए रहते थे। इस कारण आपको 'ग्रन्थ-चुम्बक' भी कहा जाता था। अपने निरन्तर के अभ्यास के कारण उन्हीं दिनों आपने 'मराठी' भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार अपनी मातृभाषा गुजराती के अतिरिक्त आपने संस्कृत, अँग्रेजी, हिन्दी तथा मराठी आदि भाषाओं में इतना नैपुण्य बना लिया था कि आप उनमें अपना कार्य-व्यवहार सरलतापूर्वक कर सकते थे।

प्रारम्भ में आपने अपने पिताजी के निधन के कारण सन् 1881 में एक कपड़े की दुकान पर नौकरी की थी और बाद में एक सरकारी स्कूल में अध्यापक हो गए थे। इस बीच आपने अपने गुरुदेव श्री गंगासहायजी के आग्रह से बूँदी के राजकीय प्रेस से 'सर्वहित' नामक एक पाक्षिक पत्र सन् 1890 में प्रकाशित कराया और लगभग 6 वर्ष तक उसका सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। यहाँ पर भी आपका मन अधिक समय तक नहीं जम सका और आप बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी सम्पादक होकर वहाँ चले गए। उन दिनों बाबू रामदास वर्मा 'वेंकटेश्वर समाचार के प्रधान सम्पादक थे। उस समय मेहताजी का वेतन केवल 35 रुपए मासिक निश्चित किया गया था। इसी बीच जब 'वेंकटेश्वर समाचार' की व्यवस्था कुछ बिगड़ गई और उसकी ग्राहक-संख्या कम होने लगी तो संचालकों की अनुमति से मेहताजी ने अपने एक सम्बन्धी श्री रामजीवन नागर को उसकी व्यवस्था ठीक करने के लिए वहाँ बुला लिया। जब व्यवस्था ठीक हो गई तो मेहता-जी उसके 'सम्पादक' पद पर प्रतिष्ठित हो गए। जिन दिनों मेहताजी ने यह कार्य-भार सँभाला था तब उसमें राजनीतिक विषयों तथा अन्य विश्व-रंगमंच की घटनाओं के समाचारों का सर्वथा अभाव रहता था और केवल धार्मिक तथा सांस्कृतिक समाचार ही छपा करते थे। मेहताजी ने कार्य सँभालते ही सारी रीति-नीति बदल डाली और उसमें देश की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का भी सम्यक् विवेचन होने लगा। आपने अपने सम्पादन-काल में उसमें प्रकाशित होने वाले लेखों का स्तर इतना उन्नत कर दिया था कि उस क्षेत्र के अधिकांश मराठी तथा गुजराती भाषाओं के प्रमुख पत्र भी 'वेंकटेश्वर समाचार' में प्रकाशित रचनाओं को अपने पत्रों में प्रकाशित करने लगे थे।

'वेंकटेश्वर समाचार' के माध्यम से मेहताजी ने जहाँ बम्बई-जैसे अहिन्दी-भाषी प्रदेश में हिन्दी का गौरव बढ़ाया वहाँ आपने अपनी अटूट लगन तथा अनन्य कर्मठता से उसे देश के प्रतिष्ठित पत्रों में एक उल्लेखनीय स्थान प्रदान किया। इसके अतिरिक्त अपने सम्पादन-काल में आपने ऐसे

अनेक साहित्यिक आन्दोलनों का भी सूत्रपात किया जिनके कारण उसकी ओर देश के सभी बुद्धिजीवियों का ध्यान आकर्षित हो गया और भारत के सभी अंचलों में उसका उत्सुकतापूर्वक स्वागत किया जाने लगा। आपने अपने सम्पादन-काल में पत्र के सब ग्राहकों को प्रत्येक वर्ष अच्छी-अच्छी उपहार-पुस्तकें देने की योजना भी चालू की थी। इस योजना के अन्तर्गत भेंट की गई सखाराम गणेश देउस्कर द्वारा मूल बंगला में लिखित 'देशेर कथा' का हिन्दी-अनुवाद 'देश की बात' तथा प्रख्यात विचारक बेकन के गम्भीर निबन्धों का हिन्दी-अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' नामक पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से पहली पुस्तक का अनुवाद श्री बाबूराव विष्णु पराडकर तथा दूसरी का अनुवाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया था। इस बीच पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आपको सन् 1905 की वसन्त पंचमी को निरन्तर 7 वर्ष तक कार्य करने के उपरान्त बम्बई छोड़नी पड़ी और आप वहाँ से आकर बूँदी राज्य की सेवा में लग गए। बूँदी में रहते हुए ही आपने जहाँ 'बूंदी का इतिहास' लिखा वहाँ अपने को पूर्णतः साहित्य की समृद्धि के लिए ही समर्पित कर दिया।

बम्बई में रहते हुए आपने जहाँ हिन्दी-पत्रकारिता के गौरव में अभिवृद्धि की थी वहाँ बूँदी आकर आपने अपनी प्रतिभा का सर्वांगीण परिचय दिया। आपकी ऐसी प्रतिभा के दर्शन आपके सभी ग्रन्थों को देखने से हो जाते हैं। आपने लगभग 23 ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें से 13 उपन्यास तथा अन्य ऐतिहासिक पुस्तकें हैं। काल-क्रम से आपकी मौलिक रचनाओं की सूची इस प्रकार है—**उपन्यास** : 'धूर्त रसिकलाल' (1898), 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' (1899), 'हिन्दू गृहस्थ' (1901), 'आदर्श दम्पति' (1902), 'सुशीला विधवा' (1907), 'बिगड़े का सुधार' (1907), 'विपत्ति की कसौटी' (1925) तथा 'आदर्श हिन्दू' तीन भाग (1915); **कहानी** : 'बीरबल विनोद' (1896); **शिल्प तथा कारीगरी** : 'भारत की कारीगरी' (1902); **इतिहास एवं चरित्र-ग्रन्थ** : 'विक्टोरिया-चरित्र' (1901), 'अमीर अब्दुर्रहमान' (1902), 'उम्मेदसिंह-चरित्र—बूँदी का इतिहास' (1912), 'जुझारू तेजा' (1915), 'पराक्रमी हाड़ाराव—बूँदी के हाडा-वंशी राजाओं का इतिहास' (1915), पं० गंगासहायजी का जीवन-चरित्र' (1928), 'औक्षणस् गोत्र का वंश-वृक्ष'; **आत्म-जीवनी** : 'आपबीती' (1833)। इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त आपने गुजराती से भी कुछ उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किए थे, जो इस प्रकार हैं—'विचित्र स्त्री चरित्र', 'धूर्त चरित्र', 'शराबी की खराबी', 'पन्द्रह लाख पर पानी' (1896) और 'कपटी मित्र' (1900)। मेहताजी ने अपनी लेखनी के द्वारा पत्रकारिता-क्षेत्र की अभिवृद्धि करने के साथ-साथ अपने उपन्यासों के माध्यम से साहित्य में समाज-सुधार की भाव-धारा का प्रचलन भी किया था। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-जैसे विवेकी समीक्षक ने अपने इतिहास में आपको 'उपन्यासकार' न मानकर केवल 'अखबार-नवीस' के निकृष्ट विशेषण से क्यों याद किया है?

यद्यपि 'वेंकटेश्वर समाचार' से अवकाश ग्रहण करके बूंदी वापस लौटने के उपरान्त आपने लेखन से संन्यास-सा ही ले लिया था, किन्तु 'कलकत्ता समाचार' के सम्पादक झाबरमल्ल शर्मा और 'माधुरी' के सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव के सतत अनुरोध के परिणामस्वरूप आपने फिर लेखनी सँभाल ली थी। उन दिनों में लिखे हुए आपके अनेक लेख 'माधुरी', 'सुधा', 'मनोरमा', 'वीणा', 'कल्याण' और 'सौरभ' आदि तत्कालीन अनेक मासिक पत्रों के अतिरिक्त 'कलकत्ता समाचार', 'हिन्दू संसार' और 'वेंकटेश्वर समाचार' आदि अनेक साप्ताहिक पत्रों की फाइलों में देखे जा सकते हैं।

आप स्वभाव से कितने विनम्र तथा संकोची थे इसका सुपुष्ट प्रमाण यही है कि जब सन् 1928 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिए 'माधुरी' के अप्रैल 1928 के अंक में उसके सम्पादक ने मेहताजी के नाम की संस्तुति की और देश के प्रायः सभी साहित्यकारों एवं मनीषियों ने एक स्वर से इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया तब मेहताजी ने स्पष्ट रूप से यह लिखकर क्षमा-याचना की थी—"सम्मेलन का सभापति ऐसा होना चाहिए जो साहित्य का पूर्ण विद्वान् होने के अतिरिक्त साल-भर तक सम्मेलन के सिद्धान्तों का प्रचार करने में सिद्धहस्त हो।...आपने मेरे-जैसे अकिंचन लेखक का नाम भी इस पद के योग्य विद्वानों में संयुक्त कर दिया है। यह आपका अनुग्रह है।...मैं क्षमा माँगकर निवेदन करता हूँ कि मुझे आजीवन

इस कोने में ही पड़ा रहने दीजिए।" और वास्तव में आप एकान्त में रहकर ही हिन्दी की सेवा करते रहे। आप हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पावन पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहा करते थे। इस सम्बन्ध में आपकी यह निश्चित धारणा थी—"अब वह समय अधिक दूर नहीं, जब देश में एक छोर से दूसरे छोर तक हिन्दी का सार्वजनिक डंका बजेगा, भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी अपनी-अपनी भाषाओं की उन्नति करते हुए एक तन्त्र से नत-मस्तक हो, हाथ जोड़े हुए हिन्दी की आरती करेंगे और इसकी छोटी बहन, या यदि कोई छोटी कहने से बुरा मानते हों तो बड़ी बहन उर्दू पास खड़ी हुई इसकी बलैयाँ लेगी, और राजभाषा अँग्रेजी अपने ठाठ, अपने गौरव, अपनी प्रतिभा और अपने आतंक को अपने हृदय-कोष में धारण किए हुए भी इसे फूलों की माला पहनाएगी।"

आपका निधन 29 जून सन् 1931 को हुआ था।

श्री ललित गोस्वामी

श्री गोस्वामीजी का जन्म 12 फरवरी सन् 1925 को मथुरा में हुआ था। आप आशुकवि पं० नन्दकिशोर शास्त्री (अध्यक्ष विद्या विभाग नाथद्वारा) के पौत्र एवं गोवर्धन भट्टजी के पुत्र थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा नाथद्वारा में सम्पन्न हुई थी और संगीत में आप विशेष प्रवीण थे। छोटी-सी अवस्था में स्वतन्त्रता संग्राम से प्रभावित होकर आपने राष्ट्रीयता-प्रधान रचनाओं का सर्जन आरम्भ किया था। धीरे-धीरे गद्य-पद्य-लेखन भी जारी रहा। 16वें वर्ष में 'दि ग्रेट शाहजहाँ थियेटर' में चले गए, जहाँ आगा हश्र के नाटकों में भाग लेने के अतिरिक्त अनेक नाट्य-विधाओं में पारंगति हासिल की। सन् 1947 से आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से आपके गीत प्रसारित होने आरम्भ हो गए थे। सन् 1948 में बरेली के कथावाचक पं० राधेश्यामजी के सम्पर्क में आए और 'ढोलक के गीत' नामक गीत-संग्रह की रचना की। 'ढोलक के गीत' का उद्देश्य यह था कि भारतीय परिवारों में विभिन्न उत्सवों पर गाए जाने वाले परम्परागत गीतों को संगीतबद्ध किया जाय। इसके बाद आप बम्बई चले गए जहाँ आकाशवाणी बम्बई और एच० एम० वी० के लिए अनेक गीत लिखे। एच० एम० वी० ने आपके लगभग दो दर्जन गीत रिकार्ड किये। जयपुर में आकाशवाणी की स्थापना के साथ ही आपने जयपुर को अपना स्थायी कार्य-स्थल बनाया। जब श्री उदयशंकर भट्ट जयपुर के आकाशवाणी केन्द्र पर थे तब उनके सान्निध्य में आपने आकाशवाणी जयपुर के माध्यम से जयपुर में सांस्कृतिक विकास का नया अध्याय आरम्भ किया। आकाशवाणी जयपुर के लिए आपने अनेक नाटक लिखे, जो कालान्तर में नेशनल प्रोग्राम के रूप में आकाशवाणी के सभी केन्द्रों से प्रसारित हुए। आपके प्रसिद्ध ध्वनि-नाटकों में 'चण्डीदास', 'दक्ष यज्ञ', 'एकलव्य', 'समाधिमिलन' तथा 'यशोधरा' काफी चर्चित व लोकप्रिय हुए। इससे पूर्व आपकी कृति 'मेरे गीत' आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली से प्रकाशित हो चुकी थी। इस पुस्तक में सौ गीत हैं, जिनकी समीक्षा भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा और उदयशंकर भट्ट ने पुस्तक के आरम्भ में की है। इन गीतों में मुख्यत: संयोग की कम और वियोग की स्थितियाँ अधिक हैं। लगभग सभी गीत अब भी आकाशवाणी से प्रसारित होते रहते हैं और श्रोताओं को रस-विभोर करते रहते हैं। सन् 1957 में आपने कश्मीर में आयोजित अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन में राजस्थान का प्रतिनिधित्व किया। आकाशवाणी से समय-समय पर

ललितजी की अनेक हास्य रचनाएँ भी प्रसारित हुईं, जो आपने 'बण्डल कवि' के नाम से लिखी थीं। प्रत्येक रविवार को आप आकाशवाणी जयपुर से इस नाम से हास्य व मनो-विनोद प्रधान रचनाएँ स्वयं पढ़ा करते थे। जयपुर से प्रकाशित होने वाले 'राष्ट्रदूत' दैनिक में 'बंडलजी' शीर्षक से एक स्तम्भ आपने आरम्भ किया था, जिसमें सम-सामयिक समस्याओं पर आप बराबर लिखते रहे थे।

आपका निधन 7 सितम्बर सन् 1960 को 35 वर्ष की अवस्था में जयपुर में हुआ था और अन्त तक आप अविवाहित ही रहे थे।

श्री ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित'

श्री ललितजी का जन्म उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद के मल्लावाँ नामक स्थान में सन् 1831 में हुआ था। आप कानपुर के 'रसिक समाज' के सभापति थे। इस समाज की स्थापना आपने सन् 1896 में की थी और हिन्दी की पुरानी काव्य-धारा के प्रमुख कवि तथा साहित्यकार श्री राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' भी इसके उपसभापति रहे थे।

इस संस्था की ओर से अप्रैल सन् 1897 में 'रसिक वाटिका' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन किया गया था और इसका मूल्य मात्र एक रुपया था। इसमें 'रसिक समाज' की पाक्षिक गोष्ठियों में पढ़ी जाने वाली कविताओं तथा समस्या-पूर्तियों के अतिरिक्त स्वतन्त्र रचनाएँ, लेख और साहित्यिक समालोचनाएँ नियमित रूप से प्रकाशित हुआ करती थीं।

आपकी प्रकाशित कृतियों में 'राम यश दर्पण' नाटक और 'दिग्विजय विनोद' के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं।

आपका निधन सन् 1901 में हुआ था।

श्री लाडलीप्रसाद सेठी 'दादा भाई'

श्री दादाभाई का जन्म सन् 1911 में इन्दौर में हुआ था। आप निष्ठावान साहित्यकार, पत्रकार, संगीत-मर्मज्ञ एवं सहृदय मानव थे। आदर और प्रेम के अतिरेक के कारण आप इन्दौर में 'दादाभाई' के नाम से जाने जाते थे। आपने 'मजदूर सन्देश' के सम्पादक के रूप में उस क्षेत्र में जो कार्य किया था वह अभिनन्दनीय था। आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक 'मजदूर कांग्रेस' के निष्ठावान कार्यकर्ता रहे और 'नेतागिरी' की बू से सर्वथा बचे रहे।

आप कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ एक सहृदय कवि भी थे। नगर की अनेक साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े रहने के कारण आप राजनीति तथा साहित्य के संगम से हो गए थे।

आपका निधन 27 अक्तूबर सन् 1978 को हुआ था।

श्री लालजीसिंह

श्री लालजीसिंह का जन्म 7 मई सन् 1933 को वाराणसी के ईश्वरगंगी नामक मोहल्ले में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा डी० ए० वी० कालेज तथा हरिश्चन्द्र कालेज में हुई थी और वहीं से विधिवत् एम० ए० (राजनीति शास्त्र) करने के उपरान्त आप आकाशवाणी की सेवा में संलग्न हो गए। अपने छात्र-जीवन में आपका अपने नगर की अनेक साहित्यिक,सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था।

आपकी सबसे पहली कृति 'भारतीय योजना पर्यवेक्षण'
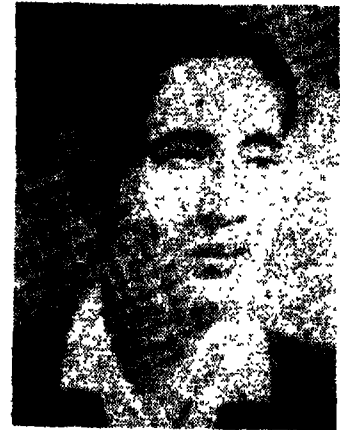
की भूमिका प्रख्यात साहित्यकार तथा राजनेता डॉ० सम्पूर्णानन्द ने लिखी थी। आपकी दूसरी रचनाओं 'साम्प्रदायिक विकास' तथा 'कृषि और आर्थिक क्रान्ति का माध्यम सहकारिता' का स्वागत भी हिन्दी-जगत् ने अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक किया था। आपने 'नदी के तट से' नामक एक उपन्यास की रचना भी की थी। इस उपन्यास में प्रेम और मानव-हृदय की भावनाओं का अच्छा मनोवैज्ञानिक विवेचन किया गया है। आप एक अच्छे संवेदनशील कवि भी थे। आपकी 'आमार सोनार बांग्ला देश' नामक कविता किसी समय बड़ी लोकप्रिय हुई थी।

आप आकाशवाणी के लखनऊ-केन्द्र में रहकर अपनी प्रतिभा का परिचय दे ही रहे थे कि असमय में 27 सितम्बर सन् 1971 को आपका दुःखद निधन हो गया।

श्री लालबहादुर शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुगलसराय (वाराणसी) नामक स्थान में 2 अक्तूबर सन् 1904 को हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा वाराणसी के हरिश्चन्द्र कालेज तथा काशी विद्यापीठ में हुई थी और अपने छात्र-जीवन के प्रारम्भ से ही आप राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगे थे। इस प्रसंग में अनेक बार जेल-यात्राएँ करने के साथ-साथ आपने लाला लाजपतराय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा श्री जवाहरलाल नेहरू आदि अनेक नेताओं के साथ रहकर निष्ठापूर्वक कार्य किया था।

आपने जहाँ लाला लाजपतराय के द्वारा संचालित 'कुमार आश्रम मेरठ' में अनेक वर्ष तक उसके व्यवस्थापक के रूप में सफलतापूर्वक कार्य किया था वहाँ आप दीर्घकाल तक राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के कार्यालय-सचिव भी रहे थे। आपने जहाँ उत्तर प्रदेश शासन में पुलिस-मन्त्री के रूप में लोकप्रियता का चरम-शिखर चूमा था वहाँ केन्द्र में आकर आपने अपनी बहुत-सी विशेषताओं को देश के सामने रखा। आपने एक ज़रा-सी दुर्घटना होने पर केन्द्रीय रेल मन्त्री का पद जिस सादगी के साथ छोड़ दिया था उससे आपकी लोकप्रियता को चार चाँद लगे थे। इसी प्रकार नेहरूजी के साथ गृह-मन्त्रालय का कार्य आपने जिस योग्यता तथा गम्भीरता से चलाया था उसे भी सब लोग जानते हैं।

राष्ट्रनायक पण्डित जवाहरलाल नेहरू के असामयिक देहावसान के उपरान्त जब सारे देश के समक्ष यह प्रश्न-चिह्न विकराल रूप में उपस्थित हो गया था कि नेहरूजी के बाद ऐसा कौन व्यक्ति है जो सभी को स्वीकार्य हो और देश का शासन दृढ़ता से चला सके। ऐसी विषम स्थिति में आपने देश के प्रधान मन्त्रित्व का भार अपने कन्धों पर लेकर थोड़े से समय में ही न केवल अनेक समस्याओं का समुचित समाधान खोजा, प्रत्युत 'भारत-पाक-संघर्ष' की संकटपूर्ण घड़ियों में देश को सही नेतृत्व प्रदान करके पाकिस्तान के शासकों को चुनौतीपूर्ण उत्तर देकर अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य का अभूतपूर्व परिचय दिया था।

यहाँ तक कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में भी आपकी मान्यता सर्वथा अद्वितीय और अनूठी थी। आप भारत की सभी भाषाओं के विकास के साथ-साथ हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की हार्दिक आकांक्षा रखते थे। आपकी ऐसी उदात्त भावनाओं का परिचय इन पंक्तियों से मिल जाता है—"हिन्दी भाषा बोलने वाले प्रदेश हिन्दी में सारा काम-काज करें। यहाँ तक कि केन्द्रीय सरकार से भी आप अपना पत्र-व्यवहार हिन्दी में करें। सरकार की यह नीति आज की नहीं बल्कि पहले से रही है। हिन्दी को बढ़ाने का बोझ हिन्दी-भाषी प्रदेशों को अपने ऊपर लेना चाहिए। किन्तु हिन्दी-भाषी प्रदेशों के लोगों को एक मिनट भी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, जिससे हिन्दी न जानने वाले प्रदेशों के लोगों के दिल को ठेस पहुँचे। अगर देश को एकता के सूत्र में जोड़े रखना है तो देश के लिए एक भाषा बहुत जरूरी है और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। अन्य भाषाओं की भी अपनी विशेषताएँ हैं।

हिन्दी उन भाषाओं के बीच एकता की वैसी ही कड़ी होगी, जैसे रूसी भाषा सोवियत संघ की जनता की भाषा है।"

शास्त्रीजी ने ऐसे विचार एकाधिक बार प्रकट किये थे। आप जहाँ उच्चकोटि के नेता थे वहाँ हिन्दी-लेखन में भी आपकी पर्याप्त रुचि थी। अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ में आपने हिन्दी में 'मादाम क्यूरी' की जीवनी लिखी थी, जो साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग से प्रकाशित हुई है।

यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि आपका असामयिक निधन 11 जनवरी सन् 1966 को उस समय रूस में हुआ था जबकि आप ताशकन्द गए हुए थे।

श्री लिंगराज मिश्र

श्री मिश्र का जन्म उड़ीसा प्रदेश के पुरी नामक नगर के समीपवर्ती एक ग्राम में सन् 1895 में हुआ था। आप उड़ीसा के प्रख्यात हिन्दी-प्रचारक श्री अनसूयाप्रसाद पाठक के अनन्य सहयोगियों में थे। आज उड़ीसा में हिन्दी-प्रचार का जो कार्य दृष्टिगत होता है उसका बहुत-कुछ श्रेय श्री मिश्र को है। अनेक वर्ष तक उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के मन्त्री के रूप में हिन्दी-प्रचार का जो कार्य आपने किया था वह सर्वथा अभिनन्दनीय है।

जिन दिनों आप उड़ीसा के शिक्षा मन्त्री के रूप में प्रतिष्ठित थे उन दिनों सभा को आर्थिक सहायता देने में आपने प्रशंसनीय भूमिका निभाई थी। इसके अतिरिक्त उड़ीसा के विद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन के कार्य को आगे बढ़ाने की दिशा में भी आपका कार्य सराहनीय था। वास्तव में उत्कल-प्रदेश के हिन्दी-प्रचार के कार्य में आपने नींव की ईंट का कार्य किया था।

आपने श्री अनसूयाप्रसाद पाठक के सहयोग से प्रेमचन्द की नारी-जीवन-सम्बन्धी कहानियों का उड़िया भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया था। उस प्रदेश की नारियों में इन कहानियों के माध्यम से हिन्दी-प्रचार का कार्य प्रचुर परिमाण में हुआ था।

आपका निधन सन् 1957 में हुआ था।

श्रीमती लेखवती जैन

श्रीमती लेखवती का जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के देवबन्द नामक नगर में सन् 1908 में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा बा० सूरजभान तथा महात्मा भगवानदीन की देख-रेख में हुई थी।

आपके पति श्री सुमतप्रसाद जैन अम्बाला के सुप्रसिद्ध वकील रहे हैं। आपका कार्य-क्षेत्र मुख्यतः राजनीति और समाज-सुधार का ही था, किन्तु हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार के कार्य में आप अग्रणी स्थान रखती थीं। 'हरियाणा हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की गतिविधियों को आगे बढ़ाने में आपका सक्रिय योगदान रहता था।
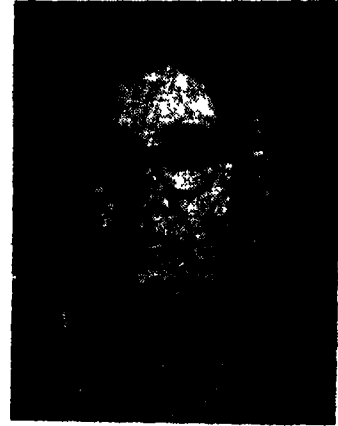
आप सर्वप्रथम सन् 1933 में 25 वर्ष की आयु में अविभाजित पंजाब की एम० एल०ए० चुनी गई थीं। आपको जैन जाति की 'सरोजिनी नायडू' कहा जाता था। आप कई वर्ष तक हरियाणा विधान-सभा की उपाध्यक्षा भी रही थीं। अपने इस कार्य-काल में आपने हरियाणा में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के निमित्त अनेक उपयोगी योजनाएँ प्रारम्भ की थीं।

आपका निधन सन् 1979 में हुआ था।

श्री लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी

श्री सिलाकारीजी का जन्म सन् 1904 में मध्य प्रदेश के सागर नगर के रामपुरा नामक मोहल्ले में हुआ था। आपके पिता पंडित नन्दीलालजी वेद, शास्त्र, दर्शन, पुराण तथा ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे और आपके पूर्वज बाजीराव पेशवा के शासन में मुख्य अधिकारी थे। आपके चाचा पंडित बलदेवप्रसाद संगीतज्ञ होने के साथ-साथ उच्च-कोटि के काव्य-शास्त्र-वेत्ता भी थे। उनके पास मध्यप्रदेश की पुरानी पीढ़ी के सभी साहित्यकारों का जमाव रहा करता था। उनमें आपस में होने वाली चर्चाओं का बालक लोकनाथ के मन पर ऐसा क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा कि केवल इण्टर तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप अध्यापन के क्षेत्र में चले गए और सन् 1924 से सन् 1944 तक आप 'नगरपालिका माध्यमिक शाला, सागर' में अध्यापक रहे। अपने इस अध्यापन-काल में धीरे-धीरे आपने अपने स्वाध्याय को बढ़ाया और एक दिन वह भी आया जब आपकी गणना हिन्दी के प्रमुख लेखकों में होने लगी।

आपकी साहित्यिक प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको 'ओरछा नरेश' ने अपने दरबार में प्रतिष्ठित पद प्रदान किया था, जिसे आप सन् 1958 तक सुशोभित करते रहे। आप मध्यप्रदेश के उन कतिपय लेखकों में हैं जिन्होंने हिन्दी को बहुविध रचनाएँ प्रदान की हैं। आपमें जहाँ एक उत्कृष्ट समीक्षक, इतिहासकार, नाटककार, टीकाकार तथा निबन्ध-कार के दर्शन होते हैं वहाँ आप उच्चकोटि के पत्रकार भी थे। आपकी समीक्षा-कृतियों में 'बिहारी दर्शन', 'हिन्दी शृंगार दर्शन', 'विश्वकवि तुलसीदास' और 'महाकवि रहीम' के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं। आपके नाटकों में जहाँ 'वीर ज्योति' और 'राजा हरदौल' के नाम स्मरणीय हैं वहाँ आपने 'दुलारे दोहावली' तथा 'साहित्य सागर' नामक ग्रन्थों की विस्तृत समीक्षात्मक भूमिकाएँ लिखकर अपने काव्यशास्त्रीय ज्ञान का उत्कृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त आपके द्वारा रचित 'हिन्दी व्याकरण कौमुदी' का नाम भी विशेष रूप में ध्यातव्य है। इनके अतिरिक्त आपकी 'मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य का इतिहास' 'बुन्देली भाषा का उद्गम विकास और व्याकरण' 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' तथा 'सागर सुषमा' नामक ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आप जहाँ उच्चकोटि के काव्य-मर्मज्ञ तथा इतिहास-वेत्ता थे वहाँ पत्र-सम्पादन की दिशा में भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था। जबलपुर से प्रकाशित होने वाली श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'प्रेमा' के 'शृंगार रस विशेषांक' का सम्पादन आपने ही किया था। सामग्री-संचयन की दृष्टि से यह विशेषांक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। आपने अपनी जाति के पत्र 'भृगु' का सम्पादन भी कुछ दिन तक सन् 1926-27 में किया था। यह आपकी साहित्यिक प्रतिभा का ही सुपुष्ट प्रमाण है कि सागर विश्वविद्यालय ने जब सन् 1958 में अपने हिन्दी विभाग के अन्तर्गत 'बुन्देलखण्डी विभाग' का प्रारम्भ किया था तब आपको ही सर्वप्रथम वहाँ 'शोध-विशेषज्ञ' के पद पर नियुक्त किया गया था। अपने इसी काल में आपने जहाँ अनेक उपयोगी कार्य किए वहाँ इस विभाग से बुन्देलखण्डी की बहुत-सी अनुपलब्ध सामग्री को भी उपलब्ध कराने का उपक्रम किया था।

आपका निधन सन् 1969 में हुआ था।

श्री वंशीधर थानवी

श्री थानवीजी का जन्म सन् 1903 में राजस्थान के जैसल-मेर नामक नगर के पुष्करणा ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। सन् 1917 में छोटी-सी उम्र में ही आपने 'पुष्करणेन्द्र' नामक मासिक पत्र का सफल सम्पादन किया था। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर बीकानेर के प्रसिद्ध सेठ श्री शिव-

रतन मोहता ने अपने बच्चों की पढ़ाई का सब भार आपको ही सौंप दिया था।

आपके व्यंग्य लेखों को 'पुष्करणा ब्राह्मणोपकारक' पत्र में 'यत्र तत्र सर्वत्र' नामक स्तम्भ में ससम्मान स्थान मिलता था। सन् 1965 से सन् 1973 तक आप 'पुष्करणा सन्देश' के सम्पादक-मण्डल के सदस्य भी रहे थे।

जिस समय जोधपुर के प्रख्यात 'छीतर पैलेस' के निर्माण का ठेका सेठ शिवरतन मोहता को मिला था तब आपने ही जोधपुर में उनका प्रतिनिधित्व किया था।

आपका निधन सन् 1975 में हुआ था।

श्री वंशीधर मिश्र

श्री वंशीधर मिश्र का जन्म 2 जनवरी सन् 1902 को उत्तर प्रदेश के लखीमपुर(खीरी)नामक नगर में हुआ था। एम०ए०, एल-एल० बी० तक की शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त आप अनेक वर्ष तक उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सक्रिय कार्यकर्ता रहे। आपने जहाँ कई वर्ष तक लखीमपुर की नगरपालिका के अध्यक्ष के रूप में सफलतापूर्वक कार्य किया वहाँ जिला कांग्रेस कमेटी, उत्तर प्रदेश किसान संघ और गान्धी विद्यालय के भी अध्यक्ष रहे। स्वतन्त्रता के उपरान्त आप विधान-निर्मात्री-परिषद् के सदस्य रहे और फिर पहले सार्वजनिक चुनाव में उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य मनोनीत हुए। आप अनेक वर्ष तक उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रधानमन्त्री एवं उपाध्यक्ष भी रहे थे।

आप जहाँ उच्चकोटि के समाज-सेवक थे वहाँ साहित्यिक क्षेत्र में भी अपनी विशिष्टता रखते थे। आपने 'लोकमत' और 'जनसेवक' नामक साप्ताहिक पत्रों का सम्पादन करने के साथ-साथ अनेक पुस्तकों का निर्माण भी किया था। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'गणित चमत्कार', 'सुगृहिणी', 'हुक्का हुआ', 'अजब देश', 'आओ नंगे रहें' और 'हँसे हँसाएँ' विशेष उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1974 में हुआ था।
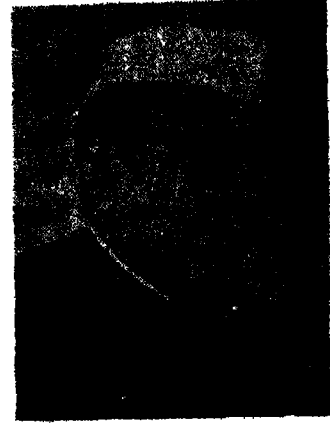
श्री वंशीधर विद्यालंकार

आपका जन्म डेरा गाजी खाँ (अब पाकिस्तान) में 22 जून सन् 1900 को हुआ था। आपकी शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में हुई थी और आपने सन् 1922 में वहाँ से विधिवत् स्नातक होकर 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त की थी।

गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त सबसे पहले आप कुछ दिन गुरुकुल सूपा (गुजरात) के आचार्य रहे और फिर आर्यसमाज का प्रचार करने के निमित्त बर्मा चले गए थे। तत्पश्चात् आपकी नियुक्ति 'जामिया मिलिया इस्लामिया दिल्ली' में हो गई और काफी दिन तक आपने इस संस्थान में संस्कृत-हिन्दी-शिक्षक का कार्य किया। फिर आप उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर चले गए और जीवन-पर्यन्त वहीं रहे। अपने हैदराबाद-प्रवास के दिनों में आप वहाँ के 'नानकराम भगवानदास विज्ञान महाविद्यालय' के प्राचार्य भी रहे थे।

आप सफल शिक्षक होने के साथ-साथ पत्रकार, विचा-

रक, लेखक और सुकवि भी थे। आपकी ऐसी प्रतिभा का पूर्ण लाभ हैदराबाद की जनता ने उठाया था। आपने जहाँ हैदराबाद में 'राधा-कृष्ण अनुसन्धान केन्द्र' की स्थापना की थी वहाँ आप कई वर्ष तक 'हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद' के रजिस्ट्रार, साहित्य मन्त्री और अध्यक्ष भी रहे थे। सभा की ओर से प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्रिका 'अजन्ता' का सम्पादन भी आपने कई वर्ष तक सफलतापूर्वक किया था।
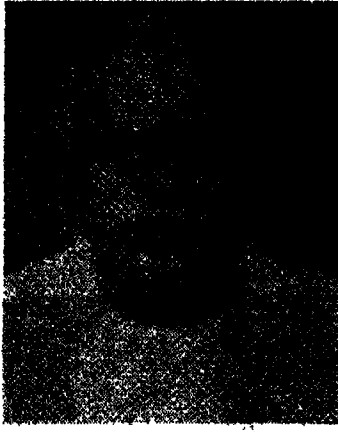
आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'मेरे फूल' (काव्य), 'साहित्य' (निबन्ध), 'बाला पद' (गीत) तथा 'फल वन' आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'साहित्य' में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य-सम्बन्धी निबन्धों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। आपकी साहित्य तथा शिक्षा-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सेवाओं को दृष्टि में रखकर 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय' ने अपनी मानद उपाधि 'विद्या मार्तण्ड' प्रदान की थी।

आपका निधन 22 फरवरी सन् 1966 को नई दिल्ली में हुआ था।

श्री वंशीधर शुक्ल

श्री वंशीधर शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के लखीमपुर-खीरी जनपद के मन्योरा नामक ग्राम में सन् 1904 की वसन्त-पंचमी को हुआ था। आपके पिता पं० छेदीलाल शुक्ल 'छेदू अल्हैत' के नाम से प्रदेश में प्रसिद्ध थे। अक्षर-ज्ञान से शून्य होने पर भी वे 'आशुकवि' कहे जाते थे और सारा आल्हा उनको कंठाग्र था। शुक्लजी की शिक्षा अधिक नहीं हुई थी, किन्तु फिर भी कविता लिखने में आपकी अभूतपूर्व गति थी।

राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने का व्रत आपने श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क से लिया था। इस प्रसंग में आप कई बार जेल भी गए थे। जेल में रहते हुए आपने जिन अनेक क्रान्तिकारी कविताओं की रचना की थी, उनमें :

उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो सोवत है सो खोवत है
जो जागत है सो पावत है॥

उठो सोने वालों सवेरा हुआ है।
वतन के फकीरों का फेरा हुआ है॥

मोरा टूटे न चरखे का तार,
चरखवा चालू रहे।

सर बाँधे कफनवा हो
शहीदों की टोली चली।

कदम कदम बढ़ाए जा,
खुशी के गीत गाए जा।

तथा

अमर भूमि से प्रकट हुआ हूँ,
मर - मर अमर कहाऊँगा।
जब तक तुमको मिटा न दूँगा,
चैन न किंचित् पाऊँगा।

जैसी अनेक क्रान्तिकारी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। आपकी 'किसान की अर्जी' नामक रचना को सुनकर तो पं० जवाहरलाल नेहरू रोने लगे थे। यह आपको ही सौभाग्य प्राप्त था कि आपके द्वारा रचित गीत 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है' महात्मा गान्धी को अत्यन्त प्रिय था और उनके आश्रम में गाया जाता था।

पाँच वर्ष तक आप उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे थे, किन्तु उन दिनों आप न तो चारपाई पर लेटते थे, और न बैठते ही थे। कवि-सम्मेलनों में आपको बड़े चाव से सुना जाता था। अवधी भाषा की रचनाओं की लोकप्रियता के कारण आप अनेक वर्ष तक आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र के 'पंचायतघर' नामक कार्यक्रम में सक्रिय रूप से भाग लेते

रहे थे। आप समाजवादी विचारों के होते हुए भी गान्धीजी के परम भक्त थे। लोकगीत की शैली में रचनाएँ करने में आप सर्वथा अद्वितीय थे और अपनी इसी प्रतिभा के कारण आपको 'अवधी सम्राट्' तथा 'जन कवि' आदि विशेषणों से विभूषित किया गया था।

आपकी ख्याति-प्राप्त रचनाओं में 'राम मड़ैया', 'राजा की कोठी', 'गाँव की दुनिया', 'किसान की दुनिया', 'चरवाहा' तथा 'हरवाहा' आदि उल्लेखनीय हैं। आपकी काव्य-प्रतिभा की प्रशंसा जहाँ देश के अनेक मनीषियों ने की थी वहाँ आप राजनेताओं में भी अत्यन्त सम्मान के साथ देखे जाते थे।

आपका निधन 26 अप्रैल सन् 1980 को 76 वर्ष की आयु में हृदय की गति रुक जाने से हुआ था।

आचार्य वचनेश मिश्र

आचार्य 'वचनेश' का जन्म सन् 1875 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नगर के मित्तू कूँचा नामक मोहल्ले में हुआ था। यह एक संयोग की ही बात कही जायगी कि इसी वर्ष देश की प्रसिद्ध सुधारवादी संस्था आर्यसमाज की भी स्थापना हुई थी और साहित्य-जगत् के नेता डॉ० श्यामसुन्दरदास का जन्म भी इस वर्ष में हुआ था। पाँच वर्ष की आयु में आपको महर्षि स्वामी दयानन्द के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो जीवन के अन्तिम क्षण तक आपको प्रकाश देता रहा। एक बार जब महामना मदनमोहन मालवीय तथा कालाकाँकर के राजा रामपालसिंह कांग्रेस के कार्य के प्रचार के लिए फर्रुखाबाद पधारे थे तब उक्त दोनों महानुभावों के स्वागत में आपने एक कविता पढ़ी थी। दोनों ही नेता उससे इतने प्रभावित हुए थे कि बाद में कालाकाँकर जाकर राजा रामपालसिंह ने आपको स्थायी रूप से अपने राज्य में बुलाकर प्रतिष्ठित किया था। आप सन् 1891 से लेकर सन् 1936 तक स्थायी रूप से वहीं रहे थे।

कालाकाँकर में रहते हुए जहाँ आपने वहाँ के राज-परिवार में हिन्दी के प्रति प्रेम जागृत किया वहाँ उनको अनेक साहित्यिक आयोजन करने की प्रेरणा भी दी थी। वहाँ की 'कवि कोविद संघ' नामक संस्था के माध्यम से आपने जहाँ अनेक कवि-सम्मेलन आयोजित किए वहाँ साहित्य-रचना की दिशा में भी आप पीछे नहीं रहे। आपकी 'डाली', 'वातायन' तथा 'शबरी नामक काव्य-रचनाएँ इसकी ज्वलन्त साक्षी हैं। कालाकाँकर मे रहते हुए जहाँ आपने वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'दरिद्रनारायण' नामक साप्ताहिक पत्र के संचालन और सम्पादन में योग दिया वहाँ आप श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के सम्पादन में कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'सुकवि' को भी अपना पूर्ण सहयोग देते रहे थे।
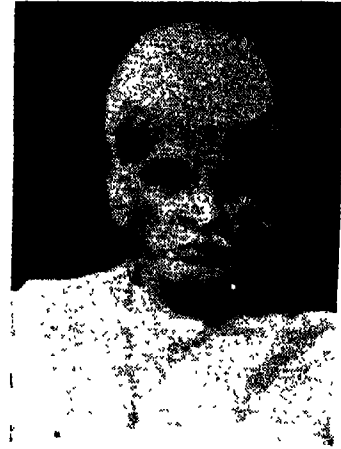
आपने जिन अनेक पुस्तकों की रचना की थी उनमें 'नीति कुण्डल' (1885), 'आनन्द लहरी' (1887), 'मनोरंजिनी' (1889), 'भारती भूषण' (1893), 'वैराग्य शतक' (1905), 'नवरत्न' (1906), 'वर्णांग व्यवस्था' (1908), 'हा ! वज्रपात' (1910), 'ध्रुव चरित्र' (1914), 'शिव सुमरनी' (1914), 'वचन विलास' (1925), 'सुभाषित रत्नमाला' (1927), 'विनोद' (1933), 'शान्त समीर' (1933), 'गोपाल हृदय' (1936), 'शबरी' (1936), 'परिहास' (1954), 'श्याम शिर पीड़ा' (1956), 'बाल बजरंग' (1956), 'रूठा भक्त' (1957), 'प्रणय पत्रिका' (1958), 'धर्मध्वजा', 'धर्मपताका', 'युग भक्त', 'शिव-

पार्वती-विवाह' आदि काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त 'भर्तृहरि निर्वेद' ('उन्मत्त राघव' नाटक का अनुवाद), 'लालकुमारी' (उपन्यास) आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। आपने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। इस दिशा में कालाकाँकर से प्रकाशित होने वाले प्रथम हिन्दी पत्र 'हिन्दोस्थान' तथा 'सम्राट्' के अतिरिक्त फर्रुखाबाद से प्रकाशित 'रसिक' मासिक के नाम स्मरणीय हैं। आपके छंद-शास्त्र-सम्बन्धी आचार्यत्व का परिचय 'छन्दोगति' नामक छन्द-शास्त्र के अप्रकाशित ग्रन्थ से मिल जाता है। आचार्यत्व के रूप में शब्द, रस, छन्द, अलंकार आदि का पूर्ण ज्ञान आप रखते थे। वास्तव में आपकी रचनाओं में शृंगार, हास्य तथा नीति का पूर्ण समन्वय दृष्टिगत होता है। सन् 1956 में 'पांचाल साहित्य परिषद् फर्रुखाबाद' के तत्त्वावधान में आपको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेंट किया गया था।

आपका निधन सन् 1959 में हुआ था।

श्री वनमालीप्रसाद शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म मध्यप्रदेश के रायपुर नामक नगर में सन् 1890 में हुआ था। आपने हिन्दी में सर्वप्रथम 'बीज-गणित' की रचना की थी, जो पर्याप्त समय तक मध्यप्रदेश और उड़ीसा में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता रहा था। आपकी रचनाएँ 'सरस्वती' के पुराने अंकों में आज भी देखी जा सकती हैं।

आपका अपने समय के प्रायः सभी साहित्यकारों से निकट का सम्बन्ध था। आपका जिन महानुभावों से प्रायः पत्राचार होता रहता था उनमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पुरुषोत्तमदास टंडन, माधवराव सप्रे और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के अतिरिक्त महामना मदनमोहन मालवीय-जैसे राजनीतिज्ञ भी थे।

आपकी रचनाओं का संकलन 'अद्भुत आलाप' नाम से प्रकाशित हो चुका है इसमें बहुत-सी विचित्र कथाएँ संकलित हैं।

आपका निधन सन् 1956 में रायगढ़ (मध्यप्रदेश) में हुआ था।

वाचस्पति पाठक

श्री पाठकजी का जन्म 5 सितम्बर सन् 1905 को काशी के नवाबगंज नामक मोहल्ले में हुआ था। आपके पूर्वज मिर्जापुर जिले के रहने वाले थे और पाठकजी के जन्म से काफी वर्ष पहले ही काशी आकर रहने लगे थे। उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द, राय कृष्णदास और जयशंकरप्रसाद की त्रिमूर्ति के साथ उन दिनों हिन्दी के जिन तीन नवयुवक लेखकों के नाम काशी में अग्रणी थे उनमें पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और विनोदशंकर व्यास के साथ वाचस्पति पाठक का नाम भी अनन्य है।

श्री पाठकजी जयशंकरप्रसाद के परिवेश के कथाकार थे। आपकी कहानियों में प्रसाद-जैसा आदर्शवाद, इतिहास-प्रेम और यथार्थ के प्रति अनुराग परिलक्षित होता है। विशुद्ध मानवीय अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में आपको जो कौशल प्राप्त था वह आपकी कला का परिचायक है। 'कागज की टोपी' शीर्षक आपकी कहानी ने अपनी मार्मिक पृष्ठभूमि और अनुभूति की गहराई के कारण जो लोकप्रियता प्राप्त की थी, उससे पाठकजी के कहानी-कौशल का परिचय मिलता है। 'द्वादशी' तथा 'प्रदीप' नामक पुस्तकों में आपकी ऐसी ही कहानियाँ संकलित हैं। जिस संकलन के कारण पाठकजी ने हिन्दी कहानी को सर्वथा

नए आयाम दिए उसका नाम है 'इक्कीस कहानियाँ'। इस कहानी-संकलन के सम्पादन में आपने अपनी जिस प्रतिभा का परिचय दिया था वह आपकी समीक्षात्मक शैली का उदात्त उदाहरण है। इस संकलन के प्रारम्भ में पाठकजी ने कहानी के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करके उसके कला-पक्ष का जो विवेचन किया है उससे हिन्दी-कहानी के सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक पक्ष का सम्यक् निदर्शन हो जाता

है। 'इक्कीस कहानियाँ' नामक इस संकलन का सम्पादन आपने सन् 1936 में किया था। इसके उपरान्त आपने सन् 1952 में हिन्दी एकांकियों का जो संकलन 'नए एकांकी' नाम से सम्पादित किया था वह भी आपके कहानी-संकलन की भाँति ही पर्याप्त समादृत हुआ था। उत्कृष्ट कहानीकार होने के साथ-साथ पाठकजी छायावाद युग के अध्येता भी थे। अपने इस गम्भीर अध्ययन-मनन का प्रतिफलन आपने अपनी 'प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ' नामक सम्पादित कृति में प्रस्तुत किया है। 'इक्कीस कहानियाँ' और 'नए एकांकी' की भाँति ही इस संकलन में भी छायावादी काव्य पर अद्वितीय प्रकाश डालने वाली आपकी विशद भूमिका पठनीय एवं मननीय है।

एक उत्कृष्ट कथाकार और साहित्यकार होने के साथ-साथ पाठकजी सफल प्रकाशक भी थे। भारती भण्डार प्रयाग के कुशल व्यवस्थापक के रूप में आपने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की वह वास्तव में हिन्दी-प्रकाशन के क्षेत्र में अद्वितीय और अभिनन्दनीय ही कही जायगी। किसी समय 'भारती भण्डार' हिन्दी की एकमात्र ऐसी प्रकाशन-संस्था थी जिसने जयशंकर प्रसाद और राय कृष्णदास-जैसे उस काल के प्रख्यात साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित करने के साथ-साथ ऐसे अनेक साहित्यकारों की रचनाओं से भी हिन्दी-जगत् को परिचित कराया था, जो उन दिनों साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण ही कर रहे थे। ऐसे अनेक साहित्यकारों में सर्वश्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', शान्तिप्रिय द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, नन्ददुलारे वाजपेयी, जगदीशचन्द्र माथुर, परशुराम चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट तथा उपेन्द्रनाथ अश्क प्रभृति के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह पाठकजी की नियोजन-पटुता ही थी कि 'भारती भण्डार' का नाम हिन्दी-प्रकाशन के क्षेत्र में अपनी उत्कृष्टता और प्रामाणिकता के लिए उच्चतम शिखर पर पहुँच गया था। किसी समय जिस 'भारती भण्डार' से केवल प्रसाद अथवा राय कृष्णदास की कृतियाँ ही प्रकाशित हुआ करती थीं, पाठकजी के अध्यवसाय तथा सूझ-बूझ के कारण उसका नाम हिन्दी प्रकाशन का कीर्ति-शिखर बन गया और प्रत्येक लेखक अपनी कृतियों को 'भारती भण्डार' से प्रकाशित कराने में अपने सौभाग्य का अनुभव करने लगा। स्वयं लेखक एवं साहित्यकार होने के कारण पाठकजी ने भारती भण्डार के माध्यम से किसी लेखक का अहित किया हो या उसे आर्थिक हानि पहुँचाई हो, ऐसा प्रवाद कभी सुनने में नहीं आया।

कदाचित् हिन्दी के बहुत कम पाठकों को यह विदित होगा कि भारती भण्डार में रहते हुए पाठकजी ने उसकी स्वामिनी संस्था लीडर प्रेस की ओर से समय-समय पर हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। लीडर प्रेस की ओर से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक भारत' के सम्पादन में भी अनेक व्यक्तियों को संयोजित करने का श्रेय पाठकजी को है। हिन्दी के प्रख्यात समीक्षक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी अध्यापन के क्षेत्र में आने से पूर्व 'दैनिक भारत' के सम्पादन में पाठकजी के द्वारा ही प्रवृत्त हुए थे। पाठकजी की ही प्रेरणा पर जब लीडर प्रेस की ओर से हिन्दी में 'संगम' नामक साप्ताहिक पत्र सन् 1950 में प्रकाशित किया गया तो उसके प्रथम सम्पादक के रूप में श्री कृष्णानन्द गुप्त वहाँ आए थे। जब श्री कृष्णानन्द गुप्त ने 'संगम' के सम्पादन से त्यागपत्र दिया तो हिन्दी के प्रख्यात उपन्यासकार श्री इलाचन्द्र जोशी ने सम्पादन-भार ग्रहण किया। इसमें भी श्री पाठकजी का ही अनुरोधपूर्ण हाथ था। जोशीजी के सहायक के रूप में सर्वश्री धर्मवीर भारती, ओंकार शरद और रमानाथ अवस्थी भी पाठकजी की ही प्रेरणा पर 'संगम' में नियुक्त किये गए थे। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'धर्मयुग' के सम्पादक डॉ० धर्मवीर भारती में सम्पादन-पटुता के संस्कार 'संगम' के इसी काल में प्रस्फुटित हुए थे। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की ओर से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'कादम्बिनी' भी पाठकजी की ही प्रेरणा पर सर्वप्रथम लीडर प्रेस, इलाहाबाद से ही प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई थी और आपके प्रयत्न से श्री बालकृष्णराव ने उसके सम्पादन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था। बाद में जब श्री राव ने 'कादम्बिनी' के सम्पादन से त्यागपत्र दिया तब भी कई वर्ष तक 'कादम्बिनी' प्रयाग से ही प्रकाशित होती रही। उन दिनों श्री रामानन्द दोषी ने उसके सम्पादन का भार अपने ऊपर लिया था और फिर उसका प्रकाशन बाद में नई दिल्ली से ही नियमित रूप से होने लगा था।

प्रकाशन के क्षेत्र में आपकी उल्लेखनीय सेवाओं का ही यह

सुपरिणाम हुआ कि स्वतन्त्रता के उपरान्त 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ' की स्थापना दिल्ली में की गई तो आपने ही उसका संयोजन किया था। पाठकजी की सूझ-बूझ और व्यापक दृष्टि का ही यह सुपरिणाम हुआ कि 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ' एक शक्तिशाली संस्था के रूप में उभरकर देश के सामने आया। यही नहीं कि आपने 'प्रकाशक संघ' को एक सशक्त संस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया, प्रत्युत उसके माध्यम से अनेक उपयोगी योजनाएँ भी प्रचलित कीं। आप सन् 1958 में आगरा में हुए प्रकाशक संघ के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष भी मनोनीत किये गए थे। आपकी ही अध्यक्षता में भारत सरकार से यह अनुरोध किया गया था कि लेखकों को पुरस्कृत करने के साथ-साथ अच्छे मुद्रकों और प्रकाशकों को भी उनके उत्कृष्ट प्रकाशनों के लिए सम्मानित किया जाना चाहिए।

आपका निधन 19 नवम्बर सन् 1980 को प्रयाग में हृदय-गति बन्द हो जाने के कारण हुआ था।

श्री वासुदेव गोविन्द आप्टे

श्री आप्टेजी का जन्म 12 अप्रैल सन् 1871 को महाराष्ट्र के धरणगाँव (पूर्व खानदेश) नामक स्थान में हुआ था। आप मराठी भाषा के अच्छे पत्रकार तथा कोशकार के रूप मे विख्यात हैं। आपके द्वारा विरचित 'मराठी शब्द-रत्नाकर' नामक कोश अत्यन्त उल्लेखनीय है। आप जब सन् 1890 से 1900 तक इन्दौर (मध्यप्रदेश) में वहाँ के राज्य-परिवार की राज-कन्या के शिक्षक के रूप में कार्य करते थे तब आपने वहाँ पर एक हिन्दी-पत्रिका का सम्पादन भी किया था।

आपके हिन्दी-प्रेम का सबसे सुपुष्ट प्रमाण यही है कि 15 अगस्त सन् 1906 को आपने पूना (महाराष्ट्र) से मराठी भाषा में 'आनन्द' नामक जो बालोपयोगी मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था उसमें प्रारम्भ से ही 16 पृष्ठ हिन्दी में प्रकाशित होते आ रहे हैं। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि श्री आप्टे की मृत्यु के बाद भी यह पत्र बन्द नहीं हुआ और अब भी उनके उत्तराधिकारी 'आनन्द' में हिन्दी विभाग ज्यों-का-त्यों देते हैं।

श्री आप्टे का निधन 2 फरवरी सन् 1930 को हुआ था।

श्री वासुदेव व्यास

श्री व्यासजी का जन्म सन् 1885 में सारंगपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। आप एक कुशल कवि होने के साथ-साथ सुयोग्य कथा-वाचक भी थे। आपकी विशेषता यह थी कि आप एक भी पैसा नहीं लेते थे और जो कुछ भी आपको प्राप्त होता था उसे विद्यार्थियों में वितरित कर देते थे। आप प्रायः 'रामचरित मानस' की अनुकृति पर ही कथा किया करते थे।

आप जहाँ अच्छे कथा-वाचक थे वहाँ भक्ति रस से परिपूर्ण कविताएँ भी लिखा करते थे। आपने केवल भक्ति तथा ज्ञान का सन्देश ही अपनी रचनाओं में नहीं दिया, प्रत्युत अपने जीवन को एक आदर्श सन्त की भाँति व्यतीत किया था। आपको जनता की ओर से 'कवि भूषण' की उपाधि भी प्रदान की गई थी।

आपके द्वारा लिखित प्रमुख रचनाओं में 'शिवलीला-

मृत', 'स्कन्द पुराण', 'राजसुधा', 'चर्पट मंजरी', 'मार्कण्डेय व्याख्यान' तथा 'षड्रिपु वर्णन' आदि हैं। इनमें से केवल 'शिवलीलामृत' का प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था।

आपका देहावसान सन् 1930 में हुआ था।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

डॉ० अग्रवाल का जन्म 7 अगस्त सन् 1904 को मेरठ जनपद (अब गाजियाबाद) के पिलखुवा नामक नगर के समीपवर्ती खेड़ा ग्राम में हुआ था। आपके पिता लाला गोपीनाथ को 'साहजी' के नाम से जाना जाता था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम की पाठशाला से ही हुई थी और तदनंतर आपने काशी विश्वविद्यालय से एम० ए०, पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। बी० ए० की परीक्षा के अतिरिक्त अन्य सब परीक्षाओं में आपने प्रथम श्रेणी के साथ-साथ योग्यता-क्रम में भी प्रथम स्थान प्राप्त किया था, जबकि बी० ए० में प्रथम श्रेणी के साथ योग्यता-क्रम द्वितीय था।

शिक्षा-प्राप्ति के अनन्तर आप सन् 1931 से सन् 1939 तक मथुरा संग्रहालय के अध्यक्ष रहे थे और उसके बाद सन् 1946 तक आप लखनऊ के संग्रहालय के 'क्यूरेटर' रहे थे। इसके उपरान्त सन् 1946 से सन् 1951 तक आपने नई दिल्ली के 'म्यूजियम' के 'सहायक अध्यक्ष' तथा 'अध्यक्ष' के रूप में कार्य किया था। इस कार्य-काल के उपरान्त आपने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'भारती महाविद्यालय' के अन्तर्गत 'स्थापत्य विभाग' में अध्यक्ष के पद पर अत्यन्त सफलता पूर्वक कार्य किया था।

डॉ० अग्रवाल भारतीय संस्कृति और वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान् होने के साथ-साथ कुशल लेखक भी थे। आपकी लेखनी का प्रसाद वे सब ग्रन्थ हैं जो आपने अपनी अथक साधना तथा अनवरत अध्यवसाय के रूप में हिन्दी-जगत् को प्रदान किए हैं। आप जहाँ वैदिक वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान् थे वहाँ भारतीय लोक-कला तथा पुरातत्त्व के भी मर्मज्ञ थे। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर आपने अपनी लेखनी चलाई थी, किन्तु लोक-कला तथा संस्कृति के क्षेत्र में आपकी देन सर्वथा अभिनन्दनीय कही जा सकती है। आपके निबन्धों में जो गाम्भीर्य तथा पाण्डित्य परिलक्षित होता है, वह आपकी विद्वत्ता एवं सहज साधना का द्योतक है। आपने भारतीय कला, संस्कृति, पुरातत्त्व तथा साहित्य से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ जहाँ अँग्रेजी में लिखे थे वहाँ हिन्दी साहित्य की समृद्धि में भी आपका अद्वितीय योगदान था।

आपके बहुविध लेखन का साक्ष्य आपकी उन सभी रचनाओं को देखकर मिल जाता है जो आपने अपनी साधना के अवदान के रूप में साहित्य को समर्पित की हैं। आपने जहाँ संस्कृत के अमर ग्रन्थ 'मेघदूत' तथा 'हर्ष-चरित' पर विशद अध्ययन प्रस्तुत किए थे वहाँ हिन्दी के गौरव ग्रन्थ 'पद्मावत' और कीर्तिलता' पर भी व्याख्यात्मक संजीवनी टीकाएँ प्रस्तुत की थी। आपके अन्य ग्रन्थों में 'पृथ्वी पुत्र', 'कला और संस्कृति', 'कल्प-वृक्ष', 'माता भूमि', 'भारत की मौलिक एकता', 'वाग्धारा', 'उरु ज्योति', 'वेद विद्या' तथा 'वेद रश्मि' के नाम स्मरणीय हैं। आपकी साधना का पावन अवदान आपका 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' है। इनके अतिरिक्त आपके 'भारत की मौलिक एकता' तथा 'भारत सावित्री' नामक ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आपने डॉ० मोतीचन्द्र के साथ मिलकर संस्कृत के 'शृंगार हाट' नामक ग्रन्थ का सम्पादन भी किया था।

आपने जहाँ संस्कृत तथा अँग्रेजी में अनेक उल्लेखनीय ग्रन्थों का सम्पादन तथा संकलन किया था। वहाँ अनेक 'अभिनन्दन ग्रन्थों' के सम्पादन में भी अपना अभिनन्दनीय सहयोग प्रदान किया था। ऐसे ग्रन्थों में 'भारत कौमुदी', 'नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन-ग्रन्थ', 'कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ' तथा 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ'

प्रमुख रूप से ख्यातव्य हैं।

हिन्दी में जनपदीय आन्दोलन को उत्कर्ष प्रदान करने की दिशा में भी आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा था। राहुल सांकृत्यायन तथा बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ-साथ आपने भी जनपदीय संस्कृति के उन्नयन की दिशा में अपना महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश किया था। आपके अध्ययन तथा लेखन को किसी विशेष परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। वास्तव में आपका जीवन जितना बहु-आयामी था उतना ही लेखन-क्षेत्र भी फैला हुआ था। हिन्दी में कदाचित् आप ही पहले ऐसे लेखक थे जिनको उनके 'हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' तथा 'वेद विद्या' नामक ग्रन्थों पर दो बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' प्रदान किया गया था। आप 'अखिल भारतीय मुद्रा परिषद्' (नागपुर) तथा 'भारतीय संग्रहालय परिषद्' (पटना) के सभापति भी रहे थे।

पत्र-लेखन-कला में भी आपकी देन सर्वथा अनूठी एवं अनन्य है। आपने ऐसे अनेक पत्र हिन्दी के साहित्यकारों के नाम लिखे थे, जिनमें भारतीय संस्कृति, कला तथा साहित्य के अनेक पक्षों का विस्तृत विवेचन किया गया है। विशेष रूप से उन्होंने जनपदीय साहित्य के महत्त्व की प्रतिष्ठापना करने की दृष्टि से इनमें कृषि, कृषक के जीवन, भूमि, भूगोल, मनुष्यों के नामों, नगरों और ग्रामों के नामों आदि से सम्बन्धित ऐसी पुरातात्त्विक सामग्री समाविष्ट की है, जो सभी के लिए उपयोगी है। ऐसे पत्रों में से कुछ का संकलन श्री वृन्दावनदास ने सम्पादित करके प्रकाशित कराया है।

आपका निधन 27 जुलाई सन् 1966 को काशी में हुआ था।

पंडित वासुदेव शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1880 में उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के ऊमरी नामक ग्राम में हुआ था। आप आर्यसमाज से प्रभावित होकर प्रारम्भ से ही उसके प्रचारक के रूप में कार्य करने लगे थे।

यद्यपि आपकी शिक्षा बहुत थोड़ी ही थी, परन्तु फिर भी अपनी प्रतिभा से आप दोहे, घनाक्षरी और भजन आदि बनाकर आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे। आपका कण्ठ इतना मधुर था कि जो भी आपके भजन सुनता था, सदा के लिए आपका हो जाता था।

आपके भजनों की 4-5 पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, किन्तु अब उनमें से एक भी उपलब्ध नहीं है।

आपका निधन सन् 1921 में हुआ था।
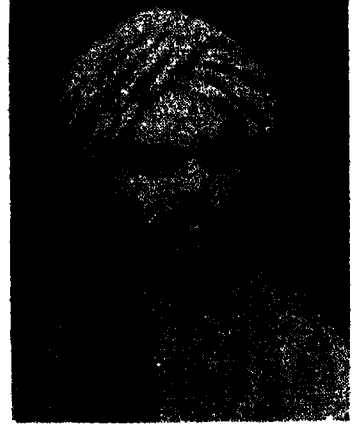
श्री विजयकुमार पण्डित

श्री पण्डित का जन्म 10 मार्च सन् 1905 को हिमाचल प्रदेश के शिमला जनपद के शनीन (रामपुर) नामक ग्राम में हुआ था। आपने दसवीं तक शिमला में ही शिक्षा प्राप्त की थी, तदनन्तर लाहौर से आपने बी० ए० तथा एम० ए०, एम० ओ० एल० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी। आप अपने छात्र-जीवन से ही अभिनय तथा नाटक-लेखन की ओर उन्मुख हो गए थे और धीरे-धीरे उसमें प्रगति करते जा रहे थे। आपके इस कार्य को बढ़ावा तब मिला
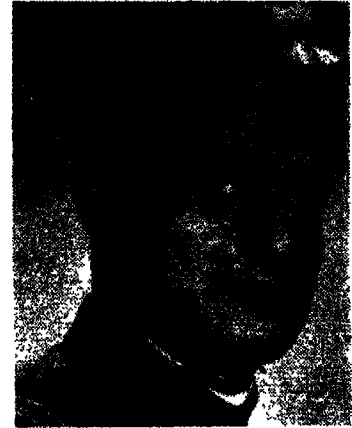
जबकि आप जून सन् 1955 में आकाशवाणी के शिमला-केन्द्र से सम्बद्ध हो गए।

रेडियो से सम्बद्ध होने के उपरान्त आपकी अभिनय तथा नाट्य-लेखन-कला में बहुत निखार आया और आपने कई नाटक लिखने के अतिरिक्त कविताएँ भी लिखीं। पहाड़ी तथा हिन्दी भाषा में लिखे गए आपके नाटकों में 'पहले हम सुनेंगे', 'साहब का स्वाँग', 'भक्त और भगवान्' और 'साहूकार का स्वाँग' आदि के अतिरिक्त 'गुगा जहार पीर' भी विशेष विख्यात हैं। आपकी प्राय: सारी रचनाओं में पहाड़ी जीवन की झलक देखने को मिलती है। लेकिन अभी तक कोई भी रचना पुस्तक-रूप में प्रकाशित नहीं हुई।

आपका निधन 4 नवम्बर सन् 1977 को हुआ था।

श्री विजयकुमार साह

श्री विजयकुमार साह का जन्म काशी के लब्ध-प्रतिष्ठ साह परिवार में 10 जुलाई सन् 1939 को हुआ था। एक सम्पन्न एवं औद्योगिक परिवार में जन्म लेकर भी आपमें सांस्कृतिक एवं साहित्यिक रुचि प्रचुर परिमाण में थी। आप काशी की सांस्कृतिक गतिविधियों में बढ़-चढ़कर भाग लिया करते थे।

अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वहाँ के प्राय: सभी साहित्य-प्रेमी आपको अपना मित्र एवं अभिभावक मानने लगे थे। आपकी कविताओं का संकलन शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

आप औद्योगिक कार्य-कलापों की व्यस्तता में भी साहित्य-रचना में पर्याप्त रुचि लेते रहते थे। नगर की प्राय: सभी कवि-गोष्ठियों में आपकी रचनाएँ बड़े चाव से सुनी जाती थीं। काशी विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप अपने अग्रज राजकुमार साह के साथ पहले 'सिन्नी पंखा' उद्योग में लगे और बाद में 'टुल्लू' नामक पम्प बनाने में दक्षता प्राप्त की।

खेद है कि आपका निधन अल्प आयु में ही 25 फरवरी सन् 1979 को हृदय गति बन्द हो जाने के कारण हो गया।

डॉ० विजय शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर इलाहाबाद में 10 मई सन् 1934 को हुआ था। आपके पिता पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' उच्चकोटि के साहित्यकार थे। प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके कुछ समय उपरान्त आप 'हितकारिणी महाविद्यालय, जबलपुर' में व्याख्याता बनकर चले गए थे। इस महाविद्यालय में 8-9 वर्ष के अध्यापन करने के बाद आप जबलपुर विश्वविद्यालय में व्याख्याता हो गए थे।

लोकप्रिय शिक्षक होने के साथ-साथ आप योग्य शोध-निर्देशक, अच्छे लेखक तथा सशक्त आलोचक भी थे। इसका ज्वलन्त प्रमाण 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' तथा 'धर्मयुग'-जैसे पत्रों में प्रकाशित आपके अनेक शोधपूर्ण निबन्ध हैं। आपने हिन्दी की सेवा का श्रीगणेश सन् 1958 से किया था और अपनी लेखनी से 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', 'पंडित गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश : व्यक्तित्व और कृतित्व', 'सेठ गोविन्ददास : व्यक्तित्व एवं साहित्य' तथा 'साहित्येतिहास : सिद्धान्त एवं स्वरूप' आदि कृतियाँ हिन्दी को प्रदान की थीं। आपके द्वारा सम्पादित नरोत्तमदास का 'सुदामा चरित'

पाठ्यालोचन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। उल्लेखनीय है कि आपको अपने 'स्वर्गीय पण्डित गिरिजादत्त गिरीश : व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक शोध-प्रबन्ध पर पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा यह ग्रन्थ सन् 1973 में पुरस्कृत भी किया गया था।

आपका निधन 27 दिसम्बर सन् 1978 को प्रातः 6 बजे दिल का दौरा पड़ जाने के कारण जबलपुर के विक्टोरिया अस्पताल में हुआ था, जहाँ आपको चिकित्सार्थ उसी रात्रि को ले जाया गया था।

श्री विजयसिंह 'पथिक'

श्री पथिकजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के गुठावली अख्तियारपुर नामक ग्राम में सन् 1882 में हुआ था। आपका जन्म-नाम भूपसिंह था। क्रान्तिकारी हलचलों में निरन्तर भाग लेते रहने के कारण 'भूपसिंह' ही बाद में 'विजयसिंह बन गए थे। आपका जन्म उत्तर प्रदेश में अवश्य हुआ था, किन्तु आपका सारा जीवन राजस्थान में ही बीता था। पथिकजी के बहनोई राजस्थान में काम करते थे, अतः आप उनके साथ राजस्थान में ऐसे गए कि फिर वहीं के हो गए। आपने अपने जीवन को राजस्थान के वातावरण में ऐसा ढाल लिया था कि आपको कोई 'गैर राजस्थानी' कह ही नहीं सकता था। यद्यपि आपने किसी शिक्षणालय में विधिवत् शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, परन्तु अपने अनवरत अध्यवसाय से आपने हिन्दी, अँग्रेजी, उर्दू तथा गुजराती आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

सन् 1914 में स्वर्गीय रासबिहारी बोस ने भारत को अँग्रेजों की पराधीनता से मुक्ति दिलाने की दृष्टि से 'सशस्त्र क्रान्ति' का जो अभियान चलाया था उसमें अजमेर के समीपवर्ती 'खरवा' नामक ठिकाने के एक सामन्त राव गोपालसिंह का भी सक्रिय सहयोग था। पथिकजी भी उनके ऐसे प्रयासों में पूर्णतः सक्रिय थे। इस प्रसंग में राव गोपालसिंह को जब नजरबन्द कर किया गया तब पथिकजी वहाँ से बच निकले और मेवाड़ में आकर शरण ली। पथिकजी को मेवाड़ के 'जन-नेता' के रूप में जो सम्मान तथा आदर मिला है वह आपकी अद्‌भुत संगठन-क्षमता तथा त्याग-वृत्ति का सुपरिणाम है। 'बिजोलिया' के किसानों के शोषण के विरुद्ध अद्‌भुत सत्याग्रह करके पथिकजी ने वहाँ के जन-जन में आदर और सम्मान प्राप्त कर लिया था। 'बिजोलिया' के सत्याग्रह का प्रभाव सारे देश पर हुआ था। यहाँ तक कि महात्मा गान्धी और गणेशशंकर विद्यार्थी-जैसे नेताओं ने भी पथिकजी के इस आन्दोलन को समर्थन दिया था। इस सत्याग्रह के सिलसिले में जब पथिकजी जेल में बन्द कर दिए गए थे तब आपने अपने 'प्रह्लाद विजय' काव्य की रचना की थी। सन् 1928 में जब आप जेल से रिहा हुए तब आपका सारा साहित्य सरकार ने अपने पास रोक लिया था। स्वतन्त्रता के उपरान्त ही आपको वह साहित्य वापस मिला था, जो बाद में धीरे-धीरे प्रकाशित हुआ है।

पथिकजी ने अपनी 'राजस्थान सेवा संघ' नामक संस्था के माध्यम से जहाँ राजस्थान के युवकों में नई चेतना फूँकी वहाँ आपने ऐसे अनेक कार्यकर्त्ता भी तैयार किये जिन्होंने अपने जीवन को पूर्णतः 'संघ' को ही समर्पित कर दिया। इस प्रकार ऐसे कार्यकर्त्ताओं का जो यह नया परिवार बन गया था उसने पथिकजी के नेतृत्व में स्वाधीनता-आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। पथिकजी जहाँ उच्चकोटि के राजनीतिक नेता थे वहाँ प्रखर पत्रकार और ओजस्वी कवि भी थे। आपने सेठ जमनालाल बजाज के सक्रिय सहयोग से सन् 1920 में वर्धा से जहाँ 'राजस्थान केसरी' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था वहाँ बाद में अजमेर से 'नवीन राजस्थान' को जन्म दिया था। यह 'नवीन राजस्थान' ही बाद में 'तरुण राजस्थान' हो गया था। इसके उपरान्त अजमेर से ही आपने 'राजस्थान सन्देश' नामक एक और पत्र भी प्रकाशित किया था। सन् 1938-39 में पथिकजी

ने आगरा से भी 'नव सन्देश' नामक एक क्रान्तिकारी साप्ताहिक बड़ी धूम-धाम से निकाला था।

पथिकजी तेजस्वी पत्रकार तथा कर्मठ नेता होने के साथ-साथ ओजस्वी कवि भी थे। आपके द्वारा निर्मित राष्ट्रीय झण्डे के गौरव की अभिवृद्धि के लिए लिखित गान की :

प्राण मित्रो भले ही गँवाना
पर न झण्डा यह नीचे झुकाना

पंक्तियाँ आज भी हमारे अवचेतन मन में गूँजकर नई प्रेरणा देती-सी लगती हैं। पथिकजी राजस्थान की जन-जागृति के अग्रदूत के रूप में सदा-सर्वदा याद किए जाते रहेंगे। आपके जीवन में गीता के 'निष्काम कर्मयोग' तथा मार्क्स के सिद्धान्तों का ऐसा अद्भुत समन्वय था कि जो भी आपके सम्पर्क में आता था, आपका ही हो जाता था।

जब 'राजस्थान सेवा संघ' समाप्त हो गया और आप 'राजस्थान सन्देश' निकालते थे तब आपने ग्वालियर राज्य के सोनकच्छ गाँव की एक अध्यापिका जानकीदेवी से 24 फरवरी सन् 1930 को विवाह कर लिया और उन्हें भी अपने कार्य में सहयोगी बनाया। विवाह के ठीक एक मास बाद आप गिरफ्तार कर लिए गए और पत्र तथा प्रेस का पूर्ण भार जानकीदेवी पर आ गया। उन्होंने प्रेम को बन्द करके ट्यूशन आदि के द्वारा अपना निर्वाह चलाना प्रारम्भ कर दिया। अपने सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन में पथिकजी को जो संघर्ष करना पड़ा था उसकी कल्पना करके रोमांच हो आता है। वास्तव में वे क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में कार्य-क्षेत्र में अवतरित हुए थे और उसीकी साधना करते हुए विदा हो गए। आप एक उच्च कोटि के ऐसे लेखक, पत्रकार, कवि और साहित्यकार थे जिनके प्रत्येक कार्य-कलाप में क्रान्ति अठखेलियाँ करती रहती थी।

आपकी प्रमुख रचनाओं में से 'प्रह्लाद विजय' काव्य के अतिरिक्त 'पथिक प्रमोद' (कहानी-संग्रह) और 'पथिक विनोद' पुस्तकें ही प्रकाशित हो सकी थीं। वैसे तो जेल में तथा बाहर लिखा हुआ आपका विपुल साहित्य है, किन्तु उसके प्रकाशन की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी। आपकी अप्रकाशित कृतियों में 'अजयमेरु' तथा 'बिकरा भाई' नामक उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

आपका देहावसान 28 मई सन् 1954 को हुआ था।

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

स्वामी विदेहजी का जन्म 15 नवम्बर सन् 1899 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के टप्पल नामक स्थान में हुआ था। आपके जीवन की एक विशेषता यह थी कि आप माता के गर्भ में केवल 6 मास ही रहे थे। जन्म के समय आपका वर्ण बिलकुल नीला और शरीर अत्यन्त क्षीण था, अतः आपके माता-पिता को बालक के जीने की बहुत कम आशा थी। आपका बचपन का नाम 'चैनसुखदास' था। 8 वर्ष की आयु में आपको पढ़ाई करने के लिए अपने पितामह के पास बराल (बुलन्दशहर) भेज दिया गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई थी। हिन्दी का ज्ञान आपने अपने अन्य साथी छात्रों के पास बैठ-बैठकर प्राप्त किया था। छठी कक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने खुर्जा के हाई-स्कूल से सन् 1918 में 'मैट्रिक' की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप आजीविका की तलाश में इधर-उधर बहुत भटके, किन्तु कहीं भी सफलता मिलती न देखकर आप अजमेर के ओसवाल जैन स्कूल में जाकर अध्यापक हो गए। अध्यापन-कार्य करते हुए आप वहीं के 'दयानन्द छात्रावास' के अधिष्ठाता भी हो गए थे। वहाँ पर रहते हुए आपने आर्यसमाज के कर्मठ नेता कुँवर चाँदकरण शारदा के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा पर हिन्दी का अच्छा अभ्यास कर लिया था। अजमेर में ही आपको सर्वप्रथम महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' नामक ग्रन्थ पढ़ने को मिला, जिससे आपकी काया ही पलट गई।

आपके जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दिन 20 जनवरी सन् 1921 है, जब आपको पुलिस विभाग के अन्तर्गत

'रेलवे पुलिस अधीक्षक' के कार्यालय में स्थायी 'आजीविका' मिल गई। इसी दिन से स्वामीजी की स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति के द्वार उद्घाटित हुए थे। 6 घंटे कार्यालय में कार्य करने के अतिरिक्त आप निरन्तर स्वाध्याय में निरत रहते थे। इस प्रसंग में आपने आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में भी जाना प्रारम्भ कर दिया था। एक बार जब आपने सर्वप्रथम आर्यसमाज में वेदोपदेश दिया तब आपके उस भाषण को सुनकर अजमेर के सुप्रसिद्ध आर्य नेता श्री घीसूलाल एडवोकेट ने यह भविष्यवाणी की थी कि चैनसुखदास आगे जाकर वेदों के प्रसिद्ध व्याख्याता बनेंगे। उनकी यह भविष्य-वाणी पूर्णतः सत्य सिद्ध हुई और वास्तव में आप सफल वेद-व्याख्याता के रूप में विख्यात हो गए। एक बार प्रख्यात आर्य संन्यासी स्वामी सर्वदानन्द ने भी आपका इन्दौर में वेद-प्रवचन सुनकर आपको 'वैदिक ऋषि' के विशेषण से विभूषित किया था। वेदों के प्रति आपके मन में कितनी श्रद्धा थी इस बात का परिचय इसीसे मिल जाता है कि आपने सन् 1922 से ही अपनी आय का 20 प्रतिशत भाग 'वेद-प्रचार' में लगाने का पावन व्रत ले लिया था।

आपके मन में जहाँ वैदिक ज्ञान का अथाह सागर हिलोरें मारता रहता था वहाँ अपने भावों को कागज पर उतारने को भी आपकी लेखनी विवश हो गई थी। फलस्वरूप आपने तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' की पद्धति पर 'दयानन्द चरितामृत' नाम से एक ग्रन्थ भी लिख डाला था। उन्हीं दिनों आपका स्थानान्तरण आबू के लिए हो गया और वहाँ पर आपके जीवन में अनेक विघ्न-बाधाएँ आईं। आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित होने के कारण आप खद्दर पहना करते थे। फलस्वरूप आपके अँग्रेज अधिकारियों ने आपको कांग्रेसी समझकर तंग करना प्रारम्भ कर दिया। अपनी स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता के कारण आप उनकी आँखों में बहुत खटकते थे। आबू में रहते हुए आपने अपने सद्व्यवहार तथा कर्तव्य-निष्ठा से सभी का मन जीत लिया था, और जो बाधाएँ मार्ग में आ गई थीं वे धीरे-धीरे दूर हो गई थीं। उन्हीं दिनों सन् 1926 में आपने अपना नाम स्वतः ही बदलकर 'विद्यानन्द' कर लिया था। आबू के जीवन का भी आपके उत्कर्ष में वही महत्त्व है जो महत्त्व अजमेर का है। आबू में रहते हुए आपने योग-साधना भी प्रारम्भ कर दी थी। विधि का विधान बड़ा विचित्र है। उन्हीं दिनों आपका परिचय स्वामी जपानन्द नाम के एक संन्यासी से हो गया, जिन्होंने विद्यानन्दजी की योग-सिद्धि में मार्ग-प्रदर्शन किया।

इसी बीच सन् 1935 में आप पदोन्नत होकर इन्दौर गए तो वहाँ की आर्यसमाज में जाना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ आपने देखा कि आर्यसमाज के सत्संगों में कोई आता ही नहीं। केवल 3-4 व्यक्ति ही वहाँ उपस्थित रहते हैं। वहाँ पर विद्यानन्द 'आनन्द' के उपदेश होने लगे। आर्य-सत्संगों में भीड़ होने लगी। धीरे-धीरे आपकी पदोन्नति के साथ-साथ स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी बढ़ने लगी और एक दिन वह आया जब 14 फरवरी सन् 1948 को आपने अजमेर में विधिवत् 'वेद-संस्थान' की स्थापना कर दी तथा उसकी ओर से 'सविता' मासिक का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया। 'सविता' के माध्यम से आपने 'वेद-व्याख्या' की जो सर्वथा नई शैली प्रारम्भ की उसने 'वेद-संस्थान' तथा 'सविता' को लोकप्रियता के चरम शिखर पर पहुँचा दिया। स्वामीजी के जीवन-काल में प्रकाशित हुए पिछले 30 वर्ष के 'सविता' के अंक आपकी गम्भीर वेद-व्याख्या-पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। 'वेद संस्थान' के माध्यम से स्वामीजी के निरीक्षण में वैदिक साहित्य के प्रकाशन का जो कार्य हुआ है उससे भी आपकी कार्य-पद्धति का स्पष्ट आभास हो जाता है। आपके द्वारा विरचित 'वेद-व्याख्या ग्रन्थ' आपके गम्भीर ज्ञान का उत्तम निदर्शन प्रस्तुत करते हैं। 'वेद-संस्थान' की सफलता का सबसे उज्ज्वल उदाहरण यही है कि उसकी एक शाखा नई दिल्ली के 'राजौरी गार्डन' नामक स्थान में भी सितम्बर सन् 1951 में स्थापित हो गई थी।

अपने कर्ममय जीवन में आपने जहाँ 'वेद-संस्थान' के प्रवचनों के माध्यम से जनता में वेदों के प्रति अनन्य निष्ठा उत्पन्न की वहाँ अपनी लेखनी के द्वारा भी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रदान किए। ऐसी रचनाओं में 'वेद-व्याख्या' ग्रन्थों के 40 खण्डों के अलावा आपने लगभग 100 ऐसे लोकोपयोगी ग्रन्थों का निर्माण किया था, जिनसे हम अपनी संस्कृति का गूढ़तम परिचय प्राप्त कर सकते हैं। आपका 'वेदालोक' नामक ग्रन्थ देश के वेद-प्रेमियों के लिए एक अद्वितीय धरोहर है। आपका 'वेदों की सूक्तियाँ' नामक ग्रन्थ भी अपनी उपादेयता के लिए महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। यह एक विचित्र संयोग ही कहा जायगा कि स्वामीजी ने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक भी वेद-प्रचार का ही

कार्य किया। 5 मार्च सन् 1978 को आर्यसमाज सहारनपुर के वार्षिक उत्सव में आप अस्वस्थावस्था में भी जब आप वेद-प्रवचन कर रहे थे तब उसकी समाप्ति पर रात्रि में 10 बजकर 10 मिनट पर श्वासावरोध के कारण आप इस असार संसार से विदा हो गए। आपकी यह चिर-परिचित अभिलाषा थी कि 'वेदोपदेश' करते हुए ही उनके जीवन का अन्त हो। विधाता ने आपकी यह अभिलाषा भी पूर्ण कर दी।

डॉ० विद्याभास्कर 'अरुण'

डॉ० अरुणजी का जन्म 6 अप्रैल सन् 1920 को श्री हरगोबिन्दपुर (पंजाब) में हुआ था। आप अध्यापन-क्षेत्र में कार्य करते हुए भी पंजाबी तथा हिन्दी साहित्य के गम्भीर विद्वान् थे। पंजाब के हिन्दी-कवियों में आपका प्रमुख स्थान था। आप डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर में हिन्दी-पंजाबी के प्राध्यापक थे। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में आपने अपभ्रंश, पंजाबी तथा हिन्दी के विभिन्न पक्षों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करके अनेक लेख लिखे थे।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'वीर-काव्य और कविता' 'निशान्त', 'किरण बाला', 'गद्य मंजरी', 'प्रबन्ध, पीयूष', 'पद्य पद्मिनी', 'सवेरा और साया', 'सुनहरी नौका', 'मृच्छ कटिक', 'कलिंग', 'हिन्दी-रचना', 'आधुनिक हिन्दी - साहित्य', 'आधुनिक साहित्य की परम्परा' तथा 'हिन्दी-साहित्य-परिचय' आदि के नाम प्रमुख रूप से उल्लेख्य हैं।

आपका देहावसान 26 जुलाई सन् 1977 को लुधियाना में हुआ था।

डॉ० विद्याभूषण 'विभु'

श्री 'विभु' का जन्म उत्तर प्रदेश के जलेसर रोड नगर के समीपवर्ती नाहरपुर नामक ग्राम में 4 दिसम्बर सन् 1892 को हुआ था। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त वहीं से डी० फिल० की उपाधि भी प्राप्त की थी। बाल-साहित्य के निर्माण में आपने अपने जीवन को पूर्णतः समर्पित कर दिया था। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'लाल खिलौना', 'खेला भैया', 'गुड़िया', 'बबुआ', 'चन्दा', 'पंख शेख', 'गोबर गणेश', 'ढपोर शंख', 'शेखचिल्ली', 'लाल बुझक्कड़', 'चार साथी', 'पद्य पयोनिधि', 'सुहराब रुस्तम', 'चित्रकूट-चित्रण', 'ज्योत्स्ना' तथा 'पुरन्दरपुरी' आदि प्रमुख है। इनके अतिरिक्त सन् 1924 में आपने दयानन्द-जन्म-शताब्दी के अवसर पर महर्षि दयानन्द के गुरु 'स्वामी बिरजानन्द का जीवन चरित्र' भी पद्य में लिखा था। इसके उपरान्त आप स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में भी 'आर्य दयानन्द' नामक एक महाकाव्य लिखना चाहते थे और उसके कुछ अंश लिखे भी थे, किन्तु खेद है कि आपकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। आपकी 'गगन गंगा' नामक पुस्तक में आकाशीय नक्षत्रों के सम्बन्ध में बालोपयोगी स्फुट कविताएँ संकलित हैं।
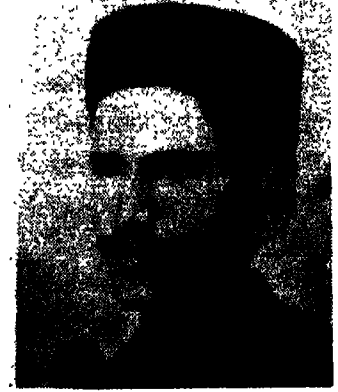
बाल-साहित्य के निर्माण में 'विभु' जी ने जितनी प्रतिभा का परिचय दिया था कदाचित् हिन्दी में ऐसे लेखक कम ही हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में लिखा गया आपका शोध प्रबन्ध 'अभिधान अनुशीलन' हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित हो चुका है। यह एक विचित्र चमत्कार ही कहा जायगा कि बी० ए० में भूगोल विषय लेने पर भी आपने हिन्दी-साहित्य में इतनी प्रतिभा प्रदर्शित की थी। आप सेवा-निवृत्ति तक डी० ए० वी० स्कूल, इलाहाबाद में अध्यापन-कार्य करते रहे थे और सन्

1955 में आपने कानपुर आकर वहाँ के आर्य नगर मोहल्ले में किताबों और स्टेशनरी की एक छोटी-सी दुकान खोल ली थी। आपने इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'शिशु' तथा 'चमचम' नामक बालोपयोगी पत्रों का सम्पादन भी कुछ दिन तक किया था।

आपका निधन 27 सितम्बर सन् 1965 को इलाहाबाद में हुआ था।

श्रीमती विद्यावती मिश्र

श्रीमती विद्यावती जी का जन्म कानपुर जनपद के गौर (पुखरायाँ) नामक स्थान में सन् 1918 में हुआ था। आपका विवाह शाहजहाँपुर के एक सम्भ्रान्त कान्यकुब्ज ब्राह्मण-परिवार में हुआ था और थोड़े ही दिन बाद आपको वैधव्य की वेदना सहन करनी पड़ी थी। पितृ-वंश की भाँति आपकी ससुराल के सब लोग भी विद्या-व्यसनी थे। अत: आपने अपना सारा जीवन स्वाध्याय तथा सत्संग में ही व्यतीत किया था।

आपके वैधव्य की वेदना एक दिन सन् 1933 में अचानक कविता में फूट पड़ी और आप धीरे-धीरे अत्यन्त प्रौढ़ रचनाएँ करने लगीं। आपकी पहली रचना काशी से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'चेतना' में प्रकाशित हुई थी और धीरे-धीरे आप हिन्दी के अतिरिक्त अवधी भाषा में भी रचना करने लगी थीं। आपके द्वारा लिखित संगीत-रूपक तथा बाल-कविताएँ आकाशवाणी के लखनऊ-केन्द्र से भी प्रसारित होती रहती थीं।

आपकी रचनाओं के संकलन 'ज्योति', 'प्रतीक्षा', 'श्रद्धा', 'मुक्ति' तथा 'कठोपनिषद्' (अनुवाद) नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से 'प्रतीक्षा' तथा 'मुक्ति' पर उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कार भी मिल चुका है।

आपका निधन सन् 1974 में लखनऊ में अपने देवर श्री शिवशंकर मिश्र के पास हुआ था।

श्रीमती विद्यावती वर्मा

श्रीमती विद्यावती वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर नामक नगर में सन् 1914 में हुआ था और आप दिल्ली-राज्य-प्रशासन के भूतपूर्व जन-सम्पर्क निदेशक और उर्दू दैनिक 'तेज' के प्रधान सम्पादक श्री रामलाल वर्मा की धर्मपत्नी थीं। दिल्ली प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना के दिनों में आपने हिन्दी के प्रचार और प्रसार में सक्रिय रूप से भाग लिया था और उसकी स्थायी समिति की सदस्या भी रही थीं।

एक सफल समाज-सेविका होने के साथ-साथ आप हिन्दी की उत्कृष्ट कवयित्री भी थीं। आपकी रचना हमारे द्वारा सम्पादित 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम-गीत' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई थी।

आपका निधन 24 मई सन् 1951 को दिल्ली में हुआ था।

श्रीमती विद्यावती सेठ

श्रीमती विद्यावती सेठ का जन्म उत्तर प्रदेश के सीतापुर जन-

पद के बिसवाँ नामक नगर के एक सम्भ्रान्त परिवार में सन् 1888 को हुआ था। आपके पिता ब्रजबिहारी सेठ रेलवे में उच्च अधिकारी थे और श्रीमती विद्यावती के जन्म के समय तक आर्यसमाजी बन चुके थे। वे स्त्री-शिक्षा के कट्टर हिमायती थे, इसीलिए उन्होंने विद्यावतीजी को उच्च-से-उच्चतम शिक्षा दिलाने की दृष्टि से लखनऊ के आई० टी० कालेज में प्रविष्ट कराया था। सन् 1917 में जब विद्यावतीजी ने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की, उस समय सारे उत्तर प्रदेश में वे प्रथम हिन्दू कन्या थीं।

बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त जब आपसे विवाह करने की बात कही गई तो आपने यावज्जीवन ब्रह्मचारिणी रहकर वैदिक धर्म के अनुसार समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रचार करने का अपना विचार परिवार वालों पर प्रकट कर दिया। यह भी एक सुयोग ही था कि आपके इस आदर्श की सम्पूर्ति के लिए आपको देहरादून की 'महादेवी कन्या पाठशाला' में प्राचार्य के पद पर कार्य करने का सुअवसर मिल गया। अपने छात्र-जीवन से ही आपकी रुचि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर लेखादि लिखने की ओर थी और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते रहने के संस्कार भी आपके मानस में चिर-काल से समाए हुए थे। संयोगवश जब आप सन् 1916 में लखनऊ में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुईं तब आपकी भेंट श्री गोपालकृष्ण गोखले से हो गई। उनके सम्पर्क ने आपकी राष्ट्रीय भावनाओं को और भी उभारा तथा आप कांग्रेस की गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से भाग लेने लगीं।

सन् 1919 में हुए 'जलियाँ वाला बाग' के हत्याकाण्ड ने तो आपके मानस को और भी झकझोर दिया और आप धीरे-धीरे महात्मा गान्धी के सम्पर्क में आईं। उन्हीं दिनों आपकी भेंट स्वामी श्रद्धानन्द और आचार्य रामदेव से हो गई, जो गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक तथा आचार्य थे। स्वामीजी ने वैदिक आदर्शों पर कन्याओं को शिक्षा देने के निमित्त दिल्ली में लाला रग्घूमल के सात्विक दान से 8 नवम्बर सन् 1923 को दरियागंज दिल्ली में विधिवत् एक 'कन्या गुरुकुल' की स्थापना कर दी और आपको इसकी आचार्या बनाया गया। बाद में यह संस्था देहरादून ले जाई गई, जो आज भी 'कन्या गुरुकुल देहरादून' के नाम से राजपुर रोड पर है और देश की उल्लेखनीय सेवा कर रही है। आपने इस संस्था को उत्तर भारत में स्त्री-शिक्षा का ऐसा आदर्श केन्द्र बना दिया कि जिसमें भारत के विभिन्न प्रदेशों की कन्याओं के अतिरिक्त फीजी तथा अफ्रीका आदि समुद्र-पार के देशों की कन्याएँ भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। आपने स्त्री-शिक्षा के प्रति महात्मा गान्धी का आशीर्वाद प्राप्त करके वहाँ से 'ज्योति' नामक एक हिन्दी की मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की थी। इसमें देश की तत्कालीन राजनीति से सम्बन्धित सामग्री के अलावा समाज, धर्म एवं संस्कृति से समन्वित सामग्री भी प्रचुर मात्रा में रहा करती थी। आपकी सम्पादन-कला का उत्कृष्टतम रूप उसके अंकों में देखा जा सकता है।

'ज्योति' के माध्यम से श्रीमती विद्यावतीजी ने जहाँ अपनी संस्था की कन्याओं में लेखन के प्रति रुचि जागृत की वहाँ सारे देश की महिलाओं में भी नई भावनाओं का संचार किया। उस समय नारी-जागरण-सम्बन्धी वह अकेली पत्रिका थी। कन्या गुरुकुल की 23 वर्ष तक अथक सेवा करने के उपरान्त आपने वहाँ से निवृत्ति पाकर सन् 1945 में देहरादून में ही देश की असहाय महिलाओं की सहायता करने की भावना से एक 'महिला आश्रम' की स्थापना की और उसके माध्यम से असंख्य निरीह तथा निराश्रित नारियों के उद्धार का अभिनन्दनीय कार्य किया।

आपका निधन 30 जून सन् 1974 को देहरादून में हुआ था।

श्री विद्यास्वरूप वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म 26 सितम्बर सन् 1920 को मेरठ में

हुआ था। और बाद में देहरादून रहने लगे थे। सन् 1940 से सन् 1960 तक आपने देहरादून में एक साहित्यिक गोष्ठी का समायोजन किया था, जिसमें 24 सदस्य भाग लिया करते थे। यह गोष्ठी जे० एस० नाइट कालेज, चकरौता रोड, देहरादून में सम्पन्न हुआ करती थी।
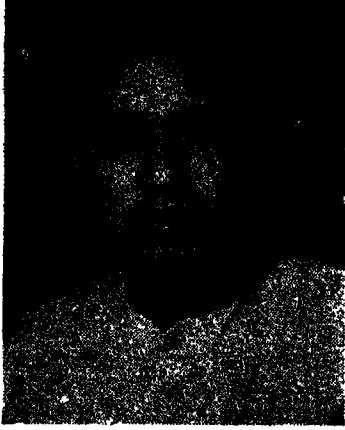
गान्धीवादी विचार-धारा के अनुयायी होने के फलस्वरूप आप गान्धीजी के पक्के शिष्यों में गिने जाने लगे थे। आपने महात्मा गान्धी द्वारा संचालित 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' के उन्नयन में सक्रिय सदस्य के रूप में अपार योगदान किया था। यह एक ऐतिहासिक गौरव की बात है कि श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को मद्रास में हिन्दी पढ़ाने का प्रथम श्रेय आपको ही प्राप्त हुआ था। आपकी दो रचनाएँ 'विस्मृता' तथा 'धूल और चरण' प्रकाशित हुई थीं। इनके अतिरिक्त काफी रचनाएँ प्रकाशन की प्रतीक्षा में पाण्डु-लिपियों के रूप में विद्यमान हैं।

यह हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि आप-जैसे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति अधिक समय तक हिन्दी की सेवा न कर सके और 20 जनवरी सन् 1961 को ही सदा के लिए इस संसार को छोड़कर चले गए। आप मृत्यु-पर्यन्त 'श्री लक्ष्मण विद्यालय, देहरादून' में प्रधानाचार्य के पद पर आसीन रहे थे।

श्री विनयकुमार भारती

श्री विनयकुमारजी का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जनपद के नर्मदा-तटवर्ती झालसिर नामक ग्राम में 10 अगस्त सन् 1907 को हुआ था। आपका वास्तविक नाम श्री रघुनाथ-प्रसाद भारती था। आपके पिता श्री गुलाब भारती जाति के गोसाईं होते हुए भी भिक्षा-वृत्ति न करके कृषि-कार्य से ही अपना जीवन-निर्वाह किया करते थे। श्री विनयकुमार की शिक्षा-दीक्षा सांगाखेड़ा खुर्द, सेमरी हस्पाद तथा इटारसी के प्राथमिक और वर्नाकुलर मिडिल स्कूलों में हुई थी। पिता की आर्थिक अवस्था क्षीण होने के कारण आपको प्रारम्भ से ही स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करने को विवश होना पड़ा था। आप अभी खण्डवा के नार्मल स्कूल में शिक्षण की ट्रेनिंग ही ले रहे थे कि सन् 1928 में आपके पिता का देहा-वसान हो गया। माता पहले ही विदा हो चुकी थीं। फलस्वरूप नार्मल की ट्रेनिंग प्राप्त करने के उपरान्त आप इटारसी के मिडिल स्कूल में 'हिन्दी-अध्यापक' के रूप में कार्य करने लगे। वहाँ से आप बैतूल गए और बैतूल से फिर इटारसी लौट आए और वहाँ की नगरपालिका की प्राथमिक पाठशाला में अध्यापक हो गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वहीं रहे।

सन् 1939 मे आपको यक्ष्मा की घातक बीमारी लग गई। आपकी चिकित्सा के भी अनेक प्रयास किए गए। बैतूल के सेठ केशरीचन्द गोरी ने आपकी चिकित्सा के लिए अनेक सुविधाएँ जुटाईं, किन्तु बीमारी बढ़ती ही गई। कुमारी बारबरा हार्टलैण्ड नाम की एक महिला आपको चिकित्सार्थ वर्धा ले जाने के विचार से राष्ट्रपिता गान्धीजी की अनुमति प्राप्त करने वहाँ गईं, किन्तु दैव के विधान के सामने किसी की कुछ भी न चली और 8 दिसम्बर सन् 1940 को यह प्रतिभाशाली कवि असमय में ही अपनी 19 वर्षीया पत्नी सरस्वती देवी तथा अबोध पुत्र घनश्याम को छोड़कर अचानक ही चल बसा।

इटारसी में अध्यापन-कार्य करते हुए विनयकुमार का परिचय पं० माखनलाल चतुर्वेदीजी से हो गया था। उनके

सम्पर्क तथा सान्निध्य से आपकी अनुभूतियों ने नई प्रेरणा पाई और आपकी रचनाएँ 'कर्मवीर' में प्रकाशित होने लगीं। कविताओं के अतिरिक्त आपने लेख और कहानियाँ भी लिखी थीं। अपने जीवन-काल में आपका विचार अपनी कविताओं का संकलन 'गीत-श्री' के नाम से प्रकाशित करके श्री माखनलाल चतुर्वेदी को समर्पित करने का था, किन्तु आप ऐसा न कर सके। यह प्रसन्नता की बात है आपके निधन के उपरान्त आपकी रचनाओं का एक संकलन 'मध्य-प्रदेश विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के सत्प्रयास से 'स्वर्गीय कवि श्री विनयकुमार भारती के गीत' नाम से सन् 1949 में प्रकाशित हुआ है। इस संकलन की भूमिका में श्री माखन-लाल चतुर्वेदी ने यह ठीक ही लिखा था—"जिसका गर्व, जिसका स्नेह-भाव, जिसका पागलपन, जिसके गीत, जिसका गुस्सा और जिसकी अपनों तक पर बिगड़ उठने वाली बेकाबू जिन्दगी, और माला के इन सब दानों पर सुमेरु बनता-सा, जिसका आराध्य के चरणों में आत्म-समर्पण, सब-कुछ प्यार करने की वस्तु रहा।...वैरागी वह, जब रागमयी वाणी में अनुराग-रंजित स्वर उमेठकर अपने प्रभु के लिए अपनी बिना तारों वाली उर की वीणा झंकारता तब जाने वह कैसा हो जाता। कभी-कभी मुझे भ्रम होता, कहीं वह पागल तो नहीं हो जायगा। किन्तु उसके गीत, और उसकी भर्त्सना, बहुतों के बड़प्पन का ज्वार उतार दिया करते।"

पण्डित विनायकराव 'नायक'

आपका जन्म (मध्यप्रदेश) सागर जिले के एक ग्राम में सन् 1855 में हुआ था। सागर के हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने सन् 1875 में जबलपुर से एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके उपरान्त सन् 1886 से निरन्तर 34 वर्ष तक आपने मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग के अनेक विद्यालयों में सहकारी अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक रूप में अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य किया था। इस अवधि में आप जबलपुर के नार्मल स्कूल के सुपरिंटेंडेंट तथा ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट के अध्यापक भी रहे थे। अपनी असीम योग्यता तथा कार्य-कुशलता के बल पर आपने इस क्षेत्र में रहते हुए अपने सभी वरिष्ठ अधिकारियों का जो स्नेह और सम्मान अर्जित किया था वह आपकी लोकप्रियता का परिचायक है।

आप एक कुशल शिक्षक होने के साथ-साथ प्रतिभाशाली लेखक भी थे। आपकी योग्यता और प्रतिभा का इससे अधिक सुपुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है कि जिस समय काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से 'वैज्ञानिक कोश' तैयार किया जा रहा था तब आपको मध्य प्रदेश सरकार की ओर से उस कार्य के लिए स्थायी प्रति-निधि बनाकर भेजा गया था। 22 जनवरी सन् 1908 को 'भानु कवि समाज जबलपुर' ने आपको 'नायक' कवि की उपाधि से सम्मानित किया था।

आप अँग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत और उर्दू आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता होने के साथ-साथ मराठी के भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपके द्वारा की गई 'रामचरितमानस' की 'विनायकी टीका' हिन्दी-पाठकों में पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित कर चुकी है। दो भागों में प्रकाशित आपका 'काव्य-कुसुमाकर' नामक ग्रन्थ भी हिन्दी में पर्याप्त समादृत हुआ था। आपके सुपुत्र श्री भवानीप्रसाद तिवारी हिन्दी के ख्याति-प्राप्त साहित्यकार तथा कवि थे।

आपका निधन सन् 1924 में हुआ था।

श्री विनायकराव विद्यालंकार

आपका जन्म 3 फरवरी सन् 1896 को आन्ध्र प्रदेश के कलम (उस्मानाबाद) नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता श्री केशवराव कोरटकर विचारों से पक्के आर्यसमाजी

थे, इसलिए उन्होंने श्री विनायकरावजी को सन् 1904 में विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में भेजा था। आपने वहाँ से सन् 1919 में स्नातक होकर वहाँ की 'विद्यालंकार' उपाधि प्राप्त की थी। गुरुकुल से आकर आपने पूना के कृषि विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया और सन् 1920 में बैरिस्टरी करने के विचार से 'लन्दन' चले गए। सन् 1923 में जब आप विधिवत् बैरिस्टर होकर लन्दन से हैदराबाद लौटे तो प्रैक्टिस करने लगे।
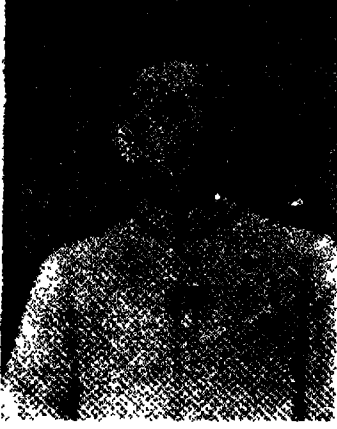
एक अच्छे वकील के रूप में तो आपने ख्याति अर्जित की ही, साथ ही समाज-सेवा के क्षेत्र में भी आपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। उन्हीं दिनों आप आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद के अध्यक्ष बनाए गए। सन् 1950 में आप जहाँ आन्ध्र प्रदेश सरकार में सचिव के पद पर रहे थे वहाँ सन् 1951 से सन् 1953 तक वहाँ के मंत्रि-मंडल के सदस्य भी रहे थे। जुलाई सन् 1939 में जब हैदराबाद का प्रख्यात 'आर्य सत्याग्रह' चला था तब आप उसके आठवें सर्वाधिकारी (डिक्टेटर) नियुक्त हुए थे। आन्ध्र प्रदेश के आर्यसमाजों की ऐसी कोई गतिविधि नहीं होती थी जिसमें आपका विशेष सहयोग न रहता हो।

आप एक उच्चकोटि के वकील तथा समाज-सेवक होने के अतिरिक्त उत्कृष्ट लेखक और पत्रकार भी थे। आपने सन् 1947 में हैदराबाद से 'आर्यभानु' नामक जो साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था उससे आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय उन दिनों मिला था। सन् 1961 में आपने दक्षिण भारत में सर्वप्रथम हिन्दी माध्यम के डिग्री कालेज की स्थापना की थी। आप लेखक भी उच्चकोटि के थे। आपकी 'महात्मा गान्धी की संक्षिप्त जीवनी', 'चाबुक' (कहानी-संग्रह) तथा 'अब्राहम लिंकन की जीवनी' उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। आपकी साहित्य, शिक्षा तथा संस्कृति के क्षेत्र में की गई असंख्य उल्लेखनीय सेवाओं के लिए आपको सन् 1957 में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मानद उपाधि 'विद्या मार्तण्ड' प्रदान की थी।

आपका निधन 3 सितम्बर सन् 1962 को हुआ था।

श्री विनोद विभाकर

श्री विनोद विभाकर का जन्म सन् 1937 में दिल्ली में हुआ था। आपका पूरा नाम 'विनोदकुमार जैन' था। आप जब केवल 2 वर्ष के ही थे कि आपके पिताजी का देहावसान हो गया था और आपका पालन-पोषण आपकी माताजी ने अथक परिश्रम करके किया था। प्रारम्भ से ही आपकी रुचि भ्रमण, अध्ययन और लेखन की ओर थी और वैज्ञानिक तथ्यों का परिचय आप बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक प्राप्त करने का प्रयास किया करते थे।

आपने केवल 19 वर्ष की आयु में लिखना प्रारम्भ कर दिया था और आपकी सबसे पहली रचना दिल्ली से प्रकाशित होने वाले कृषि-साप्ताहिक 'सेवाग्राम' तथा 'हरिश्चन्द्र' मासिक में सन् 1960 में प्रकाशित हुई थी। सन् 1963 से सन् 1966 तक आपने 'वीर' पाक्षिक के सम्पादकीय विभाग में विशुद्ध सेवा भाव से अवैतनिक ही कार्य किया था और सन् 1967-68 में आप दिल्ली की प्रख्यात प्रकाशन-संस्था 'शकुन प्रकाशन' से जुड़ गए थे। लेखन के प्रति आपका इतना झुकाव हो गया था कि इस बीच आपने भारत सरकार की 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण-परिषद्' द्वारा आयोजित 'प्रथम लेखक कर्मशाला' में भाग

लेकर 'ग्राम की खेती' विषय पर एक लघु शोध-लेख भी लिखा था।

आपकी साहित्यिक सेवाओं एवं वैज्ञानिक अभिरुचि को दृष्टि में रखकर 'मध्यप्रदेश भौगोलिक एवं विज्ञान परिषद्' ने आपको अपना 'मानद सदस्य' मनोनीत किया था और 'सेवाग्राम' ने आपके नाम के साथ 'विभाकर' लगाकर आपको 'विनोदकुमार जैन' से 'विनोद विभाकर' बनाया था। इस बीच जब 21 जून सन् 1971 को आपकी माताजी का देहावसान हो गया तो आपने उनकी प्रथम पुण्य तिथि पर 'उन्हें हम कैसे भूलें' नाम से एक अनोखी संस्मरण-पुस्तक प्रकाशित की थी। 'विभाकर' जी की यही प्रथम पुस्तक थी। इसके उपरान्त आपकी 'माटी हो गई सोना' (1972), 'यह माटी है बलिदान की' (1973), 'जय पराजय' (1974) तथा 'पंचायती राज बदलते रूप' (1976) नामक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं वे प्रायः सभी उत्तर प्रदेश एवं भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा पुरस्कृत हुई थीं।

आपका निधन 13 जून सन् 1976 को हुआ था।

श्रीमती विमला कपूर

श्रीमती कपूर का जन्म सन् 1920 में शिमला में हुआ था। आपके पिता श्री नन्दकिशोर वर्मा भारतीय सेना में उच्च अधिकारी थे। सन् 1942 में आपका विवाह कानपुर के प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्त्ता श्री पुरुषोत्तमलाल कपूर के साथ हुआ था। आपके परिवार का सारा ही वातावरण साहित्योन्मुख था। वे संस्कार आपमें भी सहज ही आ गए और आप कहानियाँ तथा निबन्ध आदि लिखने लगीं। आपकी रचनाएँ 'विशाल भारत', 'विश्वमित्र', 'राम राज्य', 'जागरण', 'प्रताप', 'हंस', 'धर्मयुग', 'कर्मवीर' और 'सिटीजन' आदि पत्रों में ससम्मान छपती रही थीं।

आप उत्कृष्ट लेखिका होने के साथ-साथ प्रख्यात समाज-सेविका भी थीं। इस सन्दर्भ में आपने समुद्री जहाज द्वारा एक बार 'बर्लिन' की यात्रा भी की थी। इस यात्रा से लौटते हुए आपने अदन, इंगलैंड, स्विट्जरलैंड, इटली, पोलैण्ड और चेकोस्लोवाकिया आदि देशों का भी भ्रमण किया था। इस यात्रा ने आपकी अनुभूतियों को और भी गहराई प्रदान की तथा आपने अपना यात्रा-वृत्तान्त 'अनजाने देशों में' नामक पुस्तक के रूप में हिन्दी-संसार को प्रदान किया। आपकी यह यात्रा 'जर्मन गणतन्त्रीय अन्तर्राष्ट्रीय युवा महोत्सव' के प्रसंग में हुई थी। आपकी इस यात्रा-पुस्तक की भूमिका में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने यह ठीक ही लिखा था—"हमारी भाषा में महिलाओं द्वारा रचित यात्रा-पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। विमलाजी का यह ग्रन्थ इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है।"

आपकी इस पुस्तक में यात्रा-विवरण 'रिपोर्ताज' की शैली में लिखा गया है। आपके अनुज श्री रामकुमार तथा निर्मल वर्मा भी हिन्दी के अच्छे साहित्यकार हैं। श्री रामकुमार जहाँ एक अच्छे रिपोर्ताज-लेखक और चित्रकार के रूप में ख्याति-लब्ध हैं वहाँ श्री निर्मल वर्मा हिन्दी की नई पीढ़ी के सशक्त कथाकारों में अग्रणी स्थान रखते है। आपकी लेखन-शैली की उत्कृष्टता का इससे अधिक सुपुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपकी रचनाओं की प्रशंसा सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त तथा पृथ्वीराज कपूर आदि अनेक महानुभावों ने मुक्तकण्ठ से की थी।

कानपुर के राजनीतिक जीवन में आपका साम्यवादी विचार-धारा वाले संगठनों से निकट का सम्पर्क था। सर्वश्री रुद्रदत्त भारद्वाज, सज्जाद जहीर, अजय घोष, पूरनचन्द जोशी और सुदर्शन 'चक्र' आदि आपकी कार्य-प्रणाली के बड़े प्रशंसक रहे थे।

आपका निधन 26 फरवरी सन् 1973 को कानपुर के लाला लाजपतराय अस्पताल में थोड़ी-सी बीमारी के उपरान्त हुआ था।

श्री विश्वनाथ कृष्ण टेंबे

श्री टेंबेजी का जन्म 29 नवम्बर सन् 1919 को बम्बई (महाराष्ट्र) में हुआ था। आप महाराष्ट्र के उत्कृष्ट कोटि के हिन्दी-प्रचारक होने के साथ-साथ सेवा-भावी सामाजिक कार्यकर्त्ता थे। आपने सन् 1943 से सन् 1957 तक विशुद्ध सेवा-भावना से उच्च कक्षाओं में हिन्दी का अध्यापन सफलतापूर्वक किया था। आप जहाँ हिन्दी और उर्दू का अच्छा ज्ञान रखते थे वहाँ उच्चकोटि के वक्ता भी थे।

यह आपकी ही विशेषता है कि आपने केवल अपने हिन्दी-प्रचार-कार्य के बल पर महाराष्ट्र विधानसभा का चुनाव लड़ा था और उसमें आशातीत सफलता प्राप्त की थी। आपने मराठी के प्रख्यात साहित्यकार मामा साहेब वरेरकर के प्रसिद्ध नाटक 'भूमि-कन्या सीता' का हिन्दी-अनुवाद किया था, जो बम्बई तथा दिल्ली आदि स्थानों पर सफलतापूर्वक अभिनीत किया गया था।

आपका निधन 30 अगस्त सन् 1978 को बम्बई में ही हुआ था।

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

डॉ० प्रसाद का जन्म बिहार प्रदेश के शाहाबाद जनपद के मुरार नामक ग्राम में 30 अगस्त सन् 1905 को हुआ था। आपने पटना विश्वविद्यालय से संस्कृत तथा हिन्दी विषयों में एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त 'भोजपुरी भाषा की ध्वनियों का वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर लन्दन विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि ग्रहण की थी। आपने संस्कृत की 'साहित्याचार्य' और हिन्दी की 'साहित्य-रत्न' की परीक्षाएँ भी योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण की थीं। आपने शिक्षार्थ लन्दन के अतिरिक्त फ्रांस तथा जर्मनी की यात्राएँ भी की थीं।

विद्याध्ययन के अनन्तर आप सन् 1930 से सन् 1934 तक नालन्दा कालेज (बिहार शरीफ) में संस्कृत के प्राध्यापक और सन् 1934 से सन् 1936 तक तेजनारायण जुबली कालेज, भागलपुर में तथा सन् 1936 से सन् 1950 तक पटना कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक रहे थे। सन् 1950 में आप पटना विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभागाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए थे और तदनन्तर सन् 1955 में आप लिंग्विस्टिक स्कूल, पूना में वरिष्ठ हिन्दी प्रोफेसर बने थे। सन् 1957 से सन् 1965 तक आप आगरा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संचालित 'कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी भाषा-विज्ञान हिन्दी विद्यापीठ' के निर्देशक रहने के उपरान्त केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में निदेशक के रूप में आ गए थे।

सन् 1938 से सन् 1940 तक आप 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के मन्त्री और प्रारम्भ से सन् 1959 तक 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' के 'संचालक मण्डल' के सम्मानित सदस्य भी रहे थे। आपने पटना विश्वविद्यालय के सन्दर्भ-ग्रन्थों के सम्पादक-मण्डल का अन्यतम सदस्य रहने के साथ-साथ अनेक पत्र-पत्रिकाओं और अभिनन्दन-ग्रन्थों के सम्पादन में भी अपना अन्यतम सहयोग दिया था। आप हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं के सुलेखक होने के साथ-साथ सहृदय कवि भी थे। आपके प्रकाशित ग्रन्थों में 'अश्रु शतकम्' (संस्कृत), 'मोती के दाने' (हिन्दी-कविता) तथा 'कृषि कोश' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आप किसी समय बिहार के अत्यन्त लोकप्रिय कवियों में गिने जाते थे। आपकी 'माँ' शीर्षक कविता वहाँ की अनेक पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ाई जाती थी। उसकी :

सब देव-देवियाँ एक ओर,
ऐ माँ! मेरी तू एक ओर!

पंक्तियाँ आज भी वहाँ के अनेक प्रौढ़ नागरिकों की जबान पर चढ़ी हुई हैं। यह कविता हमारे द्वारा सम्पादित 'नारी तेरे रूप अनेक' संकलन में भी उद्धृत की गई है।

आपने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के नवें अधि-

वेशन में 'कुरमाली भाषा और साहित्य' विषय पर एक शोध-निबन्ध का वाचन भी किया था। यह निबन्ध परिषद् की ओर से प्रकाशित 'पंचदश लोक-भाषा निबन्धावली' नामक ग्रन्थ में भी प्रकाशित हो चुका है।
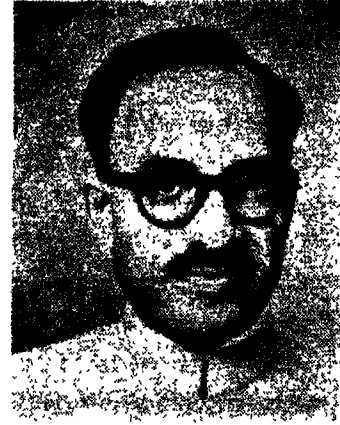
आपका असामयिक निधन सन् 1968 में हुआ था।

आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री

आचार्यजी का जन्म 30 सितम्बर सन् 1897 को पंजाब के सरगोधा (अब पाकिस्तान) जनपद के भेरा नामक कस्बे में हुआ था। आपके पिता श्री रामलुभाया 'आनन्द' पुलिस-कर्मचारी होते हुए भी पंजाबी भाषा के उत्कृष्ट कवि थे। उनके द्वारा लिखित 'पंजाबी रामायण' को आचार्यजी ने सम्पादित करके देवनागरी लिपि में साधु आश्रम होशियारपुर से प्रकाशित करा दिया है। आपकी शिक्षा डी० ए० वी० कालेज, लाहौर में हुई थी और आपने वहाँ से ही एम० ए० (संस्कृत) की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम आकर श्रेष्ठता का प्रमाण-पत्र भी प्राप्त किया था। जब आपको इंगलैण्ड जाकर अपना अध्ययन जारी रखने के निमित्त 12 हजार रुपए की शासकीय स्कालरशिप देने की घोषणा की गई तब आपने यह कहकर उसे 'अस्वीकार' कर दिया था कि विदेशों में कहीं भी प्राच्य भाषाओं के अध्ययनार्थ कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं है। आपकी संस्कृत वाङ्मय के प्रति इतनी अधिक आस्था थी कि आपने वैदिक साहित्य के प्रचार-प्रसार में ही अपने जीवन को खपा देने का 'भीष्म व्रत' ले लिया और आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे।

आर्यसमाज के जिन दो संन्यासियों के संकल्प की सम्पूर्ति के लिए आचार्यजी ने अपने जीवन को वैदिक साहित्य के उन्नयन तथा प्रकाशन में लगाया उन महाभागों के नाम थे ब्रह्मचारी नित्यानन्द तथा स्वामी विश्वेश्वरनन्द। इन दोनों विभूतियों ने सन् 1903 में कश्मीर के गुलमर्ग नामक स्थान में 'वैदिक कोश' बनाने की जो क्रान्तिकारी एवं महत्त्वपूर्ण योजना बनाई थी और जिसकी सम्पूर्ति के लिए उन्हीं दिनों बड़ौदा राज्य के संस्कृत-प्रेमी नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ ने 1 लाख 75 हजार रुपए का पवित्र दान दिया था, उसे सन् 1908 से सन् 1910 तक शिमला की शान्त कुटिया में बैठकर उन्होंने पूर्ण किया और चारों वेदों की अनुक्रमणिका वर्णानुक्रम से तैयार करके उसे 4 भागों में प्रकाशित भी कर दिया था। स्वामी नित्यानन्दजी के असामयिक स्वर्गवास के अनन्तर 'वैदिक कोश के निर्माण और अनुशासन' का यह कार्य आचार्य विश्वबन्धु को सौंपा गया। आप उन दिनों डी० ए० वी० कालेज की ओर से संचालित 'दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय' के आचार्य थे। इस प्रकार 1 जनवरी सन् 1924 को 'विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान' की विधिवत् स्थापना हुई और आचार्यजी उसके 'अवैतनिक निदेशक' नियुक्त हुए।

इस संस्थान के माध्यम से आचार्यजी ने वैदिक साहित्य के निर्माण और प्रकाशन का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया था उससे समस्त साहित्य-प्रेमी भली-भाँति परिचित हैं। आप जहाँ उच्चकोटि के संस्कृति-शोधक एवं वैदिक वाङ्मय के निष्णात पण्डित थे वहाँ गम्भीर साहित्य की सर्जना के क्षेत्र में भी आपने अनन्य योगदान दिया था। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'वेद सार', 'वैदिक साहित्य का परिचय', 'वैदिक संकल्प सन्ध्या', 'मानवता का मान', 'गीता का कर्मयोग', 'स्थितप्रज्ञोपनिषद्', 'सत्संग सार', 'पंच सार', 'आर्य दर्पण' तथा 'पंजाब की भाषा-विषयक समस्या' विशेष रूप से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'भारत की भाषा और लिपि', 'देवनागरी लिपि का सुधार' और 'दयानन्द : स्वतन्त्रता का अग्रदूत' नामक पुस्तकें भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आपने भारत के विभाजन के उपरान्त होशियारपुर के 'साधु आश्रम' में इस शोध-संस्था को पुनर्स्थापित करने में जो अथक परिश्रम किया था, उसीका सुपरिणाम यह है कि आज यह संस्थान विश्व की प्रमुख

शोध-संस्थाओं में गिना जाता है। आपने जहाँ इस संस्थान के माध्यम से अनेक महत्त्वपूर्ण गौरव-ग्रन्थों का प्रकाशन किया था वहाँ इसकी ओर से आपके सम्पादन में प्रकाशित होने वाली 'विश्व-ज्योति' नामक पत्रिका ने भी हिन्दी-साहित्य की अभिनन्दनीय सेवा की है। इस पत्रिका प्रत्येक वर्ष प्रकाशित होने वाले विशेषांकों ने भारतीय वाङ्मय में एक सर्वथा नया कीर्तिमान स्थापित किया था। यहाँ यह भी विशेष रूप से ध्यातव्य तथ्य है कि इस पत्रिका के सम्पादन में आपको श्री सन्तराम बी० ए०-जैसे प्रतिष्ठित एवं वयोवृद्ध लेखक का भी सहयोग बराबर मिलता रहा था और आपके निधन के बाद वे ही इस पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं। आचार्यजी की भारतीय वाङ्मय के प्रति की गई उल्लेखनीय सेवाओं को दृष्टि में रखकर भारत गणराज्य के राष्ट्रपति ने 'पद्मभूषण' की सम्मानित उपाधि से भी विभूषित किया था।

आपका असामयिक देहावसान 1 अगस्त सन् 1973 को चण्डीगढ़ में हुआ था।

श्री विश्वम्भरदत्त चन्दोला

श्री चन्दोलाजी का जन्म 2 नवम्बर सन् 1879 को गढ़वाल प्रदेश के थापली नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता पंडित लूथराजजी पंजाब से आकर रुहेलखण्ड डिवीजन के चन्दौसी नामक स्थान में बस गए थे और वे सारस्वत ब्राह्मण थे। चन्दोलाजी के नाना पं० द्विजपति घिल्डियाल गोरखा सेना में धर्माधिकारी थे और आप स्थायी रूप से देहरादून रहा करते थे। चन्दोलाजी का परिवार आपके नानाजी के मकान में ही देहरादून आकर रहने लगा। आपके नानाजी ने वह मकान आपके पिता को ही समर्पित कर दिया था। श्री चन्दोलाजी की शिक्षा-दीक्षा भी भली प्रकार नहीं हो सकी थी, क्योंकि आपके माता-पिता का देहावसान असमय में ही हो गया था। अपने पिता की ज्येष्ठ सन्तान होने के नाते परिवार के भरण-पोषण का सारा भार आपके ही कन्धों पर आ पड़ा था। अतः अपने अध्ययन को बीच में ही छोड़कर आपको सर्वे ऑफ इण्डिया में नौकरी करनी पड़ी थी।
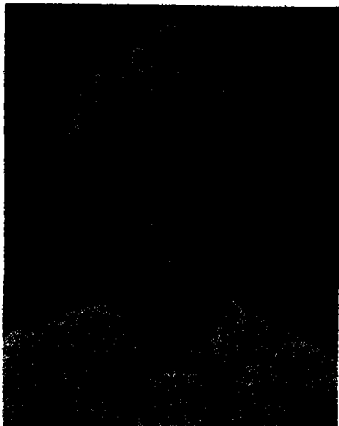
अपनी नौकरी के सिलसिले में आपको गोरखा पलटन के साथ पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश में 'चित्राल' नामक स्थान पर भी जाना पड़ा था। वहाँ आप 28 महीने रहे थे। उस समय के गोरखा पलटन के कप्तान शेक्सपीयर ने आपकी बुद्धिमानी और कार्य-शक्ति की प्रशंसा करते हुए यह कहा था—"यदि आप ब्रिटेन में जन्मे होते तो आज उन्हीं-जैसे अफसरों की श्रेणी में होते"। क्योंकि सोल्जर्स क्लर्क के नाते चन्दोलाजी को अपनी कम्पनी के साथ चाँदमारी भी करनी होती थी इसलिए आपका मन नौकरी में नहीं लगा और आप वहाँ से त्यागपत्र देकर देहरादून लौट आए।

देहरादून आकर आपने 'गढ़वाल यूनियन' नामक संस्था की बैठकों में भाग लेना प्रारम्भ किया और उसके मुख पत्र के रूप में 'गढ़वाली' नामक मासिक पत्र के प्रकाशन की योजना बनाई गई। उसका प्रथम अंक मई सन् 1905 में प्रकाशित हुआ था। प्रारम्भ में इस पत्र का सम्पादन एक सम्पादक-मण्डल द्वारा होता था किन्तु बाद में सारा भार चन्दोलाजी पर ही आ पड़ा और आपने सन् 1911 में गढ़वाली प्रेस की स्थापना की। 'गढ़वाली' में आपने समय-समय पर निर्भीकतापूर्वक जहाँ ब्रिटिश सरकार की आलोचना की वहाँ गढ़वाल और कुमायूँ में परम्परा से चली आने वाली बेगार-प्रथा के खिलाफ आन्दोलन करके बन्द कराया। देश के स्वतन्त्रता-आन्दोलन को बल देने की दृष्टि से आपने 'गढ़वाली' के माध्यम से अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किया। भारत की स्वाधीनता के समर्थक जो अनेक क्रान्तिकारी आपके पास उन दिनों आया करते थे, उनमें दिल्ली बम केस के प्रमुख अभियुक्त श्री रासबिहारी बोस भी थे, जो बाद में जापान चले गए थे। इसी बीच 'गढ़वाली' को साप्ताहिक रूप में प्रकाशित किया जाने लगा था। 'गढ़वाली' के माध्यम से आपने उस प्रदेश के जिन लेखकों को प्रोत्साहन दिया था

उनमें सर्वश्री सत्यशरण रतूड़ी, आत्माराम गैरोला और मुकुन्दीलाल बैरिस्टर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'गढ़वाली' के सम्पादन के दिनों में आपने देश के स्वाधीनता आन्दोलन में भी अपना उल्लेखनीय योगदान दिया था और उसके लिए आपको अनेक बार जेल-यात्राएँ भी करनी पड़ी थीं। सन् 1933-34 में भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं०जवाहरलाल नेहरू भी आपके साथ देहरादून जेल में थे। जेल से लौटने के बाद 'गढ़वाली प्रेस' और पत्र की आर्थिक स्थिति डावाँडोल हो गई और फिर आप उसे नियमित रूप से प्रकाशित न कर सके। आपने 'गढ़वाली' के माध्यम से उस प्रदेश की जनता की जो सेवा की थी वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य है।

आपका निधन 14 अगस्त सन् 1970 को हुआ था। हर्ष का विषय है कि गढ़वाल की राष्ट्रीय पत्रकारिता के जनक चन्दोलाजी का जन्म-शताब्दी समारोह 2 नवम्बर सन् 1979 में देहरादून में बड़े समारोह के साथ मनाया गया था।

श्री विश्वम्भर 'मानव'

श्री 'मानव' जी का जन्म 2 नवम्बर सन् 1912 को उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के डिबाई नामक नगर में हुआ था। एम० ए० की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त सन् 1939 में आपने पहले आगरा कालेज में 'हिन्दी-प्रवक्ता' के रूप में कार्य प्रारम्भ किया था और फिर मुरादाबाद के गोकुलदास गर्ल्स कालेज में अनेक वर्ष तक शिक्षक रहे थे।

आप हिन्दी के हृदयवादी कवि, सफल समीक्षक और कुशल कथाकार थे। अनेक वर्ष तक आकाशवाणी के लखनऊ तथा प्रयाग केन्द्रों में हिन्दी-कार्यक्रमों के संचालक रहने के उपरान्त आप प्रयाग में रहकर साहित्य-साधना में संलग्न थे। आपकी काव्य-कृतियों में 'अवसाद' अधिक उल्लेखनीय है। समीक्षा के क्षेत्र में आपकी अनेक कृतियों ने अच्छी लोकप्रियता अर्जित की थी। आप ही कदाचित् हिन्दी के ऐसे समीक्षक हैं जिन्होंने पहले-पहल प्रसाद की प्रख्यात कृति 'कामायनी' पर प्रामाणिक समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया था।

आपके समीक्षात्मक ग्रन्थों में 'खड़ी बोली के गौरव-ग्रन्थ', 'महादेवी की रहस्य-साधना', 'सुमित्रानन्दन पन्त', 'काव्य का देवता निराला' तथा 'नई कविता' आदि के नाम विशेष ध्यातव्य हैं। 'लहर और चट्टान' नामक पुस्तक में आपके द्वारा लिखित एकांकी नाटक संकलित हैं। उपन्यास-लेखन की दिशा में भी आपने सर्वथा नए प्रयोग किए थे। 'कावेरी' और 'प्रेम-कथाएँ' नामक रचनाओं में आपकी ऐसी प्रतिभा अत्यन्त उत्कटता से प्रस्फुटित हुई है। आपकी विविध विषयक रचनाओं की संख्या लगभग 26 है।

आकाशवाणी से सम्बन्ध-विच्छेद करने के उपरान्त आप कई वर्ष तक 'इलाहाबाद डिग्री कालेज' में हिन्दी-प्रवक्ता भी रहे थे और कुछ वर्ष पूर्व ही वहाँ से सेवा-निवृत्त हुए थे।

आपका निधन 2 जून सन् 1980 को दिल का दौरा पड़ने के कारण इलाहाबाद में हुआ था।

श्री विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी'

श्री प्रेमीजी का जन्म मेरठ जिले के फरीदनगर नामक कस्बे में 19 जुलाई सन् 1899 को हुआ था। आप मेरठ की एक ऐसी विभूति थे, जिनका सारा ही जीवन इस जनपद के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक विकास में लग गया। मेरठ नगर की कोई भी ऐसी सांस्कृतिक गतिविधि नहीं थी जिसमें आपका सक्रिय योगदान न रहा हो। सन् 1948 में मेरठ में सम्पन्न

हुआ अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन आपकी कर्मठता का ज्वलंत साक्षी है। आपके सत्प्रयत्नों से स्थापित मेरठ का 'पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन' आपका सजीव स्मारक कहा जा सकता है।

सामाजिक जागरण के क्षेत्र में भी आपकी सेवाएँ भुलाई नहीं जा सकतीं। आर्यसमाज और दूसरी सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से आपने सामान्यतः समस्त देश और विशेषतः मेरठ-मण्डल की जनता की जो अथक और सतत सेवा की, थी वह हम सभीके लिए स्पृहणीय और अनुकरणीय है। सन् 1937 में उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का जो 'स्वर्ण जयन्ती समारोह' मेरठ में बड़ी धूमधाम से मनाया गया था, उसके आप प्रमुख प्रेरणा-स्रोत थे।
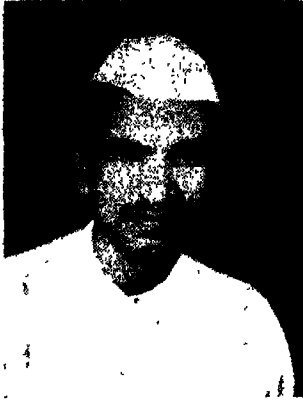
आपने अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ जहाँ आर्य-समाज के माध्यम से किया था, वहाँ आप अन्य सांस्कृतिक तथा धार्मिक संस्थाओं के प्रति भी उदार दृष्टिकोण रखते थे। एक ओर आप जहाँ 'अखिल भारतीय आर्य कुमार परिषद्' के सुदृढ़ स्तम्भ थे वहाँ 'सनातन धर्म महावीर दल'-जैसी समाज-सेवी संस्था को भी आपका सहयोग सुलभ था। वास्तव में आपका दृष्टिकोण इतना समन्वयवादी था कि आप समाज-सेवा के क्षेत्र में कार्य करने वाली किसी भी संस्था को बिना किसी धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के सहयोग देने को तत्पर रहा करते थे। यही कारण है कि आपको देश के उच्चकोटि के सभी राजनीतिक, सामाजिक साहित्यिक और धार्मिक नेताओं का सहज प्रेम तथा विश्वास प्राप्त था। एक ओर आप जहाँ गोस्वामी गणेशदत्त-जैसे सनातन धर्म के विशिष्ट नेता का स्नेह प्राप्त करने में सफल हुए वहाँ दूसरी ओर आर्यसमाज के मूर्धन्य नेताओं के भी आप विश्वास-पात्र रहे। यहाँ तक कि जैन-मुनि विद्यानन्दजी भी आपका बड़ा आदर करते हैं और आपकी प्रेरणा से मुनिजी ने मेरठ में बहुत-से कार्य किए हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भी श्री प्रेमीजी का योगदान अविस्मरणीय रहा था। आपने जहाँ देश की स्वाधीनता की लड़ाई में कारावास भोगा था वहाँ उसके रचनात्मक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में भी आप किसी से पीछे नहीं रहे थे। जब-जब मेरठ जनपद की कांग्रेस को आपके सक्रिय सहयोग की आवश्यकता अनुभव हुई तब-तब ही आपने अपना सर्वात्मना सहयोग प्रदान किया। आचार्य जे० बी० कृपलानी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सन् 1946 के मेरठ-अधिवेशन की सफलता में आपका उल्लेखनीय योगदान रहा था।

वस्तुतः प्रेमीजी का जीवन इतना बहुमुखी था कि आपके कार्यों की प्रवृत्तियों को किसी सीमा में बाँधा ही नहीं जा सकता। आप जहाँ संगठन में कुशल तथा कर्मठ कार्यकर्ता थे वहाँ प्रचुर साहित्यिक चेतना के भी धनी थे। अपने साहित्यिक जीवन को एक पत्रकार के रूप में प्रारम्भ करके आपने रचनात्मक सृजन की दिशा में भी ऐसी पुस्तकें लिखीं जिनका मेरठ के साहित्यिक जागरण के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान है। प्रारम्भ में आपने सन् 1923 में 'मातृभूमि' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया और बाद में सन् 1933 से 'तपोभूमि' मासिक पत्र का सम्पादन आप कई वर्ष तक करते रहे। 'तपोभूमि' में ही सर्वप्रथम श्री अलगूराय शास्त्री द्वारा लिखित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' नामक काव्य की समीक्षा प्रकाशित हुई थी। श्री शास्त्रीजी ने गुप्तजी की काव्य-प्रतिभा पर उसमें करारी चोट की थी। इस पत्रिका का 'भारतीय सभ्यता अंक' अपनी विशिष्टता के लिए अब भी याद किया जाता है। इसके सम्पादन के दिनों से ही प्रेमीजी की प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को मिल गया था। हिन्दी का कदाचित् ही कोई लेखक ऐसा होगा जिसकी रचनाएँ 'तपोभूमि' में न छपी हों। स्वतन्त्रता के उपरान्त 'पंचायती राज' की संस्थापना करके आपने अपने जीवन को पूर्णतः भारत के 'नवनिर्माण' की दिशा में मोड़ दिया और अन्तिम क्षण तक आप इसके माध्यम से समाज और देश की सेवा में लगे रहे। आप कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ अच्छे कवि तथा लेखक थे। आपकी लगभग 15 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपने जहाँ मेरठ जनपद में साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक जागरण की दिशा में उल्लेखनीय योगदान दिया

वहाँ शिक्षा के क्षेत्र में भी आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। इस जनपद की प्रमुख शिक्षा-संस्था 'गुरुकुल डौरली' के आप वर्षों तक मन्त्री तथा प्रधान रहे। अपनी जन्मभूमि फरीदनगर में 'कन्या पाठशाला' का निर्माण करना भी आपके ही कर्मठ व्यक्तित्व के लिए सम्भव था। मेरठ की अनेक शिक्षा-संस्थाओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष सहायता आपके द्वारा सुलभ होती रहती थी। शैक्षणिक जागरण के क्षेत्र का कोई ऐसा पक्ष आपसे छूटा नहीं था कि जिसमें आपने अपनी क्षमता और सीमा के अनुसार सेवा-सहायता न की हो।

श्री प्रेमीजी मेरठ के साहित्यिक जागरण का ऐसे स्रोत थे जिनके माध्यम से वहाँ के वातावरण में हिन्दी-कविता तथा साहित्य के प्रति सहज प्रेम उद्‌भूत हुआ है। जो लोग मेरठ के पुराने इतिहास से थोड़ा-सा भी परिचय रखते है, वे हमारे इस निष्कर्ष से सर्वथा सहमत होंगे। नौचन्दी मेले के अवसर पर प्रतिवर्ष होने वाले कवि-सम्मेलनों के संयोजनों का भार प्रारम्भ में प्रेमीजी ने ही अपने कंधों पर उठाया था और आपके माध्यम से यहाँ की जनता में हिन्दी-काव्य के प्रति जो रुचि जगी थी उसीका प्रतिफलन आज यह है कि यहाँ के अनेक लेखक, कवि, पत्रकार तथा साहित्यकार देश के विभिन्न क्षेत्रों में मेरठ का गौरव-वर्धन कर रहे हैं।

आपका निधन 22 जनवरी सन् 1974 को मेरठ में हुआ था।

श्री विश्वम्भरसहाय 'व्याकुल'

श्री व्याकुलजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर के एक मध्यवर्गीय वैश्य-परिवार में सन् 1870 में हुआ था। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। आप उर्दू, फारसी तथा हिन्दी के ज्ञाता होने के साथ-साथ सुकवि भी थे। नाटककार के रूप में आपकी देन सर्वथा अनन्य और अनुपम कही जा सकती है। जब हिन्दी रंगमंच पर पूर्णत: फारसी थियेट्रिकल कम्पनियों का आधिपत्य था और हिन्दी के नाम पर उर्दू और फारसी भाषाओं के नाटक मंचित किये जाते थे तब 'व्याकुल' जी ने अपनी अनन्य हिन्दी-निष्ठा का परिचय दिया था।

जब आप मेरठ के 'देवनागरी स्कूल' में कला-अध्यापक थे तब आपके मन में 'खड़ी बोली का एक नाट्य-मंच' स्थापित करने की जो भावना उद्‌भूत हुई थी उसका ही प्रतिफलन आगे चलकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक ज्वलन्त अध्याय के रूप में हुआ। आपको उन दिनों कोई ऐसा नाटक नहीं मिला जो आपकी भावनाओं के अनुरूप सहज, सरल तथा सुबोध भाषा में लिखा गया हो और जिसकी पृष्ठभूमि भी पूर्णत: भारतीय हो। फलस्वरूप आपने स्वयं ही एक 'बुद्धदेव' नामक मंचीय नाटक की रचना की और यह प्रसन्नता की बात है कि आप उसमें सफल भी हुए।

सर्वप्रथम आपने अपनी 'व्याकुल भारत मण्डली' नामक संस्था के द्वारा 'बुद्धदेव' का मंचीकरण भारत की राजधानी दिल्ली के 'बनारसी-कृष्णा थियेटर' हॉल में किया था। इसके पहले शो का उद्‌घाटन प्रख्यात राजनीतिक नेता हकीम अजमल खाँ के द्वारा सम्पन्न हुआ था। श्री राधेश्याम कथावाचक ने भी इस खेल को देखा तथा सराहा था। आजकल 'बनारसी-कृष्णा थियेटर' को 'मोती टाकीज' कहा जाता है। श्री व्याकुलजी कुशल नाटककार होने के साथ-साथ अच्छे गायक भी थे। अपने द्वारा बनाई गई ठुमरियाँ तथा गजलें आप इतनी तन्मयता से गाते थे कि समाँ बँध जाता था। आप जहाँ राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण कविताएँ लिखने में दक्ष थे वहाँ सहज हास्य तथा व्यंग्य से परिपूर्ण रचनाएँ भी अत्यन्त तत्परता से करते थे। आपने एक बार हुक्के के विषय में जो कविता लिखी थी उसकी इन पंक्तियों से आपकी विनोदमयी शैली का परिचय भली-भाँति मिल जाता है :

जय गुड़-गुड़ करता, हर जय गुड़-गुड़ करता
तुमको निशि-दिन ध्यावैं, तुमको निशि-दिन पावैं
मदक चरस भरता
जय गुड़-गुड़ करता ॥

अगने तेंव मस्तक पर सौहे, गंग चरण धरता।
धूम्र सुगन्ध प्रकाशै पावन, पवन दोष हरता॥
जय गुड़-गुड़ करता॥

व्याकुलजी के 'बुद्धदेव' नाटक और आपके द्वारा संस्थापित 'व्याकुल भारत मण्डली' का स्थान हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० सोमनाथ गुप्त ने अपने 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ 145 पर 'व्याकुल' जी और आपकी नाटक-मण्डली के सम्बन्ध में यह ठीक ही लिखा है—"मेरठ की 'व्याकुल भारत मण्डली' का 'बुद्धदेव' तथा जनेश्वर-प्रसाद मायल द्वारा लिखित 'सम्राट् चन्द्रगुप्त' और 'तेगे सितम' इस कम्पनी के बड़े सफल नाटक थे। इस कम्पनी के संस्थापक स्वयं 'व्याकुल' जी थे, जो उच्चकोटि के संगीतज्ञ और कुशल लेखक भी थे। जिह्वा में कैंसर हो जाने के कारण आपकी बड़ी ही कष्टप्रद मृत्यु (सन् 1925 में) हुई और आपके पश्चात् यह मण्डली भी छिन्न-भिन्न हो गई। इस मण्डली को अन्य विद्वानों का सहयोग भी प्राप्त था। काशी की 'भारतेन्दु नाटक मण्डली' के प्रसिद्ध अभिनेता डॉ० वीरेन्द्रनाथ दास, कुँवरकृष्ण कौल एम० ए० और केशवराम टण्डन इसमें सक्रिय भाग लेते थे।"

सर्वप्रथम 'व्याकुल' जी द्वारा लिखित 'बुद्धदेव' नाटक का धारावाहिक प्रकाशन मेरठ से श्री मुरारिशरण मांगलिक तथा उमरावसिंह 'कारुणिक' के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'ललिता' में हुआ था। 'ललिता' के सम्पादकों में से एक श्री मांगलिकजी श्री 'व्याकुल' जी के चाचा के लड़के थे और 'व्याकुल' जी को मांगलिकजी के जन्म से पूर्व आपके पिता ने गोद ले लिया था। यह अत्यन्त खेद की बात है कि 'व्याकुल' जी अपने 'बुद्धदेव' नाटक को अपने जीवन-काल में प्रकाशित रूप में नहीं देख सके। आपके निधन के उपरान्त ही इसका प्रकाशन सन् 1930 में श्री मांगलिकजी के प्रयास से 'भारती भण्डार प्रयाग' की ओर से हुआ था। जिस समय श्री 'व्याकुल' जी का निधन हुआ था तब श्री मांगलिकजी अपनी शिक्षा-प्राप्ति के प्रसंग में विदेश में थे। वहीं पर उन्हें आपके असामयिक देहावसान की सूचना मिली थी।

'बुद्धदेव' के प्रकाशन पर प्रख्यात दार्शनिक डॉ० भगवानदास ने उसकी 'भूमिका' लिखी थी और 'परिचय' उस समय के सुमुख आलोचक आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल ने दिया था। डॉ० भगवानदास ने इस रचना की प्रशंसा करते हुए जहाँ यह लिखा था कि यह रचना मुझे बहुत रुची और बहुत प्रिय जान पड़ी वहाँ आपका यह अभिमत भी कम महत्त्व नहीं रखता, "दया, वात्सल्य, करुणा रस की प्रधानता होते हुए भी मीठे हास्य रस और संसार के पापांश का शिक्षा-प्रद चित्रण भी स्थान-स्थान पर बहुत अच्छा किया है।" आचार्य शुक्ल की यह पंक्तियाँ 'व्याकुल' जी की प्रतिभा को पूर्णतः उजागर करती-सी लगती हैं—"इसको पढ़ते ही यह स्पष्ट हो जायगा कि यह व्यवसायी कम्पनियों द्वारा खेले जाने वाले और नाटकों से कितना अधिक समुन्नत है। पहली बात इसकी भाषा है, जो शिष्ट और परिमार्जित है। मैं समझता हूँ कि अपने वर्ग का यह पहला नाटक है जिसकी भाषा वर्तमान साहित्य की भाषा के मेल में आई है। इसके लिए इसके लेखक श्री 'व्याकुल' जी को हिन्दी-प्रेमी सदा साधुवाद के साथ स्मरण करेंगे।"

आपकी नाटक-कला का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन शासकों के अत्याचारों का पर्दाफाश करके उनके विरुद्ध विद्रोह की भावना उत्पन्न करना था, जिसके लिए एक बार तत्कालीन वाइसराय ने आपको चेतावनी भी भिजवाई थी। आपके 'बुद्धदेव' के अतिरिक्त 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'संगीत पद्मिनी' नामक दो नाटक और प्रकाशित हुए थे। आपकी कुछ कविताएँ भी 'ललिता' में प्रकाशित हुई थीं।

श्री विश्वेश्वरदयालु वैद्य

श्री वैद्यजी का जन्म सन् 1894 में उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद में बरालोकपुर नामक स्थान में हुआ था। आयुर्वेद का विधिवत् अध्ययन करके आपने चिकित्सा-व्यवसाय को अपनाकर अपनी लेखनी को भी उसी ओर प्रवृत्त किया था। आप पीयूषपाणि चिकित्सक होने के साथ-साथ कुशल लेखक भी थे।

आपने आयुर्वेद से सम्बन्धित 100 से अधिक ग्रन्थों की रचना करने के अतिरिक्त अनेक वर्ष तक 'अनुभूत योगमाला' नामक आयुर्वेद-सम्बन्धी मासिक पत्र का सफलतापूर्वक

सम्पादन-प्रकाशन किया था। इस पत्र के 'भस्मांक', 'धातु अंक', 'सर्प चिकित्सांक', 'हृदय रोगांक', 'फुफ्फुस रोगांक', 'स्नायु रोगांक', 'सिद्ध प्रयोगांक', 'रसांक', 'वनौषधि विशेषांक', 'बाल रोगांक', 'कैंसर अंक', 'उदर रोगांक' तथा 'स्त्री रोगांक' आदि अनेक उल्लेखनीय तथा संग्रहणीय विशेषांक प्रकाशित हुए थे।

आपके द्वारा लिखित ग्रन्थों में 'सचित्र इंजेक्शन विज्ञान', 'आयुर्वेदीय विश्वकोष', 'सरल चिकित्सा विज्ञान', 'सरल रोग विज्ञान', 'औषधि गुण धर्म विवेचन' और 'स्त्री रोग चिकित्सा' आदि प्रमुख हैं। आपने ज्योतिष-सम्बन्धी ग्रन्थ भी लिखे थे, जिनमें 'एक दिन में ज्योतिषी' तथा 'सामुद्रिक शास्त्र' उल्लेख्य हैं। आयुर्वेद तथा ज्योतिष-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने कई संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किए थे, जिनमें 'मुकुन्द लीलामृत नाटकम्' और 'प्रसन्न हनुमन्नाटकम्' के नाम उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा लिखित 'राजनैतिक कृष्ण' नामक हिन्दी नाटक भी अपनी उल्लेखनीय विशेषता रखता है। आपके संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थों में 'संगीत नरसी', 'संगीत इन्दुमती', 'संगीत सुखिया मालिन' और 'संगीत द्रोपदी' आदि भी पठनीय हैं।

आपका निधन 16 जनवरी सन् 1973 को हुआ था।

श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ

श्री रेऊजी का जन्म 2 जुलाई सन् 1890 को जोधपुर (राजस्थान) के एक कश्मीरी ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपके पारिवारिकजन कई पीढ़ियों से जोधपुर में निवास करते थे। घर पर ही 5 वर्ष की आयु में आपका अक्षरारम्भ कराया गया और फिर आगे की पढ़ाई के लिए आपको नगर की 'वैदिक पाठशाला' में प्रविष्ट किया गया। वहाँ से आपने सन् 1904 में पंजाब विश्वविद्यालय की 'प्राज्ञ' परीक्षा उत्तीर्ण करके 2 वर्ष बाद 'विशारद' की परीक्षा की तैयारी की, किन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण उसमें बैठ नहीं सके। इसके उपरान्त आपने जयपुर से 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर अगले ही वर्ष 'आचार्य' परीक्षा में सफलता प्राप्त करके 'रजत-पदक' प्राप्त किया।

अपने अध्ययन-काल में ही आप महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के खोजपूर्ण लेखों से प्रभावित हो गए थे और इसी दृष्टि से आपने अपने अध्ययन के विषय खोज तथा पुरातत्त्व बना लिए थे। सन् 1910 में आपकी नियुक्ति 'जोधपुर राज्य' के इतिहास-कार्यालय में 'लिपिक' के रूप में हुई थी। उन दिनों वहाँ पर बंगाल की 'एशियाटिक सोसाइटी' के अनुरोध पर राजस्थानी (पिंगल) भाषा के गद्य और पद्यमय साहित्य का संग्रह किया जा रहा था। इसी प्रसंग में आपने राजस्थान की कुछ ऐतिहासिक पुस्तकों में प्राप्त नामों की अनुक्रमणिका के रूप में ऐसी तालिकाएँ बनाई थीं जिनकी उपयोगिता को देखकर आपसे एशियाटिक सोसाइटी के उपाध्यक्ष महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री बहुत प्रभावित हुए थे और उन्होंने सोसाइटी की ओर से प्रकाशित अपनी सन् 1913 की रिपोर्ट में रेऊजी के कार्य की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की थी।
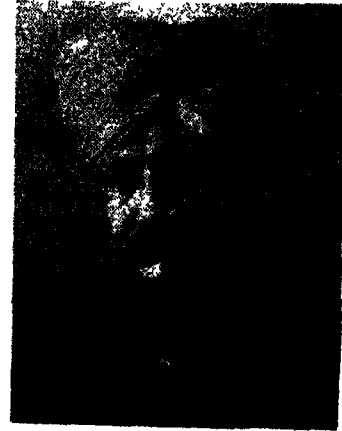
सन् 1914 में आप जोधपुर के 'जसवन्त कालेज' में संस्कृत के अध्यापक हो गए और वहाँ पर आपने लगभग 1 वर्ष तक अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य किया। उन दिनों यह कालेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था। आपके परिश्रम के फलस्वरूप उस वर्ष के परीक्षा-परिणाम में संस्कृत

विषय के सभी छात्रों ने शत-प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। सन् 1915 में जब जोधपुर में अजायबघर के साथ एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना जोधपुर-नरेश श्री सुमेरसिंहजी के नाम पर हुई तब आपको ही उसका अध्यक्ष बनाया गया। आपने कार्य-भार सँभालकर उस 'पुस्तकालय' और 'अद्भुतालय' में इतने महत्त्वपूर्ण कार्य किए कि शीघ्र ही वह भारत-सरकार द्वारा मान्यता-प्राप्त अद्भुतालयों की सूची में आ गया। उन्हीं दिनों आप सुमेर पुस्तकालय के अध्यक्ष भी बना दिए गए थे।

अपने पुस्तकालय तथा अद्भुतालय-सम्बन्धी कार्यों से समय बचाकर आपने अपनी प्रतिभा का परिचय ग्रन्थ-लेखन में भी दिया और 'हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई' से आपका 'भारत के प्राचीन राजवंश' नामक जो ग्रन्थ प्रकाशित हुआ उसमें शिला-लेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, संस्कृत-ग्रन्थों, फारसी तवारीखों तथा ख्यातों आदि के आधार पर क्षत्रिय, हैहय, परमार, पाल, सेन और चौहान वंशों का इतिहास दिया गया था। आपके इस प्रथम ग्रन्थ के प्रकाशन ने ही इतिहास के विद्वानों का ध्यान जहाँ अपनी ओर आकर्षित किया था वहाँ आपकी प्रतिभा का सिक्का इतना जमा कि आपकी गणना इतिहास के प्रमुख विद्वानों में होने लगी। अगले वर्ष इस पुस्तक का जो द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ उसमें बुद्ध के समय से लेकर विक्रम की सातवीं शती तक के भारत का प्राचीन इतिहास वर्णित किया गया था। सन् 1922 में आपने मारवाड़-नरेश महाराजा मानसिंह द्वारा लिखित 'कृष्ण-विलास' का सम्पादन किया। इस ग्रन्थ में 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कन्ध के 32 अध्यायों का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार अगले वर्ष आपने महाराजा जसवन्तसिंहजी द्वारा लिखित वेदान्त के 5 छोटे-छोटे ग्रन्थों का सम्पादन 'वेदान्त पंचक' नाम से किया। ये दोनों ग्रन्थ जोधपुर राज्य की ओर से प्रकाशित हुए थे। सन् 1925 में आपके 'भारत के प्राचीन राजवंश' नामक ग्रन्थ का तीसरा भाग प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रारम्भ से लेकर उस समय तक के राष्ट्रकूटों (राठौरों और गाहड़वालों) का इतिहास वर्णित किया गया है।

धीरे-धीरे आपकी विद्वत्ता की कथा देश के सभी भू-भागों तक पहुँच गई और आपकी प्रशंसा सुनकर बीकानेर के तत्कालीन महाराजा ने ठाकुर हरिसिंह के माध्यम से रेऊजी को बीकानेर बुलाया और उनसे बीकानेर राज्य की सेवा में आने का अनुरोध किया। आपने अपनी जन्म-भूमि मारवाड़ की सेवा को छोड़कर वहाँ जाना पसन्द नहीं किया और बड़ी विनम्रता से अपनी असहमति प्रकट कर दी। उन्हीं दिनों आपने 'शैव सुधाकर' नामक ग्रन्थ की टीका लिखी, जो पोकरण के स्वर्गीय ठाकुर मंगलसिंह सी० आई० ई० द्वारा प्रकाशित की गई थी। सन् 1932 में आपका 'राजा भोज' नामक ग्रन्थ 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग' की ओर से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ में आपने धार-नरेश राजा भोज का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया था। सन् 1933 में जोधपुर राज्य के 'पुरातत्त्व विभाग' की ओर से 'राष्ट्रकूटों का इतिहास' नामक ग्रन्थ अलग से प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार इस विभाग की ओर से आपका 'मारवाड़ का इतिहास' नामक ग्रन्थ भी छपा। यह आपकी विद्वत्ता का ही ज्वलन्त प्रमाण है कि आप सन् 1931 में झाँसी में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित 'इतिहास परिषद्' के भी अध्यक्ष बनाए गए थे। इसीके साथ-साथ यह भी स्मरणीय है कि आप भारत-सरकार के 'इण्डियन हिस्टोरिकल रिकार्ड्स कमीशन' के सम्मानित सदस्य भी बनाए गए थे।

आपके 'भारत के प्राचीन राजवंश' नामक ग्रन्थ पर आपको नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से जहाँ 'पुरस्कार' और 'पदक' भेंट किया गया था वहाँ जोधपुर, बीकानेर तथा सीतामऊ आदि अनेक राज्यों ने भी आपका सम्मान किया था। आपकी 'राष्ट्रकूटों का इतिहास' नामक ऐतिहासिक कृति को पढ़कर सर जार्ज ग्रियर्सन इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे' में पंजाब में प्रचलित 'राठी' भाषा के शब्दार्थ को अनुचित समझकर राठौरों से सम्बद्ध होना स्वीकार किया था। आप अपने इतिहास-ज्ञान के कारण भारत के अनेक विश्वविद्यालयों के परीक्षक भी रहे थे। संस्कृत साहित्य के मार्मिक विद्वान् होने के साथ-साथ आप लिपि-विज्ञान के भी आचार्य थे। प्राचीन लिपियों के पढ़ने में रेऊजी की विशेषता अभिनन्दनीय कही जा सकती है। आपने जहाँ इतिहास-सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे थे वहाँ आपके द्वारा लिखित भारत की मूर्ति-कला तथा संस्कृति की महत्ता से सम्बन्धित अनेक लेख भी अपनी उपादेयता के लिए विख्यात हैं।

रेऊजी जहाँ संग्रहालयों के शैक्षणिक महत्त्व की प्रतिष्ठा के समर्थक थे वहाँ आपने तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त बहुत-सी सामग्री तथा गान्धार-मूर्ति-कला के नमूने न केवल अपने संग्रहालय में रखवाए थे, प्रत्युत उनकी वैज्ञानिक गतिविधियों के परिचायक कक्षों का भी गठन किया था। आपने सिक्कों के माध्यम से मारवाड़ क्षेत्र के प्राचीन इतिहास की विलुप्त कड़ियों को जोड़ने का भी स्तुत्य प्रयास किया था। आपके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों में 'विश्वेश्वर स्मृति', 'मेवाड़ गौरव', 'राठौर गौरव', 'कृष्ण विलास', 'ढोला मारवाड़', 'शिव रहस्य', 'शिव पुराण' और 'कृष्ण लीला' भी प्रमुख कहे जा सकते हैं। आपकी कई रचनाओं पर जहाँ अनेक स्थानों से पुरस्कार प्राप्त हुए थे वहाँ सन् 1952 में सरकार की ओर से आपको 'महामहोपाध्याय' की सम्मानोपाधि भी प्रदान की गई थी।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आपने 'ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि' तथा 'ऋग्वेद का सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सार' नामक पुस्तकें भी लिखी थीं और कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित डॉ० ए० सी० दास द्वारा लिखित 'ऋग्वैदिक इण्डिया' तथा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित 'दि आर्कटिक होम इन दि वेदाज' नामक अँग्रेजी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किए थे। यह खेद की बात है कि ये चारों पुस्तकें अभी तक अप्रकाशित हैं।

आपका निधन सन् 1966 में दिल्ली में हुआ था।

श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजु'

श्रीमती 'मंजु' का जन्म सन् 1902 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नामक नगर में हुआ था। 'साहित्यरत्न' तथा 'हिन्दी प्रभाकर' परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपका विवाह एक कायस्थ-परिवार में हो गया था। विवाह के कुछ दिन बाद ही आपको वैधव्य का दारुण दुःख भोगना पड़ा और आपके जीवन की पीड़ा कविता के रूप में फूट पड़ी। निराशा और पीड़ा आपकी कविता के मूल आधार हैं, जो धीरे-धीरे मानव-मन में अवसाद तथा करुणा के भावों का उद्रेक करने में सफल हो जाती हैं। सीधी-सादी भाषा में आपने अपनी वेदना को जिस गहराई से कविता में रूपायित किया है वह आपकी आन्तरिक पीड़ा को उजागर करने में पूर्णतः सक्षम हुआ है।

आपने सन् 1934 में 'मीरा पदावली' का जो सम्पादन किया था उसका प्रकाशन उन्हीं दिनों हिन्दी भवन, लाहौर की ओर से हुआ था। आपका यह संकलन काफी दिन तक पंजाब विश्वविद्यालय की 'हिन्दी प्रभाकर' परीक्षा के पाठ्य-क्रम में भी रहा था। आपकी 'किंकिणी' (कविता-संकलन) तथा 'दुखिया दुलहिन' (नाटक) नामक रचनाएँ अप्रकाशित ही रह गईं। आपकी कुछ रचनाओं का प्रकाशन, विस्तृत समीक्षात्मक टिप्पणी के साथ, श्री व्यथित हृदय ने अपनी 'हिन्दी काव्य की कलामयी तारिकाएँ' नामक पुस्तक में किया है।

आपका निधन 29 नवम्बर सन् 1955 को कानपुर में हुआ था।

डॉ० विष्णुदत्त थानवी

श्री थानवीजी का जन्म राजस्थान के जोधपुर नगर में सन् 1923 में पुष्करणा ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपकी नेत्र-ज्योति बचपन से ही क्षीण थी। अपनी लगन और अध्ययनशीलता के परिणामस्वरूप आपने जोधपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त 'हिन्दी के मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में पौराणिक प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर वहाँ से

पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी।

सन् 1942 में आपने ओरियण्टल कालेज (प्राच्य महाविद्यालय), जोधपुर की स्थापना की तथा अनेक अनाथ छात्रों तथा विधवा बहनों को प्रयाग महिला विद्यापीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा-जैसी संस्थाओं की परीक्षाओं की अध्ययन-सुविधा देकर हिन्दी के प्रचार में अन्यतम योग दिया। आपके 'पुष्पांजलि' (1957), 'स्वर लहरी' (1961), 'शूल और फूल' (1971) तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथा आपका शोध-ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित ही है।

आपका निधन 25 दिसम्बर सन् 1975 को हुआ था।

श्री विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी'

श्री 'तरंगी' जी का जन्म 12 दिसम्बर सन् 1911 को मध्यप्रदेश के मण्डला जिले के शहपुरा नामक स्थान में हुआ था। आपकी शिक्षा मण्डला, देवरी, रहली, सागर, धार और बनारस में हुई थी। 18 वर्ष की आयु में धार के कालेज से इण्टर की परीक्षा देने के उपरान्त आप घर से निकल पड़े थे और सबसे पहले खण्डवा से प्रकाशित होने वाले 'कर्मवीर' साप्ताहिक में कार्य प्रारम्भ किया था। 3 मास तक कार्य करने के उपरान्त आप फिर वहाँ से सन् 1930 में कलकत्ता चले गए। वहाँ पर सन् 1933 तक कार्य करने के बाद आप कानपुर चले आए और वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'वर्तमान' दैनिक में सन् 1935 तक कार्य किया। सन् 1936 में आप दिल्ली आ गए और फिर यहाँ जमकर पत्रकारिता की। दिल्ली के लगभग सभी दैनिक पत्रों में आपने पहले-पहल संवाददाता के रूप में कार्य करने के उपरान्त देश के दूसरे पत्रों में भी नियमित लेखन प्रारम्भ कर दिया। 'वीर अर्जुन' तथा 'हिन्दुस्तान' आदि पत्रों में आपके द्वारा लिखे गए व्यंग्य-विनोद के लेख उन दिनों बहुत लोकप्रिय हो गए थे। उन्हीं दिनों सन् 1941 में आपने दिल्ली में 'अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सम्मेलन' का भी आयोजन किया था। आप उसकी स्वागत-समिति के मन्त्री थे।

सन् 1942 में आपने कुछ दिन तक जबलपुर से प्रकाशित होने वाले 'शुभचिन्तक' साप्ताहिक का सम्पादन भी किया था। सन् 1945 में आप फिर दिल्ली आ गए थे और यहाँ सन् 1958 तक रहे। इस काल-खण्ड में आपने जहाँ दिल्ली से 'उद्योग समाचार' और मासिक 'व्योम-विहार' का सफल सम्पादन किया वहाँ 'हिन्दुस्तान', 'वीर अर्जुन', 'विश्वमित्र', 'अमर भारत' तथा 'नवभारत' आदि सभी प्रमुख पत्रों में बराबर लिखते रहे। उन दिनों हिन्दी पत्रों में व्यंग्य-विनोद का कालम लिखने वाले लेखकों में आपका नाम सर्वाग्रणी था।

आप जहाँ उच्चकोटि के व्यंग्य-लेखक तथा सफल पत्रकार थे वहाँ उत्कृष्ट कवि के रूप में भी आपकी प्रतिभा अद्भुत थी। आपने अपनी ऐसी प्रतिभा का परिचय अपने 'नया सवेरा', 'गान्धी सागर', 'प्रताप सागर' तथा 'नर्मदे हर' आदि काव्यों में दिया था। आपकी गद्य-रचनाओं में भी 'जय चम्बल' और 'चम्बल का सेतुबन्ध' अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। मृत्यु से पूर्व आप 'बुन्देलखण्ड के दस्यु' नामक एक ऐसा शोध-ग्रन्थ लिख रहे थे जिसमें बुन्देलखण्ड के दस्युओं की समस्या का विस्तृत विवरण दिया गया है। आपके द्वारा लिखित 'जय कश्मीर'

नामक खण्ड-काव्य हिन्दी-साहित्य की गौरव-निधि है। इसकी रचना 'तरंगी' जी ने 'घनाक्षरी' छन्द में की थी।

आपकी उत्कट पत्रकारिता का सहज अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आपने 'प्रजा पुकार' (जबलपुर), 'जन सन्देश' (जयपुर) और 'इलैक्शन टाइम्स' नामक पत्रों का सम्पादन भी किया था। आपने सन् 1938 से सन् 1940 तक हिन्दी की एक समाचार समिति का भी संचालन किया था। इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में था। सन् 1958 में आप दिल्ली से भोपाल चले गए थे और वहाँ पर रहकर ही पत्रकारिता करते रहे थे।

आपका निधन 24 अप्रैल सन् 1976 को भोपाल में हुआ था।

श्री विष्णुदत्त 'विकल'

श्री विकलजी का जन्म उत्तर प्रदेश के देहरादून जिले के अजबपुर नामक ग्राम में 4 दिसम्बर सन् 1907 को हुआ था। आप व्यवसाय से कथावाचक और रुचि से कवि थे। कविता की ओर आपकी अभिरुचि श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' की प्रेरणा से उन दिनों हुई थी, जब आप सन् 1936 में लाहौर में थे। आपकी प्रथम रचना लाहौर से ही प्रकाशित होने वाले 'विश्वबन्धु' नामक साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित हुई थी।

लाहौर में सर्वश्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', उदयशंकर भट्ट, माधव और डॉ० रमाशंकर मिश्र के सान्निध्य ने आपकी साहित्यिक अभिरुचि को समृद्ध करने में अभूतपूर्व योगदान दिया था। श्री माधवजी के सम्पर्क में आकर आप पत्रकारिता की ओर उन्मुख हुए और आपने उनके सम्पादन में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'अमर भारत' दैनिक में दो वर्ष तक सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य किया था। कुछ दिन तक आप 'नवभारत टाइम्स' के बम्बई संस्करण में भी सहकारी सम्पादक रहे थे। इसके अतिरिक्त दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'समाज' नामक मासिक पत्र में भी आपने सहकारी सम्पादक का कार्य किया था।

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली के प्रकाशन विभाग से भी आप कई वर्ष तक सम्बद्ध रहे थे और इस काल में आपकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं। आप बंगला भाषा से अनुवाद करने में अत्यन्त सिद्धहस्त थे। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'रामकृष्ण परमहंस', 'रामानुज', 'रामराज्य', 'बाल नीति कथा' और 'जीवन आया' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कथा-वाचन के क्षेत्र में भी विकलजी की वाणी ने अखिल भारतीय ख्याति अर्जित की थी और आप जीवन के अन्तिम दिनों में भारत के सुदूर पूर्व अंचल असम के तिनसुकिया नगर में जाकर फिर इसी कार्य को करने लगे थे।

आपका निधन वहाँ पर ही 20 जनवरी सन् 1969 को हुआ था।

श्री विष्णुदत्त शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म 26 दिसम्बर सन् 1896 को उन्नाव (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपका स्थान हिन्दी के पत्रकारों में सर्वथा अनन्य है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे कार्य करने के साथ-साथ आपने हिन्दी में 'पत्रकार-कला' तथा 'सभा-विधान' से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखकर साहित्य की अभिवृद्धि मे अपना अद्वितीय योगदान दिया था।

आपने अपना पत्रकार-जीवन कानपुर के 'प्रताप' साप्ताहिक के द्वारा प्रारम्भ किया था और बाद में 'विक्रम' के सहायक सम्पादक भी रहे थे। आपने अँग्रेजी, संस्कृत, बंगला, मराठी तथा गुजराती आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके अपनी योग्यता में जो अभिवृद्धि की थी, उसके कारण आपका पत्रकार-जीवन बड़ा सफल रहा था। आपने गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले 'युगान्तर' में कार्य करने के

अतिरिक्त कलकत्ता के 'स्वस्थ जीवन', 'आयुर्वेद विकास' और 'अग्रवाल' नामक कई पत्रों में सफलतापूर्वक कार्य किया था। आपने जापान की यात्रा भी की थी। सन् 1949 में आप कलकत्ता से कानपुर आ गए थे और कई वर्ष तक वहाँ से ही 'सहयोगी' नामक साप्ताहिक का प्रकाशन और सम्पादन किया था।

सन् 1939 में आपने पत्रकारिता के विविध अंगों तथा रूपों पर प्रकाश डालने वाली एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'पत्रकार कला' का प्रकाशन किया था। इस ग्रन्थ का उन दिनों हिन्दी-जगत् में बड़ा स्वागत हुआ था। सर्वश्री आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराडकर, लक्ष्मणनारायण गर्दे तथा बनारसीदास चतुर्वेदी-जैसे उच्चकोटि के विद्वानों और पत्रकारों ने इस ग्रन्थ की मुक्तकण्ठ से सराहना की थी। इस ग्रन्थ की महत्ता इसीसे प्रमाणित हो जाती है कि इसकी भूमिका अमर-शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी ने लिखी थी। यह पुस्तक शुक्लजी ने सन् 1930 में ही लिख ली थी, किन्तु परि-स्थितिवश इसका प्रकाशन उन दिनों न हो सका था। इसके अतिरिक्त आपकी 'सभा विधान', 'समाचार पत्र', 'लेखन-कला' और 'जापान की बातें' आदि पुस्तकें अपनी विशिष्टता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। 'सभा विधान' में शुक्लजी ने सभा-संस्थाओं के संचालन-सम्बन्धी नियमों का सर्वांगीण विवेचन करके जहाँ उनकी उपादेयता सिद्ध की है वहाँ 'समाचार पत्र' तथा 'लेखन-कला' में अपने लेखन तथा पत्रकारिता-सम्बन्धी अनुभवों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। अन्तिम पुस्तक आपकी जापान-यात्रा का विवरण है। इनके अतितिक्त आपकी 'प्रूफ-रीडिंग', 'भेंट और बातचीत' नामक पुस्तकें भी पत्रकारिता से ही सम्बन्धित हैं। आपकी 'प्रसिद्ध बालक', 'राष्ट्र की विभूतियाँ', 'पौराणिक कथाएँ' तथा 'सुलोचना सती' आदि मौलिक पुस्तकों के अतिरिक्त 'नारी-विज्ञान', 'कामशास्त्र की शिक्षा', 'जल-चिकित्सा', 'आध्यात्मिक शिक्षावली' (भाग 2), 'कुण्डलिनी योग', 'औरत का दिल', 'कृत्य प्रदीप' तथा 'चित्तौड़ पतन' अनूदित रचनाएँ हैं। आपने 'काकोरी के शहीद' और 'गद्य-पुष्पांजलि' आदि पुस्तकों का सम्पादन भी किया था। आपकी संस्कृत रचना 'संस्कृत लोचनीयम्' पर उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कार भी प्रदान किया था।

आपका निधन सन् 1964 में कानपुर में हुआ था।

कुमारी वीरबाला कुलश्रेष्ठ

कुमारी वीरबाला का जन्म एटा (उत्तर प्रदेश)-निवासी श्री दिगम्बरदयाल कुलश्रेष्ठ के यहाँ सन् 1938 में हुआ था। शैशव-काल से ही 'मीरा' कृष्ण-भक्त थीं और 11 वर्ष की अवस्था में ही आपने कविता करनी प्रारम्भ कर दी थी। जब आप कठिनाई से प्राथमिक स्कूल में ही अध्ययन कर रही थीं तब आपकी माता का देहावसान हो गया। फलस्वरूप आपका अध्ययन-क्रम आगे न चल सका।

स्कूल की पढ़ाई तो छूट गई लेकिन घर पर ही 'साकेत' 'पंचवटी' तथा 'प्रिय प्रवास' आदि रचनाओं के माध्यम से आपने अपना स्वाध्याय जारी रखा। अभी आप केवल 13 वर्ष की अवस्था तक ही पहुँची थीं कि आपने 'कृष्ण जन्मा-ष्टमी' पर 'झाँकी' शीर्षक नामक एक कविता लिखी। आपके पिता उसे पढ़कर हर्ष-विभोर हो गए और उन्होंने आपको 100 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया। जो कविता आपने लिखी थी उसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

मुझे बुलावा दे न सकेंगे, जग के सुख-दुख मिथ्या लोक,
तेरे पास पहुँच पाने में, कभी न होगी मुझको रोक।
चित्र लिखा-सा रह जाएगा, यह जग भी अवलोक मुझे,
तम होकर भी खोज सकूँगी, कभी अमर पथ का आलोक।
ओ असीम हो चुका असीमित इस लघु जीवन का विस्तार।
मैं ही क्या, बलिहार आज तो त्रिभुवन झाँकी पर बलिहार॥

थोड़े ही दिन बाद आपके पिता का देहान्त हो गया। बाला इस असह्य आघात को न सह सकी और कुछ समय पश्चात् ही केवल 14 वर्ष की स्वल्प-सी आयु में सन् 1952 में आपने इस संसार को त्याग दिया। आपकी मृत्यु के बाद अब जो रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं उनसे आपकी काव्य-प्रतिभा का स्पष्ट परिचय मिलता है। इन रचनाओं का प्रकाशन 'श्रेय' के 'स्व० वीरबाला काव्य-साधना अंक' में 'अन्तश्चेतनात्मक गीत' नाम से हुआ है।

ओरछा-नरेश वीरसिंह जू देव

ओरछा-नरेश श्री वीरसिंह जू देव का जन्म सन् 1899 में हुआ था। आपका राज्य-काल सन् 1930 से सन् 1947 तक रहा था। राज्य-भार सँभालते ही आपने घोषणा कर दी थी कि आपके राज्य की भाषा हिन्दी है अतएव उसका प्रचार-प्रसार किया जाय। ब्रजभाषा और बुन्देली बोली के विकास के लिए भी आपने प्रशंसनीय कार्य किया था। ब्रजभाषा के साहित्य को प्रोत्साहन देने के निमित्त आपने जहाँ दो हजार रुपए का प्रतिवर्ष दिया जाने वाला 'पुरस्कार' प्रारम्भ किया वहाँ बुन्देलखण्डी बोली के उद्धार के लिए 'लोकवार्ता' तथा जनपदीय आन्दोलन के प्रचार के लिए 'मधुकर' नामक पत्र प्रकाशित कराए। इनमें से 'लोकवार्ता' का सम्पादन प्रख्यात लोक-शास्त्र-विशेषज्ञ श्री कृष्णानन्द गुप्त ने किया था और 'मधुकर' के सम्पादन के लिए पत्रकार-शिरोमणि पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ओरछा की राजधानी टीकमगढ़ में अपनी शिष्य-मंडली के साथ अनेक वर्ष तक रहे थे। आपने वहाँ 'कुण्डेश्वर' को अपनी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया था।

श्री वीरसिंह जू देव जिन दिनों इन्दौर के राजकुमार कालेज (डेली कालेज) में पढ़ते थे उन दिनों डॉ० सम्पूर्णानन्द और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आपको पढ़ाते थे। श्री चतुर्वेदीजी से आप वहाँ से ही प्रभावित थे। चतुर्वेदीजी ने आपको सन् 1914 से सन् 1918 तक वहाँ पर हिन्दी पढ़ाई थी। साहित्य और काव्य को प्रोत्साहन देने के लिए आपने जहाँ 'श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद्' की स्थापना की वहाँ 'लोकवार्ता परिषद्' के द्वारा बुन्देलखण्ड की संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज, लोक-गीत, नृत्य और कथा-कहानियों के उद्धार का भी अभिनन्दनीय कार्य कराया। बुन्देली भाषा के शब्द-कोश-संकलन की दिशा में भी आपका योगदान अनन्य था। स्वर्गीय मुंशी अजमेरी तथा कविवर बिहारी आदि बहुत-से महानुभाव आपके 'राजकवि' थे। आप अपने कार्यों के प्रति इतने निस्पृह और उदासीन थे कि आपने 'मधुकर' तथा 'लोकवार्ता' में कभी भी अपनी प्रशंसा में लेख आदि नहीं छपने दिए।

यही नहीं कि आपने टीकमगढ़ में हिन्दी के कार्यों को आगे बढ़ाया, बल्कि अखिल भारतीय साहित्य-सम्मेलन को भी एक ऐसी राशि दान में दी जिसके ब्याज से सम्मेलन की ओर से प्रकाशित होने वाली 'आधुनिक कवि' नामक पुस्तक-माला प्रकाशित हो रही है। इस पुस्तकमाला में अभी तक श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० गोपालशरणसिंह, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्री माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ० हरिवंशराय बच्चन, श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री भगवतीचरण वर्मा और श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि 18 कवियों की कविताओं के प्रतिनिधि संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

आपके द्वारा प्रारम्भ किये गए 'देव पुरस्कार' की राशि दो हजार रुपए की थी, जो 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की

ओर से प्रतिवर्ष दिए जाने वाले हिन्दी के सर्वोच्च 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से भी अधिक है। 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' की राशि तो केवल 1200 रुपए ही है। सर्वप्रथम यह पुरस्कार सन् 1935 में श्री दुलारेलाल भार्गव की 'दुलारे दोहावली' नामक कृति पर प्रदान किया गया था। सन् 1956 में जब से टीकमगढ़ रियासत का 'मध्यप्रदेश' में विलीनीकरण हुआ तब से यह पुरस्कार 'मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्' की ओर से बराबर प्रदान किया जाता है। आपका पुस्तक-प्रेम इसीसे प्रकट होता है कि आपके निजी पुस्तकालय में कला, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी अनेक दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अद्भुत संग्रह है। वास्तव में आपके उस पुस्तकालय को देखकर आपकी रुचि एवं कला, संस्कृति और साहित्य-प्रेम का परिचय मिलता है।

आपका निधन 9 अक्तूबर सन् 1956 को हुआ था।

डॉ० वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति

डॉ० वीरेन्द्र का जन्म उत्तरप्रदेश के पूर्वी अंचल के देवरिया जनपद के हाटा गाँव नामक स्थान में 13 फरवरी सन् 1909 को हुआ था। आप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक थे और वहाँ से सन् 1930 में आपको 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि प्रदान की गई थी। वहाँ से स्नातक होने के उपरान्त आपने पटना विश्वविद्यालय से संस्कृत तथा हिन्दी दोनों विषयों में एम० ए० करने के उपरान्त वहाँ से ही 'अपभ्रंश भाषा का अध्ययन : ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपने 'कलकत्ता संस्कृत एसोसिएशन' की काव्यतीर्थ, सांख्यतीर्थ, वेदान्त तीर्थ और दर्शन तीर्थ आदि उपाधियाँ भी प्राप्त की थीं।

कुछ दिन तक गुरुकुल आँवला (बरेली) तथा गुरुकुल वैद्यनाथ धाम के आचार्य रहने के बाद आप रामकृष्ण कालेज, मधुबनी (दरभंगा), राजेन्द्र कालेज, छपरा और राँची कालेज में हिन्दी के प्रवक्ता रहने के उपरान्त सन् 1953 से सन् 1973 तक भागलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे। वहाँ से निवृत्ति पाने के बाद आप 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' की योजना के अधीन पटना विश्वविद्यालय में अध्यापन एवं शोध-कार्य कराते रहे।

आप भारतीय दर्शन के उच्चकोटि के विद्वान् होने के साथ-साथ भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी अद्वितीय क्षमता रखते थे। गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त आपने अपने नाम के साथ 'विद्यावाचस्पति' न लगाकर 'श्रीवास्तव' जोड़ लिया था, जो बहुत से लोगों को भ्रम में डाल देता है। आपकी अपभ्रंश भाषा-सम्बन्धी पुस्तक पर 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' ने ताम्रपत्र सहित एक हजार रुपए का पुरस्कार भी प्रदान किया था।

आपका निधन 21 अगस्त सन् 1979 को पटना के चिकित्सालय में हुआ था।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म उत्तर प्रदेश के मऊरानीपुर (झाँसी) नामक स्थान में 9 जनवरी सन् 1889 को एक सामान्य कायस्थ-परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री अयोध्याप्रसादजी झाँसी के तहसीलदार के कार्यालय में 'रजिस्ट्रार कानूनगो' थे। जब आप केवल 4 वर्ष के थे तब आपका अक्षरारम्भ हुआ था और 7 वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते आपने पढ़ना-लिखना सीख लिया था। 12 वर्ष की अवस्था में आपने 'चन्द्रकान्ता सन्तति' पूरी पढ़ डाली थी। जब आप छठी कक्षा में थे तब आपने 'रोबिन्सन क्रूसो' तथा 'गुलीवर्स ट्रैवल्स' नामक पुस्तकों का भी पूर्ण पारायण कर लिया था। उसी समय आपके मन में यह भावना जमी थी

कि तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' का गद्य में सार लिखा जाय। 15-16 पृष्ठ लिखे भी, किन्तु बाद में वह ठप हो गया। जब आठवें दर्जे में आपके हाथ जार्ज विलियम रेनाल्ड्स-कृत 'सोल्जर्स वाइफ' नामक पुस्तक लगी तब उसे पढ़कर आपके मन में भी यह भावना जगी थी कि क्यों न ऐसे ही बुन्देलखण्ड के किसी डाकू की बीवी का किस्सा लिखा जाय! जब आप अपने अध्ययन के प्रसंग में ललितपुर गए तब वहाँ आपको अध्ययन करने का और भी खुला अवसर मिला। धीरे-धीरे आप मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त 'मुहर्रिर' का काम करने लगे। एक दिन न जाने क्यों, सहसा आपके मन में वकील बनने की भावना जगी और तत्काल वहाँ से त्यागपत्र देकर आगे की पढ़ाई के लिए आपने विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर में जाकर दाखिला ले लिया। ग्वालियर से बी० ए० करने के उपरान्त आपने आगरा जाकर एल-एल० बी० की पढ़ाई प्रारम्भ कर दी। घर से कोई विशेष आर्थिक सहायता मिलने की कोई आशा न देखकर आपने ट्यूशन आदि करके अपनी पढ़ाई जारी रखी। इसी बीच कुछ दिन के लिए आपने 'मुफीद आम हाई स्कूल' में तीस रुपए मासिक की नौकरी भी की तथा अपने अनवरत अध्यवसाय एवं लगन के कारण एल-एल० बी० हो गए।

सन् 1916 में आपने वकालत प्रारम्भ की। पहले महीने केवल 5 रुपए तथा दूसरे महीने में 7 रुपए ही आए। एकाध महीना खाली ही गया। इससे निराश होकर आपने काशी के बाबू गौरीशंकरप्रसाद की कृपा से नेपाल के राज-गुरु को हिन्दी पढ़ाने के लिए बाहर जाने का निश्चय किया, लेकिन पिता ने नहीं जाने दिया। फिर वकालत में मन लगाया और मार्च सन् 1917 से वकालत ऐसी चली कि मुकद्दमे दूसरों को भी देने पड़े। इस बीच कचहरी में समय निकलने पर अध्ययन, स्वाध्याय का चस्का भी लग गया। ढूँढ़-ढाँढकर मेटरलिंक, अनातोले फ्रांस, मौलियर, मोपासाँ, टालस्टाय और पुश्किन की कृतियों को पढ़ने लगे। इमर्सन तो आपके प्रिय लेखक ही हो गए थे। धीरे-धीरे कुश्ती का शौक भी लग गया और लंगोट-लाठी सँभालकर नित्य-प्रति व्यायाम करने लगे। पहलवानी के इन दिनों में एक बार आप 5 सेर दूध तथा पाव-डेढ़ पाव जलेबियाँ एक साथ पेट में उतार गए थे। निरन्तर स्वाध्याय करते रहने के कारण धीरे-धीरे आपके मन में भी लेखक बनने की धुन सवार हुई और एक दिन देखते-ही-देखते आपने 'नारान्तक वध' नामक एक नाटक लिख डाला, जिसे आपने स्वयं खेलकर भी देखा था। सन् 1908 में आपने 'महात्मा बुद्ध का जीवन चरित्र' लिखने के अतिरिक्त शैक्सपियर के 'टैम्पेस्ट' का अनुवाद भी किया। आपके 'महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित्र' को आगरा के राजपूत प्रेस के मालिक कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी ने छापा था और 'टैम्पेस्ट' का अनुवाद वर्माजी ने श्री मैथिलीशरण गुप्त को दे दिया था, जो उनसे कहीं खो गया।

सबसे पहले वर्माजी की 'राखी बन्द भाई' तथा 'राज-पूत की तलवार' नामक दो कहानियाँ सन् 1909 में 'सरस्वती' में छपी थीं। सन् 1910 में भी आपकी 'सफ़े-जिस्ट की पत्नी' नामक कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। उसी वर्ष 'सेनापति ऊदल' नामक एक नाटक भी छपा था, जिसे सरकार ने जब्त कर लिया था और 2 वर्ष तक पुलिस भी वर्माजी को तंग करती रही थी। जब वर्माजी को कहानी-लेखन में सफलता मिलने लगी तो आपने उपन्यास लिखने का संकल्प किया। परिणामस्वरूप सन् 1927 में आपका सबसे पहला उपन्यास 'गढ़ कुण्डार' लिखा गया और सन् 1930 में 'विराटा की पद्मिनी' नामक उपन्यास की सृष्टि हो गई। ये दोनों उपन्यास तुरन्त 'गंगा पुस्तकमाला लखनऊ' की ओर से प्रकाशित भी हो गए। इन उपन्यासों की रचना के उपरान्त फिर कुछ दिन के लिए आप साहित्यिक जीवन से दूर हो गए और अपनी वकालत की गाढ़ी कमाई के 50-60 हजार रुपए एक फार्म बनाने में लगा दिए। कँक-रीली, पथरीली और ऊसर जमीन होने के कारण आप उसमें सफल न हो सके और अपनी कमाई की रकम के अति-रिक्त 60 हजार रुपए और कर्ज के भी डुबा दिए।

फिर 10-12 वर्ष बाद आपने अपनी लेखनी को सँभाला और 'कभी न कभी' उपन्यास तथा एक नाटक की रचना आपने की। इस बीच वर्माजी के सुपुत्र श्री सत्यदेव वर्मा ने 'मयूर प्रकाशन' प्रारम्भ करके वर्माजी को साहित्य-रचना के लिए प्रेरित किया और परिणामस्वरूप आपने अपनी लेखनी को फिर जो सँभाला तो अन्तिम समय तक विराम नहीं लिया और अहर्निश साहित्य-रचना में ही लगे रहे। यहाँ तक कि वर्माजी रोजाना 12-12, 14-14 घंटे लिखने में ही संलग्न रहते थे। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि आपने दर्जनों उपन्यास तथा सैकड़ों कहानियाँ उन दिनों लिखे। सन् 1942 के उपरान्त रचित वर्माजी की रचनाओं का काल-क्रम से विवरण इस प्रकार है—'मुसाहिबजू' (उपन्यास, 1943), 'कलाकार का दण्ड' (कहानी-संग्रह, 1943), 'झाँसी की रानी' (उपन्यास, 1946), 'कचनार' (उपन्यास, 1947), 'अचल मेरा कोई' (उपन्यास, 1947) 'झाँसी की रानी' (नाटक, 1947), 'राखी की लाज' (उपन्यास, 1947), 'कश्मीर का काँटा' (नाटक, 1947), 'माधवजी सिन्धिया' (उपन्यास, 1949), 'टूटे काँटे' (उपन्यास, 1949), 'मृगनयनी' (उपन्यास, 1950), 'सोना' (उपन्यास, 1950), 'हंस मयूर' (नाटक 1950), 'बाँस की फाँस' (नाटक, 1950), 'पीले हाथ' (नाटक, 1950), 'लो भाई पंचो, लो' (एकांकी, 1950), 'तोषी' (कहानी-संग्रह, 1950), 'पूर्व की ओर' (नाटक, 1951), 'केवट' (नाटक, 1951), 'नील कण्ठ' (नाटक, 1951), 'फूलों की बोली' (नाटक, 1951), 'कनेर' (एकांकी-संग्रह, 1951), 'सगुन' (नाटक, 1951), 'जहाँदारशाह' (नाटक, 1951), 'अमर बेल' (उपन्यास, 1952), 'मंगल-सूत्र' (नाटक, 1952), 'खिलौने की खोज' (नाटक, 1952), 'बीरबल' (नाटक, 1953), 'ललित विक्रम' (नाटक, 1953), 'भुवन विक्रम' (उपन्यास, 1954), 'अहिल्या बाई' (उपन्यास, 1955), 'शरणागत' (कहानी-संग्रह, 1955), 'निस्ता' (नाटक, 1956), 'देखा-देखी' (नाटक, 1956), 'दबे पाँव' (शिकार-कहानियाँ, 1957), 'अँगूठी का दान' (कहानी-संग्रह, 1957), 'अकबरपुर के अमर मीर' (कहानियाँ, 1957), 'ऐतिहासिक कहानियाँ' (1957), 'मेंढकी का ब्याह' (कहानियाँ, 1957) तथा 'बुन्देलखण्ड के लोकगीत' (1957) आदि। आपकी 'शबनम', 'आहत' और 'लाल कमल' अप्रकाशित रचनाएँ हैं। इनमें से 'झाँसी की रानी' तथा 'मृगनयनी' को अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

वर्माजी के साहित्य की इस सूची को देखने से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यदि आप कृषि-फार्म के चक्कर में न पड़ते तो सरस्वती के भण्डार की अभिवृद्धि करने की दिशा में और भी क्रियाशील होते। कदाचित् यह बात बहुत कम पाठकों को विदित होगी कि वर्माजी अच्छे निशानेबाज भी थे। अपने शिकारी-जीवन की अनुभूतियाँ आपने 'दबे पाँव' नामक पुस्तक में लिपिबद्ध कर दी हैं। एक सुलेखक होने के साथ-साथ वर्माजी सामाजिक कार्यकर्त्ता भी उच्चकोटि के थे। आपके द्वारा स्थापित झाँसी का 'कोआपरेटिव बैंक' आपकी कर्मठता का सजीव स्मारक है। अनेक वर्ष तक इस बैंक के प्रबन्ध-निदेशक होने के साथ-साथ आप लगभग 12 वर्ष तक झाँसी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन भी रहे थे। कुछ दिन तक आपका आतंकवादियों से भी गहरा सम्बन्ध रहा था। आप बीच-बीच में उनकी आर्थिक सहायता भी करते रहते थे। अहिंसा में आपका बहुत कम विश्वास था। इस सम्बन्ध में आपकी यह पंक्तियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—"गान्धीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन ने जनता को निर्भीक तो बनाया, परन्तु हमें सन् 1857, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, तिलक, गोखले तथा दादाभाई नौरोजी इत्यादि और अन्य आतंकवादियों के कार्यों को सामूहिक रूप से ध्यान में रखना चाहिए। सुभाष बोस और आजाद हिन्द फौज तथा नाविक विद्रोह को भी हमें नहीं भूलना चाहिए।"

आपने अपने संघर्षपूर्ण जीवन की जो गाथा 'अपनी कहानी' नामक पुस्तक में वर्णित की है उसे पढ़कर आपके जीवन्त व्यक्तित्व की सही झाँकी मिल जाती है। आपको अपनी इतिहास-सम्बन्धी रचनाओं के कारण हिन्दी का 'वाल्टर स्काट' कहा जाता है। आपकी साहित्य-सेवाओं को दृष्टि में रखकर आगरा विश्वविद्यालय ने जहाँ अपनी डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान करके अपना गौरव बढ़ाया था वहाँ भारत के राष्ट्रपति ने भी आपको 'पद्मभूषण' के अलंकरण से सुशोभित किया था। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी आपको अपनी सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' प्रदान की थी।

आपका निधन 23 फरवरी सन् 1969 को हुआ था।

श्री वेंकटेशचन्द्र पाण्डे 'कवि कोल्हू'

श्री वेंकटेशचन्द्र पाण्डे का जन्म 1 जुलाई सन् 1919 को उत्तर प्रदेश के बरेली नगर में हुआ था। 2 वर्ष की आयु में ही माता-पिता का निधन हो जाने के कारण आपका बचपन अपनी ननिहाल खुदागंज (शाहजहाँपुर) में व्यतीत हुआ था। आपके मामा श्री शंखधर प्रसिद्ध वैद्य होने के साथ-साथ संस्कृत में कविता करने में भी प्रवीण थे। उन्हींसे आपको कविता लिखने की प्रेरणा भी मिली थी। आपकी शिक्षा अपने अग्रज श्री हरिश्चन्द्र पाण्डे के साथ रहते हुए ललितपुर, झाँसी, शाहजहाँपुर तथा बरेली आदि के राजकीय विद्यालयों में पूर्ण हुई थी।

सन् 1938 मे बरेली कालेज, बरेली से हिन्दी में एम० ए० करने के बाद आपने फतेहपुर जनपद की खजुहा तहसील के एक हाईस्कूल में अध्यापक का पद सँभाला। सन् 1939 में पीलीभीत के इस्लामिया हाईस्कूल में आपकी नियुक्ति हुई और उसी समय आपका विवाह हुआ। पीलीभीत की हिन्दी परिषद् के उद्धार के लिए आप सर्वदा सक्रिय रहते थे। आपने राजकीय विद्यालयों में कार्य-रत भाषा-अध्यापकों की दशा सुधारने के लिए सम्पूर्ण प्रान्त के अध्यापकों को संगठित करके भाषा-अध्यापकों के लिए उचित वेतन-मान निर्धारित कराया। परिणामत: आपको उच्च अधिकारियों का कोप-भाजन भी बनना पड़ा। सन् 1951 से सन् 1958 तक आपको अनेक जगह स्थानान्तरित भी किया गया। जब सन् 1958 में तत्कालीन शिक्षा निदेशक श्री चन्द्रमोहन नाथ ने आपकी रचनाएँ पढ़ीं तो उनसे प्रभावित होकर आपके जीवन के अन्तिम स्थानान्तरण का आदेश जारी करवा दिया। आप पाठ्य-पुस्तक-विभाग लखनऊ के कार्यालय में प्राइमरी तथा जूनियर हाईस्कूल कक्षाओं की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों के जीर्णोद्धार के कार्य में सहयोग देते रहे थे।
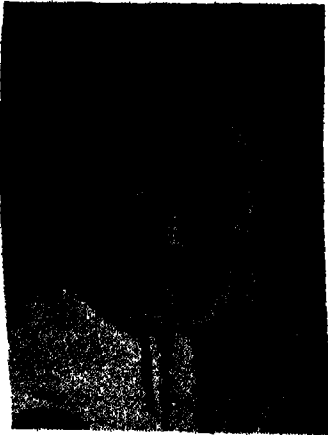
सन् 1958 से सन् 1973 तक इसी कार्यालय में रहकर साहित्यिक सहायक के पद से उन्नति करके आप उप-पाठ्य-पुस्तक अधिकारी बन गए थे। लखनऊ-प्रवास में रची गई आपकी कृतियों को उत्तर प्रदेश की हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, पश्चिमी बंगाल, जम्मू और कश्मीर तथा महाराष्ट्र आदि राज्यों की हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों में भी सम्मान मिला था।

आपकी प्रमुख रचनाओं में 'चप्पल' (1939), 'मेरा टामी' (1946), 'रेल का डिब्बा' (1959), तथा 'नन्हा पौधा' (1973) काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त ऐतिहासिक कृति 'अद्‌भुत भारत' (1968) प्रमुख हैं। यह कृति ए०एल० बाशम-कृत 'वण्डर दैट वाज इण्डिया' का अनुवाद है। इनके अतिरिक्त आपकी 'राजधानी की छिपकली' नामक एक कृति अप्रकाशित ही है।

आपका निधन 16 दिसम्बर सन् 1973 को हृदय गति रुक जाने से हुआ था।

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

श्री तिवारीजी का जन्म सन् 1890 में कानपुर शहर के पटकापुर नामक मोहल्ले में हुआ था। आपकी शिक्षा क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर तथा म्योर सैन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद में हुई थी। सन् 1910 में इतिहास विषय में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप उसी वर्ष श्री गोपालकृष्ण गोखले की 'भारत सेवक समिति' में सम्मिलित हो गए। सन् 1930 में गान्धीजी के आह्वान पर आपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। सन् 1921-22 में आपको श्रीनिवास शास्त्री के प्रस्ताव पर गान्धीजी ने भारतीयों की दशा का अध्ययन करने के लिए लन्दन भेजा था। सन् 1937 में आप उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और मुख्य संसदीय सचिव के रूप में 'मंत्रि-मंडल' में सम्मिलित हुए।

जब उस मंत्रि-मंडल में शिक्षा-मन्त्री के रूप में डॉ० सम्पूर्णानन्द ने उर्दू को प्रदेश की द्वितीय भाषा मानने से इन्कार कर दिया और वहाँ के मुस्लिम-लीगियों ने तूफान मचाया तो श्री तिवारी ने किताबों और अखबारों की छपाई के आँकड़े, परीक्षा में हिन्दी लेकर बैठने वाले छात्रों की संख्या और इसी प्रकार के अनेक अकाट्य प्रमाण देकर उनकी बात का प्रतिवाद करके यह सिद्ध किया कि प्रान्त की बहुसंख्य जनता की भाषा हिन्दी है, न कि उर्दू। तिवारीजी के इस प्रतिवाद से उस समय बड़ी हलचल मची थी। सामयिक, राजनीति और अनेक सामाजिक विषयों पर अधिकारपूर्वक लिखने के अतिरिक्त आप साहित्यिक-समीक्षात्मक लेख लिखने में भी अद्वितीय थे। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब 'विधान निर्मात्री परिषद्' का निर्माण हुआ तो आप उसके भी सदस्य मनोनीत हुए थे।

तिवारीजी आँकड़ों के द्वारा किसी भी विषय पर साधिकार लिखने में अद्वितीय सामर्थ्य रखते थे। आपने अपनी इस प्रतिभा द्वारा अनेक बार लोगों को चमत्कृत भी कर दिया था। संसदीय मामलों के तो आप निष्णात पंडित थे। बड़े-से-बड़े जटिल मामलों को ऐसे सुलझाने में दक्ष थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। आपका अधिकांश समय लखनऊ के विधान-सभा भवन और लोकसभा भवन के पुस्तकालयों में ही व्यतीत होता था। किसी भी विषय पर साधिकार और सुपुष्ट प्रमाणों सहित अपनी बात को प्रस्तुत करने की कला में आप पूर्ण दक्ष थे। राजनीति में आपने जहाँ गोखले, मालवीय तथा हृदयनाथ कुंजरू से अनेक संस्कार पाए थे वहाँ पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपने सी० वाई० चिन्तामणि-जैसे व्यक्ति को अपना आदर्श माना था। कांग्रेस में आप रफी-अहमद किदवई के साथी थे।

तिवारीजी ने अपना पत्रकार-जीवन 'अभ्युदय' से प्रारम्भ किया था और 'भारत' में उसकी प्रखरता तब देखने को मिली जब आपने पं० रामनरेश त्रिपाठी के 'ग्राम-गीतों', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय प्रवास' तथा 'रस कलश' और मैथिलीशरण गुप्त द्वारा प्रारम्भ किया गया 'राधा-स्वकीया या परकीया' वाला आन्दोलन हिन्दी-जगत् में अपनी तेजस्विता के लिए बड़ी चर्चा का विषय हो गया था। इसी आलोचना के सन्दर्भ में हरिऔधजी की 'रस कलश' कृति को आपने 'बुढभस' की संज्ञा दी थी। आपकी सम्पादन-कला का ज्वलन्त रूप उस समय और भी तेजस्विता के साथ हिन्दी-जगत् के समक्ष आया जब आपने सन् 1953 में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले हिन्दी दैनिक 'जनसत्ता' के सम्पादन का भार ग्रहण किया था। उन दिनों भारत के तत्कालीन शिक्षामन्त्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने 'हिन्दुस्तानी कोष' बनाने के लिए पं० सुन्दरलाल को मोटी रकम दी थी और हिन्दी के तत्सम शब्दों का पूर्णत: बहिष्कार करके सरलता के नाम पर 'केन्द्रीय' के लिए 'बिचबिन्दी', 'प्रधान' के बजाय 'पहलुआ', 'कैबिनेट' के लिए 'खोली' और 'संस्कृति' के लिए 'मंझन'-जैसे हास्यास्पद शब्द गढ़े गए थे। उस समय 'जनसत्ता' में 'हिन्दी की बिचबिन्दी खोली—किसने ?' शीर्षक जो लेखमाला छपी थी उसने उन दिनों तहलका-सा मचा दिया था। तिवारीजी ने हिन्दी को विकृत करने के इस 'कुचक्र' का संसद् के भीतर और बाहर घनघोर विरोध किया था। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में 'चारु चरितावली' और 'हिन्दी बनाम उर्दू' उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 20 जून सन् 1965 को हुआ था।

श्री वेण्णिकुलम गोपाल कुरुप

श्री गोपाल कुरुप का जन्म सन् 1902 में केरल प्रदेश के तिरुवल्ला क्षेत्र के वेण्णिकुलम नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। आपने महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की प्रख्यात कृति 'रामचरित-मानस' का मलयालम भाषा में अत्यन्त सफल अनुवाद किया है, सारा ही अनुवाद पद्य में है।

आपकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको जहाँ 'साहित्य निपुण' और 'साहित्य-कला-निधि' की सम्मानोपाधियाँ प्रदान की गई थीं वहाँ 'केरल साहित्य अकादमी' ने भी आपकी कृति 'माणिक्य वीणा' को सन् 1967 में पुरस्कृत किया था । आपके द्वारा किये गए तमिल ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' के मलयालम अनुवाद पर भी पुरस्कार प्रदान किया गया था। आपकी कृति 'काम सुरभि' को जहाँ सन् 1974 में साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली ने पुरस्कृत किया था वहाँ कानपुर विश्वविद्यालय ने आपको 'डी-लिट्०' की मानद उपाधि से सम्मानित करके अपने कर्त्तव्य का पालन किया था।

आपका निधन 28 अगस्त सन् 1980 को हुआ था।

•

स्वामी वेदानन्द तीर्थ

स्वामी वेदानन्द तीर्थ का जन्म उज्जैन (मध्य प्रदेश) के एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में सन् 1894 में हुआ था। आपके पिता श्री कृष्णमोहन ज्येष्ठानन्द चतुर्वेदी श्रीकृष्ण के उपासक थे। स्वामीजी का जन्म-नाम क्या था, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग आपका नाम यशवन्तराव बताते हैं, तो कुछ धर्मदत्त; और कोई-कोई तो मूलचन्द कहते हैं। जब आपका दूसरा जन्म-दिन था तब आपकी नेत्र-ज्योति अचानक चली गई और लगभग 3 वर्ष तक वैसी स्थिति रही। एक ग्रामीण कृषक की चिकित्सा के फलस्वरूप 3 वर्ष बाद आपकी आँखें ठीक हो सकी थीं। किशोर वय में ही आपने घर छोड़ दिया था। परिणामस्वरूप आप उज्जैन से इधर-उधर विचरते हुए पंजाब में जा पहुँचे और वहाँ के मुलतान नगर के गोस्वामी घनश्यामजी के यहाँ रहकर आपने 'अष्टाध्यायी' पढ़ने के साथ-साथ सरकारी स्कूल में दाखिल होकर 'यशवन्तराय' नाम से पंजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके उपरान्त आपने काशी में जाकर वहाँ के जिन प्रख्यात पण्डितों से विद्याध्ययन किया था उनमें श्री काशीनाथजी शास्त्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काशी में ही 'जयानन्द तीर्थ' नामक एक आर्य संन्यासी से आपने संन्यासाश्रम की दीक्षा ग्रहण करके 'दयानन्द तीर्थ' नाम रखा। इस नाम के रखने का कारण वेदों के प्रति आपकी अगाध निष्ठा ही थी। संन्यासाश्रम में दीक्षित होने के कुछ समय बाद आप महात्मा मुन्शीराम के अनुरोध पर गुरुकुल कांगड़ी चले आए और वहाँ रहकर आपने अपने स्वाध्याय को जारी रखा। इसके उपरान्त आप जमकर विद्याध्ययन करने की दृष्टि से एक बार फिर काशी गए, किन्तु वहाँ के पुराने विचारों के पण्डितों ने आर्यसमाजी होने के कारण आपको पढ़ाने में संकोच का अनुभव किया। उन दिनों महापंडित राहुल सांकृत्यायन भी आपके सहाध्यायी थे।

सन् 1926 में आप लाहौर के 'दयानन्द उपदेशक विद्यालय' में मुख्याध्यापक होकर वहाँ चले गए और सन् 1939 में आप वहाँ के 'आचार्य' पद पर प्रतिष्ठित हुए तथा देश के विभाजन से दो दिन पूर्व (13 अगस्त सन् 1947) तक इसी पद पर रहे। इसके उपरान्त आपने दिल्ली के निकट 'खेड़ा खुर्द' नामक स्थान पर आकर 'विरजानन्द वैदिक संस्थान' नामक संस्था की स्थापना की और उसके द्वारा वेदों के स्वाध्याय, लेखन और प्रचार-कार्य में संलग्न हो गए। आपके परामर्श पर आर्य जगत् के प्रख्यात संन्यासी महात्मा नारायण स्वामी ने 'सार्वदेशिक दयानन्द

भिक्षु मण्डल' नामक जिस संस्था की स्थापना की थी, आपको उनके निधन के बाद अध्यक्ष बनाया गया और कई वर्ष तक आपने इस संस्था के प्रधान कार्यालय 'आर्य वान प्रस्थाश्रम ज्वालापुर' में रहकर उसका विधिवत् संगठन किया। सन् 1950 में जब वहां पर आपका कुछ विरोध हुआ तो आपने 'विरजानन्द वैदिक स्थान' का कार्यालय गाज़ियाबाद में स्थापित करके उसके मुखपत्र के रूप में 'वेद पथ' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसी बीच आप 'आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब' के प्रधान निर्वाचित हुए और आपने पंजाब सरकार की हिन्दी-विरोधी नीति के विपक्ष में 'हिन्दी सत्याग्रह' की घोषणा कर दी। आपने उस समय आर्य जनता को इन शब्दों में उद्बोधित किया था—"पंजाब के समस्त हिन्दी-प्रेमियों की परीक्षा का यह समय है। यदि हिन्दी-प्रेमी चाहें तो वे कांग्रेस को यह शिक्षा दे सकते हैं कि उसे छठी का दूध याद आ जाय। उसे वोट चाहिएँ। वोट आपके हाथ में हैं। संगठित हो जाओ और बताओ कि किसी हिन्दी-विरोधी को वोट न देंगे।"

आप जहां अच्छे संगठक और प्रकाण्ड विद्वान् थे वहां कुशल लेखक भी थे। आपके द्वारा लिखित अनेक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों में 'स्वाध्याय संदोह', 'स्वाध्याय-संग्रह', 'सावित्री प्रकाश', 'स्वाध्याय-सुमन', 'वेदामृत', 'वेद-प्रवेश', 'वेदोप-देश', 'वैदिक धर्म', 'श्रुति-सूक्ति-शैली', 'राष्ट्र रक्षा के वैदिक साधन', 'वेद परिचय', 'आर्यसमाज और राजनीति', 'सन्ध्या-लोक', 'हम संस्कृत क्यों पढ़ें ?', 'नैमित्तिक वेदपाठ', 'पंच महायज्ञ विधि', 'संस्कार विधि', 'विरजानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र', 'आर्य बोध-कथा', 'हमारा नाम आर्य है, हिन्दू नहीं', 'स्वामी दयानन्द की अद्भुत बातें', 'दयानन्द की विलक्षण बातें', 'पुराणों में परस्पर विरोध', 'वेदार्थ कोष', 'नारद नीति', 'कणिक नीति' और 'विदुर नीति' आदि उल्लेखनीय हैं। आपने 'जीवन की भूलें' नाम से अपनी एक आत्म-कथा भी प्रकाशित की थी। इन सबके अति-रिक्त आपने 'सत्यार्थ प्रकाश' का एक बहुत बड़ा संस्करण अपनी शोधपूर्ण टिप्पणियों के साथ मोटे टाइप में प्रकाशित किया था। इस संस्करण में आपने जो कठिन परिश्रम किया था वह आपकी अनन्य-निष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण है।

आपका निधन दयानन्द वाटिका सब्जी मण्डी, दिल्ली में 27 नवम्बर सन् 1956 को हुआ था।

महाकवि शंकरदास

श्री शंकरदास का जन्म मेरठ से 7 मील पूर्व में गढ़मुक्तेश्वर को जाने वाली सड़क पर बसे जिठौली नामक ग्राम के एक वशिष्ठगोत्रीय ब्राह्मण-परिवार में सन् 1823 में पंडित कल्याणदत्त के यहां हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती दानकौर था। अपने पारिवारिक परिवेश का परिचय शंकरदास ने एक पद में इस प्रकार दिया है :

मकरन्द हुतियाने का निकास हुआ,
पिलखुवा में बसे, बढ़े अन्न जल प्रकास का।
कल्याणदत्त नाम-देह, पिता का विख्यात हुआ,
दानकौर माता, फन्दा टूटा यम-त्रास का॥
आद्य गौड़ विप्र और, गोत्र तो वशिष्ठ म्हारा,
मेरठ का जिला, डाकखाना मऊ खास का।
गढ़ को सड़क जात, मौजे का जिठौली नाम,
छोटा-सा स्थान, जिसमें बना शंकरदास का॥

बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में ही आपने कवित्व में पूर्ण प्रखरता प्राप्त कर ली और आपके निर्गुण भक्तिपरक गीतों का प्रचार इस क्षेत्र में इतना अधिक हो गया था कि गंगा-तटवर्ती मेरठ अंचल से लेकर पश्चिम के सभी क्षेत्रों तक इनकी शिष्य-परम्परा हो गई थी। आप बाल-ब्रह्मचारी, सत्य-शोधक और ब्रह्म-ज्ञानी के रूप में न केवल इस क्षेत्र में ही विख्यात हुए बल्कि आपकी रचनाओं की ख्याति देश में दूर-दूर तक फैल गई। पूर्वी पंजाब, हरियाणा और मेरठ मंडल में तो आपकी रचनाओं ने इतनी जागृति उत्पन्न की कि सर्वत्र आपकी शिष्य-परम्परा स्थापित हो गई। आपकी जो प्रमुख रचनाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध होती हैं उनमें—'भक्ति मुक्ति प्रकाश', 'भजन शब्द वेदान्त', 'ब्रह्म ज्ञान प्रकाश', 'बुद्धि प्रकाश', 'धर्म सनातन', 'बारह खड़ी', 'रुक्मिणी मंगल', 'कृष्ण जन्म', 'ध्रुव भगत', 'प्रहलाद भक्त', 'हरिश्चन्द्र', 'नरसी का भात', 'श्रवणकुमार', 'मोरध्वज', 'सती सुलोचना' और 'महाभारत (भीष्म पर्व)' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सन्त शंकरदास की रचनाओं में से 'ब्रह्मज्ञान प्रकाश' लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से सन् 1921 में प्रकाशित हुई थी। 'महाभारत' (भीष्म पर्व) भी उन्हीं दिनों छपा था। 'ब्रह्मज्ञान प्रकाश' में आपकी फुटकर रचनाएँ समाविष्ट हैं

और 'महाभारत' प्रबन्ध काव्य है। लगभग 2500 पदों के शंकरदास के समग्र काव्य-साहित्य पर दृष्टि डालने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अष्टांग योग, आयुर्वेद, कर्मयोग एवं समाधि आदि विविध विधाओं का विकास प्रमुखता से हुआ है।

महाकवि शंकरदास का जन्म यद्यपि आधुनिक काल के प्रारम्भिक दिनों में हुआ था तथापि आपकी रचनाओं में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की अद्भुत त्रिवेणी का अभूतपूर्व समन्वय हुआ था। पश्चिमी भारत के हरियाणा, पंजाब और मेरठ मण्डल के अनेक क्षेत्रों तक आपकी काव्य-प्रतिभा का प्रसार प्रचुरता से हुआ था। भक्ति-काल में निर्गुण काव्य का जो उत्कर्ष कबीर और तुलसी की रचनाओं में दिखाई देता है उसका ज्वलन्त रूप महाकवि शंकरदास की रचनाओं में पूर्णतः साकार हो उठा था। यद्यपि आपका काव्य-काल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लगभग 25 वर्ष पूर्व था, किन्तु आपकी रचनाएँ इस बात की साक्षी हैं कि खड़ी बोली हिन्दी के काव्य में लोक-संस्कृति कितने उदात्त रूप में मुखरित हो सकती है। आपकी रचनाओं में इस क्षेत्र के जन-जीवन में प्रयुक्त होने वाले अनेक मुहावरे और लोकोक्तियाँ इतनी सहजता के साथ प्रयुक्त हुई हैं कि उनमें यहाँ की संस्कृति का परिष्कृत रूप देखने को मिलता है। आपकी प्रायः सभी रचनाओं में आध्यात्मिकता, नैतिकता और सांस्कृतिक समन्वय की जो धारा प्रवाहित हुई है उससे इस क्षेत्र की अनेक परम्पराओं का परिचय भी हमें भली-भाँति हो जाता है।

देशज शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रचुर प्रयोग के कारण आपकी भाषा इतनी सहज तथा सरल बन पड़ी है कि देखते ही बनता है। आप किसी विशेष सिद्धान्त, पन्थ और मान्यता में बँधकर नहीं चले। वास्तविक भक्ति ही आपकी साधना का मार्ग था। बुरी बात का विरोध करना और अच्छी बात को ग्रहण करना ही आपका एक-मात्र लक्ष्य था। आप साम्प्रदायिक भावनाओं के भी अत्यन्त विरोधी थे। आपकी दृष्टि में मानव-मात्र सभी समान थे। परमात्मा, अल्ला और गुरु आदि के नामों की समानता पर जोर देते हुए आपने इसके लिए झगड़ने वाले व्यक्तियों को बहुत फटकारा था।

शंकरदास की रचनाओं में हमें जहाँ ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का सुन्दर परिपाक देखने को मिलता है वहाँ सांसारिक क्रिया-कलापों, लोक-व्यवहारों और उत्सव-पर्वों का वर्णन भी आपने पूर्ण तन्मयता से किया है। रहस्यवाद की दृष्टि से भी शंकरदास का काव्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। साधनागत रहस्यवाद और षट्चक्रों के वर्णन-सम्बन्धी आपके अनेक पद इसके प्रमाण हैं। शंकरदास के पदों की भाषा में ठेठ खड़ी बोली की शब्दावली और मेरठ तथा हरियाणा-अंचल में प्रचलित साधु-जन-भाषा का व्यावहारिक रूप अत्यन्त परिष्कृत एवं परिनिष्ठित रूप में दिखाई देता है।

आपका देहान्त सन् 1912 में हुआ था।

श्री शंकरदेव पाठक

श्री पाठकजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के महमूदपुर नामक ग्राम में सन् 1893 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही संस्कृत में हुई थी। आपके पिता संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् तथा कुशल चिकित्सक थे। आपने कुछ समय तक गुरुकुल सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) में भी अध्ययन किया था और तदुपरान्त गुरुकुल वृन्दावन चले गए थे। वहीं पर शिक्षा की समाप्ति हुई थी।

शिक्षा - समाप्ति के उपरान्त आप सन् 1916 में वहाँ पर अध्यापक हो गए और लगभग 32 वर्ष तक आपने मुख्यतः व्याकरण-महाभाष्य का अध्यापन किया था। व्याकरण पढ़ाने में आप अत्यन्त निपुण होने के साथ-साथ 'साहित्य' पर भी अच्छा अधिकार रखते थे। उन्हीं दिनों आपने संस्कृत कालेज, कलकत्ता की 'काव्यतीर्थ' परीक्षा भी
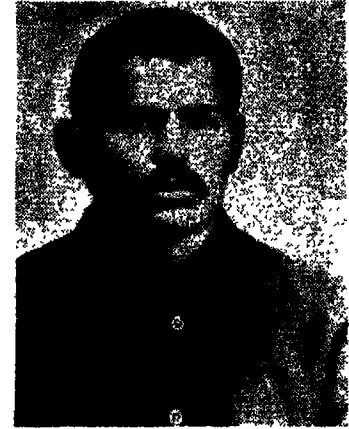
उत्तीर्ण कर ली थी। आपका विवाह येवला (नासिक)-निवासी श्री सेठ जगजीवनराम खेमचन्द की सुपुत्री और आचार्य मेधाव्रत कविरत्न की छोटी बहन श्रीमती जानकी-देवी के साथ जात-पात के बन्धनों को तोड़कर हुआ था।

पाठकजी जहाँ संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे वहाँ आपने 'सत्यार्थ प्रकाश' का संस्कृत में अनुवाद किया था। 'अष्टा-ध्यायी' पर लिखी हुई आपकी टीका अनेक वर्ष तक भारत के बहुत-से शिक्षणालयों के पाठ्यक्रम में रही थी। आप हिन्दी के सुलेखक श्री रघुनाथप्रसाद पाठक के अग्रज थे।

आपका देहावसान 24 जून सन् 1949 को गुरुकुल वृन्दावन में हुआ था।

श्री शंकर दामोदर चितले

श्री चितलेजी का जन्म आन्ध्रप्रदेश के हैदराबाद के उपनगर सिकन्दराबाद में 16 अक्तूबर सन् 1906 को हुआ था। आप यद्यपि मराठी के लेखक थे, परन्तु हिन्दी के बड़े समर्थक थे। आपने अपनी 'हिन्दी हीच आमची राष्ट्रभाषा' (1947) नामक पुस्तक में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी का राष्ट्रलिपि के रूप में अनेक अकाट्य तर्कों द्वारा समर्थन किया था।

राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि-विषयक आपके ऐसे विचार 'राष्ट्रभाषा विचार संग्रह' नामक हिन्दी-पुस्तक में भी प्रका-शित हुए हैं। यह पुस्तक 'अनाथ विद्यार्थी गृह पूना' की ओर से प्रकाशित हुई है।

आपका निधन 13 मई सन् 1959 को हुआ था।

श्री शंकरलाल खीरवाल

श्री खीरवालजी का जन्म सन् 1925 में बिहार राज्य के अन्तर्गत चाईबासा नामक नगर में हुआ था। निर्भीक, ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार होने के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य के कवि के रूप में भी आपने अच्छी ख्याति अर्जित की थी। आपकी रचनाओं का प्रकाशन 'कंकड़-पत्थर' छद्म नाम से होता था।

आपने कुछ समय तक 'अग्नि शिखा' का सफल सम्पादन भी किया था। इसके बाद चाईबासा से 'नया रास्ता' (साप्ताहिक) पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन किया था। 'नया रास्ता' की अधिक लोकप्रियता देखकर उसका जमशेद-पुर से दैनिक रूप में प्रकाशन करना आपकी कर्मठता का ही उदाहरण था।

इस प्रकार आपने तीस वर्ष तक निरन्तर लेखक और सम्पादक के रूप में हिन्दी-साहित्य की सेवा की। जादूगोड़ा से जो यूरेनियम की तस्करी हुई थी उसका भंडाफोड़ आपने ही किया था। अपनी इस निर्भीकता तथा सचाई के फल-स्वरूप आपको विशेष प्रसिद्धि मिली थी।

यह विडम्बना ही है कि ऐसे आदर्शवादी व्यक्ति की 4 अगस्त सन् 1974 को हत्या कर दी गई।

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल

श्री सान्यालजी का जन्म सन् 1893 में काशी में हुआ था। आपका नाम स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण स्थान रखता है। आप प्रख्यात क्रान्तिकारी थे। 'बनारस षड्यन्त्र केस' में आपको आजीवन कारावास की सजा हुई थी और अण्डमान जेल में रहे थे। बाँकुड़ा (बंगाल) की सशस्त्र क्रान्ति के सिलसिले में 2 वर्ष की सजा होने के अतिरिक्त आपको 'काकोरी षड्यन्त्र' में भी आजीवन कारावास का दण्ड मिला था। आप देवली कैम्प जेल में भी नजरबन्द रहे थे। आपका अनेक क्रान्तिकारी आन्दोलनों से घनिष्ठ सम्बन्ध
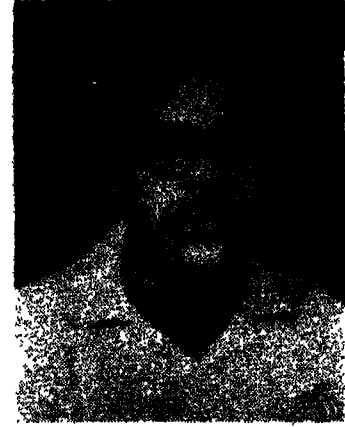
रहा था और आप श्री रासबिहारी बोस के दाहिने हाथ समझे जाते थे।

बंगला-भाषा-भाषी होते हुए भी आप हिन्दी के उत्कृष्ट-तम लेखक भी थे। आपके द्वारा अपने क्रान्तिकारी जीवन के संस्मरण 'बन्दी जीवन' नामक पुस्तक में लिखे गए हैं। इसके अतिरिक्त आपकी 'धर्म, समाज और विज्ञान', 'विचार-विनिमय' और 'वंशानु-क्रम' नामक पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं। आपने नेताजी सुभाष द्वारा संस्थापित 'फार्वर्ड ब्लाक' के मुखपत्र और वाराणसी से प्रकाशित होने वाले 'अग्रगामी' दैनिक का सम्पादन भी कई वर्ष तक बड़ी सफलतापूर्वक किया था।
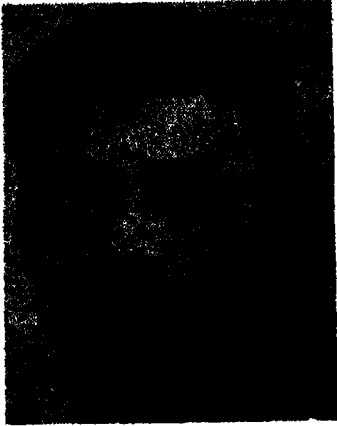
आप देवली कैम्प जेल में नजरबन्द थे कि वहीं पर बीमारी के कारण आपका निधन फरवरी सन् 1943 में हुआ था।

श्री शम्भुनाथ तिवारी 'आशुतोष'

श्री तिवारीजी का जन्म 12 सितम्बर सन् 1908 को उत्तर प्रदेश के इटावा शहर में हुआ था। पेशे से वकील होते हुए भी आपकी साहित्यिक रुचि ने आपको नया मोड़ दिया और सन् 1937 में इटावा से आपने 'हितैषी' पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। शहर के हिन्दी-प्रेमियों में जागरूकता लाने के लिए आपने एक 'हिन्दी परिषद्' नामक संस्था की भी स्थापना की थी। कुछ समय के उपरान्त आप दिल्ली चले आए और यहाँ आकर आपकी साहित्यिक चेतना और भी विकासोन्मुख हुई। साहित्य-सृजन के साथ-साथ हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार के कार्य में गति लाने के लिए आपने श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन और श्री सेठ गोविन्ददास आदि के साथ 'संसदीय हिन्दी परिषद्' की भी स्थापना की थी। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' और अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मन्त्री के रूप में भी आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

वकील के पेशे पर बोझ न बनकर आपकी जीविका का साधन पत्रिकाओं का सम्पादन ही रहा। आप 'दैनिक हिन्दुस्तान', नवभारत टाइम्स', 'नवयुग', 'राजभाषा', 'स्वराज्य सन्देश' तथा 'न्यूज एजेन्सी' आदि में विभिन्न सम्मानित पत्रों से भी सम्बद्ध रहे थे। आप केन्द्रीय सरकार के उद्योग मन्त्रालय में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी के पद पर भी अनेक वर्ष तक कार्य-रत रहे, जहाँ आपने 'उद्योग व्यापार पत्रिका' और 'मैट्रिक मापतौल पत्रिका' का सफल सम्पादन भी किया था। ध्यातव्य है कि आप उन व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली और केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् की संस्थापना भी कराई थी।
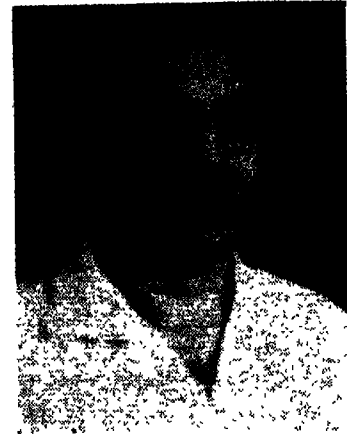
आपकी औपन्यासिक कृतियों में 'सहारा' (1958), 'संघर्ष और सीमा' (1963) और 'नौकर' (1968) प्रकाशित हैं। कहानी संग्रह 'पासंग' (1962) तथा हास्य काव्य-संग्रह 'पैसा पुराण' (1975) के अतिरिक्त आपकी बहुत-सी रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। ऐसी रचनाओं में 'जयमानव', 'मुख और मन', 'तेरा कौन है', 'उत्तर और दक्षिण', 'नौजवान किधर', 'उसे भूल जाओ', 'वह दोषी नहीं थी' (सभी उपन्यास), 'सुखवासी', 'संघर्ष की छाया में', 'एलगिन रोड का भिखारी', 'जहाँ बजते हैं नक्कारे' (सभी कहानी संग्रह), 'दो बिन्दु' (महाकाव्य), 'पानीपत' (खण्ड काव्य), 'रो रोकर चूल्हा फूँकेगा' (हास्य काव्य संग्रह), 'जेहाद' (एकांकी नाटक संग्रह), 'शहीद बालक', 'चलो चाँद पर खेलें', 'बाल पद्य कथाएँ' (सभी बाल-काव्य-संग्रह) तथा 'सोमूदादा की कहा-

नियाँ' (बाल कहानी-संग्रह) आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन 30 जुलाई सन् 1978 को हुआ था।

श्री शम्भुनाथ 'शेष'

'शेषजी' का जन्म 2 जून सन् 1915 को फरीदकोट रियासत (अपनी ननिहाल) में हुआ था। आपकी पितृ-भूमि मोगा से 5-7 मील की दूरी पर खोसा कोटला (फीरोजपुर) है। अपने गाँव में कोई स्कूल न होने के कारण आप 5वीं कक्षा तक फूफा के घर (किशनपुर कलाँ, फीरोजपुर) पढ़े। जन्म से पंजाबी होने के कारण आपकी मातृभाषा पंजाबी और संस्कार ब्राह्मण-परिवार में जन्म होने के कारण संस्कृत के थे; किन्तु प्रारम्भिक शिक्षा हुई उर्दू में। और इस प्रकार शम्भुनाथजी पहले उर्दू में मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करके धीरे-धीरे पंजाब यूनिवर्सिटी से 'मुन्शी फाजिल' भी हो गए।

जब आप फूफा के यहाँ पढ़ते थे तब किसी साथी लड़के ने आपके फूफा से झूठी शिकायत कर दी कि इसने बाग से सेब तोड़े हैं। फलस्वरूप आप पिटाई के डर से वहाँ से भाग खड़े हुए और कभी पैदल, कभी इक्के में, और कभी रेल में बैठकर अपने पिताजी के पास (मैकलोडगंज) पहुँचे। आपने

उर्दू मिडिल वहाँ से ही किया था। उन्हीं दिनों घर पर हिन्दी-वर्णमाला को पहचानकर और धीरे-धीरे उसका अभ्यास बढ़ाकर आपने 'रामचरितमानस' पढ़ने का भी प्रयत्न किया। इधर आपके पिताजी की लापरवाही के कारण उनका व्यापार कुछगड़बड़ हो गया और जब वे पुष्कर राज को स्नान करने जा रहे थे तो उनकी भेंट दिल्ली के किसी परिचित व्यक्ति से हो गई। परिणामस्वरूप उनकी प्रेरणा पर उन्होंने दिल्ली में ही रहकर कुछ काम करने का निश्चय कर लिया। 'शेष' जी भी परिवार के साथ दिल्ली आ गए।

दिल्ली में आकर केवल 9-10 मास के कठिन परिश्रम के बाद आपने दिल्ली-बोर्ड की मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। अपनी छात्रावस्था में आपको उर्दू लिखने में इतनी महारत हासिल थी कि उसको देखकर आपके सीनियर ओरियंटल टीचर मुन्शी चन्द्रभान 'रफी' दिल्ली के लड़कों के सामने आपकी मिसाल दिया करते थे। पंजाबी होते हुए आपकी उर्दू की इतनी असाधारण योग्यता देखकर सचमुच उन्हें बहुत आश्चर्य होता था। उस समय आप उर्दू में 'प्रीतम' उपनाम से कविता भी करने लगे थे। एक-दो वर्ष काम की तलाश में इधर-उधर घूमे, लेकिन अध्ययन का क्रम नहीं रुका। क्योंकि आर्थिक अवस्था ठीक न होने के कारण आप किसी कालेज में नियमित रूप से प्रविष्ट नहीं हो सकते थे, अतः आपने 'मुन्शी फाजिल' करके बी०ए० करने की ठानी। जब आप 'मुन्शी फाजिल' की पुस्तकों का बण्डल लिये बाजार से गुजर रहे थे तो आपको मुल्कराज अरोड़ा नाम के आपके एक मित्र मिले। बात-ही-बात में उन्होंने आपसे पूछ लिया—"शम्भूनाथजी, यह क्या है बण्डल में?" "कुछ किताबें लाया हूँ, 'मुन्शी फाजिल' करने का विचार है।" आपकी इस बात का उन पर यह प्रभाव पड़ा कि वे बोले—'छोड़ो भी यार, किस म्लेच्छ भाषा के पीछे पड़े हुए हो।" लेकिन पाठको को आश्चर्य होगा कि वे सज्जन भी हिन्दी से सर्वथा अनभिज्ञ थे। फलतः आपके पुराने पारिवारिक संस्कार जाग्रत हो उठे और उक्त सज्जन की इस बात ने शम्भुनाथजी की दिशा ही बदल दी।

इस घटना का चमत्कारिक प्रभाव यह हुआ कि आपने 'मुन्शी फाजिल' की पुस्तकों को ताले में रखकर हिन्दी का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। केवल 6-7 मास के अनवरत प्रयास से ही आपने पंजाब यूनिवर्सिटी की 'भूषण' परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। बस यहीं से शम्भुनाथजी 'भूषण' के द्वार से हिन्दी के दुर्गम दुर्ग में प्रविष्ट हुए और इसी प्रकार आपने प्रभाकर परीक्षा द्वारा बी० ए० भी कर लिया। यह उल्लेखनीय बात है कि उर्दू का 'प्रीतम' शायर यहाँ से ही 'शेष' के रूप में प्रकट हुआ और हिन्दी के प्रति अनन्य रूप से अनुरक्त हुआ। जब आप भूषण की तैयारी कर रहे थे तब ही आपके मन में हिन्दी के प्रति इतना प्रेम

जाता कि श्री दीनानाथ भार्गव 'दिनेश' तथा श्री पुत्तूलाल वर्मा 'करुणेश' के सहयोग से आपने दिल्ली में 'कवि-समाज' की स्थापना की। यह घटना सन् 1937 की है। 'कवि-समाज' की गोष्ठियों का यह प्रभाव हुआ कि दिल्ली के उर्दू-मय वातावरण में हिन्दी-कविता के स्वर गूँजने लगे और यहीं से शम्भुनाथ ने 'प्रीतम' नाम को तिलांजलि देकर 'शेष' नाम अंगीकार कर लिया।

कवि 'शेष' के जीवन-विकास को देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है कि उर्दू के संस्कारों में रहकर भी आपने असीम अध्यवसाय से हिन्दी सीखी ही नहीं, प्रत्युत आप उसकी तरुण पीढ़ी के जागरूक कलाकारों में प्रमुख स्थान बना गए। अपना काव्य-जीवन आपने ब्रज-भाषा के कवि 'छबेशजी' के सम्पर्क से प्रारम्भ किया था।

धीरे-धीरे कवि 'शेष' की कविता में निखार आया और आप आधुनिक प्रवृत्ति के प्रवाह में बह गए। आपमें प्रतिभा तो थी ही, उसमें यथेष्ट दिशा-निर्देश की आवश्यकता थी। आधुनिक धारा की पहली कविता आपने 'तारों' पर और दूसरी 'उषा' के सम्बन्ध में लिखी। धीरे-धीरे आपकी कविता के उपकरण जुटे और शेष ने जीवन की प्रत्येक गतिविधि पर अपनी कला तथा कल्पना का प्रयोग किया।

कवि 'शेष' ने अपनी गजलों और रुबाइयों के प्रयोगों के कारण हिन्दी-कवियों में अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। कल्पना, भावना और अनुभूति की अद्भुत त्रिवेणी आपकी रचनाओं में इतनी सजीव और सप्राण थी कि उससे आपकी कविता और भी निखर उठी। शुद्ध सांस्कृतिक भावना की पृष्ठभूमि पर आधारित आपकी रचनाएँ वास्तव में गौरव की वस्तु हैं। जीवन में पग-पग पर विषमताओं तथा कठिनाइयों का सामना करते रहने के कारण आपका कवि-मानस सांसारिक अनुभूतियों को गहरे में पैठकर व्यक्त करने में पूर्ण रूप से सजग एवं संवेदनशील रहा था। आपकी कविताओं में प्रकृति-प्रेम, सांस्कृतिक उन्मीलन तथा गहन अनुभूति का प्राचुर्य यत्र-तत्र स्पष्ट झलकता है। संक्षेप मे हम आपको प्रकृति का प्रेरक, संस्कृति का उन्नायक तथा अनुभूति का गायक कवि कह सकते हैं।

रुबाइयों के गायक कवि के रूप में शेष का अपना विशिष्ट स्थान है। 'बच्चन' की रुबाइयों का आकार तो फारसी रुबाई का है, परन्तु छन्द उसका नहीं। 'शेष' को यह अभाव अखरा तो उसने भी कुछ प्रयोग किए, जो पूर्णतया परिशयन रुबाई के प्रतिरूप हैं। आज तो हिन्दी में रुबाइयों का आम प्रचलन हो गया है; परन्तु 'शेष' का इस दिशा में विशिष्ट पद-न्यास और कार्य है। रुबाइयों के अलावा 'शेष' ने हिन्दी में गजल लिखने का भी सफल प्रयोग किया था।

'उन्मीलिका' और 'सुबेला' के अतिरिक्त 'बाल मेला' नामक आपकी पुस्तक में बालोपयोगी कविताएँ संकलित हैं। आपकी चौथी काव्य-कृति 'अन्तर्लोक' में आपकी अधिक सशक्त तथा परिपक्व रचनाएँ समाविष्ट हैं और इसका प्रकाशन सन् 1969 में हुआ था।

खेद है कि 'शेष' जी अपनी काव्य-प्रतिभा का अभी उचित परिचय भी नहीं दे पाए थे कि अचानक 13 मई सन् 1958 को मस्तिष्क की स्नायु फट जाने से 43 वर्ष की अल्पायु में ही आपका असामयिक देहावसान हो गया।

श्री शम्भुरत्न दुबे

श्री दुबेजी का जन्म गाडरवारा (मध्यप्रदेश) में 5 मार्च सन् 1911 को हुआ था। सन् 1933 में आपने जबलपुर के रार्बटसन कालेज से बी० ए० और सन् 1935 में नागपुर विश्वविद्यालय से वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। यद्यपि आपके परिवार में पारम्परिक रूप से अनाज का व्यापार होता था, किन्तु आपने लेखक बनने का ही संकल्प अपने मानस में सँजोया हुआ था। पेशे के रूप में आपने वकालत को भी नहीं अपनाया और लेखक के रूप में ही आगे बढ़ने का प्रयास आप करते रहे।

सर्वप्रथम आपने 'दोषी कौन' नामक एक उपन्यास लिखा था। इसकी विशेषता का परिचय इसी बात से मिलता है कि इसका अनुवाद तमिल भाषा में भी हुआ था। आपके मन में सिनेमा की पट-कथा लिखने का चाव भी था, जो सन् 1952 में उस समय पूरा हुआ जब आप प्रख्यात सिने-निर्देशक श्री सोहराब मोदी से बम्बई जाकर मिले। आपने उनके प्रथम रंगीन चित्र 'झाँसी की रानी' की पट-कथा लिखने का काम बड़ी ही सफलता से सम्पन्न किया था।

आपने मुसलमानों के पैगम्बर 'हज़रत मुहम्मद' के जीवन तथा कार्यों पर अँग्रेज़ी में भी 'हिजरत ऑफ मुहम्मद' नामक एक खोजपूर्ण कथानक लिखकर 'तेहरान विश्वविद्यालय' को भेजा। विश्वविद्यालय के इमाम उससे इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने एक 'प्रशस्ति पत्र' भेजकर आपका अभिनन्दन किया था। आपने 'हरदौल', 'राम वनवास' तथा 'बालि वध' नामक पुस्तकें लिखी थीं। आपने फिल्म-सिनेरियो की नवीन शैली में 'सीता परित्याग' नामक कृति की रचना की थी, जिसके वार्तालाप, चरित्र-चित्रण तथा दृश्य-विधान अत्यन्त अनुपम और प्रेरणापूर्ण हैं। जिन लोगों ने सोहराब मोदी की 'झाँसी की रानी' फिल्म को देखा है वे दर्शक 'सीता परित्याग' से भी बहुत सन्तुष्ट होंगे।

आपका निधन 29 जून सन् 1967 को हुआ था।

श्री शम्भूदयाल सक्सेना

श्री सक्सेनाजी का जन्म सन् 1901 में फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता श्री गुरुप्रसादजी एक सरकारी वकील के मुन्शी थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपनी पारिवारिक परम्परा के अनुसार उर्दू में ही हुई थी। जब आप केवल ढाई वर्ष के ही थे कि आपकी माताजी का देहावसान हो गया। आपके पिता के सामने अब आपके पालन-पोषण की समस्या हो गई। फलस्वरूप आपको दो छोटे बहन-भाइयों सहित आपकी मौसी के पास अलीगढ़ गाँव में भेज दिया गया। यह गाँव फर्रुखाबाद के पास गंगा के पार था। आपकी प्राइमरी तक की शिक्षा इसी गाँव में हुई थी। आगे की पढ़ाई के लिए आपको फर्रुखाबाद के 'मिशन हाई स्कूल' में प्रविष्ट कर दिया गया। एक बार जब 'महात्मा गान्धी की जय' के गगनभेदी नारों के साथ स्कूल के 3-4 सौ छात्र स्कूल छोड़कर बाहर निकल आए तो आप भी उन्हीं में थे। फिर 'क्षमा-याचना' करके स्कूल में जाना उचित न समझकर कोई भी छात्र स्कूल में वापस न गया। परिणामस्वरूप नगर के कुछ सम्भ्रान्त नागरिकों के प्रयास से वहाँ पर 'नेशनल हाईस्कूल' की स्थापना की गई और सारे छात्र उसीमें पढ़ने लगे। श्री सक्सेनाजी भी उन्हीं छात्रों के साथ पढ़ने लगे।

उधर आन्दोलन के कारण इस विद्यालय के छात्रों की परीक्षा पर प्रतिबन्ध लग जाने के कारण आपने गुजरात विद्यापीठ से मैट्रिक की परीक्षा देकर काशी विद्यापीठ की 'प्रवेशिका' परीक्षा दे दी; किन्तु उसमें अनुत्तीर्ण हो गए। इस बीच आपके किसी हितैषी ने आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएँ देने का परामर्श दिया। आपने 'रामचरित मानस और रामचन्द्रिका' शीर्षक निबन्ध लिखकर सीधे 'साहित्यरत्न' में बैठने की अनुमति प्राप्त कर ली। उधर अध्ययन चलता रहा और इधर आजीविका के लिए आपने 'चाँद' कार्यालय में नौकरी कर ली। कुछ दिन आप सम्मेलन के कार्यालय में भी रहे। फिर आपको इण्डियन प्रेस में अच्छा कार्य मिल गया और आप वहाँ चले गए। प्रयाग में रहते हुए आपकी घनिष्ठता सर्वश्री विजय वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' तथा आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव प्रभृति साहित्यकारों से हो गई। वहाँ पर रहते हुए आपने श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के साथ मिल कर 'मीठी चुटकी' नामक एक उपन्यास भी लिखा। धीरे-धीरे आप कहानियाँ तथा कविताएँ लिखने लगे और आपकी ये रचनाएँ 'माधुरी' 'सरस्वती', 'विशाल भारत' तथा 'चाँद' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। उन्हीं दिनों
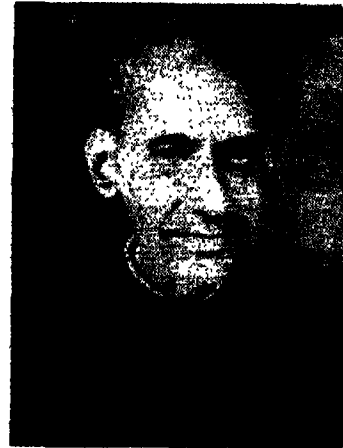
आपका 'चित्रपट' नामक कहानी-संग्रह पटना के 'भारती पब्लिशर्स' की ओर से प्रकाशित हुआ और 'बहू रानी' उपन्यास साहित्य निकेतन दारागंज, प्रयाग की ओर से प्रकाशित हुआ।

इस बीच आप सन् 1931 में अचानक प्रयाग को छोड़कर बीकानेर आ गए और निरन्तर 16 वर्ष तक वहाँ की सेठिया संस्थाओं और सेठिया नाइट कालेज में अध्यापन-कार्य करते रहे। अध्यापन-कार्य के साथ-साथ आपकी साहित्य-साधना भी बराबर चलती रही और एक दिन वह भी आया जब आपने 'नवयुग ग्रन्थ कुटीर' नामक प्रकाशन-संस्था की स्थापना करके पूर्णत: साहित्य-रचना तथा प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। आप जहाँ सहृदय साहित्यकार थे वहाँ कुशल प्रकाशक के रूप में भी आपने अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की थी। बहुमुखी प्रतिभा के धनी सक्सेनाजी ने जहाँ उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ लिखे वहाँ वे अच्छे नाटककार तथा उपन्यासकार भी थे। आपकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय आपकी वे असंख्य रचनाएँ हैं जिनमें आपकी कला पूर्णत: मुखरित हुई है।

आपकी प्रमुख रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—**उपन्यास तथा कहानी** : 'भाभी', 'मगर मच्छ', 'बहू रानी', 'सलाइयाँ', 'प्रीति की रीति', 'दिगन्त रेखा', 'सजला', 'बन्दनवार', 'धूप छाँह', 'चित्रपट', 'मन की रानी' तथा 'बिच्छू का डंक'; **नाटक तथा एकांकी** : 'अंगारों की मौत', 'नये एकांकी', 'नेहरू के बाद तथा अन्य एकांकी', 'मेघदूत', 'बापू ने कहा था', 'विजया और वारुणी', 'आर्य मार्ग तथा अन्य एकांकी', 'पंचवटी', 'शान्ति और एकता का मसीहा', 'बल्कल', पर्ण कुटी', 'गंगाजली', 'साधना पथ', 'चीवर धारिणी', 'विद्यापीठ', 'सगाई', 'नन्दरानी तथा अन्य एकांकी' एवं 'मौत की जिन्दगी'; **कविता तथा गद्य-गीत** : 'चरणोदक', 'निवेदन के आँसू', 'प्रतिवेदन के स्वर', 'रैन बसेरा', 'नीहारिका', 'अमर लता', 'मन्वन्तर', 'उत्सर्ग एवं भिखारिन'; **आलोचना** : 'काव्यालोचन'; **बालोपयोगी** : 'लोरी और प्रभाती', 'रेशम झूला', 'पालना', 'ओ री निंदिया, आ री आ', 'नाचो गाओ', 'बाल कवितावली', 'फूलों के गीत', 'फूलों की जन्म-कथा', 'फूलों की सुनहरी कहानियाँ', 'सतयुग की कहानियाँ', 'ज्ञान की कहानियाँ', 'सद्‌गुणों की कहानियाँ', 'देवताओं की कहानियाँ', 'रणबाँकुरा राजकुमार', 'ऋषियों की कहानियाँ', 'सदाचार की कहानियाँ', 'दो नगरों की कहानी', 'बाप-बेटे की कहानी', 'टामकाका की कुटिया', (4 भाग), 'राखी', तथा 'दुपहरिया के फूल'; **प्रौढ़ोपयोगी** : 'नया बैल', 'नया हल', 'नया खेत', 'नया समाज', 'गाँव को सुधारो', 'बापू का स्वराज्य अभी नहीं आया', 'समाज-शिक्षण', 'काव्यामृत' एवं अन्य लगभग 100 पुस्तकें।

आपका निधन 18 मई सन् 1976 को हुआ था।

श्री शरद बिल्लौरे

श्री बिल्लौरे का जन्म मध्यप्रदेश के हरदा जिले के सतपुड़ा अंचल के एक छोटे-से गाँव रहटगाँव में अक्तूबर, 1955 में हुआ था। आप मध्यप्रदेश के नई पीढ़ी के सशक्त हस्ताक्षर थे। आज के समाज की विकृतियों, विसंगतियों और चुनौतियों के प्रति तीव्र विद्रोह आपकी रचनाओं में खुलकर प्रकट हुआ है। सतपुड़ा पर्वत के सान्निध्य में बसे गाँवों की माटी की सोंधी सुगन्ध के दर्शन भी आपकी रचनाओं में होते हैं। श्री बिल्लौरे अभी युवा ही थे और भोपाल के सोफिया महाविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने साथ-साथ आपने 'हिन्दी की लम्बी कविता' शीर्षक से एक लघु शोध-प्रबन्ध भी लिखा था।

आपका निधन मई 1980 में हुआ था।

श्रीमती शान्तिदेवी 'कोकिला'

श्रीमती 'कोकिला' का जन्म 11 अगस्त सन् 1918 को हिमाचल प्रदेश की नाहन नामक रियासत में हुआ था। आपके पिता स्वर्णकारी का कार्य करते थे और आपकी प्रारम्भिक शिक्षा नाहन में हुई थी। सन् 1936 में आपका विवाह सहारनपुर निवासी श्री बलरामसिंह के साथ हो गया और सहारनपुर आकर ही आपने 'लोअर' तथा 'अपर मिडिल' की परीक्षाएँ देने के साथ-साथ पंजाब विश्वविद्यालय

हिन्दी प्रभाकर की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। प्रभाकर की परीक्षा की तैयारी के दिनों में मन-ही-मन गुनगुनाते हुए आपकी कविता-धारा फूट पड़ी थी।

सहारनपुर में आकर आपने जहाँ अपने पारिवारिक परिवेश को समृद्ध किया वहां सामाजिक क्षेत्र में भी आप पीछे नहीं रहीं। आप नगर कांग्रेस कमेटी की सदस्या, महिला मद्य - निषेध- समिति की प्रधान और महिला सेवा दल की संचालिका होने के साथ-साथ शहर की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'हिन्दी मित्र मंडल' की अध्यक्षा भी रही थीं।

कविता के क्षेत्र में आप राजस्थान के प्रसिद्ध कवि श्री चन्द्रदेव शर्मा को अपना गुरु मानती थी। सहारनपुर के प्रसिद्ध कवि श्री हरिप्रसाद शर्मा 'अविकसित' के पड़ौस ने आपकी कविता को दिशा-निर्देश दिया और सार्वजनिक मंचों पर कविता पढ़ने का साहस सुकवि श्री रतनलाल 'चातक' के प्रोत्साहन से आया। शृंगार रस की रचना करने के प्रति आपका स्त्रियोचित मानस कभी तैयार नहीं हुआ और प्रायः राष्ट्रीय रचनाएँ ही कीं। आपकी रचनाएँ स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती थीं। आप सहारनपुर नगरपालिका के शिक्षा विभाग में अध्यापन का कार्य करती थीं।

आपका निधन जुलाई सन् 1980 में सहारनपुर में हुआ था।

कुमारी शान्तिदेवी भार्गव

कुमारी शान्तिदेवी भार्गव का जन्म 29 मई सन् 1917 को राजस्थान के अलवर नगर के श्री श्यामलाल भार्गव के यहाँ हुआ था। आपने बहुत थोड़ी आयु में ही अपनी रचना-प्रतिभा से सारे राजस्थान की महिला-लेखिकाओं में अपना प्रमुख स्थान बना लिया था। आपकी रचनाएँ 'चाँद' तथा 'वाणी' आदि हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा 9 वर्ष की आयु से आरम्भ हुई थी और 15 वर्ष की आयु में आपकी कवित्व-प्रतिभा प्रकट होने लगी थी। उनमें कविता का बीज अंकुरित करने का प्रमुख श्रेय आपके गुरु श्री हरनारायण शर्मा 'किंकर' को है। उनकी सहायता से ही आपने पंजाब विश्वविद्यालय की 'हिन्दी रत्न', 'हिन्दी' भूषण' और 'हिन्दी प्रभाकर' परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण की थीं। 19 वर्ष की आयु तक आते-आते आपने मैट्रिक की परीक्षा भी दे डाली थी। फिर आपने अपने शिक्षक श्री गौरीसहाय जैमन के सहयोग से पंजाब विश्वविद्यालय की बी० ए० की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली थी।

अपनी कवित्व-प्रतिभा से आपने भार्गव-समाज के कई सम्मेलनों को भी गौरवान्वित किया था। आपकी रचनाओं में समाज-सुधार तथा राष्ट्रीयता की भावनाएँ कूट-कूटकर भरी होती थीं।

शान्तिजी की कविताओं को देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि वे और अधिक दिन जीवित रहतीं तो काव्य-जगत् में अपना विशेष स्थान बना लेतीं। आपकी रचनाओं में महादेवी-जैसी वेदना दृष्टिगत होती है।

खेद का विषय है कि आप अपनी प्रतिभा की सुवास अभी ठीक प्रकार से समाज में वितरित भी नहीं कर पाई थीं कि 24 जनवरी सन् 1941 को इस असार संसार से विदा हो गईं।

श्री शान्तिप्रिय आत्माराम पण्डित

श्री शान्तिप्रियजी का जन्म 1 सितम्बर सन् 1896 को अमृतसर (पंजाब) में हुआ था। आप आर्यसमाज के प्रख्यात नेता श्री आत्माराम अमृतसरी के ज्येष्ठ पुत्र थे और बाद में उनके साथ ही बड़ौदा में रहने लगे थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल, गुजरान वाला (पंजाब) में हुई थी और सन् 1912 में आपने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके उपरान्त आपने सैण्ट जॉन्स कालेज, आगरा से इण्टर की परीक्षा दी और फिर बड़ौदा चले गए।

बड़ौदा में आपको सर सयाजीराव गायकवाड़ द्वारा संस्थापित 'हरिजन छात्रावास' का अधीक्षक बनाया गया था। इसके अनन्तर आप 'सरदार बोर्डिंग हाउस' के अध्यक्ष भी रहे थे। इन कार्यों से आपने सन् 1947 में अवकाश ग्रहण किया था। बीच में कुछ दिन के लिए आपको कोल्हापुर-नरेश ने भी आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुकूल छात्रावास का संचालन करने के लिए अपने यहाँ बुलाया था।

इस सेवा-काल में भी आप हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि भेजते रहते थे। इसके अतिरिक्त अपने पिताजी द्वारा लिखित सभी ग्रन्थों का प्रकाशन आप ही किया करते थे। इसके लिए आपने 'जयदेव ब्रादर्स' नामक संस्था की स्थापना की थी। प्रकाशन के साथ-साथ आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार तथा प्रसार में भी आप बराबर रुचि लेते रहते थे। सन् 1937 में आप 'आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा' की परीक्षाओं के संचालन के लिए 'मानद प्रस्तोता' भी बनाये गए थे। आप 'बड़ौदा स्टेट स्काउट एण्ड गाइड एसोसिएशन' के मंत्री भी काफी दिन तक रहे थे। आपने कई वर्ष तक बड़ौदा से 'साहित्य-प्रचारक' नामक मासिक हिन्दी पत्र का सफलतापूर्वक सम्पादन तथा प्रकाशन किया था। कुछ दिन तक 'विज्ञापक' पत्र भी निकाला था।

इसके अतिरिक्त आपने हिन्दी में कई पुस्तकों की भी रचना की थी। इनमें से 'आलमगीर के पत्र', 'गुजराती हिन्दी शिक्षक', 'अर्थ वर्क', 'सृष्टि विज्ञान', 'कोष की कथा' तथा 'अवतार रहस्य' आदि प्रमुख हैं। आपके द्वारा अनूदित पुस्तकों में 'चीन की संस्कृति' का नाम भी विशेष परिगणनीय है। आपकी 'आरोग्यता तथा उनके लाभ' नामक पुस्तक का प्रकाशन बड़ौदा की 'श्री सयाजी बाल ज्ञान माला' के अन्तर्गत हुआ था।

आपका निधन 26 अक्तूबर सन् 1974 को हुआ था।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

श्री द्विवेदीजी का जन्म सन् 1906 में वाराणसी में हुआ था। आपका शैशव बड़े अभाव में बीता था और आपकी शिक्षा-दीक्षा भी ठीक तरह नहीं हुई थी। अभावों और संघर्षों से जूझते हुए द्विवेदीजी ने अपने जीवन का निर्माण किया था। हिन्दी के छायावादी-काव्य के एक-मात्र व्याख्याता के रूप में आपका स्थान हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सर्वथा अनन्य रहा है। अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ कवि के रूप में करके आप कालान्तर में हिन्दी के उच्चकोटि के समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हुए थे।
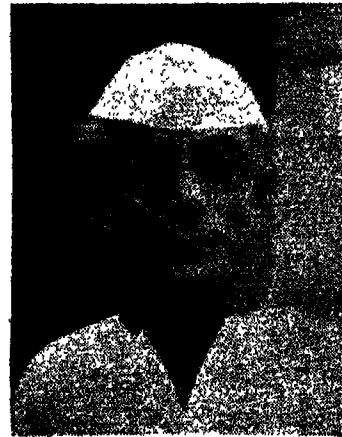
बचपन में आपका नाम 'मुच्छन द्विवेदी' था और इसी नाम से आप काशी से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'आज' में छोटी-छोटी टिप्पणियाँ आदि लिखकर छपवाया करते थे। आपने सर्वथा निजी स्वाध्याय के बल पर अपनी साहित्यिक

प्रतिभा को किस प्रकार विकसित किया था, इसे वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्होंने द्विवेदीजी को निकट से जाँचा-परखा था। आपकी 'क्षमा याचना' शीर्षक सबसे पहली रचना एक गद्य-काव्यात्मक कृति थी, जो सन् 1925 की 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी।

कवि के रूप में आपकी प्रतिभा का परिचय 'नीरव' तथा 'हिमानी' नामक उन कृतियों से मिल जाता है जो आपके साहित्यिक जीवन के उषा-काल में प्रकाशित हुई थीं। आपकी 'परिचय' और 'मोतियों की लड़ी' नामक रचनाएँ भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। समीक्षक के रूप में आपका उदय 'हमारे साहित्य के निर्माता' नामक रचना से हुआ था। इसमें आपकी समीक्षा-दृष्टि सर्वथा अनुपम एवं अनन्य थी। उस समय की साहित्यिक चेतना को समझने में द्विवेदीजी की यह कृति बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती है। धीरे-धीरे आपकी समीक्षा-दृष्टि में विकास होता गया और आपकी 'कवि और काव्य', 'साहित्यिकी', 'संचारिणी', 'जीवन-यात्रा', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'ज्योति-विहग', 'प्रतिष्ठान', 'वृन्त और विकास', 'साकल्य' तथा 'समवेत' आदि समीक्षा-कृतियों ने आपके समीक्षक रूप की प्रतिष्ठा करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। पन्तजी के काव्य के एक-मात्र समीक्षक के रूप में भी आपका विशिष्ट स्थान है।

आप जहाँ सहृदय कवि तथा संवेदनशील समीक्षक थे वहाँ कल्पनाशील उपन्यासकार के रूप में भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था। आपकी ऐसी औपन्यासिक कृतियों में 'दिगम्बर' तथा 'चारिका' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। आत्म-कथात्मक निबन्ध तथा संस्मरण लिखने की कला में भी द्विवेदीजी सर्वथा अद्वितीय थे। आपकी 'परिव्राजक की प्रजा' तथा 'पथ-चिह्न' नामक कृतियाँ इसका उदात्त उदाहरण हैं। आपकी इन कृतियों में जहाँ आपकी निःसंगता पग-पग पर प्रकट हुई है वहाँ बाल-सुलभ चांचल्य तथा भोलापन दोनों ही अपनी सहजता से प्रकट हुए हैं।

आप जहाँ उच्चकोटि के निबन्धकार, कवि, समीक्षक, उपन्यासकार तथा संस्मरण-लेखक थे वहाँ अच्छे पत्रकार के रूप में भी आपने अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया था। 'कमला' (काशी) तथा 'वीणा' (इन्दौर) के सम्पादन के दिनों में आपने अपनी विशिष्ट सम्पादन-पटुता का आभास मिलता है।

आपका निधन 21 अगस्त सन् 1967 को हुआ था।

श्री शान्तिस्वरूप गौड़

श्री गौड़जी का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के खुर्जा नामक नगर में 1 जनवरी सन् 1919 को हुआ था।

आपने खुर्जा से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करके बाद में साहित्य-सेवा में ही अपने को लगा दिया था। आप खुर्जा की हिन्दी-साहित्य परिषद् के प्रधानमन्त्री भी रहे थे। आपने आगरा के राजामण्डी मोहल्ले में 'आदर्श महिला विद्या-पीठ' नामक एक संस्था का संचालन भी किया था।
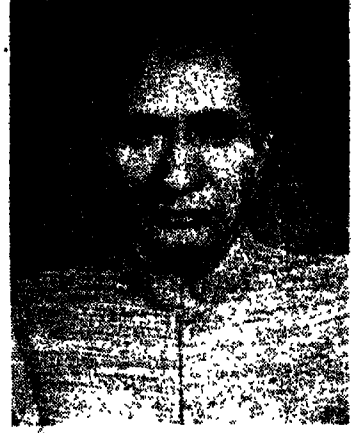
आप उत्कृष्ट निबन्धकार तथा सफल कथा-लेखक होने के साथ-साथ प्रकाशन-कार्य में भी दक्ष थे और आगरा में रहकर आपने 'राजेन्द्र प्रकाशन मंदिर' नाम से प्रकाशन भी किया था। आपके द्वारा रचित पुस्तकों में 'त्रयोदशी' (कहानियाँ, 1943), 'त्रिवेणी' (निबन्ध, 1944), 'नरकुल वन' (1945), 'दसकन्धर' (एक जीवन-गाथा, 1949), 'सुमित्रानन्दन' (एक जीवन-गाथा, 1949), 'दुष्यन्त और शकुन्तला' (एक कथा, 1950), 'महासती चन्दनबाला' (1951) तथा 'सूरदास और उनका साहित्य' (आलोचना, 1953) विशेष उल्लेखनीय हैं।

साहित्य-रचना के पथ पर अग्रसर होने से पूर्व खुर्जा में आपने सन् 1945-46 में पुस्तक-विक्रय का कार्य भी किया था।

आपका देहावसान 14 जुलाई सन् 1979 को जयपुर (राजस्थान) में हुआ था।

जस्टिस शारदाचरण मित्र

जस्टिस मित्र का जन्म 17 दिसम्बर सन् 1848 को कलकत्ता में हुआ था। आपके पिता एक व्यवसायी थे और आपकी माताजी का निधन उस समय हो गया था जबकि आप केवल 6 वर्ष के ही थे। जब आप आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तब आपके पिताजी का भी असामयिक देहावसान हो गया और आपके मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित हो गईं। आपने अपनी अनवरत लगन तथा परिश्रमशीलता से सन् 1870 में कलकत्ता-विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि प्राप्त करके उसी वर्ष केवल एक मास बाद ही एम० ए० की परीक्षा भी दे दी। यहाँ यह विशेष ध्यातव्य तथ्य है कि इन दोनों परीक्षाओं में आपने प्रथम स्थान प्राप्त करके कई छात्रवृत्तियाँ भी प्राप्त की थीं। इसके उपरान्त केवल 21 वर्ष की आयु में ही कलकत्ता के 'प्रेसीडेंसी कालेज' में आप अँग्रेजी विषय के प्रवक्ता हो गए। अपने शिक्षक जीवन में आपने अपनी अध्ययनशीलता तथा कर्म-तत्परता के कारण छात्रों में बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी।

धीरे-धीरे वकालत की परीक्षा देकर बी० एल० उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त आपने 'कलकत्ता हाईकोर्ट' में प्रैक्टिस प्रारम्भ कर दी। वकालत के कार्यों से समय बचाकर आप 'हावड़ा हितकारी' नामक पत्र का भी सम्पादन करते थे। सन् 1878 से 1880 तक आप कलकत्ता म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य और सन् 1884 से 1900 तक बंगाल की 'टैक्स्ट बुक कमेटी' के सदस्य रहे थे। सन् 1885 में आप जहाँ यूनिवर्सिटी के फैलो चुने गए थे वहाँ सन् 1901 से 1904 तक उसके 'कला-संकाय' के अधिष्ठाता भी रहे थे। जिन दिनों आप हाईकोर्ट में वकालत करते थे तब आप वहाँ की जनता तथा शासन दोनों में अत्यन्त लोकप्रिय हुए थे। प्रायः सभी मुकद्दमों को आप अपनी सहज तर्क-शक्ति एवं विलक्षण वाक्पटुता से ऐसा निपटाते थे कि सभी को आश्चर्य होता था। धीरे-धीरे आपकी लोकप्रियता ऐसे शिखर तक पहुँच गई कि शासन ने आपको सन् 1892 में 'कलकत्ता हाईकोर्ट' का जज नियुक्त कर दिया। अपने इस कार्यकाल में भी आपने अपनी ईमानदारी तथा सूझ-बूझ के कारण अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। सभी अभियोगों के वास्तविक रूप को समझकर तथा तथ्य का विश्लेषण करके निर्णय देने की आपमें अद्भुत क्षमता थी।

आप जहाँ अच्छे न्यायविद, शिक्षा-शास्त्री तथा कुशल पत्रकार के रूप में विख्यात थे वहाँ समाज-सुधार की अनेक प्रवृत्तियों में भी आपका सक्रिय सहयोग रहता था। स्त्री-शिक्षा के कट्टर समर्थक होने के साथ-साथ आप 'देवनागरी लिपि' के भी 'अनन्य पक्षपाती' थे। आपका यह दृढ़ मत था कि भारतवर्ष की एकता के लिए 'एक लिपि' तथा 'एक भाषा' का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी पावन उद्देश्य से प्रेरित होकर आपने 'एकलिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना करके समस्त देश में यह आन्दोलन चलाया था। इस सम्बन्ध में अपने कार्य को और भी प्रगति देने के उद्देश्य से प्रेरित होकर आपने 'देवनागर' नामक एक ऐसा पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था, जिसमें सभी भारतीय भाषाओं की रचनाएँ देवनागरी लिप्यन्तर तथा उसके हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ करती थीं। इस पत्र के सम्पादन में श्री यशोदानन्द अखौरी-जैसे अनेक लेखकों ने भी आपको सहयोग दिया था।

आपका निधन सन् 1917 में हुआ था।

श्री शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य

श्री शास्त्रीजी का जन्म सन् 1885 में बरेली (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता पण्डित पोशाकीलाल ज्योतिषी थे। श्री शालग्रामजी ने पीलीभीत के श्री त्रिवेणीप्रसाद शास्त्री से व्याकरण तथा श्री पं० गंगाधर शास्त्री से साहित्य-शास्त्र का चूडान्त ज्ञान प्राप्त किया था। बाद में आपने काशी में जाकर

पण्डित काशीनाथजी से दर्शनों का गम्भीर ज्ञान अर्जित किया था। आपने क्रमशः

पंजाब विश्वविद्यालय तथा क्वीन्स कालेज, बनारस से शास्त्री और साहित्याचार्य की परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण की थीं। इसके पश्चात् आपने चन्द्र-नगर (बंगाल) जाकर वहाँ के प्रख्यात वैद्य श्री कविराज हरिदास भट्टाचार्य से आयुर्वेद का सांगोपांग अध्ययन किया था। शास्त्रीजी के अनुपम पाण्डित्य से प्रभावित होकर तत्कालीन दरभंगा-नरेश श्री रामेश्वरसिंह ने आपको 'विद्या-भूषण' की सम्मानोपाधि से विभूषित किया था। इसी प्रकार दक्षिणाम्नाय के शृंगेरी मठ के शंकराचार्यजी महाराज ने भी आपको 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि प्रदान की थी।

प्रारम्भ में आपने गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार तथा डी० ए० वी० कालेज, लाहौर आदि में शिक्षण का कार्य किया था, किन्तु सन् 1915 से आपने चिकित्सा-व्यवसाय को आजीविका के रूप में अपना लिया था। प्रारम्भ में आपने यह कार्य अपनी जन्म-भूमि बरेली में ही प्रारम्भ किया था, किन्तु फिर कुछ दिन बाद लखनऊ चले गए और आप जीवन की अन्तिम साँस तक वहीं पर रहे। लखनऊ में 'श्री मृत्युंजय औषधालय' आपका स्थायी निवास था और आपकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक हो गई थी। अपने चिकित्सा-सम्बन्धी कार्यों से अवकाश निकालकर आप प्रायः 'साहित्य-सृजन' में लगे रहते थे। आपके अनेक गवेषणापूर्ण लेख तथा हास्य-रस से सराबोर रचनाएँ हिन्दी की प्रायः सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं।

संस्कृत-साहित्य के अद्वितीय विद्वान् होने के कारण शास्त्रीजी ने संस्कृत के विख्यात-ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' पर 'विमला' नाम की जो टीका लिखी थी उससे आपकी ख्याति सारे साहित्य-जगत् में हो गई थी। उसके सम्बन्ध में देश के प्रायः सभी विद्वानों ने अपनी आशंसात्मक भावनाएँ प्रकट की थीं। आप बड़े कठोर समीक्षक थे। आपकी समीक्षाओं को पढ़कर प्रायः लोग तिलमिला जाते थे। एक बार जब 'माधुरी' के सम्पादक और हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार श्री कृष्णबिहारी मिश्र ने देव कवि की प्रशंसा करते हुए अपनी एक कविता में :

'कुहू कुहू मोरवा पुकार मोद भरिगो'

लिखा था तथा शास्त्रीजी ने उनकी खिल्ली उड़ाते हुए यह लिखा था : "कोयल कुहू-कुहू बोलती है केकी नहीं, मोर की ध्वनि 'केहू-केहू' कही जाती है जो प्रत्यक्ष सिद्ध है।" इस पर मिश्रजी ने अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए प्रेम-चन्दजी से 'मोटेराम शास्त्री' शीर्षक से एक कहानी लिखवा-कर 'माधुरी में प्रकाशित की और श्री किशोरीदास वाजपेयी के आपकी 'साहित्य दर्पण' की 'विमला टीका' के विरुद्ध कई लेख 'माधुरी' से प्रकाशित किए। यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रेमचन्दजी उन दिनों 'माधुरी' में मिश्रजी के सहयोगी थे। श्री किशोरीदास वाजपेयी के लेखों का उत्तर तो आपने अपनी लेखनी द्वारा ही दिया, किन्तु कहानी के लिए आपने मिश्रजी तथा प्रेमचन्दजी दोनों पर अपनी 'मान-हानि' का मुकद्दमा कर दिया। जब नवलकिशोर प्रेस के मालिक और 'माधुरी' के व्यवस्थापक-संचालक श्री विष्णुनारायण भार्गव बीच में पड़े और मिश्रजी तथा प्रेमचन्दजी ने खेद प्रकट किया तब शास्त्रीजी ने वह अभियोग वापस लिया था।

'माधुरी' के प्रधान सम्पादक और देव-पुरस्कार-विजेता श्री दुलारेलाल भार्गव शास्त्रीजी के यद्यपि परम मित्र थे, परन्तु फिर भी साहित्य में आपकी उनसे बराबर खटपट रहती थी। आपने उनकी 'दुलारे दोहावली' पर भी कई तीखे लेख श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' के सम्पादकत्व में प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'मनोरमा' तथा 'विशाल भारत' में लिखे थे। आपके 'रामायण में राजनीति' नामक ग्रन्थ को पढ़कर 'सरस्वती' के ख्यातनामा सम्पादक आचार्य श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने यह ठीक ही लिखा था— "आपकी पैनी बुद्धि और सूक्ष्म विवेचन-शक्ति की मैं कहाँ तक प्रशंसा करूँ, आपके तर्क के आगे विरोधियों को भी सिर झुकाना पड़ेगा।" इसी प्रकार एक बार जब आपने 'यज्ञोपवीत' नामक निबन्ध में उसके दार्शनिक स्वरूप तथा उपयोगिता पर अच्छा प्रकाश डाला था तब भी आचार्य

द्विवेदीजी ने यह लिखा था—"आपने जमेऊजी का उद्धार कर दिया है।" इसी प्रकार जहाँ हिन्दी-जगत् में आपने अनेक शोधपूर्ण लेखों के कारण धूम मचा दी थी, संस्कृत-जगत् भी आपकी वैसी प्रतिभा के अवदान से वंचित नहीं रहा था। एक बार बनारस की 'पण्डित-मण्डली' में भी आपने तहलका मचा दिया था। 'एशिया' और 'सीरिया' आदि शब्दों के व्युत्पत्तिजनक विवाद को उठाकर आपने अपने एक निबन्ध में 'सर्वथा नई मान्यताएँ' प्रतिपादित की थीं।

आपका निधन 31 अगस्त सन् 1940 को लखनऊ में हुआ था।

श्री शालिग्राम शर्मा

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद के बरथावल नामक स्थान में सन् 1867 में हुआ था। आप हिन्दी, उर्दू तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान रखते थे। वैसे आपकी गति अधिकतर उर्दू में ही थी, पर आपने 'किसानोपकारक' (प्रतापगढ़) के सम्पादन द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि आपका हिन्दी पर भी पूरा अधिकार है।

आपके पिता श्री मुलतानसिंहजी को तुलसीदास का 'रामचरितमानस' ग्रन्थ पूरा कण्ठस्थ था। आप फारसी के अच्छे विद्वान् थे और मौलाना सूफी की रुबाइयों और तुलसीदास की चौपाइयों की तुलनात्मक समीक्षा किया करते थे। उनके संस्कार ही श्री शर्माजी को मिले थे, जिनके कारण आपने आर्यसमाज और त्यागी ब्राह्मण समाज की उल्लेखनीय सेवा की

थी। मेरठ का 'त्यागी छात्रावास' और रासना (मेरठ) का डिग्री कालेज आपके सजीव स्मारक हैं। त्यागी छात्रावास की इतनी शानदार इमारत आपके ही परिश्रम से बनी थी। आपने 'त्यागी' मासिक के सम्पादन में भी अपना उल्लेखनीय सहयोग प्रदान किया था।

आपका निधन 13 अक्तूबर सन् 1942 में हुआ था।

साहू शिवचन्द्र

साहू शिवचन्द्रजी का जन्म सन् 1885 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले के 'सराय तरीन' नामक कस्बे में हुआ था। आप विचारों से आर्यसमाजी और स्वभाव से अत्यन्त शालीन एवं उदार प्रकृति के मानव थे। आपने महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' नामक ग्रन्थ का अँग्रेजी अनुवाद अपने उदार दान से प्रकाशित कराया था। 'यजुर्वेद' के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन के लिए भी आपने गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन (मथुरा) को आर्थिक सहायता दी थी। यह अनुवाद श्री द्विजेन्द्रनाथ सिद्धान्त शिरोमणि के निरीक्षण में सम्पन्न हुआ था और आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश से इसका प्रकाशन हुआ था। आपके पिता श्री नन्दरामजी भी वैदिक धर्मावलम्बी सज्जन थे। उन्होंने प्रख्यात आर्य संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती को सराय तरीन बुलाकर सनातनी पंडितों और मुल्लाओं से उनका शास्त्रार्थ कराया था। हिन्दी साहित्य तथा वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रोत्साहन में श्री शिवचन्द्रजी का स्थान अन्यतम था।

आपका निधन 7 सितम्बर सन् 1947 को हुआ था।

श्री शिवचन्द्र भरतिया

श्री भरतियाजी का जन्म वर्तमान आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद राज्य में 'कन्नड' नामक स्थान में सन् 1853 में हुआ था। आपके पूर्वज राजस्थान की जोधपुर रियासत के 'डीडवाना' नामक स्थान के निवासी थे। आपके पिता श्री बलदेवजी के चार पुत्र थे और श्री भरतियाजी उनमें सबसे बड़े थे। क्योंकि जिस प्रदेश में आपका जन्म हुआ था वहाँ की भाषा मराठी थी इसलिए आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मराठी भाषा में ही हुई थी। बाद में आपने अपने स्वाध्याय के बल पर संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी का ज्ञान बढ़ाया था।

श्री भरतियाजी उन महानुभावों में थे जिन्होंने सर्वप्रथम मारवाड़ी-राजस्थानी में पुस्तक लिखी थी। आप मराठी में भी गद्य तथा पद्य की रचनाएँ करने में बहुत दक्ष थे। आपकी मराठी में लिखी हुई लगभग 30 पुस्तकें मिलती हैं। हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक तथा कवि होने के साथ-साथ आपने संस्कृत में भी कविताएँ लिखी थीं।

आपने हिन्दी की लगभग 17 पुस्तकें गद्य और पद्य में लिखी थीं। कलकत्ता के राम प्रेस से स्वामी श्री रामलालजी नेमाणी ने सन् 1904 में 'वैश्योपकारक' नामक जो पत्र प्रकाशित किया था उसका सम्पादन श्री भरतियाजी ने ही किया था।

हिन्दी-पत्रकारिता की दीक्षा आपने हिन्दी के ख्यातनामा सम्पादक तथा लेखक श्री राधामोहन गोकुलजी से ली थी। जिन दिनों आपने कलकत्ता में रहकर 'सत्य सनातन धर्म' पत्र निकाला था उन दिनों भरतियाजी गोकुलजी के सम्पर्क में आए थे।

आपका निधन सन् 1915 में हुआ था।

मेजर जनरल शिवदत्तसिंह

मेजर जनरल शिवदत्तसिंह का जन्म बीकानेर (राजस्थान) के राज-वंश में 2 फरवरी सन् 1900 को हुआ था। बाल्यावस्था में ही आपको विद्याध्ययन के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया था। सन् 1922 में आपको रायल मिलिट्री कालेज सैण्डहर्स्ट, इंगलैण्ड से ब्रिटिश इंडियन आर्मी में 'किंग्स कमीशन' मिला था। आप द्वितीय विश्व-युद्ध में भाग लेने के उपरान्त सन् 1946 में 'इंडियन मिलिट्री मिशन' के डिप्टी कमांडर के रूप में 'बर्लिन' गए थे। सोवियत संघ में अपनी नियुक्ति के समय आपने मास्को से काकेशस तक रेल-मार्ग का निर्माण कराया था। सन् 1947 में आप भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में नेपाल गए थे और हैदराबाद की 'पुलिस कार्यवाही' के समय आप उसके प्रमुख कर्णधार थे।
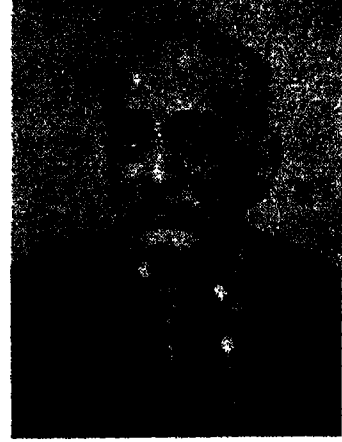
भारतीय सेना में आपने सर्वप्रथम हिन्दी के आदेशात्मक शब्दों का प्रचलन कराया था। आपने हिन्दू मुस्लिम समस्या, भारत की सामरिक सुरक्षा, भारतीय संस्कृति, भारत-पाक आक्रमण तथा नाजी समस्या आदि अनेक विषयों पर लेख लिखे थे, जो समय-समय पर 'दैनिक हिन्दुस्तान', 'धर्म मार्ग', 'नयन रश्मि', 'दून रिपोर्टर' तथा 'युग धर्म' आदि पत्रों में प्रकाशित हुए थे। आपने अपनी एक 'आत्म कथा' भी लिखी थी, जो अभी तक अप्रकाशित ही है। हिन्दी में सामरिक महत्त्व के लेख लिखने वाले आप पहले भारतीय थे। आपने 6 दिसम्बर सन् 1951 को भारतीय सेना के 'मेजर जनरल' के पद से अवकाश ग्रहण किया था। उस समय आप भारत के 'सैनिक मुख्यालय' में 'सैनिक सचिव' थे।

आपका निधन 19 नवम्बर सन् 1969 को देहरादून में हुआ था।

श्री शिवदयाल 'सरस माधुरी'

चरणदासी-सम्प्रदाय के इस महात्मा 'सरस माधुरी' का जन्म मध्यप्रदेश की ग्वालियर रियासत के 'मन्दसौर' नामक नगर में सन् 1855 में हुआ था। आप अलवर के डेहरा गाँव की चरणदासजी की गद्दी के शिष्य थे और जयपुर में रहते थे।

आपकी समस्त रचनाएँ 'सरस सागर' नामक ग्रन्थ में समाविष्ट हैं, जो दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त 'सरस चौरासी', 'सरस शतक', 'सरस माला', 'सरस झूलन मलार संग्रह', 'सरस मंत्रावली', 'सरस निकुंज', 'विलास', 'मीरा लीला' और 'अष्ट याम' उल्लेख्य हैं। आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में 'भक्ति सागर', 'मुक्ति मार्ग', 'सहज प्रकाश' और 'गुरु भक्ति प्रकाश' प्रमुख हैं।

आपका निधन 18 दिसम्बर सन् 1926 को वृन्दावन में हुआ था।

श्री शिवदानमल थानवी

श्री थानवीजी का जन्म राजस्थान राज्य के जोधपुर नामक नगर में सन् 1868 में हुआ था। आप अँग्रेजी, हिन्दी और उर्दू भाषाओं के अच्छे विद्वान् थे। शिक्षक, इतिहासकार और कवि होने के साथ-साथ आप संगीत के भी अच्छे ज्ञाता थे।

सन् 1889 में आपने जोधपुर शहर में 'डायमण्ड जुबली बुकडिपो' की स्थापना की थी। ध्यातव्य है कि जोधपुर शहर में पुस्तकों की यही एक-मात्र दुकान थी। इसी वर्ष आपने अपने शहर से 'मरुधर हितैषी' नामक प्रथम साप्ताहिक पत्र निकालने की अनुमति भी ली थी। सन् 1919 में जब मारवाड़ में 'टाइपराइटर' तक रखना भी जुर्म था तब आपने 'श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस' की स्थापना करके अपने सत्साहस और हिन्दी-प्रेम का परिचय दिया था। राजस्थानी और हिन्दी साहित्य की पुस्तकों का लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन आप-जैसे कर्मठ व्यक्ति ने ही जोधपुर से पहली बार प्रारम्भ किया था।

'हिन्दुस्तान दैनिक', 'कालाकांकर', 'मारवाड़ी साप्ताहिक' नागपुर, तथा 'राजस्थान समाचार' अजमेर आदि पत्रों के कुशल संवाददाता के रूप में भी आपने कार्य किया था। कई पुस्तकों का सफल सम्पादन करने के साथ-साथ आपकी 'मारवाड़ी कहावतें' (राजस्थानी-अँग्रेजी, 1893), 'मानगान संग्रह' (1927), 'होरी हिलोर' (1934), 'सरस कविता संग्रह', 'सद्‌गुण शोभा सार' और 'राठौड़ योद्धा' आदि रचनाएँ प्रमुख हैं।

आपका निधन सन् 1955 में जोधपुर में हुआ था।

श्री शिवदेव उपाध्याय 'सतीश'

श्री सतीशजी का जन्म उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के रामापुर नामक ग्राम में सन् 1908 में हुआ था। गाँव में कोई पाठशाला न होने के कारण आपने अपने गाँव से 4 मील दूर एक छोटे से कस्बे खामरिया में पैदल आ-जाकर ही मिडिल तक शिक्षा ग्रहण की थी। जब आप मिडिल कक्षा में ही अध्ययन कर रहे थे उस समय आपका विवाह कर दिया गया। तदुपरान्त 'लवेट हाईस्कूल, ज्ञानपुर' से आपने हाईस्कूल तक शिक्षा ग्रहण की। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण आप हमेशा अपनी कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते रहे और छात्रवृत्ति से ही आपका अध्ययन सरल एवं प्रेरक बनता गया। आप स्नातक की शिक्षा ग्रहण करने के लिए कलकत्ता चले गए और वहीं से आपने सन् 1938 में कानून की पढ़ाई भी पूर्ण की।

आपकी रचनाएँ विद्यार्थी जीवन से ही मिर्जापुर के 'मतवाला' में प्रकाशित होने लगी थीं। कलकत्ता में रहते हुए भी आप 'मतवाला' के संस्थापक श्री महादेवप्रसाद सेठ के सम्पर्क में आए थे। तब बी० एन० सरकार 'सीता'

फिल्म का निर्माण कर रहे थे, जिसके गीत आपने ही लिखे थे। पृथ्वीराज कपूर के नायक होने पर भी फिल्म नहीं चल सकी और आपकी सितारों की दुनिया का पथ ओझल हो गया। इस विफलता का परिणाम यह हुआ कि आप 'मतवाला' पत्रिका में जमकर लिखने लगे। महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', कविवर हरिवंशराय 'बच्चन' तथा वरिष्ठ साहित्यकार श्री बेचन शर्मा 'उग्र' आपके घनिष्ठ मित्रों में थे। उसी दौरान 'दैनिक विश्वमित्र' के व्यवस्थापकों ने 'मासिक विश्वमित्र' का श्रीगणेश किया, जिसका सम्पादन-भार आपने ही ग्रहण किया था। आपकी सम्पादन-कुशलता से 'विश्वमित्र' ने प्रचुर ख्याति अर्जित की थी।
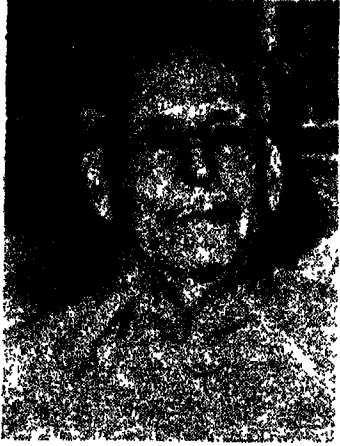
कुछ वर्ष बाद आप वहाँ से वाराणसी चले आए। वहाँ वकालत प्रारम्भ करके स्वाधीनता-आन्दोलन की सक्रिय राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। सन् 1941 में आप उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के चुनाव में एक उम्मीदवार के रूप में कूद पड़े, लेकिन दुर्भाग्यवश 13 मतों से पराजित हो गए। आप पुनः अपने पुराने कर्म-क्षेत्र कलकत्ता चले गए तथा 'विश्वमित्र' के सम्पादन-कार्य से पुनः सम्बद्ध हो गए। इस बार आपने इस पत्र के अतिरिक्त 'नवभारत टाइम्स', 'दैनिक लोकमान्य', 'माडर्न रिव्यू' आदि में भी लिखना प्रारम्भ किया। अपनी साहित्यिक साधना के अतिरिक्त आप सामाजिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में भी रुचि रखते थे। समय-समय पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बद्ध आपकी वार्त्ताएँ आकाशवाणी के कलकत्ता केन्द्र से भी प्रसारित होती रहती थीं। आपने संविधान, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयों पर पुस्तकें लिखने के साथ-साथ साहित्यिक पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें से 'एक भूल' नामक पुस्तक उन दिनों हिन्दी में काफी चर्चित रही थी।

सन् 1950 से आपने सब कार्यों से विरक्त होकर वकालत का पेशा अपना लिया। 4 जुलाई सन् 1965 को लकवे-जैसी भयंकर बीमारी ने आपके जीवन-विटप को झकझोर दिया और 28 सितम्बर सन् 1974 को यह चमकता सितारा अनन्त की गहराइयों में खो गया। जहाँ 'सतीश' जी का मूल उद्देश्य पत्रकारिता और वकालत द्वारा समाज-सेवा करना था वहाँ आपके दोनों उद्देश्यों की पूर्ति क्रमशः आपके ज्येष्ठ पुत्र वकील के रूप में और कनिष्ठ पुत्र श्री प्रेमचन्द उपाध्याय 'दैनिक विश्वमित्र' (कलकत्ता) के सम्पादन-विभाग से सम्बद्ध होकर कर रहे हैं।

बाबू शिवनन्दन सहाय

आपका जन्म बिहार के शाहाबाद जिले के अख्तियारपुर नामक ग्राम में सन् 1860 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा लगभग 13 वर्ष तक आरा नगर में उर्दू-फारसी के माध्यम से हुई थी। 1880 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप पटना उच्च न्यायालय में लिपिक के रूप में कार्य करने लगे थे। अपनी कर्त्तव्यपरायणता और परिश्रम से आप पहले प्रधान लिपिक बने और बाद में अनुवादक हो गए; जिससे आप 1915 में निवृत्त हुए थे।

प्रारम्भ में आप उर्दू और अँग्रेजी में साहित्य-रचना करते थे किन्तु बाद में जब आपका सम्पर्क पं० अम्बिकादत्त व्यास तथा बाबू रामदीनसिंह आदि सज्जनों से हुआ तो उनकी प्रेरणा से आपने अँग्रेजी और उर्दू में लिखना छोड़कर हिन्दी में लिखना प्रारम्भ कर दिया। उन्हीं दिनों आपका

सम्पर्क पटना सिटी स्थित हरिमन्दिर के महन्त और सुप्रसिद्ध हिन्दी-सेवी बाबा सुमेरसिंह साहबजादे से हुआ और उनकी प्रेरणा से आपने काव्य-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक ग्रंथों का पारायण किया। हिन्दी-काव्य-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करने के साथ-साथ आपने पं० दामोदर शास्त्री से संस्कृत का भी गहन अध्ययन किया जिससे आपके काव्य-सम्बन्धी परिवेश को बहुत विस्तार मिला। आपने सन् 1921 में सीतामढ़ी में आयोजित बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के अवसर पर जो भाषण दिया था, उससे आपकी अध्ययनशीलता का परिचय मिलता है। वह भाषण बिहार में गत पचास वर्ष की प्रगति का इतिहास प्रस्तुत करने वाला था। सन् 1924 में बिहार प्रान्तीय कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करने के साथ-साथ अनेक वर्ष तक आपने धर्मसमाज की भी अध्यक्षता की थी। आपकी गणना बिहार के उन साहित्यकारों में की जाती है कि जिनके अपूर्व त्याग तथा प्रोत्साहन के बल पर वहाँ पर हिन्दी की गौरव-वृद्धि हुई है। आपकी समस्या-पूर्तियाँ 'कवि मण्डल', 'कवि समाज' तथा 'रसिक मित्र' नामक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं, जो 'कुसुम कुंज' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। आपने भारतेन्दु बाबू की काव्य-रचनाओं का संकलन 'चयनिका' नाम से सम्पादित किया था और अँग्रेजी के कवि 'टेनीसन' की कविताओं का आपके द्वारा किया हुआ हिन्दी-अनुवाद 'कविता कुसुम' नाम से प्रकाशित हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आपको हिन्दी का सबसे पहला जीवनी-लेखक माना है। आपकी ऐसी कृतियों में—'सच्चरित्र हरिश्चन्द्र का जीवन-चरित्र', 'श्री सीताराम भगवानप्रसाद-जी की जीवनी', 'बाबू साहबप्रसादसिंह की जीवनी', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'गौरांग महाप्रभु' तथा 'मीराबाई की जीवनी' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'सुदामा नाटक', 'उद्धवनाटक', 'गत पचास वर्षों में हिन्दी की दशा', 'बंगाल का इतिहास', 'दयानन्द-मत-मूलोच्छेद', 'सनातन धर्म की जय', 'आशुबोध ज्योतिष', 'डाली' और 'साहित्य-वातायन' आदि रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। आपको साहित्य-सृजन करने की प्रेरणा पं० अम्बिकादत्त व्यास से मिली थी।

आपका निधन आरा में 72 वर्ष की आयु में पक्षाघात के कारण 15 मई सन् 1932 को हुआ था।

पण्डित शिवनाथ शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1867 में काशी में हुआ था। आपके पिता श्री दामोदर शर्मा ज्योतिष-शास्त्र में निष्णात कर्मकाण्डी सारस्वत ब्राह्मण थे। प्रारम्भ में शर्माजी ने मुनीमी सीखी थी और बाद में लखनऊ के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित ज्ञानेश्वरजी से आपने संस्कृत का विधिवत् अध्ययन किया था। इसके उपरान्त आपने लखनऊ के केनिंग कालेज से बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त की थी। आप जहाँ संस्कृत के अनुशीलन में दिन-रात संलग्न रहते थे वहाँ अँग्रेजी साहित्य का स्वाध्याय भी आपका अत्यन्त गहन-गम्भीर था। उर्दू तथा फारसी के अनेक कवियों की रचनाएँ जहाँ आपको कण्ठाग्र रहती थी वहाँ अँग्रेजी के शेक्सपियर, मिल्टन तथा बायरन आदि कवियों के भी आप परम भक्त थे।

आपको अपनी शैशवावस्था से ही लिखने का बहुत शौक था और आपने कालेज में प्रविष्ट होने से पूर्व ही 'रसिक पंच' नामक एक हिन्दी-पत्र प्रकाशित किया था। इसके उपरान्त आप कलकत्ता के पंडित सदानन्द मिश्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाले 'सार सुधा निधि' नामक पत्र में 'चाटु-वार्ता' स्तम्भ के अन्तर्गत हास्य-रस के लेख लिखने लगे। उस समय आपके इन लेखों की बड़ी धूम थी। आपके ऐसे लेख कभी-कभी 'उचित वक्ता' तथा 'भारत मित्र' में भी प्रकाशित होते रहते थे। आपने सन् 1901 के बोअर-युद्ध के समय 'गोपाल पत्रिका' नामक पत्रिका का भी सम्पादन किया था और इसके अनन्तर आपने लखनऊ से 'वसुन्धरा' नामक पत्रिका भी निकाली थी। सन् 1905 में आपने अपने 'आनन्द प्रेस' से 'साप्ताहिक आनन्द' नामक पत्र निकाला था, जो बाद में दैनिक हो गया था। उसमें 'मिस्टर व्यास की कथा' शीर्षक से आपके हास्य-लेख

बराबर प्रकाशित होते रहते थे, आपके उन्हीं लेखों में से चुनाव करके 'गंगा पुस्तकमाला' के 416 पृष्ठ की एक पुस्तक प्रकाशित की थी।

आप कई वर्ष तक अवध गोशाला लखनऊ के 'प्रधानमन्त्री' भी रहे थे और आपके कार्य-काल में उस गोशाला की बहुत उन्नति हुई थी। आपकी गो-सेवा की प्रशंसा गोवर्धन पीठ के शंकराचार्य ने मुक्त कण्ठ से की थी और आपको 'गो-सेवा-धुरन्धर' की उपाधि भी प्रदान की थी। आप न केवल हास्य-रस के लेखक थे, प्रत्युत राजनीति की गूढ़तम समस्याओं पर भी आप बड़ी तीखी आलोचना करते थे। आप काफी दिन तक लखनऊ के 'कालीचरण हाईस्कूल' में अध्यापक भी रहे थे और सन् 1920 में आपने वहाँ से अवकाश ग्रहण कर लिया था।

आपने कई बंगला-पुस्तकों का अनुवाद भी किया था। जिनमें 'कलियुगेर प्रह्लाद' का अनुवाद अत्यन्त प्रसिद्ध है। आप ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में ही अच्छी कविता किया करते थे। यह आपकी लेखनी की विशेषता थी कि आपके लेखों के अनुवाद दूसरी भाषाओं के पत्रों में भी हुआ करते थे। आपने कुछ प्रहसन तथा नाटक भी लिखे थे, जिनमें 'बहसी पण्डित', 'दरबारीलाल', 'नवीन बाबू', 'मानवी कमीशन', 'नागरी निरादर' तथा 'गदर का फूल' आदि अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनमें से 'नागरी निरादर' प्रहसन काशी में अभिनीत किया गया था। आपकी कविता-पुस्तकों में 'सरोज लतिका', 'प्रयोग पारिजात' तथा 'राम राज्याभिषेक' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

आपका देहावसान कलकत्ता में पक्षाघात के कारण सन् 1928 में हुआ था।

श्री शिवनारायण लाहोटी

श्री लाहोटीजी का जन्म 5 जून सन् 1926 को आन्ध्र प्रदेश के परभणी जनपद के जिंतूर नामक स्थान में हुआ था। एम० ए०, बी० ए०, और एल-एल० बी० की शिक्षा प्राप्त करके आपने अपना जीवन पूर्णतया हिन्दी-सेवा में ही लगा दिया था। आपने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मित्रों के अनुरोध पर आदर्श जूनियर कालेज, निजामाबाद के प्रधानाचार्य का पद स्वीकार कर लिया था, किन्तु वहाँ पर भी आप सतत संघर्षशील रहे थे।

आप हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद के प्रधान मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष थे और प्रचार सभा के माध्यम से आपने वहाँ पर हिन्दी की जो ज्योति जलाई थी उसमें आप बराबर अपना योग-दान करते आ रहे थे। जन्मना वैश्य परिवार में उत्पन्न होकर भी आप प्रकृति से ब्राह्मण थे। 22 दिसम्बर सन् 1980 को आप वेंकटाद्रि एक्सप्रेस से एक हिन्दी-कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए आन्ध्र-प्रदेश के तकनीकी शिक्षा मंत्री श्री हयग्रीवाचारी के साथ महबूबनगर गए थे कि वहाँ पर रात में थोड़ी-सी परेशानी आपने अनुभव की और आपका दिल दगा दे गया।

श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द

श्रीमती शिवरानीजी का जन्म सन् 1889 में उत्तर प्रदेश के फतहपुर जनपद के सलेमपुर (पोस्ट कनवार) नामक ग्राम के एक कायस्थ-परिवार में हुआ था। आपके पिता मुन्शी देवीप्रसाद के एक आर्यसमाजी मित्र श्री शंकरलाल श्रोत्रिय (बरेली) ने इस आशय का एक विज्ञापन छपवाया था—"मौजा सलेमपुर, डाकखाना कनवार, जिला फतहपुर के मुन्शी देवीप्रसाद अपनी बाल-विधवा कन्या का विवाह करना चाहते हैं।" प्रेमचन्द ने जब यह विज्ञापन पढ़कर उन्हें पत्र लिखा तो उसके उत्तर में शिवरानीजी के पिता मुन्शी देवीप्रसाद ने अपना 'कायस्थ बाल-विधवा उद्धारक' नामक एक ट्रैक्ट उनके पास भेज दिया। यह ट्रैक्ट मुन्शीजी

ने सन् 1905 में छपवाया था। शिवरानीजी विवाह के 3 मास बाद ही विधवा हो गई थीं। न तो आप पति के घर गई थीं और न आपने पति का मुँह ही देखा था। प्रेमचन्दजी ने उस ट्रैक्ट को पढ़कर मुन्शी देवीप्रसाद से पत्र-व्यवहार किया था। प्रेमचन्द्रजी से शिवरानीजी का विवाह सन् 1906 की शिवरात्रि को हुआ था।

विवाह के समय शिवरानीजी विशेष शिक्षित नहीं थी। आप केवल थोड़ी-सी हिन्दी जानती थीं। प्रेमचन्दजी के सम्पर्क से आपमें आगे अध्ययन करने की जो भावना जगी थी, उसीने आपको बाद में चलकर हिन्दी की उत्कृष्ट कहानी-लेखिका बना दिया। आपकी पहली कहानी 'साहस' शीर्षक से सितम्बर सन् 1927 के 'चाँद' में प्रकाशित हुई थी। आगे चलकर तो आपकी लेखनी में इतना निखार आया कि जहाँ आपने 'प्रेमचन्द : घर में' नाम से प्रेमचन्द की संस्मरणात्मक जीवनी लिखी वहाँ 'हंस' के सम्पादन में भी अपना अनन्य सहयोग दिया। आपने लेखन में जहाँ प्रेमचन्द-जी से प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की वहाँ स्वाधीनता-आन्दोलन मे भाग लेने में भी आप पीछे नही रहीं।

शिवरानीजी ने मुख्यतः कहानियाँ ही लिखी थीं। आपकी कहानियों का परिवेश सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक था। पारिवारिक जीवन की अनेक छोटी-मोटी समस्याओं का चित्रण करने में आपको जो सफलता मिली थी वह आपकी दूसरी कहानियों में भी देखी जा सकती है। आपकी सामाजिक कहानियों में दहेज-प्रथा, बहु-विवाह, विधवा-विवाह, बाल-विवाह तथा वेश्या-जीवन की अनेक समस्याओं पर खुलकर विचार किया गया है। आपकी राजनीतिक कहानियों में जहाँ पुलिस द्वारा किए जाने वाले निर्मम अत्याचारों का भण्डाफोड़ किया गया है वहाँ हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य तथा किसान-जमींदार-संघर्ष का भी उत्कृष्ट चित्रण देखने को मिलता है।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'प्रेमचन्द : घर में' नामक संस्मरण-ग्रन्थ के अतिरिक्त 'नारी हृदय' तथा 'कौमुदी' नामक कहानी-संकलन उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपकी अनेक रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आपका निधन 5 दिसम्बर सन् 1976 को प्रयाग में 87 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री शिवसेवक तिवारी

श्री तिवारी का जन्म उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर से 85 मील पश्चिम की ओर अकोढ़ी नामक ग्राम में हुआ था। अपने पिता पंडित दुर्गाप्रसाद तथा स्वामी संकटाप्रसाद नामक एक सन्त के सत्संग के कारण आपको संस्कृत-साहित्य पढ़ने का सुयोग शैशवावस्था से ही प्राप्त हो गया था। सन्त संकटाप्रसाद की नेत्र-ज्योति क्योंकि मन्द पड़ गई थी इसलिए वे संस्कृत के ग्रन्थों को बालक शिवसेवक द्वारा पढ़वाकर सुना करते थे। इन्हीं संस्कारों के कारण आप संस्कृत-साहित्य में रुचि लेने लगे थे।

जब आप किशोर ही थे कि आपका सम्पर्क महामना मदनमोहन मालवीय से हो गया। मालवीयजी ने आपको इन्दौर के महाराजा के यहाँ हिन्दी पढ़ाने के लिए भेज दिया। इन्दौर राज्य के तत्कालीन नरेश के सचिव सर सिरेमल बापना ने आपकी कर्मठता को भाँपकर आपको अपने समस्त राज्य में हिन्दी के प्रचार का कार्य सौंप दिया। उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क राज्य के एक मराठी-भाषी कर्मचारी सरदार माधव विनायक किबे से हुआ। आपके इस सम्पर्क से सरदार किबे

और उनकी सहधर्मिणी कमलाबाई किबे के मन में हिन्दी के प्रति अनन्य अनुराग जगा और वे हिन्दी के पठन-पाठन में रुचि लेने लगे। इस बीच इन महानुभावों ने मिलकर इन्दौर में 'मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति' नामक एक संस्था की स्थापना करके हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाना प्रारम्भ किया।

इसके बाद सन् 1918 में एक बार श्री तिवारी को किसी काम से अहमदाबाद जाना पड़ा; जहाँ पर आपने महात्मा गान्धी से भी भेंट की। आपने वहाँ हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीयता के प्रचार की योजना महात्माजी को समझाई और इन्दौर में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का अधिवेशन करने की बात भी उनसे की। गान्धीजी ने तिवारीजी की पीठ थपथपाते हुए कहा—"विचार तो बहुत बढ़िया है, लेकिन काम कैसे शुरू करोगे?" वहाँ से लौटकर तिवारीजी ने अपनी सारी बातें सरदार किबे तथा डॉ० सरजूप्रसाद तिवारी आदि सभी मित्रों को सुनाईं। सबने आपकी योजना से सहमति प्रकट की और इन्दौर में सम्मेलन का अधिवेशन बुलाया गया। इसकी अध्यक्षता महात्मा गान्धी ने की थी। यह सम्मेलन का आठवाँ अधिवेशन था। बाद में सन् 1935 में सम्मेलन का एक और अधिवेशन इन्दौर में ही महात्मा गान्धी की अध्यक्षता में हुआ। इन दोनों अधिवेशनों के मूल प्रेरक श्री तिवारीजी ही थे।

जिन दिनों तिवारीजी ने 'मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति' के माध्यम से वहाँ हिन्दी-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया था उन दिनों आपके सहयोगियों में सर्वश्री गिरिधर शर्मा नवरत्न, सम्पूर्णानन्द, ठाकुर राणासिंह, बनारसीदास चतुर्वेदी और बाबू गोपालचन्द्र मुखर्जी आदि प्रमुख थे। समिति के वर्तमान भवन की आधारशिला 30 मार्च सन् 1918 को महात्मा गान्धी के करकमलों द्वारा रखी गई थी। श्री तिवारीजी के बड़े भाई अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी के सम्पादन में 'वीणा' नामक पत्रिका भी प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई, जो अब बराबर निकल रही है। तिवारीजी ने साहित्य और समाज-सेवा के क्षेत्र में इन्दौर नगर की जो सेवा की है वह अविस्मरणीय है। आप एक अच्छे संगठक होने के साथ-साथ सहृदय कवि भी थे।

आपका निधन 89 वर्ष की आयु में 15 अक्तूबर सन् 1977 को कानपुर में हुआ था।

श्री शिवाधार पाण्डेय

श्री पाण्डेयजी का जन्म 9 फरवरी सन् 1888 को उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर नामक नगर में हुआ था। आप बचपन से ही बहुत कुशाग्र बुद्धि के थे। आपने सन् 1905 में कानपुर के क्राइस्ट चर्च कालेज से प्रथम श्रेणी में बी० ए० किया था। इसके उपरान्त आप सन् 1907 में प्रयाग विश्वविद्यालय के 'म्योर सैण्ट्रल कालेज' से आपने प्रथम श्रेणी में एम० ए० तथा सन् 1908 में एल-एल बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आपने सन् 1908 से सन् 1910 तक प्रयाग में वकालत भी की थी, किन्तु नित्य-प्रति झूठ बोलने का कार्य आपको अच्छा नहीं लगा और आप उससे उपरत हो गए।

इसके उपरान्त आपने महामना पंडित मदनमोहन मालवीय की प्रेरणा पर पत्रकारिता को अपना लिया और 'लीडर' में उप-सम्पादक हो गए। 'लीडर' में कार्य करते हुए भी आप मालवीयजी द्वारा प्रकाशित हिन्दी-पत्र 'अभ्युदय' के सम्पादन में भी अपना सहयोग देते रहे। सन् 1922 में म्योर सेण्ट्रल कालेज, प्रयाग में अँग्रेजी के प्रवक्ता हो गए और सन् 1922 में आपकी सेवाएँ 'प्रयाग विश्व-विद्यालय' ने प्राप्त कर लीं। क्योंकि 'म्योर सैण्ट्रल कालेज' सरकारी था इसलिए वहाँ से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त भी आपको पेंशन मिलती रही। सन् 1943 में आप 'प्रयाग विश्वविद्यालय' के अँग्रेजी विभाग के अध्यक्ष हो गए और सन् 1945 में आपने इस पद से अवकाश ग्रहण किया।

विश्वविद्यालय से विश्राम ग्रहण करने के उपरान्त आप पूर्णतः साहित्य तथा समाज की सेवा में संलग्न हो गए। समीक्षा के क्षेत्र में आपकी बहुत गति थी। आपने छायावादी काव्य के अग्रणी कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के समर्थन में अँग्रेजी में अनेक लेख लिखे। आपने कविताएँ भी लिखी थीं,

भी 'समर्पण' और 'पदार्पण' नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता के क्षेत्र में आपको उतनी ख्याति नहीं मिली, जितना कि समीक्षा के क्षेत्र में आपका 'वर्चस्व' बढ़ा। छायावादी काव्य के प्रारम्भिक समीक्षकों में आपका प्रमुख स्थान रहा है। श्री पन्तजी ने अपनी षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर लिखे गए अपने संस्मरणों में श्री पाण्डेयजी का उल्लेख भी किया है।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'पदार्पण' (1915), के अतिरिक्त 'रस वल्लरी' (1917), 'शंखनाद' (1918), "पदावली' (दो भाग) (1918), 'वीर विक्रमादित्य' (1944), 'व्रजगुप्त' (1944), 'जवाहर माया' (1955), 'महाकुम्भ' (1955), 'चुनाव चर्चा' (1961), 'कैलाश यात्रा'(1961) तथा 'वनमाला'(1961) आदि उल्लेखनीय हैं। आपने 'चेतना' नामक एक मासिक पत्र भी सन् 1947 से सन् 1951 तक सम्पादित किया था। आपने अँग्रेजी में भी कई पुस्तकें लिखी थीं।

साहित्य-सेवा और अध्यापन-क्षेत्र से हट जाने के उपरान्त आपने श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के सम्पर्क में आकर राजनीति के क्षेत्र में भी कार्यारम्भ किया और आप प्रयाग के जिला जनसंघ के अध्यक्ष भी रहे थे। इस सन्दर्भ में आपने दो बार जेल-यात्राएँ भी की थीं। आपने एक बार भारत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के विरुद्ध लोकसभा का चुनाव भी लड़ा था, जिसमें आप पराजित तो हुए ही, किन्तु जमानत की राशि अवश्य बचा ली थी।

आप अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अँग्रेजी विद्वान्, हिन्दी-संस्कृत के मर्मज्ञ कवि, समीक्षक एवं पत्रकार थे।

आपका निधन 10 फरवरी सन् 1974 को हुआ था।

श्री शिवेन्द्रकुमार 'परिवर्तन'

श्री परिवर्तनजी का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ नगर में 19 अगस्त सन् 1919 को हुआ था। आपके पिता अध्यापक थे और असमय में ही उनका देहावसान हो गया था। आपकी शिक्षा अत्यन्त साधारण ही हुई थी और निजी स्वाध्याय के बल पर आपने अपनी योग्यता को बढ़ाया था।

एक उत्कृष्ट कवि, लेखक और सम्पादक के रूप में आपने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया था और आपकी पहली रचना सन् 1939 में 'माधुरी' में प्रकाशित हुई थी। आपने अपने कवि-जीवन का प्रारम्भ पहले-पहल कवित्त तथा सवैया की परिपाटी की रचनाएँ करके किया था, किन्तु बाद में आपने छायावादी काव्य-धारा से प्रभावित होकर गीतात्मक रचनाएँ लिखी थीं।
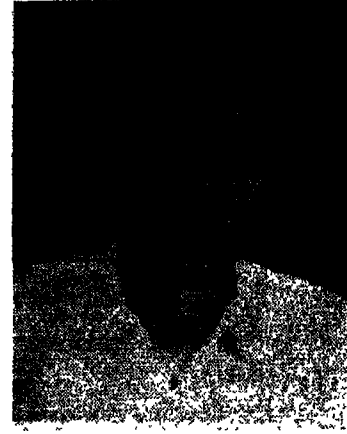
आपकी ऐसी रचनाओं का संकलन 'झिलमिलाती रेणु' नाम से सन् 1956 में प्रकाशित हुआ था। आपने सन् 1974 में गाजियाबाद से 'ध्वजरोही' नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन भी किया था।

आपका निधन 7 अगस्त सन् 1979 को हुआ था।

श्री शुकदेवबिहारी मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म सन् 1879 में उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद के इटौंजा नामक ग्राम में हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात समीक्षक श्री श्यामबिहारी मिश्र के छोटे भाई थे। आपके पिता पंडित बालदत्त मिश्र भी अच्छे कवि थे। उनका आदिम स्थान यद्यपि भगवन्तनगर (हरदोई) था, परन्तु अपने चाचा के 'उत्तराधिकारी' होने के कारण वे इटौंजा चले गए थे और बाद में लखनऊ में रहने लगे थे। श्री मिश्रजी की माताजी अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं और वे नित्य प्रातःकाल 'कवितावली' तथा 'रामायण' के विभिन्न छन्दों का पाठ किया करती थीं इसी कारण उनकी सन्तान में भी कविता के प्रति सहज रुचि जागृत हो गई थी। श्री

मिश्रजी ने सन् 1888 तक अपने ग्राम की पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करके लखनऊ में अँग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। आपने एफ० ए० तक की सभी परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करके छात्र-वृत्तियाँ प्राप्त की थीं और बाद में सन् 1900 में बी० ए० किया था। बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने सन् 1901 में वकालत की परीक्षा पास करके अगले ही वर्ष से लखनऊ में वकालत प्रारम्भ कर दी थी। फिर आप सरकारी सेवा में चले गए और मुन्सिफ-जैसे अनेक प्रतिष्ठित पदों पर रहकर आपने सफलतापूर्वक कार्य किया था। बाद में आप कुछ दिन भरतपुर राज्य में दीवान भी रहे थे।

सन् 1894 से आप हिन्दी में कविता भी लिखने लगे थे और 1898 से आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता पंडित श्याम-बिहारी मिश्र के साथ मिलकर लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपको सन् 1927 में ब्रिटिश शासन में 'रायबहादुर' की सम्मानोपाधि मिली थी और सन् 1930 में यूरोप भी गए थे। प्रयाग तथा लखनऊ के विश्वविद्यालयों से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था और सन् 1930 में आपने पटना विश्व-विद्यालय की 'रामदीनसिंह रीडरशिप' व्याख्यानमाला के अन्तर्गत 'भारतीय इतिहास पर हिन्दी का प्रभाव' विषयक कुछ भाषण भी दिये थे। ये भाषण पुस्तक रूप में भी प्रका-शित हो चुके हैं। इनका सबसे पहला ग्रन्थ 'लव-कुश-चरित्र' पद्य में है, जो सन् 1898 में लिखा गया था। इसके बाद ही गद्य-रचना में आप 'मिश्रबन्धु' नाम से उतरे थे।

'मिश्रबन्धु' नाम से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें 'उपवन', 'चन्द्रगुप्त मौर्य', 'पुष्यमित्र', 'विक्रमादित्य', 'चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य', 'वीरमणि' और 'स्वतन्त्र भारत' उपन्यास हैं। इन सब उपन्यासों के कथानक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। मिश्रबन्धुओं ने ही हिन्दी में कदाचित् पहली बार उपन्यासों के लिए ऐतिहासिक कथानक चुने थे। इनसे पूर्व प्रायः सामाजिक उपन्यास ही लिखे जाते थे। आपकी अन्य रचनाओं में 'भारत-विनय', 'बूँदी वारीश', 'मदन दहन' तथा 'रघु सम्भव' उल्लेखनीय हैं। 'हिन्दी नवरत्न', 'व्यय', 'रूस का इतिहास', 'जापान का इतिहास' तथा 'नेत्रोन्मीलन' के अतिरिक्त आपकी विशेष ख्याति 'मिश्रबन्धु विनोद' नामक ग्रन्थ के कारण हुई है, जो चार भागों में प्रकाशित हुआ है।

'मिश्रबन्धुओं' के साहित्य-क्षेत्र में अवतरित होने से पूर्व विस्तृत साहित्यिक समीक्षाएँ लिखने की पद्धति कम ही थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' में पुस्तकों की जो समीक्षाएँ प्रकाशित किया करते थे वे केवल 'परिचय' मात्र ही होती थीं। गम्भीर समीक्षा की दिशा में मिश्रबन्धुओं के 'हिन्दी नवरत्न' नामक ग्रन्थ का नाम इसलिए महत्त्व रखता है कि सर्वप्रथम इस ग्रन्थ में ही गम्भीर समीक्षात्मक पद्धति के दर्शन होते हैं। 'मिश्रबन्धु विनोद' का महत्त्व इसलिए अधिक है कि इसमें सर्वप्रथम 4000 कवियों और 10,000 ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त 'भूषण ग्रन्थावली' भी एक ऐसा ग्रन्थ है जो मिश्रबन्धुओं के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में भूषण के 4 ग्रन्थों की टीका और उनका ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसे टीका-ग्रन्थ कहा जा सकता है।

आपका निधन सन् 1951 में हुआ था।

श्रीमती शैलबाला

श्रीमती शैलबाला का जन्म 23 मार्च सन् 1922 को इन्दौर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। काशी विश्वविद्यालय तथा हिन्दू विश्वविद्यालय से क्रमशः बी० ए० तथा एम० ए० करने के उपरान्त आप हैदराबाद (आन्ध्र) के बंशीलाल बालिका विद्यालय में अध्यापिका हो गई थीं। आपके पिता उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे और आपके नाम से पूर्व ही वे इन्दौर में आकर बस गए थे।

आपने 20 वर्ष की आयु से ही कविता लिखना प्रारम्भ

कर दिया था और थोड़े ही दिनों में आप अत्यन्त प्रौढ़ रचनाएँ करने लगी थीं। अपनी रचनाओं में कल्पना, भावना और अनुभूति की त्रिवेणी प्रवाहित होती रहती थी। आपकी रचनाओं का एक संकलन 'सांझ के स्वर' नाम से प्रकाशित हुआ था।

आप जहाँ राजकीय ट्रेनिंग कालेज, हैदराबाद के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा रही थीं वहाँ 'हिन्दी-प्रचार सभा' की परीक्षाओं की संचालिका के रूप में भी आपकी हिन्दी-सेवाएँ स्मरणीय रही हैं। निधन से पूर्व कुछ वर्ष से आपकी नेत्र-ज्योति क्षीण हो गई थी।

आपका निधन 24 अप्रैल सन् 1973 को हुआ था।

पण्डित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल

श्री पालीवालजी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के तनौरा नूरपुर नामक ग्राम में सन् 1895 में हुआ था। आपके हिन्दी-प्रेम का सबसे ज्वलन्त प्रमाण यह है कि आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उच्चतम परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले पहले साहित्यरत्न थे। यह परीक्षा आपने सन् 1917 में इतिहास विषय लेकर दी थी। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1925 में एम० ए० की परीक्षा दी थी। आगे आपका एल-एल० बी० की परीक्षा में शामिल होने का विचार था परन्तु असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आप ऐसा न कर सके और आगरा शहर तथा जिला कांग्रेस कमेटी के सभापति बना दिए गए। आप सन् 1923 से सन् 1926 तक संयुक्त प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल और सन् 1928 से सन् 1931 तक आगरा जिला बोर्ड के भी सदस्य रहे और इसके बाद अनेक वर्ष तक प्रान्तीय विधान-सभा तथा विधान-निर्मात्री-परिषद् के सदस्य होने के साथ-साथ आप उत्तर प्रदेश के मन्त्रिमंडल के सम्मानित सदस्य भी रहे थे।

यह एक संयोग की ही बात है कि आप राजनीति में चले गए और साहित्य-सृजन की ओर इतना ध्यान न दे सके। वैसे आप मूलतः पत्रकार और साहित्यकार ही थे। आपने जहाँ सन् 1913-14 में 'पालीवाल ब्रह्मोदय' नामक पत्र का सम्पादन किया था वहाँ सन् 1918 से सन् 1920 तक प्रताप प्रेस, कानपुर से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'प्रभा' का सम्पादन 'देवदत्त शर्मा' के नाम से किया था। यह नाम आपने इसलिए बदला था कि उन दिनों ब्रिटिश नौकरशाही के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन के सिलसिले में आपको मैनपुरी-षड्यन्त्र केस में फँसाया गया था और आप भूमिगत जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हीं दिनों सन् 1921 से सन् 1923 तक आप दैनिक तथा साप्ताहिक 'प्रताप' के प्रधान सम्पादक भी रहे थे। आप अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे, इसी कारण राजनैतिक पत्रकारिता को ही आपने मुख्य रूप से अपनाया था।

पत्रकारिता के माध्यम से देश की जनता में राष्ट्रीय जागरण करने के उद्देश्य से आपने सन् 1925 में आगरा से 'सैनिक' नामक राष्ट्रीय साप्ताहिक का सम्पादन एवं प्रकाशन किया था और सन् 1937 तक उसे सफलतापूर्वक चलाते रहे। सन् 1935 में सैनिक को दैनिक रूप में प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। आपने राजनीति के क्षेत्र में विभिन्न मोर्चों पर कार्य करते हुए अनेक बार जेल-यात्राएँ भी कीं और अपने साथियों से भी विचार-संघर्ष में डटकर मोर्चा लिया। एक उग्र विचार-धारा के पत्रकार के रूप में आपने हिन्दी-भाषी जनता के सामने एक ज्वलन्त आदर्श

प्रस्तुत किया। आप सन् 1936 में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शिमला-अधिवेशन में आयोजित पत्रकार संघ के अध्यक्ष बनाये गए थे। इसके अतिरिक्त आपने अनेक वर्ष तक अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष के रूप में भी साहित्य का मार्ग-प्रदर्शन किया। आपके कार्यकाल में ही 'ब्रज साहित्य मण्डल' की मासिक पत्रिका 'ब्रज भारती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था।

यह प्रसन्नता की बात है कि राजनीति के शुष्क क्षेत्र में रहते हुए भी आपने अपने लेखक और साहित्यकार को बराबर जीवन्त रखा और समय-समय पर अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओं से साहित्य की समृद्धि करते रहे। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'साम्यवाद' (1920), 'सेवा मार्ग' (1921), 'अमरपुरी' (1926), 'सेवा धर्म और सेवा मार्ग' (1936), 'गीतामृत', 'हमारा स्वाधीनता संग्राम', 'किसान राज्य-पंचवर्षीय योजना' तथा 'गान्धीवाद और मार्क्सवाद' (1946) आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1968 में हुआ था।

पण्डित श्रीकृष्ण शुक्ल

श्री शुक्लजी का जन्म काशी में सन् 1885 में हुआ था। आपने आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के सहायक के रूप में लेखन-कार्य किया था। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'हिन्दी पर्यायवाची कोश', 'हिन्दी संजीवनी', 'हिन्दी साहित्य का शालोपयोगी इतिहास', 'घाघ और भडरी की कहावतें', 'वृन्द सतसई की टीका', 'काव्य प्रवेशिका', 'लोकोक्ति-सार संग्रह', 'भगवती', 'बाल कथा माला', 'तुलसी-कृत रामचरित मानस की टीका', 'कर्मवीर राकेश' और 'चिराग तले अँधेरा' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन सन् 1976 में हुआ था।
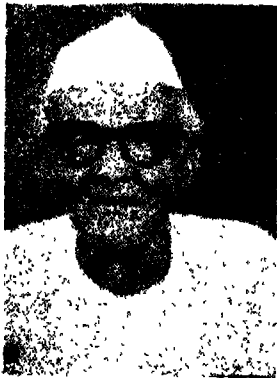
पण्डित श्रीगोपाल श्रोत्रिय

श्री श्रोत्रियजी का जन्म 29 जून सन् 1887 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के रुदायन नामक ग्राम में हुआ था। आप अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थे और आपने हिन्दी तथा उर्दू की मिडिल परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण की थीं। इसके बाद पटवारगिरी की परीक्षा देकर आप कुछ दिन तक मथुरा में पटवारी रहे, किन्तु माँ के स्नेह के कारण आप अधिक दिन तक उनसे दूर न रह सके और पटवारगिरी की नौकरी छोड़कर गाँव में चले आए और वहाँ के ही प्राइमरी स्कूल में सहायक अध्यापक हो गए। फिर धीरे-धीरे अनेक स्थानों पर कार्य करने के बाद आप 'प्रधानाध्यापक' के पद तक पहुँच गए।
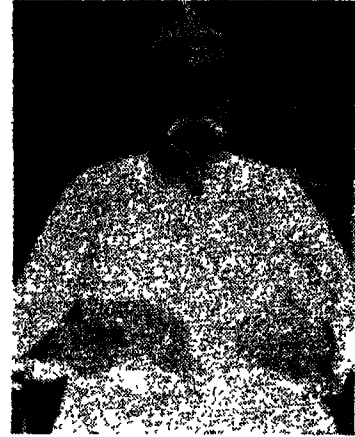
आप एक सफल अध्यापक होने के साथ-साथ कुशल कवि भी थे। सन् 1932 में आपके द्वारा विचरित खण्डकाव्य 'सती सावित्री' का प्रकाशन 'हिन्दी प्रचार सभा मथुरा' द्वारा सम्पन्न हुआ था। आपने अनेक कविताओं, बारहमासे, भजनों और लोकगीतों की रचना भी की थी, जो अभी तक अप्रकाशित हैं।

आपका निधन 21 जुलाई सन् 1964 को हुआ था।

श्री श्रीचन्द्र राय

श्री रायजी का जन्म राजस्थान के डीडवाना (नागौर) नामक स्थान में 19 मार्च सन् 1906 को हुआ था। आप हिन्दी तथा राजस्थानी भाषा के अत्यन्त सफल तथा सिद्ध साहित्यकार थे और 'राजस्थान पीठ' बीकानेर के सचिव

रहे थे। आप एक कुशल लेखक तथा संवेदनशील नाटककार के रूप में विख्यात थे। आपकी 'मढ़ थापण बीकानेर' (एकांकी, 1975) तथा 'मिठाई री पूतली' (कहानी, 1919) नामक राजस्थानी की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर की ओर से 'राजस्थान के कहानीकार' नामक जो संकलन-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है

उसमें आपकी लघु कथा-लेखन-प्रणाली के सम्बन्ध में जो विवरण प्रस्तुत किया गया है उससे आपकी लेखन-क्षमता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार "इस समय के कहानीकारों की कहानियों में मूलत: सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण विशेष मिलता है। श्रीचन्द्र राय चुने हुए थोड़े से शब्दों के माध्यम से बहुत-कुछ भाव अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखते थे। श्री राय की कहानियाँ अधिक छोटी होने पर भी मनोविश्लेषण से परिपूर्ण होती थीं।" आपके राजस्थानी तथा हिन्दी में लिखित रचनाओं के 5 संकलन अभी अप्रकाशित हैं।

आपका निधन 3 जनवरी सन् 1977 को हुआ था।

परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की थी।

प्रारम्भ में कुछ वर्षों तक अपने ग्राम के विद्यालय में अध्यापन-कार्य करने के उपरान्त आपके मानस में पत्रकारिता करने का

चाव बढ़ा और सन् 1939 में आपने श्री सत्यदेव विद्यालंकार की देख-रेख में पत्रकारिता का प्रारम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। नवम्बर सन् 1942 में, जब नई दिल्ली से दैनिक 'विश्वमित्र' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तब आपने उसमें उपसम्पादक और मुख्य-उपसम्पादक के रूप में कार्य किया। 14 जनवरी सन् 1947 से आप दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र 'नवभारत टाइम्स' के उपसम्पादक और सन् 1957 से मुख्य उपसम्पादक के पद पर कार्य-संलग्न रहे थे।

हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर आपके अनेक लेख प्रकाशित हुए थे। 18 अक्तूबर सन् 1977 को आप 'नवभारत टाइम्स' से सेवा-निवृत्त हुए थे।

आपका निधन 19 दिसम्बर सन् 1978 को हुआ था।

श्री श्रीदत्त भारद्वाज

हिन्दी के वरिष्ठ पत्रकार श्री भारद्वाजजी का जन्म हरियाणा राज्य के हिसार शहर से 5 मील दूर पूर्व में स्थित 'सातरोद खुर्द' नामक ग्राम में 18 अक्तूबर सन् 1917 को हुआ था। आपके पिता पं० रामनारायण शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। बिरला कालेज पिलानी से आपने इण्टर परीक्षा उत्तीर्ण की थी। कालान्तर में हिन्दी प्रभाकर की

शहीद श्रीदेव 'सुमन'

शहीद श्रीदेव 'सुमन' का जन्म 12 मई सन् 1915 को उत्तर प्रदेश के टिहरी-गढ़वाल जिले की पट्टी बमुण्ड के ग्राम जौल में हुआ था। आपके पिता श्री हरिराम बडोनी अपने क्षेत्र के अच्छे लोकप्रिय वैद्य थे। सन् 1931 में टिहरी से हिन्दी की मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त 'सुमन' जी नमक-सत्याग्रह के दिनों में सत्याग्रही जत्थों की भीड़ को

देखने को कौतूहल में ही देहरादून में गिरफ्तार कर लिए गये और 14-15 दिन जेल में रखकर तथा कुछ बेंतों की सजा देकर आपको छोड़ दिया गया। सन् 1931 में आपने अध्यापक के रूप में अपनी आजीविका प्रारम्भ की, लेकिन फिर आप पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी परीक्षा देने की दृष्टि से लाहौर चले गए। कुछ समय बाद आप अपने बड़े भाई श्री परशुराम बडोनी के पास दिल्ली आ गए और आपका अधिकांश समय यहाँ ही व्यतीत हुआ।

दिल्ली में रहते हुए आपने जहाँ पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी-रत्न, हिन्दी-भूषण और हिन्दी प्रभाकर परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं, वहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की 'साहित्य-रत्न' परीक्षा भी योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण की। उन्हीं दिनों आपने दिल्ली में 'देवनागरी महाविद्यालय' की स्थापना करके यहाँ के युवक-युवतियों को हिन्दी के प्रति उन्मुख किया। सन् 1937 में जहाँ आपकी कविताओं का एक संकलन 'सुमन सौरभ' नाम से प्रकाशित हुआ था वहाँ देहरादून के अध्यापन-काल में भी आपने 'हिन्दी पत्र बोध' नामक एक छात्रोपयोगी पुस्तक प्रकाशित की थी।

दिल्ली में रहते हुए आपका झुकाव पत्रकारिता की ओर हो गया और आपने कुछ दिन तक भाई परमानन्द के संरक्षण में प्रकाशित होने वाले 'साप्ताहिक हिन्दू' में कार्य किया। इसके बाद आप जगद्गुरु शंकराचार्य के 'धर्म राज्य' पत्र में चले गए। लगभग इन्हीं दिनों सितम्बर सन् 1937 में जब शिमला में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन श्री बाबूराव विष्णु पराडकर की अध्यक्षता में हुआ तब आपने वहाँ की स्वागत-समिति के कार्यालयाध्यक्ष की हैसियत से सफलतापूर्वक कार्य किया। आपकी लगन, सूझ-बूझ तथा तत्परता की प्रशंसा श्री पराडकरजी ने भी की थी। सम्मेलन के इस अधिवेशन के उपरान्त आप वर्धा चले गए और वहाँ पर राष्ट्रभाषा-प्रचार का कार्य करने लगे। अपने इस कार्य-काल में आपने आचार्य काका कालेलकर का स्नेह भी अर्जित किया था। कुछ महीने बाद आप प्रयाग चले गए और वहाँ पर प्रख्यात पत्रकार श्री लक्ष्मीधर बाजपेयी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'राष्ट्रमत' साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक हो गए।

इसके उपरान्त आप गढ़वाल प्रजा मण्डल की सक्रिय राजनीति में ऐसे पड़े कि फिर राजनीति के ही हो गए। आपने 'हिमालय सेवा संघ' नामक संस्था के माध्यम से पर्वतीय जनता की जो अकथनीय सेवा की, उसके कारण आपकी लोकप्रियता दिनानुदिन बढ़ने लगी। इस सम्बन्ध में आपने 'देशी राज्य प्रजा परिषद्' के तत्कालीन सूत्रधार श्री जयनारायण व्यास से भी सम्पर्क किया और उनके निर्देशन में सुमनजी ने सन् 1939 में 'टिहरी राज्य प्रजा मण्डल' की स्थापना करके अपने क्षेत्र की जनता का सही मार्ग-प्रदर्शन किया। जिस समय आपने इस दिशा में कदम बढ़ाया था तब आपकी आयु केवल 24 वर्ष थी। आपकी कर्म-तत्परता और ध्येय-निष्ठा की प्रशंसा उन दिनों 'देशी राज्य प्रजा परिषद्' के तत्कालीन अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू तथा मंत्री श्री जयनारायण व्यास ने मुक्तकण्ठ से की थी।

आपको जब सन् 1941 में टिहरी-गढ़वाल राज्य के तत्कालीन शासन ने राज्य से निर्वासित कर दिया तो उसकी प्रतिक्रिया भी आपके मानस पर प्रबल रूप से हुई और आपने यह घोषणा की—"हमें यदि मरना ही है तो अपने सिद्धान्तों और विश्वासों की घोषणा करते हुए मरने में ही श्रेय है।" आपकी यह घोषणा वास्तव में उस समय सत्य सिद्ध होकर रही जब सन् 1942 के आन्दोलन के सिलसिले में आप गिरफ्तार करके आगरा जेल में बन्द कर दिए गए। 19 नवम्बर सन् 1943 को जब आप जेल से रिहा किये गए तब आपके अन्य साथी तो अपने थके-माँदे शरीरों को विश्राम देने में लग गए, लेकिन अपनी अन्तरात्मा की पुकार पर आपने फिर 'टिहरी गढ़वाल राज्य' के अन्दर जाने का निश्चय किया। फलस्वरूप आप गिरफ्तार कर लिए गए। इस गिरफ्तारी के विरोध में आपने जो अनशन किया था वह इतना लम्बा चला कि 25 जुलाई सन् 1944 को 84वें दिन आपने भगवान् के चरणों में शरण ले ली। इस अक्षय और अमर बलिदान के पीछे आपकी जो आस्था तथा लगन

थी उसके कारण आपको आज 'गढ़वाल का मेक्स्विनी' कहा जाता है।

आपके बलिदान के उपरान्त यद्यपि देशी राज्य प्रजा परिषद् के मन्त्री श्री जयनारायण व्यास के प्रयास से इसके लिए जाँच समिति भी बनाई गई थी, लेकिन उसका कोई सुपरिणाम नहीं निकला। आपके प्रति अपनी निष्ठा और सम्मान प्रदर्शित करने के लिए जहाँ प्रख्यात पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने 'शहीद श्रीदेव सुमन' पुस्तिका प्रकाशित की थी वहाँ श्री भक्तदर्शन ने 'सुमनांजलि' और 'सुमन स्मृति ग्रन्थ' का प्रकाशन भी किया था। इस स्मृति-ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन श्री सुन्दरलाल बहुगुणा के प्रयत्न से सन् 1976 में भी हुआ है।

श्री श्रीधर पाठक

श्री पाठकजी का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा नगर के समीपवर्ती ग्राम जोंधरी में सन् 1830 में हुआ था। आपके पिता श्री लीलाधर पाठक बड़े सन्तोषी और सात्विक प्रकृति के सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पिताजी के सगे भाई श्री धरणीधर शास्त्री संस्कृत साहित्य के अद्वितीय विद्वान् थे। उन्होंने नदिया (बंगाल) में रहकर संस्कृत वाङ्मय का गहन अध्ययन किया था। पाठकजी ने जहाँ ब्रजभाषा मे सुन्दर कविताएँ लिखी थीं वहाँ आपको खड़ी बोली कविता का उन्नायक भी कहा जाता है। प्रकृति-वर्णन लिखने में तो पाठकजी सर्वथा अप्रतिम थे। आपकी 'काश्मीर सुषमा' नामक रचना अकेली ही ऐसी है जिससे आपकी प्रकृति-पर्यालोचन की क्षमता का परिचय सहज ही मिल जाता है। आपकी ऐसी वर्णन-क्षमता इन पंक्तियों में देखी जा सकती है :

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेष छनिक छवि छिन-छिन धारति॥
विमल अम्बु-सर-मुकरन महँ मुख-बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन - मन वारति॥

पाठकजी ने यद्यपि किसी महाकाव्य की रचना नहीं की थी, फिर भी स्फुट विषयों को आधार बनाकर आपने जो रचनाएँ लिखी थीं वे सर्वथा बेजोड़ हैं। आपकी 'नौमि भारतम्', 'भारत-श्री', 'भारत-प्रशंसा', 'हिन्द-बन्दना', 'आर्य जाति', 'आर्य सुन्दरी', 'सुगृहिणी', 'सती सीता' और 'भारतोत्थान' आदि ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जिनमें आपके काव्य की विशेषता उन्मुक्त भाव से प्रकट होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पाठकजी को 'स्वच्छन्दतावाद' का प्रवर्तक इसलिए माना है कि आपकी रचनाओं में पुरानी परम्परा से हटकर नवीन छन्द, नए प्रतीक तथा नई भाव-व्यंजना प्रचुर परिमाण में दृष्टिगत होती है। पुराने 'लावनी' छन्द का प्रयोग सर्वप्रथम पाठकजी ने ही अपनी रचनाओं में किया था। जिन रहस्यमयी भावनाओं का प्रवाह आगे चलकर हिन्दी-काव्य में 'छायावाद' का सार्थवाह बना उसका प्रारूप सर्वप्रथम पाठकजी ने ही अपनी रचनाओं मे प्रस्तुत किया था। यह पद देखिए :

कहीं पै कोई स्वर्गीय बाला,
सुमंजु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की-सी कैसी,
सुरीली गुंजार आ रही है॥
कोई पुरन्दर की किंकरी है,
कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोग-तप्ता-सी भोग-मुक्ता,
हृदय के उद्गार गा रही है॥

पाठकजी ने पुरानी परम्परा के छन्द तथा भाषा के बन्धनों की तनिक भी परवाह न करके हिन्दी-कविता को जो जामा पहनाया वह आपकी सर्वथा अनूठी देन कही जा सकती है। आपने 'लावनी' के अतिरिक्त चौपाई, रोला, छप्पय, कवित्त तथा सवैया आदि अनेक प्राचीन छन्दों का प्रयोग भी अपनी रचनाओं में किया था।

आपने जहाँ 'काश्मीर-सुषमा', 'जगत् सचाई सार',

'भारत-गीत', 'मनोविनोद', 'घन विनय', 'गुनवन्त हेमन्त', 'घनाष्टक', 'देहरादून', 'गोखले गुणाष्टक', 'गोखले-प्रशस्ति', 'गोपिका गीत', 'स्वर्गीय वीणा' और 'तिलस्माती सुन्दरी' आदि मौलिक कृतियों की रचना की थी वहाँ आपने गोल्ड स्मिथ के काव्यों का अनुवाद भी किया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'एकान्तवासी योगी', 'श्रान्त पथिक' और 'ऊजड़ ग्राम' प्रमुख हैं। आपने संस्कृत के महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद भी सुन्दर तथा सरस भाषा में सवैया छन्द में 'ऋतु-संहार' नाम से किया था। आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लखनऊ में सम्पन्न हुए आठवें अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी।

आपका निधन 13 सितम्बर सन् 1928 को हुआ था।

श्री श्रीनन्दन शाह

श्री शाह का जन्म सन् 1897 में काशी के एक अत्यन्त सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। आप देश-विभूति डॉ० भगवानदास के बड़े भाई बाबू गोविन्ददास शाह के तृतीय पुत्र थे। आपसे बड़े दो भाइयों में बाबू श्रीविलास और बाबू श्रीनिवासजी थे और आपसे छोटे आगरा विश्वविद्यालय के भूत-पूर्व कुलपति श्री श्रीरंजन थे। आपके वंश के विषय में ऐसी जनश्रुति है कि भग-वती लक्ष्मी की उस पर ऐसी कृपा थी कि सिक्कों को अनाज की तरह तोल-तोलकर धूप में सुखाया जाता था। अब इस परिवार की यह विशेषता है कि इसके प्रायः सभी सदस्य 'सरस्वती' को तोलने में अपना सानी नहीं रखते। श्री श्रीनन्दन शाह भी इस कला में पीछे क्यों रहते?

आप जहाँ अँग्रेजी के उद्भट विद्वान् थे वहाँ संस्कृत और हिन्दी में भी आपकी पर्याप्त गति थी। अपने निरन्तर स्वा-ध्याय तथा चिन्तन के बल पर आपने जहाँ संस्कृत वाङ्मय का गहन अध्ययन किया था वहाँ महाकवि कालिदास के 'रघुवंश महाकाव्य' के नवम सर्ग में आए दशरथ के मृगया-वर्णन से ऐसी प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की कि उससे प्रभावित होकर आपने 'मृगया' (शिकार) पर एक ऐसा शोधपूर्ण ग्रन्थ ही रच डाला कि उसे देखकर आपकी अपूर्व मेधा तथा प्रकाण्ड प्रतिभा का परिचय मिलता है।

हिन्दी की इस महत्त्वपूर्ण कृति का प्रकाशन आपके निधन के उपरान्त आपकी विदुषी सहधर्मिणी ने सन् 1977 में प्रकाशित करके वास्तव में भारतीय वाङ्मय का बड़ा उपकार किया है। इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने आखेट के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डालकर हरिन, श्वान जाति, शूकर, घड़ियाल और मगर, भालू, चीता अर्थात् तेंदुआ तथा शेर आदि कई अध्यायों में मृगया-सम्बन्धी बड़ी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की है।

खेद है कि अद्वितीय मेधा के धनी ऐसे सुलेखक का असामयिक निधन सन् 1961 में हो गया। यदि आप जीवित रहते तो अपनी प्रतिभा से हिन्दी-साहित्य को और भी समृद्ध करते।

श्री श्रीनारायण बुधौलिया

श्री बुधौलिया का जन्म 13 सितम्बर सन् 1952 को उत्तर-प्रदेश के हमीरपुर जनपद के राठ नामक स्थान में हुआ था। आप डॉ० गणेशीलाल बुधौलिया के तृतीय पुत्र थे। आपने राठ से इण्टर तक की शिक्षा प्राप्त करके बी० एस-सी० और एल-एल० बी० की परीक्षाएँ छतरपुर से उत्तीर्ण की थीं। आप 'चेतना परिषद् छतरपुर' के संस्थापक सदस्यों में से एक थे।

आप मूलतः पत्रकार थे और 'नवभारत' (जबलपुर-नागपुर), 'युगधर्म' (जबलपुर), 'जागरण' (झाँसी-कानपुर)

तथा 'दैनिक राही' (सागर) के नियमित संवाददाता होने के साथ-साथ हिन्दी के सुलेखक भी थे। अनेक विषयों से सम्बन्धित आपके लेख हिन्दी की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।
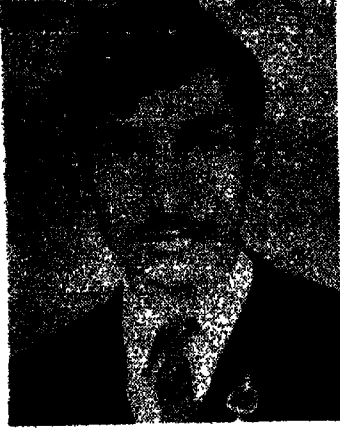
सन् 1974 के प्रारम्भ में आपने राठ में ही वकालत प्रारम्भ की थी, परन्तु 16 सितम्बर सन् 1975 को एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण 23 वर्ष की अल्प वय में ही आपका असामयिक निधन हो गया।

श्री श्रीनिवास अग्रवाल

श्री अग्रवालजी का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जनपद के जलेसर रोड नामक स्थान में सन् 1915 में हुआ था। आपने 'किताब महल' इलाहाबाद के संचालक के रूप में हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह सर्वविदित है। हिन्दी-साहित्य की सभी विधाओं से सम्बन्धित प्रकाशन करके आपने जहाँ हिन्दी के अनेक ख्यातिप्राप्त लेखकों को प्रश्रय दिया था वहाँ बहुत-सी नई प्रतिभाओं को भी प्रकाशित किया था।
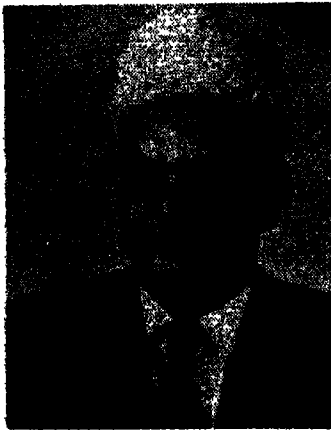
कभी ऐसा भी समय था जबकि राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, भगवतशरण उपाध्याय, रामविलास शर्मा तथा अमरनाथ झा-जैसे धुरन्धर लेखकों की रचनाएँ किताब महल से प्रकाशित हुई थीं। हिन्दी-समीक्षा में 'एक अध्ययन' सिरीज के अन्तर्गत आपने डॉ० रामरतन भटनागर की लगभग 2 दर्जन पुस्तकें प्रकाशित करके एक सर्वथा नया कीर्तिमान स्थापित किया था।

आपका निधन 4 जनवरी सन् 1968 को प्रयाग में हुआ था।

डॉ० श्रीनिवास बत्रा

डॉ० बत्रा का जन्म पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) के चुटियाना (झंग) नामक स्थान में 13 दिसम्बर सन् 1924 को हुआ था। आप हिन्दी तथा उर्दू के मर्मज्ञ विद्वान् थे और आपको 'हिन्दी और फारसी सूफी-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' नामक शोध-प्रबन्ध पर पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी।

आपका यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से सन् 1970 में प्रकाशित हुआ था और इसका विधिवत् विमोचन 27 जून सन् 1971 को केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व शिक्षा राज्य-मन्त्री प्रो० शेरसिंह के कर-कमलों द्वारा हुआ था। इस समारोह की अध्यक्षता पंजाब विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति श्री सूरजभान ने की थी। आपके इस ग्रन्थ पर उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से 500 रुपए का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। आपकी हिन्दी-उर्दू की कविताएँ तथा अनेक शोध-लेख हिन्दी की प्रायः सभी उल्लेखनीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित

होते रहते थे।

आपका देहावसान 13 मार्च सन् 1977 को हुआ था।

श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

श्री सातवलेकरजी का जन्म 19 सितम्बर सन् 1867 को कोल गाँव (महाराष्ट्र) में हुआ था। आपके पिता श्री दामोदर भट्ट संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा उनके निरीक्षण में ही हुई थी और बम्बई के जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्स से आपने कला की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी। एक प्रख्यात चित्रकार के रूप में अपने कर्ममय जीवन का प्रारम्भ करके आपने निजी स्वाध्याय के बल पर वैदिक वाङ्मय का अत्यन्त गहन ज्ञान अर्जित कर लिया था। आपके इस ज्ञान का प्रसाद सर्वप्रथम भारतीय वाङ्मय को आपकी 'वैदिक राष्ट्रीय गीत' नामक पुस्तक से मिला। आपने 'ऋग्वेद' की ऋचाओं का जो अनुवाद किया था उससे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार बहुत आतंकित हुई थी। उसे उसने बम का गोला समझा था। उस अनुवाद की भाषा इस प्रकार थी—"जिसमें हमारे पूर्वजों ने विशेष पराक्रम किये, जिसमें देवों ने असुरों का पराभव किया, वह हमारी मातृभूमि हमें भाग्यशाली करे। यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। हे मातृभूमि, जो हमसे द्वेष करे, हमें दास बनाने की इच्छा करे, उसे तू हमारे हित में नष्ट कर दे।"

जिन दिनों आपने यह रचना की थी तब आप हैदराबाद में चित्रकार के रूप में कार्य करते थे। सातवलेकरजी को राज्य से निर्वासित कर दिया गया और आप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में स्वामी श्रद्धानन्द के पास पहुँच गए। किन्तु वहाँ भी आप ब्रिटिश नौकरशाही की आँखों से ओझल न रहे और 2 वर्ष तक कारावास का दण्ड भोगा। जेल से छूटने पर आप पंजाब चले गए। उन दिनों वहाँ का वातावरण भी देश-भक्ति की भावनाओं से परिपूर्ण था। धीरे-धीरे आपकी घनिष्ठता लाला लाजपतराय से बढ़ी और 'जलियाँवाला बाग' के कांड के उपरान्त पुलिस आपके पीछे पड़ गई। उससे पीछा छुड़ाने के लिए आप औंध (सातारा) चले गए। औंध के महाराजा चित्रकला-प्रेमी थे। इसी कारण आप वहाँ जम गए तथा वहाँ पर 'स्वाध्याय मण्डल' की स्थापना करके उसके द्वारा आपने वैदिक साहित्य के निर्माण तथा प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया। औंध में आपने जहाँ प्रचुर साहित्य का निर्माण किया वहाँ 'वैदिक धर्म' नामक एक मासिक पत्र का प्रारम्भ भी किया था। सन् 1918 से लेकर सन् 1948 तक का आपका 30 वर्ष का समय 'वैदिक साहित्य के निर्माण, संशोधन तथा प्रकाशन' की दृष्टि से आपकी 'घनघोर तपस्या' का काल था।

आपने जहाँ 'वैदिक चिकित्सा', 'वेद में कृषि विद्या', 'वेदों में चर्खा' तथा 'वैदिक सर्प विद्या' नामक ग्रन्थों की रचना की वहाँ 'वेद का स्वयं शिक्षक' तथा 'वेद-परिचय' नामक उपयोगी पुस्तकों का भी निर्माण किया। आपने वेदों के भाष्य-लेखन के साथ-साथ उपनिषदों तथा 'वाल्मीकि रामायण' और 'महाभारत' की टीकाएँ भी की थीं। यद्यपि आपके वेद-विषयक विचार स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं थे, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि वैदिक वाङ्मय के स्वाध्याय की प्रेरणा आपको आर्यसमाज के द्वारा ही प्राप्त हुई थी। आपके वैदिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित अनेक निबन्ध 48 भागों में प्रकाशित हुए हैं। आपकी साहित्य-सम्बन्धी विविध सेवाओं को दृष्टि में रखकर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया था और भारत के राष्ट्रपति ने आपको 'पद्म भूषण' का सम्मान भी प्रदान किया था। आपको राजधानी में एक भव्य अभिनन्दन-ग्रन्थ भी भेंट किया गया था।

आपका निधन 101 वर्ष की आयु में 31 जुलाई सन् 1968 को हुआ था।

श्री श्रीप्रकाश

श्री श्रीप्रकाशजी का जन्म वाराणसी के एक अत्यन्त सम्भ्रान्त वैश्य-परिवार में सन् 1890 में हुआ था। आपके पिता डॉ० भगवानदास विश्व-ख्याति के दार्शनिक और विद्वान् थे। आपकी शिक्षा सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल, वाराणसी, प्रयाग विश्वविद्यालय और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, लन्दन में हुई थी। बैरिस्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप सन् 1914 से सन् 1917 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इतिहास विषय के प्राध्यापक रहने के उपरान्त सर्वप्रथम अँग्रेजी के पत्रकार रहे और ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी की ओर से प्रकाशित अँग्रेजी दैनिक 'टुडे' का भी कुछ दिन सम्पादन किया था। आप 'काशी विद्यापीठ' में अध्यापक भी रहे थे।

राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने के साथ-साथ आप अन्य सामाजिक कार्यों में भी बराबर भाग लेते रहते थे। स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों में आप 4 बार जेल-यात्राएँ करने के अतिरिक्त केन्द्रीय धारा-सभा के भी सक्रिय सदस्य रहे थे। आपने जहाँ विधान-निर्मात्री परिषद् के सदस्य के रूप में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया था वहाँ स्वतन्त्र भारत की प्रथम सरकार में केन्द्रीय मन्त्री के रूप में भी कार्य किया था। आप पाकिस्तान में भारत के उच्चायुक्त रहने के अतिरिक्त असम, मद्रास तथा महाराष्ट्र के राज्यपाल भी रहे थे।

सन् 1962 में भारतीय राजनीति से कार्य-मुक्ति पाने के उपरान्त आपने लेखन-कार्य प्रारम्भ कर दिया था। आपके द्वारा उन दिनों लिखी गई रचनाओं में 'पाकिस्तान के प्रारम्भिक दिन' तथा 'भारतरत्न डॉ० भगवानदास' नामक पुस्तकें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त आपके द्वारा हिन्दी में लिखित अन्य पुस्तकों में 'गृहस्थ गीता', 'भारत के समाज और इतिहास पर स्फुट विचार', 'हमारी आन्तरिक गाथा' तथा 'नागरिक शास्त्र' आदि उल्लेखनीय हैं। आप कुछ दिन तक अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की अधिशासी परिषद् के अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका निधन 23 जून सन् 1971 को हुआ था।

डॉ० श्रीमन्नारायण

श्रीमन्जी का जन्म सन् 1912 में उत्तर प्रदेश के इटावा नगर में हुआ था। आपकी शिक्षा आगरा तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई थी। शिक्षा-समाप्ति के उपरान्त जिस समय आप सेकसरिया कालेज, वर्धा के प्राचार्य बनकर वहाँ गए तब आप अपना नाम 'श्रीमन्नारायण अग्रवाल' लिखा करते थे। वहाँ पहुँचकर आपका गान्धीजी के जीवन तथा सिद्धान्तों से निकट का सम्बन्ध स्थापित हुआ और बाद में आपने अपने नाम के साथ 'अग्रवाल' लगाना छोड़ दिया। आपने गान्धीजी की आर्थिक नीतियों का बड़ी निकटता से अध्ययन किया था। इसीलिए आपने अपने विचारों को अपनी 'गान्धियन प्लैन' नामक अँग्रेजी की अध्ययनपूर्ण पुस्तक में प्रस्तुत किया था।

वर्धा सेकसरिया कालेज की स्थापना गान्धीजी की प्रेरणा पर विभिन्न विषयों की उच्चतम शिक्षा हिन्दी में देने के लिए की गई थी। गान्धीजी के सम्पर्क में आकर श्रीमन्जी ने न केवल उस संस्था को उनके मनोनुकूल संचालित किया बल्कि अपने को भी उन्हीं के अनुकूल ढाल लिया। आप कुशल शिक्षा-शास्त्री और गहन विचारक होने के साथ-साथ राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने वाले

ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने अपने लेखन में भी सर्वथा नवीन भावनाएँ प्रस्तुत की थीं। आप सुलझे हुए लेखक होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि भी थे। आपकी 'रोटी का राग' तथा 'अमर आशा' नामक काव्य-कृतियाँ इसका उदात्त उदाहरण हैं। अपने जीवन के लक्ष्य का संकेत आपने अपनी 'अमर आशा' नामक कृति में इस प्रकार किया था :

असत् रजनी के तिमिर में सत्य आलोकित करूँ मैं।
और कर कर्तव्य पूरा शान्ति से फिर प्रभु मरूँ मैं।।

साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में तो आपने अद्भुत कार्य किया ही था, राजनीति में भी आप पीछे नहीं रहे थे। आपने जहाँ सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में सक्रिय रूप से भाग लिया था वहाँ स्वतन्त्रता के उपरान्त गान्धीवादी विचार-धारा को प्रसारित करने के उद्देश्य से सन् 1948 में आपने विश्व-भ्रमण भी किया था। सन् 1952 से लेकर सन् 1957 तक संसद्-सदस्य रहने के साथ-साथ आप कांग्रेस के महामंत्री भी रहे और कांग्रेस महासमिति के पत्र 'इकॉनोमिक रिव्यू' तथा 'आर्थिक समीक्षा' का सम्पादन भी तन्मयतापूर्वक किया। सन् 1958 में जब आप 'योजना आयोग' के सदस्य बनाये गए तो आपने देश की योजनाओं को गान्धीजी के सिद्धान्तों की ओर मोड़ने का प्रशंसनीय प्रयास किया। सन् 1964 में आप नेपाल में भारत के राजदूत नियुक्त हुए और सन् 1967 से 1973 तक गुजरात के राज्यपाल भी रहे।

उक्त सब प्रवृत्तियों के साथ-साथ श्रीमन्जी का 'गान्धी स्मारक निधि' से भी निकट का सम्बन्ध था। इस संस्था में रहते हुए आपने उसके मुखपत्र 'गान्धी मार्ग' के सम्पादन में भी उल्लेखनीय योगदान किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप आचार्य विनोबा भावे के अत्यधिक निकट आ गए थे और उनकी 'आचार्यकुल' योजना के क्रियान्वयन में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। वर्धा में आकर जहाँ आपका महात्मा गान्धीजी से निकट का सम्पर्क हुआ वहाँ उनके मानस-पुत्र सेठ जमनालाल बजाज की पुत्री मदालसा अग्रवाल से आपका विवाह भी हुआ। इस नये रूप ने भी आपके विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का काम किया था।

गान्धीवादी अर्थशास्त्र के तो आप विशेषज्ञ थे, ही हिन्दी में ललित निबन्ध और संस्मरण लिखने की कला में भी आप बहुत दक्ष थे। वास्तव में जिन परिस्थितियों में आपके जीवन का निर्माण हुआ था उनसे आपका व्यक्तित्व अनेक विशेषताओं का सन्दोह हो गया था। महात्मा गान्धी, आचार्य विनोबा भावे तथा जमनालाल बजाज-जैसे महापुरुषों के सतत संसर्ग ने आपको सर्वथा नई प्रेरणा दी थी।

आपका निधन 3 जनवरी सन् 1978 को ग्वालियर में हुआ था।

श्रीरंगम् रामस्वामी श्रीनिवास राघवन

श्री राघवन का जन्म नवम्बर सन् 1901 में तमिलनाडु के सेलम जनपद के वनवासी गाँव में हुआ था। महात्मा गान्धी के 'असहयोग आन्दोलन' के समय से ही आप 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' के प्रचार-कार्य में अग्रसर हुए थे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उसीमें संलग्न रहे। मद्रास विश्वविद्यालय से सन् 1917 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा में आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया था।

जब मद्रास में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक और गान्धीजी के सुपुत्र श्री देवदास गान्धी हिन्दी-प्रचार के लिए गए थे तब 'तिरुचिरापल्ली' में जो हिन्दी-प्रचार-केन्द्र स्थापित हुआ था आपने उसमें अपना अनन्य सहयोग प्रदान किया था। सन् 1918 में जब आपका विवाह श्रीमती राजलक्ष्मी से हुआ तो आपने उन्हें भी हिन्दी-प्रचार के कार्य में लग जाने की प्रेरणा दे दी। इस प्रकार यह 'दम्पति' हिन्दी के प्रचार को अपने जीवन का ध्येय समझकर इस कार्य में संलग्न हो गए। अपने कार्य के सिलसिले में जब आप बम्बई में थे तब भी आपने वहाँ पर हिन्दी-कक्षाएँ चलाकर अपने ध्येय की पूर्ति में सराहनीय कार्य किया था।
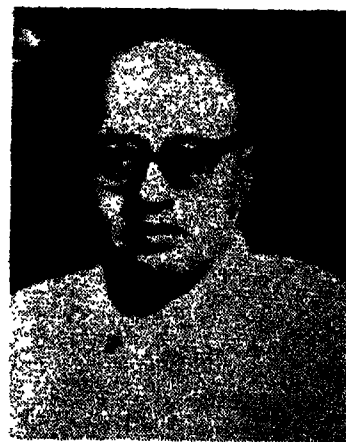
जब आप केन्द्र-सरकार के सूचना विभाग के आमन्त्रण

पर दिल्ली आए तो यहाँ पर भी आपने इस कार्य को बन्द नहीं किया, प्रत्युत भारत सरकार के 'व्यापार उद्योग मन्त्रालय' के निदेशक के रूप में हिन्दी में 'व्यापार उद्योग पत्रिका' प्रकाशित कराई। सितम्बर 1948 में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा' की नई दिल्ली शाखा का भी विधिवत् प्रारम्भ यहाँ आपने ही कराया था। आप जहाँ शासन में हिन्दी के प्रचलन का प्रशंसनीय प्रयास कर रहे थे वहाँ जनता में आपकी सहधर्मिणी श्रीमती राजलक्ष्मी इस कार्य में संलग्न रहती थीं। सन् 1960 में शासकीय सेवा से निवृत्ति पाने के उपरान्त तो आप सर्वात्मना इस कार्य में ही लग गए थे। आपकी लगन, निष्ठा और कार्य-तत्परता सर्वथा अभिनन्दनीय थी। 'दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के संचालन में आपका सहयोग अत्यन्त अभिनन्दनीय था।

आपका निधन 10 जुलाई सन् 1966 को हुआ था।

श्री श्रीराम शर्मा 'प्रेम'

श्री 'प्रेम' का जन्म उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जनपद के दोस्तपुर नामक ग्राम में फरवरी सन् 1913 में हुआ था। आपने अपने ही अध्यवसाय से गाँव के विद्यालय की शिक्षा समाप्त करके बाद में हिन्दी, संस्कृत और गुजराती का विशेष अध्ययन किया और धीरे-धीरे अँग्रेजी की भी साधारण योग्यता प्राप्त कर ली थी।

अपने शैशव से ही आपने स्वामी दयानन्द और महात्मा गान्धी का नाम सुन रखा था। फलतः आप सन् 1934 से ही असहयोग की आँधी में कूद पड़े और सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में तो आपने बाबा राघवदास तथा श्री हीरावल्लभ त्रिपाठी के साथ मिलकर प्रान्तीय संगठन का अभूतपूर्व कार्य किया था। फिर इसी आन्दोलन में गिरफ्तार होकर आप लगभग 2 वर्ष तक जेल में भी रहे थे। आपका अधिकांश जीवन आजीविका के प्रसंग में उत्तर-प्रदेशीय गान्धी आश्रम की सेवा में ही व्यतीत हुआ था और बाद में आप वहाँ से त्यागपत्र देकर देहरादून में 'जीवन बीमा निगम' में क्षेत्रीय अधिकारी हो गए थे और वहीं पर स्थायी रूप से रहने लगे थे।

आप जहाँ सफल संगठक और कर्मठ कार्यकर्ता थे वहाँ एक उत्कृष्ट कवि के रूप में भी अत्यन्त लोकप्रिय थे। आपकी ऐसी रचनाएँ 'अंगारे', 'क्रान्ति-गीत', 'दिल्ली चलो', 'जलती निशानी' और 'युग चरण' नामक पुस्तकों में संकलित हैं।

आपका निधन 18 जुलाई सन् 1978 को हुआ था।

श्री श्यामनारायण बैजल

श्री बैजलजी का जन्म बरेली (उत्तर प्रदेश) में 20 नवम्बर सन् 1913 को हुआ था। आप अपने छात्र-जीवन के प्रारम्भ से ही लेखन की ओर उन्मुख हो गए थे, किन्तु व्यवसाय से आप वकील थे।

आपकी रचनाएँ 'माधुरी' तथा 'वीणा' आदि अनेक प्रमुख पत्रिकाओं में छपा करती थीं। आप एक उत्कृष्ट लेखक होने के साथ-साथ सफल पत्रकार भी थे। आपने सन् 1964 से सितम्बर सन् 1978 तक 'एकान्त' नामक मासिक पत्र का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था।
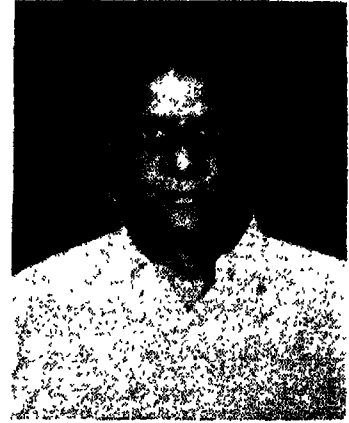
आप एक सफल पत्रकार होने के अतिरिक्त गम्भीर प्रकृति के अच्छे लेखक भी थे। आपकी रचनाओं में 'आओ देखें चित्र', 'एक लौ : एक दर्द' (उपन्यास), 'दुलहन की बात',

'कुहनी' (कहानी), 'इस हमाम में सब नंगे हैं', 'टालू मिक्सचर' (व्यंग्य) तथा 'लाडला बेटा' (लेख) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आप जहाँ अच्छे लेखक तथा पत्रकार थे वहाँ कुशल संगीतज्ञ भी थे। आपके संगीत-सम्बन्धी लेख 'संगीत (हाथरस) में प्रकाशित हुआ करते थे।

आपका निधन 12 जनवरी सन् 1980 को हुआ था।

श्री श्यामपति पाण्डेय

श्री पाण्डेयजी का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के घोसी नामक ग्राम में सन् 1902 में हुआ था। आपने अपने जीवन में 'पत्रकारिता' को एक 'मिशन' के रूप में अपनाया था और सर्वप्रथम आपने प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'अभ्युदय' साप्ताहिक में कार्य करना प्रारम्भ किया था। 'अभ्युदय' के उपरान्त आपने साप्ताहिक 'भविष्य' तथा मासिक 'चाँद' में भी कई वर्ष तक कार्य किया था। इन पत्रों में कार्य करते हुए आपने विविध स्तम्भों की सामग्री के लेखन का बहुत अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था।

फिर आप लखनऊ आ गए और वहाँ के नवलकिशोर प्रेस की ओर से प्रकाशित होने वाली 'माधुरी' पत्रिका में कार्य करने लगे। आपकी लेखन-शैली तथा कार्य-कुशलता से 'माधुरी' के तत्कालीन सम्पादक श्री रूपनारायण पाण्डेय बहुत प्रभावित हुए थे। कुछ दिन तक आपने श्री दुलारेलाल भार्गव द्वारा सम्पादित 'सुधा' में भी कार्य किया था।

उन्हीं दिनों आपकी भेंट हिन्दी के सुलेखक श्री परमेश्वरीलाल गुप्त से हो गई और आप उनकी प्रेरणा पर अपनी जन्मभूमि आजमगढ़ आ गए और वहाँ पर 'प्रभात प्रिंटिंग काटेज' नामक एक प्रेस की स्थापना करके उसकी ओर से 'सन्देश' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया, जो लगभग 40 वर्ष तक बराबर प्रकाशित होता रहा। इस पत्र के माध्यम से आपने आजमगढ़ जनपद की जनता की बहुमुखी सेवा की थी। वास्तव में 'सन्देश' किसी समय आजमगढ़ की राजनीतिक तथा साहित्यिक चेतना का प्रतीक बन गया था।

आप एक कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ गम्भीर लेखक भी थे। आपकी ऐसी प्रतिभा का परिचय आपकी 'मीरा' नामक समीक्षा-कृति से मिल जाता है। कहानी-लेखन में भी आपकी अच्छी गति थी और भूत-प्रेतों-सम्बन्धी कहानी लिखने में आप बहुत दक्ष थे। आपकी ऐसी कहानियाँ पाठकों में बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं। आपके अनेक साहित्यिक लेख हिन्दी की प्रायः सभी प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करते थे।

आप जहाँ कई वर्ष तक आजमगढ़ जिला परिषद् के सम्मानित सदस्य और 5 वर्ष तक उपाध्यक्ष रहे थे वहाँ 'हरिऔध कला-भवन आजमगढ़' की संस्थापना में भी आपका अत्यन्त उल्लेखनीय सहयोग रहा था। आप 'आजमगढ़ जिला पत्रकार संघ' के भी वर्षों तक अध्यक्ष रहे थे। आपकी साहित्य तथा समाज-सम्बन्धी अनेक उल्लेखनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में 'हरिऔध कला भवन' ने आपका अभिनन्दन भी किया था।

आपका निधन 16 सितम्बर सन् 1980 को सर्प-दंश से हुआ था।

डॉ० श्याम परमार

डॉ० परमार का जन्म 17 नवम्बर सन् 1924 को मध्य-प्रदेश के मालवा अंचल के सुन्दरसी नामक ग्राम में हुआ था। यद्यपि इनका जन्म नाम 'बद्रीप्रसाद' था, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में वे 'श्याम परमार' के नाम से ही जाने जाते थे। एम० ए० (हिन्दी) तथा एल० टी० करने के उपरान्त कुछ दिन तक आपने राजकीय महाविद्यालय, महू (मध्य प्रदेश)

में अध्यापन-कार्य किया और फिर आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर कार्यक्रम-निदेशक के रूप में रहने के उपरान्त नई दिल्ली के 'आकाशवाणी महानिदेशालय' में लोक-संगीत-विभाग के निदेशक बने। मृत्यु से पूर्व आप भारत सरकार के 'जन संचार संस्थान' से सम्बद्ध थे।

आप हिन्दी के क्षेत्र में 'मालवी-भाषा' के विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते थे और वास्तव में आपने इस क्षेत्र में जो कार्य किया था उससे आपकी इस भाषा के प्रति रुचि का परिचय मिलता है। आपकी 'मालवी और उसका साहित्य', 'मालवी लोकगीत','मालवी लोक-साहित्य : एक अध्ययन' आदि कृतियाँ आपके कृतित्व की अनुपम देन हैं। मालवी के अतिरिक्त भारतीय लोक-साहित्य की समृद्धि की दिशा में भी आपका कार्य अत्यन्त अभिनन्दनीय था। आपने अपने गहनतम अध्ययन का निष्कर्ष अपनी 'भारतीय लोक साहित्य' तथा 'लोक-धर्मी नाट्य-परम्परा' नामक कृतियों में प्रस्तुत किया है। आपका 'मालवी लोक-साहित्य : एक अध्ययन' नामक ग्रन्थ पी-एच० डी० का ऐसा शोध-प्रबन्ध है जिसने आपकी ख्याति प्रदेश के अंचल से बाहर विश्व-मंच तक प्रतिष्ठित की। वास्तव में आपका लोक-साहित्य का अध्ययन गम्भीरतम कोणों का स्पर्श करने वाला था।

आपने अपना साहित्यिक जीवन एक कहानीकार के रूप में प्रारम्भ किया था। आपकी कहानियों का संकलन 'पत्र के टुकड़े' सन् 1950 में प्रकाशित हुआ था। साहित्य के क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा आपको डॉ० प्रभाकर माचवे और गजानन माधव मुक्तिबोध से मिली थी। रंगों के प्रति वंशानुगत आकर्षण के कारण आप चित्र-कला में भी रुचि रखते थे और जीवन-संघर्ष में कभी-कभी आप ब्रुश थामकर रंगों की दुनिया में भी विचर लेते थे। आपकी 'मालवी लोक-गीत' नामक कृति के प्रकाशन के बाद ही हाथरस में डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में 'हिन्दी जनपदीय परिषद्' बनी थी। इस परिषद् की 'प्रारम्भिक कार्य-समिति' में आपका नाम भी ससम्मान रखा गया था।

श्री परमार एक कुशल समीक्षक, संवेदनशील कथाकार, गम्भीर लोक-शास्त्रज्ञ और जीवन्त अभिनेता होने के साथ-साथ सहृदय कवि भी थे। आपकी अनेक रचनाएँ 'प्रारम्भ' तथा 'निषेध' नामक संकलनों में देखी जा सकती हैं। नई कविता के भाव-बोध को प्रस्तुत करने की दिशा में भी आपकी 'अकविता और कला-सन्दर्भ' नामक समीक्षा-कृति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में भी आपकी प्रतिभा का उज्ज्वल अवदान आपकी 'मोर झाल' नामक कृति है। लोक-कथा-लेखन में भी आपने अपनी पारम्परिक आंचलिक अनुभूतियों का अंकन करके अत्यन्त सफल उदाहरण प्रस्तुत किया था। आपकी 'मालवी की लोक-कथाएँ' ऐसी ही कृति है। लोक-साहित्य के क्षेत्र में वे उस समय प्रवृत्त हुए थे जब सन् 1944 में आपने अपनी जन्म-भूमि में वहाँ की औरतों के मुख से लोक-गीत सुने थे। वह प्रभाव ही भविष्य में आपको निरन्तर आगे बढ़ते जाने की प्रेरणा देता रहा।

नई कविता को 'अकविता' और 'वाम कविता'-जैसे नामों से अभिहित करने वाले कलाकारों में श्याम परमार का नाम अग्रगण्य है। वास्तव में 'अकविता' आन्दोलन के वे सूत्रधार ही थे। आपके निधन के उपरान्त 'मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्' ने 27, 28 और 29 जनवरी सन् 1979 को 'श्याम स्मृति समारोह' का आयोजन उज्जैन में किया था। इस समारोह में मुख्य वक्ता के रूप में परमारजी के गुरु और सखा डॉ० प्रभाकर माचवे को आमन्त्रित किया गया था। परमारजी की सहधर्मिणी श्रीमती हीरादेवी भी इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थीं।

आपका निधन 16 दिसम्बर सन् 1977 को नई दिल्ली में हुआ था।

श्री श्यामरथीसिंह

श्री श्यामरथीसिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद

में पिपरीडीह के निकटवर्ती ग्राम 'भार' में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा छोटे-से कस्बे मऊ में हुई थी। कुछ समय तक आपने काशी विद्यापीठ में भी अध्ययन किया था। जहाँ तक स्कूली शिक्षा का प्रश्न है, आपकी शिक्षा हाईस्कूल तक ही सीमित रही; परन्तु स्वाध्याय के बल पर आपने असीमित ज्ञान अर्जित कर लिया था। यहाँ तक कि एम० ए० और पी-एच० डी० भी अनेक समस्याओं के निवारण हेतु आपकी ही सहायता लेते थे। सन् 1942 के स्वतन्त्रता-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण आपको दो बार कारावास भी भोगना पड़ा था।

आपने सर्वप्रथम सन् 1945 में दैनिक 'विश्वमित्र' बम्बई में प्रेस-कम्पोजीटर के रूप में कार्य प्रारम्भ किया था। अपनी लगन और निष्ठा के फलस्वरूप आप शीघ्र ही उसके 'उपसम्पादक' बन गए और सन् 1948 में जब 'विकास' हिन्दी दैनिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ तो उसके वरिष्ठ उपसम्पादक के रूप में आपको ही यह उत्तरदायित्व सौंपा गया। जब सन् 1950 में 'नवभारत टाइम्स' का बम्बई से प्रकाशन शुरू किया गया तो आपको उसका मुख्य उपसम्पादक बनाया गया। सन् 1972 से आपने उसके 'समाचार सम्पादक' का कार्य-भार सँभाला था।

श्री सिंह बम्बई के सार्वजनिक जीवन में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। वहाँ की प्रायः सभी जन-सेवी संस्थाओं से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। हिन्दी-प्रचार की दिशा में भी आपकी सेवाएँ अभिनन्दनीय थीं। आपकी विनम्रता एवं उदारता से प्रभावित होकर वहाँ के सभी पत्रकार आपको 'भाईजी' कहकर पुकारते थे। हिन्दी-पत्रकारिता में आपकी सेवाओं को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

1 फरवरी सन् 1979 को क्रूर काल ने आपको हमसे छीन लिया।

श्री श्यामलाल गुप्त पार्षद

श्री पार्षदजी का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद के नरवल नामक गाँव के एक वैश्य-परिवार में 16 सितम्बर सन् 1893 को हुआ था। आपने अपने गाँव के स्कूल से ही 'मिडिल' की परीक्षा उत्तीर्ण की थी, और आप छात्र-जीवन से ही कविता करने लगे थे। कहते हैं कि आपने बचपन में ही एक ऐसा काव्य रचा था जिसकी मूल कथा 'रामायण' पर आधारित थी, किन्तु घर वालों ने उस काव्य को अत्यन्त निर्ममतापूर्वक कुएं में फेंक दिया था। अपने परिवार के व्यवसाय में आपकी कोई रुचि न थी, अतः आजीविका के लिए आपने जिला परिषद् तथा कानपुर नगरपालिका के स्कूलों में अध्यापकी की; किन्तु वह भी अधिक दिन तक न चल सकी।

जब कोई सहारा न सूझा तो आपने पत्रकारिता का आश्रय लिया और 'सचिव' नामक मासिक प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। 'सचिव' के प्रकाशन के समय उसके उद्देश्यों की घोषणा पार्षदजी ने इस प्रकार की थी :

रामराज्य की शक्ति शान्ति सुखमय स्वतन्त्रता लाने को।
लिया 'सचिव' ने जन्म, देश की परतन्त्रता मिटाने को॥

आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसे लगभग डेढ़ वर्ष तक चलाकर बन्द कर देना पड़ा। फिर देश की स्वतन्त्रता के लिए किये जाने वाले संघर्ष में कूद पड़े और 'कांग्रेस' तथा 'कविता' दोनों को अपना लिया। 'प्रताप' तथा 'अभ्युदय' साप्ताहिक में भी कुछ समय तक कार्य किया और फिर आप 'फतहपुर जिला कांग्रेस कमेटी' के अध्यक्ष हो गए। बाद में आजादी की लड़ाई में जमकर हिस्सा लिया और जेल भेज दिए गए। जब आप लखनऊ जेल में थे तब वहाँ आपको श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के अलावा सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा आचार्य कृपलानीजी आदि नेताओं के साथ रहने का अवसर भी मिला था।

सन् 1924 में आपने 'राष्ट्र-भक्ति' की जो रचनाएँ लिखी थीं उनमें कोई ऐसी रचना नहीं थी, जिसे झण्डा-गान के रूप में अपनाया जा सके और आन्दोलनकारियों का मनोबल उससे बढ़ सके। परिणामस्वरूप आपने 'झण्डा-गीत' लिखने का निश्चय किया। प्रारम्भ में जो 'ध्वज-गान' पार्षद जी ने लिखा था उसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार थीं :

राष्ट्रगान की दिव्य ज्योति, राष्ट्रीय पताका नमो नमो।
भारत जननी के गौरव की अविचल शाखा नमो नमो ॥

क्योंकि इस गीत में कुछ कठिन तथा संयुक्त अक्षर वाले शब्द प्रयुक्त किये गए थे, इसलिए यह अधिक लोकप्रिय न हो सका। फलस्वरूप :

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा

का निर्माण किया गया। इस गीत के शब्द अत्यन्त सरल थे और इसका अर्थ भी अपनी सम्पूर्ण सहजता के साथ मानव-मन में उतर जाने की पूर्ण क्षमता रखता था, परिणामस्वरूप यह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। यह पूरा गीत सन् 1925 में 'प्रताप' साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ था। उन्हीं दिनों भारत - कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में कांग्रेस का जो अधिवेशन कानपुर में हुआ था उस समय खुले अधिवेशन में पार्षदजी ने जो 'स्वागत-गान' गाया था उसने भी पार्षदजी की लोकप्रियता को चार चाँद लगा दिए थे। वह स्वागत-गान इस प्रकार था :

हम सप्रेम स्वागत करें, प्रिय नेता समुदाय का।
सेन, केलकर, मालवीय, अली, लाजपतराय का ॥

आपके इस 'स्वागत-गान' की प्रशंसा श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'-जैसे रससिद्ध कवि ने मुक्त कण्ठ से की थी।

सन् 1942 के 'क्रान्ति-आन्दोलन' के समय पार्षदजी को पुलिस ने बहुत सताया था। जब आप अज्ञातवास कर रहे थे तब पुलिस ने आपकी गिरफ्तारी के लिए 1000 रुपए का इनाम भी घोषित किया था। इस अज्ञातवास की अवधि में ही आपके एकमात्र पुत्र तथा भाई का भी असामयिक देहावसान हो गया था। जेल से छूटने के उपरान्त आपने जहाँ 'दोसर वैश्य पत्रिका' का प्रकाशन किया था वहाँ निर्धन तथा साधनहीन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए आपने 'गौरीशंकर गंगादीन विद्यालय' की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा की थी। यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि 'झण्डा-गान' के इस अमर गायक के अन्तिम दिन अत्यन्त भीषण अर्थ-संकट में व्यतीत हुए थे। आपने राष्ट्र-सेवा के सिलसिले में 6 बार कारावास की नृशंस यातनाएँ भोगी थीं। उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से आपको 75 रुपए मासिक पेंशन मिला करती थी और भारत-सरकार की ओर से 'झण्डा-गीत' के लेखक के नाते आपको 2 हजार रुपए का पुरस्कार भी मिला था। आपने यह संकल्प भी लिया था कि जब तक देश स्वतंत्र नहीं होगा तब तक आप नंगे पाँव ही रहेंगे और धूप तथा वर्षा में छाते का प्रयोग नहीं करेंगे। अन्तिम दिनों में आपके कवि का अन्तर्मन देश की दुर्दशा से बहुत दुखी था। यदि ऐसा न होता तो आप यह क्यों लिखते :

बोलना जिनको न आता था, वही अब बोलते हैं
रस नहीं, बस देश के उत्थान में विष घोलते हैं
सर्वथा गीदड़ रहे, अब सिंह बनकर डोलते हैं
कालिमा अपनी छिपाए, दूसरों की खोलते हैं
देखकर उनका व्यतिक्रम, आज साहस खो रहा हूँ।
आज चिन्तित हो रहा हूँ!

आपका निधन 10 अगस्त सन् 1977 को हुआ था।

पण्डित श्यामलाल पचौरी

श्री पचौरीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के 'बूचा की गढ़ी' नामक ग्राम में सन् 1874 में हुआ था। जिस समय शिष्य और गुरु के सम्बन्ध पावन स्नेह एवं श्रद्धा से बँधे हुए थे उस समय आप मेरठ-निवासी पंडित गौरीदत्त के अन्यतम शिष्य हो गए थे। जिन दिनों हिन्दी का नाम जन-सामान्य की दृष्टि में सर्वथा अपरिचित था, तब आप मेरठ शहर की दो साप्ताहिक पैंठों तथा अन्य स्थानीय मेलों के शुभ अवसर पर 'हिन्दी वर्णमाला' तथा 'हिन्दी चौपड़'-जैसी सामग्री हिन्दी-प्रचार के लिए फैलाकर पंडित गौरीदत्त जी के साथ वहाँ बैठा करते थे।

पंडित गौरीदत्तजी ने जब 'देवनागरी पाठशाला मेरठ'

की स्थापना मेरठ शहर के वैदवाड़ा नामक मोहल्ले में की थी तब आपको ही उसका संचालन-कार्य सौंपा गया था। इस संस्था की आपने तन, मन और धन से सेवा की। यह संस्था आपके लिए जीवन-प्राण थी, क्योंकि शिक्षा-केन्द्र होने के साथ-साथ इस संस्था का सम्बन्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन से भी था।

तत्कालीन सरकार इस संस्था की घोर विरोधी थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में भी आप इस संस्था के उन्नयन में लगे रहे। इस संस्था से अवकाश मिलने के अनन्तर भी आप हिन्दी-जगत् की सेवा करते रहे। खेद का विषय है कि आप अपने जीवन-काल में इस संस्था को इण्टर कालेज तक ही देख पाए थे। आज यह संस्था स्नातकोत्तर कालेज के रूप में प्रतिष्ठित है, किन्तु इसमें हिन्दी नहीं पढ़ाई जाती।

ब्रजभाषा और खड़ी बोली के माध्यम से आपने हिन्दी साहित्य की सेवा करने का मार्ग अपनाया था। जिस समय नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा 'हिन्दी शब्द सागर' (कोश) का निर्माण हो रहा था उस समय आपने उक्त कोश के सम्बन्ध में संकलनकर्ताओं का विशेष सहयोग किया था। आपने 'हिन्दी व्याकरण' तथा 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' नामक छात्रोपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त 'संसार-उत्पत्ति' नामक एक मौलिक ग्रन्थ की रचना भी की थी। आपके कुछ लेख 'ललिता' और 'कल्याण' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे।

आप-जैसे सशक्त हिन्दी-सेवी का निधन 31 जनवरी सन् 1949 को हुआ था।

श्री श्यामसुन्दर खत्री

श्री खत्रीजी का जन्म 13 सितम्बर सन् 1896 को उत्तर कलकत्ता के एक मध्यवर्गीय खत्री-परिवार में हुआ था। आपके पूर्वज कई शताब्दी पूर्व लाहौर से आकर काशी में बस गए थे। काशी में यह परिवार आगे चलकर 'सेठ कश्मीरीमल परिवार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और बाद में खत्रीजी के पारिवारिक जन व्यापार के सिलसिले में कलकत्ता आकर रहने लगे थे।

आपके पिता श्री लक्ष्मणदास खत्री बड़े सहृदय व्यक्ति थे और कलकत्ता में वस्त्र का व्यापार किया करते थे। जब आप केवल 2 वर्ष के थे तब आपकी माता श्रीमती तुलसीदेवी का देहान्त हो गया था। बालक श्यामसुन्दर खत्री का लालन-पालन ठीक तरह से हो सके, इस दृष्टि से आपके पिताजी ने दूसरा विवाह कर लिया था। अपनी 'विमाता' से भी खत्रीजी को अपूर्व स्नेह मिला था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता के सुप्रसिद्ध 'विशुद्धानन्द विद्यालय' में हुई थी और इण्टर की परीक्षा आपने 'स्काटिश चर्च कालेज' से दी थी। अपने निजी स्वाध्याय के बल पर आपने घर पर रहते हुए ही बंगला भाषा की भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। इसी बीच आपने 'इलाहाबाद बैंक' में नौकरी कर ली और 45 वर्ष तक उसमें कार्य करने के उपरान्त आप 'फारेन एक्सचेंज अधिकारी' के रूप में सन् 1962 में वहाँ से सेवा-निवृत्त हुए थे।
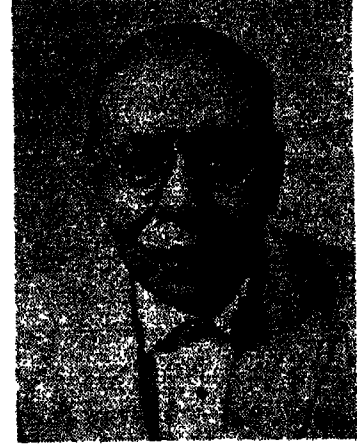
आप जहाँ एक कुशल प्रशासक थे वहाँ उच्चकोटि के कवि भी थे। आपने कविता को कभी भी 'आत्म-विज्ञापन' का साधन नहीं बनाया। आप प्रायः कवि-गोष्ठियों तथा सभा-सम्मेलनों से दूर ही रहा करते थे। आपकी काव्य-चातुरी का इससे अधिक सुपुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपकी प्रतिभा को परखकर समालोचक-शिरोमणि पंडित पद्मसिंह शर्मा को यह लिखना पड़ा था—"श्याम-सुन्दरजी ऐसे कवि हैं, जिनकी रचना में कवित्व है। कविता

के गुण-दोष का इन्हें अच्छा ज्ञान है। आप आत्म-प्रशंसा से बचने वाले, बल्कि कहना चाहिए कि अज्ञात कवि हैं।" आप श्री माखनलाल चतुर्वेदी को अपना मानस-गुरु मानते थे और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की तो आपके ऊपर मरते दम तक कृपा बनी थी। कानपुर के प्रख्यात साहित्यकार श्री बालदत्त पाण्डेय आपके बाल-सखा थे तथा ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशी के भूतपूर्व व्यवस्थापक श्री देवनारायण द्विवेदी आपके अनन्य-अभिन्न मित्र हैं। आपकी रचनाएँ 'विशाल भारत', 'मतवाला', 'हिन्दू पंच', 'स्वतन्त्र', 'विश्व-भारती', 'हंस', 'चाँद', 'माधुरी' और 'सुधा' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भी आप अनन्य स्नेह-भाजन रहे थे। जब श्री धन्यकुमार जैन ने गुरुदेव की सभी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद किया था तब उनकी रचनाओं में आई हुई कविताओं का अनुवाद श्री खत्रीजी ही किया करते थे। रवीन्द्र-साहित्य के अनुवाद पर आपको 'विश्व-भारती' की ओर से पुरस्कृत भी किया गया था। सन् 1958 में आपको 'बाल साहित्य' का 500 रुपए का 'राष्ट्रपति-पुरस्कार' भी प्रदान किया गया था। आपने डॉ० मेरी स्टोप्स की 'वुमेनहुड' तथा मार्गरेट मूर ह्वाइट की 'ग्रो एण्ड लिव' नामक अँग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद 'नारीत्व' तथा 'जियो और जागो' नाम से किए थे। आपकी कविताओं का संकलन 'वेणु' नाम से ज्ञानमण्डल लिमिटेड काशी द्वारा प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन 26 मई सन् 1979 को हुआ था।

डॉ० श्यामसुन्दरदास

डॉ० श्यामसुन्दरदास का जन्म सन् 1875 में काशी में हुआ था। आपके पूर्वज पंजाब के लाहौर नगर से यहाँ आए थे और कपड़े का व्यापार करते थे। आपने बनारस के क्वीन्स कालेज से सन् 1897 में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। जब आप इण्टरमीडिएट में ही पढ़ते थे तब 16 जुलाई सन् 1893 को अपने दो साथियों (श्री रामनारायण मिश्र तथा ठाकुर शिवकुमारसिंह) के सहयोग से आपने 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की थी और जीवन-भर उसकी समृद्धि एवं विकास में संलग्न रहे। बी० ए० करने के उपरान्त आप कुछ दिन तक काशी के हिन्दू-स्कूल में अध्यापक रहे और फिर लखनऊ के 'कालीचरण हाईस्कूल' के मुख्याध्यापक होकर वहाँ चले गए। सन् 1909 में आप कुछ समय के लिए जम्मू-कश्मीर राज्य में भी जाकर रहे थे। जब सन् 1921 में काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग खुल गया तब महामना पंडित मदनमोहन मालवीय ने आपको उस विभाग का अध्यक्ष बनाकर वहाँ रखा था। विश्वविद्यालय में जाकर आपने जिस तत्परता और कुशलता से विभाग का संगठन करके उसके लिए पाठ्य-पुस्तकों के निर्धारण एवं निर्माण आदि में रुचि ली, उससे आपकी कर्मठता का स्पष्ट परिचय मिलता है। हिन्दी के उच्चस्तरीय अध्ययन-अध्यापन की दिशा में प्रत्येक विषय की पाठ्य-पुस्तकों की जो कमी उन दिनों आपने अनुभव की उसको दूर करने के लिए आपने अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी किया।

डॉ० श्यामसुन्दरदास की कर्म-कुशलता का सम्यक् परिचय इसी बात से मिल जाता है कि आपने जहाँ अपने विश्वविद्यालयीन उत्तरदायित्वों को पूर्ण सक्रियता से सँभाला वहाँ 'नागरी प्रचारिणी सभा' के कार्य को आगे बढ़ाने में भी आप पूर्णतः संलग्न रहे। जहाँ आपने हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए एक विशाल शब्दकोश के निर्माण की योजना बनाई वहाँ कचहरियों में हिन्दी के प्रचलन के लिए भी आपने अनेक प्रयास किए। इस सम्बन्ध में आपने पंडित मदनमोहन मालवीय का सक्रिय सहयोग भी प्राप्त किया था। सन् 1899 में आपने सभा में जहाँ हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के कार्य का सूत्रपात किया वहाँ सन् 1903 में सभा में 'आर्य भाषा पुस्तकालय' की स्थापना करके बाबू गदाधरसिंह के निजी पुस्तकालय को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार सन् 1900 में आपने जहाँ भाषा-सम्बन्धी कार्य को गति देने और साहित्यिक क्षेत्र में लेखन को बढ़ावा देने की दृष्टि से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया वहाँ सन् 1902 में सभा के निजी भवन के निर्माण के कार्य का भी मुहूर्त सम्पन्न किया। आप एक ओर जहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के माध्यम से हिन्दी के साहित्यिक एवं शैक्षणिक अभिवृद्धि के लिए अनेक उच्च-स्तरीय ग्रन्थों के निर्माण में संलग्न थे वहाँ सभा के द्वारा

आपने हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का मार्ग प्रशस्त करने के लिए 'सरस्वती' के प्रकाशन द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका का कार्य किया था। आपने जहाँ गम्भीर अध्यापक के रूप में अपनी महत्ता प्रतिष्ठापित की थी वहाँ आप कुशल व्यवस्थापक भी थे। यह आपकी व्यवस्था-पटुता का ही सुपुष्ट प्रमाण है कि आप एक-साथ कई-कई उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का कार्य पूर्ण तन्मयता तथा सक्रियता से करने में दक्ष थे।

धीरे-धीरे नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दू विश्वविद्यालय दोनों ही क्षेत्रों में आपको सच्चे सहयोगी मिलते गए और आप सफलता की सीढ़ी पर बढ़ते चले गए। 'नागरी प्रचारिणी सभा' के विभिन्न विभागों के निर्माण में आपने दिन-रात परिश्रम करके जो महत्त्वपूर्ण कार्य थोड़े ही दिनों में कर दिखाया उसका स्पष्ट आभास हिन्दी-जगत् को सभा की ओर से प्रकाशित होने वाली अनेक पुस्तकों के माध्यम से हो गया था। आपने जहाँ सभा की ओर से प्रारम्भ की गई 'मनोरंजन पुस्तकमाला' में विभिन्न विषयों की पुस्तकों का प्रकाशन तथा सम्पादन किया वहाँ सभा की ओर से एक शोध पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' नाम से प्रारम्भ की। उन दिनों प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों को देखकर डॉ० श्यामसुन्दरदास के उत्कट परिश्रम तथा प्रखर निष्ठा का परिचय मिलता है। आपने सभा के लिए जहाँ अनेक विद्वानों से विभिन्न विषयों की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखवाईं वहाँ स्वयं भी समय निकालकर साहित्य-रचना में अग्रणी कार्य किया।

आपके द्वारा रचित पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है—**मौलिक पाठ्य-पुस्तकें** : 'प्राचीन लेख-मणिमाला' (1903), 'भाषा पत्र-लेखन' (1904), 'हिन्दी पत्र-लेखन' (1904), 'हिन्दी प्राइमर, हिन्दी की पहली पुस्तक' (1905), 'हिन्दी ग्रामर' (1906), 'हिन्दी-संग्रह' (1908) और 'बालक-विनोद' डॉ० एनी बेसेंट की एक पुस्तक का अनुवाद (1908), 'सरल संग्रह' (1919), 'नूतन संग्रह' (1919), 'अनुलेखन माला' (1919); **सम्पादित ग्रन्थ** : 'चन्द्रावली अथवा नासिकेतोपाख्यान' (1901), 'छत्र-प्रकाश' (1903), 'रामचरितमानस' (1904), 'पृथ्वीराज रासो' (1904), 'वनिता विनोद' (1906), 'इन्द्रावती भाग-1 (1906), 'हम्मीर रासो' (1908), 'शकुन्तला नाटक' (1908), 'हिन्दी वैज्ञानिक कोश' (1909), 'प्रथम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की लेखावली' (1911), 'बाल-विनोद' (1913), 'हिन्दी शब्द सागर' खण्ड-1-4 (1916), 'मेघदूत' (1920), 'दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली' (1921), 'परमाल रासो' (1921), 'अशोक की धर्म लिपियाँ' (1923), 'रानी केतकी की कहानी' (1925), 'भारतेन्दु नाटकावली' (1927), 'कबीर ग्रन्थावली' (1928), 'राधा-कृष्ण ग्रन्थावली' (1930), 'सतसई सप्तक' (1930), 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' (1933), 'रत्नाकर' (1933), 'बाल शब्दसागर' (1935) और 'त्रिधारा' (1945); **छात्रोपयोगी ग्रन्थ** : 'मानस मुक्तावली' (1920), 'संक्षिप्त रामायण' (1920), 'हिन्दी-निबन्धमाला' भाग-1-2 (1922), 'नई हिन्दी रीडर' भाग-6-7 (1923), 'हिन्दी-संग्रह' भाग 1-2 (1925), 'हिन्दी कुसुम-संग्रह' भाग 1-2 (1925), 'हिन्दी कुसुमावली' भाग 1-2 (1927), 'संक्षिप्त पद्मावत' (1927), 'हिन्दी प्रोज सेलेक्शन्स' (1927), 'साहित्य सुमन' भाग 1-4 (1928), 'गद्य रत्नावली' (1931), 'साहित्य प्रदीप' (1932), 'हिन्दी गद्य कुसुमावली' भाग 1-2 (1936), 'हिन्दी प्रवेशिका पद्यावली' (1939), 'हिन्दी पद्य-संग्रह' (1945); **विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ**—'नागरी वर्णमाला' (1896), 'साहित्यालोचन' (1922), 'हिन्दी भाषा का विकास' (1924), 'गद्य कुसुमावली' (1925), 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (1927), 'हिन्दी भाषा और साहित्य' (1930), 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित्र' (1931), 'रूपक रहस्य' (1931), 'भाषा रहस्य' भाग 1 (1935), 'साहित्यिक लेख' (1945); **खोज-सम्बन्धी ग्रन्थ** : 'हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों का वार्षिक खोज-विवरण' (1900-1905), 'हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों का प्रथम वार्षिक विवरण' (1906-1908), 'हस्तलिखित ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण' (1923); **जीवनी-साहित्य** : 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' भाग 1 (1909), 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' भाग 2 (1913),

'हिन्दी गद्य के निर्माता' भाग 1-2 (1940) और 'मेरी आत्म कहानी (1940)।

इन कृतियों के नामों को देखकर आप यह अनुमान लगा सकते हैं कि डॉक्टर साहब को अपने इस कर्म-संकुल जीवन में कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। आप जहाँ नागरी प्रचारिणी सभा और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विभिन्न कार्यों में पूर्ण तन्मयता से संलग्न रहते थे वहाँ विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली हिन्दी की गतिविधियों का भी पूर्ण ध्यान रखते थे। एक सफल अध्यापक, गम्भीर समीक्षक और कुशल संगठक के रूप में तो आप बेजोड़ थे ही अच्छे प्रचारक के रूप में भी आपने अपनी अनन्य कार्य-चातुरी का परिचय दिया था। अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण 50 वर्षों में आपने अविराम और अविचल रूप में हिन्दी भाषा तथा साहित्य की जो सेवा की थी उसीका सुपरिणाम यह था कि आपको अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रयाग में सम्पन्न हुए छठे अधिवेशन का सभापति भी बनाया गया था। आपकी साहित्य-सम्बन्धी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए सम्मेलन ने जहाँ आपको 'साहित्य वाचस्पति' की मानद उपाधि प्रदान की थी वहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने भी आपको डी० लिट्० की उपाधि देखकर आपकी सेवाओं का समुचित मूल्यांकन किया था। इसी प्रकार ब्रिटिश सरकार ने भी आपको 'राय बहादुर' की सम्मानपूर्ण उपाधि प्रदान की थी। नागरी प्रचारिणी सभा ने आपकी जन्म-शताब्दी 17, 18 तथा 19 मई सन् 1975 को नई दिल्ली में बड़े समारोह से मनाई थी और उस अवसर पर एक 'शती-ग्रन्थ' का प्रकाशन भी किया था।

जब नागरी प्रचारिणी सभा ने 'सरस्वती' को इण्डियन प्रेस प्रयाग को सौंप दिया था तब भी 2 वर्ष तक आपकी अध्यक्षता में गठित एक सम्पादक-मण्डल के निरीक्षण में सम्पादन-कार्य 'नागरी प्रचारिणी सभा' ही किया करती थी। जब आपने कार्य की अधिकता के कारण उसके सम्पादन से पूर्णतया अवकाश ले लिया और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उसके सम्पादन का भार सँभाला तब दिसम्बर सन् 1902 की 'सरस्वती' में आपने जो टिप्पणी लिखी थी वह इस प्रकार है—"इस मास की संख्या के साथ 'सरस्वती' का तीसरा वर्ष पूरा होता है। पहले वर्ष से लेकर आज तक मेरा सम्बन्ध इस पत्रिका से घनिष्ठ बना रहा। पहले वर्ष में एक समिति इस पत्रिका का सम्पादन करती रही और मैं भी उस समिति का सभासद् रहा। दूसरे और तीसरे वर्ष में इसके सम्पादन का भार पूरा-पूरा मेरे ऊपर रहा। परन्तु अब चौथे वर्ष के प्रारम्भ से यह कार्य हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के अधीन रहेगा। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हुआ कि मैं समय के अभाव से 'सरस्वती' के सम्पादन में इतना दत्तचित्त न रह सका जितना कि मुझे होना उचित था। इसलिए केवल नाम के लिए सम्पादक बना रहना मैंने उचित नहीं समझा। परन्तु मैं अपने पाठकों और पत्रिका के लेखकों को विश्वास दिलाता हूँ कि यद्यपि आगामी संख्या से मैं इसका सम्पादक न रहूँगा, पर इस पत्रिका के साथ मेरी वैसी ही सहानुभूति बनी रहेगी जैसी अब तक रही, और मैं सदा इसकी उन्नति से प्रसन्न होऊँगा। अन्त में मुझे अपने उन मित्रों से प्रार्थना करनी है जो लेखों द्वारा तीन वर्ष से मेरी सहायता करते रहे। आशा है कि वे अगले वर्ष में भी इसी प्रकार सहायता करते रहेंगे। अब भविष्य में 'सरस्वती' मे प्रकाशनार्थ सब लेख, परिवर्तन के सम्वाद पत्र, तथा समालोचनार्थ पुस्तकादि निम्नलिखित पते से भेजे जाने चाहिएँ—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, सम्पादक 'सरस्वती', झाँसी।" इसके उपरान्त द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' में डॉ० श्यामसुन्दरदास के चित्र के साथ जो पंक्तियाँ छापी थीं उनसे आपकी महत्ता का परिचय मिलता है। द्विवेदीजी ने लिखा था :

मातृभाषा के प्रचारक विमल बी० ए० पास।
सौम्य शील निधान बाबू श्यामसुन्दरदास॥

इन पंक्तियों के अतिरिक्त द्विवेदीजी ने अपनी मान्यता इस प्रकार भी प्रकट की थी—"जिन्होंने बाल्यकाल से अपनी मातृभाषा हिन्दी में अनुराग प्रकट किया आपके उत्साह और अथक परिश्रम से नागरी प्रचारिणी सभा की इतनी उन्नति हुई। हिन्दी की दशा सुधारने के लिए जिनके उद्योग को देख-कर सहस्रशः साधुवाद दिए बिना नहीं रहा जाता।" राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों से डॉ० श्याम-सुन्दरदास के कृतित्व की समवेत झाँकी मिलती है :

मातृभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास।
नाम उनका एक ही है, 'श्यामसुन्दरदास'॥

आपका निधन सन् 1945 में हुआ था।

श्री श्यामसुन्दरलाल एडवोकेट

श्री श्यामसुन्दरलाल एडवोकेट का जन्म उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जनपद के औंछा नामक ग्राम में सन् 1868 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पहले उर्दू-फारसी में हुई थी, किन्तु बाद में आपने हिन्दी का अच्छा अभ्यास करके तुलसी-कृत 'रामायण' और 'श्रीमद्भागवत' के कुछ अंश कण्ठस्थ कर लिए थे। मैनपुरी के मिडिल स्कूल से मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके सन् 1888 में आप आर्यसमाज के सम्पर्क में आए। इसके बाद फर्रुखाबाद से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने आगरा जाकर वहाँ के आगरा कालेज से क्रमशः एफ०ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ दीं। आपने एम० ए० में प्रवेश लिया ही था कि घरेलू परिस्थितियों के कारण अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर आप सन् 1894-95 में नसीराबाद की छावनी के मिशन स्कूल में अध्यापक नियुक्त हो गए। वहाँ पर रहते हुए आपने अध्यापन-कार्य के अतिरिक्त आर्यसमाज के प्रचार का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इस कारण आपके स्कूल के अधिकारी आपसे रुष्ट हो गए और आपको वह नौकरी छोड़नी पड़ी। इसके उपरान्त आप सन् 1895 से सन् 1897 तक सहारनपुर के गवर्नमेंट हाईस्कूल में साइंस-टीचर रहे और कुछ दिन मुरादाबाद के गवर्नमेंट हाईस्कूल में भी आपने सन् 1903 तक अध्यापन-कार्य किया। मुरादाबाद में रहते हुए ही आपका 'आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश' की गतिविधियों से निकट का सम्पर्क हुआ और सभा के मन्त्री निर्वाचित हो गए। उन्हीं दिनों आपने 'डिप्टी कलक्टर' की परीक्षा भी दी थी, किन्तु आर्यसमाजी होने के कारण आपका चयन नहीं किया जा सका।

यद्यपि आपकी शिक्षा उर्दू तथा फारसी के माध्यम से हुई थी, किन्तु हिन्दी तथा संस्कृत का ज्ञान आपने अपने स्वाध्याय के बल पर ही बढ़ाया था। श्री तुलसीराम स्वामी द्वारा विरचित संस्कृत की पुस्तकों के माध्यम से अपने संस्कृत के ज्ञान को बढ़ाकर आपने समस्त वैदिक वाङ्मय का अच्छा अध्ययन कर लिया था और 9 वर्ष तक एक संस्कृत का पण्डित रखकर उससे 'लघु कौमुदी' तथा 'अष्टाध्यायी' आदि व्याकरण-ग्रन्थों का भी गहन ज्ञान आपने अर्जित किया था। आर्यसमाज के कार्य की आपको इतनी लगन थी कि नसीराबाद छावनी के 'मिशन स्कूल' में कार्य करते हुए आपने जहाँ आर्यसमाज की स्थापना की थी वहाँ सहारनपुर के कार्य-काल में भी डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना करने का उद्योग किया था। मुरादाबाद-निवास के समय ही आप आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता महात्मा नारायण स्वामी तथा पं० भगवानदीन के सम्पर्क में आए थे।

सन् 1903 से आपने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देकर मैनपुरी में वकालत का कार्य प्रारम्भ किया था। वहाँ आकर आपने अपनी लेखनी को पूर्णतः आर्य-सिद्धान्तों के प्रचार तथा प्रसार में लगाया और 'ग्राम हितैषी' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र का भी सम्पादन किया। इस बीच आप गुरुकुल वृन्दावन से सम्बद्ध हो गए और सन् 1930 में सम्पन्न हुए उसके 'रजत जयन्ती समारोह' के अवसर पर उसके प्रकाशन विभाग के संयोजक बनाये गए। आप सन् 1901 से सन् 1902 तक आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के मन्त्री भी रहे थे। आपके हिन्दी के लेख 'आर्यमित्र' तथा 'सार्वदेशिक' आदि अनेक आर्य पत्रों में प्रकाशित होते रहते थे।

आपका निधन 19 जून सन् 1948 को हुआ था।

श्री श्यामाकान्त पाठक

श्री पाठकजी का जन्म सन् 1898 में जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। आपके पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद पाठक संस्कृत-वाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वान् तथा ज्योतिषी थे। आपकी शिक्षा

बी० ए० तक हुई थी। अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण आपने केवल 16 वर्ष की आयु में ही 'मदन महल' कविता लिखकर अपनी अपूर्व मेधा तथा प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया था। आप भी ज्योतिष शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे।

आपके द्वारा रचित 'श्याम सुधा' नामक अकेला ही महाकाव्य ऐसा है जो आपकी साहित्यिक उपलब्धि का बेजोड़ नमूना है। इस काव्य में आपने श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए श्रीमद्भागवत में वर्णित भगवान् कृष्ण के जीवन-चरित्र को आधार बनाकर 11 सर्गों में जो कथानक प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है। इसके अतिरिक्त आपकी 'उषा' तथा 'दर्प दमन' नामक कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

आपने 'बुन्देल-केसरी' नामक एक नाटक भी लिखा था, जिसके नायक महाराज छत्रसाल हैं। छत्रसाल के बहुमुखी जीवन की यथातथ्य झाँकी प्रस्तुत करने में पाठकजी को इस नाटक में बहुत सफलता मिली है। विषय और वातावरण के अनुकूल संवादों की सर्जना करके आपने इसमें पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। इस नाटक पर पन्ना के महाराजा ने आपको 1000 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया था।

आप ज्योतिष-शास्त्र तथा खगोल-शास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। इसका प्रमाण आपके 'भारतीय ज्योतिष शास्त्र' से सम्बन्धित अप्रकाशित ग्रन्थ से मिलता है। आपने 'चन्द्रमा' पर एक शोधपूर्ण निबन्ध लिखकर बर्लिन विश्वविद्यालय को भेजा था।

यह दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे प्रतिभाशाली कवि और ज्योतिषी का निधन असमय में ही सन् 1943 में हो गया।

पण्डित सकलनारायण शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म बिहार के आरा नगर के एक सरयूपारीण ब्राह्मण-परिवार में सन् 1871 में हुआ था। लगभग 16 वर्ष तक आपकी शिक्षा की कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं हो सकी थी, क्योंकि चंचल स्वभाव होने के कारण आपका मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था। इसके उपरान्त आपने घर पर रहकर ही वहाँ की संस्कृत पाठशाला के छात्रों के सम्पर्क से ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड का कुछ पल्लवग्राही ज्ञान प्राप्त कर लिया और फिर पंडित पीताम्बर मिश्र, गणपति मिश्र तथा महामहोपाध्याय पंडित रघुनन्दन त्रिपाठी के शिष्यत्व में आपने 4 वर्ष में ही संस्कृत-साहित्य का गहन ज्ञान प्राप्त करके काव्य, व्याकरण तथा सांख्य-तीर्थ की परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण की थीं। अपने व्याकरण-सम्बन्धी ज्ञान को बढ़ाने की दृष्टि से आपने काशी में जाकर वहाँ के पंडित संगमलाल झा तथा पंडित तात्या शास्त्री से भी शिक्षा ग्रहण की थी।

प्रारम्भ में आपने जीविका के लिए पौरोहित्य का आश्रय लिया था, किन्तु बाद में अपने घर पर ही संस्कृत की एक पाठशाला खोलकर आप छात्रों को संस्कृत का अध्यापन कराने लगे थे। इससे पहले कुछ दिन के लिए आप आरा के जिला स्कूल में मुख्य अध्यापक भी रहे थे। बाद में आपने अपने अथक प्रयास से आरा में एक 'संस्कृत महाविद्यालय' की भी स्थापना की थी। जब आपकी विद्वत्ता की ख्याति अपने नगर तथा प्रान्त की सीमाओं को लाँघकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति सर आशुतोष मुखर्जी तक पहुँची तो उन्होंने सन् 1914 में शर्माजी की नियुक्ति अपने विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संचालित होने वाले 'संस्कृत कालेज' में 'व्याख्याता'

के पद पर कर दी। सर मुखर्जी के प्रयास से जब कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी में एम० ए० स्तर की पढ़ाई प्रारम्भ हुई तब उन्होंने दरभंगा-निवासी श्री गंगापतिसिंह के साथ आपकी भी नियुक्ति हिन्दी पढ़ाने के लिए कर दी। कलकत्ता में रहते हुए आपने आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल को 'बंगीय हिन्दी परिषद्' की स्थापना में भी उल्लेखनीय सहयोग दिया था।

जिन दिनों आप आरा में थे तब वहाँ के बाबू जयबहादुर और बाबू रामकृष्णदासजी के सहयोग से आपने वहाँ पर 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना सन् 1901 में की थी। जहाँ आप कुशल तथा अध्ययनशील शिक्षक के रूप में विख्यात थे वहाँ हिन्दी-लेखन तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका उल्लेखनीय योगदान रहा था। सम्पादन-कला में आपकी रुचि होने का सबसे सुपुष्ट प्रमाण यह है कि सन् 1908 में आप पण्डित रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य के आमन्त्रण पर 'भारत मित्र' में उनके सहयोगी रहे थे। इसके उपरान्त खड्गविलास प्रेस, पटना की ओर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'शिक्षा' का सम्पादन भी आपने लगभग 27 वर्ष तक अत्यन्त सफलतापूर्वक किया था। अपने इस कार्य-काल में आपने जहाँ हिन्दी में अनेक शोधपूर्ण निबन्ध लिखे थे वहाँ आपने काव्य-रचना के क्षेत्र में भी अच्छी प्रगति कर ली थी। श्री सुमेरसिंह साहबजादे और पंडित अम्बिकादत्त व्यास से आपको अपना पिंगल एवं छन्द-शास्त्र का ज्ञान बढ़ाने में बहुत सहायता मिली थी। आपका काव्य-रचना का अभ्यास इतना परिपक्व था कि आप 'आशु-कविता' करने में भी अत्यन्त निपुण हो गए थे।

यद्यपि आप मूलतः संस्कृत के विद्वान् थे, फिर भी हिन्दी-लेखन में आपने अपनी प्रतिभा से अत्यन्त सफलता प्राप्त कर ली थी। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'हिन्दी सिद्धान्त प्रकाश', 'सृष्टि-तत्त्व', 'प्रेम तत्त्व', 'वीर बाला निबन्ध माला', 'आरा-पुरातत्त्व', 'व्याकरण-तत्त्व', 'जैनेन्द्र किशोर', 'पेडलर साहब की जीवनी' (जीवनी), 'राजरानी' (उपन्यास) और 'अपराजिता' आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आपने जहाँ सन् 1922 में आयोजित 'बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के छपरा-अधिवेशन की अध्यक्षता की थी वहाँ सन् 1935 में आपको बिहार सरकार ने 'महामहोपाध्याय' की सम्मानोपाधि देकर आपकी विद्वत्ता को स्वीकार किया था। आपको अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने जहाँ अपनी मानद उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' प्रदान की थी वहाँ आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने आपको 'विद्या-वाचस्पति' उपाधि से सम्मानित किया था। बिहार की पंडित सभा ने आपको 'विद्या भूषण' की उपाधि भी प्रदान की थी। आप जहाँ हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक थे वहाँ संस्कृत में भी आपने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। आपकी ऐसी रचनाओं में 'सिद्धिनाथ कुसुमांजलि', 'तारकेश्वर यशोगानम्', 'यशः प्रकाश' तथा 'ब्रह्मचर्य और सच्चरित्रता' आदि प्रमुख हैं।

आपका निधन 82 वर्ष की आयु में सन् 1953 में हुआ था।

श्री सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय'

श्री 'भारतीय' का जन्म सन् 1898 में काशी में हुआ था। आपके पिता श्री जगन्मोहन वर्मा हिन्दी के पुरानी पीढ़ी के लेखकों में थे और 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी की ओर से प्रकाशित प्रथम 'बृहत् शब्द कोश' के सम्पादक-मण्डल के सदस्य थे। श्री भारतीय की शिक्षा बनारस, लखनऊ और प्रयाग में हुई थी। आप 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के हिन्दी के प्रथम एम० ए० थे और शोध-कार्य स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के कारण छोड़ दिया था। प्रारम्भ में सन् 1926 में आपने कायस्थ पाठशाला, इलाहाबाद में अध्यापक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया था और कुछ दिन तक 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' में भी आप रहे थे। आपने सन् 1934 में 'हिन्दी लेखक संघ' की स्थापना करके उसके मुखपत्र के रूप में 'लेखक' नामक
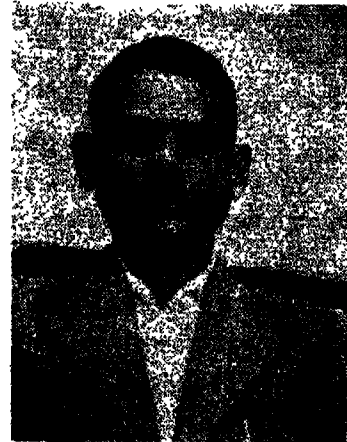
एक मासिक पत्र का सम्पादन प्रकाशन भी किया था। सन् 1935 में अपने 'शारदा प्रेस' की स्थापना करके आपने वहाँ से 'दुनिया' नामक मासिक पत्र भी निकाला था।

आप हिन्दी के उत्कृष्ट कथाकार, व्यंग्य-लेखक, समीक्षक और पत्रकार थे। जिन दिनों आप 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' में कार्य-रत थे उन दिनों आपने अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया था। 'लेखक संघ' के माध्यम से आपने हिन्दी लेखकों का एक 'मंच' बनाने का प्रयास भी किया था, लेकिन उसमें आपको सफलता नहीं मिल सकी। आप प्रेमचन्दजी के समवयस्क तथा अभिन्न मित्र थे और उन दिनों का ऐसा कोई भी साहित्यिक पत्र न होगा जिसमें आपकी रचनाएँ प्रकाशित न हुई हों।

आपकी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या 40 के लगभग है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—'बीसल देव रासो', 'सूर रामायण', 'नयन' 'मुरली माधुरी', 'प्रायश्चित्त', 'स्वप्न वासवदत्ता', 'प्रेम-पराकाष्ठा', 'सोलह कहानियाँ', 'चीनी यात्री सुयेन च्वांग', 'पति-निर्वाचन', 'खलीफा', 'हिन्दी के विराम-चिह्न', 'व्याख्यानत्रयी', 'तार के खम्भे', 'एलबम या शब्द चित्रावली', 'जानी दुश्मन', 'लेखनी उठाने से पूर्व या लेखक बन्धु', 'आकाश की झांकी', 'विश्व की कहानी', 'प्रसिद्ध उड़ाके', 'आकाश पर अधिकार', 'एशिया की कहानियाँ', 'मनोहर कहानियाँ' (चार भाग), 'रूमानिया की कहानियाँ' तथा 'सरल रामायण' आदि।

आपका निधन सन् 1973 में वाराणसी में हुआ था।

श्री सत्यदेव विद्यालंकार

आपका जन्म एक अक्तूबर सन् 1897 को पूर्वी पंजाब के नाभा राज्य में हुआ था। आपके पिता श्री प्रभुदयाल खन्ना रेलवे में स्टेशन मास्टर थे। आपके नानाजी क्योंकि स्वामी श्रद्धानन्दजी के समकालीन थे, अतः उन्होंने सत्यदेवजी को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में सन् 1906 में अध्ययनार्थ प्रविष्ट कर दिया था। सन् 1920 में गुरुकुल से स्नातक होने के अनन्तर आपने आजीविका के रूप में 'पत्रकारिता' के क्षेत्र को ही अपनाया और धीरे-धीरे इस क्षेत्र में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली कि आज स्थिति यह है कि आपके नाम के उल्लेख के बिना 'हिन्दी-पत्रकारिता' का इतिहास अधूरा ही रह जाता है। आप जिन दिनों गुरुकुल में पढ़ते थे तब आपने भावी जीवन में 'पत्रकार' बनने के लिए ही अपने हस्त-लिखित 'राजहंस', 'अद्‌भुत', 'विजय दशमी' और 'समालोचक' आदि हस्तलिखित पत्र निकाले थे। इनमें से 'राजहंस' तथा 'अद्‌भुत' जहाँ मासिक थे वहाँ अन्तिम दोनों दैनिक थे। 'विजय दशमी' दैनिक में तो कार्टून भी रहा करते थे। गुरुकुल कांगड़ी की ओर से 'सद्धर्म प्रचारक' और 'श्रद्धा' नामक जो पत्र प्रकाशित हुआ करते थे उनको निरन्तर पढ़ते रहने के कारण भी आपमें 'पत्रकार' बनने की भावनाएँ उद्‌भूत हुई थीं।

गुरुकुल से स्नातक होने के अनन्तर आपने सर्वप्रथम दिल्ली में आकर 'विजय' दैनिक के सम्पादन का कार्य-भार सँभाला। पत्रकारिता को आप किसलिए इतना महत्त्व देते थे इसका स्पष्टीकरण आपने एक बार इस प्रकार किया था—"मैं पत्रकारिता को देश-सेवा का प्रमुख साधन मानता रहा हूँ और जितनी दूर तक मैं दृष्टिपात कर सका तो मैंने देखा कि देश के प्रायः सभी नेता किसी-न-किसी पत्र के साथ सम्बन्धित थे। सर्वश्री लोकमान्य तिलक, स्वामी श्रद्धानन्द, महामना मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एनी बेसेंट और गणेशशंकर विद्यार्थी के पत्रकार-जीवन से मुझे विशेष प्रेरणा मिली थी। गुरुकुल कांगड़ी का वाचनालय और पुस्तकालय मेरे लिए आकर्षण के सबसे बड़े केन्द्र थे। उनकी रचना भी कुछ ऐसी आकर्षक थी कि मैं वहाँ घण्टों बैठा रहता था। अपने वाचनालय की लम्बी अण्डाकार टेबल पर रखे हुए दैनिकों, मासिकों व अन्य पत्र-पत्रिकाओं का आकर्षक दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने नाचता रहता है। सबसे पहले मैंने नियमित रूप से कालीनाथ राय के 'ट्रिब्यून', डॉ० एनी बेसेण्ट के

'बाइट' और कलकत्ता के 'अमृतबाजार पत्रिका' को पढ़ना शुरू किया। राष्ट्रीय पत्रों से जमानतें माँगी जाने अथवा सरकारी प्रकोप की अन्य घटनाओं का मेरे हृदय पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था। पंजाब के फौजी शासन के अत्याचारों की भी मुझ पर बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। इन सबका मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा उससे मुझे गुरुकुल में ही जन्म-जात पत्रकार कहा जाने लगा था। संक्षेप में यह कहना अधिक उचित होगा कि मुख्य रूप से मैंने देश-सेवा को अपनाया और उसके साधन के रूप में पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। मेरा एक पैर यदि किसी पत्र के कार्यालय में रहा तो दूसरा जेल में। सन् 1920 से जो यह क्रम शुरू हुआ तो सन् 1947 तक यह निरन्तर बना ही रहा।"

श्री सत्यदेवजी के पत्रकारिता को अपनाने-सम्बन्धी यह विचार उनकी ध्येय-निष्ठा, कर्म-तत्परता और उत्कट देश-भक्ति के परिचायक तो हैं ही, साथ ही देश की तत्कालीन परिस्थितियों के ऐसे उज्ज्वल दर्पण हैं जिनमें पत्रकारों को जीना पड़ता था। ऐसी ही विषम तथा कण्टकाकीर्ण परिस्थितियों में आपने पत्रकारिता को हार्दिकता से अपनाकर यह उपहार पाया था कि अनवरत स्वाध्याय तथा लेखन में लगे रहने के कारण सन् 1954 में आपकी नेत्रों की ज्योति जाती रही थी। आज हिन्दी में 'दैनिक हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स' तथा 'दैनिक विश्वमित्र'-जैसे जो विशिष्ट पत्र प्रकाशित हो रहे हैं उनके आदिसम्पादक होने का गौरव आपको ही प्राप्त था। दैनिक 'विजय' ही बाद में 'वीर अर्जुन' हो गया था। राजधानी से भारत-विभाजन के उपरान्त 'अमर भारत' नामक जो दैनिक पत्र गोस्वामी गणेशदत्त ने निकाला था उसके आदिसम्पादक भी आप ही थे। इन प्रमुख दैनिकों के अतिरिक्त आपने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'स्वतन्त्र', ग्वालियर, इन्दौर तथा भोपाल से प्रकाशित होने वाले 'नवप्रभात' दैनिक का सम्पादन भी आपने किया था। इन दैनिकों के अतिरिक्त आपने 'राजस्थान केसरी' (वर्धा), 'मारवाड़ी', 'प्रणवीर' (नागपुर) तथा 'नवयुग' (कलकत्ता) आदि कई साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों का सम्पादन भी किया था। हिन्दी-पत्रों में कार्टून प्रकाशित करने की परम्परा का सूत्रपात सर्वप्रथम आपने ही 'नवयुग' (मासिक) से किया था। इस प्रसंग में आपको जहाँ अनेक बार जेल जाना पड़ा वहाँ ब्रिटिश नौकरशाही से बार-बार चेतावनियों के पुरस्कार भी आपको मिलते रहते थे।

आप जहाँ उच्चकोटि के पत्रकारों में अग्रगण्य स्थान रखते थे वहाँ आपकी लेखनी से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की सृष्टि भी हुई है। आपने जहाँ दर्जनों उत्कृष्ट जीवनियाँ लिखी थीं वहाँ स्वाधीनता-आन्दोलन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने वाली अनेक पुस्तकों का निर्माण भी किया था। आपने जहाँ राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री लोकनायक जयनारायण व्यास के कर्मठ जीवन तथा कृतित्व पर प्रकाश डालने वाला 'धुन के धनी' नामक ग्रन्थ लिखा था वहाँ पंजाब के आर्यसमाजी नेता और उर्दू के प्रख्यात पत्रकार महाशय कृष्ण के जीवन की झाँकी अपनी 'जीवन-संघर्ष' नामक पुस्तक में प्रस्तुत की है। इस प्रकार की आपकी रचनाओं में 'राजा महेन्द्रप्रताप', 'लाला देवराज', 'दीदी सुशीला मोहन', 'पैदायशी बागी डॉ० सुखदेव', 'दयानन्द दर्शन', 'जनरल अवारी', 'स्वामी श्रद्धानन्द' तथा 'राष्ट्रवादी दयानन्द' के नाम विशेष उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'आर्य सत्याग्रह', 'परदा', 'मध्य भारत', 'मध्य भारत के आँकड़े', 'अणुव्रत', 'नव निर्माण की पुकार', 'बीकानेर षड्यन्त्र का मुकद्दमा', 'आज का मध्य भारत', 'पंजाब की चिनगारी', 'करो या मरो', 'यूरोप में आजाद हिन्द', 'टोकियो से इम्फाल', 'लालकिले में', 'जय हिन्द, 'आर्यसमाज किस ओर' तथा 'राष्ट्रधर्म' आदि अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें आपकी लेखन-प्रतिभा बड़ी उदग्रता से प्रकट हुई है। इन मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने अनेक अभिनन्दन-ग्रन्थों का सम्पादन करके इस दिशा में सर्वथा नई दृष्टि और नई चेतना का उद्भव किया था। इस प्रसंग में इन्दौर के सेठ हुकमचन्द जैन, मुनि शान्ति सागर, बीकानेर के सेठ रामगोपाल मोहता, असम के हनुमानबक्श कनोई तथा तख्तमल जैन आदि महानुभावों के अभिनन्दन-ग्रन्थों के नाम भी विशेष ध्यातव्य हैं। यदि यहाँ हमने आपकी सन् 1922 में प्रकाशित सबसे पहली पुस्तक 'गान्धीजी का मुकद्दमा' का उल्लेख न किया तो भारी भूल होगी। इस पुस्तक में आपने गान्धीजी पर चलाये गए उस ऐतिहासिक मुकद्दमे का विवरण प्रस्तुत किया था जिसमें आपको राजद्रोह के अभियोग में 6 वर्ष की सजा हुई थी। इसी प्रसंग में आपकी 'हमारे राष्ट्रपति' पुस्तक का उल्लेख करना भी अत्यन्त समीचीन रहेगा। इसमें भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के सभी अध्यक्षों

की प्रामाणिक जीवनियाँ हैं। उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्षों को 'राष्ट्रपति' कहा जाता था।

आपकी साहित्य तथा पत्रकारिता-सम्बन्धी विविध सेवाओं को दृष्टि में रखकर पंजाब सरकार के भाषा विभाग ने आपका 31 मार्च सन् 1965 को अत्यन्त भावभीना अभिनन्दन किया था और इस उपलक्ष्य में एक 'पुस्तिका' भी प्रकाशित की थी। इस पुस्तिका में आपकी साहित्य-सेवाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। आपकी 'परदा' तथा 'राष्ट्रधर्म' नामक पुस्तकें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा 'राधामोहन गोकुलजी पुरस्कार' से सम्मानित हुई थीं।

आपका निधन 25 जून सन् 1965 को हुआ था।

श्री सत्यनारायण श्रीवास्तव

आपका जन्म 28 अप्रैल सन् 1928 को मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर नामक नगर में हुआ था। आपकी शिक्षा अधिक नहीं हुई थी; क्योंकि आपके पिता तथा माता असमय में ही स्वर्ग सिधार गए थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू की एक विशाल जनसभा को देखकर दस-वर्षीय बालक श्रीवास्तव जब अचानक भीड़ को चीरता हुआ मंच पर जा पहुँचा तो नेहरूजी ने आपकी पीठ थपथपाई और कहा, "जाओ बेटे, ये तुम्हारे पढ़ने-लिखने के दिन हैं।" केवल आठवीं तक की शिक्षा ग्रहण करके आप पत्रकारिता की ओर उन्मुख हो गए।
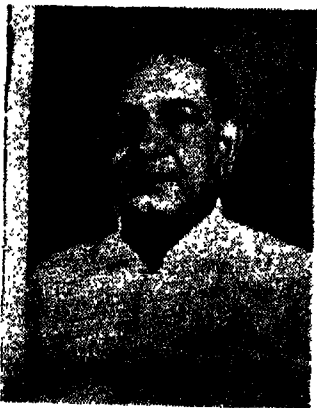
जब आपको आगे की पढ़ाई करने के विचार से आपकी बड़ी बहन सावित्री वर्मा के पास जबलपुर भेजा गया तो श्रीवास्तवजी पढ़ने की बजाय पंडित भवानीप्रसाद तिवारी के पास जाकर साहित्य का रस लेने लगे। वहाँ पर होने वाले जमाव को देखकर

आपके मन में सोया हुआ पत्रकार जग उठा और आपने नरसिंहपुर से 'उदय टाइम्स' नामक एक पत्र प्रकाशित कर दिया, जो सन् 1948 से सन् 1952 तक साप्ताहिक रूप में बराबर प्रकाशित होता रहा। इसके उपरान्त आप भोपाल से प्रकाशित होने वाले 'नवभारत' दैनिक के सम्पादक हो गए और उसमें सन् 1952 से सन् 1955 तक सुचारु रूप से कार्य किया।

सन् 1956 से सन् 1960 तक आप मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उपमन्त्री चुने गए। जब सन् 1957 में भोपाल में श्रमजीवी पत्रकार संघ का सम्मेलन हुआ तब आप उसकी स्वागत-समिति के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। फिर सन् 1958 से 1960 तक आप भोपाल जिला कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष भी रहे थे। आपने 'नवभारत' जबलपुर तथा 'प्रहरी' जबलपुर का सम्पादन भी सन् 1957 से सन् 1960 तक अत्यन्त सफलतापूर्वक किया था। सन् 1959 में आपने 'जागरण' में कार्य प्रारम्भ किया था। आप लगभग 14 वर्ष तक उसके सम्पादक रहे थे। सन् 1973 में डॉ० शंकरदयाल शर्मा को जो अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया गया था उसका सम्पादन आपने ही किया था। सन् 1967 में आपने नरसिंहपुर से 'जनमत' नामक एक साप्ताहिक भी निकाला था, जो अत्यन्त लोकप्रिय रहा था। कुछ दिन तक आप भोपाल से प्रकाशित होने वाले 'भास्कर' के सम्पादक भी रहे थे।

आपका निधन 1 फरवरी सन् 1981 को हुआ था।

श्रीमती सत्यवती स्नातिका

श्रीमती सत्यवतीजी का जन्म लाहौर छावनी (अब पश्चिमी पाकिस्तान) के पंडित बख्शीशसिंह के घर में 2 फरवरी सन् 1904 को हुआ था। यद्यपि आपके पिताजी जन्मना सिख थे, परन्तु विचारों से आर्यसमाजी थे। जब आप 9 वर्ष की थीं तब आपको कन्या महाविद्यालय, जालन्धर में प्रविष्ट करा दिया गया। आपके पिताजी केवल आपका ही व्यय-भार वहन नहीं करते थे, प्रत्युत संस्था की कई छात्राओं को भी वे छात्र-वृत्ति देते थे। अपनी छात्रावस्था में आप भाषण-कला में इतनी प्रवीण थीं कि संस्था के संस्थापक लाला

देवराजजी आपको अपने साथ कई बार रंगून, मनीला और बिहार शरीफ आदि स्थानों में ले गए थे। रंगून विश्वविद्यालय में तो आपने भाषण-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार में 'स्वर्ण पदक' भी प्राप्त किया था। इसी प्रकार अपनी छात्रावस्था में आपने 'दयानन्द जन्म शताब्दी समारोह' मथुरा में भी अपनी वक्तृत्व-कला से सबको चमत्कृत कर दिया था। आप सन् 1922 में वहाँ से स्नातिका हुई थीं और सन् 1928 तक उसी संस्था में कार्य किया था।

आपका विवाह सन् 1928 में जात-पात तोड़कर मेरठ के एक युवक एडवोकेट विजयपालसिंह से किया गया था, जो राष्ट्रीय संग्राम में अनेक बार जेल जाकर उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य भी रहे थे। चौधरी विजयपाल सिंह जाति के जाट थे और सत्यवतीजी का जन्म ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आर्य-समाजी संस्था में शिक्षित-दीक्षित होने के कारण आपके मन में जात-पात के भेद-भावों वाले विचार नहीं थे। अपने मनोनुकूल जीवन-साथी पाकर आप भी सामाजिक जीवन में उनके साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य करती रहीं और 'सहधर्मिणी' शब्द को सही रूप में सार्थक किया। मेरठ के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में आपका प्रमुख स्थान था। आप जहाँ अनेक वर्ष तक 'हरिजन सेवक संघ' की अध्यक्षा रहीं वहाँ सन् 1937 में हुए चुनाव में मुजफ्फरनगर से प्रान्तीय विधान सभा की सदस्या भी चुनी गई थीं। आपके पति भी एक-दूसरे चुनाव-क्षेत्र से विधान सभा के सदस्य चुने गए थे। वे विधान-परिषद् के सदस्य भी रहे थे।

आप मेरठ विश्वविद्यालय की सीनेट की सदस्या होने के साथ-साथ सन् 1960 में 'मेरठ जिला परिषद्' की अध्यक्षा भी रही थीं। आपने मेरठ से 'किसान सेवक' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी कई वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादित किया था। आपके लेख प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'स्त्री दर्पण' और 'मनोरमा' में प्रकाशित हुआ करते थे। आप 'भारत सेवक समाज' की रचनात्मक प्रवृत्तियों में भी बराबर रुचि लेती रहती थीं।

आपका निधन 14 दिसम्बर सन् 1978 को हुआ था।

डॉ० सत्यव्रत सिनहा

डॉ० सिनहा का जन्म 18 सितम्बर सन् 1926 को प्रयाग में हुआ था। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने के अनन्तर वहाँ से ही डी०फिल० किया था। अपने छात्र-जीवन से ही नाट्य-लेखन तथा मंचन में रुचि रखने के कारण आपको इस क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता मिली थी। आपके द्वारा लिखित अनेक नाटक जहाँ आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित होते थे, वहाँ देश की सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं।

नाटकों के मंचीकरण की दिशा में आपका जो अनन्य योगदान था उसीके कारण आपको संगीत नाटक अकादमी तथा अन्य ऐसी संस्थाओं के द्वारा अनेक स्थानों पर निर्णायक भी बनाया जाता था। 'प्रयाग रंगमंच' के द्वारा आपने इलाहाबाद तथा देश के अन्य नगरों में अनेक नाटक अभिनीत कराए थे। निधन से पूर्व आप 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग' के सहायक मन्त्री थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'मिट्टी की गाड़ी', 'नवरंग' तथा 'अमृत पुत्र' उल्लेखनीय हैं।

आपका असामयिक अवसान आपातकालीन मीसा-नजरबन्दी के समय 7 नवम्बर सन् 1976 को प्रयाग में हुआ था।

श्री सत्यशरण रतूड़ी

श्री रतूड़ीजी का जन्म सन् 1872 में टिहरी (गढ़वाल) के 'गोदी' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री रामशरण रतूड़ी गढ़वाल प्रदेश के प्रभावशाली समाज-सुधारकों में अग्रगण्य थे और मादक द्रव्यों के बहिष्कार की दिशा में आपने बहुत उल्लेखनीय कार्य किया था। आपने 'सर्वं हि मादकं त्याज्यं' नाम से एक ट्रैक्ट भी संस्कृत भाषा में लिखा था। इसका विवरण सन् 1906 के 'गढ़वाली' पत्र में पढ़ने को मिलता है। श्री रतूड़ी हिन्दी के प्रतिभाशाली कवि के रूप में माने जाते हैं। आपकी 'उठो गढ़वालियो !' शीर्षक जो कविता 'गढ़वाली' के मई सन् 1905 के अंक में प्रकाशित हुई थी उससे आपकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। 'गढ़वाली' में प्रकाशित आपकी रचनाएँ श्री तारादत्त गैराला द्वारा सम्पादित 'गढ़वाली कवितावली' नामक पुस्तक में संकलित हैं।

आपकी रचनाएँ प्रायः 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ करती थीं और आपकी प्रशंसा जहाँ श्री रामनरेश त्रिपाठी-जैसे काव्य-मर्मज्ञ ने की थी वहाँ प्रख्यात विचारक स्वामी रामतीर्थ भी आपकी कविताओं को बड़े चाव से पढ़ा करते थे। आपकी काव्य-कला-कुशलता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आपके निधन पर यह उद्गार प्रकट किए थे—"स्वर्गीय श्री सत्यनारायण रतूड़ी सुकवि थे। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था; आपकी वाणी में रस था। आपकी कविताएँ सरस, सरल और भावमयी होती थीं। इससे मैं आपको 'सरस्वती' में स्थान देता था।...खेद है कि समय से पहले ही वह कवि-कुसुम मुरझाकर गिर गया।"

आपकी चुनी हुई काव्य-कृतियों का संकलन श्री विश्वम्भरदत्त उनियाल द्वारा सम्पादित 'सत्य कुसुमांजलि' नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। आपकी कविताओं का प्रकाशन श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'कविता कौमुदी' के द्वितीय भाग में किया था। आपके सुपुत्र डॉ० आनन्द शरण रतूड़ी काशी विश्वविद्यालय में रजिस्ट्रार रहने के साथ-साथ रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के 'कुलपति' भी रहे थे। इन पदों पर रहने से पूर्व आप हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में वाणिज्य विषय के प्राध्यापक रहे थे। आप सन् 1948 में प्रजामण्डल द्वारा निर्मित 'गढ़वाल मन्त्रिमण्डल' में एक मन्त्री भी रहे थे।

श्री रतूड़ी का निधन पटियाला में 24 जनवरी सन् 1926 को हुआ था।

श्री सत्यानन्द अग्निहोत्री

श्री अग्निहोत्रीजी का जन्म सन् 1850 में उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद के अकबरपुर नामक स्थान में हुआ था। आपके प्रपितामह अकोड़ी के राजा के दीवान थे। शैशवावस्था से आपके जीवन में अलौकिक तथा अद्वितीय घटनाएँ घटने लगी थी। रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज से विधिवत् शिक्षा ग्रहण करने के अनन्तर आप शासकीय सेवा में आए और सन् 1873 में जब आपका स्थानान्तरण लाहौर के लिए हुआ तब आपका सम्पर्क श्री नवीनचन्द्र राय से हुआ और आप ब्रह्मसमाजी हो गए। आपके मानस में सत्य का सर्वांग प्रेम विकसित हुआ था और जब संसार के सारे अशुभ तथा मिथ्या भावों के प्रति घृणा जागृत हुई तब 32 वर्ष की छोटी-सी आयु में ही आपने सरकारी नौकरी को सर्वथा तिलांजलि देकर अपने जीवन का व्रत इस प्रकार घोषित कर दिया :

सत्य, शिव सुन्दर ही मेरा परम लक्ष्य होवे।
जग के उपकार ही में जीवन यह जावे ॥

इस प्रकार सन् 1887 में अग्निहोत्रीजी ने 'भगवान् देवात्मा' के रूपमें 'देव समाज' की नींव डाल दी और आप 'आदर्श सुधारक' के रूप में जनता के समक्ष प्रतिष्ठित हुए। अपने आठ उद्देश्यों की घोषणा में मनुष्य को विश्व

का एक अंग शोषित करके संसार में सच्चा सतयुग लाने का संकल्प किया था।

'देव समाज' के कार्य को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने की दृष्टि से आपने उसके 'आत्मिक उच्च परिवर्तन विभाग', 'साहित्य विभाग', 'धन विभाग' और 'विद्याविभाग' नामक 4 विभाग किए थे। इसके माध्यम से मनुष्यों से शराब, मांसाहार, जुआ, चोरी, रिश्वत तथा अनेक प्रकार के भ्रष्टाचारों को दूर करने का प्रयास किया जाता था। अपने इस उद्देश्यों की पूर्ति तथा प्रचार के लिए आपने 'जीवन पथ' नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया था। अग्निहोत्रीजी जहाँ अच्छे वक्ता तथा सुधारक थे वहाँ कुशल पत्रकार एवं सफल गद्य-लेखक के रूप में भी आपकी देन अनन्य है। आपकी मौलिक रचनाओं में 'सत्य महिमा प्रदर्शक', 'ब्रह्म धर्म संहिता', देवत्व 'प्रकाश', 'पतिव्रता दर्पण', 'सावित्री चरित', 'लीलावती चरित', 'अग्निहोत्री चरित', 'शान्ति चरित', 'आत्म-कथा' 'आत्म-परिचय', 'देव शास्त्र' (चार भाग), 'मुझमें देव जीवन का विकास' (दो भाग), 'मेरा वंश और मेरे वंशीय पूर्वज', 'विज्ञानमूलक तत्त्व शिक्षा', 'नीति सार' और 'ऋषि वाक्य संग्रह' के नाम विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आपने बंगला से भी कई पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में किया था, उनमें 'सुखी परिवार', 'ब्रह्म समाज के व्याख्यान' और 'ब्रह्म समाज के मासिक उपदेश' प्रमुख हैं।
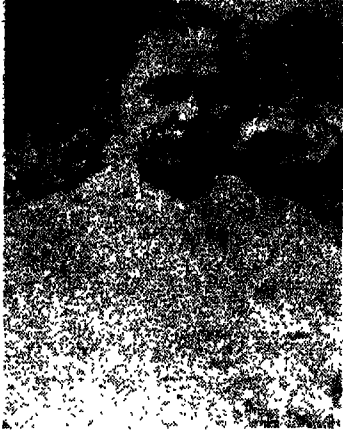
आप देवनागरी लिपि तथा हिन्दी भाषा के प्रचार के कट्टर समर्थक थे। सरकारी कार्यालयों और कचहरियों में काम-काज की भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग के लिए आपने भारी संघर्ष किया था और स्थान-स्थान पर जाकर भाषण भी दिए थे। सन् 1875 में प्रकाशित अपने 'हिन्दू बान्धव' पत्र के माध्यम से आपने हिन्दी और उर्दू के भेद को समाप्त करने का भी एक आन्दोलन चलाया था। इस सम्बन्ध में आपका यह मन्तव्य ध्यान देने योग्य है—"फारसी अक्षरों के स्थान में देवनागरी अक्षरों और अरबी तथा फारसी शब्दों से भरी हुई उर्दू कहलाने वाली भाषा के स्थान में संस्कृत से अधिक सम्बन्ध रखने वाली सहज हिन्दी भाषा का प्रचार मैंने विशेष रूप से आरम्भ किया है।" श्री अग्निहोत्रीजी की हिन्दी-निष्ठा का इससे अधिक सुपुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपने पंजाब-जैसे अहिन्दी-भाषी प्रदेश में हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का अतुलनीय कार्य किया था।

आपका निधन सन् 1929 में 79 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्री सत्यैन्द्रबन्धु आर्य

श्री आर्य का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के वीर गाँव टिटौटा नामक गाँव में सन् 1901 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा डी० ए० वी० कालेज, अनूपशहर (बुलन्दशहर) में हुई थी। आप उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय में लगभग 30 वर्ष तक प्रधान लिपिक के पद पर कार्य करते रहे थे। वहाँ पर कार्यरत रहते हुए भी आपने आर्यसमाज के प्रचार-कार्य में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया था।
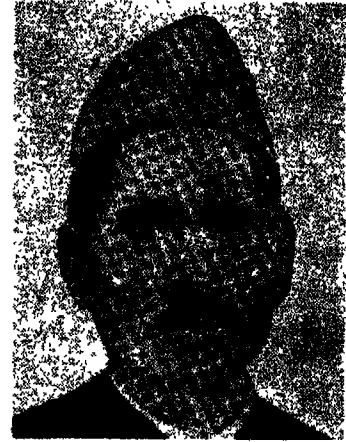
आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए आपने 'मनुष्य हितैषिणी' (1964), 'आर्यसमाज के कार्यों का सिंहावलोकन' (1966) तथा 'शिव बोध' (1969) आदि पुस्तकों की रचना की थी।

आपका निधन 21 मई सन् 1971 को हुआ था।

श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी

श्री अवस्थीजी का जन्म 4 जुलाई सन् 1901 को उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड अंचल के उरई नामक नगर में हुआ था। आपके पिता पोस्ट आफिस में बाबू थे। वे बड़े स्वाध्यायशील थे और उन्होंने अँग्रेजी के प्रख्यात उपन्यास-लेखक श्री रेनाल्ड के 'मिस्ट्रीज आव दि कोर्ट आव लन्दन' के सभी भाग खरीद-खरीदकर पढ़े थे। जब आपके पिता देवरिया के पोस्ट आफिस में नियुक्त थे तब आपको वहाँ के स्कूल में भरती कराया गया था। वहाँ से आपने चौथी कक्षा उत्तीर्ण की थी। इस बीच आपके पिताजी का स्थानान्तरण कानपुर के लिए हो गया और आपको कानपुर के 'क्राइस्ट चर्च हाई स्कूल' की पाँचवीं कक्षा में प्रविष्ट किया गया। उस समय आपकी आयु 10 वर्ष की थी। अभी आप ठीक तरह से छठी कक्षा की परीक्षा भी न दे पाए थे कि आपका विवाह कर दिया गया। सन् 1917 में आपने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपके पिताजी अवस्थीजी को आगे नहीं पढ़ाना चाहते थे। उनकी इच्छा आपको कहीं छोटा-मोटा क्लर्क बना देने की थी। लेकिन पिताजी की इच्छा के विपरीत आप अकेले ही 'क्राइस्ट चर्च कालेज' के अँग्रेज प्रिंसिपल से मिले। उन्होंने तुरन्त आपको 10 रुपए मासिक देने और फीस से मुक्त करने की सुविधा दे दी और आप अपने अध्ययन में लग गए। अपने पिताजी की गरीबी को देखकर आपने 5 रुपए प्रति छात्र प्रति मास के कुछ ट्यूशन भी कर लिए और इस प्रकार गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। जब सन् 1919 में अवस्थीजी के इण्टरमीडिएट में उत्तीर्ण होने का समाचार लेकर आपके घर पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आए तब अवस्थीजी अपने पिताजी के साथ भोजन कर रहे थे। नवीनजी अवस्थीजी के सहपाठी थे। इस कालेज के अध्ययन-काल में नवीनजी से अवस्थीजी का जो सम्बन्ध स्थापित हुआ था वह सन् 1918 से लेकर मृत्यु-पर्यन्त बना रहा और दिनानुदिन दृढ़ से दृढ़तर होता गया।

इस बीच आपके पिताजी का देहावसान सन् 1920 में हो गया और आपकी पत्नी भी एक पुत्री के प्रसव के कारण टी० बी० से ग्रस्त हो गईं और 6 महीने बीमार रहकर इस संसार को छोड़ गईं। पुत्री पहले ही काल के गाल में जा चुकी थी। श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा की कृपा से आप गुरु रघुवरदयालु के स्कूल में प्रधानाध्यापक हो गए और आगे पढ़ते भी रहे। सन् 1922 में आपने जैसे-तैसे बी० ए० पास किया और तुरन्त 'कान्यकुब्ज स्कूल' में 60 रुपए मासिक पर अध्यापकी का कार्य मिला। किन्तु 'मारवाड़ी स्कूल' में 65 रुपए पर काम मिल रहा था। वहाँ पर श्री कृष्ण विनायक फड़के प्रधानाध्यापक थे। अभी आपने वहाँ पर कठिनाई से एक

मास ही कार्य किया होगा कि आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए आप काशी चले गए और वहाँ जाकर 'हिन्दू विश्व-विद्यालय' में एम० ए० में प्रवेश ले लिया। एम० ए० करने के उपरान्त आपने कानपुर में सन् 1922 से सन् 1927 तक 'मारवाड़ी विद्यालय' में अध्यापन-कार्य किया। इस कार्य-काल में आपका परिचय-क्षेत्र व्यापक हो गया और धीरे-धीरे आप श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आ गए। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिशंकर विद्यार्थी 'मारवाड़ी विद्यालय' में अवस्थीजी के शिष्य थे। गणेशजी के सम्पर्क से आप राष्ट्रीय आन्दोलनों से सम्बन्धित गतिविधियों में भी भाग लेने लगे थे। उन्हीं दिनों अवस्थीजी का परिचय आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी से भी हो गया था। अवस्थीजी के 'श्री शारदा' (जबलपुर) में प्रकाशित एक लेख से वे बहुत प्रभावित हुए थे और उनकी कृपा से ही अवस्थीजी की नियुक्ति बी० एन० एस० डी० कालेज में हुई थी। इस नियुक्ति में डॉ० बेनीप्रसाद का भी उल्लेखनीय सहयोग रहा था। श्री 'फिराक' गोरखपुरी भी उन दिनों इसी कालेज में उर्दू के प्राध्यापक थे। आप अन्तिम दिनों में इस कालेज के प्रधाना-चार्य थे और कुछ वर्ष पूर्व ही सेवा-निवृत्त हुए थे।

अध्यापन-कार्य में व्यस्त रहते हुए भी अवस्थीजी ने अपने लेखन-कार्य को धीरे-धीरे बढ़ाया था और आपकी रचनाएँ हिन्दी की सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगी थीं। आपकी पहली कृति 'भ्रमित पथिक' शीर्षक

एक गद्यकाव्य था, जिसे श्री कृष्णकान्त मालवीय ने सन् 1929 में अपने 'अभ्युदय' में प्रकाशित किया था। आपके लेखन का जो श्रीगणेश इस प्रकार हुआ था उसीका सुपरिणाम यह हुआ था कि आप अच्छे लेखकों में गिने जाने लगे। आपकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—'महात्मा बुद्ध' (1933), 'तुलसी के चार दल' (दो भाग, 1935), 'हिन्दी गद्य-गाथा' (1935), 'फूटा शीशा' (1936), 'एकादशी' (1937), 'मुद्रिका' (1939), 'विचार विमर्श' (1940), 'हृदय-ध्वनि' (1941), 'त्रिमूर्ति' 1942), 'दो एकांकी' नाटक (1942), 'नाटक और नायक' (1950), 'बुद्धि तरंग' (1950), 'पड़ोस की कहानियाँ' (1952), 'मझली महारानी' (1953), 'साहित्य तरंग' (1956) तथा 'विचार तरंग' (1960)। इनके अतिरिक्त आपने 'गहरे पानी पैठ' नाम से अपनी एक आत्म-कथा भी लिखी थी, जो आपके देहावसान के उपरान्त सन् 1978 में प्रकाशित हुई है। इस आत्म-कथा के लेखन की समाप्ति 9 जुलाई सन् 1963 को हुई थी। आपकी इस आत्म-कथा से जहाँ साहित्य-जगत् की बहुत-सी उपयोगी जानकारी मिलती है वहाँ उन दिनों की राष्ट्रीय गतिविधियों का विवरण भी यथा प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में इसे कानपुर की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियों का कोश ही कहा जा सकता है। यथा प्रसंग अनेक साहित्यिक तथा राजनैतिक विभूतियों के रोचक संस्मरण भी इसमें आ गए हैं। आपको सर्वश्रेष्ठ अध्यापक होने के उपलक्ष्य में राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने 26 जनवरी सन् 1959 को पुरस्कृत भी किया था।

आपका निधन सन् 1973 में कानपुर में हुआ था।

श्री परितोष गार्गी के सहयोग से जहाँ अनेक पंजाबी नाटकों का लेखन और निर्देशन किया था वहाँ हिन्दी-रंगमंच की अभिवृद्धि में भी पर्याप्त रुचि ली थी।

रेडियो के लिए आपने जहाँ बहुत से पंजाबी नाटकों के हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किए वहाँ अनेक वार्ताएँ भी प्रसारित की थीं। आकाशवाणी दिल्ली के बाल-कार्यक्रम से भी आप अनेक वर्ष तक सम्बद्ध रही थीं। आपने पंजाब विश्वविद्यालय से 'रंगमंच की दृष्टि से हिन्दी और पंजाबी नाटक' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके सन् 1972 में डाक्टरेट की उपाधि भी प्राप्त की थी।

आप जहाँ कुशल नाट्य-निर्देशिका थीं वहाँ आपने हिन्दी में मोपासाँ की चुनी हुई कहानियों का अनुवाद सन् 1951 में 'प्रायश्चित्त' नाम से प्रस्तुत किया था। आपका 'रूसी कहानियों के अनुवाद का एक संकलन भी 'नीली चिनगारियाँ' नाम से सन् 1951 में ही प्रकाशित हुआ था। आपकी अन्य मौलिक रचनाओं में 'मनोविश्लेषण और उसके जन्मदाता' (1950), 'सोम का घड़ा' (1954) तथा 'गार्गी के बाल नाटक' (1955) विशेष उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 13 जुलाई सन् 1973 को हुआ था।

डॉ० श्रीमती सन्तोष गार्गी

श्रीमती गार्गी का जन्म 10 मार्च सन् 1926 को लाहौर (पाकिस्तान) में हुआ था। पंजाब विश्वविद्यालय से अँग्रेजी साहित्य की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने अपने जीवन को साहित्य तथा समाज की सेवा में ही लगाने का संकल्प कर लिया था। विवाहोपरान्त आपने अपने पति

श्री सभाजीत पाण्डेय 'अश्रु'

श्री अश्रुजी का जन्म सन् 1916 में अपनी ननिहाल पाण्डेयपुर (मेहनाजपुर) आजमगढ़ में हुआ था। वैसे आपके पूर्वज रामगढ़ (वाराणसी) के रहने वाले थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा रामगढ़ में ही हुई थी और जुबली इण्टर कालेज, मिर्जापुर से आपने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

कानपुर विश्वविद्यालय से आपने कृषि विज्ञान में बी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की थी।

आप अत्यन्त सहज स्वभाव और मस्त प्रकृति के ऐसे स्वस्थ युवक थे कि कवि-सम्मेलनों में आपकी लहरीली आवाज श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर देती थी। आप पूर्वी अंचल के ऐसे मंचसिद्ध कवि थे कि अपने काव्य-पाठ से जनता को मन्त्र-मुग्ध करके अपने 'सभाजीत' नाम को पूर्णत: सार्थक करते थे। आप जहाँ अच्छे गीत-कार थे वहाँ उत्कृष्ट कोटि के सवैयाकार भी थे। आपकी रच-

नाओं में छायावाद और रहस्यवाद का उद्‌भुत समन्वय तो हुआ ही था, प्रगतिवाद के भाव भी उन्मुक्तता से व्यंजित हुए थे। आपके 'झोंपड़ी' नामक सातसर्गीय प्रबन्ध-काव्य में ग्रामीण अंचल में रहने वाले व्यक्तियों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है। झोंपड़ी के एक सवैये की बानगी देखिए :

बर्बरता जिससे नित्य खेलती,
केवल एक खिलौना यही है।
विश्व इसे कहता है कलंक,
परन्तु मुझे मृगछौना यही है॥
रोना पड़ा जिसे छोड़के आज,
अपावन ठौर का सोना यही है।
टोना कहे इसे सृष्टि भले,
पर मैं कहता हूँ डिठौना यही है॥

अश्रु की भाषा सहज और सरल थी। खड़ीबोली के माध्यम से अपने विचारों को वे अत्यन्त सहजता से प्रकट करते थे। आपके सवैयों में जो प्रवाह था वर्णिक छन्दों में उससे भी अधिक पटुता आपको प्राप्त थी। अश्रु की शैली कहीं भी काव्य-शास्त्र के सिद्धान्तों से हटी नहीं है। आपकी रचनाओं में 'झोंपड़ी' के अतिरिक्त 'सारिका' और 'राही' प्रमुख हैं। 'सारिका' में आपके उत्कृष्टतम सवैये संकलित हैं तो 'राही' में नवगीतों की मंजुल मालिका पिरोई गई है। उक्त दोनों रचनाओं का प्रकाशन आपके जीवन-काल में हो चुका था, किन्तु झोंपड़ी 'आर्यकल्प' वाराणसी के माध्यम से आपके निधन के बाद एक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुई। 'झोंपड़ी' का एक छन्द इस प्रकार है :

जो सुख से अपनाएँ उन्हें,
यह वेदना की घड़ी सौंपता हूँ मैं।
जो सुधा से इसे सींचें; उन्हें—
यह जीवन की जड़ी सौंपता हूँ मैं।
जो इसे देखते रो दें उन्हें यह,
आँसुओं की लड़ी सौंपता हूँ मैं।
जो इसे स्वर्ग बना दें, उन्हीं—
करों में यह झोंपड़ी सौंपता हूँ मैं।

आपकी उक्त रचनाओं के अतिरिक्त अश्रुजी की 'कलश कण', 'मेरे गीत', 'उपवन' तथा 'सीपी' नामक कृतियाँ अभी अप्रकाशित ही हैं। 'सीपी' के कुछ अंश का प्रकाशन भी 'आर्यकल्प वाराणसी' ने किया है।

यह अत्यन्त सन्ताप की बात है कि सन् 1947 में तूफान एक्सप्रेस से यात्रा करते समय आप फतेहपुर स्टेशन के पास ट्रेन से अचानक गिर पड़े थे और आपके साथ यात्रा करती हुई सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा ने जंजीर खींचकर गाड़ी को रोका था और आपकी चिकित्सा कराई थी। उससे आपके मस्तिष्क पर गहरा आघात लगा था। अन्तत: सन् 1948 की फरवरी की एक शाम को सर-स्वती की वीणा का यह तार सदा-सदा के लिए टूट गया।

श्री सभामोहन अवधिया 'स्वर्ण सहोदर'

श्री 'स्वर्ण सहोदर' का जन्म 22 फरवरी सन् 1902 को मध्यप्रदेश के मण्डला जनपद के अन्तर्गत शहपुरा नामक ग्राम में हुआ था। आपने नार्मल स्कूल जबलपुर से सन् 1919 में नार्मल की परीक्षा उत्तीर्ण करके सन् 1921 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'विशारद' किया था। सन् 1919 में अध्यापक के रूप में अपने जीवन का प्रारम्भ करके आप सन् 1973 तक लिपिक, लेखक तथा सम्पादक आदि रहे थे। 'स्वर्णकार'

परिवार में जन्म लेने के कारण आपने अपना उपनाम 'स्वर्ण सहोदर' रखा था।

आपने लेखन का कार्य विधिवत् सन् 1920 से प्रारम्भ किया था और आपकी पहली रचना सर्वप्रथम जबलपुर से प्रकाशित होने वाली 'हितकारिणी' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। बाल-साहित्य की रचना के क्षेत्र में 'स्वर्ण सहोदर' का नाम अपनी विशिष्ट सेवाओं के लिए सर्वथा अनन्य एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। देश का ऐसा कोई भी प्रमुख हिन्दी पत्र नहीं होगा जिसमें आपकी रचनाएँ प्रकाशित न हुई हों। एक कुशल शिक्षक होने के कारण आप बाल मनोविज्ञान के इतने मर्मज्ञ थे कि आपकी सभी रचनाएँ इस कसौटी पर पूरी उतरती हैं।
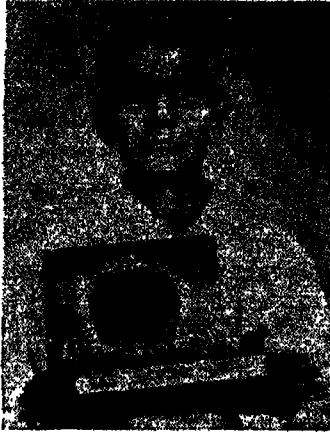
हिन्दी के स्वर्ण-काल में जिन लेखकों ने साहित्य को अपनी प्रतिभा से समृद्ध करने की दिशा में अनन्य योगदान किया था, उनमें 'स्वर्ण सहोदर' अग्रिम पंक्ति में थे। आपकी रचनाएँ किसी समय जहाँ 'बाल सखा', 'शिशु', 'नटखट', 'खिलौना', 'बालक', 'वानर', 'चमचम', 'विद्यार्थी', 'कुमार' और 'किशोर' आदि पुराने प्रतिष्ठित बाल-मासिकों में ससम्मान प्रकाशित होती थीं वहाँ 'सरस्वती', 'ललिता' तथा 'माधुरी' आदि अनेक गम्भीर साहित्यिक पत्रिकाओं के बाल-स्तम्भ भी आपकी प्रतिभा से पूर्णतया लाभान्वित हुआ करते थे। यहाँ तक कि अपने जीवन के उत्तर काल में भी आपने अपनी लेखनी को विराम नहीं दिया और अपनी काव्य-साधना निरन्तर जारी रखी। इसका ज्वलन्त प्रमाण 'पराग' और 'नन्दन' जैसे आजकल के प्रतिष्ठित बालोपयोगी पत्रों के अनेक अंक हैं।

आपकी साहित्य-साधना में जहाँ आपकी परिश्रमशीलता और कर्मठता का योगदान है वहाँ आपको साहित्य-पथ पर अग्रसर करने वाले उन गुरुजनों का भी कम महत्त्व नहीं, जिनके मार्ग-दर्शन में 'स्वर्ण सहोदर' जी का साहित्यकार व्यक्तित्व प्रगति-पथ पर निरन्तर अविराम भाव से बढ़ता रहा था। ऐसी विभूतियों में सर्वश्री कामताप्रसाद गुरु, शालग्राम द्विवेदी, सुखराम चौबे 'गुणाकर' और मधुमंगल मिश्र के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। आपने जहाँ देश के आशा-केन्द्र बालकों में जागृति का नव सन्देश दिया वहाँ उनमें राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम में अद्वितीय त्याग और बलिदान करने की प्रेरणा भी उत्पन्न की। आपके साहित्यिक कृतित्व का सबसे उत्कृष्ट प्रमाण यही है कि आधुनिक पाणिनि श्री कामताप्रसाद गुरु ने सन् 1961 में प्रकाशित आपकी 'अनुताप' कृति को देखकर यह लिखा था—"स्वर्ण सहोदरजी बच्चों के हिन्दी भाषा के सबसे बड़े कवि हैं। आपकी साहित्य-सेवा निस्वार्थ और सन्तोष-सुख की कहानी है। श्रमिक, कृपण और बुभुक्षु के रूप में प्रभु को न देखकर स्वर्ण सहोदर का 'अनुताप' एक सच्ची वेदना है। 'स्वर्ण सहोदर' की प्रतिभा को लोग अब भी पहचान लें तो मुझे सन्तोष होगा।"

आपने इतनी प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य का निर्माण किया था कि उस सबका प्रकाशन आपके जीवन-काल में नहीं हो सका। फिर भी आपकी जो कृतियाँ अब तक प्रकाशित हुई हैं उनमें 'मण्डला जल प्रलय', 'मण्डला जिले का भूगोल', 'बच्चों के गीत' (चार भाग), 'वीर शतमन्यु', 'वीर बालक बादल', 'हकीकतराय', 'चगन-मगन', 'नटखट हम', 'गिनती गीत', 'हमारी पंचायतें', 'सरल गणित प्रवेश' (चार भाग), 'हिन्दी बाल बोध-व्याकरण', 'माध्यमिक हिन्दी व्याकरण', 'मीटरिक माप तौल', 'आजादी के दीवाने', 'स्वतन्त्रता के पुजारी', 'विद्या द्वार', 'सुनहले गीत', 'अच्छी कहानियाँ', 'मैं बांगला देश हूँ', 'बाल खिलौना', 'हमीर राव' और 'लाल फाग' आदि प्रमुख हैं। इन प्रकाशित कृतियों के अतिरिक्त आपकी 'देवी गान्धारी', 'वीर रामसिंह', 'वीर लव-कुश', 'अनुताप', 'चौदह रत्न', 'टॉय-टॉय फिस्स', 'अलगोजा', 'करीमा' (फारसी से अनुवाद), 'अलबोला', 'नदी की कहानी उसीकी जुबानी', 'बेढब बचपन', 'सिंहनाद', 'भौजी का सैर-सपाटा', 'रसभरी', 'फुलझड़ी', 'शिशु-गीत', 'गाओ-पढ़ो', 'प्रजातन्त्र के गेय गीत', 'काल वर्ष के फूल' तथा 'अगड़म-बगड़म' आदि रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही हैं। इनके अतिरिक्त आपने लगभग 1200 पृष्ठों के 'बृहत्-हिन्दी लोकोक्ति कोश' की रचना भी की थी। इसमें 'स्वर्ण

सहोदर' जी की 30 वर्षीय साधना का पूर्ण परिपाक देखने को मिलता है।

बाल-साहित्य के निर्माण की दिशा में की गई आपकी बहुमुखी सेवाओं को दृष्टि में रखकर जहाँ मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने विदिशा-अधिवेशन में सन् 1976 में आपको सम्मानित किया था वहाँ 'उत्तर प्रदेश हिन्दी-संस्थान' ने आपको सन् 1978 में ताम्रपत्र सहित 5 हजार रुपए का पुरस्कार देकर अपनी कृतज्ञता अर्पित की थी। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेख्य है कि इससे पूर्व बाल-साहित्य के किसी भी लेखक को इतनी अधिक पुरस्कार की राशि कभी नहीं मिली थी।

आपका निधन 23 जनवरी सन् 1980 को अपने जबलपुर के जगदीशनगर (गढ़ा फाटक) के निवास-स्थान में हुआ था।

मनीषी समर्थदान

मनीषी समर्थदान का जन्म शेखावाटी (जयपुर राज्य) के सीकर अंचल के 'नेछवा' नामक ग्राम में सन् 1857 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा यद्यपि उर्दू में हुई थी, लेकिन आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के सम्पर्क में आकर आपने हिन्दी तथा संस्कृत का गहन ज्ञान अर्जित किया। पहले आप मुन्शी समर्थदान थे, किन्तु बाद में 'मनीषी समर्थदान' कहलाने लगे।

पहले-पहल मनीषी समर्थदान को निर्णय-सागर प्रेस बम्बई में छपने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों की देख-रेख करने के लिए वहाँ भेजा गया था। आप वहाँ पर सन् 1877-78 में लगभग एक वर्ष रहे थे। जब आपने वहाँ अधिक समय तक रहने में असमर्थता प्रकट की और स्वामी जी के ग्रन्थों के लेखन का कार्य बढ़ने लगा तो अलग से अपना प्रेस स्थापित करने की योजना बनी और 12 फरवरी सन् 1880 को प्रेस की स्थापना विधिवत् काशी में महाराज विजयानगरम् की कोठी में कर दी गई। 2 जुलाई सन् 1882 को मनीषीजी इस प्रेस के प्रथम व्यवस्थापक नियुक्त हुए थे और इस पद पर आपने सन् 1886 तक कार्य किया था। स्वामीजी के वेदभाष्य के प्रथम संस्करण पर आपका नाम प्रेस-व्यवस्थापक के रूप में भी मुद्रित हुआ था।

स्वामीजी के देहावसान के उपरान्त आप स्थायी रूप से अजमेर में रहने लगे और वहाँ पर 'राजस्थान यन्त्रालय' नामक एक प्रेस की स्थापना करके वहाँ पर 'राजस्थान समाचार' नामक एक साप्ताहिक सन् 1886 में निकाला था, जो कालान्तर में अर्ध-साप्ताहिक हो गया था। इसके बाद रूस और जापान का युद्ध छिड़ने पर सन् 1904 में इसे आपने दैनिक कर दिया था, जो सन् 1907 में भारी घाटा देकर बन्द कर देना पड़ा।

आप एक कुशल प्रेस-व्यवस्थापक तथा प्रबुद्ध पत्रकार होने के साथ-साथ अच्छे लेखक भी थे। 'आर्य समाज परिचय' नामक एक पुस्तक लिखने के अतिरिक्त आपने 'सत्यार्थ प्रकाश' की पाद-टिप्पणियाँ भी लिखी थीं। आप हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अँग्रेजी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे।

अपनी वृद्धावस्था में आपने वैद्यक पढ़कर उसे अपनी आजीविका का साधन बनाया था। आपका निधन भयंकर अर्थ-संकट की स्थिति में 17 जून सन् 1914 को अजमेर में हुआ था।

डॉ० सरजूप्रसाद तिवारी

डॉ० तिवारीजी का जन्म 28 जनवरी सन् 1865 को रीवाँ (मध्यप्रदेश)में हुआ था। आपके पूर्वज उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के नादौली नामक ग्राम के निवासी थे और वहाँ

से वे रीवाँ में आ बसे थे। आपके पिता पं० मुकुन्दराम रीवाँ राज्य की काशी और प्रयाग राज्य में निर्मित कोठियों के निरीक्षक थे तथा उनके यहाँ सोने,चाँदी और कपड़े आदि का व्यापार हुआ करता था। डॉ० सरजूप्रसाद को उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर सन् 1882 में स्कॉलरशिप देकर इन्दौर के मेडिकल कालेज में डाक्टरी पढ़ने के लिए भेजा गया, किन्तु अँग्रेजी में कमजोर होने के कारण आपका वहाँ प्रवेश न हो सका। फलस्वरूप आपने एक मास में ही सतत परिश्रम करके अँग्रेजी सुधार ली और प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। कालेज के प्राचार्य ने आपको इस शर्त पर प्रविष्ट किया कि यदि छमाही परीक्षा में उत्तीर्ण न हुए तो आपको वापस भेज दिया जायगा। आपको 8 रु० मासिक की छात्रवृत्ति मिला करती थी, जिसमें से दो रुपए आप अपनी माता के लिए भेजा करते थे। कालेज में प्रवेश पाने के बाद तिवारीजी ने घनघोर परिश्रम करके अपनी योग्यता बढ़ाई और सन् 1886 में विधिवत् मेडिकल की परीक्षा पास करने के बाद एक वर्ष तक आप हाउस सर्जन रहे और फिर रीवाँ चले गए।

आपने रीवाँ स्टेट में जाकर लगभग 5 वर्ष तक वहाँ की मनीगवाँ डिस्पेंसरी में कार्य किया और तदुपरान्त सतना में रहे। उन दिनों आपकी इतनी ख्याति हो गई थी कि आपके पास सी० पी०, बघेलखण्ड, बुन्देलखण्ड और यू०पी० आदि अनेक प्रदेशों से मरीज आने लगे थे। इसी बीच कर्नल वीमलेट साहब ने आपको रीवाँ से इन्दौर बुला लिया और वहाँ के चैरिटेबल हॉस्पीटल में 'सीनियर सब-असिस्टैंट सर्जन' नियुक्त हो गए। इसके साथ-साथ आप महाराजा होलकर मेडिकल स्कूल में शरीर-शास्त्र भी पढ़ाया करते थे। आप महाराजा शिवाजीराव होलकर के निजी चिकित्सक भी थे और उन्होंने

आपके कार्य से प्रसन्न होकर अनेक बार पुरस्कार भी दिए थे। आपके चिकित्सा-सम्बन्धी कार्यों की ख्याति के कारण सन् 1910 में भारत सरकार ने आपको 'रायसाहब' तथा सन् 1918 में 'रायबहादुर' की उपाधियों से भी विभूषित किया था।

अपने चिकित्सा-सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त डॉक्टर साहब हिन्दी भाषा के प्रचार और विकास में भी रुचि लिया करते थे और आपने अपने प्रयत्नों से इन्दौर में 'हिन्दी साहित्य समिति' की स्थापना करके उसके भवन-निर्माणार्थ अन्य समृद्ध जनों से धन भी एकत्रित किया था और अपने पास से भी उसमें प्रचुर धनराशि लगाई थी। आपके ही प्रयत्न से सन् 1918 में 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का आठवाँ अधिवेशन इन्दौर में हुआ था और उसकी अध्यक्षता राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने की थी। गान्धीजी-जैसे महानुभाव को सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए निमन्त्रित करना आपके व्यक्तित्व का ही काम था। यह आपकी कर्मठता तथा लगन का ही सुपरिणाम था कि सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन भी आपके प्रयास से सन् 1935 में गान्धीजी की अध्यक्षता में वहाँ पर हुआ। आपने 'मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति' की समृद्धि तथा विकास की दिशा में बहुत बड़ा योगदान किया। समिति की ओर से 'वीणा' नामक एक मासिक पत्रिका का अक्तूबर सन् 1927 से प्रकाशन भी आपके ही प्रयासों से हुआ था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'वीणा' हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में थी और आज भी उसका प्रकाशन डॉ० श्यामसुन्दर व्यास के सम्पादन में अविराम गति से हो रहा है।

इन्दौर में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अष्टम अधिवेशन के बाद आपकी यह हार्दिक इच्छा थी कि वहाँ फिर सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन हो और गान्धीजी ही उसके अध्यक्ष बनें। आपकी यह भी भावना थी कि मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति के जिस भवन का शिलान्यास उन्होंने सन् 1918 में किया था उसे भी आप स्वयं आकर अपनी आँखों से देख लें। यह प्रसन्नता की बात है कि डाक्टर साहब की यह मनोकामना भी पूरी हुई और गान्धीजी ने आकर समिति के उस भवन को देखा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि डाक्टर साहब ने समिति के भवन-निर्माण तथा अन्य कार्यों में तो रुचि ली ही थी, उसके पुस्तकालय की समृद्धि में

भी आपका अभूतपूर्व योगदान था। समिति की ओर से प्रकाशन का कार्य करने के लिए आपने 5 हजार रुपए की ऐसी राशि प्रदान की थी जिसके ब्याज से हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन भी होता रहे।

यह एक संयोग ही था कि सम्मेलन का चौबीसवाँ अधिवेशन जब गान्धीजी की अध्यक्षता में इन्दौर में होने वाला था तब डॉक्टर साहब रोग-शैया पर पड़ गए और फिर उठ नहीं सके। सम्मेलन के अधिवेशन के समय आप स्ट्रेचर पर ही पण्डाल में गए थे। उस समय महात्मा गान्धीजी सहित हजारों व्यक्तियों ने अपने इस बूढ़े सेनापति को भाव-विभोर होकर देखा था। सम्मेलन का अधिवेशन तो धूम-धाम से हुआ और गान्धीजी ने समिति के भवन को भी अपनी आँखों से देखा किन्तु डॉक्टर साहब उस अवसर पर उतना सक्रिय योगदान नहीं दे सके जैसी कि आपकी हार्दिक अकांक्षा थी।

आपका निधन 16 अक्तूबर सन् 1935 को हुआ था।

के संयोजक भी रहे थे।

आप एक कुशल अध्यापक तथा सहृदय साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित थे और आपने जहाँ अनेक गम्भीर समीक्षात्मक ग्रन्थों की सर्जना की थी वहाँ काव्य के क्षेत्र में भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा निदर्शन किया था। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'नन्दग्राम का तपस्वी', 'स्वर्ग पतन', 'आचार्य केशव', 'स्वप्न का देवता', 'राधा का स्वप्न', 'कामना', 'कबीर : एक विवेचन', 'कबीर विमर्श', 'कबीर दर्शन', 'राजस्थानी साहित्य की परम्परा और प्रगति', 'साहित्य-सिद्धान्त और समीक्षा', 'अपभ्रंश और मारवाड़ी का सम्बन्ध','हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव', 'भक्ति दर्शन', 'विमर्श और निष्कर्ष', 'विचार कण', 'भाव कण', 'साहित्य कण', 'किसान सतसई', 'हलधर', 'सुमन संग्रह', 'गीत संग्रह', 'आग्रह-अनुग्रह', 'दीन-नरेश' तथा 'हिन्दी भाषा का रूप विकास' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 9 जुलाई सन् 1979 को लम्बी बीमारी के कारण जयपुर में हुआ था।

डॉ० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'

डॉ० अरुण का जन्म 25 दिसम्बर सन् 1917 को अलीगढ़ जनपद के एक गाँव में हुआ था। आप पिछले लगभग 35 वर्ष से राजस्थान में थे और अनेक वर्ष तक आप जयपुर के महाराजा कालेज में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक तथा अध्यक्ष रहे। जब से राजस्थान विश्वविद्यालय बना था तब से आप उसमें चले गए थे और वहाँ भी कई वर्ष तक हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे थे। आप जहाँ राजस्थान साहित्य अकादमी की सरस्वती सभा तथा अर्थ समिति के सदस्य थे वहाँ उसके शोध विभाग

श्रीमती सरला सेवक

श्रीमती सरला का जन्म 30 अगस्त सन् 1919 को बदायूँ (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। घर पर ही अपनी माता श्रीमती दुर्गादेवी के निरीक्षण में साहित्य तथा संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपका विवाह हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि बरेली-निवासी श्री निरंकार-देव 'सेवक' के साथ हो गया।

विवाहोपरान्त आपका सम्पर्क हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों सर्वश्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

हरिवंशराय बच्चन और सुमित्राकुमारी सिनहा से हो गया। ससुराल के साहित्यिक वातावरण और पति के प्रोत्साहन से आपने कविता के अतिरिक्त अनेक लेख तथा कहानियाँ भी लिखीं।

खेद है कि आपने दीर्घ जीवन नहीं पाया और सन् 1948 में आपका असामयिक देहावसान हो गया। आपके निधन के उपरान्त जोधपुर (राजस्थान) से प्रकाशित होने वाली 'क्षत्राणी' पत्रिका ने आप पर एक विशेषांक भी प्रकाशित किया था।

श्रीमती सरोजिनीदेवी वैद्या

श्रीमती सरोजिनी देवी का जन्म 12 जनवरी सन् 1912 को जहाँगीराबाद (बुलन्दशहर) में हुआ था। आपने आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झाँसी से 'आयुर्वेद वाचस्पति' की उपाधि ग्रहण की थी और महिला आयुर्वेदिक विद्यालय, मेरठ की अनेक वर्ष तक प्रधानाचार्या रहीं। आपके पति दयानिधि शर्मा भी अच्छे चिकित्सक और आयुर्वेदशास्त्र के ज्ञाता थे।

आप कुशल चिकित्सक और अध्यापिका होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखिका भी थीं और आपने लगभग 1600 पृष्ठों का 'महिला जीवन' नामक एक विशाल ग्रन्थ लिखा है। जिस पर उत्तर प्रदेश शासन ने सन् 1948 में 1200 रुपए का पुरस्कार भी प्रदान किया था। आपकी 'सरोज के सुमन' (1970) तथा 'सरोज के उद्गार' (1973) नामक पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं। आप 'इण्डियन मेडिसन बोर्ड लखनऊ' की सदस्या होने के साथ-साथ अनेक वर्ष तक 'उत्तर प्रदेश महिला परिषद्' की प्रधानमन्त्रिणी भी रही थीं।

आपका निधन सन् 1974 में हुआ था।

स्वामी सहजानन्द सरस्वती

स्वामीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद के देवा ग्राम में सन् 1889 की महाशिवरात्रि को हुआ था। आपका घरेलू नाम नवरंगराय था और आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जलालाबाद तथा गाजीपुर में हुई थी। आपका विवाह सन् 1904 में हुआ था, किन्तु आपकी धर्मपत्नी का डेढ़-दो वर्ष बाद ही देहावसान हो गया था। आप 18 वर्ष की आयु में ही संन्यासी हो गए थे।

संन्यास ग्रहण करने के बाद आप 2 वर्ष तक देशाटन ही करते रहे और फिर आपने स्थायी रूप से काशी में रहकर संस्कृत का विधिवत् अध्ययन किया। अध्ययनोपरान्त आप जब कार्य-क्षेत्र में उतरे तब आपने काशी से 'भूमिहार ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र का सम्पादन तथा प्रकाशन प्रारम्भ किया।

इसी बीच असहयोग-आन्दोलन छिड़ गया और आप सन् 1922 में गाजीपुर, बनारस, फैजाबाद और लखनऊ की जेलों में सजा भुगतते रहे। सन् 1926 में आप स्थायी रूप से बिहार चले गए और उसी प्रदेश को अपनी कर्म-भूमि बनाया। आपने वहाँ जाकर मुजफ्फरपुर से 'लोक संग्रह' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला, जो बाद में पटना चला आया और सन् 1931 तक आपने उसका सम्पादन अत्यन्त तत्परता और योग्यतापूर्वक किया।

सन् 1936 में आपने अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की और उसके सभापति तथा प्रधानमन्त्री के रूप में कई वर्ष तक कार्य किया। इसके पूर्व सन् 1927 में आपने बिहटा (पटना) में एक 'सीतारामाश्रम' की स्थापना भी की थी। 'किसान सभा' के द्वारा आपने बिहार में 'किसान-आन्दोलन' को जोरदार तरीके से चलाया। आप 'अखिल हिन्द समाजवादी सभा' के भी अध्यक्ष रहे थे और इस प्रसंग में आपने अनेक बार आन्दोलन भी चलाए थे। आप सन् 1930-32 तथा बाद में 1940-43 में जेल में भी रहे

थे। आपने अनेक वर्ष तक बिहार कांग्रेस कमेटी के प्रभावशाली सदस्य के रूप में प्रदेश की प्रशंसनीय सेवा भी की थी।

आप जहाँ कुशल संगठक और लगनशील जन-नेता थे वहाँ लेखन के क्षेत्र में भी आपकी देन सर्वथा उल्लेखनीय है। आपके द्वारा लिखी गई पुस्तकों में 'कर्म कलाप', 'ब्रह्मर्षि वंश विस्तार', 'गीता हृदय', 'क्रान्ति और संयुक्त मोर्चा', 'किसान क्या करें' तथा 'मेरा जीवन-संघर्ष' उल्लेखनीय हैं। इनमें से आपकी अन्तिम कृति पर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने अपने नवें अधिवेशन के अवसर पर आपको 'जीवनी और संस्मरण' विषय पर एक हजार रुपए का 'सम्मान पुरस्कार' प्रदान किया था। यह पुरस्कार आपके निधन के उपरान्त दिया गया था।

आपका स्वर्गवास 26 जून सन् 1950 को हुआ था और आपकी समाधि बिहटा के 'सीतारामाश्रम' में ही बनाई गई है।

श्री सहदेव सक्सेना

श्री सक्सेनाजी का जन्म 10 सितम्बर सन् 1900 को कोटा (राजस्थान) में हुआ था। आप महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के विभिन्न आन्दोलनों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध थे। आपकी रचनाओं के शीर्षकों को देखकर ही इस बात का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। आपकी कविताओं के कुछ शीर्षक इस प्रकार हैं—'ओ३म्', 'ईश्वर-प्रार्थना', 'ईश्वर-भक्ति', 'प्रभु महिमा' 'अनुरोध', 'स्वराज्य लेंगे', 'डायर का फायर', 'ऋषि दयानन्द गुण-गान', 'आर्य प्रतिज्ञा', 'दयानन्द बलिदान' तथा 'आर्यों के तीर्थ धाम' आदि आपकी प्रायः सभी रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल रूप से मुखरित हुआ है।

आपका निधन 28 दिसम्बर सन् 1969 को हुआ था।

श्री साँवलजी नागर

श्री नागरजी का जन्म काशी में सन् 1890 में हुआ था। आप अपने पिता श्री लक्ष्मण द्विवेदी के एक-मात्र पुत्र थे। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप वहाँ के सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल में 'हिन्दी शिक्षक' हो गए थे।

अपने जीवन के प्रारम्भ से ही हिन्दी-सेवा के प्रति आपके मानस में जो अनन्य अनुराग था वह आगे जाकर ऐसा फलीभूत हुआ कि आपने काशी से 'भारतेन्दु' नामक एक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन किया। भारतेन्दुजी द्वारा छोड़े गए अधूरे कामों को पूरा करने की दिशा में भी आपका प्रयास अभिनन्दनीय रहा था।

आपने 'भारतेन्दु नाटक मण्डली' के द्वारा काशी की साहित्य-प्रेमी जनता में हिन्दी-नाटकों के प्रति जो प्रेम जगाया था वह अद्भुत और अभिनन्दनीय कहा जा सकता है। आपने 'रत्नाकर रसिक मंडल' नामक संस्था के द्वारा भी हिन्दी-प्रचार के कार्य में अनन्य योगदान दिया था। मातृभाषा गुजराती होते हुए भी आपने हिन्दी-नाटकों में सक्रिय रूप से भाग लेकर अपने हिन्दी-प्रेम का परिचय दिया था।

नाटकों में नारी पात्रों की कमी को पूरा करने में आप पूर्णतः सक्षम थे और अनेक बार आपने उनका अभिनय भी किया था।

आपका देहान्त 77 वर्ष की आयु में सन् 1967 में हुआ था।

श्री साँवलियाबिहारीलाल वर्मा

श्री साँवलियाबिहारीलाल वर्मा का जन्म 18 जून सन् 1896 को बिहार के सारन जिले के छपरा नामक नगर में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा छपरा के जिला स्कूल में हुई और उसके बाद क्रमशः मोतीहारी और मुजफ्फरपुर के जिला-स्कूलों में भी आपने शिक्षा प्राप्त की। सन् 1914 में आपने 'प्रवेशिका' (मैट्रिकुलेशन) परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के बाद मुजफ्फरपुर के 'भूमिहार ब्राह्मण कालेज' में प्रवेश लिया; जहाँ आपको प्रख्यात राष्ट्र नेता आचार्य जे० बी० कृपलानी से इतिहास की शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला था। सन् 1920 में आप पटना कालेज से अर्थशास्त्र में एम०ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और आपको पटना विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ।

सन् 1921 में आप पटना कालेज में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए और सन् 1923 में बी० एल० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद आपने प्राध्यापक के पद को त्यागकर छपरा नगर में वकालत शुरू कर दी। सन् 1930 में महात्मा गान्धी द्वारा संचालित 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' और 'नमक-सत्याग्रह' में भाग लेने तथा गिरफ्तार होने पर आपने वकालत स्थगित कर दी। सन् 1931 में गान्धी-इरविन-समझौते के उपरान्त, आपने सीतामढ़ी में पुनः वकालत शुरू की और आजीवन वहीं वकालत करते रहे। आपने सीतामढ़ी में अधिवक्ता-जीवन के अन्तिम काल तक वहाँ के 'अधिवक्ता संघ' के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया था।

साहित्य और शिक्षा के क्षेत्रों में भी श्री वर्माजी ने महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की थीं। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के प्रमुख सदस्य के रूप में आपने हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार में लगभग 60 वर्ष तक सक्रिय योगदान किया था। इसके अतिरिक्त आपने हिन्दी में अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की थी। सन् 1920 में आप पहले-पहल अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पटना-अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे और प्रायः 50 वर्ष तक उसकी स्थायी समिति, विधान-निर्मात्री-समिति तथा अन्यान्य समितियों के मान्य सदस्य के रूप में सेवा करते रहे। इस हैसियत से आपको राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का परम विश्वास-भाजन होने का गौरव भी प्राप्त था।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जन्म-काल(1919) से ही श्री वर्माजी ने उसकी महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की थीं। सन् 1927 में हरिहर क्षेत्र मेले (सोनपुर) में आयोजित 'सम्मेलन' के विशेषाधिवेशन का सभापतित्व आपने ही किया था। उक्त अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में आपने हिन्दी-उर्दू समस्या का विवेचन विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था और न्यायालयों में हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि के व्यवहार की नीति का जोरदार समर्थन किया था।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् और बिहार राज्य विधायी हिन्दी समिति के सदस्य के रूप में भी श्री वर्माजी ने राजकीय स्तर पर हिन्दी भाषा के प्रसार में व्यापक रूप से योगदान किया था। छपरा और सीतामढ़ी में वकालत करते हुए आपने अनेक साहित्यिक संस्थाओं के संचालन एवं विकास में सक्रिय सहयोग प्रदान किया था; जिनमें छपरा की 'हिन्दी साहित्य परिषद्', 'नाट्य परिषद्' और 'नवयुवक समिति' तथा सीतामढ़ी के 'गीता-भवन' के नाम उल्लेखनीय हैं।

बिहार विधान परिषद् और बिहार विधि आयोग के वरिष्ठ सदस्य के रूप में भी वर्माजी ने महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की थीं। आपने बिहार-थियोसोफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष पद को भी अलंकृत किया था। राजनैतिक दृष्टि से आप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अनन्य अनुयायी थे। सन् 1930-31 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय आपने सारन जिले के

'डिक्टेटर' के रूप में सफलतापूर्वक कार्य किया था। आप कट्टर राष्ट्रवादी थे।

सन् 1970 में, बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वर्ण जयन्ती-समारोह के अवसर पर, बिहार राज्य के जिन वयोवृद्ध साहित्य-सेवियों को उनकी दीर्घकालीन बहुमूल्य साहित्यिक सेवाओं के लिए 'सम्मेलन' की ओर से आदरपूर्वक सम्मान-पत्र प्रदान किये गए थे, उनमें श्री साँवलिया-बिहारीलाल वर्मा प्रमुख थे। सन् 1979 में बिहार राज्य सरकार ने भी श्री वर्माजी को दीर्घकालीन हिन्दी-सेवाओं के लिए सम्मानित किया था।

श्री साँवलियाबिहारीलाल वर्मा अत्यन्त अध्ययनशील, देशाटन-प्रेमी एवं उत्कट देशानुरागी साहित्य-सेवी थे। आप अपनी सरलता, विनयशीलता एवं सहृदयता के लिए सुविख्यात थे। आप महायोगी अरविन्द के सिद्धान्तों के सच्चे अनुयायी तथा सर्वधर्म समन्वयवादी थे। आपने तन-मन-धन से साहित्य, समाज एवं राष्ट्र की अनेक सेवाएँ की थीं।

आपकी अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—'यूरोपीय महाभारत' (1915), 'गद्य चन्द्रिका' (1925), 'गद्य चन्द्रोदय' (1925), 'लोक सेवक महेन्द्र-प्रसाद' (स्व० डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के अग्रज, 1937), 'इस्लाम की झांकी' (1948), 'विश्व धर्म दर्शन' (1953), 'दो आदर्शभाई' (1955), 'दक्षिण भारत की यात्रा' (1956), 'रामेश्वर-यात्रा' (भोजपुरी में) (1960), 'बद्री-केदार-यात्रा' (1961), 'अन्तर्राष्ट्रीय विधि' (1965), 'भारत में प्रतीक पूजा का आरम्भ एवं विकास' (1975), 'गीता विश्वकोष' (दो भागों में 1977)।

जीवन के अन्तिम क्षणों में आप अपनी 'आत्मकथा' पूरी कर चुके थे, परन्तु वह प्रकाशित नहीं हो सकी। इसके अतिरिक्त आपने लगभग 40 उपनिषदों का भाष्य भी किया था, जो 'नई धारा' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था।

आपने जहाँ हिन्दी में अनेक उल्लेखनीय ग्रन्थों की रचना करके साहित्य को समृद्ध किया था वहाँ भोजपुरी भाषा में भी पुस्तकें लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। इन ग्रन्थों से आपकी लेखन-शैली का परिचय मिलता है।

आपका स्वर्गवास शनिवार, दिनांक 29 दिसम्बर सन् 1979 की रात्रि में सीतामढ़ी में आपके निवास-स्थान पर हुआ था। उस समय आपकी आयु लगभग 84 वर्ष की थी।

श्री सागरमल गोपा

श्री गोपाजी का जन्म 3 नवम्बर सन् 1900 को जैसलमेर (राजस्थान) के एक पुष्पकरणा ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा जैसलमेर में हुई थी और विद्याध्ययन के उपरान्त आप राज्य की सेवा में ही लग गए थे। धीरे-धीरे जैसलमेर के सामन्ती शासन के जुल्मों के प्रति आपके मन में वितृष्णा के भाव उदित होने लगे और कांग्रेस के सदस्य बन गए। सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया था। आपने जैसलमेर की जनता में जागृति उत्पन्न करने की दृष्टि से अनेक कन्या पाठशालाएँ खोलीं और देश के अनेक पत्रों में वहाँ की प्रजा की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालने वाले लेख भी लिखे।

आपने 'अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद्' के माध्यम से जैसलमेर की जनता में जागृति उत्पन्न करने के लिए अनेक लोकोपयोगी योजनाएँ चलाई थीं। आप समाचार पत्रों और पुस्तिकाओं के माध्यम से भी जैसलमेर राज्य की अन्धेरगर्दी के सम्बन्ध में निर्भीकतापूर्वक लिखा करते थे। फलस्वरूप आपने 'रघुनाथसिंह का मुकद्दमा' नामक एक किताब लिखी थी।

जिसने 'माहेश्वरी युवक मंडल' के द्वारा एक कन्या विद्यालय की स्थापना करके सामंती हुकूमत को चुनौती दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि 'माहेश्वरी युवक मंडल' को गैर कानूनी संस्था घोषित करके रघुनाथसिंह पर मुकद्दमा चलाया गया और उन्हें दो वर्ष की कैद तथा 500 रुपए जुर्माने की सजा दी गई। इस पुस्तक के अतिरिक्त गोपाजी ने 'जैसलमेर का गुण्डा राज' नामक एक और पुस्तक की रचना की तथा फुटकर रूप से पत्र-पत्रिकाओं में अनेक व्यंग्य कविताएँ भी प्रकाशित कराईं। फलस्वरूप 25 मई सन् 1941 को

आपको गिरफ्तार कर लिया गया और जेल में आपको नाना प्रकार की यातनाएँ दी गईं। गोपाजी की निर्भीकता तथा ध्येयनिष्ठा का परिचय इसी बात से मिल जाता है कि राज्य शासन के द्वारा अनेक यातनाएँ दिये जाने पर आप तनिक भी न झुके थे।

जब आप पर राज्य-शासन के अत्याचारों का कोई भी प्रभाव नहीं हुआ तो आपके पैरों में बेड़ियाँ डालकर नाना प्रकार की यातनाएँ दी गईं और 4 अप्रैल सन् 1946 को अस्पताल की खाट पर ही आपका प्राणान्त हो गया।

प्रो० साधुराम

आपका जन्म पंजाब के अमृतसर नगर में सन् 1901 में हुआ था। आपने सन् 1925 में संस्कृत विषय लेकर एम० ए० की जो परीक्षा दी थी उसमें प्रथम आने पर आपको 'स्वर्ण पदक' प्राप्त हुआ था। प्रारम्भ में आपने पुरातत्त्व विभाग में नौकरी की थी, परन्तु बाद में गान्धीजी के असहयोग-आन्दोलन के प्रभाव में आकर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और कई वर्ष तक बहुत-से कष्ट झेले।

सन् 1937 में आपने 'किनेअर्ड कालेज फार विमेन लाहौर' में हिन्दी-संस्कृत-प्रवक्ता के रूप में जो कार्य प्रारम्भ किया था, भारत-विभाजन तक आप उसी मे तत्परतापूर्वक संलग्न रहे। कुछ समय तक आपने प्राख्यात भाषा-शास्त्री डॉ० रघुवीर को कोष-निर्माण के कार्य में भी सहयोग दिया था।

विभाजन के उपरान्त आप दिल्ली के किरोड़ीमल कालेज में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष बने और सेवा-निवृत्ति तक उसी पद पर बने रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय में पुरा-लेख विद्या को एम० ए० की कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में चालू कराने का कार्य आपके ही सत्साहस का सुपरिणाम है।

आपकी प्रमुखतम रचनाओं में 'रसायन शास्त्र की प्रथम पुस्तक' तथा 'सुन्दर काण्ड' के नाम लिये जा सकते हैं। आपने अशोक गुप्त, मौखरि तथा अन्य ऐतिहासिक अभिलेखों के सम्पादन में सहयोग देने के अतिरिक्त प्राच्य शोध-पत्रिकाओं में भी अनेक शोधपूर्ण लेख लिखे थे। स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने के उपलक्ष में आपको सन् 1973 में 'ताम्रपत्र' भी प्रदान किया गया था।

आपका असामयिक निधन 19 मई सन् 1980 को एक सड़क दुर्घटना में नई दिल्ली में हुआ था।

ठा० सामन्तसिंह शक्तावत

श्री शक्तावतजी का जन्म जिला अजमेर के ग्राम पिपलाज में सन् 1884 में दानवीर गोकुलदास के वंश में हुआ था। आपके पिता श्री जोधसिंह मेवाड़ के महाराणा श्री फतहसिंह तथा बूँदी के महाराजा श्री रघुवीरसिंह के पास रहा करते थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पिपलाज में ही हुई थी। तदुपरान्त आगे की शिक्षा केकड़ी (जिला अजमेर) तथा उदयपुर में पूर्ण हुई। वैसे आपकी शिक्षा एण्ट्रेन्स तक ही सीमित थी, परन्तु स्वाध्याय एवं सुप्रसिद्ध विद्वानों के सम्पर्क से आपने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी तथा अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया था। व्याकरण और काव्य-शास्त्र के अधिकारी विद्वान् समझे जाने के साथ-साथ आपकी गणना राजस्थान के शीर्षस्थ विद्वानों में होती थी। आपकी विद्वत्ता
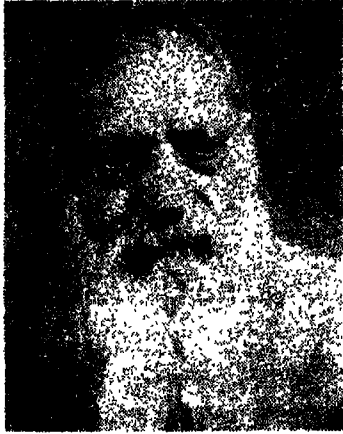
से प्रभावित होकर आपको अखिल भारतीय विद्वत्परिषद्, अजमेर ने 'साहित्याचार्य' की मानद उपाधि से भी अलंकृत किया था। आप मेयो कालेज, अजमेर में मेवाड़ की कोठी के 'मोतीमिद' रहे और उक्त कालेज में प्राध्यापक भी रहे थे।

आप हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में काव्य-रचना करने में प्रवीण थे। आपकी भाषा प्रांजल, परिमार्जित और संस्कृत-गर्भित होती थी। एक ओर जहाँ आपकी रचनाएँ अनूठे भावों से ओत-प्रोत हैं वहाँ उनमें अर्थ-गाम्भीर्य, पूर्ण रसात्मकता तथा अलंकृत उक्ति-वैचित्र्य के गुण पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। आप कवित्त और सवैयों की परम्परागत शैली के सिद्ध कवि थे। आपने केवल फुटकर काव्य-रचनाएँ की हैं। आपका कोई ग्रन्थ नहीं छपा।

आपका निधन सन् 1932 में हुआ था।

डॉ० श्रीमती सावित्री शुक्ल

श्रीमती शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के लखनऊ नगर के सुप्रसिद्ध एडवोकेट श्री गंगाप्रसाद के परिवार में 16 जुलाई सन् 1929 को हुआ था। आपकी शिक्षा वहीं के 'महिला महाविद्यालय' में हुई और आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से क्रमशः बी० ए०, एम० ए०, एम०एड० करके उसी विश्वविद्यालय से 'सन्त साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' विषय पर डी० फिल० की उपाधि प्राप्त की थी। आपने 'निरंजनी सम्प्रदाय' विषय पर डी० लिट् की उपाधि के लिए भी शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया था।

आपने लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापिका के रूप में अनेक वर्ष तक कार्य किया था। आपकी लेखन-क्षमता कविता तथा कहानी के क्षेत्र में भी अद्भुत थी। आपकी प्रकाशित कृतियों में 'नाटककार सेठ गोविन्ददास' तथा 'मैथिल कोकिल विद्यापति' आदि उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन सन् 1976 में हुआ था।

डॉ० श्रीमती सावित्री सिनहा

श्रीमती सिनहा का जन्म 2 फरवरी सन् 1922 को लखनऊ में हुआ था। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से बी०ए० करने के उपरान्त एम० ए० भी वहीं से किया था और एम० ए० की परीक्षा में प्रथम आने पर विश्वविद्यालय की ओर से आपको स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुआ था। जिन दिनों आप लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ती थीं उन दिनों आपके सहपाठियों में डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित भी एक थे।

एम० ए० करने के उपरान्त अगस्त 1947 में आप दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्गत इन्द्रप्रस्थ कालेज के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा होकर आ गईं, और वहाँ पर रहते हुए ही आपने 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ' नामक शोध प्रबन्ध पर पी-एच० डी० की उपाधि दिल्ली विश्वविद्यालय से प्राप्त की। जब आपकी नियुक्ति दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हो गई तो वहाँ पर रहते हुए आपने डी० लिट्० की उपाधि के लिए भी 'ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति-काव्य में अभिव्यंजना शिल्प' नामक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके अपनी समीक्षा-शैली का अद्भुत परिचय दिया था। इसके उपरान्त

वहाँ आपने अपनी 'अनुसंधान का स्वरूप' नामक पुस्तक के माध्यम से शोध-क्षेत्र को नई दिशा दी वहाँ 'युग चारण दिनकर' नामक ग्रन्थ से आलोचना के क्षेत्र को भी समृद्ध किया। आपने 'नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी' की ओर से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' नामक ग्रन्थ के अद्यतन खण्ड में उपन्यास की विधा पर एक शोधपूर्ण निबन्ध भी लिखा था।

आपका निधन 25 अगस्त सन् 1972 को कैंसर के कारण हुआ था।

श्री सिद्धनाथ माधव आगरकर

श्री आगरकर का जन्म मध्यप्रदेश के मालवा अंचल के आगर नामक स्थान में सन् 1891 में हुआ था। आपका परिवार मूलतः महाराष्ट्रीय चितपावन ब्राह्मणों के 'लोंढे' वंश का था और वह कोंकण प्रदेश से आकर वहाँ बस गया था। आगर में जन्म लेने के कारण सिद्धनाथजी ने अपने नाम के साथ 'आगरकर' लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपके पिता श्री माधवराव लोंढे का देहावसान उसी समय हो गया था जब सिद्धनाथजी केवल 8 वर्ष के थे। अपने पिता की छत्रछाया बचपन से ही न रहने के कारण आप अपने मामा के पास भैरोंगढ़ (उज्जैन) चले गए थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आगर में ही हुई थी और आपके मराठी के अध्यापक श्री मयाराम मोड़ीराम थे। सन् 1907 में आगर के स्कूल से ही मिडिल तक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप उसी विद्यालय में अध्यापक नियुक्त हो गए। उन्हीं दिनों विद्यालय में जो भी सांस्कृतिक आयोजन हुआ करते थे आप उनके समाचार आदि ग्वालियर राज्य के पत्र 'जयाजी प्रताप' में छपाने के लिए भेजने लगे। जब समाचार छपने लगे तो आपने हिन्दी तथा मराठी के तत्कालीन पत्रों में लेख आदि भेजने प्रारम्भ कर दिए। इसी प्रक्रिया में आपने सन् 1913 में 'पाठशाला के विद्यार्थी और उनका स्वास्थ्य' शीर्षक एक छोटी-सी पुस्तिका भी अपने मित्र डॉ० सरदार-सिंह कानूनगो के सहयोग से प्रकाशित कराई। इस प्रकार लेखन की दिशा में प्रगति करते हुए आप सन् 1916 में एक मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक भी हो गए।

इस बीच आपके मन में शिक्षक का कार्य छोड़कर 'पत्रकार' बनने की लालसा जगी और आपकी 'जयाजी प्रताप' के सम्पादकीय विभाग में नियुक्ति हो गई। किन्तु अपनी निर्भीकता और स्पष्टवादिता के कारण आप वहाँ अधिक समय तक न टिक सके। इस बीच आपको बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'वेंकटेश्वर समाचार' में बुलाया गया, किन्तु वेतन-विषयक शर्त निश्चित न होने के कारण आप वहाँ नहीं गए। अन्त में आपने श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'कर्मवीर' (खण्डवा) में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। 'कर्मवीर' में रहते हुए आप 'निरंजन' नाम से 'चुनी हुई बातें' शीर्षक स्तम्भ लिखा करते थे। इस स्तम्भ में की गई कुछ आलोचनाओं से ग्वालियर के तत्कालीन महाराजा माधवराज सिन्धिया से आपका विवाद छिड़ गया। इस पर 2-3 सप्ताह तक उत्तर-प्रत्युत्तर छपने के बाद अन्त में महाराज को हार मान लेनी पड़ी। 'कर्मवीर' में लगभग 3 वर्ष कार्य करने के उपरान्त आपने श्री सूरजमल जैन ('जागरण' इन्दौर के सम्पादक श्री ईश्वरचन्द्र जैन के पिता) के सहयोग से 'मध्य-भारत प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड' नामक संस्था की स्थापना करके उसके तत्वावधान में 'मध्य भारत' नामक एक साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जो अधिक समय तक नहीं चल सका। इसके उपरान्त आप नागपुर के श्री
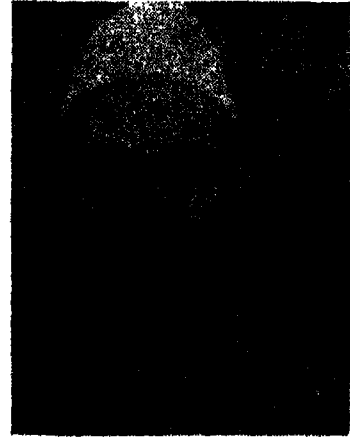
सतीदास मूँधड़ा के निमन्त्रण पर उनके 'प्रणवीर' (अर्द्ध साप्ताहिक) में चले गए। वहाँ पर लगभग एक वर्ष काम करने के उपरान्त आप फिर खण्डवा आ गए और 'कर्मवीर' में कार्य करने लगे। सन् 1925 से सन् 1930 तक उसमें कार्य करते रहने के उपरान्त आप उससे अलग हो गए और सन् 1931 में कुछ मित्रों के सहयोग से 'हिन्दी स्वराज्य'

साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया।

'हिन्दी स्वराज्य' के सम्पादक के रूप में आपने सामान्यतः समस्त भारत और विशेषतः देशी राज्यों की जनता की जो सेवा की थी उसका परिचय देना सर्वथा कठिन है। 'हिन्दी स्वराज्य' अपने समय का ऐसा साप्ताहिक था जिसने देशी रियासतों की गूँगी जनता को 'निर्भीक वाणी' दी थी। इस प्रसंग में आपको एकाधिक बार जेल भी भुगतनी पड़ी थी। यहाँ तक कि सन् 1942 के जन-आन्दोलन में भी आपकी गिरफ्तारी करके जेल में ठूंस दिया गया था। अपनी पत्रकारिता के व्यस्त जीवन में आपने गम्भीर साहित्य की रचना करने की ओर भी विशेष ध्यान दिया था। आपकी ऐसी रचनाओं में 'अण्डमान की गूँज', 'वीर श्रेष्ठ सावरकर', 'तिलक चित्र' और 'मानसोपचार-शास्त्र' आदि प्रमुख हैं। यह सब पुस्तकें आपने मराठी से अनूदित की थीं। आपने मराठी के प्रख्यात नाटककार श्री गडकरी के 'घर-बाहर' नाटक का हिन्दी में अनुवाद भी किया था। इन जेल-यात्राओं में आपका स्वास्थ्य इतना जीर्ण-जर्जर हो गया था कि आपको 'रक्तचाप' की भयंकर बीमारी ने घेर लिया। धीरे-धीरे आपका स्वास्थ्य गिरता ही गया और अन्ततः 23 अक्तूबर सन् 1945 को आपने खण्डवा में ही इस असार संसार को त्यागकर अपने जीवन की अन्तिम साँस ली।

सर सिरेमल बापना

श्री बापनाजी का जन्म 24 अप्रैल सन् 1882 को उदयपुर में हुआ था। आपके पिता श्रीमन्त छोगमल वहाँ के प्रतिष्ठित नागरिक थे। समृद्ध और धनी-मानी परिवार में जन्म लेने के कारण आपकी देख-रेख उसी तरह से हुई थी जिस प्रकार से समृद्ध परिवारों के बालकों की होती है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा सर्वप्रथम अँग्रेजी में हुई थी। यह एक विचित्र बात है कि बापनाजी ने बाल्यावस्था में हिन्दी में अपनी पढ़ाई न करके अँग्रेजी में ही पढ़ने का आग्रह किया था। बालक बापना के मन पर शायद इस बात का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था कि मातृभाषा में बोलना और हिन्दी का व्यवहार करना पिछड़ेपन की निशानी होती है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि बापनाजी अपने देश से अजनबी हो गए और स्वभाव, स्वभाषा तथा सोचने के तरीकों में आप भारतीय जनता से अलग पड़ गए।

क्योंकि बापनाजी का परिवार जैन धर्मावलम्बी था अतः आपके व्यक्तित्व में जैन धर्म के वे सभी गुण पूर्णतः समाहित हो गए थे जिनके कारण आत्मा को पूर्णता प्राप्त होती है। सौभाग्यवश आपको अपने जीवन के प्रारम्भ में ओझा जी जैसा विद्वान् शिक्षक मिला था। उनके इतिहास, पुरातत्त्व और भाषा-विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान का भी बापनाजी के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। गवर्नमेंट कालेज, अजमेर से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से क्रमशः बी० ए०, बी० एस-सी०, डी० एस-सी० तथा एल-एल० बी० की परीक्षाएँ योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण कीं। आपने बी० एस-सी० परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करके जहाँ रसायन विज्ञान में ऑनर्स सहित उपाधि प्राप्त की थी वहाँ डी० एस-सी० परीक्षा में 'जुबली पदक' तथा 'इलियट स्कॉलरशिप' भी आपको मिली थी। एल-एल० बी० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम आने के साथ-साथ आपने 'लैम्प्सडन मैडल' प्राप्त करके सन् 1905 में अजमेर में वकालत प्रारम्भ कर दी थी।

सन् 1907 में आप होलकर स्टेट इन्दौर की सेवा में चले गए और वहाँ पर डिस्ट्रिक्ट एवं सेशन जज नियुक्त हुए। इन्दौर में आपने अनेक रूपों में राज्य की सेवा करने के साथ-साथ वहाँ के प्रधानमन्त्री व राज्य मन्त्रि-मण्डल के अध्यक्ष का पद भी सँभाला था। होलकर शासन के प्रति की गई आपकी अनेक सेवाओं के लिए जहाँ 1930 में आपको 'वजीर उद्-दौला' की सम्मानित उपाधि प्रदान की गई वहाँ ब्रिटिश

सरकार ने भी आपको 'सी० आई० ई०' की उपाधि से विभूषित किया था। सन् 1931 में लन्दन में हुई गोल मेज कान्फ्रेंस के समय आपको भारतीय प्रतिनिधि के रूप में वहाँ भेजा गया था। सन् 1935 में आप जहाँ राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में गए थे वहाँ सन् 1936 में ब्रिटिश सरकार द्वारा आपको 'नाइट' की उपाधि भी प्रदान की गई थी। इसके बाद आप बीकानेर, रतलाम और अलवर राज्य के प्रधानमन्त्री भी रहे थे। सन् 1947 में पूर्णतः सेवा-निवृत्त होकर आप स्थायी रूप से इन्दौर में रहने लगे थे। सन् 1952 में इन्दौर-निवासियों ने आपका 'हीरक जयन्ती उत्सव' बड़े समारोहपूर्वक मनाया था।

यह बापना साहब की ही प्रेरणा का सुपरिणाम था कि सन् 1918 में महात्मा गान्धी की अध्यक्षता में इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आठवाँ अधिवेशन सम्पन्न हुआ था। इन्दौर के इस अधिवेशन में ही भारत के प्रत्येक प्रदेश से आए हुए विभिन्न भाषा-भाषी प्रतिनिधियों ने सर्व सम्मति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का जो प्रस्ताव स्वीकार किया था उसमें श्री बापनाजी का सक्रिय सहयोग था। 'मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति' के भवन के लिए भी आपने सेठ कस्तूरचन्द द्वारा जमा किये गए 10 हजार रुपए की राशि को ब्याज सहित 32 हजार रुपए के रूप में प्रदान किया था। जिन दिनों हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सन् 1935 का अधिवेशन इन्दौर में हुआ था तब आप होलकर राज्य के प्रधानमन्त्री थे। इस अधिवेशन का उद्घाटन आपकी ही प्रेरणा पर महाराजा यशवन्तराव होलकर ने किया था। उस समय महात्मा गान्धी को अच्छी धनराशि हिन्दी-प्रचार के लिए आपके ही प्रयास से प्रदान की गई थी। हिन्दी को राज्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में आपने अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किया था।

आपका निधन 16 दिसम्बर सन् 1964 को हुआ था।

अवधवासी ला० सीताराम बी० ए० 'भूप'

लालाजी का जन्म 20 जनवरी सन् 1858 को अयोध्या (उ० प्र०) में हुआ था। आपके पूर्वज जौनपुर के रहने वाले थे। क्योंकि आपके पिता अयोध्या के प्रसिद्ध सन्त बाबा रघुनाथदास के शिष्य हो गए थे इसलिए वे जौनपुर छोड़कर अयोध्या में ही आ बसे थे। आपका विद्यारम्भ बाबा रघुनाथदास ने ही कराया था, परन्तु पीछे से आपने एक मौलवी साहब के द्वारा उर्दू तथा फारसी पढ़ी थी। ये मौलवी साहब कुछ हिन्दी भी जानते थे इसलिए लालाजी ने उर्दू के साथ-साथ उनसे हिन्दी भी सीख ली थी। बाबा रघुनाथदास का शिष्य होने के कारण आपके पिता पर वैष्णव धर्म का अत्यधिक प्रभाव हो गया था फलस्वरूप लालाजी अपने पिताजी के धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़-पढ़कर हिन्दी में पूर्णतः दक्ष हो गए थे। इस बीच आपको विधिवत् स्कूल तथा कालेज की शिक्षा दी गई और आपने सन् 1879 में बी० ए० की परीक्षा दे दी और साथ ही एल-एल० बी० भी कर लिया।

वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त लालाजी ने सर्वप्रथम 'अवध अखबार' का सम्पादन किया और फिर कुछ दिन तक बनारस के क्वींस कालेज में अध्यापक हो गए। वहाँ से आप प्रधानाध्यापक होकर सीतापुर गए और वहाँ दो वर्ष तक सफलतापूर्वक कार्य करके बाद में फैजाबाद में विज्ञान-अध्यापक होकर चले गए। फैजाबाद से आप फिर बनारस चले गए और वहाँ पाँच वर्ष तक रहे। इस काल में आपने वहाँ रहते हुए संस्कृत साहित्य का भी अच्छा अध्ययन कर लिया। सन् 1895 में आप डिप्टी-कलक्टर नियुक्त हुए और सन् 1909 में इसी पद से सेवा-निवृत्त हुए थे।

लालाजी ने अपने इस शासकीय सेवा-काल में जहाँ शिक्षा-सम्बन्धी अनेक योजनाओं में अपना सहयोग दिया वहाँ आपने अपने स्वाध्याय को बढ़ाकर साहित्य-रचना की दिशा में भी सराहनीय कार्य किया था। आपका सबसे पहला हिन्दी ग्रन्थ 'मेघदूत' का अनुवाद है, जो सन् 1883 में प्रकाशित हुआ था। इसके उपरान्त आपने संस्कृत के 'कुमार-सम्भव'

(1884), 'रघुवंश' (1885), 'नागानन्द', 'ऋतु संहार' (1893) और 'शृंगार तिलक' नामक संस्कृत-ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किए। फिर आपका लेखन-कार्य अविराम गति से इस प्रकार चला कि आपने जमकर लेखन किया। आपके द्वारा अनूदित संस्कृत के 'उत्तररामचरित', 'मालविकाग्निमित्र', 'मृच्छकटिक', 'महावीर चरित', 'मालती माधव' तथा 'हितोपदेश' आदि ग्रन्थ भी विशेष उल्लेखनीय हैं। आप ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली की कविता भी किया करते थे और कविता में आपका उपनाम 'भूप' था। इन अनुवादों के अतिरिक्त आपने 'अयोध्या का इतिहास' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा है। आपने जहाँ राजापुर में मिली 'रामचरितमानस' की प्रति के अयोध्या काण्ड का सम्पादित संस्करण प्रकाशित किया था वहाँ हिन्दी की कुछ ऐसी कविताएँ भी लिखी थीं जो पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से हिन्दी की पिछली पीढ़ी में अत्यन्त लोकप्रिय हुई थीं। आपने जहाँ :

बैरगिया नाला जुलम जोर,
जहँ रहत साधु के भेष चोर।
जब तबला बाजै धीन-धीन,
तब एक-एक पै तीन-तीन।

जैसी लोकप्रिय रचनाओं के माध्यम से हिन्दी कविता को सर्वसाधारण के लिए सहज बनाया था वहाँ इण्डियन प्रेस, प्रयाग के अनुरोध पर आपने माध्यमिक कक्षा तक के छात्रों के लिए बड़ी उपयोगी पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी थी। इन पाठ्य-पुस्तकों का उद्देश्य हिन्दी को जनसाधारण तक पहुँचाना था। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आपने इन सब पाठ्य-पुस्तकों की रचना पूर्ण सेवा-भाव से की थी और एक पैसा भी पारिश्रमिक का नहीं लिया था।

संस्कृत के नाटकों के अनुवादों के अतिरिक्त आपने शेक्सपियर की भी कई रचनाओं का अनुवाद किया था। आपकी भाषा बहुत सीधी-सादी, सरल तथा आडम्बरहीन होती थी। जिन दिनों आप डिप्टी-कलक्टर थे उन दिनों भी आपका शिक्षा विभाग से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा था और आप अनेक परीक्षाओं के परीक्षक रहने के साथ-साथ यूनिवर्सिटी के फैलो तथा टैक्स्ट-बुक कमेटी के सदस्य भी रहे थे। आपकी सेवाओं के उपलक्ष्य में शासन की ओर से आपको 'रायबहादुर' की उपाधि भी प्रदान की गई थी।

आपका निधन 79 वर्ष की अवस्था में 2 जनवरी सन् 1937 को प्रयाग में हुआ था।

श्री सीताराम शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म राजस्थान के अलवर राज्य के जागूवास नामक ग्राम में सन् 1864 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आपके जन्म-ग्राम में ही सर्वप्रथम उर्दू में हुई थी। हिन्दी तथा संस्कृत आपने बाद में पढ़ी थी। आपके पिता श्री डेउराज संस्कृत वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान् थे और आपकी विद्वत्ता की धाक अलवर तथा भरतपुर राज्यों में बहुत थी। वे अपने जन्म-ग्राम देवल से अपने श्वसुर पंडित मोतीरामजी के यहाँ 'गृह-जामाता' के रूप में चले गए थे, अतः पंडित सीताराम शास्त्रीजी अपने नाना श्री मोतीरामजी के दत्तक पुत्र के रूप में ही रहे थे। क्योंकि आपके पिता श्री डेउराज का निधन आपकी 5 वर्ष की आयु में ही हो गया था, इस कारण आपकी माता श्रीमती नानगी देवी के निरीक्षण में ही आपका लालन-पालन हुआ था।

आपके ग्राम जागूवास में पं० गंगासहाय नाम के संस्कृत के एक पंडित रहा करते थे उन्होंने जब बालक सीताराम से यह प्रश्न कर दिया कि आजकल क्या पढ़ते हो तो सीताराम जी ने कहा कि आजकल तो मैं उर्दू-फारसी के 'गुलिस्ताँ' और 'बोस्ताँ' पढ़ रहा हूँ। पं० गंगासहायजी को यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्हें इस बात की हार्दिक वेदना भी हुई कि संस्कृत के परम्परा वाले परिवार में रहकर यह बालक संस्कृत से दूर क्यों है? उनकी प्रेरणा पर आपने
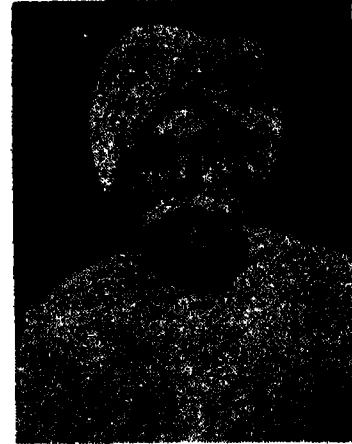
संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया और शीघ्र ही आपने संस्कृत के 'अष्टाध्यायी', 'सारस्वत चन्द्रिका' तथा 'अमर कोश' आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर लिया। 10 वर्ष के कठोर परिश्रम और सतत स्वाध्याय के बल पर आपने संस्कृत वाङ्मय की इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि आप अच्छे-अच्छे विद्वानों से भी टक्कर लेने लगे थे। अपना अध्ययन-काल पूरा करने के उपरान्त आपका परिचय 'भारत धर्म महामण्डल' के प्रसिद्ध महोपदेशक पं० देवदत्त शर्मा से हुआ और आपने सुदर्शन-सम्पादक पं० माधवप्रसाद मिश्र, उनके अनुज पं०राधाकृष्ण मिश्र, पं०शम्भूराम पुजारी तथा सेठ जयरामदास हलवासिया के साथ मिलकर भिवानी में 'सनातन धर्म सभा' की स्थापना कर दी और उसके माध्यम से उस क्षेत्र में संस्कृत और हिन्दी का प्रचार ही नहीं किया प्रत्युत वहाँ पर एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना भी कर दी।

आपका संस्कृत वाङ्मय तथा भारतीय संस्कृति के प्रति इतना अनुराग था कि आपने शेखावाटी क्षेत्र में उसके प्रचारार्थ खूब भ्रमण किया। आपने कुछ दिन तक बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस में रहकर भी संस्कृत ग्रन्थों के सम्पादन-प्रकाशन का कार्य किया और फिर भिवानी में संस्कृत वाङ्मय की सर्वांगीण शिक्षा देने के निमित्त आपने सन् 1911 में 'श्री हरियाणा शेखावाटी ब्रह्मचर्याश्रम' नामक एक संस्था की स्थापना कर दी और उसके माध्यम से उस क्षेत्र की जनता की बड़ी सेवा की। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आपके इस कार्य में जहाँ पंडितवर राधाकृष्ण मिश्र, पंडित रामरूप जी वैद्य और पंडित श्रीदत्त वैद्य आदि अनेक सज्जनों ने उल्लेखनीय सहायता प्रदान की थी वहाँ उसकी प्रशंसा महामना पं० मदनमोहन मालवीय तथा पं० दीनदयालु शर्मा व्याख्यान-वाचस्पति-जैसे महारथियों ने भी की थी।

आप अच्छे शिक्षक होने के साथ-साथ कुशल लेखक भी थे। आपकी रचनाओं में 'निरुक्त की हिन्दी टीका', 'साहित्य सिद्धान्त', 'गृह्याग्नि कर्म प्रयोग माला', 'भगवत्-भक्ति मीमांसा' तथा 'हिन्दी सांख्य दर्शन' आदि प्रमुख हैं। आपकी विद्वता से प्रभावित होकर कलकत्ता के विद्वानों ने आपको 'विद्या मार्त्तण्ड' की मानद उपाधि देकर सम्मानित किया था।

आपका निधन सन् 1937 में हुआ था।

कुँवर सुखलाल

कुँवर साहब का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के अरनियाँ नामक ग्राम में सन् 1889 में हुआ था। आप आर्य-समाज की पुरानी पीढ़ी के उन्नायकों में प्रमुख स्थान रखते थे और आपने निरन्तर 50 वर्ष तक देश के कोने-कोने में घूमकर वैदिक धर्म का प्रचार किया था। आपकी शिक्षा आगरा के आर्यमुसाफिर विद्यालय में पं० भोजदत्त 'आर्यमुसाफिर' के निरीक्षण में हुई थी। आप उच्चकोटि के वक्ता होने के साथ-साथ हिन्दी के सुकवि भी थे। क्योंकि आपका कण्ठ बहुत मधुर था इसलिए आपने अपने भजनों और व्याख्यानों के द्वारा ही वैदिक धर्म का प्रचार करने का संकल्प किया था।

आपने जहाँ शुद्धि, दलितोद्धार तथा समाज-सुधार-सम्बन्धी अनेक आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया था वहाँ स्वाधीनता आन्दोलनों के सिलसिले में भी कई बार जेल गए थे। आपका हिन्दी और उर्दू छन्दों पर इतना अधिकार था कि आपने सभी रसों और छन्दों में अनेक सशक्त रचनाएँ की थीं।

आपका निधन 3 जनवरी सन् 1981 को हुआ था।

श्री सुखसम्पत्तिराय भंडारी

श्री भण्डारीजी का जन्म राजस्थान के जोधपुर राज्य के जैतारण नामक नगर में सन् 1891 में हुआ था। आपके पूर्वज भण्डारी रघुनाथसिंह और भण्डारी अनोपसिंहजी बड़े प्रतापी तथा वीर पुरुष थे। उन्होंने जोधपुर

के तत्कालीन महाराजा अजीतसिंहजी और उनके सुपुत्र महाराजा अभयसिंह के राज्य-काल में बड़े-बड़े वीरोचित कार्य किए थे। ये दोनों ही जोधपुर राज्य में प्रधानमन्त्री थे। इसका उल्लेख 'टाड राजस्थान' नामक ग्रन्थ में मिलता है। श्री भण्डारीजी के पिता अपने नाना जीतमल कोठारी के साथ इन्दौर राज्य के भानपुर नामक स्थान में जाकर व्यापार करने लगे थे। वहाँ पर ही श्री भण्डारीजी की प्रारम्भिक शिक्षा मराठी माध्यम की पाठशाला में हुई थी। मराठी की चौथी कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सन् 1903 में आपने वहाँ के अँग्रेजी स्कूल में अँग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी भी पढ़नी शुरू की। उस समय आपके इस स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री विश्वनाथ काशीनाथ लेले थे। लेलेजी के चरणों में बैठकर ही भण्डारीजी ने इतिहास-सम्बन्धी गहन ज्ञान प्राप्त किया था। आपने अपने हिन्दी अध्यापक ठाकुर मशालसिंह से हिन्दी-साहित्य के अध्ययन के प्रति अद्भुत प्रेरणा प्राप्त की थी।

इसी बीच अपने उक्त दोनों गुरुजनों की कृपा से सन् 1908 में भण्डारीजी ने हिन्दी की प्रख्यात मासिक पत्रिका 'सरस्वती' और 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के दर्शन किए थे। उन्हीं के पास 'हिन्दी बंगवासी' और 'हिन्दी केसरी' भी आपको देखने को मिले थे। इन पत्र-पत्रिकाओं के स्वाध्याय का भण्डारीजी के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा और हिन्दी-लेखन के प्रति आपका झुकाव दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगा। 'सरस्वती' में प्रकाशित स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के अमेरिका-प्रवास-सम्बन्धी लेखों से भी भण्डारीजी ने प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की थी। भानपुरा में ही श्री भण्डारीजी का सम्पर्क हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री शिवचन्द्र भरतिया से हुआ था। श्री भरतियाजी उन दिनों वहाँ पर 'कस्टम सुपरिंटेंडेंट' थे। इस बीच आपकी भेंट श्री गिरिधर शर्मा नवरत्न से हो गई और इससे आपको अपने व्यक्तित्व के विकास में बहुत सहायता मिली तथा आप 'वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी सम्पादक होकर बम्बई चले गए। वहाँ पर रहते हुए भण्डारीजी ने प्रख्यात अमरीकी लेखक 'राल्फ वाल्डो ट्रिने' की एक पुस्तक का अनुवाद 'स्वर्गीय जीवन' नाम से किया था। बम्बई की जलवायु अनुकूल न होने के कारण आप बम्बई से इन्दौर लौट आए।

इन्दौर लौटने के उपरान्त आपको जब मालूम हुआ कि दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'सद्धर्म प्रचारक' (साप्ताहिक) में सहकारी सम्पादक की आवश्यकता है। उन दिनों इस पत्र के सम्पादक स्वामी श्रद्धानन्द के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिश्चन्द्र वेदालंकार थे, जो उन्हीं दिनों अपने छोटे भाई श्री इन्द्रजी के साथ गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके कार्य-क्षेत्र में अवतरित हुए थे। थोड़े-से प्रयास से आपको 'सद्धर्म प्रचारक' में कार्य मिल गया और आप दिल्ली आ गए। उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गान्धी ने वहाँ के भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए जो आन्दोलन प्रारम्भ किया हुआ था 'सद्धर्म प्रचारक' ने उसका न केवल खुलकर समर्थन किया अपितु 60 हजार रुपए भी इकट्ठे करके गान्धीजी के पास वहाँ भेजे। 'सद्धर्म प्रचारक' के कार्यालय में ही आपकी भेंट भारत-भक्त श्री सी० एफ० एण्ड्रूज तथा रैवरेण्ड पीयर्सन से हुई थी। यहाँ पर ही आपने लाला लाजपतराय और रामजस हाईस्कूल, दिल्ली के संस्थापक लाला केदारनाथ के दर्शन किए थे। दक्षिण अफ्रीका-सम्बन्धी आन्दोलन के सम्बन्ध में आवश्यक विचार-विमर्श करने के लिए श्री गोपालकृष्ण गोखले भी उन दिनों दो बार 'प्रचारक' के कार्यालय में पधारे थे। यद्यपि स्वामी श्रद्धानन्द और उनके सुपुत्र श्री हरिश्चन्द्र ने भण्डारीजी को अत्यन्त आत्मीयता से अपने यहाँ रखा था, किन्तु घरेलू परिस्थितियों के कारण आपको घर लौटने को विवश होना पड़ा था।

इसके बाद आप पटना से प्रकाशित होने वाले 'पाटलिपुत्र' नामक साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक होकर वहाँ चले गए। इस पत्र के प्रधान सम्पादक उन दिनों प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता श्री काशीप्रसाद जायसवाल थे। श्री जायसवाल जी के सम्पर्क से जहाँ भण्डारीजी के ज्ञान में दिन-प्रतिदिन अभिवृद्धि होती गई वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सम्बन्ध

में भी लेख आदि वे खुलकर लिखने लगे थे। पारिवारिक बाधाओं ने आपको फिर विवश किया और आपने घर लौटकर इन्दौर में ही कोई कार्य करने की सोची। इस बीच इन्दौर के तत्कालीन नरेश ने हिन्दी और मराठी का एक साप्ताहिक पत्र निकालने की योजना बनाई और उसके मराठी अंश के सम्पादक मराठी के सुप्रसिद्ध लेखक एवं ग्रन्थकार श्री वासुदेव गोविन्द आप्टे बनाए गए तथा हिन्दी-सम्पादक के रूप में भण्डारीजी की नियुक्ति हुई। श्री आप्टे जी इससे पूर्व मराठी के कई पत्रों का सम्पादन कर चुके थे। उनके सम्पर्क से भण्डारीजी को सम्पादन-कला का बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ था। आप्टेजी का निजी पुस्तकालय भी बहुत बड़ा था। आपके उस पुस्तकालय का लाभ भी भण्डारी जी ने समय-समय पर बहुत उठाया था। उस पत्र का नाम 'मल्लरि मार्तण्ड' रखा गया और भण्डारीजी ने इसमें अपनी प्रतिभा को अत्यधिक बहुमुखी बनाया। पत्र के कार्यालय में परिवर्तन में आने वाली पत्र-पत्रिकाओं के स्वाध्याय से भी धीरे-धीरे आपके ज्ञान में अभिवृद्धि होती गई। यह पत्र इतनी ज्ञानवर्द्धक सामग्री से परिपूर्ण हुआ करता था कि कभी-कभी हिन्दी के पत्रों में भी उसके लेख उद्धृत किये जाते थे। उन्हीं दिनों सन् 1918 में जब महात्मा गांधी की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन इन्दौर में हुआ था तब इस पत्र को 4-5 दिन के लिए दैनिक रूप में भी प्रकाशित किया गया था।

पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य-रत रहते हुए आपका देश के अनेक क्रान्तिकारियों, राष्ट्रनेताओं और पत्रकारों से निजी सम्पर्क भी ऐसा हो गया था जिससे आपको भावी जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रचुर प्रेरणा प्राप्त हुई थी। ऐसे महानुभावों में सर्वश्री केसरीसिंह बारहट, अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह 'पथिक', चाँदकरण शारदा, रामनारायण चौधरी, माणिकलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, गणेशनारायण सोमानी, शंकरलाल वर्मा तथा शोभालाल गुप्त आदि के नाम प्रमुख हैं। इस सम्पर्क का यह परिणाम हुआ कि आप राजनीतिक गतिविधियों में भी बराबर भाग लेने लगे। जब आप पर राजनीति का अत्यधिक प्रभाव हो गया और आप निर्भीकतापूर्वक अपने विचारों को 'मल्लरि मार्तण्ड' में प्रकट करने में विवशता का अनुभव करने लगे तब आपने वहाँ से त्यागपत्र दे दिया। इसी समय सन् 1922 में आप अपने कुछ मित्रों के अनुरोध पर अजमेर चले गए और वहाँ से 'नवीन भारत' नामक एक साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पत्रकारिता करते हुए आपने ग्रन्थ-लेखन की दिशा में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। आपकी 'भारत और अँग्रेज' तथा 'संसार की क्रान्तियाँ' नामक पुस्तकें उन्हीं दिनों प्रकाशित हुई थीं। सन् 1924 में भण्डारीजी फिर इन्दौर चले गए और वहाँ जाकर आपने 'देशी राज्यों का इतिहास' नामक एक विस्तृत ग्रन्थ लिखा, जिसके प्रकाशन के बाद आपको इन्दौर तथा देवास के दरबारों ने क्रमशः 15 हजार और 15 सौ रुपए पुरस्कार-स्वरूप प्रदान किए थे। इनके अतिरिक्त अन्य कई देशी राज्यों ने भी आपको प्रोत्साहित किया था।

धीरे-धीरे जब भण्डारीजी की आर्थिक स्थिति कुछ सुधर गई तब आपने स्व० रानाडे की 'अँग्रेजी मराठी डिक्शनरी' के आदर्श पर 'अँग्रेजी-हिन्दी का विशाल कोष' तैयार करने का संकल्प किया और पूर्णतः उसीमें संलग्न हो गए। इस कार्य के साथ-साथ आपने इन्हीं दिनों मालवा के इतिहास से सम्बन्धित अँग्रेजी तथा हिन्दी में एक ग्रन्थ और लिखा था। सन् 1925 में जब भण्डारीजी का सम्पर्क इन्दौर राज्य के तत्कालीन प्रधानमन्त्री सर सिरेमल बापना से हुआ तब उनकी प्रेरणा पर आपने 'किसान' नामक एक मासिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन भी इन्दौर से किया था। इस कार्य-काल में 'किसान' के माध्यम से कृषि-विज्ञान का क्रियात्मक ज्ञान बढ़ाने के लिए आपने ऐसी सामग्री हिन्दी के पाठकों को अर्पित की थी, जिसका देश में सर्वत्र इतना स्वागत हुआ कि अधिकांश हिन्दी-पत्रों ने इसके लेखों को उद्धृत किया था। यहाँ तक कि लाला लाजपतराय के अँग्रेजी पत्र 'पीपुल' ने भी इसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की थी। सन् 1914 में आपने अँग्रेजी-हिन्दी के जिस कोश का निर्माण प्रारम्भ किया था और जो अनेक विषम परिस्थितियों के कारण उस समय बन्द हो गया था उसे फिर चालू किया। आपके इस कार्य की प्रशंसा सर प्रफुल्लचन्द्र राय ने भी की थी। उन्होंने जब इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आपको प्रेरित किया तब फिर भण्डारीजी ने अजमेर में जमकर इस कार्य को आगे बढ़ाने का संकल्प किया और इसके 'विज्ञान-सम्बन्धी' शब्दों का प्रथम भाग शीघ्र ही प्रकाशित कर दिया।

आपके इस सत्प्रयास की प्रशंसा देश की सभी पत्र-

पत्रिकाओं ने की थी। इस कोश के 10 भाग प्रकाशित हुए थे, जिनमें राजनीति, शासन-विज्ञान, अर्थशास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, शरीर शास्त्र, शल्य विज्ञान, युद्ध विज्ञान, इंजीनियरिंग, दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान, जीव शास्त्र, भाषा विज्ञान, गणित, उद्योग-धन्धे, वस्त्र उद्योग, शक्कर उद्योग, कृषि, डेयरी, सीमेंट उद्योग, रेशम उद्योग, खनिज विज्ञान, समाजवाद, रेडियो विज्ञान, विधान-शास्त्र, पत्रकारिता, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, वित्त विज्ञान और बैंकिंग आदि अनेक विषयों के पारिभाषिक शब्द समाविष्ट है। भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' के द्वारा पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का जो कार्य आजकल हो रहा है उसमें श्री भण्डारीजी के यह कोश बड़े सहायक सिद्ध हो रहे हैं। आपके इन कोशों की महत्ता इस विभाग के प्रथम अध्यक्ष डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने भण्डारीजी के नाम लिखे गए अपने एक पत्र में स्वयं स्वीकार की है। इसके अतिरिक्त भण्डारीजी की एक योजना 20 भागों में 'विश्व कोश' प्रकाशित करने की भी थी। आपकी इन कृतियों के अतिरिक्त 'भारत दर्शन' तथा 'तिलक दर्शन' के नाम भी उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री चन्द्रराज भण्डारी आपके कनिष्ठ भ्राता थे और प्रख्यात कथा-लेखिका श्रीमती मन्नू भण्डारी आपकी सुपुत्री हैं।

आपका निधन सन् 1962 में हुआ था।

श्री सुखानन्द जैन शास्त्री

श्री सुखानन्द जैन का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जनपद के रामटौरिया-रेवाड़ी नामक स्थान में सन् 1910 में हुआ था। आप जैन समाज के अच्छे साहित्य-सेवियों में थे। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् सागर के आप स्थायी सदस्य होने के साथ-साथ 'बुन्देलखण्ड साहित्य परिषद्' से भी सम्बद्ध थे। आपने जहाँ 'जैन जागरण' और 'स्वर्ण कमल' नामक पत्रों का सम्पादन किया था वहाँ 'हिन्दी के जैन साहित्य-सेवी कोश' और 'गोला-पूर्व जैन डायरेक्टरी' नामक पुस्तकों का भी निर्माण किया था।

आपका निधन 19 जुलाई सन् 1941 को हुआ था।

श्री सुदर्शन चोपड़ा

श्री चोपड़ा का जन्म 2 अक्तूबर सन् 1929 में अविभाजित पंजाब की राजधानी लाहौर में हुआ था। आपके पिता श्री प्यारेलालजी की एक लम्बी बीमारी में टाँगें खराब हो गई थीं, इस कारण उनके कारोबार को भी क्षति पहुँची थी। भारत-विभाजन से एक वर्ष पूर्व सुदर्शनजी ने लाहौर के डी० ए० वी० हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। क्योंकि आपके पिताजी की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी अतः सुदर्शनजी ने आगे पढ़ने का विचार छोड़कर पंजाब नेशनल बैंक में क्लर्की की नौकरी कर ली थी। यद्यपि आगे पढ़ने की आपकी बहुत इच्छा थी पर पारिवारिक विवशताओं ने आपकी यह इच्छा पूरी न होने दी।

इस बीच समस्त भारत में हिन्दू-मुस्लिम-दंगों का दौर-दौरा हो गया और सुदर्शनजी का परिवार भारत-विभाजन के दिनों में रोहाना कलाँ (मुजफ्फरनगर) आ गया, जहाँ पर आपके मौसा शुगर मिल के मैनेजर थे। सन् 1948 में जब नई दिल्ली से 'नेताजी' नामक हिन्दी दैनिक का प्रकाशन हुआ तो

सुदर्शनजी उसमें आ गए। जब 'नेताजी' का प्रकाशन बन्द हो गया तो आप रेलवे में टिकट-चैकर हो गए और इस प्रसंग में आपने अपना स्थायी निवास मुजफ्फरनगर में बना लिया। इस बीच आपने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और आप कहानी-लेखक बन गए। आपकी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को उस समय

मिला जब सन् 1958 के आस-पास 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने 'प्रेमचन्द कहानी प्रतियोगिता' आयोजित की और उसमें आपकी 'ओलिम्पस' नामक कहानी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। आपने अपनी कहानी-कला का विशिष्ट परिचय तब दिया जब 'हल्दी के दाग' नाम से आपका एक कहानी-संग्रह प्रकाश में आया। इन्हीं दिनों 'हस्ताक्षर' नाम से आपने एक उपन्यास भी लिखा था।

धीरे-धीरे सुदर्शनजी की गिनती अच्छे कहानीकारों में होने लगी और आप रेलवे की नौकरी छोड़कर 'भारतीय ज्ञानपीठ' कलकत्ता में चले गए और जब ज्ञानपीठ का कार्यालय दिल्ली आया तब कुछ दिन तक आप फ्री-लान्सिंग करते रहे और फिर 'हिन्द पॉकेट बुक्स' से स्थायी रूप से सम्बद्ध हो गए। इस बीच आपकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं; जिनमें 'रिश्ते', 'सम्मोहन', 'दहकते अंगारे', 'नाइट क्लब', 'प्रतिनायिका', 'षड्यंत्र', 'मैं और हम', 'स्वीकारान्त', 'सीमान्त' और 'सन्नाटा' आदि प्रमुख हैं। आपने कुछ दिन सहारनपुर में हिन्दी के प्रख्यात शैलीकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के पास रहकर उनके 'विकास' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। इसके अतिरिक्त आपने 'चिंगारी' तथा 'सहयोग' नामक साप्ताहिक पत्रों का भी सम्पादन किया था।

आपका निधन 12 अप्रैल सन् 1978 को हुआ था।

श्री सुधीन्द्र वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म सन् 1901 में झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में हुई थी और बाद में आपने आगरा विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम०ए० करने के बाद झाँसी के बुन्देलखण्ड डिग्री कालेज में अध्यापन-कार्य शुरू कर दिया था। लगभग एक वर्ष तक आप वहाँ बिपिनबिहारी इण्टर कालेज में भी अध्यापक रहे थे।

आपका रुझान प्रारम्भ से ही लेखन की ओर था; अतः आपने उस दिशा में अपनी प्रतिभा का समुचित सदुपयोग किया। आपकी रचनाएँ 'सुधा', 'माधुरी', 'महारथी', 'विशाल भारत', 'आर्य शक्ति' तथा 'नवनीत' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में

ससम्मान प्रकाशित होती थीं। आपने कई वर्ष तक केन्द्रीय सरकार के 'खादी ग्रामोद्योग कमीशन' तथा उत्तर प्रदेश की 'हिन्दी समिति' में सम्पादन का कार्य किया था। लगभग 10 वर्ष तक आप हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सुधा' के सहकारी सम्पादक भी रहे थे। लगभग तीन वर्ष तक आपने प्रख्यात हिन्दी साप्ताहिक 'धर्मयुग' में भी कार्य किया था। आप जहाँ उच्चकोटि के लेखक और पत्रकार थे वहाँ समाज-सेवा के क्षेत्र में भी आपकी देन विशेष महत्त्व रखती है। आप कई वर्ष तक नगर कांग्रेस कमेटी, झाँसी के मंत्री रहने के साथ-साथ 'सोशल वेलफेयर बोर्ड' के अध्यक्ष भी रहे थे। आपने सन् 1931 से सन् 1949 तक झाँसी में वकालत की प्रैक्टिस भी की थी।

आपकी लेखन-शैली का परिचय वैसे तो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आपके लेखों से ही भली भाँति मिल जाता है परन्तु आपने जो पुस्तकें लिखी थीं वे भी कम महत्त्व नहीं रखतीं। आपकी ऐसी कृतियों में 'खाँडे की धार', 'रणजीतसिंह', 'विवेकानन्द', 'भारतीय चित्रकला के सिद्धान्त', 'भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास' तथा 'भारत की ललित कलाएँ' उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 28 अगस्त सन् 1969 को हुआ था।

श्रीमती सुन्दरदेवी जैन

श्रीमती सुन्दरदेवी जैन का जन्म 6 दिसम्बर सन् 1925 को जबलपुर (मध्यप्रदेश) जनपद के कटनी नगर में हुआ था।

आपका विवाह जबलपुर के श्री शिखरचन्द जैन के साथ हुआ था, जिनका परिवार भी देश-भक्ति और त्याग के लिए प्रसिद्ध था। पैतृक संस्कारों से मिली देश-भक्ति एवं त्याग की प्रेरणा को ससुराल में भी फूलने-फलने का अवसर मिला और सन् 1942 के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के साथ ही काव्याकाश में नई तारिका का उदय हो गया। घूँघट आपके संस्कारों का वैभव था। कवि-सम्मेलनों में काव्य-पाठ करते समय आपका घूँघट काफी लम्बा हुआ करता था।

आपकी रचनाएँ 'सन्मति सन्देश', 'नवभारत', 'युग-धर्म', 'नई दुनिया', 'देशबन्धु', 'मध्यप्रदेश सन्देश' तथा 'विद्यासागर' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। 'भारतीय ज्ञानपीठ काशी' से प्रकाशित 'आधुनिक जैन कवि' (1944) नामक काव्य-संग्रह में आपकी रचनाएँ सपरिचय संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त 'पीयूष कलश' (1979) आपका एक-मात्र काव्य-संग्रह है, जिसमें आपकी भावनाओं के शृंगार की अमिट बानगी है।

आपका निधन 7 दिसम्बर सन् 1979 को जबलपुर में हुआ था। यह प्रसन्नता की बात है कि आपकी स्मृति में जबलपुर विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षा में प्रतिवर्ष सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाली छात्रा को 'श्रीमती सुन्दर-देवी जैन स्वर्ण पदक' प्रदान किया जाता है।

श्री सुन्दरलाल गर्ग

श्री गर्गजी का जन्म सन् 1913 में अजमेर में हुआ था। एक उत्कृष्ट पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित करने के साथ-साथ आप अच्छे कहानीकार के रूप में भी प्रसिद्ध थे।

आपने सन् 1934 में जहाँ अजमेर से 'परिवर्तन' नामक पाक्षिक पत्र का संचालन-सम्पादन किया था वहाँ 'नव ज्योति' साप्ताहिक के सम्पादन में भी अपना उल्लेख-नीय सहयोग दिया था। आपने जयपुर से प्रकाशित होने वाले 'कर्मभूमि' नामक पत्र के एक विशेषांक का सम्पादन भी किया था।

आप जिन दिनों पत्रकारिता के क्षेत्र में अवतरित हुए थे उन दिनों सर्वश्री जगदीश-प्रसाद माथुर 'दीपक' और दीनदयाल वर्ण-वाल 'दिनेश' आपके समकालीन थे और 'परिवर्तन' के प्रका-शन तथा सम्पादन में इन्होंने भी अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया था।

आपकी कहानियों का संकलन 'पान फूल' नाम से सन् 1936 में प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन 15 अक्तूबर सन् 1943 को केवल 30 वर्ष की आयु में हुआ था।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राजी का जन्म सन् 1904 में प्रयाग के निहाल-पुर नामक मोहल्ले में हुआ था। वहाँ के क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में आपने शिक्षा प्राप्त की और केवल 15 वर्ष की आयु में ही ठा० लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ आपका विवाह हो गया। उन दिनों वे जबलपुर में वकालत करते थे। बाल्य-काल से आपकी रुचि साहित्य-रचना की ओर थी। विवाह के बाद भी आप दो वर्ष तक अध्ययन में लगी रहीं, लेकिन सन् 1921 के असहयोग-आन्दोलन के प्रारम्भ होते ही आप

उसमें कूद पड़ीं और गांधीजी के आह्वान पर कालेज छोड़ दिया। अपने पति ठाकुर लक्ष्मणसिंह को भी राष्ट्र-सेवी बनाने में आपका बड़ा हाथ था। फलस्वरूप वकालत को छोड़कर वे भी पूरी तरह राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते रहे।

श्रीमती चौहान के पति ठाकुर साहब प्रख्यात कवि माखनलाल चतुर्वेदीजी के साथ 'कर्मवीर' साप्ताहिक के संचालन में सहयोग देते रहे थे। उन दिनों 'कर्मवीर' जबलपुर से प्रकाशित होता था। सुभद्राकुमारीजी 15 वर्ष की आयु में ही काव्य-रचना करने लगी थीं। सुभद्राजी सबसे पहले सन् 1923 में जेल गईं। सन् 1942 के अन्दोलन में भी आप गिरफ्तार की गई थीं। काफी दिन तक आप जबलपुर-नगरपालिका की सदस्या और मध्यप्रदेश विधानसभा की सदस्या रही थीं। मृत्यु के समय भी आप विधानसभा की सदस्या थीं। साहित्य और राजनीति दोनों क्षेत्रों में सक्रिय रूप से कार्य करके आपने मध्यप्रदेश के सार्वजनिक जीवन में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था।

सुभद्राजी मुख्यतः कवयित्री थीं। आपका कवि-रूप सार्वजनिक नेत्री के रूप से कहीं अधिक उजागर और प्रतिष्ठित है। बचपन से ही आप कविता करने लगी थीं। आपके पिता ठाकुर रामनाथसिंह भक्तिपूर्ण गीत गाया करते थे, जिनको सुनकर बालिका सुभद्रा के मानस में कविता का अंकुर प्रस्फुटित हो गया था। अपने भाई ठा० राजबहादुरसिंह से भी आपको इस क्षेत्र में बढ़ने की प्रचुर प्रेरणा मिली थी। अपनी स्वाभाविक प्रतिभा तथा पारिवारिक वातावरण के कारण आपकी कवित्व-शक्ति शीघ्र ही इतनी विकसित हो गई कि आपकी रचनाएँ 'सरस्वती' तथा 'माधुरी' आदि उस समय की प्रमुख पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होने लगी थीं।

हिन्दी-काव्य की कोकिला श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी विशिष्ट रचना-शैली के कारण साहित्य में ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था, जिसकी पूर्ति अभी तक किसी ने नहीं की। राष्ट्रीय भावनाओं की अभिवृद्धि की दिशा में जहाँ आपने अपने काव्य से अनन्य योगदान दिया था वहाँ उसके साथ-साथ हमारे पारिवारिक जीवन की अनेक अनुभूतियों का यथातथ्य चित्रण भी अपनी कहानियों में किया था। जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जिसका विश्लेषण आपने अपनी कहानियों में न किया हो। साहित्य के क्षेत्र में अपना उल्लेखनीय स्थान बनाने के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण के लिए भी आपने अनेक ऐसे कार्य किए थे, जिनका हमारे राजनीतिक जीवन में अभूतपूर्व स्थान है।

राष्ट्रीयता, पारिवारिक वातावरण और सांस्कृतिक उत्थान की गहरी छाप आपकी रचनाओं में देखने को मिलती है। सुकवि माखनलालजी के निर्देशन-प्रोत्साहन तथा अपने पति ठा० लक्ष्मणसिंह चौहान के सहज स्वभाव के कारण सुभद्राजी कविता के क्षेत्र में शीघ्र ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गईं। आपकी 'झाँसी की रानी' अकेली कविता ही ऐसी है जो आपको हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सदा-सर्वदा के लिए एक स्मरणीय और उल्लेखनीय प्रतिष्ठा दे गई है :

बुन्देले हरबोलों के मुँह,
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो,
झाँसी वाली रानी थी।

आपकी कविता की ये अमर पंक्तियाँ आज भी हमारे जन-मानस की प्रेरणा-स्रोत हैं। राष्ट्रीय जागरण की दिशा में अकेली इसी कविता ने असंख्य युवक-युवतियों को बलि-पथ का पथिक बनाया और वे केसरिया बाना पहनकर स्वतन्त्रता-संग्राम में हँसते-हँसते कूद पड़े। आपकी 'वीरों का कैसा हो वसन्त' शीर्षक रचना भी ऐसी ही प्रबल प्रेरणा देने वाली है।

कविता के अतिरिक्त कहानी-लेखन के क्षेत्र में भी आपने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। भारतीय मध्यवर्ग के परिवारों का चित्रण करने के लिए आपकी कहानियाँ आदर्श कही जा सकती हैं। आपकी कविताएँ 'मुकुल' नामक पुस्तक में संकलित हैं और 'बिखरे मोती' तथा 'उन्मादिनी' नामक पुस्तकों में

आपकी कहानियाँ समाविष्ट हैं । आपकी 'मुकुल' तथा 'बिखरे मोती' नामक पुस्तकों पर आपको अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से दो बार 'सेकसरिया-पुरस्कार' प्रदान किया गया था । आपकी बालोपयोगी रचनाएँ 'सभा के खेल' नामक पुस्तक में संकलित की गई हैं।

आपका निधन सन् 1947 की बसन्त-पंचमी को मध्य-प्रदेश के 'स्योनी' नामक स्थान में एक मोटर-दुर्घटना में हुआ था।

श्री सुभाष दशोत्तर 'विवेक'

श्री सुभाष दशोत्तर 'विवेक' का जन्म मध्य प्रदेश के रतलाम शहर में 18 जून सन् 1950 को हुआ था। अपने छात्र-जीवन से ही आपके अन्तर्मन का साहित्यकार जाग्रत हो गया था। अपने शिक्षा-केन्द्र माधव महाविद्यालय, उज्जैन में आपकी प्रतिभा का प्रकाशन उसकी वार्षिक पत्रिका में तथा एक कुशल वाद-विवाद - प्रतियोगिता के वक्ता के रूप में हुआ था। वाद-विवाद प्रतियोगिता में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करके आपको पुरस्कार पाने का भी सुयोग प्राप्त हुआ था। कटनी और देवास के शासकीय महाविद्यालयों में व्याख्याता के पद पर रहते हुए वहाँ की वार्षिक पत्रिकाओं में भी आपकी रचनाएँ ससम्मान प्रकाशित होती रहती थीं। आपको विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन की सीनेट की सदस्यता के सन् 1977 के चुनाव में अभूतपूर्व सफलता मिली थी।

19 अगस्त सन् 1973 से आपने पाक्षिक समाचार-पत्र 'रवि प्रकाश' का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। आपकी रचनाओं में 'पैवस्त यातना' (काव्य-संग्रह : 1976), 'सोने का दाँत' (नाट्य रूपान्तर), 'अनियतकालीन प्रश्न' आदि प्रमुख हैं। आपकी कविताओं का एक और संग्रह 'बर्फ' अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन की ओर से प्रकाशित 'कशमकश' नामक काव्य-संकलन में भी आपकी रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

आपका निधन 12 अप्रैल सन् 1977 को हुआ था।

श्री सुमनेश जोशी

श्री जोशीजी का जन्म 3 सितम्बर सन् 1916 को जोधपुर-नगर (राजस्थान) के पुष्करणा ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपका वास्तविक नाम शिवराज जोशी था। आप बचपन से ही क्रान्तिकारी विचार-धारा के व्यक्ति थे। सन् 1942 की 'देशी राज्य क्रान्ति - जिम्मेवार-हुकूमत आन्दोलन' के आप सेनानी रहे। आपका पूरा परिवार जेल में होने पर भी आप तनिक भी अपने पथ से विचलित नहीं हुए और स्वतन्त्रता-सेनानी के रूप में अनेक बार जेल-यात्राएँ करने के उपरान्त भी आपने हार नहीं मानी। आप जहाँ एक जीवट के पत्रकार थे वहाँ जोधपुर के 'दैनिक रियासती' और जयपुर के 'राष्ट्रदूत' के संस्थापक तथा प्रधान सम्पादक भी रहे थे। इन पत्रों के माध्यम से आपने अपनी कलम का जो जौहर दिखाया वह उल्लेखनीय है। आपकी साहित्य-साधना को ध्यान में रखकर जहाँ आपको 'राजस्थानी साहित्य सम्मेलन, तिनसुकिया' द्वारा सम्मानित किया गया था वहाँ 'राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर' द्वारा भी 'मनीषी' की मानद उपाधि से विभूषित किया गया था।

आपकी कृतियों में 'युग पूर्णिमा ट्रैक्ट', 'जीवन' (खण्ड-काव्य) तथा 'राजस्थान में स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी' प्रमुख हैं। खेद का विषय है कि 'राजस्थान में स्वतन्त्रता-संग्राम' नामक कृति को आप पूर्ण नहीं कर सके थे।

आपका निधन 16 जनवरी सन् 1974 को हुआ था।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

श्री पन्तजी का जन्म 14 मई सन् 1900 को उत्तर प्रदेश के अलमोड़ा जनपद के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। आपका जन्म-नाम गोसाईंदत्त था और आपकी माताजी का निधन बचपन में ही हो गया था। फलस्वरूप आपका लालन-पालन आपकी दादी के निरीक्षण में हुआ था। प्रकृति के सुन्दर परिवेश में जन्म लेने के कारण आपके मानस में उसके प्रति जो सहज लगाव रहा था वही आपकी कविताओं में मुख्यत: रूपायित हुआ है। जब आप चौथी कक्षा में पढ़ते थे तब ही सहसा आपने कविता-रचना प्रारम्भ कर दी थी। उस समय आपकी आयु केवल 7 वर्ष की थी। 12 वर्ष की आयु में आप गवर्नमेंट हाईस्कूल, अलमोड़ा में प्रविष्ट हुए। कुछ दिन वहाँ पढ़ने के बाद आप काशी चले गए और वहाँ के जयनारायण हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की शिक्षा पूर्ण करने के लिए आपने जब प्रयाग जाकर वहाँ के 'म्योर सेंट्रल कालेज' में प्रवेश लिया तो आपके जीवन का क्रम ही बदल गया। न जाने क्यों सैकिंड ईयर से आपने पढ़ना छोड़ दिया और रात-दिन स्वाध्याय और काव्य-रचना में तल्लीन रहने लगे। सन् 1907 से लेकर सन् 1918 तक आपने जो रचनाएँ कीं उनमें सुन्दर प्राकृतिक छटा का तो अंकन किया ही साथ ही मानवीय अनुभूतियों का सहज अंकन करने में भी आप पीछे नहीं रहे।

आपने जहाँ 'अलमोड़ा अखबार', 'सरस्वती' तथा 'वेंकटेश्वर समाचार' आदि अनेक पत्रों से काव्य-जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्राप्त की वहाँ अनेक प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से अपनी सहज अनुभूतियों का अंकन भी किया। आपको अपने काव्य-क्षेत्र में सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की रचनाओं से प्रचुर प्रेरणा प्राप्त हुई थी। आपके काव्य-जीवन के विकास का प्रारम्भ बनारस के उन दिनों से होता है जबकि आप अपने बड़े भाई के साथ वहाँ रहा करते थे। काशी में ही आपका परिचय कवीन्द्र रवीन्द्र से हुआ था और उन्हीं दिनों आपने 'उच्छ्वास' और 'ग्रन्थि' नामक रचनाओं का प्रणयन किया था। आपने प्रयाग-निवास के दिनों में 'छाया' और 'स्वप्न'-जैसी रचनाओं का सृजन करके जहाँ अनेक काव्य-मर्मज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था वहाँ हिन्दी-कविता को नया स्वरूप भी प्रदान किया था। आपकी उस समय की ऐसी रचनाएँ 'उच्छ्वास' के अतिरिक्त 'गुंजन', 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'वीणा' तथा 'ज्योत्स्ना' ((काव्य-रूपक) आदि पुस्तकों में संकलित हैं। इसके उपरान्त जब आप सन् 1931 में कालाकाँकर चले गए तो वहाँ पर जाकर आपके कवि-व्यक्तित्व का और भी अधिक विकास हुआ। कालाकाँकर-निवास के दस वर्षों को पन्तजी के काव्योत्कर्ष का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस कालखण्ड में लिखी हुई आपकी रचनाओं के संकलन 'युगान्तर' और 'ग्राम्या' नाम से जब हिन्दी-जगत् के सम्मुख आए तब उसने उनका उन्मुक्त मन और उदार हृदय से स्वागत किया। अपनी पिछली रचनाओं में पन्तजी का कवि जहाँ पूर्णत: अन्तर्मुख था वहाँ इन दो रचनाओं में उसका लोकोपयोगी पक्ष उभरकर सामने आया। इसे हम गान्धीवाद और मार्क्सवाद की विचार-धारा के संघर्ष के रूप में भी समझ सकते हैं। उन्हीं दिनों आपने 'रूपाभ' नामक प्रगतिशील मासिक का सम्पादन भी किया था। इस पत्र के सम्पादन में श्री नरेन्द्र शर्मा आपके सहयोगी रहे थे।

इस बीच सन् 1942 का स्वतन्त्रता-आन्दोलन छिड़ गया और आपने अलमोड़ा में जाकर प्रसिद्ध नर्तक श्री उदयशंकर के साथ 'लोकायन' नामक एक संस्कृति-पीठ की योजना

बनाई। उन्हीं दिनों आपकी 'स्वर्णधूलि' और 'उत्तरा' नामक काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं। जिन दिनों सन् 1946 में आप फिर प्रयाग लौटे थे तब आपने अपनी उस लोकायन योजना के क्रियान्वयन का भी प्रयत्न किया था; किन्तु आप उसमें सफल न हो सके। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब सन् 1950 में आप आकाशवाणी के हिन्दी परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हुए तब आपके रचनाकार का एक नया ही रूप काव्य-रूपकों के माध्यम से साहित्य-जगत् के सामने प्रकट हुआ। इस काल में आपने जो काव्य-रूपक आकाशवाणी के लिए लिखे थे वे सब 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण' तथा 'अतिमा' नाम से प्रकाशित हुए थे। उन्हीं दिनों आपकी नवीनतम कविताओं का जो संकलन 'कला और बूढ़ा चाँद' नाम से प्रकाशित हुआ था उस पर साहित्य अकादेमी ने अपना 5 हजार रुपए का पुरस्कार देकर आपको सम्मानित किया था। पन्तजी जहाँ उत्कृष्ट कवि थे वहाँ उतने ही सशक्त गद्यकार भी थे। आपने अपनी 'आधुनिक कवि' 'पल्लविनी', 'रश्मिबन्ध' आदि पुस्तकों में जो भूमिकाएँ लिखी हैं वे आपके गद्य की जीवन्तता को प्रकट करती हैं। 'साठ वर्ष—एक रेखांकन' तथा 'गद्य पथ' नामक आपकी पुस्तकें आपके सशक्त गद्य का प्रशस्त एवं उदात्त रूप प्रस्तुत करती हैं। इसके अतिरिक्त आपने कहानियाँ भी लिखी थीं, जो 'पाँच कहानियाँ' नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल में लिखा हुआ आपका 'हार' नामक उपन्यास भी विशेष उल्लेखनीय है। इसका प्रकाशन 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की ओर से हुआ है। आपकी साहित्य-सेवाओं का सम्मान जहाँ भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने 'पद्म-भूषण' की उपाधि देकर किया था वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी आपको अपनी सर्वोच्च सम्मानोपाधि 'साहित्य वाचस्पति' प्रदान की थी। आपकी 'चिदम्बरा' नामक कृति पर 'भारतीय ज्ञानपीठ' ने एक लाख रुपए का पुरस्कार प्रदान किया था।

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट्० की सम्मानोपाधि प्रदान की थी। आपकी 'वाणी', 'लोकायतन', 'पौ फटने के पहले', 'अभिषेकिता', 'आस्था', 'तारा पथ', 'समाधिता' तथा 'शंख ध्वनि' रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 28 दिसम्बर सन् 1977 को हुआ था।

श्री सुमेरसिंह साहबजादे

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक कस्बे में सन् 1847 में हुआ था। आप सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास के वंशज थे। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में आप अपने पिता के साथ पटना गए और पटना सिटी के हर मन्दिर में सिख धर्म की दीक्षा लेकर वहीं रह गए। आपके दीक्षा-गुरु आपके पिता ही थे। आपकी शिक्षा पंजाब के एक विरक्त साधु भाई गरीबसिंह की देख-रेख में हुई थी और चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही आप काव्य-रचना करने लगे थे।

सन् 1897 में आपने पटना में एक कवि-समाज की स्थापना की थी, जिसकी ओर से बाबू ब्रजनन्दनसहाय 'ब्रज-वल्लभ' के सम्पादन में 'समस्यापूर्ति' नामक पत्र प्रकाशित होता था। आप काशी-कवि-मण्डल और काशी-कवि-समाज के भी सक्रिय सदस्य थे और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से आपकी बड़ी घनिष्ठता थी। आपके काव्य-सम्बन्धी ज्ञान का लाभ आरा-निवासी पं० सकलनारायण शर्मा और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने भी उठाया था। आपने 'प्रेम प्रकाश' नाम से ब्रजभाषा में एक प्रबन्ध काव्य भी लिखा था और गुरु गोविन्दसिंहजी द्वारा फारसी भाषा में रचित 'जफरनामा' ग्रन्थ का 'विजय पत्र' नाम से हिन्दी अनुवाद भी किया था। आपकी अधिकांश हिन्दी रचनाएँ गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध होती हैं।

सिख धर्म में दीक्षित होने के बावजूद भी आप हिन्दुओं द्वारा आयोजित अनेक सम्मेलनों में सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किये जाते थे। आपका निधन जलोदर रोग के कारण 5 मार्च सन् 1902 को अमृतसर में हुआ था।

श्री सुरेन्द्र चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले की कायमगंज तहसील के राजनन्दा नामक ग्राम में 15 अक्तूबर सन् 1929 को हुआ था। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके ब्रिटेन के ग्लासगो विश्व-

विद्यालय से 'व्यवसाय प्रबन्ध' की विशेष शिक्षा प्राप्त की थी। पहले आप भारत के प्रख्यात उद्योगपति सेठ शान्तिप्रसाद जैन के एक औद्योगिक प्रतिष्ठान में 'लेखाधिकारी' के रूप में नियुक्त हुए थे, किन्तु बाद में सन् 1958 में उन्होंने आपको 'नवभारत टाइम्स' की सेवा में ले लिया था।

आप पहले तो उसके व्यवस्था विभाग में रहे, किन्तु कुछ दिन बाद 'विशेष संवाददाता' के रूप में नियुक्त होकर लखनऊ चले गए थे। लखनऊ में ही 14 जनवरी सन् 1977 को स्कूटर-दुर्घटना में आपका असामयिक देहावसान हो गया था। आप एक कुशल पत्रकार तथा सहृदय कवि के रूप में जाने जाते थे। मृत्यु से कुछ दिन पूर्व आपने एक उपन्यास भी लिखा था, जो अभी तक अप्रकाशित है।

श्री सुरेन्द्रपालसिंह

श्री सुरेन्द्रपाल सिंह का जन्म 15 अगस्त सन् 1932 को बम्बई के भाईदर नामक स्थान पर हुआ था, वैसे आपके पारिवारिकजन उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जनपद के एक गाँव के निवासी थे। एम० ए० तथा साहित्य-रत्न तक की शिक्षा प्राप्त करके आप सन् 1965 में भारत सरकार के गृह-मन्त्रालय की हिन्दी-शिक्षण-योजना में हिन्दी शिक्षक हो गए थे। इसी प्रसंग में जब आपको प्रयाग में काफी दिन तक रहना पड़ा तो आप शिक्षण के अतिरिक्त स्वतन्त्र लेखन, पत्रकारिता, मुद्रण एवं प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यों में भी निमग्न रहते थे। 'नीलाभ प्रकाशन' और 'लोक भारती' के हिन्दी-प्रकाशनों की आप देख-भाल किया करते थे।

आप अच्छे शिक्षक होने के साथ-साथ नई विचार-धारा के कवि और उपन्यासकार भी थे। आपकी कविताओं का संकलन 'गीत भीगा भोर' और उपन्यास 'लोक लाज खोई' है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान अकादेमी से पुरस्कृत एक उर्दू-उपन्यास 'आँगन' का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया था। आपका 'अनोखा ब्याह' नाटक भी उल्लेख्य है। जब आपका स्थानान्तरण दिल्ली कर दिया गया तो 17 सितम्बर सन् 1970 को आपने अपने शक्तिनगर के निवास-स्थान में आत्म-हत्या करके इस नश्वर शरीर का अन्त कर दिया।

श्री सुरेन्द्र शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म आगरा जनपद की कोटला रियासत में सन् 1899 में हुआ था। अभी आप मुश्किल से पाँच वर्ष के ही थे कि आपके पिता का देहान्त हो गया। जब परिवार के भरण-पोषण का पूरा दायित्व आपकी माता पर पड़ा तो कोटला रियासत के तत्कालीन अधिपति ठा० उमरावसिंह ने आपकी शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। जब आप प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे तब आपके शिक्षक हिन्दी के प्रख्यात लेखक अध्यापक रामरत्न थे, जो उन दिनों क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों से सम्पर्क रखते थे। हिन्दी के प्रख्यात समालोचक डॉ० मुंशीराम शर्मा भी उन दिनों सुरेन्द्र शर्मा के सहपाठी थे। दोनों साथी मिलकर

'रामचरितमानस' का पारायण बड़ी तन्मयता से किया करते थे। जब अध्यापक रामरत्न कोटला के स्कूल की नौकरी छोड़कर आगरा के बलवन्त राजपूत हाईस्कूल में चले गए तब सुरेन्द्र शर्मा मिडिल की परीक्षा देकर उनके पास आगरा चले गए तथा मुंशीरामजी कानपुर।

आगरा में जाकर अध्यापक रामरत्न के सहयोग से सुरेन्द्र शर्मा ने अध्यापन-कार्य प्रारम्भ कर दिया और मुंशी-राम शर्मा कालान्तर में कानपुर के डी० ए० वी० कालेज से एम० ए०, पी-एच० डी० करके वहीं शिक्षक हो गए। जब सुरेन्द्र शर्मा का मन अध्यापन में नहीं लगा तो आपने पत्र-कारिता के क्षेत्र में कार्य करने का निश्चय किया। परिणाम-स्वरूप अध्यापक रामरत्न की सहायता से आप कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'प्रताप' के सम्पादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के पास चले गए। गणेशजी के सम्पर्क में आकर शर्माजी की प्रतिभा बहुत चमकी और आपने धीरे-धीरे अपनी हिन्दी, अँग्रेजी और बंगला की योग्यता बहुत बढ़ा ली और लगन से कार्य करने लगे। प्रताप-कार्यालय उन दिनों क्रान्तिकारियों का अड्डा था और सरदार भगतसिंह ने भी कुछ दिनों वहाँ पर आपके साथ सम्पादकीय विभाग में कार्य किया था।

कुछ वर्ष बाद शर्माजी ने 'प्रताप' छोड़ दिया और आप पं० रामजीलाल शर्मा के निमन्त्रण पर उनके 'हिन्दी प्रेस प्रयाग' में चले गए। वहाँ पर रहकर आपने कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें से 'रूसी क्रान्तिकारी महिला देवी वीरा' नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रमुख है, जो उन दिनों 'चाँद कार्यालय इलाहाबाद' से प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तक ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित होते ही जब्त कर ली गई थी। इसके अतिरिक्त आपकी 'स्वाधीनता के पुजारी' पुस्तक भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें उन क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ थीं जिन्होंने देश को स्वतन्त्र करने के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया था। उन दिनों शर्माजी का घर कटरा मोहल्ले में था, जहाँ पर क्रान्तिकारियों का अड्डा बना हुआ था। चन्द्रशेखर आजाद आदि क्रान्ति-कारी प्राय. आपके घर पर आते-जाते रहते थे। एक बार जब चन्द्रशेखर आजाद आपके यहाँ भोजन कर रहे थे तब आपकी पत्नी ने उनसे कहा था : "भैया, अगर पुलिस ने कभी हमारे घर को घेर लिया तो हमारे इन छोटे-छोटे बच्चों की क्या गति होगी।" इस पर आजाद ने यह जवाब दिया था, "बहन, आजाद की लड़ाई पुलिस से इस घर में नहीं होगी, आप घर के बाहर चौराहे पर आजाद को लड़ते देखोगी।" उन्हीं दिनों सरदार भगतसिंह भी आपके घर पर आया-जाया करते थे। आजादी के बाद शर्माजी कई वर्ष तक उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग में भी रहे थे और कुछ दिन लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'आर्यमित्र' साप्ता-हिक में भी कार्य किया था।

आपका निधन 12 फरवरी सन् 1965 को लखनऊ के सिविल अस्पताल में हुआ था।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य

श्री भट्टाचार्य का जन्म उत्तर प्रदेश के वाराणसी नगर में सन् 1897 में हुआ था। आप बाल्य-काल से ही उग्र क्रान्ति में विश्वास रखते थे, फलतः 'क्रान्ति दल' में सम्मिलित हो जाने के कारण अँग्रेजी सरकार ने आपको प्रथम महा-युद्ध के अवसर पर नजरबन्द करके उरई भेज दिया था। उरई में आपने नजरबन्दी से छूटने के उपरान्त श्री कृष्ण-गोपाल शर्मा के 'उत्साह' नामक साप्ताहिक पत्र में कार्य प्रारम्भ किया था।

इसके उपरान्त आप कानपुर चले आए और लगभग 30-40 वर्ष तक वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'वर्तमान' तथा 'प्रताप' पत्रों में कार्य किया। बीच में आप लगभग 10 वर्ष तक 'काकोरी षड्यन्त्र केस' के सिलसिले में जेल में रहे थे।

आपका निधन 22 अप्रैल सन् 1973 को हुआ था।

श्रीमती सुवासिनदाई

श्रीमती सुवासिनजी का जन्म बिहार के चम्पारन जिले के

पकुमकेर नामक ग्राम में सन् 1801 में हुआ था। आपका विवाह इस ज़िले के सुखीसेमरा नामक उसी ग्राम में हुआ था जिसमें प्रख्यात कवि अमृतनाथ उत्पन्न हुए थे। आपने स्वयं अच्छी कविताएँ करने के अतिरिक्त अमृतनाथ के पदों का भी व्यापक प्रचार समस्त मिथिला प्रदेश में किया था। अमृतनाथ की लोकप्रियता का सम्पूर्ण श्रेय आपको ही दिया जा सकता है।

आपका निधन सन् 1886 में हुआ था।

डॉ० सुशीलचन्द्र सिंह

डॉ० सुशीलचन्द्र सिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के बैरा फिरोजपुर नामक ग्राम में 10 सितम्बर सन् 1913 को हुआ था। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में एम० ए० करने के उपरान्त उसी विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त करने के साथ-साथ अपने शोध-प्रबन्धों की उत्कृष्टता के प्रमाणस्वरूप 'स्वर्ण पदक' भी प्राप्त किया था।

अपने अध्यापक-जीवन में राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में आप इतने लोकप्रिय हुए कि जहाँ आप 'इण्डियन पोलिटिकल साइन्स कान्फ्रेंस' के आजीवन सदस्य रहे वहाँ आपने अनेक वर्ष तक उसकी कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य के रूप में भी अपनी सेवाओं का परिचय दिया। यही नहीं, आप उसके अध्यक्ष भी चुने गए। 'इण्डियन कौन्सिल फार वर्ल्ड अफेयर्स' नामक देश की प्रख्यात संस्था में अपना सक्रिय सहयोग देने के साथ-साथ आपने 40 से भी अधिक छात्रों को अपने निर्देशन में पी-एच० डी० की उपाधियाँ भी दिलवाईं।

काफी लम्बी अवधि तक सागर विश्वविद्यालय में रीडर रहने के उपरान्त आप एक वर्ष तक विक्रम विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष के रूप में कार्य-रत रहे और बाद में 'कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय' में राजनीति शास्त्र के अध्यक्ष होकर वहाँ आ गए तथा दिसम्बर 1973 में वहाँ से सेवा-निवृत्त हुए। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आप 'फैकल्टी आफ सोशल साइन्सेज' के वरिष्ठतम प्रोफेसर होने के कारण उसके सक्रिय सदस्य भी रहे।

अपने अध्यापन-कार्य के अतिरिक्त आपने राजनीति-शास्त्र विषय पर स्नातक व स्नातकोत्तर कक्षाओं के हेतु राजनीति-विज्ञान से सम्बन्धित अनेक ऐसे ग्रन्थ हिन्दी में लिखे, जिनका शिक्षा-क्षेत्र में प्रचुर स्वागत हुआ। पहले आपने इस विषय पर अँग्रेज़ी में जो पुस्तकें लिखी थीं उनका हिन्दी अनुवाद भी आपने स्वयं ही किया। आपकी हिन्दी में प्रकाशित रचनाओं में 'राजनीति' (1954), 'महत्त्वपूर्ण शासन-प्रणालियाँ' (1955), 'भारतीय शासन और राजनीति के सौ वर्ष', 'राजनीति में निबन्ध', 'स्वतन्त्र राष्ट्रों के सम्बन्ध', 'राजनय के सिद्धान्त' और 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध' आदि प्रमुख हैं।

आपका देहावसान 18 मार्च सन् 1974 को हुआ था।

श्रीमती सुशीला त्रिपाठी

श्रीमती त्रिपाठी का जन्म मेरठ नगर में सन् 1918 में हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात कवि एवं साहित्यकार श्री लक्ष्मण त्रिपाठी की धर्मपत्नी थीं। आपने घर पर ही रहकर अपने स्वाध्याय के बल पर अपनी शैक्षणिक योग्यता बढ़ाई थी और महिला विद्यापीठ की 'विद्याविनोदिनी' परीक्षा अपने निजी अध्ययन के बल पर उत्तीर्ण की थी।

आपका विवाह सन् 1930 में जब श्री लक्ष्मण त्रिपाठी से हुआ था तब वे मेरठ कालेज के छात्र थे और क्रान्तिकारी पत्रकार के रूप में वे तब ही प्रख्यात हो गए थे। उन्होंने 'मेरठ कालेज मैगजीन' का जो 'क्रान्ति अंक' सम्पादित किया था, वह तत्कालीन ब्रिटिश जिला-अधिकारियों

के द्वारा जब्त कर लिया गया था।

अपने पति के संसर्ग में आकर आपने जो कविताएँ और कहानियाँ लिखी थीं वे 'हिन्दी प्रचारक' (मद्रास), 'प्रदीप' (मुरादाबाद), 'अरुण' (मुरादाबाद), 'अरावली' (अलवर) तथा 'नवज्योति' (अजमेर) में प्रकाशित होती रहती थीं।

आपका निधन 17 नवम्बर सन् 1952 को हुआ था।

श्रीमती सुशीला देवी प्रभाकर

श्रीमती सुशीला देवी का जन्म 24 सितम्बर सन् 1921 को कनखल, हरिद्वार (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके पति हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार श्री विष्णु प्रभाकर हैं। इनके सम्पर्क में आकर जहाँ आपने विष्णुजी को साहित्य-निर्माण की ओर उन्मुख किया वहाँ स्वयं भी लेखन के क्षेत्र में कुछ-न-कुछ करती रहीं। आपके द्वारा लिखित रचनाएँ जहाँ हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं, वहाँ आप आकाशवाणी से भी वार्ताएँ प्रसारित करती रहती थीं। दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आप अनेक वर्ष तक सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहीं और उसके

हौजकाजी मण्डल की अध्यक्षा तथा उपाध्यक्षा भी रही थीं। इस प्रसंग में आपने जहाँ कई कवि-सम्मेलन आयोजित किए, वहाँ दिल्ली प्रादेशिक महिला लीग द्वारा नारी जागरण की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य किया था।

आप अपने पति श्री विष्णु प्रभाकर के साहित्य-निर्माण में योग देने के साथ-साथ उनके द्वारा समय-समय पर की जाने वाली अनेक यात्राओं में भी सहयोगिनी रही थीं। अपने पति से मिलने आने वाले अनेक देशी तथा विदेशी साहित्यकारों का स्वागत आप अत्यन्त तन्मयतापूर्वक किया करती थीं। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'देश यों आगे बढ़ेगा' (1957) तथा 'पढ़ेंगे लिखेंगे' (1959) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से द्वितीय पुस्तक भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से पुरस्कृत भी हुई थी।

आपका निधन 8 जनवरी सन् 1980 को हुआ था।

श्री सूरजप्रसाद मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म मई सन् 1936 में बिहार प्रदेश के सिवान जनपद के सिकुआरा नामक ग्राम में हुआ था। आपने सन् 1961 में पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया था और तब से बराबर जमशेदपुर में अपनी साधना करते आ रहे थे। आपने सन् 1970-71 में 'स्मार्त्त निराला' तथा सन् 1976 में 'स्मार्त्त तुलसी' नामक पुस्तकों का सम्पादन-प्रकाशन बड़ी योग्यता से किया था। आपकी 'मुहानी की कहानी' तथा 'मानव मेध' नामक कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

आपका जीवन एक सन्त का जीवन था। आपने अपने जीवन में कभी भी जूता, चप्पल, तेल तथा साबुन का प्रयोग नहीं किया था और बीमार पड़ने पर आप कोई औषधि भी नहीं लेते थे। केवल नीम के पत्ते चबाकर ही आप अपना उपचार किया करते थे। आप उत्कृष्ट पत्रकार और लेखक होने के साथ-साथ कुशल गद्य-काव्य-सृष्टा भी थे।

अक्खड़ स्वभाव और न झुकने वाली प्रवृत्ति के कारण आप निरन्तर आर्थिक परेशानियों में ही जूझते रहे। आपकी पत्रकारिता का प्रखर रूप 'नया रास्ता', 'आजाद मजदूर', 'लौह कुम्भ', 'छोटा नागपुर सन्देश', 'टाटा एक्सप्रेस', 'स्टील

सिटी समाचार', 'शानदार' (मुंगेर), 'विराम' (जौनपुर) तथा 'विचार' (कानपुर) आदि पत्र-पत्रिकाओं में देखा जा सकता है। आप 'मार्तण्ड', 'दिवाकर', 'प्रभाकर', 'भानु-प्रताप', 'पी० थाम्सन' एवं 'मनुआ रिक्शा-वाला' आदि अनेक छद्म नामों से भी लिखा करते थे।

यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि इतना तेजस्वी पत्रकार आर्थिक स्थिति के हीन होने के कारण चिकित्सा के अभाव में 29 मार्च सन् 1980 को इस संसार से उठ गया।

श्री सूर्यकरण पारीक

आपका जन्म राजस्थान के बीकानेर नामक नगर में 2 अगस्त सन् 1902 को हुआ था। आप राजस्थानी भाषा के उच्चकोटि के विद्वानों में थे। हिन्दी भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि में भी आपने अनन्य योग-दान दिया था। राजस्थान के साहि-त्यिक और सांस्कृतिक उन्नयन के क्षेत्र में आपका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। राजस्थानी संस्कृति और कला के उत्कर्ष के लिए आपने अपनी प्रतिभा का पूर्ण प्रयोग किया था। आपकी 'ढोला मारूरा दूहा', 'बेलिकिसन रुक्मनीरी' तथा 'राजस्थानी वार्ता' आदि रचनाओं ने आपकी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को दिया था। आपके द्वारा सम्पादित 'अटमल ग्रन्थावली', 'राजस्थान के लोक-गीत' और 'राजस्थान के ग्राम-गीत' आदि कृतियों से भी आपकी प्रतिभा हिन्दी-जगत् के सामने आई थी।

आप जहाँ कुशल सम्पादक, नाटककार और भाषाविद् के रूप में प्रख्यात थे वहाँ उत्कृष्ट कवि के रूप में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। आपकी 'रतिरानी' नामक पुस्तक में जहाँ अनेक पैरोडियाँ संकलित हैं वहाँ 'कानन कुसुमांजलि' और 'मेघमाला' नामक पुस्तकों में आपके गद्य-गीत संकलित हैं।

आपका निधन सन् 1939 में हुआ था।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

श्री निरालाजी का जन्म 21 फरवरी सन् 1899 को बंगाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल रियासत में हुआ था। आपका जन्म रविवार को हुआ था, इसलिए आपका नाम 'सूर्यकुमार' रखा गया था। सन् 1917-18 के लगभग आपने अपना नाम बदलकर 'सूर्यकान्त त्रिपाठी' कर लिया था। 'निराला' का उपनाम आपने अपने साथ तब लगाया था जब आप कलकत्ता में श्री महादेवप्रसाद सेठ द्वारा संचा-लित पत्र 'मतवाला' में पहुँचे थे। 'मतवाला' के वजन पर ही 'निराला' उपनाम रखा गया था। इस प्रकार आप 'सूर्यकान्त त्रिपाठी' से 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' बने थे। आपके पिता श्री रामसहाय तिवारी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के 'गढ़ाकोला' नामक ग्राम के निवासी थे और नौकरी की खोज में अन्य लोगों की भाँति आप भी अपने एक भाई राम-लाल के साथ कलकत्ता जाकर पुलिस में 'सिपाही' हो गए थे। हट्टे-कट्टे और लम्बे-चौड़े डील-डौल वाले दोनों भाई तरक्की करते-करते गवर्नर के अंगरक्षक बन गए थे। जब एक बार गवर्नर महिषादल दौरे पर गए थे तब वहाँ के राजा ने उनको गवर्नर से माँगकर अपने 100 सिपाहियों का जमादार तथा राज्य-कोष का संरक्षक नियुक्त कर दिया था। जब निरालाजी केवल ढाई वर्ष के थे तब आपकी माता

का असामयिक देहावसान हो गया था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगला में हुई थी और अँग्रेजी तथा संस्कृत का ज्ञान आपने कक्षा 8 के उपरान्त प्राप्त किया था। हिन्दी आपने सिपाहियों के साथ बातचीत करके और उनके द्वारा गाई जाने वाली 'रामचरितमानस' की चौपाइयों से सीखी थी। क्योंकि आपकी पारिवारिक बोल-चाल की भाषा 'बैसवारी' थी, इसलिए 'रामचरितमानस' की अवधी भाषा आपके लिए सहज एवं बोधगम्य थी। इस प्रकार बंगला, अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी का ज्ञान आपको हाईस्कूल की कक्षा तक आते-आते हो गया था।

जिन दिनों आप 10वीं कक्षा में पढ़ते थे तब आपको 'सरस्वती' पत्रिका देखने को मिली तथा उसके पारायण से आपकी हिन्दी और भी परिपुष्ट होने लगी। आप उन दिनों बंगला में रचनाएँ करने लगे थे और वहाँ 'राजकीय पुस्तकालय' से बंगला, अँग्रेजी तथा संस्कृत की पुस्तकें लेकर अपने ज्ञान को बढ़ाते जा रहे थे। न जाने कैसे आपके मानस में रवीन्द्रनाथ-जैसी क्षमता एवं योग्यता प्राप्त करके 'कवि' बनने की धुन समा गई और एक दिन वह भी आया जब आपने हाई स्कूल की परीक्षा की उत्तर पुस्तिका में गणित के प्रश्नों को हल करने की बजाय 'महाकवि पद्माकर' के रसभीने छन्द लिखकर अपने 'कौशल' का परिचय दिया था। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आप दसवीं कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए और पढ़ाई को सदा-सर्वदा के लिए तिलांजलि दे दी। जब आप मात्र 11 वर्ष के थे तब रायबरेली जिले के डलमऊ गाँव के श्री रामदयाल दुबे की सुपुत्री 'मनोहरादेवी' से आपका विवाह हो गया। विवाह के समय आपकी सास ने यह शर्त लगा दी थी कि 6 मास उनकी पुत्री घर पर उनके पास रहेगी और 6 मास महिषादल में। परिणामस्वरूप निरालाजी प्रायः डलमऊ ही

रहने लगे थे और पत्नी के सम्पर्क से आपने अपनी हिन्दी को और भी परिपुष्ट तथा परिष्कृत कर लिया था। अपनी पत्नी के प्रति आपका कितना गहरा प्रेम था इसकी साक्षी 'गीतिका' के समर्पण में लिखी आपकी यह पंक्तियाँ हैं—"जिसकी हिन्दी के प्रकाश से प्रथम परिचय के समय मैं आँखें नहीं मिला सका—लजाकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से कुछ काल बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हीन हिन्दी प्रान्त में, बिना शिक्षक के 'सरस्वती' की प्रतियाँ लेकर पद-साधना की और हिन्दी सीखी, जिसका स्वर गुरुजन, परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे संगीत-स्वर को परास्त करता था, जिसकी मैत्री की दृष्टि मेरी रुक्षता को देखकर मुसकरा देती थी, जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया-प्रकृति मनोहरादेवी को सादर।" आप अपनी पत्नी को कितना स्नेह करते थे, समर्पण की इन पंक्तियों से यह भली-भाँति प्रकट हो जाता है। उनसे आपको दो सन्तानें (पुत्र रामकृष्ण और पुत्री सरोज) हुई थीं। पुत्री 'सरोज' का विवाहोपरान्त निधन हो गया था और पुत्र 'रामकृष्ण' अब भी जीवित हैं और प्रयाग में रहते हैं। जब आपकी पत्नी का देहान्त सन् 1917 में हुआ था तब निरालाजी केवल 21 वर्ष के थे। पारिवारिक उत्तरदायित्व के प्रति सजगता के कारण आपने लोगों के बहुत दबाव डालने पर भी दूसरा विवाह करने से सर्वथा इन्कार कर दिया।

इस बीच आपका सम्पर्क 'रामकृष्ण मिशन' के स्वामी प्रेमानन्द से हो गया और आप आध्यात्मिकता के रंग में रँगकर रामकृष्ण परमहंस के अनन्य भक्त हो गए। गान्धीजी के असहयोग-आन्दोलन का प्रभाव भी आपके युवा मानस पर हुआ और आप राष्ट्रीय कविता करने लगे और आपकी ऐसी भावना इन पंक्तियों में मुखरित हो उठी :

मुकुट शुभ्र हिमागार
हृदय बीच विमल हार
पंच सिन्धु ब्रह्मपुत्र रवितनया गंग
विन्ध्य विपिन राजे घनघेरि युगल जंघ
बधिर विश्व-चकित भीत सुन भैरव वाणी
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।

त्रिंशत कोटि नर समाज
मधुर कंठ मुखर आज
चपल चरण भंग नाच तारागण सूर्य चन्द्र
चूम चरण ताल मार गरज जलधि मधुर मन्द्र
बधिर विश्व-चकित भीत सुन भैरव वाणी
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।

यह कविता सन् 1920 की 'प्रभा' में छपी थी, जिसका प्रकाशन अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप प्रेस' से होता था। तभी सौभाग्य से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से आपका परिचय हो गया और उनकी कृपा से आपको कलकत्ता के 'रामकृष्ण मिशन' द्वारा प्रकाशित होने वाले हिन्दी पत्र 'समन्वय' मासिक के सम्पादन का कार्य मिल गया। 'समन्वय' में कार्य करते हुए आपके जीवन में दर्शन तथा अध्यात्म की और भी गहराई आ गई और स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण परमहंस के विचार आप पर पूरी तरह छा गए। यद्यपि आपका काव्य-सृजन सन् 1915 में ही प्रारम्भ हो चुका था और आप 'जुही की कली'-जैसी सशक्त रचना लिख चुके थे, फिर भी मातृभूमि-वन्दना के इस गीत के माध्यम से आपकी कविता में राष्ट्रीयता का जो स्वर मुखरित हुआ था वह आपके काव्य-विकास का परिचायक है। 'समन्वय' के सम्पादन-काल में ही आपने 'पंचवटी प्रसंग'-जैसे प्रौढ़ गीति-नाटक की रचना की थी। आपकी कविता में प्रारम्भ से ही बंगला भाषा-जैसी समास-बहुल शब्दावली का प्रयोग आपकी वैचारिक उदात्तता का परिचय देता है।

आप 'समन्वय' में कार्य कर ही रहे थे कि आपका परिचय मिर्जापुर-निवासी बाबू महादेवप्रसाद सेठ से हो गया। उन्होंने जहाँ निरालाजी की पहली काव्य-कृति 'अनामिका' का प्रकाशन करके आपकी प्रतिभा का समुचित मूल्यांकन किया वहाँ निरालाजी की इस कृति ने महाकवि कालिदास की उक्ति 'अनामिका सार्थवती बभूव' को पूर्णतः सार्थक कर दिया। जब सन् 1923 में सेठजी ने 'मतवाला' नामक साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया था तब आप 'समन्वय' जैसे नीरस पत्र को छोड़कर 'मतवाला' के सरस वातावरण में आ गए। इसका वर्णन निरालाजी ने अपनी 'सुकुल की बीवी' नामक रचना में इस प्रकार किया है—"बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र-मन्थन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल। पान करने वाले अकेले महादेव बाबू। शीघ्र रत्न और रम्भा निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी, फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है। इसी पर वेदान्त-विषयक नीरस एक साम्प्रदायिक पत्र 'समन्वय' का सम्पादन-भार छोड़कर 'मनसा-वाचा-कर्मणा' सरस कविता कुमारी की उपासना में लगा।" वास्तव में 'मतवाला' के माध्यम से निरालाजी हिन्दी-काव्य-गगन पर 'धूमकेतु' की भाँति उदित हुए और थोड़े ही समय में आपने अपनी अनेक सशक्त रचनाओं के द्वारा हिन्दी कवियों में एक सर्वथा विशिष्ट स्थान बना लिया। सर्वप्रथम जब आपकी 'जुही की कली' नामक रचना का प्रकाशन "मतवाला' में 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' नाम से हुआ तब लोगों को पता चला कि 'निराला' कौन है। इससे पूर्व 'मतवाला' में आपकी रचनाएँ केवल 'निराला' नाम से ही छपा करती थीं। यहाँ यह विशेष ध्यातव्य तथ्य है कि मुक्त छन्द में होने के कारण 'जुही की कली' को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में छापने से इन्कार कर दिया था। 'मतवाला' के कार्य-काल में आपके साथ आचार्य शिवपूजनसहाय, मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव और पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भी कार्य करते थे और इन सबके समुदाय को उन दिनों 'मतवाला मण्डल' के रूप में अभिहित किया जाता था।

सन् 1927 में आप 'मतवाला' को छोड़कर काशी आ गए और वहाँ आपका सम्पर्क सर्वश्री जयशंकरप्रसाद, प्रेमचन्द, विनोदशंकर व्यास, शान्तिप्रिय द्विवेदी तथा जानकीवल्लभ शास्त्री से हुआ। उन्हीं दिनों आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी भी आपके निकट सम्पर्क में आए थे। वाजपेयीजी तब हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ा करते थे। इसके उपरान्त कुछ दिन तक अपनी जन्मभूमि गढ़ाकोला में रहकर आप सन् 1929 में लखनऊ आ गए और श्री दुलारेलाल भार्गव की 'सुधा' पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगे। लखनऊ-प्रवास ने निरालाजी की साहित्यिक चेतना को प्रचुर स्फुरणा प्रदान की और यहाँ पर रहते हुए ही आपने जहाँ 'गीतिका' तथा 'तुलसीदास'-जैसी सशक्त एवं प्रौढ़ कृतियाँ लिखीं वहाँ 'अप्सरा' तथा 'अलका'-जैसे श्रेष्ठ उपन्यास भी हिन्दी-साहित्य को प्रदान किए। आपके लखनऊ-प्रवास-काल

में ही 'लिली' की सब कहानियाँ लिखी गई थीं। लखनऊ में रहते हुए ही आपने कलकत्ता के 'रंगीला' नामक पत्र के सम्पादक श्री शिवशंकर द्विवेदी से अपनी पुत्री 'सरोज' का विवाह सन् 1930 में किया था। यह खेद का विषय है कि 'सरोज' अधिक समय तक जीवित न रह सकी और सन् 1935 में उसका असामयिक निधन हो गया। निरालाजी की उस समय की गहन मानसिक पीड़ा का अंकन उनकी 'सरोज-स्मृति' नामक रचना में हुआ है। जब आप लखनऊ में ही रह रहे थे तब आपका परिचय उन्नाव-निवासी हिन्दी की प्रमुख कवयित्री श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा तथा उनके पति श्री राजेन्द्रशंकर चौधरी से हो गया। उनके अनुरोध पर आप जब कुछ दिन तक उनके अतिथि बनकर वहाँ रहे थे तब उन्होंने 'युग मन्दिर' नाम से एक प्रकाशन-संस्था का सूत्रपात कर दिया और उसीसे निरालाजी की 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं।

फिर आप प्रयाग चले गए और वहाँ पर आप भारती भण्डार के व्यवस्थापक श्री वाचस्पति पाठक के पास रहने लगे। पाठकजी के ही प्रयत्न से निरालाजी की 'गीतिका' और 'निरुपमा' नामक कृतियों का प्रकाशन एवं 'अनामिका' के नए संस्करण का पुनर्मुद्रण सम्भव हो सका था। बीच-बीच में आप प्रयाग से लखनऊ तथा काशी भी जाते रहते थे, किन्तु सन् 1947 के बाद से आप स्थायी रूप से प्रयाग के दारागंज मोहल्ले में एक मकान लेकर रहने लगे थे। दारागंज के इस ऊबड़-खाबड़ घुतहे मकान में ही निरालाजी ने 'काले कार-नामे', 'चोटी की पकड़', 'बेला' और 'नए पत्ते'-जैसी कृतियों का सृजन किया था। वहाँ पर रहते हुए ही आपकी 'अर्चना', 'आराधना' तथा 'गीत-गुंज' नामक रचनाएँ लिखी गई थीं। प्रयाग में रहते हुए ही आप ऐसी मानसिक विकृति का शिकार हो गए थे कि आप सँभल ही न सके और दिन-प्रतिदिन आपका स्वास्थ्य गिरता ही गया। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कव-यित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने अपनी 'साहित्यकार संसद्' नामक संस्था के भवन में निरालाजी को रखकर आपके उप-चार आदि का प्रबन्ध भी किया था। आपकी इस मानसिक विकृति के पीछे 27 जनवरी सन् 1947 को काशी में हुए आपके स्वर्ण जयन्ती समारोह की घटना का प्रमुख हाथ था। इस समारोह का आयोजन आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने किया था, जो उन दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभागाध्यक्ष थे। इस समारोह के स्वागताध्यक्ष मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र बनाये गए थे, किन्तु वे वहाँ नहीं पहुँच सके थे। निरालाजी के अन्य प्रेमी भी वहाँ अनुपस्थित थे। केवल उल्लेखनीय व्यक्तियों में श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' तथा श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान उपस्थित थीं। इस अवसर पर निरालाजी ने जो उद्‌गार प्रकट किए थे वे इस प्रकार हैं—"आप लोगों ने मेरे प्रति जिस स्नेह और सम्मान का भाव प्रदर्शित किया है उसके लिए मैं आपका हृदय से आभार मानता हूँ। मुझमें और आप लोगों में कोई अन्तर नहीं, क्योंकि दार्शनिक दृष्टिकोण से यदि आप लोग कण्ठ हैं तो मैं वाणी; आप प्राण हैं तो मैं गति। वस्तुतः आप मेरे और मैं आपका हूँ।" इस अभिनन्दन में 10 हजार रुपये की थैली भेंट किए जाने के समाचार से 'निराला' जी बहुत प्रसन्न थे और उन्होंने उस राशि को किस प्रकार वितरित किया जायगा, इसका भी निश्चय कर लिया था। उस समय आपने महादेवीजी के नाम काशी से लिखे पत्र में अपनी वह प्रसन्नता इस प्रकार व्यक्त की थी—"पाण्डे आए हैं। खुश हैं। आप न आ सकीं। वापस जाते समय, हो सका तो प्रयाग आऊँगा। 2000 रुपए 'साहित्य-कार संसद्' के लिए भी देने का संकल्प मैंने किया है। दो-तीन दिन बाद आपको मिल जायँगे। मैं प्रसन्न हूँ।" विडम्बना की बात, कि समारोह में आपको जो थैली भेंट की गई थी उसमें खाली कागजों का एक पुलिन्दा ही देखने को मिला। संयोजकों से जब निराला जी ने इसका कारण पूछा तो उनका उत्तर था, "क्षमा कीजिये, पैसा कम इकट्ठा हुआ था। सब आयो-जन में खर्च हो गया।" उनके साथ प्रयाग से गए श्री गंगा-प्रसाद पाण्डे के अनुसार "जयन्ती समारोह का आयोजन-संयोजन कुछ इस प्रकार अव्यवस्थित था कि देखकर कष्ट होता था। पग-पग पर कुछ ऐसी घटनाएँ घट रही थीं, जो साहित्यिक सहृदयता की सीमा से बाहर थीं।" इस अवसर पर निरालाजी को अभिनन्दन-ग्रन्थ भी भेंट नहीं किया जा सका था। काशी के लोगों ने निरालाजी का जिस प्रकार सम्मान किया था देश के दूसरे भागों में स्थिति उससे सर्वथा विपरीत थी। इस अवसर पर 'नया साहित्य' ने अपना 'निराला अंक' निकालकर काशी के कलंक का परिमार्जन कर दिया था। कलकत्ता के श्री ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ ने भी निपट

अकेले ही जहाँ उनके कर्ममय जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने वाली एक छोटी-सी फिल्म बनाई वहाँ उनका कलकत्ता में बुलाकर अत्यन्त भव्य अभिनन्दन भी किया था। श्री बरुआ ने इस अवसर पर जहाँ एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था वहाँ एक उनकी प्लास्टर पेरिस की 'मूर्ति' भी बनवाकर सारे देश में प्रसारित की थी।

निरालाजी जहाँ उच्चकोटि के कवि, उपन्यासकार, कहानीकार तथा सम्पादक थे वहाँ अनुवाद के क्षेत्र में भी आपकी देन सर्वथा अनूठी है। आपने जहाँ कवीन्द्र रवीन्द्र की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया था वहाँ बंगला से रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द की कई कृतियों के हिन्दी रूपान्तर भी प्रस्तुत किए थे। नितान्त उपेक्षा तथा तिरस्कार के वातावरण में रहकर भी निरालाजी ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य की जो अभिवृद्धि की वह आपकी प्रतिभा का अद्वितीय प्रमाण है। भाषा, भाव, छन्द-विधान और प्रस्तुतीकरण सभी दृष्टि से आपकी रचनाएँ हिन्दी की गौरव-निधि कही जा सकती हैं। आपको 'महाप्राण', 'मृत्युंजय' तथा 'अपराजेय' आदि विशेषणों से अभिहित किये जाने में भी आपकी महत्ता प्रकट होती है। अत्यन्त कट्टरपन्थी कान्य-कुब्ज-समाज में जन्म लेकर भी आपने जात-पात को कभी महत्त्व नहीं दिया था और अपनी पुत्री का विवाह बिना बारात और पुरोहित के स्वयं किया था और पुत्र के विवाह में भी तत्कालीन प्रथा के अनुसार कलकत्ता से लखनऊ तक आने-जाने का व्यय लड़की वाले से न लेकर स्वयं ही वहन किया था। हिन्दी के प्रति आपका बहुत अनुराग था। आप हिन्दी का अपमान बिलकुल भी नहीं सह सकते थे। एक बार आप महात्मा गान्धी द्वारा हिन्दी में रवीन्द्रनाथ-जैसे कवि न होने की बात कहने पर, उनसे मिलने जब वर्धा गए थे तब आपने गान्धीजी से यह कहा था कि बिना हिन्दी-कवियों को पढ़े ऐसा कहना सर्वथा अनुचित है।

आपकी प्रमुखतम प्रकाशित रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—काव्य,: 'अनामिका' (1922), 'गीतिका' (1936), 'तुलसीदास' (1938), 'अनामिका' (नवीन—1938), 'परिमल' (1939), 'कुकुरमुत्ता' (1942), 'अणिमा' (1943), 'अपरा' (1946), 'नए पत्ते' (1946), 'बेला' (1946), 'अर्चना' (1950), 'आराधना' (1953), 'गीतगुंज' (1954), 'कवि श्री' (1955), 'विनय खण्ड'; उपन्यास: 'अप्सरा' (1931), 'अलका' (1933), 'निरुपमा' (1936), 'प्रभावती' (1936), 'चोटी की पकड़' (1947), 'काले कारनामे' (1950); कहानी: 'लिली' (1933), 'सखी' (1935), 'सुकुल की बीवी' (1941), 'चतुरी चमार' (1945), 'देवी' (1948)। रेखाचित्र: 'कुल्ली भाट' (1939), 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1941); प्रबन्ध संग्रह: "प्रबन्ध पद्म' (1934), 'प्रबन्ध प्रतिमा' (1940), 'चयन' (1957); समीक्षा: 'रवीन्द्र कविता कानन' (1927), 'पंत और पल्लव' (1948), 'चाबुक' (1951); जीवनियाँ: 'भक्त ध्रुव' (1926), 'भक्त प्रह्लाद' (1926), 'भीष्म' (1927), 'महाराणा प्रताप' (1927), 'परिव्राजक' (1928); विविध: हिन्दी-बंगला का तुलनात्मक व्याकरण' (1919), 'हिन्दी-बंगला-शिक्षा' (1928), 'रस अलंकार', 'रामचरित मानस की टीका', 'संक्षिप्त महाभारत' (1939), 'भारत में विवेकानन्द' (1948), 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' (1942)। 'बंकिम ग्रंथावली' के 'आनन्द मठ', 'कपाल कुंडला', 'चन्द्रशेखर', 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कृष्णकान्त का बिल', 'युगलांगुलीय', 'रजनी', 'देवी चौधरानी', 'राजरानी', 'विषवृक्ष', 'राजसिंह' (1939-41), 'वैदिक साहित्य' तथा 'वात्स्यायन कामसूत्र'।

आपका निधन 15 अक्तूबर सन् 1961 को हुआ था।

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म अपनी ननिहाल उमरसेड़ा (हरदोई) में सन् 1878 में हुआ था। आपका पारिवारिक निवास-स्थान आगरा जिले की भदौरिया नामक छोटी-सी रियासत है, जहाँ का भदौरिया-वंश बहुत प्रसिद्ध था। वर्माजी के पिता ठा० गणपतिसिंह इसी राजवंश से सम्बद्ध थे। वर्माजी के नाना अपने दामाद के साहित्य-प्रेम तथा वैद्यक ज्ञान से प्रसन्न होकर प्रायः आपको अपने पास ही रखा करते थे। वहीं पर वर्माजी का जन्म हुआ था। बाल्यावस्था से ही ठाकुर गणपतिसिंह ने अपने पुत्र को हिन्दी भाषा की सर्वांगीण शिक्षा देने का पूर्ण प्रबन्ध कर दिया था। पिहानी (हरदोई) से उर्दू मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके वर्माजी ने सीतापुर तथा हरदोई में

अँग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की थी और तदनन्तर आप संस्कृत तथा वैदिक साहित्य के उच्चकोटि के विद्वान् पंडित तुलसी-राम स्वामी से संस्कृत का अध्ययन करने की दृष्टि से मेरठ चले गए थे।

सन् 1897 में आप अपने पिता के साथ नौकरी की खोज में ग्वालियर चले गए और वहाँ के परगना गोहद में रजिस्ट्रार कानूनगो नियुक्त हो गए। थोड़े दिन के उपरान्त आपको मुरार के महकमा कागजात देही माफी के कार्यालय में भेज दिया गया। जिन दिनों आपने ग्वालियर राज्य में नौकरी प्रारम्भ की थी उन दिनों वहाँ पर हिन्दी की चर्चा बहुत कम थी। धीरे-धीरे आपको कुछ हिन्दी-प्रेमी साथी मिल गए और जब सन् 1900 में बाबू कृष्णबलदेव वर्मा ग्वालियर गए तब उनकी प्रेरणा से आप नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सदस्य भी बन गए और धीरे-धीरे आपका हिन्दी-प्रेम बढ़ता गया। इस बीच आपकी प्रवृत्ति हिन्दी-लेखन की ओर हो गई और आपने 'महाराज अशोक का जीवन-चरित' लिखा, जो नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित हुआ था। उन्हीं दिनों आपने 'ग्वालियर हिन्दी साहित्य सभा' की स्थापना भी की थी, जो अब भी प्रगति-पथ पर अग्रसर है। आपने 'बाल भारत' नामक एक पुस्तक की रचना और की थी, जिसे देखकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी। उन दिनों द्विवेदी जी झाँसी में रहा करते थे।
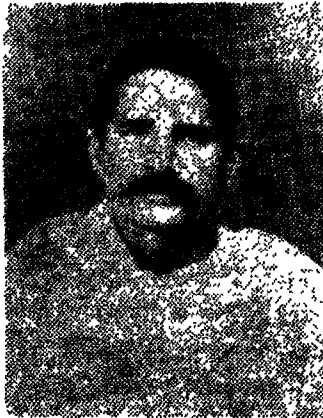
धीरे-धीरे ठाकुर साहब की प्रतिभा विकसित होती गई और आपने 'जनरल गारफील्ड', 'धम्मपद' और 'मित्र लाभ' नामक पुस्तकें लिखीं। आपने आगरा से प्रकाशित होने वाले 'राजपूत' पत्र का सम्पादन भी कुछ दिन तक किया था और इसके उपरान्त आप प्रयाग के 'अभ्युदय' में भी सहकारी सम्पादक रहे थे। 'अभ्युदय' छोड़ने के उपरान्त आपने ग्वालियर से 'हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली' नामक संस्था द्वारा हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन भी किया था, जिनमें 'बैजाबाई की जीवनी', 'ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम' तथा 'श्रीकृष्ण चरित' उल्लेखनीय हैं। सन् 1912 में जब 'जयाजी प्रताप' का प्रकाशन लश्कर से नई सज-धज के साथ होने लगा तब आप उसके सहकारी सम्पादक रहे थे।

आपका निधन सन् 1940 में हुआ था।

श्री सूर्यनारायण व्यास

श्री व्यासजी का जन्म 11 फरवरी सन् 1902 को उज्जैन के एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी और फिर आपने संस्कृत के वाङ्मय का विधिवत् अध्ययन काशी जाकर किया था। आप जहाँ उच्चकोटि के ज्योतिषी थे वहाँ गम्भीर साहित्य के सृजन में भी सर्वथा अद्वितीय थे। एक सफल पत्रकार के रूप में भी आपकी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-जगत् को उस समय मिला था जब आपने निरन्तर 8 वर्ष तक उज्जैन से 'विक्रम' नामक उच्चकोटि का मासिक पत्र प्रकाशित किया था।

आप संस्कृत तथा हिन्दी के गम्भीर विद्वान् तो थे ही, अँग्रेजी, मराठी तथा गुजराती भाषाओं का ज्ञान भी आपने अपनी निरन्तर स्वाध्यायशीलता से उपलब्ध कर लिया था। आप जहाँ नागरी प्रचारिणी सभा काशी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से सक्रिय रूप से सम्बद्ध थे वहाँ मध्यभारत हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भी अद्वितीय पोषक थे। आपके प्रयत्न से ही समस्त देश में विक्रम का द्विसहस्राब्दि वर्ष मनाया था। संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास की

स्मृति में उज्जैन में प्रतिवर्ष जो 'कालिदास स्मृति समारोह' मनाया जाता है उसकी मूल प्रेरणा भी आपने ही दी थी। आपने जहाँ 'विक्रम विश्वविद्यालय' की स्थापना के लिए अथक उद्योग किया था वहाँ 'अखिल भारतीय कालिदास परिषद्' का निर्माण भी आपके सद्प्रयत्नों से हुआ था।

आप जहाँ कुशल संगठनकर्ता और सफल सामाजिक कार्यकर्ता थे वहाँ साहित्य-निर्माण की दिशा में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। आपके ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान का परिचायक आपका 'कुण्डली-संग्रह' नामक ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त आपने अपनी विदेश यात्रा का विवरण 'सागर प्रवास' नामक कृति में प्रस्तुत किया है। आपकी 'तू-तू-मैं-मैं' नामक रचना में आपके सशक्त व्यंग्यकार का स्वरूप उभरकर सामने आता है। आपने जहाँ संस्कृत के 'राक्षस काव्य' और 'अश्वधारी काव्य' का हिन्दी में सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है वहाँ आपकी 'प्रबन्ध चिन्तामणि', 'विश्ववन्द्य महाकवि कालिदास', 'जागृत नारियाँ', 'कालिदास की अलका' तथा 'वाल्मीकि की लंका' आदि रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने जहाँ 'लोकमान्य तिलक की जीवनी' का मराठी से सफल अनुवाद किया है वहाँ 'विक्रम स्मृति ग्रन्थ', 'उज्जयिनी दर्शन' तथा 'कालिदास-प्रेरित शिल्प-शृंगार' आदि ग्रन्थों का सम्पादन भी किया था।

एक पारंगत ज्योतिषी के नाते आपको जहाँ देश के सभी क्षेत्रों में अपूर्व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था वहाँ भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने आपको 'पद्म विभूषण' के पावन विरुद से विभूषित किया था। आप जहाँ सिन्धिया ओरियण्टल लाइब्रेरी तथा मालवी लोक साहित्य परिषद् के अध्यक्ष एवं खादी संघ के उपाध्यक्ष रहे थे वहाँ अखिल भारतीय इतिहास-परिषद् की संस्थापना में भी आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा था। आपने जहाँ अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् 1943 के हरिद्वार में हुए अधिवेशन के अवसर पर आयोजित 'विज्ञान परिषद्' की अध्यक्षता की थी वहाँ आप अनेक वर्ष तक उसके सर्वोच्च 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' के निर्णायक भी रहे थे। आपके अभिनन्दन में मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् ने 'अनुष्टुप' नामक एक पुस्तक का प्रकाशन भी किया था।

आपका निधन 22 जून सन् 1976 को उज्जैन में ही हुआ था।

कैप्टन सूर्यप्रताप

श्री सूर्यप्रतापजी का जन्म हैदराबाद (दक्षिण) में 5 फरवरी सन् 1890 को हुआ था। आपकी शिक्षा जयपुर, देहरादून, लाहौर और इलाहाबाद में हुई थी। आपके पूर्वज राजस्थान के निवासी थे। पहले आपने कुछ दिन तक जयपुर तथा झुंझनूं में अध्यापक के रूप में कार्य किया, फिर बाद में हैदराबाद चले गए। वहाँ भी आपने पहले तो अध्यापक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया और फिर सरकारी नौकरी में चले गए। सन् 1945 में आप 'असिस्टेण्ट अकाउण्टेण्ट जनरल' के पद सेसेवा-निवृत्त हुए थे।

'पुलिस एक्शन' से पूर्व आप नागपुर में 'शरणार्थी पुनर्वास विभाग' में 'विशेष अधिकारी' थे और उसके बाद 'जागीर एडमिनिस्ट्रेशन' में 'अकाउण्टेण्ट जनरल' थे।

सरकारी सेवा में रहते हुए भी आपका प्रेम हिन्दी तथा आर्यसमाज से बराबर रहा था। हिन्दी के प्रति आपका झुकाव अपने जीवन के प्रारम्भ में उन दिनों हुआ था जब आप जयपुर में हिन्दी के प्रख्यात लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री के साथ पढ़ते थे। आप उर्दू में ही लिखा करते थे। एक बार आपने 'हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी' शीर्षक लेख लिखा था, जो निजाम सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। सरकारी सेवा में रहने के कारण इस लेख को एक और वकील मित्र के नाम से छापा गया था। यह लेख तथा अन्य दो लेख 'हमारी जबान' तथा 'आर्यसमाज और इस्लाम' अलग से भी छापे गए थे। ये तीनों लेख कानपुर से प्रकाशित होने वाले उर्दू मासिक 'जमाना' में छपे थे। बाद में आप हिन्दी में ही लिखने लगे थे।

अपने देहान्त से तीन मास पूर्व तक आप निरन्तर लेखन-कार्य में लगे रहे थे। आपने आचार्य चतुरसेन शास्त्री

के सम्बन्ध में संस्मरण भी लिखे थे, जो 'सुगन्धित संस्मरण' नाम से आचार्य चतुरसेन शास्त्री के छोटे भाई श्री चन्द्रसेन ने पुस्तकाकार प्रकाशित कराए हैं।

आपका निधन 17 जनवरी सन् 1980 को हुआ था।

श्री सेवकराम खेमका

श्री खेमकाजी का जन्म सन् 1914 में उत्तर प्रदेश के सहारनपुर नगर में हुआ था। आपके पूर्वज लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व चूरू (राजस्थान) से आकर वहाँ बस गए थे। आपने घर पर ही रहकर हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी का अध्ययन किया था।

एक प्रसिद्ध व्यापारी-परिवार में जन्म लेकर भी साहित्य के प्रति आपका बहुत लगाव था और आपकी इस रुचि को परिष्कृत और समृद्ध करने की दिशा में सहारनपुर के ख्यातिलब्ध कवि श्री मामराज शर्मा 'हर्षित' का बहुत बड़ा योगदान था। उनके सम्पर्क से ही आप लेखन की ओर उन्मुख हुए थे। अपनी प्रतिभा का परिचय आपने कविता, कहानी, गीत और चम्पू आदि विभिन्न विधाओं की कृतियों के लेखन में दिया था। आपने कुछ स्कैच भी लिखे थे। वैसे आपकी कविताएँ प्रायः सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले 'कोकिल' तथा 'विकास' आदि पत्रों में अविरत प्रकाशित होती रहती थीं।

एक कुशल व्यवसायी होने के साथ-साथ आप एक सहृदय समाज-सेवी भी थे। सहारनपुर का 'हिन्दी मित्र मंडल' समय-समय पर आपकी सहायता से ही पनपता रहा है। ब्रज साहित्य मंडल का अधिवेशन जिन दिनों सहारनपुर में हुआ था उसके स्वागत-मंत्री आप ही थे।

आपका निधन सन् 1970 में हुआ था।

श्री सोमेश्वर पुरोहित

श्री पुरोहितजी का जन्म मध्यप्रदेश के बड़वानी नामक नगर में सन् 1913 में हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप सर्वप्रथम शिक्षक हुए और बाद में पत्रकारिता को अपना लिया।

आपने अपना पत्रकार-जीवन बम्बई से प्रारम्भ किया और सन् 1946 में अहमदाबाद से प्रकाशित होने वाले महात्मा गान्धी के पत्र 'हिन्दी नवजीवन' में आ गए। वहाँ पर रहते हुए आपने जहाँ 'नवजीवन' के सम्पादन में अपना अनन्य सहयोग दिया वहाँ अनेक गुजराती पुस्तकों का अनुवाद भी किया था।

'नवजीवन' में कार्य करते हुए आपने उस क्षेत्र के हिन्दी-प्रचार-कार्य में भी पर्याप्त रुचि ली और अपने सरल, निश्छल और सौम्य व्यवहार से सभी कार्यकर्त्ताओं के मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ दी। आपकी भाषा सरल तथा शैली प्रसाद-गुण-सम्पन्न होती थी।

आपका निधन 30 मई सन् 1980 को 67 वर्ष की आयु में अपनी जन्मभूमि में ही हुआ था।

श्री स्वरूपचन्द्र जैन

श्री स्वरूपचन्द्र जैन का जन्म सन् 1836 में उत्तर प्रदेश के

मुरादाबाद जिले के कुंदरकी नामक स्थान में हुआ था। जैन धर्म के प्रति बचपन से ही आस्थावान होने के कारण आपकी रुचि विशेषकर जैन साहित्य के उद्धार की ओर रही। आप हिन्दी के अनन्य भक्त थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'बीरबल और विक्रम' (1860) तथा 'भोज और कालिदास' (1880) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

आपका निधन सन् 1907 में हुआ था।

मास्टर स्वरूपनारायण कोठीवाल

श्री कोठीवालजी का जन्म मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) में सन् 1878 में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा मुरादाबाद में ही हुई थी। आप हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपके इस पाण्डित्य का ज्वलन्त प्रमाण आपके द्वारा हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में अनूदित 'सम्पूर्ण महाभारत' से मिल जाता है। इस रचना के अतिरिक्त आपके द्वारा अनूदित ग्रन्थ 'बोपदेव की भागवत' भी अत्यन्त उल्लेखनीय है।

आपका निधन सन् 1910 में हुआ था।

श्री हंसकुमार तिवारी

श्री तिवारीजी का जन्म 15 अगस्त सन् 1918 को पंचकोट राज्य, पुरुलिया (बंगाल) में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वहीं पर बंगला में हुई थी। बाद में आप अपनी ननिहाल चम्पानगर (भागलपुर) में आ गए थे और आगे की शिक्षा वहाँ के टी० एन० जे० कालेज में हुई थी। सारे पारिवारिक उत्तरदायित्वों का बोझ आ पड़ने पर सन् 1934 में अध्ययन बीच में ही छोड़ देना पड़ा और लगभग एक वर्ष तक भयंकर संघर्षों से जूझने के अनन्तर बंगला से हिन्दी में अनुवाद करने का कार्य आपने अपनाया और 'भारतेर इतिहास चित्र ओ गल्पे' नामक बंगला की प्रख्यात पुस्तकमाला का हिन्दी में अनुवाद किया।

इस बीच कुछ दिन तक 'दैनिक भारत' (प्रयाग) तथा 'दैनिक विश्वमित्र' में कार्य करने के उपरान्त पटना से प्रकाशित होने वाली 'बिजली' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया। इसके अनन्तर आचार्य रामदहिन मिश्र के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'किशोर' (मासिक) के सहकारी सम्पादक नियुक्त हो गए और उसमें कुछ दिन जमकर काम किया। इन्हीं दिनों आपकी 'भूस्वर्ग कश्मीर' तथा 'रिमझिम' (कविता संकलन) नामक पुस्तकें ग्रन्थमाला कार्यालय पटना से प्रकाशित हुई थीं।

क्योंकि आपका जीवन शैशवावस्था से ही अभावों और संघर्षों में तपकर कुन्दन बन गया था, अतः आप अपना मार्ग स्वयं ही बनाते चले गए और धीरे-धीरे हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में आपने अपनी प्रतिभा तथा योग्यता से उल्लेखनीय स्थान बना लिया। 'किशोर' के उपरान्त आपने अपने ही उद्योग से गया से 'उषा' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका प्रारम्भ की, और फिर वहीं रम गए। सन् 1946 में 'उषा' का एक 'पत्रकार अंक' भी प्रकाशित हुआ था, जो अपनी उपादेय सामग्री तथा सुरुचिपूर्ण सम्पादन के कारण उन दिनों बहुत लोकप्रिय हुआ था।

बाल्यावस्था से कविता की ओर आपका बहुत झुकाव था और धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों जीवन में खट्टी-मीठी अनुभूतियों के बीच आप निकले त्यों-त्यों आपके कवित्व में भी निखार आता गया और एक दिन ऐसा आया जब आपका नाम बिहार की सीमाओं को लाँघकर सारे देश में फैल गया और आप कवि-सम्मेलनों में आने-जाने लगे। 'रिमझिम' नामक आपकी कविता-पुस्तक के प्रकाशन ने उन दिनों अखिल हिन्दी-जगत् का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। इसके उपरान्त आपके 'अनागत' तथा 'नवीना' नामक काव्य-संकलनों ने आपकी लोकप्रियता में और भी अभिवृद्धि की।

सन् 1977 में प्रकाशित आपका 'आग पिये मोम की मूरत' नामक जो काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ था उसमें आपकी प्रतिभा नए रूप में ही सामने आई है। 'गीतांजलि' के अनुवादक के रूप में भी आपका नाम विशेष गौरव का अधिकारी है।

निरन्तर अध्ययन करने की प्रवृत्ति ने आपकी साहित्यिक चेतना को कविता के अतिरिक्त साहित्य की अन्य विधाओं में भी लेखन करने की ओर प्रवृत्त किया। एक कुशल तथा अनुभूति-प्रवण कवि के रूप में आपने साहित्य-जगत् में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने के साथ-साथ गम्भीर साहित्यिक रचनाओं के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का प्रकाशन किया था। हिन्दी के जिन पाठकों ने आपके द्वारा लिखित 'कला', 'बंगला और उसका साहित्य', 'साहित्यिका', 'पुनरावृत्ति', 'संचयन', 'साहित्यायन' और 'भारतीय सौन्दर्य-बोध' नामक गद्य-रचनाओं को देखा है वे हमारे इस कथन से शत-प्रतिशत सहमत होंगे। कहानी तथा एकांकी नाटक-लेखन में भी तिवारीजी अत्यन्त कुशल थे। आपकी ऐसी रचनाएँ 'बदला', 'समानान्तर', 'पुनरावृत्ति', 'आधी रात का सवेरा' तथा 'आकाश-पाताल' आदि पुस्तकों में संकलित हैं। इनके अतिरिक्त आपकी 'बंगाल', 'बंगाल की लोककथाएँ', 'महावीर' तथा 'विद्यापति' आदि रचनाओं के नाम भी विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं।

श्री तिवारीजी की हिन्दी-साहित्य को सबसे बड़ी देन आपकी बंगला से अनूदित शताधिक कृतियाँ हैं। हिन्दी में कदाचित् तिवारीजी ही ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होने बंगला कृतियों के अनुवाद-कार्य में अभूतपूर्व सिद्धि प्राप्त की हुई थी। आपके द्वारा किये गए अनुवादों की सफलता का सबसे उत्कृष्ट प्रमाण यह है कि आप मूल के अत्यधिक निकट होते हुए भी पाठक को यह अनुभव होने नहीं देते थे कि वह अनूदित कृति पढ़ रहा है। बंगला का कदाचित् कोई ही ऐसा उत्कृष्टतम कलाकार बचा होगा, जिसकी रचना का आपने हिन्दी-अनुवाद न किया हो।

आप जहाँ उच्चकोटि के अनुवादक, सहृदय कवि, प्रशस्त निबन्धकार, जीवन्त पत्रकार तथा सफल कथाकार थे वहाँ सामाजिक तथा प्रशासनिक कार्यों में भी बराबर रुचि लेते रहते थे। आप जहाँ अनेक वर्ष तक बिहार सरकार की 'हिन्दी प्रगति समिति' के सक्रिय सदस्य तथा 'विशेष पदाधिकारी' रहे थे वहाँ 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' के निदेशक भी रहे थे। आप बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे थे। 'साहित्य-रचना' के अतिरिक्त आपने विगत 35 वर्ष से गया में 'मान-सरोवर' नाम से प्रकाशन भी प्रारम्भ किया हुआ था। सही अर्थों में आप पूर्णतः 'मसिजीवी साहित्यकार' थे। निरन्तर कर्म-रत रहने के कारण आपका प्रायः सारा जीवन ही संघर्ष तथा साधना में व्यतीत हुआ था।

आपने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में अपनी प्रतिभा का प्रोज्ज्वल परिचय दिया था। आपकी अनेक रचनाएँ जहाँ विभिन्न प्रादेशिक सरकारों से पुरस्कृत हुई थीं वहाँ 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' ने भी आपकी हिन्दी-सेवाओं के लिए ताम्रपत्र तथा 500 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया था। सन् 1975 में आपको 'निखिल भारत बंगीय साहित्य सम्मेलन' की ओर से 'शरत् शताब्दी समारोह' के अवसर पर 'अमृत पुरस्कार' द्वारा सम्मानित भी किया गया था।

आपका निधन 27 सितम्बर सन् 1980 को बम्बई के 'टाटा कैंसर इंस्टीट्यूट' में हुआ था।

महात्मा हंसराज

महात्मा हंसराज का जन्म पंजाब के होशियारपुर जिले के बजवाड़ा नामक कस्बे में 19 अप्रैल सन् 1864 को हुआ था। पंजाब में हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार करने में जिन विभूतियों का नाम अग्रगण्य है उनमें महात्मा हंसराज का नाम विशेष महत्त्व रखता है। आपने अपने जीवन को आर्य-समाज के सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षा-प्रणाली का प्रचलन करने में पूर्णरूपेण लगा दिया था। आपने सन् 1885 में कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी० ए० करने के उपरान्त सरकारी नौकरी करने के बजाय अपने मन में 'दयानन्द स्कूल' अथवा 'दयानन्द कालेज' स्थापित करने का निश्चय किया और 1 जून सन् 1886 को आर्यसमाज, लाहौर के भवन में उसकी विधिवत् स्थापना भी कर दी। कालान्तर में यही डी० ए० वी० कालेज, पंजाब में हिन्दी-प्रचार के प्रमुख माध्यम बने। कालेज-कमेटी ने सर्वप्रथम कालेज का प्रधाना-

कार्य आपको ही बनाया और आप सन् 1912 तक उसके प्रधानाचार्य रहे। डी० ए० वी० कालेज के संस्थापन और संचालन में सहयोग देने वाले आपके साथियों में लाला लाजपतराय तथा भाई परमानन्द आदि प्रमुख थे।

जब हमारे देश की शिक्षा का इतिहास लिखा जायगा तब जिन महानुभावों का उल्लेख शीर्ष-स्थान पर होगा उनमें महात्मा हंसराज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपने डी० ए० वी० कालेजों के माध्यम से जहाँ पंजाब की जनता में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित आर्य-समाज के पुण्य पुनीत सिद्धान्तों का प्रचार किया वहाँ आपने असंख्य युवकों को राष्ट्रीयता और समाज-सुधार के पथ पर अग्रसर होने की पावन प्रेरणा प्रदान की।

महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके देश की जनता के सामने वैदिक संस्कृति और सदाचार की भित्ति पर आधारित शिक्षा की जिस प्रणाली का प्रचलन किया, उससे देश में जो राष्ट्रीय जागरण हुआ उसे महात्मा हंसराज द्वारा संस्थापित डी० ए० वी० संस्थाओं ने अत्यन्त व्यापक रूप में आगे बढ़ाया। इन संस्थाओं के द्वारा शिक्षित एवं दीक्षित स्नातकों का लक्ष्य मात्र पुस्तकीय ज्ञान ग्रहण करना न होकर सामाजिक पुनर्जागरण के लिए आदर्श वातावरण का निर्माण करना भी था।

हमारी ऐसी मान्यता है कि शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य आचार्य कर्वे, महामना मदनमोहन मालवीय और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया था, महात्मा मुन्शीराम और महात्मा हंसराज की संस्थाओं ने उसे और भी व्यापक रूप प्रदान किया। यहाँ तक कि यह कहना भी अप्रासंगिक और अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए कि इन दोनों मनीषियों ने अपनी सारी सिद्ध शक्ति और स्वस्थ साधनों से देश के नवयुवकों में राष्ट्रीयता और समाज-सुधार की जो भावनाएँ फूँकी उनसे सांस्कृतिक जागरण के आन्दोलन को पर्याप्त बल मिला था।

आर्यसमाज के सिद्धान्तों और मान्यताओं का सही प्रतिफलन यदि उन दिनों किसी को देखना होता था तो वह हमारी इन संस्थाओं में ही मिलता था। यहाँ तक कि राष्ट्रीय आन्दोलनों में पंजाब के जिन अनेक युवकों ने अपने प्राणों की अमर आहुतियाँ दीं उनमें से अधिकांश युवक डी० ए० वी० संस्थाओं के ही उज्ज्वल अवदान थे। सरदार भगतसिंह का नाम इन सबमें मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। अमृतसर के जलियाँवाला बाग के भीषण हत्या-काण्ड के बाद तो यह धारा और भी प्रबल रूप धारण कर गई। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि डी० ए० वी० संस्थाओं के अनेक स्नातक राष्ट्रीय स्वाधीनता के इस पावन यज्ञ में अपने प्राणों को सहर्ष होमने के लिए ललक उठे। राष्ट्रभाषा हिन्दी के रथ को आगे बढ़ाने में महात्मा हंसराज के कालेज-आन्दोलन का बहुत बड़ा हाथ था।

स्वाधीनता-संग्राम में जो योगदान पंजाब केसरी लाला लाजपतराय का है, उसे सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर देश के युवकों में एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से आगे बढ़ाने में महात्मा हंसराज कभी पीछे नहीं रहे। पाश्चात्य शिक्षा की अच्छाइयों और पौर्वात्य दर्शन की गहराइयों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करके छात्रों में भारतीय संस्कृति और समाज-सुधार की भावनाएँ जगाना ही आपके जीवन का चरम लक्ष्य था। यह आपके कर्मठ जीवन की उदात्त सार्थकता का ही सुपरिणाम है, जो आज डी० ए० वी० संस्थाएँ शिक्षा के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

आपका निधन 15 नवम्बर सन् 1938 को लाहौर में हुआ था।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

आचार्य द्विवेदीजी का जन्म 19 अगस्त सन् 1907 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के 'आरत दुबे का छपरा'

(ओझवलिया) नामक ग्राम में हुआ था। आपका बचपन का नाम 'बैजनाथ द्विवेदी' था और साहित्य-रचना में कभी-कभी 'व्योमकेश शास्त्री' नाम भी प्रयुक्त किया करते थे। पारिवारिक परम्परा तथा संस्कारों के कारण आपकी शिक्षा संस्कृत में ही हुई। आपने काशी में रहकर सन् 1929 में संस्कृत साहित्य में 'शास्त्री' और 1930 में ज्योतिष विषय लेकर 'शास्त्राचार्य' की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। इसी समय आपने काशी विश्वविद्यालय में रहकर 'इण्टर' की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी।

इसके उपरान्त आपने 8 नवम्बर सन् 1930 को 'विश्व-भारती शान्ति निकेतन' में हिन्दी शिक्षक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। वहाँ पर आप सन् 1950 तक रहे और वहाँ रहते हुए 'विश्व भारती' पत्रिका के सम्पादन के अतिरिक्त 'अभिनव भारती ग्रन्थमाला कलकत्ता' का सम्पादन भी आपने किया। आपने जहाँ अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कराची अधिवेशन (सन् 1946) में आयोजित 'साहित्य परिषद्' की अध्यक्षता की वहाँ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना के तत्कालीन संचालक आचार्य शिवपूजनसहाय के अनुरोध पर सन् 1952 में 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' विषय पर पाँच भाषण भी दिए। आप 'राज-भाषा आयोग' के सदस्य होने के साथ-साथ 'नागरी प्रचारिणी सभा', 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' और 'साहित्य अकादेमी' नई दिल्ली से अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहे थे।

सन् 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुरोध पर आप वहाँ 'हिन्दी विभागाध्यक्ष' होकर आ गए और सन् 1960 तक इस पद पर बने रहे। फिर आप पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में 'हिन्दी विभागाध्यक्ष' होकर आ गए और इस पद पर आप सन् 1967 तक रहे। इसी अवधि में आप वहाँ 'टैगोर प्रोफे-सर' भी रहे थे। तदनन्तर सन् 1968 से सन् 1970 तक आपने 'काशी विश्वविद्यालय' में 'रैक्टर' के पद पर भी कार्य किया। आप सन् 1970 से सन् 1972 तक जहाँ केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय की 'हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण' योजना के निदेशक रहे वहाँ काशी विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त 'उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' के संचालक मंडल के अध्यक्ष तथा 'हिन्दी संस्थान' के उपाध्यक्ष भी रहे थे।

आचार्य द्विवेदी उच्चकोटि के समीक्षक, कुशल कथा-कार, गम्भीर चिन्तक और सहज निबन्धकार थे। आपने जहाँ समीक्षा के क्षेत्र में अपनी गहन विद्वत्ता का परिचय दिया वहाँ अपनी शोध-प्रवृत्ति के बल पर हिन्दी साहित्य के आदिकाल तथा कबीर के सम्बन्ध में ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत किए जिनके आधार पर आगे शोध का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। शान्ति निकेतन में रहकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विधुशेखर भट्टाचार्य तथा आचार्य क्षितिमोहन सेन-जैसे मनीषियों के सम्पर्क के कारण आपके साहित्यकार ने जो सहज सिद्धि प्राप्त की थी वह सर्वथा अनुपम और अनन्य थी। हल्की-फुल्की शैली में पारि-वारिक परिवेश को आधार बनाकर आपने जो निबन्ध लिखे हैं वे आपकी कला के उत्कर्ष के द्योतक हैं।
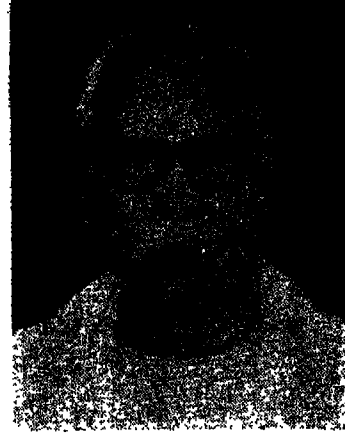
आचार्यजी ने जहाँ हिन्दी-साहित्य के इतिहास को नई दृष्टि से जाँचने-परखने की शैली हमें प्रदान की वहाँ 'बाण-भट्ट की आत्मकथा'-जैसा उपन्यास लिखकर संस्कृत वाङ्मय की निधि से कथा-साहित्य को एक सर्वथा नवीन आलोक प्रदान किया। 'व्योमकेश शास्त्री' के नाम से जो चुटीली कविताएँ लिखीं, वे आपकी सर्वथा अनूठी प्रतिभा की परि-चायिका हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं ?', 'आम फिर बौरा गए' तथा 'एक कुत्ता और एक मैना'-जैसे ललित निबन्धों में आपकी गहन जीवन-दृष्टि का जो उदात्त रूप हमें देखने को मिलता है, वह आपकी कला का ज्वलन्त 'निकष' है।

अपनी रचना-प्रतिभा के लिए द्विवेदीजी को जहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से सम्मानित किया था वहाँ साहित्य अकादेमी से भी आपको दो-दो पुरस्कार प्रदान किये गए थे। 'रवीन्द्र शताब्दी' के अवसर पर आपको जहाँ 'रवीन्द्र पुरस्कार' प्राप्त हुआ था वहाँ आपकी 'पुनर्नवा' नामक कृति को भी

वर्ष की सर्वश्रेष्ठ रचना होने का गौरव प्रदान किया गया था। आपको जहाँ सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय की ओर से डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान की गई थी वहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी अपनी सर्वोच्च सम्मानोपाधि 'साहित्य वाचस्पति' से आपको सम्मानित किया था। सन् 1957 में भारत गणराज्य के राष्ट्रपति की ओर से आपको जहाँ 'पद्मभूषण' के अलंकार से विभूषित किया गया था वहाँ सन् 1967 में आपकी 'षष्टिपूर्ति' पर 'शान्तिनिकेतन से शिवालक' नामक एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भी अर्पित किया गया था।

वैसे तो द्विवेदीजी ने इतना अधिक साहित्य लिखा है कि उसकी तालिका बहुत विस्तृत हो जायगी। फिर भी आपकी उल्लेखनीय कृतियों में 'सूर साहित्य' (1936), 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (1940), 'प्राचीन भारत में कलात्मक विनोद' (1940), 'कबीर' (1942), 'विचार और वितर्क' (1946), 'बाणभट्ट की आत्म-कथा' (1947), 'अशोक के फूल' (1948), 'नाथ सम्प्रदाय' (1950), 'कल्पलता' (1951), 'साहित्य का साथी' (1952), 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (1952), 'हिन्दी साहित्य' (1952), 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' (1957), 'मेघदूत : एक पुरानी कहानी' (1957), 'विचार-प्रवाह' (1959), 'पृथ्वीराज रासो' (1960), 'चारु चन्द्रलेख' (1963), 'आलोक पर्व' (1972), 'पुनर्नवा' (1973), 'सन्देश रासक' (1975) तथा 'अनामदास का पोथा' (1976) प्रमुख हैं।

आपका निधन 19 मई सन् 1979 को नई दिल्ली के 'भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान' में हुआ था। आपको 11 मई को काशी से यहाँ चिकित्सार्थ लाया गया था। आपके मस्तिष्क में फोड़ा था, जिसके कारण आप फरवरी सन् 1979 से अस्वस्थ ही चले आ रहे थे।

ठा० हनुमन्तसिंह रघुवंशी

ठा० हनुमन्तसिंहजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के चाँदोख नामक ग्राम में सन् 1868 में हुआ था। किसी समय यहाँ सुप्रसिद्ध राजा चन्द्र की राजधानी थी और औरंगजेब के शासन में बड़गूजर राजपूतों ने इस स्थान पर अपना अधिकार कर लिया था। इसका पुराना नाम 'औरंगाबाद' है। बड़गूजर वंश राजपूतों का बहुत ही पुराना गौरवशाली वंश है। ठाकुर साहब इसी वंश-परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण देन थे। आरम्भ में आपकी शिक्षा गाँव की पाठशाला में ही हिन्दी तथा उर्दू में हुई थी। 12 वर्ष की आयु में आपको आगे की पढ़ाई के लिए बुलन्दशहर के हाई-स्कूल में प्रविष्ट किया गया था। वहाँ से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप आगरा चले गए थे और वहाँ के 'आगरा कालिजिएट स्कूल' से आपने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आपके पिता ठा० गिरिवरसिंह सामाजिक सिद्धान्तों के पक्के समर्थक तथा हिन्दी के अनन्य अनुयायी थे। उनके पास पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं का अच्छा संग्रह था, और सामयिक समाचार-पत्र भी बहुत आया करते थे। उन पत्र-पत्रिकाओं के निरन्तर पारायण और साहित्य के विभिन्न अंगों से सम्बन्धित पुस्तकों के अध्ययन से ठा० हनुमन्तसिंह का साहित्यिक ज्ञान भी विशिष्ट प्रतिभापूर्ण हो गया था।

एक ओर जहाँ आपके पारिवारिक परिवेश ने आपको आगे बढ़ने की प्रेरणा दी वहाँ आपने आगरा में संस्थापित अपने 'राजपूत एंग्लो ओरियण्टल प्रेस' से प्रकाशित होने वाले जातीय पत्र 'राजपूत' के माध्यम से भी लेखन की प्रवृत्ति को अभिवृद्ध किया। मैट्रिक की परीक्षा देने के उपरान्त ही आपने उक्त प्रेस की स्थापना करके 'राजपूत' का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया था। उन्हीं दिनों आपने 'क्षत्रिय कुल तिमिर प्रभाकर' तथा 'सती चरित्र' नाटक भी लिखा था। स्कूल छोड़ने के थोड़े दिन बाद ही सन् 1899 में आपने 'चन्द्रकला' नामक जो उपन्यास लिखा था उससे आपकी लेखन-प्रतिभा का परिचय मिलता है। सन् 1892 से सन् 1896 तक आपने भिनगा

तथा काशी में रहकर वहाँ के नरेशों को बहुत प्रसन्न किया था। 'राजपूत' के अतिरिक्त आपने 'जमींदार हितकारी' तथा 'स्वदेश बान्धव' नामक पत्रों का सम्पादन भी सफलतापूर्वक किया था।

आप कुशल पत्रकार होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक भी थे। आपके द्वारा लिखित लगभग 40 पुस्तकें इस समय प्राप्य हैं, जिनमें 'महाभारत सार', 'मेवाड़ का इतिहास', 'सीताजी का जीवन-चरित', 'भारत-महिला-मण्डल', 'रमणी-रत्न-माला', 'जीवन-सुधार', 'गृह-शिक्षा', 'बालहित और बाल-विवाह-विरोध', तथा 'वनिता हितैषिणी' आदि के नाम विशेष ध्यातव्य हैं। आपने अपने लेखन-काल में प्रायः सभी विधाओं पर जमकर लिखा था और आपकी रचनाएँ हिन्दी की सभी पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान प्रकाशित होती थीं। आपने 'भारत जीवन प्रेस काशी' के द्वारा प्रकाशित 'शक्तिमती', 'चित्तौर-चातकी', 'इला' और 'सरोजिनी' नामक पुस्तकों के अनैतिक, अप्रामाणिक और महापुरुषों की कीर्ति को कलंकित करने वाले स्थलों की कटु आलोचना अपने 'राजपूत' पत्र में की थी। 'भारत मित्र' तथा 'वेंकटेश्वर समाचार' ने भी आपकी आलोचना का प्रबल समर्थन किया था। आपकी उस आलोचना का यह प्रभाव हुआ कि 22 नवम्बर सन् 1903 को बाबू श्यामसुन्दरदास, बाबू गंगाप्रसाद गुप्त और बाबू कालिन्दीपतिराम की उपस्थिति में 'चित्तौर-चातकी' की बची हुई प्रतियाँ गंगा में प्रवाहित कर दी गईं और शेष पुस्तकों में आवश्यक संशोधन हो गए।

आपने जहाँ पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था वहाँ आप नागरी प्रचारिणी सभा काशी के आजीवन सदस्य भी रहे थे। आपने आगरा में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना करने में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। आप जहाँ आगरा की आर्यसमाज के प्रमुख पदाधिकारी रहे थे वहाँ आपने वहाँ 'पब्लिक लायब्रेरी' की स्थापना भी की थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' तथा बाबू श्यामसुन्दरदास ने 'कवि कोविद रत्नमाला' के प्रथम भाग में आपकी साहित्य-सेवाओं पर समीचीन प्रकाश डाला है। ठाकुर साहब के 'व्यक्तित्व तथा कृतित्व' कुमारी उर्मिला शर्मा ने आगरा विश्वविद्यालय से सन् 1975 में शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। आपकी जन्म-शताब्दी के शुभ अवसर पर आगरा के 'साहित्यालोक' पत्र ने अपना एक विशेषांक भी सन् 1968 में प्रकाशित किया था, जिसका सम्पादन श्री तोताराम 'पंकज' किया करते थे।

आपका निधन 20 दिसम्बर सन् 1926 को हुआ था।

बख्शी हनुमानप्रसाद

आपका जन्म सन् 1852 में रीवाँ में हुआ था। आप रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिंह के दरबारी कवि थे। आप रीवाँ राज्य के सुप्रसिद्ध कवि समनेशजी के वंशज तथा बख्शी कामताप्रसाद के सुपुत्र थे।

आपके द्वारा विरचित 'साहित्य सरोज' नामक ग्रन्थ में अलंकारों और रसों का सर्वांगीण विवेचन किया गया है। आप रीवाँ राज्य में नायक, दीवान तथा सेक्रेटरी कौंसिल आदि अनेक प्रतिष्ठित पदों पर कार्य-रत रहे थे। यद्यपि आप भारतेन्दुकालीन रचनाकार थे, परन्तु फिर भी आपकी रचनाओं में रीतिकालीन शृंगार-वर्णन ही अधिक हुआ है। आपकी कविताओं में ब्रजभाषा तथा बुन्देली के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू तथा फारसी के शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है।

आपका निधन सन् 1927 में हुआ था।

श्री हनुमानप्रसाद अरजरिया 'जीजा बुन्देलखण्डी'

श्री अरजरिया का जन्म 6 जून सन् 1929 को मध्यप्रदेश की पन्ना रियासत के मोहन्द्रा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता आयुर्वेद मार्तण्ड श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी अरजरिया थे और आपकी शिक्षा केवल संस्कृत मध्यमा तथा आयुर्वेद विशारद तक हुई थी। आपका लेखन सन् 1950 से प्रारम्भ हुआ था। आपकी पहली रचना 'ब्रज के रसिया' की पद्धति
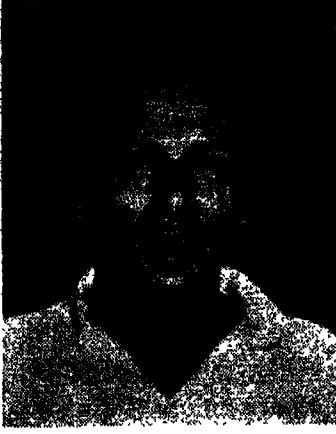
पर हुई थी। क्योंकि आपकी शिक्षा वृन्दावन में हुई थी, इसलिए ब्रजभाषा पर आपका स्वभावसिद्ध अधिकार था। आपने लगभग 500 'रसिया' लिखे थे। बुन्देलखण्डी बोली में भी आपने बहुत-सी 'चौकड़ियाँ' तथा 'हजलें' लिखी थीं। 'हजलें' नामकरण 'गजलें' के अनुकरण पर किया गया है।

आपने बुन्देलखण्ड अंचल की महिमा बुन्देलखण्डी भाषा में इस प्रकार गाई है :

हमखाँ हैं प्रानन से प्यारो, खण्ड बुन्देल हमारो।
जाँ हीरा बड़ी खदानें फरुअन टरत न टारो॥
केसव और बिहारी तुलसी, पद्‌माकर छवि तारो।
केन धसान व्यारमा सुन्दर, जमना को जल न्यारो।
जीजा कवि दमोह घंटाघर वा मैं नित करत गुजारो।

आपने समाज की सभी कुरीतियों पर व्यंग्य लिखे थे। आपकी अनेक रचनाएँ जनता में पर्याप्त लोकप्रिय हुईं, किन्तु कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी। आपकी 'सीमित परिवार : सुख का आधार', 'परिवार नियोजन' और 'जीजा की जलेबी' आदि पुस्तकों की लगभग 1000 पृष्ठों की पाण्डुलिपियाँ प्रकाशनार्थ पड़ी हैं। आपके लिखे हुए 'दादरे' तथा 'सोहे' अत्यन्त लोकप्रिय रहे थे।

आपका अन्तिम जीवन बीमारी में ही व्यतीत हुआ था और 5 मार्च सन् 1980 को सबको नित्य-प्रति हँसाता रहने वाला यह कवि सदा-सर्वदा के लिए मौन हो गया।

श्री हनुमानप्रसाद गुप्त

श्री गुप्तजी का जन्म कमासिन (बाँदा) में सन् 1894 में हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री केदारनाथ अग्रवाल के पिता थे। हिन्दी तथा उर्दू में मिडिल तक की शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर आपने घर पर ही रहकर अँग्रेजी तथा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। आप आयुर्वेद के भी अच्छे ज्ञाता थे और 'आयुर्वेद विशारद', 'कविराज' तथा 'वैद्य भूषण' की उपाधियाँ भी आपने प्राप्त की थीं।

आप योग में साहित्य के नौ रसों का समीकरण करने के समर्थक थे। आपकी रचनाएँ प्रायः भक्तिपरक, योगपरक तथा राष्ट्रीयता का रंग लिये हुए होती थीं। आपके लिखे कवित्तों तथा सवैयों में ब्रजभाषा तथा बुन्देलखण्डी दोनों का अद्‌भुत सम्मिश्रण और लालित्य रहता था। 'योग रस' के सम्बन्ध में आपका यह दोहा ध्यातव्य है :

आदि योग रस में करै, नवहू रस को ध्यान।
देह कुटी रवि मधुरिमा, प्रेम वियोगी मान॥

आपकी रचनाओं का 'मधुरिमा' नामक केवल एक ही संकलन पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्त है, जिसकी एक प्रति श्री केदारनाथ अग्रवाल तथा एक प्रति डॉ० चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित के पास 'चन्द्रदास साहित्य शोध संस्थान' में सुरक्षित हैं। आपमें कविता करने के संस्कार डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' के पिता पंडित कुंजबिहारी लाल के पास रहने के कारण उद्‌भूत हुए थे। उनके पास रहते हुए ब्रजभाषा के असंख्य कवित्त-सवैयों के पाठ करते रहने से आपमें भी कवित्व की प्रतिभा उत्पन्न हो गई थी। आप लगभग डेढ़ वर्ष तक जबलपुर में श्री कामताप्रसाद गुरु के पास भी रहे थे और आपकी रचनाएँ जबलपुर के 'कवि समाज' में पुरस्कृत भी हुई थीं।
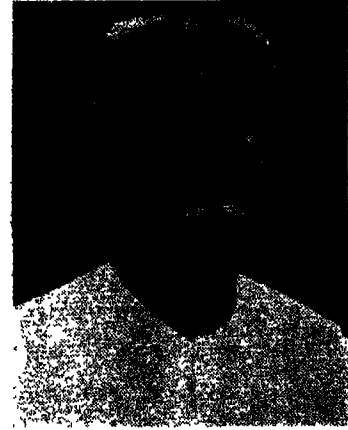
जबलपुर-निवास के समय आपकी कवित्व-शक्ति में जो निखार आया था उसमें गुरुजी तथा 'कवि समाज' का बहुत ही अधिक उल्लेखनीय योगदान रहा था।

आपका निधन 25 अप्रैल सन् 1977 को हुआ था।

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्री पोद्दारजी का जन्म 17 सितम्बर सन् 1892 को शिलांग (असम) में हुआ था। आपके पूर्वज रतनगढ़ (राजस्थान) के रहने वाले थे और व्यापार के सिलसिले में वहाँ रहने लगे थे। बाद में सन् 1901 में यह परिवार जब कलकत्ता चला गया तब पोद्दारजी विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष के सम्पर्क में आ गए थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता में हुई थी और आपने वहाँ रहते हुए हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, गुजराती, मराठी एवं अँग्रेजी का अच्छा अध्ययन कर लिया था। सन् 1904 में आपका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ था और इसी वर्ष रतनगढ़ में आपने महात्मा बखन्नाथ से गीता का विधिवत् अध्ययन किया था। जब सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से महात्मा गान्धी कलकत्ता पधारे थे और उन्हें आपने अल्फ्रेट थियेटर में 'मानपत्र' भेंट किया था तब आपने 'स्वदेश-सेवा' का व्रत लिया था। सन् 1913 में आपका विवाह हुआ था। यद्यपि आपने सन् 1910 से ही क्रान्तिकारियों के कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था और आपकी देशबन्धु चितरंजनदास से भी घनिष्ठता हो गई थी; किन्तु फिर भी आपने सन् 1913 से अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ साहित्य-सेवा के द्वारा ही किया था। उन दिनों आपके लेख आदि 'मर्यादा', 'नवनीत' तथा 'कलकत्ता समाचार'-जैसे पत्रों में प्रकाशित होने लगे थे। सन् 1914 में जब महामना पंडित मदनमोहन मालवीय हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए धन-संग्रहार्थ कलकत्ता पधारे थे तब आपने मारवाड़ी समाज की ओर से सहायता दिलाने में अत्यन्त प्रशंसनीय योगदान किया था।

इस बीच आपके जीवन की धारा ही बदल गई और आप पूर्णतः सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास रखने वाले युवकों के दल में सम्मिलित हो गए। सन् 1916 में आपको राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार करके अलीपुर सेण्ट्रल जेल तथा शिमला पाल में नजरबन्द कर दिया गया। आप कारावास में लगभग डेढ़ वर्ष रहे। वहाँ पर रहते हुए ही आपका झुकाव भगवन्नाम-कीर्तन की ओर हुआ था और आपने अध्यात्म-साधना भी प्रारम्भ कर दी थी। सन् 1918 में जब आप जेल से मुक्त हुए तब आपको बंगाल सरकार ने प्रदेश से निष्कासित कर दिया। परिणामस्वरूप आप अपने पूर्वजों की भूमि रतनगढ़ (राजस्थान) में आकर रहने लगे। इस बीच आपने स्थायी रूप से बम्बई में रहने का निश्चय कर लिया और वहाँ चले गए। बम्बई में रहते हुए आपने कांग्रेस के प्रायः सभी अधिवेशनों में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था और आप 'गरम दल' के नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनन्य अनुयायी हो गए थे। सन् 1921 में हकीम अजमलखाँ की अध्यक्षता में हुए अहमदाबाद-अधिवेशन के उपरान्त आपकी विचार-धारा सर्वथा बदल गई और आप पूर्ण रूप से अध्यात्म-साधना तथा धर्म-प्रचार में संलग्न हो गए थे। आपकी इस साधना को और भी दृढ़ता तब मिली जब सन् 1922 में सेठ जयदयाल गोयन्दका एक सत्संग-मण्डली के साथ बम्बई पधारे थे। सन् 1926 के 13, 14 तथा 15 अप्रैल को सम्पन्न हुए मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर एक धार्मिक पत्रिका प्रकाशित करने का निश्चय किया गया और रतनगढ़ जाते समय 22 अप्रैल सन् 1926 को भिवानी तथा रेवाड़ी के बीच रेल-यात्रा में सेठ जयदयाल गोयन्दका के साथ 'कल्याण' नाम से एक अध्यात्म-प्रधान मासिक पत्र निकालने का निश्चय कर लिया गया।

आप तुरन्त अपने उक्त निश्चय के कार्यान्वयन में लग गए और 'कल्याण' का प्रथम अंक 'भगवन्नामांक' नाम से सन् 1927 के जुलाई मास में बम्बई से प्रकाशित कर दिया गया। अगस्त सन् 1927 में गोरखपुर में विधिवत् 'गीता प्रेस' की स्थापना करके 'कल्याण' का प्रकाशन वहाँ से ही होने लगा। अपने उद्देश्य के प्रचारार्थ आपने सत्संग-मण्डली के साथ हावड़ा, कलकत्ता, नलबाड़ी, गोहाटी, शिलांग, तिनसुकिया, डिबूगढ़, नौगाँव, भागलपुर, झाँसी, खण्डवा, बम्बई, अहमदाबाद और बीकानेर आदि अनेक स्थानों की

गाथाएँ भी की। इस बीच अँग्रेजी 'कल्याण कल्पतरु' के प्रकाशन का भी निश्चय कर लिया गया और उसके सम्पादन के लिए श्री चिम्मनलाल गोस्वामी सन् 1928 में स्थायी रूप से वहाँ पहुँच गए। सन् 1929 में जब महात्मा गान्धी गोरखपुर गए थे तब गीता प्रेस में उनका भाषण भी हुआ था। महात्माजी से श्री पोद्दारजी का बड़ा आत्मीयतापूर्ण संबंध रहा था। उन दोनों के बीच हुए पत्र-व्यवहार को देखकर गांधीजी की 'शालीनता' तथा पोद्दारजी की उनके प्रति अद्वितीय 'निष्ठा' का परिचय मिलता है। सन् 1929 में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन गोरखपुर में हुआ था, उसके पीछे भी पोद्दारजी की ही प्रेरणा थी।

पोद्दारजी गोरखपुर में स्थायी रूप से रहते हुए 'कल्याण' तथा 'गीता प्रेस' के द्वारा आध्यात्मिक भावनाओं के प्रचार करने का जो कार्य कर रहे थे धीरे-धीरे उसमें आप सफलता प्राप्त करते गए और एक दिन वह भी आया जब 'कल्याण' पत्र तथा 'गीता प्रेस' साहित्य तथा संस्कृति के प्रचार के बहुत बड़े केन्द्र बन गए। 'कल्याण' के अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषांकों और गीता प्रेस से प्रकाशित होने वाले साहित्य को देखकर हमें जहाँ पोद्दारजी की अद्वितीय संगठन-क्षमता का परिचय मिलता है वहाँ हम आपके संस्कृति-प्रेम से पूर्णतः प्रभावित होते हैं। साहित्य तथा संस्कृति के प्रचार के इस पावन यज्ञ के प्रमुख पुरोधा के रूप में तो पोद्दारजी की सेवाएँ अभिनन्दनीय है ही, समाज-सेवा के अन्य क्षेत्रों में भी आपका योगदान कम महत्त्व नहीं रखता। आपने गीता-प्रेस संस्था की ओर से जहाँ राजस्थान के अकाल-पीड़ितों की सेवा की व्यवस्था की थी वहाँ अनेक स्थानों पर 'चक्षुदान' यज्ञों का भी आयोजन किया था। देश में यदा-कदा आने वाली बाढ़ों के समय भी आपने स्थान-स्थान पर शिविरों का आयोजन करके अद्भुत सेवा-कार्य किया था। 'गोरक्षा-आन्दोलन' और मथुरा में 'श्रीकृष्ण जन्मभूमि के पुनरुद्धार' में भी आपका विशेष योगदान रहा था। आपको सभी परिचितों में 'भाईजी' का स्नेहपूर्ण सम्बोधन मिला हुआ था।

आप जहाँ अच्छे राजनीतिक कार्यकर्ता, समाज-सेवक और अध्यात्म-चिन्तक थे वहाँ सुलेखक के रूप में भी आपकी सेवाएँ सर्वथा स्पृहणीय हैं। आपके द्वारा विरचित तथा सम्पादित रचनाओं की संख्या यद्यपि अंगुलिगण्य नहीं है फिर भी कुछ इस प्रकार हैं—पद्य-संग्रह : 'श्री राधामाधव-रस-सुधा', 'पत्र-पुष्प', 'प्रार्थना-पीयूष', 'ब्रजरस-माधुरी', 'हरिप्रेरित हृदय की वाणी', 'ब्रजरस की लहरें' (खड़ी बोली, ब्रजभाषा एवं राजस्थानी के पदों का संग्रह); गद्य-काव्य : 'प्रार्थना', 'श्री राधा-कृष्ण-मधुर-लीला-चम्पू-मधुर' भाग 1 - 2; निबन्ध-संग्रह : 'भगवच्चर्चा' भाग 1-5, 'पूर्णसमर्पणार्थ राधामाधव-चिन्तन', 'श्री राधामाधव-चिन्तन परिशिष्ट', 'भवरोग की राम-बाण दवा' (विचारात्मक निबन्ध); पत्र-संग्रह : 'लोक-परलोक सुधार' भाग 1-5 (साधना एवं व्यवहार के सम्बन्ध में दिये गए पथ-निर्देश); समाज-निर्माणात्मक साहित्य : 'हिन्दू-संस्कृति का स्वरूप', 'सिनेमा मनोरंजन या विनाश का साधन', 'विवाह में दहेज', 'नारी-शिक्षा', 'स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी', 'वर्तमान शिक्षा', 'गो-वध भारत का कलंक', 'बलपूर्वक मन्दिर प्रवेश और भक्ति'; साधना-साहित्य : 'मानव धर्म', 'साधन-पथ', 'सत्संग के बिखरे मोती', 'मन को वश में करने का उपाय', 'ब्रह्मचर्य', 'मनुष्य सर्वप्रिय और सफल जीवन कैसे बने ?', 'जीवन में उतारने की सोलह बातें कल्याणकारी आचरण'; उद्बोधक साहित्य : 'कल्याण-कुंज' भाग 1-3, 'मानव कल्याण के साधन', 'दिव्य-सुख की सरिता', 'सफलता के शिखर की सीढ़ियाँ', 'दैनिक कल्याण-सूत्र', 'आनन्द की लहरें', 'दीन-दुखियों के प्रति कर्त्तव्य' (जीवन में आशा, उत्साह, स्फूर्ति प्रदान करने वाला साहित्य); अनूदित साहित्य : 'रामचरितमानस', 'विनय-पत्रिका', 'दोहावली', 'कवितावली'; टीका-साहित्य : 'प्रेम-दर्शन' (नारद-भक्ति सूत्रों की विस्तृत टीका); भक्त-गाथा-साहित्य : 'उपनिषदों के चौदह रत्न', 'भक्त गाथाएँ' (कई भागों में)।

इन सब रचनाओं के अतिरिक्त आपकी सबसे बड़ी देन 'कल्याण' के सभी अंक तथा गीता प्रेस से प्रकाशित होने वाला साहित्य है, जिसके सम्पादन तथा प्रकाशन में आपके निष्ठापूर्ण व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है। निरन्तर 54 वर्ष तक 'कल्याण' का सम्पादन करने के अतिरिक्त आपने 'गीता प्रेस' की ओर से प्रकाशित होने वाले 'महाभारत' का भी सम्पादन किया था। 'महाभारत' का प्रकाशन आपने जिस योजनाबद्ध तरीके से किया था उससे भी आपकी नियोजन-पटुता का परिचय मिलता है।

आपका निधन 22 मार्च सन् 1971 को हुआ था।

श्री हनुमानप्रसाद सक्सेना

श्री सक्सेनाजी का जन्म सन् 1903 में कोटा (राजस्थान) में हुआ था। आप 'भारतेन्दु समिति कोटा' के संस्थापकों में अन्यतम थे। आपके एक दूसरे साथी, जिनका समिति की स्थापना में प्रमुख स्थान था, श्री कुन्दनलाल गौड़ थे। मैट्रिक तक की शिक्षा प्राप्त करके आप अध्यापक हो गए और अध्यापन करते हुए समिति के कार्यों को भी आगे बढ़ाते रहे।

धीरे-धीरे आपने समिति के कार्य-क्षेत्र को इतना बढ़ाया कि हिन्दी के नाटकों का अभिनय समिति की ओर से कराने के अतिरिक्त सम्मेलन की परीक्षाओं का प्रबन्ध भी आपने समिति की ओर से किया था। हाड़ौती अंचल का ऐसा कोई साहित्यकार तथा शिक्षाविद् नहीं था, जिसका सहयोग सक्सेनाजी ने समिति की प्रगति के लिए प्राप्त न किया हो।

आपके ही प्रयासों से अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कोटा-अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका था। आप जहाँ उच्चकोटि के संगठनकर्ता तथा कर्मठ कार्यकर्ता थे वहाँ सफल कहानीकार के रूप में भी आपने अपनी प्रतिभा का सम्यक् परिचय दिया था।

आपका निधन 28 जुलाई सन् 1949 को हुआ था।

श्री हरदयालसिंह मौजी

श्री मौजीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के मोरना नामक ग्राम में मई सन् 1910 में हुआ था। आप छात्र-जीवन से ही मेधावी माने जाते थे। कानपुर के डी० ए० वी० कालेज से बी० ए० करने के उपरान्त आप दिल्ली आ गए थे। यहाँ आकर आपका सम्पर्क मुख्यतः हिन्दी के ख्याति-प्राप्त कथाकार श्री जैनेन्द्र कुमार, विष्णु प्रभाकर और यशपाल जैन से रहा। बाद में आप शिक्षक के रूप में सन् 1945 से सन् 1947 तक अलवर रियासत में रहे। वहाँ रहते हुए आपने 'अरावली' नामक साहित्यिक मासिक के सम्पादन में भी सहयोग किया था। यह पत्र श्री लक्ष्मण त्रिपाठी और श्री हरनारायण शर्मा 'किंकर' निकाला करते थे। आप मुख्यतः कथाकार थे और आपकी यह कला दिल्ली तथा अलवर-प्रवास में बहुत ही विकसित हुई थी।
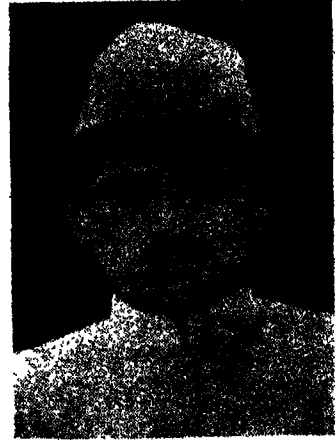
आप जिन दिनों अलवर में थे तो 'टीचर्स ट्रेनिंग' के सिलसिले में उदयपुर की 'विद्या भवन' नामक संस्था में भी लगभग एक वर्ष तक रहे थे। सन् 1947 में जब आपके बड़े भाई का देहावसान हो गया और घर की सारी जिम्मेदारियाँ आपके ऊपर आ गई तो आप अलवर के 'हैप्पी स्कूल' की नौकरी छोड़कर धामपुर (बिजनौर) के के० एम० हाईस्कूल में शिक्षक का कार्य करने लगे थे। यह कार्य आपने इसलिए स्वीकार किया था कि आपका मूल निवास-स्थान पास ही था। वहाँ जाते ही आप यक्ष्मा से बीमार हो गए और 8 सितम्बर सन् 1948 को अकस्मात् आपका स्वर्गवास हो गया।

आपका साहित्यिक जीवन अभी ठीक तरह से प्रारम्भ भी नहीं हो पाया था कि सहसा यह दुर्घटना हो गई। आपकी कहानियाँ मुख्यतः हिन्दी के सभी प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होती रहती थीं। आपके साहित्यिक जीवन के विकास में जहाँ हिन्दी के अनन्य शैलीकार, विचारक और कथाकार श्री जैनेन्द्रकुमार का विशेष हाथ था वहाँ आपने अपने साहित्यिक जीवन के साथियों—श्री विष्णु प्रभाकर तथा श्री रामचन्द्र तिवारी से भी प्रचुर प्रेरणा ग्रहण की थी।

श्री हरदयालुसिंह

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के महमूदाबाद नामक स्थान के एक वैश्य परिवार में सन् 1893 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपनी जन्म-भूमि में ही हुई थी और आपने सन् 1912 में वहाँ से ही मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके उपरान्त 2 वर्ष तक कानपुर में इण्टर-मीडिएट तक पढ़ने के उपरान्त आपने शिक्षा विभाग में नौकरी कर ली और इस प्रसंग में आप कानपुर, मथुरा, प्रयाग, झाँसी तथा गोरखपुर आदि कई स्थानों में रहे थे। अपने इस कार्य-काल में आपने हिन्दी तथा संस्कृत के अतिरिक्त अँग्रेजी साहित्य का भी गहन ज्ञान अर्जित कर लिया था। आपकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय इसी बात से मिल जाता है कि आपने जहाँ अन्य स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की थी वहाँ संस्कृत के अनेक ग्रन्थों के सफल अनुवाद भी किए थे।

एक उत्कृष्ट महाकाव्यकार के रूप में आपका स्थान हिन्दी-साहित्य में सर्वथा बेजोड़ है। आपके 'दैत्य वंश' और 'रावण' नामक महाकाव्य आपकी ऐसी प्रतिभा के ज्वलन्त प्रमाण हैं। आपने जहाँ संस्कृत के 'रघुवंश', 'कुमार सम्भव' तथा 'दूत वाक्य' आदि नाटकों के सफल अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किये थे वहाँ 'वेणी संहार' तथा 'नागानन्द' आदि नाटकों के सफल पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किए थे। आपकी ऐसी रचनाओं में 'भास नाटकावली' तथा 'स्वप्नवासवदत्ता' भी उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में 'देव दर्शन', 'मतिराम मकरन्द', 'भूषण भारती', 'बिहारी विभव', 'पूर्ण सुधाकर', 'सीताराम संग्रह' और 'सूर मुक्तावली' प्रमुख हैं। आपके 'धनंजय', 'कुरुवंश' तथा 'यदुवंश' नामक महाकाव्य अभी तक अप्रकाशित ही हैं।

आपकी अनेक रचनाएँ उत्तर प्रदेश के कई विश्व-विद्यालयों तथा इण्टरमीडिएट के पाठ्यक्रम में भी निर्धारित रही हैं। अपने साहित्यिक जीवन में आपका सम्पर्क हिन्दी के जिन अनेक मनीषियों से था उनमें डॉ० सम्पूर्णानन्द और पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी प्रमुख हैं। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने तो आपका परिचय एक कवि-सम्मेलन में इस प्रकार देकर सबको चमत्कृत कर दिया था—"बन्धुओ, अब मैं एक ऐसे महाकवि को आपके समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ जो कर्म से ब्राह्मण है, नाम से क्षत्रिय है, जन्मना वैश्य है और वर्ण (रंग से, आप श्याम वर्ण थे) से शूद्र है।" आपके विषय में एक मनोरंजक घटना इस प्रकार भी कही जाती है कि जब एक महात्मा के परामर्श पर आपने 'यदुवंश' नामक महाकाव्य की रचना प्रारम्भ की और 'कालिय-दमन' के प्रसंग तक पहुँचे तब आप अकस्मात् अस्वस्थ हो गए। एक दिन पूर्व ही आपने 'नाग पंचमी' पर नागों की पूजा करके उन्हें दूध पिलाया था। आपकी बीमारी समझ में नहीं आ रही थी। सभी लोग निराश थे। सहसा सबने देखा कि 4-5 नाग आपकी रोग-शैया के आस-पास घूम रहे हैं। जब उन्हें भगा दिया गया तो फिर 8-10 नाग प्रकट हुए और उसी प्रकार आपकी शैया के आस-पास घूमने लगे। 28 जुलाई सन् 1950 को जब श्री हरदयालुसिंह जी ने शिव-लोक को प्रस्थान किया तब भी लोगों ने देखा कि आपकी शव-यात्रा में बड़ी दूर तक नाग भी गए थे।

मुन्शी हरदेवबख्श

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के पैंतेपुर नामक स्थान के एक कायस्थ-परिवार में सन् 1855 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अरबी-फारसी में हुई थी। क्योंकि आपके पिता मुन्शी ठाकुरप्रसाद अरबी-फारसी के अतिरिक्त संस्कृत तथा हिन्दी के भी अच्छे ज्ञाता थे इसलिए इन भाषाओं का ज्ञान आपको भी उत्तराधिकार में मिला था। 18 वर्ष की आयु में मिडिल तथा नार्मल की परीक्षा उत्तीर्ण करके आप समीप के ही 'पीर नगर' नामक स्थान में अध्यापक हो गए थे और निरन्तर 27 वर्ष तक इसी विद्यालय में सेवा करते रहे थे। सन् 1900 में आप

प्रदेश के शिक्षा विभाग के द्वारा 'सरिश्ते तालीम' के पद पर नियुक्त किये गए थे। इस पद पर आपने 12 वर्ष तक कार्य करने के उपरान्त सन् 1912 में अवकाश ग्रहण किया था।

आप कुशल शिक्षक होने के साथ-साथ हिन्दी के सुकवि भी थे। आपने रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त दोनों ही प्रकार की रचनाएँ की थीं। आपका 'पिंगल भास्कर' नामक काव्य इसलिए विशेष महत्त्वपूर्ण है कि इसमें आपने गुरु, लघु, गण तथा मात्रा-प्रस्तार-सम्बन्धी विचारों के साथ-साथ चित्र-काव्य के अनेक भेदों पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है। आपके 'लवकुशी', 'जानकी विजय' और 'उषा चरित्र' आदि काव्य भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आप समस्या-पूर्तियाँ करने में भी अत्यन्त कुशल थे। आपकी ऐसी रचनाएँ बिसवाँ (सीतापुर) से प्रकाशित होने वाले 'काव्य सुधाकर' नामक पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं। आपकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर 'बिसवाँ कवि मण्डल' ने आपको 'साहित्य मधुप' की मानद उपाधि से विभूषित किया था।

आपका निधन सन् 1921 में हुआ था।

लाला हरदेवसहाय

आपका जन्म सन् 1892 में हरियाणा प्रान्त के हिसार जनपद के सातरोड खुर्द नामक स्थान में हुआ था। आप अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ में महात्मा गान्धी के स्वदेशी-आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए थे और उसीके कारण आप जीवन-भर राष्ट्रीय कार्यों में ही लगे रहे थे। आपके हिन्दी-प्रेम का सबसे ज्वलन्त प्रमाण

यही है कि आपके ग्राम में जब कोई हिन्दी की पाठशाला तक नहीं थी तब आपने अपने ही प्रयास से वहाँ पर 12 जुलाई सन् 1912 को एक हिन्दी पाठशाला की स्थापना कराई थी। यद्यपि सन् 1919 में सरकार ने आपकी इस पाठशाला को मान्यता देकर विधिवत् आर्थिक अनुदान देना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु असहयोग आन्दोलन में आपने उस सहायता का बहिष्कार कर दिया था। अपने अथक प्रयास से ही उस विद्यालय के अन्तर्गत 'लाजपतराय शिल्पशाला' की स्थापना भी आपने कराई थी। अब भी इस संस्था के द्वारा वहाँ की जनता की बहुत बड़ी सेवा हो रही है।

आप जहाँ अनेक बार सत्याग्रह आदि में भाग लेकर जेल में गए थे वहाँ 'गोरक्षा' के सम्बन्ध में भी आपने अभिनन्दनीय कार्य किया था। इसकी साक्षी आपके द्वारा लिखित 'गाय ही क्यों' नामक पुस्तक है। इस पुस्तक की भूमिका भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने लिखी थी। उनके इन शब्दों से पुस्तक की महत्ता का स्पष्ट आभास हो जाता है—"श्री हरदेवसहाय ने गाय के प्रश्न का बहुत विस्तृत और गहरा अध्ययन किया है। इतना ही नहीं, आपने जो अपने अध्ययन में पाया है उसका साक्षात् अनुभव भी बहुत अंशों में किया है। इसलिए आप जो कुछ इस सम्बन्ध में कहें वह आदरपूर्वक सुनने योग्य हैं।" गोरक्षा के प्रश्न पर आपने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, ठाकुरदास भार्गव, हनुमानप्रसाद पोद्दार, गुरु गोलवलकर तथा प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आदि अनेक महानुभावों का सहयोग प्राप्त कर लिया था।

लालाजी 'गोरक्षा' के प्रश्न को राष्ट्रीय महत्त्व का बनाकर उसके लिए अनेक स्थानों पर सत्याग्रह आदि करके कई बार जेल भी गए थे। आपने एक बार यह व्रत भी ले लिया था कि "मैं जब तक समस्त देश से गोहत्या के भयंकर कलंक को दूर न करा दूँगा, नंगे सिर ही रहूँगा तथा चैन से न बैठूँगा।" आपने गोरक्षा के निमित्त 'गोहत्या निरोध समिति' की स्थापना करके उसकी ओर से 'गोधन' नामक पाक्षिक पत्र भी प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया था, जो अब भी बराबर प्रकाशित हो रहा है। आपने 'गाय ही क्यों?' नामक पुस्तक के अतिरिक्त 'गो संकट-निवारण', 'कलकत्ते का कलंक' तथा 'लोकसभा में गाय' आदि पुस्तकों की रचना भी की थी।

आपका निधन सन् 1962 में हुआ था।

श्री हरनाथ राजकवि

आपका जन्म विन्ध्य प्रदेश के सूरी नामक ग्राम में सन् 1896 में हुआ था। आपके पिता श्री नवदत्तजी भी हिन्दी के उत्कृष्ट कवि थे। आप 'हनुमत् पताका' आदि ग्रन्थों के लेखक श्री काली कवि के शिष्य थे। आपके कवित्व की छाप आपकी रचनाओं में भी पूर्णत: दृष्टिगत होती है। आपको पन्ना, बूंदी, अलवर तथा झालावाड़ आदि देशी रियासतों में प्रचुर सम्मान प्राप्त हुआ था। आप जहाँ अपनी वीररस पूर्ण रचनाओं के कारण 'आधुनिक भूषण' कहे जाते थे वहाँ आपको 'कवीन्द्र' तथा 'कविराजा' आदि अनेक प्रशस्त उपाधियों से भी अलंकृत किया गया था।

आपका बचपन अपनी जन्मभूमि से लगभग 5 मील दूर 'रह आनोंधा' नामक जागीर के ठिकानेदार राव साहब लक्ष्मणसिंह जूदेव की देख-रेख में व्यतीत हुआ था। जब आप 5 वर्ष के ही थे तब आपके पिताजी ने आपको श्री कालीचरण 'काली कवि' के श्री चरणों में समर्पित कर दिया था। श्री काली कवि का सम्बन्ध ग्वालियर-नरेश के बड़े भाई श्रीभैयासाहेब बलवन्तरायजी से अत्यन्त निकट का था, इसी कारण हरनाथजी की शिक्षा-दीक्षा उन्हीं की देख-रेख में हुई थी। बूंदी-नरेश, झालावाड़-नरेश तथा पन्ना-नरेश आदि साहित्य-प्रेमी शासक कवीन्द्र हरनाथ का बड़ा सम्मान करते थे और आपके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ बूंदी-नरेश महाराजा श्री रघुवीरसिंह के निरीक्षण में हुआ था। वे आपको काशी से अपने साथ ले आए थे। पन्ना-नरेश भी आप पर अत्यन्त अनुरक्त थे और उन्होंने आपको 'कवीन्द्र बहादुर' की उपाधि प्रदान की थी। अलवर-नरेश भी आपकी कवित्व-प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित थे और आपने उनके सम्बन्ध में 'विनय प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना भी की थी। अन्तत: आप झालावाड़ में ही आकर रहने लगे थे और जीवन के अन्त तक वहीं रहे थे।

आपके द्वारा लिखित जिन ग्रन्थों का विवरण हमें प्राप्त हुआ है उनमें 'विन्ध्यवासिनी अष्टक', 'सदाशिव षोडशी', 'राधाकृष्ण कीर्तन', 'भगवत्-रहस्य नामावली', 'प्रश्नोत्तर पद्यानुवाद', 'कलियुग विडम्बना', 'माया जाल', 'प्रताप पताका' तथा 'छत्रसाल बावनी' आदि के नाम विशेष महत्त्व-पूर्ण हैं। आपके 'बाँसुरी', 'साहित्य-सूर्य', 'फाग बिहार', 'नेत्र शतक', 'प्रभात प्रभा', 'सिंह शिवराज', 'महारानी लक्ष्मी', 'वीर राजपूत' तथा 'आनन सौन्दर्य' आदि कई काव्य अप्रकाशित रह गए। राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के प्रयास से आपके जीवन-काल में आपकी प्राय: सभी उल्लेखनीय कृतियों का एक संकलन 'हरनाथ ग्रन्था-वली' नाम से सन् 1966 में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्था-वली को 'वन्दना', 'स्तोत्र', 'उपासना', 'कवि', 'मेरा परिचय', 'ग्रन्थावलि परिचय', 'पिंगल रीति प्रकरण', 'चित्र-काव्य', 'रस प्रकरण', 'अलंकार प्रकरण', 'शब्दार्थ लक्षण व्यंजना ध्वनि', 'नायिका भेद', 'प्रभात प्रभा', 'ऋतु वर्णन', 'नेत्र शतक', 'आनन सौन्दर्य', 'स्फुट काव्य', 'कन्हाई', 'बाँसुरी', 'फाग बहार', 'मथुरा गमन', 'महाभारत के कुछ संस्मरण', 'प्रताप पताका', 'सिंह शिवराज', 'छत्रसाल बावनी', 'हरनाथ हृदय-तरंग', 'माया जाल' तथा 'पदावली' नामक खण्डों में विभाजित किया गया है। इनमें से प्राय: सभी खण्डों के शीर्षक आपकी कृतियों के नाम पर दिये गए हैं।

आपका निधन सन् 1969 में हुआ था।

श्री हरनामचन्द्र सेठ

श्री सेठजी का जन्म 3 नवम्बर सन् 1895 को उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर नगर में हुआ था। आपका परिवार परम्परा से ही हिन्दी-प्रेमी था और इसी कारण आपने जहाँ बुलन्द-शहर में 'नागरी प्रचारिणी सभा' के कार्य को तत्परतापूर्वक आगे बढ़ाया था वहाँ 'हिन्दी साहित्य परिषद्' की स्थापना

में भी बहुत सहयोग दिया था। प्रतिवर्ष बुलन्दशहर की प्रदर्शनी के अवसर पर आयोजित किए जाने वाले कवि-सम्मेलनों में भी आपका सक्रिय योगदान रहता था।

आप जहाँ अच्छे समाज-सेवक थे वहाँ कविता के क्षेत्र में भी आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था। आप स्वयं अद्भुत कवि थे, इसका प्रमाण सन् 1946 में प्रदर्शनी के अवसर पर आयोजित कवि-सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले कवियों की कविताओं के उस संकलन से मिल जाता है, जो 'सौरभ' नाम से प्रकाशित हुआ था। इस संकलन में आपकी भी एक रचना प्रकाशित हुई है।

समाज-सेवा के क्षेत्र में आपकी कर्मठता सारे नगर में विख्यात थी। आप जहाँ कई वर्ष तक अनाथालय के मन्त्री रहे थे वहाँ नगर की अन्य बहुत-सी संस्थाओं को आपका सहयोग सुलभ होता रहता था। भारत-विभाजन के समय आपने पंजाब से आए हुए व्यक्तियों की बहुत सहायता की थी।

आपका निधन 20 फरवरी सन् 1975 को हुआ था।

कविराज हरनामदास बी० ए०

कविराजजी का जन्म सन् 1895 में अविभाजित पंजाब के मियाँवाली जनपद के कमर मुशानी नामक कस्बे में हुआ था। डी० ए० वी० कालेज, लाहौर से बी० ए० करने के उपरान्त आपने आयुर्वेद का विधिवत् अध्ययन करके 'कविराज' की उपाधि प्राप्त की थी। अध्ययन की समाप्ति के उपरान्त सर्वप्रथम आपने लाहौर के लुहारी दरवाजे में चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ किया था, किन्तु फिर काम बढ़ जाने पर शीतला मन्दिर के पास अपना कार्यालय स्थापित कर लिया था। भारत-विभाजन के उपरान्त आपने दिल्ली में आकर चाँदनी चौक में लालकिले के सामने अपनी प्रैक्टिस प्रारम्भ की थी।

आप जहाँ आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे थे वहाँ आपने चिकित्सा से समय निकालकर समाज-सेवा के अन्य क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। कुछ दिन तक आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री भी रहे थे। आप सन् 1974 तथा 1975 में 'वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर' के प्रधान भी रहे थे। आप अच्छे चिकित्सक तथा सामाजिक कार्यकर्ता होने के साथ-साथ कुशल लेखक भी थे। आपके द्वारा हिन्दी में लिखित 'विवाहित आनन्द', 'पति पथ-प्रदर्शक', 'पत्नी पथ-प्रदर्शक' तथा 'भोजन और स्वास्थ्य' आदि कृतियाँ इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि उर्दू, पंजाबी, तमिल, तेलुगु तथा मराठी आदि भाषाओं में भी उनका अनुवाद हो चुका है।

आपका निधन 18 जून 1977 को तीर्थराम अस्पताल दिल्ली में हुआ था।

श्री हरनारायण मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म मध्यप्रदेश के खण्डवा नगर में सन् 1914 में हुआ था। आपकी शिक्षा खण्डवा के 'न्यू हाई स्कूल' में हुई थी और आपने अपने गुरु पं० केवलराम शास्त्री से वहीं पर काव्य-दीक्षा ग्रहण की थी। आप बड़े गम्भीर प्रकृति के सौम्य और शान्त कवि थे। कवि बनना या कविता लिखना आपके जीवन का उद्देश्य नहीं था, परन्तु फिर भी

अनायास कविता आपकी संगिनी बन गई थी और अपने समीपवर्ती अंचल में आपकी ख्याति अच्छी हो गई थी।

साधारण-सी स्कूली शिक्षा प्राप्त करके भी आपने ऐसी गम्भीर कविताएँ और कहानियाँ कैसे लिख लीं, यह एक आश्चर्य की ही बात है। समाज की सभी प्रकार की अनुभूतियों का चित्रण आपकी कविताओं में हुआ है। आपकी कविताओं का संकलन 'अन्तर की धाराएँ' नाम से सन् 1958 में प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन 17 अगस्त सन् 1964 को हुआ था।

ठा० हरपालसिंह

ठाकुर साहब का जन्म उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद के अन्तर्गत सोहिलामऊ नामक ग्राम में सन् 1879 में हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के घनिष्ठ मित्र और बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के समकालीन थे। आपकी रचनाएँ कृष्ण-भक्ति से ओत-प्रोत रहती थीं। राष्ट्रीय रचना लिखने की दिशा में आपने अच्छी प्रतिभा का परिचय दिया था। 'सुकवि' के संचालक तथा सम्पादक श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' से प्रायः आपकी नोंक-झोंक चला करती थी। आपने बिसौलिया (सीतापुर) से प्रकाशित होने वाले 'कविता प्रचारक' नामक पत्र का सम्पादन भी किया था।

आप ब्रजभाषा के बड़े सशक्त एवं सिद्ध कवि थे। आपकी जहाँ लगभग 12 कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं वहाँ 14 कृतियाँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं। यह सब सामग्री आपके सुपुत्र ठाकुर श्री रघुराजसिंह के पास सुरक्षित है। आपकी प्रकाशित कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—'दुर्गा विजय', 'रागरंग', 'जानकी विजय', 'उषा अनिरुद्ध' (नाटक), 'प्रेम पचासा', 'पावस प्रमोद', 'बसन्त विनोद', 'ऋतु रसांकुर', 'प्रेम प्रार्थना', 'अन्न पचीसी', 'प्रेम गीतावली' तथा 'राग रत्नावली' आदि।

आप अच्छे कवि होने के साथ-साथ उत्कृष्ट गद्य-लेखक भी थे। आपकी अप्रकाशित रचनाओं में काव्य-कृतियों के अतिरिक्त एक निबन्ध, एक नाटक तथा तीन उपन्यास भी हैं। आपकी रचनाएँ रत्नाकर जी की टक्कर की होती थीं।

आपका निधन सन् 1 23 में हुआ था।

श्री हरभाई त्रिवेदी

श्री त्रिवेदीजी का जन्म 11 नवम्बर सन् 1892 को गुजरात प्रदेश के भावनगर जनपद के बरतेज नामक स्थान में श्री दुर्लभजी के यहाँ हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा भावनगर में हुई थी। बी० ए० उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने बम्बई में लगभग 2 वर्ष तक शिक्षक के रूप में कार्य किया था। भावनगर में 'दक्षिणामूर्ति भवन' संस्था के चार संस्थापकों में से आप एक थे। आपने संस्था के माध्यमिक स्तर के कार्य को सँभालकर उसे आजीवन उन्नति की ओर अग्रसर किया। श्री हरभाईजी राष्ट्रभाषा हिन्दी के निष्ठावान् समर्थकों में से एक थे। 'दक्षिणामूर्ति भवन' में हिन्दी की पढ़ाई का प्रबन्ध आपकी ही प्रेरणा से किया गया था। 'घरशाला' मासिक पत्रिका का प्रकाशन तथा संस्था में सप्ताह में एक दिन पूर्ण कार्य हिन्दी में करने का श्रीगणेश भी आपकी ही प्रेरणा से किया गया था।

त्रिवेदीजी गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के उपाध्यक्ष तथा सौराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अध्यक्ष भी रहे थे। सन् 1954 में श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए भावनगर में 'अखिल गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन' के प्रथम अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष श्री हरभाई त्रिवेदी ही थे। सौराष्ट्र में जब 'भावनगर विश्वविद्यालय' का निर्माण हुआ तब आप उसके प्रथम 'उपकुलपति' चुने गए थे।

आपकी कृतियों में 'तथागत', 'विद्यार्थियों का मानस', 'शरीर विकास', 'जातक कथाएँ', 'जातीय विकृति के मूल्य' तथा 'डाल्टन योजना' आदि उल्लेख्य हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त आपके अनेक लेख 'ग्राम पुनर्घटना' और 'घरशाला' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

आपका निधन अगस्त सन् 1980 में हुआ था।

श्री हरविलास शारदा

श्री शारदाजी का जन्म 3 जून सन् 1867 को अजमेर के एक प्रतिष्ठित घराने में हुआ था। जिन दिनों आपने सन् 1888 में बी० ए० (आनर्स) की परीक्षा उत्तीर्ण की थी उन दिनों एक ओर तो राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के मंच से भारत की जनता स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रही थी और दूसरी ओर आर्यसमाज के मंच से महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति का शंखनाद कर रहे थे। नवयुवक हरविलास शारदा भी इन विचार-धाराओं से अछूते न रह सके।

अजमेर में महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रायः आते रहते थे और वहाँ उनके उपदेश भी होते रहते थे। शारदाजी पर उन उपदेशों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। जिन दिनों बी०ए० करके आप आगरा से अजमेर लौटे थे उन्हीं दिनों दिसम्बर मास में इलाहाबाद में कांग्रेस का चतुर्थ अधिवेशन होने वाला था। शारदाजी उसमें सम्मिलित होने के लिए गए और वहाँ पर प्रख्यात देशभक्त महादेव गोविन्द रानाडे से आपकी अत्यन्त घनिष्ठ मित्रता हो गई। यहाँ यह स्मरणीय है कि स्वामी दयानन्दजी के निधन के बाद उनके सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अजमेर में जिस 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना शारदाजी के पारिवारिक जनों ने की थी, श्री रानाडे उस समिति के ट्रस्टी थे।

शिक्षा-समाप्ति के उपरान्त सन् 1889 में आप अजमेर के गवर्नमेंट कालेज में वरिष्ठ अध्यापक नियुक्त हो गए और कुछ समय बाद कमिश्नर की अदालत में अनुवादक का कार्य करने लगे। सन् 1894 से सन् 1902 तक आप सरकार की ओर से जैसलमेर के महारावल के ट्यूटर रहे। फिर क्रमशः सन् 1902 में कमिश्नर के कार्यालय में अधीक्षक, सन् 1908 में ब्यावर में उप-मुख्य न्यायाधीश, सन् 1908 में अदालत के रजिस्ट्रार, सन् 1912 में अजमेर के स्पेशल जज, सन् 1923 में अजमेर मेरवाड़ा के जिला और सैशन जज तथा सन् 1925-26 में आप जोधपुर होईकोर्ट के वरिष्ठ न्यायाधीश के पद पर आसीन रहे। एक साधारण लिपिक से इस वरिष्ठ स्थान तक पहुँचने में जो संघर्ष आपने किया उससे आपकी प्रतिभा और कार्यक्षमता का परिचय मिलता है।

आगे चलकर आप क्रमशः सन् 1924, 1927 और 1930 में केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्य भी रहे। वहाँ पर जाकर आपने बाल-विवाह के विरोध में जो बिल पेश किया था उसे आज भी 'शारदा एक्ट' के नाम से जाना जाता है। यह बिल 30 सितम्बर सन् 1929 को पास हुआ था और उसके 6 मास बाद अप्रैल सन् 1930 में यह कानून बन गया था। भारत के अँग्रेजी शासन के इतिहास में यह एक क्रान्तिकारी घटना थी। इस एक्ट के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु की बालिका और 18 वर्ष से कम आयु के बालक का विवाह निषिद्ध ठहराया गया था।

आर्यसमाज से श्री शारदाजी का सम्बन्ध अपनी छात्रावस्था से ही था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि उस क्षेत्र में भी आपकी प्रतिभा अत्यन्त प्रखरता से विकसित हुई। आर्यसमाज अजमेर के प्रधान तो आप पहले से ही थे, सन् 1889 में जब राजपूताना और मध्यभारत की 'आर्य प्रतिनिधि सभा' की स्थापना हुई तो आप उसके प्रथम प्रधान भी चुने गए। सन् 1893 से आप जीवन के अन्तिम क्षण तक 'परोपकारिणी सभा' के भी मन्त्री रहे। शारदाजी एक अच्छे समाज-सेवी होने के साथ-साथ अध्ययनशील लेखक और विचारक भी थे। आपको जहाँ स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के साथ रहने और उनसे विचार-विमर्श करने का प्रथम अवसर मिला था वहाँ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के परम शिष्य श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा भी आपके अनन्य मित्र थे। श्री वर्मा भारत के क्रान्ति दल के प्रेरणा-स्रोत थे। उनके सत्संग का ही यह प्रभाव था कि श्री शारदाजी ने अनेक प्रसंगों पर ब्रिटिश नौकरशाही से लोहा लेकर देश के सम्मान की रक्षा की थी।

शारदाजी एक गम्भीर विचारक और कर्मठ जननेता होने के साथ-साथ हिन्दी के सुलेखक भी थे। आपकी प्रमुख

रचनाओं में 'स्वामी दयानन्द सरस्वती स्मारक ग्रन्थ', 'महर्षि दयानन्द और परोपकारिणी सभा की कृतियाँ', 'शंकराचार्य और दयानन्द', 'स्वामी दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र', 'परोपकारिणी सभा और सत्यार्थप्रकाश' तथा 'स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपने अँग्रेजी में भी सन् 1906 में 'हिन्दू सुपीरियारिटी' नामक ग्रन्थ की रचना करके अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। यह ग्रन्थ भारतीय सभ्यता, हिन्दू दर्शन और आर्य संस्कृति का 'विश्वकोश' है।

आपकी देश-भक्ति, समाज-सेवा और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि गुणों से प्रभावित होकर भारत सरकार ने आपको क्रमशः सन् 1928 में 'राव साहब' तथा सन् 1929 में 'दीवान बहादुर' की सम्मानित उपाधि से भी विभूषित किया था। सन् 1933 में अजमेर में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की जो निर्वाण अर्द्धशताब्दी मनाई गई थी उसकी स्वागत-समिति के मन्त्री आप ही थे। सन् 1937 में आपकी सत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर आपको विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेंट किया गया था।

आपका निधन 20 जनवरी सन् 1955 को हुआ था।

श्री हरिकृष्ण 'कमलेश'

श्री कमलेश का जन्म सन् 1893 में राजस्थान के भरतपुर अंचल के डीग नामक स्थान में हुआ था। आप हिन्दी के अनन्य प्रेमी तथा सुलेखक होने के साथ-साथ अच्छे संगठनकर्ता भी थे। आपने जहाँ डीग (भरतपुर) में सन् 1920 में हिन्दी-पुस्तकालय की संस्थापना की थी वहाँ जुरहरा (भरतपुर) में 'श्री सुधारिणी समिति' नामक संस्था भी चलाई थी।

आप हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। आपने लगभग 16 पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें से 'ब्रज माधुरी' (1938) तथा 'प्रेम सम्पुट' (1949) नामक केवल 2 पुस्तकें ही प्रकाशित हो सकी हैं।

आपका निधन 23 जनवरी सन् 1967 को काशी में हुआ था।

श्री हरिकृष्ण जौहर

श्री जौहरजी का जन्म सितम्बर सन् 1880 में उत्तर प्रदेश की काशी नगरी के एक खत्री-परिवार में हुआ था और आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई थी तथा बाद में कुछ दिन हिन्दी सीखकर आपने 12 वर्ष की अवस्था में 'भारत जीवन प्रेस' में नौकरी कर ली थी। प्रेस में कार्य करते हुए ही आपने अपने निजी अध्यवसाय से संस्कृत, अँग्रेजी, फारसी, बंगला, मराठी और गुजराती आदि कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपको पुस्तकों के पढ़ने का इतना शौक था कि काशी की 'कारमाइकल लाइब्रेरी' की कोई भी पुस्तक आपने पढ़ने से नहीं छोड़ी थी। इतिहास, भ्रमण-वृत्तान्त और जीवन-चरित सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़ने में आपकी बहुत रुचि थी। आपने अपना लेखन-कार्य सर्वप्रथम उर्दू से प्रारम्भ किया था, जबकि आपकी 'राजे हैरत' नामक पुस्तक बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) के तत्कालीन राजा श्री विजयचन्द की आर्थिक सहायता से छपी थी, और उसका समर्पण भी उनको ही हुआ था। इसके उपरान्त आपने 'हरीफ' तथा 'पुरअसर जादू' नामक उपन्यास तथा नाटक उर्दू में लिखे थे। 'जौहर' उपनाम भी आपने उन्हीं दिनों रखा था। कुछ वर्ष बाद आपका झुकाव हिन्दी की ओर हुआ और आप उर्दू को सर्वथा तिलांजलि देकर हिन्दी-लेखन में संलग्न हो गए।
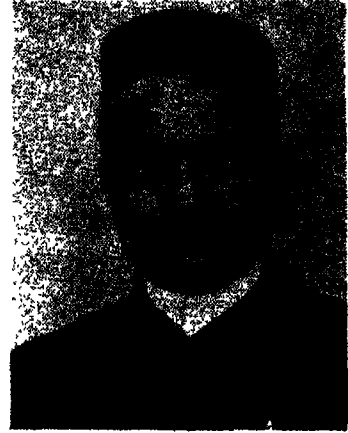
आपकी सबसे पहली हिन्दी-रचना 'कुसुम लता' नामक उपन्यास है, जो चार भागों में प्रकाशित हुआ था और जिसकी पृष्ठभूमि ऐयारी तथा तिलस्मी है। जब आप 'भारत जीवन प्रेस' में कार्य करते थे तब उस प्रेस के संचालक बाबू रामकृष्ण वर्मा के पास सर्वश्री अम्बिकादत्त व्यास, नकछेदी तिवारी, लछिराम, रत्नाकर, कार्तिकप्रसाद खत्री,

सुधाकर द्विवेदी तथा किशोरीलाल गोस्वामी आदि अनेक प्रख्यात हिन्दी-लेखक आया करते थे। उनके बीच होने वाली गोष्ठियों में श्री जौहरजी भी सम्मिलित हुआ करते थे। इन गोष्ठियों में सम्मिलित होने के कारण जौहरजी का झुकाव हिन्दी की ओर हुआ था। आपने जहाँ 'भारत जीवन प्रेस' की ओर से प्रकाशित होने वाले 'भारत जीवन' नामक पत्र का सम्पादन करके पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया था वहाँ काशी से ही प्रकाशित होने वाले 'मित्र', 'उपन्यास तरंग' और 'द्विजराज पत्रिका' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करके अपनी उत्कृष्ट सम्पादन-पटुता का परिचय दिया था। कुछ दिन तक आप अजमेर (राजस्थान) से प्रकाशित होने वाले 'राजस्थान' पत्र के सम्पादक भी रहे थे। इसके उपरान्त आपने कई वर्ष तक 'वेंकटेश्वर समाचार' का सम्पादन भी बम्बई जाकर किया था। इन पत्रों के सम्पादन-काल में भी आपने अनेक पुस्तकों की रचना की थी। आपकी ऐसी पुस्तकों में 'जापान-वृत्तान्त', 'अफगानिस्तान का इतिहास', 'भारत के देशी राज्य', 'रूस-जापान-युद्ध', 'पलासी की लड़ाई', 'सागर साम्राज्य', 'सिख इतिहास', नेपोलियन बोनापार्ट', 'भूगर्भ की सैर', 'विज्ञान और बाजीगर', 'कबीर' तथा 'मंसूर' आदि के नाम विशिष्ट हैं।

जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यास-लेखन की दिशा में आपने जिस प्रतिभा का परिचय दिया था वह आपके साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक विकास की द्योतक है। आपकी ऐसी रचनाओं में 'कुसुम लता' के अतिरिक्त 'कांस्टेबुल वृत्तान्त माला', 'भूतों का मकान', 'नर-पिशाच', 'भयानक आक्रमण', 'मयंकमोहिनी', 'शीरी-फरहाद' तथा 'जादूगर' के नाम ध्यातव्य हैं। आपने कुछ दिन तक कलकत्ता के 'मदन थियेटर्स लिमिटेड' के लिए कई नाटक भी लिखे थे। आपकी ऐसी नाट्य-कृतियों में 'सावित्री-सत्यवान', 'पति-भक्ति', 'प्रेम योगी', 'वीर भारत', 'कन्या-विक्रय', 'चन्द्र-हास', 'सती लीला', 'भार्या पतन' 'प्रेम लीला', 'औरत का दिल', 'ऊषा-हरण', 'देश का लाल' तथा 'शालिवाहन' आदि उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा सम्पादित पुस्तकों में 'श्रीमद्-भागवत', 'महाभारत' 'अध्यात्म रामायण', 'कल्कि पुराण', 'मार्कण्डेय पुराण', 'काशी', 'याज्ञवल्क्य संहिता', 'अत्रि संहिता' और 'हारीत संहिता' आदि प्रमुख हैं।

जिन दिनों आप 'भारत जीवन' का सम्पादन करते थे तब उसकी ग्राहक संख्या 100 से बढ़कर 700 से अधिक हो गई थी। उस समय आपका वेतन केवल 15 रुपए मासिक था। जब आपको इससे अधिक वेतन मिलने की कोई आशा न रही तो आप सन् 1902 में काशी छोड़कर कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी बंगवासी' पत्र में सहकारी सम्पादक होकर वहाँ चले गए और धीरे-धीरे वहाँ पर आपका वेतन 25 रुपए से प्रारम्भ होकर 105 रुपए तक हो गया था। तीन मास बाद ही जब 'हिन्दी बंगवासी' के तत्कालीन सम्पादक पंडित सदानन्द शुक्ल ने अवकाश ग्रहण किया तब आप उसके प्रधान सम्पादक नियुक्त हुए थे। जिन दिनों आप 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादक रहे थे तब आपके सहकारी के रूप में कुँवर गणेशसिंह भदौरिया, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराड़कर तथा लक्ष्मणनारायण गर्दे आदि ने भी कार्य किया था। जिन दिनों आपने 'हिन्दी बंगवासी' का कार्य-भार सँभाला था तब उसकी ग्राहक-संख्या केवल 3000 थी, जो धीरे-धीरे बढ़कर 17,000 तक पहुँच गई थी। यूरोपीय महासमर के समाप्त होने के उपरान्त जब आपने 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादन का कार्य छोड़ने की इच्छा प्रकट की तब पत्र के स्वामी श्री वरदाप्रसाद वसु ने आग्रह किया कि "आप बंगवासी से सम्बन्ध न तोड़िए,आपको कुछ भी कार्य नहीं करना पड़ेगा, केवल निरीक्षण कीजिये और आपका वेतन भी क्रमशः बढ़ता रहेगा।" किन्तु आपका मन तो कार्य से सर्वथा उचट गया था। फलस्वरूप निरन्तर 10 वर्ष तक उस पत्र का सम्पादन करने के उपरान्त सन् 1919 में आपने उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और आप कलकत्ता के 'मदन थियेटर्स लिमिटेड' में 'नाटककार' के रूप में कार्य करने लगे।

आप पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले नाटकों की भाँति खिचड़ी भाषा लिखने के पक्ष-पाती न थे। आप रंगमंच पर शुद्ध हिन्दी के नाटक ही प्रस्तुत किये जाने के पक्षपाती थे। अपने इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर आपने कलकत्ता में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की थी। एक बार जब आप डेपुटेशन लेकर 'मदन थियेटर्स' के मालिक श्री रुस्तमजी के पास गए थे तब उन्होंने आपसे ही कम्पनी के लिए शुद्ध हिन्दी नाटक लिखने का अनुरोध किया था। परिणामस्वरूप आप 250 रुपए मासिक पर वहाँ नाटककार के रूप में गए थे और धीरे-धीरे आपका

वेतन 400 रुपए मासिक हो गया था। कम्पनी में रहते हुए आपने जहाँ देश के सभी भागों का भ्रमण किया वहाँ आपके द्वारा लिखित नाटकों के कारण 'मदन थियेटर्स' को बड़ी लोकप्रियता मिली थी। आपके कई नाटकों की फिल्में भी आपके निरीक्षण में बनी थीं। इस बीच सन् 1931 में जब सेठ रुस्तमजी का स्वर्गवास हो गया तब आपका मन भी वहाँ कार्य करने से उचट गया और आप कम्पनी से त्यागपत्र देकर स्थायी रूप से काशी आ गए। काशी में रहते हुए भी आपने आपना लेखन-कार्य नहीं छोड़ा और आप विभिन्न कम्पनियों के लिए नाटक तथा संवाद आदि लिखते रहे। उन्हीं दिनों आपने कलकत्ता की 'पायनियर फिल्म्स' के लिए 'खुदा दाद' तथा 'माँ' आदि कई कथाएँ लिखी थीं।

जब द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया तब आपने काशी के मामूरगंज नामक स्थान में 'हिन्दी प्रेस' की स्थापना करके उसकी ओर से 'आधार' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र भी निकाला था, जो हिटलर-चैम्बरलेन-सन्धि के उपरान्त बन्द कर दिया था। इसी बीच सन् 1938 में आप कलकत्ता के 'सीताराम मूवीटोन' की 'कर्मवीर' फिल्म के सम्बन्ध में बम्बई गए और फिर 'वेंकटेश्वर समाचार' के सम्पादक हो गए। पत्र-सम्पादन के जिस कार्य को आपने 'प्रथम यूरोपीय महायुद्ध' की समाप्ति पर तिलांजलि दी थी उसको फिर 'द्वितीय महायुद्ध' के प्रारम्भ होने पर अपना लिया। इस सम्बन्ध में आपका यह कहना था :

कट गई जिन्दगी साहित्य की गुलकारी में।
तीसरापन है इसी बाग की फुलवारी में।।

कागज उढ़ना और बिछौना, कागज ही से खाना।
कागज लिखते-लिखते साधो, कागज में मिल जाना।।

आपका निधन सन् 1945 में काशी में हुआ था।

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

श्री 'प्रेमी' जी का जन्म मध्यभारत के ग्वालियर सम्भाग के गुना नामक स्थान में सन् 1908 में हुआ था। जब आप केवल ढाई वर्ष के थे तब आपकी माता का देहावसान हो गया था। 'माँ के प्यार' के अभाव ने ही प्रेमीजी के मानस में 'प्रीत' की जो प्यास जगाई थी वह कालान्तर में आपके 'प्रेमी' नाम की सार्थकता का कारण बनी थी। जब आप केवल 16 वर्ष के ही थे तब आपके सुप्रसिद्ध काव्य 'आँखों में' की रचना हुई थी। उन दिनों आप मैट्रिक की कक्षा में पढ़ते थे। केवल 16 घंटे के तूफान ने ही 'आँखों में' काव्य की सृष्टि कर दी थी। फिर अतृप्ति के समुद से पार पाने के लिए एक रात अचानक हृदय में रुके हुए जो आँसू पौ फटने से पहले ही अक्षर बनकर टपकने लगे थे उन्हींका वर्णन 'आँखों में' है। 'आँखों में' नामक पुस्तक का समर्पण प्रेमीजी ने जिन शब्दों में किया है वे भी आपकी व्यथा-कथा को इस प्रकार वर्णित कर रहे हैं—"जिसके हृदय-द्वार पर मैं भिखारी के रूप में आया था, आज उसीको अपनी 'आँखों में' अर्घ देते लाज लगती है। जिसने मेरे हृदय को बासी फूल-सा फेंक दिया। मेरी कोमलता को कुचल दिया, पर पीड़ा की मधुर भीख दी, मेरी 'आँखों में' उसीकी स्मृति की अमरता है। जिसके प्रथम अनुभव में चोरी और विरह में मीठापन-मादकता, उसकी निष्ठुरता की आँखों में मेरी—'आँखों में' अर्पित है।" प्रेमीजी के इस काव्य का यह पहला पद ही उनकी पीड़ा का अनुमान करने के लिए पर्याप्त है :

आँखों में क्या-क्या है देखें,
आँखों से आँखों वाले।
इन आँखों ने बना दिए हैं—
लाखों अन्धे मतवाले।।

कविता का नशा प्रेमीजी के युवा-मानस पर ऐसा छा गया था कि आपका मन आगे पढ़ाई में नहीं लगा और आप पूर्णत: कविता को ही समर्पित हो गए। जब मैट्रिक में पढ़ रहे थे तब नन्हीं-सी आयु में ही आपका विवाह कर दिया गया। जब परिवार का भार आपके कन्धों पर आ गया तो एक दिन आपके पिता ने याद दिलाया कि आप विवाहित हैं और आपको अपने तथा अपनी पत्नी के भरण-पोषण का भार स्वयं उठाना चाहिए, तब भी प्रेमीजी के कवि-हृदय पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ और आपने अपने पिताजी से स्पष्ट शब्दों में यह कहकर छुटकारा पा लिया—"मेरा विवाह आपने मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझ पर थोपा है, इसलिए मैं इस उत्तरदायित्व को सँभालने से इन्कार करता हूँ—और रही मेरी बात, सो यदि कविता मुझे जीवित नहीं रख सकेगी, तो

मैं नदी में कूदकर जान दे दूँगा।" एक बार आपकी कविता को सुनकर जब ग्वालियर राज्य के तत्कालीन गृहमन्त्री श्रीमन्त सदाशिव खासे साहब ने गुना में आपको 'तहसीलदार का पद' देने की इच्छा प्रकट की तब आपने स्पष्ट रूप से उनसे इन्कार करते हुए पूर्णतः साहित्यिक जीवन बिताने की घोषणा कर दी थी। परिणामस्वरूप आपने 'त्यागभूमि' (अजमेर) के तत्कालीन सम्पादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नाम एक पत्र लिखकर प्रेमीजी को साहित्यिक जीवन बिताने की सुविधा उपलब्ध कराने का अनुरोध किया। इस पत्र का उपाध्यायजी पर यह प्रभाव हुआ कि उन्होंने 'प्रेमी' जी को अपना निजी सहायक बनाकर अपने पास बुला लिया। आप उनकी सहायता तो क्या करते, उल्टा उन्हें ही प्रेमीजी का ध्यान रखना पड़ता था। फलस्वरूप उपाध्याय जी ने मुसकराकर आपसे कहा—"जीवन में पहली बार एक दीवाने कवि के दर्शन हुए हैं। तुमसे साहित्य-रचना के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य लेना ही मूर्खता है। तुम कल से 'त्यागभूमि' के सम्पादन में सहयोग दो!"
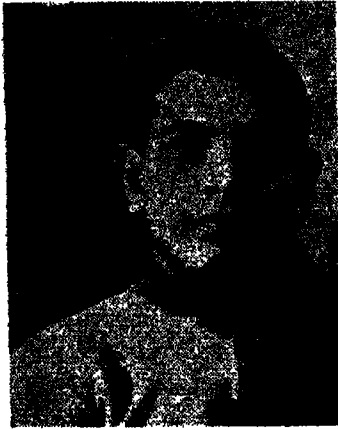
इस प्रकार प्रेमीजी ने कवि होने के साथ-साथ पत्रकारिता में प्रवेश किया और फिर कालान्तर में एक उत्कृष्ट नाटककार के रूप में भी प्रतिष्ठित हुए। इसके उपरान्त आपने कुछ समय तक 'कर्मवीर' (खण्डवा) में भी श्री माखनलाल चतुर्वेदी जी के साथ कार्य किया था। जब हिन्दी भवन लाहौर की ओर से श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के सम्पादन में 'भारती' नामक मासिक पत्रिका के प्रकाशन का निश्चय किया गया तब आप उसका सम्पादन करने के निमित्त 'मिलिन्द' जी के प्रतिनिधि के रूप में लाहौर गए थे। इस प्रकार आपका लाहौर-निवास जहाँ आपके लिए फलदायी सिद्ध हुआ वहाँ आपने लाहौर में रहते हुए अपनी साहित्यिक प्रतिभा को भी उत्कर्ष की ओर बढ़ाया। सन् 1930 में प्रकाशित अपने 'स्वर्ण-विहान' नामक गीति-नाट्य द्वारा आपने नाट्य-लेखन की दिशा में जिस प्रतिभा का परिचय दिया था उसका उदात्त रूप आगे आकर तब और भी विकसित रूप में देखने को मिला जब आपका 'रक्षा-बन्धन' (1934) नाटक हिन्दी भवन लाहौर की ओर से प्रकाशित हुआ। 'स्वर्ण विहान' में आपने जहाँ प्रेम और राष्ट्रीयता की भावनाओं का अंकन किया था वहाँ 'रक्षा-बन्धन' का मूल उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम-एकता को दृढ़तर करना था। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आपकी यह 'स्वर्ण विहान' नाटिका तत्कालीन ब्रिटिश नौकरशाही द्वारा जब्त कर ली गई थी। 'रक्षा-बन्धन' के माध्यम से आपने हिन्दी-नाटक-साहित्य के क्षेत्र में अपना एक सर्वथा विशिष्ट तथा उल्लेखनीय स्थान बना लिया था। प्रेमीजी के नाटकों की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक होने के साथ-साथ देश तथा समाज को एकता के सूत्र में पिरोने वाली होती थी। आपकी ऐसी ही प्रतिभा का परिचय आपके 'पाताल विजय' (1936), 'शिवा-साधना' (1937), 'प्रतिशोध' (1937), 'आहुति' (1940), 'स्वप्न भंग' (1940), 'बन्धन' (1940), 'छाया' (1941), 'मंदिर' (1942), तथा 'विषपान' (1945) आदि नाटकों से मिलता है। आपके 'उद्धार', 'भग्न प्राचीर', 'प्रकाश-स्तम्भ', 'कीर्ति-स्तम्भ', 'विदा', 'साँपों की सृष्टि', 'शपथ', 'संवत्-प्रवर्तन' तथा 'संरक्षक' आदि नाटक भी अपनी सोद्देश्यता के लिए साहित्य-जगत् में एक विशिष्टता रखते हैं। आपने जहाँ पूर्ण नाटक लिखने में अपनी प्रतिभा का प्रोज्वल प्रमाण दिया था वहाँ एकांकी-लेखन में भी आप सर्वथा अद्वितीय एवं अनन्य थे। आपकी ऐसी रचनाएँ 'मंदिर' तथा 'बादलों के पार' नामक पुस्तकों में समाविष्ट हैं। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में आप आकाशवाणी के जालन्धर केन्द्र से सम्बद्ध हो गए थे और इस प्रसंग में आपने 'सोहनी महीवाल', 'सस्सी-पुन्नू', 'मिर्जा साहिबाँ' और 'दुल्ला भट्टी'-जैसे पंजाब के लोक-प्रचलित कथानकों के आधार पर भी रेडियो के लिए रूपक लिखे थे। इनके अतिरिक्त आपके ऐसे रूपकों में 'मीराबाई' तथा 'देवदासी' भी अत्यन्त लोकप्रिय रहे थे।

यद्यपि प्रेमीजी ने एक नाटककार के रूप में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, किन्तु मूलतः आप कवि ही थे। आपने जहाँ अपनी पहली काव्य-कृति 'आँखों में' (1930) के द्वारा साहित्य के मन्दिर में प्रवेश पाया था वहाँ आगे चलकर और

की प्रौढ़ काव्य-कृतियों से हिन्दी-काव्य का शृंगार किया था। आपकी अन्य काव्य-रचनाओं में 'बासुरी' (1932), 'अनन्त के पथ पर' (1932), 'अग्नि-गान' (1940), 'प्रतिमा' (1942), 'रूप दर्शन' (1958) तथा 'वन्दना के बोल' (1959) आदि के नाम विशेष उल्लेख करने योग्य हैं। आपकी इन सभी रचनाओं में आपका कृतित्व पूर्ण प्रखरता से उभरकर हमारे सामने आता है। इनमें जहाँ आपकी पीड़ा के उन्मुक्त दर्शन होते हैं वहाँ आपका विद्रोही रूप भी पूर्ण प्रखरता से प्रकट हुआ है।

आपने लाहौर में रहते हुए 'भारती प्रेस' की संस्थापना करके उसके द्वारा 'वाणी मन्दिर' नामक अपना प्रकाशन-कार्य भी चालू किया था। कुछ समय तक आपने इसी प्रेस से 'सेवा' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित की थी। सन् 1943 में आपने श्री रघुवरदयाल त्रिवेदी के आर्थिक सहयोग से 'सामयिक साहित्य सदन' नामक एक प्रकाशन-संस्था का सूत्रपात भी किया था।

आपका निधन 22 जनवरी सन् 1974 को इन्दौर (मध्यप्रदेश) में हुआ था।

श्री हरिदत्त शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म 2 नवम्बर सन् 1922 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के नजीबाबाद नामक कस्बे में पंडित सुखदेवदत्त शर्मा के यहाँ हुआ था। बी० ए० तथा साहित्य-रत्न की शिक्षा प्राप्त करके सर्वप्रथम आपने हिन्दी तथा अँग्रेजी के पत्रों को संवाद-प्रेषण का कार्य किया था और फिर कुछ दिन के लिए सरकारी नौकरी में चले गए थे। इसके उपरान्त सन् 1945 से सन् 1947 तक आपने दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक विश्वमित्र', 'विजय' तथा 'वीर अर्जुन' आदि कई पत्रों में कार्य किया था। आपने स्वतन्त्र रूप से श्री बजमोहन द्वारा सम्पादित 'प्रजा' तथा 'क्रान्ति' आदि पत्रों के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। जब आप दिल्ली में आए थे तो कुछ दिन के लिए आप श्री फतहचन्द शर्मा 'आराधक' के पास पहाड़ी धीरज पर ठहरे थे। श्री आराधकजी उन दिनों 'गोपाल' साप्ताहिक पत्र का सम्पादन किया करते थे। श्री महावीर अधिकारी भी तब आराधकजी के पास ही रहा करते थे। इस प्रकार बिजनौर जिले की यह 'त्रिमूर्ति' हिन्दी-पत्रकारिता को विकसित करने का उल्लेखनीय उपक्रम कर रही थी। आप जून सन् 1948 में 'नवभारत टाइम्स' से इस प्रकार जुड़े कि अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उसी में रहे। आप अनेक वर्ष से उसके 'समाचार सम्पादक' थे।

एक उत्कृष्ट पत्रकार होने के साथ-साथ शर्माजी ने राजनीति तथा समाज-सेवा के क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। अनेक वर्ष तक आप जहाँ दिल्ली नगर निगम के लोकप्रिय सदस्य रहे थे, वहाँ शर्माजी ने श्री राममनोहर लोहिया तथा डॉ० रघुवीर के अँग्रेजी-विरोधी कार्यक्रमों में भी खुलकर सहयोग दिया था। शर्माजी ने दिल्ली में रहते हुए अनेक अपहृत युवतियों के उद्धार का अभियान छेड़ने के साथ किरायेदारों और मकान-मालिकों के बीच भी सुदृढ़-सेतु का कार्य किया था। आपने जहाँ कई बार 'सोवियत संघ' की यात्रा की थी वहाँ आप पोलैंड, पूर्वी जर्मनी तथा एशिया के कई पूर्वी देशों की यात्रा पर भी गए थे। आपने अपनी लेखनी के द्वारा साहित्य की अभिवृद्धि में जो योगदान दिया वह आपकी प्रतिभा का द्योतक है। आपकी उल्लेखनीय कृतियों में 'लेनिन—भारत के सन्दर्भ में', 'सूर्योदय के देश में', 'इन्दिरा गान्धी—विश्व के सन्दर्भ में' तथा 'नेहरू और नई पीढ़ी' हैं। आपने अपने को ईश्वर का अवतार बताने वाले अनेक पाखण्डी व्यक्तियों के विरुद्ध भी प्रबल आन्दोलन चलाया था। आपको जहाँ अपनी 'लेनिन—भारत के सन्दर्भ में' नामक कृति पर 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था वहाँ 'इन्दिरा गान्धी—विश्व के सन्दर्भ में' नामक कृति भी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई थी। उक्त पुस्तकों के अतिरिक्त

आपकी 'यह बस्ती : यह लोग' (उपन्यास), 'राष्ट्रीय अनुशासन', 'भारत का भविष्य', 'अनुशासन और नैतिकता', 'उत्तर प्रदेश', 'नेपाल देश और उसके निवासी', 'महात्मा गान्धी और राष्ट्रीय एकता', 'संस्कृति और समाजवाद' तथा 'धरती के तारे' नामक रचनाएँ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आपका निधन 10 जून सन् 1978 को हुआ था।

डॉक्टर हरिदत्त शास्त्री

डॉक्टर हरिदत्त शास्त्री का जन्म 1 सितम्बर सन् 1905 को आगरा में हुआ था। आप सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पंडित भीमसेन शर्मा के सुपुत्र और गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) के स्नातक थे। आप अनेक वर्ष तक इस संस्था के मंत्री, मुख्याध्यापक, आचार्य और कुलपति भी रहे थे। बलवन्त राजपूत कालेज, आगरा तथा डी० ए० वी० कालेज, कानपुर में अनेक वर्ष तक संस्कृत-विभागाध्यक्ष रहने के उपरान्त सेवा-निवृत्त होकर आप साहित्य तथा शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों में ही संलग्न रहे थे। जीवन के अन्तिम दिनों आपको गलित कुष्ठ हो गया था।

आप जहाँ संस्कृत साहित्य तथा वैदिक वाङ्मय के उद्भट विद्वान् थे वहाँ हिन्दी-लेखन की दिशा में भी आपकी देन अनन्य है। अनेक वर्ष तक आपने जहाँ गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के मुखपत्र 'भारतोदय' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया वहाँ अनेक संस्कृत-ग्रन्थों की हिन्दी-टीकाएँ भी लिखी थीं। यह 'भारतोदय' वही ऐतिहासिक पत्र है, जिसका सम्पादन किसी समय प्रख्यात समालोचक पंडित पद्मसिंह शर्मा साहित्याचार्य ने किया था और जिसमें भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का पहला लेख सन् 1911 में प्रकाशित हुआ था।

जिन दिनों आप डी० ए० वी० हाई स्कूल, आगरा में अध्यापक थे तब सन् 1935-36 में आपने संस्कृत का एक मासिक पत्र 'कालिन्दी' भी अनेक वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादित किया था। आप संस्कृत के आशु कवि एवं प्रखर वक्ता होते हुए हिन्दी के भी निष्णात विद्वान् थे। उन्हीं दिनों कुछ समय तक आपने आर्यसमाज हींग मंडी, आगरा की ओर से प्रकाशित होने वाले 'दिवाकर' नामक हिन्दी साप्ताहिक का सम्पादन भी किया था। आपकी हिन्दी रचनाओं में 'भारतीय साहित्य और संस्कृति', 'हिन्दी के प्रमुख कलाकार', 'आर्य पर्व संकीर्तन', 'महाकवि अश्वघोष और उनका काव्य' तथा 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा' आदि उल्लेखनीय हैं। आपको परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके उपाधियाँ प्राप्त करने का बहुत शौक था। हिन्दी और संस्कृत की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी ऐसी कदाचित् कोई ही परीक्षा होगी जो आपने उत्तीर्ण नहीं की थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय की संस्कृत के 14 विषयों में 'तीर्थ' परीक्षा उत्तीर्ण करने के अतिरिक्त आपने आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त की थी।

आपका निधन 25 मई सन् 1980 को कानपुर में अपनी पुत्री के निवास-स्थान पर हुआ था।

श्री हरिदास मिश्र 'द्विज माथुर'

श्री 'द्विज माथुर' जी का जन्म सन् 1887 में बिहार के मुंगेर जिले के मलयपुर नामक ग्राम में श्री देवीप्रसाद चतुर्वेदी के घर में हुआ था। आपके पूर्वज लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मैनपुरी से जाकर वहाँ बस गए थे। आपने अपने स्वाध्याय के बल पर ही अपनी प्रतिभा को विकसित किया था। मिडिल तक विधिवत् अध्ययन करने के उपरान्त आपने घर पर ही विभिन्न भाषाओं और शास्त्रों का ज्ञान अर्जित किया था। अँग्रेजी, उर्दू, बंगला, संस्कृत और हिन्दी पर आपका अच्छा अधिकार था। आप 'ब्रजभाषा' में 'द्विज-

माथुर' नाम से कविता किया करते थे। आपके समकालीन कवि श्री लच्छीराम, नवनीत नवराज तथा दामोदरजी आदि आपकी रचनाओं पर मुग्ध रहते थे।

यह एक विचित्र संयोग की बात है कि आपकी रचनाओं का संग्रह दुर्भाग्यवश कहीं गायब हो गया और उससे आपको इतना आघात पहुँचा कि आप विक्षिप्त-से हो गए और आपको काव्य-रचना से ही सर्वथा विरक्ति हो गई। आपको अनेक रचनाएँ कण्ठस्थ थीं। चोरी के डर से आपने उन्हें भी लिपिबद्ध नहीं किया था। परिणामस्वरूप आपकी सब रचनाएँ आपके साथ चली गईं। इससे हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी क्षति हुई है। आपकी रचनाएँ महाकवि देव तथा पद्माकर की टक्कर की होती थीं।

आपने सन् 1905 में जो स्वदेशी का व्रत लिया था उसे आप यावज्जीवन निबाहते रहे। कांग्रेसी कर्मी होते हुए भी आपने चुनाव लड़ने के लिए कभी टिकट प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। सन् 1922 की गया-कांग्रेस के अधिवेशन के समय आपको जी० ओ० सी० बनाया गया था। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद आपके अभिन्न साथियों में थे।

आपका निधन 75 वर्ष पूर्ण करने पर शिवरात्रि के दिन सन् 1962 में हुआ था।

श्री हरिदास वैद्य

श्री वैद्यजी का जन्म सन् 1873 में उत्तर प्रदेश के मथुरा नगर में हुआ था। आपके पिता लाला हीरालालजी खण्डेलवाल वैश्य थे। आपका घराना आगरा, मथुरा, भरतपुर तथा हाथरस आदि नगरों में 'लशकरिया' नाम से अब भी प्रसिद्ध है। आपका पूर्व नाम 'कृष्णलाल' था और किन विचित्र परिस्थितियों में आप 'कृष्णलाल' से 'हरिदास' बने, इसकी कथा भी बड़ी रोचक है। आपकी शिक्षा पहले देसी ढंग की पाठशाला में ही हुई थी। बाद में सन् 1881 में आप मथुरा के हाईस्कूल में प्रविष्ट कर दिए गए, जहाँ से आपने एण्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण की और वकालत पढ़ने के विचार से आप सैण्ट जान्स कालेज, आगरा में प्रविष्ट हो गए। बी० ए० की फाइनल परीक्षा देने से पूर्व ही आपको घरेलू परिस्थितियों के कारण कालेज छोड़ देना पड़ा। क्योंकि आपके परिवार के लोग सरकारी सेना को रसद आदि सप्लाई किया करते थे और आपके पिता लाला हीरालाल ने सन् 1880 के अफगान-युद्ध में इस व्यवसाय में लाखों रुपए अर्जित किए थे अतः आपको भी फौज में कोई उपयुक्त कार्य दिलाने की बात आपके पिताजी के मन में आई। फलस्वरूप युवक कृष्णलाल को फौज के कमाण्डर ने अपनी सेना में 'खजाञ्ची' नियुक्त कर लिया। आपने बड़ी तत्परता एवं योग्यता से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया और आप भारतीय सेना के साथ क्वेटा चले गए।

थोड़े ही दिनों में आपने अपनी कार्य-कुशलता से फौज के कर्मचारियों में इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि आपके साथी तथा फौज के अफसर भी ब्याज पर आपसे निजी रूप में पैसा उधार लेने लगे। कई साल तक आपका यह लेन-देन का कार्य खूब चला। ज्यों-ज्यों लाभ होने लगा आप रुपया खूब बाँटने लगे। यहाँ तक कि आपने अपने रुपए के साथ सरकारी खजाने का रुपया भी इस कारोबार में लगा दिया था। इस बीच सहसा हुक्म हुआ कि यह फौज विलायत चली जाए। इस आज्ञा से आपके ऊपर वज्रपात-जैसा प्रभाव हुआ। जाते समय हिसाब कैसे समझाया जा सकेगा, यह सोचकर आपके हाथों के तोते उड़ गए। आपने सब लोगों पर तकाजे भी किए, किन्तु उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। विवश होकर आपने अपने पिताजी को उतना रुपया भेजने के लिए तार दे दिया। किन्तु किन्हीं षड्यन्त्रकारी व्यक्तियों के बहकावे में आकर उन्होंने रुपया देने से साफ इन्कार कर दिया। इसका दुष्प्रभाव

आपके मन पर क्या पड़ा होगा, इसकी आप कल्पना कर सकते हैं। अन्ततः आपने आत्म-हत्या करने का निश्चय किया और सारी हुण्डियों पर भुगतान देने का आर्डर चीफ
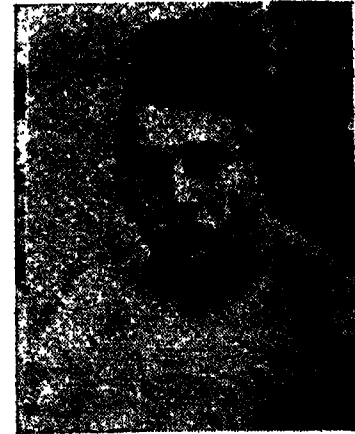
अफसरों के नाम करके अपने हस्ताक्षर कर दिए और उन्हें अपने सारे प्रमाण पत्रों तथा सनदों के साथ एक बक्स में रख दिया। यह सब कर लेने के उपरान्त आपके मन में अफगानिस्तान चले जाने का विचार आया और आप चुपचाप उस दिशा में चल दिए। फिर सहसा आपने सोचा कि आत्महत्या करने से तो अच्छा 'अज्ञातवास' ही है। इस प्रकार यदि सम्भव हुआ तो छिपे-छिपे परिश्रम द्वारा रुपया पैदा करके इस कलंक से मुक्ति मिल सकेगी। मर जाने पर प्रत्यक्ष अपमान तो न होगा, किन्तु बाद में बदनामी की छाप बराबर बनी रहेगी। यह सोचकर आप पैदल ही रेल-मार्ग से भारत की ओर चल पड़े। आप रेल की पटरी पर एक पुल को पार कर रहे थे कि अचानक सामने से रेल आ गई। फलतः आप पुल की पटरी के नीचे एक गड्ढे में कूद पड़े और रेल आपके सिर के ऊपर होकर निकल गई।

इस प्रकार की अनेक आपत्तियों का सामना करते हुए आप सिन्ध के भयंकर रेगिस्तान को पार करके पहले मीरपुर आए और फिर मीरपुर से जैसलमेर के रास्ते से पोहकरण पहुँचे। जैसलमेर में पहुँचकर आपने अपनी वेश-भूषा साधुओं-जैसी कर ली और आप 'कृष्णलाल' से 'हरिदास' हो गए। पोहकरण में रहते समय आपने एक अनुभवी वैद्य के पास रहकर वैद्यक भी सीख ली थी। इस वृत्ति से आपका खूब नाम हुआ। जब आप वहाँ से जयपुर आए तो वहाँ का सारा जौहरी-समुदाय आपकी चिकित्सा का कायल हो गया। 5 वर्ष तक जयपुर में रहने के उपरान्त जब आप वहाँ से उकता गए तो बम्बई जाकर 'बर्मन समाचार' नामक एक पत्र के सम्पादक हो गए। वहाँ पर रहते हुए आपका कच्चा चिट्ठा किसी तरह आपके पत्र के मालिक को पता लग गया। जब उसने आपसे इसका अनुचित लाभ उठाना चाहा तो आप वहाँ से त्यागपत्र देकर कलकत्ता चले गए। कलकत्ता जाकर पहले तो आपने वहाँ पढ़ाने का कार्य किया, किन्तु बाद में जब अचानक आपका परिचय 'भारत मित्र' के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त से हुआ तो उनके परामर्श से आपने 'हरिदास एण्ड कम्पनी' की स्थापना करके उसकी ओर से हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य करने लगे।

कलकत्ता में रहते हुए आपने जहाँ 'स्वास्थ्य-रक्षा', 'चिकित्सा चन्द्रोदय', 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'नीति शतक', 'वैराग्य शतक', 'शृंगार शतक' तथा 'गुलिस्ताँ' आदि पुस्तकों की रचना करके उन्हें प्रकाशित किया वहाँ आयुर्वेद के क्षेत्र में भी अपनी उक्त दोनों पुस्तकों के कारण बहुत लोकप्रियता अर्जित की। यहाँ तक कि आपकी 'स्वास्थ्य-रक्षा' नामक पुस्तक तो अनेक वर्ष तक निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम में भी निर्धारित रही थी। आपने जहाँ उक्त पुस्तकों की रचना के द्वारा साहित्य की समृद्धि की वहाँ आपकी कम्पनी से हिन्दी के और भी अनेक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हुए। आपके प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'अँग्रेजी हिन्दी-शिक्षक' तथा 'बंगला हिन्दी-शिक्षक' पुस्तकों के माध्यम से जहाँ अनेक व्यक्तियों ने अँग्रेजी तथा बंगला सीखी थी वहाँ 'चिकित्सा चन्द्रोदय' ने देश के अनेक नागरिकों को 'आयुर्वेद शास्त्र' का क्रियात्मक ज्ञान दिया था। सन् 1919 में जब आपका कारोबार बहुत धड़ल्ले से चल रहा था तब एक स्वजातीय तथा साहित्य-सेवी बन्धु आपका सर्वनाश करने पर तुल गए और आपके कारोबार को चौपट करने की धमकी देने लगे। यही नहीं, उन्होंने आपकी वास्तविक जीवनी भी 'हिन्दी बंगवासी' में छपवा दी। जब भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड चैम्सफोर्ड के पास आपका कच्चा-चिट्ठा गया तो उन्होंने इसकी छानबीन की। जब बंगाल के तत्कालीन गवर्नर के निजी सचिव मिस्टर गोरले को यह काम सौंपा गया तो उन्होंने लन्दन के युद्ध-विभाग के सेक्रेटरी को लिखा। वहाँ से जो उत्तर आया उसका सार इस प्रकार है—"मैंने कृष्णलाल की कभी कोई बदनीयती नहीं देखी। उनके हाथों से जो रुपया नुकसान हुआ, उसे मैंने अपने पास से भर दिया है।" फलस्वरूप आपकी वह बला टल गई। इस प्रकार अज्ञातवास बीत जाने पर आप नवम्बर सन् 1920 में मथुरा आए थे। आप 25 वर्ष तक निरन्तर अपनी मातृभूमि के दर्शनों से वंचित रहे थे।

आपने अपने ही अध्यवसाय से हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत, फारसी और उर्दू सीखकर साहित्य के क्षेत्र में जो कार्य किया वह अभूतपूर्व कहा जा सकता है। आपकी रचनाओं की प्रशंसा देश के सभी उच्चकोटि के विद्वानों तथा पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्त कण्ठ से की थी।

आपने अपनी प्रतिभा से भर्तृहरि के तीनों शतकों का जो हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था उससे भी आपको बड़ी ख्याति मिली थी और साहित्य का अभाव दूर हुआ था।

आपका निधन 13 मई सन् 1948 को हुआ था।

श्री हरिनारायणदत्त बरुवा

श्री बरुवाजी का जन्म असम प्रदेश के कामरूप जनपद के कालाकुछि नामक स्थान में सन् 1886 में हुआ था। आप हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे और असम प्रदेश में हिन्दी को प्रचारित एवं प्रसारित करने की दृष्टि से आपने असमिया भाषा के प्रख्यात कवि शंकरदेव की प्रख्यात कृति 'बरगीत' का देवनागरी लिप्यन्तर तथा अनुवाद प्रकाशित किया था। इस कृति में असमिया लिपि के साथ-साथ मूल पाठ को देवनागरी लिपि में भी प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी में 'बरगीत' का यह प्रकाशन सबसे पहला ही है।

उक्त रचना की भाँति ही शंकरदेव की दूसरी कृति 'चित्र भागवत' को भी चित्रों के साथ देवनागरी लिपि में प्रकाशित करके श्री बरुवा ने अभिनन्दनीय कार्य किया है। यह ग्रन्थ हिन्दी के पाठकों को जहाँ असम की चित्र-कला से परिचित कराता है वहाँ वे महाकवि शंकरदेव की काव्य-प्रतिभा से अवगत हो जाते हैं। हिन्दी में यह प्रकाशन अपनी तरह का अद्वितीय एवं अनुपम है।

आपका निधन सन् 1959 में हुआ था।

श्री हरिप्रसाद तिवारी

श्री तिवारीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के फतहपुर जनपद के नौगाँव नामक स्थान में सन् 1911 में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई थी और इसके बाद आपने आगरा कालेज से बी० ए० तथा वहाँ की 'नागरी प्रचारिणी सभा' के 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' से 'साहित्य रत्न' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। जिन दिनों आप आगरा में पढ़ते थे तब फीजी के भूतपूर्व राजदूत कैप्टन भगवानसिंह आपके सहपाठी थे।

आप कुछ दिन तक गवर्नमेण्ट हाईस्कूल, बुलन्दशहर में अध्यापन करने के उपरान्त 'डी० ए० वी० इण्टर कालेज' में हिन्दी अध्यापक नियुक्त हो गए थे। आपकी हिन्दी-निष्ठा का यह ज्वलन्त प्रमाण है कि आपने जहाँ बुलन्दशहर में अनेक हिन्दी-कवि-सम्मेलन आयोजित किए थे वहाँ 'हिन्दी साहित्य परिषद्' की स्थापना में भी आपका बहुत बड़ा योगदान रहा था। आज यह परिषद् अपने विशाल रूप में बुलन्दशहर की जनता की उल्लेखनीय सेवा कर रही है। जिन दिनों इस परिषद् के भवन के लिए भूमि प्राप्त की गई थी तब सौभाग्य से बुलन्दशहर के जिलाधीश आपके सहपाठी कैप्टन भगवानसिंह ही थे। आपके प्रयत्न से ही बुलन्दशहर में प्रयाग महिला विद्यापीठ की परीक्षाओं का केन्द्र भी स्थापित हुआ था।

आपके प्रयत्न से 19 फरवरी सन् 1946 को प्रदर्शनी के अवसर पर बुलन्दशहर में जो हिन्दी-कवि-सम्मेलन हुआ था उसमें सम्मिलित सभी कवियों की रचनाओं का सचित्र संकलन आपने सम्पादित करके 'सौरभ' नाम से प्रकाशित कराया था। इस संकलन में सर्वश्री सोहनलाल द्विवेदी, जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन', लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', शारदाप्रसाद 'भुसुण्डि', ओंकारसिंह 'निर्भय', शिशुपालसिंह 'शिशु', चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा', रमानाथ अवस्थी, सुमंगला-कुमारी पाण्डेय 'प्रभा', चन्द्रिकासिंह 'करुणेश', टीकाराम 'सरोज', राजरानी चौहान, जगदीशशरण श्रीवास्तव, डॉ० जगदीश मिश्र 'मनोज', विद्या भार्गव, कुसुम कुमारी सिनहा, हरनामचन्द्र सेठ, हरवंशलाल 'हरि', राधाकृष्ण वैद्य, विनय-कुमारी गुप्त विदुषी तथा मंगतराय जैन 'साधु' आदि की रचनाएँ समाविष्ट हैं।

आपका निधन सन् 1961 में हुआ था।

श्री हरिप्रसाद शर्मा 'अविकसित'

श्री 'अविकसित' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले

के तलहेड़ी बुजुर्ग नामक ग्राम में 7 अप्रैल सन् 1907 को हुआ था। आप सहारनपुर आकर वहाँ के जे० वी० जैन इण्टर कालेज में अध्यापन-कार्य करने लगे थे।

आपका सहारनपुर जनपद के कवियों में अच्छा स्थान था और वहाँ की संस्था 'हिन्दी मित्र मंडल' की स्थापना में आपका उल्लेखनीय योगदान रहा था। आपकी 'सौरभ' तथा 'मंजरी' नामक काव्य-पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। आपने 'लाला जम्बूप्रसाद जैन' नामक एक जीवन-चरित्र की पुस्तक भी लिखी थी। व्यवसाय से अध्यापक होने के कारण आपकी सहायक पुस्तकें बहुत प्रकाशित हुई थीं।

आपका निधन 8 दिसम्बर सन् 1973 को हुआ था।

श्री हरिप्रसाद 'हरि'

श्री 'हरि' का जन्म सन् 1914 में उत्तर प्रदेश के झाँसी जनपद के पाली नामक स्थान में हुआ था। हरिजी में शैशवावस्था से ही कवित्व की ऐसी प्रतिभा थी, जिसने बहुत थोड़े समय में आपकी लेखनी से कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ करा ली थीं। यद्यपि आपकी शिक्षा-दीक्षा बहुत अधिक नहीं हुई थी, फिर भी अपनी जन्म-जात प्रतिभा से आपने हिन्दी कविता में इतनी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि बहुत थोड़े समय में अपनी कई उत्कृष्ट कृतियों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया था।

आपकी सबसे पहली काव्य-कृति 'वियोगिनी' है, जिसमें आपके द्वारा लिखित बुन्देली के गीत संकलित हैं और इसके उपरान्त आपकी 'राजुल' (खण्डकाव्य), 'महावीर' (महाकाव्य), 'स्वप्न' (खण्डकाव्य), 'देवगढ़', 'जैन ज्योति', 'बाहुबलि झनकार', 'वरश व्रत नाटक' आदि काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'रत्ना' और 'राजुल'-जैसे चरित्रों को आधार बनाकर काव्यों की सर्जना करना आप-जैसे प्रतिभशाली सिद्ध कवि का ही काम था।

आपने जहाँ अनेक काव्यों की रचना की थी वहाँ गीत लिखने में भी अत्यन्त पटु थे। लोक-जीवन की सरल-सरस माधुरी आपमें उन्मुक्तता से दृष्टिगत होती है। आपने अपने गीत-काव्य के सम्बन्ध में यह सही ही लिखा है :

कोई मुझे नास्तिक कहता, दे दे अपने ताने,
कोई कहता कण्ठ नहीं, पर लिख तो लेता गाने।
भेद हमारा क्या समझेगा, रागों का सौदागर ?
गीतों के मिस आज प्यार की गंगा चला बहाने।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में—"जहाँ हरिजी के काव्य में चरित्र-रचना में एक अकाट्य निष्ठा के साथ एक अकल्पनीय मृदुलता है, उसी प्रकार भाषा में भी समुचित सौष्ठव है। लगता है—छोटी-सी परिधि में बृहत् उपादान उपस्थित किये हैं, जो चावल के दाने पर गीता के श्लोक उकेर देने की भाँति कष्टसाध्य और सूक्ष्म है।"

यह दुर्भाग्य की बात है कि आपका देहावसान असमय में ही हो गया। आपके निधन के उपरान्त आपके सुपुत्र विजय ने आपकी कृतियों पर शोध-प्रबन्ध लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। आपके कृतित्व की सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, वृन्दावनलाल वर्मा और यशपाल जैन प्रभृति साहित्यकारों ने जहाँ मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी वहाँ आपके प्रबन्ध-काव्यों से हिन्दी साहित्य के काव्य पक्ष को नई समृद्धि भी प्राप्त हुई थी।

आपका निधन 14 सितम्बर सन् 1962 को हुआ था। ललितपुर की साहित्य-प्रेमी जनता प्रतिवर्ष 'हिन्दी दिवस' को आपके 'स्मृति दिवस' के रूप में मनाती है।

मुन्शी हरिबख्श

मुन्शीजी का जन्म राजस्थान के जयपुर नामक नगर में सन् 1833 में हुआ था। आप खेतड़ी (शेखावाटी) के राजा फतहसिंह के विश्वास-पात्र मन्त्री और उनके उत्तराधिकारी श्री अजीतसिंह के समय के प्रधान कार्यकर्ता थे।

आप विचारों से वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। आपने अपने धन का सदुपयोग तीर्थ-स्थानों पर देवालय तथा घाट आदि बनाने के कार्य में किया था। 'भक्तमाल' के आधार पर मुन्शीजी का लिखा हुआ एक 'हरि भक्त प्रकाश' नामक ग्रन्थ मिलता है, जो लीथो प्रेस पर छपा था।

आपका निधन सन् 1892 में हुआ था।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

श्री उपाध्यायजी का जन्म मध्यप्रदेश के ग्वालियर राज्य के भौंरासा नामक ग्राम में 9 मार्च सन् 1893 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा भौंरासा में ही हुई थी। आपके पिता श्री सिद्धनाथ उपाध्याय ग्वालियर रियासत में पटवारी थे और चाचा श्री बैजनाथ उपाध्याय बरमंडल में तहसीलदार थे। 12 वर्ष की आयु में आप आगे की पढ़ाई जारी रखने की दृष्टि से उनके पास चले गए थे। आपके चाचा के पास लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का 'केसरी', परांजपे का 'काक', मोपकटर का 'भारत' तथा फड़के का 'हिन्दू पंच' आदि मराठी पत्रों के अतिरिक्त हिन्दी की 'सरस्वती' मासिक पत्रिका भी आती थी। इन पत्र-पत्रिकाओं के स्वाध्याय के संस्कारों की उपाध्यायजी के भावी जीवन के निर्माण में प्रमुख भूमिका रही थी। बरमंडल के बाद उपाध्यायजी को आगे की पढ़ाई के लिए काशी भेज दिया गया और वहाँ पर आपने कमच्छा-स्थित हिन्दू कालेज में प्रवेश लिया। उन दिनों यह कालेज श्रीमती एनी बेसेण्ट की 'थियोसोफिकल सोसाइटी' के प्रबन्ध में संचालित होता था।
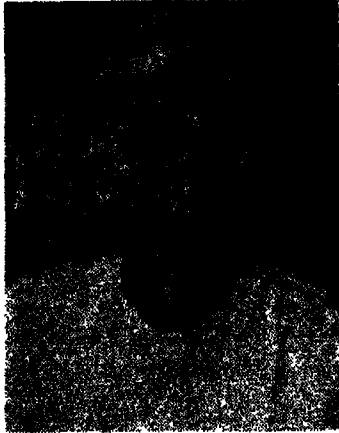
आपके चाचा श्री बैजनाथ उपाध्याय ने काशी से 'औदुम्बर' नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित करने की योजना बनाई और उसके सम्पादन का पूर्ण दायित्व उपाध्यायजी को ही सौंपा गया। इस प्रकार अपने छात्र-जीवन में ही 'औदुम्बर' के सम्पादन के माध्यम से उपाध्यायजी पत्रकारिता के क्षेत्र में अवतरित हुए थे। आपने लगभग 3 वर्ष तक 'औदुम्बर' का सम्पादन किया था। इसके उपरान्त उपाध्यायजी का विचार पूना जाकर वहाँ से 3 वर्ष में बी०ए० करके लोकमान्य तिलक के 'केसरी'-जैसा पत्र हिन्दी में निकालने का था, किन्तु इस बीच आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का निमन्त्रण पाकर आप उनके सहायक के रूप में 'सरस्वती' में चले गए। उस समय तक आपने केवल मैट्रिक ही किया था। सन् 1916 से सन् 1919 तक आप 'सरस्वती' में कार्य करने के उपरान्त इन्दौर चले गए और आपने वहाँ से 'मालव मयूर' (1922) नामक मासिक पत्र निकाला; किन्तु इन्दौर राज्य के दीवान ने इसकी अनुमति नहीं दी। फलस्वरूप आप श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के पास कानपुर चले गए और वहाँ पर उनके 'प्रताप' तथा 'प्रभा' के सम्पादन में सहयोग देने लगे। उन दिनों श्री माखनलाल चतुर्वेदी भी वहाँ पर रहते थे और 'प्रभा' का सम्पादन करते थे। आप कुछ दिन बाद फिर इन्दौर चले गए और वहाँ के एक 'हिन्दी विद्यालय' में अध्यापक हो गए।

इसके उपरान्त आपके जीवन में एक ऐसा मोड़ आया कि जिसने आपकी सारी जीवन-धारा ही बदल दी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा श्री बैजनाथ महोदय आदि महानुभावों के प्रयत्न से आप महात्मा गान्धी के पत्र 'हिन्दी नवजीवन' में कार्य करने के लिए अहमदाबाद बुला लिए गए। सम्पादक के रूप में यद्यपि पत्र पर गान्धीजी का ही नाम छपता था, किन्तु काम सब उपाध्यायजी को ही करना पड़ता था। 'नवजीवन' के इस कार्य-काल में आपका सम्पर्क देश के चोटी के नेताओं से हो गया था। सन् 1923 में उपाध्यायजी

ने महात्माजी के साथ उनके निजी सचिव के रूप में सारे भारत की यात्रा की थी। अहमदाबाद में रहते हुए आपने भिक्षु अखण्डानन्द के 'सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय' नामक गुजराती की प्रकाशन-संस्था को देखकर हिन्दी में भी ऐसी ही संस्था स्थापित करने का जो संकल्प कर लिया था उसे अजमेर में 'सस्ता साहित्य मण्डल' नामक प्रकाशन-संस्था का सूत्रपात करके पूरा किया। जहाँ आपने इस संस्था के माध्यम से उत्कृष्टतम हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन किया वहाँ मण्डल की ओर से 'त्यागभूमि' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया गया। 'त्यागभूमि' के सम्पादक के रूप में उपाध्यायजी ने जहाँ देश में राष्ट्र-निर्माण की भावनाएँ उद्बुद्ध कीं वहाँ राजनीतिक चेतना जागृत करने की दिशा में भी 'त्यागभूमि' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। जिन दिनों आप 'त्यागभूमि' का सम्पादन किया करते थे तब आपके सहयोगियों में श्री क्षेमानन्द राहत के अतिरिक्त सर्वश्री रामनाथ 'सुमन', मुकुटबिहारी वर्मा, हरिकृष्ण 'प्रेमी', कृष्णचन्द्र विद्यालंकार तथा चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय आदि उल्लेखनीय महानुभाव थे।

अजमेर में आने के उपरान्त उपाध्यायजी का कार्य-क्षेत्र साहित्य से हटकर राजनीतिक अधिक हो गया और आपने जहाँ बिजोलिया के दूसरे 'किसान-सत्याग्रह' का नेतृत्व किया वहाँ 'गान्धी आश्रम हटूंडी' और 'गान्धी सेवा संघ'-जैसी लोकोपयोगी संस्थाओं का निर्माण भी किया था। इसके अतिरिक्त आप 'नमक सत्याग्रह' के समय राजस्थान के प्रथम डिक्टेटर भी रहे थे। इसके बाद आपने राजनीतिक क्षेत्र के सभी मोर्चों पर जमकर कार्य किया और अनेक बार जेल भी गए। अपने जेल-निवास के दिनों में आपने साहित्य-रचना का कार्य उसी तेजी से किया जिस लगन से पहले किया करते थे। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब देश में राष्ट्रीय सरकारें बनीं तब आप 'अजमेर राज्य' के मुख्यमंत्री रहे थे। बाद में अजमेर के राजस्थान में विलयन के उपरान्त भी आप राजस्थान के 'मन्त्रिमण्डल' के वरिष्ठ सदस्य रहे थे। आपने लगभग 10 वर्ष तक 'मन्त्रि-मण्डल' में रहकर राजस्थान प्रान्त की सेवा की थी।

राजनीति में भाग लेते हुए भी आपने अपनी साहित्य-साधना को सर्वथा अक्षुण्ण रखा था। एक ओर 'सस्ता साहित्य मण्डल' के मन्त्री के रूप में आपने जहाँ उसको अजमेर से दिल्ली-स्थानान्तरण पर पर्याप्त रूप से समृद्ध तथा विकसित किया था वहाँ सन् 1940 में उसकी ओर से 'जीवन-साहित्य' नामक पत्र का प्रकाशन करके अनेक वर्ष तक उसका सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। आप जहाँ कई वर्ष तक 'राजस्थान खादी ग्रामोद्योग बोर्ड' के अध्यक्ष रहे थे वहाँ 5 वर्ष तक 'राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)' के अध्यक्ष भी रहे थे। 'राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर' के कुलपति रहने के साथ-साथ आप 'महिला शिक्षा सदन हटूंडी' के भी प्रमुख सूत्रधार थे। आपकी साहित्य तथा राष्ट्र-सम्बन्धी सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको जहाँ 'राजस्थान साहित्य अकादमी' उदयपुर ने 'मनीषी' की उपाधि से सम्मानित किया था, वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने भी आपको 'साहित्य वाचस्पति' के सम्मान से विभूषित किया था। आपको 'राजस्थान संस्कृत संसद् जयपुर' की ओर से एक भव्य अभिनन्दन-ग्रन्थ भी समर्पित किया गया था।

एक उत्कृष्टतम गान्धीवादी विचारक के रूप में आपकी सेवाएँ साहित्य तथा राजनीति दोनों क्षेत्रों में समान रूप से समादृत रही हैं। आपने जहाँ अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन किया था वहाँ आपकी 'बापू के आश्रम में', 'स्वतन्त्रता की ओर', 'मनन', 'स्वगत', 'बुदबुद', 'स्वामीजी का बलिदान', 'पुण्य स्मरण', 'गान्धी युग के संस्मरण', 'साधना के पथ पर', 'श्रेयार्थी जमनालालजी', 'भागवत धर्म', 'विश्व की विभूतियाँ', 'हिंसा का मुकाबला कैसे करें' तथा 'हमारा कर्त्तव्य और युगधर्म' आदि अनेक मौलिक ग्रन्थों की सर्जना की थी वहाँ अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद भी किया था। आपके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में महात्मा गान्धी की 'आत्मकथा', नेहरूजी की 'मेरी कहानी', पट्टाभि सीतारामैया का 'कांग्रेस का इतिहास' आदि प्रमुख हैं।

आपने 'त्यागभूमि' तथा 'जीवन साहित्य' नामक पत्रों के माध्यम से हिन्दी में राष्ट्रीय जागरण का जो अभियान रचाया था, उसकी सम्पूर्ति में आप जीवन-भर लगे रहे। गान्धीवादी विचार-धारा के लेखक के रूप में आपने हिन्दी-साहित्य को अपनी लेखनी से जो नया मोड़ दिया था उसका ज्वलन्त साक्ष्य आपकी सभी कृतियों में देखने को मिलता है। आप जहाँ उच्चकोटि के विचारक एवं चिन्तक थे वहाँ सहृदय कवि के रूप में भी आपने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था। आपकी 'दूर्वादल' नामक कृति इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इसके अतिरिक्त आपने गीता का समश्लोकी पद्यानुवाद करके भी अपने कवित्व की पूर्ण प्रस्थापना की थी।

आपका निधन 25 अगस्त सन् 1972 को हृदयाघात के कारण हुआ था।

डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर

डॉ० दिवेकरजी का जन्म 5 नवम्बर सन् 1884 को मध्य-प्रदेश के ग्वालियर नगर में हुआ था। आगरा से मैट्रिक की परीक्षा देने के उपरान्त बी० ए० की परीक्षा देने के लिए आप इलाहाबाद गए थे। बी० ए० करने के उपरान्त आप ग्वालियर के एक हाईस्कूल में शिक्षक हो गए। कुछ दिन तक आपने वहाँ के एक कालेज में भी गणित के अध्यापक का कार्य किया था। सन् 1909 में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आयोजित 'सशस्त्र क्रान्ति' के आन्दोलन में भाग लेने के कारण जो 36 व्यक्ति ग्वालियर में पकड़े गए थे उनमें दिवेकरजी भी एक थे। फलस्वरूप आपको सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। भैरवगढ़ जेल से सजा काटकर जब आप 2 वर्ष बाद बाहर आए तो आगे एम० ए० की पढ़ाई करने के लिए काशी के सेण्ट्रल हिन्दू कालेज में जाकर प्रविष्ट हुए। दूसरे वर्ष में आपने 'क्वीन्स कालेज' में नाम लिखाया। उन दिनों आपके सहपाठियों में आचार्य नरेन्द्रदेव एवं गोपीनाथ कविराज-जैसे मेधावी छात्र थे। एम० ए० (संस्कृत) की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् 1 वर्ष तक रिसर्च-स्कालर रहकर सन् 1915 में आप प्रयाग के म्योर सेण्ट्रल कालेज में प्राध्यापक हो गए। वहाँ पर आपके विभागाध्यक्ष डॉ० गंगानाथ झा थे। अपने अध्यापन-कार्य में संलग्न रहते हुए ही आपने पेरिस से डी० लिट्० की उपाधि भी प्राप्त की थी।

जिन दिनों आप काशी में अध्ययन-रत थे तब आपने कुछ दिन तक 'नागरी प्रचारिणी सभा' में भी कार्य किया था। उस कार्यकाल में आपका हिन्दी भाषा तथा साहित्य से यत्किंचित् परिचय हो गया था। इस बीच जब आपका 'भीष्माची भयंकर भूल' शीर्षक एक लेख 'मनोरमा' मासिक में छपा तब मराठी साहित्य में बहुत हलचल मची हुई थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में जब आपका वह लेख आया तब उन्होंने दिवेकरजी का पता लगाकर 'सरस्वती' के लिए भी लेख आदि भेजने का अनुरोध उनसे किया था। जब आपने हिन्दी में लिखने में असमर्थता प्रकट की तब द्विवेदीजी ने लिखा, 'टूटी-फूटी ही क्यों न हो, पर आप अपनी हिन्दी में लिखकर भेजिए। उसकी एक कापी अपने पास रखिए। जब लेख 'सरस्वती' में छप

जायगा तब उसका अपने लेख की भाषा से मिलान करते जाइए। ऐसा करने से मराठी-भाषा-भाषी लोगों की हिन्दी लिखने में प्रायः कौन-सी गलतियाँ होती हैं। यह ठीक से समझ में आ जायगा। बस, उन सुधारों को ध्यान में रखें तो थोड़े ही दिनों में आप ठीक हिन्दी लिख सकेंगे।" आचार्य द्विवेदी के उस अनुरोधपूर्ण पत्र से श्री दिवेकरजी को बहुत प्रोत्साहन मिला था फलतः आपने हिन्दी में लिखने का संकल्प ही कर लिया।

इस बीच श्री दिवेकरजी की एक बहन असमय में केवल 12 वर्ष की आयु में ही विधवा हो गई। उसकी समुचित शिक्षा आदि की व्यवस्था करने के विचार से जब आप उसे आचार्य कर्वे की महिला विद्यापीट में प्रविष्ट कराने के लिए पूना ले गए तब आप कर्वेजी के उस शिक्षण-संस्थान की व्यवस्था तथा शिक्षा-पद्धति से बहुत प्रभावित हुए। फलतः आपने 'म्योर सेण्ट्रल कालेज प्रयाग' की अच्छी खासी नौकरी छोड़कर पूना में रहने का संकल्प कर लिया और वहाँ पर आचार्य कर्वे के सहायक हो गए। आज पूना का यह शिक्षण-केन्द्र जो इतना नाम तथा यश कमा सका है उसकी पृष्ठभूमि में डाक्टर दिवेकर के अध्यवसाय का भी बहुत बड़ा योगदान है। कर्वेजी के साथ काम करने के कारण आप काफी व्यस्त रहे और इस बीच आपका सम्बन्ध हिन्दी से लगभग टूट-सा गया। जब लगभग 20 वर्ष बाद पूना से आप ग्वालियर लौटे तब वहाँ के हिन्दी-प्रेमी व्यक्ति आपको सर्वथा भूल गए थे। फिर भी आपने अपनी निष्ठा तथा परिश्रमशीलता से
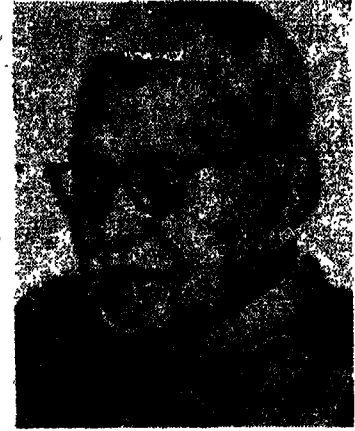
जहाँ अपने हिन्दी-ज्ञान को बढ़ाया वहाँ लेख लिखने में भी आप बराबर संलग्न रहे। इसी काल-खण्ड में आपने 'सन्त तुकाराम' नामक एक ग्रन्थ हिन्दी में लिखा, जो हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त आपका 'ऋग्वेद सूक्ति विकास' नामक एक और दूसरा ग्रन्थ भी हिन्दी में छपा है। पहले ग्रन्थ में आपने जहाँ मराठी के सुप्रसिद्ध कवि सन्त तुकाराम के जीवन तथा काव्य पर विशद प्रकाश डाला है वहाँ दूसरे ग्रन्थ में 'ऋग्वेद' के सूक्तों के ऐतिहासिक विकास-क्रम का वर्णन है। हिन्दी की इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त आपने कुछ अत्यन्त उपादेय मराठी ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी प्रस्तुत किया था। आपकी ऐसी कृतियों में 'छत्रपति शिवाजी महाराज' तथा 'हमारी आँखें' विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

ग्वालियर में रहते हुए आपने जहाँ 'हिन्दी साहित्य सभा' की स्थापना में अपना सक्रिय सहयोग दिया था वहाँ 'मध्य-भारत शिक्षा-समिति' के माध्यम से आपने ग्वालियर में कई शिक्षा-संस्थाओं का संचालन अत्यन्त सफलतापूर्वक किया था। आपकी हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी उल्लेखनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में 12 जनवरी सन् 1962 को 'सरस्वती' के 'हीरक जयन्ती-उत्सव' के अवसर पर प्रयाग में आपका अत्यन्त भाव-भीना अभिनन्दन किया गया था। हिन्दी के सुलेखक होने के साथ-साथ आप मराठी भाषा के भी सिद्धहस्त रचनाकार थे। मराठी भाषा में आपकी 7-8 पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। इन पुस्तकों में 'हिन्दी-साहित्याचा सुरस व संक्षिप्त इतिहास' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें दिवेकरजी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का अच्छा परिचय प्रस्तुत किया है। आपकी प्रथम पुण्य तिथि के अवसर पर मार्च सन् 1976 में 'दिवेकर वाङ्मय प्रकाशन-समिति पुणे' की ओर से मराठी भाषा में लिखे गए आपके लेखों का एक संकलन 'डॉ० ह० रा० दिवेकर निबन्ध लेख-संग्रह' नाम से प्रकाशित हुआ था।

आपका निधन 18 मार्च सन् 1975 को हुआ था।

डॉ० हरिराम मिश्र

श्री मिश्रजी का जन्म 19 फरवरी सन् 1912 को मध्यप्रदेश की पन्ना रियासत में हुआ था। आप संस्कृत तथा हिन्दी के अद्वितीय विद्वान् होने के साथ-साथ उच्चकोटि के समीक्षक तथा प्राध्यापक थे।

काशी विश्वविद्यालय से संस्कृत की एम० ए० परीक्षा में आपने प्रथम श्रेणी में प्रथम आने पर 'स्वर्ण पदक' प्राप्त किया था। आपने 'संस्कृत नाटकों में नाट्य सिद्धान्त' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके काशी विश्व-विद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त की थी।

आप जहाँ उच्चकोटि के विद्वान् थे वहाँ गम्भीर साहित्य की सृष्टि करने में भी सर्वथा अद्वितीय थे। महात्मा गान्धी के जीवन की घटनाओं पर आधारित आपके द्वारा लिखित तीन एकांकी आपकी 'जीवन आदर्श' (1970) नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त 'विन्ध्य भूमि' पत्रिका में भी आपकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं। आपके पी-एच० डी० के शोध प्रबन्ध के प्रकाशन के अवसर पर सन् 1966 में छतरपुर की साहित्यिक संस्था 'प्रतिमान' की ओर से आपका भव्य अभिनन्दन किया गया था। इस समारोह की अध्यक्षता 'गान्धी स्मारक निधि मध्यप्रदेश' के संचालक श्री काशीनाथ त्रिवेदी ने की थी।

आपका निधन 63 वर्ष की आयु में सन् 1975 में हुआ था।

श्री हरिवंशलाल शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म सन् 1896 में उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के जहाँगीराबाद नामक कस्बे में हुआ था। जब आप 5-6 वर्ष के बालक ही थे तब आपके पिता का

देहावसान हो गया था। फलस्वरूप आपकी शिक्षा नाम-मात्र को ही हुई थी। घर पर अपने अध्यवसाय से ही आपने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा फारसी का व्यावहारिक ज्ञान अर्जित किया था। बाल्य-काल में ही आपका सम्पर्क खुर्जा-निवासी श्री द्वारिकासिंह से हुआ था, जो सुप्रसिद्ध लावनी-गायक श्री पन्नालाल के शिष्य थे। उनकी प्रेरणा से आप लावनी तथा खयाल आदि लिखने लगे और विधिवत् उनके शिष्य बन गए। इस सम्पर्क के कारण आपका परिचय आगरा के श्री पन्नालालजी से भी हो गया और उसी समय वहाँ के मौलवी आशिक हुसेन साहब से आपने उर्दू-फारसी की शायरी का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया।

आपने उत्तरी भारत में कई स्थानों पर अखाड़ों की स्थापना करके उनके माध्यम से 'लावनी साहित्य' के 'तुर्रा' पक्ष को अधिकाधिक सशक्त तथा सबल बनाया। आप मंच की आवश्यकतानुसार चुनौती मिलने पर तुरन्त लावनी तैयार करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। आपके शिष्य उत्तरी भारत के प्रायः सभी नगरों में फैले हुए हैं। आपकी कला-चातुरी से प्रभावित होकर 'नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा' ने आपको सन् 1936 में 'लावनी-कला-कान्त' की सम्मानोपाधि प्रदान की थी।

आपने हिन्दी में अनेक लावनियाँ लिखने के अतिरिक्त 7 खण्डों में श्रीराम के चरित की रचना की थी। यद्यपि आपके इस 'रामचरित' का आधार 'रामचरितमानस' है, किन्तु आपने उसे इतनी सरल और सुबोध लोक-प्रचलित भाषा में लिखा है कि अशिक्षित जनता भी उसे सहज में ही हृदयंगम कर सकती है। जन साधारण को समसामयिक घटनाओं से अवगत कराने की दृष्टि से आपने अनेक स्वांगों की रचना की थी। आपके ऐसे साहित्य में 'श्रीराम विजय', 'किसान अरु डिग्री कालेज', 'प्यासी धरती', 'शकुन्तला', 'सहकारी खेती', 'ग्राम-प्रगति', 'दानी किसान', 'वर्षा विहार', 'आप काज सो महाकाज', 'बसन्त बहार', 'पन्द्रह अगस्त', 'भारत-चीन-युद्ध', 'होली सो हो ली', 'हरिवंश विलास', 'स्तुतियाँ', 'चतुष्पदी', 'पंचपदी', 'त्रिपदी' आदि-आदि के अतिरिक्त अनेक लोकगीत भी आपने लिखे थे। आपके व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर डॉ० सुरेशचन्द्र अग्रवाल ने शोध करके मेरठ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। आपके सुपुत्र श्री रमेश कौशिक भी हिन्दी के बड़े सशक्त कवि हैं।

आपका निधन 8 फरवरी सन् 1963 को हुआ था।

श्री हरिशंकर विद्यार्थी

श्री विद्यार्थीजी का जन्म 11 फरवरी सन् 1912 को कानपुर में हुआ था। आपके पिता अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी हिन्दी के प्रख्यात लेखक एवं तेजस्वी पत्रकार थे। आपकी शिक्षा उन्हीं के निरीक्षण में प्रारम्भ हुई थी कि वे कानपुर में हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगों में 25 मार्च सन् 1931 को शहीद हो गए थे। आपकी शहादत के समय हरिशंकरजी केवल 19 वर्ष के ही थे। ज्यों-त्यों मारवाड़ी इण्टर कालेज में इण्टर तथा 'क्राइस्ट चर्च कालेज' से बी० ए० करने के उपरान्त आपने सन् 1932 के अगस्त मास से 'प्रताप दैनिक' के सम्पादन का दायित्व पूर्णतः सँभाल लिया था।
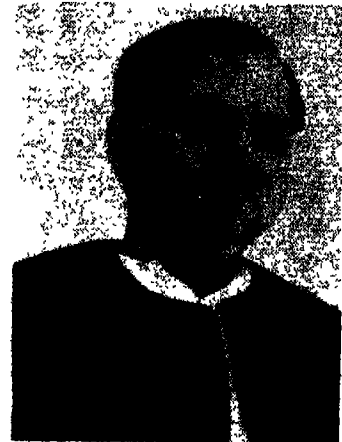
आपने अपने स्वनामधन्य पिता के चरण-चिह्नों पर चलकर जहाँ पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया था वहाँ समाज-सेवा की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य किया था। आप जहाँ कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता थे वहाँ 'प्रेस

ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' के निर्देशक तथा विकास बोर्ड कानपुर के सदस्य एवं अध्यक्ष भी रहे थे। आपकी अध्यक्षता के काल में 'कानपुर विकास बोर्ड' द्वारा कानपुर में बाजारों और पार्कों आदि के निर्माण का ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न हुआ था।

मार्च सन् 1931 से अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक आपने साप्ताहिक तथा दैनिक 'प्रताप' के सम्पादन-संचालन में भी अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया था। एक प्रमुख पत्रकार के नाते आपने देश तथा समाज की उल्लेखनीय सेवा की थी।

आपका निधन 14 मार्च सन् 1955 को कानपुर में हुआ था।

श्री हरिशंकर शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म 19 अगस्त सन् 1891 को हरदुआगंज (अलीगढ़) में हुआ था। आपके पिता पण्डित नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि थे। शर्माजी की शिक्षा विधिवत् किसी स्कूल में नहीं हुई थी। घर पर रहकर ही आपने हिन्दी के अतिरिक्त अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, अरबी, फारसी, बंगला, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सर्वप्रथम पत्रकारिता के क्षेत्र में शर्माजी ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के मासिक पत्र 'भारतोदय' के सहकारी सम्पादक के रूप में प्रवेश किया था और फिर 'आर्यमित्र' के सम्पादक के रूप में आपने चरम सफलता प्राप्त की थी। कवित्व के संस्कार शर्माजी को अपने पिताजी से प्राप्त हुए थे और उनके पास निरन्तर आते रहने वाले साहित्यकारों के वार्तालाप को सुनकर जहाँ आपके मन में साहित्य के प्रति गहरी दिलचस्पी उत्पन्न हुई थी वहाँ 'शंकर' जी के पास आने वाली पत्र-पत्रिकाओं के स्वाध्याय से आपने अपना ज्ञान भी बढ़ाया था। यह आपको ही सौभाग्य प्राप्त था कि 'आर्य मित्र' के सम्पादन के दिनों में सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, सत्येन्द्र और रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'-जैसे सुयोग्य सहकारी सुलभ हुए थे। यह वही 'आर्य मित्र' पत्र था जिसका सम्पादन कभी रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य तथा श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी (सर्वानन्द नाम से)जैसे उच्चकोटि के साहित्यकारों ने किया था। 'आर्यमित्र' को हिन्दी के उत्कृष्ट कोटि के साप्ताहिकों की पाँत में ला खड़ा करना शर्माजी-जैसे सफल सम्पादक का ही काम था।

शर्माजी जहाँ उच्चकोटि के पत्रकार थे वहाँ शिष्ट तथा सुरुचिपूर्ण हास्य-व्यंग्यमयी रचना करने में भी पूर्णतः दक्ष थे। 'आर्यमित्र' तथा 'भारतोदय' के अतिरिक्त आपने 'आर्य सन्देश', 'प्रभाकर', 'निराला', 'साधना', 'कर्मयोग', 'सैनिक', 'ज्ञान गंगा' और 'दैनिक दिग्विजय' आदि जिन अनेक पत्रों का सम्पादन किया था उन सबमें भी विविध-विषयक उपयोगी सामग्री का समावेश करने के साथ-साथ आप शिष्ट और सुरुचिपूर्ण हास्य रचनाएँ भी अवश्य दिया करते थे। अपनी ऐसी रचनाओं में आप समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों, रूढ़ियों और विभीषिकाओं पर करारी चोट करने में कभी भी न चूकते थे। आपकी भाषा इतनी चुटीली और प्रवाहपूर्ण होती थी कि पाठक उसे पढ़ते हुए उकताता नहीं था; प्रत्युत हास्य तथा विनोद के आनन्दमय सागर में गोते लगा-लगाकर अपने को धन्य अनुभव करता था। शर्माजी जहाँ सेवा-वृत्ति वाले साहित्यकार थे वहाँ स्वाधीनता-संग्राम में भी आपकी सेवाएँ सर्वथा अविस्मरणीय थीं। सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भी आपने कारावास की यातनाएँ झेली थीं।

विचारों से आर्यसमाजी होते हुए भी आप इतने सहृदय तथा उदार थे कि किसी भी विचार-धारा का व्यक्ति आपके पास अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त कर लेता था। एक बार जब काशी के प्रख्यात समाज-सेवी श्री शिवप्रसाद गुप्त ने आपको अपना निजी सचिव बनाकर विदेश यात्रा पर ले जाना चाहा तो आपने उनके इस प्रस्ताव को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था। इसी प्रकार बड़े-से-बड़े प्रलोभनों में भी आपने अपनी

मनस्विता को सर्वथा अक्षुण्ण बनाये रखा था। जब दिल्ली से सेठ रामकृष्ण डालमिया ने 'नवयुग' को बंद करके 'नव-भारत' दैनिक निकालने का संकल्प किया था तब उन्होंने शर्माजी से उसके 'प्रधान सम्पादक' का पद सँभालने का अनुरोध भी किया था। अच्छे-खासे चार अंकों की राशि के वेतन का प्रलोभन भी शर्माजी को नहीं झुका सका और आपने दिल्ली आने से सर्वथा इन्कार कर दिया।

शर्माजी ने एक मनस्वी पत्रकार के रूप में तो प्रतिष्ठा प्राप्त की ही थी, उत्कृष्टतम साहित्य-स्रष्टा के रूप में भी आपकी देन कम महत्त्व नहीं रखती। आपने जहाँ 'घास-पात', 'शिव संकल्प', 'महर्षि महिमा', 'कृष्ण सन्देश', 'राम राज्य', और 'वीरांगना वैभव' आदि काव्य-कृतियों का सृजन किया था वहाँ 'चहचहाता चिड़ियाघर' और 'पिंजरा पोल'-जैसी हास्य-व्यंग्यमयी गद्य-रचना करके अपनी शिष्ट हास्य-लेखन की पटुता का प्रमाण भी दिया था। भाषा-विज्ञान, छन्द-विधान, और साहित्य के इतिहास की रचनाओं की दृष्टि से भी आपने अपनी प्रखर प्रतिभा प्रकट की थी। आपकी ऐसी रचनाओं में 'रस रत्नाकर', 'उर्दू-साहित्य-परिचय', 'हिन्दी-साहित्य-परिचय' और 'अँग्रेजी साहित्य-परिचय' आदि उल्लेखनीय हैं। आपने 'अभिनव हिन्दी कोष' तथा 'हिन्दुस्तानी कोष' की भी रचना की थी। आपकी 'घास-पात' नामक काव्य-कृति पर जहाँ 'देव पुरस्कार' प्रदान किया गया था वहाँ आपकी साहित्य-सेवाओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की दृष्टि से आगरा विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट्० की मानद उपाधि से अभिषिक्त किया था। भारत के राष्ट्रपति ने भी आपको 'पद्मश्री' प्रदान करके अपने को धन्य समझा था।

हास्य-व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में आपकी रचनाएँ अपनी विशिष्ट भंगिमा तथा भाषा-शैली के लिए अपना सर्वथा अलग स्थान रखती हैं। उनमें कहीं भी भाषा का भद्दापन तथा विचारों का फूहड़पन नहीं दिखाई देता। सानुप्रास भाषा का प्रयोग करने में शर्माजी इतने सिद्धहस्त थे कि आपकी रचनाओं को पढ़ते समय पाठक उनमें ऐसा डूब जाता है कि उसे कहीं भी ऊब नहीं महसूस होती। आपकी ऐसी रचनाओं में 'लीडर लीला', 'चिड़ियाघर', 'चुंगी माहात्म्य' और 'स्वर्ग की सीधी सड़क' आज के समाज का सही-सही चित्र हमारे सामने उपस्थित करने में पूर्णतः सक्षम हैं।

शर्माजी स्वाभिमानी भी अत्यन्त उच्चकोटि के थे। अपने इतने बड़े साहित्यिक जीवन में आपने कभी भी अपने स्वाभिमान को आँच नहीं आने दी। एक बार जब आप सन् 1945 में अस्वस्थ हो गए तो प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'देशदूत' साप्ताहिक में आपकी अस्वस्थता के समाचार के साथ किसी ने आपकी आर्थिक सहायता करने की बात लिख दी तब आपके स्वाभिमानी साहित्यकार को यह बहुत ही अखरा था और आपने इसकी खूब जोरदार शब्दों में भर्त्सना की थी। आपने उस समय लिखा था—"मैं साहित्यकारों के लिए अपील निकालकर उनकी सहायता करने को घोर पाप मानता हूँ। साहित्यकार साहित्य-सेवा इसलिए नहीं करता कि कोई उस पर दया करे। वह अपना कार्य करते-करते मर जाय यह तो स्वीकार है, पर यह नहीं कि उसके लिए दया की भीख माँगी जाए।" आपका यह प्रतिवाद जब 'देशदूत' में छापा गया तो साहित्य-जगत् में बड़ी हलचल मची थी। शर्माजी ने अपने को समाज से कभी भी अलग करके नहीं देखा और आप सदा ही सामाजिक कार्यों में अपना यथाशक्य योगदान देते रहे। आप जहाँ अनेक वर्ष तक 'आर्य प्रतिनिधि सभा' के अध्यक्ष रहे थे वहाँ गुरुकुल वृन्दावन के कुलपति के रूप में भी आपने उस संस्था की सेवा की थी। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी आप रहे थे। 'सूर स्मारक मंडल', 'ब्रज साहित्य मंडल' तथा 'भारतीय संस्कृति परिषद्' आदि अनेक समाज-सेवी संस्थाओं से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था।

अपने कर्म-संकुल जीवन में आपने जहाँ एक स्वाभिमानी पत्रकार, लेखक तथा समाज-सेवी के रूप में चरम प्रसिद्धि प्राप्त की थी वहाँ एक विनम्र-हिन्दी-सेवी के रूप में भी आपने हमारे सामने आदर्श प्रस्थापित किया था। हिन्दी की महत्ता के लिए आप बड़े-से-बड़े व्यक्तियों से टक्कर लेने में कभी नहीं चूकते थे। आपके हिन्दी-प्रेम का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि जब भारत सरकार ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने की अवधि और बढ़ा दी तब सरकारी नीति के विरोध में आपने 'पद्मश्री' की सम्मानोपाधि तक को त्यागने में संकोच नहीं किया था। आपने हिन्दी की महत्ता को प्रस्थापित करते हुए अन्य भाषा-भाषियों से हिन्दी के हिंडोले में बैठकर सुख लूटने की किस प्रकार अपील की है यह आपकी इस रचना से भली-

भाँति प्रकट हो जाता है :

बिहरो 'बिहारी' की बिहार-वाटिका में चाहे,
'सूर' की कुटी में अड़ आसन जमाइए।
'केशव' के कुंज में किलोल-केलि कीजिए, या—
'तुलसी' के मानस में डुबकी लगाइए॥
'देव' की दरी में दुर दिव्यता निहारिये, या—
'भूषण' की सेना के सिपाही बन जाइए।
अन्य भाषा-भाषियो, मिलेगा मनमाना सुख,
हिन्दी के हिंडोले में जरा तो बैठ जाइए॥

शर्माजी के हिन्दी-प्रेम का ही यह सुपुष्ट प्रमाण है कि आप यावज्जीवन स्वाभिमानपूर्वक पूर्ण सात्विक भाव से उसकी सेवा में लगे रहे और अपने स्वाभिमान को तनिक-सी भी आँच न आने दी। एक विशुद्ध आदर्शवादी पत्रकार के रूप में शर्माजी हम सबको प्रेरणा देते रहेंगे।

आपका देहावसान 9 मार्च सन् 1968 को हुआ था।

श्री हरिशरण श्रीवास्तव 'मराल'

श्री 'मराल' जी का जन्म सन् 1900 में उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर में हुआ था। मेरठ की साहित्यिक गतिविधियों में आपका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग रहता था। आप गद्य तथा पद्य दोनों में बड़ी सशक्त रचनाएँ किया करते थे, किन्तु मुख्यतः आपकी प्रतिभा पद्य में ही अधिक प्रखरता से प्रकट हुई थी। आपने खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा दोनों में ही अत्यन्त सफल रचना करके साहित्य की अभिवृद्धि में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया था। आपकी ब्रजभाषा की कविताओं में रीतिकाल तथा खड़ी बोली की रचनाओं में छायावादयुगीन वातावरण की सृष्टि होती थी।

आपकी रचनाएँ हिन्दी की प्रायः सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। आपकी रचना-चातुरी की प्रशंसा हिन्दी के प्रख्यात समालोचक आचार्य पद्मसिंह शर्मा तथा 'कविताकामिनी कान्त' श्री नाथूरामशंकर शर्मा आदि साहित्यकारों ने मुक्त कण्ठ से की थी। आप रेल-विभाग में कार्य करते हुए भी साहित्य-साधना के लिए इतना समय निकाल लेते थे, यह आश्चर्य की ही बात है। आप हिन्दी, अँग्रेजी के अतिरिक्त फारसी और संस्कृत भाषाओं के भी अच्छे जानकार थे।

एक बार गुरुकुल, वृन्दावन के वार्षिक उत्सव पर जब श्री 'मराल' जी की कविता सुनकर महाकवि 'शंकर' जी मुग्ध हो गए तब उन्होंने यह पद कहा था :

पीता है भंग, ओढ़ता नाहर की खाल को।
मोती कहाँ से दे उमा, शंकर मराल को॥

इस पर 'मराल' जी ने 'शंकर' जी के इस पद का उत्तर यों दिया था :

शंकर निहाल देखकर, तब ज्योति जाल को।
कैलाश पर न चाहिए, मोती मराल को॥

आपने बहुत थोड़ी-सी ही उम्र पाई थी, परन्तु उसमें भी आपने 'बलिवैश्वदेव यज्ञ', 'शिव-बोध', 'हिमगिरि सन्देश', 'हरिश्चन्द्र', 'प्रार्थना शतक', 'चन्द्र' तथा 'पृथ्वीराज' (नाटक) नामक रचनाएँ लिखकर साहित्य की समृद्धि में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन रचनाओं में से पहली तीन आपके जीवन-काल में ही प्रकाशित हो गई थीं। 'पृथ्वीराज' (नाटक) का प्रकाशन भी आपके जीवित रहते हुए ही हो गया था और शेष की पाण्डुलिपियाँ ही रह गईं। आपने 'कायस्थ जाति का इतिहास' नामक एक और शोधपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा था, जो अब तक अप्रकाशित है। आपके निधन के उपरान्त आपकी सभी श्रेष्ठ चुनी हुई रचनाओं का प्रकाशन 'मराल मानस' नाम से सन् 1934 में हुआ था। इसका सम्पादन श्री विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी' ने किया था और भूमिका श्री अलगूराम शास्त्री ने लिखी थी। आपकी 'हिमगिरि सन्देश' नामक रचना श्रीयुत पाल रिचार्ड की 'टू इण्डिया, दि मैसेज आफ दि हिमालयज' का पद्यात्मक छायानुवाद है।

आपका देहावसान 8 अक्तूबर सन् 1933 को हुआ था।

श्री हरि शिवराम सहस्त्रबुद्धे

श्री सहस्त्रबुद्धे का जन्म महाराष्ट्र के पनवेल नामक स्थान में 20 अक्तूबर सन् 1915 को हुआ था। आप पुणे के 'हिन्दी प्रचार संघ' के प्रथम कार्यकर्ताओं में अग्रणी स्थान रखते थे और महाराष्ट्र के प्रख्यात हिन्दी-सेवक श्री गणेश रघुनाथ वैशम्पायन के अन्यतम शिष्य थे। उन्होंने ही श्री सहस्त्रबुद्धे को हिन्दी-प्रचारक के रूप में नासिक भेजा था। आपने दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'विशारद' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके सर्वप्रथम 'नार्थ स्काटलैंड मिशन कालेज, पुणे' में हिन्दी-शिक्षक का कार्य प्रारम्भ किया था।

इसके उपरान्त आप बम्बई के गिरगाँव नामक क्षेत्र में स्थित 'डी० जी० टी० हाईस्कूल' में हिन्दी-शिक्षक होकर वहाँ चले गए और इस कार्य-काल में हिन्दी व्याकरण के सर्वोत्तम शिक्षक के रूप में आपने बहुत ख्याति अर्जित की थी। पुणे से महाराष्ट्र प्रदेश में हिन्दी-प्रचारार्थ भेजे गए व्यक्तियों में आप पहले प्रचारक थे। सन् 1966 में बम्बई में आपका 'षष्ट्यब्दि पूर्ति समारोह' बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया था।

आप जहाँ हिन्दी के पारंगत विद्वान् थे वहाँ उर्दू और संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी तथा मराठी व्याकरण के तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में आपकी सेवाएँ सर्वथा अभिनन्दनीय रही थीं। आपने श्री चिं० बा० ओंकार के सहयोग से सन् 1947 में हिन्दी के छात्रों के लिए 'राष्ट्रभाषा' परीक्षाओं से सम्बन्धित 'मार्गदर्शिकाएँ' भी तैयार की थीं।

आपका देहावसान 23 जुलाई सन् 1973 को पुणे में हुआ था।

श्री हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक'

श्री 'चातक' जी का जन्म 1 जुलाई सन् 1908 को उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जनपद के ग्राम अतरौली (जाफराबाद) में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पहले तो अपने ग्राम में हुई थी, किन्तु प्राइमरी करने के उपरान्त आप गुरुकुल वृन्दावन में अध्ययनार्थ चले गए थे। गुरुकुल के निवास ने आपकी भाषा को अत्यन्त परिष्कृत तथा प्रांजल किया था।

छायावादयुगीन अनुभूतियों से अनुप्राणित होकर आपके कवि-मानस में जो भावनाएँ उठा करती थीं, कालान्तर में वे ही आपके कण्ठ से गीतों के रूप में निःसृत हुईं और आपकी 'नैवेद्य' नामक कृति का प्रकाशन हुआ। जिस समय सन् 1938 में आपका यह पहला काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ तब आप हिन्दी-काव्य-गगन पर पूर्णतया छा चुके थे। आपकी रचनाएँ उन दिनों प्रायः हिन्दी की सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। आपकी पहली काव्य-कृति पर जहाँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा प्रख्यात समालोचक बा० गुलाबराय ने अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त की थीं वहाँ जैनेन्द्रकुमार तथा डॉ० रामविलास शर्मा-जैसे उत्कृष्ट कोटि के विचारकों एवं समीक्षकों ने भी आपकी काव्य-कला की अभ्यर्चना की थी।

आप बड़े अध्ययनशील तथा सहृदय कवि थे। प्रायः सभी रचनाओं में आपकी यह अध्ययनशीलता पूर्णतः रूपायित हुई है। गहन चिन्तन तथा मनन के उपरान्त आपकी अनुभूतियाँ जिस रूप में हिन्दी पाठकों के समक्ष आई हैं उनसे आपकी काव्य-साधना का स्पष्ट परिचय मिलता है। आपके दूसरे काव्य-संकलन 'वासन्ती' की रचनाएँ इसकी प्रत्यक्ष साक्षी हैं। अपने निजी स्वाध्याय के बल पर हिन्दी तथा संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू, बंगला तथा गुजराती आदि भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान आपने प्राप्त कर लिया था। उक्त दोनों रचनाओं के अतिरिक्त आपकी 'नीरा जन', 'कान्तिदूत' तथा 'भावों के स्वर्ग में' नामक काव्य-कृतियाँ और प्रकाशित हुई थीं। 'साहित्यायन' में आपके निबन्ध संकलित हैं।

उक्त सभी पुस्तकों के अतिरिक्त आपकी 'तपोवन', 'भ्रम सन्दर्भ', 'विचित्र' (कहानियाँ), 'प्राचीन भारत के अस्त्र-शस्त्र', 'महाकवि तुलसीदास', 'विलियम वर्ड्सवर्थ की जीवनी और उनकी कविताएँ', 'हिन्दी साहित्य में करुण रस', 'उर्दू से हमें क्या सीखना चाहिए' नामक पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ अप्रकाशित ही रह गईं। आप जहाँ भावना-प्रवण कवि के रूप में विख्यात थे वहाँ उत्कृष्ट गद्यकार के रूप में भी आपकी विशिष्ट देन रही है। उक्त सभी पाण्डुलिपियों में आपका गद्यकार अत्यन्त प्रखरता से प्रकट हुआ है।

आपका निधन 19 फरवरी सन् 1976 को अपने जन्म-स्थान अतरौली में हुआ था।

श्री हरिश्चन्द्र वर्मा

श्री वर्माजी का जन्म सन् 1901 में जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। वरिष्ठतम पत्रकार तथा कहानी-लेखक के रूप में आपका स्थान मध्यप्रदेश में सर्वथा अग्रणी था। आपने जहाँ अनेक वर्ष तक वहाँ से 'शक्ति' साप्ताहिक का सफलता-पूर्वक सम्पादन किया था वहाँ आप प्रख्यात क्रान्तिकारी श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा और विनायक दामोदर सावरकर के अनन्य सहयोगी भी रहे थे। आप बैरिस्टर ज्ञानचन्द्र वर्मा के भतीजे थे।

आपके 'कंकर' नामक कहानी-संकलन का प्रकाशन हो चुका है और अनेक स्फुट लेख एवं कहानियाँ अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

आपका निधन 10 फरवरी सन् 1980 को हुआ था।

श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

श्री हरिश्चन्द्रजी का जन्म सन् 1887 में जालन्धर (पंजाब) में हुआ था। आप देश के प्रख्यात नेता स्वामी श्रद्धानन्दजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और आपकी शिक्षा-दीक्षा अपने पिता द्वारा संस्थापित संस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में हुई थी। सन् 1912 में गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त पहले कुछ दिन आपने गुरुकुल में ही 'तुलनात्मक धर्म व साहित्य' के अध्यापक का कार्य किया और बाद में अपने पिताजी द्वारा संस्थापित तथा दिल्ली से प्रकाशित 'सद्धर्म-प्रचारक' तथा 'विजय' आदि पत्रों का सम्पादन किया था।

सन् 1914 में आप प्रख्यात क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र-प्रताप के साथ यूरोप चले गए थे। वहाँ पर क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों में भाग लेने के कारण आप गिरफ्तार हुए तथा आप कोई भेद न देने के कारण बिजली के करण्ट से तपती हुई टीन की चादर पर लिटाकर मार दिए गए थे।

आप हिन्दी के प्रखर पत्रकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपने जहाँ 'संस्कृत प्रवेशिका' नामक पुस्तक की रचना की थी वहाँ 'वाल्मीकि रामायण' का डच भाषा में अनुवाद भी किया था। आप प्रभावशाली वक्ता तथा स्वतन्त्र विचारक भी थे।

डॉ० हरिहरनाथ टण्डन

डॉ० टण्डन का जन्म सन् 1903 में उत्तर प्रदेश के कन्नौज (फर्रुखाबाद) नामक नगर में हुआ था। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय से हिन्दी में एम० ए० करने के उपरान्त आपने सैण्ट जान्स कालेज आगरा में हिन्दी-अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया था और अन्त तक उसीसे सम्बद्ध रहे। सन् 1928 में जब आप आगरा के इस कालेज में गए थे तब वहाँ

पर हिन्दी की पढ़ाई का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं था। आप उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में थे जिन्हें डॉ० श्यामसुन्दरदास-जैसे महारथी का शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए आपने हिन्दी की जो दीक्षा बाबू श्यामसुन्दरदास से ग्रहण की थी वह ही कालान्तर में आपकी सफलता का साधन बनी।

सेण्ट जान्स कालेज में रहते हुए आपने वहाँ पर हिन्दी विभाग स्थापित करने के लिए जो संघर्ष किया था वह आपकी कर्मठता का सूचक है। आपके ही प्रयास से कालेज का हिन्दी विभाग समृद्धि की ओर अग्रसर हुआ था। आपके शिष्यों में हिन्दी के ऐसे अनेक महारथी हैं जिनका साहित्य में आज अपना विशिष्ट स्थान है। प्रख्यात आलोचक प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, डॉ० नगेन्द्र और डॉ० रांगेय राघव-जैसी प्रतिभाओं ने आपकी अध्यक्षता में ही शिक्षा ग्रहण की थी।

आप जहाँ सफल शिक्षक के रूप में अपनी विशिष्टता रखते थे वहाँ आप अच्छे लेखक भी थे। आपकी ऐसी कृतियों में 'चिन्तामणि दर्शन' तथा 'पृथ्वीराज रासो की आलोचना' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने 'वार्ता साहित्य' पर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। हिन्दी के प्रख्यात समीक्षक बाबू गुलाबराय ने भी अनेक वर्ष तक आपके सहयोगी के रूप में अवैतनिक कार्य किया था। 'सेण्ट जान्स कालेज' के हिन्दी विभाग के वर्तमान अध्यक्ष डॉ० कुलदीप भी आपके ही शिष्य रहे थे। यहाँ पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आगरा में सर्वप्रथम इसी कालेज में हिन्दी की कक्षाएँ प्रारम्भ हुई थीं। इसका सम्पूर्ण श्रेय श्री टण्डनजी को ही दिया जा सकता है।

आपका निधन 3 मार्च सन् 1977 को आगरा में हुआ था।

श्री हरिहरनाथ शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म 26 अक्तूबर सन् 1904 को उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के कजीरपुरा नामक स्थान में हुआ था। बलिया के मिडिल स्कूल से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए भागलपुर चले गए और वहाँ के मिशन स्कूल में प्रविष्ट हो गए। आपके पिता श्री रामावतारलाल उन दिनों भागलपुर में ही नौकरी करते थे। भागलपुर से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप बनारस चले गए और वहाँ के हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ने लगे। आप वहाँ पढ़ ही रहे थे कि आपके पिताजी का असामयिक देहान्त हो गया। सन् 1921 में जब महात्मा गान्धी का असहयोग-आन्दोलन छिड़ा तब आपने हिन्दू विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़कर 'काशी विद्यापीठ' में अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया था।

विद्यापीठ में जाकर तो आपके विचारों में और भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और आप आन्दोलन में कूद पड़े। इस कारण आपको एक वर्ष की सजा हुई थी। जेल से छूटने के उपरान्त आपने फिर अपनी पढ़ाई जारी रखी। आपके विद्यापीठ के उन दिनों के शिक्षकों में आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री श्रीप्रकाश, श्री बीरबलसिंह तथा श्री रामशरण आदि के नाम प्रमुख हैं। आप अपने अध्ययन-काल में इतने सादे रहते थे कि आपने सिर तक मुँडवा रखा था। संस्कृत की 'अष्टाध्यायी' के सूत्र तथा 'भगवद्‌गीता' के श्लोक आपको बहुत कण्ठस्थ थे। भाषण-कला में भी आप अत्यन्त निपुण थे। काशी विद्यापीठ की 'छात्र परिषद्' के तत्त्वावधान में जो भी सभाएँ आयोजित हुआ करती थीं, शास्त्रीजी उनमें बढ़-चढ़कर भाग लिया करते थे। आपकी प्रखर वाग्मिता तथा प्रबल तर्क-शक्ति
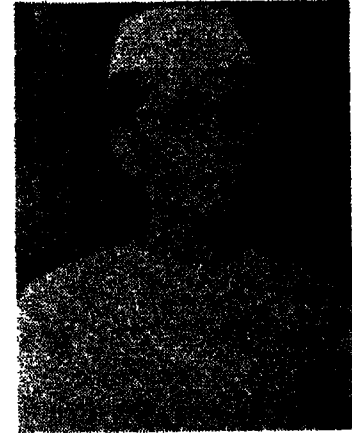
को देखकर आपके साथी तथा शिक्षक सभी आश्चर्य-चकित रह जाते थे।

सन् 1925 में विद्यापीठ से 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय द्वारा संस्थापित 'लोक-सेवक मंडल' के 'आजीवन सदस्य' बन गए। आपके विचारों पर आचार्य नरेन्द्रदेव के व्यक्तित्व की गहरी छाप थी। श्री लालबहादुर शास्त्री भी आपके साथ ही 'लोक-सेवक-मण्डल' के आजीवन सदस्य बने थे। कुछ दिन तक आपने मेरठ के 'कुमार आश्रम' में रहकर अछूतोद्धार का कार्य किया, परन्तु इसके उपरान्त सन् 1937 में आप कानपुर आ गए और वहाँ पर मिल मजदूरों में कार्य करने लगे। इस बीच कुछ दिन तक आपने बम्बई में श्री एन०एम० जोशी के निकट रहकर श्रम-सम्बन्धी समस्याओं का गहन अध्ययन किया। अपनी छात्रावस्था से ही आप योगिराज अरविन्द के क्रान्तिकारी विचारों से पूर्णतः प्रभावित हो गए थे। आपने जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-समस्याओं का निकटता से अध्ययन किया था वहाँ लेखन की दिशा में भी आपने अपनी प्रखर मेधा का परिचय दिया था। आपके द्वारा लिखी गई 'मीर कासिम' नामक ऐतिहासिक पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस पुस्तक का समर्पण आपने आचार्य नरेन्द्रदेव को किया था।

आपने महात्मा गान्धीजी द्वारा संचालित अनेक आन्दोलनों में सन् 1921 से सन् 1947 तक पूर्ण तन्मयता से भाग लिया था और इस प्रसंग में लगभग 8 बार जेल-यात्राएँ भी की थीं। कानपुर में रहते हुए आपने श्रमिक क्षेत्रों में कार्य करने के साथ कांग्रेस के संगठन पक्ष को भी दृढ़ किया था। सन् 1933 में आप जहाँ अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए थे वहाँ सन् 1935 के कानपुर नगरपालिका के चुनावों में भी कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित हुए। उन्हीं दिनों आपने श्रमिक समस्याओं के समाधान के लिए 'मजदूर' नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी किया था। यह पत्र कई वर्ष तक सफलतापूर्वक प्रकाशित होता रहा था।

इस बीच 20 मई सन् 1935 को आपका विवाह जबलपुर के सुविख्यात बैरिस्टर श्री देवीप्रसाद श्रीवास्तव की बहन कुमारी शकुन्तला श्रीवास्तव से हो गया। शकुन्तलाजी स्वयं हिन्दी की कवयित्री तथा लेखिका होने के साथ-साथ प्रख्यात राष्ट्रीय कार्यकर्त्री भी थीं। वे जहाँ सन् 1930 में जबलपुर कांग्रेस की डिक्टेटर रही थीं वहाँ 'महिला शक्ति समाज' की संचालिका भी थीं। शकुन्तलाजी से विवाह के उपरान्त तो शास्त्रीजी की क्रियाशीलता और भी बढ़ गई। सन् 1934 में जब 'कांग्रेस समाजवादी दल' की स्थापना हुई थी तब आप उसकी कार्यकारिणी के सदस्य तथा प्रमुख सूत्रधार थे। 'समाजवादी दल' की स्थापना के उपरान्त सन् 1937, 38 तथा 39 में मजदूरों की जो बड़ी-बड़ी हड़तालें हुई थीं उनमें आपका बहुत अधिक योगदान रहा था। उन दिनों आप उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में गवर्नर द्वारा नामित सदस्य थे। कौंसिल में भी आप अपने भाषणों में मजदूरों की समस्याएँ रखा करते थे उस समय आपके भाषणों की बड़ी चर्चा होती थी।

जिस समय भारत स्वतन्त्र हुआ तब भी आप उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य थे। सन् 1947 में जब 'विधान निर्मात्री परिषद्' का निर्माण हुआ था तब आप भी उसके सदस्य बनाये गए थे। मई, सन् 1947 में जब गान्धीवादी विचार-धारा के आधार पर 'राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस' की स्थापना हुई तब आप 'अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ' के सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए सर्वप्रथम सानफ्रांसिस्को गए थे। इसके बाद तो आपने अनेक बार विदेश यात्राएँ की थीं। एक बार आपको प्रान्तीय तथा केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में रखे जाने का प्रस्ताव भी मिला था। लेकिन शास्त्रीजी ने उसे अस्वीकार कर दिया था। सन् 1952 में जब लोकसभा का पहला निर्वाचन हुआ था तब आप कानपुर के एक पूँजीपति को 80 हजार मतों से हराकर विजयी हुए थे।

आप निष्ठापूर्वक देश तथा समाज की सेवा में पूर्ण तत्परता से संलग्न थे कि अचानक 12 दिसम्बर सन् 1953 को कोयम्बटूर जाते समय विमान-दुर्घटना में आपका असामयिक देहावसान हो गया।

श्री हरिहर पाण्डे

श्री पाण्डेजी का जन्म उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के

बरियारपुर (चकिया) नामक ग्राम में सन् 1870 में हुआ था। यह गाँव पहले बिहार के शाहाबाद जिले में था, किन्तु बाद में सन् 1921 में बनारस राज्य में आ गया था। जब सन् 1947 के बाद बनारस राज्य का विलीनीकरण हुआ तब इसे वाराणसी जनपद में ले लिया गया। श्री पाण्डेजी के पितामह श्री गोविन्दरामजी शास्त्री काशी - नरेश श्री ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के गुरु थे और राज्य में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपके पिता श्री देवराज शास्त्री अपने क्षेत्र के बड़े सिद्धहस्त चिकित्सक थे। आप जब केवल 3 वर्ष के ही थे कि उनका असमय में देहावसान हो गया और आपकी देख-रेख का भार आपके पितामह के ऊपर पड़ गया। जब आप केवल 5 वर्ष के थे तब आपको माताजी का बिछोह भी सहना पड़ा था। दुर्भाग्य ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा और आप कठिनाई से 6 वर्ष के ही हो पाए थे कि आपके पितामह भी सहसा विदा हो गए। माता, पिता तथा पितामह के इस दुस्सह वियोग के उपरान्त आपकी देख-रेख का भार आपसे केवल 3 वर्ष बड़े भाई श्री रामसुन्दर शर्मा के ऊपर आ गया। श्री शर्माजी अच्छे चिकित्सक थे और काशी में चिकित्सा का कार्य करते थे। जब आपके परिवार पर यह दैवी विपत्ति आई तब काशी-नरेश से अच्छे सम्बन्ध होने के कारण आपके परिवार का भरण-पोषण राज्य की ओर से ही होता था।
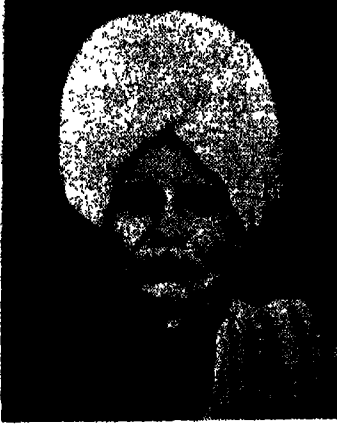
अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री रामसुन्दर शर्मा के प्रोत्साहन से आपने आयुर्वेद शास्त्र का सर्वांगीण अध्ययन किया। आपके चाचा श्री जगन्नाथ शास्त्री भी समय-समय पर आपकी सहायता करते रहते थे। यद्यपि आपके सम्बन्ध काशी-नरेश से बहुत अच्छे थे, किन्तु अपने स्वाभिमानी स्वभाव के कारण आपने स्वतन्त्र रूप से ही जो 'चिकित्सा-कार्य' प्रारम्भ किया उसमें आपको अच्छी सफलता मिली थी। बनारस जनपद में हिन्दी का पहला प्रिंटिंग प्रेस स्थापित करने का श्रेय भी आपको ही दिया जा सकता है। सन् 1921 में इस प्रेस की स्थापना आपने अपने गाँव में ही की थी। इस प्रेस के अतिरिक्त आपने अपनी जन्मभूमि में 'ब्रह्म शक्ति कार्यालय' नाम से औषध-निर्माण का कार्य भी प्रारम्भ किया था, जिसकी ख्याति भारत के पूर्वी अंचल में बहुत थी। तकनीकी कठिनाइयों से तंग आकर आपने प्रेस बन्द कर दिया और सन् 1928 में आप बनारस चले आए और वहाँ के 'रेशम कटरा' मोहल्ले में एक किराए का मकान लेकर रहने लगे। यहीं पर सन् 1927 में आपके द्वितीय पुत्र श्री सुधाकर पाण्डेय(प्रधानमन्त्री, काशी नागरी प्रचारिणी सभा)का जन्म हुआ। उसी दिन गोला दीनानाथ के इस मकान की रजिस्ट्री हुई, जिसमें अब भी आपका परिवार रहता है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री कमलाकर पाण्डेय भी काशी में चिकित्सा का कार्य करते हैं। तृतीय पुत्र डॉ० रत्नाकर पाण्डेय भी अपने अग्रज श्री सुधाकर पाण्डेय की भाँति ही अच्छे साहित्यकार एवं सुलेखक हैं। आपके दो विवाह हुए थे। आपकी पहली पत्नी का देहान्त सन् 1920 में हुआ था। निःसन्तान होने के कारण आपने 55 वर्ष की आयु में द्वितीय विवाह किया था।

पाण्डेजी जहाँ कुशल चिकित्सक के रूप में उस प्रदेश में प्रतिष्ठित थे वहाँ आप उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपकी लेखन-सम्बन्धी प्रतिभा का परिचय आपके 'काशी राज्य का इतिहास' नामक उस ग्रन्थ से प्राप्त हो जाता है जो सन् 1922 में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा लिखित 'कर्नल बिन्देश्वरीप्रसाद की जीवनी' भी उल्लेखनीय कृति है। आपके प्रयास से ही काशी राज्य एक 'स्वतन्त्र राज्य' घोषित हुआ था और 'काशी राज्य' में 'स्वाधीनता-आन्दोलन' के संचालकों तथा पुरस्कर्त्ताओं में आप प्रमुख थे। आपके द्वारा ऐसे कार्यकर्त्ताओं को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाता था। एक जागरूक पत्रकार के रूप में भी आपकी प्रतिभा का परिचय हिन्दी-प्रेमियों को उस समय मिला था जबकि सन् 1937 में आपने 'आदित्य' नामक पाक्षिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन किया था। इस पत्र का उद्देश्य काशी राज्य का रचनात्मक विकास करने के साथ-साथ वहाँ की जनता को उचित दिशा-निर्देश देना भी था। यह पत्र सन् 1941 तक निर्विघ्न रूप से सफलतापूर्वक प्रकाशित होता रहा था।

आपकी लोकप्रियता का सबसे प्रमुख प्रमाण यह है कि

आपके मँझले सुपुत्र श्री सुधाकर पाण्डेय ने सन् 1971 में जब चन्दोली-चकिया क्षेत्र से लोकसभा का चुनाव लड़ा था, तब उसमें उन्हें जो आशातीत सफलता मिली थी, उसका बहुत-कुछ श्रेय आपको ही था। आपके स्नेहीजनों तथा भक्तों ने श्री सुधाकरजी को वहाँ से भारी बहुमत से जिताया था। आपने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक पूर्णतः कर्म-रत रहते हुए सन् 1972 में 102 वर्ष की आयु में काशी-वास किया था।

श्री हरिहर शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म आन्ध्र प्रदेश के तिरुनल्वेलि जिले के कृष्णापुरम् (कडमनल्लूर) नामक स्थान में 5 फरवरी सन् 1890 को हुआ था। आप दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास की हिन्दी-प्रचार-सम्बन्धी गतिविधियों से सन् 1919 से ही सम्बन्धित थे और तब से लेकर सन् 1936 तक उसके प्रधानमन्त्री रहे थे। इसके उपरान्त महात्मा गान्धी के परामर्श पर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' के निर्माण में भी आपने अग्रणी कार्य किया था। सन् 1937 से सन् 1940 तक आपने वहाँ की परीक्षाओं की सुव्यवस्था का कार्य किया और उसके प्रकाशन-कार्य को आगे बढ़ाने में

भी उल्लेखनीय योगदान दिया। वहाँ के हिन्दी-प्रचार-कार्य को बढ़ाने की दृष्टि से आपने 'हिन्दी-तमिल' व 'हिन्दी-अँग्रेजी स्वबोधिनी' आदि के अतिरिक्त कई प्रारम्भिक पाठ्य-पुस्तकें भी लिखीं। आप तेलुगु के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, मलयालम और बंगाली भाषाओं के भी ज्ञाता थे।

आप सन् 1915 में जब महात्मा गान्धी के सम्पर्क में आए थे तब से ही आपने उनके सिद्धान्तों के प्रचार का व्रत ले लिया था। सन् 1918 में गान्धीजी की अध्यक्षता में इन्दौर में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के निर्णयानुसार आपने महात्माजी के सुपुत्र श्री देवदास गान्धी के साथ दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का जो कार्य प्रारम्भ किया था उसमें आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक पूरी तन्मयता से लगे रहे। उस सन्दर्भ में 'राष्ट्रीय आन्दोलन' में सम्मिलित होने के कारण आपको कारावास में भी रहना पड़ा था।

आप जहाँ उच्चकोटि के हिन्दी-प्रचारक थे वहाँ अनेक गुजराती कृतियों को भी आपने तमिल भाषा में अनूदित किया था। आपके जीवन के अन्तिम दिन गहन अर्थ-संकट में बीते थे और गान्धी स्मारक निधि की तमिलनाडु शाखा की ओर से आपको केवल सौ रुपए की मासिक सहायता ही मिलती थी। इस अर्थ-संकट के कारण आपको 'मानसिक तनाव' भी रहता था।

आपका निधन सन् 1971 में हुआ था।

श्री हवलदारीराम गुप्त 'हलधर'

श्री 'हलधर' का जन्म 1 जनवरी सन् 1894 को बिहार के हरिहरगंज (पलामू) नामक स्थान में हुआ था। आपने एक शिक्षक के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ करके सन् 1946 में शिक्षक पद से त्यागपत्र देकर समाज-सेवा के क्षेत्र में पदार्पण किया था। सन् 1948 में डालटेनगंज में 'हलधर प्रेस' की स्थापना करने के उपरान्त 26 जनवरी सन् 1951 से आपने 'हलधर' नामक साप्ताहिक पत्र का जो प्रकाशन प्रारम्भ किया था उसे आपने सन् 1975 तक सफलतापूर्वक सम्पन्न किया था। इस बीच आपने अपने जातीय मासिक पत्र 'रौनिया बन्धु' का सम्पादन भी कई वर्ष तक किया था।

पत्रकारिता के क्षेत्र में की गई आपकी सेवाओं का महत्त्व इसीसे प्रमाणित हो जाता है कि 20 जनवरी सन्

1959 को आचार्य शिवपूजन सहाय ने आपके सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किये थे—"स्वदेश, समाज, साहित्य और राजनीति में गुप्तजी की दिलचस्पी और निस्पृह सेवा की भावना अभिनन्दनीय है। हानि-लाभ की चिन्ता छोड़कर जनता-जनार्दन की सेवा करते रहने की उमंग आपमें आरम्भ से ही है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आपके द्वारा सम्पादित 'हलधर' पत्र है।" सामान्यतः समस्त बिहार और विशेषतः छोटा नागपुर क्षेत्र के प्रति की गई आपकी सेवाएँ सदा अविस्मरणीय रहेंगी। सन् 1928 में आपने जहाँ तिरहुत-प्रमंडलीय रौनियार वैश्य सभा के पाँचवें अधिवेशन की अध्यक्षता की थी वहाँ सन् 1951 में अखिल भारतीय रौनियार वैश्य महासभा के 11वें अधिवेशन के सभापति भी आप रहे थे।

आपने बिहार में 'पुस्तकालय-आन्दोलन' को चलाकर साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की थी। यह आपके ही सत्प्रयास का सुपरिणाम है कि डालटेनगंज के 'महावीर पुस्तकालय' तथा 'हिन्दी पुस्तकालय' आज वहाँ की जनता की उल्लेखनीय सेवा कर रहे हैं। आप जहाँ निर्भीक तथा लगनशील पत्रकार थे वहाँ आपने साहित्य-निर्माण की दिशा में भी अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था। आपके द्वारा रचित 'कंगाल की बेटी', 'कोहड़ा पाण्डे', 'वीर लक्ष्मण', 'त्यागी भरत', 'बालक विनोद', 'बालिका विनोद', 'ऐंठूसिंह', 'आदर्श विवाह', 'कुरीति निवारण', 'सुनीति संचारण', 'आदर्श विमाता', 'आदर्श नारी', 'छोटा नागपुर का इतिहास', 'बाल व्यायाम', 'जातीय संगठन', 'पत्र प्रभाकर', 'देव माहात्म्य', 'सरल शुभंकरी', 'गृहिणी', 'संगीत', 'वैश्य कर्म', 'पलामू का ऐतिहासिक अध्ययन' आदि दो दर्जन पुस्तकें इसकी साक्षी हैं।

आपका निधन 14 जनवरी सन् 1978 को हुआ था।

श्री हितनारायण सिंह

श्री सिंह का जन्म पटना जिले के तारनपुर नामक ग्राम के एक नरवरिया क्षत्रिय परिवार में सन् 1803 में हुआ था। यह ग्राम पुनपुन नामक नदी के किनारे पर अवस्थित है। आपके पिता ठाकुर तालेश्वरसिंह अच्छे साहित्य-प्रेमी व्यक्ति थे।

श्री हितनारायणसिंह अच्छे समाज-सुधारक होने के साथ-साथ आयुर्वेद में भी अच्छी रुचि रखते थे और आपने जन-साधारण के हित के लिए आयुर्वेद-सम्बन्धी एक ग्रन्थ की भी रचना की थी जो अब उपलब्ध नहीं होता। आप एक उत्कृष्ट गद्य-लेखक होने के साथ-साथ कुशल कवि भी थे। हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी पर भी आपका अद्भुत अधिकार था।

आपका निधन सन् 1886 में हुआ था।

श्री हिम्मतलाल इच्छालाल दालिया

श्री दालिया का जन्म 2 अक्तूबर सन् 1913 को गुजरात प्रदेश के खम्भात नामक स्थान में हुआ था। आपने महात्मा गान्धी के आह्वान पर सन् 1939 से सन् 1965 तक गुजरात प्रदेश में हिन्दी के प्रचार का कार्य किया था। बी०ए०तक की शिक्षा प्राप्त करके आपने 'आणंद' के दादरा हाईस्कूल में सात साल तक शिक्षण का कार्य करने के उपरान्त हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र को अपनाया था। सन् 1944 में जब आपका अपने क्षेत्र के शासकों से मनमुटाव हो गया तो आपने 'प्रजामण्डल' का गठन करके उसका मंत्री पद सँभाला था।

आपने हिन्दी-प्रचार के कार्य के साथ-साथ खम्भात की पिछड़ी जातियों में श्री परसुखलाल शाह-जैसे उत्साही कार्यकर्ताओं के सहयोग से सन् 1943 में कई प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्र भी स्थापित किए थे। आपने हिन्दी-प्रचार तथा प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्रों के कार्य के अतिरिक्त 'संकट' नाम से एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका भी सम्पादित की थी।

आपका निधन 6 जून सन् 1965 को हुआ था।

डॉ० हिरण्मय

डॉ० हिरण्मय का जन्म कर्नाटक प्रदेश की मैसूर रियासत के कड़तल नामक ग्राम में 25 अगस्त सन् 1911 को हुआ था। अपनी मातृभाषा कन्नड होते हुए भी आपने काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके वहाँ से ही 'हिन्दी और कन्नड में भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। आपके इस शोध-प्रबन्ध के निर्देशक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी थे।

आपने सन् 1930 में पढ़ाई छोड़कर नमक-सत्याग्रह में भाग लिया था। नमक बनाने के अपराध में आपको 1 वर्ष की कठिन सजा दी गई थी। गान्धी-इरविन-समझौते के उपरान्त आप जब जेल से रिहा हुए तो हिन्दी-प्रचार के कार्य में लग गए। कर्नाटक की अनेक हिन्दी-प्रचार-संस्थाओं से सम्बद्ध रहकर आपने उस क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार-कार्य को आगे बढ़ाने में प्रशंसनीय सहयोग दिया। आप मैसूर क्षेत्र के प्रथम हिन्दी शोधकर्ता के रूप में जहाँ अभिनन्दनीय हैं, वहाँ मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से भी अनेक वर्ष तक सम्बद्ध रहे थे।
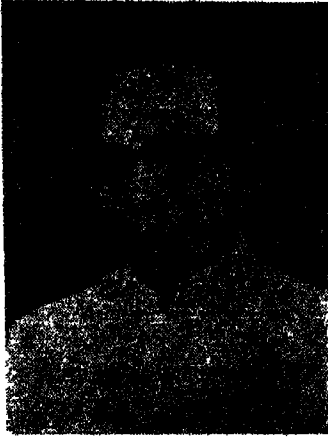
आपने जहाँ साहित्य अकादेमी के लिए कन्नड के प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यास 'शान्तला' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया वहाँ कन्नड में भी हिन्दी की अनेक रचनाओं को अनूदित करके उसकी महत्ता प्रस्थापित की। आपके शोध प्रबन्ध पर उत्तर प्रदेश सरकार तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने क्रमशः 500 तथा 1000 रुपये का पुरस्कार भी प्रदान किया था।

आपका निधन 67 वर्ष की आयु में 25 अप्रैल सन् 1977 को बंगलौर में हुआ था।

डॉ० हीरानन्द शास्त्री

डॉ० हीरानन्दजी शास्त्री का जन्म संस्कृत वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान् और ज्योतिर्विद पं० मूलराज शर्मा के यहाँ सन् 1864 में लाहौर में हुआ था। आप लाहौर के 'ओरियण्टल कालेज' से एम० ए० एम० ओ० एल० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके वहाँ पर ही 'इतिहास' विषय के प्राध्यापक हो गए थे। इसके उपरान्त आप भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग की सेवा में चले गए और इसी विभाग की पुरालेख-सेवा के अध्यक्ष पद से सन् 1933 के अन्त में अवकाश ग्रहण किया।

देवनागरी लिपि के खोजी विद्वान् के रूप में आपका विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन दिनों आप भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में थे उन दिनों कसिया (कुशीनगर, गोरखपुर), सारनाथ तथा नालन्दा आदि के महत्त्वपूर्ण उत्खनन आपकी ही देख-रेख में सम्पन्न हुए थे। पंजाब के पर्वतीय प्रदेश के पुरातत्त्व और अवशेषों का सर्वेक्षण भी आपने ही किया था। आपके ही तत्त्वावधान में स्वतन्त्रता से पूर्व जम्मू-कश्मीर राज्य में पुरातत्व विभाग का संगठन हुआ था और आपने अपने अथक परिश्रम तथा अनवरत अध्यवसाय से वहाँ श्रीनगर में एक संग्रहालय की स्थापना भी की थी।

शिला-लेख-विशारद के रूप में आपने देश की जो सेवाएँ की हैं, उनका पुरातत्त्व-विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त उल्लेखनीय स्थान है। अमरेली में मिले हुए कुमारगुप्त प्रथम के समय में प्रयुक्त चाँदी के सिक्कों पर अंकित अक्षरों की लिपि का निर्णय भी आपने ही किया था। भारत सरकार की सेवा से विश्राम ग्रहण करने के उपरान्त आपने जब बड़ौदा राज्य के आमन्त्रण पर वहाँ पुरातत्त्व विभाग का संगठन किया था तो वहाँ पर बहुत-सी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ आपके प्रयास से उपलब्ध हुई
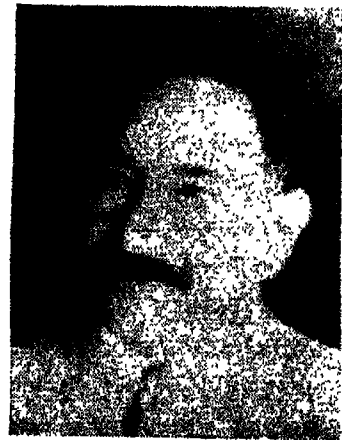
थीं। गुजरात में द्वारका के निकट 'राम-लक्ष्मण-मंदिर' की खोज आपके ही अध्यवसाय का सुपरिणाम थी। 'उटकमण्ड' की संघोळरा भूमि में महाभारतकालीन प्राचीन मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों की खुदाई के समय ब्राह्मी लिपि का निर्णय करना आपका ही कार्य था।

आपने पुरातत्व शास्त्र से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण शोध लेख लिखने के अतिरिक्त चित्र-कला और मुद्रा-शास्त्र के सम्बन्ध में भी अनेक पुस्तकें लिखी थीं। अँग्रेजी में प्रकाशित 'एपिग्राफिया इण्डिका' के अतिरिक्त 'इण्डियन एंटिक्वेरी' नामक पत्रिकाओं का सम्पादन भी आपने किया था।

हिन्दी के ख्याति-प्राप्त साहित्यकार श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आपके ही सुपुत्र हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि वात्स्यायनजी ने 'भारतीय ज्ञानपीठ' द्वारा प्राप्त अपनी एक लाख रुपए की राशि में इतना ही धन और अपनी ओर से मिलाकर 'वत्सल निधि' नाम से एक ऐसे ट्रस्ट की स्थापना की है जिसके द्वारा 'साहित्य और भाषा की संवर्द्धना; साहित्यकारों और विशेषतः युवा लेखकों की सहायता; साहित्यिक अभिव्यक्ति, प्रतिमानों, संस्कारों का तथा साहित्य-विवेक और सौन्दर्य-बोध का विकास; अन्य सभी सम्बद्ध आनुषंगिक कार्य' होगा। इस ट्रस्ट की ओर से जो पहली व्याख्यानमाला 19 से 23 दिसम्बर सन् 1980 तक नई दिल्ली में हुई थी उसका नाम वात्स्यायनजी ने अपने पिता 'डॉ० हीरानन्द शास्त्री स्मारक व्याख्यान-माला' ही रखा था। इस व्याख्यानमाला के अन्तर्गत भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रख्यात विद्वान् डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डे के जो 4 भाषण हुए उनके विषय क्रमशः 'सनातनता और ऐतिहासिकता', 'आध्यात्मिकता और योग', 'सामाजिक यथार्थ और नैतिक आदर्श' तथा 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' थे।

आपका निधन 19 अगस्त सन् 1946 में राजकोट (गुजरात) में हुआ था। उन दिनों आप बड़ौदा राज्य के पुरातत्त्व विभाग के निदेशक के रूप में कार्य करते थे।

मुन्शी हीरालाल आलौरी

श्री आलौरीजी का जन्म सन् 1888 में झालावाड़ (राजस्थान) में हुआ था। आप हिन्दी साहित्य के अनन्य प्रेमी और विद्याव्यसनी व्यक्ति थे। हिन्दी में प्रकाशित होने वाली नई-से-नई पुस्तक को मँगाकर पढ़ना और उसे अपने निजी पुस्तकालय में रखना आपका व्यसन था। आपके निजी पुस्तकालय में हिन्दी के अनेक अनुपलब्ध ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था। आपके परिवार में अब आपकी निधि को आपके दामाद ही सँजोये हुए हैं।

आपने अपनी साहित्य-सम्बन्धी मान्यताओं के प्रचार तथा प्रसार के लिए 'राजस्थान साहित्यमाला' नाम से एक प्रकाशन संस्था का सूत्रपात भी किया था। इस संस्था की ओर से जहाँ आपकी अपनी लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं वहाँ दूसरे लेखकों की पुस्तकें भी प्रकाशित हुआ करती थीं। आपके द्वारा लिखित पुस्तकों में 'मानव सन्तति शास्त्र' (1914) तथा 'राजसत्ता' (1921) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'राजसत्ता' मराठी के प्रख्यात लेखक श्री हरनारायण आप्टे की लोकप्रिय कृति का हिन्दी अनुवाद है।

आपकी बहुत-सी पुस्तकें अभी भी पाण्डुलिपि के रूप में सुरक्षित हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—'राजकुमार', 'समाज-रचना', 'पथरी कोयला', (खनिज), 'जलबिन्दु का प्रवास' (वैज्ञानिक) तथा 'व्यवहार शास्त्र' आदि।

आपका निधन सन् 1944 में हुआ था।

डॉ० हीरालाल जैन

डॉ० हीरालालजी का जन्म मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जनपद के गोंगई नामक ग्राम में सन् 1899 में हुआ था। नागपुर विश्वविद्यालय से उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने अमरावती के किंग एडवर्ड कालेज में जुलाई सन् 1925 से जो अध्यापन-कार्य प्रारम्भ किया था उसकी समाप्ति सन् 1954 में उस समय हुई जबकि आपने नागपुर के मारिस कालेज से अवकाश ग्रहण किया था। लेकिन इसके उपरान्त भी आपके विद्याव्यसनी स्वभाव ने आपको शान्त नहीं बैठने दिया और आप वैशाली (मुजफ्फरपुर) के 'जैन तत्त्व ज्ञान एवं अहिंसा शोध संस्थान' के स्नातकोत्तर विभाग के संस्थापक-संचालक हो गए। इस पद पर आपने सन् 1955 से

सन् 1961 तक अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य किया था। इसके उपरान्त आप जबलपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत-पालि-प्राकृत भाषाओं के विभागाध्यक्ष हो गए और वहाँ पर आप सन् 1969 तक कार्य-रत रहे।

अपने इस शिक्षण-काल में आपने जहाँ पालि-प्राकृत तथा संस्कृत-वाङ्मय की अभिवृद्धि में उल्लेखनीय योगदान किया था वहाँ आप 'ओरियन्टल कान्फ्रेंस' के क्रमशः सन् 1944, सन् 1966 तथा सन् 1970 के अधिवेशनों में उसकी प्राकृत व जैन धर्म शाखा के अध्यक्ष भी रहे थे। आप भारतीय ज्ञानपीठ की 'मूर्ति-देवी ग्रन्थमाला', 'माणिकचन्द्र ग्रन्थ-माला', तथा 'जीवराज ग्रन्थमाला' के सम्पादक भी रहे थे। इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत लगभग पौने दो सौ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।
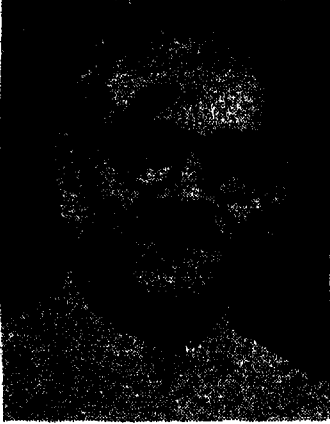
डॉ० जैन ने जहाँ अपने जीवन के प्रारम्भ से ही जैन-धर्म-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों के निर्माण का कार्य किया था वहाँ 'भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान' नामक ग्रन्थ के लेखक के रूप में भी आपकी देन सर्वथा अभिनन्दनीय कही जा सकती है। आपने जहाँ जैन-तत्त्व-ज्ञान सम्बन्धी महान् ग्रन्थ 'षट्खण्डागम' का सोलह भागों में सम्पादन किया था वहाँ कारंजा के जैन-शास्त्र-भण्डारों के सूची-निर्माण का कार्य भी सम्पन्न किया था। भारतीय ज्ञानपीठ की संचालन-समिति के भी आप प्रतिष्ठित सदस्य थे।

आपका निधन 13 मार्च सन् 1973 को हुआ था।

श्री हीरालाल पाण्डेय 'व्यग्र'

श्री 'व्यग्र' जी का जन्म सन् 1904 में उत्तर प्रदेश के फतहपुर जनपद के कापिल नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता पं० हनुमानप्रसाद पाण्डेय अपने क्षेत्र के एक सम्भ्रान्त नागरिक थे। श्री 'व्यग्र' जी की शिक्षा-दीक्षा कांग्रेस के सुप्रसिद्ध नेता तथा हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा की देख-रेख में 'मारवाड़ी विद्यालय' में हुई थी। उनके सम्पर्क तथा सान्निध्य के कारण ही आपमें देश-प्रेम की भावनाएँ और साहित्य के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ था।

जब सन् 1925 में भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में कानपुर में अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन हुआ था तब कांग्रेस के ही पण्डाल में 'हिन्दी साहित्य मण्डल, कानपुर' के तत्त्वावधान में जो कवि-सम्मेलन हुआ था उसमें आप भी सम्मिलित हुए थे। आपका सम्बन्ध 'हिन्दी साहित्य मण्डल' से जीवन-भर अत्यन्त घनिष्ठ रहा था।

आपकी लगभग 8 पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, जिनमें 'व्यग्र-बम-गोले', 'गजब की होली' और 'हिन्दुओं पर वज्राघात' आदि ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गई थीं। इन रचनाओं के कारण आपको एक वर्ष का कारावास तथा अर्थ-दण्ड भी भुगतना पड़ा था। आपके काव्य में ओजस्विता कूट-कूटकर भरी हुई थी। आपने 'तमञ्चा' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था।

आपका निधन सन् 1979 में कानपुर में ही हुआ था।

श्री हीरालाल शास्त्री

श्री शास्त्रीजी का जन्म 24 नवम्बर सन् 1899 को

राजस्थान के जयपुर क्षेत्र के जोबनेर कस्बे में हुआ था। आपके पिता श्री श्रीनारायण जोशी एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। आपकी
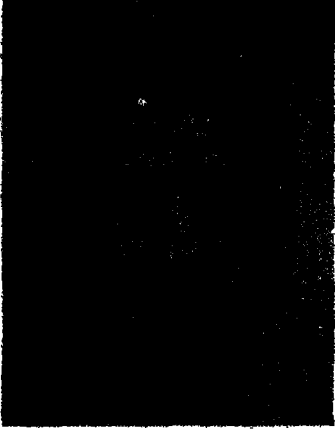
माताजी का निधन आपके जन्म के केवल 16 मास बाद ही हो गया था। मातृ-विहीन पुत्र का लालन-पालन आपके पिताजी ने बड़ी ममता से किया था। प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम की पाठशाला में ही प्राप्त करके आपने 16 वर्ष की आयु में जोबनेर हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बाद में आपने क्रमशः सन् 1920 में साहित्य-शास्त्री तथा सन् 1921 में बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं।

शिक्षा-समाप्ति के उपरान्त आपको जयपुर राज्य के तत्कालीन गृहमंत्री श्री गोपीनाथ पुरोहित ने राज्य की सेवा में ले लिया और लगभग 6 वर्ष तक आपने अनेक पदों पर निष्ठापूर्वक कार्य किया। इस बीच आपकी भेंट प्रख्यात क्रान्तिकारी नेता श्री अर्जुनलाल सेठी से हुई और उनकी प्रेरणा से 7 दिसम्बर सन् 1927 को शास्त्रीजी ने अपने पद से त्याग-पत्र देकर शासन की सेवा से सर्वथा मुक्ति पा ली। इसके उपरान्त आपने 12 मई सन् 1929 को जयपुर राज्य की निवाई तहसील के वनस्थली नामक ग्राम में 'जीवन कुटीर' नाम से एक संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य नए ग्राम-समाज की रचना करना था।

इसी बीच सन् 1931 में आपने जयपुर में 'प्रजा मण्डल' का प्रारम्भ किया था जिसका उद्देश्य उस क्षेत्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना कराना था। अपनी इस संस्था के माध्यम से शास्त्रीजी ने राज्य की जनता की अत्यन्त उल्लेखनीय सेवा की थी और इस प्रसंग में आपको एकाधिक बार जेल यातनाएँ भी सहनी पड़ी थीं। भारत छोड़ो आन्दोलन में भी आपकी अत्यन्त उल्लेखनीय भूमिका रही थी। अपनी अनेक विध सेवाओं के कारण शास्त्रीजी का नाम धीरे-धीरे अपनी विशिष्टता के लिए विख्यात होता जा रहा था और एक दिन वह आया जबकि स्वतन्त्रता के उपरान्त जयपुर में उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई और शास्त्रीजी उसके पहले लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल के मुख्यमन्त्री बने। इसके उपरान्त जब विशाल राजस्थान का निर्माण हुआ और 30 मार्च सन् 1949 को सरदार पटेल के द्वारा नए राजस्थान राज्य का उद्घाटन हुआ तब भी आप ही प्रथम मुख्यमन्त्री बने थे।

सामाजिक तथा राजनैतिक जागरण के क्षेत्र में जहाँ शास्त्रीजी की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं वहाँ शिक्षा के क्षेत्र में भी आपकी देन सर्वथा अभिनन्दनीय है। अप्रैल सन् 1935 में जब आपकी एकमात्र पुत्री शान्ताबाई का आकस्मिक निधन हुआ तब उसकी स्मृति में शास्त्री-दम्पति ने वनस्थली ग्राम में अक्तूबर सन् 1935 में शान्ताबाई शिक्षा कुटीर नामक जिस छोटे-से विद्यालय की स्थापना की थी किसे पता था कि वह कालान्तर में 'वनस्थली विद्यापीठ' के रूप में प्रख्यात होकर देश का एक प्रमुख शिक्षण-संस्थान बन जायगा। शास्त्रीजी एक अच्छे कार्यकर्ता होने के साथ-साथ सहृदय और फक्कड़ स्वभाव के कवि भी थे। आपकी फक्कड़ता तथा साहस का परिचय आपकी इन पंक्तियों से भली प्रकार मिल जाता है :

मुश्किलों की क्या कहें, हर रोज वे आती रहें।
सामना उनका करें, हर रोज वे जाती रहें॥
टक्कर हमारी हो रही है, जोर की चट्टान से।
चट्टान चकनाचूर होगी, कह दिया भगवान् से॥

शास्त्रीजी की ध्येयनिष्ठा तथा कर्मतत्परता का सही चित्र आपके इस पद में उपस्थित किया गया है। वास्तव में अपने संघर्षमय जीवन में शास्त्रीजी को बहुत-कुछ त्याग करना पड़ा था।

आपका निधन सन् 1974 में हुआ था।

श्री हृषीकेश चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी का जन्म 22 दिसम्बर सन् 1907 को आगरा में हुआ था। आप ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली तथा संस्कृत में काव्य-रचना करने में बहुत दक्ष थे। पारिवारिक

संस्कारों के कारण छात्र-जीवन से ही कविता के प्रति आपका झुकाव था। अपनी बड़ी बहन श्रीमती इन्द्रकुमारी देवी से प्रेरणा पाकर आपने कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया था और थोड़े ही दिनों में काव्य-रचना करने में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली थी कि उसे देखकर आश्चर्य होता था।

आपने जहाँ संस्कृत की पद्धति पर विलोम काव्य लिखे वहाँ चित्रकाव्य की रचना करके भी आपने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया था। आपने जहाँ संस्कृत के 'मेघदूत' का समश्लोकी अनुवाद किया था वहाँ संस्कृत में भी 'श्री कृष्ण ताण्डवस्तोत्रम्' नामक पुस्तक की रचना की थी। आपकी 'रामकृष्ण काव्य' और 'राम-कृष्णायन' नामक रचनाओं की यह विशेषता है कि यदि एक ओर से पढ़ने पर उसमें राम-कथा का वर्णन दिखाई देता है तो दूसरी ओर से पढ़ने पर कृष्ण-कथा का।

आप जहाँ गम्भीर प्रकृति के रचनाकार थे वहाँ हास्य रचना करने में भी सर्वथा बेजोड़ थे। आपकी 'विजया 'वाटिका', 'भंग का लोटा' तथा 'छेड़-छाड़' नामक रचनाएँ इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। गीत-काव्य-लेखन में भी आपकी प्रतिभा सर्वथा अद्भुत थी। आपकी ऐसी रचनाएँ 'हृषीकेश गीतांजलि' तथा 'रसरंग' पुस्तकों में समाविष्ट हैं। आपकी 'वृद्धनाविक', 'संयुक्त वर्ण विज्ञान', 'चित्र वैचित्र्य', 'श्रीकृष्ण नाम माला' तथा 'ब्रज माधुरी आदि रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

आप जहाँ उच्चकोटि के कवि और सहृदय साहित्यकार थे वहाँ पत्रकार के रूप में भी आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। आपने अगस्त सन् 1947 से दिसम्बर सन् 1950 तक लगभग साढ़े तीन वर्ष अपने जातीय पत्र 'चतुर्वेदी' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। अपने इस सम्पादन-काल में आपने इस पत्र को विविध उपयोगी सामग्री से सर्वथा आकर्षक बनाने का भरपूर प्रयास किया था। जब देश स्वतन्त्र हुआ तब उसके सम्पादकीय का आरम्भ आपने इस पद्य से किया था :

स्वतन्त्रता भारतवर्ष को मिली,
विदेशियों की विभुता विदा हुई।
फली अहिंसा, बलिदान साधना,
खिली कली मानस-कंज की नई।

आप जहाँ उच्चकोटि के कवि और साहित्यकार थे वहाँ विभिन्न उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करने की दिशा में भी आपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। आपका निवास एक अद्भुतालय ही कहा जा सकता है। उसकी काँचदार बन्द अलमारियों में जिन वस्तुओं का संग्रह है उनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है—अरहर के दाने पर संस्कृत श्लोक, गेहूँ के दाने पर एक दोहा (एक ही ओर), सरसों के दाने पर चौबीस अक्षर, तिल पर लिखे हुए कुछ अक्षर, चाँदी के वर्क पर लिखे 960 अक्षर, पानी पर तैरने वाली पत्थर की कुंडी, हिलने वाला पत्थर, दक्षिणावर्ती शंख, 111 वर्ष का केलेण्डर, संवत् 1809 (1752) का हस्तलिखित पंचांग और हिन्दी के प्रथम अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के कवियों का चित्र आदि-आदि। चतुर्वेदीजी ऐसे साहित्यकार थे जिनके सम्पर्क में आकर व्यक्ति बड़ी प्रेरणा ग्रहण करता था। आपका निवास सदा सर्वदा काव्य-चर्चा से सुवासित रहा करता था। आपके निधन के उपरान्त आपके सुपुत्र श्री सतीश-चन्द्र 'प्रेमी' ने आपकी रचनाओं को 'हृषीकेश रचनावली' नाम से प्रकाशित करके एक अत्यन्त उपयोगी कार्य किया है।

आपका निधन 23 सितम्बर सन् 1970 को हुआ था।

पण्डित हृषीकेश शर्मा

श्री शर्माजी का जन्म 14 फरवरी सन् 1891 को दतिया (मध्यप्रदेश) में हुआ था। आपके पिता श्री हरिकृष्ण शास्त्री तैलंग ब्राह्मण थे और वे मूल रूप से सागर के निवासी थे। यह वही सागर है जहाँ हिन्दी के रीतिकालीन ख्याति-प्राप्त कवि पद्माकर भट्ट ने जन्म लिया था। वास्तव में शर्माजी उनके परिवार से ही सम्बन्धित थे।

दक्षिण भारत में जिन व्यक्तियों ने सर्वप्रथम हिन्दी के

प्रचार का कार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रारम्भ किया था उनमें स्वामी सत्यदेव 'परिव्राजक' और देवदास गान्धी के साथ ही शर्माजी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपने मद्रास जाकर हिन्दी के प्रचार-कार्य की जो नींव डाली थी कालान्तर में वही पल्लवित और पुष्पित होकर दक्षिण में हिन्दी के प्रचार का महावृक्ष बनी। मद्रास के बाद शर्माजी को आन्ध्र-प्रदेश में जाकर हिन्दी-प्रचार का कार्य करना पड़ा। दक्षिण में जाकर केवल रोटी-कपड़ा लेकर हिन्दी का काम करने वाले स्वयंसेवकों की माँग जब महात्मा गान्धी ने सन् 1918 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर-अधिवेशन में अध्यक्ष पद से की तो शर्माजी ने सबसे पहले अपना नाम लिखाया था। तब से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक आप हिन्दी के प्रचार-कार्य में ही लगे रहे।

मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना के उपरान्त आपने जहाँ अनेक हिन्दी विद्यालय खोले वहाँ सभा के मुखपत्र 'हिन्दी प्रचारक' के सम्पादन में भी अपना अनन्य सहयोग दिया था। सन् 1936 में नागपुर में हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के निर्णयानुसार प्रेमचन्दजी के 'हंस' नामक पत्र को जब नया रूप दिया गया तो शर्माजी ने उसमें भी अपना योगदान दिया। सन् 1937 में महात्मा गान्धी की प्रेरणा से वर्धा में जब राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति की स्थापना हुई तब उसके संचालन का कार्य श्री शर्माजी को ही सौंपा गया था। वर्धा में रहकर आपने सामान्यतः समस्त महाराष्ट्र और विशेषतः विदर्भ प्रदेश में हिन्दी प्रचार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सभा की ओर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'राष्ट्र भारती' के सम्पादन का भी कार्य आपने बहुत दिन तक किया था।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप नागपुर आ गए थे और वहाँ पर विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संचालन का कार्य कर रहे थे। उन्हीं दिनों आपने नागपुर के 'ऑल इण्डिया रिपोर्टर' नामक संस्थान के सहयोग से 'भारती' नामक एक उच्चकोटि की मासिक हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन भी किया था। इसके सम्पादन के दिनों में भी आपने हिन्दी के प्रचार और प्रसार के कार्य को आगे बढ़ाया था। आपकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् 1970 में जहाँ आपको 'साहित्य वाचस्पति' की मानद उपाधि प्रदान की थी वहाँ नागपुर के हिन्दी प्रेमियों ने 'विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की ओर से नवम्बर 1971 में आपका भावभीना सार्वजनिक अभिनन्दन किया था।

आपका निधन सन् 1977 में इन्दौर में हुआ था।

सर सेठ हुकमचन्द

सर सेठ हुकमचन्द का जन्म सन् 1874 में इन्दौर (मध्य-प्रदेश) में हुआ था। आप देश के प्रमुख उद्योगपतियों में अग्रगण्य थे। लक्ष्मी के कृपा-पात्र होने के साथ-साथ आप सरस्वती के भी अनन्य भक्त थे। आपने जहाँ देश की अनेक साहित्यिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं के निर्माण में अपना अनन्य सहयोग दिया था, वहाँ हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति की गई आपकी सेवाएँ भी अविस्मरणीय हैं।

मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर की संस्थापना में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जो दो अधिवेशन (क्रमशः सन् 1918 तथा सन् 1935) इन्दौर में महात्मा गान्धी की

अध्यक्षता में सम्पन्न हुए थे। उनकी स्वागत-समितियों को आपका महत्त्वपूर्ण आर्थिक सहयोग सुलभ हुआ था। 'हिन्दी साहित्य समिति' के जिस भवन की आधार-शिला महात्मा गान्धी ने सन् 1918 के सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर रखी थी उस भवन के निर्माण में आपकी प्रमुख भूमिका रही थी। समिति का आज जो रूप है और समिति ने अपनी विविध प्रवृत्तियों तथा अपनी मासिक पत्रिका 'वीणा' के द्वारा सामान्यतः समस्त हिन्दी-भाषी समुदाय और विशेषतः मध्यप्रदेश अंचल की जो उल्लेखनीय सेवा की है वह आप-जैसे उदार हिन्दी-प्रेमी की सौजन्यपूर्ण सहायता का ही सुपरिणाम है।

आपका निधन सन् 1969 में हुआ था।

श्री हुकमचन्द 'नारद'

श्री नारदजी का जन्म मध्यप्रदेश के सतना नामक नगर में सन् 1903 में हुआ था। आप मध्यप्रदेश के पत्रकारों में अपना एक विशेष स्थान रखते थे। आपकी निर्भीकता तथा निष्पक्षता वहाँ के पत्रकारों के लिए एक आदर्श का काम करती थी।

आपने रीवाँ, सतना और मैहर के कार्य-काल में आपने वहाँ के सामन्ती शासन से डटकर लोहा लिया था और उसकी खूब पोल खोली थी। इस प्रसंग में आपको राज्य से निर्वासन तक का दण्ड भुगतना पड़ा था। यह आपकी निर्भीकता का ही द्योतक है कि आपने बड़ागाँव की कुछ महिलाओं के साथ व्यभिचार में निमग्न अँग्रेज सैनिकों की खूब डटकर भर्त्सना की थी। यही नहीं कि आप उनकी भर्त्सना करके ही चुप रह गए हों, आपने उनको इसका दण्ड भी दिलवाया था।

मध्यप्रदेश में श्रमजीवी पत्रकारों की प्रतिष्ठा को बढ़ाने और शासन से उन्हें अधिकाधिक सुविधाएँ दिलाने के प्रसंग में आपको बहुत संघर्ष करना पड़ा था और इसके लिए आपको जबलपुर तथा बम्बई में कई बार काल-कोठरी की नृशंस यातनाएँ भी भुगतनी पड़ी थीं।

आपका अपने पत्रकार-जीवन में कई पत्रों से सम्बन्ध रहा था; जिनमें 'लोकमत' और 'साथी' प्रमुख हैं। प्रख्यात हिन्दी-व्यंग्य-मासिक 'हिन्दी पंच' के आप संस्थापक तथा सम्पादक भी थे।

आपका निधन सन् 1953 में हुआ था।

डॉ० हेमचन्द्र जोशी

डॉ० जोशीजी का जन्म 21 जून सन् 1894 को उत्तर प्रदेश के नैनीताल नामक स्थान में हुआ था। आप सुप्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक एवं गम्भीर प्रकृति के साहित्य-सेवी थे। एम० ए० तथा पेरिस से डी०लिट्० की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त पत्रकारिता से आपने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया था। आपने अपनी पत्रकारिता का प्रारम्भ पंडित झाबरमल्ल शर्मा तथा कुँ० गणेशसिंह भदौरिया के 'कलकत्ता समाचार' से किया था। 'कलकत्ता समाचार' के अतिरिक्त आपने अलमोड़ा से 'कूर्मांचल केसरी' नामक एक सचित्र साप्ताहिक पत्र भी निकाला था।

आपने सन् 1934 में अपने छोटे भाई श्री इलाचन्द्र जोशी के साथ मिलकर कलकत्ता से 'विश्ववाणी' नामक एक समाचार-विचार-साप्ताहिक प्रारम्भ किया था और तद-नन्तर आप मासिक 'विश्वमित्र' के सम्पादक हो गए थे। अपने सम्पादन-काल में आपने 'विश्वमित्र' को विविध विषय से विभूषित करके अच्छा पत्र बना दिया था। बम्बई से प्रकाशित होने वाले सुप्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'धर्मयुग' के आदिसम्पादक भी आप ही थे।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी आपकी देन सर्वथा महत्त्व-पूर्ण है। आपने अपनी मातृभाषा 'कुमायूँनी' के शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी अनेक उपयोगी लेख लिखे थे।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से प्रकाशित श्री के० एम० मैक्समूलर द्वारा लिखित ग्रन्थ का आपके द्वारा किया गया अनुवाद 'भाषा विज्ञान पर भाषण' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ से आपके भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिकोण का स्पष्ट आभास हो जाता है। आपकी अन्य प्रकाशित पुस्तकों में 'स्वाधीनता के सिद्धान्त', 'भारत का इतिहास' और 'विक्रमादित्य' आदि उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा किया गया पिशेल के 'प्राकृत व्याकरण' का हिन्दी अनुवाद भी हिन्दी की विशेष उपलब्धि है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन बिहार भाषा परिषद् ने किया है।
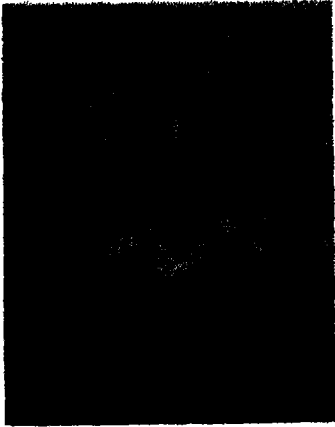
आप हिन्दी तथा संस्कृत के अतिरिक्त अँग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन आदि कई भाषाओं के विशेषज्ञ होने के साथ-साथ 'कोश-कला' के भी निष्णात विद्वान् थे। आपकी हिन्दी भाषा तथा साहित्य-सम्बन्धी उल्लेखनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में 'सरस्वती' के 'हीरक जयन्ती समारोह' के अवसर पर आपका भी अभिनन्दन किया गया था। आपने कई वर्ष तक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी विश्व-कोश' के सम्पादन में भी अपना विशिष्ट सहयोग दिया था। सभा के लिए आपने 'व्युत्पत्ति कोश' भी तैयार किया था।

आपका निधन 16 अक्तूबर सन् 1967 को हुआ था।

श्री हेमचन्द्र मोदी

श्री हेमचन्द्रजी का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जनपद के देवरी नामक स्थान पर सन् 1909 में हुआ था। आप हिन्दी के प्रख्यात लेखक तथा प्रकाशक श्री नाथूराम 'प्रेमी' के एक-मात्र सुपुत्र थे। यद्यपि आपको सन् 1924 में विद्याध्ययन के लिए सागर के गवर्नमेंट हाईस्कूल में प्रविष्ट किया गया था, किन्तु स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण आप बम्बई चले गए और वहीं पर आपकी सारी शिक्षा हुई थी। आपके पिता श्री नाथूराम 'प्रेमी' वहाँ 'हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर' नामक संस्था के माध्यम से 'हिन्दी प्रकाशन' का कार्य किया करते थे।

सन् 1927 में 18 वर्ष की आयु में आपने वहाँ की प्रमुख संस्था मारवाड़ी विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा आगे की पढ़ाई के लिए 'सैन्ट जेवियर्स कालेज' में दाखिला ले लिया। वहाँ पर पहली ही वार्षिक परीक्षा में गणित विषय में फेल हो जाने के कारण आपने आगे पढ़ना छोड़ दिया। यद्यपि श्री मोदी कालेज में केवल एक वर्ष ही पढ़े थे, किन्तु अपने स्वतन्त्र अध्ययन एवं अध्यवसाय से आपने अँग्रेजी साहित्य की अच्छी योग्यता अर्जित करने के साथ-साथ संस्कृत का अपना ज्ञान भी बहुत बढ़ा लिया था। यहाँ तक कि योग विषयक जितने भी ग्रन्थ आपको उपलब्ध हो सके थे उन सबका गहन अध्ययन भी आपने कर लिया था। वेदों, उपनिषदों और जैन-ग्रन्थों का स्वाध्याय भी आपने बड़ी तत्परता से किया था,

आपकी लेखन-प्रतिभा का उस समय पर्याप्त विकास हुआ था जब आपने प्रख्यात जैन विद्वान् श्री जुगलकिशोर मुख्तार के अनुरोध पर 'अनेकान्त' पत्र के लिए 50-60 पृष्ठ की एक लेखमाला लिखी थी। इस लेखमाला के केवल 2-3 लेख ही प्रकाशित हो पाए थे कि 'अनेकान्त' बन्द हो गया और वह लेखमाला आगे नहीं छप सकी। आपको ज्योतिष शास्त्र में भी अत्यधिक रुचि थी और 'हस्त सामुद्रिक' के ज्ञान में तो आप अत्यन्त निष्णात थे। निरन्तर रोगी

रहने के कारण प्राकृतिक चिकित्सा की ओर आपका बहुत झुकाव था। यहाँ तक कि आपने प्राकृतिक चिकित्सा से सम्बन्धित 'उपवास चिकित्सा', 'जल चिकित्सा', 'मिट्टी की चिकित्सा' तथा 'ताप-चिकित्सा' आदि के अतिरिक्त आयुर्वेद के भी अनेक ग्रन्थों का पारायण किया था। डॉ० केलाग की 'रेशनल हेडरोथिरेपी' में तो आपकी इतनी रुचि बढ़ी थी कि आपने उसके विषय में 'सोप पत्तिक जल चिकित्सा-शास्त्र' नामक एक ग्रन्थ ही लिख डाला था, जो अभी तक अप्रकाशित है। अपनी मृत्यु से 1 वर्ष पूर्व जब आप कलकत्ता गए थे तब आप वहाँ से 'होम्योपैथी' से सम्बन्धित बंगला तथा अँग्रेजी के अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ भी खरीद लाए थे। विभिन्न चिकित्सा-शास्त्रों के पारायण के प्रसंग में आपने मनोविज्ञान, जैन-मनोविज्ञान और फ्रायड के भी अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया था।

महात्मा गान्धीजी के जीवन से श्री मोदीजी अत्यन्त प्रभावित थे। यही कारण है कि जब उनके द्वारा संस्थापित वर्धा की 'हिन्दी प्रचार सभा' की ओर से बम्बई में अहिन्दी-भाषी छात्रों के लिए हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था हुई तब आप भी वहाँ नियमित रूप से जाकर पढ़ाते रहे थे। इस सिलसिले में आपको अपनी साहित्यिक योग्यता बढ़ाने का भी समुचित सुअवसर प्राप्त हो गया था और आपने 'गोदान' 'शाहजहाँ' और 'बुद्धदेव' पर अच्छी आलोचनाएँ लिखी थीं। इसके अतिरिक्त 'विशाल भारत' में आपके कई अच्छे खोजपूर्ण लेख प्रकाशित हुए थे। हिन्दी-कहानियों का एक महत्त्वपूर्ण संकलन करने की भी आपकी योजना थी और आप अलंकार-प्रधान, विचार-प्रधान, भावना-प्रधान, विनोद-प्रधान, घटना प्रधान, इतिहास-प्रधान, विज्ञान-प्रधान तथा युद्ध-साहस-रोमांच-प्रधान आदि विविध प्रकार की कहानियाँ एकत्रित करके प्रत्येक कहानी की समीक्षा के साथ एक विस्तृत भूमिका लिखने में संलग्न थे कि अचानक आपका देहावसान हो गया। आपने 'ब्रह्मचर्य दर्शन' नामक एक और पुस्तक भी लिखी थी। अनुवाद में भी मोदीजी की पर्याप्त रुचि थी और 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई' की ओर से प्रकाशित होने वाली डी० एल० राय, बंकिम, शरत्, रवीन्द्र आदि अनेक बंगला-लेखकों की कृतियों के अनुवाद के साथ-साथ कई अँग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद-कार्य को आगे बढ़ाने में भी आपकी रुचि का विशेष हाथ था। सरल हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में भी मोदीजी की बहुत रुचि थी। इसका ज्वलन्त उदाहरण आपके द्वारा निर्मित 'सहज हिन्दुस्तानी' तथा 'हिन्दी का बुनियादी व्याकरण' नामक पुस्तकें हैं। आपने हिन्दी के प्रख्यात कथाकार और समीक्षक श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी से अनुरोध करके हिन्दी की कुछ अच्छी रीडरें भी तैयार कराई थीं। अपने निधन से कुछ दिन पूर्व स्वास्थ्य-सुधार के लिए आप 'चालीस गाँव' नामक स्थान पर जाकर रहने लगे थे। आपके निधन के उपरान्त आपकी स्मृति को स्थायित्व देने की दृष्टि से श्री यशपाल जैन ने 'हेमचन्द्र' नामक जो पुस्तक सन् 1944 में सम्पादित करके प्रकाशित कराई थी उससे मोदीजी के समग्र व्यक्तित्व का सम्यक् परिचय मिल जाता है।

आपका निधन 18 मई सन् 1942 को चालीस गाँव (मध्यप्रदेश) में हुआ था।

श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधुरी

श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधुरी का जन्म सितम्बर सन् 1868 में लाहौर में हुआ था। आप हिन्दी के अनन्य प्रेमी और सुलेखक श्री नवीनचन्द्र राय की सुपुत्री थीं। श्री राय उन दिनों लाहौर के ओरियंटल कालेज के प्रिंसिपल थे। वे विचारों से ब्रह्मसमाजी तथा स्त्री शिक्षा के बड़े समर्थक थे। श्रीमती हेमन्तकुमारी की शिक्षा उन्होंने आगरा के 'रोमन कैथोलिक कान्वेण्ट' में कराई थी। जब श्री राय ने अपनी पुत्री पर ईसाइयत का रंग चढ़ता हुआ देखा तो उन्होंने उसे अपने पास ही लाहौर बुला लिया था।

लाहौर में हेमन्तकुमारीजी को 'क्रिश्चियन गर्ल्स स्कूल' में दाखिल करके आप उन्हें घर पर ही धार्मिक शिक्षा देने लगे। क्योंकि बचपन में हेमन्तजी की माता का देहावसान हो गया था, अतः आपके पिता आपको अत्यधिक प्यार करते थे। लाहौर की शिक्षा समाप्त होने पर आपको कलकत्ता के 'बेथून स्कूल' में आगे की पढ़ाई करने के लिए भेज दिया गया। आप जब कलकत्ता से लौटीं तो सिलहट के श्री राजचन्द्र चौधुरी के साथ 2 नवम्बर सन् 1885 को ब्रह्म समाज के

नियमों के अनुसार आपका विवाह हो गया।

क्योंकि आपके पति आजीविका के सिलसिले में मध्य-भारत की रतलाम रियासत में नौकर होकर वहाँ चले गए थे, अतः आप भी सन् 1887 से सन् 1889 तक वहीं पर रहीं। समय काटने की दृष्टि से आप वहाँ की महारानी की अवैतनिक शिक्षिका हो गईं और वहाँ से ही आपने 'सुगृहिणी' नामक एक महिलोपयोगी पत्रिका निकलनी प्रारम्भ की थी। यह पत्रिका कई वर्ष तक सफलतापूर्वक चलती रही। जब आप लौटकर फिर सिलहट गईं तब वह पत्रिका बन्द हो गई।

सिलहट जाने पर आपने वहाँ 'महिला समिति' की स्थापना करके उसके माध्यम से नारी-जागरण का उल्लेखनीय कार्य किया। वहाँ के चीफ कमिश्नर से प्रार्थना करके आपने वहाँ पर एक कन्या पाठशाला भी खुलवाई थी, साथ ही वहाँ से आपने 'अन्तःपुर' नामक बंगला भाषा का एक मासिक पत्र भी निकाला था।

जब आप सिलहट में अस्वस्थ रहने लगीं तब 12 दिसम्बर सन् 1906 को आप पंजाब के तत्कालीन गवर्नर की धर्मपत्नी द्वारा पटियाला में खोले गए 'विक्टोरिया हाई-स्कूल' में 'सुपरिंटेंडेंट' होकर वहाँ आ गईं। वहाँ रहते हुए आपने हिन्दी में 'आदर्श माता', 'माता और कन्या', 'नारी पुष्पावली' तथा 'हिन्दी बंगला शिक्षा' नामक 4 पुस्तकें लिखीं। पंजाब चीफ कोर्ट के अवसर-प्राप्त न्यायाधीश श्री प्रतुलचन्द चटर्जी ने 'आदर्श माता' नामक पुस्तक की भूमिका लिखते हुए आपकी बहुत प्रशंसा की थी। इस पुस्तक के लिए पंजाब सरकार ने 200 रुपये का पुरस्कार भी आपको प्रदान किया था।

अपने पिता के चरण-चिह्नों पर चलकर श्रीमती हेमन्त-कुमारी चौधुरी ने हिन्दी-सेवा में जो अपने जीवन को लगाया, यह भी गौरव की बात है। बंग-भाषा-भाषी होते हुए आपकी हिन्दी-सेवा सर्वथा सराहनीय थी।

आपका निधन सन् 1953 में हुआ था।

श्री हेमलता

श्री हेमलता का जन्म बिहार के पटना जिले के इस्लामपुर नामक ग्राम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार में सन् 1818 में हुआ था। बचपन में ही माता का देहावसान हो जाने के कारण आपको केवल अपने पिता का ही स्नेह प्राप्त हुआ था। आपने 'कृष्णजी' नामक एक विद्वान् से विभिन्न शास्त्रों की विद्या प्राप्त करने के साथ-साथ लगभग पन्द्रह वर्ष की अवस्था में सन्त युगलप्रियाजी का शिष्यत्व प्राप्त कर लिया था। इस कारण ही आपका नाम युगलानन्दशरण पड़ गया था। सन्त युगलप्रियाजी की प्रशंसा आपने भक्तमाली नामक एक सन्त से सुनी थी। तदुपरान्त आपकी प्रवृत्ति तीर्थाटन की ओर हुई और काशी, चित्रकूट और अयोध्या आदि में अनेक वर्ष तक विचरण किया। चित्रकूट में विरक्त वेश धारण करके आप फिर अयोध्या के लक्ष्मण किला नामक स्थान में आ गए और वहीं पर रहने लगे।

लक्ष्मण किला नामक स्थान में स्थायी रूप से निवास करने से पूर्व आप 'घृताची कुण्ड' नामक स्थान पर लगभग चौदह माह तक मौन व्रत की साधना करते रहे। वहाँ से फिर आप कुछ दिन के लिए चित्रकूट पर चले गए और वहाँ के जानकी घाट पर रहने लगे। बाद में किन्हीं कारणों से कुछ दिन तक आप चित्रकूट से अयोध्या वापस आकर निर्मल कुण्डी नामक स्थान पर रहे और सन् 1857 की क्रान्ति में आप उस स्थान को छोड़कर फिर लक्ष्मण किला पर निर्मित मन्दिर में रहने लगे।

संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड पंडित होने के साथ-साथ आपकी गहरी पैठ अरबी और फ़ारसी में भी थी। आपकी काव्य-रचनाएँ भक्तिभावपूर्ण होती थीं। आपके ग्रन्थों की संख्या रामभक्ति शाखा के रसिक सम्प्रदाय के पूरे इतिहास में सबसे अधिक है। आपके द्वारा रचित कुल चौरासी ग्रन्थ हैं जिनमें से लगभग 75 ग्रन्थ आज भी आपके आश्रम में सुरक्षित हैं। एक प्रसिद्ध राम-भक्त सन्त के रूप में आपकी

ख्याति दूर-दूर तक हो गई थी। सुना जाता है कि बहुत से मौलवी लोग भी आपके पास मौलाना रूम और अन्य सूफी सन्तों के कलाम पढ़ने और कुरान के बहुत से गूढ़ स्थलों को समझने के लिए वहाँ आया करते थे।

आपका निधन सन् 1876 में हुआ था।

ठा० होतीसिंह रावत

श्री रावतजी का जन्म अलीगढ़ जनपद की हाथरस तहसील के बाँधनू नामक ग्राम में सन् 1897 की चैत्र शुक्ला रामनवमी के दिन आदित्यवार को ठा० मंसारामजी के घर हुआ था। जब रावतजी छः दिन के थे तब आपने दूध पीना छोड़ दिया था और पीले पड़ गए थे। माता द्वारा हनुमान की पूजा करने पर अबोध रावतजी दूध पीने लग गए थे। इसी प्रकार जब आपकी आयु 11 वर्ष की थी तब दोपहर के बाद आपके सिर में दर्द हुआ करता था और आप बेचैन होकर रोया करते थे तब भी आपकी माता ने हनुमान की पूजा द्वारा इस रोग से मुक्ति दिलाई थी।

जिस समय जर्मनी के विश्व-महायुद्ध की सन्धि हुई थी उस समय 30 जुलाई सन् 1919 को एक यूरोपियन (मिस्टर क्वार्टर) की महती कृपा से आपकी नियुक्ति वैस्टर्न रेलवे के लोको एण्ड कैरिज वर्कशाप परेल बम्बई में टिकट वितरक बाबू के पद पर हुई। रेल विभाग के ही कुछ रिश्वतखोर और चालबाज कर्मचारियों और अफसरों की अनीतियों से बचने के लिए आपने पूर्णतः सेवा का पथ अपनाकर रेल विभाग का ईमानदारी से कार्य किया। आसुरी प्रवृत्ति के विभागीय कर्मचारियों द्वारा विभिन्न प्रकार की असाधारण यातनाओं ने आपके जीवन-विटप को बुरी तरह झकझोर दिया। आप अपनी आर्य-मान्यताओं और आदर्शों की रक्षा के लिए आजीवन जूझते रहे। पहले पुत्र को नर्स के संरक्षण में छोड़कर जब आप अपने घर वापस आ रहे थे उस समय की एक टीस दर्शनीय है :

किंकर्तव्यविमूढ़, गूढ़ तम व्यथा छिपाए।
चला विवस मैं दीन हीन चेतना गँवाए।
क्षत-विक्षत करती थीं रह-रह विषम व्यथाएँ।
पीछे थीं मग खींच रहीं सुत की ममताएँ।

चारों पुत्रों की हृदय-विदारक, असामयिक मृत्यु और पत्नी श्रीमती जानकीदेवी के करुण रुदन के दारुण दुःख ने दग्ध और अधीर हृदय-तंत्री के तारों को झंकृत कर दिया तथा कभी छायावाद तथा कभी रहस्यवाद की चादर पर आपकी कोरों के आँसू वेदना के पदचिह्न अंकित करने को बेचैन हो जाते थे :

इन्द्र धनु-सा आशा का सेतु, अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे की धूमिल घोर, दीखती भावी चारों ओर,
तड़ित-सा पुत तुम्हारा मोह, प्रभा के पलक मार उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर, मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण, खोजते हैं तब तुम्हें निदान,
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमार, देख लूँ तुमको अब साकार।

कैसी विडम्बना है कि रावतजी का जन्म, आपकी पत्नी का जन्म और पाणिग्रहण संस्कार की त्रिवेणी में ऋतुराज वसन्त की गन्ध सुवासित थी परन्तु आपकी जिन्दगी कितनी वीरानेपन से गुजरी इसकी कल्पना कर पाना भी असम्भव है। एक अज्ञात शक्ति पर विश्वास कर आपने सभी यातनाओं को सर्व शक्तिमान के अधीन छोड़कर सहन किया। उन्हीं विश्वासों के आधार पर पुत्र-वियोगिनी अपनी पत्नी को आप इस प्रकार धैर्य बँधाया करते थे :

इसमें कैसा आश्चर्य शोक, मन की गति है यों ही अरोक,
जीवन प्रभात था कल ललाम, तो सन्ध्या आई आज श्याम,
कोई धर देता मुकुट-भाल, फिर वही छीन लेता अकाल,
मानव पीकर ही दुख विशाल, देखता सत्य का सुभग भाल,
नित्य का यह अनित्य नर्तन, अचिर में चिर का अन्वेषण,
चूम सुख-दुख के पुलिन अपार, छलकती ज्ञानामृत की धार,
वेदना में ही तपकर प्राण, दमक दिखलाते स्वर्ण समान,
महत् है अरे आत्म बलिदान, जगत् केवल आदान-प्रदान,

'चन्द्रवंश का इतिहास और शाखोच्चार' (1966) खण्ड-काव्य आपकी लोकप्रिय कृति है। इसके पहले सन् 1955 में आपकी पुस्तक रूप में एक रपट 'खतरे का घंटा' प्रकाशित हुई। तीसरी कृति 'मुक्त भोगी अहम्' (चम्पूकाव्य) नामक आत्मकथा आपके भोगे हुए क्षणों का दस्तावेज है, जो अभी तक अप्रकाशित ही है।

अवकाश ग्रहण से पहले ही आप नौकरी छोड़कर आ गए थे और अपने गाँव से लगभग 5-6 मील दूर अपनी ससुराल छतरपुर में रहने लगे थे। वहीं पर सन् 1972 में आपका निधन हो गया।

श्रीमती होमवती देवी

श्रीमती होमवतीदेवी का जन्म मेरठ के 'पत्थर वाले' नामक प्रसिद्ध परिवार में सन् 1902 में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई थी। अपने माता-पिता की अकेली सन्तान होने के कारण आपका जीवन ऐश्वर्य और वैभव में ही प्रारम्भ हुआ था। आपका विवाह मेरठ नगर के डॉ० चिरंजीलाल सिंहल के साथ हुआ था। किन्तु विधाता को कुछ और ही मंजूर था, थोड़े ही समय में आपके पति का देहावसान हो गया और पीड़ा और अवसाद में आपका सारा जीवन व्यतीत हुआ।

आपके जीवन की यही पीड़ा और वेदना एक दिन सहसा कविता के रूप में इस प्रकार फूट पड़ी :

उर में उमड़ा पीड़ा-वारिधि
जीवन में बरसे अंगार।
जीवन-धन को खोकर मैंने,
पाया कविता-धन उपहार ॥

धीरे-धीरे आपने अपने अभावों को कविता के माध्यम से भुलाना प्रारम्भ किया और एक समय वह आया कि जब आपकी गणना हिन्दी की उत्कृष्टतम कवयित्रियों में होने लगी। जब आपका पहला काव्य-संकलन 'उद्गार' सन् 1936 में छपा था तब हिन्दी के महारथियों ने उसे कौतूहल से देखा था। कविता के अतिरिक्त आपके जीवन की खट्टी-मीठी अनुभूतियाँ कहानियों में भी रूपायित हुई थीं। अपनी कथा-लेखन-पटुता के कारण आपकी गणना हिन्दी की उत्कृष्टतम कथा-लेखिकाओं में होने लगी। आपकी कहानियों के संकलन 'निसर्ग' (1939), 'स्वप्न भंग' (1948), तथा 'अपना घर' (1950) नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसिद्ध फिल्म-निर्माता और निर्देशक श्री किशोर साहू ने अपनी 'सिन्दूर' फिल्म का कथानक आपकी 'गोटे की टोपी' नामक कहानी के आधार पर रख लिया था और आपको इसका तब पता चला जब फिल्म जनता के सामने दिखाई जा रही थी। इस पर किशोर साहू को जब अदालती नोटिस दिया गया तो पाँच हजार रुपया देकर उन्हें क्षमा माँगनी पड़ी थी।

मेरठ के साहित्यिक जागरण में आपने 'हिन्दी साहित्य परिषद्' की स्थापना द्वारा बहुत बड़ा योगदान दिया था। इस परिषद् के वार्षिक अधिवेशनों में हिन्दी के प्रायः सभी शीर्षस्थ साहित्यकार सम्मिलित हुआ करते थे। परिषद् की स्थापना के दिनों में हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' मेरठ में ही रहते थे और उन्होंने उसमें अपना उल्लेखनीय सहयोग दिया था।

आपका निधन 3 फरवरी सन् 1951 को हुआ था।

●

सन्दर्भ-सामग्री

पुस्तकें

अक्षर पुरुष—केसरी
अजमेर वार्षिकी एवं व्यक्ति परिचय—घीसूलाल पाण्डया
अनूप शर्मा : कृतियाँ और कला—डॉ० प्रेमनारायण टण्डन
अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान कोष—रामनारायण यादवेन्दु
अपनी कहानी—वृन्दावनलाल वर्मा
अमर कीर्ति श्री चन्द्रधर जौहरी—डॉ० हरिहरनाथ टण्डन
असम प्रान्तीय हिन्दी साहित्य—डॉ० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध'
अगरकर स्मृति ग्रन्थ—गोपीवल्लभ उपाध्याय : विनयमोहन शर्मा
आगर का इतिहास—डॉ० गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
आगरा : एक सांस्कृतिक परिचय—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
आचार्य पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य (स्मृति-ग्रन्थ)—रमेशचन्द्र दुबे
आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र अभिनन्दन ग्रन्थ—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
आज का जयपुर
आज के हिन्दी-सेवी—अद्‌भुत शास्त्री
आत्म निरीक्षण (सभी भाग)—सेठ गोविन्ददास
आत्मशिल्पी कमलेश—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
आधुनिक युग की हिन्दी-लेखिकाएँ—डॉ० उमेश माथुर
आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम-गीत—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
आधुनिक हिन्दी साहित्य—डॉ० श्रीकृष्णलाल
आधुनिक हिन्दी साहित्य—स० ही० वात्स्यायन
आधुनिक हिन्दी साहित्य—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास—कृष्णशंकर शुक्ल
आधुनिक हिन्दी साहित्य को अहिन्दी लेखकों का योगदान—डॉ० विलास गुप्ते
आन्ध्र के हिन्दी कवि—डॉ० राजकिशोर पाण्डेय
आप-बीती—मेहता लज्जाराम शर्मा
आर्यभाषा पुस्तकालय सूचीपत्र (प्रथम खण्ड)—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
आर्यसमाज का इतिहास (प्रथम भाग)—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति
आर्यसमाज के वेद-सेवक विद्वान्—डॉ० भवानीलाल भारतीय
आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी—डॉ० भारतीय
आर्यसमाज के सौ रत्न—अशोक कौशिक
इतिहास आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश
इन्द्र विद्यावाचस्पति—सत्यकाम विद्यालंकार अवनीन्द्र विद्यालंकार
ईसुरी की फागें—लोकवार्ता परिषद्, टीकमगढ़
ईसुरी प्रकाश—गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'
उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा का 26वां वार्षिक कार्य-विवरण—
उत्तर पश्चिम भारत में नारी-शक्ति जागरण का मूर्तरूप कन्या महाविद्यालय जालन्धर—शादीराम जोशी
एक युग : एक पुरुष—ओंप्रकाश शर्मा
एकांकिका—चन्द्रकिशोर जैन
ओरछेश स्मृति-ग्रन्थ—बनारसीदास चतुर्वेदी
औरंगाबाद की हिन्दी सन्त-वाणी—डॉ० भालचन्द्र राव तैलंग
कथायक—शिवचन्द्र नागर
कर्नाटक में हिन्दी प्रचार—कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़

कल की बात—सरस्वती प्रेस, बनारस
कविवर श्री हरिप्रसाद 'हरि' की काव्य-साधना—
शीलचन्द जैन
काकली—कौशलेन्द्र राठौर
काकोरी के दिलजले—रामदुलारे त्रिवेदी
काव्य-कलश—हिन्दी साहित्य मंडल, कानपुर
काव्य का देवता : निराला—विश्वम्भर 'मानव'
कामताप्रसाद गुरु—भवानीप्रसाद तिवारी
कामताप्रसाद गुरु शती ग्रन्थ—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
कामताप्रसाद सिंह 'काम' : पावन स्मृति—
डॉ० लक्ष्मणप्रसाद सिनहा
कारागार—श्रीमती उर्मिला शास्त्री
कान्ति पथ के पथिक—सत्य भक्त
कुछ आत्मकथाएँ—महावीरप्रसाद अग्रवाल
कुछ काँटे : कुछ फूल—नर्मदाप्रसाद खरे
कुमाऊँनी भाषा और उसका साहित्य—त्रिलोचन पाण्डे
कूर्मांचल केसरी—शुकदेव पाण्डेय
केरल क्षेत्रीय हिन्दी साहित्य का इतिहास—
डॉ० भीमसेन निर्मल
कैरली वैभव—डॉ० एन० पी० कुट्टन पिल्लै
खड़ी बोली का इतिहास—ब्रजरत्नदास अग्रवाल
खत्री स्मारक ग्रन्थ—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
गंगाप्रसाद उपाध्याय अभिनन्दन ग्रन्थ—
सम्पादक : हरिशंकर शर्मा
गढ़वाल की दिवंगत विभूतियाँ—भक्तदर्शन
गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य—हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
गढ़वाली साहित्यकार—विनयकुमार डबराल
गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त—डॉ० नत्थनसिंह
गान्धी युग के संस्मरण—हरिभाऊ उपाध्याय
गुजरात की हिन्दी-सेवा—डॉ० अम्बाशंकर नागर
गुप्तजी की कला—डॉ० सत्येन्द्र
गुप्तजी की काव्य-धारा—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
बा० गौरीशंकरप्रसाद—दयानन्द इण्टर कालेज, बनारस
चतुर्दश भाषा निबन्धावली—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
चाकलेट—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
चारण साहित्य का इतिहास—मोहनलाल जिज्ञासु
चारु चरितावली—वेंकटेशनारायण तिवारी

श्री छगनलाल विजयवर्गीय स्मृति ग्रन्थ—रामविलास
मोदानी सत्यनारायण गुप्त
छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार—
डॉ० गंगाप्रसाद बरसैयाँ
छत्तीसगढ़ के रत्न—हरि ठाकुर
छत्तीसगढ़ के साहित्यकार—डॉ० ब्रजभूषण
छत्तीसगढ़ी लोक-जीवन और लोक-साहित्य का आधार—
डॉ० शकुन्तला वर्मा
छत्तीसगढ़ी साहित्य अरु साहित्यकार—विनयकुमार पाठक
छत्तीसगढ़ी साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन—नन्दकिशोर
तिवारी
जयन्ती स्मारक ग्रन्थ—पुस्तक भण्डार, पटना
जय विनोद—महेशचन्द्र बी० ए०
जयशंकरप्रसाद—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय (खण्ड 6)—सस्ता साहित्य
मंडल, नई दिल्ली
जीवन की झाँकियाँ—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति
जीवन की भूलें—स्वामी वेदानन्द तीर्थ
जीवन-चक्र—गंगाप्रसाद उपाध्याय
जीवन-रश्मियाँ—बाबू गुलाबराय
जीवन-स्मृतियाँ—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
जैन जागरण के अग्रदूत—अयोध्याप्रसाद गोयलीय
जैमिनी (अर्द्ध वार्षिक जनवरी सन् 1967)—ऋषि जैमिनी
कौशिक बरुआ
जैसा मैंने उन्हें जाना—रामधन
जैसा हमने देखा—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
जौनपुर का इतिहास—त्रिपुरारि भास्कर
टीकमगढ़ दर्शन (मंगल प्रभात)—महेन्द्र द्विवेदी
डॉ० कामताप्रसाद जैन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व—
शिवनारायण सक्सेना
डॉ० ह० रा० दिवेकर निबन्ध लेख संग्रह—कै० ह० रा०
दिवेकर वाङ्मय प्रकाशन समिति पुणे
ताज की छाया में—शिवदानसिंह चौहान
तारिका लेखक पत्रकार निदेशिका—कहानी लेखन महा-
विद्यालय अम्बाला
तूर्य के नाद : शंख का स्वर—ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ
त्रिशंकु—स० ही० वात्स्यायन

दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास—पी० के० केशवन नायर
दहकते स्वर—मनोहरलाल 'श्रीमन्' : सुखवीर विश्वकर्मा
दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी
दिनकर स्मृति अंक—कन्हैयालाल फूलफगर
दिल की धड़कन : कलम की थिरकन—रूपनारायण ओझा
दुर्ग जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण (1959)—उदयप्रसाद 'उदय'
दुर्गाशंकरप्रसादसिंह 'नाथ'—नव साहित्य मन्दिर दलीपपुर (बिहार)
देवरानी-जेठानी की कहानी—सम्पादक : डॉ० गोपालराय
देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान—बालचन्द मोदी
दृष्टिकोण—आचार्य विनयमोहन शर्मा
द्विजेश दर्शन—बलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश'
द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ—डॉ० श्यामसुन्दरदास
द्विवेदी-मीमांसा—प्रेमनारायण टण्डन
नक्षत्र—ब्योहार राजेन्द्रसिंह
नया साहित्य—एक दृष्टि—प्रकाशचन्द्र गुप्त
नये-पुराने झरोखे—डॉ० हरवंशराय बच्चन
नये भारत के निर्माता—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
नारायणप्रसाद अरोड़ा संक्षिप्त जीवनी—नरेशचन्द्र चतुर्वेदी
नारी तेरे रूप अनेक—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
निकुंज—रामकिशोर शर्मा 'किशोर'
निराला—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
निर्भीक मुक्ति योद्धा—रजनीकान्त चक्रवर्ती
नेशन बिब्लियोग्राफी आफ इण्डियन लिटरेचर (वौल्यूम-2)—
नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ—स० ही० वात्स्यायन
न्यायमूर्ति ब्रजकिशोर चतुर्वेदी स्मृति-ग्रन्थ—सम्पादक : श्री नारायण चतुर्वेदी आदि
पंजाब का हिन्दी साहित्य—सत्यपाल गुप्त
पं० झाबरमल्ल शर्मा अभिनन्दन ग्रन्थ—काशीनाथ शर्मा
पं० बालकृष्ण भट्ट की जीवनी—लक्ष्मीकान्त भट्ट
पं० सीताराम शास्त्री का आदर्श जीवन—श्रीदत्त शर्मा वैद्यराज
पं० सुन्दरलाल अभिनन्दन ग्रन्थ मुजफ्फरनगर सन्दर्भ-स्मारिका
पत्रकार की आत्मकथा—मूलचन्द्र अग्रवाल
पत्रकार बृहत्त्रयी—गौरीशंकर गुप्त
पत्रकारिता के अनुभव—मुकुटबिहारी वर्मा
पत्रकार प्रेमचन्द और हंस—डॉ० रत्नाकर पाण्डेय
पं० पद्मकान्त मालवीय : व्यक्तित्व और कृतित्व—ओंकार शरद
पद्मसिंह शर्मा (जन्म शती ग्रन्थ)—डॉ० मोहनलाल तिवारी
पराडकरजी और पत्रकारिता—लक्ष्मीशंकर व्यास
पर्वतीय साहित्यकार कोश—मोहनलाल बाबुलकर
पालीवालजी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—पालीवाल-सैनिक जयन्ती समारोह समिति, आगरा
पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास—गणेशशंकर शुक्ल 'बन्धु'
पुण्य स्मरण—हरिभाऊ उपाध्याय
पूर्णा—विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर
पूर्वांचला—डॉ० विश्वनाथप्रसाद
प्रगतिवाद—शिवदानसिंह चौहान
प्रगति और परम्परा—डॉ० रामविलास शर्मा
प्रतिनिधि हास्य कहानियाँ—मनमोहन 'सरल' श्रीकृष्ण
प्रसाद और उनका साहित्य—विनोदशंकर व्यास
प्रसाद की काव्य-साधना—श्री रामनाथ 'सुमन'
प्रेमचन्द : एक कृति व्यक्तित्व—जैनेन्द्रकुमार
प्रेमचन्द : एक साहित्यिक विवेचन—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
प्रेमचन्द और उनकी साहित्य साधना—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
प्रेमचन्द की उपन्यास-कला—जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'
प्रेमचन्द : घर में—शिवरानी प्रेमचन्द
प्रेमचन्द-स्मृति—अमृतराय
प्रोग्रेसिव जैन्स ऑफ इण्डिया—सतीशकुमार जैन
फाइल-प्रोफाइल—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
फीरोजाबाद परिचय—गणेशलाल शर्मा 'प्राणेश'
फूल पत्ती—मदनगोपाल सिंहल
बम्बई के हिन्दी कवि—दाऊदत्त उपाध्याय : मधुकर गौड़
बरदलोई अभिनन्दन-ग्रन्थ—अकेला प्रकाशन, तिनसुकिया, असम
बरार केसरी श्री ब्रिजलाल बियाणी—सत्यदेव विद्यालंकार
बान्धव राज्य के विस्मृत कवि—लाल भानुसिंह बाघेल

बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली—बनारसीदास चतुर्वेदी
बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ—झाबरमल्ल शर्मा
बियाणीजी : मित्रों की नजर में—रामचन्द्र गुप्त, सुमन वर्मा, सतीशचन्द्र जैन
बिसवाँ के कवि—डॉ० गणेशदत्त सारस्वत
बिहँसते फूल : विकसती कलियाँ—सीताराम अग्रवाल, मदन शलभ, प्रेम 'निर्मल' तथा प्रेम 'महेश'
बिहार की साहित्यिक प्रगति—बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना
बीता युग : नई याद—सीताराम सेकसरिया
बीती यादें—परिपूर्णानन्द वर्मा
बीसवीं शताब्दी : दो दशक—डॉ० कुसुम अग्रवाल
बुन्देली काव्य-परम्परा—डॉ० बलभद्र तिवारी
बुन्देलखण्ड के कवि (पूर्वार्द्ध)—पं० कृष्णदास
बुन्देले हरबोलों के मुँह जिसने सुनी कहानी—आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल
बृहद् हिन्दी-ग्रन्थ-सूची (दो भाग)—यशपाल महाजन
बेनीपुरी ग्रन्थावली (दोनों भाग)
व्यक्ति और वाङ्मय—डॉ० प्रभाकर माचवे
भारताची भाषा समस्या—दत्तो वामन पोतदार
भारतीय अनुशीलन (महामहोपाध्याय रायबहादुर डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ—जयचन्द्र विद्यालंकार
भारतीय नेताओं की हिन्दी-सेवा—डॉ० ज्ञानवती दरबार
भारतेन्दु की खड़ी बोली का भाषा-विश्लेषण—डॉ० उषा माथुर
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन-चरित—श्री राधाकृष्णदास
भारतेन्दु मण्डल—व्रजरत्नदास अग्रवाल
भीगी पलकें : पंडित केवलराम शास्त्री स्मारिका—अतुलकेशर
भुवनेश्वर की रचनाएँ—शुकदेवसिंह
मंडला जिला का साहित्यिक विकास
मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन—डॉ० मोतीलाल गुप्त
मदन कोष अर्थात् जीवन चरित्र स्तोम—मदनलाल तिवारी
मध्यप्रदेश के आधुनिक साहित्यकार—डॉ० ब्रजभूषणसिंह 'आदर्श'
मध्यप्रदेश के अहिन्दीभाषियों की हिन्दी-सेवा—डॉ० ब्रजभूषणसिंह 'आदर्श'
मनोरंजक संस्मरण—श्रीनारायण चतुर्वेदी
मयराष्ट्र मानस—डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा
मराठी सन्तों की हिन्दी को देन—डॉ० विनयमोहन शर्मा
महाकौशल के साहित्यकार—डॉ० ब्रजभूषणसिंह 'आदर्श'
महात्मा हंसराज—खुशहालचन्द 'आनन्द'
महान् क्रान्तिकारी विजयसिंह 'पथिक'—शंकरसहाय सक्सेना
महाप्राण निराला—गंगाप्रसाद पाण्डेय
महाराष्ट्र के लोकप्रिय हिन्दी स्वर—शैलेन्द्र, शिवशंकर वशिष्ठ
महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डॉ० उदयभानुसिंह
महेशनारायण : व्यक्तित्व और कृतित्व—उमाशंकर
माखनलाल चतुर्वेदी—ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ
मातृभूमि अब्दकोश—रघुनाथ विनायक धुलेकर
माधवराव सप्रे जीवनी—गोविन्दराव हर्डीकर
मार्ग के चिह्न—सद्गुरुशरण अवस्थी
माहेश्वरी-जन जागृति दर्शन—विश्वम्भरप्रसाद शर्मा
मिला तेज से तेज—सुधा चौहान
मिश्रबन्धु विनोद (सभी भाग)
मील के पत्थर—रामवृक्ष बेनीपुरी
मुनि श्री जिनविजयजी महाराज—डॉ० पद्मधर पाठक
मूर्धन्या—सेवक वात्स्यायन, वीरेश कात्यायन
मेरठ आर्यसमाज के सौ वर्ष—चन्द्रप्रकाश अग्रवाल
मेरठ का साहित्यिक परिचय—मदनगोपाल सिंहल
मेरठ जनपद : एक सर्वेक्षण—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
मेरठ जनपद की साहित्यिक चेतना—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
मेरा उत्कल प्रवास—श्री अनसूयाप्रसाद पाठक
मेरा नाटक काल—राधेश्याम कथावाचक
मेरी आत्म-कहानी—चतुरसेन शास्त्री
मेरी आत्म-कहानी—डॉ० श्यामसुन्दरदास
मैत्री-क्लब परिचय पुस्तिका (सभी संस्करण)—मैत्री क्लब कैलास, आगरा
मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि
मैं इनसे मिला (दो भाग)—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
मैंने स्मृति के दीप जलाए—रामनाथ 'सुमन'

मोटूरि सत्यनारायण अभिनन्दन ग्रन्थ—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समिति, मद्रास
यदुवंश का इतिहास—रामनारायण 'यादवेन्दु'
यादों की परछाइयाँ—आचार्य चतुरसेन शास्त्री
युग और साहित्य—शान्तिप्रिय द्विवेदी
रजत जयन्ती ग्रन्थ—असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी
रजत जयन्ती ग्रन्थ—उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा
रजत जयन्ती ग्रन्थ—बम्बई हिन्दी विद्यापीठ
रजत जयन्ती ग्रन्थ—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
रजत रेणु—शान्तिस्वरूप 'कुसुम'
रजतोत्सव ग्रन्थ—कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़
रमेश : सन् बयालीस का शहीद—श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा यशपाल जैन
राजर्षि पुरुषोत्तम टण्डन—लक्ष्मीनारायण, ओंकार शरद
राजर्षि टण्डन अभिनन्दन ग्रन्थ—दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन
राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी—सुमनेश जोशी
राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार (परिचय ग्रन्थ)—स्वागत समिति हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जयपुर
राजस्थान वार्षिकी एवं व्यक्ति परिचय—केशरलाल अजमेरा जैन
राजस्थान संस्कृत परिचय ग्रन्थ (1962)—राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, रतनगढ़
राजस्थान साहित्यकार परिचय-कोष (हिन्दी-संस्कृत)—राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
राजस्थानी भाषा और साहित्य—मोतीलाल मेनारिया
राजस्थानी साहित्यकार परिचय कोष—राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
राजहंस स्मृति-ग्रन्थ—कमल गुप्त : पृथ्वीपाल पाण्डेय
राजा राधिकारमणप्रसादसिंह—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
राजा राधिकारमण प्रसादसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ—शिवनन्दनप्रसाद
राधिकारमणसिंह : व्यक्ति और कला—शरद
रामनरेश त्रिपाठी : एक युग, एक व्यक्ति—जगदीशप्रसाद पाण्डेय 'पीयूष'
रामानुजलाल श्रीवास्तव—हरिशंकर परसाई
रामानुजलाल श्रीवास्तव : व्यक्ति और कृतित्व—साहित्य संघ, जबलपुर
रायबरेली के कवि—चन्द्रशेखर पाण्डेय 'चन्द्रमणि'
राष्ट्रभाषा—श्री केशव वामन पेठे
राष्ट्रभाषा—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
राष्ट्रभाषा आन्दोलन—प्रो० प० नेने
राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय समस्या—डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर'
राष्ट्रभाषा का इतिहास—किशोरीदास वाजपेयी
राष्ट्रभाषा की समस्या और हिन्दुस्तानी आन्दोलन—रविशंकर शुक्ल
राष्ट्रभाषा परिवार-ग्रन्थ—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
राष्ट्रभाषा प्रचार सर्व संग्रह—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
राष्ट्रभाषा हिन्दी—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
राष्ट्र विभूति हरविलास शारदा—विश्वम्भरप्रसाद शर्मा
रेखाएँ और संस्मरण—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
लाल बलवीर—राधेश्याम अग्रवाल
लालबहादुर शास्त्री—शैलेन्द्रकुमार पाठक
लाला देवराज—सत्यदेव विद्यालंकार
वातायन—आचार्य चतुरसेन शास्त्री
वार्षिक विवरण नागरी प्रचारिणी सभा
वार्षिक विवरण मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन
वार्षिक विवरण राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
वार्षिक विवरण हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग—
विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ—लालबहादुर शास्त्री, बाबूलाल जैन, विमलकुमार जैन, बाबूलाल जैन फागुल्ल
विनायकराव अभिनन्दन ग्रन्थ—वंशीधर विद्यालंकार
विन्ध्याचल का आधुनिक हिन्दी काव्य—डॉ० नागेन्द्रसिंह 'कमलेश'
वृन्दावनलाल वर्मा—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
वे दिन : वे लोग—मार्तण्ड उपाध्याय
वे दिन : वे लोग—शिवपूजन सहाय
शम्भूदयाल सक्सेना—डॉ० रामचरण महेन्द्र

शारदा सेवक—देवीदास शर्मा तथा कन्हैयालाल 'चंचरीक'
शास्त्रार्थ महारथी—प्रेमाचार्य शास्त्री
शिवपूजन रचनावली (भाग 4)—
शेवड़े : व्यक्तित्व विचार और कृतित्व—बाँकेबिहारी भटनागर
श्रद्धांजलि सुमन—सूर्यनारायण मिश्र
श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य—रामचन्द्र मिश्र
श्री विश्वम्भरदत्त चन्दोला को श्रद्धांजलि
श्री सिंहल अभिनन्दन ग्रन्थ—पं० गजाधर तिवारी वैद्य, श्री शिवकुमार गोयल
श्याम परमार स्मृति समारोह—मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, भोपाल
श्यामसुन्दरदास —सुधाकर पाण्डेय
संचारिणी—शान्तिप्रिय द्विवेदी
संस्कृति और साहित्य—डॉ० रामविलास शर्मा
सत्य कुसुमांजलि—सत्यशरण रतूड़ी
सम्पादकाचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा—क्षेमचन्द्र 'सुमन'
सनेह सागर—डॉ० बलभद्र तिवारी
समाचारपत्रों का इतिहास—अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी
सम्मेलन के रत्न—सिद्धनाथ दीक्षित 'सन्त'
सहारनपुर के कवि—शरदकुमार मिश्र
सहारनपुर के साहित्यकार—ओंप्रकाश दीक्षित
साकार प्रश्न—राजकुमारी श्रीवास्तव
सारण्यक—पाण्डेय कपिल
सावित्री-सिनहा : स्मृति लेख—दशरथ ओझा, डॉ० विमला गुप्ता
साहित्यकार निकट से—देवीप्रसाद धवल 'विकल'
साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी—सरस्वती सेवा-सदन, कानपुर
साहित्य की झाँकी—डॉ० सत्येन्द्र
साहित्य-चर्चा—आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल
साहित्य परिचय—डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
साहित्य सागर (दो भाग)—बिहारीलाल भट्ट, लोकनाथ द्विवेदी 'साहित्यरत्न'
साहित्य-साधिकाएँ—कैलाश कल्पित
साहित्य-सौरभ—ब्रजमोहन वर्मा
साहित्यिक कोष—डॉ० ओंप्रकाश शर्मा
साहित्यिक त्रिमूर्ति अभिनन्दन समारोह पत्रिका—भारतेन्दु साहित्य समिति, बिलासपुर
साहित्यिकी—रमेशचन्द्र शर्मा, जुगमन्दिर तायल
साहित्यिकों के संस्मरण—प्रेमनारायण टण्डन
सिपाही से कप्तान—गिरिजादत्त पाण्डेय
सुमन-स्मृति-ग्रन्थ—भक्तदर्शन
सूचीपत्र मारवाड़ी हिन्दी पुस्तकालय, बम्बई
सेठ गोविन्ददास : व्यक्तित्व एवं साहित्य—विजयकुमार शुक्ल
कहाँ कौन क्या है ?—प्रेमनारायण अग्रवाल
सौरभ—जे० पी० गोविल, हरिप्रसाद तिवारी
स्नातक-परिचायिका : गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी—विद्यासागर विद्यालंकार, डॉ० विनोदचन्द्र विद्यालंकार
स्नेह, सेवा और संघर्ष—जगदीशप्रसाद व्यास तथा रामेश्वरप्रसाद गुरु
स्मारिका—उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मेरठ
स्वतंत्रता रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ—दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन
स्वर-लहरी—डॉ० विष्णुदत्त थानवी
स्व० कविवर श्री हरिप्रसाद 'हरि'—शुकदेव तिवारी
स्व० श्री वैद्य रामगोपालजी शास्त्री स्मृति-ग्रन्थ—लेखक-सम्पादक : आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, आर्य-समाज करौल बाग, नई दिल्ली
स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ—द० भा० हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास
स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ—श्री हिन्दी साहित्य समिति, भरतपुर
स्वामी रामानन्द शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ—कन्हैयालाल 'चंचरीक'
स्वामी श्रद्धानन्द मेरे पिता—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति
हमारे गद्य-निर्माता—प्रेमनारायण टण्डन
हमारे गीत—ठा० घनश्यामनारायणसिंह
हमारे पड़ौसी देश—प्रो० रंजन
हमारे राष्ट्रपति—सत्यदेव विद्यालंकार
हरनाथ ग्रन्थावली—राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
हरिऔध अभिनन्दन-ग्रन्थ—सकलनारायण शर्मा
हरिऔध शती स्मारक ग्रन्थ—कला भवन, आजमगढ़
हरियाणा के हिन्दी-सेवी—शान्त शास्त्री 'शालिहास'

हरियाणा सांस्कृतिक दिग्दर्शन—लोक सम्पर्क विभाग, हरियाणा-चण्डीगढ़
हाड़ौती दर्शन : 1972—नाथूलाल जैन, डॉ० शान्ति भारद्वाज 'राकेश'
हास्यरसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी स्मृति-ग्रन्थ
हिन्दी—बदरीनाथ भट्ट
हिन्दी-आलोचना-कोश—यशपाल महाजन
हिन्दी उपन्यास—शिवनारायण श्रीवास्तव
हिन्दी और महाराष्ट्र का स्नेह-सम्बन्ध—अशोक प्रभाकर कामत
हिन्दी कथा-साहित्य में पंजाब का अनुदान—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
हिन्दी कविता कौमुदी (भाग 1-2)—रामनरेश त्रिपाठी
हिन्दी का उच्चतर साहित्य—मंगलनाथ सिंह
हिन्दी काव्य की कलामयी तारिकाएँ—श्री व्यथित हृदय
हिन्दी काव्य को नारी की देन—शकुन्तला सिरोठिया
हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ—अखिल विनय, मीण्डाराम वर्मा 'चंचल'
हिन्दी के वर्तमान कवि और उनका काव्य—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
हिन्दी के सामाजिक उपन्यास—ताराशंकर पाठक
हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध—डॉ० उदयभानु सिंह
हिन्दी गद्य-गाथा—सद्गुरुशरण अवस्थी
हिन्दी गद्य-मीमांसा—रमाकान्त त्रिपाठी
हिन्दी गद्य-शैली का विकास—डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा
हिन्दी नाट्य-परम्परा—दिनेशनारायण उपाध्याय
हिन्दी नाट्य-विमर्श—गुलाबराय एम० ए०
हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास—ब्रजरत्नदास
हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास—डॉ० सोमनाथ गुप्त
हिन्दी नाट्य-साहित्य का विकास—आचार्य विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र
हिन्दी विकासमां गुजराती ओ ना फालो—जनकशंकर मनुशंकर दवे
हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार—ठाकुरप्रसाद सिंह
हिन्दी पत्रकारिता—डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र
हिन्दी पत्रकारिता—डॉ० रत्नाकर पाण्डेय
हिन्दी पत्रकारिता के 150 वर्ष—डॉ० वेदप्रताप वैदिक
हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम—डॉ० वेदप्रताप वैदिक
हिन्दी पुस्तक साहित्य—डॉ० माताप्रसाद गुप्त
हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास—आचार्य चतुरसेन शास्त्री
हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
हिन्दी-वाङ्मय : बीसवीं शती—डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी विश्व कोश (सभी भाग)—नगेन्द्रनाथ वसु
हिन्दी विश्व कोश (सभी खण्ड)—नागरी प्रचारिणी सभा
हिन्दी समाचार पत्र-सूची—बंकटलाल ओझा
हिन्दी साहित्य—गणेशप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य और बिहार (सभी भाग)—शिवपूजन सहाय
हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास—रामबहोरी शुक्ल
हिन्दी साहित्यकार कोश—डॉ० प्रेमनारायण टण्डन
हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (सभी खण्ड)—नागरी प्रचारिणी सभा
हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर—नरेशचन्द्र चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—डॉ० सूर्यकान्त
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—बाबू गुलाबराय
हिन्दी साहित्य की रूप-रेखा—डॉ० सूर्यकान्त
हिन्दी साहित्य के इतिहास का उपोद्घात—डॉ० मुन्शीराम शर्मा
हिन्दी साहित्य के विकास में दक्षिण का योगदान—जी० सुन्दर रेड्डी आदि
हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशों की देन—डॉ० मलिक मोहम्मद
हिन्दी साहित्य-कोश (भाग 2)—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
हिन्दी साहित्य प्रकाश—डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
हिन्दी साहित्य विमर्श—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
हिन्दी साहित्य सम्मेलन का संक्षिप्त परिचय
हिन्दी साहित्य सारिणी (दो भाग)—विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इंस्टीट्यूट, होशियारपुर

हिन्दी-सेवी संसार (प्रथम संस्करण)—कालिदास कपूर तथा प्रेमनारायण टण्डन
हिन्दी-सेवी संसार (द्वितीय तथा तृतीय संस्करण)—प्रेमनारायण टण्डन
हिन्दुस्तानी आन्दोलन की समीक्षा—कमलनारायण झा 'कमलेश'
हिन्दुस्तानी के प्रचारक महात्मा गान्धी—नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद
हीरक जयन्ती ग्रंथ—श्रीनारायण चतुर्वेदी
हू इज हू इन इण्डियन लैजिस्लेचर्स—प्रेमनारायण अग्रवाल
हू इज हू ऑफ इण्डियन राइटर्स—साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
हू इज हू राज्यसभा
हू इज हू लोकसभा
हैदराबाद में हिन्दी—मधुसूदन चतुर्वेदी
होमवती स्मारक संकलन—स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'

पत्र-पत्रिकाएँ एवं स्मारिकाएँ

'अनुराग' मासिक का 'आल्हा अंक'—बालमुकुन्द अनुरागी, तिलकनगर, मेरठ
अभिनन्दन-स्मारिका कविवर रामभरोसे वाजपेयी 'प्रेमनिधि'—इन्दीवर साहित्य कला संगम फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)
'अमर ज्योति' (ए० कमला विशेषांक)—मुन्नालाल एण्ड राजनारायण खेमका गर्ल्स कालेज, सहारनपुर
'अमृत' (फीरोजाबाद जनपद अंक)—सम्पादक-व्रजकिशोर जैन
'अर्जुन' (रजत जयन्ती विशेषांक)—सम्पादक . कृष्णचन्द्र विद्यालंकार, दिल्ली।
'आचार्य कुल' (डॉ० श्रीमन्नारायण स्मृति-विशेषांक)—सम्पादक : पदमकुमार गर्ग, शरदकुमार साधक आदि सिंधी कालोनी, ग्वालियर-1
'आत्मारामजी राज्यरत्न का जीवन-चरित्र'—महेशचन्द्र बी० ए०
आर्य कन्या महाविद्यालय-बड़ौदा, (रजत जयन्ती परिचय अंक)—आर्य सन्देश कार्यालय, बड़ौदा
आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा के अन्तर्गत 'आर्य बाला सभा' रजत जयन्ती अंक—आर्य सन्देश कार्यालय, बड़ौदा
'आर्य कल्प' (अनेक अंक)—सम्पादक : डॉ० केसरीनारायण, अगस्त कुण्डा, वाराणसी
आर्यकुमार महासभा, बड़ौदा तथा उसकी अन्तर्गत संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय—आर्यकुमार महासभा, बड़ौदा
'आर्य जगत्' (सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह विशेषांक)—सम्पादक : क्षितीशकुमार वेदालंकार, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-1
आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम ज्वालापुर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका, 1978
'आर्यसमाज शताब्दी समारोह' (मेरठ, कानपुर तथा वाराणसी की स्मारिकाएँ)
आर्यसमाज साहित्य सर्वस्व—गौरीशंकर सिंह, सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली
उत्तर प्रदेश—(विभिन्न अंक)—सम्पादक : चन्द्रमोहन शर्मा, लखनऊ
'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (सन् 1978 में सम्मानित तथा पुरस्कृत साहित्यकार)—राजर्षि पुरुषोत्तम टण्डन, हिन्दी भवन, महात्मा गान्धी मार्ग, लखनऊ
'उदयन' (कोटला विशेषांक)—सम्पादक : पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीरामचन्द्र कुन्दनलाल इण्टर कालेज, कोटला (आगरा)
'कन्या' (श्री केशवप्रकाश विद्यार्थी स्मृति अंक)—'कन्या' प्रकाशन मन्दसौर (मालवा)
'कविवर छैल अभिनन्दन स्मारिका' (जून 1976)—नामदेव समाज विकास संगठन, जबलपुर (म० प्र०)
'केरल ज्योति' (अनेक अंक)—केरल हिन्दी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रम
'चतुर्वेदी' (अंक 10, अक्तूबर 1978)—सम्पादक : श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी
'चतुर्वेदी' हीरक जयन्ती विशेषांक, अंक 11 नवम्बर, 1976—चतुर्वेदी कार्यालय, ग्वालियर-1
'चिदम्बरा' (अनेक अंक)—प्र० सम्पादक : श्री नन्दन चतुर्वेदी, श्री भारतेन्दु समिति, कोटा-6 (राज०)
'जनभारती' (निराला-अंक)—सम्पादक : डॉ० बलदेव-प्रसाद मिश्र, बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता-12

'जनपथा' (अनेक अंक)—सम्पादक : कान्तिलाल जोशी, बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, विट्ठलभाई पटेल रोड, बम्बई-400004

'जागरण' दैनिक (रजत जयन्ती अंक)—सम्पादक : नरेन्द्रमोहन, कानपुर

'जीवन साहित्य' श्रद्धांजलि अंक (जनवरी 1980)—सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली-1

'ज्ञान शर्मा स्मृति नाट्य समारोह स्मारिका'—भारतीय कला संघ, आगरा

'ज्योत्स्ना' ('श्रीधर पाठक अंक' तथा 'हरिशंकर शर्मा विशेषांक')—सम्पादक : किशनलाल कुसुमाकर, डी० ए० वी० इण्टर कालेज, फीरोजाबाद

'तटस्थ (अक्तूबर सन् 1978)—सहल सदन, पिलानी;

'तेरापंथ भारती' (महेन्द्र मुनि स्मृति विशेषांक)—अ० भा० जैन श्वेताम्बर तेरापंथी समाज, कलकत्ता

'त्यागी' (पद्मसिंह अंक)—सम्पादक : रामानुजदयालु त्यागी 'त्यागी' कार्यालय, मेरठ

'त्रिधारा, (माखनलाल चतुर्वेदी स्मृति अंक)—सम्पादक : श्री प्र० च० जोशी, श्री नीलकण्ठेश्वर राजकीय महाविद्यालय, खंडवा (म० प्र०)

'त्रिपथगा' (श्रद्धांजलि अंक)—सम्पादक : श्री काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर', सूचना विभाग उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ

'दिनमान' (अनेक अंक)—सम्पादक : रघुवीर सहाय, टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन, नई दिल्ली-2

'दीपकजी, एक कृतित्वमय व्यक्तित्व'—मीरां प्रकाशन, जयपुर

'देवनागरी विश्वनागरी बने'—विनोबा भावे, नागरी लिपि परिषद् राजघाट, नई दिल्ली-2

'नया जीवन' (अनेक अंक)—सम्पादक : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

'नागरी पत्रिका' (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी श्रद्धांजलि अंक)—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

'निर्माल्य' (श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति-अंक)—मारवाड़ी विकास संघ, गोरखपुर

'पंडित हृषीकेश शर्मा सत्कार-स्मरणिका'—विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर

'परिचय पत्रिका' (स्वर्ण जयन्ती समारोह)—अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्, दिल्ली-6

'परिशोध' (अंक-23)—सम्पादक : डॉ० इन्द्रनाथ मदान, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

'परोपकारी' (अनेक अंक)—सम्पादक : डॉ० भवानीलाल भारतीय, परोपकारिणी सभा, अजमेर

'पुण्य स्मरण' (बाबू रतनलाल जैन की प्रथम पुण्य-तिथि पर प्रकाशित)—बाबू रतनलाल जैन स्मृति समारोह समिति, बिजनौर

'प्रकाशन-समाचार' (अनेक अंक)—अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ, दिल्ली

'प्रतिबिम्ब'—सम्पादक : एस० एन० भार्गव, भोपाल

'फुरसत' (नीलकंठ अंक, जनवरी, 80)—नमक चौराहा, सीहोर (म० प्र०)

'बाल साहित्य समीक्षा' (स्वर्गीय डॉ० विद्याभूषण 'विभु' स्मृति अंक)—सम्पादक : डॉ० राष्ट्रबन्धु, रामकृष्ण-नगर, कानपुर

'बाल साहित्य समीक्षा' (स्वर्गीय स्वर्ण सहोदर विशेषांक)—सम्पादक : डॉ० राष्ट्रबन्धु रामकृष्णनगर, कानपुर

'बिजनौर टाइम्स' (पंडित पद्मसिंह शर्मा विशेषांक)—सम्पादक : बाबूसिंह चौहान

बिहार की साहित्यिक प्रगति (बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के छब्बीसवें से तैंतीसवें अधिवेशन तक के अध्यक्षों के भाषण)—बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, पटना-3

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के अब तक के सभी वार्षिक कार्य-विवरण—मंत्री, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

'बेतवा-वाणी'—सम्पादक : डॉ० भगवानदास माहौर, डॉ० भगवानदास गुप्त, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

'ब्रज भारती' (अनेक अंक)—सम्पादक : वृन्दावनदास, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

'भारती' (पत्रकार कला विशेषांक)—सम्पादक : महेशचन्द्र धूसर, भारती कार्यालय, लक्ष्मणगंज, झाँसी

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोह (1973, डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर' के अभिनन्दनार्थ)—ज्ञानपीठ नई दिल्ली

'भारतोदय' (जून, जुलाई, अगस्त, 1971)—गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

मासिक विवरणिका (अनेक अंक)—मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन जबलपुर-भोपाल

'मनीषा' (एटा जनपद विशेषांक, 1975-76)—सम्पादक : प्रो० रामलखन पाण्डेय, कोठीवाल आढ़तिया, महाविद्यालय कासगंज (उ० प्र०)

'मनोहर कहानियाँ' (दहेज बलि विशेषांक)—सम्पादक : आलोक मित्र, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद

'मराल' (नवम्बर 1939 से अक्तूबर 1940 तक)—सम्पादक : आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

'मरुश्री' (सभी अंक)—लोक संस्कृति शोध संस्थान नगरश्री, चूरू (राज०) सम्पादक : गोविन्द अग्रवाल

'मानव' (राष्ट्रकवि माधव शुक्ल, श्रद्धांजलि अंक)—सम्पादक : श्री रत्नाकर शर्मा

'मानवता' (चतुर्वेदी अभिनन्दन अंक)—सम्पादक : राधादेवी गोयनका, प्रयागदत्त शुक्ल, मानवता कार्यालय, अकोला (म० प्र०)

'मानसी'—मानस हिन्दी परिषद्, मैसूर-6

'मुक्त कंठ' (आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी स्मृति-धरोहर)—सम्पादक : शंकरदयालसिंह, डाक बंगला रोड, पटना

'मुक्ति मार्ग'—सम्पादक : मुक्तिकुमार मिश्र, स्वराज्य प्रकाशन, कानपुर

'युग वाणी' (सम्पादकाचार्य विश्वम्भरदत्त चन्दोला जन्म-शताब्दी विशेषांक)—सम्पादक : आचार्य गोपेश्वर कोठियाल, देहरादून

'युवक' कमलेश स्मृति अंक—सम्पादक : क्षेमचन्द्र 'सुमन'

'रंग भारती' (आगा हश्र विशेषांक)—नक्षत्र अन्तर्राष्ट्रीय, चौक, लखनऊ-226003

'रजत जयन्ती महोत्सव स्मृति ग्रन्थ'—सम्पादक : रजनीकान्त चक्रवर्ती, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

'राष्ट्रभाषा सन्देश' (अनेक अंक)—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

'राष्ट्रभाषा-स्मारिका'—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

'लहँदी-भाषा और साहित्य'—डॉ० हरदेव बाहरी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-4

'लेखिका'—लेखिका संघ दिल्ली, वार्षिक समारोह मई 1971

'लोकमत' (श्री रामलोचनशरण विशेषांक)—शारदाप्रसाद सैदपुरी, भागलपुर

'लोकमत' (नेपाली स्मृति अंक)—शारदाप्रसाद सैदपुरी, भागलपुर

'लोकालोक' (शास्त्रार्थ महारथी अभिनन्दन अंक)—विशेषांक सम्पादक : शिवकुमार गोयल, माधव पुस्तकालय, कमलानगर, दिल्ली

वन्य जाति (धर्मदेव शास्त्री श्रद्धांजलि अंक)—सम्पादक : श्री जे० एच० चिचोलकर, ठक्कर बापा स्मारक सदन, लिंक रोड, झंडेवालान, नई दिल्ली

'विक्रम' (अंक 3, जून 1952)—सम्पादक : सूर्यनारायण व्यास, उज्जैन (मालवा)

'विज्ञान स्मारिका' (1978)—दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन

'विनय' (अलवर-अंक, 1969)—राजर्षि कालेज, अलवर

'विनिमय' —सम्पादक : सन्तोषकुमार साहू एम० पी० श्री राधेनाथ पंडित आदि, राष्ट्रभाषा रोड, कटक-75309

'विश्व ज्योति' (संस्मरणांक)—सम्पादक : सन्तराम बी० ए०, साधु आश्रम, होशियारपुर

'विश्वमित्र' (रजत जयन्ती विशेषांक)—सम्पादक : कृष्णचन्द्र अग्रवाल, कलकत्ता

'विश्वम्भरा' (विश्वेश्वरनाथ रेऊ स्मृति विशेषांक)—सम्पादक : विद्याधर शास्त्री, हिन्दी विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, बीकानेर

'विश्वविद्यालय समाचार' (हिन्दी पत्रकारिता के 150 वर्ष)—जबलपुर विश्वविद्यालय, पत्रकारिता विभाग

'वीणा' (सर सिरेमल बापना अभिनन्दनार्थ मध्यभारत-साहित्यकारांक)—सम्पादक : कमलाशंकर मिश्र, भालचन्द्र जोशी, मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर

'वीणा' (कमलाशंकर मिश्र अमृत महोत्सवांक)—सम्पादक : कमलाशंकर मिश्र, भालचन्द्र जोशी, मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर

'वीणा' (मालवी अंक)—सम्पादक : मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही', मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर

'वेदप्रकाश' (अनेक अंक)—सम्पादक : विजयकुमार, नई सड़क, दिल्ली-6

'वैचारिकी' (बीकानेर अंक)—सम्पादक : सत्यनारायण पारीक, मूलचन्द प्राणेश, भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर

'शतदल'—सम्पादक : डॉ० वासुदेवनन्दनप्रसाद, मगध विश्वविद्यालय, गया

'श्री वेंकटेश्वर समाचार' (हीरक जयन्ती अंक)—सम्पादक : देवेन्द्र शर्मा शास्त्री, बम्बई-4

'श्रेय' (स्व० वीरबाला काव्य साधना अंक)—सम्पादक : डॉ० मोहनलाल श्रीवास्तव, न्यू मार्केट, न्यू रोहतक रोड नई दिल्ली-5

'सचित्र दरबार' (ग्वालियर अंक)—सम्पादक : शंकरलाल गुप्त 'विन्दु'

सत्यार्थप्रकाश शताब्दी समारोह पानीपत स्मारिका—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

'सन्दर्भ भारती' (अनेक अंक)—भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता-13

'समय' साप्ताहिक (स्वर्ण जयन्ती विशेषांक)—जौनपुर (उत्तर प्रदेश)

'सम्मेलन पत्रिका' (श्यामसुन्दरदास जन्म शती विशेषांक)—सम्पादक : डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

'सविता' (विदेह-स्मृति-अंक)—सम्पादक : अभयदेव शर्मा, बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर

'सारस्वत सन्देश' (पं० ब्रजनाथ शर्मा गोस्वामी स्मृति अंक, फरवरी-मार्च, 1963)—सारस्वत सन्देश कार्यालय, आगरा

'साहित्य' (बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-स्वर्ण-जयन्ती-विशेषांक)—सम्पादक : केसरी कुमार, पटना

साहित्य-पर्यवेक्षक (कानपुर विश्वविद्यालय दीक्षान्त समारोह विशेषांक)—सम्पादक : वाल्मीकि त्रिपाठी, कानपुर-12

'सिन्धी भाषा और उसका साहित्य'—श्री मोतीलाल जोतवाणी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-4

'सुकवि कुंजबिहारी स्मृति-पत्रिका'—सुकवि कुंजबिहारी वाजपेयी-स्मृति-समिति, कानपुर

'सुकवि विनोद'—सुकवि साहित्य परिषद्, लखनऊ

'सूर सौरभ' (अनेक अंक)—सम्पादक : उदयशंकर शास्त्री, सूर स्मारक मण्डल, आगरा

स्मारिका—मेरठ आर्यसमाज शताब्दी समारोह 1978

'स्मारिका : 1979'—आर्य उप प्रतिनिधि सभा, मुरादाबाद

स्मारिका—आर्यसमाज देहरादून शताब्दी 1980

'स्मारिका : 2017 विक्रमी'—नागरी भण्डार, बीकानेर

स्मारिका' (दूसरी पुण्य तिथि 23 नवम्बर, 1979)—प्रकाशवीर शास्त्री स्मारिका समिति नई दिल्ली-1

'स्मारिका' (स्वर्ण-जयन्ती-समारोह 1980)—भारतेन्दु समिति, कोटा

'स्मारिका' (षष्ठम अधिवेशन)—मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राजनादगाँव

'स्मारिका 1972'—श्री अम्बिका ग्रामोदय प्रतिष्ठान, जौनपुर

'स्व० के० वासुदेवन पिल्लै स्मृति ग्रन्थ'—केरल हिन्दी प्रचार सभा, तिरुवनन्तपुरम-14

'स्व० महामहोपाध्याय विद्यावाचस्पति डॉ० दत्तो वामन पोतदार श्रद्धांजलि विशेषांक'—महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्ध शताब्दी समारोह स्मारिका, दिल्ली 1976

'हरिऔध' (अनेक अंक)—हरिऔध कला भवन समिति, आजमगढ़

हिन्दी-प्रचारक'—सम्पादक : श्री कृष्णचन्द्र बेरी

'हिन्दी प्रचार समाचार' (अनेक अंक)—सी० एल० मेहता, हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

हिन्दी सभा (38 वाँ वार्षिकोत्सव)—हिन्दी सभा, लाल बाग, सीतापुर (उ० प्र०)

'हिन्दी साहित्य' (दिनकर विशेषांक)—सम्पादक : श्री हरिवंश 'तरुण', साहित्यकार संसद्, वैद्यनाथ-देवघर, बिहार

'हिन्दी साहित्य' (निराला विशेषांक)—साहित्यकार संसद्, वैद्यनाथ धाम देवघर, बिहार

'हिमाचल साप्ताहिक' (टिहरी नगर विशेषांक)—सम्पादक: श्री सत्यप्रसाद रतूड़ी, मसूरी (उ० प्र०)

•

नामानुक्रमणी

आगामी खण्डों में समाविष्ट होने वाले हिन्दी-सेवी

अंबिकानन्दन शरण
अक्षयकुमार दत्त
अक्षयानन्द
अचिन्त्यलाल साह
(स्वामी) अच्युतानन्द परमहंस
अजयेश भट्ट
अजितकुमार शास्त्री
(राजा) अजितसिंह, खेतड़ी
(स्वामी) अटलराम
अतिसुखशंकर त्रिवेदी
अनन्तराम शर्मा
अनन्त वामन वाकणकर
अनन्तसिंह 'फितरत'
अनिरुद्ध चौबे 'शेखर कवि'
(ठा०) अनिरुद्ध सिंह
अनीस
(शान्त स्वामी) अनुभवानन्द सरस्वती
अनूपदास
अब्दुलरहमान 'मंजर'
अमरराजसिंह परिहार
अमरचन्द व्यास
अमरदत्त ध्यानी 'कुमुद'
(ठा०) अमरदान कविया
अमरदान बारहट
अमरनाथ श्रीवास्तव
अमरसिंह
अमरेश मिश्र
अमानसिंह गोठिया

(सैयद) अमीर अली 'मीर'
अमीरचन्द बम्बवाल
अमीरदास
अमीरसिंह
अमृतनाथ झा
अमृतलाल पढियार
अमृतलाल माथुर
अम्बादत्त
(पं०) अम्बाप्रसाद
अम्बाप्रसाद भट्ट 'अम्बुज'
अम्बिकादत्त बहुगुणा
अयोध्यानाथ 'अवधेश'
अयोध्याप्रसाद 'अवधेश'
अयोध्याप्रसाद तिवारी
अयोध्याप्रसाद पाठक
अयोध्याप्रसाद मिश्र
अयोध्याप्रसाद वाजपेयी
अयोध्याप्रसाद सरयूपारीण
अयोध्यासिंह
अरविन्द कान्त
अर्जुन
अर्जुनदास केडिया
अर्जुननाथ रैना
(दीवान) अलखधारी
अलगूराय शास्त्री 'आनन्द'
(हाजी) अली खाँ
(सैयद) अली मोहम्मद
अशोपीप्रसाद चौबे

अवध उपाध्याय
अवधप्रसाद सिंह
अवधबिहारी माथुर
अवधबिहारी श्रीवास्तव 'अवधेश'
अवधेशसिंह, राजा कालाकाँकर
अवन्तबिहारीलाल माथुर
असगर अली 'आजाद'
असीम दीक्षित

आत्मस्वरूप शर्मा
(स्वामी) आत्मानन्द सरस्वती
(जैनमुनि) आत्माराम
आत्माराम देवकर
आत्माराम विश्वनाथ
(डॉ०) आदित्यनाथ झा
आदित्यप्रकाशसिंह बाघेल
(बाबू) आदित्यप्रसादसिंह
आदित्यराम भट्टाचार्य
आदित्यराम संगीताचार्य
आनन्द भिक्षु सरस्वती
आनन्द मिश्र
आनन्दमोहन अवस्थी
(महात्मा) आनन्दस्वरूप 'विश्वात्मा'
आनन्दीप्रसाद मिश्र 'निर्द्वन्द्व'
आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव
आनन्दीलाल जैन शास्त्री
आर्यमुनि, महामहोपाध्याय
आवड़दान

आशुप्रसाद मुख्तार

इग्नेशियस
इन्दा
इन्द्र, एम० ए०
इन्द्रजीत सिंह
(डॉ०) इन्द्रपालसिंह
इन्द्रबाई रतनू
इन्द्रमल ब्रह्मभट्ट
इन्द्रलाल शास्त्री विद्यालंकार
इन्द्रशंकर मिश्र
इन्द्रसिंह चक्रवर्ती
(मौ०) इफ़्तिख़ार ख़ाँ 'जिगर'
इब्राहीम शरीफ़
इरफान मोहम्मद 'नातिक' मालवी

ई० वी० रामस्वामी नायिक्कर
ईश्वरदत्त
ईश्वररामजी
(मुन्शी) ईश्वरशरण
ईश्वरीदान
(मुन्शी) ईश्वरीप्रसाद
ईश्वरीप्रसाद गुप्त
ईश्वरीप्रसाद त्रिपाठी
(भाई) ईसरलाल

(मास्टर) उग्रसेन
उत्तमसिंह तोमर
उदयनाथ
उदयनारायण वाजपेयी
उदयराज 'उज्ज्वल'
उदितनारायणलाल वर्मा
उदितनारायण सिंह करचुली 'अभिराम'
उद्धव औघड़
(सेठ) उद्धवदास
उपेन्द्र महारथी

उमरदान
(चौ०) उमरावसिंह
उमरावसिंह पँवार
उमरावसिंह मिश्र
उमाचरण पाण्डेय 'त्रिदण्डी'
उमानाथ मिश्र
उमा नेहरू
उमापति त्रिवेदी
उमाशंकर द्विवेदी
उमाशंकर वर्मा
उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश'
उमाशंकर शुक्ल
उमेशचन्द्रदेव मिश्र
(ठा०) उम्मेदसिंह बारहट

ऊधो कवि
ऊमरदान लालस

ऋषभदास राँका

(डॉ०) एस० एम० एकबाल
(सैयद) एहतेशाम हुसैन

ओघवदास
ओपा
ओंकारनाथ 'दिनकर'
ओंकारनाथ वाजपेयी
ओंकारलाल वैश्य 'प्रणव'
ओंकारेश्वरदयाल 'नीरद'
(माता) ओंकारेश्वरी
ओंप्रकाश
(स्वामी) ओम्भक्त
ओम्वती अग्रवाल
ओरुगण्टि वेंकटेश्वर शर्मा शास्त्री

कनीज फातमा
कनीराम
कन्हैयालाल
(मुन्शी) कन्हैयालाल
कन्हैयालाल मिण्डा 'शान्तेश'
कन्हैयालाल 'लालविनीत'
कन्हैयालाल जैन
(सेठ) कन्हैयालाल पोद्दार
कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी
कन्हैयालाल मिश्र, एडवोकेट
कन्हैयालाल वैद्य
कपिलदेव मालवीय
कमलदेवनारायण
(राजा) कमलनारायण सिंह
कमलाकान्त
कमलानाथ शर्मा 'मदनेश'
कमलाप्रसाद वर्मा
(भाई) कलाचन्द
कल्याणदान
(महात्मा) कल्याणदास
कल्याणसिंह शेखावत
कविमान
कस्तूरमल बाँठिया
काजी अनवर
(फकीर) कादिरबख्श 'बेदिल
का० न० रामन्ना शास्त्री
कान्तिलाल रतनलाल पारीख
कान्हजी प्रश्नवर
कान्हसिंह
कान्हिराम पारीक
(बाबू) कान्हूलाल 'कान्ह'
(मुन्शी) कामताप्रसाद 'बालकवि'
कालिकाप्रसाद भटनागर
कालिकाप्रसाद मिश्र
(महाराजकुमार) कालिकाप्रसाद सिंह 'कालिका'
कालिदास कपूर
कालीचरण त्रिपाठी 'वारिद'
कालीचरण दीक्षित 'फणीन्द्र'

कालीचरण शर्मा आर्केमुसाफिर
कालीचरण सेवक
कालीप्रसाद 'विरही'
कालूराम शीतलदास सेलपाल
काशीनाथ खत्री
काशीनाथ तिवारी झा
काशीनाथ बलवन्त मावडे
काशीनाथ शास्त्री
काशीपति त्रिपाठी 'प्रेमीहरि'
काशीप्रसाद शुक्ल
किशनलाल 'कृष्णकवि'
(ठा०) किशोरसिंह बार्हस्पत्य
किसनदान
किसनसिंह चावड़ा
कीरतिकुमारी
कुंजबिहारी शर्मा
कुंजीलाल चतुर्वेदी
कुँवरजी नाथू वैद्य
कुलदीप चड्ढा
(सन्त) कुबेरदास 'करुणासागर'
(राज) कुशलपालसिंह
कुशवाहा कान्त (कामताप्रसाद)
कृपानाथ मिश्र
कृपाशंकर अवस्थी
(महाशय) कृष्ण
कृष्णकान्त मालवीय
कृष्णकिशोर श्रीवास्तव
कृष्णचन्द्र शास्त्री
कृष्णदत्त त्रिवेदी 'कृष्ण'
कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'
कृष्णनन्दन 'पीयूष'
कृष्णनाथ मिश्र
कृष्णप्रकाशसिंह 'कृष्ण' अखौरी
कृष्णप्रसादसिंह 'अवनीन्द्र'
(स्वामी) कृष्णबोधाश्रम, शंकराचार्य
कृष्णमोहन शर्मा
कृष्णबिहारी द्विवेदी 'नलिनीश'

कृष्णबिहारी चतुर्वेदी
कृष्णबिहारी वाजपेयी 'कृष्ण'
कृष्णलाल वर्मा
कृष्णसिंह सौदा बारहट
(कुमार) कृष्णानन्द सिंह
कृष्णा पाण्डे
के० ना० डांगे
के० वेलायुधन नायर
केदारनाथ कुलकर्णी
केदारनाथ भट्ट
केदारनाथ शर्मा, चित्रकार
केवलचन्द स्वामी
(सन्त) केवल पुरी
(स्वामी) केवलराम
केवलराम त्यागी
केशनीप्रसाद चौरसिया
केशरलाल अजमेरा
केशव अनन्त पटवर्द्धन
केशवप्रसाद चौबे
केशवप्रसाद पाठक
(आचार्य) केशवप्रसाद मिश्र
(ठा०) केशवप्रसाद सिंह
केशवराम टण्डन
केशवराम फडसे
केशवराम भट्ट
(स्वामी) केशवानन्द
केशवानन्द चौबे
(ठा०) केसरीसिंह बारहट, कोटा
केसरीसिंह बारहट, सोनियाणा
केसरीसिंह महियारिया
कैलाशचन्द्र निमरानिया 'पीयूष'
(डॉ०) कैलाशनाथ भटनागर
कोतवालसिंह नेमी
कोदूराम 'दलित'

(आचार्य) क्षितिमोहन सेन
क्षितीन्द्रमोहन मित्र मुस्तफी

क्षेत्रपाल शर्मा
क्षेमकरण
क्षेमकरण कवि
क्षेमधारीसिंह
क्षेमानन्द राहत
क्षेमेन्द्र गुलेरी

खड्गजीत मिश्र
खड्गबहादुर मल्ल
खानचन्द गौतम
खिलावनलाल
खुमाणसिंह चौहान
खुमान कवि
खूबचन्द बघेल
खूबचन्द रमेश
खूबीराम लवानिया
खेतसिंह
(सेठ) खेमराज श्रीकृष्णदास
खैराती खाँ
ख्यालीराम

गंगजी गौड़
(ठा०) गंगादान कविया
गंगाधर अवस्थी 'द्विजगंग'
गंगाधर पण्डित
गंगाधर मिश्र 'गंग'
गंगाधर मु० शुक्ल
गंगाधर व्यास
गंगाधर सीताराम 'अभंग'
गंगाप्रसाद
(चीफ जज) गंगाप्रसाद
गंगाप्रसाद 'अजल'
गंगाप्रसाद 'गंग'
गंगाप्रसाद गुप्त
गंगाप्रसाद भौतिका
गंगाप्रसाद मिश्र 'द्विजगंग'
गंगाप्रसाद राजपूत

गंगाप्रसाद शर्मा 'विद्या विनोद'
गंगाप्रसाद शास्त्री
गंगाप्रसादसिंह
गंगाप्रसादसिंह अखौरी
गंगाप्रसाद सुनार
गंगाबिसन
(स्वामी) गंगाराम
गंगाराम शर्मा
गंगाराम मूलचन्द 'भृंगी'
गंगालहरी शर्मा
गंगाविष्णु पाण्डेय
(सेठ) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
गंगाशंकर पंचौली
गंगाशंकर मिश्र
गंगाशरण भार्गव
(पंडितवर) गंगासहाय
गंगासहाय गोयल, कविराज
गंगोत्तरीप्रसाद सिंह
गजराजबाबू श्रीवास्तव
(ठा०) गजराजसिंह
गजाधर शुक्ल 'द्विजशुक्ल'
गजाधरसिंह
गजानन माधव मुक्तिबोध
गट्टुभाई ध्रुव
गणपति कृष्ण गुर्जर
गणपतिचन्द्र केला
गणपति जानकीराम दुबे
गणपति मालवीय
गणपतिलाल चौबे
गणपति शर्मा
(गोस्वामी) गणेशदत्त
(डॉ०) गणेशदत्त गौड़
गणेशदत्त पाठक
गणेशदत्त शर्मा
गणेशनारायण सोमानी
गणेशपुरी 'गुप्तजी'
गणेश प्रभाकिक

(सेठ) गणेशप्रसाद अग्रवाल, कविभूषण
(डॉ०) गणेशप्रसाद गणितज्ञ
गणेशप्रसाद चुराटिया
गणेशप्रसाद द्विवेदी
गणेशप्रसाद मिश्र 'इन्दु'
गणेशप्रसाद वर्णी
गणेशप्रसाद शर्मा
गणेशप्रसाद शोगला
गणेशप्रसाद शुक्ल 'गणाधिप'
गणेशप्रसाद सिंघई
(ठा०) गणेशबक्शसिंह 'गणपाल'
गणेशबिहारी मिश्र
गणेश रामचन्द्र वैशम्पायन
गणेशराम मिश्र
गणेशलाल व्यास 'उस्ताद'
गणेशलाल शर्मा 'प्राणेश'
गणेश वासुदेव मावलंकर
(कुँ०) गणेशसिंह भदौरिया
गणेशानन्द शर्मा
गणेशीलाल सारस्वत
गदाधरप्रसाद त्रिवेदी 'प्रेमीहरि'
गदाधरप्रसाद ब्रह्मभट्ट 'नवीन'
गदाधरप्रसाद शुक्ल
गदाधरप्रसाद श्रीवास्तव
(ठा०) गदाधरबक्श सिंह
गदाधर भट्ट
(बाबू) गदाधर सिंह
गबरीबाई
गयाप्रसाद द्विवेदी 'प्रसाद'
(मुन्शी) गयाप्रसाद श्रीवास्तव
गरीबदास गोस्वामी
(भट्ट) गिरधारीलाल 'कविकिंकर'
गिरधारीलाल द्विवेदी 'गिरधारी'
गिरधारीलाल बहुगुणा
गिरवरदान
गिरवरसहाय पाण्डेय
गिरिजाकुमार घोष, पार्वतीनन्दन

गिरिजादत्त नैथानी
गिरिजादत्त बाजपेयी
गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
गिरिजादयाल श्रीवास्तव 'गिरीश'
गिरिजाप्रसाद द्विवेदी
(सर) गिरिजाशंकर बाजपेयी
गिरिधर
गिरिधर शर्मा 'गिरीश'
(मुन्शी) गिरधारीलाल
गिरिधारीलाल बहुगुणा
गिरीशचन्द्र चतुर्वेदी
गीतानन्द सरस्वती
गुमानी कवि, लोकरत्न पन्त
गुरमुखसिंह 'जान'
गुराँदित्ता खन्ना
(स्वामी) गुरुचरणदास महामण्डलेश्वर
गुरुदत्त विद्यार्थी
(ठा०) गुरुदत्तसिंह
गुरुप्रसाद शर्मा 'सुरेन्द्र'
गुरु महादेवाश्रम प्रताप शाही
गुरुराम विश्वकर्मा
गुरुसहाय लाल
गुलाब कविराव
गुलाबचन्द उपाध्याय 'गुलाब'
(डॉ०) गुलाबचन्द चौधरी
गुलाबन मिश्र
गुलाबप्रसन्न शाखाल
गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब'
(कविवर) गुलाबराय
गुलाब विजय
गुलाबसिंह
गुलाब अली
गेंदालाल 'लाठ'
गोकरणनाथ मिश्र
गोकर्णप्रसाद मिश्र 'प्रसाद'
गोकुलचन्द्र चतुर्वेदी
गोकुलचन्द्र मिश्र-1

गोकुलचन्द्र मिश्र-2
(सन्त) गोकुलचन्द्र शास्त्री
गोकुलप्रसाद
गोकुलप्रसाद 'बृज'
गोपालजी कविया
गोपालदत्त पन्त
गोपालदान
गोपालदान चारण
गोपालदास-1
गोपालदास-2
गोपालदास खाकी
गोपालदास गुप्त
गोपालदास बरैया
गोपालदीन शुक्ल
गोपालदेवी
गोपालप्रसाद शर्मा, होशंगाबाद
गोपालप्रसाद शर्मा
गोपाल मिश्र
(डॉ०) गोपाल राठौर
गोपालराव अपसिंगीकर
गोपाललाल वर्मा
गोपाललाल शर्मा
(डॉ०) गोपाल व्यास
(ठा०) गोपालशरण सिंह
गोपालशरणसिंह सेंगर
गोपालानन्द
गोपीकृष्ण 'गोपेश'
गोपीकृष्ण तिवारी
गोपीनाथ
(म० म०) गोपीनाथ कविराज
गोपीनाथ शास्त्री
गोपेन्द्रनारायण 'पथिक'
गोमतीप्रसाद पाण्डेय 'कुमुदेश'
गोरखनाथ चौबे
(डॉ०) गोरखप्रसाद
गोरधनभाई फूलाभाई पटेल
गोरावन बारहट

गोरेलाल मंजु 'सुशील'
गोरेलाल 'लाल'
गोवर्धनदास शास्त्री
गोवर्धनलाल
गोवर्धनलाल गोस्वामी
गोवर्धनलाल 'श्याम'
गोवर्धन शर्मा छंगाणी
गोवर्धन शर्मा त्रिपाठी
(राव) गोवर्धनसिंह
गोविन्द कवि
गोविन्द गिल्लाभाई
गोविन्ददास व्यास 'विनीत'
गोविन्दनारायण अवस्थी
गोविन्दप्रसाद
गोविन्दप्रसाद घिल्डियाल
गोविन्दप्रसाद तिवारी-1
गोविन्दप्रसाद तिवारी-2
गोविन्दप्रसाद पाठक
गोविन्दप्रसाद पाण्डे
गोविन्दप्रसाद भट्ट
गोविन्दप्रसाद 'महाभारती'
गोविन्दप्रसाद शुक्ल
गोविन्द मालवीय
गोविन्द रघुनाथ थत्ते
(कोमाण्डूरि) गोविन्द राजाचार्य
(डॉ०) गोविन्दराम कोटयाला
गोविन्दराम शास्त्री
गोविन्दराम हासानन्द
(ठा०) गोविन्दसिंह
गोविन्दवल्लभ पन्त (राजनेता)
गोविन्द वैष्णव
गोविन्द सहाय
गोविन्दराव हर्डिकर
गोविन्द हयारण
गौर गुसाईं
गौरीदत्त पाण्डे
गौरीदत्त वाजपेयी

गौरीनाथ झा
गौरीनाथ पाठक
गौरीशंकर जोशी 'धूमकेतु'
गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'
गौरीशंकर पण्डा 'गौरी'
गौरीशंकर भट्ट
गौरीशंकर मिश्र
गौरीशंकर शर्मा
गौरीशरण शर्मा कौशिक
(स्वामी) ग्वालानन्द

घनश्याम
घनश्यामदास पाण्डेय
घनश्यामदास पोद्दार
(डॉ०) घनश्याम 'मधुप'
घनश्यामप्रसाद 'श्याम'
घनश्याम शुक्ल
घनश्यामसिंह गुप्त
घनानन्द बहुगुणा
(बाबू) घासीराम
घासीराम व्यास
(बाबा) घिसियावनदास
घूरेलाल 'लालकवि'

(आचार्य) चक्रधर जोशी
चक्रपाणि शर्मा
चक्रेश्वर भट्टाचार्य
चण्डीचरण सेन
चण्डीदान
चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'
चण्डीसिंह
चतरदान सामोर
(डॉ०) चतरसिंह रावत
(महाराज साहब) चतुरसिंह बावजी
चतुर्भुज औदीच्य
चतुर्भुज पाराशर 'चतुरेश'
चतुर्भुज मिश्र

चन्दनसिंह
चन्दा झा
चन्दाबाई पण्डिता
चन्दूलाल सी० सेठ
चन्दूलाल वर्मा 'चन्द्र'
चन्द्रकलाबाई
चन्द्रकुँवर बर्त्वाल
चन्द्रदत्त जोशी
चन्द्रधर
चन्द्रधर जौहरी
चन्द्रनाथ शुक्ल
(महन्त) चन्द्रनाथ 'योगी'
चन्द्रभागा कोली
चन्द्रभानसिंह बैस
(ठा०) चन्द्रभानु सिंह
राजा चन्द्रभानुसिंह जूदेव 'रज'
चन्द्रभाल
चन्द्रभाल चतुर्वेदी 'चन्द्र'
चन्द्रमनोहर मिश्र
चन्द्रमोहन रतूड़ी
चन्द्रशंकर भट्ट
चन्द्रशेखर कवि
चन्द्रशेखर बडोला
चन्द्रशेखर शास्त्री साहित्याचार्य
चन्द्रसिंह झाला 'मयंक'
रानी चन्द्रावती
चन्द्रिका
चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी
चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी
चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र
चन्द्रिकाप्रसाद शुक्ल 'चन्द्रमौलि'
चन्द्रिकाप्रसादसिंह 'प्रवीण' क्षमापति
चन्द्रिकाशरण महन्त
(रायबहादुर) चम्पाराम मिश्र
चम्पालाल जैन
चम्पालाल जौहरी 'सुधाकर'
चम्पालाल सिंघई 'पुरन्दर'

चमनसिंह
चमूपति एम० ए०
चरणदास
(कुं०) चाँदकरण शारदा
(स्वामी) चाँदमल
चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र'
स्वामी चिद्घनानन्द
(स्वामी) चिदानन्द सरस्वती
चिन्तामणि जोशी
चिमनदास
चिमनलाल मालोत
चिरंजीलाल शर्मा
चिरजीलाल शर्मा 'चपल'
चिरजीलाल लोयलका
चिरजीवी मिश्र
चुन्नीलाल 'शेष'
चूहड़मल डिपार्योमल हिन्दूजा
चेतराम शर्मा
चैनदास
चैनसुखदास न्यायतीर्थ
चैनसुख लुहाड्या
(मुनि) चौथमल जैन दिवाकर

छगनभाई क० पटेल
छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर
छत्रधारीसिंह 'शारद'
छत्रसाल तिवारी
छदम्मीलाल 'विकल'
छन्नूप्रसाद 'कृष्णदास'
छन्नूलाल द्विवेदी
छबीलेलाल गोस्वामी
छाँगुर त्रिपाठी 'जीवन'
छाजूराम 'छवेश'
छुन्नूलाल वाजपेयी
छेदाशाह सैयद
छेदीलाल झा 'सेवक'
छैलबिहारी चतुर्वेदी

छैलबिहारीलाल बजाज
(सन्त कवि) छोटम
छोटूराम तिवारी
छोटूलाल मिश्र
छोटूलाल 'लालकवि'
(लाला) छोटेलाल बार्हस्पत्य
छोटेलाल शर्मा गौड़
छोटेलाल शुक्ल

जगबहादुरसिंह अष्ठाना 'जयरामदास'
जगलीलाल ब्रह्मभट्ट
जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'
जगदम्बालाल बख्शी
जगदम्बासहाय श्रीवास्तव
जगदीश 'कवि'
(भिक्खु) जगदीश कश्यप
जगदीश झा 'विमल'
(डॉ०)जगदीशचन्द्र भारद्वाज 'सम्राट्'
जगदीशचन्द्र माथुर
जगदीशचन्द्र शर्मा 'मतवाला'
जगदीशदान खड़िया
जगदीशनारायण चौबे
जगदीशनारायण रूसिया
जगदीशनारायण सिंह
जगदीशप्रसाद अग्निहोत्री
(कुं०) जगदीशसिंह गहलौत
जगदेवसिंह सिद्धान्ती
(महर्षि) जगन्नाथ
जगन्नाथ खन्ना
जगन्नाथ गुप्त
जगन्नाथदास दुर्रानी
जगन्नाथप्रसाद मिश्र 'उपासक'
जगन्नाथप्रसाद शर्मा
जगन्नाथ चौबे माथुर
जगन्नाथ पुष्करत
जगन्नाथ 'भक्त'
जगन्नाथ भारतीय

(अधिकारी) जगन्नाथदास विशारद
जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी
जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी 'कुमलशरण'
जगन्नाथप्रसाद मिश्र-1
जगन्नाथप्रसाद मिश्र-2
(चौ०) जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, आयुर्वेद पंचानन
जगन्नाथप्रसादसिंह 'कविकिंकर'
जगन्नाथराय शर्मा
जगन्नाथशरण
जगन्नाथ शर्मा राजवैद्य
जगमलाल गुप्त, मुख्तार
जगमोहन ब्रह्मभट्ट
(मुन्शी) जगमोहन लाल
जगमोहन 'विकसित'
(राजा) जगमोहनसिंह
(ठा०) जगमोहनसिंह
जड़ावचन्द जैन
जनकेश
जनजयराम
जनार्दन झा 'जनसीदन'
जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'
जनार्दन मिश्र
जनार्दन मिश्र 'पंकज'
जनार्दन मिश्र 'परमेश'
जनेश्वरप्रसाद मायल
जमनाप्रसाद पचौरिया
(सेठ) जमनालाल बजाज
जमनालाल मालपुराहाल
जमुनादास मेहरा
जमुनाप्रसाद श्रीवास्तव
(आचार्य) जयकिशोरनारायण सिंह
(राजा) जयकृष्णदास चतुर्वेदी
(महाराज) जयकृष्णदास शर्मा
जयकृष्ण मिणिठिया
(कविराज) जयगोपाल
जयगोविन्द महाराज

जयचन्द्र विद्यालंकार
जयजयराम मिश्र
जयजयराम शरद
जयदयाल गोयन्दका
जयदेव कुलश्रेष्ठ
(राजकवि) जयदेव ब्रह्मभट्ट
जयदेव वर्मा 'इन्दु'
जयदेव शर्मा
जयदेव विद्यालंकार
जयदेव शर्मा विद्यालंकार
जयनारायण पाण्डेय
(डॉ०) जयनारायण मण्डल
जयनारायण व्यास
जयन्त
जयन्तीप्रसाद उपाध्याय
जयन्तीप्रसाद दुबे
जयप्रकाश नारायण
जयप्रकाशलाल
स्वामी जयरामदास
जयरामदास गुप्त
जयरामदास दौलतराम आलमचन्दानी
जयलाल 'मास्टर'
जयशंकर देवशंकर शर्मा
जयानन्द थपलियाल
जयेन्द्र पुरी, महामण्डलेश्वर
(महाराणा) जवानसिंह
जवाहरलालजी शाह
जवाहरलाल जैन, वैद्य
(डॉ०) जवाहरलाल रोहतगी
(पण्डित) जवाहरलाल शर्मा
जवाहिरमल्ल अग्रवाल 'पोखराज'
जसकरण
जसवन्तसिंह टोहानवी
जहावलसिंह वैद्य
(हाजी) जहूरबख्श
जहूरबख्श हिन्दीकोविद
(डॉ०) जाकिर हुसैन

जागेश्वर बख्श
जानकीदेवी बजाज
जानकीदेवी भण्डारी
जानकीनाथसिंह 'मनोज'
जानकीप्रसाद द्विवेदी
(ठा०) जानकीप्रसाद पँवार
जानकीप्रसाद पुरोहित
जानकीराम
जानकीप्रसाद मिश्र
जानकीशरण त्रिपाठी
जानकीशरण 'स्नेहलता'
जानबिहारीलाल, कविवर
जामसुता प्रतापबाला
जालेजर दीनशाजी चावड़ा
जिन्दाकौल 'मास्टरजी'
जियालाल त्रिपाठी
जी० एस० पथिक, गौरीशंकर शुक्ल
जीतनसिंह
(मुनि) नारायण
जीवणदास
(सन्त) जीवत सिंघ
जीवनदास गुप्त
जीवनराम पण्डित
(भक्त) जीवनलाल
(बाबा) जीवनलाल
जीवनराम भाट
जीवनलाल ब्राह्मण नागर
जीवनारायण मिश्र
जीवराम गारे
जीवनशंकर याज्ञिक
जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ
जीवाराम शर्मा उपाध्याय
जुगतीदान देथा
जुगलकिशोर अग्रवल
जुगलकिशोर मिश्र 'जुगलेश'
जुगलकिशोर मिश्र 'ब्रजराज'
जुगलकिशोर मुख्तार

(स्वामी) दर्शनानन्द सरस्वती
(मुंशी) दरबारीलाल शर्मा
दरियाखान
दलपतराम
दलपतिराम
(ठा०) दलपतिसिंह
दशरथलाल
(डॉ०) दशरथ शर्मा
दशरथप्रसाद द्विवेदी
दशरथ बलवन्त जाधव
दाऊकृष्ण किशोरदास
दामोदर कक्कड़
दामोदरदास खन्ना
(सेठ) दामोदरदास राठी
(डॉ०) दामोदरप्रसाद थपलियाल
दामोदर बलवन्त दाण्डेकर
दामोदर भट्ट 'दामकवि'
दामोदर शास्त्री सप्रे
(गो०) दामोदर शास्त्री मध्व-
गौडेश्वराचार्य
दामोदरसहाय सिंह 'कविकिंकर'
दाराबख्श 'अभिलाषी'
दासी जीवण
दिनेशदत्त झा
दिनेशप्रसाद वर्मा
दिनेशचन्द्र पाण्डेय
दिनेशप्रसाद भट्ट
दिनेशप्रसादसिंह
दिमानबहादुरसिंह
दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी
दिवाकर शर्मा शास्त्री
दीनदयाल
दीनदयाल उपाध्याय
(डॉ०) दीनदयाल गुप्त
दीनदयाल 'दयाल'
दीनदयालु शर्मा व्याख्यानवाचस्पति
दीनदयालु शास्त्री सिद्धान्तालंकार
दीप परवेज
दीपदास
दीनानाथ अश्क
दीनानाथ भार्गव 'दिनेश'
दीनानाथ शास्त्री चुलैट
दीपनारायण 'नारायण कवि'
दुर्गागिरि
दुर्गाचन्द्र जोशी
दुर्गादत्त त्रिपाठी
दुर्गादान
दुर्गादास भास्कर
(बाबा) दुर्गाप्रसाद
(ठा०) दुर्गाप्रसाद 'आनन्द'
दुर्गाप्रसाद कायस्थ
दुर्गाप्रसाद खत्री
दुर्गाप्रसाद गुप्त
दुर्गाप्रसाद बैरिस्टर
दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव
(राय) दुर्गाप्रसाद रस्तोगी 'आदर्श'
दुर्गाशंकर कृपाशंकर मेहता
दुर्गाशंकर नागर
दुर्गाशंकर शुक्ल 'रसिकेश'
(ठा०) दुर्गासिंह 'आनन्द'
(आचार्य) दुर्गेश
दुर्गेशनन्दन 'मानिक'
दुलेराम
दुष्यन्तकुमार त्यागी
दूलाभाया काग
देवकवि (काष्ठजिह्वा)
देवकीनन्दन तिवारी
देवकीनन्दन ध्यानी
देवकीनन्दन शर्मा
(राजर्षि) देवकुमार जैन
देवचन्द्र नारंग
देवदत्त
(डॉ०) देवदत्त
देवदत्त त्रिपाठी
देवदत्त शर्मा उपाध्याय
देवदत्त शर्मा 'महिदेव'
देवदत्त सिरोठिया
देवदास गान्धी
देवदूत विद्यार्थी
देवनारायण व्यास
देवप्रकाश अमृतसरी
देवराज विद्यावाचस्पति
देवव्रत शास्त्री
देवशंकर त्रिवेदी
देवाचार्य अवस्थी
देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्त द्विजेन्द्र'
देवीदत्त द्विवेदी, टैम्पिल श्रीधर
देवीदत्त शुक्ल
देवीदयाल गुप्त
देवीदयाल वैद्य
देवीदयाल श्रीवास्तव
देवीदान
देवीदास लक्ष्मण महाजन
देवीद्विज
देवीदीन ब्रह्मभट्ट
देवीप्रसाद
देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर'
देवीप्रसाद तिवारी 'घण्टाधर'
देवीप्रसाद धवन 'विकल'
(राय) देवीप्रसाद पूर्ण
देवीप्रसाद 'प्रीतम'
देवीप्रसाद शुक्ल
देवीप्रसाद शुक्ल 'कविचक्रवर्ती'
देवीप्रसाद शुक्ल 'प्रणयेश'
देवीप्रसाद शुक्ल बी० ए०
देवीप्रसाद सक्सेना
देवीरत्न अवस्थी 'करील'
(डॉ०) देवीशंकर अवस्थी
देवीसहाय वाजपेयी 'शिवभक्त'
देवेन्द्र अग्रवाल
देवेन्द्रकिशोर जैन

(कुमार) देवेन्द्रप्रसाद जैन
(ठा०) देवराज अधीरा
दौलतराम
दौलतराम शर्मा
दौलतराय मांकड़
द्वारकानाथ उपाध्याय
द्वारकानाथ ठाकुर
द्वारकाप्रसाद पाण्डेय
द्वारकानाथ मैत्र
द्वारकाप्रसाद शर्मा
(चतुर्वेदी) द्वारकाप्रसाद शर्मा
द्वारकाप्रसाद कायस्थ
द्वारकाप्रसाद सनाढ्य 'रणछोर'
द्वारकालाल गुप्त
द्वारिकाप्रसाद 'द्वारिका'
द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र'
द्विज
द्विजदेवनारायण शर्मा 'विधु'
(आचार्य) द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री

(महन्त) धनराज पुरी
धनराज विद्यालंकार
धनराज शास्त्री
धनीराम
धनीराम शर्मा
धनुंधरीराम शर्मा
धनुषधारी मिश्र
धन्यकुमार जैन 'सुधेश'
(कामरेड) धन्वन्तरि
धरणेन्द्रकुमार जैन 'कुमुद'
धर्मचन्द सन्त
(स्वामी) धर्मदास
धर्मभिक्षु, शास्त्रार्थ महारथी
धर्मवीर एम० ए०
(डॉ०) धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री
धर्मेन्द्रवीर भिवहरे
धीरा भगत

(डॉ०) धीरेन्द्र वर्मा
ध्रुवनारायणसिंह
ध्यानदास शर्मा

नकछेदी तिवारी 'अजान'
नकछेदीराम द्विवेदी 'उमापति'
नगनारायणसिंह
नगीनदास 'नागेश'
नजीरउद्दीन सिद्दीकी 'उपमा'
नगेन्द्रनाथ वसु
नजीर अकबराबादी
नत्थाराम शर्मा गौड़
नत्थूलाल सराफ
(बाबा) नन्दकिशोर
नन्दकिशोर तिवारी
(प्रो०) नन्दकिशोर निगम
नन्दकिशोर भार्गव
नन्दकिशोर मिश्र 'लेखराज'
(चौ०) नन्दकिशोर श्रीवास्तव 'किशोर'
नन्दकिशोर विद्यालंकार
नन्दकुमारदेव शर्मा
नन्दलाल 'अटल'
नन्दलाल खन्ना
नन्दलाल विश्वनाथ दुबे
नन्दी शर्मा रावत
नन्ने भाट 'श्रीनिधि'
नन्हूलाल
नन्हेलाल पण्डा
नबीबख्श 'फलक'
नभुलाल
(महाराज) नयनाराम शर्मा
नरसिंहदास
नरसिंहदास अग्रवाल
नरसिंहमोहन मिश्र 'सिंह'
नरसिंहराम शुक्ल
नरहरि विष्णु गाडगिल

नरेन्द्र खजूरिया
नरेन्द्र गोयल
(आचार्य) नरेन्द्रदेव
(डॉ०) नरेन्द्रदेव वर्मा
(डॉ०) नरेन्द्रदेव सिंह
नरेस
नरोत्तम नागर
नरोत्तम व्यास
(राजकवि) नरोत्तमदास पाण्डेय 'मधु'
(कवि) नर्मद
नर्मदाप्रसाद मिश्र
(सरदार) नर्मदाप्रसाद सिंह
(डॉ०) नर्मदेश्वरप्रसाद
नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह 'ईशकवि'
(पाण्डेय) नर्मदेश्वर सहाय
नलिनविलोचन शर्मा
नलिनीबाला देवी
नलिनीमोहन सान्याल
नवनीत चौबे
नवनीतराम यदुराम भट्ट
(मुंशी) नवलकिशोर
नवलकिशोर 'धवल'
नवलदान
नवलसिंह कायस्थ
नवाबसिंह चौहान 'कञ्ज'
नवाबसिंह रघुवंशी
नवीनगोपालसिंह
नागभूषण हलीखेड़
नागेश कवि
नागेश्वर बड़गैया 'नागेश'
नाथराम दोसी
(ठा०) नाथूदान
नाथूराम चतुर्वेदी 'व्रज'
नाथूराम 'प्रवीण'
नाथूराम प्रेमी
नाथूराम माहौर

नाथूराम रेखा
नाथूराम शर्मा-1
नाथूराम शर्मा-2
नाथूराम सिद्धायच
नाथूसिंह महियारिया
नानकचन्द
नानालाल चमनलाल महेता
नानूराम वर्मा
नानूलाल राणा
नामदेव श्रीकृष्णदास 'जीवनप्रभा'
नारायण
नारायण चतुर्वेदी
नारायणदत्त पाठक
नारायणदत्त बहुगुणा
नारायणदत्त सहगल
नारायणदत्त सिद्धान्तालंकार
नारायणदास
नारायणदास नेवन्दराम
नारायण दुलीचन्द व्यास
नारायणपति त्रिपाठी
नारायणप्रसाद जैन
नारायणप्रसाद 'बेताब'
नारायणलाल गोस्वामी 'रसलीन'
नारायण वासुदेव गोडबोले
नारायण शास्त्री खिस्ते
नारायणसिंह 'प्रेमनिधि'
नारायणसिंह वर्मा
नारायण स्वामी
(महात्मा) नारायण स्वामी
(स्वामी) नारायणानन्द 'अख्तर'
निजानन्द
नित्यबोध विद्यारत्न
(स्वामी) नित्यानन्द
नित्यानन्द वेदालंकार
नित्यानन्द शास्त्री
निरंजननाथ आचार्य
निरंजन शर्मा 'अजित'

निराला
निर्भयलाल चौधरी
निर्मल डंगवाल
निर्मलदास
निर्मला मिश्रा
(साधु) निश्चलदास
(स्वामी) निष्कुलानन्द
(सेठ) निहालचन्द
(सन्त) निहालसिंह
निहालसिंह 'हर्ष'
नीरो वर्मा
नीलकण्ठ तिवारी 'जख्मी'
नीलकण्ठ शर्मा
नीलमणि फूकन
नूतनकुमार तैलंग
नृसिंहदास
नृसिंहदास कायस्थ
नृसिंहाचार्य
(पण्डित) नेकीराम शर्मा
नेमनारायण गुप्त
(डॉ०) नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य

पंचमकवि
(राजा) पंचमसिंह लेफ्टिनेण्ट, कर्नल
पंचमसिंह वर्मा
पंचमसिंह शर्मा
पतराम गौड़ 'विशद'
पत्तनलाल 'सुशील'
पद्मधर अवस्थी 'पद्म'
पद्मनारायण आचार्य
पद्मसिंह, उपनाम रामप्रसाद
पद्माकर भट्ट
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
पनजीसुत बेली
पन्नालाल उपाध्याय
पन्नालाल 'पन्नी'
पन्नालाल पुरोहित
(मुंशी) पन्नालाल 'प्रेमपुंज'
पन्नालाल बलदुआ
पन्नालाल बाकलीवाल
पन्नालाल भैया 'छैल'
पन्नालाल श्रीवास्तव
पन्नालाल सिंघी
पन्नालाल 'सुशील'
पन्नेसिंह
परदेशी साहित्यरत्न
(भाई) परमानन्द
(महाकवि) परमानन्द
परमानन्द खत्री
परमानन्द पाठक
परमानन्द प्रधान
(डॉ०) परमानन्द बदलाणी
(ब्रह्मर्षि) परमानन्द महाराज
(भक्त) परमानन्द मौनी महाराज
परमानन्द लल्ला
(डॉ०) परमानन्द शास्त्री
परमानन्द शास्त्री
परमानन्द शुक्ल
(योगिराज) परमानन्द सन्त
परमेश बन्दीजन
परमेश्वरदयाल विद्यार्थी
परमेश्वरानन्द शास्त्री, महामहोपाध्याय
(पं०) परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ
परशुराम नौटियाल
परशुराम चतुर्वेदी
परशुराम पटेरिया
परसन
पशुपाल वर्मा
(महात्मा) पहलवानदास
(कवि स्वामी) पहिलाजराम
पाण्डुरंग खानखोजे
पाबूदान
पारसदास निगोत्या
पारसनाथ त्रिपाठी

पारसनाथ सिंह
पार्वतीदेवी
पी० कृष्णन् नायर
पी० वी० नारायणन नायर
(डॉ०) पीताम्बर त्रिवेदी 'पीत'
पीताम्बरदत्त पसबोला
(डॉ०) पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
पीताम्बर पाण्डे
पीताम्बर भट्ट रमाधर
पीर मुहम्मद मूनिस
पुण्यानन्द झा
पुत्तनलाल शर्मा
पुत्तीलाल शुक्ल 'लालकवि'
पुत्तूलाल वर्मा 'करुणेश'
(नांदेल्ल) पुरुषोत्तम कवि
पुरुषोत्तमदास पाण्डेय
पुरुषोत्तम व्यास
पुरुषोत्तम साहनी
पूरनचन्द जोशी
पूर्णचन्द्र एडवोकेट
पूर्णचन्द्र नाहर
पूर्णचन्द्र विद्यालंकार
(बाबा) पूर्णदास
पूर्णमल्ल ब्रह्मभट्ट
पृथ्वीपालसिंह
पृथ्वीराज कपूर
पृथ्वीसिंह 'बेधड़क'
प्यारेमोहन चतुर्वेदी
प्यारेलाल चतुर्वेदी 'भ्रमर'
प्यारेलाल गुप्त
प्यारेलाल टहनगुरिया
प्यारेलाल दीक्षित
(बैरिस्टर) प्यारेलाल मिश्र
प्यारेलाल सन्तोषी
प्रकाश कविरत्न
प्रकाशचन्द्र गुप्त
(स्वामी) प्रज्ञानानन्द

प्रणयेश
प्रताप कुँवरिबाई
(पुरोहित) प्रतापनारायण
प्रतापनारायण मिश्र
प्रतापनारायण वाजपेयी
प्रतापनारायण श्रीवास्तव
प्रतापबाला
प्रतापसाहि
प्रतापसिंह कविराज
प्रतापसिंह नेगी
(सवाई) प्रतापसिंह, जयपुर-नरेश
प्रतिपालसिंह ठाकुर
प्रतीतराय लक्ष्मणसिंह
(लाला) प्रद्युम्नसिंह
प्रभागचन्द्र शर्मा
प्रभात तिवारी
प्रभुदयाल चतुर्वेदी
प्रभुदयाल यादव
प्रभुदयाल वाजपेयी 'महिदेव'
(पं०) प्रभुदयाल शर्मा
प्रद्युम्नकृष्ण कौल
(रायबहादुर) प्रभातचन्द्र बोस
प्रभुदयाल पाण्डेय
प्रभुदान
प्रभुदास ब्रह्मचारी
प्रमोदशरण पाठक
प्रयागदत्त ब्रह्मभट्ट
प्रयागदत्त शुक्ल
प्रयागदास त्रिपाठी
प्रयागनारायण संगम
प्रवीण गुप्त
प्रसन्नकुमार ठाकुर
(डॉ० कुमारी) प्रसन्नी सहगल
प्रह्लाद पाण्डेय 'शशि'
प्राणनाथ विद्यालंकार
प्रियंवदा गुप्ता
प्रियवन्धु शर्मा

प्रीतमदास
(श्रीमती) प्रेमकुमारी शर्मा
(डॉ०) प्रेमचन्द महेश
प्रेमदास
प्रेमनाथ दर
प्रेमनारायण अग्रवाल
प्रेमनारायण टण्डन
प्रेमनारायण त्रिपाठी
प्रेमनिधि शर्मा वैद्य
प्रेमवल्लभ जोशी
प्रेमशंकरबाई भट्ट
(ब्रह्मचारी) प्रेमसागर पंचरत्न
प्रेमसिंह
प्रेमानन्द प्रेमसखी

फकीरबक्श 'विनीत'
फणीश्वरनाथ 'रेणु'
फतहकरण उज्ज्वल
(बाबा) फतहकरण चारण
(राजा) फतहसिंह
(भट्ट) फूलचन्द
फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु'
फूलचन्द जैन 'सारंग'
फूलचन्द शर्मा

बंकिमचन्द्र चटर्जी
बंग अवधूत
बंगमहिला, राजेन्द्रबाला घोष
बक्शराम पाण्डेय
(कविराव) बख्तावर
बख्तावरदान
बख्तावरलाल भट्ट 'टीकाराम'
बख्शराम पाण्डेय 'सुजान'
बखऊदास 'सत्यनामी'
बच्चू दुबे
बच्चूलाल औदीच्य
बजरंगदत्त शर्मा

बजरंगबली गुप्त विशारद
बजरंगराव भट्ट
बजरंगसिंह
बटुकदेव मिश्र
बटुकदेव शर्मा
बटुकनाथ शर्मा
बट्टूलाल
बदरीदास पुरोहित
बदरीनारायण मिश्र
बदरीनारायण सिन्हा
बद्रीदान बारहट
(स्वामी) बद्रीप्रपन्न 'त्रिदण्डी'
बद्रीप्रसाद त्रिपाठी
बद्रीप्रसाद 'पाल'
(पंडित) बद्रीलाल शर्मा
बनमाली लाल
बनवारीलाल भटनागर
बनवारीलाल मिश्र
(महात्मा) बनादास
(डॉ०) बनारसीदास जैन
बनारसीदास 'विरही'
(डॉ०) बनारसीप्रसाद सक्सेना
बनारसीलाल 'काशी'
बन्दीदीन दीक्षित
बबुआजी मिश्र
बरकतउल्लाह 'पेमी'
बलजीत शास्त्री
बलदेवजी
बलदेव पाण्डे 'बलभद्र'
(मास्टर) बलदेवप्रसाद
बलदेवप्रसाद अवस्थी 'द्विजबलदेव'
बलदेवप्रसाद टण्डन
(मुंशी) बलदेवप्रसाद भट्ट
बलदेवप्रसाद मिश्र, काशी
बलदेवप्रसाद मिश्र 'छबीन'
बलदेवप्रसाद मिश्र 'द्विजेश'
(डॉ०) बलदेवप्रसाद मिश्र 'राजहंस'
बलदेवप्रसाद 'शील'
बलदेवलाल 'बलदेव'
(लाल) बलदेवसिंह
(महाराज) बलदेवसिंह
बलभद्र ठाकुर
बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस'
बलभद्र पाण्डेय 'बलभद्र'
बलभद्रप्रसाद 'रसराज'
(महाराजा) बलभद्रसिंह
बलराज साहनी
बलराम रामभाऊ पगारे 'अणु'
बलवन्तसिंह (राजा अवागढ़)
बसन्तराम शास्त्री
(महाराज) बसन्तराय
बसन्तीलाल विशारद
बहादुरशाह ज़फ़र
बहादुरसिंह
(महात्मा) बाँकीदास, आसिया
बापूसाहब गायकवाड़
(प्रो०) बाबूराम गुप्त
बाबूराम बित्थरिया
बाबूराम शुक्ल
बाबूलाल त्रिपाठी
बाबूलाल भार्गव कीर्ति
बाबूलाल मयाशंकर दुबे
बाबूलाल मार्कण्डेय
बारेलाल हूँका
(महात्मा) बालकराम 'विनायक'
बालकृष्ण गुप्त
बालकृष्ण गोस्वामी 'बच्चनगुरु'
बालकृष्ण जोशी 'विपिन'
बालकृष्णदास उर्फ बल्लीबाबू
बालकृष्ण राव
(गोस्वामी) बालकृष्णलाल
बालकृष्ण लक्ष्मण साठे
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
बालकृष्ण शर्मा, वैद्यराज
बाल गंगाधर खेर
(लोकमान्य) बाल गंगाधर तिलक
बालगोविन्द गुप्त
बालगोविन्द मिश्र 'कमलेश'
बालचन्द्र मोदी
बालचन्द्र शास्त्री
बालमुकुन्द
बालमुकुंद भरतिया
बालमुकुन्द व्यास
बालाबक्स बारहट
बालाशंकर कन्थारिया
बालेश्वरप्रसाद बी० ए०
(ठा०) बिड़दसिंह, माधवकवि
बिन्दाप्रसाद 'औघड़'
बिन्दु गोस्वामी
बिन्दु ब्रह्मचारी
बिशुनजी बागीपुरी
बिसाहूराम गुप्त
बिहारीदास
(पं०) बिहारीलाल
बिहारीलाल 'चैतन्य'
बिहारीलाल चौबे
बिहारीलाल जैन
बी० पार्थ सारथी अय्यंगार
बी० वी० मोहन
बुद्धदान
बुद्धदेव मीरपुरी
बुद्धदेव विद्यालंकार
(डॉ०) बुद्धप्रकाश
बुद्धिनाथ झा 'कैरव'
बुद्धिलाल श्रावक
बुद्धिवल्लभ पन्त
बुधसिंह
बुन्देलाबाला, गुजरातीबाई
बूलचन्द बसूमल राजपाल
बृजनन्दन पाण्डेय
बृजराज

बेणीराम 'द्विजबेनी'
बेदिल
बेनी प्रवीन
बेनीप्रसाद बाजपेयी 'मंजुल'
(डॉ०) बेनीप्रसाद 'सत्यशोधक'
बेनी बन्दीजन
बेनीमाधव तिवारी
बेनीसिंह परसेहण्डी
बेलुदान
बैजनाथ केडिया
बैजनाथ द्विवेदी
बैजनाथ पण्ड्या
बैजनाथ भोंडले
बैजनाथ व्यास
(ठा०) बैजनाथसिंह 'किंकर'
बैजू कवि
बोधनलाल चौधरी 'रंजन'
बोधा कवि
बोधासिंह
ब्रजकिशोर मिश्र
ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'
ब्रजचन्द
ब्रजजीवनदास
(गो०) ब्रजजीवनलाल
ब्रजनन्दनप्रसाद मिश्र
ब्रजनन्दन 'ब्रजेश'
ब्रजनन्दन मिश्र
ब्रजनन्दन शर्मा
ब्रजनाथ माधव बाजपेयी
ब्रजनारायण 'चकबस्त'
ब्रजनिधि
ब्रजबिहारी शुक्ल
ब्रजभूषण चन्द्र
ब्रजभूषण तिवारी
ब्रजभूषण त्रिपाठी 'निश्चल'
ब्रजभूषण शर्मा
ब्रजमोहन व्यास

ब्रजमोहन सिंह
(ठा०) ब्रजमोहनसिंह बैरिस्टर
ब्रजरत्न भट्टाचार्य
ब्रजराजसिंह
(शास्त्री) ब्रजलाल कालिदास
ब्रजलाल गोवर्धन यादव
ब्रजवासीदास
ब्रजबिहारी ओझा
ब्रजबिहारी लाल
(राय) ब्रजबिहारी शरण
ब्रजशंकर वर्मा
ब्रजेश
ब्रजेशबहादुर
ब्रह्मदत्त 'जिज्ञासु'
ब्रह्मदत्त तिवारी नागर
ब्रह्मदत्त विद्यालंकार
ब्रह्मदत्त शर्मा 'शिशु'
ब्रह्मदेव शास्त्री काव्यतीर्थ
ब्रह्मभट्ट कवि वृन्दावन
ब्रह्ममुनि परिव्राजक
ब्रह्मर्षिकुमार पाण्डेय
ब्रह्मानन्द
(स्वामी) ब्रह्मानन्द
ब्रह्मानन्द शुक्ल
(स्वामी)ब्रह्मानन्द सरस्वती शंकराचार्य
ब्रह्मानन्द स्वामी

भँवरलाल दूगड़
(स्वामी) भक्तप्रकाश
(सरदार) भगतसिंह
भगवतप्रसाद 'भानु'
भगवतप्रसाद शुक्ल 'सनातन'
भगवतशरण चतुर्वेदी
भगवतीदेवी शर्मा 'विह्वला'
भगवतीचरण
भगवतीप्रसाद पाठक
भगवतीप्रसाद बाजपेयी 'विश्व'

भगवतीशरण
भगवत्स्वरूप चतुर्वेदी
भगवत्स्वरूप जैन 'भागवत'
भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर
भगवन्त
भगवानदत्त गोस्वामी
भगवानदत्त चतुर्वेदी
भगवानदास सिरोठिया
(डॉ०) भगवानदास
(महाराज) भगवानदास
भगवानदास अवस्थी
भगवानदास केला
भगवानदास गुरु
भगवानदास बी० ए०
भगवानदास 'दास'
(डॉ०) भगवानदास माहौर
भगवानदास हालना
(महात्मा) भगवानदीन
भगवानदीन मिश्र
भगवानदीन शुक्ल
भगवानप्रसाद
भगवानप्रसाद चौबे
(बाबू) भगवानबख्श सिंह
भगवानस्वरूप न्यायभूषण
भट्ट मुरलीधर
भट्ट श्रीकृष्ण
भद्रगुप्त वैद्य
भद्रसेन आचार्य
भद्रसेन गुप्त
भरतू दीक्षित
भवप्रीतानन्द ओझा
भवानीचरण मुखोपाध्याय
भवानीदत्त थपलियाल
(लाला) भवानीप्रसाद
(डॉ०) भवानीप्रसाद तिवारी
(डॉ०) भवानीप्रसाद 'भगवन्त'
भवानीप्रसाद 'भावुक'

भवानीभीख त्रिपाठी
भवानीशंकर याज्ञिक
(महाराज) भवानीसिंह,
झालावाड़-नरेश
भवेन्द्रचन्द्र चौधरी
भागवतप्रसाद 'भानु'
भागवत मिश्र
भानीराम पुरोहित
(डॉ०) भानुप्रकाश कौशिक
भारतदान आसिया
(डॉ०) भारतभूषण अग्रवाल
भारतसिंह बाघेल
भालचन्द्र जोशी
भास्करप्रसाद श्रीवास्तव
भास्कर रामचन्द्र भालेराव
(डॉ०) भीखनलाल आत्रेय
(महाराजा) भीमसिंह
(पं०) भीमसेन शर्मा, इटावा
भीमसेन शास्त्री
भीमसेन शर्मा, आगरा
भीमसेन हलवाई
भीष्मलाल मिश्र
भुजबलसिंह ठाकुर
भुजविशाल चतुर्वेदी
भुवनचन्द्र गर्ग
भुवनेश मिश्र
भुवनेश्वर झा
भुवनेश्वर झा 'भुवनेश'
भुवनेश्वर मिश्र
(डॉ०) भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र 'माधव'
भुवनेश्वरसिंह 'भुवन'
भूदेव शर्मा शास्त्री
भूपनारायण
भूपसिंह 'भूप'
भूपेन्द्रनाथ दत्त
भूपेन्द्रनाथ सान्याल
भूमित्र शर्मा

भूरसिंह शेखावत
भृगुरामाश्रय मिश्र
भैयालाल कन्होआ
भैरवदत्त आसोपा वाचीश
भैरवदत्त मिश्र 'कवीन्द्र'
भैरवप्रसाद वाजपेयी 'विशाल'
भैरों गुप्त
भोगीलाल गुप्त
भोगीलाल भावसार
भोजराज 'भोजल'
भोलादत्त चन्दोला 'अम्बरीश'
भोलानाथ
(गोस्वामी) भोलानाथ गौड़
भोलानाथ दत्त पाण्डेय
भोलानाथ शर्मा
भोलानाथ सक्सेना 'भोरी सखी'
भोलालाल दास
भौन कवि

मंगतराम जोशी 'मंगल'
मंगलदास
मंगलदास कायस्थ
मंगलदीन उपाध्याय
मंगलदेव शर्मा-1
मंगलदेव शर्मा-2
(डॉ०) मंगलदेव शास्त्री
(राव) मंगलप्रसाद
मंगलप्रसाद निगम
मंगलानन्द नौटियाल 'अभागा'
(स्वामी) मंगलानन्द पुरी
मंगलाप्रसाद
मंगलीप्रसाद दुबे
मक्खनसिंह 'मानस'
साहित्याचार्य मग (महेन्द्र मिश्र)
मगनभाई प्रभुदास देसाई
मगनलाल भाई
मगनलाल भूधरभाई पटेल

मगनीराम साकरिया
मणिलाल मिश्र
(आचार्य) मणिशंकर द्विवेदी
मथुरादत्त त्रिवेदी
(भट्ट) मथुरानाथ शास्त्री
मथुरानाथ शुक्ल
(रायबहादुर) मथुराप्रसाद
(लाला) मथुराप्रसाद 'अनूप'
मथुराप्रसाद गुप्त
मथुराप्रसाद चौधरी
मथुराप्रसाद दीक्षित-1
मथुराप्रसाद दीक्षित-2
मथुराप्रसाद 'द्विजमोद'
मथुराप्रसाद मिश्र (काशी)
मथुराप्रसाद शिवहरे
मथुराप्रसाद सिंह
मथुरा भगत
मथेन मंगलचन्द
मदन भट्ट
मदनमोहन
मदनमोहन गुप्त 'प्रवीण'
मदनमोहन झा
मदनमोहन त्रिपाठी
मदनमोहन द्विवेदी 'मदनेश'
मदनमोहनलाल दीक्षित
मदनमोहन सेठ
मदनमोहनलाल चतुर्वेदी
मदनलाल तिवारी
मधु अग्रवाल
मधुमंगल मिश्र
मधुरप्रसाद शर्मा
मधुराद्वैताचार्य
मनईनागाथ मनीषी
मनफूल त्यागी 'सुधीर'
मनमोहन चौधरी
मनमोहन तिवारी
मनीराम शुक्ल

मधु अग्रवाल
मनुज देपावत
(डॉ०) मनुभाई त्रिवेदी
मनोरंजनप्रसाद सिंह
मनोहर मालवीय
मनोहर स्वामी
मनोहर पन्त खोलवलकर
मनोहरलाल मिश्र
मनोहरसिंह बारहट
मनोहरसिंह सेंगर
मन्नन द्विवेदी गजपुरी
मन्नालाल 'द्विज'
मन्नालाल द्विवेदी 'द्विजलाल'
मन्नालाल पटवारी
मन्नीलाल शर्मा 'स्वर्ण'
मन्नूलाल द्विवेदी
(गोस्वामी) मन्नूलाल 'मनु'
मयाशंकर याज्ञिक
मर्दान सिंह
(महाराज) मलखान सिंह
मल्लिनाथ शर्मा
महमूद अहमद 'हुनर'
महादेवप्रसाद त्रिपाठी
महादेवप्रसाद सेठ
महादेवसिंह शर्मा
महामुनि विद्यालंकार
महाराजदत्त चतुर्वेदी 'दत्त'
महाचन्द्र
महात्मराम
महादान
महादेवप्रसाद पाण्डेय 'शंकर'
महादेवप्रसाद मिश्र 'अतीत'
महादेवप्रसाद शुक्ल 'शंकर'
महाबल सावजी
महाबली सिंह
महावीरप्रसाद गहमरी
महावीर त्यागी
महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति'
महावीरप्रसाद मालवीय
महावीरप्रसाद श्रीवास्तव
(लाल) महावीरसिंह
महावीरसिंह वीरन
महाव्रत विद्यालंकार
महीधर डंगवाल
महीधर शर्मा
महीधर शर्मा बड़थ्वाल
महीपति द्विज
महीपति सिंह
(डॉ०) महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य
(स्नातक) महेन्द्रकुमार, वेद शिरोमणि
महेन्द्रजी
महेन्द्र त्रिवेदी
महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी
महेन्द्रनाथ शास्त्री
(राजा) महेन्द्रप्रताप
महेन्द्रप्रसाद
महेन्द्रराय 'अघहरि'
महेन्द्रसिंह
महेशकुमार वाजपेयी 'सिद्धिरस'
(बाबू) महेशचन्द्रप्रसाद
महेशचन्द्र शर्मा
महेशदत्त 'रंक'
(मौलवी) महेशप्रसाद
महेशानन्द थपलियाल
(ठा०) महेश्वरबक्श सिंह
महेश्वरबक्श सिंह, लालसाहब
महेश्वर राय
मांगीलाल अग्निहोत्री
माईदयाल जैन
माखनराव भट्ट
माखन लखेर
माखनलाल
माणकचन्द्र कटारिया
माणिकचन्द्र जैन
मातादीन दीक्षित
मातादीन मवेरिया
मातादीन शुक्ल
मातादीन शुक्ल 'सुकवि नरेश'
(डॉ०) माताप्रसाद गुप्त
मातासेवक पाठक
मातृदत्त त्रिपाठी 'प्रणयेश'
माधवचरण द्विवेदी 'माधव'
माधवदान
माधवप्रसाद पौराणिक
माधवप्रसाद मिश्र
माधवप्रसाद श्रीवास्तव
माधवराव शिवराव सन्त
माधवराव सिन्धिया
माधवसिंह
(लाल) माधवसिंह 'क्षितिपाल'
माधवी देवी
मानकवि
मानजी
मानदान
(महाराज) मानसिंह द्विजदेव
मानूलाल द्विज
मायादत्त नैथाणी
मायानाथ चैतन्य
मायाराम चौबे
मार्तण्ड उपाध्याय
मालिकराम त्रिवेदी
मालोजीराव नरसिंहराव शितोले
मालवीप्रसाद श्रीवास्तव
मिहीलाल 'मिलिन्द'
मीठालाल व्यास
(सन्त) मीतादास
मीर मुराद
(शेख) मुईनुद्दीन
मुकनदास
मुकुटलाल मिश्र
मुकुन्द केशव पाध्ये

मुकुन्ददास गुप्त प्रभाकर
मुकुन्ददास मूँधड़ा
मुकुन्दराम
मुकुन्दराम स्वामी
(स्वामी) मुक्तानन्द
(चौ०) मुख्तारसिंह
मुड़िया स्वामी
मुतूर रामवन नायर
मुनलाल मानन्दलाल
मुन्नालाल मिश्र
मुरलीधर दीक्षित 'भ्रान्त'
मुरलीधर पाण्डेय
मुरलीधर भट्ट
(डॉ०) मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर'
मुरलीधराचार्य 'तिलक'
मुरलीमनोहर
मुरारिदान
मुरारिदान कविया बारहट
(महामहोपाध्याय) मुरारिदान
कविराजा
(अध्यापक) मुरारीलाल शर्मा
(चौ०) मुल्कीराम
(मुंशी) मुसद्दीलाल
मुहब्बतसिंह दोनदार
मुहम्मद अब्दुस्सत्तार 'प्यारे'
(मौलाना) मुहम्मद मंजूर आलम
'मुस्तफा'
मुहम्मद वजीर खाँ
(ठा०) मूरतसिंह
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
मूलचन्द परसराम शर्मा
मूलचन्द 'वत्सल'
मृगेन्द्र
मेदराम बारहट
मैथिलीप्रसाद पाण्डेय
मेधाव्रत कविरत्न
(डॉ०) मोतीचन्द्र

मोतीलाल मेनारिया
मोतीलाल विजयवर्गीय
मोतीलाल शास्त्री
मोलाराम तोमर
मोहन चोपड़ा
मोहन जोशी
मोहन राकेश
(पं०) मोहनलाल
मोहनलाल चतुर्वेदी
मोहनलाल नेहरू
मोहनलाल मिश्र
मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या
मोहनलाल सक्सेना
मोहनवल्लभ पन्त
मोहन शर्मा विद्याभूषण
मोहनसिंह सेंगर
मोहन सिनहा
मोहन स्वर्णकार
मोहब्बत सिंह
(मुल्ला) मोहम्मद हुसेन 'किताबी'

यज्ञदत्त शर्मा उपाध्याय
यज्ञनारायण उपाध्याय
यज्ञनारायण चौबे 'रामायणी'
(ठा०) यज्ञेश्वरसिंह 'पामर'
यदुनन्दनप्रसाद
यदुनन्दनप्रसाद श्रीवास्तव
(डॉ०) यदुवंशी
यमुना कार्थी
यमुनाप्रसाद तिवारी
यमुनाप्रसाद पाण्डेय
यशपाल
यशपाल वेदालंकार
यशवन्त माधव पारतेरकर
यशवन्त रामकृष्ण दाते
(सरदार) यशवन्तसिंह
(राजा) यशवन्तसिंह तिर्वा

यशवन्तसिंह वर्मा टोहानवी
यशोदादेवी
यशोदानन्द
यशोदानन्दन
यशोदानन्दन अखौरी
(लाल) यादवेन्द्रसिंह करचुली
युगलकिशोर
युगलकिशोर मस्करा 'पुष्प'
युगलकिशोर मिश्र 'युगलेश'
युगलकिशोरसिंह शास्त्री
युगलप्रसाद कायस्थ
युगलानन्दशरण
युगलेश
युगेश्वर मिश्र 'युगे· '
योगीन्द्रपति त्रिपाठी
योगीन्द्र पुरी
योगेन्द्रकृष्ण दौर्गादत्त
योगेन्द्रनाथ पाठक 'महिदेव'
योगेन्द्र पाण्डेय
योगेशचन्द्र बसु
योगेश्वर गुलेरी
योगेश्वराचार्य

रंकनाथ कृष्णानन्द
रंग अवधूत
(सेठ) रंगनाथ खेमराज
(पं) रंगनाथ पाठक
रंबुकराम अग्निहोत्री
रघुनन्दन त्रिपाठी
रघुनन्दनदास बबुए
रघुनन्दनप्रसाद निगम
रघुनन्दनप्रसाद पतोखी
रघुनन्दनप्रसाद मिश्र 'कवीन्द्र'
रघुनन्दनलाल श्रीवास्तव 'राघवेन्द्र'
(डॉ०) रघुनन्दन स्वामी 'मुक्त'
रघुनाथ कवि
रघुनाथ झा

रघुनाथदान
रघुनाथदास बबुए
(बाबा) रघुनाथदास महन्त 'रामसनेही'
रघुनाथ पाण्डेय 'प्रदीप'
रघुनाथप्रसाद कायस्थ
रघुनाथप्रसाद परसाई
रघुनाथप्रसाद पाण्डेय
रघुनाथप्रसाद मिश्र
रघुनाथप्रसाद मुख्तार
रघुनाथलाल गोस्वामी
रघुनाथ सिंह
(आन्ध्रवेश) रघुराजसिंह
(रानी) रघुवंशकुमारी)
(सरदार) रघुवंशनारायण सिंह
रघुवंशलाल गुप्त आई० सी० एस०
रघुवंश सहाय
रघुबरदत्त
रघुबरदयाल
रघुबरदयाल त्रिवेदी 'सत्यार्थी'
रघुबरदयालु मिश्र
(महन्त) रघुबरदास
रघुराय मनबोधन
रघुवीरदयाल 'रघुवीर'
रघुवीरनारायण
रघुवीरप्रसाद
रजपाल पाण्डेय
रज्जीलाल दुबे
रजनीकान्त शास्त्री
रणछोड़ भट्ट
रणजीत सीताराम पण्डित
रणधीर साहित्यालंकार
रणमल सिंह
रतनलाल (पण्डित)
रतनलाल 'चातक'
रतिराज
रतिलाल मोहन त्रिवेदी
(ठा०) रतनसिंह

रत्नाकर शर्मा
रत्नचन्द बी० ए०
रत्नेन्द्र जैन
रत्नो भगत
रमणीकलाल इनामदार
रमाकान्त त्रिपाठी
रमाकान्त मालवीय
रमाकान्त मिश्र
रमाकान्त शास्त्री
रमारानी जैन
रमाप्रसाद मिश्र 'रमेश'
रमाशंकर अवस्थी
रमाशंकर गुप्त 'कमलेश'
रमाशंकर मिश्र
रमाशंकर शुक्ल 'हृदय'
रमेशकुमार माहेश्वरी
रमेशचन्द्र 'प्रेम'
रमेशदत्त पाण्डेय
रमेशप्रसाद
रमेशप्रसाद महेश
रमेशराय ब्रह्मभट्ट
रविशंकर रावल
रविशंकर शुक्ल
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
रसपुंज रसरंग
रसिकलाल
रसिकलाल दत्त
(मुंशी) रसिकलाल भगत
रसिकबिहारी 'रसिकेश'
रसूल खाँ 'रसूल'
रसेन्द्र श्रीवास्तव
(बाबा) राघवदास
(महन्त) राघवप्रसाद सिंह
राघवेन्द्र
राधोदास
राजकमल चौधरी
राजकिशोर अग्रवाल

(ठा०) राजकिशोरसिंह
(चक्रवर्ती) राजगोपालाचार्य
राजदेव झा
राजनारायण शर्मा 'दर्द'
(डॉ०) राजबली पाण्डेय
(राजा) राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह 'प्यारे'
राजरानी चौहान
राजवल्लभ सहाय
राजाबाबू दत्त
राजाराम त्रिवेदी 'प्रकाश'
राजाराम पाण्डेय
राजाराम मिश्र
राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा'
राजेन्द्रकुमार
राजेन्द्रकुमार जैन
(डॉ०) राजेन्द्रप्रसाद
राजेन्द्रशंकर चौधरी
राजेन्द्रसिंह करचुली
(महाराजा) राजेन्द्रसिंह
राजेश्वरप्रसाद वर्मा 'चक्र'
राजेश्वर शास्त्री 'द्रविड़'
राधाकृष्ण
राधाकृष्ण चतुर्वेदी
राधाकृष्ण झा
राधाकृष्ण टीबड़ेवाल
राधाकृष्ण तिवारी
राधाकृष्ण नेवटिया
राधाकृष्ण मिश्र
राधाचरण गोस्वामी
राधामोहन झा
राधाप्रसाद
राधालाल गोस्वामी 'दास'
राधालाल माथुर
राधावल्लभ जोशी
राधिकाप्रसाद ब्रह्मभट्ट
राधिकाप्रसाद भट्ट 'राधिकेश'

राधेकृष्णदास
राधेश्याम शर्मा
राधेश्याम सक्सेना 'रसिकेश'
(डॉ०) रामअवध द्विवेदी
रामअवध शर्मा
रामआधार मिश्र
(महामहोपाध्याय) रामकरण आसोपा
रामकली 'प्रभा'
रामकिशोर शर्मा
रामकिशोरी श्रीवास्तव
(सेठ) रामकृष्ण डालमिया
रामकृष्ण त्रिवेदी 'कृष्ण'
रामकृष्णदेव गर्ग
रामकृष्ण वर्मा
रामकुमार त्रिवेदी
रामकुमार शुक्ल
रामकुमार सिंह
रामगुलाम चौधरी
रामगुलाम द्विवेदी
(प०) रामगोपाल
रामगोपाल 'गोपाल'
रामगोपाल मिश्र
(सेठ) रामगोपाल मोहता
रामचन्द्र गोविन्द काटे
रामचन्द्र टण्डन
रामचन्द्र दुबे
रामचन्द्र देहलवी
रामचन्द्र द्विवेदी
रामचन्द्र 'श्रीपति'
रामचन्द्र नीमा
रामचन्द्र भारती
रामचन्द्र भार्गव
रामचन्द्र मिश्र 'चन्द्र'
रामचन्द्र 'मुँहतोड़'
रामचन्द्र मोरेश्वर करकरे
रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे
रामचन्द्र लाल

रामचन्द्र 'वेदान्ती'
रामचन्द्र शर्मा विद्यार्थी
रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'
रामचन्द्र सैनी
रामचरन कवि 'बसन्त'
रामचरणराय एडवोकेट
रामचरित उपाध्याय
रामचरित पाण्डेय 'पावन'
रामचरित्र पाण्डेय 'सुकेश'
रामचरित्र सिंह
रामजीदास वैश्य
रामजीवन त्रिपाठी
(बाबा) रामजीवनदास
रामजीशरण विन्ध्याचल 'कविकिंकर'
रामजू भट्ट
रामदत्त
रामदत्त शर्मा
रामदत्त सांकृत्य
रामदयाल कविया
रामदयाल तिवारी
रामदयाल 'दयाल'
(लाला) रामदयाल दीवान
रामदयाल शर्मा
रामदयाल श्रीवास्तव
रामदहिन शर्मा
रामदान
रामदास गौड़
रामदास वर्मा
रामदीन पाण्डेय
रामदीनसिंह
रामदुलारे त्रिवेदी
रामदुलारे मिश्र
रामदुलारे शुक्ल 'शुक्लसन्त'
रामदेव झा
(पं०) रामद्विज
रामधारी प्रसाद
रामनरेश कुमपुरिया 'सम्राट्'

रामनरेशसिंह 'रंजन'
(राव) रामनाथ
(लाला) रामनाथ
रामनाथ कविया
(ठाकुर साहब) रामनाथ कविया चारण
रामनाथ प्रधान
रामनाथ रतनू चारण
राजनाथ वाजपेयी
रामनाथ व्यास 'परिकर'
रामनाथ शर्मा
रामनाथ 'सुमन'
रामनारायण चतुर्वेदी
रामनारायण दुबे 'अवधूत'
(बाबू) रामनारायण दूगड़
रामनारायण द्विवेदी 'रमेश'
रामनारायण मिश्र, काशी
रामनारायण मिश्र, छपरा
रामनारायण मिश्र, भूगोल
रामनारायण लाल
रामनारायण विश्वनाथ पाठक
रामनारायण व्यास
रामनारायण शुक्ल
रामनारायणसिंह
रामनिवास
रामप्रताप ताम्बूली
रामप्रताप पुरोहित
रामप्रताप शर्मा
रामप्रसाद
रामप्रसाद निरंजनी
रामप्रसाद 'प्रसाद कवि'
रामप्रसाद 'बिस्मिल'
रामप्रसाद मिश्र
रामप्रसाद लोहिया
रामप्रसाद शुक्ल
रामप्रसादसिंह
रामप्रसादसिंह 'साधक'

लक्ष्मीधर अवस्थी 'द्विजलक्ष्य'
लक्ष्मीधर चतुर्वेदी
लक्ष्मीधर शास्त्री महामहोपाध्याय
लक्ष्मीनारायण
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
लक्ष्मीनारायण उपाध्याय
लक्ष्मीनारायण गुप्त, आई० सी० एस०
लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी
लक्ष्मीनारायण लाल रायसाहब
पं० लक्ष्मीनारायण शर्मा
लक्ष्मीनारायणसिंह
(चौ०) लक्ष्मीनारायणसिंह 'ईश'
लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु'
लक्ष्मीनारायण सिंहानिया
लक्ष्मीप्रसाद
लक्ष्मीप्रसाद तिवारी
लक्ष्मीप्रसाद पाठक
लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा'
लक्ष्मीप्रसाद श्रीवास्तव
(रायबहादुर) लक्ष्मीशंकर मिश्र
लखनसेन परिहार
लखमीचन्द
लच्छीराम कवि ब्रह्मभट्ट
लच्छीराम तावणियाँ
लज्जाशंकर झा
(महात्मा) लटूरसिंह
ललितकुमारसिंह 'नटवर'
ललिताप्रसाद अख्तर
ललिताप्रसाद ऊनियाल 'ललाम'
ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित'
(आचार्य) ललिताप्रसाद सुकुल
लल्मीप्रसाद पाण्डेय
लल्लूजी महाराज 'लालसखी'
लल्लूजीलाल 'लालकवि'
लल्लूप्रसाद शर्मा
(लाला) लाजपतराय
लाडलीप्रसाद मिश्र 'कुसुम'

लाडलीप्रसाद श्रीवास्तव
लालचन्द पथनाणी
लालचन्द्र शर्मा पुरोहित
लालचन्द्र शास्त्री
लालचन्द्र विद्याभास्कर
लालचन्द्र सेठी
लालजी ब्रह्मभट्ट
लालबिहारी मिश्र 'द्विजराज'
लालमणि पाण्डेय 'प्रमोद'
(डॉ०) लीलाधर गुप्त
लीलाधर जोशी
लीलावती कृष्णलाल वर्मा
लीलावती झँवर 'सत्य'
लेखराम आर्यपथिक
लोकनाथ तर्कवाचस्पति
लोकबन्धु मिश्र
लोकमणिदास चतुर्वेदी
लोचनप्रसाद पाण्डेय
लोनेसिंह गौर 'हरिमित्र'
(ठा०) लौटूसिंह गौतम

वंशी पंडित
वंशीधर दुबे
वंशीधर पाण्डे
वंशीधर भट्ट
वंशीधर वाजपेयी
वंशीलाल वकील
वज्रपाणिसिंह परिहार
वनमाली चतुर्वेदी
वनमालीप्रसाद शुक्ल
वल्लभसखा
वल्लभानन्द शर्मा
वशिष्ठप्रसाद पाण्डे
वसन्तलाल गुप्त
वागीश्वर विद्यालंकार
वागेश्वरी प्रसाद
वादेराय भट्ट

(सैयद) वासित अली 'वासित'
(डॉ०) वासुदेव उपाध्याय
(अघौरी) वासुदेवनारायण सिन्हा
वासुदेव पाठक
वासुदेव ब्रह्मचारी
वि० मुकर्जी 'गुंजन'
विक्रमभाई खोड़ीदास पटेल
(महाराजा) विक्रमाजीतसिंह
(स्वामी) विचारानन्द
विचित्रनारायण दत्त 'बरुआ'
विच्छन्दचरण पट्टनायक
विजयगोविन्द द्विवेदी
विजयकुमार सिनहा
विजय तैलंग
विजयवल्लभ सूरि
विजयानन्द त्रिपाठी, आरा
विजयानन्द त्रिपाठी, काशी
(आचार्य) विजयानन्द सूरि
विद्याधर डंगवाल
विद्याधर विद्यालंकार
विद्यानाथ शर्मा
विद्याभास्कर सुकुल
विद्याराम वमनजी त्रिवेदी
(डॉ०) विद्याव्रत शास्त्री
विद्यासागर विद्यालंकार
विनायक गणेश साठे
विनायक दामोदर सावरकर
(मुन्शी) विनायकप्रसाद तालिब
विनायक मिश्र
विनायक विश्वनाथ वैद-विख्यात
विनायक सीताराम सर्वटे
विनायकानन्द सरस्वती 'विनायक'
विनोदशंकर पाठक
विनोदशंकर व्यास
विन्ध्यवासिनी देवी
विन्ध्याचलप्रसाद 'ललित'
विन्ध्याप्रसाद ब्रह्मभट्ट

विन्ध्येश्वरी
विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी
विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री
विन्ध्येश्वरीप्रसाद श्रीवास्तव
विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह
विन्ध्येश्वरीप्रसाद स्वर्णकार
विन्ध्येश्वरीप्रसाद 'पंकज'
(डॉ०) विपिनबिहारी त्रिवेदी
विमला देवी 'रमा'
विमला रैना
(कुमारी) विमला सक्सेना
विशनदास भोजराज शिवदासानी
विशुतजी बागीपुरी
(कर्नल) विश्वनाथ उपाध्याय
विश्वनाथ गंगाधर वैशम्पायन
विश्वनाथ गणेश आगाशे
विश्वनाथ मिश्र 'राजेश'
विश्वनाथ सखाराम खोड़े
(महाराज) विश्वनाथ सिंह
विश्वनाथसिंह जूदेव
विश्वम्भरदत्त ऊनियाल
विश्वम्भरदत्त डेवराणी
विश्वम्भरदत्त त्रिपाठी
विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी
(लाला) विश्वम्भरनाथ
विश्वम्भरनाथ खत्री
विश्वम्भरनाथ जिज्जा
(डॉ०) विश्वम्भरनाथ भट्ट
विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक
विश्वम्भरप्रसाद गौतम
विश्वेश्वरदत्त मिश्र
विश्वेश्वरदयाल त्रिपाठी 'द्विजभान'
विश्वेश्वरदयालु चतुर्वेदी
विश्वेश्वरप्रसाद शर्मा
विश्वेश्वरसिंह बघेल
(आचार्य) विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि
(स्वामी) विश्वेश्वरानन्द

विष्णुदत्त कपूर
(रायबहादुर) विष्णुदत्त शुक्ल
विष्णुनयनाराम शर्मा
विष्णुप्रसाद कुमरि
विष्णुप्रसाद पण्ड्या
विष्णुसेवक अवस्थी 'श्रीनिधि'
वी० राधाकृष्ण मूर्ति
वीरजी भक्त
वीरसेन सिंह
वृजनन्दन 'वृजेश'
वृजवासीलाल
वृन्दावन
वृन्दावनदास
वृन्दावन ध्यानी
वृन्दावन ब्रह्मभट्ट
वृन्दावन मिश्र
वृन्दावनबिहारी मिश्र
वृषभानु कुँवरि
वेणीमाधव मिश्र
वेणीराम त्रिपाठी श्रीमाली
(लाला) वेणीमाधव रईस
वेदमित्र 'व्रती'
वैद्यनाथ
वैद्यनाथ अय्यर
व्रजजीवनदास
(महाकवि) व्रजेश

शंकरदत्त भट्ट
शंकरदत्त शर्मा
शंकरदान सामौर
शंकरप्रसाद
शंकरराव जोशी
शंकरराव पोहनकर
(वैद्य) शंकरलाल माहेश्वर
शंकरलाल मेहता
शंकरलाल वर्मा
शंकर शैलेन्द्र

शंकरसहाय अग्निहोत्री
शंकरानन्द
(स्वामी) शंकरानन्द ब्रह्मचारी
(कोमाण्डूरि) शठकोपाचार्य
शत्रुसूदनसिंह करचुली
शन्नो देवी
शम्भुनाथ मिश्र
शम्भुनारायण चौबे
शम्भूदयाल नायक
शम्भूदयाल 'व्रजेश'
शम्भूदान
शम्भूनाथ पारिभू
शम्भूनाथ शुक्ल
शम्भूप्रसाद मिश्र
शरदेन्दु सिनहा
(स्वामी) शशिधर
शशिन् यादव
शशिभूषण दास गुप्त
(साहू) शान्तिप्रसाद जैन
शशिभूषण राय
शशिशेखरानन्द सकलानी
(महन्त) शान्तानन्द नाथ
शान्तिधर देसाई
शान्तिप्रकाश महाराज
(डॉ०) शान्तिप्रसाद गोवर्धन व्यास
(साहू) शान्तिप्रसाद जैन
(सर) शान्तिस्वरूप भटनागर
शारदाप्रसाद चतुर्वेदी 'मौलिक'
शारदाप्रसाद भण्डारी
शारदा बहन मेहता
शालग्राम द्विवेदी
शालिग्राम वर्मा
(वैद्य) शालिग्राम वैश्य
शालिग्राम वैष्णव
शाह आलम
शिखरचन्द्र जैन
शिरोमणि पाठक

शिवकुमार लाल
शिवकुमार विद्यालंकार
(महामहोपाध्याय) शिवकुमार शास्त्री
(डा०) शिवकुमारसिंह
शिवकुमारी देवी
(ठा०) शिवकुमारसिंह
शिवचन्द्र मिश्र
शिवचन्द्र शर्मा 'अद्भुत'
शिवचरणलाल शर्मा
शिवचरणलाल शुक्ल 'शम्भुपद'
(योगिराज) शिवदत्त महाराज
(लाला) शिवदयाल
शिवदयाल शुक्ल
शिवदान
शिवदास जायसवाल 'कुसुम'
शिवदास पाण्डेय
शिवदुलारे त्रिवेदी
शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन'
शिवदुलारे मिश्र 'मधुकर'
शिवदुलारे शर्मा 'शिव'
शिवनन्दनप्रसाद सिंह
शिवनन्दन मिश्र 'नन्द'
शिवनन्दन शास्त्री
शिवनाथ मिश्र
शिवनाथसिंह सेंगर
शिवनारायण अग्निहोत्री
शिवनारायणलाल
शिवनारायण शुक्ल 'शम्भुनारायण'
शिवनारायणसिंह
शिवप्रकाश द्विवेदी
शिवप्रकाश लाल
शिवप्रसाद गुप्त
शिवप्रसाद चतुर्वेदी
शिवप्रसाद पाण्डेय 'शिव'
शिवप्रसाद पाण्डेय 'सुमति'
शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र काशिकेय'
शिवप्रसाद शर्मा

(राजा) शिवप्रसाद सितारेहिन्द
शिवप्रसादसिंह 'सिंह'
(आचार्य) शिवपूजन सहाय
(ठा०) शिवबख्श चारण
शिवमूर्ति सिंह 'कौतुक बनारसी'
(मुंशी) शिवरतनलाल कायस्थ
शिवरत्न शुक्ल 'सिरस'
शिवरामदास गुप्त
शिवराम शर्मा 'रमेश'
शिवराम शुक्ल
शिवबिहारीलाल मिश्र
शिवशंकर काव्यतीर्थ
शिवशंकर पाठक 'कलित'
शिवशंकर पाण्डेय 'शिव'
शिवशंकर भट्ट
शिवशर्मा महोपदेशक
(पं०) शिवशर्मा वैद्य
शिवसम्पत्तिसुजान शर्मा
शिवसहाय चतुर्वेदी
(ठा०) शिवसिंह
शिवसिंह सेंगर
शिवानन्द स्वामी
शिशुनील शरीफ
शिशुपाल सिंह 'शिशु'
शीतलप्रसाद उपाध्याय
शीतलप्रसाद ब्रह्मचारी
शीतलप्रसाद विद्यार्थी
शीतलाप्रसाद त्रिपाठी
शीतलाबख्शसिंह
शील चतुर्वेदी
(महन्त) शुकदेव
शुकदेव पाण्डे
शुकदेवप्रसाद तिवारी 'निर्बल'
शुकदेवप्रसाद पाण्डेय
शुकलालप्रसाद पाण्डेय
शेरादान खड़िया
शेरादान चारण

शेषमणि शर्मा 'मणि रायपुरी'
(कुमारी) शोभना भूटानी
शोभाचन्द्र जोशी
शोभाराम 'धेनुसेवक'
(मुंशी) श्यामगुलाम लाल
श्यामजी कृष्ण वर्मा
श्यामधारीप्रसाद
श्यामनन्दन सहाय
श्यामनाथ शर्मा
श्यामनारायणप्रसाद
श्यामप्रकाश दीक्षित
श्यामलदास कविराजा
श्यामलाल उपाध्याय 'श्याम'
श्यामबिहारी तिवारी 'देहाती'
श्यामबिहारी मिश्र
श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी'
श्याममोहन श्रीवास्तव
श्यामलाल शुक्ल 'षष्ठकवि'
श्याम शर्मा
श्यामसुन्दर पाण्डेय 'छविश्याम'
(डॉ०) श्यामसुन्दरलाल दीक्षित
श्यामसुन्दर वाजपेयी
श्यामसुन्दरशरण 'श्रीबाबूजी'
श्यामसुन्दर शर्मा 'कलानिधि'
श्यामसुन्दर सेन
श्यामसेवक मिश्र
श्यामाचरण चिनोरिया
श्यामाचरणदत्त पन्त
श्रद्धाराम फिल्लौरी
श्रीकर त्रिपाठी
श्रीकान्त शर्मा
श्रीकृष्ण गुप्त
श्रीकृष्णदास
श्रीकृष्णदास जाजू
श्रीकृष्ण भट्ट-1
श्रीकृष्ण भट्ट-1
श्रीकृष्ण मिश्र

(डॉ०) श्रीकृष्णलाल
श्रीकृष्ण शर्मा, आर्य मिशनरी
श्रीकृष्ण शास्त्री तैलंग
श्रीकृष्ण शुक्ल
श्रीकृष्ण सेन्द्रे 'हृदयेश'
(विहार-केसरी) श्रीकृष्ण सिंह
श्रीकृष्ण हसरत
श्रीगोपाल नेवटिया
श्रीचंद्र जैन
श्रीनारायण मिश्र
श्रीनिवास जगदत्त
श्रीनिवास चतुर्वेदी
(लाला) श्रीनिवासदास
श्रीपतानन्द
श्रीपति पाण्डेय
श्रीपाल तिवारी
श्रीरत्न शुक्ल
(महाराजा) श्रीराजसिंह
श्रीराम अग्रवाल
श्रीराम मिश्र
श्रीराम वाजपेयी
श्रीराम शर्मा-1
श्रीराम शर्मा-1
श्रीलाल शालग्राम पण्ड्या
श्रूपदास

(मुन्शी) संकटाप्रसाद
संसारनाथ पाठक
सखाराम गणेश देउस्कर
सज्जन कवि
(महाराणा) सज्जनसिंह
सज्जनसिंह बाघेल
सतीश चौबे
सतीश जुयाल
सतीशबहादुर वर्मा
(स्वामी) सत्यदेव परिव्राजक
सत्यदेव शर्मा
सत्यनारायण कविरत्न
सत्यनारायण 'ज्योतिर्मय'
सत्यनारायण पाण्डेय 'सत्य'
सत्यनारायण शास्त्री वैद्य
सत्यपाल विद्यालंकार
सत्यव्रत [माया]
सत्याचरण शास्त्री 'सत्य'
(स्वामी) सत्यानन्द सरस्वती
सदल मिश्र
सदानन्द्र कुकरेती
सदानन्द घिल्डियाल
सदानन्द जखमोला 'सन्तत'
सदानन्द मिश्र
सदानन्द शुक्ल
सदानन्द सनवाल
सदाशिव दीक्षित
सदाशिव पाण्डुरंग खानखोजे
सदासुखजी
(मुंशी) सदासुखलाल 'नियाज'
(डॉ०) सद्गोपाल
सनातनानन्द सकलानी
सन्तराम गोहिल
सन्तराम महाराज
सन्तराम 'विचित्र'
(भाई) सन्तोखसिंह
सन्नूलाल गुप्त
समीउल्लाखाँ
सम्पतकुमारसिंह करचुली
(पं०) सम्पतराम
सम्पत्तिराय भटनागर
(डॉ०) सम्पूर्णानन्द
सम्मानबाई
(महाराज) सयाजीराव गायकवाड़
सयाजीराव लक्ष्मणराव सिलम
सरदार कवि
सरदार सिंह
सरयूनारायण तिवारी
सरयू पण्डा गौड़
सरयूप्रसाद मिश्र
सरस्वती देवी
(डॉ०) सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी
सरस वियोगी
सरूपदास
(स्वामी) सर्वदानन्द
सर्वदानन्द वर्मा
(स्वामी) सर्वानन्द
सवितानारायण
सहजानन्द स्वामी
सहदेवप्रसाद
साँवलदान
साँवलदास (दधिवालिया)
सागर महाराज
सादूलदान साँदू
सालिगराम भार्गव
साहिबसिंह 'मृगेन्द्र'
(महाराजा) सावन्तसिंह जूदेव बहादुर
सिकन्दरखाँ 'असर'
सिद्धगोपाल कविरत्न
सिद्धनाथ दीक्षित
सिद्धविनायक द्विवेदी
सिद्धिनाथ तिवारी
सिद्धिनाथ त्रिवेदी
सियारामशरण गुप्त
सियाललशरण 'प्रेमलता'
सीताचरण दीक्षित
सीताराम
सीताराम उपाध्याय
सीताराम तिवारी
सीताराम पाण्डेय
सीताराम बाघम
(लाला) सीताराम भाई 'ध्यान'
सीताराम 'भुरजेश'
सीताराम 'भ्रमर'
सीताराम शर्मा

(डॉ०) सीताराम, सर
सीताराम 'साधक'
सीतारामसिंह
सुखदेव दर्शनवाचस्पति
सुखदेवप्रसाद सिन्हा 'बिस्मिल'
सुखराम चौबे 'गुणाकर'
सुखलाल भाट
(प्रज्ञाचक्षु) पं० सुखलाल संघवी
सुखलालदास 'सत्यनामी'
सुजानसिंह-1
सुजानसिंह-1
सुतीक्ष्ण मुनि
सुदर्शन
सुदर्शनप्रसाद पाठक
सुदर्शन शाह
(राजमाता) सुदर्शनाकुमारी
सुदर्शनाचार्य बी० ए०
सुदामाप्रसाद पाण्डेय 'धूमिल'
(प्रो०) सुधाकर एम० ए०
सुधाकर झा शास्त्री
सुधाकर द्विवेदी, महामहोपाध्याय
(डॉ०) सुधीन्द्र
(डॉ०) सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
(डॉ०) सुन्दरलाल, सर
सुन्दरप्रसाद कविराज
सुन्दरलाल त्रिपाठी (राजिम)
सुन्दरलाल शर्मा
(प्राणाचार्य) सुन्दरलाल शुक्ल
सुबोधचन्द्र शर्मा 'नूतन'
सुमित्रादेवी
सुरेन्द्र तिवारी
(डॉ०) सुरेन्द्रनाथ शास्त्री
सुरेन्द्रपाल सिंह
सुरेन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'
सुरेन्द्र मिश्र
सुरेश दुबे 'सरस'
(डॉ०) सुरेश सिनहा
सुरेश्वर पाठक, विद्यालंकार
सुशीला आगा
सुशीलादेवी बैस
सूरजप्रसाद शर्मा
सूरजप्रसाद मिश्र
(बाबू) सूरजभान वकील
सूरजभान वर्मा
सूरजमल
सूरजमल जैन
सूरजशरण शर्मा
(दीवान) सूरजसिंह
सूरश्याम तिवारी
सूर्यकुमार जोशी
सूर्यकुमार पाण्डेय 'दिनेश'
सूर्यनाथ तकरू
सूर्यनाथ पाण्डेय
सूर्यनारायण त्रिपाठी
सूर्यनारायण दीक्षित
सूर्यप्रताप सिंह
सूर्यप्रसाद पाण्डेय
सूर्यप्रसाद मिश्र
(ठा०) सूर्यबली सिंह
सूर्यमल अग्रवाल झुनझुनवाला
सूर्यमल्ल मिश्रण
सेन नापित
सेवक जनेस (नाथू)
सेवकजी
सेवाराम
सेवाराम शर्मा 'भारतभ्रमर'
सैयद अली मुहम्मद
(स्वामी) सोमतीर्थ
सोमदेव शर्मा सारस्वत
(डॉ०) सोमनाथ गुप्त
(स्वामी) सोमानन्द, पं० नरेन्द्र
सोमेश्वरदत्त शुक्ल
(रायबहादुर) सोहनलाल
स्योदान
(स्वामी) स्वतन्त्रानन्द
स्वाति तिरुनाल
स्वामीनाथ शास्त्री

(बख्शी) हंसराज
हजारीलाल जैन
हजूरसिंह
(ठा०) हनुमन्तसिंह
हनुमान वर्मा
हनुमान शर्मा
हनुमान शर्मा 'हिन्दी हितैषी'
(जनकवि) हमीदा खटीक
हमीरदान
हरगोविन्द पन्त
(लाला) हरदयाल
हरदान
हरदेवी
हरद्वारप्रसाद जालान
हरनाथप्रसाद खत्री
(ठा०) हरनामसिंह चौहान
हरनारायण अग्निहोत्री
हरनारायणदास
हरप्रसाद कायस्थ 'हरिचन्द'
हरप्रसाद शास्त्री, महामहोपाध्याय
हरमुकुन्द शास्त्री
हरसिद्धभाई दीवेटिया
हरसेवक पाण्डेय 'कमल'
हरिकृष्ण अग्रवाल
हरिकृष्ण गोयनका
हरिकृष्ण रतूड़ी
हरिकेशव घोष
हरिगोपाल पाध्ये
हरिचरण चतुर्वेदी
हरिचरणदास
हरिजन कायस्थ
हरिदास
(महात्मा) हरिदास

हरिदास बाबा
हरिदास माणिक
हरिदास वैष्णव
हरिदास स्वामी 'भागवतरसिक'
हरिदास 'हरिजन'
हरिदास मिश्र 'द्विजमापुर'
हरिदीन त्रिपाठी 'दीन'
हरिनन्दन ठाकुर
हरिनाथ 'आलूपण्डित'
हरिनाथ पाठक
हरिनाथ शर्मा
हरिनारायण
हरिनारायण अग्निहोत्री
हरिनारायण शर्मा पुरोहित
हरिप्रसाद टम्टा
(डॉ०) हरिप्रसाद व्रजराय
हरिभाई बाकणकर
(डॉ०) हरिमंगल मिश्र
हरिमंगल मिश्र एम्० ए०
हरिराम त्रिवेदी 'हरि'
हरिराम द्विवेदी
हरिराम ब्रस्माना
हरिवंशप्रसाद द्विवेदी जौहरी
हरिवंशप्रसाद श्रीवास्तव
हरिवंशबहादुरसिंह बाघेल
हरिवंश मिश्र
हरिवंश सहाय
(राजगुरु) हरिवल्लभाचार्य
हरिविलास
हरिशंकर नागर
हरिशंकर शर्मा
हरिशंकर सिंह
(स्वामी) हरिशरणानन्द
हरिश्चन्द्र ठाकुर
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार
हरिसिंह
हरिसिंह गौर, सर
(महन्त) हरिहर गिरि
हरिहरनाथ हुक्कू
हरिहरप्रसाद 'रसिक'
(महाराजकुमार) हरिहरप्रसाद सिंह
हरिहर मिश्र
हरीदान
हरीश पंजाबी
हरेकृष्ण प्रवन
हर्षनाथ झा
हर्षराम सिंह 'हर्ष'
हलालूराम सोरी
हाजी अली खाँ 'अलि'
हाफिजुल्ला खाँ 'हाफिज'
हिंगलाजदान कविया बारहट
हीराबाई
हीरालाल (रायबहादुर)
हीरालाल कानजी कवि
हीरालाल काव्योपाध्याय
हीरालाल खन्ना
हीरालाल तिवारी
हीरालाल पटवारी
हीरालाल वर्मा
हीरालाल व्यास 'हृदयेश'
हुलासराय
(मा०) हुलास वर्मा
हुस्नानागरी 'नागरी'
हून्दराज पाकूराम शर्मा
(राजकवि) हृदयेश
हेमदान
हेमनाथ यदु
हेमन्तकुमारी देवी भट्टाचार्य

विदेशी दिवंगत हिन्दी-सेवी

(डॉ०) अगुस्तुस ब्राडहेड
(कैप्टन) अब्राहम लाकेट
आहति ग्रेटिस एस० लिगवा
आरथर लाम्स रायल
ई० एच० राजेर्स
ई० ग्रीव्स
ई० बी० ईस्टविक
(पादरी) उलमन
एण्ड्र लेस्ली
(डॉ०) ए० एफ० रूडाल्फ हार्नले
ए० जी० एटकिन्स
ए० पी० बरान्निकोव
ए० बी० शेरिफ
ए० सी० वुलनर
एच० एच० विलसन
एडम बीड
एडवर्ड बाल्फर
एडवर्ड स्काट वारिंग
(सर) एडविन आर्नल्ड
(रैवरेण्ड) एडविन ग्रीव्स
(पादरी) एथरिंगटन
एफ० आर० एच० चैपमैन
एफ० आर० अलीची
एफ० ई० केये
एफ० ई० स्नाइडर
एफ० ई० हाल
एफ० एफ० ग्राउस
एफ० एस० सालोमन ग्राउस
एम० ए० शेरिंग
एम० एच० इलियट
(रैवरेण्ड) एस० टी० एडम
एम० तुरोमेनासिस
एम० पी० डेविस

(लार्ड) एस० हूर्ड
एल० टी० वालकट
(डॉ०) एल० डी० बार्नेट
एल० पी० तैस्सितोरी
एलन
एलफिंस्टन
(बीबी) एलिजबेथ स्टलिंग
एलैक्जेण्डर
एस० जे० पालटेण्ड
(डॉ०) एस० डब्ल्यू० फालन
ओ० टी० लोर
क्लादियस बुकेनन
कर्क पैट्रिक
कार्ल गौटलीब प्फैंडर
(रैवरेण्ड) किड
क्रिश्चियन थियोफिलुस हॉर्नले
केस्सिगो बेलिगस्ती
(पादरी) कैलसो
कैसीआनो बेलीगत्ती
गार्सां द तासी
(डॉ०) गे गास
चार्ल्स आर० लेनमेन
चार्ल्स ग्राण्ट
चार्ल्स विल्किंस
चार्ल्स स्टीवर्ट
जॉन उम्राइल
जॉन एडम शूरमन
जॉन ओ गिल बाई
जॉन क्रिश्चियन (जॉन अधम)
जॉन गिल क्राइस्ट (जॉन बोर्थविक)
जॉन चैम्बरलेन
जॉन जोशुआ केटेलेयर
जॉन थाम्सन प्लाट्स
(डॉ०) जॉन न्यूटन
जॉन पारसन्स
(रैवरेण्ड) जॉन पीयर्सन
जॉन फाईनिण्ड
जॉन फिलिप ब्राउन
जॉन बीम्स
जॉन ब्लास
जॉन मरडोक
जॉन म्योर
जॉन राब्सन
(कैप्टन) जॉन विलियम टेलर
जॉन शेक्सपियर
(रैवरेण्ड) जॉन ह्यूलेट
जार्ज एस० ए० रैंकिंग
(सर) जार्ज ग्रियर्सन, अब्राहम
जार्ज डगलस
(रैवरेण्ड) जार्ज जेम्सवान
जार्ज विलफर्ड ह्विटवर्थ
(कैप्टन) जार्ज हैडले
जी० ई० बोराडेली
जी० डब्ल्यू गिलबर्डन
जी० पी० हेबेल ग्रोव
जी० बी० पार्सन्स
जी० सी० अजबोर्न
जूलियस फ्रेडरिक उल्लमन
जूलियस लोर
जूल्स ब्लास
जे० आर० बैलेण्टाइन
जे० फर्गुसन
जे० स्टील
जे० सी० आर० मूइंग
जे० एच० बडेन
जे० एन० कार्पेण्टर
जे० एफ० बर्नस
(रैवरेण्ड) जे० एम० एलैक्जेण्डर
जे० एम० मेकफाल्ड
जे० जे० मूर
जे० जे० लूकस
(रैवरेण्ड) जे० टी० थाम्पसन
जे० टी० बेट्स
जे० डी० बेट
जे० सी० आर० इविंग
जेम्स आर० बैलण्टाइन
जेम्स केनेडी
(रैवरेण्ड) जेम्स जोजेफ म्यूकस
जेम्स टाम्पसन
जेम्स मोंफाट
जेम्स हेगर मेस्समोर
जोजेफ एडीसन
जोजेफ टेलर
जोजेफ हेमिल्टन गिल
जोहन्ना फ्रेडरिक फिट्ज
ज्यूलियस फ्रेडरिक उल्लमन
टामस ह्यूएर ब्राउटन
(कैप्टन) टामस रोबक
टामस स्टीफेन्स
टी० ईवन्स
(रैवरेण्ड) टी० ग्राहम बेली
(रैवरेण्ड) टी० विलियम्स
टी० टी० थाम्सन
टी० टी० रोबर्ट्स
(प्रो०) टेलर
डंकन फोर्ब्स
डब्ल्यू एंड्रू
डब्ल्यू० एथारिंगटन
डब्ल्यू० एफ० जानसन
डब्ल्यू० एच० पीयर्स
डब्ल्यू टी० एडम
डब्ल्यू सैण्ड्स कोयर टिस्डेल
डब्ल्यू० डगलस पी० हिल
डब्ल्यू नोएल
(कैप्टन) डब्ल्यू ह्येलिंग्स
(रैवरेण्ड) डेविड ब्राउन
डानियल कोरी
थोबुई पार ई० सेमेरेसे
थामस क्रेवेन
(कैप्टन) थामस रोएबक
थामस स्टेवर्ट जाक्सन

(लैफ्टिनेण्ट) वसल मार्टिन
दे रोजारियो
(कैप्टन) नेपानसन
प्राइस
पीटर ब्रटन
पीत्रो देलावेल्लो
पैट्रिक कारनेगी
फैलन
(रेवरेण्ड) फ्रेंक ई० की
फ्रेंक एडवर्ड शलीउर
फ्रेडरिक पिंकाट
फ्रेडरिक सालोमन ग्राउस
बार्कर
(डॉ०) बेलेनटाइन
ब्रियान हाटन हागसन
ब्रेय ब्रिनटन हेकलीम बेडले
बैंजामिन शुल्ट्ज
(डॉ०) मर्डोरव
मार्शमेन
मेथ्यू एटमोर शेरिंग
मेथ्यू विलियम वाल्लसटन
(मिस) मेरीवर्ड
मैटूरिन वेसीरे लेक्रोस
मोनियर विलियम्स
यूले
(डॉ०) राबर्ट काटन माथर
रॉबर्ट शेड्डोन डोबी
(डॉ०) रिप्ले मूर
(रैवरेण्ड) रूडोल्फ एडोल्फ

(कैप्टन) रोबक
(रैवरेण्ड) लाशिगटन
लिस्टर सैण्ट जोसेफ
वार्ड
विल्किंस
(रैवरेण्ड) विलियम एथरिंगटन
विलियम किर्क पैट्रिक
विलियम कैरी
विलियम क्रुक
विलियम जॉन प्राइस
विलियम जोन्स
विलियम बटरवर्थ वेली
(रैवरेण्ड) विलियम बाउले
विलियम बायर्स
विलियम मैकडूगल
वि लियम याट्स
(रैवरेण्ड) विलियम राबर्ट जेम्स
विलियम रिजवे
विलियम स्काट
विलियम स्मिथ
विलियम हंटर
(डॉ०) विलियम हूपर
वैलेण्टाइन
श्रा० वोदाविल
शेरिंग
(रैवरेण्ड) शोलबर्ग
(दीनबन्धु) सी० एफ० एण्ड्रूज
सी० डब्ल्यू० बोउलर बेल
(डॉ०) सी० मताई

सेबास्तिया रोडल्फ दालगादो
सैंड फोर्ड आर्नेट
सैमुअल रूसो
सैमुअल हेनरी केलाग
हृगने स्तैन
हार्नली
(फादर) हेनरिक राथ
हेनरी एन० ग्राण्ट
हेनरी ड्रमण्ड विलियमसन
हेनरी थामस कोलब्रुक
हेनरी माय इलियट
हेनरी मार्टिन
(डॉ०) हेनरी मेनसेल
(सर) हेनरी यूले
हेनरी स्टेवर्ट
हेनरी हेरिस
हेरासिम लेबेडेफ

मारीशस तथा फीजी

आत्माराम विश्वनाथ (पंडित)
काशीनाथ किश्टो
गोपेन्द्रनारायण पथिक
नरसिंहदास
नेमनारायण गुप्त
मगनलाल मणिलाल (डॉ०)
रामअवध शर्मा (पंडित)
श्रीनिवास जगदत्त
सूरज मंगर भगत

• • •